Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार
पुस्तकालय

R
२८०
रा८६स
खं. १

विषय संख्या
पुस्तक सं
आगत पंजिका संख्या 2452

पुस्तक पर किसी प्रकार का निशान लगाना वर्जित है। कृपया १५ दिन से अधिक समय तक पुस्तक अपने पास न रखें।

112832

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

R
८०
प्र ८ ६ स
खं - १

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

112832

सरस्वती

112832

Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महर्षि वेदव्यास की विशद कृति

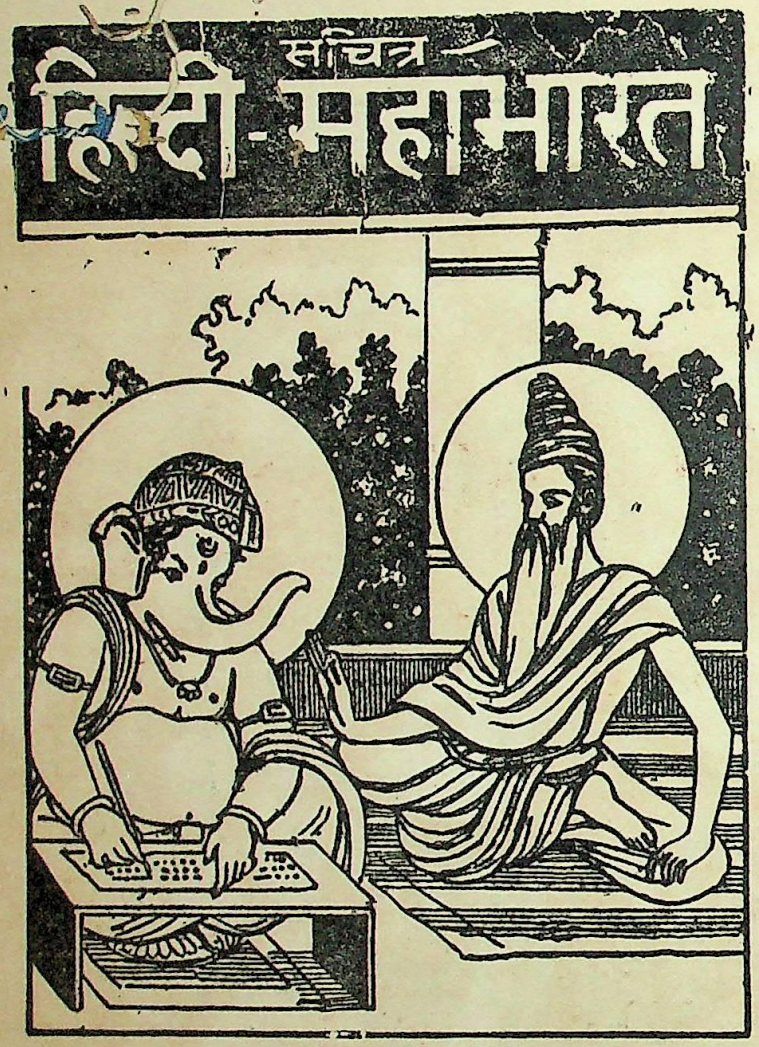

महाभारत को पाँचवाँ वेद कहते हैं। इस ग्रन्थ में महर्षि वेदव्यास ने अनेक शास्त्रों का वर्णन करके जीवनक्रम की सुलभ रीति बतलाई है। इसमें तीर्थों और व्रतों का वर्णन है, पुण्य पुरुषों की चरितावली है, ऋषियों के उपदेश हैं, सुन्दर उपाख्यान हैं और धर्म पर स्थिर रहकर उन्नति करने का मार्ग बतलाया गया है। यह ग्रन्थ १० खण्डों में समाप्त हुआ है। रंगीन और सादे चित्रों की अधिकता है। बढ़िया जिल्द है। १० खण्डों के पूरे सेट का मूल्य १००) सौ रुपया मात्र।

सचित्र महाभारत

इसमें महाभारत के अठारहों पर्वों की कथा बहुत ही सरल भाषा में लिखी गई है। इसके लेखक आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी हैं। सचित्र और सजिल्द ग्रन्थ का मूल्य ८ रुपये।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

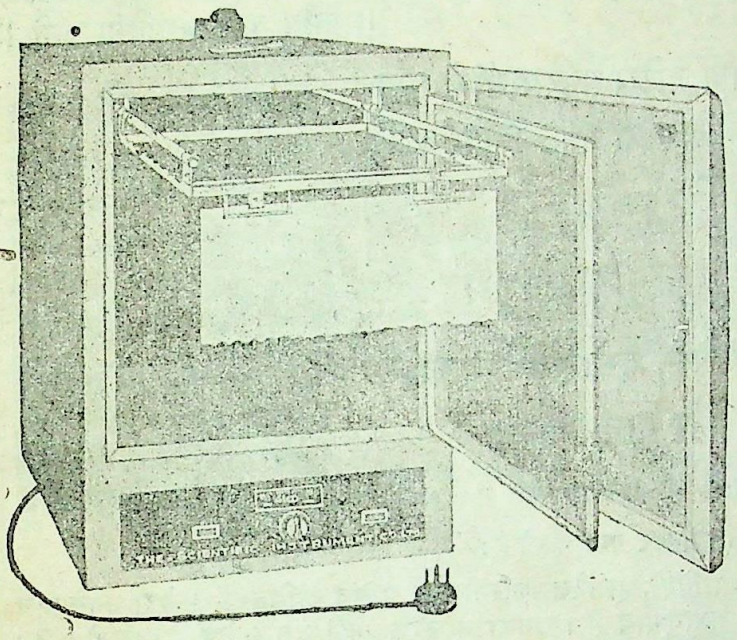

सीको कोमाटोग्राफिक ओवेन्स

THE SCIENTIFIC INSTRUMENT CO. SICO TRADE MARK

सीको : विज्ञान की सेवा में

वैज्ञानिक अनुसंधान एवम् देश में वैज्ञानिक यंत्रों की कमी को पूरा करने के लिये, सीको अपने उत्पादन व दूसरे देशों से सर्वश्रेष्ठ यंत्रों को मँगाकर शिक्षा, उद्योग एवम् वैज्ञानिक खोज की सेवा में संलग्न है।

दी साइण्टिफिक इन्स्ट्रूमेंट कम्पनी लिमिटेड,

इलाहाबाद, बम्बई, कलकत्ता, मद्रास, नई देहली

हेड आफिस—६, तेजबहादुर सप्रू रोड, इलाहाबाद

जिन शहरों में स्टाकिस्ट नहीं हैं वहां के लिये स्थानिक चाहिए।

शुद्ध बादाम रोगन पर बना

अलकपरी

केशों में प्रतिमास ३-४ इंच वृद्धि।
६ महीने में एड़ी-चुम्बी केश!

'अलकपरी' का कोर्स

पहले सप्ताह में रूसी-खुश्की दूर हो जाती है। दूसरे सप्ताह में केशों का झड़ना और उनके सिरों का फटना रुकता है।

तीसरे सप्ताह में नये केश उगते दिखाई देते हैं। चौथे सप्ताह के अन्त तक केश ३-४ इंच बढ़ जाते हैं। फिर प्रतिमास इसी औसत से बढ़ते रहते हैं।

६ महीने में केश एड़ी-चुम्बी बन जाते हैं।

मूल्य एक शीशी का ३·०० है जो एक महीने को काफी होती है। डाक-खर्च व पैकिंग पृथक्। ४ से अधिक शीशियां डाक से नहीं भेजी जायेंगी। अधिक के लिए मूल्य पेशगी भेजिए।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ ओम् दुर्गा दुर्गतिनाशिनी ॥ ॥ ओम् दुर्गा दुर्गतिनाशिनी ॥

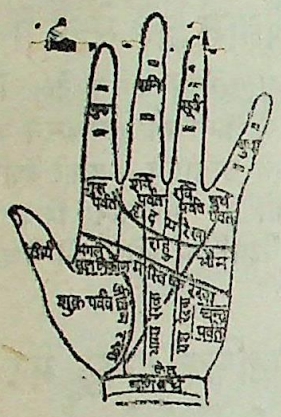

जीवन की विभिन्न जटिल समस्याओं के समाधान के लिए मिलिये या पत्र-व्यवहार करिये

ज्योतिषाचार्य—

प्रोफेसर प्रद्युम्ननारायण सिंह

वैज्ञानिक ज्योतिषी, हस्तरेखा-विशारद,

तांत्रिक और मानस शास्त्रज्ञ

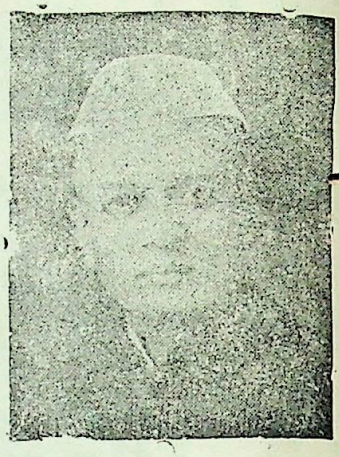

२८, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद (फोन नं० २८५८)

देखिये :—सी० वाई० चिन्तामणि भू० पू० मिनिस्टर क्या कहते हैं :—

प्रोफेसर पी० एन० सिंह प्रयाग के अद्भुत ज्योतिषी, हस्तरेखा-शास्त्री तथा प्रसिद्ध तांत्रिक हैं। मेरा उनसे पाँच वर्ष से अधिक का परिचय है। वे अत्यन्त सभ्य महानुभाव हैं। उनका आचरण बहुत उत्तम एवं विश्वसनीय है। उन्होंने मेरे जीवन में घटनेवाली अनेक घटनाओं के सम्बन्ध में मुझसे सूचित कर दिया था और उनकी भविष्य-वाणियाँ उल्लेखनीय रूप से सत्य सिद्ध हुईं। उनकी तांत्रिक शक्ति की परीक्षा वांछनीय है। मैंने उनकी गुप्त एवं संचित एकाग्र-शक्तियों का प्रत्यक्ष दिग्दर्शन कई बातों में किया है और उन सभी में उन्हें आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त हुई है। मेरी आन्तरिक कामना है कि उन्हें हर प्रकार से सफलता होती रहे।

ब्रिटिश गुप्तचर विभाग के रहस्य

दूसरे विश्वयुद्ध में ब्रिटेन के द्वारा शत्रुओं के गुप्तचरों के विरुद्ध की गयी कार्यवाही का रोमांचकर वृत्तान्त

मूल लेखक—ई० एच० कुकरिज : अनुवादक—श्री नरसिंहराव दीक्षित

द्वितीय महायुद्ध में लाखों की संख्या में सैनिक जूझ रहे थे। हथियारों की लड़ाई भूमि, आकाश और समुद्र में तो दोनों ओर से घमासान रूप से चल ही रही थी लेकिन इनके अलावे एक छिपी लड़ाई भी थी। यह दिमागी बुद्धि-मानी की लड़ाई थी। यह जासूसों की दुनिया थी।

जासूसों की जाँच-पड़तालों, शत्रु की तैयारियों और मोर्चे के ऊपर तथा पीछे लड़ाई के रंगढंगों की छिपे रूप से जानकारी का असर मोर्चे पर लगे लाखों सैनिकों पर पड़ सकता था। इसीलिए जासूसी दुनिया के ये काम युद्ध के लिए बड़े ही महत्त्वपूर्ण थे।

अब उन छिपी बातों, कोशिशों और रहस्यपूर्ण जासूसी कार्रवाइयों का मनोरंजक वर्णन हम पढ़ सकते हैं। ब्रिटेन के जासूसी विभाग के करिश्मों का वर्णन प्रामाणिक रूप में विद्वान् लेखक ने इस पुस्तक में दिया है। उसी का हिन्दी-अनुवाद श्री नरसिंहराव दीक्षित ने प्रस्तुत कर हिन्दी-साहित्य की वृद्धि की है। पुस्तक हमारे राष्ट्रीय संकट के समय अत्यंत उपादेय और पठनीय है।

पृ० सं० (डिमाई) २४८, आठ पृष्ठों के सुन्दर हाफटोन चित्र, मूल्य ६ रु०

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

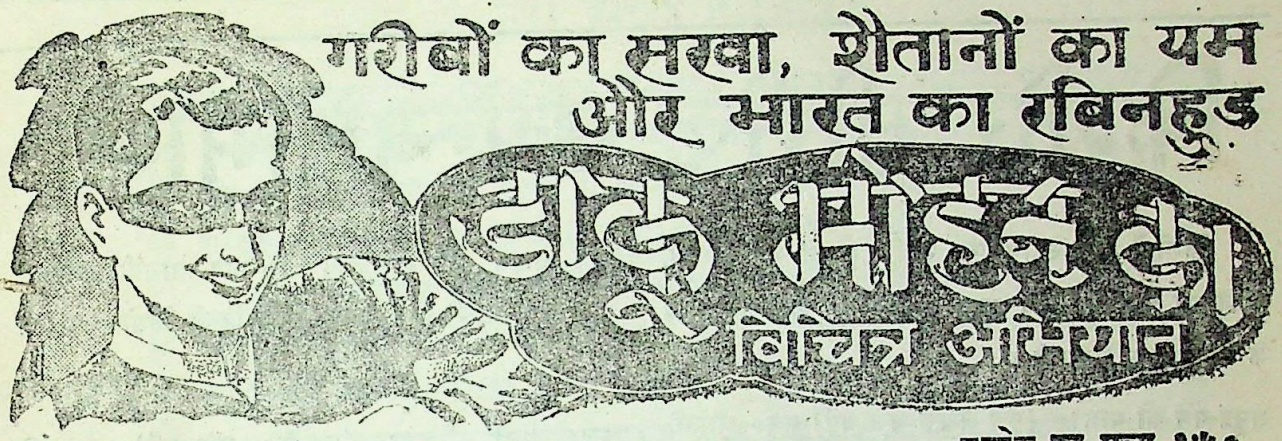

प्रत्येक का मूल्य १·५०

मोहन सिरीज़ का प्रत्येक उपन्यास स्वतः पूर्ण है। किसी भी उपन्यास को पढ़ते-पढ़ते आप आनन्द, आश्चर्य और रोमांच से अभिभूत हो जावेंगे।

१—मोहन।
२—मोहन जेल में।
३—रमा और मोहन।
४—रमा की शादी।
५—फिर से मोहन।
६—विरही मोहन।
७—मोहन और पंचमवाहिनी।
८—फांसी के तख्ते पर मोहन।
९—नागरिक मोहन।
१०—मोहन बर्मा की सीमा पर।
११—नारी-रक्षक मोहन।
१२—मोहन का प्रथम अभियान।
१३—नेता मोहन।
१४—मोहन का जर्मनी अभियान।

मोहन को ही नायक बनाकर इस सीरीज़ के सब मनोरंजक रोमांचकारी उपन्यास लिखे गये हैं। ऐसे अद्भुत चरित्र-चित्रणों तथा स्तब्धकारी घटनावलियों से परिपूर्ण अन्य उपन्यासमालायें कहीं नहीं मिलेंगी।

१५—प्रिय मोहन।
१६—गेस्टापो के मुकाबले में मोहन।
१७—बर्लिन में मोहन।
१८—मोहन का तूर्यनाद।
१९—मोहन का अनुराग।
२०—मित्र मोहन।
२१—मोहन और स्वप्न।
२२—स्वप्न का महन्त-दमन।
२३—अफसर मोहन।
२४—डाकू मोहन।
२५—स्वप्न का सीमान्त संघर्ष।
२६—मोहन का प्रतिदान।
२७—नये रूप में मोहन।
२८—मोहन का नया अभियान।
२९—त्राता मोहन।
३०—मोहन का प्रतिशोध।
३१—जर्मन षड्यंत्र में मोहन।
३२—मोहन और अणुबम।
३३—मोहन के तीन शत्रु।
३४—तीनों के साथ मोहन का मुकाबला।
३५—सोवियत रूस में मोहन।
३६—मोहन की प्रतिज्ञा रक्षा।
३७—सुन्दर वन में मोहन।
३८—युवक मोहन।
३९—मोहन और वनबिहारी।
४०—समुद्र-तल में मोहन।
४१—बन्दी मोहन।
४२—नारी त्राता स्वप्न।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किशोर सीरीज़ उपन्यासमाला

किशोरों या उदीयमान भावी युवकों को प्रेरणा, उत्साह, साहस और मनोरंजन की विशद सामग्री उपस्थित करनेवाले उपन्यासों का अनुवाद अंग्रेजी, फ्रांसीसी आदि भाषाओं से हिन्दी में कराकर हमने हिन्दी किशोर पाठकों के लिए सुलभ किया है।

समुद्र-गर्भ की यात्रा—(मूल लेखक जूले वर्न) अनु० श्रीमती जयन्ती देवी। मूल्य २·२५

वर-भक्षकों के देश में—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० कु० शैवालिनी मिश्र। मूल्य २·२५

उड़ते अतिथि—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्रीमती विनोदिनी पाण्डेय। मूल्य २·२५

रहस्यमय द्वीप—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्रीमती जयन्ती देवी। मूल्य १·५०

द्वीप का रहस्य—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्री सन्तकुमार अवस्थी। मूल्य २·५०

भूगर्भ की यात्रा—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्री प्रभात किशोर मिश्र। मूल्य २·२५

दृढ़प्रतिज्ञ—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्री रामअवधेश त्रिपाठी। मूल्य २·५०

गुब्बारे में अफ्रीका यात्रा—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० कु० शैवालिनी मिश्र। मूल्य २·५०

चन्द्रलोक की यात्रा—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्री सूर्यकान्त शाह। मूल्य २·२५

चन्द्रलोक की परिक्रमा—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्री केशव एस० केलकर। मूल्य ३·२५

अस्सी दिन में पृथ्वी की परिक्रमा—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्री रामस्वरूप गुप्त। मूल्य ३·२५

गुलीवर की यात्राएँ—(मू० ले० जोनाथन स्विफ्ट) अनु० श्री शिवाकान्त अग्निहोत्री दो भागों में। मूल्य १·०० प्रत्येक

मास्टर मैन रेडी—(मू० ले० कैप्टेन मैरियट) अनु० कु० कौशल श्रीवास्तव। मूल्य ३·२५

नीली झील—(मू० ले० स्टैकपोल) अनु० डा० कुमुदिनी तिवारी। मूल्य २·५०

स्विस परिवार राबिंसन—(मू० ले० रुडाल्फ वाएस) अनु० श्री देवेन्द्रकुमार शुक्ल। मूल्य ३·००

आकाश में युद्ध—(मू० ले० एच० जी० वेल्स) अनु० श्री सन्तप्रकाश पाण्डे। मूल्य २·५०

गुप्तधन—(मूल ले० राइडर हैगार्ड) अनु० श्री जे० एन० बत्स। मूल्य ३·२५

प्रत्येक विद्यालय के पुस्तकालय और अपनी संतान को उत्तम शिक्षा प्रदान करने का संकल्प रखनेवाले माता-पिताओं के निजी पुस्तक संग्रहों के लिए ये पुस्तकें बेजोड़ ही हैं।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश

डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, काशी नागरीप्रचारिणी सभा---'हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश को मैं जितना देख सका हूँ, उससे मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूं कि हिन्दी के दो-तीन उत्कृष्ट कोशों में से एक यह भी निस्सन्देह है।.....'

डॉ० रामकुमार वर्मा, अध्यक्ष हिन्दी विभाग प्रयाग विश्वविद्यालय---'हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश का उपयोग मैंने सफल रूप से किया है। मैं इसके देशव्यापी प्रचार की कामना करता हूँ।.....'

हिन्दी के प्रतिष्ठित विद्वानों की सहायता से सम्पादित और श्री विश्वेश्वरनारायण श्रीवास्तव एम० ए०, एल्-एल० बी०, साहित्यरत्न तथा पं० देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त' द्वारा संकलित यह हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश हमारा नवीनतम और सर्वोपयोगी प्रकाशन है।

इस कोश का कागज, मुद्रण, आवरण, जिल्द सभी स्थायी और आकर्षक हैं। इसकी शब्द संख्या लगभग पचास हजार, पृष्ठ-संख्या लगभग १६०० और इसका मूल्य १६ रुपये है।

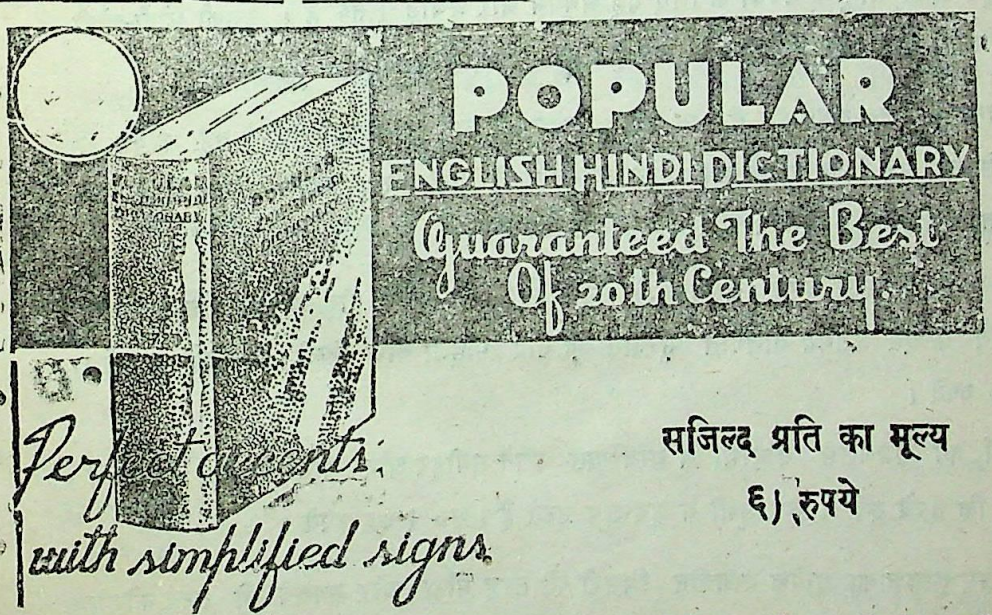

पापुलर
इंग्लिश
हिन्दी
डिक्शनरी

सजिल्द प्रति का मूल्य
६) रुपये

हिन्दी, अंगरेजी की अगणित डिक्शनरियों के आधार पर निर्मित इस डिक्शनरी की प्रामाणिकता और लोकप्रियता का यही सबसे बड़ा प्रमाण है कि इसके अनेक संस्करण हाथोंहाथ बिक चुके हैं। इस डिक्शनरी में अँगरेजी शब्दों के शब्दार्थ अँगरेजी और हिन्दी दोनों भाषाओं में दिये गये हैं। इस कारण यह डिक्शनरी न केवल अँगरेजी से अँगरेजी में शब्दार्थ जाननेवालों के लिए, प्रत्युत अँगरेजी से हिन्दी में शब्दार्थ जाननेवालों के लिए भी बड़ी उपयोगी है। छात्रों के लिए इस डिक्शनरी की उपयोगिता अपरिहार्य है। प्रायः सभी उपयोगी शब्द और मुहाविरे इसमें संकलित किये गये हैं। पृष्ठ पौने नौ सौ।

प्रकाशक---इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छोटे बच्चों के प्यारे कवि निरंकार देव 'सेवक' द्वारा लिखित

कुछ अपूर्व प्रकाशन

श्री शंकरसहाय सक्सेना डाइरेक्टर शिक्षा-विभाग, राजस्थान कहते हैं :—

"यह बालगीत बच्चों के लिए अत्यन्त सुन्दर और उपयोगी हैं। लेखक ने इन्हें लिखकर हिन्दी में बाल-साहित्य को धनी बनाया है। यह पुस्तकें प्रत्येक घर में जहाँ बालक-बालिकाएँ हों, रहना ही चाहिए।"

रिमझिम—रिमझिम में निरंकारजी के वह अनमोल बालगीत संग्रहीत हैं जिन्हें बच्चे बहुत पसन्द करते हैं। सभी कवितायें मीठी-मीठी और सुन्दर हैं। मू० २·५० रुपये।

फूलों के गीत—बच्चे यदि बगिया में खिले नये-नये फूल हैं तो इस पुस्तक के बालगीत उनके मन के गीत हैं। इन गीतों को पढ़कर एक बार वे मस्ती में झूम उठेंगे। उनके मन उत्साह, उमंगों से भर जायेंगे। मू० २·०० रुपये।

दूध जलेबी—बहुत छोटी आयु के बच्चों के लिए यह अनुपम और बेजोड़ पुस्तक है। इसकी छोटी-छोटी सुन्दर कवितायें बच्चे पढ़ते ही याद कर लेते हैं। मू० १·७५ रुपये।

पंचतन्त्री—पंचतन्त्र की जिन कहानियों में ज्ञान और उपदेश की बातें कूट-कूटकर भरी हैं वह कविता में इस ढंग से कही गई हैं कि बालक एक बार प्रारम्भ करके पूरी पुस्तक बिना समाप्त किये नहीं छोड़ सकता। मू० ३·०० रुपये।

मुन्ना के गीत—बच्चों के सोने-जगने, खेलने-कूदने, उठने-बैठने, खाने-पीने, दौड़ने-भागने, चलने-फिरने, पढ़ने-लिखने के ऐसे रसमय बालगीत सूरदास के बाद पहिली बार हिन्दी में लिखे गये हैं। मू० ३·०० रुपये।

धूप छाया—बच्चों की भिन्न-भिन्न क्रीड़ाओं से सम्बन्धित इतने मनोहर और मीठे गीत इस पुस्तक में संग्रहीत हैं कि बच्चे इन्हें पढ़कर खुशी से झूम-झूम उठते हैं। मू० १·७५ रुपये।

माखन मिसरी—इस पुस्तक का प्रत्येक बालगीत मिसरी की तरह मीठा और मक्खन की तरह कोमल है। बच्चे इसे पढ़ते ही गले से उतार लेंगे। छोटी आयु के बच्चों को यह कवितायें बहुत प्यारी लगती हैं। मू० २·२५ रुपये।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नई साज-सज्जा में सरस्वती सीरीज़

इस सीरीज़ की पुस्तकों ने हिन्दी पुस्तक-जगत् में अपनी लोकप्रियता, सुलभता और विविध विषयता से धूम मचा दी थी। वे ही अब आकर्षक नये रूप-रंग में छापी गई हैं। प्रत्येक पुस्तक का मूल्य केवल एक रुपया पचास पैसे। इन सुलभ, लाभप्रद तथा मनोरंजक पुस्तकों का अभाव किसी भी पुस्तकालय या घरेलू पुस्तक-संग्रह में खटक सकता है।

अमरकन्द की सुन्दरी—श्री ब्रजेश्वर वर्मा एम० ए०
पृथ्वी का इतिहास—श्री सुरेन्द्र बालूपुरी
चक्रभेद—श्री महावीरप्रसाद गहमरी
सूरसंदर्भ—श्री नन्ददुलारे वाजपेयी
रामकृष्णचरितामृत—लल्लीप्रसाद पाण्डेय
मेरा संघर्ष—गणेशप्रसाद द्विवेदी, एम० ए०
दैनिक जीवन और मनोविज्ञान—संशोधित संस्करण—इलाचन्द्र जोशी
वंशानुक्रमविज्ञान—शचीन्द्रनाथ सान्याल

सरस्वती सीरीज की आज भी सुलभ कुछ पुस्तकें

प्रत्येक का मूल्य केवल ७५ पैसे

ये पुस्तकें अल्प मूल्य में आपके मनोरंजन और ज्ञानवर्द्धन का अत्यंत सुगम आधार हैं

समस्या का हल
मृत्युलोक की झाँकी
लाल दूत
अनन्त की ओर
वंशानुक्रम विज्ञान
मशीन के पुर्जे
रूपान्तर
रूस की क्रान्ति
धरती माता
इत्सिंग की भारत-यात्रा
परलोक-रहस्य
लखनऊ की शहजादियाँ
घर का भेदिया
अग्रणी
नीमचमेली
जीवन-शक्ति का विकास
साथी
निष्कलंकिनी
पश्चिम की चुनी हुई कहानियाँ
समस्या
च्यांगकाई-शेक
हिन्दी के निर्माता (दूसरा भाग)
तीन नगीने
पूर्व के पुराने हीरे

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
१—सम्पादकीय	८९
२—निराशा श्री मिश्रीलाल जैन, एडवोकेट ...	९६
३—शांकर अद्वैतवाद तथा व्यवहार—श्री रामप्रसाद पांडेय	९७
४—राम-नाम की वैज्ञानिकता—डा० विनयमोहन शर्मा	९९
५—"कायस्थ"—श्री परिपूर्णानन्द वर्मा ...	१०२
६—संगीत-सम्राट् अलाउद्दीन खाँ—श्री शम्सुद्दीन	१०५
७—आधुनिक भाषा-विज्ञान का जनक—एक जर्मन संस्कृतज्ञ—श्री ओमप्रकाश पाण्डेय ...	१०८
८—मयूर—अनु० श्री ओमप्रकाश अग्रवाल ...	१०९
९—तुर्क-कालीन भारत में मुस्लिम गुलामी की एक झलक—श्री शीला चतुर्वेदी ...	११५
१०—स्वतंत्रता के पच्चीस वर्ष तथा नारी—श्रीमती उर्मिला जौहरी एम० ए० ...	११९
११—उद्यम, सदाचार एवं धार्मिक परम्पराओं के पोषक स्व० श्री गजाधर जी सोमानी—श्री नन्दकुमार सोमानी	१२१
१२—महाराजाधिराज श्री हर्षवर्द्धन और उनका कुण्डधानी ताम्रपत्र—श्री फूलचन्द्र त्रिपाठी 'वियोगी'	१२५
१३—शून्य भित्ति पर अलख चितेरा ...(१)—श्री सांवलराम पोद्दार 'निर्गुण' ...	१३०
१४—शेरशाह सूरी—श्री अवनीन्द्रकुमार विद्यालंकार	१३४
१५—बुन्देलखंडी लोकगीतों में रामचरित्र—श्री विजयलक्ष्मी विभा	१३८
१६—महाकवि निराला और आचार्य गंगाधर शास्त्री—डा० नन्दकिशोर तिवारी ...	१४२
१७—सुमित्रानन्दन पन्त—छायावाद के युगीन संदर्भों की प्रसंग-चर्चाएँ—डा० विजयकुमार शुक्ल	१४६
१८—राजस्थान में शक्ति-पूजा—श्रीमती कुसुम महता "प्रियदर्शिनी"	१४९
१९—स्व० 'चोंच' जी—श्री गौरीशंकर गुप्त ...	१५१
२०—डायरी : तब और अब—श्री मुकेश ...	१५३
२१—अर्थ-हीन आक्रोश—श्री दिनेश ...	१५४
२२—नवीन प्रकाशन	१५५
२३—मनोरंजक संस्मरण	१५८
२४—१९१८ की सरस्वती—तोते की शिक्षा—श्री कुलदीपसहाय	१५९

© सरस्वती के इस अंक में प्रकाशित सभी लेख सर्वाधिकार सुरक्षित हैं।

विदेशों का वैभव

पश्चिम के विभिन्न उन्नत देशों के सौन्दर्य और वैभव का आँखों-देखा वर्णन

लेखक—श्री रामेश्वर तांतिया, संसद-सदस्य

इस पुस्तक में पश्चिमी जगत् के अनेक देशों की यात्रा कर उनके विषय में मनोरंजक वर्णन दिया गया है।

भ्रमण और देशाटन के प्रति प्रेम, प्रेरणा और रुचि के फलस्वरूप संसार की विभिन्न संस्कृति और सभ्यता की विभिन्न सामग्री को मथकर सांस्कृतिक नवनीत बनाने का जितना व्यापक प्रयोग हमारे इतिहास में मिलता है, उतना विश्व के किसी भी देश में नहीं।

हजार वर्ष की दासता के फलस्वरूप भारत को इस बात की आवश्यकता है कि वह अपने को जीवित रखने के लिए इस पृथ्वी पर अपने आपको प्रतिष्ठित करे। यह तभी सम्भव है जब वह अन्य राष्ट्रों का उत्कर्ष, उसके कारण और गतिविधियों को समझे और इसे कसौटी मानकर अपने कदम आगे बढ़ाये ताकि हमारी भूमि और हमारी संस्कृति परिमार्जित हो और उसमें निखार आवे।

विद्वान् लेखक ने इन भावनाओं और दृष्टियों से विदेशों की यात्रा की थी। उन देशों के पुरातन और नवीन दोनों रूपों के समझने की चेष्टा के साथ अपने देश के साथ तुलनात्मक अध्ययन का भी प्रयास किया। इनका अवलोकन आप इस पुस्तक में करें। पुस्तक में २७ चित्र देकर इसे और भी उपादेय बनाया गया है।

पृष्ठ सं० डिमाई ७४, आर्ट पेपर पर छपे १० चित्र पृष्ठ, मूल्य चार रुपये

प्रकाशक—इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

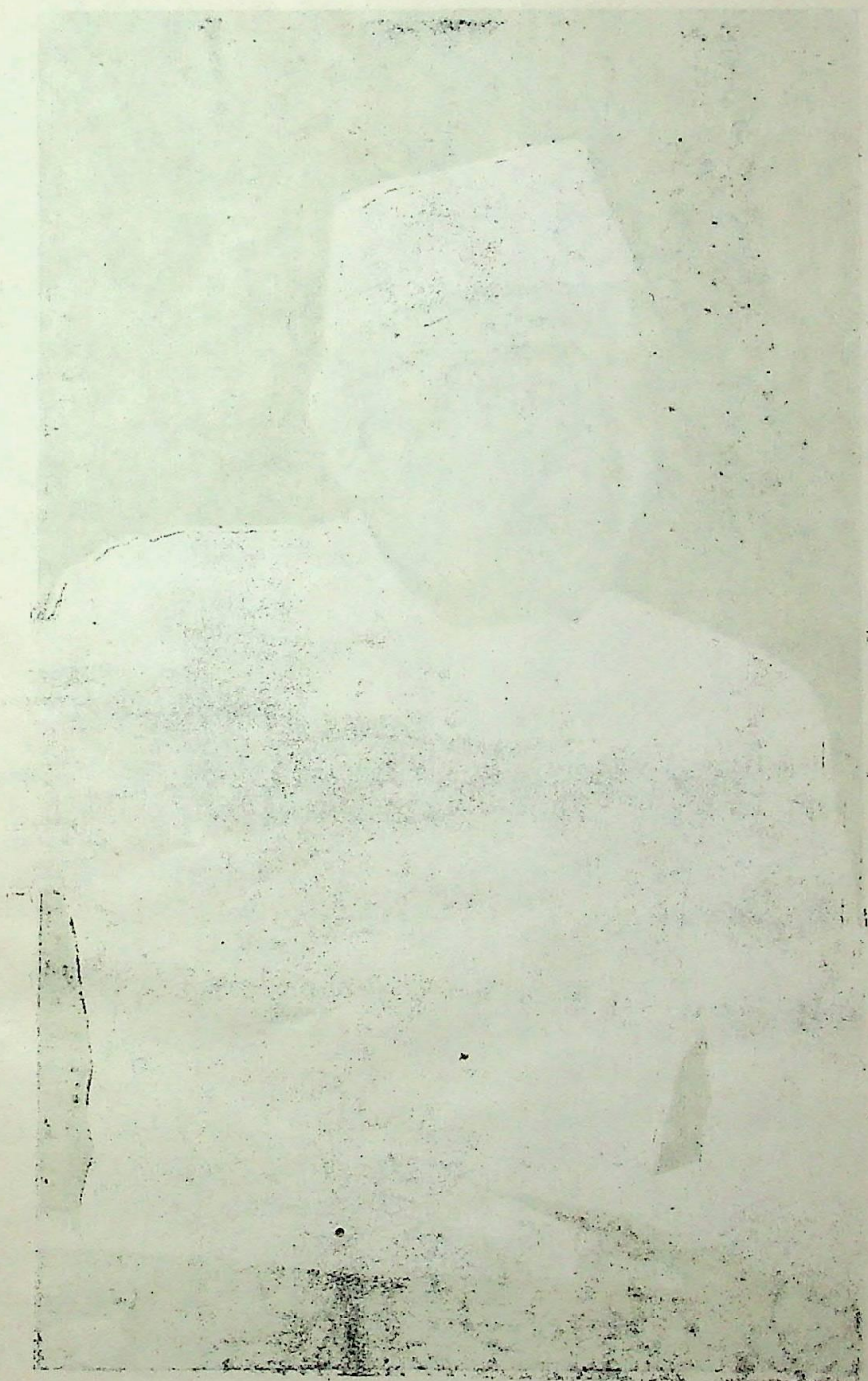

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्व० श्री गजाधरजी सोमानी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

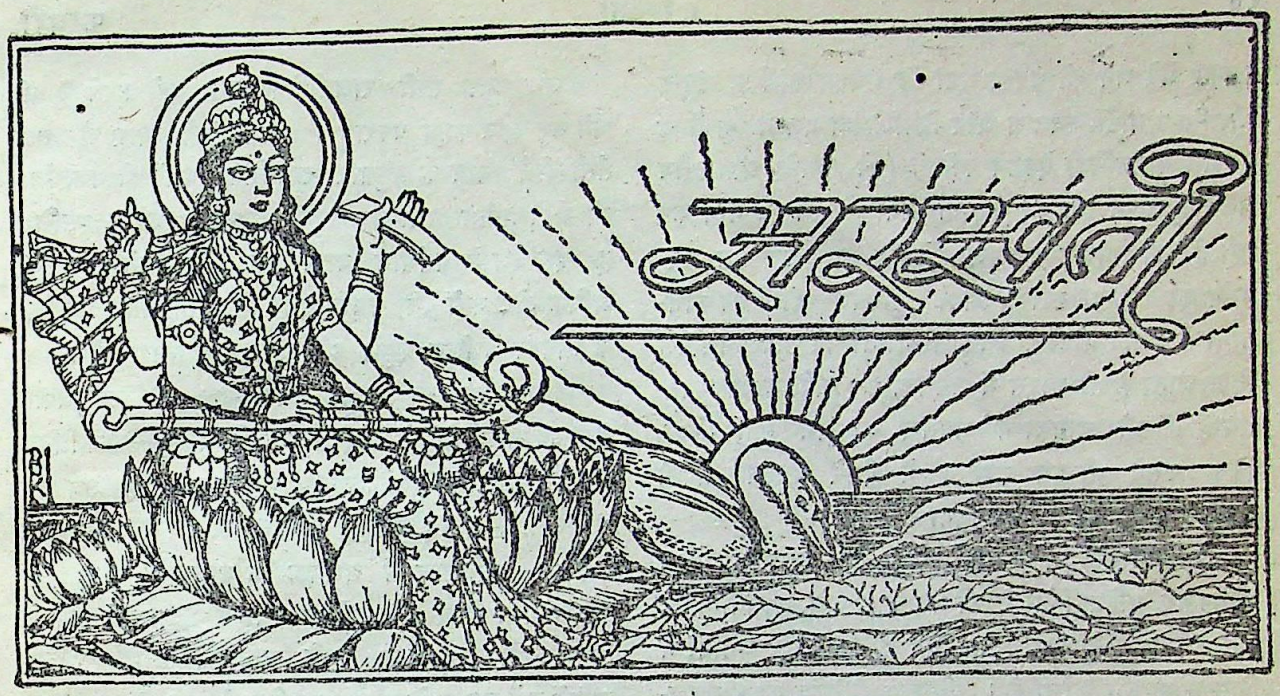

सम्पादक

श्रीनारायण चतुर्वेदी

सहायक सम्पादिका—शीला शर्मा

वर्ष ७४
पूर्ण संख्या ८७८

इलाहाबाद : फरवरी १९७४ : फाल्गुन २०२९ वि०

खण्ड १
संख्या २

सम्पादकीय

ये बनारसी उर्दू के हिमायती—उत्तरप्रदेश में ज्यों-ज्यों अगले विधान सभा के चुनाव के दिन निकट आ रहे हैं त्यों-त्यों राजनीतिक दल मुसलमानों के वोटों को पाने के लिए अधिक व्याकुल और प्रयत्नशील होते जा रहे हैं। इंदिरा-कांग्रेस ही नहीं, संगठन कांग्रेस, जनसंघ, स्वतन्त्र पार्टी—सभी इस समय मुसलमानों की खुशामद में लगे हैं। उदाहरण के लिए, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय का संशोधन जो संसद् में पारित हो गया है उसका कट्टरपंथी मुसलमान विरोध कर रहे हैं। इंदिरा-कांग्रेस की सरकार है और उसने ही यह संशोधन संसद् में प्रस्तुत किया था, किन्तु इस विरोध और (ऊपर से देखने से) उ० प्र० विधान सभा के चुनावों के निकटता के कारण (जो फरवरी १९७४ में होंगे) उसके पारित होने के प्रायः एक वर्ष बाद भी उसे लागू करने का साहस नहीं किया। हिन्दू विश्वविद्यालय संशोधन के पारित होने के बाद उसे लागू करने में उसने जो तत्परता दिखायी थी, वह तत्परता अलीगढ़ वि० वि० संशोधन अधिनियम को लागू करने में तिरोहित हो गयी। जहाँ तक विरोधी दलों का सम्बन्ध है उन्होंने भी इसका समर्थन किया था पर वे भी अब 'चुनाव की सुविधा' के कारण उसका विरोध करके अपनी सिद्धान्त-हीनता का परिचय देने लगे हैं। भूतपूर्व केन्द्रीय शिक्षामंत्री श्री चागला ने अभी हाल में अपने एक वक्तव्य में कहा है—"जब मैंने संसद् में शिक्षामन्त्री की हैसियत से इसे (अलीगढ़ मुस्लिम वि० वि० आर्डनेन्स जिसे बाद में अधिनियम बनाया गया) प्रस्तुत किया था तब मुझे संसद् के दोनों सदनों में प्रायः सभी का समर्थन मिला था। यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखकर मेरे मन को धक्का लगा कि संगठन कांग्रेस, संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी, स्वतन्त्र और रिपब्लिकन दल ने अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी ऐक्शन कमिटी (जो उसके अल्पमतीय अर्थात् मुस्लिम रूप को अक्षुण्ण बनाये रखने की माँग कर रही है) का समर्थन करने जा रहे हैं। उनके इस मत-परिवर्तन का कारण उत्तरप्रदेश के मुस्लिम वोटों का हथियाना है। यदि वोटों के लिए सिद्धान्तों को ताक पर रख दिया जाता है तो भारत में जनतन्त्र का भविष्य अन्धकारमय है।" श्री चागला ने जनसंघ का नाम नहीं लिया, किन्तु उसने भी इस सम्बन्ध में पैंतरे बदलकर अपनी सिद्धान्तहीनता का परिचय दिया है।

मुस्लिम वोट, हिन्दू वोटों की तरह, बँट नहीं जाते। अधिकतर, मस्जिदों में जुमे की नमाज के बाद, मौलवी आदि मिलकर नमाजियों को बतला देते हैं कि उन्हें चुनावों में किसका समर्थन करना है। अधिकांश मुस्लिम कट्टर मुसलमान होने के कारण मौलवियों की सलाह को उनका 'फतवा' मान लेते हैं और उसका पालन करते हैं। इस कारण उनकी वोटें प्रायः एक जुट पड़ती हैं। उनमें विभाजन बहुत कम होता है। अतएव यदि मुस्लिम नेताओं और मौलवियों को कोई दल पटा ले तो सारी मुस्लिम वोटों के मिलने की पूरी आशा हो जाती है। इतनी वोटों के एक साथ मिलने के कारण चुनाव जीतना सरल हो जाता है क्योंकि हिन्दू वोटें अनेक राजनीतिक दलों में बँट जाती हैं। अपने दलवालों और मुस्लिम वोटों को मिलाकर चाहे सारी वोटों का अधिकांश (५० प्रतिशत से अधिक) न मिले, प्रायः सर्वाधिक वोट मिल जाते हैं और उस दल का अभ्यर्थी चुनाव जीत जाता है। इसीलिए इन एकजुट मुस्लिम वोटों को पाने के लिए राजनीतिक दलों में इतनी आपाधापी दिखायी देती है। वोटों के लिए सारे सिद्धान्त भुला दिये जाते हैं। केरल में इंदिरा-कांग्रेस को मुसलमानों से समर्थन मिलता है, इसलिए विरोधी मुस्लिमलीग से उसका समझौता है और वह वहाँ उसे 'साम्प्रदायिक' नहीं कहती। किन्तु बम्बई कार्पोरेशन के चुनावों में मुस्लिमलीग ने उसका विरोध किया और उसके हाथ से बहुत से स्थान निकल गये। वहाँ वह उसी मुस्लिमलीग को 'साम्प्रदायिक बनाकर उसकी भर्त्सना करती है। सिद्धान्त अपनी जगह हैं, पर 'येनकेन प्रकारेण' चुनाव जीतकर शक्ति हथियाना भारतीय राजनीति का मुख्य उद्देश्य है।

जब प्रायः सभी राजनीतिक दल यही करते हैं तो 'को बड़ छोट कहत अपराधू।' 'जैसी बहे बयार पीठ तब तैसी दीजै' न्याय के अनुसार राजनीतिक दलों को यथार्थता की अनिवार्यता स्वीकार करनी पड़ती है और इसलिए हम इस देश के वर्तमान वातावरण को देखते हुए उन्हें अधिक दोष नहीं देते, यद्यपि इस सिद्धान्तहीनता को देश के भविष्य के लिए अशुभ और खतरनाक समझते हैं।

किन्तु जब एक शिक्षाशास्त्री—यह भी उपकुलपति जिसका राजनीति से कोई सम्बन्ध नहीं है—राजनीतिक दृष्टि से मुस्लिम तुष्टीकरण की बात करता है तब हम आश्चर्यचकित रह जाते हैं और हमारा दिमाग काम नहीं करता। अभी हाल में लखनऊ के बनारसी उपकुलपति डा० गोपाल त्रिपाठी ने उर्दू एकाडमी में यह फतवा दिया है कि माध्यमिक स्कूलों में हिन्दी पढ़नेवाले छात्रों के लिए आठवें दर्जे तक उर्दू का पढ़ना अनिवार्य कर दिया जाय। डा० त्रिपाठी एक बड़े ऊँचे इंजीनियर हैं। इंजीनियर के रूप में उनकी ख्याति अन्तर्राष्ट्रीय है। वे वर्षों काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के टेक्नोलोजिकल इंस्टिट्यूट के अध्यक्ष रहे हैं। विश्वविद्यालय की कार्यप्रणाली से पूर्ण परिचित हैं और विश्वविद्यालयों की राजनीति में भी उनका योगदान और जानकारी बहुत है। किन्तु माध्यमिक शिक्षा से उनके किसी जायज या नाजायज सम्बन्ध का हमें कोई ज्ञान नहीं। माध्यमिक शिक्षाबोर्ड के यूनिवर्सिटी प्रतिनिधि हो जाने मात्र से कोई माध्यमिकशिक्षा का वेत्ता नहीं हो जाता। अतएव माध्यमिकशिक्षा के सम्बन्ध में हम उनका 'फतवा' अनधिकार चेष्टा समझते हैं।

उर्दू एकाडमी सरकार ने राजनीतिक दृष्टि से मुस्लिम तुष्टीकरण के लिए बनायी है। वह 'एकाडमी' का भ्रामक नाम रखकर वास्तव में राजनीतिक संस्था है। यह हमारा मत नहीं। कई मुसलमान प्रतिष्ठित उर्दू साहित्यकारों का मत है। ऐसी राजनीतिक संस्था में भाग लेना राजनीतिज्ञों के लिए उचित है, किन्तु गैर उर्दू शिक्षा शास्त्रियों का वहाँ क्या काम या स्थान है, यह हम नहीं जान सके। जो भी हो, उपकुलपति त्रिपाठी ने उसके अधिवेशन में भाग लिया और उपर्युक्त 'फतवा' दिया। इस समय भारतेन्दु की नगरी के लोग उर्दू को हिन्दुओं पर लादने की हिमायत करके अन्याय करने पर तुले हैं। राजनीतिज्ञ हैं, वे विवश हो सकते हैं (यदि उनका मेरुदण्ड कमजोर है), पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक बनारसी उपकुलपति (यदि वह राजनैतिक मैदान में भी नहीं आना चाहता) ऐसा क्यों करता है, यह हमारी समझ में नहीं आता।

हम उर्दू के विरोधी नहीं हैं। जो लोग उसे पढ़ना चाहें, उन्हें उसके पढ़ने की पूरी सहूलियत दी जाय बशर्ते वे राज्य की राजभाषा हिन्दी भी पढ़ें। इसके लिए जो भी सुविधाएँ सरकार दे, वे उचित हैं। किंतु इस राजनीतिक संस्था (उर्दू एकाडमी) का एक उद्देश्य उर्दू को राज्य की द्वितीय या सह-राजभाषा बनाना है। इसके हम घोर विरोधी हैं। आठवें दर्जे तक अनिवार्य उर्दू पढ़ाना उसी माँग की भूमिका है जिससे यह कहा जा सके कि सभी पढ़े लिखे लोग उर्दू भी जानते हैं। अतएव जो माध्यमिक कक्षाओं में उर्दू को अनिवार्य द्वितीय भाषा बनाने की वकालत करते हैं, वे परोक्षरूप से मुसलमानों की इस माँग का समर्थन करते और उसके लिए जमीन तैयार करते हैं। उपकुलपति त्रिपाठी अत्यन्त मेधावी और तीक्ष्ण बुद्धि के हैं। अतएव वे अवश्य ही अपने कथन के निहित परिणामों को समझते होंगे। आज वे परोक्षरूप से जिस माँग के लिए जमीन तैयार करने को कहते हैं तो कल जब यह प्रथम सोपान पार हो जायगा, तब उसके अनिवार्य परिणाम का उन्हें (यदि वे तर्कसंगत और बुद्धिसंगत बातों के पक्ष में हैं) समर्थन करना अनिवार्य हो जायगा। क्या वे उत्तरप्रदेश में उर्दू को सह-राजभाषा बनाना चाहते हैं? यदि हाँ तो उनका 'फतवा' ठीक है। यदि नहीं, तो उन्होंने वह क्यों दिया?

कितने ही हिन्दीभाषी उर्दू में रुचि लेते हैं। हम भी उर्दू जानते हैं। हमें उससे विरोध नहीं। अन्य हिन्दीभाषी जो अपने मन से उर्दू पढ़ना चाहें, वे उसे अवश्य पढ़ें। किन्तु रुचि के कारण उर्दू पढ़ना एक बात है, और उसे हर एक हिन्दी के विद्यार्थी पर लादना दूसरी बात। हम हिन्दी के विद्यार्थियों पर उर्दू लादने के घोर विरोधी हैं। हम हिन्दी के विद्यार्थियों की भावना जानते हैं, और यदि उपकुलपति त्रिपाठी की बात मान ली गयी तो राज्य में अशान्ति का एक नया कारण उत्पन्न हो जायगा। हिन्दीवाले और हिन्दी के विरोधी इसका कड़ा विरोध करेंगे। किन्तु काशी और लखनऊ के विश्वविद्यालयों से संबंधित होने के कारण डा० त्रिपाठी विद्यार्थियों के उपद्रवों से इतने अधिक परिचित और इतने आदी हो गये हैं कि उन्हें उपद्रवों का अभ्यास हो गया है।

हमें यह बात बतलाने की जरूरत नहीं कि उर्दू भारत में उत्पन्न हुई, इसीलिए वह 'भारतीय' भाषा है। सभी हिन्दी वाले इस आरम्भिक तथ्य को जानते हैं किन्तु 'भारतीय' भाषा होने पर भी वह क्यों और किससे तथा किस रूप में उत्पन्न और विकसित हुई यह वे भूल जाते हैं। जो विदेशी मुसलमान जेता, सौदागर, विद्वान्, सिपाही दिल्ली में आये उनकी मातृभाषाएँ एक न थीं। किसी की तुर्की, किसी की पश्तो, किसी की फारसी, किसी की तूरानी, किसी की कुछ और किसी की कुछ थी। न तो वे आपस में बात कर सकते थे (यदि फारसी जानते हों जो पश्चिम-दक्षिण एशिया के ही। आभिजात्य वर्ग में चल गयी थी) और न यहाँ के लोगों से सामान खरीदने, सेवा लेने, तथा अन्य व्यवहार के लिए इन्हें एक भाषा की आवश्यकता थी। वे क्यों इन विदेशियों की भाषा सीखते? अतएव इन विदेशी विजेताओं ने इस देश में आकर अपना काम चलाने के लिए यहाँ की (दिल्ली में चलने वाली खड़ीबोली) भाषा सीखी और वह भी टूटी-फूटी। वे उसमें अपनी भाषाओं के भी अनेक शब्द मिलाने लगे और धीरे-धीरे एक वर्णसंकरी भाषा का जन्म दिल्ली के 'लश्कर' (सेना के शिविर) में हुआ। 'उर्दू' शब्द का अर्थ सैनिक शिविर है। जब ये विदेशी भारत में बस गये तो धीरे-धीरे अपनी मातृभाषाएँ भूलने लगे। इसमें कई शताब्दियाँ लग गयीं, और वे अपने घरों में भी उसी उर्दू भाषा का प्रयोग करने लगे। किन्तु उसे न तो दरबार में और न साहित्य में बहुत दिनों तक कोई मान्यता प्राप्त हुई। मुस्लिम दरबारों की राजभाषा फारसी ही रही। अहमदशाह रंगीले तक यही हालत रही। बाद में पतनोन्मुखी मुगल दरबार में उर्दू ने प्रवेश किया और उसमें साहित्य लिखा जाने लगा। जो लोग फारसी में लिखने में अक्षम थे, उन्होंने उर्दू में लिखना आरम्भ किया, किन्तु फारसी समाप्त हो गयी थी। इसलिये गालिब की तरह वे लोग जो फारसी लिखने में समर्थ थे और जिन्हें अपने फारसी दीवान का गर्व था, लोकप्रिय होने और दिल्ली तथा दिल्ली से प्रभावित अन्य स्थानों के आभिजात्य वर्ग में पहुँचने के लिए उर्दू में लिखने लगे और इसप्रकार उर्दू साहित्यिक भाषा बनी। अतएव यह सही है कि उर्दू का जन्म भारत में हुआ, वह यहीं विकसित हुई। किन्तु हम उसे अर्द्ध-भारतीय ही मानते हैं। इसके दो प्रमुख कारण हैं। एक तो यह कि यदि यह पूर्णतः भारतीय होना चाहती तो यहाँकी प्रचलित लिपि (देवनागरी) अप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाती, और दूसरे यह कि उसकी सारी प्रेरणा फारसी साहित्य से न मिलती। उसकी उपमाएँ, उसके संदर्भ, उसकी कथन-शैली (विशेषकर उर्दू कविता की) प्रमुखरूप से फारसी पर आधारित हैं। सदैव पश्चिम एशिया की ओर ताकती रही, तथा उसने भारतीय साहित्य और संस्कृति से कोई उल्लेखनीय प्रेरणा नहीं ग्रहण की। जिस अनिवार्य आवश्यकता के कारण आज हम अंग्रेजी पढ़ते हैं, उसी अनिवार्यता के कारण हमें सौ-डेढ़ सौ वर्ष उर्दू पढ़नी पड़ी, और जिस प्रकार केवल अंग्रेजी जानने या केवल उसमें निष्णात होने के कारण आज हम अंग्रेजी में लिखते हैं, उसी कारण उन दिनों कितने ही हिन्दुओं ने भी उर्दू में लिखा, किन्तु हिन्दू जनता ने कभी उसे स्वीकार नहीं किया।

उर्दू भारत के मुसलमानों के पूर्वजों ने बनायी थी इसलिए वे उसे अपनी भाषा समझते और घोषित करते हैं। यह तथ्य भी है और स्वाभाविक भी। हमें इसमें कोई आपत्ति नहीं। किन्तु न तो वह उत्तर भारत की जनता की भाषा कभी थी, न है और न हो सकती है। हिन्दू इतना उदार और सहिष्णु है कि वह उर्दू के प्रति सद्भावना रखता है और देवनागरी लिपि में छपी उर्दू की पुस्तकें पढ़ता भी है। किन्तु उर्दू के हिमायती जो उर्दू को भारतीय भाषा कहने से नहीं थकते, उसमें इतनी भी भारतीयता लाने को तैयार नहीं हैं कि भाषा का स्वरूप बदले बिना वे उसे देवनागरी लिपि में लिखे जाने का समर्थन करें। जब तक वह देवनगरी लिपि में न लिखी जाकर विदेशी फारसी-अरबी लिपि में लिखी जाती है, तब तक हम उसे पूर्ण भारतीय भाषा मानने को तैयार नहीं हैं। भारत में पैदा और विकसित होने पर भी न तो उसमें भारतीय संस्कृति की छाप है और न वह भारतीय लिपि ही में लिखी जाती है। इन्हीं कारणों से हम उसे 'अर्द्ध भारतीय' भाषा मानते हैं। उपकुलपति विद्वद्वर डा० त्रिपाठी ठंडे दिल से इन बातों पर विचार करें और उर्दू को हिन्दीभाषियों पर लादने का दुष्प्रयास छोड़ दें। यही हमारी प्रार्थना है—किन्तु "अरजी हमारी और मरजी तुम्हारी है।"

विवाहित और अविवाहित भारतवासी—जनगणना की रिपोर्टें अनेक खण्डों में निकलती हैं और यह क्रम वर्षों चलता है। अभी हाल में १९७१ की जनगणना की एक रिपोर्ट निकली है जिसमें देश के विवाहित और अविवाहित लोगों के आँकड़े दिये गये हैं। ये बड़े मनोरंजक हैं और समाजशास्त्रियों के बड़े काम के हैं। ये उन्हें भी आकर्षित करेंगे जो समाज के विवाहित जीवन की झलक लेना चाहते हैं।

सबसे पहिले उन लोगों की संख्या लीजिए जिनका विवाह अभी तक हुआ ही नहीं है। इसमें वे बच्चे और बच्चियाँ भी सम्मिलित हैं जो अभी विवाह योग्य नहीं हैं, किन्तु इनमें कितने ही ऐसे भी हैं जो विवाह की अवस्था पार कर चुकने पर भी विवाह बंधन में नहीं पड़े। देश में ऐसे १५,५८,९१,००० पुरुष और ऐसी ११,८८,४४,८०० स्त्रियाँ हैं। अर्थात् प्रायः ५७ करोड़ के इस देश में साढ़े सत्ताइस करोड़ अविवाहित हैं। इनमें से काफी संख्या ऐसे लोगों की है जिनके अब विवाह करने की सम्भावना नहीं है।

अब उन अविवाहित लोगों के आँकड़े देखिए जो विवाह की अवस्था के हो गये हैं पर जिनके विवाह नहीं हुए। शारदा ऐक्ट के अनुसार १४ वर्ष से कम अवस्था की लड़की का विवाह वर्जित है। १४ वर्ष से अधिक वय की उन स्त्रियों की संख्या जिनका विवाह नहीं हुआ १२ करोड़ ६४ लाख है। २० वर्ष से अधिक अविवाहितों की संख्या (यही वय अब पुरुषों के विवाह की औसत वय है) १८ करोड़ ७१ लाख है। अर्थात् क्वारी स्त्रियों से क्वारे पुरुषों की संख्या प्रायः ड्यौढ़ी है। यदि देश के सब अविवाहित पुरुष विवाह करना चाहें तो उनमें से प्रायः एक तिहाई को स्त्रीरत्न से वंचित होना पड़ेगा।

विवाहित स्त्रियों की संख्या विवाहित पुरुषों से २८ लाख अधिक है। देखने में यह विचित्र मालूम होता है किन्तु यदि हम यह ध्यान रखें कि देश में एक अल्पमत-वालों को एक से अधिक बीबियाँ रखने की छूट है तो स्थिति स्पष्ट हो जायगी। सम्भव है कि इनमें विधवायें भी सम्मिलित हों पर यह स्पष्ट नहीं है।

शारदा ऐक्ट के बावजूद अल्पवयस्का बालिकाओं और बालकों के विवाह—विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में—अब भी धड़ल्ले से होते हैं। १० और १४ वय के १५ लाख लड़के और ३७ लाख लड़कियाँ विवाहित थीं, १५ और १९ की वयवालों में ४३ लाख लड़के और एक करोड़ २५ लड़कियों का विवाह हो चुका था। विवाह के समय लड़का लड़की से कई वर्ष बड़ा होता है। इसलिए प्रत्येक श्रेणी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में लड़कियों की संख्या अधिक है क्योंकि उनके पति ऊपरी वय की श्रेणी में हैं। लाखों १७, १८, १९ वर्ष की लड़कियों के पति १९ वर्ष से अधिक होने के कारण २० वर्ष से ऊपर की श्रेणी में थे जो इन दो श्रेणियों में नहीं दिखाये गये।

अब इस देश में हिन्दुओं में भी तलाक प्रथा चल गयी है। मुसलमानों और ईसाइयों में तो यह पहिले ही से थी। हिन्दुओं को तलाक मिलने से, तीन वर्ष अपने पति या पत्नी से अलग रहना पड़ता है जिसे 'जुडिशल सेपरेशन' कहते हैं। तलाक के बाद पुरुष तो सरलता से विवाह कर लेता है, पर पत्नी को नया पति मुश्किल से मिलता है। इसीलिए तलाक पायी हुई या कानून द्वारा पति से अलग स्त्रियों की संख्या ८ लाख थी और पुरुषों की केवल ५ लाख। ऐसा मालूम होता है कि बहुत से पुरुषों ने तलाक के बाद विवाह कर लिया क्योंकि वे कमाऊ होते हैं और विधुर पुरुष के विवाह की प्रथा पुरानी है। बेचारी स्त्रियाँ कुछ तो संस्कारवश और कुछ अधिक वय की हो जाने के कारण यदि पुनर्विवाह करना भी चाहें तो उन्हें पति नहीं मिलते।

आश्चर्य यह है कि जनगणना के इन आँकड़ों से स्पष्ट हो जाता है कि विवाहित दम्पतियों की संख्या जनसंख्या के अनुपात में बहुत नहीं है। इनमें कितने ही ऐसे दम्पति होंगे जो अधिक वय के होने के कारण बच्चे पैदा नहीं कर सकते। फिर भी—अनुपाततः कम प्रजननशील दम्पतियों ने जनसंख्या की वृद्धि करने में इतनी तत्परता और कुशलता दिखलायी है कि सरकार के परिवार नियोजन के जोरदार अभियान के बावजूद इस देश की जनसंख्या दिनों-दिन बेतहाशा बढ़ती जाती है। इन कर्मठ दम्पतियों का प्रजनन का उत्साह कैसे कम किया जाय—सरकार के लिए यही आज सबसे बड़ी समस्या है।

विवाह पर कर—हमारी सरकार की करों द्वारा जनता से धन खींचने की तृष्णा असीम है। प्रत्येक वर्ष बजट प्रस्तुत होने के पहिले लोगों में भय और आतंक समा जाता है कि न मालूम कौन सा नया कर लगा दिया जाय और न मालूम कौन सा कर बढ़ा दिया जाय, और प्रत्येक वर्ष कोई न कोई कर लगाया या बढ़ाया जाता ही है। राष्ट्रपति ने भी हाल में कहा है कि विकलांगों की देख-रेख और सहायता के लिए लोगों पर विशेष 'सैस' (cess) लगाना चाहिए, और उन्हें जनता की कर भार वहन करने की क्षमता और उदारता में इतना प्रगाढ़ विश्वास है कि उन्होंने कहा है कि जनता इस 'सैस' को सहर्ष देगी। हमारे यहाँ मरने पर 'डैथड्यूटी' (मृत्यु कर) है जो अभी थोड़े ही लोगों को देना पड़ता है किन्तु हमें आश्चर्य न होगा यदि मरने की रिपोर्ट लिखाने के लिए 'फ़ीस' लगा दी जाय जो मरनेवाले के हैसियत के अनुसार हो। श्री चह्वाण नये-नये कर लगाने को इतने उत्सुक रहते हैं कि न मालूम उनका ध्यान इस ओर क्यों नहीं गया। इंग्लैंड के वित्त-मंत्री श्री चह्वाण के समानधर्मा हैं। हमारी सरकार का कार्यकलाप ब्रिटिश नमूने पर बना है, इसलिए हमें भय है कि इंग्लैण्ड की तरह यहाँ भी 'विवाह कर' और 'जन्मकर' लगाये जा सकते हैं। ये कर वहाँ बहुत दिनों से लगाये जा रहे हैं। अभी तक जन्म की रिपोर्ट लिखाने और उसका प्रमाण-पत्र प्राप्त करने के लिए वहाँ २५ पैन्स देने पड़ते थे। अब यह शुल्क बढ़ाकर ५० पैंस (९ रुपया ५० पैसा) कर दिया गया है। जो लोग अदालती विवाह करते हैं उन्हें अभी तक ३ पाउण्ड ७५ पैन्स शुल्क देना पड़ता था। अब यह बढ़ा कर ७ पाउण्ड ५० पैन्स कर दिया गया जो भारतीय मुद्रा में प्रायः १५० रुपया है। जो लोग गिरजाघर में विवाह करते हैं उन्हें भी गिरजाघर को 'दक्षिणा' देनी पड़ती है। पहले यह फीस कम थी पर अब गिरजाघरों को नियन्त्रित करनेवाली संस्था ने उसे ४ पाउण्ड (७६ रुपये) कर दिया है। इसप्रकार अदालती विवाह से गिरजाघर का विवाह संस्कार कुछ सस्ता पड़ता है, पर गिरजाघर के विवाह में वर-वधू को लोगों को निमंत्रित करने, वधू के लिए विवाह में पहनने के लिए विशेष पोशाक बनवाने, विवाह के बाद आगत लोगों को जलपान कराने में भी व्यय करना पड़ता है। इसलिए गिरजाघर ने अदालती विवाह करने वालों को अपने यहाँ विवाह कराने को आकर्षित करने के लिए अपना शुल्क कम रखा है। पर इससे वित्त विभाग को हानि होती है क्योंकि उसे गिरजाघर को दिये गये शुल्क से कोई हिस्सा नहीं मिलता। गिरजाघर के रजिस्टर में विवाह दर्ज हो जाता है और वह विवाह के रूप में अदालतों द्वारा स्वीकार कर लिया जाता है। इस प्रकार बेचारे वित्त विभाग को गिरजाघरी विवाह कर से वंचित रहना पड़ता है। भारत में सरकार परिवार नियोजन योजना को अधिक सफल बनाने के लिए विवाह की अवस्था बढ़ाने का विचार कर रही है। श्री चह्वाण को अभी तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह नहीं सूझा कि विवाह पर कर लगाकर वे एक ढेले से दो चिड़ियाँ मार सकते हैं। यदि बीस वर्ष की अवस्था में विवाह करने पर ५०० कर लगा दिया जाय, और ३० वर्ष की अवस्था के पुरुष के विवाह पर २०० कर लगा दिया जाय तो दुहरा लाभ होगा। भारत में प्रतिवर्ष लाखों विवाह होते हैं। विवाह की रजिस्ट्री कराना उसीप्रकार अनिवार्य कर दिया जाय जिस प्रकार जन्म और मृत्यु की रपट कराना अनिवार्य है। २० वर्ष से कम अवस्था के लड़के के विवाह पर एक हजार, २० से ३० तक के युवा के विवाह पर ५०० और २० वर्ष से ऊपर के पुरुषों के विवाह पर २०० रुपयों का कर लगा दिया जाय। ६० से अधिक के लोग विवाह-कर से मुक्त रहें क्योंकि वे प्रजनन द्वारा भारत-भू का भार न बढ़ा सकेंगे। श्री चह्वाण जो हर प्रकार से जनता से धन खींचने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं, प्रतिवर्ष उससे करोड़ों वसूल कर सकेंगे, और साथ ही सरकार के परिवार-नियोजन की योजना को अधिक सफल बनाने में बहुत बड़ा सहयोग देंगे। इससे जनता की परेशानी और कर-भार बढ़ जायगा, किन्तु सरकार इसकी चिन्ता कब करती है? वह प्रत्येक वर्ष नये कर लगाती है और उसने जनता रूपी कामधेनु को दुहने में कभी संकोच नहीं किया। गाय का काम हीं दूध देना है। उसीप्रकार जनता का एक-मात्र कर्तव्य सरकार को कर देना है। वह अपने धर्म से कभी विचलित नहीं होगी और किसी कर के लगाने से आज तक उसे मानसिक असंतोष चाहे जितना हो, उसने कभी न तो अपनी लातें फटकारीं और न अपने सींगों का प्रयोग किया। अतएव श्री चह्वाण जानते हैं कि विवाह कर लेने से जनता रूपी गाय चुपचाप कर रूपी अधिक दूध दे देगी और सींग-पूंछ नहीं हिलावेगी। श्री चह्वाण को हमें इस करोड़ टकिया (मिलियन डालर) के सुझाव के लिए कम से कम पद्मविभूषण तो देना ही चाहिए क्योंकि रुपयों के लिए परेशान वित्तमंत्री को हम करोड़ों रुपये प्रतिवर्ष प्राप्त करने का नुस्खा बतला रहे हैं। उनसे नकदी पुरस्कार की आशा बालू से तेल निकालने की सी बात होगी। पर अयाचित सलाह की कद्र कौन करता है?

संसद सदस्यों के वेतन और आय—हमारी सरकार और देश के कितने ही नेता समाजवाद के अनुयायी होने का दावा करते हैं जिनमें संसद के अधिकांश सदस्य भी हैं। इस देश में, विशेषज्ञों के अनुसार, आधे लोगों की मासिक आय अधिक से अधिक तीस और चालीस रुपयों के बीच है। ऐसी दशा में समाजवाद के प्रमुख प्रचारकों (संसद सदस्यों) को आर्थिक विषमता दूर करने के लिए सबसे पहिले आगे आना चाहिए। किन्तु कथनी और करनी में बड़ा अन्तर है। यह उनके वेतन, भत्तों और अन्य सुविधाओं के मूल्य के योग से आँका जा सकता है। इस समय प्रत्येक संसद-सदस्य को वेतन तथा अन्य सुविधाएँ इसप्रकार मिलती हैं:

१—५०० रुपये मासिक वेतन।

२—संसद के अधिवेशन और उसकी समितियों में भाग लेने के लिए ५१ (इक्यावन) रुपये प्रतिदिन का भत्ता।

३—नाम मात्र के किराये पर दिल्ली में मकान। जिस मकान का वे ७० या ८० रुपये मासिक किराया देते हैं उसका बाजार भाव से किराया वहाँ कई सौ रुपया मासिक है।

४—डाकखर्च के लिए १०० रुपये मासिक।

५—दो टेलिफोन एक दिल्ली में और दूसरा अपने मूल निवास-स्थान में। वे प्रत्येक टेलिफोन से वर्ष में ५४०० बार मुफ्त बात कर सकते हैं। अर्थात् प्रत्येक फोन से १५ बार प्रतिदिन। साल में इससे अधिक करने पर उन्हें सामान्य दर से अतिरिक्त बात करने का शुल्क देना पड़ता है।

६—दिल्ली में मकानों के लिए मेज, कुर्सी, आलमारी, पलँग, फर्श आदि बाजार भाव से बहुत कम किराये पर।

७—सारे भारत में भ्रमण करने के लिए रेल का प्रथम श्रेणी का मुफ्त पास।

८—संसद के अधिवेशन के समय विमान द्वारा यात्रा करने की भी कुछ सुविधा।

९—कुछ रुपये मासिक देकर मुफ्त चिकित्सा प्राप्त करने की सुविधा।

१०—संसद में उनके लिए विशेषरूप से खोली गयी दूकान से उन्हें सभी आवश्यक वस्तुएँ बाजार से बहुत कम मूल्य पर मिलती हैं। उनका घाटा सरकार पूरा करती है।

११—विदेश जानेवाले शिष्ट मंडलों में भी वे भेजे जाते हैं और उनका सारा व्यय सरकार वहन करती है। यदि वे निजी काम से विदेश जाना चाहें तो उन्हें सामा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागरिकों की अपेक्षा विदेश में व्यय करने के लिए कहीं अधिक विदेशी-मुद्रा प्राप्त करने की सुविधा है।

१२—दिल्ली में दूध की चाहे जितनी कमी हो, उन्हें उत्कृष्ट श्रेणी का दूध मनमाने परिमाण में मिल जाता है।

१३—यदि संसद-सदस्य अपने या किसी अन्य राज्य की सरकारी या अर्द्ध-सरकारी समिति के सदस्य होते हैं तो और सदस्यों को तो राज्य की दर से दैनिक भत्ता मिलता है, किन्तु संसद-सदस्यों को संसद की दर से भत्ता मिलता है।

१४—संसद सदस्य को, यात्रा में, अपने साथ एक सहचर बिना टिकट या मुफ्त ले जाने का अधिकार है।

१५—संसद् की अनेक उप-समितियाँ हैं तथा कितने ही सरकारी संस्थानों में एक-दो या अधिक संसद-सदस्य नामित होते हैं। उनकी बैठकों में उन्हें भत्ते की वे ही सुविधाएँ हैं जो अन्य संसद में हैं।

इनके सिवाय छोटी-मोटी अनेक सुविधाएँ हैं, जैसे सर्किट हाउसों में ठहरने का अधिकार।

संसद-सदस्यों को जो वेतन, भत्ते, ठीक दर पर शीघ्र मोटरकार खरीदने में प्राथमिकता तथा अन्य सुविधाओं का मूल्य यदि बाजार भाव से लगाया जाय तो वह कई हजार रुपये मासिक होता है और इस अप्रत्यक्ष आय पर उन्हें आय-कर भी नहीं देना पड़ता। सरकारी दल के संसद-सदस्य तो मन्त्री, राज्यमन्त्री और उपमन्त्री भी हो सकते हैं। उन पर जो व्यय होता है, उसकी चर्चा यहाँ हम नहीं करते।

हमारी सरकार समाजवादी है और वह कहती है कि आय की विषमता को दूर करना उसका एक प्रमुख उद्देश्य है। जिस देश में, अर्थशास्त्रियों के अनुसार, आधी जनता दरिद्रता की सीमा पर या उससे नीचे है, उस देश के शासक (और संसद-सदस्य ही वास्तविक शासक हैं) यदि अपने ऊपर हजारों रुपये मासिक खर्च करते हैं तो हमारे लिए उनके समाजवाद शब्द के अर्थ का समझना बहुत कठिन है। हम यह मानते हैं और समझते भी हैं कि संसद-सदस्यों का कार्य बड़ा कठिन और उत्तरदायित्वपूर्ण है और उन्हें इतना तो मिलना ही चाहिये कि वे सामान्य सुविधा से रह सकें। सरकार हम पर टैक्स पर टैक्स बढ़ाती जाती है और जनता से कहती है कि देश के उत्थान के लिए धन की आवश्यकता है और हम संयमित और कठोर (austere) जीवन व्यतीत करने के लिए तैयार हो जायें। किन्तु यदि मन्त्री और सदस्य इसप्रकार के जीवन का उदाहरण हमारे सामने रखें तो हमें उसका नमूना मिल जाय। सामान्य जन तो बड़े लोगों ही की नकल करते हैं। उनके लिए तो वह करणीय है जो बड़े करते हैं। 'महाजनो येन गतः स पन्था।'

अब सुना जाता है कि कुछ संसद-सदस्य यह माँग करने लगे हैं कि संसद में न चुने जाने पर उन्हें बोनस और पेंशन मिलनी चाहिए। यदि संसद-सदस्यों को पुनर्निर्वाचित होने पर बोनस या पेंशन मिलने लगे तो राज्यविधान मंडलों के ऐसे सदस्यों का भी उनकी माँग करना अनुचित न होगा। और शायद नगर निगमों, नगरपालिकाओं आदि के सदस्य भी यह माँग करें। निर्वाचित पदों पर रहनेवालों को पेंशन देने का सिद्धान्त एक बार मान लेना ऐसी असख्य माँगों के लिए फाटक खोल देगा। किन्तु संसद-सदस्य इतने शक्तिशाली और प्रभावशाली हैं कि हमें आश्चर्य न होगा यदि सरकार, इच्छा न रहने पर भी, उनकी माँग स्वीकार करने को विवश हो जाय।

बच्चे की पूँछ काटी गयी—डार्विन का विकासवाद का सिद्धान्त है कि जीवों का विकास क्रमशः हुआ, और एक जाति का पशु विकसित होकर ऊँची श्रेणी का पशु हो गया। उनके कथन के अनुसार मनुष्य का विकास लंगूर से हुआ है, किन्तु इस विकास की क्रिया में पूँछ गायब हो गयी। वैज्ञानिक मनुष्य और लंगूर के बीच के प्राणी की (जो मनुष्याकार होते हुए भी लंगूर की पूँछ के अवशेष रखता हो) बहुत दिनों से खोज कर रहे हैं किन्तु अभी तक वह नहीं मिला। शरीर-रचना विज्ञानवेत्ताओं का कहना है कि मनुष्य की रीढ़ के नीचे के छोर पर पूँछ की हड्डी के अवशेष हैं। अभी हाल में बम्बई के एक अस्पताल में एक ऐसा लड़का भर्ती किया गया जिसके जन्म के समय ११ सेंटीमीटर लम्बी पूँछ थी। छः महीने का होते-होते वह बढ़ कर १७ सेंटीमीटर की हो गयी। वह अपनी पूँछ को हिला-डुला भी सकता था। उसके माता-पिता की इस 'दुमदार बच्चे' के भविष्य की चिन्ता स्वाभाविक थी। वे उसे अस्पताल में ले गये जहाँ डाक्टरों ने शल्य-चिकित्सा करके पूँछ काट दी। वैसे अब वह ठीक और बिना पूँछ का है, पर यह नहीं कहा जा सकता कि कटी हुई पूँछ (जो बढ़ रही थी) फिर किसी रूप में न निकल आवेगी। डाक्टर ऊपर से आश्वस्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं कि उन्होंने उसे जड़ से साफ कर दिया है। प्रकृति कभी ऐसी विलक्षण सृष्टि करके प्राणी को पूर्वजता (ऐटाविज्म) में फेंककर पुरानी याद दिला देती है। कुशल और प्रसन्नता की बात यह है कि करोड़ों-अरबों में कभी-कभी ही प्रकृति शारीरिकरूप से मनुष्य को पूर्वजता की ओर धकेल देती है। मानसिकरूप से हिंस्र पशुओं के कितने ही गुण मनुष्य में अभी भी अधिक मात्रा में रह गये हैं क्योंकि मनुष्य में मस्तिष्क का विकास सबसे बाद में हुआ है।

निराशा

श्री मिश्रीलाल जैन, एडवोकेट

गाँव के गाँव आ शहर में खो गये
भीड़ के हो गये
कोलाहल और कुतूहल
केवल मिले रात-दिन
आदमी, आदमी से यहाँ दूर हो गये।
यांत्रिक जिन्दगी, स्वास्थ्य को खा रही
स्वच्छ आकाश में
चिमनियों का धुआँ
गाँव अब पूछता गाँव का रास्ता,
शहर की जिन्दगी नेह से दूर है।
चिर थकी-सी लगी
आत्मा से रहित
रात में, प्रात में
अपने गंतव्य से दूर करती हुई,
आलोकित राहें हैं,
आलिंगन में बँधी बाँहों में बाँहें हैं
किन्तु सब प्रदर्शन है, मात्र व्यवसाय है
एक मिलती नहीं प्रीति की छाँह है।
आओ वापिस चलें,
धूल अपनी भली
माटी अपनी भली
अपने प्रिय गाँव की
स्वच्छ आकाश है, प्रीति की छाँह है
खेत, खलिहान हैं,
शांत वातावरण
और क्या चाहिए जिन्दगी के लिए
आओ वापिस चलें
गाँव में, छाँह में।

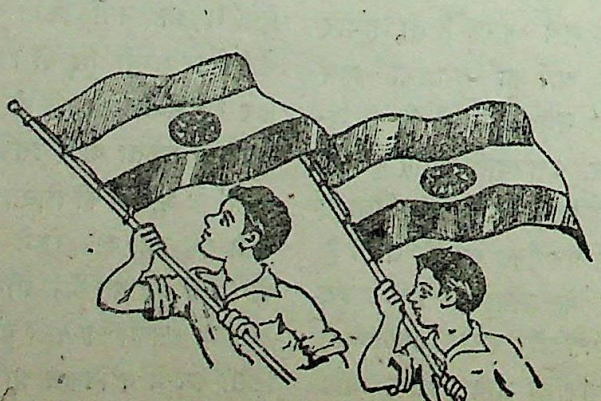

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शांकर अद्वैतवाद तथा व्यवहार

श्री रामप्रसाद पांडेय

विगत अक्टूबर '७२ के अंक में प्रकाशित शांकर मत का निरूपण करते हुए प्रस्तुत लेखक ने अन्य लेख में यह दिखाने की प्रतिज्ञा की थी कि अद्वैतवाद से प्रायः लोग क्यों भयभीत होते हैं, और वह भय किस प्रकार निर्मूल है। यही विवेचन इस लेख का विषय है।

एक ही सत्ता का यह विश्व एवं समस्त सृष्टि विस्तार है, पूर्व और पश्चिम के वरिष्ठ सभी दार्शनिकों ने इसे स्वीकार किया है। परोक्ष रूप से धर्मों का आधार भी यही सिद्धान्त है। सभी संप्रदाय ईश्वर को जगत् का स्रष्टा एवं आधार मानते हैं, ईश्वर को सर्वशक्तिसंपन्न और सर्वत्र व्यापक एवं वर्त्तमान् मानते हैं। यह बड़े कौतूहल का विषय है कि उस सत्ता को सर्वव्यापी मानकर भी व्यक्ति अपने को उससे भिन्न मानता है। इस आत्मविरोधी भावना का निकृष्टतम उदाहरण मूर्त्ति-विरोधी व्यक्ति उपस्थित करता है, जो सभी में व्याप्त एवं वर्त्तमान ईश्वर को मूर्त्ति-विशेष में व्याप्त और वर्त्तमान मानने से इन्कार करता है। यह ऐसे व्यक्तियों का विचार-रहित दुराग्रह नहीं तो और क्या है? विज्ञान का भी मूलाधार एकता का नियम है। इस विषय का सुन्दर और रोचक विवेचन स्वर्गीय आचार्य रामदास की पुस्तक "**वैज्ञानिक अद्वैतवाद**" में है। जितने भौतिक नियम हैं, जिनके आधार पर अनेक यंत्रों का आविष्कार किया गया है, वे सभी पारस्परिक संबंधों की शृंखला के सनातनत्व पर ही निर्भर हैं, जिन्हें वेद की भाषा में ऋत और सत्य कहते हैं। जैसे देश की शासन-व्यवस्था के लिए एक संविधान होता है जो राजा या राष्ट्रपति में निहित रहता है, उसी प्रकार सृष्टि की व्यवस्था के लिए परम सत्ता ने ऋत बनाया जिससे संसारचक्र यथावत् संचालित होता है। उस संचालन की व्यक्त व्यवस्था सत्य कही जाती है जो मूल नियम ऋत में केंद्रित है। अर्थात् एकता की भावना ही सभी ज्ञान-विज्ञानों का स्रोत है।

तो न्याय की भाषा में यह कहा जायेगा कि लोक हेतु तथा उदाहरण एवं अन्वय अवयवों को स्वीकार करता है, परंतु अनुमान के प्रतिज्ञा तथा अनुमिति अवयवों से झिझकता है। पाश्चात्य न्याय की भाषा में संक्षेपतः यह इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है कि मेजर और माइनर प्रेमिस स्वीकार कर कनक्लूज़न (अनुमिति) से इन्कार किया जाता है। यह सामान्य अज्ञान है। तत्त्वज्ञानी का कार्य छिपे हुए अथवा मोटी बुद्धि में न आने वाले सत्य को व्यक्त और स्पष्ट करना है। भगवान् शंकराचार्य ने यही किया। एक ब्रह्म सत्ता मात्र को स्वीकार किया और सभी सृष्टि को उसकी साकार अभिव्यक्ति कहा है—"एकं वा इदं वि बभूव सर्वम्" अथवा "पुरुष एवेदं सर्वम् यद् भूतं यच्च भव्यम्" (ऋग्वेद)। अतः वस्तुतः सभी कुछ ब्रह्म ही है, और उस सभी कुछ से मैं, अर्थात् प्रत्येक जीव, अलग नहीं है। सभी को ब्रह्म मानकर अपने को क्यों न माना जाय? ब्रह्म से भिन्न वास्तव में अन्य सत्ता है ही नहीं। अतः तात्त्विक दृष्टि से अपना परिचय अथवा अपनी परिभाषा में यही कहना न्यायसंगत सत्य है कि मैं ब्रह्म हूँ—अहं ब्रह्मास्मि।

ऊपर जो हमने "तात्त्विक" पद का प्रयोग किया है उस पर बल है। अर्थात् सामान्य स्थूल दृष्टि से नहीं, वरन सूक्ष्म विवेक दृष्टि से ऐसा कहा जाता है। भौतिक स्तर पर तो अनेक नामरूप हैं ही। एक ने अपने को अनेक रूप दिये हैं—"रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव" (ऋग्वेद)। स्वर्णद्रव्य और अनेक आभूषणों के उदाहरण से यह स्पष्ट हो जायेगा। अँगूठी-बाली से लेकर सिंहासन तक जो स्वर्ण से निर्मित हैं, केवल नामरूपों में अनेक लगते हैं। परंतु पारखी स्वर्णकार के पास जाइए तो वह सभी को सोने की संज्ञा देगा, कहेगा कि अमुक-अमुक में इतना-इतना सोना है। उसी प्रकार जल के अनेक रूप हैं: साधारण द्रवजल, भाप, बादल, ओले, बर्फ आदि सभी वास्तव में जल ही हैं, रूपों का और तद्वत नामों का भेद है। साधारण जन नामरूपों में ही लिपटा रहता है। परंतु वैज्ञानिक जलतत्त्व को ही देखता है। ज्ञान-विज्ञान की यही आवश्यकता है। वे सच्चाई को दिखाते हैं। जैसे जल, भाप, ओला, बर्फ सभी जल हैं, वैसे प्रत्येक पदार्थ अथवा प्राणी ब्रह्म ही कहा जायेगा। उसका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरी ठीक परिभाषा नहीं है। परन्तु 'मैं ब्रह्म हूँ' इस वाक्य से साधारण व्यक्ति इसलिए घबराता है कि वह उसका ठीक अर्थ नहीं जानता है। वह उद्देश्य और विधेय को सर्वथा समान समझता है, अर्थात् वह इसका अर्थ यह भी निकालता है कि ब्रह्म मनुष्य या अन्य प्राणी है। यह अर्थ न्याय-विरुद्ध है। जब सिपाही कहता है कि मैं मनुष्य हूँ तो उसका यह कदापि अर्थ नहीं है कि सभी मनुष्य सिपाही हैं। वास्तविकता यह है कि उद्देश्य की अपेक्षा विधेय निःसीम होता है। उद्देश्य की सीमा विधेय में होती है। उद्देश्य अंश है और विधेय अंशी है। इस वास्तविक भाव को न जानकर द्वैती अद्वैती से झगड़ता है, जिसका कारण अज्ञान है। इसको समझ लेने के पश्चात् शंकर का अद्वैतवाद सरल स्वाभाविक एवं युक्तियुक्त जान पड़ेगा।

व्यर्थ का भय एवं विरोध उत्पन्न करनेवाला एक और विषय इस अद्वैतवाद से लगा हुआ है। मूल्य में अव्यक्त और अनन्त होकर भी, ब्रह्म ने अपने एक स्वरूप को व्यक्त किया है, जो यह विश्व है। स्थूलरूप से विश्व में अनेकता है, अनेक योनियाँ हैं, अनेक जीव हैं, अनेक अन्य पदार्थ हैं। व्यवहार इन सभी को यथावत् स्वीकार किया जाता है। एक अग्नि दारुगत अव्यक्त है और एक प्रज्ज्वलित रूप में लकड़ी को जला रही है। तत्त्वतः दोनों अग्नि ही हैं। परन्तु दारुगत अग्नि केवल ज्ञान का विषय है। उष्णता के लिए, भोजन पकाने के लिए, प्रज्ज्वलित अग्नि का ही सेवन किया जाता है। एक रूप ज्ञानमात्र का विषय है, और दूसरा व्यवहार का। ज्ञान बुद्धि मात्र ग्रहण करती है। इसलिए कठोपनिषत् ने बल देकर कहा है कि

"मनसैवेदमाप्तव्यं नेह नानास्ति किंचन"।
कठ० अध्या० २-१-११

अर्थात्, आँखों से दिखायी देनेवाली अनेकता के पीछे एक ही सत्ता है, यह ज्ञान मन से, बुद्धि से अथवा शुद्ध हृदय से ही जानना चाहिए। व्यवहार में तो बाह्यरूपों के अनुसार चलना चाहिए। साधारण विचारवाला व्यक्ति भी मानता है कि आबाल-वृद्ध सभी प्राणियों में ईश्वर का वास है, परन्तु सभी के साथ शरीर के अनुरूप भिन्न-भिन्न व्यवहार किया जाता है। पशु को घास-भूसा, बच्चे को दूध और बयस्क को अन्न-भोजन दिया जाता है। यह व्यवहारवाद है, जिस पर भगवान् शंकराचार्य ने अपने आचार और व्यवहार द्वारा बहुत बल दिया है। दर्शन का कार्यतत्त्व का विवेचन है, जो मन और बुद्धि में रहता है। उसके कारण सभी से प्रेम का, दया का, बर्त्ताव होता है। इस शरीर के धर्म का निर्वाह शरीरी को अवश्य करना पड़ता है, और करना आवश्यक है। ईश्वर के चलाये चक्र को चलाते जाना महायज्ञ है। जो भ्रम में अथवा एकांगी ज्ञान में पड़कर निष्क्रियता का जीवन बिताता है उसका जीवन व्यर्थ कहा गया है:

एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुबर्तयतीह यः।
अधायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति॥
गी० ३—१६

भगवान् ने यह कथन करते हुए कि मैं ही सभी कुछ हूँ, मेरे अतिरिक्त अन्य सत्ता नहीं है, यह भी उपदेश किया है कि सभी कर्त्तव्य कर्म करते जाओ। अर्थात् मन में भगवान् का वास और हाथों में कर्म का प्रवाह, यही जीवन का श्रेष्ठ दर्शन है, जिस पर यजुर्वेद के अंतिम चालीसवें अध्याय में बल दिया गया है।

विद्यां चाविद्यां च यस्तद् वेदोभयं सह।
अविद्यया मृत्युं तार्त्वा विद्ययामृतमश्नुते॥

जो ज्ञान (विद्या) और अविद्या अर्थात् कर्म को साथ-साथ जानता है वह सच्चा ज्ञानी है। क्योंकि संसार को जीतने के लिए कर्म अनिवार्य है, कर्म से ही लौकिक मृत्यु जीती जाती है और ज्ञान के द्वारा ब्रह्मरूपी अमरता की प्राप्ति होती है। यही ज्ञान और कर्म का समुच्चय है अथवा कर्म योग है। उच्चकोटि के शास्त्रों ने—वेदोपनिषद् गीता—इसीका प्रतिपादन किया है। शंकराचार्य ने उन्हींके सिद्धांतों का पूर्णता से प्रतिपादन किया है।

शरीर से कर्म संपादन, बुद्धि से विवेक तथा शुद्ध हृदय से एकत्व का दर्शन—यही शांकर अद्वैत है, अथवा जीवन का उच्चादर्श है। स्वतः अपने शरीर के लिए क्रियाव्यापार, बुद्धि-विलास के लिए अध्ययन-चिन्तन तथा आत्मा की शांति के लिए ब्रह्म की भावना—ज्ञानोपासना—ये त्रिधा कर्म किये ही जाते हैं। आत्मा अमर है। परन्तु शरीर को स्नान-भोजन-छाजन की अपेक्षा को कौन अस्वीकार करेगा? इस दृष्टि से देखिये तो वस्तुतः भेदाभेद का समुच्चय सभी में है। शांकर मत उसका शास्त्रीय विवेचन-मात्र प्रस्तुत करता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राम-नाम-की वैज्ञानिकता

डा० विनयमोहन शर्मा

तुलसी तथा एकनाथ रामनाम-जाप पर बल देते है। प्रायः सभी 'संतों' ने 'परमात्मा' का सान्निध्य प्राप्त करने के लिए सबसे 'सहज' मार्ग नाम-स्मरण निदेशित किया है। संतों के अनुभवों के बल पर ही शास्त्रों ने बार-बार कहा है—'जपात् सिद्धिर्जपात्सिद्धिर्जपातसिद्धिः न संशयः।' नाम स्मरण परमात्म सत्ता के निर्गुणोपासकों को ही मान्य नहीं है, उसके सगुण रूप के उपासक भक्तों को भी मान्य है। दोनों पंथ के संतों को जब मान्य है तब उसके पीछे केवल आप्तवचन का प्रमाण नहीं होना चाहिए—स्वानुभव-प्रत्यक्ष-प्रमाण का बल जान पड़ता है। आज विज्ञान का युग है। वह प्रत्यक्ष प्रमाण पर ही विश्वास करता है। नाम-स्मरण सिद्ध कब होता है ? परमात्म शक्ति के, जिसे हमारे दृष्टा ऋषियों ने 'विष्णु' भी कहा है, सहस्रनाम हैं। उनमें से कौन नाम स्मरण-योग्य है, इसे कैसे निश्चय किया जाय ? यह एलोपेथी की पेटेन्ट वह गोली है जो सभी प्रकृति के रोगों के गले उतारी जा सके। पेटेन्ट औषधियाँ सभी को सभी स्थिति में लाभदायक नहीं होतीं। मनुष्य आकृति में समान होते हुए भी प्रकृति में समान नहीं है।

आयुर्वेद में मानव प्रकृति के प्रमुख तीन भेद बतलाए गए हैं। वे हैं पित्त, कफ और वात। इन प्रकृतियों का व्यक्ति में जब संतुलन भंग हो जाता है तो उसके स्वास्थ्य में खराबी पैदा हो जाती है। यह 'स्वस्थ' नहीं कहा जाता। 'स्वस्थ' शब्द पर ध्यान दीजिए। अपने में जो स्थिर होता है वह 'स्वस्थ' कहलाता है। शरीर के कफ, पित्त और वात का समभाव ही उसे अपने आप में स्थिर रखता है। याने मनुष्य की प्राकृतिक अवस्था ही का नाम 'स्वस्थावस्था' है। तो किस 'नाम' के स्मरण से साधक 'स्वस्थ' रह सकता है ? इसके लिए 'गुरु' से 'दीक्षा' लेने का संत-मत में प्रबल आग्रह है। 'निरगुनिया' गुण न जानने से ही भटक जाता है। उपनिषद्कार कहते हैं हिरण्यमयेण पात्रेण सत्यत्य अपिहितं मुखम्''—सत्य का मुख सोने के पात्र से अर्थात् अज्ञान रूपी माया के पात्र से आवृत्त है इसीलिए 'गुरु' की उपासना अर्थात् उसके निकट बैठने की आवश्यकता है। गुरु की नाम-दान-प्रविधि को ही 'दीक्षा' कहा जाता है। दीक्षा के उपरान्त नाम-कीर्तन आदि का जो उपदेश दिया जाता है उसे 'शिक्षा' कहते हैं। यों 'शिक्षा' का एक अन्य अर्थ भी है,' जो यहाँ भी लागू होता है—वह है ध्वनि शास्त्र। वेद के मंत्रों के उच्चारण की विशिष्ट विधि का ज्ञान कराने वाली विधा को 'शिक्षा' कहा जाता था। आज इसे Phonetics (ध्वनिशास्त्र) कहते हैं। वेद को हमारे ऋषियों ने अपौरुषेय माना है और ठीक ही है। 'वेद' का अर्थ 'ज्ञान' है। ऋषि जब 'ध्यानावस्था' में थे—तभी उन्हें वेद (ज्ञान) स्फुरित हुआ था। वह कहीं 'बाहर' से उन्हें प्राप्त नहीं हुआ था। उनकी आत्मा में जो परमात्मा का आवास था, वही ध्यान में मुखरित हो उठा। इसी अर्थ में 'वेद' को अपौरुषेय कहा जा सकता है। हमारे ऋषियों ने अपौरुषेय ज्ञान को अखंडित रखने, उसके प्रत्येक शब्द का यथावत् उच्चारण अक्षुण्ण रखने के लिए 'शिक्षा शास्त्र' की रचना की थी। क्योंकि प्रत्येक वर्ण के उच्चारण-क्रिया का शरीर के भीतरी अवयवों पर निश्चय प्रभाव पड़ता है। इसकी परीक्षा का परिणाम अमरीका के 'फिजिकल कल्चर' पत्र में बर्नर मेकेफेरेडन ने प्रकाशित किया था। एक रोगी उदर-रोग से बुरी तरह पीड़ित था। अतः कोई औषधि 'कारगर' नहीं हो रही थी। अतः उसे दिन भर 'ला' 'ला' का धीरे-धीरे उच्चार करने को कहा गया। कुछ ही दिनों में उसका पाचक यंत्र क्रियाशील होने लगा और वह 'स्वस्थ' हो गया। 'लं' के उच्चारण से उसका नाभिचक्र (Solar Plexis) प्रभावित हो उठा और उस पर उसका मन केन्द्रित रहने से यकृत (लीवर), छोटी-बड़ी अंतड़ियाँ आदि पाचन-अवयव सक्रिय हो उठे। ओऽम्—ह्रां, ह्रीं, ह्रूं, ह्रैं, ह्रौं, ह्रः के साथ सूर्य के बारह नामों के उच्चारण सहित जब सूर्य-नमस्कार किये जाते हैं तब शरीर के प्रत्येक अवयव जागृत हो उठते हैं। रक्त की प्रत्येक कोशिकाओं में रक्त-संचार गतिशील हो उठता है।

किस प्रकार का व्यायाम किस व्यक्ति के लिए अनुकूल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होगा। इसका जिस प्रकार योग व्यायाम-निर्देश-निर्णय कर शिष्य को परामर्श देता है उसी प्रकार किस 'नाम' के स्मरण से लाभ होगा इसका निर्णय 'सद्गुरु' ही कर सकता है। संतों ने 'गुरु' नहीं, 'सद्गुरु' के संधान की बात कही है, जो आसानी से उपलब्ध नहीं होते। वे भाग्य से प्राप्त होते हैं। कबीर ने कहा भी है—

कबीर सतगुरु नां मिल्या रही अधूरी सीष।
स्वांग जती का पहरि करि घरि घरि मागे भीष॥
पीछैं लागा जाइथा लोकबेद के साथि।
आगे में सतगुरु मिल्या दीपक दीया हाथि॥

सद्गुरु शिष्य की पात्रता की परीक्षा करता है, उसकी प्रवृत्ति, प्रकृति और लगन के अनुसार उसे 'नाम' की दीक्षा और शिक्षा देता है। 'नाम' का मनन होता है, इसीलिए वह 'मंत्र' बन जाता है। 'नाम' के वर्णों का उच्चारण अशुद्ध नहीं होना चाहिए। मान लीजिए किसी उपासक को गुरु से "हरे राम हरे कृष्ण हरे हरे" मंत्र प्राप्त हुआ। यदि वह हरे के स्थान पर अरे और कृष्ण के स्थान पर किसन कहने लगे तो क्या वह फलप्रद होगा? प्रत्येक 'वर्ण' का उच्चारण स्थान है, शरीर के भीतरी अवयवों पर उनका इष्टानिष्ट प्रभाव पड़ता है। 'ह' के स्थान पर 'अ' कहने से या कृष्ण के स्थान पर किसन कहने से उच्चारण-स्थान बदल जाता है, जिसके कारण मंत्र अभीष्ट फल नहीं दे पाता।

'क' वर्ण का उच्चारण स्थान जिह्वामूल है। ष्, ण, का उच्चारण-स्थान मूर्धा है। मूल से मूर्धातक सजातीय तीन धाराएँ हैं। इसमें विषमगति नहीं है--उनके भीतर 'स्' का प्रवेश हो जाने पर विजातीयता आ जाती है। संगति में 'स' के उच्चारण स्थान दन्त-मूर्धा और दन्त के बीच स्थानिक पार्थक्य ही नहीं, व्यावहारिक पार्थक्य भी है। दंताभिघातवृत्ति से जो स्वर-गति उत्पन्न होती है उसे मित्र छन्द से सम्पृक्त नहीं किया जा सकता। समजात ध्वनियों में एक समवायत्व रहता है और इसका विशिष्ट प्रभाव पड़ता है। कृष्ण की 'क्ली' बीज समन्वित ध्वनि में जो शक्ति निहित है वह किसन की ध्वनि में नहीं रह जाती। इसी तरह यदि हम 'ओम नमः शिवाय' के स्थान पर 'ओम नमः सिवाय' उच्चारित करने लगें तो मंत्र का अवैध, उच्चारण हो जायेगा। ध्वनि के उदात्त, अनुदात्त और प्लुत तीन भेद सर्वविदित हैं। 'हरि बोल' में 'बोल' का प्लुत उच्चारण ही श्रेष्ठ हैं। इसी से नाम-स्मरण के मंत्र की सिद्धि के लिए सद्गुरु से 'शिक्षा' ग्रहण करने की आवश्यकता होती है।

'जप' की शिक्षा के मूल में वैज्ञानिकता है, इसे विस्मृत नहीं करना चाहिए। किसी भी कार्य को सिद्ध करने के लिए तीन बातों की आवश्यकता होती है। जिसे अध्यात्म भाषा में विद्या, श्रद्धा और उपनिषद् कहा जाता है। विद्या से तात्पर्य—प्रविधि, श्रद्धा से—विश्वास और उपनिषद् से—रहस्य ज्ञान का अर्थ लेना चाहिए।

शिष्य साधक को अपने गुरु से नाम-स्मरण की विधि का ज्ञान ही पर्याप्त नहीं है, उसे 'नाम' से प्रगाढ़ श्रद्धा भी होनी चाहिए। उपनिषद् (रहस्यज्ञान) से तात्पर्य है नामोच्चार के सिद्धान्त से अवगति। गुरु से साधक को विज्ञान सम्मत उपदेश मिलना चाहिए। तभी 'जपात सिद्धि' की घोषणा सार्थक होगी। बार बार 'नामोच्चार' के पीछे क्या रहस्य है, इसे समझना होगा। नामोच्चार ध्वनि का सतत या कुछ समय तक ही प्रवाह है। जगत 'शब्द' ध्वनि से आपूर है। उसका प्रारम्भ ही शब्द-ध्वनि से हुआ माना जाता है--उसी ने सृष्टि के कण-कण को गति प्रदान की है--इसी से उसका नाम 'जगत' है क्योंकि वह सतत गतिमान है—उसमें सतत चांचल्य है।

प्रत्येक अणु-परमाणु सभी में चांचल्य है, गति है-ध्वनि है। हम प्रत्येक ध्वनि को सुन नहीं पाते क्योंकि हमारी श्रवण-शक्ति की एक सीमा है। यदि हमारे दिव्य श्रवण हों तो हम प्रत्येक ध्वनि को कर्णगत कर सकते हैं। योगी सूक्ष्म शब्द-ध्वनि को सुन सकता है। इसलिए वह शांत कोने में बैठे बैठे जगत् की गति का ज्ञान प्राप्त कर लेता है। विज्ञान कहता है कि कम्पन वेग की निम्न संख्या है जिसे हमारे सामान्य कर्ण सुन नहीं पाते पर इसका यह अर्थ नहीं कि कम्पन-क्रिया बन्द हो गई—वह तो जारी रहती ही है। ध्वनि तभी ग्राह्य होती है जब कान और मस्तिष्क में नियमानुसार उतेजना होती है और मन संयोग होता है। नाम-स्मरण का गुरूपदिष्ट विधि से प्रेम-आदर के साथ उच्चारण होना चाहिए। यह उच्चारण बैखरी, मध्यमा पश्यन्ती और परावाणियों से क्रमशः होता है। आप शंका कर सकते हैं कि पश्यन्ती-परावाणी में ध्वनि कहाँ सुन पड़ती है पर नहीं, मंत्र-शब्द का ध्यान भी ध्वनि-तरंग उत्पन्न करने की क्षमता रखता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शब्द के तीन प्रकार हैं—

(१) 'पर' शब्द—यह चाहे मन में तरंगित हो चाहे जड़ तत्व में श्रव्य हो या न हो.

(२) 'अपर' शब्द—(सूक्ष्म शब्द) यह सिद्ध योगियों को सुन पड़ता है।

(३) 'भौतिक शब्द'—सामान्य शब्द।

योगी धारणा-ध्यान-समाधि में अपर शब्द सुन लेते हैं—पर शब्द सुनने के लिए सर्वथा निर्दोष कर्ण चाहिए जो सब के लिए संभव नहीं है।

शब्द की शक्ति अपार है। इस जगत में ८२ या इससे भी अधिक तत्त्व खोजे जा चुके हैं। प्रत्येक अणु तत्त्व में इलेक्ट्रान, प्रोटान और नाइट्रान हैं। इलेक्ट्रान विद्युत-तरंग हैं। नेगेटिव्ह, पाजिटिव्ह और न्यूट्रल स्थिर दिखनेवाले तत्त्व को चंचल बनाने के लिए बाह्य शक्ति का समावेश आवश्यक है। गुरु-मंत्र में शक्ति है। वह ब्रह्म है। यदि हम उसे जागृत कर लें तो वह अभीष्ट का उपदेश देते हैं। उसकी संख्या निर्धारित करते हैं। उसका पुरश्चरण किया जाता है। प्राचीन ग्रन्थों में ऋषियों की वाणी फुरने का अशय यह है उनके शब्दों का सामर्थ्य सिद्ध हो गया है। 'जपात सिद्धिः' का यही अर्थ है। जप के तीन अंग हैं—ध्वनि (शब्द) संख्या और अर्थ। मंत्र ध्वनि ठीक उच्चरित होनी चाहिए, मन में भी ठीक ध्वनि का चिन्तन होना चहिए। मंत्र को जपने की संख्या निर्धारित करना होगा और मंत्र का अर्थ भी ध्यान में रखना होगा। तभी वह 'सिद्ध' होगा। मंत्रोच्चार में एकलयता होनी चाहिए। चाहे वह वाचिक हो, उपांशु हो या मानसिक हो। बैखरी जाप में समतालता स्पष्ट श्रुतिगत होती है। अध्यात्मिक चेतना जागृत करने के लिए मानसिक जाप श्रेष्ठ माना गया है। वाचिक जाप से भी लाभ होता है पर दशांश ही।

नाम-स्मरण सतत-अहर्निश-हो सकता है—निश्चित काल तक भी हो सकता है। यह साधक की मनःस्थिति पर अवलम्बित है। संत अहर्निश नाम स्मरण करते हैं—निष्काम भाव से, गृहस्थ सकाम भाव से। पर जो अपने को परमात्म शक्ति को समर्पित कर देता है वह निष्काम कर्मयोगी होता है और 'निज' ध्येय को प्राप्त कर लेता है। एक साधक गायत्री मंत्र के उपासक थे। उन्होंने हमें बतलाया कि मैं जब सदा मंत्र का जाप करता था तब मेरी 'वाचाफुर' हो गई थी। मैं जो कहता वह हो जाता। अतः मैं संभल कर लोगों से बात करता था। योगी यम-नियम का पालन करने से संयमी हो जाता है। अतः अशुभ शब्दोच्चार प्रायः नहीं करता और जब करता है तब वह सचुमुच शाप बन जाता है।

'मानस' और 'भावार्थ रामायण' में राम नाम-स्मरण पर विशेष बल दिया गया है। और यह बल उन्होंने अपनी आत्मानुभूति के आधार पर दिया है। आज ध्वनिविज्ञानिकों ने परीक्षा के उपरान्त इसे वैज्ञानिक प्रक्रिया कहा है।

श्री सुरेन्द्र प्रसाद राय ने 'हिन्दुस्तान' के २१ जनवरी ७३ के अंक में लिखा है चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र में यह नवीन विधि है पराश्रव्य (आल्ट्रासाउण्ड चिकित्सा) पद्धति। इसमें ध्वनि की अत्यन्त सूक्ष्म एवं तीव्र तरंगें पैदा की जाती हैं जिनमें गुर्दे की पथरी, मस्तिष्क रोग एवं शरीर के अन्य कोमल अंगों में उत्पन्न विकार ठीक किए जा सकते हैं। उनके प्रभाव से गुर्दे की पथरी चूर्ण में परिवर्तित हो मूत्र से बाहर निकल जाती है।

ध्वनि विशेष वरदान या शाप दोनों सिद्ध हो सकती है। इसलिए शास्त्रों में गुरु निर्दिष्ट मंत्र का जाप विहित माना गया है। पर मंत्रों में "राम" "श्रीराम" बड़ा निष्पाप मंत्र है। इसके उच्चारण में किसी को भी असुविधा या प्रमाद नहीं हो सकता। इसलिए सभी संतों ने "राम" जाप का उपदेश दिया है।*

---

*सन्दर्भ ग्रंथ—स्वामी प्रत्यगात्मानन्द सस्स्वती कृत 'जपसूत्रम्'

—जान वुडरफ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"कायस्थ"

श्री परिपूर्णानन्द वर्मा

इस लेख का शीर्षक देखकर पाठकों को भ्रान्ति न हो जाय। **कायस्थ** नामक जाति का कौन-सा वर्ण है इससे कोई सरोकार नहीं है। न तो इस लेख का यह विषय ही है। इसकी मीमांसा करने में मुझे रुचि भी नहीं है। तीन वर्ष हुए संयुक्त राज्य अमेरिका से एक विद्वान् एक विशेष शोध कार्य के लिए भारत आये थे। देहरादून में उनकी आदरणीय श्री श्रीप्रकाश जी से भेंट हो गयी। श्री श्रीप्रकाश जी को जब यह मालूम हुआ कि वे अमेरिका से भारतवर्ष केवल "कायस्थ जाति" पर खोज करने आये हैं तो उन्हें आश्चर्य हुआ। श्रीप्रकाश जी ने उन्हें सलाह दी कि वे मुझसे सम्पर्क स्थापित करें।

मेरे पास उनका पत्र आया। उन्होंने मुझसे "कायस्थ" सम्बंधी अपने शोध कार्य में सहायता मांगी। मैंने ऐसे व्यर्थ के कार्य में उनकी सहायता करनी अस्वीकार कर दी। मैंने उन्हें कायस्थ जाति के अनगिनत दोषों को लिखते हुए उनसे इस सम्बंध में अपना समय नष्ट न करने की सलाह दी थी एक बात मैंने लिखी थी :—

> "मैं नहीं जानता कायस्थ कौन है, क्षत्रिय या शूद्र। एक बात जानता हूं। वे अन्य वर्ण वालों के सामने भींगी बिल्ली की तरह दुम हिलाते रहते हैं और अपनों के साथ उनके ऐसा विश्वासघाती तथा कृतघ्न दूसरा कोई नहीं।"

उस अमेरिकी ने मेरा पत्र श्री श्रीप्रकाश जी को दिखला दिया। बस, मेरे अध्यापक श्री श्रीप्रकाश जी को मुझ पर बड़ा क्रोध आया और उन्होंने मुझे लिखा :—

> "तुमने निहायत ग़लत बात लिखी है। यदि मुझसे कोई पूछे तो मैं ठीक वही बात बनियों के लिये लिख सकता हूं।"

और, सन १९७१ में श्रीप्रकाश जी ने मुझे लिखा :—

> "ये विदेशी भी अद्भुत लोग हैं। यह शख्स अमेरिका से आया और केवल **कायस्थ** पर शोध ग्रंथ लिखने और मैंने इसके द्वारा एकत्रित सामग्री जब देखा तो मैं अचम्भे में आ गया। कितनी दूर दूर की बातें इसमें ढूंढ़ निकाली है, मैं इसकी कल्पना भी नहीं कर सकता था।"

और अभी दो माह पूर्व मुझे काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में एक अमेरिकन मिला जो "ब्रजभाषा" पर खोज करने भारत आया है। जब उसने रसखान और बिहारी पर मुझसे बातें करनी शुरू कीं, मैं हैरान हो गया। मैं अपने को हिन्दी साहित्य का एक जानकार समझता था। वह मुझे तीन-चार बरस पढ़ा सकता है। यह तो है विदेशी शोध-प्रतिभा।

कल्हण का कायस्थ

और भारतीय शोध का एक नमूना मुझे अभी हाल में प्राप्त "नागरी प्रचारिणी पत्रिका" के एक अंक में मिला। वर्ष ७६–अंक १–२ में एक लेख है "कल्हण की राजतरंगिणी में चित्रित कायस्थ"–लेखक श्री श्रीमन्नारायण द्विवेदी। राजतरंगिणी में जो कुछ लिखा है उसे लेखक ने सही दिया है। पर भारत के किसी भी प्राचीन ग्रंथ से कोई भी उद्धरण देने से पहले उसकी छानबीन यदि न की जाय तो बड़ी भ्रान्ति पैदा होती है। बदमज़गी हो जाती है। ऐसी ही भ्रान्ति पैदा की है दिल्ली–लखनऊ के एक बड़े प्रसिद्ध सम्पादक ने जिनको ब्राह्मणों से बड़ी चिढ़ मालूम होती है और उन्होंने इधर-उधर का उद्धरण देकर ब्राह्मण को सब पापों की, विपत्ति की जड़ माना है। मैंने प्रतीक्षा की कि कोई इस अनर्गल बकवास का उत्तर दे। अन्ततोगत्वा मुझे उत्तर देना पड़ा और सिद्ध करना पड़ा कि प्राचीन भारत के इतिहास तथा शास्त्र का कोई भी विद्यार्थी ब्राह्मणों पर ऐसे गन्दे आक्षेप लगा नहीं सकता। पिछले तीन चार सौ वर्षों के इतिहास को लेकर, जब सब व्यवस्था बिगड़ गयी थी, ब्राह्मणों के प्राचीन गौरवमय इतिहास को कलंकित करने वाले अज्ञानी हैं।

ब्राह्मण सम्बन्धी भ्रम

एक तर्क जो प्रायः लोग देते हैं कि ब्राह्मण हत्या करने पर भी अवध्य था। उसको प्राणदण्ड नहीं मिलता था तथा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्राह्मण से कर (सरकारी टैक्स) नहीं लिया जाता था। कर के सम्बन्ध में विष्णुस्मृति का वाक्य उद्धृत किया जाता है कि—"ब्राह्मणेभ्यः करादानं न कुर्यात्।"

किन्तु, अज्ञानी लोग यह भूल जाते हैं कि यह मुक्ति केवल उन ब्राह्मणों के लिये थी जो श्रोत्रिय हों—यानी जो एक पैसे की कमाई न कर दिन रात वैदिक कर्मकाण्ड में लगे रहते हों। शेष ब्राह्मणों के लिये महाभारत ने लिखा है कि उनसे बलि (कर) तथा विष्टि (बेगार) दोनों लिया जाय। महाभारत ने यह भी लिखा है कि जो ब्राह्मण ऋत्विक् (यज्ञ आदि) पुरोहित, दूत, किसानी आदि का काम करें उसे क्षत्रिय के समान समझना चाहिये।

१—अश्रोत्रियाः सर्व एव सर्वेचानाहिताग्न्यमः।
तान् सर्वान् धार्मिको राजा बलिं विष्टि च कारयेत्॥

२—ऋत्विक् पुरोहितो मन्त्री दूतो वार्त्तानुकर्षकः।
एतेक्षत्रसमा राजन् ब्राह्मणनां भवन्त्युते॥

(महा० शा० ७६—५ व ७)

आपस्तम्व धर्मसूत्र में लिखा है कि "अकरः श्रोत्रियः। सर्व वर्णानाम स्त्रियः" श्रोत्रिय और सब वर्णों की स्त्रियाँ कर से मुक्त थीं।

रही अवध्यता की बात। दूसरी सदी के याज्ञवल्क्य स्मृति के टीकाकार मित्रमिश्र ने "वीरमित्रोदय" में लिखा है कि हत्या करनेवाले ब्राह्मण के मुख में पेशाब-पाखाना करके फिर राज्य से निकाल दे। "अभक्षयैः पुरीषादिभिर्विप्रं खादयित्वा"। ८वीं सदी की नारद स्मृति ने लिखा है कि सर घुटा कर, मस्तक दागकर, काला मुँह करके, गधे पर बिठाकर नगर बाहर कर दे :—

शिरसा मुण्डनं तत्र दण्डोनिर्वासने पुरात्।
ललाटे चाभिशस्ताङ्कः प्रमाणं गर्दभैव च॥

कायस्थ कौन है?

कल्हण की राजतरंगिणी वाले कायस्थ के बारे में भी वैसा ही भ्रम हो सकता है। कायस्थ की व्याख्या करते हुए पद्म पुराण ने लिखा है :—

ब्रह्म कार्मो भवेत यस्मात्, कायस्थां वर्ण उच्यते।
नाना गोत्रश्च तद् वैश्याः कायस्थ भवि सन्ति वै।

(सृष्टि खण्ड)

किन्तु, मैं इस वर्ण वाले पचड़े में पड़ना नहीं चाहता। "प्राचीन भारत की शासन प्रणाली—(न्याय, अर्थ, दण्ड तथा शासन व्यवस्था)" नामक अपनी पुस्तक में, जो शीघ्र प्रकाशित होने जा रही है, मैंने "कायस्थ" पर भी प्रकाश डाला है।

प्राचीन भारत में आज के २००० वर्ष पहले सरकारी रेकर्ड रखने का, सेक्रेटेरियट यानी सचिवालय में सरकारी कागज पत्रों के रखने का बड़ा अच्छा नियम था। एक विभाग था "गणना विभाग"। इस विभाग के जिम्मे था लोगों की आमदनी, जनसंख्या, व्यापारिक स्थिति, सभी चीजों का पता लगाकर पूरा हिसाब रखना। ऐसा कार्यालय हर नगर में तथा केन्द्र में, राजधानी में भी था। इस विभाग के अध्यक्ष को ईसा से ४०० वर्ष पूर्व "**पादात**" कहते थे।

केन्द्रिय सचिवालय में हर विषय से सम्बन्धित कागज रखे जाते थे। कौटिल्य इस **विभाग** या **मुहकमे** को **अधिकरण** कहते थे। रजिस्टर को **निबन्ध पुस्तक** तथा निबन्ध विभाग के प्रधान को **अक्षपटल** कहते थे। इस विभाग के द्वारा हरेक दानपत्र, पट्टा, बंधक आदि की रजिस्ट्री भी होती थी। कौटिल्य का मत है कि 'आदेश ही शासन है"—"शासने शासनमित्याचक्षते।" (कौ० २—अ० १०)। शुक्रनीति में भी यही लिखा है कि असली शासक लिखित आदेश है। अतएव इन आदेशों को सम्भाल कर रखने वाला बड़ा जिम्मेदार अधिकारी होगा। इस अधिकारी को गुप्तकाल में "लेखक" भी कहते थे। मंत्री के नीचे इसीका पद था।

बाद में चलकर इस अधिकारी को "**कायस्थ**" कहने लगे—जो निबंध की काया में स्थित हो। पुराने युग की परिपाटी के अनुसार यह पद पैतृक होने लगा। इस पद के लोग बड़े राजभक्त होते थे। राजा इन्हीं के द्वारा राज्य की स्थिति की जानकारी प्राप्त कर नये कर भी लगाता था। अतएव प्रत्येक नये कर का पाप, श्राप, निन्दा इसी **कायस्थ** को सहनी पड़ती थी। प्रजा इससे बहुत घबड़ाती थी।

पुरकायस्थ

ग्राम में भी लेखक "कायस्थ" होता था। गांव का रेकर्ड भी इसके पास रहता था। पटवारी वर्ग इसी से आया होगा। पुर (नगर) में भी यही अधिकारी होता था। बंगाल के पाल नरेशों ने **कायस्थों** की दो श्रेणी कर दीं। पुर के कायस्थ को **पुरकायस्थ** कहते थे। आज भी केवल बंगाल में ही पुरकायस्थ जाति मिलती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विष्णुस्मृति में लिखा है (७-३) :—

"राजाधिकरणो तन्नियुक्तं कायस्थकृतं, तदध्यक्ष कर चिह्नित-राजसाक्षिक....."

स्पष्ट है कि दस्तावेजों की रजिस्ट्री यही कायस्थ करता था। यह अधिकारी अपने पद का दुरुपयोग भी करता होगा। घूस भी लेता होगा। इसीलिये वीरमित्रोदय में लिखा है :—

"राजाधिकृतैः लेखकैः कायस्थः पीड्यमानाः प्रजारक्षेत्।"

राजा ने इसे अधिकार देकर सब काम लिखा पढ़ी का दे दिया। अतएव यह व्यक्ति जनता को पीड़ा भी दे सकता है। इसीलिये याज्ञवल्क्य ने राजा को चेतावनी दी है कि चोर, डाकू आदि से प्रजा की रक्षा करे और खास तौर पर कायस्थों से :—

चाट तस्कर दुर्वृत्त महासाहसिकादिभिः।
पीड्य माना प्रजा रक्षो कायस्थैश्च विशेषतः॥

—याज्ञ० आचाराध्याय, ३६६

"चाट" का अर्थ होता है विश्वासपात्र बनकर दूसरे का धन हरण करने वाले। मिताक्षरा ने लिखा है :—

"कायस्थः लेखका गणकाश्च तैः पीड्यमाना विशेषतो रक्षेत। तेषां राजवल्लभतया ति मायावित्वाच्च दुर्निवारत्वात्।"

इससे स्पष्ट है कि कायस्थ प्रधान रेकर्डकीपर (निबंधइंचार्ज) तथा आजकल जिसे "इंस्पेक्टर जेनरल आव रेकर्डस" कहते है, वह पद था तथा मुख्य गणक (स्टेट्स-टिसियन) भी था। अतएव राज्य में जो भी अनुशासन होते थे, इसकी सलाह से होते थे। इसीलिये सही या गलत, हरेक दोष का, हरेक राजकीय भूल का या राजा के आदेश का दोष इसके सर पड़ता था। राजा की वफ़ादारी का फल भी इसे भोगना पड़ता था।

इसीलिये काश्मीर के अत्याचारी राजा शंकरवर्मन ने जब बहुत अधिक कर जनता पर लगा दिया तो प्रजा का सारा क्रोध कायस्थ पर उबल पड़ा और कल्हण ने लिखा कि कायस्थ की प्रेरणा से राजा ने इतना कर लगाया कि प्रजा को जीने के लिये केवल सांस बच गयी :—

कायस्थ प्रेरणादतैदेवेनाथ प्रवर्त्तितैः।
आमासैः श्वासशेषैव प्राणवृत्तिः शरीरिणाम्॥

(रजि० ६—३४४)

कूटकृत

प्राचीन भारत में कायस्थ के कई नाम थे—कामरूपाः, कूटकृत, पंजीकरः, तथा करणः। अतएव कायस्थ एक सर्वोच्च सरकारी पद था जिसे राज्य का मुख्य परामर्शदाता समझा जाता था। अतएव उसे बहुत गाली भी सुननी पड़ती थी। यह है संक्षिप्त इतिहास इस "कायस्थ" नामक जन्तु का, जिसके विषय में कुछ जानकारी करा दी गयी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संगीत-सम्राट् अलाउद्दीन खाँ

श्री शम्सुद्दीन

"सर्वोत्तम कलाकार वह है जो अपने जीवन को ही कला का विषय बना दे।"

सृष्टिकर्त्ता ने अपने सर्वोत्तम सुन्दर क्षणों में कलाकार का निर्माण किया होगा, इसीलिये वह विधाता की सर्वोत्कृष्ट अनुपम कलाकृति है। कलाकार किसी देश एवं काल की परिधि में बँधा नहीं रहता। वह सर्वदेशीय एवं सार्वजनीन होता है। कला की साधना करते हुए वह ऐसे भावना-धर्म का उत्कर्ष करता है कि उसके आगे जाति, धर्म, सम्प्रदाय—सभी के बंधन टूट जाते हैं। उसकी कला में वह शक्ति होती है जो न केवल मानव-हृदय की तंत्री को झंकृत कर देती है वरन पशु-पक्षी एवं जड़-चेतन को भी प्रभावित किये बगैर नहीं रहती।

संगीत कला के साधक बाबा अलाउद्दीन खाँ भी इसी तरह के महान् कलाकार थे। आरम्भ से ही लगी संगीत की लगन ने उन्हें कुछ ऐसा अनुप्राणित एवं अभिप्रेरित किया कि माता-पिता एवं परिवार का मोह छोड़ छोटी अवस्था में ही वे घर से निकल पड़े। रास्ते में उन्हें तरह-तरह की कठिनाइयों तथा यातनाओं का सामना करना पड़ा किन्तु उनकी परवाह किये बगैर विषम परिस्थितियों से जूझते हुए वे आगे बढ़ते ही गये। अंत में उनकी साधना सफल हुई और वे संगीताचार्य के महान् पद से विभूषित हुए। इस बीच जीवन संघर्ष की ज्वाला में जलकर उनका व्यक्तित्व कुछ ऐसा निखरा कि संकुचितता की सारी सीमायें लाँघकर वह सर्वजन हिताय एवं सर्वजन सुखाय हो गया। उनका जीवन स्वयं कला का विषय बन गया और वे महानता के चरम शिखर पर आसीन हो गये।

इस विलक्षण प्रतिभा का जन्म ८ अक्टूबर १८६२ को शिवपुर, त्रिपुरा में हुआ था। इनके पिता का नाम उस्ताद साधुखाँ तथा माता का हरसुन्दरी देवी था। अलाउद्दीन खाँ का बचपन का नाम आलम था। साधुखाँ यद्यपि मामूली कृषक का काम करते थे किन्तु उन्हें भी बचपन से ही संगीत एवं वाद्यों का शौक था। उनने प्रसिद्ध बीनकार उस्ताद कासिम अली खाँ से सितार-वादन सीखा था तथा खेत-खलिहानों में काम करते हुए जब भी उन्हें अवकाश मिलता, वे संगीत का अभ्यास किया करते। इस प्रकार आलम को संगीत का शौक न केवल विरासत में मिला, बल्कि उसी वातावरण में वे पले भी। इनकी माता हरसुन्दरी देवी बड़ी ही सती, साध्वी एवं धार्मिक प्रवृत्ति की महिला थीं। उनकी इस स्नेहमयी पावन छाया का प्रभाव आलम पर बड़ा गहरा पड़ा। इस प्रकार संगीत एवं भक्ति के मिश्रित संस्कारों में पला आलम का अबोध मन आरम्भ से ही कल्पना लोक में विचरण करने लगा।

शैशव पार कर बाल्यावस्था में प्रवेश करते ही साधुखाँ ने आलम को मक़तब (स्कूल) में भरती कर दिया, किन्तु उनका मन वहाँ कब लगनेवाला था? उनका शरीर कक्षा में होता लेकिन मन संगीत जगत् में घूमता रहता। उनका हृदय कभी पिता के द्वारा बजाये जानेवाले सितार के स्वरों में डूबा रहता तो कभी बड़े भाई की तबले की ठनक में। कक्षा का अनुशासन से बँधा जीवन आलम को जरा भी न भाता। उनका मन-पंछी तो संगीत की स्वरलहरी के साथ उन्मुक्त आकाश में विचरण के लिए छटपटाता रहता। अंत में वे स्कूल से भागने लगे। बाल-सुलभ खेल-कूद, भोजन एवं वस्त्र भी उन्हें आकर्षित न करते और वे घर से भी अक्सर भाग जाते। कई बार उनकी ढूँढ़ होती और वे मंदिर की सीढ़ियों पर बैठे कीर्तन सुनते हुए पाये जाते।

बालक आलम का मन पढ़ाई में न लगता देख पिता का मन चिन्तित होने लगा। कई बार उन्हें सजा भी दी गयी किन्तु उसका भी कोई परिणाम न निकला। अंत में तंग आकर उनने उसे बहिन के पास भेज दिया। वहाँ भी उनमें कोई सुधार नहीं हुआ तथा वहाँसे भी घर छोड़कर भागने लगे। अखिर माता-पिता ने यह सोचकर कि विवाह का बंधन सम्भवतः उन्हें घर की बेड़ियों में जकड़ दे, एक अत्यंत सुन्दर बालिका से विवाह कर दिया, किन्तु रात्रि के समय जब घर में नव वधू सहित सभी मेहमान निद्रा में लीन थे वे घर से भाग खड़े हुए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहींसे संगीत-सम्राट् अलाउद्दीन खाँ के वास्तविक जीवन का आरम्भ हुआ। घर से भागकर पहले वे ढाका गये। फिर इधर-उधर भटकते हुए अंत में कलकत्ता पहुँचे। पास में कुछ था नहीं और उम्र भी मुश्किल से ८-१० बरस की रही होगी, कई दिनों तक उन्हें भूखे-प्यासे दर-दर की ठोकरें खानी पड़ीं। एक बार थककर वे दक्षिणेश्वर के मंदिर की सीढ़ियों पर बैठे थे कि वहाँ से मंदिर के पुजारी की पत्नी निकली। उनने उसे मंदिर का प्रसाद दिया जिसे पाकर बालक आलम अत्यंत आह्लादित हो उठा। वह मंदिर के पुजारी एवं उनकी पत्नी से बड़ा प्रभावित हुआ। बाद में यही पुजारी रामकृष्ण परमहंस एवं उनकी पत्नी माँ शारदा हुई।

बालक आलम भूख-प्यास सहते हुए कई दिनों तक कलकत्ते की गलियों में भटकता रहा। जहाँ कहीं संगीत एवं वाद्यों का कार्यक्रम रहता, वह दूर मंत्रमुग्ध-सा बैठा सुनता रहता। वह हर एक संगीतज्ञ के पास जाकर याचना करता किन्तु कोई उसका गुरु (उस्ताद) बनने को तैयार न होता। इस बीच उसे तरह-तरह की मुसीबतों और कठिनाइयों का सामना करना पड़ा किन्तु वे सब मिलकर भी उसके दृढ़ निश्चय को न डिगा सकीं। अंत में माँ शारदा की कृपा हुई और बालक आलम को प्रसिद्ध संगीतज्ञ नीलू गोपाल के रूप में गुरु मिल ही गया। बालक में प्रतिभा तो थी ही, अवसर पाकर वह चमक उठी। पहले उसने स्वर संगीत सीखा। बाद में नंद बाबू से तबला एवं मृदंग सीखा। हाबूदत्त से, जो स्वामी विवेकानन्द के बड़े भाई थे, वायलिन सीखा। कुछ दिनों के लिए एक नाटक कम्पनी में काम करते हुए उनने शहनाई व अन्य वाद्य भी सीखे। अपनी संगीत-साधना के इस काल में उनने कई बार बहुत ही थोड़े वेतन पर काम किया, कई बार अपने गुरुओं की सेवा करते हुए वाद्य संगीत सीखा, अनेक बार लोगों की तरह-तरह की झिड़कियाँ सहीं, किन्तु लगन के पक्के आलम अपने साधना-पथपर अडिग चलते ही गये, बढ़ते ही गये।

उस्ताद अहमद अली खाँ से सरोद वादन सीखने के बाद उनकी इसमें इतनी लगन बढ़ी कि इसका आगे ज्ञान प्राप्त करने के लिए वे विकल हो उठे। उन दिनों रामपुर के प्रसिद्ध सरोद वादक वज़ीर खाँ का बड़ा नाम था। वे रामपुर के नवाब के दरबार में प्रसिद्ध संगीतज्ञ थे। आलम किसी तरह नवाब के पास पहुँचे और उनसे अपनी इच्छा जाहिर की। नवाब ने पहले उनकी खूब परीक्षा ली किन्तु जब प्रत्येक बार वे कामयाब रहे तो नवाब को उनकी सिफारिश करनी पड़ी और वे उस्ताद वज़ीर खाँ के शिष्य बन गये। कुछ ही समय के भीतर उनने सरोद वादन में अपूर्व सफलता हासिल कर ली। यहींसे 'आलम' प्रसिद्ध संगीतज्ञ 'अलाउद्दीन खाँ' बनकर निकले।

इसके बाद तो अलाउद्दीन खाँ की संगीत-सुरभि कुछ ऐसी फैली कि जगह-जगह से उनके लिए आमंत्रण आने लगे। कलकत्ता में दिये गये एक कार्यक्रम में लोग उनसे इतने प्रभावित हुए कि उन्हें 'बेजोड़ सरोद वादक' कहा गया। उनका यश दूर-दूर फैलने लगा। इसी समय मैहर के महाराजा बृजनाथ सिंह के आमंत्रण पर अलाउद्दीन खाँ रामपुर से मैहर आ गये। महाराजा ने न केवल दरबार में उन्हें सम्मान दिया वरन उनका शिष्यत्व भी स्वीकार किया। अलाउद्दीन खाँ भी मैहर केवल इसलिए नहीं आये कि यहाँ उन्हें जीविका कमाने का अवसर मिला, वरन इसलिए कि महाराजा स्वयं संगीत प्रेमी थे और उनके संरक्षण में उनकी संगीत-वल्लरी को पुष्पित-पल्लवित होने का सुअवसर मिला। अलाउद्दीन की संगीत-प्रतिभा एवं उनके मृदु, उदार और सौम्य स्वभाव से महाराजा इतने प्रभावित हुए कि उनने अलाउद्दीन से आजीवन मैहर में रहने का वचन ले लिया। अलाउद्दीन ने भी अपना वचन निबाहा और अंत समय तक वे मैहर में ही रहे।

अलाउद्दीन खाँ को संगीत से अनन्य प्रेम था। उनने अपना सारा जीवन इसकी साधना में व्यतीत कर दिया। मन के धनी एवं दिल के उदार अलाउद्दीन खाँ ने अपनी ज्ञान-राशि का उन्मुक्त हृदय से दान किया और दूर-दूर से संगीत-प्रेमी आकर उनके शिष्य बनने लगे। आज भारत के कोने-कोने में फैले उनके शिष्यों की संख्या हजार से कम न होगी। अपने संगीत-कोष को वे जितना लुटाते गये, वह उतना ही बढ़ता गया। वास्तव में अलाउद्दीन की प्रतिभा अद्वितीय थी। उनने न केवल अनेक नये राग-रागनियों का निर्माण किया वरन 'सुर सितार', 'चन्द्र-सारंग', 'नल-तरंग' आदि नवीन वाद्य यंत्रों का भी आविष्कार किया। उनकी बहुरंगी प्रतिभा का विस्तार केवल भारत में ही नहीं बल्कि विदेशों में भी हुआ। उस्ताद अलाउद्दीन खाँ ने इंग्लैण्ड, फ्रांस, जर्मनी, अमेरिका आदि अनेक देशों का भ्रमण किया तथा अपनी कला की ज्योति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का प्रसार एवं प्रचार किया। उनके पुत्र अली अकबर खाँ, पुत्री अन्नपूर्णा देवी एवं दामाद रविशंकर आज भी अमेरिका में उस ज्योति को प्रज्ज्वलित कर रहे हैं।

अलाउद्दीन खाँ महान् संगीतज्ञ ही नहीं वरन जनता के सेवक, समाज-सुधारक एव महामानव थे। उनने कई गरीब एवं अनाथ बच्चों को पालकर उन्हें न केवल रोज़ी-रोटी से लगाया बल्कि संगीत तथा वाद्यों का ज्ञान देकर उनसे एक बेंड पार्टी का निर्माण किया। मैहर में आज भी यह बेंड पार्टी उनके यशोगान को गा रही है। अहं तो उन्हें छू भी नहीं गया था। 'पद्मभूषण', 'संगीताचार्य', 'संगीतनायक', 'आफताबे-हिन्द', आदि अनेक उपाधियों से विभूषित होने के बाद भी उनमें जरा भी अभिमान की भावना नहीं आई। वे अत्यन्त मिष्टभाषी तथा खुशमिजाज़ थे। स्नेह एवं करुणा के तो मानों वे वट-वृक्ष थे इसीलिए पशु-पक्षी भी उनकी स्नेह छाया में विश्राम पाते थे। अपने निवासस्थान 'मदीना भवन' में अलाउद्दीन खाँ जिस समय सरोद पर धुनों में मस्त रहते, उस समय कोबरा सर्प उनके सामने झूमते रहते, किन्तु वे उन्हें कभी नुकसान न पहुँचाते। उनका आहार-विहार भी बड़ा सीधा एव सात्विक था। उनकी सादगी का अंदाज केवल इस एक बात से लगाया जा सकता है कि उनके निवासस्थान मदीना भवन में आज तक बिजली की रोशनी नहीं है।

अलाउद्दीन खाँ ईश्वरीय शक्ति में विश्वास रखनेवाले महान् धार्मिक व्यक्ति थे, किन्तु उनका धर्म किसी रूढ़ि अथवा परम्परा से बँधा हुआ नहीं था। इसीलिए एक ओर जहाँ उन्होंने मक्के मदीना जाकर हज किया वहीं दूसरी ओर उनने चारों धामों की तीर्थ-यात्रा भी की। वे मसजिद में नमाज भी पढ़ते थे तथा मंदिरों में देवी-देवताओं की उपासना भी करते थे। मैहर की माँ शारदा देवी के वे अनन्य भक्त थे तथा उनके दर्शनों हेतु नित्य प्रति ५६० सीढ़ियाँ चढ़ने में भी वे थकते नहीं थे। बीमारी के अंतिम कुछ दिनों में ही उनका यह नियम टूटा था। इसी प्रकार त्रिपुरा के अपने गृह नगर में जब उनने एक मसजिद का निर्माण किया तो घर-घर जाकर धन इकट्ठा किया तथा तपती धूप में मजदूरों के साथ खुद श्रम करके मसजिद खड़ी की। इस प्रकार अलाउद्दीन खाँ धर्म-निरपेक्षता के जीते-जागते उदाहरण थे।

अलाउद्दीन खाँ साम्प्रदायिक एकता के भी ज्वलंत प्रतीक थे। उनने अपनी लड़की का नाम अन्नपूर्णा देवी रखा तथा उदयशंकर के छोटे भाई रविशंकर से उसका विवाह किया। उनके शिष्य हिन्दू भी थे और मुसलमान भी। उन्हें मंदिर और मसजिदों में एक ही ईश्वरीय शक्ति का आभास होता था। एक ओर जहाँ वे ईद का त्योहार मनाते वहीं दूसरी और हिन्दुओं के त्यौहार मनाने से भी न चूकते। उनके सिरहाने कुरान शरीफ एवं गीता तथा रामायण साथ-साथ रखे रहते थे। मदीना भवन के उनके कमरे में हिन्दू देवी-देवताओं के चित्र लगे हुए हैं। माँ शारदा के तो वे इतने भक्त थे कि उन्हें स्मरण किये बगैर कोई कार्यक्रम शुरू न करते। अपनी संगीत की सारी विद्या को वे सरस्वती का वरदान कहा करते थे। इस प्रकार अलाउद्दीन खाँ धार्मिक भेद भाव से बहुत दूर थे।

संगीत कला का अनन्य साधक एवं मानवता में देवत्व का प्रतीक यह कलाकार आज हमारे बीच नहीं रहा। एक सौ दस बरस की लम्बी उम्र तक अपने जीवन को कला का विषय बनाते हुए ६ सितम्बर १९७२ को इसने महा-प्रयाण किया और इसके साथ ही संगीत का एक युग समाप्त हो गया। अपने असंख्य पुत्रवत् शिष्यों को रोता-बिलखता छोड़ वे चिरनिद्रा में सुप्त हो गये। एक महान् ज्योतिपुंज अदृश्य हो गया, किन्तु उनकी जलाई संगीत-कला की ज्योति अब भी जल रही है तथा युग-युग तक जलती रहेगी। अपने अनन्य शिष्यों के रूप में निर्मित उनके प्रकाश-स्तम्भ आनेवाली पीढ़ियों को अनंतकाल तक पथ-प्रदर्शन करते रहेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आधुनिक भाषा-विज्ञान का जनक--एक जर्मन-संस्कृतज्ञ

श्री ओम्प्रकाश पाण्डेय

घटना १८वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के अन्तिम वर्षों की है। एक तरुण अंग्रेज सिपाही हिन्दुस्तान से अपने घर विलायत जा रहा था इसका नाम था एलेक्जेण्डर हैमिल्टन। मार्ग में उसे बंदी बना लिया गया। फलतः युद्ध-बंदी के रूप में, भारत में रुक जाने के लिए उसे विवश होना पड़ा। दूसरे सिपाहियों की तरह हैमिल्टन ने अपना समय सस्ते मजाक और गपशप में बेकार न बिताकर संस्कृत सीखने में लगाया। कैद से मुक्त होने पर वह फ्रांस चला गया। एक प्राच्यविद् के रूप में उसने स्वयं तो कोई उल्लेखनीय शोध-कार्य नहीं किया; किन्तु पेरिस में सौभाग्य-वश हैमिल्टन के सम्पर्क में एक तरुण जर्मन आ गया। इसका नाम था फ्रेडरिख श्लेगल। लौटने पर श्लेगल ने जरमनी में संस्कृत पढ़ने-पढ़ाने का अभियान-सा छेड़ दिया।

सुविख्यात भाषाशास्त्री जैक्सन ने अपनी 'फिलॉलाजि, शीर्षक पुस्तक में कहा है कि 'यूरोप में तुलनात्मक भाषा-विज्ञान तब तक अज्ञात रहा, जब तक कि यूरोपीय विद्वान् संस्कृत से परिचित न हो गये। तुलनात्मक भाषा-विज्ञान का जन्म ही वास्तव में उस दिन हुआ, जब पश्चिमी जगत् के सामने संस्कृत भाषा का आलोक विकीर्ण हुआ।' तभी विद्वानों ने यह अनुभव किया कि यूरोप की सभी महत्त्वपूर्ण भाषायें तथा ईरान और भारत की भाषायें वास्तव में एक ही परिवार की हैं। उसी दिन एक नये शास्त्र का जन्म हुआ, जिसे आज हम तुलनात्मक भाषा-शास्त्र (कम्परेटिव फिलॉलॉजि) कहते हैं।

तुलनात्मक भाषाशास्त्र के जनक के रूप में हमारे सामने दो नाम हैं--फ्रेडरिख श्लीगेल और फ्रेन्ज बॉप।

प्रसिद्ध भारतीय भाषावैज्ञानिक डॉ० तारापुरवाला ने भाषाओं के क्षेत्र में तुलनात्मक अध्ययन के सूत्रपात करने का श्रेय श्लेगल को दिया है। अपनी पुस्तक 'ऑन दि लैंग्वेज एण्ड दि विजडम ऑव दि इण्डियन्स', जिसका प्रकाशन सन् १८०८ ई० में हुआ, में श्लेगल ने, सर्वप्रथम 'तुलनात्मक व्याकरण' शब्द का प्रयोग करते हुए कहा--'तुलनात्मक व्याकरण भाषाओं के वंशवृक्ष (Genealogy) के विषय में नयी सूचनायें वैसे ही दे सकता है, जैसे तुलनात्मक एनॉटॅमी प्राकृतिक इतिहास के विषय में।

फ्रेडरिख श्लेगल के भाई एडल्फ श्लेगल भी अच्छे संस्कृतज्ञ थे। इन्हें डॉ० तारापुरवाला ने यूरोप में 'संस्कृत भाषाशास्त्र का संस्थापक' कहा है।

तुलनात्मक व्याकरण और भाषाशास्त्र के क्षेत्र में फ्रेडरिख श्लेगल तो केवल नामकरण और दिशा-निर्देश करके ही रह गये। उनके काम को आगे बढ़ाया फ्रेन्ज बॉप ने।

बॉप का जन्म जर्मनी के मैन्त्स नामक नगर में १४ सितम्बर सन् १८७१ को हुआ। प्राच्य भाषाओं के प्रति उनके हृदय में प्रेम विण्डिशमैन नामक एक विद्वान् के सम्पर्क से जगा। उन्हीं से उन्होंने ये भाषायें पढ़ीं भी। बाद में बॉप पेरिस चले आये। वहाँ वे सिल्वेस्टर द सैसी नामक विद्वान् के शिष्य बने।

सन १८१६ में बॉप ने ग्रीक, लैटिन, फारसी और जर्मनिक भाषाओं के साथ तुलना करते हुए संस्कृत के धातु-रूपों का अध्ययन प्रस्तुत किया। इस समय बॉप की अवस्था केवल २५ वर्ष थी। इसमें उन्होंने यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया कि मूलतः सभी भाषाओं का उद्गम एक है।

सन् १८२० ई० में बॉप की नियुक्ति बर्लिन-विश्व विद्यालय में प्राच्य भाषाओं के प्राध्यापक-पद पर हो गयी। इस पद पर वे जीवन भर रहे। लन्दन जाकर हस्तलिखित संस्कृत-ग्रन्थों का निरीक्षण-परीक्षण भी उन्होंने किया था। सन् १८३३ में बॉप ने तुलनात्मक भाषाविज्ञान की दृष्टि से एक और बृहत्तर अनुष्ठान सम्पन्न किया। यह था--संस्कृत, जेंद, ग्रीक, लैटिन, लिथुआनियन, गॉथिक और जर्मन भाषाओं के तुलनात्मक व्याकरण की रचना। उक्त विशाल ग्रन्थ छह बड़ी-बड़ी जिल्दों में है, जो सन् १८३३ से १८५२ के मध्य छपा। सन् १८४१ में उन्होंने भारतीय पॉलीनेशियायी भाषाओं के साथ भारोपीय भाषाओं को जोड़ने की दुर्भाग्यपूर्ण चेष्टा की।

केल्टिक, काकेशियन, पुरानी प्रशियन और अल्बानियन भाषाओं के व्याकरणों और कोशों के सम्बन्ध में भी उन्होंने अनेक शोध-लेख लिखे हैं।

सन् १८५४ में उन्होंने अपने तुलनात्मक व्याकरण में संस्कृत और ग्रीक भाषाओं की स्वर-पद्धति के विषय में परिशिष्ट जोड़ा। २३ अक्टूबर १८६७ को इस महान् संस्कृतज्ञ का निधन हो गया।

प्रो० मैक्समूलर ने हिन्दुस्तान में आई० सी० एस० प्रशासक बनकर आनेवाले कुछ अंगरेज-युवकों से एक बार कहा था--"भारतीय विद्याओं को सीखने से, भारतीय साहित्य के अनुशीलन से व्यक्ति के मन में जो तद्विषयक प्रशंसा एवं आत्म-बोध की भावना का उदय होता है, वह उसे यश-कामना से परे कर देती है। उसके चित्त से यश की कामना ही मिट जाती है। उसके अध्ययन का एकमात्र लक्ष्य रह जाता है ज्ञान की प्राप्ति एवं ज्ञान की साधना।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मयूर

मूल लेखक—श्री जयन्त प्रेमशंकर ठाकर

अनुवादक—श्री ओमप्रकाश अग्रवाल

मयूर भारत का राष्ट्रीय पक्षी है। भारतीय संस्कृति और जीवन में उसका स्थान अप्रतिम है।

'मयूर' शब्द 'मी' (=वध करना) धातु से व्युत्पन्न है और उसका अर्थ है : मारनेवाला, वध करनेवाला (मीनाते-रूरन। मयूरः)। मयूर को सर्पों का नित्य शत्रु माना जाता है (मयूरनकुलपृषतोत्सर्गः सर्पान्यभक्षयति)। उसका एक नाम 'भुजङ्गभुक्' (=सर्पों को खाने वाला) भी है। सर्पों को आततायी कहा जा सकता है, क्योंकि ऐसी मान्यता है कि वे निर्दोष को भी काट लेते हैं। अतः आततायियों का वध करनेवाले मयूर का अहिंसा के उपासक और केवल आत्म-रक्षा के लिए आततायियों के विरुद्ध शस्त्र उठानेवाले भारत जैसे शान्तिप्रिय देश का राष्ट्रीय पक्षी होना उचित ही है। शास्त्रों ने शान्तिप्रिय प्रजा की रक्षा के लिए आततायियों के वध का आदेश दिया है। आततायियों का घोर शत्रु होने के कारण उसे, उचित ही, पहले देवसेनापति स्कन्द या कार्तिकेय का प्रतीक, और फिर बाद में, उनका विशेष वाहन माना गया है। कार्तिकेय का 'शिखिवाहन' रूप देवताओं के शत्रुओं का संहारक बताया गया है। भोजदेव ने अपने 'समरांगणसूत्रधार' में कहा है कि अपने शत्रुओं को परास्त करने की इच्छावालों (परजयैषिभिः) को नगर के मन्दिरों में सदैव मयूर सहित स्कन्द की मूर्ति उत्कीर्ण करानी चाहिए। युद्ध की अधिष्ठात्री देवी दुर्गा के नौ रूपों में से उनके 'कौमारी' रूप को भी 'शिखिवाहना' कहा गया है।

इस सबसे सूचित होता है कि मयूर असत्य और अन्याय के विरुद्ध सत्य और न्याय की विजय का प्रतीक है और हमारे राष्ट्रीय आदर्श-वाक्य 'सत्यमेव जयते' के अनुरूप है।

'मयूर' के अन्य नाम भी उसकी अनेक विशेषताओं पर प्रकाश डालते हैं।

'नीलकण्ठ' शब्द सूचित करता है कि मोर जहरीले साँपों को खाने का इतना शौकीन है कि भयंकर विष के कारण उसकी गर्दन नीली हो गई है। 'नीलकण्ठ' के नाम से प्रसिद्ध भगवान् शंकर का गला भी प्रसिद्ध हालाहल विष को, संसार को उसके घातक प्रभाव से बचाने के लिए, पी जाने के कारण गहरा नीला हो गया था। इस प्रकार यह नाम मयूर के परोपकारी स्वभाव की ओर संकेत करता है और इसे राष्ट्र के परोपकारी तथा दूसरों के द्वारा दिये गये दुष्कृत्यों के प्रकटीकरण में संयम बरतने के स्वभाव का प्रतीक माना जा सकता है।

'शिखावल' और 'शिखी' नाम हमारा ध्यान उसकी कलगी की ओर आकर्षित करते हैं जो उसके सौन्दर्य में चार चाँद लगा देती है। ये शब्द उसका वैभव और श्रेष्ठता प्रकट करते हैं।

'बर्ही' और 'बर्हिणः' (=पंखयुक्त, पंखवाला) शब्द उसकी शोभा और मोहकता के प्रतीक उसके पंखों का महत्त्व प्रदर्शित करते हैं, और सम्भवतः यही उसकी सर्व-प्रमुख विशेषता है।

अपने रंगबिरंगे पंखों के कारण मयूर को 'चित्रपिच्छकः' कहा जाता है और मुख्यतः इन्हींके कारण उसे संसार का सुन्दरतम पक्षी माना जाता है। मयूर की यह विशेषता इस देश की नानाविध जनता की सूचक है, जिसके विभिन्न भागों में कम से कम १४ भाषाएँ बोली जाती हैं और जिनकी जलवायु तथा रीतिरिवाजों में पर्याप्त अन्तर है।

इसी प्रकार 'कलापी' शब्द से मयूरपुच्छ में बाहर को फैले हुए और गोलाकृति में कलात्मक रूप से पंक्तिबद्ध पंखों का बड़ी संख्या में होना ध्वनित होता है। इस शब्द को भी राष्ट्र के नानाविध तत्त्वों के सामंजस्यपूर्ण संयोग की—विभिन्नता में एकता का प्रतीक माना जा सकता है।

'शिखण्डी' और 'प्रचलाकी' (=चंचल पुच्छवाला) नाम मयूरपुच्छ की प्रमुखता और उसकी क्रियाशीलता की ओर संकेत करते हैं और पंखों की यही क्रियाशीलता मोर के आकर्षक सौन्दर्य का कारण है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'चन्द्रकी' (=पंछ में आँखों वाला) शब्द पंखों पर बनी चमकदार और वर्तुलाकार रंगबिरंगी चित्तियों के महत्त्व की ओर संकेत करता है। इसे राष्ट्र की सजगता और सतर्कता की महती आवश्यकता का सूचक माना जा सकता है।

कमर रंगबिरंगी होने के कारण मोर को 'चित्रमेखल' कहा जाता है।

'सितापांग' और 'शुक्लापांग' (= जिसकी आँखों के बाहरी कोर सफेद हैं) शब्द दिव्य प्राणियों की सी पवित्रता की ओर संकेत करते हैं। इससे इस देश की पवित्रता ध्वनित होती है जिसने सन्तों की एक अविच्छिन्न परंपरा को जन्म दिया है।

मयूर का 'केकी' नाम उसके मधुर स्वर (केका) की विशिष्टता की ओर संकेत करता है ('मयूर' शब्द की एक अन्य व्युत्पत्ति इस प्रकार भी है—मयूरिव रौति शब्दायते इति मयूरः। मयु=किन्नर और मृग)। मयूर का यह स्वर 'स्वरसप्तक' में का प्रथम स्वर 'षड्ज' माना जाता है। (षड्जं वदति मयूरो)। मयूर को वीणावादन करती हुई ज्ञान की अधिष्ठात्री सरस्वती के सामने, वीणा के प्रथम तार को ठीक करने में उनकी सहायता करते हुए, अंकित किया जाता है। जैसे ही वे वीणावादन प्रारम्भ करती हैं मयूर षड्ज के तारस्वर में केकाध्वनि करता हुआ अपने पंखसमूह को बाहर फैलाकर उनके सामने नाचने लगता है। उसका वर्णन सरस्वती के वाहन के रूप में भी—विशेषकर जैन लेखकों द्वारा—किया गया है।

मयूर के इस केकी नाम को ललित कलाओं के आलोचनात्मक रसास्वादन और उनकी अभिवृद्धि करने की राष्ट्रीय प्रकृति का तथा इस प्रकार नादब्रह्म में पूर्णतः लीन होकर मोक्ष की प्राप्ति की अभिलाषा का प्रतीक माना जा सकता है।

मेघों को देखकर मयूर का आनन्दित होना उसके मेघानन्दी नाम से सूचित होता है और मेघगर्जन सुनकर प्रसन्नतापूर्वक नाचने की आदत के कारण उसे 'मेघनादानुलासी' और 'मेघनादानुलासक' कहा जाता है।

नाट्यशास्त्र में वर्णित १०८ नृत्यमुद्राओं में से ८०वीं मुद्रा का नाम मयूर की विशिष्ट नृत्तमुद्रा के आधार पर 'मयूरललित' (=मयूर की तरह चित्ताकर्षक या उसके जैसी क्रीड़ा से युक्त) रखा गया है। (अभिनव भारती, खंड १)।

अपने मनोहारी नृत्य द्वारा मेघों का स्वागत करने का मयूर का स्वभाव 'जीवन' (=जल; जीवन) प्रदान करनेवाले के प्रति राष्ट्र की कृतज्ञता का प्रतीक माना जा सकता है। भारत जैसे कृषि-प्रधान देश के लिए जीवन (=जल) की आवश्यकता स्पष्ट ही है; किन्तु यह उल्लेखनीय है कि मयूर चातक की तरह मेघ से जल की याचना नहीं करता, वह तो उसके गर्जनमात्र से सन्तुष्ट हो जाता है—

अहमस्मि नीलकण्ठस्तव खलु तुष्यामि शब्दमात्रेण।
नाहं जलधर भवतश्चातक इव जीवनं याचे॥

(सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृ० २२६, श्लोक १६९)

इसी प्रकार 'दवजी' (=गर्वपूर्ण) नाम इस बात की ओर संकेत करता है कि मयूर स्वयं गर्व का प्रतीक है; जैसा कि विलियम ब्लेक ने कहा है, 'मयूर का गर्व ईश्वर का गौरव है।'

मयूर को रंगबिरंगे पंखों की प्राप्ति के विषय में वाल्मीकि रामायण में एक रोचक कथा वर्णित है। उसके अनुसार एक बार मरुत्त नाम के एक राजा यज्ञ कर रहे थे। सभी देवता उनके यज्ञ में अपना-अपना भाग ग्रहण करने के लिए उपस्थित हुए। इसी समय अचानक राक्षसराज रावण वहाँ उपस्थित हुआ। उसके हाथों अपने पराभव के भय के कारण देवता तिर्यग्योनि में प्रविष्ट हो गये। इन्द्र मयूर हो गये, यम कौआ बने, कुबेर ने गिरगिट और वरुण ने हंस का रूप धारण किया। अन्य देवताओं ने भी इसी प्रकार अनेक अन्य पक्षियों के रूप धारण कर लिये।

रावण के वहाँ से चले जाने पर देवता पुनः अपने वास्तविक रूपों में आ गये। संकट के टल जाने से प्रसन्न होकर उन्होंने उन प्राणियों को वरदान दिये जिनके रूप उन्होंने धारण किये थे। इन्द्र ने नीले पंखों को धारण करनेवाले मयूर को वरदान दिया कि मेरे सहस्र नेत्र तुम्हारे पंखों में उपस्थित हो जायेंगे। बाद में उसके पंख चमकदार और रंगबिरंगे हो गये। इन्द्र ने उसे यह वरदान भी दिया कि अब उसे सर्पों से डरने की आवश्यकता नहीं है और वर्षा के आने पर वह हर्षित हुआ करेगा। (वाल्मीकि रामायण, ७।१८)।

इन्द्र वैदिक आर्यों का अत्यन्त सम्माननीय रण देवता ही नहीं, वह वर्षा का अधिष्ठाता भी है। अतः इन्द्र द्वारा जिसका रूप धारण किया गया और फलतः जिस पर उसने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशेष अनुग्रह किया वह मयूर राष्ट्र की सामरिक प्रवृत्ति और कल्याण का, तथा सामान्य रूप से मानव-कल्याण का प्रतीक है।

यूनानी पौराणिक कथाओं में भी इसी प्रकार की एक कथा है जिसमें बृहस्पति (जूपिटर) की ईर्ष्यालु, क्रोधी और प्रतिहिंसापरायण पत्नी जूनो दानव अर्गुस की १०० आँखें निकलवाकर उनसे अपने मोर की पूँछ अलंकृत करती है।

प्राचीन बौद्ध साहित्य में भी 'मोरजातक' नाम से एक कथा उपलब्ध होती है जिसके अनुसार बोधिसत्त्व एक बार स्वर्णमयूर के रूप में उत्पन्न हुए थे।

पारिभाषिक शब्दावली में मयूर को 'विष्किर गण' के 'विष्किर वंश' की मयूर प्रजाति (पवो) कहा जाता है। यह विशेष रूप से भारतीय पक्षी है। कहा जाता है कि अलेक्जेण्डर यहाँ से अपने साथ २०० मोर ले गया था, जो बाद में योरोप के अन्य भागों में भी फैल गये। यद्यपि अरिस्टोफेन तथा अन्य प्राचीन यूनानी लेखकों द्वारा मयूर का उल्लेख किया गया है, किन्तु संभवतः अलेक्जेण्डर की विजयों से पूर्व मयूर विषयक उनका ज्ञान नगण्य था। (एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका, खंड २१ पृ० २२)।

भारतीय मयूर 'पवो क्रिस्तातुस' के सिर पर २४ पंख होते हैं और पूँछ के सभी पंख एक आकार के नहीं होते, ऊपर वाले नीचे वालों से काफी छोटे होते हैं। यह जापानी मयूर 'पवो निग्रिपेन्निस' से भिन्न है जिसकी शिखा इसकी अपेक्षा लम्बी होती है, जिसके गालों, आँखों या कानों पर पंख नहीं होते तथा गर्दन और वक्षस्थल पर के पंख छोटे और गोल होते हैं। इस जाति के मयूर की पूँछ के पंख यद्यपि सामान्यतः भूरे होते हैं, किन्तु सूर्य की किरणों के सम्पर्क से हरे हो जाते हैं। उनकी चमकदार सफेद चोंच भारतीय मयूर की अपेक्षा लम्बी और पतली होती है। असम (भारत) बर्मा, जावा और मलय में पाये जानेवाले 'पवो मुतिकुस' की गर्दन और छाती सुनहरी हरी होती है। असम में सफेद मोर भी पाये जाते हैं।

बड़ौदा के ओरियण्टल इंस्टीट्यूट में संभवतः १३वीं शताब्दी ईसवी के किन्हीं हंसदेव की 'मृगपक्षिशास्त्रम' नाम से एक पांडुलिपि है, जिसमें मयूरों के छह प्रकार--मयूर, बर्ही, नीलकण्ठ, भुजङ्गभुक्, शिखावल और केकी बताये गये हैं। इनका विवरण इस प्रकार है--

मयूर--यह नीले वर्ण, कुछ उठे हुए शरीर, लम्बी गर्दन और लम्बी टाँगों वाला होता है। बड़े-बड़े पंखों से युक्त यह क्रेङ क्रेङ की आवाज करता हुआ शान के साथ इठलाकर चलना और सूर्यास्त के समय नाचना पसन्द करता है। यह अल्पभोजी, कामुक, शान्त, बहुत डरपोक, मेघगर्जन से हर्षित होनेवाला और स्पर्श में कोमल होता है। इसका शरीर कुछ भारी और स्वर आनन्ददायक होता है। यह गर्मी में उनींदा रहता है।

बर्ही--यह रंगबिरंगी चित्तियों, कान्ति और ओज से युक्त, काफी उठे हुए शरीर, विस्तृत पंखों, नन्हीं चोंच व लम्बी टाँगों वाला, अल्पकोपी और चाल में फुर्तीला होता है। यह हर समय कुछ न कुछ खाता रहता है, ठंडे तथा छायादार स्थानों पर रहना पसन्द करता है, सायंकाल को विशेष रूप से आनन्दित होता है और आह्लादकारक स्वर में बोलता है। यह युवावस्था में मोहक और कामुक होता है तथा दोनों संध्याओं में अपनी मादा के पास जाता है। इसे सरलता से प्राप्त व प्रशिक्षित किया जा सकता है।

नीलकण्ठ--नीलकंठ की गर्दन ही नहीं, अपितु सब अंग नीले होते हैं। यह हमेशा कूदने-फाँदने वाला और कुछ छोटे शरीर तथा छोटी टाँगों वाला और गाने का शौकीन होता है। यह आकाश के मेघाच्छन्न होने पर अनेक प्रकार से नाचता है, अधिक कामुक होने के कारण हर समय मादा के साथ रहता है तथा रात को अधिक नहीं सोता। यह अधिकतर क्रीडोद्यानों--बागों में और कगारों पर घूमता है। कुछ बड़ी आँखों और सिर पर सुन्दर शिखा वाला नीलकंठ ताजा दाना खाने का इच्छुक माना जाता है। यह भूखा होने पर क्रुद्ध हो जाता है। रंगबिरंगी चित्तियों के कारण भव्य और जलक्रीड़ा का प्रेमी नीलकंठ रुचिकर गंध फैलाता है।

भुजङ्गभुक--यह वन्य जीवन पसन्द करता है और इसकी आँखें क्रोध से लाल रहती हैं। यह चमकदार छोटे शरीर वाला होता है और सहज ही साँपों को पकड़ लेता है। यह विशेषकर प्रातःकाल जोर की आवाज करता है और पद्मसरों के किनारों पर घूमता है। यह मांस खाने का आदी, रुक्ष रोम वाला, फुर्तीला तथा उग्रकर्मा होता है; क्रुद्ध होने पर कैसा भी जघन्य कृत्य करने में नहीं हिचकिचाता। यह मनुष्य की गन्ध सहन नहीं करता न अधिक खाता है और न अधिक कामुक होता है। इसका शरीर तथा टाँगें पतली होती हैं। यह हल्की सी दुर्गन्ध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छोड़ता है तथा इसकी आवाज भी प्रिय नहीं होती। कल्याण की आकांक्षा करनेवाले व्यक्ति के लिए यह वर्ज्य है। पाणिनि द्वारा विवेचित 'मयूरव्यंसक' (=धूर्त्त मयूर) शब्द संभवतः मोर की इसी उपजाति की ओर संकेत करता है।

शिखावल--इस प्रकार का मोर लाल और नीले वर्ण का होता है; इसका शरीर कुछ छोटा और रंगबिरंगी चित्तियों से युक्त होता है। इसके रोएँ मुलायम और गर्दन अधिक लम्बी होती है। इनमें से कुछ की चोंचें लम्बी होती हैं और वे निरन्तर घूमने के शौकीन होते हैं। यह मनोहर, सन्तोषी, अपने स्वामी से प्रेम करनेवाला और सुन्दर परों वाला होता है, बस्तियों में रहना पसन्द करता है और प्रेम से मत्त मोरनी के नाचने पर नाचता है। यह मांस, अन्न और फल खाता है, इसकी समझ पैनी होती है, और इसे सरलता से पकड़ा तथा प्रशिक्षित किया जा सकता है।

केकी--केकी केका करने के शौकीन होते हैं। वे आदमियों से नहीं डरते और गलियों में घूमा करते हैं। उनके शरीर पर रंगबिरंगी चित्तियाँ पर्याप्त संख्या में होती हैं और वे अधिक ऊँचे नहीं होते। उनका स्पर्श अत्यन्त कोमल होता है। वे दो घटिकाओं (घटिका=२४ मिनट) के अन्तराल से अपना नाच आदि प्रदर्शित करते हैं। वे झीलों, तालाबों और जगत वाले कुओं के किनारे तथा कुंजों के छायादार स्थानों पर रहते हैं। उनके शरीर ग्रीष्म में सूर्य के ताप से सन्तप्त होते हैं, आवाज अवरुद्ध हो जाती है और वे अपनी प्रियाओं का आलिंगन करने के लिए उत्कंठित हो उठते हैं। उनकी आँखें केसर के समान लाल और टाँगें भी लाल होती हैं। वे गर्हित कार्य नहीं करते और प्रिय गुणों से युक्त होते हैं।

मयूर ने अनेक प्रकार से अपनी विशेष उपयोगिता सिद्ध की है। उसके पंख के पीछे की सफेद तीली प्राचीन काल में भारत तथा अन्य देशों में कलम के रूप में प्रयुक्त होती थी। उसके पंखों से सुन्दर पंखे तैयार किये जाते थे। वायु के द्वारा बाण की रफ्तार तेज करने के लिए उसके पिछले हिस्से में अन्य पक्षियों के पंखों की तरह मोर के भी पंख बाँधे जाया करते थे, जिसके कारण उस बाण को 'पंखदार मौत' कहा जाता था। वनवासी उसके पंखों को अपने कपड़ों के रूप में प्रयुक्त करते थे; राजा, दरबारी, योद्धा तथा अन्य व्यक्ति अपनी पगड़ियों और टोपियों को मोरपंखों से सजाया करते थे। यहाँ तक कि भगवान् कृष्ण ने भी मोरपंख-प्रिय होकर मयूर के गौरव में वृद्धि की थी; उनका मस्तक सदैव मोर की चंद्रिकाओं से विभूषित रहता था। यह भूषाचार योरोप के धर्म योद्धाओं में भी प्रचलित था। ये सभी रिवाज कुछ सीमा तक आज भी प्रचलित हैं। आज भी जनसामान्य का विश्वास है कि मोरपंख हर प्रकार के अनिष्ट का, यहाँ तक कि भूतप्रेतों का भी निवारण करते हैं, और इस उद्देश्य के लिए हिन्दू तथा मुसलमान दोनों ही उनका प्रयोग करते हैं। मोरपंखों की झाड़ुएँ समाज के विभिन्न वर्गों में, विशेषकर जैनमुनियों में प्रचलित हैं। मोरपंखों का प्रयोग अलंकरण के रूप में भी किया जाता है। मोरपंखों के छत्र भी प्राचीन व मध्यकाल में प्रचलित थे। भुवनदेव की 'अपराजितपृच्छा' में मोरपंखों के राजकीय छत्र का उल्लेख है। वराहमिहिर ने बृहत्संहिता में निर्देश दिया है कि सूर्य के ताप से बचाने के लिए युवराज, नृपति-पत्नी, सेनापति और दण्डनायक के छत्र मोरपंखों के होने चाहिए।

प्रासादों और मन्दिरों में चित्रित या उत्कीर्ण किये जानेवाले १६ व्यालों में एक 'मयूरव्याल' (=मयूर जैसे मुख वाले व्याल) का भी उल्लेख किया गया है (अपराजित पृच्छा)। इसी प्रकार उत्कीर्ण या चित्रित किये जानेवाले तीन प्रकार के किन्नरों में से एक मयूर बताया गया है (समरांगणसूत्रधार)। इतना ही नहीं, 'श्रीधरादि' प्रकार के एक प्रासाद का नाम भी 'शिखिशेखर' रखा गया है, जिसके शिखर पर मोर बना होता है (अपराजितपृच्छा)। बौद्ध साहित्य में भी 'मयूर प्रासाद' सम्बन्धी उल्लेख मिलते हैं।

मोर एक स्वादिष्ट खाद्य भी है। यूरोप के प्राचीन लेखकों के ग्रन्थों में शानदार दावतों में उसके आस्वादन और प्रशंसा के अनेक प्रसंग मिलते हैं। मध्यकाल में राजकीय समारोहों पर की जानेवाली दावतों की व्यंजन सूचियों में लगभग हमेशा ही उसका उल्लेख होता था। शौर्यकाल में (=जिस काल में वीरों में दुर्बल या नारी का पक्ष लेकर वीरता-प्रदर्शन की प्रवृत्ति थी) मोर के नाम पर बड़ी-बड़ी गंभीर कसमें खाई जाती थीं। संभवतः भड़कीले पंखों से अलंकृत मोर को लाकर मेज पर रखा जाता था। जैसा कि प्लिनी ने कहा है होर्तेन्सिउस नाम का वक्ता ही वह व्यक्ति था जिसने यूरोप की प्राचीन विद्वन्मंडली 'कालिज आफ औगुर्स' को दी गयी दावत में पहली बार मोर का मांस परोसा था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्राट् अशोक की राजकीय भोजनशाला में प्रतिदिन बीसियों मोरों का मांस पकाया जाता था।

आयुर्वेदिक ग्रन्थों में मोर के मांस की बड़ी प्रशंसा गयी है और उसे अनेक प्रकार से पौष्टिक माना गया है। उसका स्वाद कसैला, मीठा और नमकीन होता है। वह त्वचा की नीरोगता और बालों की वृद्धि में सहायक, भूख की कमी में हितकारी, स्वर, मेधा, नेत्र और श्रोत्र को बल देने वाला, उष्ण, वातनाशक, बल्य और मांस तथा स्वेद में वृद्धि करनेवाला होता है। (सुश्रुतसंहिता, सूत्रस्थान, ४६/२/६४-६५)।

दमा और हिचकी के नाश के लिए मोर तथा कुछ अन्य पशु-पक्षियों का मांस दशमूलीरस या कौलत्थ रस में पकाकर औषधि तैयार की जाती है (चरक, चिकित्सास्थान, १७/९३)। उसके पंखों या उन पंखों पर की चित्तियों की भस्म को वमन की औषधि माना जाता है (वही, २०/-२३)। मोर का पित्त 'मृतसंजीवनयोग' नामक विलेप का मुख्य उपादान है। इस विलेप को शरीर में विष के अष्टम वेग को रोकने के लिए प्रयुक्त किया जाता है (वही, २३/-५१-५३) मोर के पंखों, बगुले की अस्थियों, सरसों, चन्दन और घी के धुएँ को घरों, बिस्तरों, आसनों और वस्त्रों आदि के विष का नाशक कहा गया है। इसी प्रकार मोर का पित्र विषनाशक 'पंचशिरीष अगद' का मुख्य उपादान है।

यात्रा के समय साथ ले जानेवाली वस्तुओं में साँपों से रक्षा के लिए मयूर का भी उल्लेख है। सांप द्वारा काटे जाने पर मुर्गे, कौए और मोर का रक्तयुक्त माँस प्रयुक्त करने का विधान है (चरक, चिकित्सास्थान, २३/२५३, १८२)।

शत्रु द्वारा किये गये दूषक तथा विष आदि के घातक प्रयोगों के प्रतिकार का वर्णन करते समय कौटिल्य ने उन्मत्त या पागल कर देनेवाले 'मदनदोष' नामक प्रयोग के प्रभाव को दूर करने के लिए एक ऐसे योग का उल्लेख किया है जिसमें मोर का पित्त प्रयुक्त होता है (अर्थशास्त्र, १४/४/३)।

मोर के मांस से मायूरघृत तथा महामायूरघृत नामक दो औषधियाँ और तैयार की जाती हैं। इनमें से मायूरघृत शिरोरोगों तथा कानों, नेत्रों, नाक, जीभ, तालु, मुँह और गले की बीमारियों तथा हँसुली उठाने की अचूक दवा माना जाता है। महामायूरघृत सभी प्रकार के शिरोरोगों की अचूक दवा होने के साथ ही साथ प्रतिश्याय (नजला-जुकाम), भयंकर दमा, गर्दन और पीठ की जड़ता (फालिज), फुप्फुस की तपेदिक, जीभ के लठराने, योनिदोष, रक्तदोष और वीर्य दोषों के लिए उत्तम है। इसकी प्रशंसा वंन्ध्या को पुत्र देनेवाली औषधि के रूप में की गयी है।

प्रसिद्ध ज्योतिष ग्रन्थों में भी मयूर विषयक काफ़ी उल्लेख मिलते हैं। उसे मांगलिक पक्षी माना जाता है तथा उसका दर्शन सौभाग्य प्रदान करनेवाला समझा जाता है। विभिन्न अवसरों पर सामने, दाएँ, यहाँ तक कि बाएँ भी उसका दर्शन शुभ माना जाता है। पूर्व दिशा में उसका दर्शन विशेष लाभकर समझा जाता है। प्राचीन लेखकों का तो यहाँ तक कहना है कि वसन्त ऋतु में सूर्य या चन्द्र का मोर जैसा अखंडित मंडल के रूप में चमकता हुआ परिवेष कल्याणकर और समृद्धिकर (शिवसुभिक्षकर) होता है।

सायंकाल को मोर जैसे रंग वाशे बादलों का होना तुरन्त वर्षा का तथा मेघगर्जन के साथ मयूरों की केकाध्वनि मूसलाधार वर्षा की सूचक होती है। मोर की चाल से राजाओं की चाल की तुलना, निश्चित रूप से उसकी चाल के शानदार ढंग की ओर संकेत करती है जो राजाओं द्वारा भी अनुकरणीय है।

मोर की गणना दिनचर प्राणियों में होती है, अतः अपनी प्रकृति के विपरीत उसका रात में चलना-फिरना (निशाचरण) देश अथवा राजा के नाश का सूचक माना जाता है।

बराहमिहिर जैसा प्रसिद्ध लेखक मयूर और उसके रंग-बिरंगेपन से इतना प्रभावित हुआ कि उसने अपनी प्रख्यात बृहत्संहिता के ४७वें अध्याय का नाम ही 'मयूर चित्रकम्' रख दिया।

मयूर के संबंध में किसी कवि का निम्नलिखित श्लोक विशेष रोचक है--

केका कर्णामृतं ते सकुसुमकबरीकान्तिहाराः कलापाः
कण्ठच्छाया पुरारेर्गलरुचिरुचिरा सौहृदं मेघसंघै।
विश्वद्वेषिद्विजिह्वस्फुरंदरुपिशितैर्नित्यमाहारवृत्तिः
कैः पुण्यैः प्राप्तमेतत् सरलमपि सखे चित्रवृत्तं मयूर॥
(शार्ङ्गधरपद्धति पृ० १३५, श्लोक ८६८; सुभाषित रत्न-भांडागार, पृ० २२७, श्लोक १७८)

अर्थात् कानों को अमृत के समान सुमधुर लगने वाली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केका, फलों से युक्त जूड़े की शोभा का अपहरण करनेवाले पंख, महादेव के कंठ के समान सुन्दर वर्णवाली गर्दन, मेघों से मित्रता, संसार के शत्रु सर्पों के मांस का नित्य भक्षण—ये सारी अद्भुत बातें, हे सखे मयूर! तुमने किन पुण्यों से प्राप्त की है?

विभिन्न क्षेत्रों में अनेक वस्तुओं के नाम मयूर के नाम पर रखे जाना उसकी लोकप्रियता के सूचक हैं। योग-विषयक ग्रन्थों में 'मयूरासन' नाम के एक विशिष्ट आसन, नाट्यशास्त्र में 'मयूरललितम्' नाम की नृत्यमुद्रा और 'मायूरी मार्जना' नाम की मार्जमा का उल्लेख मिलता है। दो छन्दों के नाम भी 'मत्तमयूर' और 'मयूरसारणी' हैं। 'ताऊस' और 'मोरचंग' वाद्ययंत्रों का नाम मयूर के नाम के आधार पर ही रखा गया है। अरबी में मयूर को 'ताऊस' और अनेक भारतीय भाषाओं में 'मोर' कहा जाता है। पंजाबी—मोर (मोर्), कश्मीरी-गुजराती-मराठी—मोर्, असमिया—मरा (मोरा), सिंधी—मोरु, बङ्ला—मयूर (मोयूर्), ओड़िया—मयूर (मॉयूरॉ), तेलेगु—नेमलि, तमिल—मयिल्, मलयालम—मयिल्, कन्नड—नविलु; दे० विश्वनाथ दिनकर नरवणे का 'भारतीय व्यवहारकेश; नेपाली—मुजुर,। बादशाह शाहजहाँ का तख्तेताऊस या मयूरासन इतिहास प्रसिद्ध ही हैं।

दक्षिण भारत में मथुरा के पास 'मयूरपुर' नामक एक पहाड़ी है, जहाँ पौराणिक कथाओं के अनुसार स्वामी कार्तिकेय ने एक दानव का वध किया था। वही दानव बाद में मयूर का रूप धारण कर यथासमय उनका वाहन बना।

धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों में मयूर की हत्या के लिए वैसा ही प्रायश्चित्त का विधान है, जैसे प्रायश्चित्त का निर्देश किसी शूद्र की हत्या के संबंध में है। निर्देश दिया गया है कि मयूर का हत्यारा ब्राह्मण को गाय दान करे; लेकिन आमिषभोजियों के लिए वनमयूरों को मारने की छूट थी।

लौकिक संस्कृत तथा प्राकृत साहित्य में हमें 'मयूर' का वैविध्यपूर्ण वर्णन प्रचुर मात्रा में मिलता है। महाकवि कालिदास का तो यह विशेष प्रिय पक्षी था।

मोर का वर्णन हिन्दी साहित्य में भी कम नहीं है। चन्दबरदाई से लेकर आधुनिक काल तक उसकी एक अविच्छिन्न परम्परा चली आई है। रीतिकाल का तो शायद ही ऐसा कोई कवि हो जिसने अपनी कविता में मयूर का उल्लेख या वर्णन न किया हो।

महाकवि तुलसीदास ने 'मोर' नाम के संबंध में क्या ही सुन्दर कल्पना की है—

तनु विचित्र कायर वचन अहि अहार मन घोर।
तुलसी हरि भए पच्छधर ताते कह सब मोर॥

(दोहावली, १०७)।

जायसी का विचार है कि मोरपंखों की चन्द्रिकाएँ प्रेम की नागफाँसी के फन्दे हैं—

जानि पुछारि जो मैं बनबासी।
रोवँ रोवँ परे फाँद नगवासी॥
पाँखन्ह फिरि फिरि परा सो फाँदू।
उड़ि न सकै अरुझी भा बाँदू॥
मुयों मुयों अहनिसि चिल्लाई।
ओहि शेस नागन्ह धरि खाँई॥

(पद्मावत, ९७/४, ५, ६)

लोकसाहित्य में भी मयूर को यथोचित स्थान प्राप्त है। वहाँ उसका वर्णन सफल प्रणय सन्देशवाहन के रूप में किया गया है।

गुजराती साहित्य में भी नरसिंह मेहता से लेकर आधुनिक काल तक मयूर का विशेष स्थान है। संत कवयित्री मीराबाई ने अपने एक पद्य में मोर का वर्णन 'आत्मा' के रूप में किया है।

कड़ाएल मोरलो जैसे खेल और मयूर के आधार बनाकर रची गयी अनेक कहावतें उसकी लोकप्रियता की सूचक हैं। जैन ग्रन्थों में ऐसे अनेक आभूषणों का उल्लेख है जिनके नाम मयूर पर हैं।

देहाती स्त्रियाँ मोर को अपने चँदोवों, बिछाने की चादरों और वस्त्रों में काढ़ती या बुनती हैं और स्वर्णाभूषणों में उत्कीर्ण कराती हैं। इतना ही नहीं, वे उसे अपने गालों, चिबुक, वक्षस्थल और हाथों पर चित्रित करवाती या गुदवाती हैं। पुरुष भी उसे अपने शरीर पर गुदवाते हैं।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि मयूर ने जनता के हृदय में एक विशेष महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया है। प्राचीन काल की मूर्तियाँ भी जिनमें से अधिकांश में इस पक्षी को विभिन्न प्रकार से तराशा गया है, भारतीय संस्कृति में मयूर के स्थायी महत्त्व को सिद्ध करती हैं।

वास्तव में मयूर प्राचीन वैदिक काल से ही लोकप्रिय पक्षी रहा है। ऐतरेय और शाङ्खायन आरण्यक में मयूर की गर्दन के श्रेष्ठ वर्ण की विशेष प्रशंसा की गयी है। अथर्ववेद में विशेष रूप से कहा गया है कि मायूरी साँपों के टुकड़े-टुकड़े कर डालती है। शुक्ल यजुर्वेद में अश्वमेध यज्ञ में अश्विनों को मयूर भेंट किये जाने का उल्लेख है।

विश्व के प्राचीनतम उपलब्ध ग्रन्थ ऋग्वेद में भी मयूर का उल्लेख प्राप्त होता है जहाँ इन्द्र के अश्वों को मयूर के पंखों जैसे बालोंवाले और उसकी दुम जैसे पूँछों वाले कहा गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुर्क-कालीन भारत में मुस्लिम गुलामी की एक झलक

श्री शीला चतुर्वेदी

मुस्लिम गुलामी अपने रूप में अद्वितीय और विलक्षण थी। मुस्लिम शासन संस्थाओं में इसका स्थान अनूठा था। मुस्लिम शासकों ने इस संस्था को राजकीय परिधान धारण कराये और अधिकाररूपी अलंकारों से इसके रूप को अलंकृत किया। इस अलौकिक रूप में इस संस्था की झाँकी मध्य एशिया, अफगानिस्तान और हिन्दोस्तान में देखने को मिलती है। भारतीय मुस्लिम राज्य में तुगलक-काल तक गुलामी राजनीति की सहचरी रही। मुस्लिम समाज में गुलाम जिस प्रकार शासक, प्रशासक, वंश-संस्थापक, सेनापति, वजीर और बड़े बड़े अमीर बने वैसे संभवतः यहूदी, ईसाई और भारतीय समाज में नहीं हुए। यहाँकी स्थिति और वातावरण ही ऐसा था, जिसमें गुलाम सर्वोच्च पद के अधिकारी बन सकते थे। मुस्लिम समाज की विशिष्टता उसकी सामाजिक समानता है। इसका निर्माण ही समानता के आदर्श को लेकर हुआ था और यही इसकी सफलता का मूलमन्त्र था। इस समरूपता का दिग्दर्शन सैयद अमीर अली ने इस प्रकार कराया है, "इस्लाम ने प्रजाति और रंग, काले और गोरे, नागरिक तथा सैनिक, शासक और शासित में कोई अन्तर नहीं किया। वे पूर्णतया समान थे, सैद्धान्तिक रूप में ही नहीं वरन् व्यावहारिक रूप में भी।" इस्लाम का पहला मुअज्जिन बिलाल नामक एक हब्शी गुलाम था। इस्लाम ने सामाजिक समानता की दुहाई देते हुए लोगों को यह बतलाया कि गुलाम भी उसी अल्लाह के द्वारा उत्पन्न किये गये हैं जिसके द्वारा आजाद। अतः उन्हें भी समाज में जीवित रहने के लिए उतने ही अधिकार प्राप्त हैं जितने कि स्वतन्त्र लोगों को। 'एक बिन्दु दोऊ उपजे को बामन को शूद्रा' के जिस आदर्श को लेकर सन्त कबीरदास १५वीं शताब्दी में आये उसी को हजरत मोहम्मद ने ७वीं शताब्दी में ही जन-जन की वाणी में मुखरित कर दिया था। उन्होंने विश्व-बन्धुत्व का नारा लगाया और लोगों को बतलाया, "गुलाम तुम्हारे भाई हैं, जो तुम खाओ वही उन्हें भी खिलाओ।" इसी प्रकार, "ये तुम्हारे भाई भी हैं और खादिम भी।" गुलाम अपने स्वामी को रब कहे या मालिक अथवा स्वामी अपने गुलाम को अबदी कहकर पुकारे तो इसमें घमंड की बू आती है, जिसको रसूल पसन्द नहीं करते थे। इसीलिए वह कहते हैं कि तुम लोगों में कोई यह न कहे, अपने मालिक को खाना खिला दे, अपने मालिक को वजू करा दे—अपने मालिक को पानी पिला दे और न यह कहे मेरा बन्दा और मेरी बाँदी वरन् यूँ कहे, "मेरा बच्चा और मेरी बच्ची।"

इस्लाम के अन्तर्गत गुलामों को आजाद करना बड़े सबाब (पुण्य) का काम बतलाया गया है। कुरान मजीद के सूरा 'बकरा' में गुलाम के आजाद करने को नमाज और रोजे से अधिक महत्त्वपूर्ण बतलाया गया है—"नेकी यह नहीं है कि तुम अपने चेहरे पूर्व या पश्चिम की ओर कर लो अपितु नेकी इसमें है कि·····अपने धन का व्यय मोह होने पर भी नातेदारों, यतीमों, मुहताजों, मुसाफिरों, याचकों और गरदनें छुड़ाने अर्थात् गुलामों को स्वतन्त्र करने में करें।" इतना ही नहीं गुलामों को आजाद करने से अनेक प्रकार के अपराधों, पापों और झूठी कसमों का प्रायश्चित्त हो जाता है। यदि भूल में किसी मुसलमान का कत्ल हो जाता है, तो इसके लिए भी एक गुलाम आजाद करना वांछनीय होगा। मुसलमान के अतिरिक्त अन्य किसी जाति का व्यक्ति भी धोखे से कत्ल कर दिया जाता है तो उसका प्रायश्चित्त भी यही होगा। सहीह बुखारी में अंकित है कि 'जो शख्स यदि किसी मर्द मुसलमान को आजाद करेगा, अल्लाह ताला उस आजाद कर्दा के हर अजो (अंग) के एवज में उसका एक अजो दोजख से बचा लेगा।" हजरत अबूजर कहते हैं कि मैंने नबी. सल्ल०* से पूछा, 'किस तरह के गुलामों को आजाद करना चाहिये। उन्होंने कहा 'उन गुलामों को जो अधिक कीमत में हों और मालिकों के नजदीक अधिक मरगूब हों।' हजरत अस्मा-

*यह सल-लल-लाहु अलैहि व सल्लम अर्थात् उन पर अल्लाह की रहमत और सलामती हो, का संक्षिप्त रूप है। हजरत मोहम्मद के नाम के आगे सल्ल० शब्द प्रेम और आदर के लिए लगा दिया जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिन्त अबीबकर कहती हैं, "सूर ग्रहण में नबी सल्ल० ने गुलामों की आजाद करने का हुक्म दिया था।"

गुलाम प्राप्ति का प्रमुख स्रोत युद्ध था, जिसके सम्बन्ध में कुरान में यह नियम निर्धारित किया गया है कि उन्हें मुआवजा लेकर अथवा बिना मुआवजा के ही छोड़ दिया जाय यथा, "अब जब कुफ्र करनेवालों से तुम्हारी मुठभेड़ हो तो गर्दनें मारना यहाँ तक कि जब तुम उन्हें कुचल चुको तो बन्धनों में जकड़ो, फिर बाद में या तो एहसान कर देना है या फिदयः (मुआवजा) लेना है।"

हजरत मोहम्मद ने गुलामो के साथ सद्व्यवहार करने का भी आदेश दिया। एक आदमी ने उनसे पूछा, 'अय रसूल हम गुलामों को कितनी बार माफ करें"..... तो उन्होने बतलाया—"हर रोज सत्तर बार माफ करो।" उन्होंने यह भी बतलाया कि यदि कोई गुलाम को पीटे तो मुँह पर न मारे। इसी प्रकार उनका कहना था, 'जो अपने गुलाम को कत्ल करेगा हम उसको कत्ल करेंगे और जो अपने गुलाम की नाक काटेगा, हम उसकी नाक काटेंगे।"

पैगम्बर मोहम्मद के ये उपदेश कोरे उपदेश मात्र ही न थे, वरन् ये पूर्णतया अमल में लाये जाते थे। परिणाम-स्वरूप एक ऐसे वर्गहीन समाज का विनिर्माण हुआ जिसमें ऊंच-नीच, धनी-निर्धन, काले-गोरे का कोई प्रश्न ही नहीं उठता था। सैयद अमीर अली ने लिखा है, "वे मैदान में अथवा अतिथि कक्ष में; शामियाना या महल में, मस्जिद या बाजार में बिना हिचक तथा घृणा के मिलते थे।" इन सीखों का ही यह सुपरिणाम था कि मुस्लिम गुलामी, गुलामी न रहकर एक भाईचारा (Brotherhood) और बिरादरी बन गयी।

स्वयं को सभ्य और उन्नतिशील करनेवाले देश जब गुलामी के नाम पर मानवता का शोषण कर रहे थे, मुस्लिम गुलाम शासन-प्रशासन कर रहे थे, राजनीति का संचालन कर रहे थे। रोम और यूनान में गुलामों की स्थिति बड़ी दयनीय थी। वे अर्थोपार्जन की सामग्री समझे जाते थे। यहाँके दार्शनिकों ने भी उन्हें वस्तुमात्र समझा। अरस्तू ने खुले आम गुलामी की वकालत की थी। वे खेतों और खानो में कार्य करते थे। कार्य में तनिक भी असावधानी करने पर उन पर डंडों और कोड़ों की मार पड़ती थी, जिससे बहुधा उनकी मृत्यु तक हो जाती थी। सामान्य अपराधों में उनकी पीठों पर भारी पत्थर बाँध दिये जाते थे और इसी स्थिति में उनसे खेतों पर काम कराया जाता था। इतना ही नहीं उन्हें उल्टा लटका दिया जाता और उनके अंग से कोई भारी वस्तु बाँध दी जाती थी। कहा जाता है कि रोम में आगस्टस के समय में वेडियस ने छोटी गल्तियों के कारण गुलामों को मछलियों से प्रपीड़ित करने के लिए मछलियों के तालाब में फिंकवा दिया था। यहाँ पर जनता के मनोरंजन के लिए गुलामों को जंगली पशुओं से लड़ाया जाता था। ईसाई धर्म ने उनकी स्थिति में आंशिक सुधार किये, किन्तु फिर भी सामान्य रूप से गुलामों की स्थिति की संतोषप्रद नहीं कहा जा सकता। लगभग सभी यूरोपीय देशों तथा अमेरिका आदि में गुलामों की स्थिति बड़ी खराब थी। सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक जीवन में उनका कोई स्थान नहीं था। जिस तरह हिन्दू शूद्रों को समझते हैं कि वे उच्च वर्णों की सेवा करने के लिए उत्पन्न हुए हैं, उसी तरह अन्य जातियाँ समझती थीं कि गुलाम अपने स्वामियों की खिदमत करने के लिए पैदा हुए हैं। गुलामों की स्थिति व्यक्तिगत सम्पत्ति तुल्य तथा पालतू जानवर-सदृश थी। इस स्थिति का चित्रांकन फ्रांसिस क्रो(Francis Crow) के इस उल्लेख से भली भाँति ज्ञात हो जाता है, जिसे उसने जमैका (Jamaica) में पोर्ट रायल से ७ मार्च १६८७ को लिखा था, "इस स्थान का सबसे बड़ा व्यवसाय इन बेचारों को गायना से यहाँ लाने, उन्हें घरेलू बागानों के लिए बेचने का है..... वे वैसे ही नंगे आते हैं जैसे कि जन्म लेते समय थे और क्रेता उनके मुखो को खोल खोलकर देखते हैं तथा उनके जोड़ों का ऐसे निरीक्षण करते हैं, जैसे कि वे बाजार के घोड़े हों।" इसी विधि से गुलामी के नाम पर मानवता का हनन युगों तक किया गया। अन्त में उन्नीसवीं शताब्दी में इस घृणित प्रथा का उत्सादन कर दिया गया लेकिन यूरोपीय देशो* में आंशिक रूप में यह अब भी विद्यमान है।

---

* ऐसा कहा जाता है कि अफ्रीका तथा यूरोप के बीच अभी भी दास व्यापार होता है। संयुक्त राष्ट्रसंघ ने इसकी जाँच हेतु पाँच देश—मलएशिया, पोलैण्ड, फिनलैण्ड, कीनिया और ब्राजील की एक समिति नियुक्त की। इस समिति ने अपनी रिपोर्ट में यह बतलाया कि अशिक्षित अफ्रीकावासियों को अच्छे वेतन का लालच देकर पश्चिमी यूरोप की फैक्टरियों में काम करने के लिए भरती कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पी० वी० वाणे ने संसार के देशों की गुलामी की संक्षिप्त झाँकी इस प्रकार दिखलाई है, 'पुराकालीन सभी देशों और तथाकथित उन्नत एवं सभ्य राष्ट्रों के सामाजिक तथा आर्थिक जीवन में दास प्रथा या दास भाव एक स्थायी प्रथा के रूप में प्रचलित था। बेबीलोन, मिस्र, यूनान, रोम तथा अन्य यूरोपीय राष्ट्रों में दासत्व पाया जाता था। इंगलैण्ड एवं संयुक्त राज्य अमेरिका ने दासों के व्यापार में अमानुषिकता का जघन्य उदाहरण उपस्थित कर दिया। इतिहास, समाजशास्त्र, आचारशास्त्र, मानवशास्त्र आदि सामाजिक विषयों के विद्वानों से यह बात छिपी नहीं है कि अपने को अति सभ्य कहनेवाले ईसाई देश इंगलैण्ड एवं अमेरिका ने दासों के व्यापार द्वारा मानवता का हनन युगों तक किया। वे बड़ी नृशंसता के साथ अफ्रीका के मूल निवासियों को जहाजों में भर-भरकर यत्र-तत्र ले गये और खानों एवं खेतों में काम करने के लिए उनका क्रय-विक्रय किया। अधिकांश वे जलमार्ग में ही मर जाते थे और जो बचते उनको पशुओं के समान रखा जाता था। आधुनिक युग में दासता का यह उदाहरण सभ्य मानवता का कलंक है। आश्चर्य तो यह है कि कृपालु एवं करुण भाव प्रेरित ईसाई धर्म के बहुत से ठेकेदारों ने, जिनमें कैथोलिक एवं प्रोटेस्टेंट दोनो सम्मिलित थे, इस प्रथा को मान्यता दी। ब्रिटिश राज्य में सन् १८३३ में तथा ब्रिटिश भारत में सन् १८४३ में दास प्रथा के विरुद्ध नियम स्वीकृत हुए।"

ये दृष्टान्त इस बात के अभिव्यंजक हैं कि ईसाई देशों में गुलामों की स्थिति सदैव करुणाजनक रही। हिन्दोस्तान में गुलामी वर्ण-व्यवस्था पर आधारित थी, अतः यहाँ पर भी गुलामों को सामाजिक उत्थान के अवसर कदापि न प्राप्त हो सकते थे।

इस भांति जब अन्य देशों में गुलामों की स्थिति इतनी हेय थी, मुस्लिम गुलाम उस समय इस्लाम द्वारा प्रवाहित की गयी सामाजिक समरूपता की सरिता में स्वतन्त्र व्यक्तियों की भांति समानरूप से अवगाहन कर रहे थे। मानवता के नाते जितने अधिकार होते हैं, वे प्रायः सभी उन्हें प्राप्त थे, उदाहरणार्थ विवाह, शिक्षा, धर्म तथा भावना आदि की उन्हें पूर्ण स्वतन्त्रता थी। डा० हसन इब्राहीम ने लिखा है—"इस्लाम ने गुलामों की हालत को सुधारा और आजादी की राह में उनकी दस्तगीरी की। इस्लाम ने खाने-पीने, लिबास और तालीम व तहजीब और दूसरे बड़े-बड़े मदनी और शहरी हुकूक (Civil rights) में आका और गुलाम दोनों को बराबर के दरजे में रखा है।" इसकी मिशालें मुस्लिम इतिहास के पृष्ठों पर अंकित हैं। सुल्तान महमूद ने अपने गुलाम अयाज की बहन से विवाह किया था। इससे पूर्व समानी शासक इस भाँति के अनेक वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर चुके थे। कुबाद ने एक किसान की लड़की से विवाह किया था, जिससे नौशेरवाँ का जन्म हुआ था। बहरामगोर ने एक धोबी की कन्या से शादी की थी। इसी प्रकार हिन्दोस्तान के मुस्लिम शासकों में सुल्तान नासिरुद्दीन का विवाह बल्बन की पुत्री से हुआ था। फरिश्ता और बदायूँनी के अनुसार बल्बन का विवाह इल्तुतमिश की कन्या से हुआ था। इख्तियारुद्दीन एतगीन एक गुलाम था, लेकिन नायब बन गया। उसका विवाह सुल्तान मुइज्जुद्दीन बहरामशाह की बहन से हुआ था। ये वैवाहिक सम्बन्ध तो गुलामों और गुलाम कन्याओं के राजघरानों में सम्पन्न हुए थे। इसके अतिरिक्त गुलाम अमीर परस्पर भी इस प्रकार के सम्बन्ध स्थापित कर लेते थे। ताजुद्दीन यल्दूज की एक पुत्री की शादी कुतुबुद्दीन ऐबक से तथा दूसरी नासिरुद्दीन कुबाचा से हुई थी। इसी प्रकार कुतुबुद्दीन ऐबक की भी दो कन्याओं का विवाह नासिरुद्दीन कुबाचा तथा एक का इल्तुतमिश के साथ हुआ था। शिक्षा भी उन्हें मुक्त रूप से दी जाती थी। ऐबक ने वाजी के पुत्रों के साथ ही घुड़-सवारी, तीरन्दाजी तथा कुरान अध्ययन की शिक्षा प्राप्त की थी। गुलामों के साथ गुलाम जैसा नहीं वरन् पुत्रवत् व्यवहार किया जाता था। ऐबक इल्तुतमिश को अपना पुत्र कहता था। इसी भांति मोहम्मद गोरी ने जयचन्द पर विजय प्राप्त करने के बाद ऐबक को पत्र में पुत्र कहकर सम्बोधित किया और एक सफेद हाथी भेंट किया। बल्बन का पालन-पोषण ख्वाजा जमालुद्दीन बसरी ने बड़े प्रेम से किया था। सुल्तान फीरोज तुगलक खानेजहाँ बिन खाने-जहाँ के लिए जो फरमान भेजता था, उसमें उसे अपना 'फरजन्दम' (मेरा पुत्र) लिखता था। इस सामाजिक समा-

लिया जाता है, जहाँ पर उनके साथ बड़ा अमानवीय व्यवहार किया जाता है। प्रथम उन्हें पर्यटकों के परिधान पहनाकर रोम लाता है वहाँसे बन्द लारियों में वे फ्रांस आदि देशों में भेज दिये जाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नता का ही यह परिणाम था कि मुस्लिम समाज में आज के गुलाम कल के वजीर और सुल्तान होते थे। वे शासक ही नहीं हुए वरन् राज्य और साम्राज्य के निर्माता भी बनें। अलप्तगीन समानी शासकों का ऐसा ही गुलाम था, जिसने गजनी में स्वतन्त्र राज्य की स्थापना की। उसके उत्तराधिकारी सब गुलाम थे। सुबुक्तगीन और महमूद गजनवी भी गुलाम ही थे, जो गजनी में यामिनी वंश के संस्थापक बने। इसी भाँति ऐबक ने हिन्दोस्तान में मुस्लिम शासन की पौध लगाई। इल्तुतमिश और बल्बन ने इसको सींचा। तुर्क चहलगानी ने इसको पुष्पित और पल्लवित करने में योगदान दिया। ये तीनों ही भारतीय मुस्लिम इतिहास के प्रख्यात शासक थे। गुलाम बड़े-बड़े सेनापति भी हुए। खिल्जी-काल का मलिक काफूर गुलाम ही था, जिसने अपने घोड़ों की टापों से सम्पूर्ण दक्षिणापथ रौंद डाला। सुल्तान फीरोज के सेनापति मलिक एमादुलमुल्क और वजीर खानेजहाँ मकबूल भी गुलाम ही थे, जो शासन विधान की आत्मा थे। इन होनहार गुलामों के क्रिया-कलापों को देखकर यह कहा जा सकता है कि मुस्लिम गुलामी हीनता के कलंक से मुक्त थी। मुस्लिम समाज में गुलाम होना अभिशाप नहीं समझा जाता था, जैसा कि डा० ईश्वरीप्रसाद ने भी लिखा है, "एक महान् राजा का गुलाम होना अथवा युद्ध में सेनापति बनना मुसलमान राज्य में सौभाग्य समझा जाता था।"

भारतीय मुस्लिम राज्य के लिए गुलामों की सेवायें बहुमूल्य थीं। वस्तुतः हिन्दोस्तान में मुस्लिम शासन का शिलान्यास करनेवाले और उसे अपने पैरों पर संचलित करनेवाले ये गुलाम ही थे। तीन गुलाम कुतुबुद्दीन ऐबक, इल्तुतमिश और बल्बन यहाँके बड़े यशस्वी और वर्चस्वी शासक हुए। उन्होंने मुस्लिम सल्तनत की केवल स्थापना ही नहीं की वरन् अपने बाहुबल के प्रताप से इसके क्षेत्र को विस्तीर्ण किया, आश्चर्यमयी प्रशासनिक क्षमताओं के द्वारा इसके अंग-प्रत्यंग का विन्यास किया, सांस्कृतिक कलाओं से इसके रूप को सज्जित किया। इस समय की सामन्तशाही में भी उनका प्राधान्य रहा। इल्तुतमिश के तुर्क चहलगानी इसके जीते जागते प्रमाण हैं। खल्जी और तुगलककालीन सामन्तशाही में भी वे इसी प्रकार छाये रहे। इतिहास इसका साक्षी है कि सुल्तानों की भाँति इन गुलाम सामन्तों ने भी देहली सल्तनत को आर्थिक रूप से समृद्ध किया। इसके क्षेत्र का विस्तार किया। शासकों की गृहनीति और वैदेशिक नीति की सफलता में भी उनका योगदान रहा।

इस भाँति गुलामी संस्था की अमराइयों में परिपुष्ट होकर इन गुलामों के क्रिया-कलाप इतिहास की एक अनमोल इकाई हैं। वे तुगलक-वंश तक राजनीति के विशिष्ट अंग रहे। तुगलक वंश के अवसान के साथ ही गुलाम भी राजनीति के रंगमंच पर से तिरोहित हो गये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वतंत्रता के पच्चीस वर्ष तथा नारी

श्रीमती उर्मिला जौहरी एम० ए०

पन्द्रह अगस्त को भारत को स्वतन्त्र हुए २५ वर्ष हो रहे हैं। अतः सारे भारत में रजत जयन्ती मनाई जा रही है, सैकड़ों वर्ष की परतंत्रता के पश्चात् १५ अगस्त १९४७ को यह स्वर्ण अवसर आया कि हमारे देशवासियों ने शासन की बागडोर सँभाली तथा देश ने एक निश्चित लक्ष्य की ओर अग्रसर होना प्रारम्भ किया। इस अवधि में देश ने सभी दिशाओं में कठिनाइयाँ सहन करते हुए उन्नति की। परतंत्रता की बेड़ियों में जकड़े देश का विकास रुकना तो स्वाभाविक ही था परन्तु इसकी सबसे अधिक शिकार थी भारतीय नारी। उसको परदे की चाहरदीवारी में जकड़ दिया गया तथा समाज में उसका स्थान नगण्य हो गया। परन्तु स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारतीय स्त्री जगत् में जो जाग्रति व तब्दीली देखी जा रही है उससे सारा जगत् ही आज आश्चर्यान्वित है। भारत का शासन आज एक स्त्री के हाथ में है। वैसे तो श्रीलंका की श्रीमती भंडार-नायिका ही संसार की प्रथम महिला प्रधान मंत्री बनी थीं परन्तु श्रीलंका भारत की तुलना में एक बहुत छोटा देश है। दूसरी महिला इजरेल की प्रधान मंत्री श्रीमती गोल्ड माथर हैं। श्रीमती इन्दिरा गांधी भारत जैसे एक विशाल देश की शासिका हैं। अब के चुनाव में जो बहुमत जनता ने उन्हें दिया है उससे उनकी प्रभुता व शक्ति एक बड़े से बड़े डिक्टेटर को भी मात करती है। देश के भूतपूर्व महान् सम्राट् चन्द्रगुप्त व अशोक से लोग उनकी तुलना ही नहीं करते वरन उनसे अधिक महत्त्व देते हैं।

सन् १९४७ में स्वतंत्रता प्राप्ति के तुरन्त पश्चात् ही स्त्रियों ने जो पद प्राप्त किये हैं देखकर पश्चिम के प्रगतिशील देशों की नारियों ने भी दाँतों तले उँगली दबा ली। श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित राजदूत बनकर मास्को गयीं तथा श्रीमती राजकुमारी अमृतकौर केन्द्रीय सरकार के मंत्रिमंडल में स्वास्थ्य मंत्री बनीं। भारत की प्रथम लोकसभा में एक बहुत बड़ा दल स्त्रियों का भी चुनाव जीतकर लोकसभा में बैठा। न केवल केन्द्र में वरन सभी प्रदेशीय सरकारों में स्त्रियाँ उत्तरदायित्व पदों पर आरूढ़ हुईं। श्रीमती सरोजनी नायडू उत्तर-प्रदेश जैसे बड़े प्रदेश की राज्यपाल नियुक्त हुईं। तथा बाद में श्रीमती सुचेता कृपलानी इस सूबे की प्रधान मंत्री चुनी गयीं। यह एक बेमिसाल बात थी। अन्य किसी भी देश में स्त्रियाँ इतनी भारी संख्या में राजनीति में भाग नहीं ले रही थीं।

१९४९ में जब श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित अमेरिका की राजदूत नियुक्त हुईं उस समय मैं संयुक्तराष्ट्र अमेरिका में ही थी। उस समय के अमेरिका के सभी पत्रों में सनसनी फैल गयी थी। सभी पत्रों में कई सप्ताह तक उनके चरित्र व विशेषताओं सम्बन्धित समाचार, लेख व चित्र आते रहे। लगता था कि समाचार-पत्रों में होड़ लगी हो। मैंने आपका भाषण न्यूयार्क की 'इंग्लिश स्पीकिंग यूनियन', न्यूयार्क की स्त्रियों को 'नगरपालिका क्लब' में उनके सम्मानार्थ आयोजित 'लंच' पर तथा 'कोलाम्बिया यूनिवर्सिटी', 'जहाँ की मैं छात्रा थी' द्वारा आयोजित विशेषज्ञों के भाषणों की माला (जहाँ टिकट द्वारा प्रवेश होता था) में भी सुना। सभी स्थानों पर जोरदार तालियों से उनका सम्मान होता था तथा वहाँके नर व नारी भारतीय स्त्री व पुरुषों को देखते तो उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते और कहते कि वास्तव में आपकी प्रतिनिधि अद्वितीय हैं। वास्तव में अमेरिका में उनकी उपस्थिति से वहाँ ऐसा तहलका मचा कि राष्ट्रपति ट्रूमैन द्वारा फौरन ही एक महिला को एक देश का राजदूत बनाकर भेजा गया (इस समय मैं उन महिला का नाम तथा जिस देश की राजदूत वह चुनी गयी थीं भूल चुकी हूँ) बाद में श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित यू० एन० ओ० की प्रधान चुनी गयीं। इस पद पर भी चुनी जानेवाली संसार की आप प्रथम महिला थीं।

उन्हीं दिनों श्रीमती रूजवैल्ट से वार्ता करते हुए वहाँके किसी जरनलिस्ट ने कहा कि आप संसार की सभी महान् स्त्री नेताओं से परिचित हैं। अतः यदि आपसे पूछा जाय कि सबसे प्रथम आप किस पर उँगली रखेंगी तो उन्होंने तुरन्त उत्तर दिया कि श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित पर। आपका कहना था कि आप स्त्रियों जैसी कमनीयता व आकर्षण तथा पुरुषों जैसी बौद्धिकता रखती हैं दोनों का सुन्दर सम्मिश्रण है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गत २५ वर्षों में तो स्त्रियों ने न केवल राजनीति वरन सभी क्षेत्रों में आशातीत उन्नति की है। कई वर्ष से वे आई० ए० एस० की परीक्षा में भी 'टाप' कर रही हैं तथा केन्द्रीय सरकार व प्रदेशों में भारी उत्तरदायित्व के कार्य सँभाल रखे हैं। यद्यपि मैडिकल, टीचिंग व सोशल-वर्क स्त्रियों के आज भी प्रमुख क्षेत्र हैं परन्तु आज वे इंजीनियरिंग, विज्ञान तथा पुलिस व अन्य क्षेत्रों में भी प्रवेश कर रही हैं। यद्यपि अभी कई क्षेत्रों में ऊँचे पदों पर स्थान पाना स्त्रियों के लिए सुलभ नहीं हैं। उन्हें पुरुषों के साथ कम्पीटिशन तो करना ही पड़ता है परन्तु फिर भी बहुत से स्थानों पर स्त्रियों को उच्च पद देने में लोग हिचकते हैं। तथापि वे उन्हें प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील अवश्य हैं। अब तो स्त्रियों ने 'बिजिनैस' की ओर भी ध्यान देना प्रारम्भ किया है। बड़े-बड़े नगरों में तो हम उन्हें बैंकों व स्टोरों में सभी स्थानों पर काम करते पाते हैं। कुछ स्त्रियों ने इस क्षेत्र में अपने 'स्टोर' भी खोले हैं व इंडस्ट्री भी चलाई है।

स्त्रियों की शिक्षा नगरों में इतना जोर पकड़ रही है कि कालिजों में, कक्षाओं में पुरुष-छात्रों की अपेक्षा स्त्री छात्राएँ अधिक दिखाई देती हैं। इसका एक मुख्य कारण यह भी है कि पुरुष-छात्र टेकनिकल लाइनों में निकल जाते हैं और अभी कई क्षेत्रों के द्वार स्त्रियों के लिए बंद से हैं। कालिजों में ही नहीं स्कूलों में भी यही हाल है। देहली 'हायर सेकेंडरी बार्ड' के अधिकतर पारितोषक छात्रायें ही जीतने लगी हैं। एक बार पारितोषक वितरण करते समय माननीय मन्त्री महोदय ने पुरुष छात्रों को चेतावनी भी दी थी कि कहीं ऐसा न हो कि आप लड़कियों से एकदम पीछे रह जाएँ।

यद्यपि भारतीय स्त्रियों को इतने महत्त्वपूर्ण पदों पर कार्य करते देखकर अन्य देशों के निवासियों को आश्चर्य होता है परन्तु हमारे यहाँकी स्त्रियाँ तथा सभी देशवासी जानते हैं कि उन्हें यह सुअवसर पुरुषों के ऐहसान से अथवा स्त्री व पुरुष-वर्ग की लड़ाई के कारण नहीं मिला है वरन भारत के स्वतन्त्रता संग्राम में जो स्त्रियों ने पुरुषों से कंधा से कंधा भिड़ाकर भाग लिया यह उसका ही फल है। गांधीजी के असहयोग तथा शान्तिमय अहिंसात्मक युद्ध आन्दोलन स्त्रियों के लिए वरदान सिद्ध हुए। गांधीजी ने स्वयं कहा था कि भारत की स्त्रियों में सहनशीलता व त्याग की भावना है, उसके कारण वे मेरे आन्दोलन में पुरुषों की अपेक्षा अधिक उपयुक्त सैनिक साबित हुई हैं। स्वतंत्रता संग्राम के समय जो जलूस निकलते थे तथा मीटिंगें होती थीं उनमें भारतीय नारी सदियों की परदे रूपी शृङ्खला को तोड़ कर शामिल हुई, छोटे-छोटे बच्चों को लेकर जेल गयीं, लाठी गोली खाई। इस समय जो वे बाहर निकलीं फिर वापस नहीं गईं। स्त्रियों की शिक्षा को भी इस आन्दोलनों से बहुत संबल मिला। स्त्रियों ने शिक्षा के महत्त्व को पहिचाना और अपनी पुत्रियों को पाठशाला भेजना प्रारम्भ किया। देहली जैसी नगरी में उस समय तक केवल दो कन्याओं के स्कूल थे—एक 'इन्द्रप्रस्थ' तथा दूसरा 'क्वीन-मेरी'। दसवीं कक्षा तक तो १९३० तक इनी गिनी छात्रायें ही पहुँचती थीं वे भी उच्च शिक्षित वर्ग (अधिकतर छात्रायें जाकर वकील तथा उच्च सरकारी अफसरों की ही होती थीं। स्त्रियों का कालिज एक भी न था। वे लड़कों के कालिजों में ही पढ़ती थीं। परन्तु १९३०–३२ के सत्याग्रह आन्दोलन के पश्चात् स्त्री शिक्षा में बाढ़ आनी प्रारम्भ हुई। आल इंडिया-वीमैन कांफ्रेंस का जन्म भी १९२८ में हुआ। उस समय मैं दसवीं कक्षा में थी।

पण्डित जवाहरलाल नेहरू भी स्त्रियों के अधिकारों के पक्षपाती थे। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् आपके प्रयास के के फलस्वरूप ही हिन्दू स्त्रियों को तलाक़ व माता-पिता की सम्पत्ति में भाग का अधिकार मिला। 'हिन्दू कोड' का सुधार हुआ। सरकारी नौकरीवाले लोगों को एक पत्नी के जीवित रहते दूसरी स्त्री से विवाह करने पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। हमारे संविधान में स्त्री, पुरुष के अधिकार समान हैं परन्तु हमारी पढ़ी लिखी बहनें भी अभी तक अपने अधिकारों से अभिज्ञ हैं। यह अवश्य शोचनीय है। आज भी माता-पिता तथा भाई अपनी पुत्रियों व बहनों को उनके अधिकारों से वंचित रखना चाहते हैं। उनका भाग देने में हिचकिचाते हैं और अधिकतर लोग इसी लिए अपनी 'विल' बना देते हैं। इसमें भी स्त्रियों का ही क़सूर अधिक है, माताएँ स्वयं पुरानरूढ़ि को छोड़ते सकुचाती हैं और अपनी सम्पत्ति पुत्र को ही देना चाहती हैं। जैसे मैंने पहले कहा बहुत सी स्त्रियों को तो अपने अधिकारों का ज्ञान ही नहीं है और धन-सम्पत्ति के मामले में पुरुष भी सहयोग देने को उद्यत नहीं हैं। इसके लिए भारतीय नारी को संघर्ष करना ही पड़ेगा। अन्त में मैं यही कहूँगी कि उच्च पद-प्राप्त स्त्रियों के कारण सभी स्त्रियों के सिर गर्व से ऊँचे हो गये हैं—चाहे वे भारतीय हों अथवा अन्य देशों की। यह बात शोचनीय है कि हमारे देश में स्त्री पुरुषों के अधिकारों व समानता प्राप्त करने का कोई झगड़ा नहीं है। श्रीमती इन्दिरा गांधी से जब कहा जाता है कि आप एक महिला प्रधान मंत्री हैं तो वह तुरन्त उत्तर देती हैं कि मैं यह ध्यान नहीं रखती हूँ कि मैं महिला हूँ या पुरुष। वास्तव में अपनी योग्यता के बल पर ही भारतीय नारियों ने उच्च पदों को सुशोभित किया है। परन्तु यह मानना पड़ेगा कि हमारे पुरुष वर्ग ने भी कोई बाधा उपस्थित नहीं की। इसका श्रेय उन्हें देना पड़ेगा। हमारी प्रधान मन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने जिस योग्यता से पद सँभाला है उससे पुरुष वर्ग स्वयं नत-मस्तक है। बँगला-देश की समस्या तथा भारत-पाक युद्ध का आपने जिस दृढ़ता से सामना किया तथा विजय पाई-उसके लिए आज संसार के अन्य देशों के राजनीतिज्ञ भी आपकी योग्यता के कायल हैं और उनमें आपका विशेष स्थान है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

2452

उद्यम, सदाचार एवं धार्मिक परम्पराओं के पोषक स्व० श्री गजाधरजी सोमानी

श्री नन्दकुमार सोमानी

हमारे शास्त्रों में उद्यम और उपाय से सम्बन्धित अनेक दृष्टान्त हैं और वे सब कपोल-कल्पित नहीं, अनुभवजन्य हैं। एक स्थान पर शास्त्रों ने कहा है--उपायेन हि यच्छक्यं, पराक्रमैः "अर्थात् जो कार्य उपाय करने से हो सकता है वह निरर्थक पराक्रम या बल प्रयोग करने से नहीं हो सकता। इसी प्रकार एक और स्थान पर कहा गया है--

"गच्छन् पिपीलिका याति योजनानाम् शतान्यपि
अगच्छन् वैनितेयो पि पदमेकम् न गच्छति।"

अर्थात् चींटी जैसा मन्द गतिवाला जीव भी यदि चलता रहे तो सैकड़ों योजन तक जा सकता है लेकिन गरुड़ जैसा अति वेगवान प्राणी भी यदि खड़ा रहे तो एक कदम की दूरी भी नहीं तय कर सकता।

.....और ये सभी सूक्तियाँ सोमानी परिवार पर सटीक बैठती हैं। सोमानी परिवार के सदस्य निरन्तर उपाय और उद्यम करते रहे और आज वे सफलता तथा सम्पन्नता के बहुत ऊँचे शिखर पर खड़े हैं।

सोमानी परिवार के पूर्व पुरुष श्री लक्ष्मीनारायण सोमानी ने अपने संयम, धैर्य, नीति, सदाचार और अथक उद्यम से जो वृक्ष लगाया था, उनके सुपुत्र श्री हजारीमलजी ने उसे और सींचा, बड़ा किया और फलवान बनाया।

उन्हीं सेठ हजारीमल के ज्येष्ठ पुत्र श्री गजाधर सोमानी ने भी उसी उद्यम, सदाचार और धार्मिक परम्परा का पूरे मनोयोग के साथ पालन किया। सेठ गजाधर सोमानी का जन्म १३ अप्रैल, १९०७ में राजस्थान के नागौर जिले के एक छोटे से गाँव मौलासर में हुआ। कलकत्ता में हाईस्कूल तक आपने शिक्षा प्राप्त की। फिर आप अपने पूज्य पिताजी के सुयोग्य निर्देशन और पवित्र आशीर्वाद के साथ व्यवसाय में प्रविष्ट हो गये।

जब गजाधरजी ने व्यवसाय के क्षेत्र में प्रवेश किया तब आपके परिवार में चाँदी, सोना, हैसियन, जूट और कपड़ा आदि का व्यापार होता था।

सन् १९३४ में गजाधरजी सोमानी ने अपना कार्यक्षेत्र कलकत्ता से बम्बई बनाया। उन्होंने बांगड़ परिवार के साथ मिलकर श्रीनिवास काटन मिल्स लि० की स्थापना की। औद्योगिक क्षेत्र में इस परिवार का यह पहला कदम था। इसके बाद कदम पर कदम उठते गये। सोमानीजी ने अपनी व्यापारिक प्रतिभा, कार्य-कुशलता और संकल्पनिष्ठा के बल पर इस क्षेत्र में बहुत तेजी से प्रगति की। इसी प्रगति का परिणाम था—श्रीनिवास काटन मिल्स के अतिरिक्त श्री मधुसूदन मिल्स लि०, श्री गोपाल इण्डस्ट्रीज, श्री दिग्विजय सीमेंट कं० लि०, वेस्ट कोस्ट पेपर मिल्स लि० और आन्ध्रप्रदेश पेपर मिल्स लि० हैं।

श्री गजाधर सोमानी ने जीवन के सभी क्षेत्रों का अनुभव प्राप्त किया। इसीमें राजनैतिक क्षेत्र भी है। आप सन् १९५१-५२ से लेकर १९६१-६२ तक लोकसभा के सदस्य रहे। लोकसभा में पहले आप एक स्वतन्त्र प्रत्याशी थे। बाद में सन् १९६१–६२ में आप कांग्रेस प्रत्याशा के रूप में वहाँ पहुँचे। आप भारतीय संसद में देश की आर्थिक तथा व्यापारिक समस्याओं पर सक्रिय रूप से भाग लेते रहे। आप राष्ट्रीय समस्याओं और हितों को बहुत व्यापक और सन्तुलित दृष्टि से देखते थे और अपने महत्त्व-पूर्ण सुझाव भी देते थे। वह लोकसभा की कई समितियों और उपसमितियों के सदस्य भी थे।

श्री गजाधरजी सोमानी कई वर्षों तक बम्बई मिल मालिक संघ के संचालक मण्डल के सदस्य रहे और तीन बार अध्यक्ष चुने गये। अनेक वर्षों तक आप अखिल भारतीय सूती मिल संघ तथा नई दिल्ली की फ़ेडरेशन आफ इण्डियन चेम्बर्स आफ कामर्स एण्ड इण्डस्ट्रीज की कमेटी के भी सदस्य रहें। गजाधरजी बम्बई की व्यापारिक संस्था इण्डियन मर्चेन्ट्स चेम्बर तथा वेस्टर्न इण्डिया चेम्बर आफ कामर्स लि०, जयपुर के राजस्थान चेम्बर आफ कामर्स, स्टेट बैंक आफ बीकानेर एण्ड जयपुर और सीमेन्ट मेन्युफेक्चर्स के तीन वर्षों तक अध्यक्ष रहे थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस समय तत्कालीन प्रधान मंत्री श्री लालबहादुर शास्त्री ने सीमेंट का विनियंत्रण किया था। उस विनियंत्रण की देखभाल के लिए "कोको" (सीमेंट एलोकेशन एण्ड को-आर्डीनेशन आर्गनाइजेशन) की स्थापना की गयी थी और श्री गजाधरजी को उसका अध्यक्ष बनाया गया था। आपके कुशल निर्देशन में सीमेंट का वितरण सन्तोषजनक रहा। आप बम्बई टेक्सटाइल रिसर्च एसोसिएशन की शासकीय परिषद् के भी सदस्य रहे थे। इस तरह देखा जाय तो आप देश की अनेक प्रमुख व्यापारिक संस्थाओं के संचालन में महत्त्वपूर्ण योगदान देते रहे।

राजस्थान के आर्थिक विकास में श्री गजाधरजी सोमानी की विशेष रुचि थी। साथ ही सांस्कृतिक, शैक्षणिक, सामाजिक और धार्मिक क्षेत्रों में भी आप महत्त्वपूर्ण उत्साह के साथ कार्य करते रहे। लोकसभा में भी आपने समय-समय पर राजस्थान की समस्याओं को उठाया था। उन्होंने अपने प्रयत्नों से राजस्थान में अपने ढंग का अनोखा और पहला ग्राम-सुधार-केन्द्र अपनी जन्मभूमि मौलसर में स्थापित करवाया था। यह भी आपके ही प्रयत्नों का परिणाम है कि मौलसर अब एक अच्छा खासा आदर्श गाँव हो गया है। वहाँ कई स्कूल हैं, अस्पताल है, बैंक है, बिजली है, नल हैं तथा अन्य अनेक आधुनिक साधन हैं। गाँव के प्रत्येक हरिजन को एक पक्का मकान परिवार ने बनाकर दिया है।

श्री गजाधरजी सोमानी ने अपने पूज्य पिताजी वै० वा० श्री हजारीमलजी सोमानी की पुण्य स्मृति में बम्बई भारतीय विद्या भवन के तत्त्वावधान में आर्ट्स तथा साइन्स कालेज की स्थापना की थी। बाद में आपने बम्बई के उपनगर बान्द्रा में भी "चेतना ट्रस्ट" के अन्तर्गत श्री हजारीमल सोमानी कालेज आफ कामर्स एण्ड इकोनामिक्स की स्थापना की, जिसका उद्घाटन केन्द्र के वरिष्ठ माननीय मंत्री श्री यशवन्तराव चाह्वाण ने किया था। आप बम्बई के कई महत्त्वपूर्ण धार्मिक ट्रस्टों के भी मैनेजिंग ट्रस्टी थे।

बम्बई तथा राजस्थान के अतिरिक्त भी श्री सोमानीजी ने भारत के अन्य भागों में भी सार्वजनिक सेवायें कीं। आप अखिल भारतवर्षीय मारवाड़ी सम्मेलन के अध्यक्ष भी रह चुके थे। आप अखिल भारत गौ सेवक समाज के अध्यक्ष थे। अकालपीड़ित क्षेत्रों की सहायता के लिए केन्द्रीय राहत कोष के आयोजन में भी आपने सक्रिय भाग लिया।

सन् १९६५ में भूतपूर्व प्रधान मंत्री स्व० श्री लालबहादुर शास्त्री की अपील पर आपने अपने प्रतिष्ठानों द्वारा लगभग ५००० तोला सोना भारतीय रक्षा कोष में दिया। उस समय शास्त्रीजी ने कहा था……

"मुझे इस बात की खुशी है कि श्री सोमानीजी से इस बारे में जब मेरी बातचीत हुई और मैंने उनसे निवेदन किया कि इस काम को उन्हें उठाना चाहिए और अपने साथियों से बातचीत करनी चाहिये तो वह उसे करने के लिए सहमत हो गये और बहुत जल्द इसे कर भी दिखाया। यह जो सोना आज यहाँ दिया गया है वह उसी का अच्छा नतीजा है। इसमें कोई शक नहीं कि सोना और भी बहुत से लोगों ने दिया है मगर इस तरह से एक संगठित तरीके पर और इतनी मात्रा में मालदार आसामियों से पहली बार मिला है…"

श्री गजाधर सोमानी विश्व हिन्दू परिषद् के कार्याध्यक्ष थे। इस परिषद् की स्थापना सन् १९६५ में प्रयाग के कुम्भ मेले के अवसर पर हिन्दू जाति के विभिन्न मतों एवं शाखाओं के धर्माचार्यों और विशिष्ट महानुभावों के सहयोग से की गयी थी। इस संस्था का ध्येय विश्व भर के हिन्दुओं को अपनी प्राचीन सभ्यता, संस्कृति और धर्म के आधार पर एक सूत्र में बाँधना है। गजाधरजी के मार्ग-दर्शन में इसकी शाखाएँ विश्व के कई देशों में स्थापित हो चुकी हैं।

आप चतुर्धाम के वेद भवन न्यास के ट्रस्टी थे। इस संस्था ने चारों धामों में वेद भवन का निर्माण किया है। श्री बांगड़-सोमानी प्रतिष्ठान के सहयोग से श्री द्वारका में एक वेद भवन की स्थापना हुई थी, जिसका उद्घाटन भारत के उपराष्ट्रपति श्री गोपालस्वरूप पाठक ने २४ अगस्त, १९७१ को किया था। इसी प्रतिष्ठान के सहयोग से मैसूर के गोकर्ण स्थान में भी एक नये वेद भवन के निर्माण की योजना है।

श्री गजाधरजी भारती परिषद्, प्रयाग के अध्यक्ष थे। संस्था ने संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान पं० राजराजेश्वरजी को अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट किया और देश के सात संस्कृत पण्डितों को महामहिमोपाध्याय की उपाधि से अलंकृत किया गया। "भारत धर्म महामण्डल" ने श्री गजाधरजी सोमानी को "धर्मरत्न" की उपाधि से विभूषित किया।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री सोमानीजी ने सन् १९६९-७० में श्रीनिवास उद्योग प्रतिष्ठान की ओर से बेकार ग्रेजुएट इंजीनियरों की ट्रेनिंग स्कीम प्रारम्भ की थी, जिसमें १०० बेकार इंजीनियरों को लिया गया था। यह योजना ७०-७१ में भी चालू रही।

गत वर्ष १ नवम्बर, १९७२ को भारत की प्रधान मंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने बम्बई में श्री हजारीमल सोमानी मैमोरियल ट्रस्ट के अनुदान से निर्मित श्री हजारीमल सोमानी आरोग्य केन्द्र का उद्घाटन किया और श्री सोमानी जी की उदार भावनाओं की प्रशंसा की।

सज्जन पुरुषों के स्वभाव के सन्दर्भ में संस्कृति में कहा गया है—

"उपकर्तुं प्रियं वक्तुं कर्तुं स्नेहमकृत्रिमम्।
सज्जनानाम् स्वभावोऽयं केनेन्दः शिशिरीकृतम्।"

अर्थात् उपकार करना, प्रिय बोलना और स्वाभाविक स्नेह करना सज्जन पुरुषों का स्वभाव है। चन्द्रमा को किसने शीतल किया है? वह तो स्वभाव से ही शीतल है।

संस्कृत की यह उक्ति श्री गजाधरजी सोमानी पर पूरी तरह खरी उतरती है। वह स्वभाव से ही परोपकारी, प्रिय भाषी और स्नेही व्यक्ति थे। लोककल्याण की भावना उनमें कूट-कूट कर भरी हुई थी। दस वर्ष पूर्व श्री सोमानी जी को हृदय का दौरा पड़ा था। उसके बाद बराबर उस रोग का आक्रमण हुआ लेकिन उन्होंने इसकी चिन्ता नहीं की। वह जानते थे कि यह भौतिक शरीर तो नश्वर है ही इसलिए इस शरीर से जितना सेवाकार्य और धर्मकार्य हो सके, कर लिया जाये। दो-ढाई वर्ष पूर्व श्री गजाधरजी की प्रेरणा से "सोमानी सन्दर्भ" ग्रन्थ प्रकाशित हुआ था। इस ग्रन्थ में सोमानी परिवार की अनन्य धार्मिक, सांस्कृतिक और सार्वजनिक सेवाओं और सोमानी परिवार के सदस्यों के सद्गुणों तथा परोपकारमूलक सेवाओं का विशद परिचय दिया गया है।

इस ग्रन्थ में श्री गजाधरजी सोमानी आत्म-निवेदन के रूप में विविध विषयों और प्रसंगों पर अपने विचार व्यक्त किये हैं। संकल्पमय जीवन के सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है—"व्यक्तिगत जीवन की पृष्ठभूमि पर मैं सर्वप्रथम श्रद्धा, विश्वास और आस्तिकता की भावनाओं को जागृत करने पर जोर देना चाहता हूँ। आज का मानव प्रत्येक विषय को तर्क एवं बुद्धि की कसौटी से प्रमाणित करना चाहता है। साथ ही आज मानव जीवन इतना कोलाहल-पूर्ण, क्षणभंगुर और अस्थिर हो गया है कि ऐसे तर्कसंगत अध्ययन के लिए समय, श्रद्धा एवं साधन का भी पूर्ण अभाव है। इसलिए यह आवश्यक है कि अपने प्राचीन आदर्शों के प्रति श्रद्धा एवं विश्वास को पुनर्जीवित किया जाये। धर्म के कुछ तो ऐसे निर्विवाद अंग हैं जो सर्वमान्य एवं सार्वभौम हैं और जिनके विषय में किसी तरह के मतभेद की गुंजाइश नहीं है जैसे—धृतिः क्षमाद्धमो स्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः। धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम्॥

अब रहे अपने धर्म के कुछ विशिष्ट अनुष्ठान तथा तदनुवर्ती उपासना-प्रणालियाँ। इन सबको भिन्न रुचियों के अनुसार स्वतन्त्रता है। हमारे यहाँ जितने भी शास्त्र-सम्मत अनुष्ठान हैं, उनके पीछे नितान्त वैज्ञानिक दृष्टि-कोण हैं—हर एक व्यक्ति को यह समझने और अनुभव करने की आवश्यकता है कि इन दैवी अनुष्ठानों के पीछे एक इतिहास है। भगवान के अवतार, ऋषि, महर्षि तथा सन्तों एवं आचार्यों ने अपने दीर्घकालीन अनुभव, तपस्या एवं दिव्य दृष्टि से इन अनुष्ठानों की पृष्ठभूमि में दिव्य साहित्य का सृजन किया है कि इनके प्रति कुतर्क की भावना छोड़कर श्रद्धा-विश्वास की भावना रखने में ही मानव का कल्याण निहित है। इहलौकिक दृष्टियों से ये अनुष्ठान मंगलप्रद हैं। हमारे परिवार को जब कभी कोई बीमारी अथवा विपत्ति का सामना करना पड़ा, तब ऐसे उदाहरण मौजूद हैं कि उस संकट के निवारणार्थ किये गये अनुष्ठानों से सफलता मिली। भगवान के दरबार में सच्चे हृदय से की गयी प्रार्थना कभी निष्फल नहीं होती। इस-लिए विशुद्ध हृदय से भगवत् प्रार्थना एवं अनुष्ठान एक सुपात्र एवं अधिकारी व्यक्ति से कराने का उपक्रम किया जाये तो उसका सुखद फल अवश्य मिलता है। श्रद्धा हृदय की भाव सम्पत्ति है किन्तु अन्ध श्रद्धा के मूल में अविवेक एवं अज्ञान समाविष्ट रहता है। अज्ञान और अविवेक व्यक्ति, समाज और देश के लिए घातक है। देश में अन्ध-श्रद्धा के कारण चलनेवाले कतिपय अनुष्ठान हानिप्रद सिद्ध हो रहे हैं। छल, कपट, पाखण्ड के तत्त्व हर युग में न्यूनाधिक रूप में क्रियाशील रहते हैं। वातावरण के प्रभाव से इनकी घटत-बढ़त होती रहती है। आवश्यकता है हमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्दर विवेक बुद्धि जगाने की। हमारी श्रद्धा विवेक के धरातल पर हो, अविवेक पर आधारित न रहे। हमें चाहिए कि कोई भी धार्मिक अनुष्ठान, कृत्य आरम्भ करने से पहले पूर्ण विवेक से काम लें और पात्रों को बाहर-भीतर से परख कर कार्यारम्भ करें। ऐसा करने पर ही हम वैज्ञानिक तथ्य और तर्क एवं संस्कृति व संस्कार जन्य श्रद्धा का सुन्दर समन्वय करने में सफल हो सकेंगे।"

श्री सोमानीजी के इन विचारों से स्पष्ट है कि वह धर्म के प्रति पूर्ण निष्ठावान होते हुए भी अन्ध श्रद्धा और धर्मान्धता के विरोधी थे। सोमानीजी भारतीय परम्परा और विचारधारा तथा वेशभूषा के प्रबल समर्थक थे और स्वयं भी इसे अपनी जिन्दगी में ढाल चुके थे। वह राष्ट्रीय हितों को सर्वोपरि मानते थे। उनका विचार था कि यदि राष्ट्र होगा तो हम भी होंगे। राष्ट्र नहीं रहेगा तो हम भी नहीं रहेंगे। इसलिए उन्होंने देश के व्यापारियों से कहा था—"अब प्रजातन्त्र के जमाने में यह आवश्यक हो गया है कि व्यापारिक संस्थाओं का संगठन व्यापक बनाया जाये तथा लघु एवं मध्यम वर्ग के व्यापारियों की समस्याओं के समाधान के लिए भी विशेष प्रयत्न किये जायें। आजकल व्यापारी समाज के प्रति देश में कट्टरता और रोष की भावना पैदा होगयी है। उन पर मुनाफाखोरी तथा चोरबाजारी आदि के दोषारोपण होते रहते हैं। इस तरह के दोषारोपण में चाहे कितनी ही अतिशयोक्ति हो, परन्तु व्यापारी समाज के नैतिक स्तर को भी सुधारने का निरन्तर प्रयत्न होता रहना चाहिये। समाजवादी अर्थ व्यवस्था में व्यापारी समाज का भविष्य तभी सुरक्षित रह सकता है जबकि व्यापारियों की सभी प्रवृत्तियाँ देश एवं समाज की सेवा भावना से ओतप्रोत हों। इसलिए राष्ट्र या समाजविरोधी तत्त्वों के विरुद्ध व्यापारी समाज को सचेत रहना चाहिए तथा अपनी सेवाओं से समाज की सद्भावना का पोषण करते रहना चाहिए। उद्योग के संचालन के लिए स्थापित कम्पनियों का उत्तरदायित्व अपने शेयर होल्डरों के अतिरिक्त मजदूरों एवं आम समाज के प्रति क्या होना चाहिए, इस ओर भी ध्यान आकृष्ट होना चाहिए। देश में इस समय जो भयंकर दरिद्रता फैली हुई है वह समाज के राजनीतिक वातावरण में कभी भी हिंसापूर्ण क्रान्ति उत्पन्न कर सकती है। इसलिए व्यापारी समाज को अधिक जागरूक होकर देशवासियों के प्रति अपने कर्त्तव्य का सक्रिय रूप से पालन करना चाहिए।

ऐसे उदारचेता श्री गजाधरजी सोमानी का सूक्ष्म और अपार्थिव शरीर ८ जनवरी, १९७३ को अपने स्थूल और पार्थिव शरीर को छोड़कर सद्गति प्राप्त कर गया। आपके निधन से राष्ट्र एक ऐसे महान् व्यक्तित्व की सेवाओं से वंचित रह गया है जिसे दिन रात राष्ट्र और समाज, विशेष रूप से हिन्दू समाज की चिन्ता रहती थी। हमें खेद है कि यह दिव्य ज्योति बड़ी जल्दी हमारे बीच से विलीन हो गयी। राष्ट्र का कोई ऐसा अंग नहीं जिसे सोमानीजी ने न छुआ हो। आपके निधन से राष्ट्र और समाज की बहुत क्षति हुई है। श्री गजाधरजी सोमानी अपने पूर्वजों और परिवार की एक महान और आदर्श परम्परा छोड़ गये हैं। हमें आशा है उनके वंशधर उस परम्परा का निर्बाध आचरण और निर्वाह करेंगे और करते रहेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाराजाधिराज श्री हर्षवर्द्धन और उनका कुण्डधानी ताम्रपत्र

श्री फूलचन्द्र त्रिपाठी वियोगी

गुप्त-साम्राज्य के छिन्न-भिन्न हो जाने के बाद भारत की राजनैतिक एकता एक बार फिर समाप्त हो गई, और देश के विभिन्न भागों में फिर छोटे-छोटे राजवंशों की स्थापना हो गई, जिनमें लगातार संघर्ष चलता रहता था। देश में कोई ऐसी प्रबल शक्ति न थी जो देश की रक्षा कर सकती और इन छोटे-छोटे राज्यों पर नियंत्रण रखकर देश को सुख तथा शान्ति प्रदान कर सकती। जिस समय हूणों के आक्रमण हो रहे थे और गुप्त-साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो रहा था उन्हीं दिनों छठी शताब्दी के आरम्भ में थानेश्वर में एक नये राजवंश की स्थापना हुई। इस वंश का संस्थापक पुष्यभूति था जो भगवान् शिव का परम भक्त था। इस वंश के प्रारम्भिक शासकों के विषय में भारतीय इतिहास के विद्वानों को अभी तक अधिक जानकारी नहीं हुई है। पुष्यभूति के उपरान्त नरवर्द्धन, राज्यवर्द्धन तथा आदित्यवर्द्धन राजे हुए जो स्वाधीन शासक न थे वरन् किसी स्वतंत्र शासक के सामन्त के रूप में शासन कर रहे थे।

प्रभाकरवर्द्धन इस वंश का प्रथम स्वतंत्र शासक था, जिसने परम भट्टारक तथा महाराजाधिराज की उपाधि धारण की। यह बड़ा ही प्रतापी शासक था और गुर्जरों के विरुद्ध उसने सफलतापूर्वक युद्ध किया था। प्रभाकर के के तीन सन्तानें थीं—दो पुत्र और एक कन्या। उसके बड़े पुत्र का नाम राज्यवर्द्धन और छोटे का हर्षवर्द्धन था। उसकी कन्या का नाम राज्यश्री था, जिसका विवाह कान्यकुब्ज (कन्नौज) के मौखरी राजा ग्रहवर्मन के साथ हुआ था। सन् ६०५ ई० में प्रभाकरवर्द्धन की मृत्यु हो गई और उसके स्थान पर उसका ज्येष्ठ पुत्र राज्यवर्द्धन सिंहासन पर बैठा, परन्तु उसी समय उसे यह सूचना मिली कि मालवा के राजा देवगुप्त ने मौखरी-राज्य पर आक्रमण कर दिया है और ग्रहवर्मन की हत्या कर राज्यश्री को बन्दीगृह में डाल दिया है। इस दुर्घटना का समाचार पाते ही राज्यवर्द्धन ने शासन का भार अपने छोटे भाई हर्षवर्द्धन को सौंपकर स्वयं एक विशाल सेना के साथ देवगुप्त को दंड देने के लिए प्रस्थान किया। राज्यवर्द्धन ने देवगुप्त को युद्ध में परास्त किया और उसके राज्य को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। गौड़ (बंगाल) के राजा शशांक ने, जो देवगुप्त का मित्र था, विश्वासघात करके राज्यवर्द्धन की हत्या करा दी और कन्नौज पर अपना अधिकार कर लिया। उसने राज्यश्री को मुक्त कर दिया जो विन्ध्य की पहाड़ियों में अज्ञात स्थान को चली गयी। राज्यवर्द्धन की मृत्यु के बाद उसका छोटा भाई हर्षवर्द्धन थानेश्वर के सिंहासन पर बैठा। हर्ष के सिंहासनारोहण की ओर संकेत करते हुए इतिहास के प्रसिद्ध विद्वान् डा० रमाशंकर त्रिपाठी ने लिखा है, "छठीं शताब्दी ईसवीं का प्रारम्भ राजनैतिक मंच पर एक अलौकिक व्यक्ति के आगमन से होता है और यद्यपि हर्षवर्द्धन में न तो अशोक का उच्चादर्श था और न चन्द्रगुप्त मौर्य का सैनिक कौशल, फिर भी वह उन्हीं दोनों महान् सम्राटों की भाँति इतिहासकारों की दृष्टि को आकृष्ट करने में सफल हुआ है।"

सन् ६०६ ई० में हर्षवर्द्धन सिंहासनारूढ़ हुआ। इस समय उसकी अवस्था केवल १६ वर्ष की थी। उसने तुरन्त अपनी बहिन की खोज के लिए प्रस्थान कर दिया। वह विन्ध्याचल के वनों में गया, जहाँ राज्यश्री इधर-उधर भटक रही थी। आपत्तियों से तंग आकर राज्यश्री एक चिता बनाकर अपने को अग्नि को समर्पित करने जा रही थी कि हर्ष वहाँ पहुँच गया और उसकी जान बचा ली। वह राज्यश्री को लेकर कन्नौज चला गया। ऐसा प्रतीत होता है कि हर्ष से भयभीत होकर शशांक ने कन्नौज को छोड़ दिया था। ग्रहवर्मन के कोई सन्तान न थी और न कोई दूसरा अधिकारी ही था। अतएव मन्त्रियों तथा जनता के अनुरोध करने पर हर्ष ने कन्नौज का भी सिंहासन स्वीकार कर लिया। इस प्रकार हर्ष थानेश्वर तथा कन्नौज दोनों ही का शासक बन गया और उसकी शक्ति में बड़ी वृद्धि हो गई। हर्ष ने कान्यकुब्ज को अपनी राजधानी बना लिया और वहीं से शासन करने लगा।

थानेश्वर तथा कन्नौज दोनों का शासक हो जाने के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारण हर्ष की शक्ति में बड़ी वृद्धि हो गई थी। उसके पास एक विशाल सेना भी थी। इस सेना की सहायता से उसने दिग्विजय कर फिर भारत की राजनैतिक एकता के स्थापित करने का निश्चय कर लिया। प्रसिद्ध इतिहासकार स्मिथ महोदय ने हर्ष की विजय योजनाओं की प्रशंसा करते हुए लिखा है, "सम्पूर्ण भारत को एक छत्र के नीचे लाने के उद्देश्य से उसने अपनी सारी शक्ति तथा योग्यता को एक सुव्यवस्थित विजय-योजना के कार्यान्वित करने में लगा दिया।"

अपनी विशाल सेना के बल से सौराष्ट्र अर्थात् काठियावाड़ के मैत्रकवंशी राजा का राज्य भी जिसकी राजधानी बल्लभी थी हर्ष ने युद्ध करके जीत लिया। यह राज्य उत्तर के कन्नौज और दक्षिण के चालुक्य राज्यों के मध्य में स्थित था। अतएव सैनिक दृष्टिकोण से इसका बहुत बड़ा महत्त्व था। इन दिनों ध्रुवसेन द्वितीय बल्लभी में शासन कर रहा था। हर्ष ने जब ध्रुवसेन के राज्य पर आक्रमण किया तो ध्रुवसेन हार गया पर युद्ध के बाद ही उससे हर्ष से मैत्री हो गई और हर्ष ने अपनी पुत्री का विवाह ध्रुवसेन के साथ कर दिया। सम्भवतः ध्रुवसेन ने हर्ष की अधीनता स्वीकार कर ली और उसीके सामन्त के रूप में वह फिर वल्लभी में शासन करने लगा।

वल्लभी राज्य के दक्षिण में चालुक्य वंश महाराष्ट्र में शासन कर रहा था। पुलकेशिन द्वितीय इस वंश का सबसे अधिक प्रतापी तथा शक्तिशाली शासक था। उसने अपने पड़ोसी राज्यों को नतमस्तक कर अपनी शक्ति को अत्यन्त सुदृढ़ बना लिया था। लगभग ६२० ई० में हर्ष ने पुलकेशिन के राज्य पर आक्रमण कर दिया। पुलकेशिन ने डट कर हर्ष का सामना किया और उसे युद्ध में परास्त कर दिया। निराश होकर हर्ष नर्मदा नदी के तट से लौट आया और यही उसके राज्य की सीमा बन गयी।

हर्ष को अपनी पूर्व-विजय-यात्रा में भी बड़ी सफलता प्राप्त हुई। उसने मगध पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया और सन् ६४१ ई० में उसने मगध के राजा की उपाधि धारण की। कामरूप (आसाम) के राजा भास्करवर्मन से उसकी मैत्री हो गयी। यद्यपि हर्ष अपने सबसे बड़े शत्रु शशांक के राज्य का अन्त न कर सका परन्तु बाद में उसके मित्र भास्करवर्मन ने गौड़ राज्य का अन्त कर दिया।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि हर्ष का साम्राज्य उत्तर में हिमालय पर्वत से दक्षिण में नर्मदा नदी के तट तक और पूर्व में आसाम से पश्चिम में सौराष्ट्र तक फैला था। परन्तु इस सम्पूर्ण प्रदेश में उसका प्रत्यक्ष शासन न था। कुछ भाग में वह स्वयं शासन करता था और कुछ में उसके सामन्त शासन करते थे।

हर्ष न केवल एक महान् विजेता था वरन् वह एक कुशल शासक भी था। डा० रमेशचन्द्र मजूमदार ने हर्ष की प्रशासकीय प्रतिभा की प्रशंसा करते हुए लिखा है: "इसमें सन्देह नहीं कि वह भारत के महान्तम सम्राटों में एक था। एक उथल-पुथल के काल में उसे दो विशृङ्खलित राज्यों का शासन करना पड़ा। वह उत्तरी भारत के एक विशाल क्षेत्र में बड़े अंश में शान्ति और सुव्यवस्था स्थापित करने में सफल रहा। उसने थोड़े-बहुत परिवर्तनों के साथ गुप्त-कालीन शासन-व्यवस्था का ही अनुसरण किया था। उसके शासन की रूपरेखा निम्नांकित थी:—१— केन्द्रीय शासन—हर्ष की शासनव्यवस्था राजतन्त्रात्मक थी और सम्राट् स्वयं केन्द्रीय शासन का प्रधान था। शासन के विभिन्न भागों पर वह अपनी कड़ी दृष्टि रखता था। युद्ध के समय वह स्वयं सेनाध्यक्ष का पद ग्रहण करता था और रण-क्षेत्र में अपनी सेना के साथ उपस्थित रहता था। शान्ति के समय सम्राट् अपनी प्रजा के हित के कार्यों के करने में संलग्न रहता था। अपनी प्रजा की दशा को जानने के लिए सम्राट् अपने राज्य के विभिन्न भागों में यात्रा किया करता था। सम्राट् का सारा समय धार्मिक कार्यों के करने तथा शासन को सुचारु रीति से चलाने में व्यतीत होता था। सम्भवतः सम्राट् को सहायता देने के लिए एक मन्त्रि-परिषद् भी होती थी। यह मन्त्री सचिव अथवा अमात्य कहलाते थे।

अपनी दिग्विजय को सफल बनाने के लिए हर्ष ने एक विशाल सेना का संगठन किया था। इस सेना में हाथी, घोड़े तथा पैदल सैनिक हुआ करते थे। हर्ष ने रथ-सेना की व्यवस्था नहीं की थी। यद्यपि सम्राट् स्वयं अपनी सेना का सेनाध्यक्ष होता था और रण-क्षेत्र में उसका संचालन किया करता था; परन्तु उसका एक बड़ा सेनापति भी होता था जो महाबलाधिकृत कहलाता था। सेना के विभिन्न अंगों के लिए अलग-अलग सेनापति होते थे।

सम्राट् हर्ष न्याय विभाग का सर्वोच्च न्यायाधीश था

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और अपराधियों को दंड दिया करता था। हर्ष के शासन-काल में दण्ड-विधान बड़ा कठोर था यद्यपि साधारण अपराधों के लिए जुर्माने का दण्ड दिया जाता था परन्तु कुछ अपराधों के लिए अंग-भंग का दण्ड दिया जाता था और अपराधियों के लिए हाथ, नाक, कान काट लिये जाते थे। राजद्रोहियों को जीवन भर के लिये जेल में बन्द कर दिया जाता था। कुछ अपराओं के लिए लोगों को नगर से निकाल दिया जाता था और जंगलों में भेज दिया जाता था। दण्ड-विधान की कठोरता के कारण अपराध कम होते थे और लोग शान्तिपूर्वक जीवन व्यतीत किया करते थे। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि सड़कें चोरों-डाकुओं से पूर्ण-रूप से सुरक्षित न थीं, क्योंकि चीनी पर्यटक ह्वेनसांग कई बार डाकुओं के चक्कर में पड़ गया था।

महाराजाधिराज हर्ष का साम्राज्य अत्यन्त विशाल था। फलतः हर्ष ने अपने साम्राज्य को कई प्रान्तों में विभक्त कर रक्खा था। यह प्रान्त 'भुक्ति', 'देश' आदि नामों से पुकारे जाते थे। भुक्ति के शासक राजस्थानीय, राष्ट्रीय, उपरिक आदि कहलाते थे। इन पदों पर प्रायः राज-कुल के राज-कुमार नियुक्त किये जाते थे। प्रत्येक प्रान्त कई जिलों में विभक्त रहता था। यह जिले 'विषय' कहलाते थे और इनका शासक विषयपति कहलाता था। शासन की सबसे छोटी इकाई गाँव होता था। गाँव के सभी मामलों की देख-भाल गाँव के प्रतिष्ठित लोग किया करते थे जो महत्तर कहलाते थे। इनके अतिरिक्त गाँव के प्रबन्ध के लिए 'ग्रामिक' भी होता था।

हर्ष बड़ा ही उदार शासक था। अतएव वह अपनी प्रजा से उपज का केवल छठा भाग लेता था। आयात-कर भी बहुत कम था जो सीमा-स्थित चुङ्गीघरों में वसूल किया जाता था। राज्य की आय का एक बहुत बड़ा भाग विद्वानों को पुरस्कार देने, धार्मिक कृत्यों तथा विभिन्न सम्प्रदायों को दान-दक्षिणा देने में व्यय किया जाता था।

सन् ६०६ ई० हर्षवर्द्धन राजसिंहासन पर बैठे थे। उन्होंने राज्यारोहण के वर्ष से हर्ष सम्वत् का आरम्भ किया था। इस प्रकार सन् ६३१ ई० में अपनी विशाल सेना के साथ उन्होंने अपने साम्राज्य के पूर्वी भाग की प्रजा का हाल जानने के लिए यात्रा की थी। उनका एक राज पड़ाव श्रावस्वती भुक्ति के अन्तर्गत **कुण्डधानी विषय** (जिले) के **सोम कुण्डिक** ग्राम में पड़ा था। **सोम कुण्डिक** ग्राम के पास ही कपित्थक घाट था जहाँ नदी के तट पर स्थित नौका, हाथी और अश्व से युक्त स्कन्धावार (राजपड़ाव) था।

इस ताम्रपत्र में आये हुए प्रमुख नाम श्रावस्ती भुक्ति (सहेत-महेत) कुण्डधानी विषय (सरयू नदी के पास स्थित तप्पा कुड़हनी या कुड़हन, तहसील घोसी, जिला आजमगढ़, उत्तर प्रदेश) और सोमकुण्डिक ग्राम हैं।

श्रावस्ती भक्ति—प्राचीन समय में उत्तर प्रदेश का वर्तमान गोंडा जिला उत्तर कौशल राज्य का अंग था। श्री रामचन्द्रजी के स्वर्गारोहण के बाद उत्तर कौशल की राजधानी श्रावस्ती हुई और दक्षिण कौशल की राजधानी कुशावती हुई। श्रावस्ती का नाम उसके नष्ट-भ्रष्ट हो जाने के बाद कई शताब्दियों तक "सहेत-महेत" प्रचलित रहा। सहेत-महेत में कई मील तक प्राचीन श्रावस्ती राज्य के भग्नावशेष फैले हुए हैं। ब्रिटिश शासन में श्रावस्ती में भारतीय पुरातत्त्व विभाग ने काफी खुदाई कराई और बहुत सी पुरातात्त्विक सामग्रियाँ प्राप्त कीं। प्राचीन शिलालेखों से श्रावस्ती नगर की स्थिति ठीक हो गई। राजा महेन्द्रपाल (७६१-७९२) और भवगुप्त द्वितीय (११वीं सदी) के ताम्रपत्रों में भी श्रावस्ती का नाम आया है। बुद्धकाल में श्रावस्ती बौद्ध तीर्थ था।

कुण्डधानी विषय—श्रावस्ती भुक्ति के अन्तर्गत जो कुण्डधानी विषय का नाम आता है उसकी खोज मैंने १९५७ ई० में कर दी थी। अन्त में मैंने जो स्थान इस नाम का पाया वह पूर्वी यू० पी० के आजमगढ़ जिले की घोसी तहसील के पश्चिमी भाग में छोटी सरयू के किनारे स्थित "तप्पा कुड़हनी या तप्पा कुड़हन" है। यहाँ एक प्राचीन टीला है जिसकी यदि खुदाई की जाय तो पुरातात्त्विक वस्तुएँ अधिकाधिक प्राप्त हो सकती हैं जिसके द्वारा कुण्ड-धानी पर प्रकाश पड़ सकता है। पूर्वी यू० पी० के अन्य किसी जिले में इस नाम का कोई नगर, कस्बा या शहर नहीं है।

सोमकुण्डिका ग्राम—आजमगढ़ जिले की घोसी तहसील से ५ मील पूर्व घोसी मधुबन रोड पर स्थित "कुण्डाशरीफ" ग्राम हो सकता है। यहाँ से ४ मील पूर्व वह स्थान है जहाँ से यह ताम्रपत्र प्राप्त हुआ था। ताम्रपत्र जहाँ से प्राप्त हुआ था वहाँ उन विद्वान् ब्रह्मचारियों की कुटियाँ रही होंगी या यह ताम्रपत्र किसी प्रकार कंकराडीह स्थित विशेनवंशी मल्ल राजाओं के पास पहुँच गया था। जब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कंकराडीह का दुर्ग सरयू की बाढ़ से गिर पड़ा तब अन्य सामानों के साथ यह ताम्रपत्र भी भूमि के गर्भ में छिप गया जो जनवरी १८८८ ई० में संयोग-वश हल चलाते समय प्राप्त हो गया था।

महाराजाधिराज श्रीहर्षवर्द्धन का हर्षसम्वत् २५ का ताम्रपत्र

प्रतिलिपि शुद्ध संस्कृत में

ॐ स्वस्ति महानौ हस्त्यश्वजय स्कन्धावारात् कपित्थिकायाः महाराज श्री नरवर्द्धनस्तस्य पुत्र स्तत्पादानुध्यातः श्री वज्रिणी देव्यामुत्पन्नः परमादित्यभक्तो महाराज श्री राज्यवर्द्धनस्तस्य पुत्रस्तत्पदानुध्यातः श्री अप्सरोदेव्यामुत्पन्नः परमादित्य भक्तो महाराज श्री मदादित्यवर्द्धनस्तस्य पुत्र स्तत्पादानुध्यातः श्री महासेन गुप्तादेव्यामुत्पन्नश्चतुः समुद्रातिक्रान्त कीर्तिः प्रतापानुरागोपन तान्यराजो वर्णाश्रिमव्यवस्थापनप्रवृत्त चक्रएकचक्ररथ इव प्रजानामार्त्तिहरः परमादित्य भक्तः परम भट्टारक महाराजाधिराज श्री प्रभाकरवर्द्धनस्तस्य पुत्रस्तत्पादानुध्यातः सितयशः प्रतानविच्छरित सकल भुवन मण्डलः परिगृहीत धनद वरुणेन्द्र प्रभृति लोकपालतेजाः सत्पथोपार्ज्जितानेक प्रवण भूमि प्रदान सन्प्रीणितार्थिहृदयोति शयित पूर्व्वराजचरितोदेव्याममलयशोमत्यां श्री यशोमत्यामुत्पन्नः परम सौगतः सुगत इव परहितैकरतः परमभट्टारक महाराजाधिराज श्री राज्यवर्द्धन राजानोयुधि दुष्टवाजिन इव श्री देवगुप्तादयः कृत्वा येन कशाप्रहारं विमुखा सर्व्वे समंसंयताः। उत्खयद्विषतो विजित्य वसुधां कृत्वा प्रजानां प्रियं प्राणानुज्झितवानराति भवने सत्यानुरोधेनयः। तस्यानुजस्तत्पादानुध्यातः परममाहेश्वरो महेश्वर इव सर्वसत्वानुकम्पी परम भट्टारक महाराजाधिराज श्री हर्षः श्रावस्तीभुक्तौ कुण्डधानी वैषयिक सोमकुण्डिकाग्रामे समुपगतां महासामन्त महाराज दौस्साधसाधनिक प्रमातार राजस्थानीय कुमारामात्योपरिक विषयपति भटचाट सेवकादीन्प्रतिवासिजनपदाश्च समाज्ञापयत्यस्तु वः सम्विदितं मयं सोमकुण्डकाग्रामो ब्राह्मण बामरथ्येन कूटशासनेन भुक्तक इति विचार्य यतस्तच्छासनं भंक्त्वा तस्मादिक्षिप्य च स्वसीमा पर्यन्तः सोद्रंगः सर्व्वराज कुलाभाव्यप्रत्याय समेतः सर्व्व परिहृत परिहारो विषयाद्वदधृतपिण्डः पुत्रपौत्रानुगः चन्द्रार्क क्षितिसमकालीनो भूमिच्छद्रान्यायेन मयाप्तिः परम भट्टारक महाराजाधिराज श्री प्रभाकरवर्द्धनदेवस्य मातुः परम भट्टारिका महादेवी राज्ञी श्री यशोमती देव्याः ज्येष्ठ भ्रातृ परम भट्टारक महाराजाधिराज श्री राज्यवर्द्धन देव पादानां च पुण्य यशोभिवृद्धये सावर्णिसगोत्रच्छन्दोगस ब्रह्मचारि भट्टवातस्वामि विष्णुवृद्ध सगोत्र वहवृचसब्रह्मचारि भट्ट शिवदेवस्वामिभ्यो प्रतिग्रह धर्म्मणाग्रहारत्वेन प्रतिपादितः विदित्वा भवद्भिः समनुमन्तव्यः प्रतिवासिजनपदैरप्याज्ञा श्रवण विधेयैर्भूत्वा यथा समुचित तुल्यमेय भाग भोग कर हिरण्यादि प्रत्यायः अनयोरेवोपनेयाः सेवोपस्थानं च करणीयमित्यपि च अस्मात्कुलक्रममुदार मुदाहरद्भिरन्यैश्च दान मिदमभ्नुमोदनीयं। लक्ष्म्यास्तद्वित्सलिल बुद्बुद चंचलायाः दानफलं परयशः परिपालिनंच॥ कर्म्मणा मनस्त वाचा कर्तव्यं पणिने हितं। हर्षेण तसमाख्यतं धर्म्मार्ज्जनमनुत्तमं। दूतकोत्र महाप्रमातारमहासामन्त श्री स्कन्दगुप्तः महापटलाधिरणाधिकृत सामन्त महाराजेश्वर गुप्त समादेशाच्चोत्कीर्णं गुर्ज्जरेण सम्वत् २०+५ मार्गशीर्षबदि ६ [ओं स्वस्ति। कपित्थक स्थितनौका, हाथी और अश्व से युक्त स्कन्धावार (राज-पड़ाव) से।]

हिन्दी अनुवाद

महाराज श्री नरवर्द्धन के श्री वज्रिणी देवी से उत्पन्न चरण सेवी पुत्र परमादित्य भक्त महाराज श्री राज्यवर्द्धन हुए। उनके श्री अप्सरा देवी से उत्पन्न चरणसेवी पुत्र परम आदित्य भक्त महाराज आदित्यवर्द्धन हुए। उनके श्री महासेन गुप्ता देवी से उत्पन्न चरण-सेवी पुत्र परम आदित्य भक्त परम भट्टारक महाराजाधिराज श्री प्रभाकरवर्द्धन हुए। उनकी कीर्ति चारों समुद्रों के पार तक फैली थी; उनके सम्मुख प्रताप और अनुराग से राजा लोग शीश झुकाते थे। उनकी भक्ति वर्णाश्रिम धर्म की रक्षा में लगी थी और वे सूर्य के समान प्रजा के हित में अपनी शक्ति लगाते थे। उनके विमल यश वाली पत्नी श्री यशोमती से उत्पन्न चरण-सेवी पुत्र परम भट्टारक महाराजाधिराज श्री राज्यवर्द्धन हुए जो परम सौगत (बौद्ध धर्मावलम्बी) थे और सुगत (बुद्ध) के समान ही परहितवर्ती थे। उनके विमल यश से सारे भुवनमंडल का वितान छाया हुआ था। उसमें कुबेर, वरुण, इन्द्र आदि लोकपालों के समान तेज व्याप्त था। उन्होंने सत्पथ से उपार्जित भूमि देकर भूखे हृदयों को तृप्त किया था। उन्होंने दुष्ट घोड़े के समान श्री देवगुप्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदि को अपने कोड़े के प्रहार से वशीभूत कर लिया था। वे शत्रुओं का उन्मूलन कर वसुधा को जीत लोकप्रिय कार्य कर, सत्य अनुरोध की रक्षा करते हुए शत्रु के घर में मारे गये।

उनके छोटे भाई चरणसेवी परम महेश्वर के समान ही सर्व सत्वानुकम्पी परम भट्टारक महाराजाधिराज श्री हर्ष श्रावस्ती भुक्ति स्थित कुण्डधानी विषय के सोम-कुण्डिक ग्राम में उपस्थित समस्त महासामन्त, महाराज, दौस्साधिसाधानिकों, प्रमातारों, राजस्थानियों, कुमारामत्यों, उपरिकों, विषयपतियों, भट, चाट, सेवकों आदि को आदेश देते हैं कि :—

आप सबको ज्ञात हो कि यह पता लगाकर कि इस सोमकुण्डिका ग्राम को कूट शासन (जाली दस्तावेज) के आधार पर बाम रथ्य नामक ब्राह्मण भोग रहा है। मैंने उस शासन को नष्ट करवा दिया और उस ग्राम को उससे लेकर अपने पिता परम भट्टारक महाराजाधिराज प्रभाकरवर्द्धन, अपनी माता परम भट्टारिका महादेवी यशोमती देवी और अपने ज्येष्ठ भाई परम भट्टारक महाराजाधिराज श्री राज्य-वर्द्धन के पुण्य और यश की अभिवृद्धि के लिए अग्रहार रूप में सार्वर्णि गोत्र के छन्दोग ब्रह्मचारी भट्ट वात स्वामी और विष्णु वृद्ध गोत्र के वाह वृच ब्रह्मचारी भट्ट शिवदेव स्वामी की समस्त सीमा, उद्रंग, प्रत्याय आदि सहित दान कर दिया। अतः यह जानकर आप सब उसको स्वीकार करें और मेरे आदेश को मान कर जो कुछ भी तुल्य मेय भाग, भोग, कर आदि हो इन दोनों व्यक्तियों को दिया करें।

जो कोई मेरे कुल में हो और अन्य लोग भी इस दान को स्वीकार करें। लक्ष्मी जल के बुदबुदे के समान चंचल है अतः दान का फल और यश ही शेष रह जाता है। फलतः मनसा, वाचा, कर्मणा सबको अपना कर्तव्य करना चाहिए। हर्ष ने भी उसी धर्म के प्राप्ति की चेष्टा की है।

इस शासन के द्वतक महा प्रमातर महासामन्त श्री स्कन्दगुप्त हैं और महापटलाधिकरणाधिकृत सामन्त महा-राजेश्वर गुप्त की आज्ञा से इसे गुर्ज्जर ने उत्कीर्ण किया। सम्बत् २५ मार्गशीर्ष बदि ६।]

इस शासन पत्र में आये हुए सोम कुण्डिक ग्राम की पह-चान मधुबन, जिला आजमगढ़ (उत्तर प्रदेश) के निकट स्थित कुण्डाग्राम से सरलता से की जा सकती है। कुण्डा से २ मील पूर्व सरयू नदी के छाड़न रक्त तोय सरोवर के किनारे स्थित बिशेन वंशी मल्लक्षत्रियों की राजधानी कंकराडीह की कोट के निकट स्व० श्री बिल्लर मल्ल किसान के खेत से जनवरी सन् १८८८ ई० में उपरोक्त ताम्रपत्र मिट्टी के पकाये हुए बक्स के भीतर से मिला था। उस बक्स में स्वर्ण की कुछ मुद्रायें भी थीं पर उनका पता नहीं लगा कि क्या हुआ। खेत में हल चलाते समय फाल में ईंट का ठोकर लगा और वह टूट गया। हलवाहे ने कुदाली से उस ईंट को खोदकर निकाल दिया। उसने उसे ध्यान से जब देखा तो उसमें तरौटा और उपरौटा दिखाई दिया। खेत के पास अन्य जो किसान काम कर थे सबों ने इस विचित्र बक्से को देखा और उसे गाँव में लाकर खेत के मालिक को दे दिया। गाँव में जब वह खोला गया तो २० इंच लम्बा और १२। इंच चौड़ा ताँबे का एक टुकड़ा था जिस पर शुद्ध संस्कृत में १८ पंक्तियों में कुछ लिखा हुआ था। गाँव के शिक्षितों ने उसे साफ करके पढ़ने की कोशिश किया। धीरे-धीरे जब यह खबर थाने पर पहुँची को थाने-दार ने ताम्रपत्र को ले लिया और जिले पर ले जाकर अंग्रेज जिलाधीश को दिखाया। जिलाधीश ने उसे खूब स्वच्छ कराया और संस्कृत के बड़े-बड़े विद्वानों से पढ़वाकर भाव समझा। अन्त में जिलाधीश ने उसे तत्कालीन गवर्नर यू० पी० को दिया और आज काल वह ताम्रपत्र प्रान्तीय संग्रहालय लखनऊ में रक्खा हुआ है।

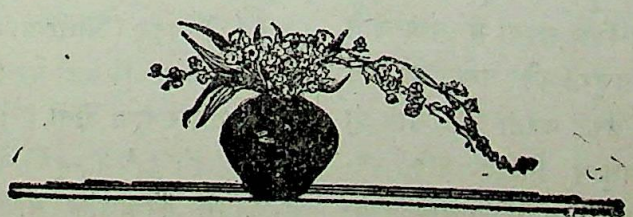

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शून्य भित्ति पर अलख चितेरा ....(१)

विश्व की रचना में गणित का स्थान

श्री सांवलराम पोद्दार 'निर्गुण'

आज के वैज्ञानिक दृष्टिकोण के अनुसार यदि यह कहा जाय कि इस महान् विश्व की रचना एकमात्र 'शक्ति' के माध्यम व गणित याने संख्या बल के आधार पर की गयी है तो इसमें जरा भी अतिशयोक्ति न होगी। प्रकृति के सारे नियम, उसकी तमाम क्रियायें गणित पर ही आधारित हैं, जिसकी चर्चा इस लेख द्वारा की गयी है।

बीसवीं सदी की वैज्ञानिक खोजों में पदार्थ व शक्ति की एकता का सिद्धान्त सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण व आश्चर्यजनक है, जिसे सर्वप्रथम ई० स० १९०५ में महान् गणितज्ञ डॉ० आइन्स्टाइन ने अपने सापेक्षवाद के अन्तर्गत निम्न शब्दों में प्रकट किया था।

"पदार्थ व शक्ति, एक ही वस्तु के दो स्वरूप—दो नाम हैं, दोनों का एक दूसरे में रूपान्तर हो सकता है। वास्तव में शक्ति की भिन्न-भिन्न मात्रायें हो भिन्न-भिन्न पदार्थों के रूप में उद्भासित हो रही हैं।"

डॉ० आइन्स्टाइन के उपरोक्त सिद्धान्त ने सदियों से प्रचलित पदार्थ व शक्ति-विषयक मान्यताओं को मिथ्या साबित करके, वैज्ञानिक जगत् में एक क्रान्ति पैदा करते हुये जिस नवीन युग को जन्म दिया उसे आज हम परमाणु युग के नाम से पुकारते हैं। उस समय तक अणु को ही पदार्थ का एक ऐसा ठोस व सूक्ष्मतम स्वरूप माना जाता था जिसका न तो कभी नाश हो सकता था, न विभाजन (टुकड़े) ही। इसीलिए पृथ्वी पर पायी जानेवाली नैसर्गिक धातुओं को मूल तत्त्वों के नाम से पुकारा जाता था।

परन्तु आज के परमाणु युग का एक साधारण पढ़ा-लिखा व्यक्ति भी इस बात को जानता है कि किसी भी धातु का अणु, शक्ति-परमाणुओं का एक पुंज मात्र है जो भिन्न-भिन्न धातुओं के अणुओं में भिन्न-भिन्न संख्या में पाये जाते हैं। अणु में निहित शक्ति परमाणुओं की संख्या ही उस अणु के नाम, रूप व गुणों को प्रकट करती है। साथ ही हम यह भी जान चुके हैं कि अणु में निहित शक्ति परमाणुओं की संख्या को घटाया-बढ़ाया, संयोजित या विभाजित भी किया जा सकता है, जिससे एक पदार्थ के अणु को दूसरे पदार्थ के अणु में परिवर्तित किया जा सकता है। प्रकृति में अनेक जगह ये क्रियायें निरन्तर चलती रहती हैं। जैसे कि सूर्य के भीतर हाइड्रोजन के अणुओं का हीलियम में रूपान्तर होते रहना जो उसके प्रकाश व गर्मी का कारण है। उसी प्रकार हमारी पृथ्वी पर भी रेडियो एक्टिव धातुओं का अन्य धातुओं में रूपान्तर होते रहना है। यूरेनियम के अणुओं का शनैः-शनैः (करोड़ों वर्षों में) शीसे (Lead) के अणुओं में बदलते रहना इसका एक उदाहरण है।

उपरोक्त तथ्यों को ठीक से समझने के लिए हमें अणु की आन्तरिक रचना व उसका निर्माण करनेवाले शक्ति परमाणुओं के विषय में कुछ प्राथमिक चर्चा करनी होगी। शक्ति परमाणुओं के दो मुख्य गुण धर्म होते हैं। एक उनका परमाणु भार (mass) व दूसरा उनका विद्युत्भार (charge)। परमाणु भार की इकाई (unit) एक प्रोटोन के परमाणु भार के बराबर की मानी जाती है व विद्युत्भार की इकाई एक इलेक्ट्रोन वोल्ट याने एक इलेक्ट्रन में निहित विद्युत्भार के बराबर की मानी गयी है। विद्युत्भार या शक्ति भार तीन प्रकार के होते हैं: (१) न्यूट्रल (Nutral) या शून्य विद्युत्भार (२) पोजिटिव (Positive) या धन विद्युत्भार (३) निगेटिव (Negative) या ऋण विद्युत्भार वैसे तो न्यूनाधिक परमाणु भार व विद्युत्भारवाले अनेक प्रकार के शक्ति परमाणु अखिल विश्व में पाये जाते हैं जो प्रकृति के कार्यों में अपना हाथ बटाते हैं, परन्तु हमें केवल अणु की रचना में मुख्य भाग लेनेवाले निम्न तीन प्रकार के शक्ति परमाणुओं का परिचय कर लेना पर्याप्त होगा :—

(१) न्यूट्रन (Nutron), न्यूट्रल या शून्य विद्युत्भार-युक्त परमाणु, जिसका परमाणुभार एक युनिट के लगभग व विद्युत्भार शून्य होता है। इसलिए विज्ञान की सांकेतिक लिपि में इसे ${}_{0}n^{1}$ (०न्यू१) के रूप में व्यक्त किया जाता है, जिसमें परमाणु के सांकेतिक अक्षर के बाईं ओर नीचे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की तरफ उसका विद्युत्भार व दाहिनी ओर ऊपर की तरफ उसका परमाणु भार लिखा जाता है। यह प्रणाली अणु के केन्द्र को व्यक्त करने के काम में लाई जाती है।

(२) प्रोटोन (Proton), पोजिटिव या धन विद्युत्भार-युक्त परमाणु, जिसका परमाणुभार एक युनिट व विद्युत्भार एक पोजिटिव इलेक्ट्रन वोल्ट याने धन एक युनिट है। इसलिए सांकेतिक लिपि में इसे ${}_{+1}P^{1}$ (${}_{+१}$प्रो^{१}) के रूप में अथवा हाइड्रोजन का अणु केन्द्र केवल एक प्रोटोन का ही बना होने से ${}_{+1}H^{1}$ के रूप में भी लिखा जाता है। (३) इलेक्ट्रोन (Electron), निगेटिव या ऋण विद्युत्भार युक्त परमाणु, जिसका परमाणु भार शून्य के लगभग (१/१८३७ युनिट) व विद्युत्भार एक निगेटिव इलेक्ट्रोन वोल्ट याने ऋण एक युनिट होता है। इसे ${}_{-1}e^{\circ}$ (${}_{-१}$इ$^{\circ}$) के रूप में लिखा जाता है।

शक्ति परमाणुओं के विषय में आगे बढ़ने से पहले अब हम पदार्थ के अणु के भीतर एक दृष्टिपात कर लें तो विशेष सुगमता रहेगी। अणु मात्र के दो अंग होते हैं जिनमें से प्रथम व मुख्य अंग अणु के मध्य भाग में स्थित उसका केन्द्र (Nuclius) है। जिसका निर्माण उपरोक्त में से प्रथम दो प्रकार के शक्ति परमाणुओं—प्रोटोन्स व न्यूट्रन्स द्वारा होता है जो भिन्न-भिन्न पदार्थों के अणुओं में भिन्न-भिन्न संख्या में पाये जाते हैं। दोनों की सम्मिलित संख्या अणु केन्द्र के परमाणु भार को तथा केवल प्रोटोन्स की संख्या उसके धन विद्युत्भार (positive charge) को प्रकट करती है, जो उस अणु के रासायनिक गुणों को भी व्यक्त करती है जिसका स्पष्टीकरण आगे किया जायगा। केन्द्र में निहित न्यूट्रन्स की संख्या केन्द्र के परमाणुभार को बढ़ाने के अतिरिक्त अणु के भौतिक या रासायनिक गुणों पर अपना कोई प्रभाव नहीं डालती, परन्तु समान जाति वाले प्रोटोन्स के साथ-साथ उनके बीच में रहकर उन्हें एक दूसरे से दूर भागने से रोकने तथा उन्हें आपस में बाँधे रखने का भगीरथ कार्य शून्य शक्तिवाले न्यूट्रन्स ही कर सकते हैं।

अणु का दूसरा अंग है केन्द्र के चारों ओर दूर-दूर तक की कक्षाओं में परिक्रमा करते हुये ऋण शक्ति युक्त इलेक्ट्रोन्स, जिनकी संख्या हमेशा केन्द्र में स्थित प्रोटोन्स की संख्या के बराबर की होती है। इसलिए किसी भी पदार्थ के अणु का सम्पूर्ण विद्युत्भार शून्य ही रह जाता है। गणित की दृष्टि से भी धन व ऋण की दो समान संख्यायें मिलकर शून्य ही बनाती हैं। उपरोक्त कक्षाओं को अणु के आवरण (Shells) के नाम से पुकारा जाता है। प्रत्येक आवरण में इलेक्ट्रोन्स की संख्या एक नियत सीमा तक ही रह सकती है, उससे अधिक नहीं। केन्द्र के सबसे नजदीक के प्रथम आवरण में केवल दो इलेक्ट्रन्स रह सकते हैं, इसके बाद के द्वितीय आवरण में ८, तृतीय में १८, चतुर्थ में ३२ व पाँचवें आवरण में अधिक से अधिक ५० इलेक्ट्रन समा सकते हैं। [गणित का नियम यहाँ भी लागू होता है, प्रत्येक आवरण में इलेक्ट्रन्स की महत्तम संख्या आवरण की क्रमसंख्या के वर्ग से दुगुनी है, यथा १×१×२=२, २×२×२=८, ३×३×२=१८, ४×४×२=३२, ५×५×२=५०]। अणु में इलेक्ट्रोन्स की कुल संख्या के अनुसार प्रथम आवरण भर जाने के बाद दूसरा, फिर तीसरा, इस प्रकार इलेक्ट्रन्स क्रमानुसार अपना स्थान रखते हैं व सबसे आखिर के बाहरी आवरण में शेष बचे हुये इलेक्ट्रन्स रहते हैं। अणु का यह बाहरी आवरण ही अणु के तमाम रासायनिक गुणों का कारण है। यदि यह पूर्ण रूप से भरा हुआ होता है तो उसका अणु अन्य किसी भी धातु के अणु के साथ किसी प्रकार का संयोजन नहीं करता अर्थात् उनसे मिलकर रासायनिक योग नहीं बनाता परन्तु यदि अणु के बाहरी आवरण में इलेक्ट्रन्स की संख्या अपनी महत्तम संख्या से कम रही, जैसा कि अधिकतर प्रकार के अणुओं में होता है तो वह उनकी पूर्ति अन्य धातुओं के अणुओं के साथ मिलकर, तरह-तरह के रासायनिक योग बनाकर करता है। उदाहरणार्थ ऑक्सीजन के केन्द्र में आठ प्रोटोन्स होने से उसके कुल इलेक्ट्रन्स की संख्या भी आठ ही है। जिनमें से दो इलेक्ट्रन्स अणु के प्रथम आवरण को भरकर बाकी ६=द्वितीय आवरण में रहते हैं, जिसकी महत्तम संख्या आठ है। इस प्रकार ऑक्सीजन के अणु के बाहरी आवरण में दो इलेक्ट्रन की कमी रहती है। उधर कार्बन के अणु में कुल छः इलेक्ट्रन होते हैं जिनमें से दो प्रथम आवरण में जाकर बाकी चार बाहरी आवरण में रह जाते हैं। इसलिए ऑक्सीजन के दो अणु जिनमें से प्रत्येक के पास दो इलेक्ट्रन कम हैं, कार्बन के एक अणु (जिसके पास चार इलेक्ट्रन उसके बाहरी आवरण में है) के साथ मिलकर कार्बन डाइ ऑक्साइड (CO^{2}) का एक कण (molecule) बनाते हैं। इसी प्रकार हाइड्रोजन के अणु में केवल एक ही इलेक्ट्रन होता है जो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसके प्रथम आवरण को भी नहीं भर पाता इसलिए ऑक्सीजन का एक अणु अपने दो इलेक्ट्रन्स की पूर्ति करने के लिये हाइड्रोजन के दो अणुओं के साथ मिलकर पानी (H^2O) का एक कण बनाता है। इसी प्रकार संसार के असंख्य पदार्थों की रचना भिन्न-भिन्न धातुओं के अणुओं के मिश्रण द्वारा होती है, जिनका सम्पूर्ण आधार अणु के बाहरी आवरण में निहित इलेक्ट्रन्स की संख्या पर निर्भर है। रसायनशास्त्र का सारा भेद इसमें छिपा हुआ है, जिसके द्वारा वैज्ञानिक बिना प्रयोग किये--केवल गणनाओं के आधार पर किसी भी धातु के रासायनिक गुणों को जान सकते हैं। उनके योग द्वारा अपने मनचाहे रासायनिक पदार्थों का निर्माण कर सकते हैं। साथ ही जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि अणु में इलेक्ट्रन्स की कुल संख्या हमेशा केन्द्र में स्थित प्रोटोन्स की संख्या के बराबर की रहती है, इसलिए हम कह सकते हैं कि अणु के केन्द्र में निहित प्रोटोन्स की संख्या याने धन शक्ति की मात्रायें ही उस अणु के नाम, रूप व गुणों को प्रकट करती है। यदि वह संख्या एक है, तो हाइड्रोजन दो है, तो हीलियम तीन है, तो लीथियम..... व बानबे होने पर युरेनियम का अणु कहलाता है। इस प्रकार पृथ्वी पर पाये जाने वाले बानबे प्रकार की धातुओं के अणुओं में इनकी संख्या एक से लेकर बानवे तक की है। कार्बन के अणु केन्द्र में ६, नाइट्रोजन में ७, ऑक्सीजन में ८, गन्धक में १६, लोहे में २६, ताँम्बे में २९, चान्दी में ४७, सोने में ७९ व पारे के अणु केन्द्र में ८० प्रोटोन्स पाये जाते हैं।

साथ ही हम यह भी जान चुके हैं कि हाइड्रोजन ही दुनिया का सबसे प्रथम व हलका पदार्थ है जिसके अणु केन्द्र में केवल एक प्रोटोन व केन्द्र के चारों ओर की भ्रमण-कक्षा में केवल एक इलेक्ट्रोन है। इसलिए हाइड्रोजन के अणु को सांकेतिक लिपि में $_1H^1$ के रूप में लिखा जाता है जिसमें बाईं ओर उसके केन्द्र में स्थित प्रोटोन्स की संख्या याने उसका धन विद्युत्भार व दाहिनी ओर उसका परमाणु-भार लिखा जाता है—परन्तु ९२ प्रोटोन्स की संख्यावाले यूरेनियम को हम दुनिया का सबसे अन्तिम व भारी पदार्थ नहीं कह सकते, क्योंकि जैसा पहले कहा जा चुका है कि अणु के शक्ति परमाणुओं की संख्या को वैज्ञानिक क्रियाओं द्वारा घटाया-बढ़ाया भी जा सकता है। अतः पिछले ५० [illegible] के अणुओं को अपनी प्रयोगशाला में निर्माण करके धातुओं की संख्या को १०८ तक पहुँचाकर उनका नामकरण भी कर दिया है। आगे यह संख्या कहाँ तक पहुँच सकती है इसे कोई नहीं बता सकता, न कोई यह ही बता सका है कि अखिल विश्व में इनकी संख्या कहाँ तक पाई जा सकती है। कारण केन्द्र में प्रोटोन्स की संख्या वृद्धि के साथ-साथ उन्हें बाँधने के लिए आवश्यक न्यूट्रन्स की संख्या का अनुपात अधिकाधिक होता जाता है। इसीलिए हीलियम ($_2He^4$) के दो प्रोटोन्स को केवल दो न्यूट्रन्स अत्यन्त मजबूती से बाँध सकते हैं व जिसे परमाणुओं का सबसे अधिक स्थिर व मजबूत गठ-बन्धन माना जाता है, जबकि रेडियम ($_{88}R_a^{226}$) के अट्ठासी प्रोटोन्स को बाँधने के लिए १३८ न्यूट्रन भी कम पड़ते हैं, जिसके कारण रेडियम के परमाणु शक्ति की भिन्न-भिन्न इकाइयों के रूप में तब तक बाहर निकलते रहते हैं जब तक कि उसके केन्द्र के प्रोटोन्स न्यट्रन्स की संख्या का अनुपात (Ratio) अपने स्थिर धरातल (Equilibrium) पर न आ जाय। परन्तु यह 'स्थिर धरातल' भी सभी जगह एक समान नहीं है। हमारे सूर्य से करोड़ों गुना बड़े किसी सुदूर नक्षत्र पर उसकी भयंकर गर्मी व दबाव के कारण इसमें काफी परिवर्तन आ सकता है, जिसका स्पष्टीकरण आगे न्यूट्रन स्टार्स के बारे में लिखते हुए किया गया है।

अणु के केन्द्र में शक्ति परमाणु किसी बोरे में अनाज की तरह नहीं भरे हैं, न वे किसी ठोस पदार्थ के रूप में ही हैं, वे तो केवल शक्ति की विभिन्न प्रकार की इकाइयाँ—अत्यन्त सूक्ष्म शक्तिशाली विद्युत् क्षेत्र हैं जो एक दूसरे पर अपना भरपूर प्रभाव, शक्ति के आदान प्रदान के रूप में डालते रहते हैं। उनकी यह प्रतिक्रिया (interaction) अणु केन्द्र में निरन्तर चलती रहती है व यही अणु की स्थिरता या अस्थिरता का भी कारण है। यह विषय इतना गहन है कि इसे संक्षेप में नहीं समझाया जा सकता।

अणु के केन्द्र के बारे में चर्चा करते हुए हमने देखा कि किसी भी पदार्थ के अणु का लगभग सम्पूर्ण परमाणु भार व उनकी सारी धनशक्ति केन्द्र में सीमित रहती है जो अणु का एक बहुत ही सूक्ष्म भाग है। केन्द्र से दूर-दूर तक उसकी परिक्रमा करते हुये इलेक्ट्रन्स उसका बाहरी आवरण है। इनके बीच का सारा स्थान जिसे अणु का विद्युत् चुम्बकीय क्षेत्र कहते हैं खाली पड़ा है। वह इतना अधिक है कि इसके बारे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में डॉ० आइन्स्टाइन ने एक जगह लिखा है कि यदि भूमण्डल के सारे अणुओं में से उनके भीतर के खाली स्थान को निकाल दिया जाय तो हमारी पृथ्वी एक फुटबॉल से भी छोटी रह जायगी जिसमें उसके तमाम महासागर, महाद्वीप आदि समा जायँगे, फिर भी उसका भार—वजन (mass) पहले के जितना ही कायम रहेगा ! केवल आयतन (volume) घट जायगा। इसका प्रमाण भी हमें कुछ ऐसे आकाशीय पिंडों द्वारा मिला है जिनकी खोज अभी हाल ही में की गयी है व जिन्हें न्यूट्रन-स्टार्स के नाम से पुकारा गया है; जो इतने ठोस व भारी हैं कि उनके एक घन सेन्टीमीटर पदार्थ का भार दस करोड़ टन ($10^{14}gm/cm^3$) के लगभग पाया गया है ! जिसका कारण यह माना जाता है कि किसी विशाल नक्षत्र की सारी हाइड्रोजन जब हीलियम में बदल जाती है तो वह नक्षत्र अपने भीषण गुरुत्वाकर्षण के कारण केन्द्र की ओर सिकुड़ने लगता है जिससे उत्पन्न कल्पनातीत गर्मी व दबाव के कारण उसके अणुओं के भीतर का रिक्त स्थान कम होने लगता है, जिसके परिणाम स्वरूप या तो उसमें भीषण स्फोट होकर वह सुपर नोव्हा (Super Nova) में बदल जाता है अथवा (स्फोट न होने पर) उसके अणुओं के इलेक्ट्रन्स केन्द्र में प्रवेश करके प्रोटोन्स के साथ मिलकर उन्हें न्यूट्रन्स में बदल डालते हैं ($+_1p^1+_{-1}e^0=_0n^1$) इस हालत में वह नक्षत्र न्यूट्रन स्टार के नाम से पुकारा जाता है।

पदार्थ के अणुओं की तरह शक्ति परमाणुओं का भी एक दूसरे में रूपान्तर हो सकता है व रूपान्तर में भाग लेनेवाले परमाणुओं का सम्मिलित परमाणुभार व विद्युत्-भार भी उतना ही कायम रहता है, कभी घटता-बढ़ता नहीं—जैसे एक न्यूट्रन में से एक प्रोटोन व एक इलेक्ट्रन की उत्पत्ति अथवा इसके विपरीत एक प्रोटोन व एक इलेक्ट्रन का आपस में मिलकर एक न्यूट्रन के रूप में बदल जाना। जिसे इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है :—

$$_0n^1 \rightarrow +_1H^1 + _{-1}e^0 \rightarrow _0n^1$$

उपरोक्त समीकरण में न्यूट्रन का विद्युत्भार शून्य व परमाणु भार एक युनिट है सो प्रोटोन इलेक्ट्रोन की जोड़ी में भी उतना ही कायम रहता है। इसी समीकरण को हम इस प्रकार भी लिख सकते हैं $=_0n^1 -_{-1}^{\circ}e^0 = +_1H^1$ जिसमें एक न्यूट्रन में से एक इलेक्ट्रन अलग होकर एक शेष प्रोटोन बच जाता है। रूपान्तर का गुण सभी प्रकार के शक्ति परमाणुओं में पाया जाता है व प्रकृति में इस प्रकार की क्रियायें निरन्तर चलती रहती हैं।

उपरोक्त समीकरण के द्वारा हम एक न्यूट्रन में से हाइड्रोजन के एक अणु की उत्पत्ति होते देखते हैं। शून्य—निर्गुण (न्यूट्रल) शक्ति के एक अंश में से दुनिया के सर्वप्रथम पदार्थ हाइड्रोजन के अणु की उत्पत्ति इसी प्रकार होती है। शून्य में से दो विपरीत भावार्थवाली समान संख्याओं का आविर्भाव, जो संयुक्त रूप से शून्य ही रहती है। शून्य में से शून्य की उत्पत्ति।

गणित में भी केवल शून्य को ही पूर्ण संख्या के रूप में माना गया है जिसका न तो कभी विभाजन हो सकता है न विनाश ही। शून्य का आपस में (शून्य से) जोड़, बाकी, गुणा या भाग कुछ भी किया जाय, उत्तर शून्य के अतिरिक्त बाकी तमाम संख्याओं को, चाहे वे धन संख्या हों या ऋण संख्या, अपूर्ण मानते हुए उनकी उत्पत्ति व लय भी शून्य में ही माना जाता है, क्योंकि कोई भी संख्या शून्य से अपने अन्तर को व्यक्त करती है। जैसे :—$-+a \leftarrow o \rightarrow -a$; $a-a=o$, जिसमें a के स्थान पर किसी भी संख्या को लिखा जा सकता है। शून्य-पूर्ण, निर्गुण शक्ति में से विभिन्न प्रकार के अणुओं की रचना इसी सिद्धान्त पर हुई है। भारतीय तत्त्व ज्ञान का यह श्लोक इस विषय में कितना अर्थपूर्ण है :—

पूर्णमदः पूर्णमिदम् पूर्णात्पूर्णमुदच्यते
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते

(यह पूर्ण है, यह भी पूर्ण है। पूर्ण में से पूर्ण की उत्पत्ति हुई। व पूर्ण में से पूर्ण निकाल लिये जाने पर भी पूर्ण ही शेष बच गया)।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि एकमात्र पूर्ण, निर्गुण, शून्य शक्ति ही अपनी भिन्न-भिन्न मात्राओं (अंशों) में भिन्न-भिन्न पदार्थों के रूप में उद्भासित हो रही—यही कबीर की 'माटी', गीता आदि उपनिषद् ग्रन्थों की माया—प्रकृति—त्रिगुणात्मक शक्ति है, जो सूक्ष्मातिसूक्ष्म परमाणु से लेकर अनन्त आकाश में फैली हुई अगणित नीहारिकाओं (Galaxies) में, सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में समान रूप से व्याप्त है। अखिल विश्व उसीका एक अद्भुत स्वरूप है।

पदार्थ व शक्ति की एकता के बारे में उपरोक्त जानकारी के बाद अब हम पदार्थ के भौतिक गुणों—उसमें प्रतीत होनेवाले शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध आदि की चर्चा अगले लेख द्वारा करेंगे, जिन्हें हमारे भारतीय तत्त्ववेत्ताओं ने रस्सी में साँप की तरह भ्रमपूर्ण बतलाया है, (रज्वां भुजगम् इव प्रतिभासितं वै) और हम देखेंगे कि आज का विज्ञान इसका कहाँ तक समर्थन करता है। यहाँ भी हमें संख्या बल का चमत्कार देखने को मिलेगा। जिन सिद्धान्तों को आज तक हम केवल अपनी श्रद्धा के कारण मानते चले आये हैं, उन्हें ठोस वैज्ञानिक तथ्यों के रूप में देखकर अवश्य ही हमें आनन्द मिश्रित आश्चर्य की अनुभूति होगी व इस महान् विश्व के प्रति हमें एक नया दृष्टिकोण प्राप्त होगा जिसमें विश्व के रचयिता उस महान् गणितज्ञ व कलाकार की शक्ति, कला व सौन्दर्य का हम साक्षात्कार करेंगे, जिसके लिए किसी सन्त ने कहा है :—

शून्य भित्ति पर अलख चितेरा—रच दिया रंग घणेरा···

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शेरशाह सूरी

भारत का प्रगतिशील राष्ट्रवादी हिन्दी भक्त पठान सम्राट्

श्री अवनीन्द्रकुमार विद्यालंकार

ग्रांटट्रंक रोड का नाम लेते ही मध्ययुगी भारत के योग्यतम शासक शेरशाह सूरी का नाम स्मरण हो आता है। काल इस महान् और योग्यतम सम्राट् की स्मृति को मिटा नहीं सका। शेरशाह सूरी पठान था, अतः विदेशी शासक नहीं कहा जा सकता। क्योंकि अफगानिस्तान उस समय ही क्या, औरंगजेब के समय में भी भारत का एक प्रान्त था। पठानों ने मुगलों को अपना शासक कभी नहीं माना, इसीमें अफगानिस्तान भारत से कटकर अलग हो गया। आज जैसे पाकिस्तान कटकर अलग हो गया है। परन्तु उस समय अफगानिस्तान के अलग होने का कारण भारत का निर्बल मुगल शासन था। मुगलों की तलवार यहाँ खण्डित हो गयी। मुगलों का अपने मूल देश से सम्बन्ध टूट गया। मुगल सेना को सैनिक मिलने बन्द हो गये। मध्य एशिया से आनेवाले घुड़सवार मुगल सेना की शक्ति थे, नया दम थे। वह नयी साँस न मिलने पर मुगल साम्राज्य क्षीण होने लगा। औरंगजेब की समाधि महाराष्ट्र में बनी! यह मुगल साम्राज्य इस देश में स्थापित ही न हो, इसका सर्वप्रथम सशस्त्र और सफल विरोध करनेवाला एवं पठान साम्राज्य की स्थापना करनेवाला शेरशाह सूरी था। धर्म से मुसलमान होते हुए भी, और जौनपुर के इस्लामी मकतब में शिक्षा पाकर भी वह एक सच्चा भारतीय था और वह मानता था कि धर्म-परिवर्तन के साथ राष्ट्रीयता नहीं बदलती। वह सच्चे अर्थों में भारतीय था। यही कारण है जब वह दिल्ली का सिंहासन बड़ी उमर में पाने में सफल हुआ और सिक्के ढालने का समय आया तो उसने सिक्कों पर हिन्दी और नागरी को स्थान दिया। फारसी और अरबी को नहीं, जिसके लिए आज भी भारत में उर्दू-प्रेमी तैयार नहीं हैं। शेरशाह सूरी कट्टर भारतीय था, उग्रराष्ट्रवादी था, यही कारण है कि उसने अपने जीतेजी मुगल शासन को इस देश में स्थापित नहीं होने दिया। बाबर उसको देखते ही ताड़ गया था कि उसको समाप्त कर दिया जाय। पर शेरशाह सूरी मुगल साम्राज्य के संस्थापक से अधिक योग्य, अधिक बुद्धिमान और अधिक दूरदर्शी था।

शेरशाह सूरी वस्तुतः अकबर का पथ-प्रदर्शक और गुरु कहाने के योग्य है। शेरशाह ने जिस प्रशासन-नीति का प्रारम्भ किया, उसको बाद में अकबर ने अपना लिया और ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने भी उसको अपने लिए उपयोगी पाया। जिस व्यक्ति का काम और जिसकी नीति इतने काल तक निरन्तर बनी रहे, उसकी योग्यता का क्या सरलता से अनुमान लगाया जा सकता है? यही कारण है कि शेरशाह को काल मार नहीं सका। अकबर का जयगान करनेवाले बहुत हैं, और अंग्रेज आज भी कर रहे हैं, राहुल जी भी करते रहे, पर उसके वास्तविक निर्माता का किसी ने नहीं किया—श्री कानूगो को छोड़कर। फिर भी वह जीवित है। उसकी कृति को—ग्रांट ट्रंक रोड को—कलकत्ता से पेशावर तक फैली सड़क आज भी उस महान् भारतीय का जयगान कर रही है। शेरशाह ने मौर्यों की निर्मित सड़क को ही अमर नहीं कर दिया, अपितु आप भी अमर हो गया।

चौसा-युद्ध (२६ जून १५३९) के समय जब हुमायूं के दूत शेरशाह सूरी से मिलने गये थे, उस समय कहते हैं, वह एक खाई खोद रहा था। खाई खोद रहे व्यक्ति की उमर ६७ साल की थी। दिल्ली का भावी सम्राट् खाई खोद रहा था, क्या यही १६वीं सदी की एक अपूर्व बात नहीं है। शेरशाह सूरी इस देश में लोकतन्त्र का संस्थापक नहीं हुआ, पर उसने अपने जीवन से कठोर श्रम का एक आदर्श अवश्य अपने परवर्ती शासकों के लिए उपस्थित किया है। यदि आज के शासक इतने कठोर परिश्रमी होते, तो क्या राष्ट्र को पी० एल०-४८० की सुनहरी फाँसी का फंदा गले में डालना पड़ता?

चौसा-युद्ध के बाद ही शेरशाह ने सम्पूर्ण उत्तरी भारत (काश्मीर को छोड़कर) को विजय किया और इस देश को सुशासन दिया, प्रशासन की वह प्रक्रिया दी, जिसके मुका-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बले की दूसरी प्रक्रिया को उसके बाद के शासक जन्म नहीं दे सके। शेरशाह सूरी की शासन-प्रणाली को ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने भी अपनाया। यहाँ विजयी अंग्रेजों ने बौद्धिक पराजय स्वीकार की। एशिया यूरोप पर विजयी हुआ। पश्चिमी यूरोप का यह गर्व कि उसने एशिया को सुशासन दिया है, खर्व हो गया।

शेरशाह सूरी दिन में १६ घंटे काम करता था। वह नेपोलियन के समान जब चाहता नींद ले सकता था, और जब चाहता उठ सकता था। वह इस अर्थ में 'गुडाकेश' था। शेरशाह के पूर्वजों ने अपना धर्म बदल लिया था, इस्लाम ग्रहण कर लिया था, पर अपने प्राचीन आर्य धर्म को उन्होंने भुलाया नहीं था। यही कारण है, कि शेरशाह सूरी ने शासक होने के बाद पौराणिक हिन्दू संस्थाओं को पुनर्जीवित किया। सड़कें बनाईं। सड़कों के साथ सरायें बनाईं। सारे देश के अन्दर व्यापार-मार्ग मुक्त कर दिया। सब सेस और सब चुंगियाँ' हटा दीं। माल के सारे देश में आने-जाने पर कोई कर, शुल्क और सेस नहीं था। वह भारत को एक देश मानता था। वह प्रान्त भेद नहीं करता था। अकाल पड़ने पर किसानों को मुआवजा देता था। सूरी का नया प्रशासन नितान्त धर्म-निरपेक्ष था। वह लौकिक ऐहिक था। वह सच्चे अर्थों में सेक्युलर था, जिसकी कल्पना तक उस समय का यूरोप नहीं कर सका था, और पोप के कुभाव से मुक्ति पाने के लिए राजागण संघर्ष कर रहे थे। इसके मुकाबले भारत के शासक ने मुल्ला राज्य समाप्त कर दिया। मौलवियों का स्थान मस्जिदें हैं, राज दरबार नहीं, यह उसने अपने कार्य और अपनी नीति से बता दिया।

शेरशाह सूरी के पूर्वज पेशावर के पास बोह में आकर बस गये थे। परन्तु शेरशाह सूरी का जन्म बाकुला (होशियारपुर जिला, पंजाब) में १४७२ में हुआ। इसका मूल नाम फरीद था। फरीद का बचपन हिसार में बीता और इसने अध्ययन जौनपुर में किया, शिक्षा समाप्त करने के बाद फरीद बिहार चला गया। वहाँ वह ससराम खवासपुर की जागीरों का मैनेजर बनाया गया। ये जागीरें इसकी पिता की ही थीं। यहाँ रहकर उसने जो अनुभव प्राप्त किया, भू-समस्या का जो अध्ययन किया, वह बाद में काम आया। ससराम वस्तुतः उसकी प्रयोगशाला थी। यहाँ वह दो दशक से अधिक समय रहा। कहना चाहिये कि जवानी उसने यहीं गुजारी।

१५१९ में फरीद आगरा पहुँचा। इब्राहीम लोदी के दरबार में अर्जी लेकर गया। वह अपने पिता के बर्खिलाफ अर्जी पेश कर रहा था। इब्राहीम लोदी ने उसकी अर्जी नामंजूर कर दी। लेकिन १५२० में उसका बाप मर गया। पिता के मरने के बाद जागीर उसको मिल गयी। यह जागीर उसके आगे बढ़ने का आधार हो गई। अब वह सैनिक हो गया था। उन दिनों कोई भी योग्य, साहसी व्यक्ति पास में पैसा होने पर सेना एकत्र कर सकता था। शेरशाह भी इस पथ पर चला। उसने बंगाल-बिहार को विजय कर लिया। यहाँ उसने अपना स्थिर शासन स्थापित किया। इससे उसका यश बढ़ गया। सैनिक और योग्य प्रशासक के रूप में उसकी ख्याति चारों ओर फैल गयी।

बाबर का भारत पर आक्रमण होने और उसके दिल्ली में आने के समय शेरशाह सूरी दिल्ली में ही था। मुगल लोग जब विजयोत्सव मना रहे थे, तब वह मन ही मन प्रसन्न न था। परन्तु उसने अपनी कुढ़न किसी पर प्रकट नहीं होने दी। यही कारण है कि जब विजय भोज का उसको निमंत्रण अपने मित्र के जरिये मिला, तब उसने उसको मंजूर कर लिया। वह अपने को छिपाये हुए रखना चाहता था। पर बाबर की तेज दृष्टि से वह छिपा न रह सका।

भोज में उसने एक विचित्र काम किया। मछली परसी गयी थी, मछली कैसे खाई जाय, यह उसकी समझ में नहीं आ रहा था। झट उसने अपनी खुकरी निकाली और मछली के टुकड़े-टुकड़े करके खाने लगा। इस बात की ओर उसके आस-पास और सामने बैठे लोगों का ध्यान नहीं गया। लेकिन मेजबान की दृष्टि से यह विचित्र कार्य बचा नहीं रहा। बाबर उस समय अतिथियों का सत्कार करते हुए ठीक उसके पीछे खड़ा हुआ यह सब देख रहा था। बाबर इस विचित्र तरीके को देखकर सन्न रह गया। इसमें उसको मुगल साम्राज्य के वास्ते भीति दिखाई दी। वह अपने भय को छिपा नहीं सका। वह शेरशाह के पीछे से हटकर अपने प्रधानमन्त्री के पास पहुँचा। उसके कान में धीरे-धीरे उसने कुछ कहा। शेरशाह भी इस समय तक सावधान हो गया था। वह जान गया था कि उसका पीछा किया जा रहा था। बाबर को प्रधान मन्त्री से बात करते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखकर वह समझ गया कि उसको पकड़ने के लिए जाल फैलाया जा रहा था। बाबर ने अपने प्रधान मन्त्री को यही कहा कि इस भयानक व्यक्ति को अभी तुरन्त पकड़ लिया जाय। अन्यथा यह मुगल साम्राज्य का विनाशक होगा। परन्तु बाबर की योजना असफल रही। फरीद भोज से भाग गया। उसने अन्त तक वहाँ ठहरने की आवश्यकता नहीं समझी। उसको गिरफ्तार किया जाय और जेल में बन्द किया जाय, इससे पहले ही वह भूमिगत हो गया। जैसे पहले छिपे-छिपे मुगल-शक्ति का भेद लेने दिल्ली आया था, वैसे ही वह छिपे-छिपे बाबर की आँखों में धूल झोंककर वापस अपने राज्य में पहुँच गया। एक बड़ी भारी घटना हो गयी। किन्तु, इसको बाबर और शेरशाह के सिवाय और किसी ने उस समय न जाना और न समझा। शेरशाह इस समय तक अफगान अमीर नाम से मशहूर हो चुका था। परन्तु यह अफगान अमीर साधारण अमीर नहीं था। यह राजनीतिज्ञ, राजनय दक्ष अमीर था। लड़ाई में नीति-अनीति का विचार नहीं करता था। यह शान्तिकाल के लिए उसने सुरक्षित रखा हुआ था। यही कारण है कि बाबर के भोज से भाग जाने में उसको कोई कठिनाई नहीं हुई। मृत्यु का जाल उसके बनने से पहले ही छिन्न-भिन्न कर दिया गया। जोधपुर नरेश मालदेव को हराने के समय भी वह नीति और अनीति के चक्कर में नहीं पड़ा था। उद्देश्य-सिद्धि के लिए मित्र के प्रति विश्वास-घात करने से भी वह न चूका।

बाबर १५३० में मर गया। इसके साथ शेरशाह और बाबर के बीच चल रहा राजनय-युद्ध समाप्त हो गया। मुगल साम्राज्य का नया शासक हुमायूँ बंगाल-बिहार के सूबेदार के मुकाबले मिट्टी का पुतला था। रणकौशल में भी हुमायूँ उसके सामने ठहर नहीं सकता था। हुमायूँ का भटकते रहना शेरशाह ने असम्भव कर दिया। हुमायूँ भारत छोड़ गया। हुमायूँ आक्रान्ता था। भारत की सन्तान नहीं था। भारत-भक्त नहीं था। अतः वह भारत से भागने के लिए विवश हुआ। शेरशाह सूरी अपने देश में था। उसको पैर टिकाने के लिए जगह थी। उसको इस देश में सैनिक मिल सकते थे। वह अपने झंडे के नीचे शूर-वीर एकत्र कर सकता था। वह स्वयं शूरवीर था। दिल्ली का सिंहासन पाते ही उसने विशाल सेना का निर्माण किया। देश भर से उसने शूरवीर एकत्र किये। इस मौके पर उसका शूरवीर सैनिक के नाते फैली कीर्ति काम आयी। उसका दृष्टिकोण विशाल और उदार था। यही कारण है कि हेमू बनिया सूरी के स्थापित राज्य के लिए अकबर से लड़ने को तैयार हो गया। हेमू के जीते जी अकबर का राज्य इस देश में जम नहीं सकता था। शेरशाह अपने स्थापित राज्य के प्रति अल्पकाल में ही इस देश के निवासियों में जितनी भक्ति उत्पन्न कर सका उसका प्रतीक हेमू है, जिसने अपना जीवन अकबर की तलवार को भेंट कर दिया। अकबर की तलवार से कटा हेमू का सिर सदा इस बात की याद दिलाता रहेगा कि मुगल साम्राज्य की नींव हेमू बनिये के कटे सिर पर रखी गयी है, और इस सिर का निर्माण शेरशाह सूरी ने किया था।

शेरशाह ने दिल्ली के सिंहासन पर बैठने के बाद भारत को सुशासन दिया। वह प्रतिदिन अपने मन्त्रियों के कार्यों को देखता तथा उनकी ही रिपोर्टें खुद पढ़ता। राज्य भर से आये समाचारों को स्वतः सुनता और यथायोग्य निर्णय देता। उसके गुप्तचर हर वक्त खबरें लाते थे। रंगरूटों की भरती के समय वह स्वतः उपस्थित रहता था।

अरबी, फारसी के अतिरिक्त इस देश की अनेक भाषाओं को वह जानता था। शासन-विषयक पुस्तकों का उसने अध्ययन किया था। वह भारतीय नीति शास्त्र से परिचित था। उसने भूमि का सर्वे किया। भूमि की उपज के अनुसार उसने नया बन्दोबस्त किया। भूमि की उपजाऊ शक्ति और उपज के आधार पर राज्य का भाग लगान निर्धारित किया। वैज्ञानिक पद्धति का उसने अनुसरण किया। अकबर ने बाद में इसको अपनाया। किसानों को तकाबी देने की रीति भी इसी समय शुरू हुई। अकाल, टिड्डी दल आक्रमण, बाढ़ के समय किसानों को राज्य सहायता देता था, पर वह तकाबी के रूप में। राज्य को बाद में यह रकम वापस हो जाती थी। पहले के समान राज्य किसानों को दान नहीं देता था। लगान माफ करता था, लगान में छूट देता था, लेकिन राज्य किसानों को सरकार की दानशीलता पर जीने के लिए लाचार नहीं करता था। भूमि जोतनेवाले के प्रति शेरशाह सूरी ने जो सम्मान दिखाया वह अपूर्व है। नागरिक जीवन के प्रति इस सैनिक ने जो सम्मान दिखाया, वह भी अपूर्व है।

इसके राज्य भर में दो नगर व्यापारियों को अपने माल पर चुंगी देनी पड़ती थी। सोनार गाँव (पूर्वी बंगाल) में जब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माल इस देश में आने के लिए प्रवेश करता था, तब उस पर चुंगी लगती थी। दूसरी चौकी थी रोहतासगढ़ (पंजाब) में। पश्चिमोत्तर दिशा से आनेवाले माल पर यहाँ चुंगी ली जाती थी। इन दो करों को छोड़कर और कोई कर नहीं था। माल की बिक्री के समय दूसरा कर लिया जाता था। बिक्री कर शेरशाह के समय अज्ञात था। लेकिन सब यही एकमात्र कर था।

शेरशाह न्यायी था और न्यायप्रेमी था। न्याय के समय वह न्याय के सिवाय और किसी बात का विचार नहीं करता था। आगरा में उसके भतीजे ने सड़क पर चलते हुए सुनार की पत्नी के शृंगारदान में पान का पत्ता फेंक दिया था। इस पर उसको खुलेआम कड़ी सजा दी। एक सूबेदार ने सैनिकों की जमीन जब्त कर ली थी। उस सूबेदार को चौक में खड़ा करके सजा दी गयी। शेरशाह के न्याय के बारे में प्रसिद्ध था कि एक बुढ़िया भी सिर पर सोने से भरी टोकरी रख के जंगल में से निर्भय होकर जा सकती है। उसका बाल भी बाँका न होगा।

डकैती और जुर्मों की जिम्मेदारी उसने गाँवों पर डाली। यदि किसीके गाँव के पास कोई हत्या होती, डकैती होती, लूटपाट होती, तो सारा गाँव दण्डित किया जाता। तिजारी-कर लिया जाता। यह पुराना तरीका था। गाँव इससे सजग रहे थे और अपने इलाके में शान्ति और व्यवस्था रखने के लिए तत्पर रहते थे। प्राचीन व्यवस्था को उसने पुनः स्थापित किया। ग्राम पंचायतें शक्तिशाली हो गयीं।

इमारतें बनाने का उसका शौक अद्भुत था। उसने स्कूल स्थापित किये। दवाखानें खोले। सरायें बनाईं। सड़कें बनाईं। सड़कों के दोनों ओर फलदार वृक्ष लगाये। १५०० मील लम्बी सड़क-ए-आजम (ग्रांट ट्रंक रोड) बनाई और बढ़ाई। यह सड़क नई नहीं थी। चाणक्य चन्द्रगुप्त के समय से चली आ रही थी। अशोक ने अपने समय में इसको कान्धार-काबुल तक बढ़ाया था। यह उसके शिला-लेख से प्रकट है। यह नैपाल होकर जाती थी। नैपाल से यह हिमालय की तलहटी में चकरौता तक चली गयी थी। चकरौता के पास कालसी में विद्यमान अशोक का शिला-लेख इसका प्रमाण है। शेरशाह ने उसी सड़क को पक्का किया। उसका विस्तार किया। ग्रांड ट्रंक रोड मोटर-यात्रियों के लिए आज भी स्वर्ग समान है। बंगाल, आगरा, दिल्ली, लाहौर जानेवाली इस सड़क को जहाँ पेशावर तक पक्का बनाया, वहाँ आगरा से जोधपुर भी ले गया। जोधपुर से यही सड़क चित्तौड़ ले जाई गयी। लाहौर से मुलतान तक एक और सड़क बनायी गयी।

सड़क पर विश्राम-गृह या सरायें बनी हुई थीं। यह सिर्फ आरामस्थल ही नहीं होता था, यह डाकघर भी होता था। घुड़सवार डाक लाते ले जाते थे। हर दस मील पर घुड़सवार बदल जाता था। शेरशाह की बनाई सरायों की संख्या १७०० से ज्यादा नहीं है। क्योंकि यह डाकघर का भी काम करती थी। यह थाने का भी काम करती थी। यह संस्कृति केन्द्र बन गया था। भेदिये लोग भी यहाँ रहते थे। इस प्रकार सराय राज्य का एक ऐसा केन्द्र था, जिसके स्पर्श मात्र से शेरशाह मन-चाहा काम करा सकता था। निस्सन्देह यहाँ पाठशाला भी लगती थीं और बाजार के दिन बाजार यहीं भरता था।

शेरशाह ने स्थापत्य और वास्तुकला की उपेक्षा नहीं की। उसके जीवन और शासन की प्रयोगशाला ससराम में उसका बना मकबरा कला और सौन्दर्य की दृष्टि से दर्शनीय है। ताज के निर्माता को इस मकबरे ने प्रेरणा दी है, यह इसको देखकर लगता है। ससराम का मकबरा विशुद्ध भारतीय कला का नमूना है। निस्सन्देह इस शैली में समरकन्द और बुखारा के मस्जिदों और मकबरे बनाने की शैली सम्मिलित है। उसको आत्मसात कर लिया है। लेकिन यह शैली और प्रणाली वही है, जो अजन्ता और एलौरा की गुफाओं में दिखाई देती है और मिलती है।

शेरशाह ने दिल्ली के पुराने किले में भी एक मस्जिद बनाई थी। जेहलम नदी के तट पर उसने रोहतासगढ़ का किला भी बनवाया था।

शेरशाह की राज्य की कल्पना मध्यकाल की राज्य से भिन्न और नई थी। उसने प्रशासन को नूतन दृष्टि दी। कल्याण राज्य की उसने कल्पना दी। वह लड़ा पर रण-कौशल उसका अपना था। शान्ति का उसने विस्तार किया। वह बुढ़ापे में सम्राट् हुआ था, परन्तु अत्यन्त अल्प-काल में ही उसने राष्ट्र को नींद से जगा दिया। एक राष्ट्र के लिए जिस साज-सामान की और तैयारी की आवश्यकता होती है, वह उसने इस राष्ट्र को दिया। भारत एक राष्ट्र है, यह अनुभूति उसने उत्पन्न की। मृत प्रशासन को उसने जीवित कर दिया। केवल ६ साल उसने राज्य किया। १५४५ में उसका देहान्त हो गया। ६ साल में उसने वह कर दिखाया जो और कोई दूसरा मुस्लिम शासक नहीं कर सका।

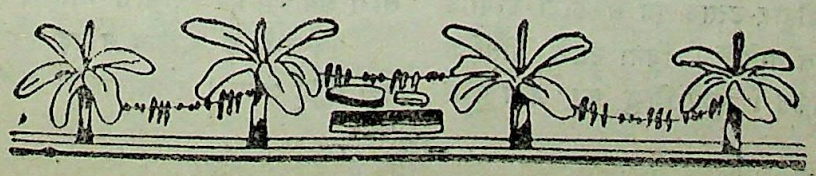

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुन्देलखंडी लोकगीतों में रामचरित्र

श्री विजयलक्ष्मी विभा

राम हिन्दू जन-समूह के जीवन में ऐसे ही रम रहे हैं जैसे शरीर में प्राण। राम का इतिहास कुछ भी हो, परन्तु यहाँके जन-समूह ने उसे जैसा अपने में ढाल लिया है और उसे जैसा भी रूप दिया है वही महत्त्व का है। राम का जन्म कब हुआ, यह कह सकना कठिन है, परन्तु उनकी कथा का स्रोत हमें प्राचीनतम संस्कृत वाङ्मय से ही उपलब्ध हुआ है। उसका उल्लेख विष्णुपुराण में है। इसके अतिरिक्त वाल्मीकि रामायण तो हमारे सामने है ही जिसमें रामचरित्र का सविस्तार सांगोपांग वर्णन मिलता है। इस रामायण के अतिरिक्त भी आध्यात्म रामायण, हनुमन्नाटक, कालिदासकृत रघुवंश इत्यादि कितने ही प्राचीन ग्रन्थ हैं जिनमें राम की कथा है। इस प्रकार राम की कथा ने हिमालय से निकली हुई परम पावन जाह्नवी का रूप ही धारण किया है। वह हिन्दू जन-मानस की धाराओं को संकलित करती हुई अबाध गति से राम रूप सागर की ओर बढ़ती जा रही है। राम परमेश्वर के अवतार हैं उनकी भक्ति भवसागर से पार लगानेवाली है। सांसारिक जीवन के आँधी पानी से वह हमें साहस एवं बल-विक्रम देनेवाली है। हम राम के गीत अपने जीवन की प्रत्येक अवस्थाओं में गाते हैं। हमारे जीवन की प्रत्येक अवस्थायें राम के जीवन में ही उपलब्ध होती हैं। बुन्देलखंड ने तो राम के चरित्र को ऐसे अपनाया है जैसे उसका ही वह कुबेर का कोश हो। रामचरित्र के गान करनेवाले प्रमुख कवियों का बुन्देलखंड में ही जन्म हुआ है न। तुलसी, केशव, मैथलीशरण गुप्त इत्यादि सभी रामचरित्र के गायकों का यहीं तो आविर्भाव हुआ। उनसे प्रेरणा पाकर यहाँ के लोक-साहित्य पर भी रामचरित्र ने अधिकार जमाया। राम के जीवन की लोक-गीतों में जो झाँकियाँ मिलती हैं उनसे हमारे जीवन के साथ एक ऐसा ताना-बाना सा बिछ गया है कि वे हमारे ही जीवन की झाँकियाँ बन गयी हैं। जन्म से लेकर अपने जीवन के प्रत्येक तिथि-त्योहार-उत्सव एवं संस्कारों इत्यादि पर हम राम के ही गीत गाते हैं। बिना उनके गीतों के हम आगे चल ही नहीं सकते। यहाँ शिशु का जन्म हुआ नहीं कि राम ही शिशु के रूप में जननी की गोद में आ जाते हैं और यहाँ का महिला-समाज उनके गीत गा चलता है। सुनिये—

"अंगना में ठाड़ी कौशिल्या सुनो मोरे स्वामिया महाराज।
जे अंगना हमें न सुहावें एक संसदं बिना महाराज।
इतनौ तौ सुन राजा दशरथ नन्दनवन निंग चले महाराज,
हाथ में लीन्हीं कटरिया बगल तलवारिया महाराज,
पहुँचे नन्दन वन डाँग जरद नौनी खोद ल्याये महाराज,
सिल लोढ़ा घिस बाँटी कचुरलन छान लई महाराज,
पहलो घूँट लीन्हो कौशिल्या सो दूजौ रानी केकई महाराज,
तीजो घूँट लीन्हो सुमित्रा गरभ पूरन भये महाराज,
पहलो मास जब लागो तो दूजो तीजो लागियो महाराज,
चौथो मास जब लागो तो पांचो छठों लागियो महाराज,
सातो मास जब लागों आठों नवों लागियो महाराज,
पूज गये नौ दस मास गरभ पूरन भये महाराज।
भोर भये भुन्सारे ललन नौने होय पूरे महाराज,
बजन लगी अनन्द बधैया गावें सखीं सोहरे महाराज।"

आँगन में खड़ी-खड़ी रानी कौशिल्या रामजन्म से पूर्व राजा दशरथ से शिकायत कर रही हैं कि हमें सन्तान के बिना ये आँगन जरा भी नहीं सुहाते। (उनका संकेत स्पष्ट है कि राजा दशरथ को सन्तान-उत्पत्ति के लिये कुछ प्रयत्न करना चाहिए) कौशिल्या की बात सुनते ही राजा दशरथ नन्दनवन को चल पड़े और वहाँ से कुछ जड़ी बूटियाँ खोद कर ले आये। जड़ी-बूटियों को बाँट कर कटोरे में छान लिया और पहला घूँट रानी कौशिल्या को पिलाया। दूसरा कैकेई को तथा तीसरा रानी सुमित्रा को। जड़ी-बूटियों का रस पीते ही रानियाँ गर्भवती हो गयीं और समय पूरा होते ही श्री रामचन्द्रजी का जन्म हुआ। अयोध्या में आनन्द की बधाइयाँ बजने लगीं। सखियाँ सोहर गीत गाने लगीं। सारी अयोध्या हर्षोल्लास से प्लावित हो गयी।

पुत्र-जन्म के आनन्द से बढ़ कर कोई दूसरा आनन्द नहीं माना जाता। तुलसीदासजी ने तो पुत्र-जन्म के आनन्द

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की तुलना ब्रह्मानन्द से की है फिर बुन्देलखंड के लोककवि इस आनन्द की अभिव्यक्ति लोकगीतों में करने के गौरव से वंचित कैसे रह जाते। उन्होंने केवल पुत्र-जन्म के आनन्द को ही लोकगीतों में अभिव्यक्ति नहीं दी वरन् उन परिस्थितियों और प्रयत्नों का भी उल्लेख किया है जो पुत्र-जन्म से पूर्व उन्हें करना पड़ते थे। उपरोक्त गीत में राम-जन्म से पूर्व राजा दशरथजी को जो-जो प्रयत्न करना पड़े उनका वर्णन कैसी सहज बोधगम्य भाषा में कर दिया गया है।

जन्मोत्सव पर बधाई गीत गाने की प्रथा बुन्देलखंड में प्राचीन काल से ही चली जा रही है। बधाये गीतों में आनन्दोल्लास की झलक तो रहती ही है, साथ ही साथ हास-परिहास का भी पुट रहता है। राम-जन्म पर एक बधाई गीत सुनिए—

"जो बन्धनवारौ कहा लयें जाती जौ बन्धनवारो।
नगर अयोध्या सें सुत भये सजनी राजा महीपति के नाती,
राजा दशरथ के पुत्र भये हैं रघुकुल जोत उज्यार दई बाती,
उज्यार दई बाती जो बन्धनवारौ कहा लयें जाती।
रानी कौशिल्या की 'कूख जुड़ानी' सब सखियन की शीतल भई छाती,
नगर अयोध्या में दान भये हैं लै लै दान मगन भई सखियाँ
मगन भई सखियाँ जो बन्धनवारो कहाँ लयें जाती।"

कोई खवासन बन्धनवारा लेकर महल को जा रही थी। मार्ग में किसी स्त्री ने उससे पूछा—यह बन्धनवारा कहाँ लिये जा रही हो? उससे उत्तर दिया—हे सजनी, अयोध्या नगर में राजा महीपति के नाती हुआ है और राजा दशरथजी के पुत्र। रघुवंश में नई ज्योति प्रज्वलित हुई है। रानी कौशिया की कोख को तृप्ति मिली है और सभी सखियों का हृदय शीतल हुआ है। पुत्र-जन्म की खुशी में दान किये गये है जिनको पाकर सखियाँ आनन्द-विभोर हो गयीं हैं। अतः मैं यह बन्दनवारा वहीं लिये जा रही हूँ।

गीत के शब्द-शब्द से कैसा माधुर्य छलक रहा है। जीवन के प्रत्येक सूक्ष्म से सूक्ष्म क्रिया-कलापों का अत्यन्त सरस और हृदयस्पर्शी वर्णन इन गीतों की अपनी विशिष्टता है। जन्मपरक अन्य सभी संस्कारों, उत्सवों और रीति-रिवाजों पर बुन्देलखंड में राम के गीत गाये जाते हैं जैसे नरा छीनने के समय गाये जानेवाले गीत, छठी के गीत, [illegible] नामकरण संस्कार के गीत इत्यादि। किन्तु लेख का कलेवर बढ़ जाने के भय से उन सबका यहाँ दे सकना सम्भव नहीं।

रामचन्द्रजी के बालरूप का भी एक चित्र देखिये—

"बसो हिय नैन ये कौशिल्या जी को छौना।
अंगना में खेले लाल पलना में झूले,
काली जुल्फ को डिठौना।
राई नौन उतारो कौशिल्या रानी,
खुशी रहे तेरो छौना।"

कौशिल्या जी की कोई सखी रामचन्द्र जी के हृदय-हारी बाल-सौन्दर्य पर मुग्ध होकर यह गीत गा रही है। वह कहती है—कौशिल्याजी का पुत्र हृदय और आँखों में बस गया है। वह जब आँगन में खेलता है और पलना में झूलता है तो उसके मुख पर उसकी काली जुल्फों का डिठौना बड़ा ही मोहक लगता है। अतः हे कौशिल्या, तुम अपने लाल की नजर उतार दो ताकि वह सुखी रहे।

गीतों से रिसते हुए बुन्देलखंड के जन-मानस के सौन्दर्य को देख कर ऐसा लगता है कि निःसन्देह यहाँ का लोक-जीवन राममय है तभी न उनके हृदयों से ऐसे पावन राम-गुण रूपी रस की वर्षा हुई है। कितने सरल और स्वाभाविक ढंग से राम की छवि का चित्रांकन किया गया है। जिसमें न भाषा का आडम्बर है न भावनाओं का बनाव-ठनाव।

जब श्री रामचन्द्र जी को महर्षि विश्वामित्र जनकपुर भेजते हैं उस समय का एक गीत देखिये—

"सखी री दोइ कुंवर बगीचन आये।
हाथ लिये फूलन को दोना, विश्वामित्र पठाये।
हँस हँस पँछे जनक जू की 'बेटी किन कारन हरि आये।
गोरे कुँवर की क्या छवि वरनो, साँवरे अदक सुहाये।
हमरे पिताजी की जे फुलबगियां, ए ई देखन हरि आये"

यह गीत सीताजी की सखी गा रही है वह सीताजी से कहती है कि राम और लक्ष्मण दोनों ही राजकुमार बगीचे में आये थे। वे हाथ में फूलों का दोना लिये हुए थे। ऐसा लगता था कि उन्हें विश्वामित्रजी ने ही भेजा था। यह सुन कर जनकनन्दनी सीताजी ने हँस-हँस कर सखी से पूछा कि रामचन्द्रजी किस कारण से आये थे? सखी कोई कारण [illegible] उनके रूप का ही वर्णन करने लगी। वह

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Varanasi

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहने लगी—गोरे राजकुमार की छवि का क्या वर्णन करूँ। मुझे तो साँवले ही अधिक भाये। फिर उसने उनके आने का भी कारण बतलाया कि वे अपने पिताजी के फूलों के बगीचे देखने को आये थे।

प्रत्येक गीत एक चलता-फिरता चित्र सा प्रतीत होता है। बुन्देलखंडी नारियों के कोकिल कंठ तो इन गीतों के सौन्दर्य में चार चाँद लगा देते हैं। ये गीत जन-मानस की निश्छल अनुभूतियों के अचल भंडार है।।

विवाहोत्सवों में गाये जानेवाले राम गीतों की तो गणना करना भी असम्भव प्रतीत होता है। लगुन गीत, बनरा-बनरी, हल्दी-तेल चढ़ाने के गीत, मातृका पूजन, बाबू पूजन, देवी देवताओं के निमन्त्रण के गीत, बारात के आगमन के गीत, ऊबनी के गीत, चढ़ाव के गीत, भाँवर के गीत, भोजन समय के गीत, कंकन छोड़ने के गीत और बिदाई के गीत आदि सभी प्रकार के राम के गीत गाये जाते हैं।

जब श्रीरामचन्द्रजी जनकनन्दनी सीताजी को ब्याहने के लिए बारात लेकर जाते हैं उस दृश्य की झलक गीत में देखिए—

"कीन्हो है गमन रंगीले बना गज चढ़।
पछाड़ूँ बहो भीड़ रघुवंशन की, अगाड़ूँ बहो बाजे बजे,
तन मन मगन रंगीले बना गज चढ़।
बना के सिर छत्र मोर झालर नीकी, दसन चतुराई आली,
उपमा गमन रंगीले बना गज चढ़।
अटन चढ़ हेरें नवल किशोरी, कबै ब्याहुन आहैं,
जानकी रमन रंगीले बना गज चढ़।"

जनकपुर की स्त्रियाँ रामचन्द्रजी को दूल्हा के वेश में बारात लेकर मार्ग पर जाते हुए देख कर यह गीत गाती हैं। वे परस्पर अपनी सखियों से कह रही हैं—श्रीरामचन्द्रजी ने हाथी पर चढ़कर जनकपुर के लिये प्रस्थान किया है। आगे-आगे विविध प्रकार के वाद्य बज रहे हैं और पीछे रघुकुल के लोगों की बहुत बड़ी भीड़ है। यह दृश्य देखकर सबका तन-मन मुग्ध हो रहा है। बनरा के सिर पर छत्र मोर बँधे हैं जिन पर अत्यन्त सुन्दर झालर लटक रही है। जब वे हँसते हैं तो उनके दाँत बहुत प्रिय लगते हैं। हे सखी! वे उपमा के परे हैं। जनकनन्दनी सीताजी अँटारी पर चढ़ी हुई बार-बार झाँककर देख लेती हैं कि वे कब उनके द्वार तक पहुँचे और उन्हें ब्याह कर ले जायें। उन्होंने जानकीजी के मन को मोह लिया है।

सीधी-सादी शब्द योजना में कैसी सरलता भरी हुई है। राम के शृङ्गार का वर्णन क्या हुआ है स्वयं गीत का शृङ्गार दृष्टिगोचर होने लगा है।

जन-जीवन की अनुभूतियाँ राम की अनुभूतियाँ हैं और राम की अनुभूतियाँ जन-जीवन की। इसी लिए राम के जीवन में जिन घटनाओं अथवा परिस्थितियों का अभाव रहा उन्हें भी उनके जीवन में आरोपित कर दिया गया है। जनकनन्दनी सीताजी की बहिनों का राम के साथ हास-परिहास देखिए—

"जुर आईं लला जू की सारियाँ बैठी मोठी गावें गारियाँ।
जे नृप दशरथ लाल कहाये, ब्याहुन काज जनकपुर आये,
जे हैं कौशिल्या के जाये, सुनियत पति बिन सुत उपजाये,
इनकी मैया को हैं बलिहारियाँ—
नहियाँ भरत भोग अनुरागी, इनके बहनोई वैरागी,
बहिनी श्रीऋषी संग भागीं, अपनी कुल मर्यादा त्यागी,
सुन नारी हँसे दे दे तारियाँ—

यद्यपि प्राचीन ग्रन्थों में ऐसा कोई प्रसंग नहीं मिलता कि रामचन्द्रजी की बहिन श्री ऋषी के साथ भागी थीं और कुल की मान मर्यादा त्याग दी थी किन्तु लोकगीतों में ऐसे प्रसंगों की सृष्टि कर दीगयी है। क्योंकि राम हिन्दू जन-मानस पर छाये हुए हैं। जन-समूह ने उन्हें अपने ही जीवन का प्रतीक बना लिया है न, फिर जीजा-सालियों का यह हास-परिहास राम के जीवन में क्यों न उतारा जाता।

राम वन-गमन से सम्बन्धित मुझे इतने गीत सुनने को मिले कि मैं निर्णय नहीं कर पा रही हूँ कि कौन-सा गीत यहाँ उद्धृत करूँ। कैकेई का वरदान माँगना, सीता और लक्ष्मणजी का राम के साथ वन जाने को हठ करना, कौशिल्या का राम को समझाना, राम सीता सम्वाद, अयोध्यावासियों का व्याकुल होकर राम के साथ जाने का हठ आदि विषयों पर गीत भरे पड़े हैं। मैं यहाँ कौशिल्याजी की व्यथा से ओतप्रोत एक छोटा सा गीत ही सुना सकती हूँ। सुनिए—

"दोनों रे सुता मोरे वन खाँ गये रे।
वन गये राम वनइं गये लक्ष्मण,
वन खाँ मोरी सीता माई गई रे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आगू राम बीच में जानकी, पीछे से लक्ष्मण भाई गये रे।
वन खाँ गमन कियो रघुवर ने, प्राण तजे दशरथ राजा ने।

इन लघुकाय गीतों में भी कितने मार्मिक और व्यापक चित्रण हैं। गीतों को सुनने मात्र से आँखों के सम्मुख हँसा देने और रुला देनेवाले दृश्य स्वतः ही उपस्थित हो जाते हैं।

सीताजी को रावण के द्वारा हरे जाने पर मन्दोदरी रावण को अपना अभिमान और हठ त्याग करने के लिए जो शिक्षा देती है उसकी वार्तालाप का एक गीत देखिए—

"कला जानौ न श्री भगवान की पिया हर ल्याये जानकी।
प्रीतम हर लई नार विरानी, वे प्रभु हैं वे अन्तर ध्यानी,
जिनकी रानी सिया भवानी, तुमने कला न उनकी जानी,
मति मारी गई है अज्ञान की····
रावण बोला ऐसी वाणी, सुनिये मन्दोदर पटरानी,
मोरी लंक कोट रजधानी, मैं हूँ शम्भू का वरदानी,
खबर नैया उन्हें मोरे बानकी····
प्रीतम कही हमारी मानो, बालक रामचन्द्र न जानो,
झगड़ा न भूपन से ठानो, उनको रूप असल पहचानो,
छोड़ो छोड़ो जा टेक अभिमान की"·····

वार्त्तालाप की ऐसी सुन्दर और सुस्पष्ट अभिव्यञ्जना और कहाँ देखने को मिलती है। भाषा के सीमित परिवेश में कितना गहरा और कितना गम्भीर अनुभूति का सागर भरा हुआ है। आगे देखिए—

"सरग की पटकी है सीता अभागन धरती ने लई है झेल।
इक वन लाँघो दूजो वन लाँघो तिज वन लागी है प्यास,
नै इत ताल न पोखरी नै इत जमुन जल नीर,
तुम बैठो भौजी कदम की छैंया हम जल खोजन जायँ,
शीतल चली है पवनिया सीता को आ गई दुख नींद,
उतै से आये बारे देवरा दोनन में भर लाये नीर,
नीर तो टांगो कदम से लछमन धर लई घरइ की गैल,
चलो है झकोरा लुढ़क गओ दोना सीता पै परी जल बूँद,
सीता उठी अकुलाय बिसरे इतै मोरो कोउ न दिखाय,
मांय से निकसो इक तपसी सीता को रव समझाय,
चलो न बेटी सीता कुटी में तुम मोरी धरम की बेटी,
इक रात सीता रही कुटी में लव-कुश लये अवतार।"

कैसा हृदय विदारक वर्णन है। एक बार वन के कष्ट भोग चुकने पर भी सीता को पुनः वन जाना पड़ा। मार्ग में उन्हें प्यास सताने लगी किन्तु उस वन में कोई ताल या पोखरे नहीं थे। लक्ष्मणजी सीता को कदम की छाँव में बैठाकर उनके लिए जल खोजने चले गये। इधर शीतल पवन के स्पर्श से उन्हें नींद आ गयी किन्तु शीघ्र ही लक्ष्मणजी दोने में जल लेकर वापस आ गये। उन्होंने सीताजी को सोती हुई देखकर अयोध्या वापस लौट जाने के लिए यही अवसर उचित समझा और वे चल पड़े। इधर पवन के झोंके से जल का दोना गिर गया। सीताजी के तन पर जल की कुछ बूँदें पड़ गयीं और वे जाग पड़ीं। किन्तु वहाँ किसी स्वजन को न देखकर व्याकुल हो रोने लगीं। उसी समय एक तपस्वी उनके समीप से निकला और उसने रोने का कारण पूछा। स्थिति के स्पष्ट होते ही वह उन्हें अपनी बेटी समझाव से अपनी कुटी पर ले गया। दूसरे ही दिन लव, कुश का जन्म हुआ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि राम बुन्देलखण्ड के जन-जीवन का एक अभिन्न अंग हैं। यहाँ शिशु का जन्म होता है तो वह राम का ही होता है। उसका विवाह राम का ही विवाह है। यहाँ की प्रत्येक माता कौशिल्या है और प्रत्येक पिता दशरथ। प्रत्येक पत्नी सीता है और प्रत्येक भाई भरत अथवा लक्ष्मण यद्यपि कि राम के जीवन की घटनायें जन साधारण के जीवन की घटनाओं से सर्वथा भिन्न ही थीं, परन्तु उनकी घटनाओं को जन-जीवन ने अपने में आरोपित कर लिया है और अपनी घटनाओं को राम के जीवन में। यह राम के प्रति जन-समूह की अटूट श्रद्धा और भक्ति का ही परिणाम है।

कहना ही पड़ता है कि यह बुन्देलखण्डी लोक रामायण अपनी सरस भाषा शैली, हृदय स्पर्शी अभिव्यंजना शक्ति, भाव गरिमा, लालित्य, सहज स्वाभाविकता और रसाभिव्यक्ति में उन प्राचीन राम ग्रन्थों से कम नहीं जिन्होंने कि इसके कथानक की सृष्टि की है। छुटपुट गीतों में बिखरी हुई यह राम कथा निश्चय ही अपनी सानी नहीं रखती। इन लोकगीतों का बुन्देलखण्ड में अटूट भंडार भरा पड़ा है। यहाँ तक कि एक एक विषय पर इतने लोकगीत सुनने में आते हैं कि संकलन कर्ता स्वयं सम्भ्रम में पड़ जाता है कि कौन सा लिखे और कौन सा छोड़े। मैं तो इन गीतों के यहाँ कुछ नमूने ही प्रस्तुत कर सकी हूँ। तुलसी-कृत रामायण के बालकाण्ड से लेकर उत्तरकांड तक का पूरा कथानक इन बुन्देलखण्डी गीतों में समाया हुआ है। यदि इनका क्रमबद्ध संकलन किया जाये तो निश्चय ही एक अद्वितीय लोक-रामायण तैयार होगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाकवि निराला और आचार्य गंगाधर शास्त्री

डा० नन्दकिशोर तिवारी

महाकवि निराला की श्रेण्यता केवल छायावादी कविता की दृष्टि से ही नहीं अपितु बीसवीं शती की सर्वाधिक सशक्त काव्य-चेतना सम्पन्न कवियों के गणना-प्रसंग में कनिष्ठिकाधिष्ठित मानी जायगी, ऐसा इस युग के प्रायः सभी मान्य-आलोचकों का अभिमत है। थियोसोफिस्ट एनीबेसेन्ट ने अपने युग से दो सौ वर्ष आगे की अवधि में अपने को 'ट्रांजिट' कर आगमिष्यत् मानव जीवन के रहन-सहन और विचारधारा के सम्बन्ध में जो बातें बताई थीं, वे शत-प्रतिशत सही निकलीं; यह बात उनकी पुस्तकों तथा प्रकाशित भाषाओं से अभिज्ञात होती है। क्रान्तिदर्शी निराला ने न केवल आधुनिक युग की साहित्यिक विचारधाराओं को अपने में आत्मसात किया अपितु आनेवाले युग की तमाम साहित्यिक संभावनाओं के लिए सूत्र रूप में कला और शिल्प में नये युग की संवाहिकाओं का प्रतिमान भी स्थापित किया। यह युग निराला का युग है और निराला ने जिन विरोधी तत्त्वों के साथ जूझते हुए, चुनौतियों का सामना करते हुए, कविता, आलोचनादि गद्य-पद्य के उभय-क्षेत्र में अपने उत्क्रान्तिकारक विचारों को विपरीत-बुद्धि आलोचकों (दिङ्नागों) से मनवा लिया, जो आज की नई पीढ़ी के प्रत्येक प्रयोग, विशेष के लिए एक उत्स रूप परम्परा-पथ का कार्य कर रहा है। महाकवि निराला ने संस्कृत, अँग्रेजी, बंगला और हिन्दी भाषा में जो कुछ उच्च, उदात्त और परिष्कृत था उसे उपजीव्य मानकर और जो अग्राह्य था उससे कटकर अत्यन्त अस्खलित मानदण्डों का निर्माण किया। लेकिन ऐसे प्रतिभा-सम्पन्न रचनाकार प्रारम्भ में साहित्य संसार द्वारा गलत समझे जाते हैं। निराला पर भी चतुर्दिक प्रहार हुए। कहा जाता है कि कवि अत्यन्त कोमल-प्राण होते हैं, शतकोटिक, पर दुखद्रावकता उनमें सामान्यजनाधिक होती है। शायद अंग्रेज कवि 'कीट्स' अपनी रचना की आलोचना पढ़कर इतना मर्माहत हुआ कि टी० बी० का शिकार हो गया और वही रुज उसके लिए प्राणान्तक सिद्ध हुआ। निराला महाप्राण थे फिर भी वे कुछ विक्षुब्ध हुए शायद कुछ असन्तुलित भी तथापि उनके जीवनकाल में ही उनके व्यक्तित्व और कृतिबोध ने आलोचकों के मिथ्यात्व को प्रमाणित कर दिया था और कुछ ईमानदारों ने इसे प्रत्यक्ष स्वीकार भी कर लिया था। किन्तु इससे यह भी स्पष्ट है कि सहृदय जनों का एक वर्ग भी था जो उस बेरहमी के जमाने में भी कवि के प्रति सर्वथा उदार भाव दिखलाते हुए उन्हें टूटने नहीं देने को बाध्य कर रहा था। ऐसे उँगली पर गिने जाने वालों में आचार्यवर गंगाधर मिश्र भी एक थे।

वस्तुतः जीवन के प्रथम चरण में ही निराला को निसर्ग और समाज दोनों ने स्नेह देने से इनकार किया। पर इस कोताही में भी वह प्रतिभा-पुरुष भग्न-हृदय नहीं हुआ। प्रतिभा सरिता की धारा के समान बाधा पड़ने पर और तीव्रतर होती है। तुलसीदास जी ने काव्यधारा को सरित्-प्रवाह सरीखा कहा है—'चली सुभग कविता सरिता सी।' सचमुच सरिता की धारा यदि इस मनोकामना को लेकर चले कि हमारे मार्ग में किसी प्रकार की कोई बाधा न उपस्थित हो तो वह रास्ते में ही दम तोड़कर रह जायगी। निराला की काव्य-प्रतिभा ने अपने उद्गम काल से ही रोड़ों से लड़ते हुए जीवन भर शुद्ध काव्य-मंदाकिनी का प्रवाह अक्षय रखा। वे इस विचार के थे कि 'हर एक व्यक्ति—हर एक शब्द का विरोधी गुण उसकी प्रगति का निर्णय कर रहा है। प्रगति भले और बुरे के संघर्ष से ही होती है। यदि विरोधी गुणों का त्याग व नाश कर दिया जाय तो संसार की प्रगति रुक जायगी'। यही कारण है कि अपने विरोधियों से वे कभी दहसत नहीं खाते थे। पर यह भी सही है कि यदि किसी सरिता के उद्गमस्थल से लेकर दो चार कोस की दूरी तक अनेक बड़े-बड़े पहाड़ मार्ग में आ जाते हैं, तो वह सरिता सरितात्व त्यागकर कुंड बन जाया करती है। और कुंड में जल तो होता है पर प्रवाह नहीं—जल जड़ है और प्रवाह चेतन। निराला को भी कुछ नवजात आलोचकों एवं सुहृदों का स्नेह साहचर्य प्राप्त हुआ जिन्होंने उनकी प्रतिभा को कुंड नहीं तो कुंद होने से अवश्य बचा लिया। कहना न होगा कि ऐसे स्नेहरागियों और आलोचकों में आचार्य गंगाधर जी का नाम बड़े आदर के साथ स्मरण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योग्य है। वस्तुतः महाकवि निराला के रचना-प्रवाह को शुष्क होने से बचाने वाले काव्य-पारखियों में मिश्रजी अपूर्व महत्त्व के अधिकारी हैं। इसे ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में और स्पष्ट किया जा सकता है।

महाकवि निराला को कलकत्ते में जिन स्नेहाकांक्षियों का अनवद्य स्नेह मिला उनमें शिवपूजन सहाय, सेठ महादेव-प्रसाद और नवजादिकलाल श्रीवास्तव उँगली पर गिनने से भी कम लोग थे। 'अनामिका' के प्रथम प्रकाशन काल में महादेवप्रसाद ने ही उसकी भूमिका लिखी थी। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने केवल 'पंचवटी प्रसंग' पर ही अपना वक्तव्य दिया था और साहित्याचार्य चन्द्रशेखर शास्त्री की सम्मति केवल इतनी ही थी कि 'आपकी पुस्तक एकदम नई है, पर उत्तम है, उक्तियाँ भी कहीं-कहीं बड़ी ही मधुर है। मैं इस पुस्तक को देखकर प्रसन्न हुआ हूँ।' वैसे 'निराला' का नाम 'मतवाला' के साथ खूब उजागर हुआ था। इस पत्र के एक साल की अवधि में निराला को कदाचित् इतनी व्यापक प्रसिद्धि मिली जितनी अद्यावधिक हिन्दी के किसी अपर कवि को मयस्सर नहीं हुई होगी। यह सन् १९२० के आसपास की बात है। तथापि अभी निराला की कविताएँ पाठक वर्ग की जिह्वा पर ही अनेक नृत्यशालिनी हुई थीं। अब तक उन्हें ऐसा कोई आलोचक नहीं मिला था जो उनकी भाव-भंगिमाओं को बताते हुए अन्य रसज्ञ कवियों के मध्य शीर्ष स्थान प्रदान करे। सन् '२६–'२७ तक रामनरेश त्रिपाठी की 'कविता-कौमुदी' में उनका नाम आया था। '२९ में 'परिमल' का प्रकाशन बहुत सोच-समझ के बाद हुआ था। उसमें तुकान्त तथा मुक्त छन्द दोनों प्रकार की रचनाएँ थीं। किन्तु काशी के विद्वानों को तो अपनी विद्वता के समक्ष अपर-जन दिखाई ही नहीं देते। स्वयं तुलसीदास को इन लोगों के विरोध से ऊबकर बाबा विश्वनाथ की शरण लेनी पड़ी थी। 'परिमल' पर टिप्पणी देते हुए काशी के विद्वानों ने लिखा था—'कवि ने शब्दा-डम्बर में पड़कर भावों की अवहेलना की है, छन्दों का तिरस्कार करके कवि ने कविता के मूल पर कुठाराघात किया है'। इतना ही नहीं, प्रायः उस काल के सभी समालोचक, आचार्य शुक्ल से लेकर बनारसीदास चतुर्वेदी, जगन्नाथ-प्रसाद चतुर्वेदी, पद्मसिंह शर्मा, समवेतभाव से छायावाद और विशेषकर निराला से अनुदारभाव रखते थे। आचार्य चन्द्रबली पांडेय, जो संस्कृत और फारसी के विद्वान् ही नहीं, तसव्वुफ के विशेषज्ञ भी माने जाते थे, निराला की 'जुही की कली' को 'उन्मत्त यौवन का उद्धत विलास' कहा तथा 'सन्ध्यासुन्दरी' के सम्बन्ध में उनका अभिमत था—'सन्ध्या एक नायिका है, और कवि एक कामातुर जीव, जिसको वह अपने अंक पर सुलाती है'। इस प्रकार ऐसी नादान बातों और फब्तियों से भरी हुई आलोचनाएँ निराला की रचनाओं के अन्तःपट को खोलने को कौन कहे और उसे बन्द कर रही थीं। निराला का विरोध साहित्य और राजनीति के प्रत्येक कोने से था। हिन्दी और हिन्दु-स्तानी अथवा उर्दू और अँग्रेजी के सम्बन्ध में भी इस विवाद की यह स्थिति थी कि कभी-कभी राजनीतिक रंग-मंच भी पूरा गर्म होते विस्फोट होने के थोड़ा पूर्व इसी बिन्दु पर विश्राम लेता था। ऐसी स्थिति में जहाँ भाषा का प्रतिमान ही नियत नहीं हुआ हो वहाँ नये साहित्यिक वाद और नये ढाँचे की कविताओं के सम्बन्ध में कौन बात करे। वैसे भी साधारणतः परम्परा प्रवीण को भी अपने प्रारम्भिक काल में जिजीविषा हेतु संघर्ष करना पड़ता है और स्थापित होने में पूरा विलम्ब लग जाता है। फिर निराला को प्रतिस्थापित करना किसी आलोचक के लिए सद्यः सहज कार्य तो था नहीं, क्योंकि विशेषतया आलोचक-जन स्थापित व्यक्तियों पर ही लेखनी का वजन आजमाना चाहते हैं। सर्वथा नव्य और असहज तथा मार्ग-प्रवर्तक को तो समझने और समझाने दोनों में जोखिम उठाने का भय अन्त तक बना रहता है। वस्तुतः दिङ्नाग आलोचकों ने महाकवि निराला के देदीप्यमान साहित्याचार को चुनौती की भाषा में विरोध मात्र करते हुए (जिसे विरोध के लिए विरोध कहते हैं) अव्याख्यात छोड़ दिया। अब उस अभि-मन्यु को एक साथ दो काम करना था। पहले तो बाह्य प्रहार से अपने को बचाना और दूसरे व्यूह से बाहर निकलने के लिए पथ का स्वतः सन्धान करना। कहना न होगा कि आचार्य गंगाधर शास्त्री निराला के प्रारम्भिक जीवन से ही उनके हिमायती थे। निराला भी उनसे अमित स्नेह में डूबे हुए थे—

मौन मधु बन जाय भाषा मूकता की आड़ में,
मन सरलता की बाढ़ में, जल बिन्दु सा बह जाय।

सचमुच आचार्य गंगाधरजी ने निराला की तेजस्विता को प्रथम परिचय में ही पहचाना था और महाकवि ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनमें एक प्रखर और दिव्य काव्य पारखी का सत्स्वरूप निदर्शन किया था। समस्त काशीपुरी में निराला-काव्य के प्रशंसकों की आज एक भीड़ देखने को मिल रही है, किन्तु प्रारम्भ में 'प्रसाद' जी, रायकृष्णदास, 'बेढब' जी, नन्द-दुलारे वाजपेयी और आचार्य गंगाधर शास्त्री के अति-रिक्त कोई नाम सामने आता नहीं। इन्हीं इतिहास-पुरुषों ने कभी तो निराला की कविताओं की भूमिकाएँ लिखीं, कभी किसी कविता का मर्मोद्घाटन किया और कभी महाकवि का अखिल भारतीय स्तर पर अभिनन्दन कराकर उनकी महिमा रेखा को बहुत आगे बढ़ाया।

वस्तुतः निराला जैसे कवि को भी एक ऐसे आलोचक की आवश्यकता थी जो उनकी कविताओं का विश्लेषण कर, गहराई में पहुँचकर उनकी काव्यकला का रहस्योद्-घटन करे। वे इस कार्य को स्वयं करना नहीं चाहते थे। वैसे कुछ अंशों में 'मेरे गीत और कला' आदि लिखकर उन्होंने भी यह कार्य किया था। किन्तु वे स्वयं इस प्रकार की कोई आलोचना अपनी कविता के सम्बन्ध में लिखना नहीं चाहते थे। एक बार वर्तमान कविता पर नन्ददुलारे वाजपेयी को लिखने की सलाह देते हुए उन्होंने उक्त कथन की पुष्टि की थी। 'मैं स्वयं एक कवि के नाते समालोचना लिख नहीं सकता और लिखते समय अपना उल्लेख भी नहीं कर सकता, और न करना ठीक भी नहीं—इतिहास के विचार से।' कैसी घुटन की वह स्थिति हो सकती है यह सहज-भाव से अनुमेय है। निराला को केवल रक्षात्मक भाव से प्रहार से बचना नहीं था। अपितु अपना शस्त्र तैयार रखते हुए दूसरों पर प्रहार करना भी था। कारण, छायावाद के समर्थक पत्रों जैसे 'भारत', 'जागरण' आदि जिनके, सम्पादक शिवपूजनसहाय और नन्ददुलारे वाजपेयी थे उनमें भी छायावाद की विरोधी बातें निकलती थीं। निराला को तो प्रारम्भ से ही परम्परा-विरोधी प्रमाणित करने का षड्यंत्र चल रहा था। दूसरे, यह कि अब तक कुछ अंग्रेजी पढ़े-लिखे आलोचक जैसे नलिन विलोचन शर्मा और रामविलास शर्मा, निराला में मिल्टन आदि अंग्रेजी के कवियों के उदात्त स्वरों की गरिमा देखते थे और हिन्दी में उन्हें 'शेली' और 'बाइरन' से कतई कम वजनी नहीं मानते थे। फिर भी ऐसे आलोचक की आवश्यकता बनी हुई थी जो शास्त्रीय परिपाटी से संपुटित होकर तदवधि से निराला साहित्य का अध्ययन प्रस्तुत करे। विशेषतया यह इसलिए भी आवश्यक था कि शास्त्रीय जन अपने संस्कारों का सर्वथा फलाभाव कवि की विचारधारा में पाते हुए विरोध का झंडा और ऊँचा करने में लग जाते थे। बिहार के जानकीवल्लभ शास्त्री निराला को संस्कृत ज्ञान के चलते ही प्रीत थे। लखनऊ में रहते समय जानकीवल्लभजी से महाकवि का पत्राधार प्रारम्भ हो गया था और वे उनके संस्कृत ज्ञान की मुक्तकंठ से सराहना करते थे। डा० रामविलास शर्मा के अनुसार 'इस बात से वे विशेष प्रसन्न थे कि संस्कृत का विद्वान् उनके काव्य का प्रशंसक है।' ये वाक्य महाकवि के आन्तरिक उद्गार के प्रतीक हैं। 'श्रीयुत गंगाधर जी भी शास्त्रीजी के समान निराला काव्य का तलवर्ती अध्ययन करने और उनकी प्रतिभा को पहचानने में बहुत अग्रणी थे। १९४३ में महाकवि के सम्पर्क में आने के पश्चात् अपनी सर्जनात्मकता को उनकी चेतना में सहज रूपायित कर दिया। उन्होंने उनके साहित्य के गंभीर मन्थन द्वारा केवल नवनीत निष्काषन और पात्रोचित आबन्टन-कार्य ही नहीं किया अपितु निराला के आर्ष जीवन (दैनंदिन जीवन) के उदात्त-स्वरों को अपने जीवन में मूर्त करने का एकान्त सफल प्रयास किया। आज समस्त हिन्दी संसार में निराला पथ के दावेदार का सन्धान किया जाय, जो आर्य-संसार और भौतिक साधनों और मायामय कुर्सियों से दूर रहकर उनके आदर्श को एक मात्र सम्बल मानते हुए, उनके प्रति साधना का दीप अनेक झंझावतों के मध्य निर्वापित नहीं होने दिया हो, तो वह शास्त्रीजी ही होंगे। निराला के अनेक ऐसे हिमायतियों में गंगाधरजी ही ऐसे हैं, जिन्होंने निराला का नाम कभी बदनाम नहीं होने दिया, जिन्होंने निराला का नाम बेचकर कभी उसे अपनी प्रोन्नति नहीं करायी, जिन्होंने निराला काव्य की भाव-भूमि पर ठीक-ठीक पैर रखते हुए भी किसी प्रकार की चुनौती किसी को नहीं दी, जिन्होंने निराला साहित्य के समस्त रूपों का, पुंखानुपुंख विवेचन सही ढंग से प्रस्तुत किया। तात्पर्य यह कि उपर्युक्त सभी न्यायों का पुंजीभूत रूप ईमानदार इति-हासकार द्वारा आचार्य गंगाधरजी के नाम से अभिहित किया जाना चाहिए। अगर यह सही है कि निराला वाङ्-मय का विरोध संस्कृत ज्ञाताओं और शास्त्रीय जनों द्वारा ही प्रातशः और बहुशः हुआ तो यह भी उतना ही ठीक है कि तत् वाङ्मय के विशेषज्ञ के रूप में एक दो अपवादों को छोड़कर वर्तमान और भावी इतिहासकार द्वारा, क्योंकि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब दिवंगत होकर निराला भी इतिहास ही बन गये हैं। शास्त्री-त्रयी (पं० गंगाधर शास्त्री, जानकीवल्लभ शास्त्री, और त्रिलोचन शास्त्री) का ही नाम शीर्ष पर उल्लिखित होगा। इसमें विरोधाभास जो लगे किन्तु ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखने पर ही सातत्य हाथ लगता है।

पं० गंगाधर जी ने तो वैसे अनेक शीर्ष-ग्रन्थों द्वारा हिन्दी साहित्य के कतिपय रिक्त अंगों की पूर्ति की है किन्तु लगभग ढाई दशकों तक निराला साहित्य के अध्ययन आलोड़न के पश्चात् जो उन्होंने अपनी समीक्षण-चेतना का परिचय दिया है वह अपने आप में समस्त निराला काव्य का निकष स्थापित करता है। अब तक निराला पर विशेषतया कवि के दिवंगत होने के बाद से बहुत लिखा गया है। किन्तु किसी भी एक ग्रन्थ में यह प्रौढ़ि और प्रमाण-पुरस्सरता देखने को नहीं मिलती।

निराला-साहित्य पर प्रलिखित 'युगाराध्य निराला' इस क्षेत्र में काव्य-प्रेमियों एवं अनुसन्धायकों के लिए समन्तात् एक मील-स्तम्भ के रूप में विचारणीय है। निराला के समस्त कृतित्व का एक स्थान पर सारी पिपासा को शान्त करने वाला ऐसा ज्ञान-सरोवर सचमुच सुदुर्लभ है। इस ग्रन्थ में केवल काव्य सम्बलित तत्त्वों का विश्लेषण मात्र नहीं, अपितु गद्य क्षेत्र की बहु विधाओं पर महाकवि के आधिकारिक प्रयत्नों एवं हस्तलाघवता का अस्खलित भाव से मूल्यांकन हुआ है जो अपने आप में पूर्ण होते हुए भी सर्वथा नव्य दिशा मंडित है। इसमें काव्य क्षेत्र में 'अनामिका' से लेकर 'गीतगुंज' तक की काव्य-यात्रा को बड़े सुचिंतित एवं सुसमीक्षित दृष्टि से देखने-परखने का श्लाघ्य प्रयास है। इसके अतिरिक्त महाकवि की कतिपय श्रेण्य रचनाओं जैसे 'राम की शक्तिपूजा' आदि पर पृथक् अनुशीलन प्रस्तुत है। गद्य में उपन्यास और कहानियों की समस्त तालिका का पर्यालोचन उपस्थित करते हुए मिश्रजी ने शिशु उद्बोधक प्रबन्धों एवं सामाजिक प्रबन्धों का भी परिशीलन किया है। वस्तुतः मेरी जानकारी में मिश्रजी प्रथम व्यक्ति हैं, जिन्होंने निराला जी के समीक्षात्मक निबन्धों की श्रेण्यता की ओर हमारा ध्यान प्रथम आकृष्ट किया है। निराला का उपन्यासकार और कहानीकार रूप इसके पूर्व जो विवेचित हुआ हो, निबन्ध के रूप की प्रौढ़ि का ऐसा विशद् विवेचन अन्यत्र नहीं हुआ था, पश्चात् कुछ शोध-प्रबन्धों में इसकी चर्चा तदाधाराश्रित होकर ही हुई। यद्यपि पं० मिश्रजी ने यह ग्रन्थ महाकवि के जीवन-काल में ही लिखा था और यह 'जीवित कवेराशयोः' के निषेध का प्रत्याख्यान भी था किन्तु कवि के देहावसान के पश्चात् भी इसकी धारणाओं एवं निष्कर्षों में किसी प्रकार के परिवर्तन की अपेक्षा नहीं दृष्टिगत होती, यह इसकी अनन्वय विशेषता एवं सुचिन्तित विश्लेषण का प्रमाण है।

निराला काव्य का परीक्षण हुआ है, हो रहा है, और बहुत दिनों तक होता रहेगा, जैसा श्रेण्य काव्य के पर्यालोचन एवं अध्ययन में होता है। जिस समय निराला जी की स्वतः परीक्षा ली जा रही थी, गंगाधर जी स्वच्छ हृदय से प्रथम पारखी की कोटि में निश्चल होकर उनके साथ थे। उन्होंने जीवन काल में ही उनकी जिजीविषा को बढ़ाने में सदा योगदान किया तथा उनके देहावसान के बाद भी उस पारम्परिक साधनापीठ में बैठकर समाधि अवस्था में, 'मगन ध्यान रस दण्ड युग', पुरश्चरण क्रिया कर रहे हैं। निराला काव्य के साथ गंगाधर जी की आलोचना कला भी समान रूप से पूजित है। गंगाधरजी ने विश्व की दो विभूतियों के साथ (तुलसीदास और निराला) संपृक्त कर अपने को उन 'रस सिद्धाः कवीश्वराः' की पंक्ति में पांक्तेय बना लिया है जिनकी कीर्त्ति 'जब लगि गंग जमुन जल धारा' तक निसर्ग प्रतिष्ठित हो गयी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुमित्रानन्दन पंत--छायावाद के युगीन संदर्भों की प्रसंग-चर्चाएँ

डॉ० विजयकुमार शुक्ल

पण्डित सुमित्रानन्दन पंत--विगत अर्द्ध शताब्दी की हिन्दी-काव्य-चेतना के इतिहास से जुड़ा हुआ एक व्यक्तित्व। मेरे एक मित्र अक्सर कहते हैं कि पंतजी ने जितनी बार 'पलोरक्रासिंग' की है, सम्भवतः अन्य किसी कवि ने नहीं। वास्तव में पंतजी के भीतर समयानुसार अथवा उनकी परिस्थिति के अनुसार मूल्यों का परिवर्तन हुआ, होता रहा, उसे हास्यास्पद ढंग से देखे जाने के कारण वे 'दल-बदलू' सरीखे देखे गये। मूल्य-परिवर्तन उनके बौद्धिक विकास के परिणाम हैं। मूल्य-परिवर्तन बाहर से प्रतीत होता है अन्यथा आन्तरिक रूप से उनमें अविरलता है, एक ही अखण्डता का प्रगट-रूप है, उनकी काव्यसर्जना में।

पंतजी में सतर्कता एवं सजगता है जो उन्हें किसी एक खूंटे में नहीं बाँध सका। जो खूंटे में बाँधना चाहते रहे, तब तक पंतजी बाँधनेवाले से आगे हो जाते रहे। पंतजी ने किसी विचारसीमा का अनुबन्धन नहीं स्वीकार किया। पंतजी वास्तव में विद्वान कवि हैं। उन्हें अपनी बौद्धिक ईमानदारी के कारण ही मूल्यों के परिवर्तन की आवश्यकता होती रही है। पंतजी को स्वयं तत्सम्बन्धी परिवर्तन का बोध नहीं। आलोचकों को ही बोध हो पाता रहा है। पंतजी आरम्भ से लोकायतनवादी ही रहे हैं और अनुबन्धन स्वीकार भी किया है तो केवल प्रकृति से। पतजी का किशोर कवि, आरम्भ में किशोर ही रहा जो प्रकृति के व्यापारों में वैचित्र्य पाकर व देखकर प्रश्न-चिह्न लगाकर चला। पंतजी 'वीणा' से 'पल्लव' तक प्रकृति के प्रतीकों के भीतर जीने लगे। उनमें व प्रकृति की चेतना में अन्तर ही नहीं रहा। 'परिवर्तन' की झलक ही उनकी लोकायतनवादी व्यक्तित्व होने का संकेत देती है। अपनी पूर्ण यौवन की कामना, तृष्णा, विषाद, कसक को 'ग्रन्थि' व 'गुंजन' तक रूपायित करके छायावाद को शिखर पर वे पहुँचा चुके थे। पारिभाषिक दृष्टि से छायावाद को स्वरूप देने में पंतजी ही प्रवर्तक सिद्ध होते हैं। प्रसादकृत 'झरना' (सन् १९१७) में प्रकृति के कुछ प्रतीकों का उपयोग हुआ किन्तु उसे स्वच्छन्दतावादी सम-सामयिक प्रभाव ही मानना चाहिये।

पंतजी ने आचार्य पण्डित शिवाधार पाण्डेय के निर्देश में रोमाण्टिसिज्म के कवियों के काव्य व दर्शन को तथा अन्य आंग्ल-साहित्य जैसा पढ़ा था वह संयोग प्रसादजी व निरालाजी को नहीं प्राप्त हुआ था। सन् १९२२ में प्रयाग में, जैन हास्टल में एक कवि-सम्मेलन हुआ था। पण्डित अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' कवि-सम्मेलन के अध्यक्ष थे। स्वागताध्यक्ष पण्डित शिवाधार पाण्डेय एवं संयोजक स्व० गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश' थे। पाण्डेयजी ने स्वागत-कविता पढ़ी थी जिसकी प्रथम पंक्ति थी--'आये हरिऔध आज युग के नेता।' इस कवि-सम्मेलन में इन्हीं दिनों बाबू पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, जो 'सरस्वती' के सम्पादक हुए थे, भी उपस्थित थे। पंतजी ने 'छाया' नामक कविता पढ़ी और मालोपमाओं के क्रम में 'कटी छटी नव कविता-सी' तक पहुँचने पर सहृदय हरिऔधजी ने गद्गद होकर अपने गले की माला पंतजी को पहना दी। बख्शीजी पर इस घटना का बहुत प्रभाव पढ़ा। सरस्वती-सम्पादक के रूप में बख्शीजी ने पंतजी की अनेक कविताएँ प्रकाशित करके और आचार्य शिवाधार पाण्डेय का पंतजी की एक कविता 'आँसू' पर एक प्रशंसात्मक लेख छापकर 'छायावाद' को नव्य-चिन्तन के रूप में प्रतिष्ठित किया। बख्शीजी ग्रेजुएट थे। उन्होंने विश्व-साहित्य लिखकर पश्चिमीय साहित्य-बोध का परिचय प्राप्त कर आलोचक के रूप में स्वयं को प्रतिष्ठित किया था। यह भी इस सन्दर्भ में कहना आवश्यक समझता हूँ कि बख्शीजी ने द्विवेदीजी की भाँति ही पश्चिमीय काव्य-पद्धति पर एक 'स्कूल' चलाने की कोशिश की। किन्तु इस बात को बख्शीजी स्वीकारते हैं कि 'सुकवि किंकर' नामधारी आचार्य पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदीजी के इण्डियन प्रेस पर प्रभाव के कारण उनका छायावाद को प्रतिष्ठित करने का कार्य अधिक प्रत्यक्ष नहीं हो पाया। श्री आनन्दीप्रसाद श्रीवास्तव, ठाकुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विक्रमादित्य सिंह आदि जो बख्शीजी की देन थे, छायावाद के अध्ययन के अन्तर्गत भुला दिये गये। बख्शीजी ने इसी प्रकार स्व० गिरीशजी की कविता 'कालिन्दी क्रन्दन' प्रकाशित की थी। बख्शीजी ने यह स्वीकार किया है कि द्विवेदीजी के कारण 'सरस्वती' की प्रतिष्ठा हो गयी थी। निरालाजी ने भी अपनी कुछ कविताएँ सरस्वती में प्रकाशनार्थ भेजीं। पर बख्शीजी इस कारण प्रकाशित करने का साहस न कर सके कि कहीं द्विवेदीजी यह न समझ बैठें कि द्विवेदीजी के अब सम्पादक न रहने के कारण ही बख्शीजी एक प्रकार-विशेष की कविताओं के छापने में ही रुचि रखते हैं। उनके मित्रों (बख्शीजी के) ने भी निराला की कविताओं को छापने के लिए उन्हें प्रोत्साहित नहीं किया। डा० रामविलासजी को कहना गलत है कि बख्शीजी के ऊपर प्रभाव डाला गया कि वे पंतजी की कविताएँ प्रकाशित करें। बख्शीजी की मान्यता है कि उन्होंने 'कलरव' जैसी कविताएँ प्रथम पृष्ठ पर नहीं छापीं किन्तु उन्हें जो बहुत प्रभावित कर सकीं उन्हें ही बाद में प्रथम पृष्ठ पर प्रकाशित करना उचित समझा जैसे—मौन निमन्त्रण और शिशु।

सुप्रसिद्ध कवि श्री नर्मदाप्रसाद खरे को लिखे गये अपने एक निजी पत्र में बख्शीजी ने पण्डित शिवाधार पाण्डेय की पंतजी की 'आँसू' नामक कविता पर लिखित आलोचना को 'प्रेटी नानसेन्स' इसलिए भी कहा कि उन्हें वह निरर्थक शब्द-सौन्दर्य के अतिरिक्त कुछ और नहीं लगा। पंतजी का बख्शीजी से वही सम्बन्ध मानना चाहिए जो गुप्तजी का द्विवेदीजी से रहा है।

पण्डित नन्ददुलारे बाजपेयीजी काशी में, अपने विद्यार्थी-जीवन में ही प्रसादजी के निकट आ गये थे, बाजपेयीजी को यह अवश्य श्रेय है कि अपने व्यक्तिगत सम्बन्धों के कारण निरालाजी को प्रसाद के काशी-स्कूल से सम्बद्ध कर सके। काशी स्कूल बंगला के अधिक निकट था। निराला बंगला से अभिभूत थे ही। प्रसादजी पर बहुत-पूर्व आरम्भ में श्रीधर पाठक का प्रभाव रहा है और उक्त प्रभाव का चरम-उत्कर्ष 'झरना' का प्रथम संस्करण है। प्रसादजी कृत 'करुणालय' प्रेम-पथिक पर पाठकजी का ही प्रभाव माना जाना चाहिये। वे स्वच्छन्दतावाद के मूल तत्त्व को ग्रहण करने में असमर्थ थे क्योंकि उन्हें प्रत्यक्षतः अंग्रेजी का ज्ञान नहीं था। प्रसादजी की अपेक्षा पण्डित गंगाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' ने अपने उर्दू-ज्ञान के कारण (त्रिशूल नाम से उर्दू में भी कविताएं लिखते थे) प्रकृति को प्रेम व विषाद की कहीं अधिक उत्तम पृष्ठभूमि दी थी--

'मौन पतंग प्राण देता है समझ प्रेम का मोल।
मौन विरह में मैं जलता हूँ रहकर अचल अबोल।
प्रियतम निष्ठुर है होने दो तू मत जिह्वा खोल।
आग न लगा हृदय में मेरे, अपना हृदय टटोल।"

पं० श्रीधर पाठक की परम्परा से बहुत कुछ हटकर पंत जी के काव्य से हिन्दी-जगत् ने सर्वप्रथम स्वच्छन्दतावादी मूल्य व शिल्प दोनों प्राप्त किया। छायावाद का मौलिक स्वरूप तो पंतजी द्वारा 'वीणा' से 'पल्लव' के बीच ही निर्धारित हुआ। 'वीणा' (सन् १९१८) के प्रकाशन से ही छायावाद का 'वेस्टर्न पैटर्न' बख्शी के सम्पादकत्व में पंतजी जैसे आंग्ल-पठित नवयुवक के माध्यम से निखार पा सका था और उस समय निराला ने 'जन्मभूमि' (सन् १९२०) नामक कविता लिखी थी। निराला की 'अधिवास' नामक कविता बख्शीजी द्वारा लौटा दी गयी थी। 'अनामिका' का प्रकाशन का समय सन् '२३ है। मैं डा० रामविलास शर्मा के इस तथ्य को अस्वीकार करता हूँ कि बख्शीजी छायावादी कविताओं के छापने से बचना चाहते थे तथा प्रो० अमरनाथ झा सरीखों की कृपा व प्रभाव से बख्शीजी को पंतजी की कविताएँ छापनी पड़ीं। बख्शीजी के लिए यह बात अनुचित प्रतीत होती है। प्रश्न है कि 'वीणा' (सन् १९१८) के पुस्तक प्रकाशन (सन् १९२७-२८) पर आचार्य द्विवेदी द्वारा 'वीणा' की भूमिका के विरोध किये जाने व मुद्रित होकर भी रद्द किये जाने की पीड़ा छायावाद की स्थापना व उत्कर्ष के लिए पंतजी को झेलनी पड़ी। बख्शीजी द्वारा निरालाजी की उपेक्षा उनके वेस्टर्न रोमाण्टिसिज्म की रुचि के कारण हो सकती है क्योंकि बख्शीजी छायावाद को रोमाण्टिक मूल्यों से जोड़कर चलना चाहते थे। इसीलिए निरालाजी का आक्रोश बख्शीजी पर प्रगट हुआ तथा उन्होंने इसके विपरीत द्विवेदीजी की प्रशंसा की। बख्शीजी ने स्पष्टतः श्री खरे को लिखित पत्र में अपना मंतव्य स्पष्ट किया है कि "मैं सचमुच 'पल्लव' को उनकी श्रेष्ठ रचना मानता हूँ। पंतजी को मैं कल्पना, चिरन्तन सौन्दर्य और चिरन्तन तारुण्य का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कवि मानता हूँ। मैंने छायावाद नाम से प्रचलित कविताओं में कभी भी रहस्यानुभूति नहीं पाई। न पंतजी की कविता में, न महादेवी की रचना में और न रामकुमार वर्मा की रचना में। मैंने उनमें कल्पना शक्ति का उल्लास पाया जो तारुण्य काल में सर्वथा स्वाभाविक है। मैंने छायावाद में वही विशेषता देखी जो रोमाण्टिक काव्यों में रोमाण्टिक आन्दोलन के समय में व्यक्त हुई है। यदि वह स्वच्छन्दतावाद है तो छायावाद के कवियों में वही स्वच्छन्दता है, वही प्रेम का उल्लास है, वही तारुण्य की दीप्ति है, वही कल्पना का विलास है। मैं उनको केवल सौन्दर्य का ही कवि समझता हूँ इसीलिए एक मनीषी चिन्तक के रूप में उनकी कवित्त कला का जो विकास अब हुआ है उससे मुझे कभी सन्तोष नहीं हुआ। मैंने अपने एक लेख में यह बात लिखी है और उन्हींके शब्दों में मैंने उनको 'विहग वन का राजकुमार' लिखा है।"

कविवर श्री खरे को लिखे अपने पत्र में बख्शीजी ने स्पष्टतः पंतजी की स्थिति को साफ कर दिया है कि पंतजी का काव्य पश्चिमीय रोमाण्टिक आन्दोलन की भाँति रहा और यहीं पंतजी को सूक्ष्मतः देखने पर निराला, प्रसाद व महादेवी से उन्हें पृथक् अस्तित्व प्रदान करता है। इसा बुनियाद पर ही रहस्य-भावना को अन्य कवियों ने स्थापित करना चाहा।

निरालाजी व प्रसादजी ने अब तक रोमाण्टिसिज्म के मूल्यों को बंगला के आधुनिक काव्य-शैली के परिप्रेक्ष्य में स्वीकृति दी थी। निरालाजी 'रवीन्द्रनाथ बनना' या होना चाहते थे। प्रसादजी व निरालाजी ने बंगला-प्रभाव के कारण ही पौराणिक एवं ऐतिहासिक सन्दर्भों में भी प्रकृति को ग्रहण किया। पंतजी के शुद्ध विरोध में छायावाद के नाम पर हर दिशा में प्रसादजी व निरालाजी द्वारा प्रयत्न किया गया। भारतीय संस्कृति, इतिहास का वस्तु-अंश, प्रकृति-दर्शन, वैयक्तिक स्तरीय मांसल-भाव, कसक, पीड़ा, आत्मा-परमात्मा सब कुछ छायावाद होता गया और पण्डित नन्ददुलारेजी को प्रचार करने का काम दे दिया गया। पंतजी का प्रकृति-सन्दर्भों में, उनका व्यक्तित्व सौन्दर्यानुभूति प्रधान होता गया, क्योंकि स्वछन्दतावादी मूल्यों की वे सही अभिव्यक्ति अपने प्रतीकों द्वारा प्रस्तुत करना चाहते थे, जो सही माने में काव्य-बिम्ब के अर्थों में छायावाद था। छायावाद में रहस्यवाद की प्रतिष्ठा बंगला-प्रभाव है। यह रवीन्द्रनाथ बनने के क्रम में किया गया वह प्रयास है जो पण्डित लक्ष्मीनारायण मिश्र को 'अन्तर्जगत्' लिखने की प्रेरणा दे सका और इस प्रकार प्रसाद के आँसू की प्रेरणा (मिश्र जी की भेंट-वार्ता के अनुसार) 'अन्तर्जगत्' दे सका। निराला पर भी ऐसा ही असर था।

मैं समझता हूँ कि रहस्यवाद के पक्ष को छायावाद में स्थान देकर महादेवीजी के लिए अवश्य द्वार खुल गया था। महादेवीजी ने प्रकृति का सौन्दर्य-पक्ष और प्रसाद व निराला से रहस्यवाद का पक्ष, दोनों का समन्वय किया। प्रसादजी, निरालाजी एवं महादेवीजी ने छायावाद को रहस्यवादी मोड़ देकर भारतीय दर्शन से सम्बद्ध किया और जबकि पंतजी ने अंग्रेजी से मौलिक रूप ग्रहण करके छायावाद में घापल्य नहीं किया। वैसे पंतजी ने भी रहस्यवादी कविताएँ लिखी हैं, केवल बताने के लिए।

पंतजी ने रोमाण्टिक मूल्यों की परम्परा को पश्चिमीय काव्य-शैली में प्रकृति के प्रतीकों, लाक्षणिक वैचित्र्य, प्रस्तुत के स्थान पर अप्रस्तुत विधान द्वारा नये बिम्ब व नया शिल्प दिया था। 'पल्लव' के पूर्व की उनकी कविताएँ मात्र 'छायावाद' की भूमिका थी जो उन्हें प्रवर्तन का श्रेय प्रदान करता है। उनके अंग्रेजी प्रभाव व प्रयाग के पश्चिमीय (प्रभाववाले) स्कूल के कारण उन्हें अत्यधिक प्रतिष्ठा मिली। मैं समझता हूँ कि पंतजी ने 'सुकवि किंकर' के रूप में आचार्य द्विवेदीजी का और स्वयं निरालाजी का (पंत और पल्लव की आलोचना में) तथा प्रगतिवादी आलोचकों का जो विरोध सहा, वही उनके व्यक्तित्व निर्माण की बौद्धिक चेतना के विकास का कारण रहा है।

पंतजी छायावाद के पश्चिमीय छायावाद के प्रकृति स्वरूप को लेकर चले और शेष कवियों ने छायावाद को प्रिय एवं प्रेयसी-सन्दर्भों में स्वच्छन्दतावादी मूल्यों को 'रहस्य' से जोड़ा। पंतजी में शिल्पगत मौलिकता थी और उन्होंने छायावाद के मूलभूत तत्त्वों को आत्मसात् करके, उसके मौलिक स्वरूप को क्षत-विक्षत नहीं होने दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजस्थान में शक्ति-पूजा

श्रीमती कुसुम महता "प्रियदर्शिनी"

रंगीले राजस्थान की रम्य भूमि रणबांकुरे राजपूतों की रणभूमि रही है। शौर्य, साहस और पराक्रम राजपूतों के वंशज गुण हैं। स्वाभाविक रूप से ऐसे राजपूतों की आराध्यदेवी भी शक्ति की प्रतीक देवी दुर्गा रही है। यही कारण है कि राजस्थान में शिवालयों के बाद सबसे अधिक संख्या देवियों के मन्दिरों की है। यद्यपि ये मन्दिर आकार और शिल्प की दृष्टि से अन्य देवताओं के मन्दिरों की भाँति विशाल और आकर्षक नहीं हैं तथापि इनकी पहुँच सभी गली-मोहल्लों में है। यहाँ देवी दुर्गा के विविध स्वरूपों में आराधना-पूजा की जाती है और इन्हीं स्वरूपों अथवा प्रयोजनों के अनुसार इनके नामों में अन्तर है जैसे कालिका माता, अम्बामाता, चामुण्डादेवी, शिलादेवी, जोगमायादेवी आदि आदि।

मोहंजोदड़ो की खुदाई में आद्याशक्ति की मृण्मूर्तियाँ मिली हैं। इनमें से एक देवी मूर्ति में मातृपदे के उन्नत स्तन एवं तरतीब से गुँथी अलकावली प्रदर्शित किये गये हैं। इसी मोहंजोदड़ो संस्कृति के लगभग समकालीन रंग-महल (बीकानेर-राजस्थान) की संस्कृति में मृण्मूर्ति में देवी प्रतिमा है जिससे स्पष्ट है कि राजस्थान में भी प्राचीन-काल से शक्ति की देवी दुर्गा की पूजा की जाती थी। रेगिस्तान की रेतीली परतों के नीचे दबी सरस्वती नदी कभी तेज प्रवाह से बहती थी और इसीके तट पर आर्यों की प्राचीन समृद्ध बस्तियाँ थीं जहाँ शक्ति की पूजा के कई भव्य व रमणीय स्थल थे जिनकी पुष्टि कालीबंगा की खोज से भी होती है। शक्तिपूजा में राजस्थान सदैव से समृद्ध रहा है जिसके प्रमाण में कई शिलालेख तथा मूर्तियाँ यहाँ मिलती हैं। विद्वानों का तो यहाँ तक मानना है कि सम्भवतः—महिषमर्दिनी की पूजा राजस्थान से ही शेष भारत में प्रसारित हुई होगी।

गंगधार (झालावाड़) से प्राप्त पाँचवीं शताब्दी के एक शिलालेख में मातृका भवन का स्पष्ट उल्लेख है। इसी प्रकार छोटी सादड़ी (चित्तोड़गढ़) स्थित भ्रमरमाता के शिलालेख के पठन से ज्ञात होता है कि उस समय सारे राजस्थान में शक्ति-पूजा का प्रचलन था। शक्ति-पूजा राजस्थान में केवल क्षत्रियों एवं ब्राह्मणों तक ही सीमित नहीं थी बल्कि इसका व्यापक प्रभाव जैन धर्म पर भी था। महिषमर्दिनी जैन देवी-देवताओं में बड़े भक्तिभाव एवं सम्मान से पूजी जाती है। ओसवाल (जैन) वंश मारवाड़ के ओसिया ग्राम से निकला है जहाँ उनके द्वारा पूजित सच्चिया माता के मन्दिर में चण्डिका, शीतला क्षेमकरी व सच्चिका माता (देवियों) की मूर्तियाँ हैं।

मध्ययुगीन राजस्थान भीषण युद्धों एवं जौहर ज्वालाओं का इतिहास है। इस काल का समस्त शिल्प एवं साहित्य शक्ति की भक्ति से उत्कीर्ण व रचित है। इस युग में वीरों द्वारा "जय चामुण्डादेवी की" के तुमुल घोष से वैरियों पर टूट पड़ना स्वाभाविक था। यही कारण है कि चारणों द्वारा रचित विरुदावलियों में रणबाँकुरों की वीरता का वर्णन चामुण्डा स्तुति से प्रारम्भ किया जाता था। बराबर युद्धों और संघर्षों में व्यस्त रहने के कारण इस काल में लोग स्थापत्य सौष्ठव की ओर ध्यान नहीं दे सके लेकिन शक्ति-पूजा के पावन-स्थलों की संख्या बढ़ाने में वे पीछे नहीं रहे।

यूँ तो समूचे राजस्थान के प्रत्येक ग्राम, कस्बे और नगर में शक्ति-पूजा के मन्दिर हैं किन्तु कुछ मन्दिरों की अपनी विशेषताएँ होने के कारण उल्लेखनीय एवं दर्शनीय बन गये हैं।

बाँसवाड़ा से कोई छः मील दूर स्थित तलवाड़ा में त्रिपुरा सुन्दरी की लगभग आठ फुट ऊँची मूर्ति है जो राजस्थान में अब तक प्राप्त महिषमर्दिनी की मूर्तियों में विशालतम है। करौली से १८ मील दूर केला देवी है जिसकी बहुत मान्यता है। जोधपुर से २२ मील उत्तर में स्थित तिवारी ग्राम में १९वीं शताब्दी का खोखरी माता का मन्दिर है। जमवा रामगढ़ (जयपुर) में जमुवाय माता, नारनौल (अलवर) में मनसादेवी व खैरतल माता, बरवाड़ा (सवाई माधोपुर) में चौथ माता, जोबनेरगढ़ (जयपुर) में जोबनेर माता, बाँसवाड़ा से १० मील दूर स्थित चींच

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(छींछ) माता, डूंगरपुर से २८ मील दूर स्थित वसुंधरा देवी, वरमाया (नागौर), आवरीमाता, चावण्डमाता और जावर माता [(उदयपुर के आसपास) दुर्गा के उल्लेखनीय मन्दिर हैं। चावण्डमाता महाराणा प्रताप द्वारा प्रतिष्ठापित की गयी बताया जाता है। जस्ता, शीशा, चाँदी के खानों के प्रसिद्ध स्थल जावर में स्थित जावर माता का मन्दिर प्राचीन शैली का है। आवरी माता के दर्शनार्थ लकवा के रोगी विशेष रूप से जाते हैं। नागोर के पास रोल गाँव के निकट दधिमाता का प्रसिद्ध मन्दिर है। राजेश्वरी भरतपुर का प्राचीन शक्ति मन्दिर है। बड़गूजरों की राजधानी थानागाज़ी (अलवर) में नारायणी देवी का प्रसिद्ध मन्दिर है। कैलाशपुरी (एकलिंगजी—उदयपुर) में विंध्यवासिनी का विख्यात मन्दिर है जहाँ नवरात्रि में त्रिकाल पूजन व अष्टमी के दिन विशाल पैमाने पर हवन-पूजा किये जाते हैं। मेड़ता के समीप भवाला माता के मन्दिर में महाकाली की भव्य प्रतिमा है। साँभर के समीप शाकम्भरी देवी (चौहानों की कुलदेवी) का मन्दिर है। कृतमालेश्वर (कोटा) में मालादेवी का मन्दिर है। बीकानेर के समीप मोरखाना माता का मन्दिर है।

इन मन्दिरों के अतिरिक्त राजस्थान में शक्ति पूजा के कुछ ऐसे मन्दिर है जहाँ देश के दूर-दूर के कोनों से यात्री दर्शनार्थ आते हैं और जो शिल्प, इतिहास एवं मान्यताओं की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है। ऐसे मन्दिरों में आमेर की शिलादेवी एवं जोधपुर की चामुण्डादेवी के मन्दिर विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

भूतपूर्व जयपुर रियासत की प्राचीन राजधानी आमेर में शिलादेवी के भव्य एवं आकर्षक मन्दिर में काली की एक प्राचीन एवं ऐतिहासिक प्रतिमा प्रतिष्ठापित है। निज मन्दिर और उसका प्रांगण सफेद संगमरमर का बना हुआ है जिसमें सुन्दर पच्चीकारी का काम किया हुआ है। काली की प्रतिमा श्यामांगाष्टभुजी, रौद्र और विकराल रूप में है। शिला माता की यह मूर्ति बंगाल में सुन्दरवन के प्रसिद्ध वीर प्रतापादित्य के प्रदेश में केदार कायस्थ नामक एक राजा की उपास्य दुर्गा थी जिसे राजा सवाई मानसिंह १७ वीं शताब्दी में आमेर में लाये थे। मन्दिर के प्रवेश द्वार के कपाट नवदुर्गा अंकित चाँदी के हैं। मुख्य मन्दिर की देहरी के दोनों ओर रंगीन संगमरमर के केले के वृक्ष अत्यन्त कलात्मक और कमनीय हैं, जिनमें केले के पत्ते, डंठल और फल दूर से देखने पर स्वाभाविक लगते हैं। इस मन्दिर में शिलादेवी की मूर्ति की प्रतिष्ठा के समय से ही प्रतिदिन नियमित रूप से बलिदान की व्यवस्था है और भोग राग में रुधिर, मुण्ड सबका समावेश है। यहाँके पुजारी बंगाली हैं। वे शिलादेवी का सेवा-शृंगार दुर्गा-पूजा की बंगाली पद्धति पर ही करते हैं। यहाँ दर्शनार्थ आनेवाले यात्रियों में बंगालियों की संख्या काफी रहती है।

जोधपुर में किले पर चामुण्डा देवी का सुप्रसिद्ध मन्दिर है। चामुण्डादेवी भूतपूर्व जोधपुर (मारवाड़) राजघराने की कुलदेवी एवं देवी दुर्गा का ही एक भव्य रौद्र व विकराल रूप है। चामुण्डा का एक प्रसिद्ध मन्दिर खण्डेला की पहाड़ी पर भी स्थित है। झालावाड़ के संग्रहालय में चामुण्डा की विशाल प्रतिमाएँ विद्यमान हैं।

राजस्थान में नवरात्रि और विजयादशमी के त्यौहार बड़े धूमधाम से मनाए जाते हैं जब शस्त्रों की पूजा की जाती है, दुर्गा का अखण्ड पाठ किया जाता है और सजी-धजी सवारियाँ निकाली जाती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशेष रूप से केवल 'सरस्वती' के लिए लिखित

स्व० 'चोंच' जी

श्री गौरीशंकर गुप्त

२२ वर्ष हो गये। सं० २००७ की अक्षय नवमी थी वह, जब स्व० पं० कांतानाथ पाण्डेय 'चोंच' जी के प्रथम दर्शन हमने सम्भवतः स्थानीय नगवा-स्थित उनके निवास-स्थान पर किये थे। राजमंदिर-स्थित उनके श्वसुरगृह में भी उनकी सेवा में उपस्थित होने के अनेक अवसर हमें मिले थे। कई बार हमारी कुटिया में भी वे कृपापूर्वक पधारे। उन दिनों वे संग्रहणी रोग से मरते-मरते बचे थे। चिकित्सा करनेवाले वैद्यराज के प्रति उनका हृदय कृतज्ञता से ओत-प्रोत था और उनकी प्रशंसा करते वे थकते नहीं थे। पिछले दिनों अपनी अनुशासन-प्रियता तथा नियम-पालन में दृढ़ता के फलस्वरूप ठीक 'अध्यापक-दिवस' को कुछ असंतुष्ट विद्यार्थियों तथा उनके सहयोगियों द्वारा वे बुरी तरह घायल कर दिये गये थे और उनके बचने की कोई आशा नहीं थी; किन्तु भगवत्कृपा से स्वस्थ हो गये थे, यद्यपि दाहिने पैर में प्लास्टर विद्यमान था। २२ नवम्बर १९७२ की रात्रि में सहसा एक उलटी होने के बाद उनकी हृदय-गति बन्द हो गयी। उनके आकस्मिक निधन से चित्त को बड़ा क्लेश पहुँचा है और उनकी अनेक स्मृतियाँ सजीव हो उठी हैं।

प्रथम भेंट के समय हम मात्र १९-२० साल के नव-युवक थे और 'चोंच' जी की उम्र लगभग ३५ साल थी। उस दिन उनसे हुई बातों का ठीक-ठीक स्मरण तो नहीं है; किन्तु अपने हृदयोद्गार इन शब्दों में (परिचय-पत्र में) उन्होंने प्रकट किये थे—"मुझे श्री गौरीशंकरजी गुप्त से मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई। ये बड़े ही मनस्वी और इस कारण यशस्वी नवयुवक हैं। इनके साथ वार्तालाप कर मैं बहुत ही प्रभावित हुआ हूँ और मुझे पूरी आशा है कि यथा समय ये साहित्य-क्षेत्र के साथ ही आयुर्वेद-जगत् में भी सम्मान का स्थान प्राप्त करेंगे।

"हमारे देश के बहुत-से युवक जिस अवस्था में अपने कर्तव्य-निर्धारण का ज्ञान भी नहीं रखते, ये निश्चित और पवित्र संकल्प लेकर देश और समाज की सेवा के लिए जिस प्रकार कटिबद्ध हैं, वह आनन्द और उल्लास का विषय है।

"मैं भगवान् से प्रार्थना करता हूँ कि ये स्वस्थ और दीर्घायु होकर बहुत समय तक भारतमाता की सेवा करते रहें। सभी विवेकशील व्यक्तियों का सहयोग आपको प्राप्त होगा, इसमें तनिक भी संदेह नहीं।"

इस प्रसंग के लगभग तीन मास बाद—वि० सं० २००७ की वसन्तपंचमी के दिन काशी में 'राष्ट्रकवि परिषद्' नामक साहित्यिक संस्था की स्थापना हुई। आरम्भ से ही मन्त्री के नाते व्यक्तिगत रूप से हमें और परिषद् को उनका बहुमूल्य सक्रिय सहयोग मिलता रहा। परिषद् के साहित्य-मन्त्री तथा उपाध्यक्ष-पद को उन्होंने सुशोभित किया और अपने पद का अत्यन्त योग्यतापूर्वक निर्वाह किया। उनके निधन से न केवल व्यक्तिगत रूप से हमारी, अपितु, परिषद् की भी अपूरणीय क्षति हुई है।

सर्वश्री जगन्नाथदास 'रत्नाकर' जी, आचार्य रामचन्द्र शुक्लजी, जयशंकर 'प्रसाद' जी, प्रेमचन्दजी, बाबूराव विष्णु पराड़करजी सरीखे महारथियों से उनका निकट सम्पर्क रहा था और एक बार स्थानीय 'मालवीय पुल' पर टहलते समय उन्होंने कुछ रोचक तथा मार्मिक संस्मरण हमें कृपापूर्वक सुनाये थे। यहाँ हम सम्पादकाचार्य स्व० पराड़कर जी सम्बन्धी उनका एक रोचक संस्मरण प्रस्तुत कर रहे हैं।

एक बार 'चोंच' जी पराड़करजी के निकट बैठे थे कि पराड़करजी आलमारी खोलकर एक चित्र निकाल लाये और 'चोंच' जी से पूछने लगे—"पाण्डेयजी, इस चित्रस्थ व्यक्ति को आप पहचानते हैं?" 'चोंच' जी पहचान न सके। वह चित्र किसी राजपूत का प्रतीत होता था। बीकानेरी साफा, शेरवानी और पाजामा। जब 'चोंच' जी अटकल-बाजियाँ करके थक गये, तब पराड़करजी बोले—"ये चित्रस्थ व्यक्ति हैं पं० बाबूराव विष्णु पराड़कर। ये अभी हाल में बीकानेर गये थे। वहीं इस दरबारी वेश का चित्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

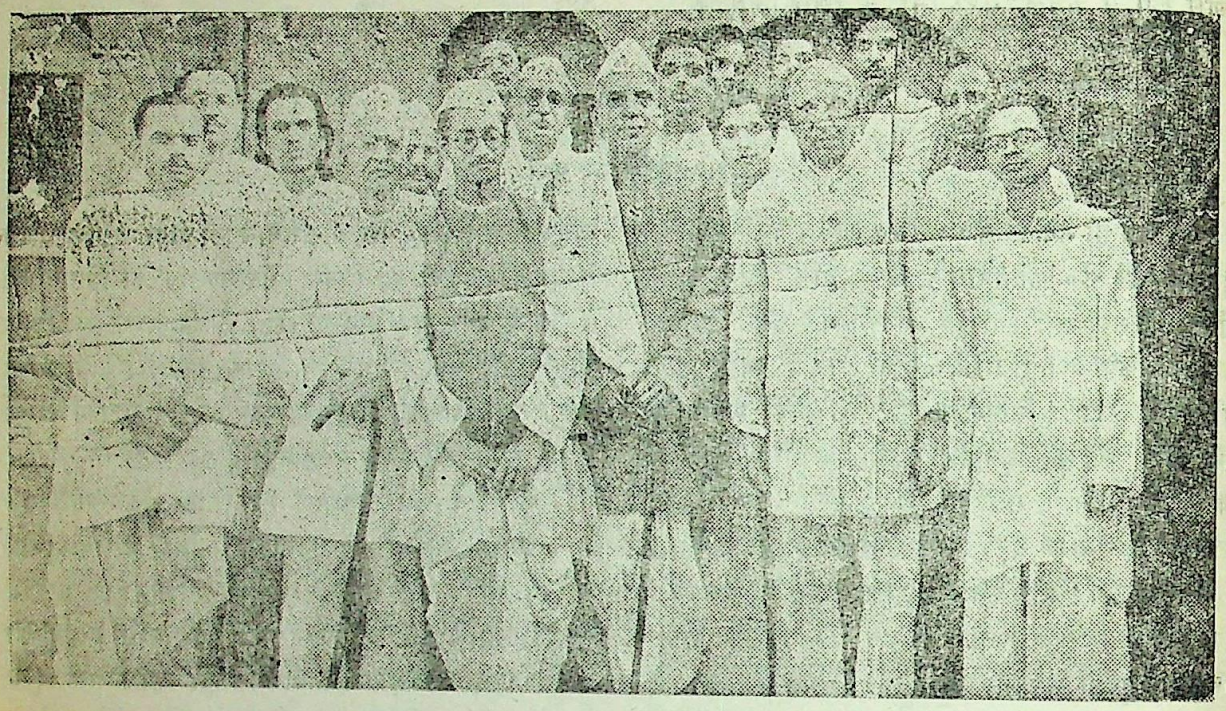

काशी की साहित्यिक संस्था राष्ट्रकवि परिषद् की ओर से राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त के अभिनन्दन के अवसर पर लिया गया समूहचित्र। बायें से दाएँ श्री कान्तानाथ पाण्डेय 'राजहंस' (चोंच) (साहित्यमंत्री), 'आज'—सम्पादक स्वर्गीय पं० बाबूराव विष्णु पराड़कर (अध्यक्ष), श्रीराम आनन्द कृष्ण (सदस्य) स्व० श्री मैथिलीशरण गुप्त 'सम्मानित' (सदस्य), स्वर्गीय पं० रामनारायण मिश्र (सदस्य) तथा श्री शिवमूर्ति मिश्र 'शिव' (कौतुक बनारसी) (सदस्य) और उनके पीछे श्रीवेणीराम त्रिपाठी-श्रीमाली (प्रचार मंत्री)। दूसरी पंक्ति में प्रथम श्री लक्ष्मीशंकर व्यास (अर्थमंत्री) तथा राष्ट्रकवि के पीछे श्री गौरी शंकर गुप्त (प्रधान मंत्री)।

उतरा था।" 'चोंच' जी कहते थे—"मैं यह सुनकर चित्रवत् हो रहा और वे खूब खिलखिलाकर हँस पड़े। खूब छकाया उन्होंने।"

एक बार 'चोंच' जी ने भी पराड़करजी को छकाया और खूब छकाया। होली का अवसर था। एक निमंत्रण-पत्र छपवाया गया, जिसमें निवेदकों में पराड़करजी का भी नाम था। समारोह के दो-तीन दिन पूर्व अन्य आयोजकों को 'चोंच' जी ने सूचित कर दिया कि किसी कारणवश वे उत्सव में भाग नहीं ले सकेंगे; किन्तु ऐन होली के दिन तड़के ही उन्होंने जटा-जूट, दाढ़ी-मूँछ, खड़िया, मृगछाला और कमण्डलु आदि प्रसाधनों का सदुपयोग कर सिद्ध महात्मा का रूप धारण कर लिया और वे इसमें पूर्णतः सफल भी हुए। आयोजन चल रहा था। 'सिद्ध महात्मा' "बम शंकर! जय हो बाबा कीनाराम की!! बच्चा, कुछ भिक्षा ले आ।" कहते-कहते समारोह-स्थल पर पहुँच गये।

'सिद्ध महात्मा' के सम्मान में सभी साहित्यिकों ने श्रद्धा-पूर्वक नत मस्तक होकर प्रणाम किया। पराड़करजी को भी इस प्रकार विनत होते देख उनको कुछ झिझक और संकोचानुभव हुआ; पर 'वेश की लाज' रखनी थी। अतः बोल उठे—"बेटा, चिरंजीव!" अन्त में 'चोंच' जी ने 'सिद्ध महात्मा' का वह बाना उतार फेंका और पराड़करजी के चरण पकड़ लिये। इस पर पराड़करजी ने भी तुरन्त खिलखिलाकर हँसते हुए कहा—"बेटा, चिरंजीव!"

ऐसे थे 'चोंच' जी, जो हिन्दी-साहित्य-सरोवर के 'राजहंस' भी थे। जीवन भर वे हँसते और हँसाते रहे; किन्तु आज रुलाकर चले गये। रह-रहकर किसी की ये पंक्तियाँ बरबस याद आती हैं—"जा रसना सों करी बहु बातन, ता रसना सों चरित्र गुन्यो करैं। नैनन में जो सदा रहते, तिनकी अब कान कहानी गुन्यो करैं।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डायरी : तब और अब

श्री मुकेश,

डायरियों का प्रचलन पिछले कुछ वर्षों से बहुत बढ़ा है। दिसम्बर मास से ही प्लास्टिक आवरण में आकर्षक सज्जा के साथ विभिन्न आकारों की डायरियाँ दूकानों पर आ जाती हैं। आज के व्यस्त जीवन में कार्य करनेवाले सभी प्रकार के व्यक्तियों को डायरी की आवश्यकता हो गई है। अदालती कार्य करनेवाले, प्रशासकीय अधिकारी, सेल्समैन, कार्यरत गृहणियाँ, चिकित्सक, अध्यापक, व्यापारी इत्यादि अपनी योजनाएँ व कार्यक्रम निश्चित करने में डायरी का बहुत उपयोग करते हैं।

डायरी-लेखन का प्रारम्भ बड़ी रोचक परिस्थितियों में रोमन युग में हुआ। रोम साम्राज्य विश्व का सर्वप्रथम महान् साम्राज्य था जो भूमध्य सागर के दोनों ओर फैला था। इस विशाल साम्राज्य की आवश्यकताओं के अनुसार रोम ने प्रशासकीय पद्धति का विकास किया। स्वभाव से रोमन लोग नियमों के प्रति बड़े जागरूक थे और विधि-सम्बन्धी वाद-विवाद उनके सार्वजनिक जीवन का अंग था। उनकी यह चेष्टा रहती कि अधिकारियों की व्यक्तिगत रुचियों या विवेक के कारण एक ही जैसे विवादों पर विरोधी निर्णय न दिये जायें अतएव यह उचित समझा गया कि कोई नया नियम स्थापित करते समय अधिकारी उसकी तर्कपूर्ण व्याख्या भी लिख दें जिससे अन्य पदाधिकारी उसका अवलोकन कर सकें। यहीं से डायरी-लेखन की पद्धति का विकास हुआ। इनमें से कुछ डायरियाँ आज भी उपलब्ध हैं और ये रोम साम्राज्य का इतिहास जानने का प्रमुख साधन भी हैं।

आधुनिक सभ्यता की प्रशासकीय व विधि-सम्बन्धी आधारशिला रोमन साम्राज्य में ही रक्खी गई थी और डायरी-लेखन का प्रचलन भी तभी से प्रचलित हुआ। जैसे-जैसे प्रशासन जटिल होता गया, डायरी की आवश्यकता बढ़ती गई। मध्ययुग में राजा व उसके सभासद बहुधा वंशानुगत होते थे तथा राजनीति में षड्यन्त्रों का प्रमुख स्थान था। अतएव प्रमुख पदों पर आसीन व्यक्ति अपने अनुभवों को लिपिबद्ध करने लगे जिससे उनके वंशानुयायी लाभ उठा सकें। इस प्रकार उच्च वर्ग में डायरी-लेखन की परम्परा चल निकली। ये डायरियाँ इतिहास-लेखन की प्रमुख सामग्री भी हैं। फ्रांस के राजा लुई सोलहवें तथा इंगलैंड की सम्राज्ञी विक्टोरिया की डायरियाँ बड़ी प्रसिद्ध हैं।

परन्तु, जिस व्यक्ति ने डायरी लेखन को कला के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया वह सेमुएल पीप्स (१६३३-१७०३) नामक लन्दन निवासी एक क्लर्क था। व्यक्तियों के नामों को छोड़कर यह डायरी उस समय की प्रचलित आशुलिपि में लिखी गई थी क्योंकि पैपीज का डायरी लेखन स्वान्तः सुखाय था। पैपीज की मृत्यु के लगभग १०० वर्ष पश्चात् यह डायरी प्रकाशित हुई और तब से आज तक इसकी गणना अत्यन्त जनप्रिय पुस्तकों में होती है। इसे पढ़कर कोई भी व्यक्ति, चार्ल्स द्वितीय के समय के लन्दन में खो जाता है। अपनी निर्बलताओं का जो सजीव वर्णन पीप्स ने किया है वह वास्तव में प्रत्येक मानव की अनुभूतियों का दर्पण है। इन्हीं कारणों से पैपीज को 'डायरी सम्राट्' कहा जाता है।

वर्तमन शती की सबसे प्रसिद्ध डायरी एक यहूदी बालिका एन फ्रैंक द्वारा लिखी गई है। फ्रैंक परिवार नाजियों के आतंक से बचने के लिए जर्मनी छोड़कर नीदरलैंड भागा पर एन के पिता ओटोफ्रैंक को नाजी समर्थकों ने पकड़ कर जेल में डाल दिया। परिवार के शेष सदस्य युद्धध्वस्त नगरों में छिप कर जीवन काटने लगे। मृत्यु की छाया में रह रही बालिका एन फ्रैंक ने अपने जीवन व मानसिक यातनाओं को अपनी डायरी के पन्नों में चुपचाप लिखा। अन्त में एक दिन वही हुआ जिसका भय था, नाजियों को किसी प्रकार इस छिपे परिवार का पता चल गया और उन्होंने माता व बहिनों के साथ एन की हत्या कर दी। नाजियों के पतन के पश्चात् जब एन का पिता ओटो फ्रैंक जेल से छूटा तो परिवार के अवशेषों को खोजते-खोजते एन की डायरी उसके हाथ लग गई। डायरी के प्रकाशित होते ही वह हाथों-हाथ बिक गई और अन्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषाओं में उसका अनुवाद हुआ तथा उस पर आधारित एक फिल्म व नाटक भी बना। आज तक इस डायरी की तीस लाख से अधिक प्रतियाँ बिक चुकी हैं। निरीह व्यक्तियों पर हिटलर के अमानवीय अत्याचारों का जो सहज विवरण इस डायरी में उपलब्ध है वह विद्वानों के गवेषणापूर्ण ग्रन्थों की अपेक्षा कहीं अधिक प्रभावशाली है।

आज का जीवन इतनी तेजी से बदल रहा है कि यह कहना कठिन है कि कल क्या होगा। एक वर्ष में ही इतने परिवर्तन हो जाते हैं जिनके लिए पहले एक शताब्दि लगती थी। पोशाकें, भोजन, आवास, तौर-तरीके बदलते जा रहे हैं और केवल कुछ वर्षों पुरानी डायरी को देखने से यह परिवर्तन सहसा मुखरित हो उठता है। यदि डायरी-लेखक अपनी कल्पनाओं और मानसिक द्वन्द्वों को भी अंकित कर ले तो उससे न केवल डायरी की रोचकता बढ़ जाती है वरन् लेखक के मानसिक तनाव में बहुत कमी आ जाती है व मनोवैज्ञानिक गुत्थियाँ सुलझने के कारण जीवन शान्तिमय बनने लगता है जिसका लाभकारी प्रभाव डायरी-लेखक के स्वास्थ्य पर भी पड़ता है। परिवार के सदस्यों में सौहार्द बढ़ाने में भी डायरी उपयोगी हो सकती है। यदि तोतलाते बच्चे के व्यवहार का दैनिक विवरण लिखा जाये तो कुछ वर्षों बाद उसे पढ़ने में वही आनन्द आता है जो साथ-साथ पिकनिक मनाने में। यदि परिवार के सभी लोग डायरी लिखते हों तो उनकी अलग-अलग प्रतिक्रियाओं की तुलना अत्यन्त रोचक होती है क्योंकि घटनाओं, संस्थाओं तथा व्यक्तियों को प्रत्येक अपनी-अपनी अभिरुचियों के अनुसार अंकित करेगा तथा अनेक आयामों में किसी विषय को देखने से परिवार की ज्ञान-वृद्धि भी होगी व उनमें सहिष्णुता भी आएगी।

हाल में हुआ बंगला देश का स्वतंत्रता संग्राम वर्तमान युग की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घटना है। संसार के विभिन्न देशों ने इसे अलग-अलग ढंग से देखा है पर इसका एक महत्त्वपूर्ण दृष्टिकोण अभी प्रकाशित होना शेष है। पाकिस्तान के लगभग एक लाख युद्ध-बन्दी जिन्हें याह्या खाँ ने बंगला देश की जनता को कुचलने का आदेश दिया था, लगभग एक वर्ष से भारत में हैं और उनमें से अनेक अपने समय का उपयोग डायरी लिखने में करते हैं। इन डायरियों के प्रकाशित होने से कई नवीन तथा रोचक तथ्य प्रकाश में आयेंगे इसमें सन्देह नहीं।

अर्थ-हीन आक्रोश

(राजस्थान के दुर्भिक्ष एवं दिशा-हीन युवा-विद्रोह के संदर्भ में एक कविता)

श्री दिनेश

युवा-रक्त !
तुझे सौंप दिया गया है--
सूखा-ग्रस्त धरती का सपना
उड़ते मरु-टीले
और पिघल पिघल कर सूखती
मोम-सी नहरें।

जब टूटेगा वह स्वप्न
कल जलाए गये दीप
अंधेरे से हारे
सूखे पड़े होंगे
उन्हें घेरे खड़े होंगे
शवों पर चढ़े
श्वान
माँस नोंचते गिद्ध
पंख-फड़फड़ाते चील और कौवे !

तेरा उष्ण आक्रोश
ठंडा पड़ा सोचता होगा—
यही था अर्थ
हड़तालों, अनशनों
घेरावों का !

क्या उल्टे लटकते
इतिहासी खण्डहरों के जन्तु
सूरज के चले जाने पर
पश्चात्ताप में डूबे
तेरी डायरी में अंकित नहीं हैं ?
क्या पीछे छूटा हुआ युद्ध
आगे नहीं जा रहा है !
और हर बार दुहराये गये दुर्भिक्ष
क्या यों ही दुहराये जाते रहेंगे ?

युवा आक्रोश !
यह गीता नहीं है
जो हर महाभारत के पूर्व
यों ही किसी अर्जुन को सुनाई जाती रहेगी !

और यों ही कोई अंधायुग
हर बार दुहराया जाता रहेगा।
कब तक ढोयेगा भविष्य
तेरे इस अर्थ-हीन आक्रोश को ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नवीन प्रकाशन

लेनिन भारत के सन्दर्भ में—हरिदत्त शर्मा, आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली, मूल्य १० रु० पृष्ठ-संख्या १४६ ।

पुस्तक के लेखक एक पत्रकार हैं; पत्रकार होने के साथ ही साथ वे एक साहित्यकार भी हैं। यह कृति उनकी तेरहवीं कृति हैं। इसके पूर्व १. यह बस्ती, यह लोग, २. नेहरू और नवीं पीढ़ी, ३. राष्ट्रीय अनुशासन, ४. राष्ट्रीय अनुशासन योजना, ५. सूर्योदय के देश में, ६. जापान की उन्नति का रहस्य, ७. जापान देश और निवासी, ८. संस्कृति और समाजवाद, ९. धरती के तारे, १०. भारत का भविष्य, ११. हम भी गये मेले में, १२. महात्मा गाँधी और राष्ट्रीय एकता नामक पुस्तकें लिख चुके हैं।

प्रस्तुत पुस्तक में ४ खण्ड है। प्रथम खण्ड में 'परम्परागत भारत और लेनिन' इस विषय को चार भागों में विभाजित किया है जिसमें १. भारतीय दर्शन और लेनिनवाद, २. भारतीय और लेनिन, ३. दलित मनुजता के उद्धारक लेनिन ४. भारत और लेनिन--ये चार शीर्षक आते हैं। वास्तव में भारत का दर्शन-शास्त्र इतना वृहद् और परिपूर्ण है कि इसमें जिस विचार के पुष्टीकरण के लिये भी उदाहरण खोजो, मिल जाता है। अतः लेनिन के विचारों का पुष्टीकरण जिन श्रुतियों या श्लोकों से होता है वे उद्धृत कर दिये गये हैं। साथ ही हमारे देश के स्वतंत्रता संग्राम के नेताओं जैसे लोकमान्य तिलक, महात्मा गांधी व जवाहरलाल आदि के चिंतन में तथा लेनिन के चिंतन में जो समानता थी, वह दिखलायी गयी है। हमारा स्वतंत्रता का आन्दोलन भी एक जन-आन्दोलन था। निश्चय ही हमारे नेताओं की विचारधारा रूस के नेता के विचारों से कहीं न कहीं मेल ही खाती होगी, क्योंकि रूस का आन्दोलन भी जन-आन्दोलन था; परन्तु इस विचार के एकाकार को हम केवल यह कह सकते हैं कि उनके विचारों में कुछ समानता थी। हम यह कदापि नहीं मान सकते कि वे लेनिन के विचारों से प्रभावित थे। तात्पर्य यह कि ऐसा नहीं कहा जा सकता कि लेनिन की विचारधारा के प्रभावों से हमारे नेताओं के चिन्तन में अन्तर पड़ा था और लेनिन के दर्शन के फलस्वरूप हमारे देश के नेताओं की चिन्तनधारा बदली थी। हम केवल यह कह सकते हैं कि दोनों की विचारधारा स्वतंत थी; उनकी अपनी थी। क्रान्ति और शान्ति में जो अन्तर होता है वही मूल अन्तर भारत और रूस की विचारधारा में था।

अगले तीन अध्याय आधुनिक भारत और लेनिन, लेनिन की जीवन-गाथा के महत्त्वपूर्ण सूत्र, को लेकर लिखे गये हैं और अन्तिम खण्ड का शीर्षक दिया गया है 'उत्तर काण्ड'।

लेनिन के साथ भारतीय नेताओं का जो, तथा जिस रूप से सम्पर्क रहा है उसकी चर्चा की गयी है—जैसे, गाँधी और लेनिन; नेहरू परिवार और लेनिन। उसीके फलस्वरूप और कुछ विषय उठे हैं जैसे भारतीय मजदूर और लेनिन, भारतीय राजनीति में नया मोड़ और लेनिन, आदि। इस खण्ड में कभी-कभी ऐसा लगता है कि दो पुस्तकें एक साथ चल रही है--एक पंडित नेहरू की जीवनी और दूसरी लेनिन की जीवनी। साथ ही ऐसा भी लगता है कि बार-बार पुनरावृत्ति हो रही है।

पुस्तक में कई चित्र भी हैं। छपाई सुन्दर और स्पष्ट है। कागज बढ़िया है और पुस्तक की रूप-सज्जा पर ध्यान दिया गया है। पुस्तक की भाषा सरल और सुबोध है। लेखक अपने विषय को क्षमता के साथ प्रस्तुत करता है। इन सबके साथ भाषा में गति भी है। 'लेनिन पत्नी' की दृष्टि में अध्याय बड़ा रोचक बन पड़ा है क्योंकि उसमें वे छोटी-छोटी बातें हैं जो हर व्यक्ति को अपनी और प्रिय लगती हैं।

आत्मबोध—लेखक डा० गोविन्ददास गोविन्दप्रसाद श्रीवास्तव, सत्साहित्य प्रकाशन ट्रस्ट 'बिपुल' २८।१६ रिजरोड, बम्बई ६।

श्री गोविन्ददासजी ने हिन्दी साहित्य की अथक सेवा की है। उनकी साहित्य-सेवा का यह एक सुन्दर प्रसून है। यह पुस्तक १४ लेखों का संग्रह है। ये सभी लेख ऐसे विषय पर हैं जो प्राणी का चिन्तन आत्म-बोध की ओर ले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाते हैं। श्री गोविन्ददासजी स्वामी अखंडानन्दजी के सान्निध्य से कुछ शान्ति पा सके, उनके साथ जो थोड़ा समय उनको मिला, उससे जो आत्म तत्वबोध की उपलब्धि उनको हुई, उसीको उन्होंने अपने निजी सचिव गोविन्द प्रसाद श्रीवास्तव की सहायता से लिपिबद्ध किया। वे लिपिबद्ध लेख ही पुस्तकाकार होकर 'आत्मबोध' शीर्षक से प्रकाशित किये गये हैं।

लेखों के विषय हैं १—धर्म और विज्ञान की समस्या, २—जीवन में ज्ञान और धर्म की महत्ता, ३—भारतीय संस्कृति और हिंसा, ४—साम्प्रदायिकता से परे भारतीय धर्म का अभेद पक्ष, ५—भारतीय धर्मशास्त्र की दृष्टि से अर्थ-व्यवस्था, ६—परम्परा और प्रगतिशीलता, ७—भगवत्सेवा का सुगम और सर्वोत्तम साधन, ८—शासनतन्त्र के प्राणतत्त्व, ९—धर्म की आत्मा, लक्ष्य और लक्षण, १०—मनुष्य का समाज और राष्ट्र के प्रति दायित्व, ११—आज के मनुष्य की समस्या और उसका समाधान, १२—ईश्वरानुभूति, १३—मोक्ष, १४—प्रवचन सार।

सभी लेख ऐसे विषयों पर हैं जिनमें बुद्धिजीवी लोगों की अनुरक्ति स्वाभाविक है। जो लोग स्वामी अखंडानन्दजी के प्रवचनों से परिचित हैं तथा जो सेठ गोविन्ददासजी की लेखनी से भी अनभिज्ञ नहीं हैं, उनको इन लेखों में दोनों का संगम मिलेगा। इन लेखों को पढ़ते समय वे यह अनुभव कर सकेंगे कि कहाँ स्वामी अखंडानन्दजी बोल रहे हैं और कहाँ सेठ गोविन्ददासजी लिख रहे हैं।

अन्तिम लेख 'प्रवचन सार' में केवल स्वामीजी रह जाते हैं और सेठ गोविन्ददासजी रह जाते हैं। इस अन्तिम लेख में छोटे-छोटे भाषा सूत्र हैं जो स्वामी अखंडानन्दजी के प्रवचनों में एक हुंकार के साथ आते हैं। ये सूत्र यहाँ एकत्रित कर दिये गये हैं। प्रवचनों से परिचित प्राणियों को उनमें स्वामीजी का हुंकार भी सुनाई पड़ सकता है :

साधक के लिए तीन बातें आवश्यक हैं :

१—उत्साही,

२—आशावान्,

३—साधन में दृढ़। आशा प्रतीक्षे सङ्गतम।

इस प्रकार के अनेक सूत्र इस लेख में अंकित हैं। इस प्रकार की उक्तियों से स्वामीजी के प्रवचनों का ध्यान आ जाता है।

पुस्तक की रूपरेखा सुन्दर है, व छपाई [illegible] है।

गुरु नानक—निदेशक प्रकाशन विभाग, सूचना व प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, पटियाला हाउस नई दिल्ली, मूल्य ३·५० पृष्ठ, संख्या २४०।

यह पुस्तक भारत सरकार के प्रकाशन विभाग द्वारा गुरु नानक देवजी के ५००वीं जन्मशती के अवसर पर प्रकाशित की गयी है। अतः इस पुस्तक को भूमिका के रूप में प्रधान मन्त्री श्रीमता इंदिरा गाँधीजी का आशीर्वाद प्राप्त है। उन्होंने अपने वक्तव्य में आशा की है कि गुरु नानक देव की जीवनी पढ़कर हम एक दूसरों के धर्मों के प्रति सहिष्णु बन सकेंगे।

पुस्तक में २३ भिन्न-भिन्न लेख हैं; ये सभी लेख संकलित करके पुस्तकाकार छपा दिये गये हैं। इन लेखों में वस्तु वचन का ध्यान रक्खा गया है। विषय अलग-अलग हैं और इस प्रकार गुरु नानक देवजी के जीवन के प्रत्येक पहलू पर प्रकाश पड़ जाता है। लेखों के शीर्षक कुछ इस प्रकार हैं—गुरु नानक की सांस्कृतिक देन, संत साहित्य में गुरु नानक की देन, गुरु नानक के जीवन का तुलनात्मक अध्ययन, नानक परम्परा का विचार, उनके उपदेशों का संक्षिप्त विवरण, उनके उपदेशों की पृष्ठभूमि, नानक की ईश्वर सम्बन्धी धारणा, रहस्यवादी नानक, इतिहास पर गुरु नानक का प्रभाव आदि। इन शीर्षकों को देखकर ही यह प्रतीत होता है कि उनके जीवन का कोई पहलू ऐसा नहीं बचा जो अछूता छूट गया हो।

जितना विचार लेखों के शीर्षकों के चयन पर किया गया है उतना ही ध्यान उन लेखों के लेखकों के चयन पर भी किया गया है। लेखक हैं श्री जाकिरहुसैन, श्री सत्य नारायण सिंह, श्री रामधारी सिंह दिनकर, श्री परशुराम चतुर्वेदी, श्री एम० ए० करंदीकर, श्री वी० राघवन, श्री गुरुबचन सिंह तालिब, श्री अनिलचन्द्र बनर्जी, श्री जोध सिंह, श्री एस० के० रामचन्द्र राव, श्री एम० के० वेपा, श्री गंडासिंह, श्री जियालाल कौल, श्री विमानविहारी मजूमदार, श्री अब्दुल मजीद खान, श्री शेरसिंह, श्री अख्तर अहमद ओरनवी, श्री हरनामसिंह शान, श्री उज्जलसिंह, श्री के० पी० केशव सैनन।

सभी लेखों की भाषा सरल है और अपने अपने विषयों का प्रतिपादन सुन्दरता व स्पष्टता से करते हैं। गुरु नानक देव के जीवन के साथ जो किंवदन्तियाँ जुड़ी हुई हैं, कुछ उनके कारण और कुछ प्रस्तुत करने के ढंग के कारण

CC-0 In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तक में सरलता बनी रहती है। कोई भी लेख उकताने-वाला नहीं है।

पुस्तक का कागज व छपाई सुन्दर है तथा शुद्ध है।

नहीं-नहीं वह रोयेगी नहीं—लेखिका निर्मला बाजपेयी, प्रकाशक आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली--मूल्य ४·५०, पृष्ठ संख्या १२०।

पुस्तक के विषय में तो बाद में कहा जायगा, सर्वप्रथम पुस्तक के नाम के विषय में कुछ कह देना आवश्यक हैं। जो कुछ भी हो, नाम बहुत सार्थक है। पुस्तक खोलने पर कहानियाँ एक के पश्चात् दूसरी सब ऐसी ही निकलती हैं कि लगता है कि लेखिका का यही अभिप्राय रहा है कि पाठक किसी प्रकार रोयें। इच्छा होने लगती है कि इस दुखमय संसार की दुखभरी गाथाओं से अन्यथा की कोई कथा इस संग्रह में मिल जाय। यदि ऐसी कथा मिल भी जाय तो पढ़ते समय मन सहमा रहता है कि इसमें भी अन्त में न मालम कौन-सा पहाड़ टूट पड़े। जीवन में दुख ही दुख व करुणा ही करुणा नहीं है। सब भावों के छींटे जीवन में मिलते हैं। यदि जीवन-गाथाओं में भी सब रस छिटके मिलें तो सन्तुलन प्रतीत होता है। कुछ ऐसा भी है कि हास्य रस, वीर रस, शृंगार रस आदि की कथाओं के संकलन तो फिर भी पठनीय बने रहते हैं, पर घोर करुण रस की कहानियों का संग्रह अन्त में अपठनीय-सा हो उठता है। वह मार्फिया के इंजेक्शन की तरह मनुष्य को चेतनाशून्य करके उसे उदास कर देता है। पुस्तक के अन्दर की कथाओं को पढ़कर यह भाव उठता है कि और जो भी हो पुस्तक का नामकरण यथार्थ है--हम इतने पर भी रोएंगे नहीं।

पुस्तक में १३ लघु कथाओं का संस्करण है। अपने 'दो शब्द' में लेखिका ने जिस हिन्दी का प्रयोग किया है उसमें ऐसे शब्दों की भरमार है जैसे, 'इम्प्रेसिव', 'अपील', 'पिच' 'चैलेंज', 'कलर कम्बाइंड'। एक पृष्ठ का 'दो शब्द' और उसमें इतनी अंग्रेजी की चरपराहट! शायद यह दिल्ली के एक विशेष वर्ग की भाषा है, पर क्या जो भाषा दिल्ली के कुछ लोग प्रयोग में लाते हैं वही राष्ट्रभाषा हिन्दी है?

छपाई साफ-सुथरी है। कहानियाँ मुख्यतः हृदय में करुणा का स्पंदन उठाकर उसी पर जीवित रहना चाहती हैं। जो लोग जीवन के करुण पक्ष ही देखना चाहते हैं, उन्हें ये कहानियाँ रुचिकर होंगी।

ओ सपूत भारती--वीरकुमार अधीर, आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली; मूल्य तीन रुपया; पृष्ठ-संख्या ६७।

पुस्तक एक काव्य-रूपक संग्रह है। इसमें सात काव्य-रूपक हैं। ये सभी काव्य-रूपक समय-समय पर आकाशवाणी के लिए लिखे गये थे और वहाँसे वे प्रसारित भी हुए थे। इन सभी प्रसारित काव्य-गीतों का संग्रह इस पुस्तक में प्राप्त है। उनके शीर्षक भी भिन्न-भिन्न हैं। अशोक का पश्चात्ताप; कंठ-कंठ में बलिदानों का गीत, दीप और आँचल की छाया; अन्धकार हारेगा; भोर के पथ के बटोही; शैतानसिंह का क्रोध, ओ सपूत भारती ये काव्य-रूपकों के शीर्षक हैं। शीर्षकों से ज्ञात होता है कि वे किसी एक विषयविशेष को लेकर लिखे गये हैं।

आकाशवाणी का अपने विषयों को प्रस्तुत करने का अपना एक ढंग है जिसके कारण प्रस्तुत विषय आकर्षक लगने लगता है। अवश्य ही ये काव्य-रूपक आकाशवाणी पर प्रसारित होते समय प्रभावशाली लगते होंगे। अभी भी नाट्य-रूप में स्कूल-कालेजों में यदि उनको उपयुक्त रूप से प्रस्तुत किया जाय तो वे सफल होंगे क्योंकि उनकी भाषा सरल और गतिवान है। साधारण शिक्षा प्राप्त भी उसको समझ सकते हैं और साथ में गतिवान होने से ऊब नहीं आती। परन्तु हम यह नहीं कह सकते कि उनमें कोई नवीन कल्पना है, कोई नवीन पकड़ या नवीन आकर्षण है।

काव्य-रूपक सफलतापूर्वक खोला जा सके और अपने विषय को मनोरंजक रूप से प्रस्तुत कर सके--यदि यही काव्य-रूपक की कसौटी मान ली जाय तो अवश्य ही यह काव्य-रूपक संग्रह सफल है। परन्तु काव्य होने के नाते यदि उनसे आशा की जाय कि उनमें कोई नयी काव्य व्यंजना या कोई नयी अनुभूति है तो निराशा होगी।

जन्म ले नवीन आज चल पड़े शहीद फिर
फिर भड़क उठे युवक, मचल पड़े शहीद फिर
तोड़कर समाधियाँ निकल पड़े शहीद फिर
लाश फिर शहीद की उठी कफन उघारती॥
ओ सपूत भारती!

इनमें ललकार है, गति है, आदर्श है—पर कोई नयी सर्जना, नयी बात या नयी व्यंजना नहीं है।

गीतार्थ-चन्द्रिका—लेखक डा० गयाप्रसाद शास्त्री 'श्री हरि' भारतीय पुस्तक भंडार, बेगम बाजार, हैदराबाद (आ० प्र०), मूल्य तीन रुपये, पृष्ठ संख्या २५६.

गीता पर अनेकों भाष्य और टीकाएँ प्राप्त हैं। यह पुस्तक गीता पर टीका या भाष्य नहीं, जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है। वह केवल गीता के श्लोकों के अर्थ पर प्रकाश डालती है। उस अर्थ में भावार्थ, गूढ़ार्थ ऐसा कोई भेद नहीं है, साधारण अर्थ मात्र अंकित है। ऊपर श्लोक लिखे हैं, नीचे सीधे सादे अर्थ। कहीं कहीं अर्थ दो या तीन ही पंक्तियों में आ गये हैं। कम से कम जितने शब्दों में स्पष्ट रूप से अर्थ आ जाय उतने में ही विषय को लिख देने का प्रयास किया गया है। यह कहने में हर्ष होता है कि लेखक इसमें पूर्णतया सफल हुआ है। भाव और अर्थ पूर्णरूप से स्पष्ट होकर आये हैं। जो लोग गीता का प्रारम्भिक ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं उनके लिए पुस्तक उपयोगी होगी।

पुस्तक का कागज तथा छपाई साधारण और अशुद्धि-रहित है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनोरंजक संस्मरण

कवि की दानशीलता

यद्यपि मिश्रबन्धु-विनोद में हरिनाथजी को नरहरि महापात्र का पुत्र बताया गया है तथापि माथुर चतुर्वेदियों में वे उन्हींके जाति के माने जाते हैं। मिश्रबन्धु-विनोद में उनका एक दोहा—"दान पाय···" उदाहरण में दिया गया है पर हम लोगों में हरिनाथजी के संबंध में निम्नांकित कथा विख्यात है।

हरिनाथजी चौबे थे और उनमें चौबों के सब गुण और दुर्गुण थे। वे फक्कड़ और मस्त तथा अल्पसंतोषी थे पर कवि के रूप में उनकी प्रसिद्धि थी। जयपुर के महाराज मानसिंह के वे कृपापात्र थे—यद्यपि वे राजाश्रय में नहीं रहे। उनके एक लड़की थी, जब वह विवाह योग्य हुई तो धन के अभाव से उसका विवाह टलने लगा। अंत में उनकी पत्नी ने उन्हें ठेल-ठालकर महाराज मानसिंह के पास भेजा। वहाँ पहुँचकर और अवसर पाकर उन्होंने महाराज को द्रवित करने के लिए यह दोहा उनकी प्रशंसा में कहा—

बलि बोयी कीरति-लता, करन (कर्ण) करी द्वै पात,
सींची मान महीप ने जब देखी कुम्हिलात।

महाराज समझ गये कि चौबेजी की यह खुशामद किसी प्रयोजन से है। पूछने पर उन्हें हरिनाथजी की आवश्यकता मालूम हुई और उन्होंने उन्हें लड़की के विवाह को भलीभाँति संपन्न करने योग्य धन दे दिया। वे उसे लेकर घर लौटे।

हरिनाथजी, जैसा कि हम बता चुके हैं, फक्कड़ थे और निरालाजी की तरह लोगों को पैसा-रुपया या वस्तु देने में अति उदार थे। उनके गाँव में एक भाट था जो उनकी प्रकृति से परिचित था। उसने सुन रखा था कि हरिनाथ महाराज मानसिंह से विवाह के लिए पुष्कल धन-राशि लेकर आ रहे हैं। इस समय उनकी कमजोरी से कुछ लाभ उठाया जा सकता है। अतएव उसने गाँव में उनके घुसते ही—घर पहुँचने के पहिले ही—उन्हें घेर लिया, और उनको द्रवित करने के लिए यह दोहा उनसे कहा—

दान पाय द्वै ही बढ़े, कै हरि कै हरिनाथ,
वे पग-बल ऊँचे भये, ये करि ऊँचे हाथ!

दान देते समय हाथ उठाने या ऊँचे करने पड़ते हैं। वामन ने बलि से दान लेने के बाद पैर बढ़ाकर शारीरिक ऊँचाई प्राप्त की थी। भाट ने हरिनाथ को हाथ ऊँचा कर दान देने की आदत के कारण मानवता में ऊँचा बना दिया। हरिनाथजी को यह दोहा ऐसा चुभ गया कि उनके पास उस समय महाराज से प्राप्त जो धन था, वह सब का सब उन्होंने उस भाट को दे दिया।

जब घर लौटे तो खाली हाथ थे। पत्नी का नाराज होना स्वाभाविक था। पर ये मस्त और बेफिक्र रहे। तब पत्नी ने महाराज के पास प्रार्थना-पत्र भेजकर अपने पति की 'मूर्खता' का हाल बताकर लड़की के हाथ पीले करने की फिर सहायता चाही। महाराज सहृदय थे। इस बार उन्होंने हरिनाथ के पास रुपये न भेजकर अपने किसी विश्वस्त कर्मचारी को आवश्यक धन देकर विवाह को भलीभाँति सम्पन्न करा देने के लिए भेज दिया। तब इन निराला-छाप कवि की लड़की का विवाह हो पाया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तोते की शिक्षा

श्री कुलदीपसहाय

(१)

किसी नगर में एक पक्षी था। वह अपढ़ था। उसका गला सुरीला था, किन्तु वह सङ्गीत-शास्त्रज्ञ न था। वह फुदकता था, किन्तु उसे तमीज न थी।

राजा ने अपने मन में विचार किया, "अज्ञानता अन्त में दुःखदायिनी ही होती है। क्योंकि मूर्ख खाते तो हैं विद्वानों के बराबर, पर बदले में देते कुछ नहीं।"

उसने अपने भतीजों को बुलवाया और उनसे कहा कि पक्षी की शिक्षा की पूर्ण व्यवस्था होनी चाहिए।

इस काम के लिए पण्डित नियत किये गये। वे उस पक्षी की अज्ञानता का कारण ढूँढ़ने लगे। उन्होंने निश्चय किया कि पक्षी का क्षुद्र घोसले में निवास करना ही इसका कारण है। इसलिए, हमारे मतानुसार, इसकी शिक्षा के लिए प्रथम आवश्यक वस्तु एक उत्तम पिंजड़ा है।

पण्डित अपना अपना इनाम लेकर खुशी खुशी घर गये।

(२)

सोने का एक पिंजड़ा बनवाया गया। उसकी सजावट अनुपम थी। संसार भर के मनुष्य उसे देखने आये। कुछ मनुष्यों ने हर्ष से विह्वल होकर कहा—"विद्या पकड़ कर पिंजड़े में बन्द कर दी गयी है!" उनके आनन्दाश्रु बह उठे। औरों ने कहा—"यदि विद्या न भी रही तो कोई हानि नहीं, पिंजड़ा तो कहीं न जायगा। पक्षी बड़ा भाग्यशाली है!"

सुनार ने अपनी मजदूरी के बदले में चाँदी बटोर कर अपना रास्ता लिया।

(३)

एक पण्डित पक्षी को पढ़ाने बैठा। कुछ देर तक अच्छी तरह सोच-साच कर, नास लेते-लेते, उसने कहा—"हमारे कार्य के लिए पाठ्य-पुस्तक कदापि पर्य्याप्त नहीं हो सकते।"

राजा के भतीजे सहस्रों लेखकों को पकड़ लाये। वे घड़ाघड़ पुस्तकों और लेखों की नकल करने लगे। फिर क्या था, हस्त-लिखित कागजों का एक पहाड़ बन गया। लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने कहा—"ओहो! विद्या का दुर्ग इतना ऊँचा! उसका शिखर तो बादलों को छू रहा है।"

लेखक, पुलकित-हृदय होकर, अपने-अपने घर गये। रुपयों के बोझ से उनकी कमर झुक गयी।

भतीजे पिंजड़े की चमक-दमक बढ़ाने में खूब व्यस्त थे। उसकी मनोहरता को देख कर लोगों ने सन्तोष प्रकट किया और कहा—"सचमुच उन्नति हो रही है।"

शिक्षक अधिक संख्या में नियुक्त किये गये, और निरीक्षकों की संख्या भी बढ़ा दी गयी। ये और इनके साथी-सङ्गी भव्य भवन बनवा कर उसमें सुख-पूर्वक कालयापन करने लगे।

(४)

संसार में चाहे और किसी वस्तु की कमी हो चाहे न हो, किन्तु छिद्रान्वेषकों की कमी नहीं। वे सब जगह कहते फिरे कि पक्षी के अतिरिक्त और सब लोग, जिनका उसकी शिक्षा से कुछ भी सम्बन्ध है, खूब गुलछर्रे उड़ा रहे हैं।

जब यह चर्चा राजा के कानों तक पहुँची तब उसने अपने भतीजों को बुला भेजा और कहा—"हम जो कुछ सुन रहे हैं वह क्या सच है?"

भतीजों ने निवेदन किया—"स्वामिन्! यदि सत्य बात जानना चाहते हैं तो सुनार, पण्डित, लेखक तथा निरीक्षकों से पूछ लीजिए। छिद्रान्वेषक भूखों मर रहे हैं। बेकार होने से उनकी जबान और भी तेज हो गयी है।"

उनका उत्तर आवश्यकता से अधिक सन्तोषजनक था। इससे राजा अत्यन्त हर्षित हुआ और प्रत्येक को अपने अमूल्य आभूषणों से पुरस्कृत किया।

(५)

राजा को यह जानने की इच्छा हुई कि शिक्षा-विभाग अपना कार्य्य किस तरह कर रहा है। इससे एक दिन वह विद्या-भवन में जा पहुँचा। द्वार पर शङ्ख, तुरही, भेरी,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नफेरी, घण्टा, झाँझ, ढोल, सहनाई, मृदङ्ग, तबला, डफ, खँजड़ी, बाँसुरी, करताल, करनाल, नरसिंघे बज उठे।

पण्डितों ने उच्चस्वर से मन्त्रोच्चार किया। सुनार, लेखक, निरीक्षक और सहस्रों भिन्न-भिन्न पदाधिकारियों ने बड़े उत्साह से राजा का स्वागत किया।

राजा के भतीजे मुसकराये और पूछा--"महाराज, कहिए, इसके विषय में आपका क्या विचार है ?"

राजा ने कहा--"निस्सन्देह शिक्षण का यह बहुत अच्छा ढङ्ग है।"

राजा बहुत खुश हुआ और प्रस्थान करना ही चाहता था कि किसी कोने से छिद्रान्वेषक चिल्ला उठा—"महाराज, आपने पक्षी को भी देखा ?"

राजा ने कहा--"अरे ! तोते को तो मैंने देखा ही नहीं। मुझे तो उसकी याद भी नहीं रही।"

लौट कर उसने पण्डितों से शिक्षण-प्रणाली के विषय में प्रश्न किया। उन्होंने सब कुछ दिखा दिया। देख कर राजा बहुत प्रसन्न हुआ। शिक्षण-प्रणाली इतनी भड़कीली थी कि पक्षी उसके सामने तुच्छ बोध होता था। शिक्षा-विधान में कोई त्रुटि न पाकर राजा अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ। पक्षी तो किसी तरह की शिकायत कर ही नहीं सकता था। उसके गले में पुस्तकों के पन्ने खूब ठूँस दिये गये थे, जिससे वह चीं तक न कर सकता था। शिक्षा के इस ढङ्ग को देखकर लोग दङ्ग रह गये।

इस दफे प्रस्थान करते समय राजा सरकारी दण्ड-विधायक को छिद्रान्वेषक के दोनों कान गरम करने की आज्ञा देता गया।

(६)

इस प्रकार पक्षी अकर्मण्यता की ओर, धीरे-धीरे, किन्तु निश्चित रूप से, बढ़ने लगा। निस्सन्देह उन्नति सन्तोष-जनक थी। तथापि कभी-कभी प्रकृति शिक्षा पर विजय प्राप्त करती थी, और जब प्रभातकालीन सूर्य की किरणें पक्षी के पिंजड़े में प्रवेश करती थीं तब वह अपने परों को बुरे ढंग से फटकारता था। और कभी-कभी, यद्यपि यह बात विश्वास-योग्य नहीं, वह दीन पक्षी अपनी क्षीण चोंच से पिंजड़े की छड़ पर चोट करता था। यह देख कर कोतवाल गरज उठता था—"इतनी शरारत" !

दूसरे दिन लुहार अपनी निहाई और हथौड़ा लेकर राजा के शिक्षा-विभाग में आ डटा। हृदय दहलानेवाली मार ! लोहे की बेड़ी शीघ्र तैयार हो गयी और पक्षी के पर जकड़ दिये गये।

राजा के बहनोई ने कुपित होकर सिर हिलाया और कहा—"ये पक्षी केवल मूर्ख ही नहीं होते, किन्तु कृतघ्न भी होते हैं।"

एक हाथ में पाठ्य-पुस्तक और दूसरे में डण्डा लेकर पण्डितों ने दीन पक्षी को वास्तविक शिक्षा दी।

अच्छा प्रहरी होने के उपलक्ष्य में कोतवाल और अच्छी बेड़ी बनाने के उपलक्ष्य में लुहार एक-एक उपाधि से सम्मानित किये गये।

(७)

पक्षी मर गया।

इस बात की खबर किसी को कुछ भी न थी। छिद्रान्वेषक ही प्रथम व्यक्ति था जिसने इसकी खबर फैलाई।

राजा ने अपने भतीजों को बुला कर पूछा—"हम जो कुछ सुन रहे हैं क्या वह सच है ?"

भतीजों ने कहा—"स्वामिन् ! पक्षी की शिक्षा पूरी हो चुकी।"

राजा ने पूछा—"क्या वह फुदकता है ?"

भतीजों ने कहा—"कभी नहीं !"

"उड़ता है ?"

"नहीं।"

"गाता है ?"

"नहीं।"

राजा ने कहा—"पक्षी को मेरे पास लाओ।"

कोतवाल, सिपाही और सवारों से रक्षित होकर पक्षी राजा के पास लाया गया। राजा ने उसे अपनी अंगुलियों से हिलाया, पर वह हिला न डुला। केवल उसके भीतर से पुस्तकों के पन्ने खड़खड़ाये।

खिड़की के बाहर नव-किशलय-विहारी वासन्तिक वायु की सुरसुराहट से मधुमास का प्रभात उदासीनता के रङ्ग में रँग गया।

प्रकाशक—रा० वि० मिश्र, इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद
मुद्रक—पी० एल० यादव, इंडियन प्रेस प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे धार्मिक साहित्य

● ज्ञानेश्वरी

गीता इस संसार के कंटकाकीर्ण अँधेरे मार्ग का सबसे तेजस्वी प्रकाश-स्तंभ है। बड़े-बड़े विद्वानों की बुद्धि जितनी गहराई में उतर सकी अपनी-अपनी प्रतिभा के अनुसार सभी ने गीता की चमत्कारी टीकाएँ कीं। यद्यपि अनुवादों की अजस्र धारा आज भी रुकी नहीं, मगर संत ज्ञानेश्वर की विचित्र व्याख्या हृदय को जो आनन्द देती है वह बात दूसरी टीकाओं, व्याख्याओं में उपलब्ध नहीं। संत की पावन-वाणी मराठी से हिन्दी में अनुवाद ही ज्ञानेश्वरी के नाम से विख्यात है। बड़े-बड़े अक्षरों में मूल संस्कृत श्लोक और सामान्य अक्षरों में व्याख्या बड़ी ही हृदयग्राही है। मूल्य ८ रुपये।

● ● ●

● दुर्गापाठ

सब रूपों में लय हैं दुर्गा सारा जग दुर्गा में लीन।
विश्वरूपिणी नमस्कार हो, परम ईश्वरी मैं आधीन॥

जगदम्बा दुर्गा इस युग की जाग्रत देवी हैं। माँ का उपासक कभी दुखी नहीं रह सकता। दुर्गापाठ के नाम से ७०० संस्कृत मन्त्रों का यह पद्यबद्ध हिन्दी अनुवाद हिन्दी जाननेवालों, विशेषतयः स्त्री समाज में इतना लोकप्रिय हुआ कि पाँचवाँ संस्करण भी प्रायः समाप्त होने पर है। संस्कृत मन्त्र व हिन्दी पद्य दोनों साथ-साथ छापे गये हैं। मातृका स्तुति, सप्तसती पाठ विधि, देवी कवच, अर्गला स्तोत्र, कीलक स्तोत्र, तीनों चरित्र तथा तीनों रहस्य सभी कुछ इसमें है। माँ दुर्गा के अनन्य उपासक अनुवादक राय साहब राधामोहन लाल व संशोधक जस्टिस हरिश्चन्द्र बार० एट् ला दोनों रिटायर्ड जजों का सारा प्रयास स्तुत्य है। सजिल्द, सचित्र, सुन्दर बड़े अक्षरों में छपी पुस्तक का प्रचारार्थ मूल्य ३ रुपये मात्र।

● ● ●

● श्रीमद्भागवत

श्रीमद्भागवत में भगवान् कृष्ण की चमत्कारी लीलाओं, प्राचीन राजवंशों, ऋषि-महर्षियों की गौरव गाथाओं और तात्कालिक भारत की सामाजिक दशा के साथ-साथ ज्ञान की पावन धारा बहाने का जो भगीरथ प्रयास वेदव्यासजी ने किया उसका गुणगान राजमहल से लेकर झोपड़ी तक समान रूप से होता है। हिन्दी पाठकों की सुलभता के लिए यह पुराण हिन्दी में २ खण्डों में छपकर प्रकाशित हुआ है। जिल्द बढ़िया, चित्रों की भरमार ग्रन्थ की विशेषता है। प्रत्येक खण्ड का मूल्य १० रुपये।

● ● ●

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Yearly Subscription : Rs. 9.00
Single Copy : Rs. 0.75
February 1973
SARASWATI—Reg. No. L. 24

हिन्दू-संस्कृति का अगाध सागर

यह हिन्दी के अम
कवि गोस्वामी तुलसी
दास की सुप्रसिद्ध रचना
है। इसमें गोस्वामीजी ने
अपने आराध्य देव राम
चन्द्रजी की कथा, सात
काण्डों में, दोहा-चौपाई
सोरठा और छन्दों में
कही है।

इस ग्रन्थ का प्रचार
हिन्दी-भाषी प्रान्तों में तो
है ही, दूसरे प्रान्तों में
भी है।

डाक्टर श्यामसुन्दर
दास ने इस अनुपम ग्रन्थ
पर जो टीका लिखी है
उससे अर्थ समझने में
बहुत सुविधा होती है।
इस संस्करण में क्षेपक आदि नहीं हैं। आरम्भ में विस्तृत भूमिका है जिससे
गोस्वामीजी के जीवनचरित और उनकी समस्त रचनाओं पर विशद विवेचन
है। चित्रों की अधिकता है। सुन्दर जिल्द है। मूल्य १५)।

गोस्वामी तुलसीदासकृत रामचरितमानस—टीकाकार—रामेश्वर भट्ट। यह संस्करण
बहुत ही उपयोगी, मनोहर और सस्ता है। टीका बड़े काम की है। दुरंगे-तिरंगे चित्रों
की अधिकता है। सजिल्द प्रति का मूल्य ८)।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्रा० लि०, प्रयाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मार्च १९७३

सरस्वती

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे धार्मिक साहित्य

● ज्ञानेश्वरी

गीता इस संसार के कंटकाकीर्ण अँधेरे मार्ग का सबसे तेजस्वी प्रकाश-स्तंभ है। बड़े-बड़े विद्वानों की बुद्धि जितनी गहराई में उतर सकी अपनी-अपनी प्रतिभा के अनुसार सभी ने गीता की चमत्कारी टीकाएँ कीं। यद्यपि अनुवादों की अजस्र धारा आज भी रुकी नहीं, मगर संत ज्ञानेश्वर की विचित्र व्याख्या हृदय को जो आनन्द देती है वह बात दूसरी टीकाओं, व्याख्याओं में उपलब्ध नहीं। संत की पावन-वाणी मराठी से हिन्दी में अनुवाद ही ज्ञानेश्वरी के नाम से विख्यात है। बड़े-बड़े अक्षरों में मूल संस्कृत श्लोक और सामान्य अक्षरों में व्याख्या बड़ी ही हृदयग्राही है। मूल्य ८ रुपये।

● ● ●

● दुर्गापाठ

सब रूपों में लय हैं दुर्गा सारा जग दुर्गा में लीन।
विश्वरूपिणी नमस्कार हो, परम ईश्वरी मैं आधीन॥

जगदम्बा दुर्गा इस युग की जाग्रत देवी हैं। माँ का उपासक कभी दुखी नहीं रह सकता। दुर्गापाठ के नाम से ७०० संस्कृत मन्त्रों का यह पद्यबद्ध हिन्दी अनुवाद हिन्दी जाननेवालों, विशेषतयः स्त्री समाज में इतना लोकप्रिय हुआ कि पाँचवाँ संस्करण भी प्रायः समाप्त होने पर है। संस्कृत मन्त्र व हिन्दी पद्य दोनों साथ-साथ छापे गये हैं। मातृका स्तुति, सप्तसती पाठ विधि, देवी कवच, अर्गला स्तोत्र, कीलक स्तोत्र, तीनों चरित्र तथा तीनों रहस्य सभी कुछ इसमें है। माँ दुर्गा के अनन्य उपासक अनुवादक राय साहब राधामोहन लाल व संशोधक जस्टिस हरिश्चन्द्र बार० एट् ला दोनों रिटायर्ड जजों का सारा प्रयास स्तुत्य है। सजिल्द, सचित्र, सुन्दर बड़े अक्षरों में छपी पुस्तक का प्रचारार्थ मूल्य ३ रुपये मात्र।

● ● ●

● श्रीमद्भागवत

श्रीमद्भागवत में भगवान् कृष्ण की चमत्कारी लीलाओं, प्राचीन राजवंशों, ऋषि-महर्षियों की गौरव गाथाओं और तात्कालिक भारत की सामाजिक दशा के साथ-साथ ज्ञान की पावन धारा बहाने का जो भगीरथ प्रयास वेदव्यासजी ने किया उसका गुणगान राजमहल से लेकर झोपड़ी तक समान रूप से होता है। हिन्दी पाठकों की सुलभता के लिए यह पुराण हिन्दी में २ खण्डों में छपकर प्रकाशित हुआ है। जिल्द बढ़िया, चित्रों की भरमार ग्रन्थ की विशेषता है। प्रत्येक खण्ड का मूल्य १० रुपये।

● ● ●

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

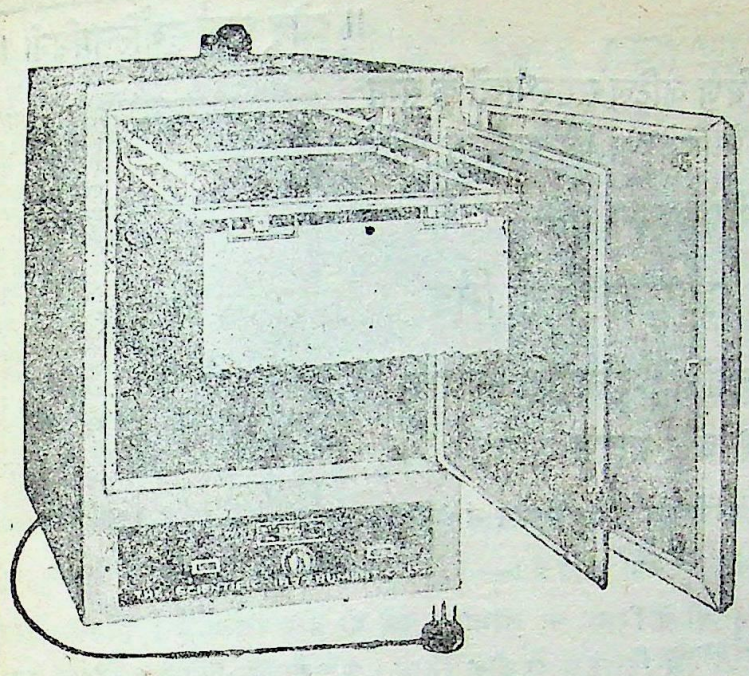

सीको कोमाटोग्राफिक ओवेन्स

THE SCIENTIFIC SICO TRADE MARK

सीको : विज्ञान की सेवा में

वैज्ञानिक अनुसंधान एवम् देश में वैज्ञानिक यंत्रों की कमी को पूरा करने के लिये, सीको अपने उत्पादन व दूसरे देशों से सर्वश्रेष्ठ यंत्रों को मँगाकर शिक्षा, उद्योग एवम् वैज्ञानिक खोज की सेवा में संलग्न है।

दी साइण्टिफिक इन्स्ट्रूमेंट कम्पनी लिमिटेड,

इलाहाबाद, बम्बई, कलकत्ता, मद्रास, नई देहली

हेड आफिस—६, तेजबहादुर सप्रू रोड, इलाहाबाद

जिन शहरों में स्टाकिस्ट नहीं हैं वहाँ के हेतु स्टाकिस्ट चाहिए।

शुद्ध बादाम रोगन पर बना

अलकपरी

केशों में प्रतिमास ३-४ इंच वृद्धि। ६ महीने में एड़ी-चुम्बी केश।

'अलकपरी' का कोर्स

पहले सप्ताह में रूसी-खुश्की दूर हो जाती है। दूसरे सप्ताह में केशों का झड़ना और उनके सिरों का फटना रुकता है।

तीसरे सप्ताह में नये केश उगते दिखाई देते हैं। चौथे सप्ताह के अन्त तक केश ३-४ इंच बढ़ जाते हैं। फिर प्रतिमास इसी औसत से बढ़ते रहते हैं।

६ महीने में केश एड़ी-चुम्बी बन जाते हैं।

मूल्य एक शीशी का ३·०० है जो एक महीने को काफी होती है। डाक-खर्च व पैकिंग पृथक। ४ से अधिक शीशियाँ डाक से नहीं भेजी जायेंगी। अधिक के लिए मूल्य पेशगी भेजिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ ओम् दुर्गा दुर्गतिनाशिनी ॥ ॥ ओम् दुर्गा दुर्गतिनाशिनी ॥

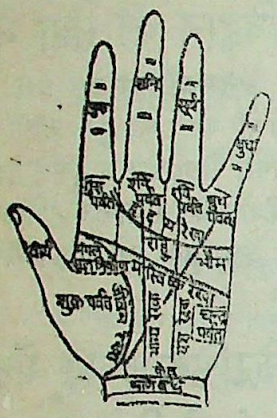

जीवन की विभिन्न जटिल समस्याओं के समाधान के लिए मिलिये या पत्र-व्यवहार करिये

ज्योतिषाचार्य—

प्रोफेसर प्रद्युम्ननारायण सिंह

वैज्ञानिक ज्योतिषी, हस्तरेखा-विशारद,

तांत्रिक और मानस शास्त्रज्ञ

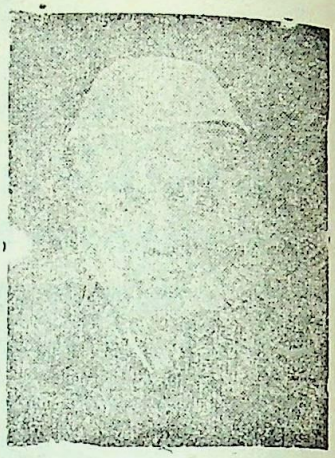

२८, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद (फोन नं० २८५८)

देखिए :--कवि सम्राट् श्री सुमित्रानन्दन पंत जी क्या कहते हैं :—

श्री ज्योतिषाचार्य प्रोफेसर प्रद्युम्ननारायणसिंह जी से मिलने का सौभाग्य मुझे दो बार मिला है। विगत जीवन के सम्बन्ध में मैंने जो प्रश्न पूछे उसका उत्तर भी मुझे बिलकुल ही ठीक मिला। आपको देश-विदेश के विद्वान् तथा प्रमुख व्यक्तियों से जो प्रशंसापत्र मिले हैं वह आपके चमत्कारिक गुणों के अनुरूप ही हैं। आप एक सफल सिद्ध तांत्रिक भी हैं। मुझे विश्वास है कि आपके बनाये हुए यंत्र तथा कवच भी आपकी वाणी की तरह ही अपना विशेष चमत्कार रखते हैं।

कामायनी-रहस्य

लेखक—श्री विजयबहादुरसिंह राठौर

विद्वानों की दृष्टि में कामायनी आधुनिक हिन्दी काव्य का गौरव ग्रन्थ है। विभिन्न विद्वानों ने कामायनी के अनेक भाष्य किये हैं। यों तो सभी की व्याख्या शैली महत्त्वपूर्ण है परन्तु कामायनी का सर्वोत्तम भाष्य 'कामायनी रहस्य' में प्रगट कर लेखक की लेखनी अमर हो गयी है। सभी छः सर्गों के आख्यान, चारित्रिक विकास आदि का परिचय देते हुए विद्वान् लेखक ने शास्त्रीय और मनोवैज्ञानिक पद्धति की आधारशिला पर प्रत्येक पद के काव्य सौन्दर्य, छन्द, रस, अलंकार, शब्दशक्ति पर पूरा-पूरा प्रकाश डाला है।

दार्शनिक और पौराणिक संदर्भों का उल्लेख बड़ा ही हृदयग्राही हुआ है। विवादास्पद पदों की व्याख्या के कठिन कर्तव्य पूरी शक्ति और मनोबल के साथ निभाये गये हैं। यह एक ऐसी विशेषता है जो 'कामायनी रहस्य' के अतिरिक्त कामायनी के अन्य भाष्यों में दी ही नहीं गयी। तपोनिष्ठ विद्वान् ने आत्म-विश्वास के साथ स्वमत स्थापन कर गंभीर स्थलों को सुगम और सुरुचिपूर्ण बना दिया है। विश्वास रहे कामायनी के रहस्योद्घाटन में कामायनी-रहस्य का योगदान सर्वोपरि है। प्रत्येक कामायनी अध्येता इस ग्रन्थ की भूरि-भूरि प्रशंसा करेगा और पूरा लाभ उठायेगा ऐसा हमारा दृढ़ विश्वास है।

पृष्ठ संख्या ५२७

मूल्य ८·००

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

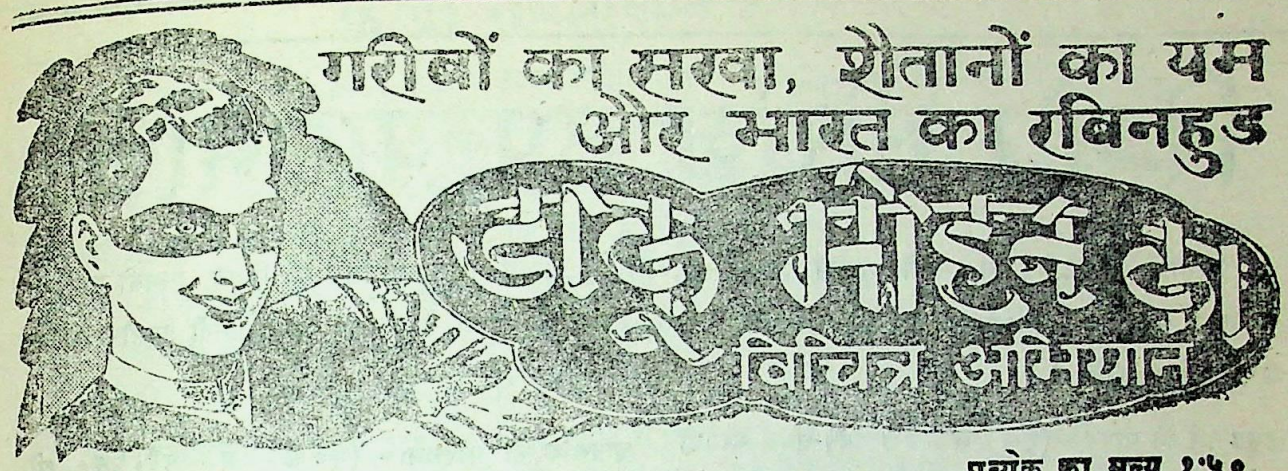

प्रत्येक का मूल्य १·५०

मोहन सिरीज़ का प्रत्येक उपन्यास स्वतः पूर्ण है। किसी भी उपन्यास को पढ़ते-पढ़ते आप आनन्द, आश्चर्य और रोमांच से अभिभूत हो जायेंगे।

१—मोहन।
२—मोहन जेल में।
३—रमा और मोहन।
४—रमा की शादी।
५—फिर से मोहन।
६—विरही मोहन।
७—मोहन और पंचमवाहिनी।
८—फांसी के तख्ते पर मोहन।
९—नागरिक मोहन।
१०—मोहन बर्मा की सीमा पर।
११—नारी-रक्षक मोहन।
१२—मोहन का प्रथम अभियान।
१३—नेता मोहन।
१४—मोहन का जर्मनी अभियान।

मोहन को ही नायक बनाकर इस सीरीज़ के सब मनोरंजक रोमांचकारी उपन्यास लिखे गये हैं। ऐसे अद्भुत चरित्र-चित्रणों तथा स्तब्धकारी घटनावलियों से परिपूर्ण अन्य उपन्यासमालायें कहीं नहीं मिलेंगी।

१५—प्रिय मोहन।
१६—गेस्टापो के मुकाबले में मोहन।
१७—बर्लिन में मोहन।
१८—मोहन का तूर्यनाद।
१९—मोहन का अनुराग।
२०—मित्र मोहन।
२१—मोहन और स्वप्न।
२२—स्वप्न का महान्त-दहन।
२३—अफसर मोहन।
२४—डाकू मोहन।
२५—स्वप्न का सीमान्त संघर्ष।
२६—मोहन का प्रतिदान।
२७—नये रूप में मोहन।
२८—मोहन का नया अभियान।
२९—त्राता मोहन।
३०—मोहन का प्रतिशोध।
३१—जर्मन षड्यंत्र में मोहन।
३२—मोहन और अणुबम।
३३—मोहन के तीन शत्रु।
३४—तीनों के साथ मोहन का मुकाबला।
३५—सोवियत रूस में मोहन।
३६—मोहन की प्रतिज्ञा रक्षा।
३७—सुन्दर वन में मोहन।
३८—युवक मोहन।
३९—मोहन और वनविहारी।
४०—समुद्र-तल में मोहन।
४१—बन्दी मोहन।
४२—नारी त्राता स्वप्न।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किशोर सीरीज़ उपन्यासमाला

किशोरों या उदीयमान भावी युवकों को प्रेरणा, उत्साह, साहस और मनोरंजन की विशद सामग्री उपस्थित करनेवाले उपन्यासों का अनुवाद अंग्रेजी, फ्रांसीसी आदि भाषाओं से हिन्दी में कराकर हमने हिन्दी किशोर पाठकों के लिए सुलभ किया है।

समुद्र-गर्भ की यात्रा—(मूल लेखक जूले वर्न) अनु० श्रीमती जयन्ती देवी। मूल्य २·२५

नर-भक्षकों के देश में—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० कु० शैवालिनी मिश्र। मूल्य २·२५

उड़ते अतिथि—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्रीमती विनोदिनी पाण्डेय। मूल्य २·२५

रहस्यमय द्वीप—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्रीमती जयन्ती देवी। मूल्य १·५०

द्वीप का रहस्य—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्री सन्तकुमार अवस्थी। मूल्य २·५०

भूगर्भ की यात्रा—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्री प्रभात किशोर मिश्र। मूल्य २·२५

दृढ़प्रतिज्ञ—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्री रामअवधेश त्रिपाठी। मूल्य २·५०

गुब्बारे में अफ्रीका यात्रा—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० कु० शैवालिनी मिश्र। मूल्य २·५०

चन्द्रलोक की यात्रा—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्री सूर्यकान्त शाह। मूल्य २·२५

चन्द्रलोक की परिक्रमा—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्री केशव एस० केलकर। मूल्य ३·२५

अस्सी दिन में पृथ्वी की परिक्रमा—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्री रामस्वरूप गुप्त। मूल्य ३·२५

गुलीवर की यात्राएँ—(मू० ले० जोनाथन स्विफ्ट) अनु० श्री शिवाकान्त अग्निहोत्री दो भागों में। मूल्य १·०० प्रत्येक

मास्टर मैन रेडी—(मू० ले० कैप्टेन मैरियट) अनु० कु० कौशल श्रीवास्तव। मूल्य ३·२५

नीली झील—(मू० ले० स्टैंकपोल) अनु० डा० कुमुदिनी तिवारी। मूल्य २·५०

स्विस परिवार राबिंसन—(मू० ले० रुडाल्फ वाएस) अनु० श्री देवेन्द्रकुमार शुक्ल। मूल्य ३·००

आकाश में युद्ध—(मू० ले० एच० जी० वेल्स) अनु० श्री सन्तप्रकाश पाण्डे। मूल्य १·५०

गुप्तधन—(मूल ले० राइडर हैगार्ड) अनु० श्री जे० एन० बत्स। मूल्य ३·२५

प्रत्येक विद्यालय के पुस्तकालय और अपनी संतान को उत्तम शिक्षा प्रदान करने का संकल्प रखनेवाले माता-पिताओं के निजी पुस्तक संग्रहों के लिए ये पुस्तकें बेजोड़ ही हैं।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश

डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, काशी नागरीप्रचारिणी सभा—'हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश को मैं जितना देख सका हूँ, उससे मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि हिन्दी के दो-तीन उत्कृष्ट कोशों में से एक यह भी निस्सन्देह है।.....'

डॉ० राजकुमार वर्मा, भू०पू० अध्यक्ष हिन्दी विभाग प्रयाग विश्वविद्यालय—'हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश का उपयोग मैंने सफल रूप से किया है। मैं इसके देश-व्यापी प्रचार की कामना करता हूँ।.....'

हिन्दी के प्रतिष्ठित विद्वानों की सहायता से सम्पादित और श्री विश्वेश्वरनारायण श्रीवास्तव एम० ए०, एल्-एल० बी०, साहित्यरत्न तथा पं० देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त' द्वारा संकलित यह हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश हमारा नवीनतम और सर्वोपयोगी प्रकाशन है।

इस कोश का कागज, मुद्रण, आवरण, जिल्द सभी स्थायी और आकर्षक हैं। इसकी शब्द संख्या लगभग पचास हजार, पृष्ठ-संख्या लगभग १६०० और इसका मूल्य १६ रुपये है।

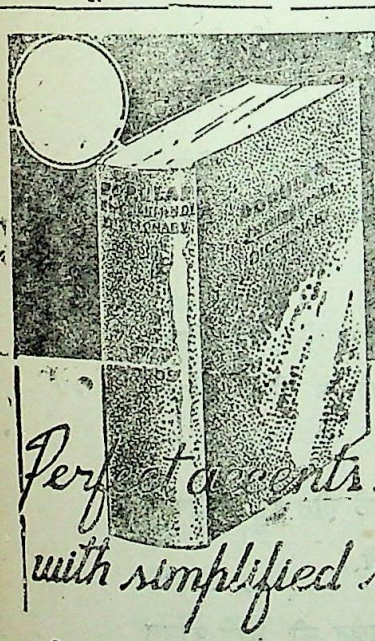

पापुलर
इंग्लिश
हिन्दी
डिक्शनरी

सजिल्द प्रति का मूल्य
६) रुपये

हिन्दी, अंगरेजी की अगणित डिक्शनरियों के आधार पर निर्मित इस डिक्शनरी की प्रामाणिकता और लोकप्रियता का यही सबसे बड़ा प्रमाण है कि इसके अनेक संस्करण हाथोंहाथ बिक चुके हैं। इस डिक्शनरी में अँगरेजी शब्दों के शब्दार्थ अँगरेजी और हिन्दी दोनों भाषाओं में दिये गये हैं। इस कारण यह डिक्शनरी न केवल अँगरेजी से अँगरेजी में शब्दार्थ जाननेवालों के लिए, प्रत्युत अँगरेजी से हिन्दी में शब्दार्थ जाननेवालों के लिए भी बड़ी उपयोगी है। छात्रों के लिए इस डिक्शनरी की उपयोगिता अपरिहार्य है। प्रायः सभी उपयोगी शब्द और मुहाविरे इसमें संकलित किये गये हैं। पृष्ठ पौने नौ सौ।

प्रकाशक—इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छोटे बच्चों के प्यारे कवि निरंकार देव 'सेवक' द्वारा लिखित

कुछ अपूर्व प्रकाशन

श्री शंकरसहाय सक्सेना डाइरेक्टर शिक्षा-विभाग, राजस्थान कहते हैं :—

"यह बालगीत बच्चों के लिए अत्यन्त सुन्दर और उपयोगी हैं। लेखक ने इन्हें लिखकर हिन्दी में बाल-साहित्य को धनी बनाया है। यह पुस्तकें प्रत्येक घर में जहाँ बालक-बालिकाएँ हों, रहना ही चाहिए।"

रिमझिम—रिमझिम में निरंकारजी के वह अनमोल बालगीत संग्रहीत हैं जिन्हें बच्चे बहुत पसन्द करते हैं। सभी कवितायें मीठी-मीठी और सुन्दर हैं। मू० २·५० रुपये।

फूलों के गीत—बच्चे यदि बगिया में खिले नये-नये फूल हैं तो इस पुस्तक के बालगीत उनके मन के गीत हैं। इन गीतों को पढ़कर एक बार वे मस्ती में झूम उठेंगे। उनके मन उत्साह, उमंगों से भर जायेंगे। मू० २·०० रुपये।

दूध जलेबी—बहुत छोटी आयु के बच्चों के लिए यह अनुपम और बेजोड़ पुस्तक है। इसकी छोटी-छोटी सुन्दर कवितायें बच्चे पढ़ते ही याद कर लेते हैं। मू० १·७५ रुपये।

पंचतन्त्री—पंचतन्त्र की जिन कहानियों में ज्ञान और उपदेश की बातें कूट-कूटकर भरी हैं वह कविता में इस ढंग से कही गई हैं कि बालक एक बार प्रारम्भ करके पूरी पुस्तक बिना समाप्त किये नहीं छोड़ सकता। मू० ३·०० रुपये।

मुन्ना के गीत—बच्चों के सोने-जगने, खेलने-कूदने, उठने-बैठने, खाने-पीने, दौड़ने-भागने, चलने-फिरने, पढ़ने-लिखने के ऐसे रसमय बालगीत सूरदास के बाद पहिली बार हिन्दी में लिखे गये हैं। मू० ३·०० रुपये।

धूप छाया—बच्चों की भिन्न-भिन्न क्रीड़ाओं से सम्बन्धित इतने मनोहर और मीठे गीत इस पुस्तक में संग्रहीत हैं कि बच्चे इन्हें पढ़कर खुशी से झूम-झूम उठते हैं। मू० १·७५ रुपये।

माखन मिसरी—इस पुस्तक का प्रत्येक बालगीत मिसरी की तरह मीठा और मक्खन की तरह कोमल है। बच्चे इसे पढ़ते ही गले से उतार लेंगे। छोटी आयु के बच्चों को यह कवितायें बहुत प्यारी लगती हैं। मू० २·२५ रुपये।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नई साज-सज्जा में सरस्वती सीरीज़

इस सीरीज़ की पुस्तकों ने हिन्दी पुस्तक-जगत् में अपनी लोकप्रियता, सुलभता और विविध विषयता से धूम मचा दी थी। वे ही अब आकर्षक नये रूप-रंग में छापी गई हैं। प्रत्येक पुस्तक का मूल्य केवल एक रुपया पचास पैसे। इन सुलभ, लाभप्रद तथा मनोरंजक पुस्तकों का अभाव किसी भी पुस्तकालय या घरेलू पुस्तक-संग्रह में खटक सकता है।

समरकन्द की सुन्दरी—श्री ब्रजेश्वर वर्मा एम० ए०

पृथ्वी का इतिहास—श्री सुरेन्द्र बालूपुरी

चक्रभेद—श्री महावीरप्रसाद गहमरी

सूरसंदर्भ—श्री नन्ददुलारे वाजपेयी

रामकृष्णचरितामृत—लल्लीप्रसाद पाण्डेय

मेरा संघर्ष—गणेशप्रसाद द्विवेदी, एम० ए०

दैनिक जीवन और मनोविज्ञान—
संशोधित संस्करण—इलाचन्द्र जोशी

वंशानुक्रमविज्ञान—शशीन्द्रनाथ सान्याल

सरस्वती सीरीज की आज भी सुलभ कुछ पुस्तकें

प्रत्येक का मूल्य केवल ७५ पैसे

ये पुस्तकें अल्प मूल्य में आपके मनोरंजन और ज्ञानवर्द्धन का अत्यंत सुगम आधार हैं

समस्या का हल
मृत्युलोक की झाँकी
लाल दूत
अनन्त की ओर
वंशानुक्रम विज्ञान
मशीन के पुर्जे
रूपान्तर
रूस की क्रान्ति
धरती माता
इत्सिंग की भारत-यात्रा
परलोक-रहस्य
लखनऊ की शहजादियाँ
घर का भेदिया
अग्रणी
नीमचमेली
जीवन-शक्ति का विकास
साथी
निष्कलंकिनी
पश्चिम की चुनी हुई कहानियाँ
समस्या
क्यांगकाई शेक
हिन्दी के निर्माता (दूसरा भाग)
तीन नगीने
पूर्व के पुराने हीरे

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
१—सम्पादकीय	१६९
२—श्रीमद्भागवत में कालगणना—डा० दामोदर झा आचार्यत्रय एम० ए०, पी-एच० डी०	१८०
३—त्रिकोणात्मक विश्व राजनीति—श्री अवनीन्द्र कुमार विद्यालंकार	१८४
४—शिक्षा और योग—श्री शमसुद्दीन	१८९
५—उड़िया में राम-साहित्य की परम्परा—श्री अजयकुमार पट्टनायक	१९१
६—पन्ना की प्राचीन साहित्य-सेवा—श्री रमेश ठाकुर	१९५
७—मेहता कृष्णाराम—एक झलक—श्री नारायणप्रसाद चतुर्वेदी	१९७
८—वाल्टेयर के जीवन की एक झलक—श्री जगदीश किंजल्क	२०३
९—दीवारों के कान हैं—श्री प्रेम मधुकर	२०६
१०—मनोविश्लेषण और साहित्य—डा० बालकृष्ण 'अकिंचन'	२०७
११—अंतरिक्ष में उल्का-पिंडों का निर्माण--श्री श्याममनोहर व्यास	
१२—कोयल—श्री श्रीप्रकाश शर्मा	
१३—मुटापा--श्रीमती शीला शर्मा	
१४—प्रेम को बाढ़—श्री शिवनारायण जोशी	
१५--प्रथम प्रेम--श्री निशीथकुमार राय	
१६—पवित्रता की बलि—अनु० रा० र० सरवटे	
१७—नवीन प्रकाशन	
१८—मनोरंजक संस्मरण	
१९—१९१८ की सरस्वती—स्वास्थ्य-मन्त्र—गोपाल दामोदर तामसकर	

© सरस्वती के इस अंक में प्रकाशित सभी लेख सर्वाधिकार सुरक्षित हैं।

छेड़छाड़

'श्री विनोद' शर्मा की व्यंग्य कविताओं का संग्रह

रचनाएँ साहित्यिक और ऐतिहासिक हैं। इस संग्रह में घंटाघर, करेलालोचनी, एक अदबी खत, आलू का पेड़, अधकचरा, महाश्वेता, रघुपतिसहाय के लिए आल्हा और विनोद शर्मा की मरम्मत आदि विशिष्ट रचनाएँ पाठकों को हँसाती-गुदगुदाती हैं। पुस्तक सचित्र सजिल्द है। अच्छे कागज पर सुन्दरता से छापी गई है। इसकी रचनाएँ बहुचर्चित हैं पर सार्वजनिक रूप में अब प्रकाश में आ रही हैं। मूल्य केवल २·५० पैसे।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

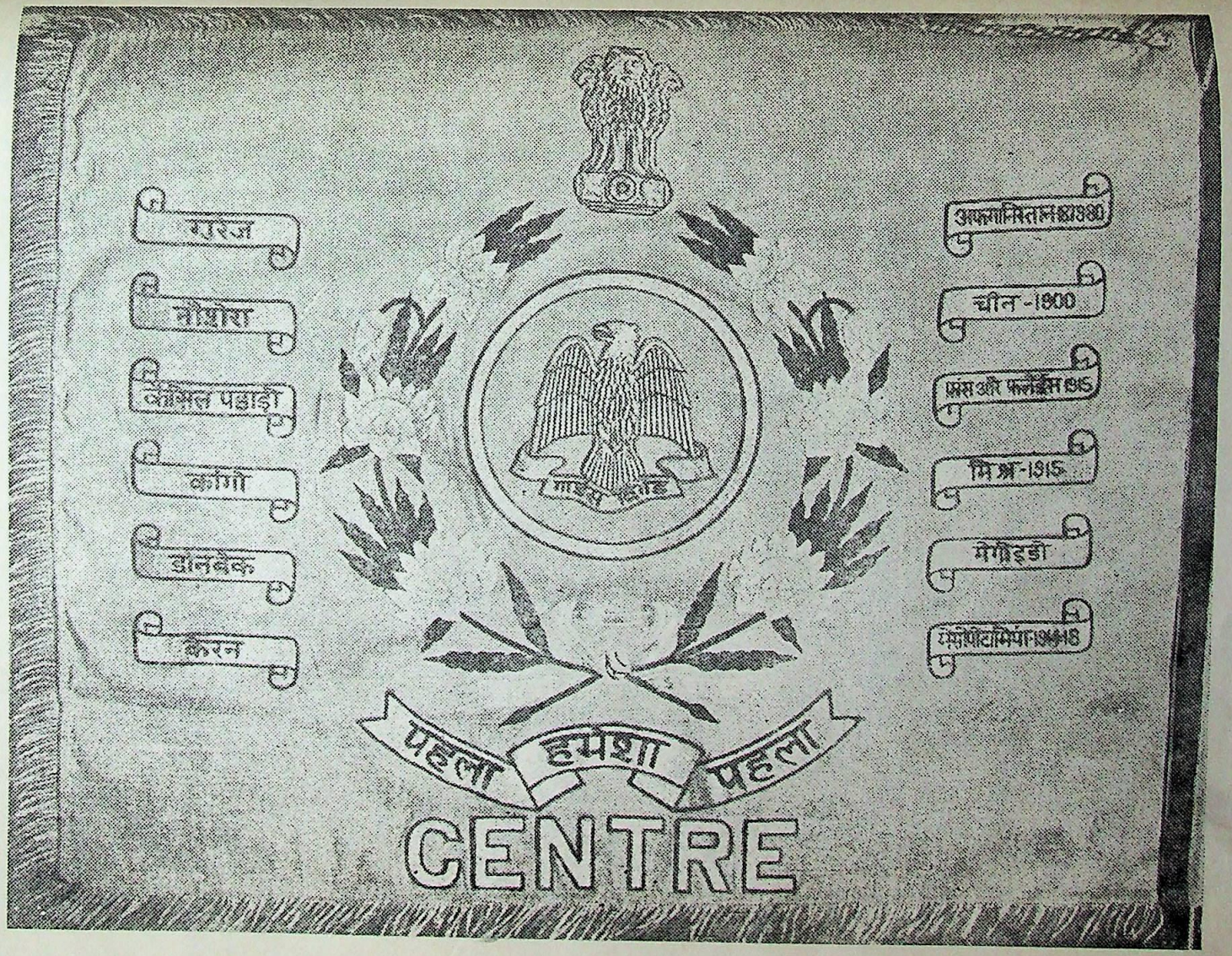

गार्ड रेजिमैण्ट का नया ध्वज

प्रत्येक रेजिमैण्ट का एक ध्वज होता है जिसका सम्मान और रक्षा वे प्राणपण से करते हैं। गार्ड (रक्षक) रेजिमैण्ट भारत का प्रमुख रेजिमैण्ट है। यह प्रसन्नता की बात है कि उसमें राजभाषा हिन्दी का प्रयोग किया गया है जिसके लिए अधिकारी प्रशंसा के पात्र हैं।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

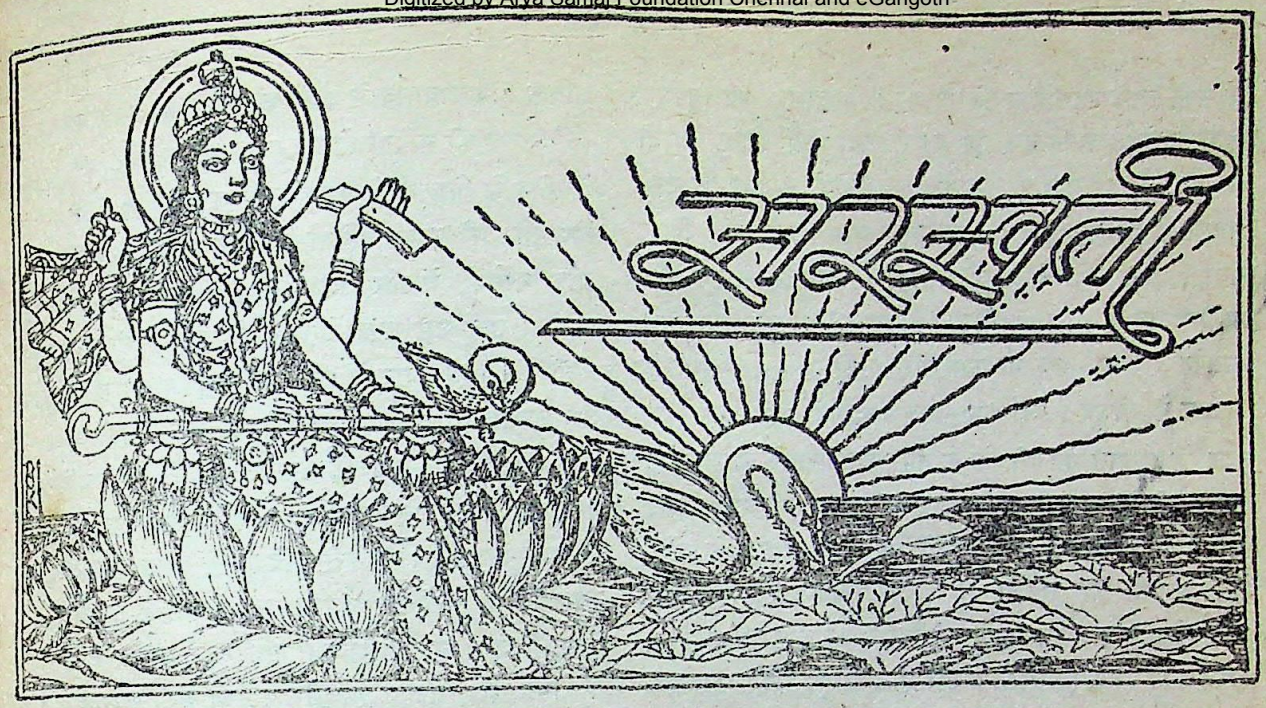

सम्पादक

श्रीनारायण चतुर्वेदी

सहायक सम्पादिका—शीला शर्मा

वर्ष ७४ पूर्ण संख्या ८७८ | इलाहाबाद : मार्च १९७३ : चैत्र २०३० वि० | खण्ड १ संख्या ३

सम्पादकीय

शेखचिल्ली योजना—गंगा-कावेरी नहर—भला उत्तर भारत में कौन ऐसा व्यक्ति होगा जो शेखचिल्ली के नाम और उनकी अनोखी योजनाओं से परिचित न हो ? वे शायद भारत के पहले 'योजनाचार्य' थे। उनका दिमाग इतना उर्वर था कि जमीन-आसमान के कुलाबे मिलाते रहते थे। यह दूसरी बात है कि उनकी योजनाएँ सफल नहीं होती थीं। भला आज ही कितनी योजनाएँ सफल होती हैं ! दुर्भाग्य से वे समय से बहुत पहले पैदा हुए। यदि आज के 'भारत दैट इज़ इण्डिया' में पैदा हुए होते तो उनके नाम के पीछे कुछ उपाधियों के पुछल्ले लगे होते या वे बड़े ब्यूरोक्रेट होते; वे ठीक तरह से 'कमिटेड' (प्रतिबद्ध) होते और उन्हें थोड़ी राजनीतिक 'पुल' (pull) प्राप्त होती तो वे अवश्य ही, योजना आयोग के सदस्य या सचिव होने के योग्य थे।

किन्तु शेखचिल्ली का वंश अभी समाप्त नहीं हुआ। उनकी योजनाएँ निरीह होती थीं क्योंकि वे योजनामात्र थीं। अब उनके उत्तराधिकारियों में इतनी प्रबल शक्ति और उनके पास खर्च करने को इतना अपार धन है कि वे अपनी शेखचिल्ली-छाप की योजनाएँ कार्यान्वित कर सकते हैं—चाहे उनमें करोड़ों और अरबों रुपये फुँक जायँ। इसीलिए जहाँ शेखचिल्ली निरीह थे, उनके उत्तराधिकारी खतरनाक हैं।

गंगाजी से इस देश को विचित्र आकर्षण है—यहाँ तक कि पण्डित नेहरू के समान सैक्यूलर व्यक्ति ने भी अपनी वसीयत में इसका कवित्वमय गुणगान किया है। कुछ मुसलमान शासकों में भी गंगाजी के प्रति ऐसा ही आकर्षण था। सम्राट् अकबर तो गंगाजल ही पिया करते थे। अवध के नवाब-वज़ीर गाज़ीउद्दीन हैदर ने अपनी राजधानी लखनऊ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में उन्हें लाने का प्रयत्न किया था। बादशाह का हुक्म! कानपुर से लखनऊ तक एक नहर खोदी गयी, किन्तु गंगाजी नहीं आयीं, तो नहीं ही आयीं। कुछ लोगों ने कहा कि उन्हें मनाने के लिए कुछ पूजा-पाठ किया जाय। वह भी किया गया। पर गंगाजी नहीं पसीजीं। चारबाग स्टेशन और अमीनाबाद के बीच गाजीउद्दीन-कनाल के पुल के नीचे उसके अवशेष अब भी उस शेखचिल्ली योजना के स्मारक के रूप में मौजूद हैं जो अब केवल एक गंदा नाला भर रह गया है। बात यह थी कि कानपुर का धरातल लखनऊ के धरातल से नीचा है। पानी ऊपर नहीं बह सकता। तब इंजीनियरी ने इतनी उन्नति नहीं की थी। 'लिफ्ट' से पानी नहीं उठाया जा सकता था। बिजली का आविष्कार नहीं हुआ था। जब लखनऊवाले राजधानी को इलाहाबाद से ले आये और वहाँके प्रमुख कार्यालय एक-एक करके लखनऊ आने लगे (जो क्रम अभी भी समाप्त नहीं हुआ है) तब वे दो ही चीजें इलाहाबाद से नहीं ला सके—वहाँका शानदार किला और गंगाजी। उस पर विस्मिल ने एक शैर कही थी—

बड़ा रहे वे लखनऊ की शान मगर
गोमती को तो गंगा बना नहीं सकते।

दक्षिणवालों को उत्तरवालों से अनेक शिकायतें हैं। सारे अवतार-विशेषकर श्रीराम और श्रीकृष्ण एवं भगवान् बुद्ध आदि उत्तर भारत ही में हुए। अयोध्या, मथुरा, काशी, गया, वृन्दावन, नैमिषारण्य, हरद्वार, बद्रीनाथ, केदारनाथ आदि सभी तीर्थस्थान उत्तर में हैं। यहाँ तक कि हिमालय और गंगाजी भी उत्तर ही में हैं। वैसे उन्होंने वहाँ 'दक्षिण काशी' और मैसूर में 'वृन्दावन गार्डन्स' बना रखे हैं। इनमें से और कुछ तो वे वहाँ ले जा नहीं सकते, किन्तु यदि भगीरथ गंगा को स्वर्ग से पृथ्वी पर ले आये तो उनसे स्पर्द्धा करनेवाले केन्द्रीय मंत्री गंगा की एक धारा को दक्षिण में अवश्य ले जा सकते हैं। किन्तु 'सैक्युलर' मंत्रियों पर 'नॉन सैक्युलर' या 'धार्मिक' भावना का संकेत करना भी उनके प्रति अन्याय होगा। इस विशाल और अभूतपूर्व योजना के जनक केन्द्रीय सिंचाई मन्त्री श्री के० एल० राव हैं। हमें पहले यह समझ लेना चाहिए कि उनकी योजना और तर्क क्या हैं।

डा० राव का कहना है कि (१) इस देश के भिन्न-भिन्न भागों में वर्षा एक सी नहीं होती। कहीं कम होती है, कहीं अधिक। कम वर्षावाले क्षेत्रों को पानी की आवश्यकता है। (२) उत्तर की नदियाँ हिमालय से निकलती हैं जो गर्मियों में हिम के पिघलने से बारहोमास जलपूर्ण रहती हैं। इसके विपरीत, दक्षिण की नदियाँ हिमहीन पहाड़ों से निकलती हैं और गर्मियों में शीर्ण हो जाती हैं। उनमें काफी जल नहीं रहता। उन्हें उस समय खेती के लिए पानी की आवश्यकता होती है। (३) उत्तर में जो वर्षा होती है उसका बहुत-सा जल बरसात में बंगाल की खाड़ी में चला जाता है। (वे यह कहना भूल गये कि बरसात में दक्षिण की नदियों की बाढ़ का भी बहुत-सा जल अरब सागर या बंगाल की खाड़ी में चला जाता है।) उत्तरी नदियों की बाढ़ के जल का उपयोग देश नहीं कर पाता। इस योजना से इन नदियों के बरसाती जल का एक अच्छा भाग नहर द्वारा दक्षिण में पहुँचाया जा सकता है और वहाँकी खेती को उससे लाभ पहुँचाया जा सकता है। (४) इस नहर के द्वारा यातायात भी हो सकेगा और कुछ पनबिजली भी उत्पन्न की जा सकेगी। (५) इससे उत्तर और दक्षिण के बीच सम्पर्क बढ़ेगा, जिससे देश में एकता की भावना दृढ़ होगी।

अब हम देखें कि इस नहर की रूपरेखा क्या होगी।

पटना के निकट गंगाजी में एक विशाल बाँध (बैरेज) बनाकर वहाँ गंगाजी की बरसात की विशाल जलराशि को रोककर इकट्ठा किया जायगा। यह स्पष्ट नहीं है कि बरसात में पटना की बढ़ी हुई विशाल जलराशि के एक अच्छे भाग को रोकने से उस स्थान के आस-पास के क्षेत्र का कितना भाग जलमग्न होगा और उसके पास के नगरों—विशेषकर पटना नगर पर क्या प्रभाव पड़ेगा। किन्तु श्री के० एल० राव ने इस सामान्य बात पर अवश्य विचार कर लिया होगा। यह पटना और उस क्षेत्र के लोगों का सिर-दर्द है और उन्होंने भी इस पर विचार किया होगा।

इस स्थान पर गंगा का दक्षिणी मैदान नीचा है, किन्तु इसके बाद दक्षिण का पठार आरम्भ हो जाता है। जहाँ से चढ़ाव आरम्भ होता है वहाँ से पठार की ऊँचाई पर पहुँचने में २०० मील लगते हैं और यह ऊँचाई गंगा की तलेटी से २००० फुट ऊँची है। अतएव नहर का जल २०० मील में २००० फुट ऊँचा चढ़ाया जायगा। बाढ़ के समय जिस स्थान पर बाँध बनेगा वहाँ गंगा का पानी प्रति सेकंड ७०९७२ घन मीटर की गति से बहता है। इस बहाव से केवल १६९९ घन फुट पानी नहर में डाला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जायगा। कुछ लोगों का अनुमान है कि २००० घन फुट प्रति सेकेण्ड पानी डाला जायगा।

चार करोड़ वाट से अधिक बिजली गंगा की इस नहर को पठार पर चढ़ाने में लगेगी। अभी सारे देश के बिजली का उत्पादन शायद ही इतना या इसके लगभग हो। अतएव इस कार्य के लिए बहुत विशाल बिजलीघर बनाने पड़ेंगे। अभी तक संसार में सबसे बड़ा बिजली का पम्प जापान में है जिसकी शक्ति ३,२८,००० हार्स पावर मात्र है। अतएव इसके लिए विशेष शक्तिशाली पम्प बनाने होंगे।

पठार पर चढ़ने पर नहर को विन्ध्य पर्वतमाला का वह भाग पार करना होगा जिससे सोन और नर्मदा नदियाँ निकलती हैं। इसके लिए इन पहाड़ों में बहुत बड़ी सुरंगें बनायी जायेंगी जिससे पानी इन पर्वतों के उस पार पहुँच सके। विन्ध्य पर्वत का पत्थर बहुत कड़ा है और यहाँ सुरंग बनाना—हिमालय के अपेक्षाकृत नर्म पत्थरों की अपेक्षा—अधिक कठिन और खर्चीला होगा। यह सुरंग कितनी लम्बी होगी, यह स्पष्ट नहीं है, पर वह कई मील लम्बी होगी।

उस पार पहुँचने पर नहर का यह पानी नर्मदा नदी के कृत्रिम जलाशय (जिसका नाम बार्गी है) में छोड़ा जायगा। यहाँसे कुछ जल तो नर्मदा में डाला जायगा जो मध्य प्रदेश, राजस्थान और गुजरात के खेतों को सींचेगा, और शेष दक्षिण की ओर जायगा। यहाँसे पठार का ढलान दक्षिण की ओर है। अतएव वह अपने आप नहर में बहेगा।

रास्ते में इसे सोन, नर्मदा, ताप्ती, गोदावरी और पन्नार नामक मुख्य नदियाँ और अनेक छोटी नदियाँ पार करनी होंगी।

जब नहर कृष्णानदी के पास पहुँचेगी तब उसे फिर ३०० फुट ऊपर चढ़ाना होगा। यह भी बिजली से होगा। इसके बाद ढाल बराबर दक्षिण की ओर है और नहर का पानी कावेरी तक अपने बहाव से पहुँच जायगा। रास्ते में कृष्णा, गोदावरी, पन्नार आदि नदियों को यह नहर उनमें जलाशय बनाकर पार करेगी अथवा उस प्रकार के पुल बनाकर पार करेगी जैसा अंग्रेजों ने बड़ी गंगा नहर को कासगंज के पास की नदी पर पुल बनाकर उसमें नहर बहायी है। यह बात स्पष्ट नहीं है।

यह भी प्रस्ताव है कि कालान्तर में इस नहर को बढ़ाकर ताम्रपर्णी नदी तक पहुँचा दिया जायगा जिससे केरल को भी उसका लाभ मिले।

पटना से कावेरी की दूरी प्रायः ३००० हजार मील है। अतएव यह नहर भी इतनी ही लम्बी, और शायद संसार की सबसे लम्बी, नहर होगी। यह ७० मीटर चौड़ी और ३ से ७ मीटर गहरी होगी। इसमें केवल पाँच या छः महीने पानी चलेगा शेष समय सूखी रहेगी।

इस योजना को बनाने में (मजदूरों, कारीगरों आदि के अतिरिक्त) २००० इंजीनियर लगेंगे और वे उसे दस वर्ष में बना सकेंगे। ऐसा अनुमान है।

इसमें आज के अनुमान से २००० करोड़ (बीस अरब) रुपये लगेंगे। किन्तु जिसप्रकार मूल्यों की वृद्धि हो रही है (और यह योजना २००० ई० तक पूरी होगी) उसे देखते हुए यह कहना कठिन है कि वास्तविक व्यय क्या आवेगा, क्योंकि भाखरा नंगल, रिहन्द बाँध आदि में वास्तविक व्यय अनुमामित व्यय से कहीं अधिक हुआ था।

यह निश्चितरूप से नहीं कहा जा सकता कि गंगा से इतना पानी दक्षिण को दे देने के बाद गंगा में स्थानीय आवश्यकताओं के लिए कितना जल बच रहेगा। यह सही है कि गंगा और यमुना हिमालय से निकलती हैं। किन्तु उनसे इतनी नहरें निकाली गयी हैं कि राजघाट नरौरा से प्रयाग तक गंगा जाड़ों और गर्मियों में बहुत क्षीणकाय रह जाती है। जमुना का तो यह हाल है कि दिल्ली और इटावे के बीच (जहाँ चंबल उससे मिलती है) वह इतनी क्षीण हो जाती है कि जगह-जगह पाँज हो जाती है—अर्थात् लोग उसे पैदल चलकर पार कर सकते हैं। जब विन्ध्य की नदियाँ चम्बल, पदुज, क्वारी, केन, बेतवा, धसान आदि उसमें मिलती हैं तब उसका आकार बढ़ता है। इसीलिए प्रयाग में गंगा की अपेक्षा यमुना-पाट, गहराई और जल के परिमाण में बड़ा है—यद्यपि उपर्युक्त विन्ध्य की नदियाँ हिमहीन पर्वतों से निकलती हैं। यही नहीं, स्वयं उत्तर-प्रदेश में मिर्जापुर, बुन्देलखंड, आगरे का दुआब का क्षेत्र पानी की कमी के कारण सिंचाई के लिए तरसता है। बिहार में भी ऐसे क्षेत्र हैं।

दूसरी बात सोचने की यह है कि पटना के गंगा के बाँध का फरक्का बाँध पर क्या प्रभाव होगा। फरक्का बाँध क्यों बनाया गया? कलकत्ता हुगली नदी के किनारे है और वहाँ समुद्र से हुगली में होकर जहाज आते हैं। किन्तु नदी की धारा कम और उसका वेग मन्द होने के कारण उसके तल पर मिट्टी की तह (सिल्ट) जमती जाती है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिससे जहाजों के कलकत्ते पहुँचने में बड़ी कठिनाई होती है। यदि इसकी रोकथाम नहीं की गयी तो कुछ वर्षों बाद शायद कलकत्ते में सिवाय छोटे स्टीमरों के बड़े व्यापारिक जहाज आ ही न सकेंगे। फरक्का का बाँध इसीलिए बनाया गया था कि वहाँ गंगा का जल बड़ी राशि में एकत्र किया जाय और वह हुगली में छोड़ा जाय जो अपने परिमाण और वेग से नदी के तल पर जमनेवाली मिट्टी को बहा ले जाय और नदी को उथला न होने दे। गंगा-कावेरी नहर के बनने से इस फरक्का बाँध पर क्या प्रभाव पड़ेगा—यह स्पष्ट नहीं है। कलकत्ते का भविष्य इस पर निर्भर है।

इसके व्यय के बारे में हम बतला चुके हैं कि २००० करोड़ रुपये लगने का अनुमान है। यह तो हुआ मूलधन। किन्तु उसके रख-रखाव, देखभाल आदि के लिए अनुमान किया जाता है कि ७०० करोड़ (सात अरब) रुपये वार्षिक व्यय होंगे। तर्क के लिए हम इन आँकड़ों को मान लेते हैं।

अब देखना है कि अनुमानतः इससे कितनी सिंचाई हो सकेगी। विशेषज्ञों के अनुसार इस योजना से ३० लाख एकड़ भूमि की सिंचाई होगी।

अब यदि २० अरब पर सवा छः रुपये का ब्याज लगाया जाय तो वह लगभग १ अरब २० करोड़ रुपया होगा। इसमें अनुमानित वार्षिक व्यय (७०० करोड़ या सात अरब) मिला लिये जायें तो कुल वार्षिक व्यय ८ अरब बीस करोड़ रुपया होगा। और सिंचाई होगी ३० लाख एकड़ भूमि की। अर्थात् प्रत्येक एकड़ भूमि के सींचने में २७५० रु० खर्च होंगे। इसमें सिंचाई-कर वसूल करनेवालों आदि का व्यय सम्मिलित नहीं है। यदि उसे छोड़ भी दिया जाय और यदि किसान से यह लागत वसूल करनी हो तो क्या भारत का किसान एक एकड़ की सिंचाई के लिए इतना रुपया देने की स्थिति में आज है या सन् २००० ई० में उसके इस योग्य हो जाने की आशा है?

इस नहर में यातायात थोड़े ही भाग में हो सकेगा। जगह-जगह पम्पों से पानी चढ़ाया जायगा, सुरंगें होंगी, लॉक्स बनेंगे। अतएव सारे नहर में यातायात असम्भव है। विशेषज्ञों का कहना है कि जहाँ वह ढलान में बहेगी वहाँ उसका वेग इतना होगा कि उसमें बहाव पर तो नावें जा सकेंगी, पर उसका ऊपर आना यदि एकदम असम्भव नहीं तो अत्यन्त कठिन और अव्यावहारिक होगा।

रही दक्षिण उत्तर की एकता की बात—वह हमारी समझ में नहीं आती, यह इकतरफा प्रदान ही होगा—दक्षिण से उत्तर को कोई आदान इस नहर से नहीं होगा। मजे की बात यह है कि तमिल के लोग उत्तर की संस्कृत और हिन्दी को तो ठुकराते रहते हैं पर उत्तर की गंगाजी के पानी को पाने के लिए लालायित हैं। इसके बदले में यदि उत्तर को कुछ मिले तो वह आदान-प्रदान माना जा सकता है। बकौल ग़ालिब 'दिल के बहलाने को यह ख्याल अच्छा है।'

इस योजना पर विचार करने के लिए कुछ दिनों पूर्व दिल्ली में देश के प्रत्येक भाग के प्रमुख इंजीनियरों की एक विचारगोष्ठी हुई थी जिसमें अधिकांश भारतीय इंजीनियरों ने इस योजना की कड़ी आलोचना की थी। किन्तु मन्त्री श्री के० एल० राव ने राष्ट्रसंघ के इंजीनियरों का एक दल बुलाकर उसकी राय ली, और उसने यह मत दिया कि यह बन सकती है—'फीजिबल' है। गोरों के प्रमाणपत्रों का हमारे नेता अपने देश के विशेषज्ञों से आज भी अधिक आदर करते हैं। अतएव जब गोरों की मोहर लग गयी तब सन्देह की गुंजाइश करना मूर्खता है।

नैपोलियन कहा करता था कि 'असम्भव' शब्द, कोश से निकाल देना चाहिए। मनुष्य जो काम करना चाहता है और यदि उसमें दृढ़ संकल्प और शक्ति है तो कोई काम असम्भव नहीं। अतएव हम यह मानने को तैयार हैं कि यह योजना 'संभाव्य' है। किन्तु प्रश्न यह है कि क्या यह देश इतना रुपया खर्च कर सकता है? क्या उसके रख-रखाव का व्यय वहन कर सकता है? क्या उससे जो लाभ होगा वह उस व्यय के अनुरूप कर सकेगा? इसके अतिरिक्त यह भी ध्यान रखना है कि प्रकृति में एक संतुलन है। उस संतुलन को भंग करने से देश की जलवायु, वनस्पति, जल-जीव आदि पर क्या प्रभाव होगा? फिर, क्या उत्तरभारत की जल की आवश्यकताएँ इतनी पूरी हो गयी हैं कि हम दक्षिण को अतिरिक्त जल दे सकते हैं? देखने में यह योजना इतनी विशाल है कि हम गर्व से फूल सकते हैं। किन्तु यदि कभी कोई बिजली का पम्प खराब हो गया (जो इस देश में कोई असाधारण बात नहीं है) या और कोई आकस्मिक बाधा आ गयी तब यह अति खर्चीली योजना बहुत दिनों ठप रहेगी। और महँगे पम्पों को सुधारने का व्यय कितना होगा? ये पम्प भी एक निश्चित समय तक ही काम कर सकेंगे। उन्हें १०-१५ साल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाद बदलना होगा। उनके लिए फिर करोड़ों और अरबों रुपयों की आवश्यकता होगी। बरसाती पानी में बहुत काफी मिट्टी होती है। वह नहरों में जायेगी और उसे साफ करने का प्रबन्ध करना होगा। ख्याल बहुत अच्छा है।' पर हमें भय है कि यह कार्य शेखचिल्ली छाप का है। अब विज्ञान ने बहुत उन्नति कर ली है। समुद्र के पानी का खारापन दूर कर उसे सिंचाई के काम में लाया जा सकता है। आज वह काम महँगा है पर यदि हमारे विज्ञानवेत्ता और इंजीनियर इस ओर ध्यान दें तो कम खर्चीले उपाय निकाल सकते हैं। आखिर हमारे भारी खर्चीले वैज्ञानिक संस्थान किस मर्ज की दवा हैं? समुद्र का मीठा जल बनाना इस योजना से अवश्य कम खर्चीला होगा। सुना है कि इसराइल में यह काम होने भी लगा है। इस खर्चीली योजना में अरबों रुपयों का अपव्यय करने की जगह यदि सरकार उधर ध्यान दे तो दक्षिण में—जो समुद्रतट से घिरा है सिंचाई की समस्या अधिक आसानी और अपेक्षाकृत कम व्यय से हल हो सकती है। श्री के० एल० राव स्वयं एक विख्यात इंजीनियर हैं, उन्हें हम क्या सलाह दे सकते हैं, किन्तु कभी-कभी 'मुनीनां च मतिभ्रम' भी हो जाता है—विशेषकर यदि वह शक्ति सम्पन्न हो और उसे अपनी योग्यता और बुद्धि में अखण्ड विश्वास हो।

'अध्यक्ष महोदय' और 'सदर'—अंग्रेज सरकार का मुसलमानों, उनकी संस्कृति और भाषा के प्रति पूर्वाग्रह सर्वविदित था, और इसका कारण भी स्पष्ट था। उनकी संसारव्यापी राजनीति (ग्लोबल पोलिटिकल पॉलिसी) में स्वेज नहर और पश्चिमी एशिया के तेल भण्डारों का बड़ा महत्त्व था। दोनों ही मुसलमान—अरबों या ईरानियों के—क्षेत्र में थे। रूस उनके लिए बहुत दिनों हौआ बना रहा, और भारत और रूस के बीच में 'बफ़र' होने के कारण अफ़गानिस्तान को प्रसन्न रखना भी आवश्यक था। इसलिए उन्हें अपना ऊपरी स्वरूप ऐसा बनाना था जिससे वे मुसलमानों के हितैषी मालूम पड़ें। यह एक मुख्य कारण था जिससे वे भारत में मुसलमानों के 'संरक्षक' बनकर अफ़गानिस्तान और पश्चिम एशिया के मुसलमानों को अपने मुस्लिम प्रेम का प्रमाण देना आवश्यक समझते थे। दूसरा कारण यह था कि इस्लाम, ईसाई धर्म और यहूदी धर्मों में प्रायः वही निकट का सम्बन्ध है जो हिन्दू, बौद्ध और जैन धर्मों में है। पुरानी बाइबिल में उल्लिखित पैग़म्बरों को तीनों धर्मों के लोग समानरूप से मानते हैं। मुसलमानों और ईसाई अंग्रेजों के आचार-विचार भी अपेक्षाकृत निकट हैं। अतएव वे मुसलमानों को हिन्दुओं की अपेक्षा अधिक निकट समझते थे। तीसरा कारण विशुद्ध प्रशासकीय सुविधा और कूटनीति थी। वह थी Divide and rule (दोनों को लड़ाकर राज करो)। इसीलिए अधिकांश अंग्रेज अफ़सर उर्दू या हिन्दुस्तानी पढ़ते थे। अंग्रेज सिविलियनों को भारतीय भाषाओं में 'प्रोफीशिएन्सी परीक्षा' देनी होती थी जिसके लिए उन्हें ठोस प्रोत्साहन दिया जाता था। शिरेफ, ग्रियर्सन, ग्रिफिथ, ग्राउस आदि कुछ अपवादों को छोड़कर अधिकांश अंग्रेज शासक वर्ग उर्दू ही पढ़ते थे। अतएव हम उनके दृष्टिकोण और उनकी सांस्कृतिक और राजनीतिक विवशता को (उनसे असहमत होते हुए भी) समझते थे और इसके लिए उन्हें अधिक दोष नहीं देते थे।

किन्तु स्वतन्त्र भारत में मुसलमानों के तुष्टीकरण की नीति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। इसका हमें आश्चर्य अवश्य है। इसके कई कारण हैं। हमारे एक मित्र कहा करते हैं कि विन्ध्य के दक्षिण में रहनेवाले, ब्रह्मपुत्र की पूर्वी घाटी में रहनेवाले और उत्तरभारत के पर्वतीय लोग हिन्दू-मुस्लिम समस्या समझ ही नहीं सकते क्योंकि मुस्लिम शासन का सारा झोंका लगातार प्रायः एक हजार वर्ष तक सिंध-गंगा की घाटी और मैदान के लोगों को झेलना पड़ा। दक्षिण में सैकड़ों प्राचीन मन्दिर आज भी विद्यमान हैं जब कि उत्तर में खजुराहो आदि—दो-चार मन्दिरों को छोड़कर—प्राचीन हिन्दू चिह्न नष्ट कर दिये गये। ये इसलिए बच गये कि एक तो उन दिनों इनकी प्रसिद्धि न थी, दूसरे ये दुर्गम स्थानों में थे। वहाँ विश्वेश्वर का मन्दिर, कृष्ण और राम के जन्मस्थान ध्वस्त कर मसजिद नहीं बनाये गये और न दिल्ली के विष्णु मन्दिर (जिसका गरुड़ध्वज, लौह-स्तम्भ—आइरन पिलर—कहलाती है) की तरह दक्षिण के मन्दिर ध्वस्त ही किये गये। प्रायः एक हजार वर्षों के मुस्लिम शासन ने हिन्दुओं में कटु स्मृतियाँ और मुसलमानों में सामन्तों और शासकों के परिवारों में हुकूमत करने की अमिट यादें छोड़ीं जो हिन्दू-मुस्लिम समस्या की जड़ हैं। महात्मा गांधी गुजराती (सौराष्ट्री) थे जहाँ यह समस्या इस रूप में नहीं थी। फिर वे दक्षिण अफ़्रीका गये जहाँ समस्या भारतीयों और श्वेतांगों की थी। वैसे भी प्रत्येक देश-हितैषी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और समझदार व्यक्ति पुराने इतिहास की कटु बातों से उत्पन्न समस्याओं को सुलझाना और हिन्दू-मुसलमान में भारतीयता की भावना उत्पन्न करना श्रेयस्कर समझता है। महात्माजी ने अपनी दूरदर्शिता से इस तथ्य को समझ लिया और वे प्राणपण से उसका प्रयत्न आजीवन करते रहे। किन्तु उन्होंने आरम्भ ही में मुसलमानों के खिलाफत आन्दोलन को (जो दकियानूसी और साम्प्रदायिक था और जिसका विरोध स्वयं तुर्की के मुसलमान कर रहे थे) समर्थन देकर मुसलमानों की जा-बेजा माँगों के समर्थन का श्रीगणेश किया और उनकी साम्प्रदायिक भावना को बढ़ाया। आगे की बातें इतिहास हैं, और वे इतनी ताज़ी हैं कि उनकी तटस्थ समीक्षा करने का समय अभी नहीं आया। मुस्लिम तुष्टीकरण की नीति को स्वतन्त्रता प्राप्त करने के बाद कांग्रेस ने बनाये रखा जिसका मुख्य श्रेय पं० नेहरू को है। संस्कारों से वे हिन्दू नहीं थे। उनके संस्कार ऐंग्लो-मुस्लिम थे। आन्दोलन के समय वे धोती-कुर्ता और 'जवाहर' जैकट पहनते थे, किन्तु शासन की बागडोर लेने के बाद वे देश में चूड़ीदार पाजामा और शेरवानी (जिन्हें सामान्य हिन्दू मुसलमानी पोशाक समझता है) पहनने लगे और विदेश यात्रा में सूट और टाई। यद्यपि हम अनेक कश्मीरियों को जानते हैं जो हमारी तरह ही हिन्दू विचारों के हैं, तथापि सामान्य कश्मीरी 'पंडत' मुस्लिम संस्कृति से बेतरह प्रभावित है। कश्मीर के 'पंडतों' की लड़कियों का स्थानीय मुसलमानों से विवाह कर लेना कोई असाधारण बात नहीं है। हम उत्तरप्रदेश की दो कश्मीरी 'पंडतों' की लड़कियों को जानते हैं जिन्होंने स्वेच्छा से मुसलमानों से विवाह किया। एक के घरवालों ने तो उसका समर्थन भी किया। अतएव श्री नेहरू में मुसलमानों के प्रति जो अनुराग था वह गांधीजी की हिन्दू-मुस्लिम एकता ही के कारण न था, वह उनके संस्कारों के कारण भी था। वे मुसलमानों के प्रति कितने उदार और सहिष्णु थे इसका कुछ पता जोश मलीहाबादी की आत्मजीवनी 'यादों की बारात' से लग सकता है। अतएव उनके राज्यकाल में भी मुसलमानों को वरीयता मिलती रही। अभी भी उस नीति में परिवर्तन नहीं हुआ, बल्कि कांग्रेस को मुसलमानों की 'एकजुट' वोट पाने की लालसा ने उसे और भी बढ़ा दिया है। इसीलिए इस समय बड़ी तत्परता से अपने को उर्दू का हिमायती और संरक्षक प्रमाणित करने के लिए हमारी सरकार करोड़ों रुपये व्यय कर रही है क्योंकि 'उर्दू' को मुसलमान अपनी 'मादरी ज़बान' घोषित करते हैं—चाहे नव्वन मियाँ अवध के अपने गाँवों में जायसी की तरह विशुद्ध अवधी बोलते हों और बुन्देलखण्ड में कल्लन चाचा टकसाली बुन्देलखण्डी हीं बोलते हों।

इस समय (जब उत्तरप्रदेश में जहाँ 'एकजुट' मुसलमान वोटों का बड़ा महत्त्व है) कांग्रेसी अपने उर्दू प्रेम का समय-असमय प्रदर्शन करते रहते हैं। यह छूत केवल उत्तरप्रदेश के कांग्रेसियों ही को नहीं लगी। अभी हाल में लोकसभा में आसामनिवासी पेट्रोलियम मन्त्री श्री देवकान्त बरुआ ने एक प्रश्न का उत्तर देते हुए सदन के अध्यक्ष को 'जनाबे सदर' कहकर संबोधित किया। लोकसभा की मान्य भाषाएँ हिन्दी और अंग्रेजी हैं किन्तु जिसप्रकार निम्न सदन को सभी लोग 'लोकसभा' कहते हैं, उसीप्रकार सभी लोग लोकसभा के अध्यक्ष को 'अध्यक्ष महोदय' कहकर सम्बोधित करते हैं। सदन के अध्यक्ष श्री ढिल्लों ने तुरन्त श्री बरुआ को टोंका। श्री बरुआ ने कहा कि 'सदर' 'अध्यक्ष' का उर्दू संस्करण है। किन्तु श्री ढिल्लों ने कहा—मैं 'अध्यक्ष महोदय' सम्बोधन ही पसन्द करूँगा। श्री बरुआ को "राहरास्त" पर (श्री बरुआ बड़े उर्दूदाँ हैं, वे इसका अर्थ समझ जायेंगे) लाने के लिए हम अध्यक्ष महोदय के हृदय से कृतज्ञ हैं। आशा है कि मुस्लिम कृपाकांक्षी अन्य कांग्रेसी सदस्य श्री बरुआ का अनुसरण न करेंगे।

आचार्य द्विवेदी मार्ग—आचार्य द्विवेदी रायबरेली के दौलतपुर ग्राम के निवासी थे। उन्होंने अपने कुमारसंभव के अनुवाद के अन्त में लिखा भी है :

रायबरेली के अन्तरगत सुरसरि तट दौलतपुर ग्राम।
जहाँ कभी रहते थे पंडित रामसहाय द्विवेदी नाम।
उनके एकमात्र सुत मैंने यह कुमारसंभव का सार।
अबके कवियों को प्रणाम कर किया किसी विधि, किसी प्रकार।

दौलतपुर से निकटतम पक्की सड़क १९ किलोमीटर दूर है। शेष १९ किलोमीटर कच्ची सड़क थी जिसके कारण दौलतपुर पहुँचने में बहुत कष्ट होता था। इधर जब से श्रीमती गांधी वहाँसे संसद के लिए चुनी गयी हैं, तब से रायबरेली की बहुमुखी उन्नति बड़ी तेजी से हो रही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वहाँ इधर सैकड़ों मील पक्की सड़कें बनायी गयी हैं और कितनी ही कच्ची सड़कें पक्की की गयी हैं। इस प्रकार गेहूँ के साथ पालक को भी पानी मिल गया, और दौलतपुरवाला कच्चा मार्ग पक्का कर दिया गया। यह पता नहीं कि वह केवल पक्का किया गया है या उस पर डामर भी डाला गया है। इस १९ किलोमीटर सड़क का नाम 'आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी मार्ग' रखा गया है। देहात की सड़कों का इसप्रकार नाम रखना एक अनोखी बात है। सामान्यरूप से सड़कें जिस ग्राम को जाती हैं उसीके नाम से प्रसिद्ध हो जाती हैं। शहरों की तरह उस पर मकान आदि तो बनेंगे नहीं, और वह सामान्यतः दौलतपुर सड़क कही जायगी, चाहे सरकारी कागजों में उसका नया नाम चलता रहे। गत मास श्रीमती प्रधान मन्त्री ने उसका उद्घाटन किया। सम्वाददाताओं ने किसी कारण से वहाँके कार्यकलापों का बहिष्कार कर दिया था, इसलिए उस उत्सव का समाचार हमें नहीं मिल सका। किन्तु इस अवसर पर—यदि इस उत्सव को साहित्यिक महत्त्व देना था—तो कम से कम प्रान्त से प्रमुख साहित्यकारों को निमंत्रित करना था और उन्हें दौलतपुर में द्विवेदीजी के मकान के दर्शन कराने थे। जहाँ तक हमें सूचना मिली है, ऐसा कुछ नहीं किया गया और उस अवसर पर केवल अधिकारी और कांग्रेसी कार्यकर्ता ही बुलाये गये थे। संभव है कि उनमें दो-चार स्थानीय कांग्रेसी लेखक भी हों। जो भी हो, हमें इस बात से प्रसन्नता है कि रायबरेली के कल्पनाशील कांग्रेसी कार्यकर्ताओं ने इस मार्ग का नाम द्विवेदीजी के साथ जोड़कर उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित की है। किंतु उनके अनुरूप वहाँ कोई स्मारक बनाने के आयोजन की बात नहीं सुनी गयी। हमने यह भी सुना है कि रायबरेली जिले के जायस कस्बे में जहाँ पद्मावत के लेखक जायसी रहते थे, एक विशाल स्मारक बनाने की योजना है। आशा है जो काम दौलतपुर में द्विवेदीजी के लिए नहीं हुआ वह जायस में किया जायगा और वहाँ उनके अनुरूप एक भव्य स्मारक बनाया जायगा। हम रायबरेली के कार्यकर्ताओं को इन दोनों विचारों के लिए हार्दिक बधाई देते है। किंतु रायबरेली के बाहर भी अनेक प्रसिद्ध साहित्यकार हुए हैं। उदाहरण के लिए इटावे में देव, कानपुर जिले में भूषण, पूर्णजी आदि, प्रयाग में पं० देवकीनंदन त्रिपाठी, पं० बालकृष्ण भट्ट, महामना मालवीय जी आदि। राजर्षि द्वारा स्थापित उत्तरप्रदेश हिंदी-साहित्य-सम्मेलन ने इंडियन प्रेस के सामने आचार्य द्विवेदी की आवक्ष कांस्य प्रतिमा, दारागंज के लोगों ने दारागंज में (जहाँ वे जीवन के अंत में १२-१५ वर्ष रहे और जहाँ उनका देहावसान हुआ) निरालाजी की प्रतिमा ही नहीं लगायी प्रत्युत दारागंज की मुख्य सड़क का नाम भी 'निराला मार्ग' रख दिया है। राजर्षि की खड़ी हुई प्रतिमा हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सामने लगायी गयी है इसका श्रेय सम्मेलन को है। किंतु खेद है कि मालवीय जी, बालकृष्ण भट्ट, श्रीधर पाठक आदि का वहाँ कोई स्मारक नहीं बनाया गया। केवल 'ऊधो की टोपी माधो के सिर रखने' की नीति के अनुसार वहाँ हिंदी के परम उपकारी मैकडानैल हिन्दू होस्टल में से मैकडानैल का नाम हटाकर 'मालवीय हिन्दू होस्टल' कर दिया गया है। इनके लिए नागरिकों और सरकार को कोई श्रेय नहीं है। काशी में भारतेन्दु, राजा शिवप्रसाद, प्रसाद, रामचंद्र शुक्ल, लाला भगवानदीन, रत्नाकर, हरिऔध आदि के कोई स्मारक नहीं बनाये गये। हम किसी पुरानी संस्था के किसी पुराने महानुभाव का नाम हटाकर 'बिना हर्रे फिटकरी लगाये' किसी साहित्यकार का नाम जोड़ने को सार्थक नहीं समझते। वह तो उनके साथ मखौल है। प्रेमचंद स्मारक की एक योजना अवश्य बनी थी, पर उसका क्या हुआ, यह हिंदी संसार को नहीं मालूम और न यही मालूम है कि उसके लिए एकत्र धन निधि का क्या हुआ। ये पुराने युग-प्रवर्तक साहित्यकार वास्तविकरूप में हिन्दी के निर्माता थे और यदि हममें तनिक भी कर्तव्य बुद्धि और कृतज्ञता है तो हमें उनके अनुरूप उनके स्मारक बनाने चाहिए, जिससे भावी पीढ़ियों को प्रेरणा मिले।

रायबरेली में आचार्य द्विवेदी मार्ग बनाकर वहाँके लोगों ने जिस प्रशंसनीय परम्परा का आरंभ किया है उसके लिए हम उन्हें बधाई देते हैं।

हिन्दी में नहीं—आर्म्ड फोर्सेज़ मेडिकल कॉलिज, पूना का आवेदन-पत्र हमारे एक परिचित सज्जन ने मँगाया। वह आ गया, और अंग्रेज़ी तथा हिन्दी दोनों में छपा था। शायद इसलिए कि हिन्दी देश की राजभाषा और अंग्रेजी सहराजभाषा है। इसे दोनों भाषाओं में छपा देखकर प्रसन्नता हुई किन्तु यह प्रसन्नता क्षणिक थी क्योंकि उसके दूसरे पृष्ठ पर यह छपा हुआ था कि '**उत्तर अंग्रेजी में लिखना अनिवार्य**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है।' यदि उत्तर अंग्रेजी में लिखना अनिवार्य है तो उसे हिन्दी में भी छापकर हिन्दी का मखौल करने की क्या आवश्यकता थी? हमारी सरकार राजभाषा हिन्दी का कितना आदर करती है तथा उसके उपयोग को कितना प्रोत्साहन देती है, यह उसका एक ज्वलन्त उदाहरण है। सरकार हिन्दी के साथ ऐसा मज़ाक कब तक करती रहेगी? बात यह है कि अंग्रेजीपरस्त अधिकारी सरकार में इतने शक्तिशाली हैं कि संविधान की अवहेलना करना उनके लिए सामान्य बात है क्योंकि हमारे नेताओं ही में हिन्दी के प्रति उदासीनता है। हमारे नेता और संसद के सदस्य केवल धर्मनिरपेक्ष ही नहीं भाषा-निरपेक्ष भी हैं, इसलिए राजभाषा हिन्दी की यह अवहेलना इस देश में अधिकारी वर्ग खुलकर कर सकता है। यदि हिन्दीवालों में तेजस्विता होती, वे अल्पलीन न होते, और पद तथा धन कमाने की आपाधापी में मग्न न रहते, यदि उनमें हिन्दी की चेतना होती तो इसप्रकार हिन्दी की दुर्दशा और अवहेलना न होती। हाथी के दाँत दिखाने के और, और खाने के और होते हैं। हिन्दी सरकार के दिखाने के दाँत हैं किन्तु वह खाती अंग्रेजी के ही दाँतों से है। आज संसद में उर्दू के पक्षपाती नित्य हाय-तोबा मचाते रहते हैं पर वास्तव में वे अंग्रेजी के भक्त हैं। अब तो संसद और कांग्रेस में भी अधिकांश भाषण अंग्रेजी में ही होते हैं। और तो और हिन्दी क्षेत्रों के प्रतिनिधि भी इससे वोट लेने के लिए हमें प्रचार के समय हिन्दी में भाषण सुनाते हैं पर संसद में पहुँचकर वे हिन्दी भूल जाते हैं। यदि हिन्दीवालों और संसद के हिन्दी-भाषी सदस्यों में हिन्दी का आग्रह होता तो हिन्दी की यह दुर्दशा न होती।

रेल की आराम से यात्रा—उत्तर भारत में तीसरे दर्जे में यात्रा करनेवालों को जो असुविधाएँ हैं, उन्हें सभी भुक्तभोगी जानते हैं। भीड़ के कारण कभी-कभी तो खड़े होने की जगह भी नहीं मिलती। उनकी गन्दगी कुख्यात है। एक बार हमें फर्स्टक्लास में भी कई तेलचट्टों (काक-रोचों) ने बड़ा परेशान किया। तीसरे दर्जे में कई लाइनों में रात में बत्ती नहीं जलती। फर्स्टक्लास में भी हमें बिजली की कमजोरी के कारण कई बार गर्मी में बिना पंखे या अत्यन्त मन्द बत्ती में यात्राएँ करनी पड़ी हैं। शायद उत्तर के यात्रियों को इसप्रकार की आरम्भिक सुविधाएँ देने की आवश्यकता रेलवे अधिकारी नहीं समझते। गार्ड या कण्डक्टर से शिकायत करने पर यह आश्वासन मिलता है कि अगले बड़े स्टेशन पर बत्ती और पंखे ठीक कर दिये जायेंगे। पर वह कोरा आश्वासन होता है। हम भाग्यवादी हैं और रेल के अधिकारी हमारे 'सर्वेण्ट' नहीं, हमारे 'हाकिम' हैं। हम चाहे मन में जितने कुढ़ते रहें, पर परिणाम कुछ नहीं निकलता। यदि कभी 'कम्पलेण्ट बुक' में कुछ लिख भी दिया जाय तो बड़ी कृपा होने पर हमारी असुविधा के लिए एक छपा हुआ खेद-पत्र आ जाता है। हम इस गौरव से कृतार्थ हो जाते हैं।

किन्तु रेलवाले जब जिन्हें चाहते हैं उन्हें अनेक सुविधाएँ देने में हिचकिचाहट नहीं करते। अभी हाल में रेलवे ने दिल्ली और अर्नाकुलम के बीच एक एक्सप्रेस चलायी है। वह दक्षिण के लोगों के लिए है और दक्षिणवाले उत्तर के निम्नस्तर के सहनशील लोग नहीं हैं; इस एक्सप्रेस गाड़ी की कुछ विशेषताएँ हमारे उत्तर के हिन्दीभाषियों को जानकर कम से कम यह प्रसन्नता तो होगी कि देश के कुछ लोगों की यात्रा की ओर हमारी सरकार कितना ध्यान रखती है। उसकी कुछ विशेषताएँ ये हैं :—

(१) यह गाड़ी नई दिल्ली से चलती है और इसका एक भाग मैसूर में कहीं बीच से मंगलोर (३०२० किलोमीटर) और मुख्य भाग अर्नाकुलम (कोचीन) (जो २८२० किलोमीटर) जाता है।

(२) इस गाड़ी में एक उत्तरदायी अधिकारी—अधीक्षक—रहता है जो यात्रियों की सुख-सुविधा का ध्यान रखता है।

(३) इस गाड़ी के डब्बे विशेष सुन्दर रंगों से रँगे गये हैं। कुछ भाग लाल रंग का है, और कुछ भाग हलके बादामी रंग का। इसकी साज-सज्जा विशेष प्रकार की है। बजाय लोहे या लकड़ी के, भीतरी भाग में आधुनिक 'लेमिनेट' (चमकता हुआ चिकना प्लाईउड) का अस्तर लगाया गया है जिससे सारा डब्बा सुन्दर लगता और चमचमाता रहता है।

(४) इसमें ४८७ सोने की शायिकायें हैं और ३२० बैठने की जगहें हैं। इन सबका आरक्षण होगा जिससे भीड़ के कारण यात्रियों को कष्ट न हो। (उत्तर की कितनी गाड़ियों में तीसरे दर्जे की इनकी आधी-चौथाई भी शायिकाएँ होती हैं?)

(५) इसमें विस्तर ले जाने की आवश्यकता न होगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रेल की ओर से सवा रुपया देने पर यात्री को एक रात के लिए एक दरी, दो चद्दरें और एक डनलप रबड़ का तकिया मिलेगा। यदि वह इन्हें पूरी यात्रा (अर्थात् दो रातों के लिए लेना चाहें) तो केवल दो रुपये देने होंगे।

(६) इसमें एक खाने का डब्बा भी लगेगा जिसमें यात्रियों की रुचि का भोजन, चाय, काफी आदि मिल सकेगी।

(७) इसमें एक रेडियो और यात्रियों को रेडियो से सूचना देने के उपकरण लगाये गये हैं। इससे उन्हें समय-समय पर आवश्यक सूचनाएँ देने के अतिरिक्त संगीत और रेडियो के समाचार भी सुनने को मिलते हैं।

(८) यह गाड़ी तेज चलती है। रात में नई दिल्ली से सवा ग्यारह बजे छूटकर तीसरे दिन सबेरे साढ़े छः बजे बंगलौर और उस दिन दस बजकर दस मिनिट पर सबेरे अर्नाकुलम पहुँचेगी।

(९) यह गाड़ी ऐसी है कि उसमें डिब्बों के बीच में रास्ता है और यात्री इच्छानुसार गाड़ी के एक सिरे से दूसरे सिरे तक जा सकते हैं।

(१०) इसमें एक पुस्तकालय और किताबों की दूकान भी है। जो यात्री चाहें पुस्तकें खरीद सकते हैं और जो माँगकर पढ़ना चाहें वे नाममात्र का किराया और जमानत का रुपया जमा करने पर मँगनी लेकर पुस्तकें पढ़ सकते हैं।

(११) इस गाड़ी में गर्मी के दिनों में ठंडा पानी मिलने के लिए 'कूलर' (पानी को ठंडा रखने की टंकियाँ) लगी हैं।

(१२) इसमें अच्छी रोशनी और पंखों का पूरा प्रबन्ध है।

(१३) इस एक्सप्रेस का नाम जयन्ती एक्सप्रेस है। यह जनता एक्सप्रेस है अर्थात् इसमें केवल तीसरा दर्जा है। यह गत २६ जनवरी से चलने लगी है।

इस गाड़ी का हाल पढ़कर हमारे मुँह से यही निकला—हाय! हम दक्षिण भारत के न हुए!

तब और अब—आजकल बड़े इंजिनियर और योजना आयोग बड़े-बड़े बाँध, भवन, कारखाने आदि बनाने की योजनाएँ बनाते हैं। हमें मालूम है कि इनके बनाने के लिए जो अनुमान बनाये जाते हैं वे सुरसा की तरह बढ़ते जाते हैं और अंत तक दुगने-तिगुने हो जाते हैं। या तो योजनाओं को स्वीकृत कराने के लिए जान-बूझकर उनका वास्तविक अनुमान कम किया जाता है, या इसके कुछ दूसरे कारण भी हो सकते हैं। सरकार निरुपाय हो जाती है। जब आधा काम हो गया और स्वीकृत रुपया समाप्त हो गया तो वह अपनी 'नाक' बचाने और हास्यास्पद न बनने के लिए उसे अधूरा नहीं छोड़ सकती। एक बात और है। जब अनुमान बनाये जाते हैं तब उसकी स्वीकृति होने और उसे आरंभ करने में कभी-कभी वर्षों का अंतर लालफीताशाही की कृपा से हो जाता है। इस देश में सरकार का एकमात्र देवता लालफीताशाही है। वह उससे निवट नहीं सकती। सामान के भाव इस देश की विचित्र व्यवस्था के कारण दिनों-दिन बढ़ते जाते हैं। आज जो वस्तु एक रुपये की आती है वह साल भर बाद यदि डेढ़-दो रुपये की हो जाय तो आश्चर्य नहीं। इंजीनियर बेचारे भी क्या करें? उन्हें बाजार भाव से सामान खरीदना पड़ता है। फिर, बढ़ती हुई महँगी के कारण मजदूरी भी दिनों-दिन बढ़ती जाती है। सब मिलाकर, यदि इंजीनियर और ठेकेदार ईमानदार भी हुए (और यह 'यदि' बहुत महत्त्वपूर्ण है) तो भी वे योजना की लागत बढ़ने से रोक नहीं सकते। किंतु सदैव ऐसा नहीं था। तब अर्थ-व्यवस्था में स्थायित्व था। सामान की न तो कमी थी, न चोरबाजारी थी और इंजीनियर आदि भी अपेक्षाकृत अधिक ईमानदार थे। अभी कुछ दिनों पूर्व केन्द्रीय मंत्री श्री सुब्रह्मण्यम् अंग्रेजों के समय का बना पुन्नियार नदी का एक बाँध देखने गये थे। वहाँ बाँध के एक सिरे पर एक पत्थर लगा था। उस पर ये शब्द लिखे थे—

"काम जनवरी १८६१ में आरंभ हुआ। जून १८६५ में समाप्त हुआ। अनुमानित व्यय ६१,००० रु० वास्तविक व्यय ३३,००० रुपये।" अब और तब में यही भेद है। न तो कोई योजना आज समय से पूरी होती है और न अनुमानित व्यय से कम में पूरी होती है।

यदि हम देश को समृद्धशाली बनाना चाहते हैं और अपनी योजनाओं को सफल करना चाहते हैं तो हमें अंग्रेजों का इस बात में अनुकरण करना होगा। हमने अंग्रेजों की ऊपरी बातों की तो बहुत नक़ल की है किन्तु इनके चरित्र और कार्यकुशलता की नक़ल नहीं की। यदि हम अंग्रेजों से उनकी ईमानदारी, समय से काम करने की प्रवृत्ति और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कार्यकुशलता सीख पाते तो इन २५ वर्षों में देश का स्वरूप कुछ दूसरा ही होता। किन्तु अंग्रेजों की तरह रहन-सहन, उनके ड्राइंगरूमों, स्लीपिंग सूटों, कार्यालयों को शानशौकत और गिट-पिट शुद्ध-अशुद्ध अंग्रेजी बोलने ही से हममें उनके गुण नहीं आ सकते। हमने बन्दरों की तरह उनकी बाह्य बातों की नक़ल तो की, किन्तु उनके चरित्र, कर्तव्यपरायणता और भावना को हम नहीं ग्रहण कर सके। जिस प्रकार प्राणहीन शरीर शव हो जाता है, उसी प्रकार अंग्रेजों की भावनाहीन नक़ल ने हमें इतना पिछड़ा बना दिया है। पुन्नियार बाँध का यह लेख इंजीनियरों और योजनाचार्यों के लिए एक चुनौती है।

कर्तव्यपरायणता का आदर्श नमूना—सार्वजनिक सेवा के अधिकारियों और कर्मचारियों से अपेक्षा की जाती है कि वे बिना किसी रू-रियायत के कानून भंग करनेवालों के विरुद्ध वह कार्रवाई करेंगे जो उनके अधिकार में है। किन्तु इस देश में जहाँ प्रान्तवाद, जातीयतावाद, मित्रतावाद, भाई-भतीजावाद आदि 'वादों' की बारी से सार्वजनिक सेवाएँ थल-थल हो गयी हैं, वहाँ हम नित्य अपराधियों को बेदाग छूटते देखते हैं। हम यहाँ जानबूझकर सर्वविदित भ्रष्टाचार की चर्चा नहीं करते, अतएव जब कभी किसी कर्तव्य परायणता का उदाहरण हमारे सामने आ जाता है तो वह ऐसा अपवाद होता है कि उस पर ध्यान जाता है और कहना पड़ता है कि अभी देश एकदम 'वीरविहीन' नहीं हो गया। ऐसा एक बड़ा मनोरंजक और आश्चर्यजनक समाचार हमने पत्रों में पढ़ा और अपने पाठकों के मनोविनोदार्थ हम उसे यहाँ दे रहे हैं।

महाराष्ट्र में कोलाबा जिले में पोलादपुर नामक एक गाँव है। इसके पास सरस्वती नाम की एक छोटी नदी बहती है जिसमें शायद पानी कम है और इसलिए उसमें कपड़े धोना तथा बर्तन माँजना मना है क्योंकि कम पानी और मन्द धारा होने के कारण उसके पानी के गंदे होने का खतरा है।

एक दिन वहाँ का एक पुलिस का सिपाही जब अपनी सामान्य गश्त में नदी किनारे गया तो उसने दूर से देखा कि एक स्त्री नदी में अपने रसोई के बर्तन माँज रही है। यह नियम विरुद्ध था और सिपाही तुरन्त उस स्त्री के पास उसे नियम भंग के अपराध में पकड़ने को लपका। किन्तु वहाँ पहुँचकर यह देखकर उसके आश्चर्य और दुख का ठिकाना न रहा कि वह नियम भंग करनेवाली अपराधिनी उसीकी पत्नी है। शायद उस स्त्री ने उत्तर भारत की यह कहावत सुन रखी थी कि 'सैंयाँ भये कुतवाल, अब डर काहे का ?' वह निश्चित भाव से नियम भंग कर रही थी।

कुछ क्षणों के लिए तो वह सिपाही शायद विचलित हुआ, किन्तु उसकी कर्तव्य बुद्धि ने उसकी कमजोरी पर विजय पा ली और अपनी पत्नी को पकड़कर थाने ले जाकर उसने उसका चालान कर दिया। शायद अदालत से इस नियम भंग के लिए उस पर छोटे-मोटे जुर्माने का दंड हो जाय, पर उसे गिरफ्तार होने, चालान किये जाने और अदालत में दौड़ने की परेशानी तथा असम्मान का सामना तो करना ही पड़ा। काश ! पुलिस तथा अन्य सार्वजनिक सेवाओं में ऐसे कर्तव्यपरायण व्यक्तियों की संख्या कुछ अधिक होती! यदि हमारा बस चलता तो हम उस सिपाही को उसकी कर्तव्यपरायणता के लिए जिसने कानून भंग करने के लिए अपनी स्त्री को भी नहीं बख्शा, अच्छा पुरस्कार देते। अपनी स्त्री को गिरफ्तार और चालान करने के लिए बड़े नैतिक साहस की आवश्यकता है। यदि वह चाहता तो अपनी स्त्री के अपराध को देखा-अनदेखा कर सकता था, किन्तु उसने कर्तव्य को व्यक्तिगत भावनाओं से दबने नहीं दिया। शाबास !

'लाल तिकोन' का सरकारी दुरुपयोग—हम संतति निरोध के एक सीमा तक पक्षपाती हैं, किन्तु सरकार उसे पटवारियों तथा अन्य कर्मचारियों के द्वारा जिसप्रकार चला रही है उसे हम सरकार की अदूरदर्शिता और 'जुल्म' समझते हैं। इस पर हम कभी फिर लिखेंगे। किन्तु सरकारी कर्मचारी इस मामले में कितना अविवेक और जबर्दस्ती करते या कर सकते हैं उसका एक ताजा उदाहरण उज्जैन के एक समाचार से मिला है। वहाँके शिक्षा विभाग के अधिकारियों ने एक 'यूजेक' (ज़ारशाही आदेश) निकाला है कि प्रत्येक अध्यापक कम से कम दो व्यक्तियों को नसबन्दी कराने के लिए लावे। हमने तो इससे भी अधिक आश्चर्यजनक बातें सुनी हैं। पर क्या सरकारी कर्मचारी होने से अध्यापक का यह कर्तव्य है कि वह अपना सारा काम छोड़कर 'नसबन्दी' के लिए लोगों को तलाश करता फिरे, उनकी अनुनय विनय करे या अन्य अनैतिक उपायों से अफसरों को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रसन्न करने तथा अपने भविष्य को सुरक्षित रखने के लिए 'नसबन्दी' का एजेण्ट बन जाय ? यदि इस समाचार में कुछ भी सत्य है तो मध्य प्रदेश की सरकार और उसके शिक्षा विभाग की जितनी निन्दा की जाय, वह कम है। अध्यापक कुशलतापूर्वक पढ़ाने के लिए नियुक्त किये जाते हैं, न कि सरकार की सनकों की पूर्ति के एजेण्ट बनने के लिए। यह आपत्तिजनक आज्ञा (यदि सचमुच निकाली गयी है) तुरन्त रद्द की जानी चाहिए और उसे निकालनेवाले अधिकारी की इस निंदनीय कार्य के लिए कड़ी भर्त्सना करनी चाहिए।

जश्ने-मुल्ला और हिन्दीवाले—हमारा व्यक्तिगत परिचय श्री आनन्दनारायण मुल्ला से नहीं है। वे उत्तरप्रदेश में उर्दू के प्रमुख हिमायतियों में हैं। उनका उर्दू प्रेम असीम है। कश्मीरियों की 'मादरी जबान' (बकौल कितने ही कश्मीरियों के) उर्दू है। उर्दू कश्मीर की राष्ट्र-भाषा है। यद्यपि बहुत-से कश्मीरी 'पंडत' कश्मीर से बाहर बस गये हैं तथापि उनका उर्दू से प्रेम स्वाभाविक है। उत्तर-प्रदेश में सदियों से हजारों कश्मीरी रहते हैं। सभी पढ़े-लिखे हैं। उनमें से उर्दू की खिदमत करनेवाले सैकड़ों हुए हैं किन्तु हिन्दी में लिखनेवाले उँगलियों पर ही गिने जा सकते हैं। पुराना कश्मीरी हिन्दी लेखक तो शायद ही कोई हो। श्री मुल्ला उर्दू के लेखक ही नहीं, उर्दू के मामले में उतने ही कट्टर—या उससे भी कुछ अधिक—हैं जितने डाक्टर फरीदी या दीनी तालीमवाले हैं। वे उर्दू के प्रमुख शायरों में गिने जाते हैं और उनकी शायरी में फारसी और अरबी का इतना गहरा पुट रहता है कि हमारे समान सामान्य उर्दू जाननेवाला उसे नहीं समझ सकता। वे लखनऊ में उर्दू की विभूति हैं, और यह उचित ही था कि उनके सम्मान में रवीन्द्रालय में एक 'जश्न' मनाया जाय। वह जश्न इतना महत्वपूर्ण था कि प्रधान मन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने भी उसे अपनी उपस्थिति से गौरवान्वित किया। जश्न जिस शान से होना चाहिए उसी शान से हुआ किन्तु प्रधान मन्त्री के आने के कारण रवीन्द्रालय का छोटा सा 'हाल' भी पूरा नहीं भर पाया। उनके हिन्दी सम्बन्धी विचार और इस प्रान्त में उर्दू का अति आग्रह हमारे विचारों से मेल नहीं खाता, किन्तु 'अदब' (साहित्य) के मामले में हम प्रत्येक अच्छे लेखक और कवि का (वह किसी भाषा में क्यों न लिखता हो) आदर करते हैं और यदि उनकी उर्दू राजनीति कुछ देर के लिए भुला दी जाय तो कवि के रूप में उनका सम्मान बहुत उचित था। उस अवसर पर उनकी एक काव्य पुस्तक का 'विमोचन' (हम उर्दू में इसका पर्याय नहीं जानते) भी हुआ। कवि के रूप में उनका जितना सम्मान किया जाय, उतना कम है।

वह एक अदबी जलसा था और यदि हिन्दी के साहित्यकारों को निमन्त्रण दिया जाता तो वे उसमें अवश्य सम्मिलित होते। हिन्दी के एक प्रसिद्ध लेखक श्री अमृतलाल नागर उस 'जश्न' के प्रमुख कार्यकर्त्ता थे। वे 'वसुधैव कुटुम्बकम्' नीतिवाले हैं और 'तस्लीम लखनवी' के नाम से देवनागरी लिपि में उर्दू में लिखते भी हैं, किन्तु वे मूलतः हिन्दी ही के लेखक हैं। वे उसमें शायद हिन्दी लेखकों के प्रतिनिधि के रूप में मौजूद थे। मुख्य मंत्री पं० कमलापति त्रिपाठी ने (जिनका हिन्दी-साहित्य में काफी ऊँचा स्थान है) उसे सुशोभित ही नहीं किया प्रत्युत बड़ी बलागत और फसाहत से सलीव उर्दू में भाषण देकर यह प्रमाणित कर दिया कि वे अवसर के उपयुक्त उर्दू में भी बड़ा अच्छा भाषण दे सकते हैं। किन्तु इस 'जश्न' में हिन्दी के अन्य स्थानीय साहित्यकार नहीं गये। श्री यशपाल ने श्री मुल्ला को एक पत्र में इसका कारण लिखा है। 'जश्न' के आयोजकों ने श्री यशपाल और श्री भगवतीचरण वर्मा के समान प्रमुख हिन्दी साहित्यकारों को भी निमन्त्रित नहीं किया। तब छुटभैये हिन्दीवालों की हैसियत ही क्या है जो वे बुलाये जाते। श्री यशपाल ने लिखा है कि यदि प्रधान मन्त्री के आने के कारण पुलिस सुरक्षा के कड़े प्रबन्ध से अनिमंत्रित लोगों को प्रवेश करने की कठिनाई न होती तो वे बिना बुलाये भी पहुँच जाते। स्वतन्त्र भारत के सम्पादक श्री अशोकजी ने लिखा है कि आरम्भ में उसकी एक सूचना में उनका नाम उनसे बिना पूछे दे दिया गया था। किन्तु जश्न का निमन्त्रण उन्हें भी नहीं मिला। कुछ वामपंथी (लेपिटस्ट) साहित्यिक-राजनीतिक समारोहों को छोड़कर उर्दू के अदबी जलसों में सामान्यतः हिन्दी के साहित्यकार नहीं बुलाये जाते और शायद हिन्दी साहित्यकार भी यही जवाबी कार्रवाई करते हैं। इसलिए हिन्दी और उर्दू साहित्यकारों का कभी मिलन नहीं होता और न उनमें विचारों का आदान-प्रदान होता है। लखनऊ में इसके एकमात्र अपवाद श्री नागर हैं जिनमें ऐसा स्पृहणीय गुण है कि वे हरदिल अज़ीज हैं और सब में घुलमिल जाते हैं। यद्यपि हिन्दी-उर्दू के झगड़े ने आजकल कुछ राजनीतिक रूप ले लिया है, तथापि यह वांछनीय है कि दोनों के साहित्यकार कभी-कभी मिला करें और एक-दूसरे से परिचित हों जिससे उन्हें एक-दूसरे के साहित्य की गति-विधियों की प्रामाणिक जानकारी हो और उनमें व्यक्तिगत सौमनस्य के सम्बन्ध उत्पन्न हों।

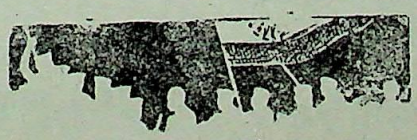

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीमद्भागवत में कालगणना

डा० दामोदर झा, आचार्यत्रय एम० ए०, पी० एच्० डी०

श्रीमद्भागवत एक भक्तिरसप्रधान महापुराण है। इसकी रचना किसी शास्त्र-विशेष का वर्णन करने के लिए नहीं हुई है तथापि आनुषंगिक रूप से विभिन्न शास्त्र-विज्ञानों की चर्चा भी इसमें हुई है। विशेषतः काल विज्ञान अथवा ज्योतिष के सम्बन्ध में इसमें प्रचुर सामग्री उपलब्ध होती है। वर्तमान में यहाँ केवल कालगणना के विषय में हम विचार करेंगे।

श्रीमद्भागवत की रचना व्यासजी ने की थी। इसके अतिरिक्त इसमें संवाद रूप में ब्रह्मा, नारद, गर्ग एवं पराशर आदि ऋषि-महर्षियों की चर्चा भी है। ये पुराण के माने हुए आचार्य हैं। ज्योतिषशास्त्र के भी १८ प्रवर्तक आचार्य माने जाते हैं (दे०, म०म० सुधाकर द्विवेदी, गणकतरंगिणी, पृ० १, वाराणसी १९३३ ई० संस्करण)। पुराण के उपर्युक्त सभी आचार्यों के नाम ज्योतिष के प्रवर्तकों में भी हैं। अतः उनके उस ज्ञान से पुराण पूर्णतः प्रभावित हैं। उदाहरणतः श्रीकृष्ण के जन्म के अवसर पर आये हुए श्री गर्गाचार्य को ज्योतिष का साक्षात्कार करनेवाला बतलाते हुए श्री नन्दजी ने कहा है—

ज्योतिषामयनं साक्षाद् यत्तज् ज्ञान मतीन्द्रियम्।
प्रणीतं भवतायेन पुमान् वेदपरावरम्॥

श्री०भा० १०, ८, ५

इसी प्रकार एक स्थल में (श्री० भा० ३, ११, १७) मैत्रेयजी को काल की गति का विज्ञाता कहा गया है। एक दूसरे स्थल (श्री०भा० १२, ७, ४) में अथर्ववेद के ज्ञाताओं में एक नक्षत्र-कल्प नामक आचार्य का उल्लेख है, जो संभवतः नक्षत्रों के विशेष ज्ञाता थे। इसी प्रकार परीक्षित ने भी कालगणना के सम्बन्ध में शुकदेवजी से विविध प्रश्न किये हैं (द्र०, श्री० भा० २, ८, १२-१७)। इन प्रश्नों के उत्तर श्रीमद्भागवत में यत्र-तत्र प्रसंगानुसार उपस्थित किये गये हैं। इस प्रसंग में श्रीमद्भागवत के विचार अत्यन्त वैज्ञानिक तथा महत्त्वपूर्ण हैं, जिन्हें इस लेख में यथाशक्ति प्रदर्शित करने का प्रयत्न किया जायगा।

परमाणुलक्षण

श्रीमद्भागवत में परमाणु का लक्षण प्रतिपादित करते हुए कहा गया है—

चरमः सद्विशेषाणामनेकोऽसंयुतः सदा।
परमाणुः स विज्ञेयो नृणामैक्यभ्रमो यतः॥

श्री०भा० ३,११,१

अर्थात्—पृथ्वी आदि भौतिक पिण्डों का जो सूक्ष्मतम अंश है जिसका और खण्ड नहीं हो सकता तथा जो कार्यरूप को प्राप्त नहीं हुआ है और जिसका अन्य परमाणुओं के साथ संयोग भी नहीं हुआ है, उसे परमाणु कहते हैं। इन्हीं अवयव-स्वरूप परमाणुओं के मिलने से समूहात्मक अवयवी की प्रतीति मनुष्यों को भ्रमवश होती है।

परम महान् का लक्षण

जिस प्रकार सूक्ष्मतम परमाणु का लक्षण किया गया है, उसी प्रकार परमाणुओं के परमार्धिक समूह को परम महान् कहा गया है, जिसे निम्नलिखित रूप में लक्षित किया गया है—

सत एव पदार्थस्य स्वरूपावस्थितस्य यत्।
कैवल्यं परममहान् अविशेषो निरन्तरः॥

श्री०भ० ३,११, २

अर्थात्—जिसका सूक्ष्मतम अंश परमाणु है तथा जो अपने सामान्य स्वरूप में स्थित पृथ्वी आदि भौतिक वस्तुओं का परमार्धिक समूह है, उसे परमहान् कहा जाता है। इसमें किसी प्रकार का विशेष नहीं होता। अर्थात् इसमें सामान्य स्वरूप का ही बोध होता है। इसकी कोई विशेष मात्रा या संख्या नहीं बतायी जा सकती।

कालपरिमाण

ऊपर परमाणु एवं परममहान् के लक्षण बतलाये गये हैं। ये किसी वस्तुसत् के विषय में हैं। ये परिभाषाएँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काल के सम्बन्ध में भी लागू होती हैं। अर्थात् काल के सूक्ष्मतम अंश को परमाणु काल तथा महत्तम अंश को परम महान् काल कहते हैं। वस्तुतः काल तो अव्यक्त एवं विभु है, जो व्यक्त पदार्थों का भोग (क्षय) करता रहता है। इस प्रकार उस भगवान् अनन्त एवं निरन्तर काल का सूक्ष्म एवं स्थूल रूप में विभाजन नहीं हो सकता, परंच सूक्ष्म एवं महत् स्थान के भोग से उपलक्षित काल को सूक्ष्म एवं महत् काल कह सकते हैं। अतः जो काल परमाणु रूप वस्तुसत् का भोग करता है, उसे परमाणु काल तथा जो वस्तुसत् के सामान्य रूप से सब अवयवों का भोग करता है, उसे परम महान् काल कहते हैं। चूँकि सृष्टि से लेकर प्रलय पर्यन्त ही वस्तु की सत्ता रहती है अतः उसके उपभोग करने वाले काल को ही परम महान् कहा जा सकता है (दे०, श्री० भा० ३, ११, १–४)।

सूक्ष्म कालमान्

श्रीमद्भागवत (३, ११) में सूक्ष्म कालमान एवं युगमान का विशद विवेचन उपलब्ध होता है। सूक्ष्म कालमान को निम्नलिखित रूप में समझा जा सकता है :—

दो परमाणु मिलकर एक अणु का निर्माण करते हैं तथा तीन परमाणु मिलकर एक त्रसरेणु बनाते हैं। त्रसरेणु तक का तो प्रत्यक्ष दर्शन किया जा सकता है। त्रसरेणु वह है, जो खिड़की से आती हुई सूर्य-किरण में चमकता हुआ पदार्थ दीख पड़ता है। यद्यपि त्रसरेणु किसी वस्तुसत् अर्थात् भौतिक पदार्थ का ही हो सकता है। अतः काल के अभिप्राय से त्रसरेणु-काल वह है, जिसमें सूर्य एक त्रसरेणु तुल्य प्रदेश की गति करता है। आगे त्रसरेणु से अधिक कालमान की जो व्यवस्था है वह निम्नलिखित रूप में है।

३ त्रसरेणु = १ त्रुटि (त्रुटिकाल वह है, जिसमें कमल के एक पत्र में सूई से भेदन किया जाय)।

३ त्रुटियाँ = १ वेध।	३ वेध = १ लव
३ लव = १ निमेष।	३ निमेष = १ क्षण
५ क्षण = १ काष्ठा।	१५ काष्ठाएँ = १ लघु
१५ लघुएँ = १ नाडिका।	२ नाडिकाएँ = १ मुहूर्त्त

६ अथवा ७ नाडिकाएँ = १ प्रहर।

यह कालमान श्रीमद्भागवत के तृतीय स्कन्ध (११।५-८) में वर्णित है। यहाँ सम्भवतः दिनमान अथवा रात्रिमान के ह्रास एवं वृद्धि की दृष्टि से ६ अथवा ७ नाडिकाओं का प्रहर माना गया है। सामान्यतः ७½ नाडिकाओं का एक प्रहर होता है। दिनमान के ह्रास वृद्धि की दृष्टि से तो भारतवर्ष में कभी-कभी ९ नाडिकाओं का प्रहर भी संभव है, परंच उसका उल्लेख यहाँ नहीं है। दिनमान या रात्रिमान २४ नाडिका होने पर ६ नाडिकाओं का प्रहर भी हो सकता है। ऐसी स्थिति भारत के उत्तरी क्षेत्र में ही आ सकती है। अतः यह प्रतीत होता है कि संभवतः श्रीमद्भागवत की रचना भारत के उत्तरी क्षेत्र में ही हुई थी। हम ऐसी मान्यता स्थिर करने में सर्वथा असमर्थ हैं कि इसके रचना काल में काल को मापने की कोई विधि अज्ञात रहने के कारण ही ६ अथवा ७ नाडिकाओं का प्रहर माना गया है, क्योंकि इसमें कालमापन की उत्तम विधि एवं यन्त्र का उल्लेख प्राप्त होता है।

जलघड़ी

श्रीमद्भागवत के निम्नलिखित श्लोक में जलघड़ी का रोचक वर्णन है।

द्वादशार्धपलोन्मानं चतुर्भिश्चतुरंगुलैः।
स्वर्णमाषैः कृतिच्छिद्रं यावत्प्रस्थजलप्लुतम्॥
(श्री० भा० ३, ११, ९)

अर्थात्—६ पल भार का एक ऐसा पात्र हो, जिसमें एक प्रस्थ (सेर) जल समा सके। ४ माषे सोने की एक ४ अंगुल लम्बी सलाई बनाकर उससे उस पात्र के निचले भाग में छेद करना चाहिए। इस प्रकार के खाली बर्तन को जल में रखने से जितने समय में वह बर्तन भर जाए, उतना समय एक नाडिका होता है।

ऐसी ही जलघड़ी का वर्णन ब्रह्मवैवर्त्त पुराण में भी प्राप्त होता है।

यथाश्रुतं शम्भुवक्त्रात् कालमानं निशामय।
पात्रं षट्पलसंभूतं गभीरं चतुरंगुलम्॥
स्वर्णमाषकृतच्छिद्रं दण्डैश्च चतुरंगुलैः।
यावज्जलप्लुतं पात्रं तत्कालं दण्डमेव च॥
(ब्रह्मवैवर्त पु०, प्र० ख० ५४,२६–२८)

इस वर्णन में सब कुछ तो श्रीमद्भागवत जैसा ही है परन्तु पात्र की गहराई चार अंगुल होने का उल्लेख विशेष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। इससे यह भी ज्ञात होता है कि ऐसी जलघड़ी का आविष्कार शम्भु अर्थात् महादेव जी ने किया था।

स्थूल कालमान

स्थूल कालमान के विषय में श्री मद्भागवत (श्री० भा० ३, ११, १०-११) में निम्नलिखित तालिका का वर्णन मिलता है।

४ याम अथवा प्रहर = मानवीय दिन व रात
१५ दिन = शुक्ल वा कृष्ण पक्ष। २ पक्ष = १ मास
१ मास = पितरों का अहोरात्र। २ मास = १ ऋतु
६ मास = दक्षिणायन अथवा उत्तरायण।
२ अयन = देवों का १ दिन-रात वा मानव का १ वर्ष
१०० वर्ष (मानवीय) = मानवीय परमायु।

युगमान

श्रीमद्भागवत के कई स्थलों (३, ११, १८ तथा १२, २, ३९ आदि) में कृत, त्रेता, द्वापर तथा कलि—इन चार युगों का नामोल्लेख है। तृतीय स्कन्ध (११, १८-२०) में कहा गया है कि चारों युग मिलकर दिव्यमान से १२ हजार वर्ष के होते हैं। चूँकि मानवीय एक वर्ष दिव्य एक अहोरात्र के समान होता है, अतः मानवीय ३६० वर्ष के समान दिव्य एक वर्ष होता है। इस प्रकार चतुर्युगी का मान मानवीय ४३,२०,००० वर्षों के तुल्य होता है। विशेष रूप में चारों युगों के मान इस प्रकार समझे जा सकते हैं—

कृत(सत्य)युग—४००० दिव्यवर्ष = १४,४०,००० मानववर्ष
त्रेतायुग—३००० ,, = १०,८०,००० ,,
द्वापरयुग—२००० ,, = ७,२०,००० ,,
कलियुग—१००० ,, = ३,६०,००० ,,
चतुर्युगी—१०,००० ,, = ३६,००,००० ,,

प्रत्येक युग के आदि में सन्ध्या तथा अन्त में सन्ध्यांश होते हैं। उनके मान निम्नलिखित रूप में हैं—

सत्ययुग—
सन्ध्या—४०० दिव्यवर्ष = १,४४,००० मानववर्ष
सन्ध्यांश—४०० ,, = १,४४,००० ,,
त्रेतायुग—
सन्ध्या—३०० ,, = १,०८,००० ,,
सन्ध्यांश—३०० ,, = १,०८,००० ,,
द्वापरयुग—
सन्ध्या—२०० दिव्यवर्ष = ७२,००० मानववर्ष
सन्ध्यांश—२०० ,, = ७२,००० ,,
कलियुग—
सन्ध्या—१०० ,, = ३६,००० ,,
सन्ध्यांश—१०० ,, = ३६,००० ,,
चतुर्युगी—
सन्ध्यायोग—१,००० ,, = ३,६०,००० ,,
सन्ध्यांशयोग—१,००० ,, = ३,६०,००० ,,
सर्वसन्ध्यासन्ध्यांशयोग—
२,००० ,, = ७,२०,००० ,,
सन्ध्यासन्ध्यांशसहित चतुर्युग—
१२,००० ,, = ४३,२०,००० ,,

युगमान का ठीक इसी प्रकार का वर्णन सूर्य सिद्धान्त (१,१०-२३) में भी प्राप्त होता है। चारों युगों के उपर्युक्त संयुक्त मान को महायुग कहा जाता है। कलियुग की सन्ध्या में कल्कि अवतार होने की भविष्यवाणी श्रीमद्भागवत (१,३,२५) में की गयी है।

कल्पमान

श्रीमद्भागवत (३,११,२२) के अनुसार त्रिलोकी के बाहर ब्रह्मलोक पर्यन्त १००० महायुगों का एक दिन होता है। दिन के समान ही रात्रि भी होती है। १००० महायुग को ही कल्प भी कहा जाता है। ब्रह्मा का एक कल्प का दिन एवं इतनी ही रात्रि होती है। रात्रि कल्प के अन्त में लोक कल्प का आरम्भ होता है, जो ब्रह्मा के दिन भर रहता है।

मन्वन्तरमान

उपर्युक्त स्थल के अनुसार ही ७१ महायुगों का एक मन्वन्तर होता है। ब्रह्मा के दिन भर में १४ मनु होते हैं। श्रीमद्भागवत में मन्वन्तर का मान ७१ महायुग से कुछ अधिक बतलाया गया है। इसका अभिप्राय यह है कि प्रत्येक मनु के प्रारम्भ में एवं एक १४वें मनु के अन्त में, कुल १५ सन्धियाँ होती हैं। प्रत्येक सन्धि का मान सत्ययुग के समान होता है। इस प्रकार १४ मन्वन्तरों में १५ सन्धियाँ जोड़ने से कुल १००० महायुग के तुल्य एक कल्प अथवा ब्रह्मदिन होता है। ब्रह्मदिन में १००० महायुग होने का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९७३

उल्लेख श्रीमद्भागवत (१२,४,२-३) में स्पष्ट रूप में मिलता है।

श्रीमद्भागवत (३,११,२४-२९) के अनुसार प्रत्येक इन्द्र की अवधि एक मन्वन्तर के तुल्य होती है। इस प्रकार एक कल्प में १४ इन्द्र भी होते हैं। ब्रह्मा अपने प्रत्येक दिनादि में त्रिलोकी की सृष्टि करते हैं तथा दिनान्त में उसे नष्ट कर देते हैं। ब्रह्मा की रात्रि आने पर पृथ्वी सहित सूर्य-चन्द्र आदि सब ग्रह-नक्षत्र नष्ट हो जाते हैं। इस प्रलय-काल में पृथ्वी के केन्द्रवर्ती संकर्षण (अर्थात् आकर्षण शक्ति) के प्रभाव से उत्पन्न अग्नि से संपूर्ण सृष्टि दग्ध हो जाती है।

सूर्य, चन्द्र एवं पृथ्वी आदि की आयु

श्रीमद्भागवत की उपर्युक्त मान्यता के अनुसार सभी भौतिक पिण्डों की सृष्टि ब्रह्मदिनादि में होती है तथा उसके दिनान्त में उनका नाश हो जाता है। अतः कल्पकाल की अवधि ही इन भौतिक पिण्डों की आयु है, जो ४,३२,००,००,००० मानवीय वर्षों के तुल्य होती है। आधुनिक वैज्ञानिक भी पृथ्वी की लगभग इतनी ही आयु मानते हैं। इस उपर्युक्त सिद्धान्त का प्राचीनतम संकेत अथर्ववेद में प्राप्त होता है।

अथर्ववेद में सृष्टि-वर्ष

अथर्ववेद की शौनक संहिता (८,२,२१) में ब्रह्मा के मन्त्र में सृष्टि वर्षों का उल्लेख है, जिसे यहाँ उद्धृत करना अप्रासंगिक न होगा।

शतं तेऽयुतं हायनान् द्वे युगे त्रीणि चत्वारि कृष्मः।
इन्द्राग्नी विश्वे देवास्तेऽनु मन्यन्तामहृणीय मानाः॥

इस मन्त्र में अयुतपद का अर्थ १००,००० रखने से सृष्टिवर्ष उपर्युक्त संख्या के समान हो जाते हैं।

युगपद्धति का मूल

श्रीमद्भागवत में वर्णित इस युग पद्धति का मूल इससे पूर्ववर्ती महाभारत के कई स्थलों (वनपर्व, अध्या० १४९; १८८, २२-२८; शान्तिपर्व, अध्या० २३२-३३) में विशद रूप से प्राप्त होता है। इससे भी पूर्व के यास्काचार्य के निरुक्त (१४,४) में यह पद्धति अपूर्णरूपेण मिलती है। इसी प्रकार का अपूर्ण वर्णन भगवद्गीता (८,१८) में भी उपलब्ध होता है।

महाकल्प एवं ब्रह्मा की गतायु

ब्रह्मा का एक कल्प का दिन एवं इतने ही की रात्रि होती है। इस अहोरात्रमान से १०० वर्ष ब्रह्मा की परमायु है। यह परमायु दो परार्द्धों में विभक्त है। प्रथम परार्द्ध बीत चुका है। इस बीते हुए परार्द्ध के आदि में ब्राह्म नामक कल्प तथा अन्त में पाद्मकल्प हुआ था। वर्तमान इस द्वितीय परार्द्ध का यह प्रथम कल्प है। इसका वाराह कल्प नाम है। श्रीमद्भागवत (३,११,३२-३७) में इसका विशद वर्णन मिलता है। वहाँ कहा गया है कि यह दो परार्द्धों का समय भी अनादि, अनन्त एवं अव्याकृत, जगदात्मभूत महाकाल के एक निमेष के समान व्यतीत हो जाता है।

सृष्टि की अस्थिरता एवं अग्रिम सत्ययुग का आरम्भ

यद्यपि मीमांसक सृष्टि को स्थिर मानते हैं परन्तु श्री मद्भागवत (१,६,३०-३१; १०,३,२५; आदि) के अनुसार यह कल्पान्त स्थायी ही है। प्रत्येक कल्प में सृष्टि एवं प्रलय हो जाया करते हैं। यह क्रम निरन्तर चलता ही रहता है। श्रीमद्भागवत (१२,२,२४) के अनुसार आगामी सत्ययुग का प्रारम्भ उस समय होगा जब सूर्य, चन्द्र एवं बृहस्पति ग्रह पुष्य नक्षत्र में संमिलित होंगे। अर्थात् उस समय श्रावण मास की शुक्ल प्रतिपत् तिथि रहेगी।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत की काल गणना अत्यन्त वैज्ञानिक एवं महत्त्वपूर्ण है, जिसे ज्योतिष के सिद्धान्तों ने भी स्वीकार किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्रिकोणात्मक विश्व राजनीति

श्री अवनीन्द्रकुमार विद्यालंकार

इतिहास अपने को दुहराता है, यह ऐतिहासिकों की एक मान्यता है। इस प्रसिद्ध उक्ति में संशोधन भी किया गया है। इतिहास अपने को दोहराता है, पर हुबहू उसी रूप में नहीं। विश्व-राजनीति का वर्तमान रूप १८७० को सहसा स्मरण कराता है।

प्रशिया ने फ्रान्स को हराया, बर्लिन पराजय का प्रतिशोध पेरिस को जीत कर लिया। प्रिंस विस्मार्क जानता था कि विजित फ्रान्स पराजय का बदला लेगा। अतः भावी समर की तैयारी प्रारम्भ करनी चाहिए। अतः पहले जर्मन भावी स्टेटों को होली रोमन एम्पायर की राख पर एक किया। हैप्स बर्ग राजवंश अभिमानी था। आस्ट्रिया इस नवोदित जर्मन राष्ट्र से अलग रहा। आज भी अलग है। वह "यूरोपियन इकनामिक यूनिटी" या यूरोपियन यूनियन (१९८०) से भी अलग है। विनष्ट होली रोमन एम्पायर का अवशेष है, इस स्मृति को ताजा रखता है।

आस्ट्रिया का साम्राज्य यूरोप में था। यूरोप से बाहर न था। जर्मनी में आस्ट्रिया के सम्मिलित होने पर यूरोप १९१४ के बदले १८७५ में ही रणक्षेत्र हो जाता। विस्मार्क को यह अभीष्ट न था। पर उसने आस्ट्रिया से मैत्री की सन्धि की। सन्धि भी इस किस्म की जैसी एक ही परिवार के दो भाइयों की मैत्री होती है। इससे लन्दन चौंका। ब्रिटेन का साम्राज्य यूरोप से बाहर था। बर्लिन-बीयना की शक्ति पाकर एशिया, अफ्रीका में फैलना चाहता है, यह समझने में फ्रान्स और ब्रिटेन को देर न लगी। अतः फ्रान्स और ब्रिटेन युद्ध और शान्ति में परस्पर सहायता के आधार पर मित्र बने। दो गुट हो गये : (१) आस्ट्रिया-जर्मनी, (२) फ्रान्स-ब्रिटेन।

कौरव-पाण्डवों के समान इन दोनों पक्षों ने अपना-अपना बल बढ़ाना शुरू किया। फ्रान्स-ब्रिटेन ने रूस को अपने साथ मिलाया। आस्ट्रिया-जर्मनी ने इटली को अपने पक्ष में मिलाया। १९१४-१८ की लड़ाई में कैसर हारा, इसका एक कारण इटली का अपने पक्ष को छोड़कर दूसरे पक्ष में मिल जाना भी है। फलतः भूमध्यसागर का मार्ग खुला रहा। भारत से सेना यूरोप के मोर्चों पर जाती रही। तुर्की जब तक लड़ता रहा तब तक ही 'एमडेन' जर्मन जहाज मद्रास पर गोले बरसाने की हिम्मत भी कर सका।

अमेरिका 'मुनरो-सिद्धान्त' की माला निष्ठा से जपता रहा। १९१७ में अमेरिका लड़ाई में आया तो डेमोक्रेटिक पार्टी की विजय होने और उडरो विल्सन के प्रेजीडेंट चुने जाने से। अमेरिकी मूल नीति मनरो-सिद्धान्त में निहित है। यही कारण है रिपब्लिकन पार्टी के रास्ता में आने पर अमेरिका राष्ट्र संघ जिनेवा का सदस्य नहीं बना।

रूजवेल्ट प्रेजीडेंट हुए। अमेरिका ने मुनरो-सिद्धान्त को ताक़ पर रख दिया। यह १९६३ से १९६८ तक चला। इस बीच आईजन होवर ने कोरिया की लड़ाई से अमेरिका को निकाला। वियतनाम की लड़ाई में अमेरिका फँसा।

फँसा प्रेजीडेंट केनेडी के कारण। प्रेजीडेंट निक्सन १९६९ से मुनरो सिद्धान्त पर पुनः लौट रहे हैं। वह राष्ट्रवाद के उपासक हैं, अन्तर्राष्ट्रीयतावाद के नहीं। उनकी दृष्टि में देश सर्वोपरि है, विश्व बाद में है। अतः अमेरिका १९७२ से पहले के समान 'मुनरो सिद्धान्त' का आस्था के साथ पालन कर रहा है। आज उसकी तटस्थ वृत्ति है। भविष्य में भी रहेगी यह कौन बता सकता है। पूर्वी जर्मनी में यदि रूसी फ़ौज डेरा डाले हुए है, पश्चिम जर्मनी के सोशलिस्ट प्रधान मन्त्री चार्ल्स ब्राडिन्ट नहीं चाहते कि जर्मनी से अमेरिकी सेना वापस न बुलाई जाय। इसके कारण फ्रेंच प्रेजीडेंट पाम्पीड्रक के लिए यह निश्चय करना कठिन हो गया :—"यूरोपियन इकनामिक यूनिटी" का अमेरिका से क्या सम्बन्ध हो। इस एक बात से सहज में अनुमान लगाया जा सकता है कि अमेरिका की तटस्थता देश-काल बाधित है। भूत से वह सहसा मुक्ति नहीं पा सकता।

पर आज वह तटस्थ है। ब्रिटिश शासन ने भारत की सुरक्षा-योजना त्रिकोणात्मक बनाई थी। इसका शीर्ष बिन्दु खैबर का दर्रा या लंडीकोटल का स्टेशन था। इसका आधार था सिंगापुर-अलेकजेंड्रिया। इसकी एक भुजा थी लंडीकोटल-दिल्ली विजगापट्टम-सिंगापुर। विजगापट्टम का बन्दरगाह इसी कारण से बनाया गया था। दूसरी भुजा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९७३

थी : अलेकजेन्ड्रिया (सिकन्दरिया) सरा-बगदाद कराँची-लेंडीकोटल। आज राजनीतिक स्थिति १८८०-८४ से भिन्न है। पर भूगोल तो कभी बदलता नहीं। रंगमंच पर आने वाले पात्र बदलते रहते हैं। पर रंगमंच तो वही रहता है। वह तो नहीं बदलता।

युद्धों का अन्त भाषणों में ही हो सकता है। रणक्षेत्र तो रहेंगे। मानव की शिक्षा-प्रणाली नहीं बदली। महत्त्व-पूर्ण ४ सन्धियाँ संयुक्त राष्ट्र से बाहर हो रही हैं। संयुक्त राष्ट्र के माध्यम से नहीं। सैनिक व्यय बढ़ रहा है। कीमतों का चढ़ना भी इसको नहीं घटा सका। यथा—पाकिस्तान की आय १९७२-७३ में ४१४ करोड़ रु० है। इसमें से वह ३४० करोड़ रु० (१९७२-७३) सेना पर खर्च करेगा। विष्णुमित्र शर्मा ने राजपुत्रों को पढ़ाया था :—

न विश्वसेत् पूर्व विरोधितस्य,
मित्रत्व शत्रुत्व मुपागतस्य।
दग्धां गुहां पश्य उलूक पूर्णां,
काकः प्रणर्तेन हुतशनेन॥

यूरोपियन इतिहास के एक विद्वान् लेखक ने इसी बात को इस प्रकार कहा है। मित्र बने शत्रु पर विश्वास करना सबसे बड़ी भूल है।

शिमला शिखर सम्मेलन से पहले सुरक्षा परिषद् में, मास्को में श्री जुल्फ़ीकार अली भुट्टो ने जो कुछ कहा, और शिमला समझौते पर दस्तखत करने के बाद जो कुछ कहा, उनमें भाष्यकार टीकाकार सुसंगति खोजने में लगे हुए हैं। इनसे एक बात स्पष्ट है।

१—श्री भुट्टो सत्ता-प्रिय है। सत्ता वह दर्शनी नहीं वास्तविक चाहते हैं।

२—एकाधिकारी सत्ताधारी होने के लिए भारत से बैर बनाये रखा जाय। तनाव शिथिल न होने देना चाहिए।

इसी हेतु श्री भुट्टो ने कहा। युद्ध-विराम सीमा-रेखा को पाकिस्तान कभी अन्तर्राष्ट्रीय सीमा न मानेगा। छम्ब वह किसी भी स्थिति में न लौटायेगा।

इन दोनों बातों का दुहराना व्यर्थ था। क्योंकि १७ दिसम्बर १९७१ को छम्ब पर पाकिस्तान का अधिकार था। पर तनाव बना रहना चाहिए, अतः श्री भुट्टो ने यह बात की।

भारत के प्रति बैरभाव जताने का और भी एक कारण है। आर्थिक, प्रान्तिक और आनुवंशिक विभेदों को उभरने से यही बात रोक सकती है।

पाकिस्तान की जनता भारत-विरोध को पसन्द नहीं करती यह बात नहीं। भारत-पाकिस्तान का बैर आज का नहीं, हजार साल पुराना है। यह ऐतिहासिक है। जर्मन-फ्रेंच विरोध व ब्रिटिश-फ्रेंच विरोध के समान ऐतिहासिक है। यह मनोवृत्ति का प्रश्न है। मनोवृत्ति एक दिन में नहीं बदल जाती। भारत प्रायद्वीप में चिरस्थायी शान्ति की आशा करना भूल है।

इसी प्रकार भारत-पाकिस्तान विवाद जागतिक प्रश्न न बनाया जाय यह लक्ष्य प्रशंसनीय हो सकता है पर व्यवहारिक राजनीति का नहीं। कोई पक्ष दुर्बल होने पर अन्य की सहायता न ले, प्राप्त सहायता का मूल्य न दे, यह नियम बनाना सम्भव नहीं।

पाकिस्तान अकेला भारत से लड़ने और विजय पाने की आशा नहीं कर सकता। जब भारत सोवियत रूस की मदद पाना अपने लिए आवश्यक मानता है तब पाकिस्तान चीन से मदद चाहे, तो क्या विस्मय की बात होगी।

बाह्य मंगोलिया की सीमा पर रूस-चीन ५०-५० डिवीजनें आमने-सामने तैनात हैं। एक फ्रेंच राजनीति के पण्डित ने इस स्थिति को देखने के बाद कहा। चीन के आण्विक शास्त्रास्त्रों में रूस के समकक्ष होने से पहले ही रूस आण्विक हमला चीन पर करेगा, यह सम्भवतः १९७४ के अन्त में होगा। हिटलर का उदय न होते हुए भी रूस यह करेगा। यदि इस समय न होगा तो १९८० के आसपास होगा। अक्तूबर १९७२ के प्रारम्भ में प्रकाशित हुआ था कि रूस ने और तीन टैंक डिवीजनें साइबेरिया भेजी हैं। २२ अक्तूबर का समाचार है कि रूस ने मिस्र को मिग २५ विमान देना मान लिया है। इस स्थिति में चीन से पाकिस्तान को दूर किया जा सकता है।

अतः भावी युद्ध के पक्ष हुए : (१) रूस और भारत (२) चीन और पाकिस्तान। चीन-रूस का सीमा-विवाद मिट नहीं सकता। मार्शल स्तालिन ने मंचूरिया माओत्सेतुंग की मैत्री पाने के लिए चीन को दे दिया। दिया यह कहने के बाद कि १९०५ की पराजय का प्रतिशोध हो गया। फलतः स्तालिन को अपनी जान देनी पड़ी। मास्को-स्थित भारत के दार्शनिक राजदूत डा० राधाकृष्णन ने अन्तिम भेंट में स्तालिन को आत्मरक्षा के लिए सावधान किया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतः ब्रेजनेव चीन की माँग ५००० वर्गमील भूमि चीन को देना न मानेंगे। अतः दोनों कम्युनिस्ट देश सुन्द-उपसुन्द के समान साइबेरिया रूसी मेनका को पाने के लिए लड़ेंगे। यह इस बात से भी स्पष्ट है। रूस-जापान की शान्ति-वार्ता-ग्रोमीको-आहोरा-वार्ता प्रारम्भ होकर भी आगे बढ़ी नहीं। क्योंकि म० ग्रोमीको जापान के अधिगत किए कुरील द्वीप समुद्र को जापान को वापस करने के विषय को विचार कोटि में रखने को ही तैयार नहीं। फलतः जापान ने भी साइबेरिया के तेल व खनिज धातुओं के विदोहन में पूँजी लगाने का प्रश्न विचारणीय नहीं माना। इस वार्ता-भंग ने जापान को चीन का प्रबल मित्र बना दिया और तोकियो को मास्को से दूर कर दिया। यह अन्तिम रूप नहीं। पर एक बात विचारणीय है। जापानी प्रधान मंत्री टनाका के पेकिंग से वापस आने के अठारह दिन के भीतर जापानी पार्लमेंट ने सुरक्षा-योजना व शस्त्रीकरण के लिए १८ अरब येन की स्वीकृति दे दी। कुछ दिन पहले तक चीन जापान सैनिकवाद के उठने की आशंका प्रकट कर जापान का विरोध करता था, चीन का जापानी सैनिक बजट का विरोध न करना अकारण नहीं है, स्पष्ट है चीन सागर और हिन्द महासागर पश्चिमी प्रशान्त सागर में चीन को रूस के विरोध में जापानी बेड़े की सहायता पाने की आशा है। जानकारों का विश्वास है कि १८ अरब येन शस्त्रीकरण पर खर्च करने पर सैनिक दृष्टि से जापान विश्व की छठे क्रम की सैनिक शक्ति हो जायगा। जापान में तोजो के उदय होने का भय चीन को नहीं रहा। संयुक्तराष्ट्र असेम्बली-महासभा के विवादों में भी जापान का दृष्टिकोण चीन का समर्थन प्रतीत होता है। विश्व राजनीति में जापान डग भरते हुए नहीं छलाँग भरते हुए प्रवेश कर रहा है। भावी युद्ध में यह जिस पक्ष का साथ देगा, उससे दूसरे पक्ष का साथ अमेरिका देगा। क्योंकि इन दो शक्तियों के युद्ध में कूदने पर ही निर्णायक युद्ध होगा।

भारत रूस का मित्र है। रूस की मैत्री इराक से भी है। भारत और रूस दोनों उससे खनिज तेल लेते हैं। इस प्रकार नई दिल्ली-मास्को-बगदाद एक नया त्रिकोण विश्व राजनीति में उदित हुआ है। चीन ने पाकिस्तान के माध्यम से ईरान को अपने पक्ष में मिलाया है। श्री भुट्टो की पत्नी ईरानी हैं। पाकिस्तान की ही प्रेरणा से ईरान की रानी रहाद दीवा पेकिंग गयीं। उनका वहाँ ठाट-बाट से एनलाई ने स्वागत किया। इससे पहले ईरान के शाह की दो बहनें राजकुमारी आरफ, राजकुमारी फातिमा चीनी दौरे पर गयीं।

पश्चिमी एशिया में ईरान एक बलाढ्य राष्ट्र है। तेल की सम्पत्ति से समृद्ध है। १६ अक्तूबर १९७२ को ईरान के शाह मास्को गये थे। पाकिस्तान के रवैये के बारे में उन्होंने कोई बात नहीं कही यद्यपि प्रेजीडेंट पोडगोनी ने भोज में इस प्रश्न को उठाया था। ईरान की भारत और रूस दोनों से मैत्री है। भारत ईरान से खनिज तेल लेता है। पर एशिया ७२ मेले में पाकिस्तान के समान ही ईरान भी भाग नहीं ले रहा है। इस एक बात से ईरानी मैत्री के यथार्थ रूप को समझा जा सकता है। ईरान अपना नया बेड़ा बनाना चाहता है। यहाँ उसका रूस से संघर्ष होना सम्भव है। अतः विश्व-राजनीति के दो नये त्रिकोण हैं :—

१—पेकिंग-इस्लामाबाद-तेहरान
२—मास्को-बगदाद-नई दिल्ली

ये इस समय विश्व-राजनीति के केन्द्रबिन्दु हैं। रूस ने चांसलर ब्रांट से बर्लिन पैक्ट कर पश्चिम यूरोप को तटस्थ कर दिया। 'यूरोपियन यूनियन' अपनी आर्थिक समृद्ध को युद्ध के दावानल में भस्म न करेगा। जर्मनी अपना पृथक् अस्तित्व धीरे-धीरे खो रहा है। यूरोपियन यूनियन में पूर्णतः विलीन होकर वह 'यूरोपियन' यूनियन का नेता होना चाहता है। अतः रूस के पक्ष का विस्तार पश्चिमी यूरोप तक न होगा।

पश्चिम एशिया में रूस अपना पक्ष बढ़ा रहा है। ईरान को अपने पक्ष में करने में विफल होने पर कैरो पर उसकी दृष्टि केन्द्रित हुई है। नीतिकार की इस बात के अनुसार काम करने का निश्चय किया है : अपमान को आगे कर, सम्मान को पीछे रखकर बुद्धिमान अपना काम करे क्योंकि कार्य का विनाश मूर्खता है।

अपमानं पुरस्कृत्य
मानं कृत्वा च पृष्ठके।
स्वकार्यं मुद्धरेत् प्राज्ञः
कार्यध्वंसो हि मूर्खता॥

रूस ने मिस्र को मिग २३ लड़ाकू विमान देना माना है। पर एक शर्त है। सरकार रूस विरोधी न हो। कम्यु-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९७३

निज्म की विरोधी इस्लाम की प्रबल पक्षपाती न हो। क्योंकि 'प्रवदा' का कहना है : धर्मानुराग राष्ट्रवाद का पोषक है। राष्ट्रवाद कम्युनिज्म का शत्रु है। रूस सोवियत रूस की जनसंख्या का एक बड़ा भाग इस्लाम को मानता है। यद्यपि मस्जिदें १०,००० में से नमूने के तौर पर १०० ही शेष रह गयी हैं। यदि मिस्र में इस्लाम का जोर बढ़ा और मिस्र-लीबिया एक हो गये और इसमें सूडान भी मिल गया तो उत्तरी अफ्रीका का यह भाग ही नहीं, भूमध्यसागर का पूर्वी तट भी रूसी बेड़े के प्रभाव से निकल जायगा और यह चीन के प्रभाव में चला जाएगा। जंजीबार में चीन नौबेड़े का अड्डा तंजानिया के वास्ते बना रहा है। चीन ने तंजानिया-जाम्बिया रेलवे भी बनाई है। अलेक्जेंड्रिया (सिकन्दरिया) में रूसी नौ-अड्डा है। मास्को की बात मान कर युद्ध मन्त्री सादस और नौ-सेनापति को मिस्र में पद-च्युत कर दिया गया। सूडान ने रूस से पुनः राजनय सम्बन्ध जोड़ा है। खारतोम-मास्को सम्बन्ध स्थापित होते ही सूडान-मिस्र में अनबन शुरू हो गयी। अरब एकता के विचार में जग गया। सीविया मिस्र अब शायद ही एक हों।

रूस एकता का पोषक नहीं। जर्मनी, कोरिया उसके कारण विभक्त हैं। क्योंकि दैशिक एकता राष्ट्रवाद का बल बढ़ाती है। यह कम्युनिज्म के प्रसार और सी-साम्राज्य विस्तार में बाधक है। बर्लिन शहर तक रूस के कारण विभक्त है। भारत विभक्त रहे यह रूसी आकांक्षा है। 'ताशकन्द पैक्ट इसका प्रमाण है। भारत में अंग्रेजी ही रहे, हिन्दी राष्ट्र भाषा न बने यह भी रूस की हार्दिक इच्छा है। क्योंकि हिन्दी भारतीयतां और राष्ट्रवाद के पोषक हैं। इन्दिरा सरकार भी राष्ट्रवाद की वृद्धि नहीं चाहती। रूस का सहयोग इस अवस्था में न मिलेगा। भारत रूस के साथ है, तटस्थ नहीं, यह चीन को पसन्द नहीं। अतः चीन और अमेरिका पाकिस्तान के समर्थक हैं। भारत के विभक्त रहते यह होना अनिवार्य है। यदि विदेशी राष्ट्रों के हस्तक्षेप से भारत प्रायद्वीप को बचाना अभीष्ट हो तो भारत को अखण्ड बनाना चाहिए। भारत भूमि को विभक्त रख के, भारतीयता की हत्या कर, भारत प्रायद्वीप को, विश्व-साम्राज्य स्थापित करने की महत्त्वाकांक्षा रखनेवाले शक्ति-शाली रूस-चीन सदृश राष्ट्रों को भारत को रणक्षेत्र बनाने से विरक्त नहीं किया जा सकता।

इन्दिरा सरकार ने बंगलादेश का भार लेकर भारत भूमि को युद्ध भूमि बना दिया है। चीन की यह धारणा कि बङ्गाल की खाड़ी में रूसी प्रभाव स्थापित करने के लिए श्रीमती गाँधी ने बंगाल को जीता, अकारण नहीं कही जा सकती। ९ अगस्त १९७१ की भारत-रूसी मैत्री संधि के विषय में चीन का आम मत है, यह उसके विरोध के लिए की गयी है। रूस इसको 'ब्रेजनेव-योजना' का एक अंग मानता है। यह सन्धि रूस पर भारत की अधिकाधिक निर्भरता का प्रकट प्रदर्शन है। चीन का इससे भारत सरकार पर यह भी आरोप है : भारत हिन्दमहासागर में रूस का सहायक है। चीन का तिब्बत के विषय में भारत पर आरोप है कि भारत ने छेड़-छाड़ आक्रमण और तोड़-फोड़ की कार्रवाई की है अतः रूस-चीन दोनों भारत को युद्ध-क्षेत्र बनाने पर तुले हुए हैं। इससे निस्तार पाने का एक ही उपाय है कि भारत एक हो, अखण्ड हो, वृहत्तर भारत का पुनर्निर्माण हो। यह है शान्ति का मार्ग। विभक्त भारत युद्ध को आमंत्रित करता है, जन्म देता है।

पश्चिमी यूरोप के नौ देशों ने 'यूरोपियन यूनियन' बनाने का संकल्प करे इस सत्य को समझा है। ये न केवल अमेरिका के आर्थिक प्रभाव से मुक्त हो गये बल्कि रूस की महती सैनिक शक्ति के भय से भी मुक्त हो गये। भारत विभाजन को पूरा करनेवालों ने भारत भक्ति का नाश कर भारत की शक्ति, स्थिरता और प्रगति को नष्ट किया है। १९१४ के पहले बनी त्रिकोणात्मक राजनीति ने १९१४-१८ के बीसवीं शती के प्रथम महायुद्ध को जन्म दिया। वर्तमान त्रिकोणात्मक राजनीति १९८०-८५ के तृतीय महायुद्ध को जन्म देगी।

इसका यह अर्थ नहीं कि इससे पहले वियतनाम, मिस्र, इजराइल सदृश दैशिक युद्ध न होंगे। होंगे और जरूर होंगे। भारत-पाकिस्तान का युद्ध सम्भव है। इसके अभाव में तब तक आविष्कृत शस्त्रास्त्रों की संहारक शक्ति की परीक्षा कैसे होगी। बड़े राष्ट्र आग भड़काये रखेंगे। स्वतः इनसे दूर रहेंगे।

चीन आण्विक शस्त्रास्त्रों में रूस की बराबरी करने लगे, इससे पहले ही रूस चीन पर प्रबल आण्विक हमला करेगा। हिटलर के उदय की आवश्यकता न होगी। स्तालिन की सहमति से ही हिरोशिमा और नागासाकी पर अणुबम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९४५ में गिराये गये थे। स्तालिन ने मंचूरिया चीन को लौटा दिया, यह बात रूसी भूले नहीं हैं। अतः मंचूरिया पाने के लिए भी रूस ही पहले चीन पर वार करेगा। हार्विन के बिना ब्लाडीवोस्टक सुरक्षित नहीं। साम्राज्य-विस्तार की इच्छा युद्ध-पिपासा बढ़ाती है। जारों के छोड़े काम को रूसी कम्युनिस्ट पार्टी पूरा करेगी। यूरूसी और सिकियाग से उठी युद्ध ज्वाला का विस्तार स्वात से लेकर चटगाँव तक ही सीमित न रहेगा। जापान और अमेरिका यूरोपियन यूनियन के समान शायद ही अन्त तक तटस्थ रहें। चीन रूस को पराजित करे, यह अमेरिका में बसे रूसी कभी न चाहेंगे। अमेरिका को वह लोग लड़ने के लिए और रूस की रक्षा के लिए विवश करेंगे।

जापान की साइबेरिया पर दृष्टि है। भ्रूण-हत्या को कानूनी बनाकर भी वह १० करोड़ आबादी का देश हो गया है। उसको भूमि चाहिए। जापान ने शस्त्रीकरण की योजना तैयार की है। १९७२-७३ में वह १८ अरब येन खर्च कर रहा है। यह अकारण नहीं है। १९४५ की पराजय का प्रतिशोध लेने के लिए है। चीन-जापान की बढ़ती प्रगाढ़ मैत्री इसी भावी महायुद्ध की भूमिका है।

विभक्त भारत इस महायुद्ध का एक कारण है। इस सत्य को इस महायुद्ध की ज्वालाओं के मध्य भारतीय दर्शन करेंगे। इसके बाद ही २१वीं शती के विश्व-इतिहास की भूमिका तैयार होगी। भारत के अखण्ड और संयुक्त होने पर ही नूतन विश्व का निर्माण सम्भव है, और तब से विश्व का आकाश ऋषियों की तपःपूत इस वाणी से गूँजेगा :—

शान्ता द्योः शान्ता पृथ्वी, शान्तमिदभ्र अन्तरिक्षम्।
शान्ता उदन्वती आपः शान्ताः नः सन्तु ओषयी॥
(अथर्व १९।९।१)

शान्तानि पूर्वरूपाणि शान्त नो अस्तु कृताकृतम्।
शान्त भूतं च भव्यं च सर्वमेव शमस्तु नः॥
(अथर्व० १९।९।२०)

भारत से अंग्रेजी के राज्य को समाप्त करने के लिए भारत को कितना बड़ा मूल्य देना पड़ेगा? केवल इस वास्ते क्योंकि भारत-विभाजन स्वीकार किया गया है। क्या यह भारी भूल समय रहते सुधारी नहीं जा सकती? शायद नहीं। भारत-भक्ति की क्या कोई कड़ी शेष है?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिक्षा और योग

श्री शमसुद्दीन

शिक्षा जीवन से घनिष्ठ रूप से संबंधित है तथा मानव-जीवन के प्रारम्भ से ही यह किसी-न-किसी रूप में जीवन में विद्यमान रही है। इस प्रकार यद्यपि शिक्षा का प्रारम्भ मानव-जीवन के उद्भव के साथ ही हो गया तथापि औपचारिक रूप से इसकी व्यवस्था मानव के सामाजिक संगठन एवं सांस्कृतिक विकास के पश्चात् ही सम्भव हो सकी। संसार में विभिन्न संस्कृतियों एवं सभ्यताओं के उद्भव तथा विकास के साथ-साथ यद्यपि शिक्षा के दर्शन एवं विचारधाराओं में परिवर्तन होता रहा तथापि मानव जीवन में उसका स्थान व महत्त्व प्रत्येक युग और काल में सदा सर्वोपरि एवं अक्षुण्ण रहा है।

शिक्षा की इस महत्ता के बावजूद भी इसके सर्वमान्य अर्थ एवं स्वरूप के सम्बन्ध में कभी किसी एकमत का प्रतिपादन नहीं हो सका। आज भी अन्य सामाजिक विज्ञानों की तरह शिक्षा अपनी विविधवादी प्रकृति एवं व्यापक रुचि तथा विचार-विमर्श का विषय होने के कारण मत-विभिन्नता से युक्त है। यही कारण है कि आज न केवल शिक्षा-शास्त्री वरन् राजनैतिक नेता, समाज-सुधारक, धार्मिक गुरु एवं सामान्य जनता को इस पर विचार-विमर्श करने की आवश्यकता है ताकि शिक्षा के किसी एक सर्वमान्य स्वरूप का निर्धारण किया जा सके।

विभिन्न युगों में शिक्षा के विभिन्न उद्देश्यों का निर्धारण किया गया। ईसा से पूर्व ३८४ में प्रसिद्ध दार्शनिक एवं शिक्षाशास्त्री अरिस्टाटल ने शिक्षा का उद्देश्य "सद्गुण" के विकास द्वारा आनन्द की प्राप्ति बताया। प्लेटो ने "शरीर और आत्मा की चरम उन्नति" शिक्षा का उद्देश्य निरूपित किया। एक दूसरे दार्शनिक साक्रेटीज़ ने ईसा-पूर्व ४६९ में कहा था कि शिक्षा का लक्ष्य "असत्य को दूर कर सत्य की खोज" है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि समाज और सभ्यता के आदिकाल में शिक्षा के नैतिक व आध्यात्मिक पक्ष पर जोर दिया गया।

१६वीं शताब्दी के अन्त में भी प्रसिद्ध धर्मगुरु कामेनियस ने कहा—"सम्पूर्ण मानव का विकास" ही शिक्षा है तथा मानव का अन्तिम लक्ष्य ईश्वर के साथ आनन्द की प्राप्ति है। आधुनिक पाश्चात्य शिक्षा के आदिगुरु पेस्टालाज़ी ने १८वीं सदी में शिक्षा का अर्थ स्पष्ट करते हुए कहा—"शिक्षा से तात्पर्य मनुष्य की प्राकृतिक शक्तियों के स्वाभाविक, सामंजस्यपूर्ण एवं उन्नतिशील विकास" से है। आधुनिक युग के पाश्चात्य प्रसिद्ध शिक्षा-शास्त्री जॉन ड्यूई ने जीवन के प्रतिदिन के अनुभवों को सर्वाधिक महत्त्व दिया तथा इनके द्वारा जीवन के स्वाभाविक विकास में सुधार व परिवर्तन लाना ही शिक्षा का उद्देश्य निरूपित किया।

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी का शिक्षा दर्शन सम्पूर्ण मानव जाति के मन और हृदय में परिवर्तन व सुधार पर केन्द्रित था। वे ईश्वर के एकत्व में और इसीलिए मानव मात्र के एकत्व में विश्वास करते थे। उनके अनुसार "सत्य" ही ईश्वर है और यह "सत्य" और कुछ नहीं केवल हमारी अन्तर आत्मा की आवाज़ है। इस "सत्य" अथवा ईश्वर को प्राप्त करने का एकमात्र साधन अहिंसा और प्रेम है। ईश्वर से साक्षात्कार के लिए हृदय की पवित्रता आवश्यक है जो अहिंसा और प्रेम से ही सम्भव है। किसी का बुरा सोचना अथवा झूठ बोलना हिंसा है जो मन व हृदय को अपवित्र बनाती है।

शिक्षा के उद्देश्यों का निर्धारण करते हुए महात्मा गांधी ने कहा कि ये दो प्रकार के हैं—(१) तात्कालिक (Immediate), (२) चरम (Ultimate)। शिक्षा का तात्कालिक उद्देश्य पूर्ण जीवन के लिए तैयारी, आसपास के वातावरण के साथ समायोजन, स्वभाव की पूर्णता, चरित्र-निर्माण एवं व्यक्तित्व का सामंजस्यपूर्ण विकास है किन्तु दूसरे प्रकार का उद्देश्य इससे ज्यादा महत्त्व का है। शिक्षा का अन्तिम लक्ष्य ईश्वर के ज्ञान से सम्बन्ध रखता है जो मनुष्य को आत्मज्ञान (Self realization) की ओर ले जाता है तथा जिसके द्वारा वह ससीम (Finite) को असीम (Infinite) में मिला देता है। शिक्षा का यह अन्तिम लक्ष्य सभी तात्कालिक लक्ष्यों को अपने आप में समाये रखता है।

इस प्रकार शिक्षा के विभिन्न उद्देश्यों एवं लक्ष्यों पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशद विवेचन के पश्चात् प्रश्न यह उठता है कि इनकी प्राप्ति कैसे की जाय ? आज शिक्षा का जो स्वरूप हमारी शालाओं में देखने में आता है उससे तो गहरी निराशा का ही अनुभव होता है। आज हमारी शालाएँ विभिन्न प्रकार के असामाजिक तत्त्वों को जन्म दे रही हैं। ये सुधार और परिवर्तन के नाम पर नित्य -नई समस्याएँ पैदा करती हैं। आये दिन शालाओं में छोटी-छोटी बातों को लेकर छात्रों द्वारा विरोध प्रदर्शन, घेराव, हड़ताल एवं नारेबाजी की जाती है तथा विद्या के ये मंदिर अब झगड़े, मारपीट एवं पुलिस हस्तक्षेप के शिकार हो रहे हैं।

इस सबका एकमात्र कारण यह प्रतीत होता है कि छात्रों में जो असीम शक्ति का प्रवाह बह रहा है उसका सही नियन्त्रण एवं सदुपयोग नहीं हो रहा है। छात्रों के पास खाली समय बहुत है तथा सृजनात्मक एवं रुचिकारक कार्यक्रमों के अभाव में ये छात्र इधर-उधर भटककर इस छलकती हुई शक्ति का अपव्यय कर रहे हैं। दूसरी बात इस शक्ति के सात्विक नियन्त्रण का कोई साधन शालाओं के पास नहीं है। भारत में ही नहीं वरन् सम्पूर्ण विश्व के छात्र जगत् की आज यही ज्वलंत समस्या है जिसका हल ढूँढ़ने में बड़े-बड़े विचारक एवं विद्वान् लगे हुए हैं।

छात्रों की इस अनियन्त्रित शक्ति के दुरुपयोग का हल शिक्षा में योग के समावेश से किया जा सकता है। वैसे, योग एक महान् विद्या है और इसका शास्त्रीय ज्ञान एवं अभ्यास सम्भवतः औसत छात्र तथा व्यक्ति के सामर्थ्य के सामर्थ्य में न हो, किन्तु जहाँ तक योग का सरल, सामान्य एवं व्यावहारिक रूप है, यह शिक्षा में अनुशासनहीनता का निराकरण करने तथा ज्ञान-प्राप्ति में एकाग्रता, चिन्तन एवं मनन को प्रोत्साहित करने में अवश्य ही सहायक सिद्ध हो सकता है।

आज छात्रों का औसत स्वास्थ्य गिरा हुआ दिखाई देता है। इसका प्रमुख कारण उनके जीवन में संयम और नियम का अभाव है। छात्र में कर्तव्य-शक्ति के स्थान पर आलस्य की प्रमुखता दिखाई देती है। यदि शालाओं में योगाभ्यास की कुछ क्रियाओं का आयोजन किया जाय तो बालकों में नियम और संयम के साथ-साथ चुस्ती का प्रादुर्भाव होगा और उनका आलस्य दूर हो जायगा। फिर बालक कक्षाओं में बैठकर ऊँघेंगे नहीं वरन् ध्यानपूर्वक पाठ को सुनेंगे व समझेंगे। शारीरिक स्वास्थ्य पर मन की स्वस्थता निर्भर होती है। अतः योगाभ्यास से यदि शरीर और मन को स्फूर्ति प्राप्त हो गयी तो कक्षा में ध्यान भंग एवं ज्ञान के प्रति अरुचि अपने आप समाप्त हो जावेगी।

आज बालकों में अत्यधिक वाचालता देखने में आती है। औसत बालक व्यर्थ बातें करते तथा गप्पें मारते हुए दिखाई देते हैं। इस प्रकार ये न केवल अपनी शक्ति का अपव्यय करते हैं वरन् झगड़े-फसाद तथा कई सामाजिक समस्याओं को जन्म देते हैं। बालकों को कक्षा में किसी विषय पर बोलने को कहा जाय तो वे सँभवतः ५ मिनि में थक जायेंगे किन्तु शिक्षक के अभाव में या खाली समय में जोर-जोर से घण्टों बातें करते रहने पर भी वे थकते नहीं। कभी-कभी तो जब गम्भीर कार्यक्रम होते रहते हैं छात्रों को कुछ मिनिटों के लिए भी शान्त रखना कठिन हो जाता है। इसके लिए छात्रों में मौन रखने का अभ्यास करना आवश्यक है। योग में मौन को बड़ा महत्त्व दिया गया है। इससे न केवल मन की चंचलता नष्ट होती है वरन् व्यक्ति को असीम शक्ति भी प्राप्त होती है। मौन के द्वारा छात्रों में एकाग्रता, ध्यान, चिन्तन व मनन करने की शक्ति का प्रादुर्भाव किया जा सकता है। प्रतिदिन अध्ययन के समय में से कुछ समय इस मौन के लिए रखा जाय। इसकी अवधि एक-दो मिनिट से प्रारम्भ कर क्रमशः बढ़ाई जा सकती है। धीरे-धीरे बालक इससे इतने प्रभावित होंगे कि वे घर में भी प्रतिदिन कुछ समय अथवा सप्ताह में किसी एक दिन इसका अभ्यास करेंगे। यह मौन छात्रों के लिए बड़ा लाभकारी सिद्ध हो सकता है।

आज छात्रों में मन की चंचलता अधिक दिखाई देती है। इसका कारण उनके मन की अस्थिरता है। आधुनिक प्रगतिशील एवं सभ्य कहलाये जानेवाले समाज में छात्र के ध्यानाकर्षण के लिए असंख्य चीजें उपलब्ध हैं। इनमें से कई छात्र जीवन के लिए अनुचित एवं हानिकारक हैं, फिर भी अपनी चंचलतावश छात्र उनकी ओर दौड़ते हैं। इस तरह हमेशा ध्यान इधर-उधर भटकते रहने के कारण छात्र किसी भी एक कार्य में, चाहे वह शाला कार्य हो अथवा घर का कार्य, ध्यान एकाग्र नहीं कर सकते। योग के अभ्यास द्वारा बालकों की यह मन की चंचलता एवं अस्थिरता दूर की जा सकती है।

योगाभ्यास के द्वारा छात्रों में आत्म-नियन्त्रण का विकास किया जा सकता है। जिससे छात्रों की शक्ति का समुचित नियन्त्रण होगा तथा उनमें विनम्रता, शालीनता, त्याग एवं सेवा सरीखे आवश्यक तत्त्वों का विकास होगा।

आधुनिक शालाओं में इसकी बड़ी आवश्यकता है। वास्तव में छात्र का बौद्धिक विकास मन और हृदय के उचित प्रशिक्षण पर निर्भर है जो योग के अभ्यास के द्वारा ही सम्भव है।

आज हमारी शिक्षा का उद्देश्य बालक के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास है। किन्तु खेद का विषय है कि उचित शिक्षा के अभाव में हम केवल मानसिक दृष्टि से विकसित बौद्धिक दानव ही तैयार कर रहे हैं जो स्वयं हमारी संस्कृति, सभ्यता एवं ज्ञान की जड़ों को उखाड़ फेंकने में तत्पर हैं। आज आवश्यकता है मन और शरीर के संयम और नियन्त्रण की, और इसका एकमात्र हल शिक्षा में योग का समावेश है। योग पर आधारित शिक्षा न केवल छात्र की शारीरिक मानसिक, व नैतिक उन्नति करेगी वरन् वह मानवत्व में देवत्व का संचार कर इस धरा को स्वर्ग बना देने में समर्थ हो सकेगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उड़िया में राम-साहित्य की परम्परा

श्री अजयकुमार पट्टनायक

धर्मानुरागिणी उड़िया जनता के ऊपर भारत के सुप्रसिद्ध दोनों महाकाव्यों—रामायण और महाभारत—का जितना गहरा प्रभाव पड़ा है, उतना बहुत ही कम भाषा-भाषियों के ऊपर परिलक्षित होता है। उड़िया-साहित्य में इसके ज्वलन्त प्रमाण मौजूद हैं। यह रामायण जैसे कथावस्तु से भरे महाकाव्य का ही कमाल है कि उड़िया भाषा में लगभग पचास रामायण देखने में आते हैं। युगरुचि के अनुसार ही प्राचीन उड़िया कवियों ने कल्पना से कथावस्तु की सृष्टि करने की अपेक्षा पुराण से ही ग्रहण करना उपयुक्त समझा है। सम्भवतः धार्मिक-भावना भी इस युगरुचि के मूल में रही हो। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे भी उड़िया कवि हुए हैं जो स्वयं धर्मप्रचारक होने के कारण स्वधर्म प्रचार के उद्देश्य से इस तरह की कथावस्तु आहरण करते थे। अरस्तू के अनुसार, "कथावस्तु जितनी ही पुरानी होगी, कला (art) उतनी ही हृदयग्राही होगी।" वास्तव में साहित्य के क्षेत्र में भी यह बात शत-प्रतिशत सही उतरती है। राम-साहित्य की परम्परा में कभी पाठकों के मन में कोई अरुचि नहीं देखी गयी है, बल्कि उत्सुकता ही उत्तरोत्तर बढ़ती पायी गयी है।

गौरव की बात है, उड़िया साहित्य के आदिकाल के प्रतिनिधि कवि ही सर्वप्रथम उड़िया राम-साहित्यकार हैं। युगरुचि के अनुसार दूसरे पुराणों तथा जन-मानस से योग-सूत्र स्थापन पूर्वक पुराण के विषय पर उन्होंने लेखनी चलाई। १५वीं शताब्दी के इस कवि ने अपने को 'शूद्रमुनि' और 'जन्मना अज्ञान' कहा है। इनका असली नाम सिद्धेश्वर परिड़ा था; पर कटक जिले के झंकड़वासिनी देवी चण्डी सारला के वर प्रसाद से कवि होने के कारण ही वह सारलादास के नाम से विख्यात हैं। सर्वप्रथम उन्होंने अपने विस्तृत महाभारत में ही संक्षेप में राम-साहित्य की भित्ति स्थापन किया। लेकिन उससे सन्तुष्ट न होकर राम-साहित्य को एक पूर्णांग-रूप देने की इच्छा तथा समय के स्वर को वे भुला न सके। परिणामतः 'विलंका-रामायण' ने जन्म लिया। मूल रामायण से कथावस्तु आहरण करने पर भी सारलादास ने इसमें अपनी मौलिकता का पुट दिखाया है। केवल नायक रामचन्द्र की ही वीरता का प्रदर्शन करके नायिका सीता की महनीयता को कोई विशेष महत्त्व न देना उन्हें स्वीकार नहीं। अतः 'विलंका-रामायण' में मुख्यतः सीताजी का ही प्राधान्य है। उनके सामने रामचन्द्र तक की वीरता निष्प्रभ दिखायी गयी है। इसके अलावा अपने महाभारत में भी सारलादास ने बहुत-से स्थलों पर राम-कथा विषयक सामग्री का समावेश किया है, तथा आदि, वन और उद्योग पर्वों में समस्त रामायण का संक्षिप्त रूप भी प्रस्तुत किया है। वन-पर्व की रामकथा अगस्त्य द्वारा विलंका के राजा को सुनायी जाती है। मोटे तौर पर सारलादास के रामायण की विशेषताएँ इस प्रकार हैं—इसमें रामकथा और कृष्णकथा के पात्रों की अभिन्नता का प्रतिपादन किया गया है। राम से कृष्ण की, सीता से द्रौपदी की, लक्ष्मण से बलराम की, अंजना से कुन्ती की आदि अभिन्नता इसके उदाहरण हैं। अवतार का एक नया रूप, जिसके अनुसार विष्णु राम में, इन्द्र भरत में, ब्रह्मा शत्रुघ्न में तथा महेश्वर लक्ष्मण में अवतरित माने जाते हैं, सारलादास की नयी सृष्टि है। लक्ष्यशिर, सहस्रशिर, शतशिर और दशशिर रावणों का रामचन्द्र के द्वारा मारे जाने का उल्लेख भी अपने में विशेषता रखता है। दशरथ की ७५० पत्नियों का होना, दशरथ की पुत्री शान्ता का उल्लेख, सीता द्वारा पिण्डदान, नल-हनुमान-कलह आदि वृत्तान्त बंगाली राम-साहित्यकार कृत्तिबास से सादृश्य रखता है। इनके अतिरिक्त कई ऐसे वृत्तान्त भी इनमें पाये जाते हैं जो राम-कथा के विकास की दृष्टि से अपना विशेष महत्त्व रखते हैं। उदाहरण के लिए, लक्ष्मण द्वारा शूर्पणखा के पुत्र का बध, बालि तथा सुग्रीव का अहल्या के सन्तान के रूप में उल्लेख, हनुमान का रुद्रावतार माना जाना, ब्रह्मा के वीर्य से बाल्मीकि की उत्पत्ति, आदि।*

१६वीं शताब्दी के प्रारम्भ में उड़िया-साहित्य के प्रांगण में योगजन्मा कवि बलरामदास अवतार लेते हैं। मूल संस्कृत

---

* रामकथा (फादर कामिल बुल्के), पृ० २४१–४२; अनु० २९२।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामायण से कथावस्तु लेकर काण्ड तथा संख्याक्रम की रक्षा करते हुए उस नक्शे पर अपनी मौलिक उड़िया रामायण को रूप देने के कारण ही वे 'उत्कल-वाल्मीकि' कहे जाते हैं। बलरामदास का यह रामायण उड़ीसा में सर्वाधिक लोकप्रिय तथा लोगों में कई नामों से परिचित है। रचयिता का दिया हुआ नाम 'जगमोहन-रामायण' होने पर भी छन्द के नाम पर इसे 'दाण्डि-रामायण' तथा लेखक के नाम पर 'बलरामदास-रामायण' कहा जाता है। यद्यपि बाल्मीकि रामायण ही इसका मुख्य आधार है, फिर भी रामकथा के विकास की दृष्टि से इसमें बहुत-से परिवर्तन मिलते हैं। इस रचना के क्षेत्र में बलरामदास ने सारलादास के महाभारत से भी अनेक सृष्टि-कौशल का अनुकरण किया है। यहाँ पर राम या सीता सुदूर अयोध्या के नहीं हैं, बल्कि उड़ीसा प्रान्त से ही चुन लिये गये हैं। समस्त ग्रन्थ शिव-पार्वती-संवाद के रूप में प्रस्तुत किया गया है। सारलादास के रामकथा की भाँति 'बलरामदास-रामायण' भी बंगाली रामकथा से सादृश्य रखता है। दशरथ के प्रति शनि का वरदान; सीता का पूर्वानुराग; राम-गुह-बन्धुत्व; केवट-प्रसंग; विभीषण-मन्दोदरी-विवाह; ये सब सामग्री बंगाली रामायणकार कृत्तिवास में भी पायी जाती हैं। माया-सीता का वृत्तान्त, वेदवती की कथा, रावण का सीता-स्वयंवर देखने आना, मंथरा का वैर, सीता के प्रति लक्ष्मण का शाप, राम का मुनियों को गोपी बन जाने का वरदान देना, आदि कई ऐसे प्रसंग 'दाण्डि-रामायण' में उपलब्ध हैं, जो बाल्मीकि-रामायण के कथानक में यत्किंचित परिवर्तित होकर रामकथा के विकास में अपना वैशिष्ट्य रखते हैं।*

'जगमोहन-रामायण' के अतिरिक्त बलरामदास ने रामकथा से सम्बन्धित और भी कई रचनाएँ की हैं—'कान्त-कोइलि' और 'काकपोइ' नामक दो संदेश-काव्यों में अशोक वन की विरहिणी सीता पहले में कोयल को संबोधित कर अपने हरण के बाद की घटनाओं का वर्णन करती हैं और दूसरे में कौवे को संबोधित कर अपना दुःख सुनाती हैं तथा राम को एक लिखित सन्देश भेजती हैं। 'सीतांक बारमासी भावना' में अशोक वन की सीता ही पति के साथ अपने अतीत जीवन का स्मरण करती हैं। 'ब्रह्माण्ड-भूगोल' में बलरामदास ने समस्त रामकथा को शरीर में अवतरित कराया है। 'हनुमन्त-चउतिशा' में 'सीता-हनुमान-संवाद' का वर्णन है।

सोलहवीं शताब्दी में राम-साहित्य को प्रचुर परिमाण में जन-समर्थन प्राप्त हुआ। साथ ही इस युग की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि ने भी राम-साहित्य के प्रसार में काफी योगदान दिया। रामायण की काल्पनिक मनोमुग्धकर कहानियों से आकर्षित जनता राम-साहित्य में इतनी रुचि लेने लगी कि भागवत जैसे ग्रन्थ में भी जगन्नाथदास को नवम् स्कन्ध के चार अध्यायों में रामकथा का वर्णन करना पड़ा। इस प्रकार के वातावरण में नीलाम्बरदास ने 'ठिका रामायण' की सृष्टि की, जो 'दाण्डि-रामायण' की कथा-वस्तु से भी कई प्रसंगों में नूतनता रखती है। जैसे, महीरावण की कथा, रावण के चित्र के कारण सीतात्याग, लव-कुश युद्ध आदि। इसी शती के उत्तरार्द्ध में साहित्य के आंगिक-विभव में वैप्लविक परिवर्तन लेकर अर्जुनदास राम-साहित्य के प्रांगण में अवतरित होते हैं। गाल्पिक मनोवृत्ति के साथ-साथ साहित्य को इन्होंने पहली बार छन्दोबद्धता की ओर अग्रसर कराके समग्र राम-साहित्य के कंकाल को 'राम-विभा' काव्य का शरीर प्रदान किया। उड़िया राम-साहित्य में सर्वप्रथम गेय काव्य होने का श्रेय 'राम-विभा' को ही है। यागरक्षा से लेकर अयोध्या प्रत्यावर्तन तक सिर्फ बारह छन्दों में, क्षुद्र परिसर के बीच, सांगीतिक वातावरण में प्रस्तुत इस काव्य ने वास्तव में राम-साहित्य की परम्परा में अद्भुत गतिशीलता ला दी है। मुख्य रूप से सीता के नायिकात्व को इसमें सर्वथा नया रूप दे दिया गया है, जो इससे पूर्ववर्ती रामसाहित्य में उपलब्ध नहीं है। सीता की भाषा भी पहले की तरह प्राकृताभिमुखी न होकर शुद्ध साहित्यिक बन पड़ी है।

सत्रहवीं सदी तक आते-आते राम-साहित्य में सांगीतिकता तथा आलंकारिकता का विकास भी दृष्टिगोचर होता है। घुमुसर राजा धनंजयभंज का 'रघुनाथ-विलास' इस दृष्टि से अपना महत्त्व रखता है, जो आगे चलकर अठारहवीं शताब्दी में 'वैदेहीश-विलास' की रचना का मुख्य आधार बनता है। इसी शती में शंकरदास ने 'बारमासी कोइलि' की रचना की, जिसमें बारहमासे की शैली में वनवासी राम के प्रति कौशल्या का विरह-वर्णन है; महेश्वरदास का 'टीका-रामायण', जो एक प्रकार से बलरामदास की ही टीका है, इसी काल में लिखी गयी है। इसके अतिरिक्त

* रामकथा, पृ० २४२–४३; अनु० २९३.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कान्हुदास का 'रामरसामृतसिन्ध' और हलधरदास कृत 'अध्यात्म-रामायण' का उड़िया-अनुवाद भी सत्रहवीं शताब्दी की ही देन है।

अठारहवीं शताब्दी तक आते-आते राम-साहित्य काफी समृद्ध हो गया है। 'विलंका-रामायण' को कुछ लोग सिद्धेश्वर परिड़ा से भिन्न सिद्धेश्वरदास कृत मानकर इस युग का बताते हैं तथा साथ ही बारानिधिदासकृत 'विलंका-खण्ड' नामक एक अन्य ग्रन्थ का उल्लेख भी इस युग के अन्तर्गत करते हैं। इस काल में 'विचित्र-रामायण' के नाम से भी दो रचनाएँ मिलती हैं—एक विश्वनाथ खुँटिया की है, जो सर्वाधिक लोकप्रिय है और दूसरी भुइयाँ माधवदास की है। भाषा को सरल, सहज तथा छन्द रूप देने की खुँटिया जी की यह प्रथम प्रचेष्टा कही जा सकती है। गीतात्मकता से भरपूर इस रामायण की पंक्तियाँ वास्तव में गाँव के गँवारों से लेकर शहर के साहित्यकार तक के मुख से अद्यावधि सुनाई पड़ती हैं। कान्त-कोमल-पद्यावली का कैसा रमणीय चित्र! दशरथ की इक्कीस पटरानियों का उल्लेख, शान्ता की जन्मकथा, डाकिनियों से वानर-सेनापतियों का जन्म, लक्ष्मण द्वारा शूर्पणखा के पुत्र जयासुर का वध आदि प्रसंग माधवदास के विचित्र-रामायण की विचित्रता प्रतिपादित करते हैं। इसी शताब्दी में रीतियुगीन प्रतिनिधि कवि कविसम्राट् उपेन्द्र भंज राम-साहित्य-परक रचनाओं की सृष्टि करके राम-साहित्य में ही नहीं, पर समग्र उड़िया-साहित्य में चार चाँद लगा दिये। इन्हींके ही प्रयत्न से उड़िया-साहित्य आलंकारिक कविता को चरम-सीमा का स्पर्श कर सका था। कहा जाता है, उपेन्द्र भंज ने जितने छन्द तथा अलंकारों का प्रयोग किया है, संसार के विरले ही साहित्य में उतनों का प्रयोग हुआ है। राम-साहित्य-परक काव्यों में 'वैदेहीश-विलास', 'रामलीलामृत', 'अवना-रस-तरंग', 'पोलपोइ' आदि की रचना करके उपेन्द्र ने 'राम-साहित्य को विकास के शिखर पर पहुँचा दिया। इनमें 'वैदेहीश-विलास' एक ऐसा महाकाव्य है, जो केवल उड़िया में ही नहीं, बल्कि समस्त भारतीय साहित्य में बेजोड़ है। यह बाल्मीकि तथा अध्यात्म-रामायण, भोजकृत चम्पू रामायण, महानाटक आदि पर आधारित एक पांडित्यपूर्ण कृति है, जिसके सम्बन्ध में श्री प्रह्लाद प्रधान लिखते हैं, "रघुनाथ-विलास" की टक्कर पर उन्होंने 'वैदेहीश-विलास' लिखा था। नाम से स्पष्ट है कि विषय-वस्तु एक ही है, परन्तु 'वैदेहीश-विलास' में नाम के सदृश्य हर एक पंक्ति 'ब' से शुरू होती है। छन्द (सर्ग) में बाईस, बत्तीस आदि बकारादि संख्यक पद भी होते हैं।"[1] 'अवना-रस-तरंग' में भी कवि ने अपनी चमत्कारिता दिखायी है, जिसमें ईकारादि कोई मात्रा नहीं है। इस तरह के पाण्डित्य-प्रदर्शन तथा छन्दादि अलंकारों के अद्भुत समावेश राम-साहित्य के विकास में अपना विशेष महत्त्व रखते हैं, इसमें कोई शक नहीं है। इन काव्यों के अतिरिक्त इस शताब्दी में रामदास का 'राम-रसामृत', विप्रजनार्दनदास का 'राघव-चरितामृत', गोपीनाथ पात्र कवि भूषणकृत 'रामचन्द्र-विहार', त्रिपुरारिदास विरचित 'रामकृष्ण-केलिकल्लोल', यदुमणि महापात्र का 'राघव-विलास', लक्ष्मीधरदासकृत 'अंगदपड़ि', मागुणी पट्टनायक का 'रामचन्द्र-विहार', गोवर्द्धनदासकृत 'पचीसा पोइ', शिशु ईश्वरदास कृत 'बलराम-चरित' आदि भी पाये जाते हैं, जो राम-साहित्य की परम्परा में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

उन्नीसवीं-बीसवीं शती में भी राम-कथा-विषयक रचनाओं की सृष्टि होती रही। उन्नीसवीं शताब्दी में कृष्ण-चरण पट्टनायक रचित 'रामायण', भुवनेश्वर कविचन्द्र का 'सीतेश-विलास', केशव पट्टनायक का 'नृत्य-रामायण' या 'केशव-रामायण' तथा केशव त्रिपाठी का 'पूर्ण रामायण' आदि उल्लेखनीय हैं। 'हलिया-रामायण' हल चलाते समय के राम-कथा सम्बन्धी गीतों का संकलन है। आलोच्य-युग में राम-साहित्य की अंग-शोभा के विकास में कई चउतिशाओं[2] की भी रचना हुई है। इन चउतिशाओं की भाषा सरल, सहज और रसपरिवेषण सावलील होती है। 'सीतानुचिन्ता चउतिशा', 'मायामृग चउतिशा', 'रामचन्द्र-जणाण' आदि इसके प्रमुख उदाहरण हैं। इसके अतिरिक्त राम-साहित्य की लोकप्रियता का अन्य एक जोरदार कारण है—रामलीला। वीर रस परिवेषण, वैध-प्रेम तथा सामाजिक प्रेम का विकास प्रदर्शन ही रामलीला की मुख्य विशेषता रही है। रामलीलाकारों में ईश्वरदास, रघुनाथदास, वैश्य सदाशिव, ब्रजबन्धु सामन्तसिंहार, पीताम्बर राजेन्द्र,

---

१. हिन्दी-साहित्य-कोश, प्रथम भाग (उड़िया भाषा तथा साहित्य), पृ० १४३.।

२. उड़िया लोक-गीत की एक शैली।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विक्रम नरेन्द्र, अनंग नरेन्द्र तथा केशव पट्टनायक के नाम उल्लेखनीय हैं।

इसके उपरान्त राम-साहित्य के अविराम विकास में अनूदित राम-साहित्य का महत्त्व भी कम नहीं है। तेलेंगा गोपाल, नरहरि कविचन्द्र, सूर्यमणि च्याउ पट्टनायक तथा सारलादास (महाभारतकार से भिन्न) ने 'अध्यात्म-रामायण' का अनुवाद किया है तथा बनमाली दास ने भोजकृत 'चम्पू रामायण' अनूदित कर उसका नाम 'सचित्र-रामायण' रखा। इसके अलावा 'नृसिंह-पुराण' का सप्तम रत्नाकर (सूर्यवंश की उत्पत्ति से रामचन्द्र के स्वर्गारोहण तक), 'खण्ड रामायण', 'कृपासिन्धु रामायण', 'पूर्ण रामायण', 'भक्ति रसार्णव रामायण', 'रामरसामृत-रामायण', 'विचित्र-विलंका', 'तुलसी-रामायण', 'रघुमणि रामायण' आदि को प्रमुख स्थान प्राप्त है। जीवन के अधिक निकट होने के कारण 'तुलसी-रामायण' के नाम से अनूदित गोस्वामी का 'राम-चरित-मानस' उड़ीसा में सर्वाधिक लोकप्रिय हो सका है।

आधुनिक साहित्य की नूतन चिन्ताधारा के बावजूद राम-साहित्य की विकासधारा बहती गयी, बल्कि यह बार-बार अभिनव रूप लेकर ही सामने आई। वियोगात्मक अन्तःस्वर की परीक्षा सबसे पहले राम-साहित्य के माध्यम से ही राधानाथ ने की है। 'दशरथ-वियोग' इसका प्रमाण है। 'तुलसी-स्तवक' भी आधुनिक भाषा तथा भाव को लेकर सामने आई। व्यास कवि फकीरमोहन गद्य-साहित्य के क्षेत्र में प्रवेश करने के पहले उड़िया-नारी-हृदय के छोटे को छूनेवाली भाषा लेकर रामायण का अनुवाद किये थे। मधुसूदन ने 'बाल-रामायण', 'उत्तर राम-चरित' नाटक का अनुवाद तथा 'सीता बनवास' की रचना करके उस समृद्ध परम्परा को अक्षुण्ण रखा। पल्लीकवि नन्दकिशोर बल ने 'सीता-बनवास' कविता में वियोग का चित्र खींचकर, करुण स्वर-लहरी से सरला, अबलाओं की आँखों में आँसू भर दिये। गंगाधर मेहेर ने 'तपस्विनी' को जिस भाषा-पोषाक में सजाया, उसे राम-साहित्य में आधुनिकता का स्पष्ट संकेत समझना चाहिए। बीसवीं सदी में विविध वादों के जरिये फिर राम-साहित्य ने जो आभिमुख्य ग्रहण किया है, वह वास्तव में अविस्मरणीय है। साथ ही आधुनिक नाट्य-जगत् में भी राम-साहित्य ने जो क्रान्ति मचा दी है, उससे निस्संदेह इस परम्परा के उज्ज्वल भविष्य की आशा की पुष्टि होती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पन्ना की प्राचीन साहित्य सेवा

श्री रमेश ठाकुर

आधुनिक २०वीं शताब्दी की सुप्रसिद्ध हीरों की नगरी (पन्ना) की १७वीं शताब्दी की साहित्यिक पृष्ठभूमि देखने से हमें अपने हृदय-प्रदेश पर गर्व होता है कि पन्ना की साहित्य सेवाएँ बुन्देलखण्ड के महाराजा कवि छत्रसाल जैसे प्रसिद्ध वीर भक्त और कवि के कारण बड़ी गर्वीली रही हैं। भूषण की पालकी में अपना कन्धा लगाकर वीर छत्रसाल ने साहित्यकार के प्रति जो सम्मान किया था उसकी समानता राज्याश्रय प्राप्त साहित्यकार को नहीं मिली।

पन्ना की इस प्राचीन साहित्य सेवा के अन्तर्गत हमें हिन्दीजगत के कुछ प्रमुख कवि बरबस ही याद आ जाते हैं जिनमें महाप्रभु प्राणनाथजी, छत्रसाल, भूषण, लाल, नेवाज़, भगवत, लालदास, नवरंग, करनकवि, हरिकेश, माखन, लघुरामकृष्ण, गुलाब, जीवनमस्तान, हृदयशाह, मुरलीधर, बख्शी हंसराज, प्रेमसखी, रूपसाहि, मानकवि, रामचन्द्र, बोधाठाकुर, हरवंशराय, पजनेश, स्कन्धगिरि, माखन लखेर, परमानन्द मुख्य हैं जिन्होंने पन्ना की धरित्री को साहित्यिक स्वरूप प्रदान किया।

सर्वप्रथम महाकवि प्राणनाथजी का नाम आता है। आप छत्रसाल के पथ-प्रदर्शक और गुरु एवं उपदेशक थे। आपने अठारह हजार छन्दों का 'कुलजम स्वरूप' नामक विशाल ग्रन्थ लिखा है।

फरमान मेरे महबूब का ले आया अरस अरस से रसूल।
भज्या अपनी अरदाहों पर साहिब हुए अनकूल॥

इसके पश्चात् श्री चम्पतराय के वीर कवि छत्रसाल भी एक काव्यप्रेमी साहित्य-सेवी थे। आपके ग्रन्थों का संग्रह छत्रसाल ग्रन्थावली के नाम से श्रीवियोगी हरिजी ने सम्पादित किया है।

अगम अनादि जासु सुनत फिरादि दादि,
होत है सहाय भाय अन्तर को पायबो॥
तासों राजनीति में अनीति कहौ कौन करै,
छत्रसाल, भाखतु है वेदनि को गायबो।

पन्ना की साहित्यिक भूमि में भूषण कवि भी कुछ दिन रहे और उनको छत्रसाल ने इतना अधिक सम्मान दिया था कि वे कह उठे थे—"साहू कों सराहौं कि सराहौं छत्रसाल कों।"

लाल कवि के नाम से हिन्दी संसार में प्रसिद्ध गोरेलाल कवि भी छत्रसाल के समय प्रमुख कवियों में थे। आपका छत्रप्रकाश नामक ग्रन्थ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

दान दया घमसान में, जाके हिये उछाह।
सोई बीर बखानिये, ज्यों छत्ता छित्रिनाह॥

नेवाज, भगवत और करनकवि भी पन्ना में आकर छत्रसाल के समकालीन कवियों में प्रमुख थे। हरिकेश कवि का 'छत्र-विलास' ग्रन्थ छत्रसाल के ग्रन्थों का संग्रह है।

माखन कवि, लघुरामकृष्ण, गुलाब, जीवनमस्तान, हृदयशाह के अतिरिक्त सुप्रसिद्ध कवि बख्शी हंसराजजी के पिता मुरलीधर भी एक प्रसिद्ध कवि थे।

संवत् १७९९ में जन्मे सुप्रसिद्ध बख्शी हंसराज (प्रेमसखी) का सनेहसागर हिन्दी-साहित्य में अपना विशेष महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। आप श्री अमानसिंह के दरबारी कवि थे। साहित्यकार श्री रत्नकान्तजी के शब्दों में—इनकी काव्यधारा में अजस्र प्रवाह है, रस-अलंकारों का पूर्ण परिपाक है। साधारण सी बात को इन्होंने इतनी उत्तमता से कहा है कि बरबस वह हृदयस्थल हो जाती हैं। बुन्देलखण्डी भाषा में रचित छन्दों से जड़ित एक सुन्दर अंश देखिये—

इतते चली राधिका गोरी सौंपन अपनी गैया।
उतते अति आतुर आनन्द सों आये कुंवर कन्हैया॥
कसि भौंहें, हँसि कुंवरि राधिका, कान्ह कुँवर सो बोली।
अँग-अँग उमगि भरे आनन्द सों दरकति छिन-छिन चोली॥

श्री अमानसिंह के दरबारी कवियों में श्री मानकवि और रामचन्द्र भी थे। रूपसाहिज़ी का रूप-विलास भी महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री हिन्दूपति के आश्रितकवि में श्री करनकवि के सम्बन्ध में 'कवि-कीर्त्तन' में श्री वियोगी हरिजी ने इस प्रकार लिखा है—

करन कवीस्वर काव्य करन पन्ना दरबारी।
रसकलोल साहित्यसुरस रचि मोहिनि डारी।
लक्ष्य व्यंग रस रूप अलंकृत पद लिख दीने।
रचना ललित प्रसाद, ओजजुत भाव नवीने॥

इसके बाद हिन्दी संस्कृत और फारसी भाषाओं के पंडित 'बोधा' जी की याद आती हैं। ये पन्ना दरबार की सुभान वेश्या पर मुग्ध हो गये थे। उसे अत्यधिक चाहते थे। महाराज पन्ना को यह बुरा लगा, उन्होंने इन्हें ६ माह के लिए राज्य के बाहर निकाल दिया। ६ माह राज्य के बाहर रहकर सुभान के वियोग में इन्होंने 'विरहबारीश' लिखा। जब सातवें माह राज्य में आये तो महाराज को विरह-बारीश के छन्द सुनाये। महाराज इनकी कविता सुनकर अत्यन्त प्रभावित हुए और इनाम माँगने को कहा। आपने कहा यदि आप प्रसन्न हैं तो मुझे मेरी सुभान दे दीजिये। महाराज ने सुभान को दे दिया। इसके पश्चात् इन्होंने सुभान पर 'इश्कनामा' नामक ग्रन्थ लिखा, जिसमें सुभान की बड़ी प्रशंसा की गयी। जीवनपर्यन्त यह फिर पन्ना में ही रहे और वहीं शरीरान्त भी हुआ। अर्थात् बोधाजी प्रेमी कवि थे।

अति खीन मृणाल के तारहु ते तेहि ऊपर पाव दै आवनो है।
सुई बेहते द्वार सको न तहाँ परतीति को टांडो लदावनो है॥
कवि 'बोधा' अनी-घनी नेजहुते चढ़ि तापै न चित डरावनो है।
यह प्रेम को पंथ कराल महा तरवार की धार पै धावनो हैं।

बोधा के बाद कवि 'ठाकुर' भी पन्ना महाराज किशोर सिंह के दरबार में सम्मानपूर्ण स्थान रखते थे। 'ठाकुर ठसक' नामक इनकी कविताओं का उत्तम संग्रह है जिसे भगवानदीन जी ने संग्रह किया है। ठाकुर की कविता ओज-मयी, सरस और चुटीली हुआ करती थी। संयोग और वियोग, शृङ्गार, नायिका भेद, नशशिखवर्णन, ऋतुवर्णन आपका अत्यन्त सौम्य हुआ है।

देवरानी जेठानी सबै जगतीं खड़को सुनिहै न गहो बहियाँ।
हमें सोवन देहु उलाइत का हरि धीर धरौ हिरदै महियां॥
कह 'ठाकुर' क्यों उकताव लला इतनी सुनि रीखिय मो पहियाँ
सब रैन परी न खिजाओ हमें अबै सेर में पोनी कती नहियाँ॥

बोधा ठाकुर की शृङ्खला में ही एक अन्य प्रसिद्ध प्राचीन कवि की याद आती है जो शृङ्गारी कवि थे। पजनेश कवि का जन्म भी साहित्यिक धरा पर हुआ। इन्होंने मधु-प्रिया, नखशिख, पजनेश-शतक आदि ग्रन्थ लिखे हैं। पजनेश प्रकाश नामक ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है। ये चमत्कार प्रिय कवि थे।

नवला सरूप रूप रावरे रुचिर रूप,
रचना विरंचि कीनी सकुच न लागी है।
मन 'पजनेश' लोल लोयन को लौको गोल,
गुलफ गुराई लाज सकुच न लागी है।
सुन्दर सुजान सुखदान प्रीति प्रीतम की,
एकोना परेख अब सकुचन लागी है।
औचक अचान लाग कंचुकी रुचन लागी,
सकुचन लागी आली सकुचन लागी हैं।

महाराज किशोर सिंह और उनके सुपुत्र हरवंशरायजी भी अच्छे कवि थे। दोनों की रचनाओं में भक्तिभाव है। आज भी जब पन्ना जिले का सबसे बड़ा रथयात्रा-महोत्सव होता है तब इन दोनों पिता-पुत्रों की रचनाओं को गाकर भजन करनेवाले विभोर हो जाते हैं।

हरि रथ निकट रमा महरानी।
तरक बात हँसि कहत परस्पर प्रेम सहित मृदुबानी।
बसि ससुरार नारि के चेरे हिय में लाज न आनी।
सब जग हँसै-हँसैं जन तुम्हरे, सखा देय सब तानी।
हौ रघुवंशी वंश प्रशंसी सो अब जात खुटानी।
गेह चलो त्रिभुवन पति स्वामी नृप 'हरवंश' बखानी॥

स्कन्धगिरि और माखन लखेर भी पन्ना के प्राचीन प्रसिद्ध कवियों में गिने जाते हैं। माखन लखेर ने अपनी जन्मभूमि के प्रति श्रद्धा सुमन इस प्रकार अर्पित किये हैं :—

राचो रुचि रामधाम परना कासी समान,
किलकिला गंगा समान आतुर बहानी हैं।
जाही के नीर तीर मंदिर हनुमानजी को,
परना पुराने खेरे राजती भवानी है।
आसपास ताल भरे फूलत सरोज जामें,
धर्म दरियाव को सरोवर को पानी है।
हीरन की खान जहाँ 'माखन' बखान करै,
राधिका किसोर जू की राजत रजधानी है।

अजयगढ़ पन्ना जिले में जन्मे परमानन्द का कविता-काल भी प्राचीनयुगीन माना जाता है। इसके पश्चात् रसिकेश 'रसिक बिहारी' का जन्म पन्ना में हुआ और श्रीराम-प्रसाद का जन्म बनहरी (अजयगढ़) में, जिन्होंने अधिकांश कुण्डलियाँ ही लिखी हैं। और इस प्रकार हमें यह स्वीकारना पड़ता है कि पन्ना की साहित्य-सम्पदा से धनी यह धरित्री-निरन्तर अनेकानेक साहित्यकारों को जन्म देती रही और वर्तमान में भी 'गांधी परायण' के रचयिता जैसे साहित्यकारों को जन्म देकर अपनी प्राचीन परम्परा को कायम किये हुए है जिस पर हमें गौरव है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेहता कृष्णाराम—एक झलक

श्री नारायणप्रसाद चतुर्वेदी

"लीडर" अखबार के सुवर्णयुग में तीन हस्तियाँ थीं जिन्होंने उसको इतना शक्तिशाली बनाया : (१) सर सी० वाई० चिन्तामणि, (२) मेहता कृष्णाराम, (३) बाबू विश्वनाथप्रसाद। उत्तर प्रदेश में सार्वजनिक जीवन के उत्थान का श्रेय "लीडर" को है। पं० मोतीलालजी नेहरू और महामना पंडित मदनमोहन मालवीयजी की प्रारम्भ में, और बाद में सर तेजबहादुर सप्रू की संरक्षता इसको प्राप्त थी। राजनीतिज्ञ लोग इसकी फाइल बनाकर सार्वजनिक प्रश्नों का अध्ययन करते थे। संयुक्त प्रान्त (उ० प्रदेश) की सरकार के हाकिम "लीडर" की सम्पादकीय टिप्पणियों से घबड़ाते थे। "लीडर" प्रेस एक महत्त्वपूर्ण और प्रभावशाली संस्था हो गयी थी। सर जे० सी० बोस, सर पी० सी० राय, स्वर्गीय महाराजा अलवर उन महानुभावों में से थे जो "लीडर" प्रेस आये और जिनका स्वागत करने का मुझे अवसर मिला। जब उत्तर प्रदेश में स्वराज्य पार्टी की सरकार बनी और स्वर्गीय गोविन्द वल्लभ पंत मुख्य मंत्री हुए तब वह यह नहीं चाहते थे कि स्वर्गीय चिन्तामणि साहब विरोधी दल के नेता हों। स्वर्गीय डाक्टर काटजू की राय इसके विपरीत थी, लेकिन उनकी न चली। इस पर स्वर्गीय डा० काटजू का तर्क था—

Chintamani may not be there in the Council as leader of the opposition but how can you eliminate the "Leader" which will continue to function as Leader of the opposition ?

(चिन्तामणि काउन्सिल में विरोधी दल के नेता न रहें लेकिन यह काम "लीडर" अखबार करेगा)। "लीडर" में एक अग्र लेख निकला जिसका शीर्षक था "Insolence"—"(धृष्टता)। वह स्वर्गीय मोहम्मद अली जिन्ना पर लिखा गया था। देहली में जो डाक्टर जोशी का अस्पताल था उसमें हर एक मरीज ने उसको बारी-बारी से पढ़ा। क्या कोई अनुमान कर सकता था कि इतना प्रतिष्ठित अखबार बन्द हो जायेगा ? कलेजे पर हाथ रखकर यही कहना पड़ता है," The "LEADER" is dead. Long live the "Leader". (लीडर मर गया, लीडर चिरजीवी हो।)

इस प्रतिष्ठित अखबार के सर सी० वाई० चिन्तामणि प्रधान सम्पादक थे, मेहता कृष्णाराम सम्पादक एवं सचिव न्यूज पेपर्स लिमिटेड थे, और बाबू विश्वनाथप्रसाद जनरल मैनेजर। जब चिन्तामणि साहब संयुक्त प्रदेश (उ० प्र०) में शिक्षा मंत्री हो गये तो "लीडर" अखबार का पूरा भार मेहता कृष्णारामजी पर पड़ा। जो आदेश चिन्तामणि साहब दे गये थे उनका पालन सहर्ष और बड़ी निष्ठा से मेहताजी ने किया। सम्पादकीय विभाग के सज्जन आपस में उनको "भरत-चीफ" कहकर सम्बोधित करते थे।

मेहता कृष्णाराम बनारस के रहनेवाले थे जहाँ उन्होंने वकालत शुरू की थी। इस पेशे की तरफ उनकी रुचि नहीं थी। कुछ समय तक वह राजा मोतीचन्द के सचिव भी रहे। "लीडर" अखबार के वह बनारस के संवाददाता भी थे। अंग्रेजी अच्छी लिखते थे और इसी कारण उनको "लीडर" में लाया गया। यहाँ उन्होंने जी तोड़कर काम किया। पहिले "लीडर" अखबार १४-ए साउथ रोड, इलाहाबाद से निकलता था। इमारत किराये की थी और रात को मिट्टी के तेलवाली लालटेनों से काम होता था। बरसात के दिनों में जब कीड़ों का धावा होता तब तो आफत आ जाती थी। उस समय भी "लीडर" अखबार की ख्याति कायम हो गयी थी और स्वर्गीय मौलाना मुहम्मद अली ने अपने साप्ताहिक अखबार "कामरेड" में, जिसको वह दिल्ली से निकालते थे, "लीडर" की प्रशंसा की थी।

तखत का विस्तृत प्रयोग

साउथ रोड पर मेहता कृष्णाराम "लीडर" प्रेस के बराबरवाले बँगले में रहते थे। उसी बँगले के बाईं ओर के हिस्से में सर्वश्री रामेश्वरनाथ जुतशी, डी० डी० भारद्वाज और बी० एल० नरसिंघम रहते थे। जुतशी साहब बाद में (जब श्री घनश्यामदास बिरला ने "लीडर" को खरीद लिया) उसके सम्पादक हुए। शाम के समय बँगले के आगे मेहताजी के दो तखत पड़ जाते थे। एक पर इलाहाबाद के एक राय साहब और दूसरे पर कृष्णारामजी विराजमान रहते थे। दोनों एक दूसरे के प्रति बहुत आकर्षण रखते थे। मेहताजी तखत पर बैठे लिखते रहते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

या अखबार पढ़ते रहते थे और राय साहब चुपचाप बैठे अपनी घोड़ा गाड़ी की ओर निगाह रखते थे। मेहताजी ने तखत का सदुपयोग जीवन-पर्यन्त किया। वही उनकी सेक्रेटेरियट टेबिल और सोफा सेट एवं डाईनिंग टेबिल था। वही तखत आलमारी का भी काम करता था और उसके किसी हिस्से पर जरूरी से जरूरी कागज रक्खे रहते थे। वही तखत उनका क्लब था, और उसी पर बैठ कर वह ताश खेलते थे। तखत का इतना विस्तृत प्रयोग मैंने कहीं अन्य स्थान पर नहीं देखा। उस तखत का सौंदर्य और उसकी गरिमा उस पर बैठनेवाले ही महसूस कर सकते थे।

मेहताजी की सबसे भारी प्रसन्नता की घड़ी

मेहताजी के जीवन की सबसे प्रसन्नता की घड़ी वह थी जब 'लीडर' अखबार की लूकरगंज में विशाल इमारत के बनने और रौटरी मशीन लग जाने के बाद उसका उद्-घाटन हुआ। इस जलसे में महामना पं० मदनमोहन मालवीय सभापति थे और पंडित मोतीलालजी नेहरू मुख्य अतिथि। "लीडर" अखबार के लिए रौटरी मशीन का लग जाना एक महत्त्वपूर्ण घटना थी। वह एक घंटे में तीस हजार प्रतियाँ छाप सकती थी। पंडित मोतीलाल नेहरू और मालवीयजी दोनों बहुत प्रसन्न थे। मालवीयजी आध घंटे बोले। उन्होंने पहिले चिन्तामणि साहब की प्रशंसा की और कहा कि "यह तो चलते-फिरते विश्वकोश हैं और सार्वजनिक प्रश्नों का उनका बहुत बड़ा अध्ययन है। चिन्तामणि की प्रतिभा का इतना विकास न होता और उनकी इतनी ख्याति न होती अगर उनके साथ श्री कृष्णारामजी न होते—कृष्णाराम ने तो "लीडर" की उन्नति में धाय का काम किया है।" मालवीयजी के भाषण के बाद पंडित मोतीलाल नेहरू बोले—उनका भाषण अंग्रेजी में था—उन्होंने कहा : I started the 'Independent' when the 'Leader" began to play with my beard. (Laughter) I concur with Malviyaji that Krishna Ramji has worked as a nurse for the "Leader' I would add two words and say "highly solicitous"nurse.

मोतीलालजी ने जो उल्लासपूर्ण प्रशंसा मेहता कृष्णा-रामजी की की उस पर सबने प्रसन्नता प्रकट की।

जरूरत से अधिक सचेत

"लीडर" के सम्बन्ध में यही मेहताजी का वास्तविक स्वरूप था। मजाक में आदमी कहते थे कि "लीडर" प्रेस की इमारत का मुँह मेहताजी ने सड़क की तरफ नहीं रक्खा बल्कि अपने बँगले की तरफ, जिससे कि वह उसकी ओर २४ घंटे देखते रहें। प्रेस के आदमी उनको "बड़े बाबू" कहते थे। जब वह प्रेस में आ जाते थे तो सन्नाटा छा जाता था। जाड़े की रात में भी तीन बजे उठकर वे चले आते थे। मिस्टर हैलेट उत्तर प्रदेश के गवर्नर थे। वह बहुत सख्त थे। एक बार एक कार्टूनकार ने एक कार्टून (व्यंग चित्र) बनाया जो मिस्टर हैलेट पर था। एक अंग्रेज का पेट फूला है और एक भारतीय उसको छुरा से फाड़ रहा है। जो अखबार लखनऊ जाता था उसकी जिम्मे-दारी मेरी थी। मुझसे बोले : "यह कार्टून किसने दिया है, इसको फौरन पेज से निकलवाओ।" मैंने निवेदन किया कि इस विषय पर मैंने कानून का अध्ययन किया है और कार्टून आपत्तिजनक भी हो तो राजद्रोह का मुकदमा नहीं चलता। वह बोले : "आप तो इस तरह बात करते हैं गोया कि एल-एल० बी० पास हों।" मैंने संकोच के साथ निवे-दन किया कि एल-एल० बी० पास किये तो तीन साल हो गये हैं और अब एल-एल० एम० के लिए भी अध्ययन पूरा हो गया है। उन्होंने कहा : "वाह आपने बताया नहीं"। तब तक वह इसी ख्याल में थे कि मैं केवल हाईस्कूल पास हूँ"। सच बात तो यह है कि सिवाय थोड़े समय के जब वह शाम को ताश खेलते थे उनका सब समय "लीडर" के लिए ही खर्च होता था और उसके लिए सम्पादकीय लेख लिखने के अलावा अगर "लीडर" के पुराने अखबारों की रद्दी बिकने के लिए तुल रही हो तो तराजू के पास मेहताजी खड़े पाये जाते थे। मेहताजी की दुनिया लीडर प्रेस का घेरा थी। "आप जानें" मुझसे यह कहकर मेहताजी ने कार्टून को छपने दिया।

अहंकार की भावना से मुक्त

इलाहाबाद में नागरिकों की एक संस्था थी जिसके सभापति स्वर्गीय श्री प्रकाश नारायण सप्रू थे। उसके वरिष्ठ उपसभापति मेहता कृष्णाराम थे और मैं कनिष्ठ उपसभापति था। उस संस्था ने यह निश्चय किया कि स्वर्गीय मोहम्मद अली जिन्ना का स्वागत किया जाय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९७३

वह अपनी १३सूत्री माँगें लेकर दिल्ली जा रहे थे और दो दिन इलाहाबाद में ठहरे थे। सभा लीडर प्रेस की छत पर हुई और स्वल्पाहार के बाद भाषण हुआ। इलाहाबाद के प्रमुख आदमी उसमें आमन्त्रित थे। बैठने का प्रबन्ध कुर्सियों पर था और उनके आगे मेज़ थी जिन पर मिठाई, नमकीन और फल काफी संख्या में रक्खे हुए थे। जिन्ना साहब से राजनैतिक मतभेद होने के कारण स्वर्गीय प्रकाश नारायण सप्रू ने उस सभा में सभापति होना मुनासिब नहीं समझा। मेहताजी को भी संकोच था। उन्होंने यह तजवीज की कि उस सभा का मैं सभापतित्व करूँ। बहैसियत सभापति के मैंने जिन्ना साहब का स्वागत किया और जो देश में उस समय समस्याएँ थीं उन पर प्रकाश डाला। जो मैंने जिन्ना साहब के सामने सवाल रक्खे थे उनका उन्होंने जवाब दिया। भगवान् की दया से मेरा भाषण जम गया। सब आदमी प्रसन्न हुए, लेकिन सबसे अधिक मेहता कृष्णाराम जी। चलते समय जिन्ना साहब ने मुझसे कहा कि अगर मैं बम्बई जाऊँ तो उनसे अवश्य मिलूँ। मेहताजी भी बराबर में खड़े थे। मुझसे बोले—"जिन्ना साहब पर खूब रंग जमाया।" मैंने उनको बताया कि जब चाय पी रहे थे तो जिन्ना साहब ने मुझसे कहा कि कल रात लखनऊ में एक दावत में नवाब छतारी ने उनको एक कचौड़ी ज्यादा खिला दी, इससे उनके पेट में एक बलवा हो गया—(जो अंग्रेजी का शब्द उन्होंने प्रयोग किया वह "Riot" था।) वह बोले कि तुमने जिन्ना साहब से क्या कहा। मैंने जबाब दिया कि मैंने जिन्ना साहब से कहा था कि मेरे पेट में एक हफ्ते से बलवा हो रहा है, और केवल एक संतरा खाकर शिष्टाचार को पूरा किया। मेहता साहब बोले कि प्रेसीडेण्ट बनाकर तुम्हारा नुकसान थोड़े ही करना है, कितनी बढ़िया स्पीच थी और केवल एक नारंगी! मथुरा के कुछ चतुर्वेदी युवक भी आये हुए थे जिनमें एक डाक्टर बरसानेलाल चतुर्वेदी भी थे। मेरे साथ उन सबको बैठाकर मेहताजी ने हम लोगों को खूब मिठाई खिलाई। अपने हाथ से उठा-उठाकर तश्तरी देते थे। मेहताजी में अहंकार की भावना लेशमात्र भी नहीं थी।

जिन्ना साहब को मेहताजी की याद

बम्बई जाने का भी अवसर आ गया। उपर्युक्त घटना के तीन-चार साल के अन्दर मुझे वहाँ कुछ बुन्देलखंड के राजा-महाराजाओं के साथ जाना पड़ा जिनका मैं राजनैतिक और कानूनी सलाहकार था। एल-एल० एम० के अध्ययन में मुझको सर्वोपरि अधीश्वरता (Paramountcy) के विषय में काफी दिलचस्पी थी और इस विषय पर मैंने काफी अध्ययन कर लिया था तथा करीब २०० रु० की किताबें खरीद ली थीं। इसीके बारे में राजा-महाराजा मुझसे परामर्श करते थे। मैं सेठ काशीदास, वालकेश्वर रोड के साथ ठहरा। उन्हीं दिनों श्री के० एम० मुंशी की लड़की का विवाह था। सेठ काशीदास मुझको भी अपने साथ वहाँ ले गये। वहाँसे हम लोग जिन्ना साहब की कोठी पर गये जो मालाबार हिल में स्थित थी। जब मैंने कहलवाया कि इलाहाबाद से नारायण प्रसाद चतुर्वेदी आये हैं तो जिन्ना साहब ऊपर से नीचे उतरकर आये और अपने दरवाजे पर मेरा स्वागत किया। यह देखकर कि जो आदमी महात्मा गांधी का स्वागत करने को दरवाजे पर नहीं आया, वह मेरे लिए आया, मैं पानी-पानी हो गया। गांधीजी से दरवाजे पर न मिलना जिन्ना साहब की एक राजनैतिक चाल (Political stunt) थी। मुझको देखते ही जिन्ना साहब ने अपने रसोइया से कहा: "बनारस पंडित"। यह इशारा काफी था। मेरी मेज़ पर करीब एक पाव पिस्ता, एक पाव काजू और एक पाव किशमिश रख दिये गये। इनके अलावा ३० सन्तरे। मैंने जिन्ना साहब से कहा: What will I do with all this? (मैं इन सबका क्या करूँगा?) जिन्ना साहब बोले: "Eat as much as you can and take the rest with you" (जितना खा सको खाओ और बाकी साथ ले जाओ।)

चलते वक़्त जिन्ना साहब ने मुझसे कहा: Please remember me to Mr. K. Ram. इलाहाबाद आकर यह सब संतरे मैंने अपने मित्र सिद्दीकी साहब को दे दिये। वह संतरे इलाहाबाद के मुसलमानों में बँटे। संतरे की फाँक की बाबत तो क्या कहें, छिलके तक के टुकड़ों को मुसलमानों ने जिन्ना साहब का 'तबर्रुक' (प्रसाद) कह के सिर से लगाया। जब यह सब बातें मैंने मेहताजी को सुनाईं तो वह बहुत खुश हुए और बोले: "You are fit for diplomatic service. (तुम राजनयिक सेवा के योग्य हो।) यह शब्द मेहताजी के मेरे प्रति आशीर्वाद के रूप में थे, और मैं कुछ ही साल बाद सोहावल रियासत का दीवान एवं जज नियुक्त हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चिन्तामणि साहब से सम्बन्ध

मेहताजी चिन्तामणि साहब के बेहद प्रशंसक थे। वह उनके सच्चे अनुरागी और अनुगामी थे। उनमें उनके प्रति श्रद्धा और स्नेह दोनों थे। जब चिन्तामणि साहब छुट्टी जाते थे तो ज़ाप्ते की एक अर्जी उनके पास भेजते थे क्योंकि मेहताजी न्यूज़ पेपर्स लिमिटेड के सेक्रेटरी भी थे। मेहताजी उसका जवाब "My dear Chintamani" लिखकर देते थे। कुछ थोड़ा-बहुत उनसे भय भी खाते थे। एक दिन चिन्तामणि साहब ने मुझको अपने साथ भोजन के लिये बुलाया। यह कृपा मुझ पर स्व० चिन्तामणि साहब प्रायः रविवार को करते थे। चलते समय उन्होंने कहा कि कृष्णाराम से कह देना कि उस विषय पर सम्पादकीय लेख लिखकर उनके दफ्तर के पहुँचने के पूर्व तैयार रखें। दफ्तर आने पर जब चिन्तामणि साहब ने मेहताजी से पूछा कि वह अग्रिम लेख तैयार है, मेहताजी ने चिन्तामणि साहब से कहा कि चौबे ने मुझसे कहा ही नहीं। जब मेहताजी के सामने चिन्तामणि साहब ने मुझसे पूछा तो मैंने जवाब दिया : I can neither affirm nor deny. (न मैं हाँ कर सकता हूँ और न ना।) दोनों मुसकरा दिये। चिन्तामणि साहब बोले, Chaube, you have developed to be a diplomat. (चौबे, तुम कूटनीतिज्ञ होते जा रहे हो।) यह मेरे लिए आशीर्वाद के शब्द थे। जब मैं सोहावल राज्य का दीवान था तो प्रजामंडल का आन्दोलन बहुत जोरों पर था। सोहावल के इर्द-गिर्द रियासतों, जैसे नागोद आदि में किसानों ने लगान देना बंद कर दिया था। सोहावल रियासत में पूर्ण शान्ति थी और जब विन्ध्य प्रदेश की सरकार बनी तो सोहावल के खजाने से मैंने करीब दो लाख रुपया दिया जबकि कुछ अन्य रियासतों से कुछ आने ही मिले थे।

जब "लीडर अखबार को स्थापित करना था और कठिनाइयाँ भी झेलनी थीं तो चिन्तामणि साहब ने दिन-रात में १८ घंटे काम किया। जीवन के अन्तिम दिनों में चिन्तामणि साहब दफ्तर ६ बजे शाम को आते थे और ८ बजे चले जाते थे। मैं एक दिन सवा आठ बजे पहुँचा। चिन्तामणि साहब को मुझे कुछ आदेश देने थे। मैं रात की ड्यूटी पर था। चिन्तामणि साहब बोले : "Why are you late ? (तुम देर से क्यों आये ?)" मैंने कहा : The food was prepared late. (भोजन देर से बना।) चिन्तामणि साहब बोले : "Why was it prepared late ? (वह देर से क्यों बना ?) मैंने कहा : "I have to purchase ghee on credit and the shopkeeper was not at his shop." (मुझे घी उधार लेना पड़ता है और बनिया दूकान पर न था।) चिन्तामणि साहब बोले, "Call Krishna Ram" (कृष्णाराम को बुलाओ।) जब मेहताजी आ गये तो चिन्तामणि साहब बोले : "Krishna Ram, is it not a matter of shame that a member of the editorial staff has to depend on credit for preparation of meal in time." (कृष्णाराम, क्या यह लज्जा की बात नहीं है कि सम्पादकीय विभाग के व्यक्ति को भोजन के लिए उधार लेना पड़ता है ?) मेहताजी ने कहा : "Yes, Chintamani"। दूसरे दिन मेहताजी ने मेरे ५ रु० बढ़ा दिये। मेहताजी चिन्तामणि साहब का सदैव समर्थन करते थे और "लीडर" के संचालक (directors) मेहताजी का समर्थन करते थे। आर्थिक मामलों में मेहताजी का निर्णय अंतिम होता था।

मेहताजी के सहयोगी

यह बात बिलकुल सत्य है कि बगैर मेहताजी के पूर्ण सहयोग के चिन्तामणि साहब बेखटके काउंसिल की मीटिंगों में नहीं जा सकते थे। चिन्तामणि साहब का सार्वजनिक समस्याओं का बहुत गम्भीर अध्ययन था। काउन्सिल में तो वे शेर की तरह दहाड़ते। यह भी सच है कि बगैर स्वर्गीय बाबू विश्वनाथप्रसाद के, जो लीडर के जनरल मैनेजर थे, मेहताजी "लीडर" की इतनी सेवा नहीं कर पाते। बाबू विश्वनाथप्रसाद को हम लोग "अधिष्ठाता" कहते थे। बाबू विश्वनाथप्रसाद प्रेस के मामलों में जो व्यापार से सम्बन्धित थे, लाला दुर्गाप्रसाद पर निर्भर रहते थे। लाला दुर्गाप्रसाद से प्रेस के कर्मचारी जरूरत पड़ने पर दो-चार रुपया उधार ले लेते थे और तनख्वाह मिलने के समय उस रकम को कटवा देते थे। इस सबका नतीजा यह था कि मेहताजी के समय में कोई मजदूरों की समस्या पैदा नहीं हुई। मेहता कृष्णाराम और लीडर प्रेस के कर्मचारी एक कुटुम्ब थे और जब उनके बड़े लड़के श्री बलवन्तराम मेहता का विवाह हुआ तो मेहमान केवल लीडर प्रेस के कर्मचारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९७३

हिन्दू और मुसलमान थे। मेहताजी के भान्जे पं० महीपतिराम नागर थे जिन्होंने बहुत से नवयुवकों की नाव को किनारे लगाया। कितनी ही संस्थाओं और नवयुवकों का उन्होंने भला किया।

पड़ोसी के प्रति सहनशीलता

पं० महीपतिराम की सिफारिश पर मुझको "लीडर" के सम्पादकीय विभाग में नियुक्त किया गया था। मेरी नियुक्ति ५० रु० माहवार पर बहैसियत जूनियर रिपोर्टर के हुई थी। मेरे सीनियर एक अन्य सज्जन थे। उनको मुझसे इस बात का खतरा था कि मैं उनकी जगह ले लूँगा। "लीडर" के अधिकारियों का कुछ विचार भी ऐसा ही था क्योंकि वह सज्जन केवल अंग्रेजी में दिये हुए भाषण ही रिपोर्ट कर सकते थे। अतएव उन्होंने मुझे ६ महीने तक कोई मौका न मिलने दिया कि मैं यह दिखा सकूँ कि मैं शार्टहैंड जानता हूँ। मेहताजी मुझको उनके साथ भेजते थे लेकिन वह मुझको अपने पास मेज पर नहीं बैठने देते थे। सम्पादकीय कमरे के आगे वाले कमरे में मैं बैठा रहता था जिसमें कि अखबारों की फाइलें रक्खी रहती थीं। अगर वह सज्जन उधर से निकले तो मेरे ऊपर फिकरा कसते जाते थे। मुझे गुस्सा तो आता था लेकिन मैं चुप रहता था। एक दिन मेहताजी ने उनके साथ मुझको सर तेजबहादुर सप्रू के बँगले पर भेजा। सप्रू साहब ने हम लोगों के लिए अपनी मोटर भेज दी थी। वहाँ पर वे सज्जन मेरे खिलाफ ऊटपटाँग बकते रहे। जब लौटने लगे तो उन्होंने मुझको मोटर में बैठने नहीं दिया। मुझसे कहा कि मेरे बैठने से मोटर की गद्दी खराब हो जायेगी और मैं इस लायक नहीं कि मोटर में बैठाया जाऊँ। इन कटु शब्दों पर मैंने आत्मसंयम खो दिया और अपनी चतुर्वेदी जाति की परम्परा के अनुसार उनको प्राकृतिक न्याय प्रदान किया। इस पर उन्होंने मेरे विरुद्ध मेहताजी को एक लिखित शिकायत की। तीन महीने निकल गये और वह रिपोर्ट मेहताजी के तकियों के नीचे ही पड़ी रही।

मेरी उन्नति में मेहताजी का हाथ

उपर्युक्त घटना के बाद मुझमें धीरे-धीरे आत्मविश्वास आने लगा। मेरी गरीबी से बाबू विश्वनाथ बहुत प्रभावित थे। उनकी सिफारिश पर मेहताजी ने मुझको कालेज में पढ़ने की इजाजत दे दी। वह मेरे जीवन की सबसे सुखमय घड़ी थी। सामान्य रूप से मैं कालेज का विद्यार्थी हुआ और वहाँ से इम्तहान पास किये। जब मुझे कर्ज की जरूरत पड़ती थी तो उन्होंने बराबर कर्ज दिया। हर एक महीने मैं वेतन पेशगी ले लेता था। मेहताजी मेरी अर्जी पर लिख देते थे "Mr. Iyer, please pay, K. Ram." (श्री ऐयर, रुपया दे दीजिए। के० राम) यह सलूक उनका हर एक कर्मचारी के साथ था। लीडर प्रेस के कर्मचारी बड़े बाबू को अपना परम हितैषी मानते थे।

जब सर तेजबहादुर सप्रू गवर्नमेंट आफ इण्डिया में लॉ मेम्बर हुए तो कैवेण्डिश होटल में उनके सम्मान में एक दावत दी गयी। उसमें मैं भी आमंत्रित था। जब पहिली तश्तरी आई तो मैंने पूछा यह क्या है, तो बताया गया कि यह तीतर के मांस का बनाया गया शोरबा है। मैं उठकर चला गया और बाहर बरंडे में स्टूल पर बैठा रहा जब तक कि भाषण आरम्भ न हुए। मेरा ऐसा करना शिष्टाचार के विपरीत था। सर तेज ने मेहताजी से बूछा कि यह कौन है। मेहताजी ने जवाब दिया: "He is a fresh recruit from Brij." (यह ब्रज से आया एक नया रंगरूट है।) मेहताजी ने मुझको हमेशा ब्रज का प्रतिनिधि माना। जो भाषण हुए उसकी रिपोर्ट मैंने तैयार की और मेहताजी को दिखाई। चुपचाप बगैर मुझे बताये मेरे बारे में एक चिट लिखकर भेज दी। मेरे वेतन में १५ रु० बढ़ा दिया।

मेहताजी ने ही मुझको कालेज में पढ़ने की अनुमति दी थी। उससे मुझे बहुत अधिक मानसिक बल मिला और आर्थिक संकट के बादल जो मुझे घेरे रहते थे, बिखरने लगे। मेहताजी ने जो मेरे साथ उपकार किया उसको मैं भूल नहीं सकता। मुझको कालेज में पढ़ने की अनुमति ही मेरे और मेरे कुटुम्ब की उन्नति की आधार थी। ढाँचा उसी पर खड़ा हुआ। अगर मुझको यह अनुमति न मिलती जो जीवन-पर्यन्त में मैट्रिक्युलेट ही बना रहता, और संभवतः किसी सरकारी नौकरी या कारखाने में स्टोनोग्राफर होता। मेरे स्वर्गीय पूज्य पिताजी मुझे स्टेनोग्राफर ही बनाना चाहते थे।

जब सुहावल रियासत के दीवान पद को सँभालने के बाद मैं मेहताजी से मिलने गया तो उन्होंने मुझसे पूछा कि मेरी तनख्वाह उनकी तनख्वाह से कितनी अधिक है। मैं चुप रहा। उन्होंने जवाब के लिए हठ किया। मैंने कहा "सब सुविधाओं को मिलाकर २०० रुपये।" बहुत खुश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुए। बोले, यह सब तुम्हारी विनम्रता के कारण है। जब कभी मुझ पर उनकी फटकार पड़ती थी तो उनके सामने मैं खड़ा रहता था। मैंने उनको कभी जवाब नहीं दिया। मेहताजी ने एक कागज मँगाया और एक सार्टीफिकेट लिखकर मुझको दिया जिसमें उन्होंने मेरे संबंध में लिखा : "Off and on Mr. Chaturvedi used to contribute on the editorial page and his writings were very much appreciated by Sir C. Y. Chintamani. (श्री चतुर्वेदी कभी-कभी सम्पादकीय पृष्ठ पर भी लिखते थे और उनके लेखों की सर सी० वाई० चिन्तामणि बहुत सराहना करते थे।) मैं उस कागज की कोई उपयोगिता नहीं समझता था। बाद में वही कागज मेरे काम आया जब विन्ध्य प्रदेश सरकार ने प्रेस परामर्श-दात्री समिति का मुझे सभापति नियुक्त किया। विभाग ने मुझसे इस बात का प्रमाण माँगा था कि मैं पत्रकार रहा हूँ। तब मैंने वही कागज पेश कर दिया था।

मिलने-जुलने से संकोच

एक दिन सर तेजबहादूर सप्रू के भेजे हुए श्री शिवराव ("हिन्दू" मद्रास के संवाददाता) मेहताजी से मिलने आये, और एक किताब माँगी। वह बहुत कुछ आशा लेकर आये थे। मेहताजी ने बगैर मुँह खोले एक आलमारी की तरफ उँगली से इशारा कर दिया। किताब तो उनकी जरूर मिल गयी, लेकिन वह असन्तुष्ट लौटे और सर तेज से जाकर शिकायत की। सर तेज ने उनसे कहा : You saw the wrong man. (तुम गलत व्यक्ति से मिले।).

मेहताजी का परिवार

मेहताजी का एक आदर्श परिवार था जिसके इंतजाम में उनका कोई हाथ नहीं था। बलवन्तराम 'बड़े भैया' के नाम से पुकारे जाते थे। उनकी माता में नम्रता की भावना कूट-कूट कर भरी थी। बड़ी लड़की मनोरमा अंग्रेजी साहित्य के अध्ययन में निपुण थी और उनका प्रभाव सब-भाई बहनों पर पड़ा। लीडर प्रेस के बच्चों पर उनका रोब ग़ालिब था। उनका विवाह श्री एल० पी० सिंह आई० ए० एस० के साथ हुआ जो गवर्नमेंट आफ इण्डिया गृह-विभाग के सचिव रहे हैं और अब नेपाल में भारत के राजदूत हैं। लुई, गुट्टी, विनी, घुघरू यह मनोरमा की चार बहिनें थीं जिनका नाम मेरी लड़कियाँ दिन में कई बार ले लेती थीं। बलवन्तराम के छोटे भाई निर्मल राम ने शुरू से ही पत्रकारिता का पेशा स्वीकार कर लिया था और "लीडर" के साप्ताहिक संस्करण का काम देखते थे। उनके छोटे भाई टैनिस अच्छी खेलते थे। इस घर में मैंने कभी किसी निजी पढ़ाने वाले को नहीं पाया। मेहताजी कभी-कभी स्वयं तरकारी बना लेते थे। ताश खेलने के बाद पाकविद्या उनका दूसरा मनोरंजन था। मलमल का कुर्त्ता और धोती यह उनकी सामान्य पोशाक थी। जब कभी बन्द गले का कोट और पतलून पहनना पड़ता था तब यह उनके लिए मुसीबत हो जाती थी।

मेहताजी के छोटे भाई डाक्टर शोभाराम थे। वह मेहताजी से मिलने इलाहाबाद आते रहते थे। एक दिन मैंने देखा कि एक कागज पर हस्ताक्षर करने के बाद मेहताजी की आँखों में आँसू आ गये। वह दोनों भाइयों के बीच बँटवारे का कागज था। इसके पहिले किसीको पता नहीं था कि बँटवारा होने वाला है। किसी तरह का शक भी नहीं था, कोई एक दूसरे के प्रति वैमनस्य की बात नहीं थी। वह आँसू इस बात के प्रतीक थे कि बँटवारा के बाद भी भ्रातृ-स्नेह कायम रहा।

मेहताजी का अन्त

जीवनपर्यन्त "लीडर" के प्रति उनका स्नेह कायम रहा। चिन्तामणि साहब के बँगले की मेज पर एक संगमरमर के टुकटे पर यह खुदा हुआ था। "The Leader my Love." (लीडर—मेरा प्रेम) जब मेहताजी की अचानक मृत्यु हुई तो उनका चेहरा लीडर के एक पृष्ठ से ढका हुआ था।

मुझे एक सीख गुरुनानक की याद आती है :—

सदा न संग सहेलियाँ, सदा न राजा देश,
सदा न जग्ग जीवना, सदा न काले केश।

प्रकृति में परिवर्तन तो अनिवार्य है, न चिन्तामणि साहब रहे, न मेहता कृष्णाराम न बाबू विश्वनाथप्रसाद और न "लीडर"। लेकिन जब तक उसकी इमारत खड़ी रहेगी मेहताजी की इस संस्था के प्रति लगन और आदर्श सेवायें भुलाई नहीं जा सकतीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाल्टेयर के जीवन की एक झलक

श्री जगदीश किंजल्क

इतिहास में शक्तिशाली शासकों तथा विश्वविजेताओं की ही अधिकतर जीवन-गाथायें गायी गयी हैं, पर कुछ कवियों और लेखकों ने भी, जो उनके सम्पर्क में आये हैं, स्थान पाया है। उनमें से एक फ्रेकोड मेरी डी वाल्टेयर भी हैं। फ्रांस की इतिहास-प्रसिद्ध क्रान्ति के साथ इनका और रूसियों का नाम विशेषरूप से लिया जाता है। परन्तु वाल्टेयर का स्वयं का भी अपना एक इतिहास है जो फ्रांस की क्रान्ति के समान ही पठनीय है। उन्होंने अपने जीवन में जो भोगा उसीकी सप्राण अनुभूति से उनकी क्रान्तिकारी भावनायें जागीं, जिन्होंने आगे चलकर उस महान् विप्लव को प्रेरणा दी।

वाल्टेयर का जन्म सन् १६९४ में फ्रांस में हुआ था। यह इतने निर्बल और दुर्बल पैदा हुये थे कि इनके जीवन की कोई आशा नहीं थी। परन्तु यह तो एक महान् भविष्य लेकर आये थे और इन्हें दुनिया में कुछ काम करना था। यद्यपि यह शरीर से दुर्बल थे, इनका मस्तिष्क उससे भिन्न था। तीन वर्ष की अवस्था में ही इन्हें ला फाउन्टेन्स की कहानियाँ कंठाग्र हो गयी थीं। दस वर्ष की अवस्था में वाल्टेयर को स्कूल भेजा गया। स्कूल जेसूट लोगों का था। यहाँ पादरी लोग वाल्टेयर की तीव्र बुद्धि, आकर्षण तथा उसकी विलक्षण जिज्ञासा देखकर आश्चर्यचकित से रह गये। इनका विद्यार्थी जीवन इतना उज्ज्वल रहा, जितना कोई माता-पिता चाह सकते हैं। इनके पिता इन्हें वकील बनाना चाहते थे परन्तु वे विद्वान् के अतिरिक्त और कुछ न बनना चाहते थे। इससे इनके पिता को बहुत निराशा हुई।

जब १७१५ में लुई १४वें की मृत्यु हो गयी और लुई १५वाँ राजा बना तो पहले के जो कठोर बन्धन थे वे कुछ ढीले पड़ गये और लोगों को भी बोलने और लिखने की स्वतन्त्रता मिल गयी। वाल्टेयर की उद्दंड लेखनी, स्वतंत्रता पाकर रिजेन्ट पर कुछ कड़े प्रहार कर मारे। परिणाम-स्वरूप वाल्टेयर को १८ महीने का कारावास दिया गया और वे वेमाईल जेल को भेज दिये गये। जेल में इन्होंने हेनरी चतुर्थ पर एक काव्य लिखा। जेल से मुक्ति पाकर ये फिर पेरिस आये और इन्होंने अपना पहला नाटक डेडीपे प्रकाशित करवाया। लोगों का विश्वास था कि नाटक में रीजेन्ट पर ही आक्रमण है और राजदरबार की बुराइयों की आलोचना की गयी है इस कारण से नाटक बहुत लोकप्रिय हुआ। सन् १७२५ में वाल्टेयर पर फिर एक आपत्ति आई। शेवेलियर डी रोहन ने इनका कुछ अपमान किया और इन्होंने उसका चातुर्य से भरे आक्षेपों द्वारा उत्तर दिया। परिणाम भी शीघ्र निकला। एक दिन जब ये सभी भोजन कर रहे थे इन्हें बाहर बुलाया गया और रोहन के कुछ आदमियों ने इन्हें बुरी तरह से मार लगाई। तब इन्होंने डी रोहन को द्वन्द्व युद्ध के लिए चुनौती दी। दूसरे दिन द्वन्द्व युद्ध होने को था कि वाल्टेयर फिर बन्दी बना लिये गये और १५ दिन को फिर वेसाइल भेज दिये गये।

इसके पश्चात् वाल्टेयर इंगलैंड चले गये और वहाँका वातावरण इन्हें कुछ अच्छा मिला। वहाँके बड़े-बड़े लेखकों से भी ये मिले और आगे कुछ लिखने को प्रेरणा भी मिली। इन्होंने "लेटर्स फिलासफी" लिखी जिसमें धर्मों के अनेक रूपों पर इन्होंने आक्रमण किये और फ्रांस की कुछ संस्थाओं की भी आलोचना की। जब ये फ्रांस में आये, इनकी पुस्तक जन-समूह के सामने जलाई गयी और पुस्तक-विक्रेता को वेसाईल भेजा गया। अब इनका जीवन फ्रांस में पहिले से भी अधिक अरक्षित हो गया। इन पर फिर किसी आक्रमण की बात चल रही थी कि एक महिला ने जिसका नाम डू चेटलेट था, इन्हें अपने पति की स्वतंत्र जागीर लोरेन बुला लिया और शरण दी। इस महिला के कोई बच्चे नहीं थे और वह कुछ कुरूप भी थी परन्तु यह बहुत सहृदय और तीक्ष्ण बुद्धि की थी। वाल्टेयर उसके साथ प्रसन्नता से रहने लगे। कभी-कभी वे आपस में उससे लड़ते झगड़ते भी और कभी-कभी प्रेमाभिनय भी करते। अध्ययन भी दोनों का साथ-साथ होता। नाटकों की रचना भी करते और खेलते। इस तरह दोनों की खूब पटती। महिला के पति कोई हस्तक्षेप नहीं करते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक दिन वाल्यटेर को प्रसिया के युवराज का एक पत्र मिला। यह वाल्टेयर के जीवन की एक विशेष रूप से उल्लेखनीय घटना थी। प्रसिया का युवराज फ्रेडरिक भी साहित्य में प्रेम रखता था और वाल्टेयर को अपने पास रखना चाहता था। परन्तु वह महिला वाल्टेयर के साथ प्रसिया जाने को तैयार नहीं थी इसीलिए वे भी न जा सके। कुछ दिन में महिला के एक पुत्री पैदा हुई और उसके जन्म के ६ दिन बाद ही महिला इस संसार से विदा हो गयी। वाल्टेयर को उसकी मृत्यु से अत्यन्त दुख हुआ और वे फिर उस स्थान पर न रह सके। वे पेरिस लौट आये।

सन् १७४० में प्रसिया का युवराज फ्रेडरिक, अपने फ्रेडरिक विलियम के देहावसान पर सिंहासनारूढ़ हुआ। इसका पिता एक प्रख्यात अत्याचारी और बर्बर शासक था। जब कभी यह घूमने निकलता तो लोग इसके मार्ग से भाग जाते। वे इस तरह से भयभीत हो जाते जैसे कोई भूखा शेर पिंजड़े से छूट गया हो। यदि मार्ग पर उसे कोई स्त्री मिल जाती तो उसे वहीं ठोकर लगाता और कहता, "घर जाकर अपने बच्चे देख।" यदि कोई पहाड़ी मार्ग पर मिल जाता तो उसे वहीं बेतों से पीटता और कहता, "जा अपना अध्ययन कर और अपनी प्रार्थना में लग।" अपने महल को तो उसने नर्क बना लिया था। वह अपने पुत्र फ्रेडरिक और पुत्री विलहेलमेना से तो विशेष घृणा करता था। उन्हें बुरी तरह से पीटता। बाल पकड़कर खींचता और उन्हें खाना भी न दिलाता। उसे साहित्य से घृणा थी और संगीत से भी। एक बार तो उसने फ्रेडरिक को फर्श पर घसीटा और उसे पर्दे की रस्सी से फाँसी ही लगा दी होती यदि वह भाग न निकलता।

फ्रेडरिक ऐसे पिता का पुत्र था। पिता के अनुरूप उसका स्वभाव विलक्षण था। वह बहुत ही नीच प्रकृति का था। मदिरापान और भोजन से उसे विशेष प्रेम था। वह पिता के समान ही अत्याचारी, कठोर हृदय, कृपण और दुष्ट प्रकृति का था, तब भी उसे बाँसुरी बजाने तथा साहित्य से कुछ प्रेम था। उसके राजप्रासाद को लोग "पैलिस आफ अलसीना" कहते क्योंकि पहले वह एक आनन्द निकेतन-सा प्रतीत होता जिसमें एक नवागंतुक हर प्रकार की आशायें और आनन्द स्वागत सा करते हुए मिलते। लोग उसका हर प्रकार से स्वागत करते और बड़ी विनम्रता से बोलते परन्तु कुछ ही दिन में उसका स्वप्न भंग हो जाता। जिसमें बुद्धि होती, उस मृगतृष्णा से भाग निकलते और जो फँस रहते, वे बुरा जीवन व्यतीत करते। उस समय इंगलैंड का निर्धन-से-निर्धन लेखक भी, जो टाट पर सोता और सेलर में भोजन करता, फ्रेडरिक के दरबारी कवि से कहीं अच्छा था।

वाल्टेयर भी इस आनन्द निकेतन का प्रलोभन न रोक सके। उनकी प्रियतमा चेटलेट का भी देहावसान हो गया था और अब उनके मार्ग में कोई बाधा नहीं थी। अपने देश से वे दूर रहना भी चाहते थे। फ्रेडरिक ने इन्हें और भी कई पत्र भेजे जिनमें बड़ी-बड़ी आशायें दी गयी थीं। मार्ग-व्यय के लिए भी एक हजार लोइस सिक्का भेजा गया। परन्तु वाल्टेयर को इससे सन्तोष न हुआ। वे अपने साथ अपनी भतीजी मेडम डेनिस को भी ले जाना चाहते थे, जो बहुत कुरूप थी और विदूषक के रूप में थी। उन्होंने एक हजार लोइस और माँगा जिससे मार्ग-व्यय पूरा हो सके। परन्तु फ्रेडरिक ने लिख भेजा कि मैं महिलाओं की संगत का सम्मान नहीं चाहता। इस पर वाल्टेयर बच्चों जैसे क्रोध के वशीभूत होकर बोले, "क्या ऐसा भी लोभ देखा है। उसके खजाने में हजारों टब डालर्स से भरे पड़े हैं और वह न कुछ हजार लोइस के लिए मुझसे खींचातानी करता है।" ऐसा प्रतीत होने लगा कि वहीं से सम्बन्ध-विच्छेद हो जायगा। फ्रेडरिक की कृपा एक दूसरे लेखक बसूलार्ड डी आरनाड की ओर झुकती हुई प्रतीत होने लगी। उसने कुछ बुरे छंद भी लिखे जिनका आशय था कि वाल्टेयर एक अस्त होता हुआ सूर्य है और आरनड उदीयमान। अतः वे १७५० में फ्रेडरिक के दरबार को रवाना हुए।

प्रसिया में जो उनका स्वागत हुआ उसके विषय में स्वयं उन्होंने अपने एक मित्र को लिखा था कि जिस आवभगत के साथ उनका स्वागत किया गया है वर्णनातीत है। राजा का स्वभाव बहुत ही मिलनसार है और उनका प्रासाद पोटसडेम दार्शनिकों का स्वर्ग है। उन्हें चेम्बरलेन अर्थात् गृहस्थी का आफीसर भी बना दिया गया है और आठ सौ पाउण्ड वार्षिक पेंशन का वचन दिया गया है। उनकी भतीजी को भी १६० पा० की पेंशन का वचन दिया गया है। नौकरों-चाकरों का भी उचित प्रबन्ध कर दिया गया है तथा उन्हें उसी भवन में निवास दिया गया है जिसमें सेक्से को दिया गया था, जब वह अपनी पूर्ण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९७३

शक्ति और वैभव में होकर प्रसिया अतिथि बनकर गया था।

वास्तव में फ्रेडरिक की कृपा पहले ऐसी ही बढ़ी। उन्होंने अपनी उपाधि के साथ "पजेसर आफ वाल्टेयर" अर्थात् वाल्टेयर का रखनेवाला भी जोड़ा। लेकिन कुछ ही दिन में वाल्टेयर का स्वप्न भंग हो गया। उनकी आवेशपूर्ण मित्रता शीघ्र ही ठंडी पड़ चली। उन्हें ज्ञात हो चला कि यह केर-बेर का संग था। फ्रेडरिक मितव्ययी ही नहीं, लोभी भी था। वाल्टेयर भी लालची थे। वे सोचते थे कि एक राजा को जिसके खजाने में टबों में सोना-चाँदी भरा पड़ा है अपने कृपापात्र को इतना धन देना चाहिए कि एक साधारण व्यक्ति तो उसकी ईर्ष्या करे। लेकिन फ्रेडरिक जब कोई अपने मन की चीज खरीद चुकता वह सोचता कि उसने बहुत दाम दे दिये हैं। दोनों को एक दूसरे के भावों का पता हो गया और दोनों अप्रसन्न थे। परिस्थिति इतनी बिगड़ी कि फ्रेडरिक ने वाल्टेयर के शक्कर और चाकलेट के अलाउन्स को कम कर दिया। वाल्टेयर ने भी उसका बदला राजप्रासाद की मोमबत्तियाँ उड़ा कर दिया। रुपया का झगड़ा ही सब कुछ नहीं था। राजा के व्यंग और आक्षेप भी वाल्टेयर को खटकने लगे। डी आरनेल्ड, जिसके वे प्रसंशक थे, भले ही अपने स्वामी के आक्षेप सह लेते पर वाल्टेयर सहनेवाले व्यक्ति नहीं थे। वाल्टेयर का उपहास उड़ाना सरल नहीं था। अत्याचारी और बर्बर शासक भी, जिन पर लाखों लोगों की गालियाँ भी असर न करती थीं, वाल्टेयर के नाम से डरते थे। दोनों में झगड़े के कारण बढ़ते ही गये।

फ्रेडरिक ऐसे ही अवसर ढूँढ़ता रहता जिसमें वह अपने अतिथि वाल्टेयर को अपमानित कर सकता। एक दूसरे पर दोनों आक्षेप करते। फ्रेडरिक प्रायः छोटे आदमियों और बुरी पुस्तकों की अत्यधिक प्रशंसा करता जिसे वाल्टेयर सहन न कर पाता और उसका क्रोध उमड़ पड़ता। फ्रेडरिक को इसमें आनन्द आता। फ्रेडरिक के अन्य दरबारियों से भी वाल्टेयर की न पटती। सारे राजप्रासाद में साहित्यिक षड्यंत्र उठ खड़े हुए थे जिनका दबाना फ्रेडरिक के लिये भी कठिन हो गया था। फ्रेडरिक ने कुछ अपनी कविताएँ भी वाल्टेयर के पास संशोधन तथा टिप्पणियों के लिए भेजीं। उन्हें देखकर वाल्टेयर ने कहा, "देखो राजा ने अपना कैसा गन्दा लीनिन धोने के लिए मेरे पास भेजा है।" राजा के कानों में भी यह बात पहुँच गयी और उसके क्रोध का कहीं ठिकाना न रहा।

एक दूसरी घटना ने और भी अधिक विस्फोट किया। बर्लिन ऐकेडेमी के प्रेसीडेण्ट माउपरटूइस भी राजा के वैसे ही कृपापात्र बन गये थे जैसे वाल्टेयर। राजा ने अपने ही आनन्द के लिए इन दोनों में किसी प्रकार शत्रुता करा दी। वाल्टेयर ने डाक्टर एकैकिया के नाम से माउपरटूइस की एक हास्यपूर्ण कटु आलोचना लिखी। उन्होंने उसे राजा को दिखाया। राजा को इसे पढ़कर प्रसन्नता तो हुई परन्तु वह उसके प्रकाशन और प्रचार के लिए सहमत न हुआ। माउपरटूइस को उसी ने बर्लिन एकेडेमी का प्रेसीडेण्ट चुना था और इनके उपहास से एकेडेमी का भी नाम गिरता। अतः राजा ने वाल्टेयर से वचन लिया कि ये उसे प्रकाशित न करायेंगे परन्तु वाल्टेयर ने अपना वचन तोड़ दिया। वह आलोचना प्रकाशित हुई और लोगों का उससे बड़ा मनोरंजन हुआ। राजा के आदेश से पुस्तक जलाई गयी और वाल्टेयर को क्षमा-याचना के लिए बाध्य किया गया। इस पर वाल्टेयर ने उन्हें जो भी सम्मान प्रदान किये गये थे तथा जो पेंशन का आदेश दिया गया था सब राजा को वापस कर दिये। इस पर राजा ने अपने क्रोध पर पश्चात्ताप किया और समझौता चाहा परन्तु समझौता न हो सका। वाल्टेयर ने राजा से विदा ली और चल दिया।

वाल्टेयर फ्रेंकफोर्ड गये थे। उनकी भतीजी यहाँ उनसे मिलने आयी। वाल्टेयर यहाँ अपने को सुरक्षित समझते थे परन्तु वे प्रसिया के रेजीडेण्ट के आदेश से बन्दी बना दिये गये। फ्रेडरिक का वह अमूल्य काव्य-संग्रह उनसे ले लिया गया। परन्तु इतना ही पर्याप्त नहीं था। उन्हें हवालात में डाल दिया गया जहाँ संगीनधारी सिपाही पहरा देते थे। सिपाहियों ने उनकी भतीजी की भी दुर्गति की। उसे कीचड़ में घसीटा। सोलह सौ डालर भी वाल्टेयर के छीन लिये गये। हवालात से उन्हें बारह दिन बाद मुक्ति मिली। तब भी प्रसिया के समीप उन्हें संकट था। फ्रांस की सरकार भी उनसे अप्रसन्न थी। उनका प्रसिया को जाना ही उसकी अप्रसन्नता का कारण था। वह उन्हें फिर पेरिस लौटने की आज्ञा नहीं दे रही थी। अतः उन्होंने लेक लेमन के तीर पर शरण ली।

यहाँ पर वे बन्धनमुक्त थे। अब उनके मार्ग में ऐसी कोई बाधायें नहीं थीं जो उन्हें अब तक रोकती रही थीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राज-दरबारों या गिरजाघरों से न कोई आशा थी न भय ही। जिस किसीका भी मनुष्य पर शासन था उसके विरुद्ध उन्होंने युद्ध छेड़ा। शेवेलियर डी ला वारे को जीवित जलाये जाने के विरुद्ध उन्होंने लेखनी उठाई। उस समय की कानून की बर्बरता के विरुद्ध भी वे अपनी सारी शक्ति से लड़े। यद्यपि उनका कोई वाद या सिद्धान्त नहीं जो उनके नाम से जुड़ा हो। परन्तु उन्होंने सत्य का जितना उद्घाटन किया उतना पश्चिम के अन्य लोगों में नहीं पाया जाता। अत्याचार का विरोध ही उनका एकमात्र लक्ष्य रहा। उसके विरोध में वे सारे जीवन लड़े और इसीमें उन्हें आनन्द मिलता रहा। व्यंग्य और आक्षेप ही उनके साहित्य की विशेषता थी। उनकी लेखनी से कभी बहुत उत्कृष्ट रचनायें निकलीं जिन्होंने साहित्य का मान बढ़ाया, कभी निकृष्ट भी जिनसे मूल्य गिरा भी। उन्हें रंगमंच से विशेष प्रेम था। उन्होंने लगभग पचास नाटकों की रचना की। दुखान्त नाटकों की रचना में उन्हें विशेष सफलता मिली और उनमें कुछ विशेष प्रसिद्ध हुए। उनके उपन्यास केन्डीड में उनकी विलक्षण बुद्धि का पूर्ण विकास देखने को मिलता है। उसमें व्यंग्य प्रधान शैली द्वारा सार्वभौम मानवता का जो प्रतिपादन किया गया है उनकी परदुखकातर आत्मा का द्योतक है। उसमें जीवन की सारी घटनाओं पर सिंहावलोकन करता हुआ पेगेस केण्डीडे से कहता, "यदि तुम मिस कुनीगड के प्रेम के कारण उस सुन्दर किले से न ठुकराये गये होते, यदि तुम इन्क्वीजीशन में न रक्खे गये होते, यदि तुम पैदल अमेरिका की यात्रा न करते, यदि तुमने बैटन को घायल न किया होता और यदि एल्डोरेड से तुम्हारी भेड़ें न खो जातीं तो तुम आज यह फल साइट्रन्स और पिस्टेकिओनट्स खाने को यहाँ न होते। यही बात वाल्टेयर के जीवन के विषय में भी उन्हीं शब्दों में कही जा सकती है। यदि वे फ्रेडरिक के दरबार को न गये होते और वहाँ अपमानित न किये गये होते तो उनकी लेखनी में वह तीखापन न आता जिसने उन्हें अमर साहित्यकारों की श्रेणी में बैठाया।

कष्टों और गम्भीर परीक्षाओं का लम्बा समय पार करने पर अन्त में वाल्टेयर को शान्ति और सम्मान प्राप्त हुआ। फने, जहाँ वे अन्त समय रहे, एक तीर्थस्थान बन गया। फ्रांस ने भी अन्त में उनका स्वागत किया। उनका नाटक ईरेन पेरिस में खेला गया। उसके संचालन को वाल्टेयर को बड़े सम्मान से बुलाया गया। यह उनकी विजय-यात्रा थी। नाटक विशेष सफलता के साथ खेला गया और उसकी बहुत प्रसंशा की गयी परन्तु अब वाल्टेयर का भी अन्त आ गया था। सन् १७७८ में ३० मई को वे एक लम्बी आयु को भोगकर इस असार संसार से विदा हो गये। उनके अन्तिम शब्द थे, "मुझे छोड़ो, शान्ति से मरने दो।" यह एक साहित्यकार का इतिहास है जिसने मानवता के इतिहास को बनाया। क्या उनके संघर्ष का आज के युग पर कोई प्रभाव नहीं?

दीवारों के कान हैं

श्री प्रेम मधुकर

गिरवी रखा हुआ कोलाहल, चोगों से पहचान है।
यहाँ बोलना मत परदेसी, दीवारों के कान है।

ऊषा का सूरज बंदी है,
काई फूस सिवार में।
बेहोशी की गंध घुली है,
चलती हुई बयार में!

ऊंघ रहा हर बच्चा-बच्चा, सोये हुए जवान हैं।
हर कमरे के घाव छिपे हैं,
ऊपर लगे कलेंडर से।
खटिया की टूटन छिपती है,
सात रंग की चादर से।

यहाँ घिनौनी चोंचें चलतीं, जहर घुला हर प्राण है।
धौले पन्ने रँगे हुए,
पग पग पर काले अक्षर से।
सोने के अक्षर कहते सब,
पता नहीं किसके डर से।

गँदली लिखी किताब यहाँ पर बहकी हुई उड़ान है।
यहाँ सुनहरी घड़ी बँधी है,
काले रँग के फीते में!
भरा हुआ है एक अनोखा
पानी हर अधरीते में!

डाल-डाल पर पली निराशा पात-पात अनजान है।
यहाँ बोलना मत परदेसी दीवारों के कान है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनोविश्लेषण और साहित्य

डा० बालकृष्ण 'अकिंचन'

१९वीं शताब्दी के अन्तर्गत योरोप में कुछ ऐसे विचारकों ने जन्म लिया जिन्होंने न केवल योरप अपितु समस्त विश्व की चिन्तनधारा को नया मोड़ प्रदान किया। फ्रायड तथा कार्ल मार्क्स ऐसे ही स्वनामधन्य विचारकों में से हैं। फ्रायड के सिद्धान्त को मनोविश्लेषणवाद तथा मार्क्स के सिद्धान्त को समाजवाद के नाम से पुकारा जाता है। वैसे मनोविश्लेषण का मूल सम्बन्ध मनोविज्ञान तथा समाजवाद का सम्बन्ध अर्थशास्त्र से है, किन्तु इन दोनों विचारकों ने कला एवं साहित्य पर भी मौलिक विचार व्यक्त करके साहित्य को नूतन दृष्टि से परखने की प्रेरणा दी। इनके सिद्धान्तों ने विश्व की साहित्य-सर्जना एवं समालोचना को, बहुत अधिक प्रभावित किया है। यहाँ मनोविश्लेषण ही हमारा विवेच्य है।

मनोविश्लेषण (साइको-एनालेसिस) का अर्थ है मन का विश्लेषण। सिग्मण्ड फ्रायड (६ मई १८५६ से २३ सितम्बर १९३२) ने मानव मन की विचार-प्रणाली का गहन अध्ययन करने के पश्चात् मन की सतत गहराइयों में प्रवेश किया और बताया कि मनुष्य की अच्छाई-बुराई का निर्णय करना आसान काम नहीं। मनुष्य का असली रूप वह नहीं होता जो ऊपर से दिखाई देता है अथवा जो समाज में उसकी कारगुजारियों से प्रकट है अपितु उसका वास्तविक रूप वह है जो उसके अन्तर्मन में दबा रहता है, जिसे वह न केवल समाज पर अपितु अपने पर भी प्रकट नहीं होने देता। सच पूछिए तो वह उससे स्वतः भी परिचित नहीं होता तथा परिचित कराने पर भी उसे स्वीकारता नहीं। सभ्यता, संस्कार एवं परिस्थितिवश मनुष्य इस वास्तविक रूप को दबाने में काफी हद तक सफल तो हो जाता है किन्तु जब वह अदृश्य भावनाओं का पुंज कभी एकाएक विस्फोट कर डालता है तो उसका संयमन मनुष्य के वश की बात नहीं रहती। मनुष्य तब ऐसे-ऐसे कार्य कर डालता है जिनकी उससे कोई स्वप्न में भी आशा नहीं कर सकता। इतना ही नहीं इससे अनेक भयंकर स्वापनिक रोग भी उत्पन्न हो जाते हैं। वस्तुतः मनोविश्लेषणवाद अपने मूल में कोई साहित्य सिद्धान्त नहीं अपितु हिस्टीरिया आदि मनोरोगों की एक चिकित्सा के लिए अन्वेषित एक मनोवैज्ञानिक प्रणाली है जिसका श्रेय फ्रायड को प्राप्त है। इसका समारम्भ फ्रायड से पहले ही हो चुका था। इस तथ्य को स्वतः फ्रायड ने भी स्वीकार किया है।

सन् १८८०-८२ में विआना में एक चिकित्सक डा० जोसेफ ब्रीचुअर (१८४२-१९२५) एक लड़की की मनोदशा बदलकर उसे हिस्टीरिया से मुक्त करने में सफल हो गये थे। उन्होंने इस सम्बन्ध में कतिपय प्रयोग तो किये किन्तु १० वर्ष तक कोई विशेष प्रगति नहीं हो पाई। तभी सौभाग्य से सिग्मण्ड फ्राइड तथा ब्रीयुआ की मित्रता हो गयी। फ्राइड भी १८७६-१८८२ तक ई० डब्ल्यू० वोन ब्रुक की मनोवैज्ञानिक प्रयोगशाला तथा टी० एच० मेनर्ट के मस्तिष्क संस्थान में कार्य कर चुके थे तथा पेरिस के सुप्रसिद्ध स्नायुरोग विशारद जे० एम० चारकोट के निर्देशन में बाल मस्तिष्क का विशेष अध्ययन कर चुके थे। इन दोनों ने मिल कर कुछ प्रयोग किये तथा एक पुस्तक को भी प्रकाशित किया जिसका नाम था स्टडीज हिस्टेरिया या Ijber Hysteria। उस समय इसे कन्वर्शन तथा डेव्थ साइकोलोजी आदि नाम भी दिये जाते थे।[1]

पुस्तक प्रकाशन के बाद कई वर्षों तक फ्रायड ने एकाकी ही अपने प्रकार के मानसिक रोगों विशेष कर हिस्टीरिया की चिकित्सा करते रहे। उन्होंने ही इसे साइको अनेलेसिस या मनोविश्लेषण का नाम दिया। इस नाम तथा उनकी खोजों को आरम्भ में बड़ा भयंकर विरोध का सामना करना पड़ा। किन्तु १९०६ में एडलर, ब्रिल, फैरेन्जी, जोन्स, जुंग सेडगर तथा स्टेंस्केल आदि अनेक व्यक्ति उनके साथ कार्य करने लगे। इनमें से एडलर तथा जुंग तो उनके बड़े प्रसिद्ध और पक्के अनुयायी बन गये। दुर्भाग्य से बाद में इन्हें भी

---

१. A particular method of treating nervous disorders. The science of unconscious process which has also been appropriately described as "Depth Psychology"—

Encyclopedia Britanica, Vol. 18 p. 673.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिद्धान्तों के विरोध के कारण फ्रायड से अलग होना पड़ा। विरोध का कारण फ्रायड द्वारा यौन भावनाओं को अतिशय महत्त्व प्रदान किया जाना था। बात यह थी कि फ्रायड ने सिद्धान्तानुसार मनुष्य के समस्त कार्य-व्यापारों की आधार-भित्ति यौन भावनाएँ, वासनाएँ या कामेच्छाएँ हैं। इसे उसने लिविडो का नाम दिया है। लिविडो की व्याख्या करते हुए उन्होंने लिखा है कि "लिविडो या राग बिलकुल क्षुधा की तरह है। यह वह बल है जिसके द्वारा नैसर्गिक यौनवृत्ति वैसे ही अपनी अभिव्यक्ति करती है जैसे पोषण की निसर्ग-वृत्ति भूख के द्वारा अपनी अभिव्यक्ति करती है। यौन उत्तेजन और सन्तुष्टि आदि शब्दों की कोई परिभाषा देने की आवश्यकता नहीं।"[१] ध्यान देने की बात यह है कि भूख मानव की प्राथमिक आवश्यकता है जिसकी सन्तुष्टि नवजात शिशु जन्म से ही करने लगता है। फ्रायड भी काम भावना को जन्मजात मानते हैं। इसे ऊपर के उद्धरण के साथ ही उन्होंने बालक के स्तन-पान, निपिल या अँगूठा चूसने तथा मल-मूत्र त्यागने को भी कामेच्छा से उत्पन्न तथा उनकी तुष्टि को काम तुष्टि से सम्बद्ध बताया है और उनकी तृप्ति को रति-सुख के अनुभव से सम्बद्ध किया है—

"जब वह (दुग्धपोष्य शिशु) बिलकुल सन्तुष्ट होकर छाती पर पड़ा होता है, तब उसके चेहरे पर पूर्ण परितृप्ति होती है जो बाद के जीवन में शुक्रक्षरण (सेक्सुअल आर्गेनिज्म) के अनुभव के बाद फिर दिखाई देगी। इससे (स्तन पान से) प्राप्त परितुष्टि सिर्फ मुख और होठों के क्षेत्र से सम्बन्धित होती है। इसलिए इन क्षेत्रों को भी हम कामजनक क्षेत्र कहते हैं और इस चूसने से उत्पन्न सुख को यौन सुख बताते हैं। शैशवीय यौन-कुतूहल बहुत छोटी उम्र में, कभी-कभी तीसरे वर्ष से भी पहले शुरू हो जाता है।"[२]

बचपन से लेकर वृद्धावस्था तक के अधिकांश कार्य उन्होंने यौन भावना से परिचालित माना है। इन्हीं भावनाओं के दमन तथा विकृति से उन्होंने बहुत-से मानसिक रोगों विशेषतः हिस्टीरिया जाति के रोगों की उत्पत्ति मानी है। साथ ही अपने अनेक रोगियों के उदाहरण से अपनी धारणाओं की पुष्टि की है।

लिविडो के समान ही उन्होंने एक अन्य शब्द दिया है ओइडिपस कम्प्लैक्स। ओडिपस एक ग्रंथि है जिसे मातृ-प्रणय ग्रंथि बताया गया है। इस सम्बन्ध में उन्होंने माँ-बेटे तथा भाई-बहिन (शान्तं पापं) के यौन सम्बन्धी बातों का भी विश्लेषण किया है। इसके लिए उन्होंने पाश्चात्य पौराणिक गाथाओं के प्रमाण प्रस्तुत किये हैं। "पौराणिक साहित्य से पता चलता है कि जिस निषिद्ध सम्भोग से मनुष्य इतनी घृणा प्रदर्शित करते हैं, उसकी ही पौराणिक व उन्होंने अपने देवताओं को बिना विचार छूट दे रखी थी। और प्राचीन इतिहास से आपको पता चलेगा कि बहन के साथ निषिद्ध सम्भोगात्मक विवाह राजाओं (मिस्र से स्यारो और पेरू के इनका) के लिए धार्मिक कर्तव्य बताया गया था। ओडिपस का एक अपराध तो था माता के साथ निषिद्ध सम्भोग और दूसरा था पिता की हत्या। विश्लेषण से पता चलता है कि स्नायु रोगियों में से प्रत्येक व्यक्ति या तो ओडिपस या ग्रंथि से उत्पन्न प्रतिक्रिया में "हैमलेट" बन गया था, जो एक ही बात है। अब पिता से घृणा और उसके मर जाने की इच्छा धुंधला संकेतमात्र नहीं रहती। माता के प्रति अनुराग मुखर हो जाता है जिसका उद्देश्य उसे अपनी स्त्री बनाना होता है।"

मनोविश्लेषण में उन्होंने आगे लिखा है कि "इससे उलटे सम्बन्ध में यही अवस्था पुत्री की होती है।" अर्थात् प्रकृत अवस्था में साधारणतया पुत्रियाँ शैशवावस्था में सदैव अपने पिताओं के प्रति तथा पुत्र सदैव अपनी माता के प्रति अधिक स्नेहशील रहते हैं। उन्होंने अनेक स्थानों पर स्नायु रोग-ग्रस्त एक युवती कुमारी का उदाहरण दिया है जो अपने तथा अपने पिता के सोने के कमरे में सदैव दरवाजा अध-खुला रखना चाहती थी तथा हाथ एवं दीवार घड़ी तक को टिक-टिक के शोर के भय से कमरे के बाहर रख दिया करती थी। उसके कुमारिकी रुग्ण ओडिपस ग्रंथि की भावाओं के मनोविश्लेषण फ्रायड ने जिन शब्दों में किया उसे हमारी भारतीय नैतिकता यहाँ प्रस्तुत करने का साहस नहीं कर पा रही।

लिविडो एवं ओडियस के अतिरिक्त उनकी तीसरी महत्त्वपूर्ण देन अचेतन मन, पूर्वचेतन मन तथा चेतन मन की व्यवस्था है। फ्रायड के अनुसार प्रत्येक विचार अपने मूल रूप में अचेतन मानसिक स्थिति में रहता है। यहींसे वह एक निश्चित प्रक्रिया को पार करता हुआ ही चेतन रूप

१ मनोविश्लेषण—अनु० देवेन्द्रकुमार वेदालंकार (१९५८)

२. वही।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९७३

ग्रहण कर पाता है। हम इस स्थिति को समझाने के लिए फ्रायड की अपनी शब्दावली का अविकल अनुवाद प्रस्तुत कर रहे हैं—

"अचेतन संस्थान की तुलना एक बड़े पूर्वकक्ष अर्थात् बड़े कमरे में पहुँचानेवाले छोटे कमरे से की जा सकती है। जिसमें अनेक प्रकार के मानसिक उत्तेजन, मनुष्यों की तरह एक दूसरे के ऊपर भरे पड़े हैं। इससे लगा हुआ एक दूसरा छोटा कमरा एक तरह का स्वागत कक्ष है जिसमें चेतना का निवास है पर इन दोनों के बीच की देहली पर एक पहरेदार का काम करनेवाला व्यक्ति खड़ा है जो इन विविध मानसिक उत्तेजनों की परीक्षा करता है, उन्हें सेंसर करता है अर्थात् उनमें काट-छाँट करता है और जब वह उन्हें नापसन्द करता है तब उन्हें स्वागत कक्ष में जाने से रोक देता है। अब इस रूपक के द्वारा हम अपनी शब्दावली की ओर बढ़ सकते हैं। अचेतन या पूर्व कक्ष में मौजूद अचेतन चेतना को दिखाई नहीं देते क्योंकि वह दूसरे कमरे में है। इस प्रकार शुरू में वे अचेतन रहते हैं। जब वे जोर लगाकर देहली में पहुँच गये हैं और चौकीदार द्वारा वापस लौटा दिये गये हैं, तब वे 'चेतन होने में असमर्थ' हैं। तब हम उन्हें दमित कहते हैं, पर जो उत्तेजन देहली के पार आने दिये जाते हैं, उनका भी चेतन हो जाना आवश्यक नहीं; वे तभी चेतन हो सकते हैं, जब वे चेतना की दृष्टि आकर्षित कर सकें। इसलिए इस दूसरे कक्ष को पूर्वचेतन संस्थान (प्रीकांसियस) कहना उपयुक्त होगा।....जब किसी आवेग को दमित आवेग कहते हैं, तब इसका अर्थ यह होता है कि वह अचेतन संस्थान में से निकलने में असमर्थ हैं क्योंकि चौकीदार उसे पूर्वचेतन में प्रवेश नहीं करने देता।*

यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि चौकीदार से तात्पर्य सामाजिक मर्यादा संस्कार तथा शिक्षा सांस्कृतिक मर्यादाओं से है। स्वप्न के क्षेत्र में फ्रायड ने चौकीदार को ही सेंसरशिप का नाम दिया है। उन्होंने अपने स्वप्न व्याख्या नामक ग्रंथ में कहा है कि ये ही दमित इच्छाएँ अपने नग्न रूप में स्वप्न में न आकर केवल प्रतीक बनकर तथा वेश बदलकर आ पाती हैं।

दमित आवेगों का विस्फोट बड़ा भयंकर होता है। वैसे अपने प्रच्छन्न रूप में ये दमित अवेग सदा स्वप्न में आते रहते हैं। चेतन अवचेतन के बीच जो पहरेदार खड़ा रहता है वह हमारे सो जाने पर भी प्रायः जागता रहता है या अर्द्ध सुप्त रहता है इसीसे सम्बन्धित फ्रायड का स्वप्न का वर्णन बड़ा ही विस्तृत है। स्वप्नों, प्रतीकों, के विश्लेषण पर उन्होंने अलग से भी एक ग्रंथ लिखा था। "इन्टरप्रिटेशन आफ ड्रीम्स" साइकोएनेलेसिस पुस्तक का भी दूसरा भाग पूरे का पूरा स्वप्न के ही विविध विषयों पर है। उसको पढ़ने पर फ्रायड एक भयंकर यौनवादी विचारक के रूप में सामने आते हैं। वे स्वप्न में आई अधिकांश वस्तुओं को जननेन्द्रियों का प्रतीक मानने की दुरूह कल्पना करते दिखाई देते हैं। वे स्वप्न में दिखाई देनेवाली नल, झरना, साँप आदि प्रत्येक लम्बी वस्तु को शिश्न का प्रतीक मानते हैं योनि प्रतीकों की तो पूछिये ही मत। उनके मत में स्वप्न में दिखाई देनेवाले, गुफा, कमरे, जूते, स्लीपर, प्राकृतिक दृश्य, बाग, जंगल, चर्च, मुखद्वार, कलियाँ, फूल, गमले, गुलदस्ता, तकियाँ, लियाफ, गद्दे, घड़ियाँ, प्लेटें, डिब्बे आदि अनेक वस्तुएँ स्त्री जननेन्द्रिय के प्रतीक हैं। इसी प्रकार रति सुख, पुरुष, स्त्री स्त्रीलिंगी रति, आत्मरति आदि अनेक प्रतीकों का अद्भुत उल्लेख किया है। बहुत-से स्वप्नों के उदाहरण देकर उनकी व्याख्यायें की गयी हैं। जिन पर सहसा विश्वास नहीं होता। उदाहरण के लिए उन्होंने स्वप्न में भोजन करने तक को सैक्स कम्पलैक्स माना है।

इनके अतिरिक्त फ्रायड ने इद (Id), अहं (Ego) तथा अहमादर्श (Ego super) आदि की मौलिक व्याख्याएँ प्रस्तुत की हैं। ये तीनों भी मन के ही भाग हैं। इद मन की जन्मजात भाग है। इसीलिए सम्पूर्ण प्राकृत भावनाएँ इद में समाहित रहती हैं। लिबिडो की वृत्ति का मूल कोष इद ही है। इद में उठे हुए विचार सदैव अव्यवस्थित, सुखलिप्सा-पूर्ण एवं असंस्कृत होते हैं। इनका नैतिकता, धर्म, संस्कृति आदि से कोई सम्बन्ध नहीं रहता। शरीर की प्रमुख आवश्यकताएँ तथा सुख की मूल इच्छा ही इन सबका स्रोत होती हैं। इद का कुछ भाग ही आगे चलकर अहं (ईगो) बनता है। शिक्षा, समाज, वर्जनाओं आदि से परिष्कृत होने पर मन की जो स्थिति रहती है वही अहं है। इसे बाह्य संसार की सीमाओं तथा ईद की असीम सुख लिप्साओं की मध्यवर्ती भावभूमि कहा जा सकता है। मन का यही भाग हमें ईद की अनियंत्रित लालसाओं को अभि-

* मनोविश्लेषण—अनु० देवेन्द्रकुमार वेदालंकार (१९५८)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यक्त करने से रोकता है क्योंकि यह इद की भाँति प्राकृत नहीं संस्कारजन्य है। इसकी इद से निरन्तर टक्कर होती रहती है। अहं और इद की यह टक्कर ही न्यूरोसिक तथा हिस्टीरिया के रोगों का कारण होती है। जिस प्रकार इद का संस्कृत रूप अहं है उसी प्रकार अहं का सुसंस्कृत रूप अहमादर्श या (ईगो सुपर) होता है। यह मन का सर्वाधिक संस्कृत रूप है। अहमादर्श पूर्ववर्ती दोनों अवस्थाओं का नियामक है। हमारे नैतिक निर्णय और आदर्श निर्माण मन के इसी भाग के कार्य हैं। अहं तथा अहमादर्श की टक्कर तो हम अनुभव करते रहते हैं। उन्माद आदि इसी टक्कर की चरम परिणति हैं।

फ्रायड के अनुसार इस चरम परिणति अर्थात् उन्माद आदि मानसिक रोगों से हम बच सकते हैं यदि हममें कला-निर्माण शक्ति हो और उसका प्रयोग करके हम कलात्मक रचनाएँ प्रस्तुत करते हैं। क्योंकि कला में हमारी दमित इच्छाओं को अपने प्रकटीकरण का अवसर मिल जाता है। वस्तुतः अवचेतन की दमित इच्छाएँ ही कला-निर्माण का मूल स्रोत हैं। इस विषय पर फ्रायड ने अपने अन्य ग्रन्थ 'सिविलाइजेशन एण्ड इट्स डिसकन्टेन्टस' में विस्तार से विचार किया है। कलाकारों के जीवन में अस्त-व्यस्तता, उदासीनता भौतिक स्रोतों से पलायन, कल्पनाप्रियता और आत्मरति का भाव अपेक्षाकृत अधिक रहता है। इसीलिए वह उन्हें एक प्रकार से स्नायुव्यतिक्रम (न्यौरेसिस) के रोगी से भिन्न नहीं समझता। जिस प्रकार स्नायु व्यतिक्रम रोग का मूल दमित इच्छा है उसी प्रकार कलाकार को कला की प्रेरणा देनेवाली मूल भावना भी वह अवचेतन की दमित मनोभावना ही है जो समाज और सभ्यता आदि के कारण बाह्य जगत् में खुलकर नहीं खेल सकती थी। कला और साहित्य इसी खेल का माध्यम हैं। यहाँ यह स्मरण करना अनावश्यक नहीं कि स्वप्न भी इन्हीं दमित लालसाओं की क्रीड़ा भूमि है और स्वप्न में हमारी वे लालसाएँ ही प्रतीक बनकर अथवा रूप परिवर्तित करके आया करती हैं। इसी प्रकार कला में भी उन्हीं दमित भावनाओं की प्रतीकात्मक तथा उदात्तीकृत (sublimised) अभिव्यक्ति है। जिस प्रकार काम वासनाओं की समाप्ति पर शुक्रजक्षरण से एक विशिष्ट प्रकार का सुख स्वाभाविक है। इसी प्रकार से कलात्मक अभिव्यक्ति करके भी एक प्रकार का सुख प्राप्त हुआ करता है। इतना ही नहीं निर्माता अपनी कला भी उसमें अपनी दमित इच्छाओं की अभिव्यक्ति पाकर एक प्रकार की संतुष्टि एवं आनन्द अनुभव कर परन्तु यह आनन्द वास्तविक भोग की अपेक्षा कहीं अधिक हल्का तथा अस्पष्ट और अस्थायी होता है।*

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि मनोविश्लेषण मूलतः चिकित्सा क्षेत्र का विषय है जो मनोविज्ञान से सम्बद्ध है। साहित्य एवं कला फ्रायड के मनोविश्लेषण सिद्धान्त के अनुसार मूलतः दमित मनोभावों का ही परिणाम है। ये मनोभाव सभ्यता, शिक्षा तथा समाज के अंकुश के कारण पूरे नहीं हो सकते थे अतः कलाकार के मस्तिष्क के उस भाग में ढकेल दिये गये थे, जिसे अचेतन नाम दिया गया है। इसमें अन्य अगणित इच्छाएँ भी अपने दमित रूप में ठुँसी पड़ी रहती हैं। इस कालकोठरी ने, चेतन मस्तिष्क की अपेक्षा कहीं अधिक बड़ा भाग घेर रखा है। ये इच्छाएँ ही अर्धचेतन या उपचेतन की अर्धक्रियाशील अवस्था जिसे सामान्य भाषा में नींद कहते हैं, के समय स्वप्न रूप हमारे सम्मुख प्रतिकात्मक वेष धारण कर क्रीड़ा करती है। कलात्मक सृजन भी स्वपन की भांति उन्हीं दमित भवनाओं का क्रीड़ा विलास है। अतः कलाकार भी एक प्रकार से मनोभावनाओं का परिष्कृत रोगी ही है। यह परिष्कार ही उसे अपनी कृति को मूर्तरूप देकर समाज के सम्मुख रखने में सक्षम बनाता है। अन्यथा भावनाएँ अपने मूल अर्थात् इंद के रूप में नितान्त भौंडी एवं कुत्सित होती हैं। फ्रायड इन सब की आधार-भिति रति इच्छा, कामवासना या यौन भावनाओं को मानता है जिसे उसने लिविडो का नाम दिया है। मनुष्य के समस्त स्नायु-रोगों, भाव-विलासों, स्वप्नों तथा कलाओं को वह एकमात्र लिविडो द्वारा परिचालित मानता है। यहाँ तक कि बच्चों के हाथ से छाती पकड़कर दूध पीना तथा छाती पर सोना आदि क्रियाओं को भी उसी भाव से परिचालित मानता है और सिद्ध करता है कि लड़कियाँ अपनी शैशवावस्था में अपने पिता तथा लड़के अपनी माता से

---

*Yet art affects us but a mild narcotic and can provide no more than a temporary refuge for us from hard-ships of life. Its influence is not strong enough to make us forget real misery. Singmond Frued : Civilization and its discontents. P. 32

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिक स्नेह करते हैं। ये स्नेह भी कामजन्य, एडिपस ग्रन्थि का ही प्रभाव है। इस प्रकार काम, मानवजीवन की नितान्त स्वाभाविक, नितान्त प्राथमिक, नितांत नियंत्रक तथा नितांत सृजक मनोभाव है।

फ्रायड ने काम भावनाओं पर इतना अधिक बल दिया है कि उसने प्रभु की इस विवेकशील सृष्टि को मात्र रति भावनाओं के हाथ का खिलौना सिद्ध किया है। विशेष मानसिक रोगियों में तो यह सब ठीक हो सकता है परन्तु समाज के सामान्य बुद्धिमान प्राणी के जीवन में हम यौन भावनाओं का इतना अधिक अंकुश नहीं देखते। यौन भावनाओं के अतिरिक्त कतिपय अन्य मनोवृत्तियाँ भी हैं जो हमारे जीवन को परिचालित करती है। यही कारण है फ्रायड के काल ही में अनेक विद्वानों यहाँ तक कि उसीके शिष्य-द्वयएडलर तथा जंगु फ्रायडीय संस्थान से पृथक् हो गये हैं। मनोविश्लेषण के क्षेत्र में उनके विचारों का अध्ययन भी आवश्यक है।

कार्ल जी जुंग--सुप्रसिद्ध मनारोग विशारद तथा चिकित्सक का जन्म वैसले (स्विट्जरलैण्ड) में एक भाषा-वैज्ञानिक के घर २६ जुलाई, १८७५ को हुआ था। शिक्षा-प्राप्ति के पश्चात् उन्होंने जूरिच विश्वविद्यालय में मनो-रोग चिकित्सक (१९००-१९०९) और तदनन्तर मनोविज्ञान के प्राध्यापक के रूप में अपना जीवन आरम्भ किया। वे फ्रायड के साथ मिलकर ५ वर्ष से अधिक कार्य न कर सके। और उन्होंने फ्रायड की अन्तर्राष्ट्रीय मनो-विश्लेषण परिषद् के त्यागपत्र देकर जूरिच (Zurich) में ही अपना एक निजी संस्थान स्थापित किया तथा फैडरल पौलीटेकनिक विश्वविद्यालय जूरिच एवं वाले विश्वविद्यालय में मनोविज्ञान के प्राध्यापक के रूप में कार्य करते हुए अपने सिद्धान्तों का परीक्षण एवं प्रसार किया। इन्होंने अपने सिद्धान्तों को मनोविश्लेषण (साइको अनैलैसिस) के स्थान पर न कहकर विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान (एले-लैटिकल साइकोलोजी) नाम दिया। इसके प्रमुख सिद्धान्त निम्नलिखित हैं—

जुंग की विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान के प्रमुख सिद्धान्त हैं—

१. मस्तिष्क के प्राथमिक कार्य चार हैं— (क) विचार करना (Thinking) (ख) अनुभव करना (Feeling) (ग) सिहरन (Sensation) और (घ) सहज ज्ञान (Intution)। प्रत्येक व्यक्ति में इन चारों में से एक या एकाधिक की प्रधानता होती है।

२. मनुष्य प्रधानतः दो प्रकार के होते हैं : (क) अन्त-र्मुखी वृत्तिवाले (इन्ट्रोवर्ट टाइप) तथा (ख) वाह्यवृत्ति वाले (एक्स्ट्रोवर्ट टाइप)।

३. मनोरोगों के कारण तथा निदान में उसने फ्रायड की काम और रति की अतिवादी प्राथमिकता की धारणा पूर्णतः ठीक नहीं है।

४. स्नायु रोगियों के बचपन की गतिविधियों की अपेक्षा उसके वर्तमान जीवन के विश्लेषण को अधिक महत्त्वपूर्ण समझा है।

५. लिविडो अर्थात् रति और काम भावना की नहीं अपितु जीवनेच्छा (विल टू लिव) को मानवीय चेतना का मूल माना है।

६. चेतन और अचेतन मन में सदैव संघर्ष ही नहीं होता उनमें सहयोग की संभावनायें भी हैं।

७. मानसिक प्रक्रियाएँ एवं रोग वैयक्तिक तो होते ही हैं, किन्तु पैतृक या परम्परागत भी हो सकते हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है जुंग महोदय ने फ्रायडीन वासनाओं के अतिवाद का खण्डन किया तथा उसके स्थान पर मनुष्य की जीवनेच्छा को प्राथमिकता देकर मस्तिष्क के कार्यों अर्थात् विचार, अनुभव, सिहरन आदि में मानव के वैयक्तिक अन्तर्मुखी एवं बहिर्मुखी स्वभाव के साथ पैतृक परम्पराओं का योगदान भी स्वीकार किया। साथ ही चेतन-अचेतन के सहयोग के संघर्ष ही नहीं सहयोग की सम्भावनाओं पर भी प्रकाश डाला।

आलफ्रेड एडलर (१८७०-१९३७)

आस्ट्रिया निवासी इस मनोवैज्ञानिक का जन्म वियाना में हुआ था। औषध विज्ञान उसके अध्ययन का क्षेत्र था और इसी आधार पर उसने नेत्र-विशेषज्ञ एवं मानसिक रोग-चिकित्सक के रूप में कार्य करते हुए फ्रायड के मनोविश्लेषण का विशेष अध्ययन किया था। किन्तु फ्रायड से उसका सम्बन्ध-विच्छेद बहुत शीघ्र अर्थात् १९१२ के लगभग हो गया था। उसने फ्रायड के काम वृत्ति सिद्धान्त को अति-रंजित स्वीकार करते हुए मानवीय क्रिया की मूल चेतना के रूप में उसकी आत्म-स्थापन उच्चता एवं शक्ति-निरूपण (सेल्फ एसर्टेन) की वृत्ति को स्वीकार किया था। यद्यपि उन्होंने अपने सिद्धान्त के प्रसार के लिए अमेरिका तथा योरप के विभिन्न भागों में भाषण दिये तथा प्रेक्टिस आफ इन्ड-स्ट्रियल साइकोलाजी एवं पैटर्न आफ लाइफ आदि कई ग्रंथ लिखे। किन्तु जितना मान फ्रायड का हुआ उतना एडलर या जुंग में से किसी का भी न हो सका।

साहित्य-सृजन में (विशेषतः उपन्यासों के क्षेत्र में) विश्व में अनेक देशों में फ्रायड की खोजों के आधार पर साहित्य निर्मित हुआ। विश्व के कुछ साहित्य समालोचकों ने भी अपनी समालोचनाओं का आधार भी फ्रायड के मनोविश्लेषण को बनाया। और आज तक भी रूथ बेनडिक्ट कार्ल मेनिंगजर तथा केरवहोनी आदि विद्वान् उसी पथ पर अग्रसर हैं। परन्तु निश्चित ही फ्रायड के मनोविश्लेषण सिद्धान्त पूर्णतः शुद्ध नहीं थे। उसकी सबसे बड़ी सीमा है, लिबिडो की अतिरंजित महत्त्व स्थापना तथा उपलब्धि है, मस्तिष्क के चेतन-उपचेतन आदि प्रक्रियाओं की मौलिक व्याख्या।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्तरिक्ष में उल्का-पिण्डों का निर्माण

श्री श्याममनोहर व्यास

१० अप्रैल सन् १९६४ का दिन !

समय दिन का दोपहर। बिहार प्रान्त के बहरामपुर नगर के निवासी अपने-अपने कार्यों में व्यस्त थे। बहरामपुर मुजफ्फरपुर जिले में है। अकस्मात् आकाश में एक भयंकर गर्जना हुई; तत्पश्चात् एक विद्युत् ज्वाल कौंध गया और भूमि पर टकराकर विस्फोट कर उठा। सभी व्यक्ति भय से सिहर उठे।

क्या यह बम-विस्फोट था ? क्या कोई वायुयान दुर्घटना-ग्रस्त हो गया था ? क्या कोई राकेट टूटकर गिर गया था ? पर इस प्रकार की सभी शंकायें निर्मूल सिद्ध हुईं। वास्तव में यह उल्का-खण्ड का गिरना था। भूगर्भ-विशेषज्ञ उल्का-पिण्ड के पास दौड़े गये। लोहे और गिलट के मिश्रण वाली वह भद्दी और भूरे रंग की धातु वैज्ञानिकों के लिए एक अन्वेषण का विषय बन गयी।

इस धातु के टुकड़े को कई प्रयोगशालाओं में जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। यह पाँच इंच लम्बा और तीन इंच चौड़ा था। ऐसे कई उल्का-पिण्ड पृथ्वी के अज्ञात स्थानों पर गिरते रहते हैं।

प्राचीन ग्रन्थों में भी उल्काओं का वर्णन मिलता है। महाभारत व प्राचीन ज्योतिष ग्रन्थों में भी इनका उल्लेख मिलता है। कुछ विद्वानों का मत है कि काबा का पवित्र पत्थर भी ऐसा ही एक अवशिष्ट उल्का-पिण्ड है।

सम्राट् जहाँगीर के शासन-काल में १० अप्रैल १६२३ को दिल्ली के पास महरौली में २ किलोग्राम की धात्विक उल्का गिरी थी। इसी तरह जयपुर के पास १९ दिसम्बर १८२१ में एक उल्का-पिण्ड के गिरने का प्रमाण मिलता है। कलकत्ता के राष्ट्रीय संग्रहालय में विश्व-भर से प्राप्त, विभिन्न प्रकार के ४६८ उल्का-खण्ड संग्रहीत हैं।

डा० बाऊन के अनुसार, प्रति दस लाख वर्ग किलो-मीटर में प्रतिवर्ष एक उल्का-पिण्ड के गिरने की सम्भावना रहती है।

उल्काओं के बारे में वैज्ञानिक धारणायें

वैज्ञानिक उल्का-पिण्डों द्वारा सूर्य एवं तारों की आयु का अनुमान लगाते हैं। उल्का खण्ड आकाश में सामान्यतः दृष्टिगोचर होते रहते हैं क्योंकि रात्रिकाल में निरभ्र आकाश का अवलोकन करने वालों को बहुधा ये उल्काखण्ड आकाश से पृथ्वी की ओर आते हुये दिखाई पड़ जाते हैं।

लोग इन्हें 'शूटिंग स्टार' अथवा 'गिरते हुये तारे' भी कहते हैं। कई वैज्ञानिकों का अनुमान है कि प्रतिदिन लग-भग एक हजार ज्योतिर्मय उल्का खण्ड पृथ्वी के वायुमण्डल में प्रवेश करते हैं जिनका कुल भार एक हजार टन से भी अधिक होता है।

उल्काओं के निर्माण के बारे में जर्मनी के भौतिक-विज्ञान-विशेषज्ञ क्लाद्नी का मत है कि उल्कायें सम्भवतः किसी विनष्ट ग्रह के अवशेष हैं।

वायुमण्डल में प्रवेश करने से पूर्व उल्काओं का आन्त-रिक तापमान सामान्य या शून्य डिग्री सेंटिग्रेड के नीचे हो जाता है। परन्तु वायुमण्डल में प्रवेश करने पर उसके प्रति-रोध के कारण उत्पन्न घर्षण से उल्का-पिण्ड का बाहरी तल तप्त हो उठता है और भीतरी भाग वैसा ही रहता है।

घर्षण के फलस्वरूप जो छोटी उलाकयें जलकर बिखर जाती हैं, उन्हें 'पुच्छल तारा' कहते हैं और जो पिण्ड इस घर्षण के पश्चात् भी पृथ्वी पर आ गिरते हैं; उन्हें उल्का-पिण्ड कहते हैं। वायुमण्डल में प्रवेश करने के पूर्व उल्कायें अन्तरिक्ष में इधर-उधर भ्रमण करती रहती हैं। जब वे पृथ्वी की कक्षा के समीप आती हैं; तो पृथ्वी अपने गुरुत्वा-कर्षण से उन्हें खींच लेती है।

उल्काओं से सौरमण्डल का सृष्टि काल, निर्माण-क्रिया आदि के बारे में जानकारी प्राप्त होती है।

कुछ उल्कायें बर्फ एवं घनीभूत गैसों से भी बनी होती हैं। यह भी सम्भावना है कि अन्तरिक्ष में ऐसी भी उल्कायें हों जो 'प्रति-द्रव्य' से बनी हों। उल्का से उत्पन्न प्रकाश इतना तीव्र होता है कि वह एक हजार कि० मी० तक की दूरी को भी कभी-कभी प्रकाशित कर देता है ! यह प्रकाश किसी भी रंग का हो सकता है—हरा, नीला, पीला, लाल इत्यादि !

उल्का-पात के समय ध्वनि भी उत्पन्न होती है ! कभी-कभी यह ध्वनि तोप के गर्जन के समान होती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९७३

वायुमण्डल का प्रतिरोध इस पर भी निर्भर करता है कि वायुमण्डल में प्रवेश के पूर्व उल्का-वेग क्या था और उसकी दशा क्या थी। पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण में आने के पूर्व उल्कायें अंडाकार कक्षा में सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाती हैं। इस कक्षा में उनकी वृत्तीय गति ४० कि० मी० प्रति सेकेण्ड होती हैं। पृथ्वी भी अपनी कक्षा में घूम रही है इसलिए पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र में आने पर उल्का की गति बदल जाती है।

उल्का-पिण्ड की ऊर्जा

यदि किसी उल्का-पिण्ड का भार एक सौ मीटरी टन हो और वह पृथ्वी से १० कि० मी० प्रति सेकेण्ड के वेग से टकराये, तो लगभग ५×१०^{१९} गतिज ऊर्जा उत्पन्न होती है। यह ऊर्जा पृथ्वी के धरातल में विवर अर्थात् गड्ढों का निर्माण करती है। विवर का आकार उल्का-पिण्ड के वेग व उसकी मात्रा पर निर्भर करता है। चन्द्रमा पर काफी विवर पाये गये हैं; इन सबका निर्माण भी वहाँ उल्का-पिण्डों के विस्फोट के कारण ही हुआ है।

उल्का-पिण्ड की रासायनिक संरचना

उल्काखण्ड दो प्रकार के होते हैं—पत्थरयुक्त उल्का-खण्ड जिनका निर्माण विभिन्न खनिज तत्त्वों के संयोग से होता है और इनमें लौह तत्त्व का न्यूनाधिक मात्रा में समावेश रहता है।

इसके अतिरिक्त एक और प्रकार के उल्का-पिण्ड होते हैं जिन्हें लौह उल्काखण्ड कहते हैं। इनमें अधिकांश तत्त्व लोहे का होता है। निकल, कोबाल्ट, फारफोरस, कार्बन, कोमियम और गन्धक भी अल्पमात्रा में रहते हैं।

स्मिथ सोनियन संस्थान के डा० हेण्डरसन ने बहरामपुर में गिरे उल्का-पिण्ड के बारे में रिपोर्ट प्रस्तुत की—"यह लघु उल्का उस सौर-मण्डल का ही एक पदार्थ है जिसमें कि हमारी पृथ्वी सम्मिलित है। सम्भव है कि यह पदार्थ किसी पुच्छलतारे अथवा किसी ग्रह से लाखों वर्ष पूर्व टूटकर अलग हुआ हो और तब से सूर्य की मन्दगति से परिक्रमा कर रहा हो। अत्यन्त प्रचण्ड गति से यात्रा करता हुआ यह उल्का-पिण्ड अचानक ही पृथ्वी के वायुमण्डल में आ पहुँचा और वहाँ घर्षण के परिणामस्वरूप उसकी गति ठीक उसी प्रकार काफी धीमी पड़ गयी जिस प्रकार पृथ्वी की परिक्रमा करते हुये अन्तरिक्ष यान की गति पृथ्वी के वायुमण्डल में प्रवेश करते ही मन्द पड़ने लगती है।"

अमरीका अणुशक्ति-संस्थान के डा०. जोन एच० पोमरीय ने इस उल्का के बारे में कहा था—"यह ऐसे किसी प्राचीन ग्रह का अंश हो सकता है जो मंगल और वृहस्पति ग्रहों के मध्य सूर्य से २५ करोड़ मील की दूरी पर किसी समय सूर्य की परिक्रमा कर रहा था।"

लघु उल्काओं से ब्रह्माण्ड किरणों के बारे में भी जानकारी प्राप्त होती है।

डा० शैफर के कथनानुसार ब्रह्माण्ड किरणों की उत्पत्ति सूर्य से नहीं होती। सम्भवतः ये किरणें सुदूरवर्त्ती अन्तरिक्ष में जन्म लेनेवाले नक्षत्रों और आकाशगंगाओं से निःसृत होती हैं। पृथ्वी पर गिरी हुई जो लघु उल्काएँ पायी गयी हैं; उनमें से आधी से अधिक किसी एक ही ब्रह्माण्डीय पिण्ड से उद्भूत प्रतीत होती हैं। यह पिण्ड सम्भवतः एक छोटा तारा था, जो लगभग ४० करोड़ वर्ष पूर्व भयंकर टक्कर से चकनाचूर होकर बिखर गया था। कम गुरुत्वाकर्षण शक्ति वाला यह तारा ब्रह्माण्ड का चक्कर लगानेवाले किसी सौर-परिवार के सदस्य से टकरा गया और टुकड़े-टुकड़े होकर उल्काओं के रूप में बिखर गया।

कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय के प्रो० हैराल्डसी यूरी के अनुसार मंगल और वृहस्पति के बीच जो हजारों छोटे छोटे क्षुद्र ग्रह हैं वे जब पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण की पकड़ में आ जाते हैं तो उल्काओं के रूप में पृथ्वी पर बरसते हैं।

उल्काओं की उत्पत्ति के बारे में अभी तक सर्वमान्य हल नहीं निकला है। एक उल्का-पिण्ड में जैविक गुणोंवाले अणु प्राप्त हुये हैं; जिससे निःसन्देह इस बात का संकेत मिलता है कि यह उल्का-पिण्ड जहाँ से आया है, वहाँ जीवन के लक्षण भी सम्भव हैं। यह हो सकता है कि जीवन का ठीक यह रूप वहाँ न हो, जैसा इस भूतल पर विद्यमान है। सभी वैज्ञानिक इस विषय पर एकमत हैं कि उल्काओं के घनीभूत होकर पिंड रूप धारण करने की क्रिया लगभग ४·७ अरब वर्ष पूर्व सम्पन्न हुई। पृथ्वी व चन्द्रमा भी लगभग इतने ही प्राचीन हैं। पृथ्वी पर प्राप्त चट्टानों की अधिकतम आयु ३ अरब वर्ष है। उल्काओं के अध्ययन से ब्रह्माण्ड में तत्त्वों की आपेक्षिक बहुलता, नाभिक-संश्लेषण एवं सौरमंडल में परिवर्त्तन के बारे में विशेष जानकारी प्राप्त होती है। प्रारम्भ से ही उल्कायें सचमुच रहस्यमय वस्तु रही हैं। आज वैज्ञानिकों ने इनके बारे में काफी अनुसन्धान कार्य किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोयल

श्री श्रीप्रकाश शर्मा

जब जब बसन्त आता है वातावरण एक मादक, कर्ण-प्रिय ध्वनि से गूँज उठता है। शिशिर से सिकुड़ी वसुन्धरा के कर्णरन्ध्रों में ज्योंही यह ध्वनि प्रविष्ट होती है, वह उठ खड़ी होती है, अँगड़ाई-सी लेकर प्रियतम बसन्त के आलिङ्गन के लिए। आइये, जरा अन्वेषण करें इस संगीत का। कौन है वह अद्वितीय कलाकार जो अपनी दो ही अक्षरोंवाली कविता को बार-बार दोहराता हुआ, अन्तस् में बेचैनी-सी उत्पन्न कर रहा है, बिना वाद्य के ही अपनी स्वरलहरी से मानसोदधि की बीथियों को उद्वेलित कर रहा है, लताओं से पूछा, तरुओं से पूछा, प्रस्फुटित पुष्पों से पूछा, समवेत स्वर में मुखरित हुआ कोयल, एतद्नन्तर वे सब मुझे कालिदास से लेकर पन्त तक प्राचीनता से आधुनिकता तक विस्तृत काव्य संसार का भ्रमण कराने लगे। एक अनजाने से लोक में पहुँच गया मैं, जहाँ चराचर का दर्शन अन्तस् के चक्षुओं से होता है, कल्पना शक्ति प्रत्येक वस्तु को मूर्त्त रूप में प्रस्तुत करती है, उसी संसार में मैंने कोयल को देखा, देखा कोयल को तो कौए की याद आ गयी। क्या यही कोयल है? मुझे धोखा तो नहीं हुआ, और भर्तृहरि का श्लोक स्मृति पथ में आ गया।

काकः कृष्णः पिकः कृष्णः को भेदः पिक काकयोः।
बसन्त समये प्राप्ते काकः काकः पिकः पिकः॥

—नीति शतकम्

शंका समाधान तो हो गया, कोयल का अभिज्ञान भी हो गया, पर उसे देखकर ऐसा लगा कि वह कूकी नहीं है उसने तुहीं तुहीं कहा है, और इस तुहीं तुहीं का भी एक लघु कथानक है, श्रीहर्ष के मस्तिष्क की उपज नैषध का प्रसाद, प्रभात काल है मधुमास है, वनस्थली में पक्षियों का कलरव गुञ्जित हो रहा है, मुख्यतया श्रवणगोचर हो रही है, कौए और कोयल की ध्वनि, कौआ, 'कौं, कौं कर रहा है, और कोकिल 'तुहीं, तुहीं' (कुहू कुहू)। कवि को कोयल और बलिभुक् इस समय वैयाकरण लग रहे हैं। उनके व्याकरण ज्ञान पर कवि को पूर्ण विश्वास है तभी तो वह कहता है :—

इह किमुशषि मृच्छाशंसि किम् शब्द रूप,
प्रति नियमित वाचा वायसेनैष मृष्टः।
भण फणिभव शास्त्रे तातड स्थानिनौका,
विति विहित तुही वागुत्तरः कोकिलोऽभूत्॥

अर्थात् कौआ मानों 'कौं' कौं (काँव काँव) करके पूछ रहा है कि, तातड से स्थान पर व्याकरण शास्त्र अनुसार कौन-सा आदेश होता है? इसका उत्तर कोकिल 'तुही, तुही' ध्वनि निकालकर देती है—क्योंकि उसे व्याकरण के, "तुह्योस्तातड़ा शिष्यन्य तरस्याम्" सूत्र सम्यक् ज्ञान है—कवि की यथार्थोन्मुख कल्पना है यह।

अस्तु, वनस्पतियों ने मुझे कोकिल का विस्तृत परिचय दिया, उसीका संक्षिप्त रूप प्रस्तुत है, काव्य रसिकों के मनोरञ्जन हित एक काव्य रसिक की तुच्छ भेंट :—

साहित्य में कोकिल का वर्णन अनेक स्थलों पर मिलता है, प्रत्येक कवि ने इसे परखा, कविता की कसौटी पर कसा और नितान्त खरा पाया, नितान्त कृष्णकाय कौए के आकार-प्रकार का पुंस्कोकिल अथवा कोकिल, कुछ सांवले रंग लिये हुए, पृष्ठ भाग घनी भूरी, और शुभ्र रेखाओं से चित्रित, मादा कोकिल, कोकिला, सुदूर देशों में निवास करनेवाली कूकू जाति के सदस्य, सम्प्रति आर्यावर्त की गिरि-उपत्यकाओं में अपना डेरा-डंडा जमा लिया है, कवियों कारों ने इसे अनेक नामों से पुकारा है, जैसे वनप्रिय, परभृत, ताम्राक्ष, पिक आदि सभी नाम इसकी विविध विशेषताओं के परिचायक हैं, विशेषतः इसका परभृत नाम अतीव आकर्षक है, और इसकी अनुपम चतुरता का द्योतक है। कहा जाता है कि अण्डा देते ही यह उन्हें अन्य पक्षियों के घोंसले में डाल आती है, और उन्हीं पक्षियों के शावकों को अपना ग्रास बना लेती है, और अपने अण्डों का सेवन करवाती है, बच्चों के पर निकलते हैं और वे गगनविहारी बन जाते हैं। इस बात के लिए इसका लक्ष्य कौआ ही प्रसिद्ध है, रामबाण हत बेचारे में अपने परायों की अभिज्ञान शक्ति कहाँ।

कोयल की इस चतुरता के उदाहरण भी दिये जाते हैं दुष्यन्त, कोकिला के इस कार्य को ध्यनावस्थित करके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

९७३

कुन्तला के सम्बन्ध में राय कायम करता है कि जब मानुषी स्त्रियों में इतनी बुद्धि है कि वे अपने बच्चों का आकाशगामी होने पर्यन्त, अन्य से पोषण कराती हैं, तो अन्य भाँति शिक्षित मानुषी स्त्रियों का क्या कहना :—

स्त्रीणामशिक्षित पटुत्वममानुषीणां,
संदृश्यते किमुत या परिबोध वत्यः ।
प्रागन्तरिक्ष गमनात् स्वमपत्य जात,
मन्यद्विजैः परभृता किल पोषयन्ति ।।

अभिज्ञान शाकुन्तल

इसका रंग काला क्यों है ? वैसे तो यह एक प्राकृतिक चमत्कार है, तथापि विल्हण कवि ने विक्रमाङ्कदेवचरित में किसी कामातुर विरही के मुख से एक विचित्र ही कारण बताया है, विरही काम सन्तप्त है, अतएव उसे कामदेव पर क्रोध आता है, और क्रोधित हो काम से कह उठता है कि —

अरे पातकी मदन ! तुम इतने काले मन के हो कि तुम्हारे सम्पर्क में आने से यह कोयल भी कृष्णवर्ण हो गयी और लज्जावश इसे नगर छोड़ वन में मुख छुपाना पड़ा । वैसे इसका काक परिवार से भी घनिष्ठ सम्बन्ध है, अतएव हो सकता है कि यह देन काक की ही हो, बोली में तो कुछ-कुछ साम्य है ही, कुहू शब्द सम्भवतः काँव का ही परिष्कृत रूप है, (काँव-काँव-कोहु-कुहु-कुहू) । उर्दू और फारसी साहित्य में जो कीर्ति बुलबुल ने अर्जित की है वही कीर्ति कोयल ने संस्कृत और हिन्दी साहित्य में अर्जित की है, संस्कृत साहित्य में तो कोयल का उल्लेख प्रचुरता से मिलता है, जो कि एक स्वतन्त्र शोध का विषय है, वैसे मुख्य रूप से इसका वर्णन बाणभट्ट ने कादम्बरी में, अश्वघोष ने सौन्दरानन्द और बुद्ध-चरित में, माघ ने शिशुपाल-वध में किया है । हिन्दी काव्य साहित्य ने इस क्षेत्र में कुछ निराशा का सा भाव प्रदर्शित किया है, तथापि जो कुछ है उसे हम विस्मृति पथ का पथिक नहीं बना सकते । जो कुछ भी हो कवि और प्रकृति में चिरकाल से मित्रता चली आ रही है, कवि प्रकृति की उपासना करता है, और प्रकृति भी उसका मनोरथ पूर्ण करने का प्रयास करती है, प्रकृति का वसन्त रूप कवियों का ध्यान आकृष्ट करता है तो कवि की दृष्टि कोकिल पर भी पहुँच ही जाती है और कवि के ओंठ कुछ गुनगुनाना प्रारम्भ कर देते हैं; क्योंकि कोयल और वसन्त का सम्बन्ध चिरकाल से चला आ रहा है, "जब तक कोकिल की कूक नहीं मधुमास नहीं तब तक आता ।" बसन्त और कोकिल का सम्बन्ध अन्योन्याश्रय सम्बन्ध कहलाता है, बसन्त के आगमन की सूचना कोकिल-रव से ही चतुर्दिक् उद्घोषित की जाती है । पहले कुसुमों का जन्म होता है तब षट्पदों और कोकिलों का कूजन सुनाई देता है, तब कहीं जाकर बसन्त वनस्थली में अवतीर्ण होता है :—

कुसुम जन्म ततो नव पल्लवास्तदनु षट्पद कोकिल कूजितम् ।
इति यथाक्रम माविर्भून्मधुर्द्रुमवती मवतीर्य वनस्थलीम् ।

—रघुवंश

कोकिल के ध्वनि सहयोग से ही बसन्त विरहियों के चित्त का हनन करता है, जिसे देखकर भर्तृहरि का मनस् वेदना से परिपूरित हो जाता है, और उसकी लेखनी चल पड़ती है—

मधुरयं मधुरैरपि कोकिला कलरवैर्मलयस्य च वायुभिः ।
विरहिणः प्रहिणस्ति शरीरिणो विपदि हन्त सुधाऽपि विषायते ।।

—शृंगारशतक

कोकिला के कुहू रव से और मलयाचल से प्रवाहित पवन के थपेड़ों के सहयोग से यह ऋतुराज बसन्त वियोगी जनों का विनाश करता है, यही कारण है कि विपत्ति के समय अमृत भी विष के समान प्राणलेवा बन जाता है । यह तो हुआ कोकिल के कारण बसन्त का महत्त्व, अब बसन्त के कारण कोकिल का क्या महत्त्व है इसकी बानगी लीजिए, कालिदास के करकमलों से । अभिज्ञान शाकुन्तल में तब बसन्त आता है जबकि राजा दुष्यन्त शकुन्तला के वियोग से दग्ध हैं, राजा के डर से बसन्त अपनी सुषमा का सर्वाङ्ग प्रदर्शन नहीं कर पाता है, उसका विकास अवरुद्ध हो जाता है, और तब कोकिल की वाणी भी गले में फँसी रह जाती है—

कण्ठेषु स्खलितं गतेऽपि शिशिरे पुंस्कोकिलानां रुतः ।

—अभि० शा०

यही वातावरण देखकर कवि सोच बैठा—

शङ्के संहरति स्मरोऽपि चकितस्तूणार्धकृष्टं शरम् ।

—अभिज्ञान शाकुन्त

क्योंकि कोकिल ही काम का वैतालिक है, उद्घोषक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, सहायक है और सन्देशवाहक है। काम की सेना जब प्रयाण करती है वियोगी जनों के हृदयों को छिन्न-भिन्न करने के लिए, तब रसाल कलिका मधुपान मत्त कोकिल की कूक वहाँ ढक्वा का कार्य करती है इसी बात को व्रजराज दीक्षित ने षड्-ऋतु वर्णन काव्य में इस प्रकार कहा है—

नूनं वियोगि जन वैरि चमू जयाय,
निर्गच्छतः कुपित काम नराधिपस्य।
उच्चैः रसाल कलिका मधुपान मत्तः,
पुंस्कोकिल ध्वनि मिषेण ररास ढक्वा।

—षड्ऋतु वर्णन काव्य

आम्रमञ्जरी के स्वाद से कषाय कण्ठवाले कोकिल की कूक मनस्विनी नायिकाओं के मान के विधान में दक्ष कामदेव की वाणी बन जाती है।

चूताङ्कुर स्वाद कषाय कण्ठः पुंस्कोकिलो यन्मधुरं चुकूज।
मनस्विनी मान विधात दक्षं तदेव जातं वचनं स्मरस्य॥

—कुमारसंभव

वह कहता है कि मान छोड़ो विग्रह मत करो। व्यतीत यौवन, पुनः परावर्तित नहीं होता।

त्यजत मानमलं वत विग्रहैर्नपुनरेतिगतं चतुरं वयः।

—रघुवंश

कोकिला भी कुछ कम नहीं, उसने भी कामदूती का खिताब ले रखा है, विक्रमोर्वशीय का नायक पुरूरवा अपनी प्रेयसी का पता कोकिला से ही पूछता है, क्योंकि वह काम-दूती है, नायिकाओं का मान भङ्ग करने की वह रामबाण औषधि है, काम का अमोघ अस्त्र है—

त्वां कामिनीं मदन दूति मुदाहरन्ति
मानावभङ्ग निपुणा त्वममोघशस्त्रम्।

—विक्रमोर्वशीय

कहा जाता है कि अनङ्ग कामदेव का यदि कोई अस्त्र है तो वह एक मात्र कोकिला की कूक ही है, विल्हण के अनुसार कोई मनुष्य काम के चार बाणों से बच सकता है उनकी अवहेलना कर सकता है, लेकिन कोकिल के कण्ठ यन्त्र से निकले पंचमबाण के आगे किसीकी नहीं चलती, कोकिल कामिनी के कलरव बाण से वह वशीभूत हो जाता है—

कामस्य काचित् चतुरः शरांश्चेत्,
विलङ्घयामास कथंचिदन्यान्।
उन्मञ्जता कोकिल कण्ठ यन्त्रात्,
स पञ्चमास्त्रेण वशी बभूव॥

—विक्रमाङ्कदेवचरित

कोकिला रतिदूती भी है, कामदेव के भस्म होने के पश्चात् जब रति विलाप करती है तो यही कहती है कि काम से कि :—हे मदन! अपने मनोहर शरीर को फिर धारण करो, और इस मधुरालाप निसर्ग पण्डित कोकिल से कहो कि यह रतिदूती के कार्य का सम्पादन करे—

प्रतिपद्य मनोहरं वपुः पुनरप्यादिश तावदुत्थितः।
रति दूति पदेषु कोकिलां मधुरालाप निसर्ग पण्डिताम्॥

कुमारसंभव—

मधुर ध्वनि के कारण कोकिल को, मधुकण्ठ, कलकण्ठ, धासुकण्ठ आदि नामधेय उपाधियों से अलंकृत किया गया है, कुछ कवियों ने तो इसे स्वर-साम्राज्ञी तक की उपाधि दे डाली है। कालिदास तो इसे मधुरालाप निसर्ग पण्डित भी मानते हैं, कहीं-कहीं इसकी वाणी की तुलना, मुग्धा रमणियों की वाणी से की गयी है—

प्रथम मन्यभृताभिरुदीरिता प्रविरला इव मुग्ध बधू कथा।

कोकिल का स्वर सम्पूर्ण वनस्पतियों के मूक स्वरों का प्रतिनिधित्व कर, समवेत रूप से उजागर होता है, साजन के घर जाती शकुन्तला को सम्पूर्ण वृक्ष कोकिल की कूक के माध्यम से जाने की अनुमति प्रदान करते हैं। महर्षि कण्व कहते हैं कि—

अनुगत गमना शकुन्तला, तरुभिरियं वनवास बन्धुभि।
परभृत विरुतं कलं यथा प्रतिवचनी कृत मेभिरीदृशम्॥

—अभिज्ञान शा०

अर्थात् शकुन्तला के वन सहचर वृक्षों ने कोकिल की मधुर कूक के माध्यम से शकुन्तला को अपने पति के घर जाने की अनुमति प्रदान कर दी है क्योंकि इन्हींकी ओर से यह अव्यक्त तथा मधुर कोकिल कलरव, श्रवण-गोचर हो रहा है। इसके स्वर में इतनी उत्तेजना है कि सुनने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मात्र से वियोगी जनों का हिया, कम्पायमान हो उठता है, तड़फ उठते हैं वे, जल बिन मछली की तरह। परित्राण के लिए तहखानों में छुपछुप कर बैठ जाते हैं। क्या-क्या नहीं करते वे कोकिल-कलरव से बचने के लिए,

सर्वं दिनं भूमिगृहेष्वतिष्ठद् बाधिर्ययोगं भुहुरा च काङ्क्ष।
पिकांगना पंचम पीड्य मानश्चकार किं किं न वियोगिवर्गः ।।

—विक्रामाङ्कदेव

कोकिल की कूक की मधुरिमा, षट्पदों की मदमाती गुंजार, कुलवधुओं के लज्जान्वित विनयशील मानस को भी कुछ क्षणों के लिए पर्याकुल कर देती है—

पुंस्कोकिलैः कलवचोभिरुपात्त हर्षैः,
कूजद्भि रुन्मदकलानि वचांसि भृङ्गोः।
लज्जान्वितं सविनयं हृदयं क्षणेन,
पर्याकुलं कुलगृहेऽपि कृतं वधूनाम् ।।

—ऋतुसंहार

तुलसीदासजी ने तो यहाँ तक कह दिया है कि—

कुहू कुहू कोकिल धुनि करहीं।
सुनि रव सरस ध्यान मुनि टरहीं।।
कूजत पिक मानहुँ गत माते।
टेक महोख ऊँट बिसराते।।

—रामचरित मानस

कोकिल के मादक स्वर का यह एक अद्भुत उदाहरण है। 'निराला' का कोकिल, अपनी कूक से वनश्री को ही शंकित किये दे रहा है—

गूँज उठा पिक पावन पंचम।
खग कुल कलरव मृदुल मनोरम।।
सुख के भय काँपती प्रलय क्लम।

—वनश्री चारुतरा

"पन्त" के साहित्योद्यान में पल्लवों से लदी डाल, कोकिल की कूक के प्रतिफल में ही दृष्टिपथ में आ रही है—

हृदय के प्रणय कुञ्ज में लीन
मूक कोकिल का मादक गान
बहा जब मन तन बंधनहीन
मधुरता से अपनी अन्जान
खिल उठी रोओं सी तत्काल।
पल्लवों की यह पुलकित डाल।।

—पल्लव

माखनलाल चतुर्वेदी का कैदी, कोकिल को सन्देश-वाहक ही समझ बैठा दीखता है—

क्या गाती हो, क्यों रह रह जाती हो।
कोकिल बोलो तो।
क्या लाती हो, सन्देशा किसका है।
कोकिल बोलो तो।।

—कैदी और कोयल

यह है कोकिल की कहानी प्राचीनता और आधुनिकता के परिवेश में। न जाने कब से गाती चली आ रही है यह, इसकी वाणी तनिक भी श्रान्त नहीं हुई है, क्षण-क्षण में इसमें नवीनता ही दृष्टिगोचर होती है, कोयल की कूक के काँटें में फँसकर याद रूपी मछली चली आती है तड़फती हुई, जिन्दगी और मौत के मध्य में त्रिशंकु की तरह लटकी हुई, आश्रय स्थान मिला तो जीवन का सञ्चार, अन्यथा घुटघुटकर मौत। आज इस यांत्रिक युग में वियोग वर्ग को कोकिल गिरा भले ही न व्यथित करें, वे भले ही तहखानों में न छुपकर, चलचित्र दर्शन से "स्व" का मनोरञ्जन करे, तथापि कोकिल किञ्चितमात्र भी हतश्री नहीं है, वह गाती रही, गा रही है और गाती रहेगी, जब-जब मधुमास आयेगा अपनी स्वरवीणा की झंकृति से, जनमानस को व्यथित करेगी, और अन्त में उसका प्रयास सफल होगा ही, कोकिला गायेगी, कोकिल गायेगा, क्या आप लोग मेरी राय से सहमत हैं?

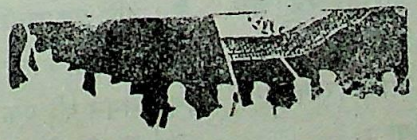

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुटापा

श्रीमती शीला शर्मा

मुटापे का नाम बहुत बदनाम है। खाते अपना हैं और नज़र दूसरों की उठती है। वैसे तो हर चीज को नजर लग जाती है, पर इसको नजर भी नहीं लगती। एक समय में मुटापा वरदान था अब इस जमाने में अभिशाप हो गया है। पहले, रियासता जमाने में मुटापा पाये लोग रियासती, जायदादी, कुछ भारी भरकम माने जाते थे, खाये-पिये लोग माने जाते थे। और दुबले सूखे लोग भूखे!

मोटी छोटी औरतें बटुआ सी बहुयें कहलाती थीं। मामा की गोद में विवाह मण्डप वेदी पर बैठते 'बटुली' सी भली जान पड़ती थी। लम्बी पतली औरतों पर जो क्षोभ था वह हिजड़ों के विशेषण से उतारा जाता था।

यह रही देशी बात, मुटापे को अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त थी। अफ्रीका में स्त्रियों की सुन्दरता उनके मुटापे के अनुपात से मानी जाती थी। और वह भी सबसे अधिक शरीर के एक भाग से आँकी जाती थी। वह थे उनके नितम्ब। सुना जाता है कि अफ्रीकी अतीव सुन्दरी के बैठ-कर उठने के लिए एक ढलान का उपक्रम किया जाता था क्योंकि उनके नितम्ब सौन्दर्य के बोझ से इतने भारी हो जाते थे कि उनको बैठ जाने के बाद आसानी से उठने नहीं देते थे। विलायत में (जहाँ के शासकों ने हमारी रुचियाँ भी अपनी रुचियों में बदल दी थीं) गोल चिकने गोरे शरीर इतने प्रिय थे कि उस समय के चित्रकार दुबली स्त्री की कल्पना भी नहीं करते थे।

परन्तु जिस प्रकार हर चीज का जमाना लद जाता है। मुटापे का जमाना भी लद गया है। बल्कि यह कहना चाहिये कि हर भारी-भरकम चीज का जमाना लद गया। फिर मुटापा ही कैसे बचता? भारी-भरकम राज्य समाप्त हो गये, भारी-भरकम रियासतें हट गयीं। भारी-भरकम मकान बदलकर हल्के-फुल्के फ्लैट्स बन गये। बड़े-बड़े परिवार कट-छँट के छोटे-छोटे नियोजित परिवार रह गये तो भला यह मुटापा कैसे बचता? यह भी विचारा छाँट डाला गया। और स्वाभाविक सुडौलता के नाम पर कृशांगी शरीर ने उसके क्षेत्र पर अधिकार कर लिया।

और जो कुछ भी हो, आज जमाना कृशांगी का आ गया है और मुटापे पर बड़े-बड़े कलंक लग गये हैं। इतनी बीमारियों के साथ इसका नाम जुड़ गया है कि जो मुटापे को बुरा नहीं समझते वे भी घबड़ा उठे हैं। आर्थराइटिस में शरीर जितना हल्का हो उतना अच्छा क्योंकि एक तो मोटे शरीर का बोझ बर्दाश्त करना आर्थराइटिस ग्रसित अंगों पर बोझ डालता है। दूसरे मुटापा गति में बाधा डालता है। आर्थराइटिस पीड़ित प्राणी को गतिवान रहना आवश्यक है। नहीं तो उसकी जड़ें और गहरी पड़ जाती हैं। हृदय रोगों में एक रोग 'फैटी हार्ट' (चर्बी से आच्छा-दित हृदय) का भी होता है। निष्कर्ष यह कि मधु मेह रोग (डायविटीज), सिरोंसिस, हृदय रोग, कैंसर, नेत्ररोग, अंधापन और ऐसी बहुत-सी बीमारियाँ मुंटापे के सिर पर मढ़ दी गयी हैं। इतना ही नहीं, मानसिक असन्तुलन भी शारीरिक असन्तुलन के साथ जुड़ा हुआ है। ऐसा माना जाता है कि मोटे आदमियों का चिन्तन शिथिल होता है। उनके सोचने की प्रक्रिया धीमी होती है और वे मानसिक रोगों के शिकार अधिक होते हैं। डाक्टर कहते हैं कि शरीर दुबला करो।

मोटे लोगों को स्वयं अपने मुटापे पर ग्लानि होने लगती है। ऐसा नहीं है कि वे अधिक खाते हैं। पर देखने में लगता है कि वे इस जमाने में, जब कि भोजन पर राशन की नौबत आ गयी है और चीनी अनमोल हो रही है, दूसरों का भाग छीनकर खा गये हैं। देखा जाय तो बहुत से दुबले लोग हैं जो चौगुना अधिक खाते हैं। पर उनका खाया दिखाई नहीं पड़ता। सींक-सलाई से बने रहते हैं। प्रश्न उठता है कि ऐसा क्यों? वास्तव में देखा जाय तो मोटों को दुबला करने का लोगों ने एक धन्धा ही बना लिया है। प्रायः सभी आय के क्षेत्रों में यह धन्धा बड़े सूक्ष्म रूप से फैला है। यदि प्रकाशनों को देखिये तो दुर्बल होने पर दर्जन भर पुस्तकें मिल जाती हैं। खाद्य विभाग को देखो दुबले होने के लिए समय की एक अवधि बाँध कर नये-नये खाद्य पदार्थ बोतलों और डिब्बों में आते हैं। कुशल उद्योगशील लोगों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने मालिश करके दुबला करने के 'ब्यूटी पाइलर' का व्यवसाय प्रारम्भ किया है, व्यायाम की कक्षाएं खुली हुई हैं। योगाभ्यास कराने का एक दूसरा व्यवसाय है। डाक्टरों और विशेषज्ञों की चर्चा यहाँ की ही नहीं जा रही है। भारी शरीर को घटाने के लिये चर्बी तथा कार्बोहाइड्रेट रहित भोजन आदि उनके साधारण निदान हैं, कुछ गोलियाँ भी औषधि रूप में प्रस्तुत की गयी हैं। फिर भी कारण क्या है कि मुटापा वहींका वहीं बना हुआ है; घट भी जाता है तो फिर वापस आ जाता है। गोलियों के सेवन से मुटापे में अन्तर अवश्य आता है। उनके प्राप्ति और सेवन की सहजता भी गोलियों की लोकप्रियता बढ़ाती है।

वास्तव में मुटापे को स्वयम् एक रोग के रूप में मान लिया गया है। जहाँ यह रोग के रूप में नहीं है, वहाँ यह देखा गया है कि जहाँ यह थोड़ा चढ़ा वहाँ फिर जल्दी-जल्दी और चढ़ने लग जाता है और फिर रुकने की इसकी अपनी ही सीमा होती है।

माना गया है कि भोजन को छोड़ चर्बी बढ़ाने में जिस चीज का हाथ है वह नींद है। अक्सर देखा गया है कि अधिक खाना एक तो आदत की बात होती है पर अधिक खाकर दुबले रहनेवाले आदमी गतिवान अधिक होते हैं। आराम-प्रधान व्यक्ति का शरीर परिधि में बढ़ने लगता है। असल में बात यह गोल चक्कर की है। दुबला होने के कारण आदमी फुर्तीला अधिक रहता है, या फुर्तीला अधिक होने के कारण दुबला होता है। परन्तु जो फुर्तीला रहता है और नींद कम लेता है उसका शरीर जितना भोजन लेता है, उतना ही शक्ति प्रयोग में समाप्त कर देता है, संचित कम करता है। जो आराम अधिक करते हैं उनकी भोजन मात्रा व्यय में कम आती है। संचित अधिक होती है। इस बात को ध्यान में रखने से एक लाभ है कि जो कृशांगी हैं वे कृशांगी ही बने रहेंगे, मुटापा संचित होने की क्रिया प्रारम्भ ही नहीं होगी। जिनका संचित हो चुका है उनको अपना आराम का अनुपात घटाना होगा, और कम से कम आगे तो इसका ध्यान रखना ही होगा।

प्रेम की बाढ़

श्री शिवनारायण जोशी

मेरा मन
सहारा का रेगिस्तान
खुश्क धूल के अंधड़
उठा करते हैं जहाँ रात दिन
मेरा मन
उजड़ा हुआ वीरान उपवन
पतझड़ रहता है जहाँ निशिदिन।
मन-मयूर है मूक
न उठती है कूक
श्यामल मेघों के अभाव में।
अकस्मात्
हुआ एक विस्मयकारी परिवर्तन
रेगिस्तान बन गया नखलिस्तान।
मेघों की गर्जन ताल
पावस के रिमझिम संगीत
के साथ हुआ
चपला का नर्तन।
रेगिस्तान बन गया नीली झील
नीली झील में खिले कमल
खिले कमल के गिर्द गूँज उठा
मन-भ्रमर का गुञ्जन।
वह जब आती है
मुस्कराती है
बतियाती है
काले कुन्तल के बीच
तब
कौंधती है बिजली
खिलते हैं आकाश कुसुम
बरसता है मधु
और
बह जाता है मेरा मन
प्रेम की बाढ़ में।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐतिहासिक कहानी

प्रथम प्रेम

श्री निशीथकुमार राय

सत्रहवीं सदी के मध्य की बात है। पचास साल पहिले ही मुग़ल साम्राज्य दक्षिणी सरहद नर्मदा अतिक्रम कर चुका था।

अकबरशाही के अन्तिम दिनों में ही ताप्ती उपत्यका का खानदेश मुग़ल साम्राज्य के अन्तर्भुक्त हो गया था। निजामशाही वंश के अन्तिम राजा हुसेनशाह को शाहजहाँ ने पराजित कर दिया था। गोलकुण्डा और बीजापुर को भी उन्होंने काबू में कर लिया था। गोलकुण्डा के राजा अब्दुल्ला ने बिना युद्ध के ही शाहजहाँ की वश्यता मान ली थी। बीजापुर ने पहिले तो विरोध किया पर जब समृद्ध ग्रामों में ध्वंस की लीला देखी तो उसने भी घुटने टेक दिये।

इसके बाद करीब सत्रह वर्ष और भी बीत गये। उन दिनों मुगलों के अधीन दक्षिणी क्षेत्र का प्रशासक था शाइस्ता खाँ। खानदेश के सूबेदार थे बेगम मुमताज के बहनोई मीर-खलील खान-ऐ-जमाँ।.....दक्षिण में मुगलों के आधिपत्य में खानदेश प्राकृतिक शोभा व सम्पन्नता में श्रेष्ठ था। यहाँकी राजधानी थी बुरहानपुर।

इसके उत्तर में सतपुड़ा पर्वत श्रेणी, और दक्षिण में सह्याद्रिगिरि ! निर्झरों, सुन्दर उद्यानों से सज्जित यह उपत्यका बहुत रमणीय थी।

तीन सौ वर्ष हुए शाइस्ता खाँ को सम्राट् का आदेश मिला कि उनकी जगह सम्राट् के तीसरे साहबज़ादे मुही-उद्दीन मुहम्मद औरंगजेब प्रतिनिधि बनकर तशरीफ ले जा रहे है।

इस संवाद को सुनकर सूबेदार की बेगम सालिहा बानू बड़ी खुश हुई ! उनकी बहन मुमताज का बेटा सम्राट् का नुमायन्दा बनकर आ रहा है। यह सुसंवाद नहीं तो क्या ? शीघ्र ही यहाँ यह संवाद फैल गया। इससे पहिले कुशासन के कारण दक्षिण की हालत सन्तोषजनक न थी। इसलिए सम्राट् को औरंगजेब जैसा कड़ा शासक भेजना पड़ा था।

सन् १६५३ ई० के पहली जनवरी को औरंगजेब नर्मदा के किनारे पहुँच गये। वहीं एक महीने वे खेमे में रहे क्योंकि बुरहानपुर का महल उनके रहने के योग्य नहीं बन पाया था हालाँकि उनके आगमन का संवाद पाने के दिन से ही हजारों मिस्त्री और मजदूर रातों-दिन काम में लगे हुए थे। एक महीने के बाद जब महल उनके रहने के योग्य बन गया तब वे नगर में गये। एक सप्ताह बाद उन्हें उनकी मौसी सालिहा बानू ने दावत दी। औरंगजेब चरित्रवान, कठोर प्रकृति के हैं, नाच-गाना, मदिरापान आदि उन्हें तनिक भी पसन्द नहीं है, यह उन्हें मालूम था। इसलिए उन्होंने ऐसा प्रबन्ध किया था कि शाहजादा की रुचि के खिलाफ कोई बात न होने पावे। शाहजादा कभी-कभी मौसी के घर आया करते थे। कभी वे बिना इत्तिला के भी आ पहुँचते थे। सालिहा बानू के निर्देशानुसार हरम की कोई लड़की औरंगजेब के सामने नहीं जाया करती थी।

मगर धीरे-धीरे सावधानता भी अनवधानता में परिवर्तित हुई। सालिहा बानू हरम की लौंडियों पर उतनी निगरानी नहीं कर पाती थीं।

एक निदाघ अपराह्न की बात है। प्रचण्ड रौद्र से तप्त उपत्यका अब शीतल हो रही थी। सूर्यास्त हो चुका था। दिन का अन्तिम रश्मि भी सह्याद्रि पर्वत के पीछे लुप्त हो गया था और आसमान की पटभूमिका पर हरे रंग की पर्वत माला चित्रवत् लग रही थी। जमीन पर हरी घास की कालीन मानों आसमान, ताप्ती नदी एवं पर्वत की हरियाली के साथ सुर में सुर मिला रहा हो !

वहीं टहल रहे थे शाहज़ादा ! थोड़ी दूरी पर मौसी सालिहा बानू एवं अन्य रिश्तेदार भी उपस्थित थे। अचानक किसी रमणी के स्वर में गाये गज़ल के शब्द उनके कानों में आये। यद्यपि गाना मंद स्वर में गाया जा रहा था फिर भी बहुत पास रहने के कारण शाहज़ादे को स्पष्ट सुनाई दिया। उस स्वर को अनुसरण करके उनकी दृष्टि ने जो कुछ देखा उससे मानों उनका हृदय कम्पन हुआ। उपवन के प्रान्त में एक वृक्ष की घनी छाया में खड़ी थी एक किशोरी ! शाहज़ादे में भावप्रवणता का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९७३

लेश न था। वे थे पवित्र कुरान के गम्भीर अध्ययन करने वाले और उसमें लिखे विभिन्न निर्देशों का अक्षरशः पालन करने में तत्पर। किसी प्रकार की विलासिता उनके लिए हराम थी। उनका जीवन संयत, नियमानुवर्त्ती था। पत्थर से भी कठिन था उनका हृदय! पर उस किशोरी को देखते ही मानों पत्थर भी पसीज उठा। किशोरी यौवन के प्रथम सोपान पर थी—गदराई हुई! बड़ी ही सुन्दर और आकर्षक। आसमान जैसा नीला परिधान उसके गौरवर्ण तनु को आवृत् करते हुए भी मानों उसके यौवन के उभार को उन्मुक्त किये दे रहा था। उसने अपनी निगाहें शाहज़ादे पर डालीं—उस दृष्टिपात से शाहज़ादा मानों उन्मत्त हो उठे!

औरंगजेब अपने दादा जहाँगीर जैसे शायर न थे, और न बाप शाहजहाँ जैसे रंगीन तबीयत के पर फिर भी उन्हें लगा किसी फारसी कवि का वर्णन :—

'उसके केशों में रजनी का अन्धकार, माथे पर दिन की ज्योति, गालों पर बसरा का गुलाब, ओठों पर प्रवाल की लाली और मुखड़े पर पूर्णिमा की चंद्रमा की महिमा। शाहज़ादा वहीं प्रस्तर मूर्त्तिवत् खड़े रह गये। सालिहा बानू और दूसरे लोग आगे बढ़ गये थे। अब शाहज़ादे को देखकर वे लौट आये और शाहज़ादे को देखते ही सालिहा बानू समझ गयीं कि उसका किसी कारण भावान्तर हो गया है। वे उस लौंडी की ओर कड़ी निगाह डालकर कड़े स्वर में बोलीं "जैनाबादी, इधर तुम क्यों आईं? —अभी महल में वापिस जाओ—"

वह किशोरी अन्तर्हित हो गयी—पर हमारे शाहज़ादे के पत्थर के हृदय को द्रवित कर गयी या मानों उनका हृदय अपने साथ उड़ा ले गयी।

अपने महल में लौटकर शाहज़ादे ने देखा कि मुर्शिद कुली खाँ खुरासानी उनकी प्रतीक्षा में बैठे हैं। वे आये थे वहाँके नये राजस्व नीति के बारे में चर्चा करने। मुर्शिद कुली खाँ उस समय दक्षिण के दीवान थे। वे केवल शाहज़ादे के विश्वासपात्र ही नहीं थे अपितु उनके अन्तरंग मित्र भी थे। औरंगज़ेब उन्हें अपनी सारी बातें बताया करते थे। उन्होंने मुर्शिदकुली खाँ से अनुरोध किया कि वे उस पलभर के लिए देखी गयी अपूर्व सुन्दरी किशोरी के बारे में सब कुछ पता लगावें!

मुर्शिदकुली खाँ के लिए यह कोई कठिन काम न था। पता लगा वह लैंडी मीर खलील साहब की क्रीतदासी है। जैनाबाद नगर की किसी नर्त्तकी की दुहिता है वह। वह नृत्यगीत में प्रवीण है। सूबेदार साहब की निगाह में पड़ जाने के कारण वह उनके 'हरम' में लाई गयी थी। यद्यपि उस किशोरी का नाम हीराबाई था—पर जन्मस्थान के नाम पर 'हरम' में उसका नया नाम रक्खा गया था "जैनाबादी महल"। पर सूबेदार बड़े ही निष्ठुर, बद्मिजाज और कुचक्री हैं—मुर्शिदकुली खाँ ने शाहज़ादा को बताया। उनके हरम से लैंडी उठा लेने से पहिले यह ज़रूरी होगा कि मीर साहब के धड़ पर से उनका सिर उड़ा दिया जाय। वर्ना वे खतरनाक इन्सान हैं। हुक्म हो तो मैं इस काम को कर डालूं—इसमें अगर मेरी जान भी जाये तो परवाह नहीं।

—मुझे मालूम है कि तुमसे बढ़कर वफादर दोस्त मेरा और कोई नहीं है, मगर मेरा जी नहीं चाहता कि मैं प्यारी मौसी को बेवा कर दूं। इसके अलावा पवित्र कुरान के मुताबिक इस किस्म का काम पाप है। इसलिये मैं चाहता हूँ कि तुम मीर साहब से खुल्लम-खुल्ला बातचीत करके देखो।

उसी दिन मुर्शिदकुली खाँ ने सूबेदार से भेंट करके शाहज़ादे की तमन्ना के बाबत बातचीत की। उनके चेहरे पर कोई भावान्तर दिखाई नहीं दिया। उन्होंने शाहज़ादे को सलाम कहलाया और जबाब उनकी मौसी के जरिये जताने को कह दिया।

सालिहा बानू से सूबेदार ने कहा; "अगर शाहज़ादा जैनाबादी को लेना चाहतें हैं तो मुझे कोई एतराज नहीं है पर एक शर्त है शाहज़ादे को बदले में अपने 'हरम' में से छतरबाई को दे दें।" उन्होंने कहा कि ये बातें वे शाहज़ादे से कह आवें। वे पहिले सहमत नहीं हुईं पर जब सूबेदार की दबी आवाज़ में धमकी सुनी, "मैं हुक्म दुहराता नहीं बेगम—यह तो तुम जानती ही हो। हुक्मउदूली की एक ही सजा मैं देता हूँ—"

आगे कुछ कहने की ज़रूरत नहीं थी। बेगम सालिहा बानू ने शाहज़ादे को बतायी मीर खलील की शर्त! शाहज़ादा खुश हो उठे। यह कोई बड़ी बात नहीं। सूबेदार शौक़ से ले जायें छतरबाई को। मौसी को उन्होंने वापसी में अपनी पालकी पर ही छतरबाई को साथ ले जाने का अनुरोध किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सालिहा बानू ने एक खोजा प्रहरी के ज़रिये सूबेदार को यह बात कहलवा दी। सालिहा बानू शौहर और भांजे के भावी मनमुटाव से डर रही थीं पर वैसा कुछ नहीं हुआ देखकर खुश हो उठीं। सूबेदार ने भी तुरन्त जैनाबादी को शाहज़ादे के महल में भेज दिया।

शाहज़ादे भी कोई अल्हड़ किशोर न थे। उस समय उनकी उम्र ३५ वर्ष थी और छः बच्चों के पिता बन चुके थे। उनकी बेगम भी उनके साथ उन दिनों थीं। मगर फिर भी शाहज़ादे उसके प्यार में उन्मत हो उठे। काम-वासना के तीव्र स्रोत में धर्माधर्म, शासन व्यवस्था आदि की चिन्ता जाने कहाँ बह गयी। कभी ताप्ती नदी के किनारे चाँदनी रात में, तो कभी उद्यान के पुष्पित कुंज में वे जैनाबादी के प्रणयलीला में मग्न हो गये।—"जैनाबादी, जब तक मैं तुमसे परिचित नहीं हुआ था तब तक जिन्दगी का प्रकृत आनन्द क्या है, यह मालूम नहीं हो पाया था। जीवन असम्पूर्ण था।"

—"मेरे आका, इस नाचीज को इतनी अहमियत न दें? मैं तो आपके कदमों की धूल से भी तुच्छ हूँ?" बोली विनम्र किशोरी। उसके क्षीण कटि में चन्द्रहार! उसको लचाकर, एक अपूर्व ढंग से अपने यौवन का प्रदर्शन करती हुई जैनाबादी थोड़ी दूरी पर ताप्ती के किनारे घास के गलीचे पर बैठ गयी। शाहजादा उसके समस्त अंग का मानों अपनी निगाहों से पान करने लगे। आसमान के चाँद के सिवा इस बात का और कोई साक्षी नहीं था। चाँद भी मानों इस युगल को मनमानी करने का सुयोग देने के इरादे से पलभर के लिए एक टुकड़ा बादल के पीछे छिप गया। हल्का बादल—कहीं से आवारा बहता हुआ आ पहुँचा था। बादल के चाँद को अपनी ओट में लेते ही चाँदनी का औज्ज्वल्य लुप्त हुआ—थोड़ा धुँधलापन आ गया और जैनाबादी के कटि को एक हाथ के बेष्टन में लेकर दूसरे हाथ से उसके ठोढ़ी को जरा-सा उठाकर बड़े आवेश से शाहज़ादे ने चूमा।

शरद का आगमन मौसम जता रहा था। कास के फूलों ने शीर्ष पत्तों के बीच से झाँकना शुरू कर दिया था। धूप तेज होने पर भी शाम के बाद एक हल्का-सा गुलाबी ठंड का आभास अब मिलने लगा था। निर्मेघ आसमान पर धुनी हुई रुई की तरह कभी-कभी एकाध टुकड़ा पथभ्रष्ट बादल अब भी दिखाई देता था। बरसात की भीगी धरती अब उस तरह गीली नहीं लगती थी। हरियाली के बीच अब फूलों की कलियाँ आत्मप्रकाश करके कहीं-कहीं रंग के छींटा लगा रही थीं।

ऐसे ही मौसम में अपने प्रासाद के ऊपरी दालान से शाहजादा देख रहे थे जैनबादी का अपूर्व नृत्य कौशल। कितनी ही मुद्राओं से कितने ही ढंग से वह शाहज़ादे का मनोरंजन कर रही थी। शाहज़ादा भी तल्लीन थे नर्त्तकी के यौन आकर्षण एवं सौन्दर्य के इन्द्रजाल में।

पास रखे पान पात्र से नर्त्तकी ने मदिरा उड़ेलकर अपनी प्यास बुझाने के बाद शाहजादे को उसीमें शराब भरकर पीने को कहा। शाहजादा धार्मिक वृत्ति के थे। शराब छूते भी न थे। पहिले उन्होंने अनुनय किया। पर उस कुहकिनी ने उनकी एक न मानी। उसके यौवन माया-जाल के सामने शाहज़ादे का धर्मज्ञान, धर्मनिष्ठा टिक नहीं पायी और अन्त में सुरा उनके ओठों तक पहुँची। पर अभी ओंठ ने सुरा स्पर्श भी नहीं की थी कि जैनाबादी ने उसे हटा लिया। बोली, "मुझ अधम के लिए अब यह ज़हर आप न पियें। मैं तो आपके प्यार का इम्तहान ले रही थी।"... उसके स्वर में था विजय का उल्लास।

पहले तो शाहजादे के इश्क की कहानी बुरहानपुर में फैली, फिर दूर-दूर तक इसकी चर्चा होने लगी।

सम्राट् के बड़े शाहजादे दाराशिकोह की कोशिश से यह अफवाह बादशाह सलामत के कानों तक पहुँची। मगर शाहजहाँ के लिए औरंगजेब के बारे में ऐसी बातों पर विश्वास करना कठिन हो गया। अब खुलकर दाराशिकोह ने पिता से कहा, "आप ने देखा उस बेवकूफ की करतूत को। आप उसे धर्मात्मा समझते थे मगर मैं जानता था उस ढोंगी को। धर्म के बहाने व्यभिचार करना तो धर्म-हीनता से भी बुरी बात है।"

बादशाह ने बार-बार औरंगजेब को दरबार में तलब किया था मगर एक न एक बहाना बनाकर शाहजादा ने बुरहानपुर नहीं छोड़ा।

नौ महीने बाद शाहज़ादा बुरहानपुर से औरंगाबाद गये। औरंगजेब के जीवन का सबसे रंगीन, सर्वाधिक आनन्दोज्ज्वल समय यहीं पर बीता था। लौहगढ़ के जंगलों में शिकार, पहाड़ी उपत्यकाओं के पासवाले घने अरण्य में शेर का शिकार, कतलाक तालाब के किनारे तरह-तरह की चिड़ियों का शिकार और इन सब के ऊपर जैनाबादी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का साथ, पूर्ण यौवन के मध्याह्न में प्रथम यौवन का हर्ष चांचल्य का उपभोग जैनाबादी के साहचर्य्य से ही उन्हें मिला था।

पर अचानक उनके सुख के उद्यान को ईश्वर ने सुखा दिया। बसन्त आते-आते ही पतझार आ गया। उनके हृदय में प्रेम का कुसुम खिलने से पहिले ही मुरझा गया। सात दिन के बुखार में ही जैनाबादी चल बसी। प्रासाद के पास ही जैनाबादी की क़ब्र बनी। इसके बाद भी औरंगजेब चार वर्ष दक्षिण में रहे। जब भी वे औरंगाबाद में रहते थे—जैनाबादी की क़ब्र के पास जाकर घुटना टेक कर इबादत किया करते थे।

प्रियतमा की जुदाई का सद्मा सहना मुश्किल था। शाहजादा अकेले ही शिकार पर निकल गये। साथ पार्श्वचर असकरी उर्फ आक़िल खाँ था। आक़िल ने शाहजादा से कहा, "आपके मन की जो हालत है इसमें क्या शिकार पर जाना मुनासिब होगा?"

औरंगजेब ने फार्सी शेर में जवाब दिया--

"घर पर रहकर शोक मनाने से हृदय की व्यथा का भार नहीं हलका होता, केवल तनहाई में अकेले आँसू बहाने से कम से कम रोया तो जा सकता है।"

आक़िल भी शायर थे। उन्होंने शेर में ही इसका जवाब दिया--"प्यार खामोश कदमों से आता है, आसान होते हुए भी वज्र जैसा कठोर होता है! जुदाई असहनीय होते हुए भी आशिक का आखरी सहारा होता है।"

शाहजादे ने घोड़े की चाल द्रुत कर दी। घना जंगल भेद करके घोड़ा तेज़ दौड़ रहा था। शाहजादा प्रकृति के दृश्य को देखने के बहाने मुँह जंगल की हरियाली की ओर किये हुए थे। उनकी आँखों से अविरल अश्रुधारा उनके गालों पर से बह चली थी।

आक़िल के शेर की उन पंक्तियों को बार-बार दुहरा रहा था। शाहजादा का विरह-कातर हृदय। जैनाबादी अब नहीं लौटेगी! अब कभी उसके चेहरे को वे देख नहीं पायेंगे—उसके चंचल चरणों पर घुँघरू नहीं बज उठेंगे नृत्य की ताल पर—संगीत पहाड़ों से टकराकर अब कभी प्रतिध्वनित नहीं होगा।

× × ×

बहुत दिन बीत गये। पिता को कारागार में बन्द करके, भाइयों के खून से होली खेलकर उस दिन के शाहजादे अब शाहो सल्तनत के बादशाहरूप से प्रतिष्ठित हैं। भारत के भाग्यविधाता आलमगीर। १६८२ ईसवी। औरंगजेब की उम्र ६४ वर्ष। बुढ़ापे ने दाढ़ी और बाल को शुभ्र कर डाला था। मराठा आक्रमण के कारण ३० वर्ष बाद वे फिर आये थे औरंगाबाद नगर में। वे जैनाबादी की समाधि की ओर देख रहे थे। किसी सभासद के कुछ पूंछने पर कम्पित स्वर में बादशाह बोले, "उस नाचनेवाली ने जल्द मरकर मुझे बड़ी मदद की वर्ना अल्लाहताला के पास और जाने कितनी ग़लतियाँ कर बैठा होता।" उनके हाथ की तसबीह (माला) तेजी से घूमने लगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पवित्रता की बलि

लेखक—श्री काशीनाथ मांडलीक

अनुवादक—श्री रा० र० सरवटे

केवल सोलह वर्ष की आयु—होठों पर अभी-अभी ही मस भीजना शुरू हुआ था। यौवन में पदार्पण करने की वह साक्ष सुन्दर शंभुराजा के होठों से झाँक रही थी।

शंभुराजा शिवाजी राजा के कड़े अनुशासन में बढ़ रहे थे। वे मातृसुख से वंचित थे। इसलिए माँ साहब ने उनके सिर पर अपने प्रेम का छत्र पकड़कर उन्हें बढ़ाया। वैसे माँ साहब का अनुशासन भी कोई कम कठोर नहीं था। पर उनके अनुशासन में प्रेम की रुपहली झालर लगी थी। उनका शंभुराजा पर विलक्षण प्रेम था। धोखाधड़ी से मारे गये अपने बड़े पुत्र सम्भाजी का रूप शम्भुराजा के रूप में देखने का सन्तोष उन्हें प्राप्त हो रहा था। इसी-लिए वे शंभुराजा को बहुत संभालती थीं।

शंभुराजा को घुड़दौड़ का बेहद शौक था। वे रोज ही सुबह अपने सेवक को साथ लेकर घुड़दौड़ के लिए बाहर निकलते थे। उस दिन भी नित्य की भाँति अपने सेवक को साथ लेकर वे घुड़दौड़ के लिए गढ़ से नीचे आये।

हाल ही में झुटपुटा हुआ था। कुछ ही समय में पृथ्वी के क्षितिज पर रविराज का आगमन हो रहा है। इसके चिह्न दृग्गोचर होने लगे थे। पूर्वा आरक्त हो गयी थी। सुवर्ण रथ में बैठकर अपनी अमृतमयी किरणों से सारी वसुन्धरा को स्नान कराने के लिए शीघ्र ही क्षितिज पर अवतीर्ण होने-वाले रविराज का अपने मंजुल स्वर से स्वागत करने के लिए सारे पक्षियों में बड़ी हड़बड़ी मच गयी थी। वाता-वरण बिलकुल प्रसन्न था। ऐसे इस प्रसन्न समय में वेग से घुड़दौड़ करनेवाले शम्भुराजा को दूर पर सामने से कुछ लोग आते हुए दीख पड़े।

'सन्तू।'—अपने जानवर का वेग कम करते हुए शम्भु-राजा बोले।

'जी सरकार।'

'दिखता है सामने से कुछ लोग आ रहे हैं।'

'हाँ सरकार।' दूर तक निगाह फेंकते हुए सन्तू ने शंभुराजा के अनुमान की पुष्टि की।

'जाकर देखो तो—इतने सवेरे ये कौन आ रहे हैं और उन्हें यहाँ ले आओ। घोड़े से उतरकर पुनः दूर देखते हुए शंभुराजा बोले।

संतू ने अपना घोड़ा दौड़ाया और सामने से आनेवाले लोगों की राह रोककर वह खड़ा हो गया।

'हट जाओ। जाने दो हमें।' गंगाधर शास्त्री ने उसे को फटकरा।

'तुम कौन हो और इस लड़की को लेकर इतने सवेरे कहाँ जा रहे हो?' संतू ने प्रश्न किया।

'तुम्हें इससे क्या मतलब?'—गंगाधर शास्त्री घुड़कते हुए पूछा।

'बुलाया है तुम्हें।'

'किसने?'

'हमारे स्वामी ने—चलो।'

'हम नहीं आते। जाकर कह दो अपने स्वामी से'—चिढ़े हुए गंगाधर शास्त्री बोले।

संतू और उनकी तू-तू-मैं-मैं शुरू हो गयी। जब बहुत देर हो गयी तो यह देखने के लिए कि संतू क्यों नहीं आया स्वयं शंभुराजा वहाँ जा पहुँचे।

'संतू!' तनिक क्रोध से ही शंभुराजा बोले।

'जी सरकार।'

'क्या हो रहा था इतनी देर?'

'मैंने इनसे कहा कि आप बुला रहे हैं।'

'फिर?'—शंभुराजा का स्वर चढ़ने लगा।

'पर ये जाने के लिए ही तैयार नहीं।'

'क्यों?'

'उलटे मुझसे ही पूछते हैं कि कौन है तुम्हारा स्वामी?'

'ऐसा?' शंभुराजा के माथे पर शिकनें उभर उठीं।

'तुम कौन?'

'तुम्हें क्या करना है यह पूछकर?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९७३

'मुझे मालूम ही होना चाहिए तुम्हारा और तुम्हारे साथ जो लड़की है उसका नाम ।'

'तुम्हें क्या जरूरत है हमारे नामों की ? हम कोई भी हों—तुम्हें क्या करना है इससे ?'

'देखो, सीधी तरह से नाम बता दो, वरना—'

'क्या करेगा रे तू ? हमारा क्या बिगाड़ेगा तू ? जा, नहीं बताते हम अपने नाम ।'

'मुझे मेरे प्रश्नों के उत्तर मिलने ही चाहिए, समझे ?'

'और न दिये तो ?'

'तुम आगे नहीं जा सकोगे ।' निश्चय-भरे स्वर में शंभुराजा बोले—'तुम्हारे नाम मुझे मालूम ही होने चाहिए ।'

'और न बताए तो ?'

गंगाधर शास्त्री के इस उत्तर से शंभुराजा का पारा चढ़ गया । बोले—'उसके परिणाम भोगने पड़ेंगे तुम्हें ।'

और शंभुराजा का वह विलक्षण आवेश देखकर आखिर गंगाधर शास्त्री विवश हो गये । उन्हें नाम बताने ही पड़े ।

मेरा नाम गंगाधर शास्त्री और यह है मेरी बहू गोदावरी ।'

'कहाँ जा रहे हो ?'—शंभुराजा का प्रश्न ।

'देश जा रहा हूँ ।'

'क्यों ?'

'गोदावरी को उसके पति के घर ले जा रहा हूँ मैं । चलो, हटो रास्ते से—जाने दो हमें—बड़ी दूर का पल्ला है हमारा ।'

'अब तो बिलकुल ही नहीं जाने दूँगा मैं तुम्हें ।'

गोदावरी को देखने के बाद से शंभुराजा के हृदय में विलक्षण खलबली मच गयी थी ।

क्यों ?' भवैं तानकर गंगाधर शास्त्री ने पूछा ।

'हमारी खुशी ।'—शेखी से शंभुराजा बोले ।

'अरे वाह रे तेरी खुशी !—क्रोध से बेकाबू होकर गंगाधर शास्त्री बोले—'हम ब्राह्मण हैं । गो-ब्राह्मण प्रतिपालक—अनाथों के नाथ—गरीबों के हिमायती—ऐसी जिनकी ख्याति है उन शिवाजी महाराज के राज्य में आज भी गरीबों पर अन्याय होते हैं क्या ? पर याद रक्खो—अगर महाराज के कानों में यह बात गयी तो.....'

'इसकी चिंता करने की तुम्हें कोई जरूरत नहीं ।' धूर्तता से शंभुराजा बोले—'मैं क्या कहता हूँ वह सुनो । मेरी आज्ञा है तुम्हें—जिस तरह आये थे उसी तरह अपने घर लौट जाओ । रास्ता नापो यहाँसे ।' शंभुराजा गरज पड़े ।

'और नहीं गया तो ?'

'जबरदस्ती से भगा दिए जाओगे ।'

'प्राण चले जाएँ फिर भी हम लौटकर नहीं जाएँगे ।' शास्त्रीजी स्वर में दृढ़ निश्चय भरकर बोले ।

'जाना ही होगा तुम्हें और वह भी गोदावरी को यहाँ छोड़कर, समझे ?'

'अरे वा रे ! ऐसा कहाँ का बड़ा युवराज है रे तू ?'

'मतलब ? तुम्हें अभी तक मालूम नहीं हुआ क्या ?'—शंभुराजा का प्रश्न ।

'वह मुझे जानने की कोई जरूरत नहीं ।' गुस्से से गंगाधर शास्त्री बोले ।

'तो सुना अब—मराठी राज्य के इस युवराज की—शंभुराजा की आज्ञा है तुम्हें कि तुम यहाँसे फौरन चले जाओ—'

'यह नहीं होगा ।'

'संतू ।'—शंभुराजा गरजे ।

'जी ।'

'धक्के मारकर भगा दो इन्हें और गोदावरी को पकड़-कर ले आओ हमारे पास । खुशी से आती हो तो ठीक—वरना—'

'नहीं नहीं—' गंगाधर शास्त्री क्रोध से आग-बबूला होकर बोले ।

'वरना जबरदस्ती से—उसे हमारे पास आना ही होगा, समझा ?'

इतना कहकर शंभुराजा वहाँसे चल दिये ।

गंगाधर शास्त्री मूलतः कोकण के थे । पर उनका पुत्र देश में नौकरी कर रहा था । इस कारण पुत्र के घर बधू को पहुँचाने के लिए वे गोदावरी को लेकर एक-दो और साथियों के साथ वहाँ जा रहे थे । मंजिल-दर-मंजिल तय करते हुए वे रायगढ़ की घाटी में पहुँचे और वहाँसे गुजरते वक्त शंभुराजा की और उनकी भेंट हुई । सुदृढ़ शरीर, सुन्दर रूप, गुलाब के पुष्प की तरह सरसब्ज और केतकी वर्ण की गोदावरी का लुभावना सौन्दर्य देखकर शंभुराजा उस पर मोहित हो गये । उन्होंने गंगाधर शास्त्री को भगा देने और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोदावरी को किसी भी तरह पकड़कर अपने साथ लाने की संतू को आज्ञा दी और वे चल दिये।

उम्र केवल बारह वर्ष की। परन्तु बाढ़ वेग से होने के कारण अपनी उम्र के हिसाब से गोदावरी बड़ी ही दिखती थी। भरे हुए अंगों की ओर यौवन से गदराई हुई गंगाधर शास्त्री की इस बहू को देखकर शंभुराजा के मन में उसके प्रति जबरदस्त आकर्षण पैदा हो गया। उनकी आज्ञानुसार संतू ने गोदावरी को पकड़ा, गंगाधर शास्त्री और उनके दो साथियों को धमकाकर भगा दिया। फिर वह गोदावरी को साथ लेकर लिंगाणा किले के नजदीक पहुँचा और उसके निकट की एक गुफा में उसने गोदावरी को कड़े इन्तजाम के साथ कैद में रख दिया।

इधर शंभुराजा रोज सुबह घुड़दौड़ के बहाने गढ़ से उतरते और सीधे जाकर कारागार में गोदावरी से मिलते। वे यह कोशिश कर रहे थे कि वह उनसे विवाह करने को राजी हो जाए। पर वह किसी भी तरह राजी नहीं हो रही थी। इधर उसका उमड़ता यौवन, तेजस्वी कांति और किसी सुकुमार पुष्प जैसा विकसित हो रहा अप्सरा को भी लज्जित कर देनेवाला सौन्दर्य देखकर दिन-प्रति-दिन शंभुराजा अधिक बेचैन होने लगे और अंत में यह देखकर कि सीधी तरह वह नहीं मानती इसलिए अब जबरदस्ती करके मुझसे विवाह करने के लिए उसे मजबूर करूँ ऐसा उन्होंने निश्चय किया।

'मेरी बात मान लो, गौदावरी।'—उसकी मिन्नत करते हुए शंभुराजा बोले।

'आपकी बात मान लूं? वा! वा!' उपहास से गोदावरी बोली—'मुझे जबरदस्ती यहाँ लेकर कैद क्यों किया? ऐसा कौन-सा अपराध किया है मैंने आपका?'

'मेरे मन पर जादू करके उसे पागल बना देने का अपराध किया है तुम्हारे इस सौन्दर्य ने—तुम्हारे कैद होने का कारण है तुम्हारा लावण्य—बस!'

'पर मुझे इस प्रकार कैद में रखकर आखिर आप पाएँगे क्या, युवराज?'

'तुम्हारा नित्य का सहवास।'

'याने?' गोदावरी चौंक पड़ी।

'मैं विवाह करूँगा तुमसे, गोदवारी।'

शंभुराजा के ये शब्द गरम की हुई छड़ की तरह गोदावरी के कानों में घुसे। वह क्रोध से आग-बबूला हो गयी।

'आप होश में भी हैं क्या, युवराज?' विलक्षण रूप से गोदावरी बोली—'मैं एक विवाहित ब्राह्मण स्त्री हूँ।' गुस्से से गोदावरी काँपने लगी। उसकी आँखों में खून उतर आया।

'मुझे उससे कोई वास्ता नहीं। मुझे तुम्हारी—तुम्हारी जरूरत है। गोदावरी, मैं तुम्हें चाहता हूँ।'

शंभुराजा अपना संतुलन खोने लगे।

अब जीवन-भर मेरे भाग्य में कैद ही है इसका गोदावरी को यकीन हो चुका। फिर भी वह अपने निश्चय से ढली नहीं। चाहे जो हो, मैं अपने निश्चय से नहीं हटूंगी ऐसा उसने दृढ़ निश्चय ही कर लिया था। मौके पर यदि जान भी देनी पड़े तो सहर्ष दे दूँगी, परन्तु शंभुराजा की हीन वृत्ति के आगे हरगिज गर्दन नहीं झुकाऊँगी। शंभुराजा की मिन्नतें जारी ही थीं।

'फिर क्या सोचा तुमने?' अब एक बार हमेशा के लिए फैसला कर देने के निश्चय से शंभुराजा ने सवाल किया।

"मुझ जैसी एक साधारण स्त्री पर—ऊपर से मेरे विवाहित होते हुए आप प्रेम करते हैं?—युवराज!—युवराज एक विवाहित स्त्री पर प्रेम करना पाप है। हिंदू स्त्री जीवन में एक बार ही विवाह करती है। धर्म से उसे जो पति मिलता है फिर वह कैसा भी हो, वही उसका परमेश्वर होता है। दूसरों को वह अपना भाई मानती है। मुझ जैसी एक विवाहित स्त्री पर प्रेम करके उसकी अभिलाषा करना यह उस पवित्र प्रेम भावना की विडम्बना है! युवराज—विडम्बना है! क्यों उस पाप के भागी होते हैं आप?—"

"बस्स—बस कर अपना यह व्याख्यान।" विलक्षण रूप से चिढ़े हुए शंभुराजा बोले—"पाप और पुण्य की बातें तुमसे नहीं सीखनी हैं हमें। हम ने क्या पूछा है सिर्फ उसका जवाब चाहिए हमें—बस—"

"ऐसा!—फिर मैं जो कहती हूँ वह कान खोलकर सुन लीजिए ठीक से। कल्पांत तक भी यदि आपने प्रतीक्षा की फिर भी कोई उपयोग न होगा।"—क्रोध से भरी गोदावरी तीव्रता से बोली।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९७३

और क्रोध से लाल हुई गोदावरी का मुलायम सौन्दर्य और अधिक खिलने लगा—लुभावना दिखने लगा।

"फिर अपने इस सौन्दर्य से तुमने मुझे दीवाना क्यों बनाया ? बताओ—गोदावरी—हमें दीवाना क्यों बनाया ?"

"सच ! मतलब यह कि भगवान् ने खुले हाथों मुझ पर सौन्दर्य की जो वर्षा की वह मेरा ही अपराध है ?"

"फिर यदि मैं तुम्हारे सौन्दर्य पर आशिक हो गया तो इसमें मेरा क्या अपराध ?"

"कुछ भी हो फिर भी आप युवराज हैं, शंभुराजा। कम-से-कम अपनी योग्यता का तो कुछ विचार कीजिए।"

"सारा विचार करके ही कह रहा हूँ मैं गोदावरी।"

"फिर मेरा पीछा छोड़ दीजिए—मुझे मुक्त कर दीजिए—अपने पति के घर जाने दीजिए मुझे।"

"अब यह संभव नहीं।"

"क्यों ?"

"क्योंकि मैं जो कह रहा हूँ वह तुम्हें चुपचाप मान ही लेना होगा—"

"प्राण चले जाएँ फिर भी वह संभव नहीं।"

"अभी भी सोच लो गोदावरी ! मैं अंतिम मौका दे रहा हूँ तुम्हें।"

'पूर्ण विचार करके ही मैं कह रही हूँ। असंभव है वह। मैं मृत्यु को स्वीकार कर लूँगी पर शीलभ्रष्ट नहीं हूँगी।' गोदावरी ने आखिरी बात कह दी।

'ठीक है। पर याद रखो कल मैं फिर आऊँगा। उस समय अलबत्ता इसका फैसला हुए बगैर न रहेगा।' ऐसा उसे जताकर शंभुराजा चल दिये।

लिंगाणा किले के नजदीकवाले पर्वत की गुफा में शंभुराजा ने एक स्त्री को कैद करके रखा है। वे रोज सुबह घुड़दौड़ के लिए जाने का बहाना करके उस गुफा में जाते हैं, उस स्त्री से मिलते हैं और वह उनसे विवाह करे ऐसा कहकर उसे नाना प्रकार से तंग करते हैं। ऐसा समाचार जब शिवाजी महाराज के कानों में पड़ा तब महाराज अत्यंत क्रोधित हो उठे। और इसका पूरा पता लगाकर अपराधी को—फिर वह शंभुराजा ही क्यों न हो उचित दण्ड देने का उन्होंने फैसला किया। रातोरात गोदावरी को कैद से मुक्त करके उसे गुप्त रूप से रायगढ़ के किले पर लाकर रखा।

लेकिन शंभुराजा को अलबत्ता इसका अता-पता भी न था।

—और नित्य की भाँति शंभुराजा सुबह जब घुड़दौड़ के लिए जाने की तैयारी में ही थे कि महाराज ने उन्हें तुरन्त बुलाया है ऐसा संदेश एक सेवक के जरिए उन्हें मिला।

माँ साहब और महराज, माँ साहब के महल में बैठे बातें कर रहे थे।

'मुझे बुलाया आबा साहब ने ?' महल में कदम रखते ही शंभुराजा बोले।

'हाँ—क्यों—कहाँ जा रहे हो तुम ?'

'रोज की तरह घुड़दौड़ के लिए जा रहा था कि मुझे संदेश मिला कि आपने मुझे तुरन्त बुलाया है। इसलिए—'

'तुम तुरन्त चले आये—यही न ?'

'जी, आबा साहब।'—शंभुराजा बोले। पर आज ही आबा साहब मुझसे ऐसा क्यों पूछ रहे हैं। मैं इतने दिनों से घुड़दौड़ के लिए जा रहा हूँ। पर—

'तुम रोज सुबह ही घुड़दौड़ के लिए जाते हो, है न ?'

'जी आबा साहब।'

'बिलकुल ठीक इसी समय ?'

'जी।'

'तो मतलब यह है कि हमें जो पता चला है, वह सब झूठ ही है ?' महाराज का चेहरा बदल रहा है यह शंभुराजा की नजर से न छूट पाया। महाराज को मुझ पर कुछ शक हो गया है ऐसा शंभुराजा को विश्वास होने लगा।

'क्यों—क्या मुझ पर कुछ शक हो रहा है आपको ?'

'मतलब यह कि बिलकुल निश्चित समय पर और निश्चित संकेत के अनुसार तुम किसीसे मिलने नहीं जाते हो—यही न ?'

'छिः ! छिः !! ऐसे किसी संकेत की मुझे क्या जरूरत ?' शंभुराजा चौंककर बोले।

'ऐस्सा ! याने जो सत्य है वही तुम कह रहे हो ? है न ?' चढ़ी आवाज में महाराजा ने प्रश्न किया।

शंभुराजा को अब अलबत्ता यकीन हो गया कि उन पर आबा साहब को शक हो गया है।

'हाँ, आबा साहब।'

'फिर अभी जब हमने यह कहा कि तुम किसीसे मिलने जाते हो तब तुम इतने चौंके क्यों ?'

'छिः ! छिः !! कहाँ क्या ?' शंभुराज घबरा गये और उन्हें पूरा विश्वास हो गया कि वे पकड़ लिये गये हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'राजा!' महाराज का स्वर तीव्र हो गया—'क्या तुम्हारा यह ख्याल है कि तुम्हारी हलचलों का हमें कोई पता नहीं रहता? बिल्ली आँखें बन्द करके दूध पीती है, पर दुनिया की आँखें बन्द नहीं रहतीं, शंभुराजा? घुड़-दौड़ के बहाने तुम एक लड़की से मिलने जा रहे हो—'

'हाँ, आबा साहब! पर—'

'और अपनी आसुरी इच्छा तृप्त करने के लिए तुमने उसे एक गुफा में कैद कर रखा है—और वह तुम्हारे वश में नहीं आती है इसलिए तुम उसे अनेक प्रकार से तंग कर रहे हो।'

महाराज की आँखें आरक्त होने लगीं और शंभु-राजा के पाप का भंडाफोड़ प्रत्यक्ष उनकी आँखों के सामने करने की गरज से गोदावरी उनके सामने लाकर हाजिर कर दी गयी।

गोदावरी को माँ साहब के महल में देखते ही शंभुराजा बुरी तरह चौंक पड़े। अपनी आँखों पर उन्हें विश्वास ही नहीं हो पा रहा था।

'देखो—यह देखो प्रत्यक्ष प्रमाण।' तीव्र स्वर में महा-राज बोले—'घुड़दौड़ का बहाना करके इससे मिलने के लिए, इसे वश में करने के लिए तुम रोज बिलकुल निश्चित समय पर घुड़दौड़ के लिए जाते थे या नहीं? ऐसा व्यभि-चारी बर्ताव करके क्या पा लिया तुमने? गौ-ब्राह्मण प्रति-पालक इस हमारे व्रत को, हमारे कुल को तुमने कालिख लगा दी। गरीब जनता का कोई त्राता नहीं, कोई शासक नहीं हमारी माँ-बहिनों की इज्जत सरे आम लूटी जा रही है ऐसी परिस्थिति में जनता सम्मान के साथ जी सके—उसकी आबरू सुरक्षित रहे, माँ-बहिनों की ओर कोई टेढ़ी नजर से न देखें इसलिए स्वराज्य स्थापित करने का यह कठोर व्रत स्वीकार करके भगीरथ-प्रयत्न से स्वतन्त्रता का यह मंगल मन्दिर हमने खड़ा किया है सो क्या इसलिए कि वह तुम्हारी इस तरह के व्यभिचारी बर्ताव से नेस्तनाबूद हो जाए? सारी जनता इस विश्वास से हमारी ओर देख रही है कि हमारे सहारे वह सुख से जी सकेगी। सारी जनता तुमसे संरक्षा की अपेक्षा कर रही है। और तुम्हीं उनकी इज्जत पर शोले रखने का नाशकारी कृत्य कर रहे हो। तुम्हीं उनके प्राण लेने पर उतारू हो गये हो। किस-किस पाप के भागी होना चाहते हो तुम, शंभुराजा?'

महाराज का क्रोध बेकाबू हो रहा था। उनकी आँखों में शोले दहकने लगे थे।

'शान्त हो! शिवबा—शान्त हो।' महाराजा का क्रोध देखकर माँ साहब बोलीं।

'शान्त होऊँ? माँ साहब कैसे शान्त होऊँ? मेरे हृदय में वेदनाएँ हो रही हैं। फिर मैं शान्त कैसे होऊँ? अत्यन्त गुस्से से भरे महाराज बोले।

'अपराध अक्षम्य तो है इसमें संदेह नहीं।' माँ साहब बोलीं, 'और इसके लिए उसे उचित दंड भी मिलना ही चाहिए। यह सब यद्यपि सच है शिवबा, फिर भी विचारा-धीन होकर कोई फैसला करना भी उतना ही नाशकारी है।

'फिर हम क्या करें, आप ही बताइए माँ साहब?' शान्त होते हुए महाराज बोले।

माँ साहब बेचैन हो उठीं। मातृहीन मातृसुख से वंचित और जिसे उन्होंने अपने प्रेम की छाया में बढ़ाया, वह लड़का ऐसा बर्ताव करे। इसका मा साहब को अत्यन्त दुख हुआ। वे व्याकुल हो गयीं। परन्तु अपराधी को दण्ड देना ही चाहिए इस विचार से स्नेहमयी होते हुए भी माँ साहब कठोर हो गयीं।

'शिवबा।'

'जी, माँ साहब।'

'अब मेरी आज्ञा सुनो।' माँ साहब कठोर स्वर में बोलीं, जिस गुफा में शंभु ने गोदावरी को कैद करके रखा था, उसी गुफा में इसे भी कैद करके रखो। बाद में हम इसका फैसला करेंगे।'

और शंभुराजा को उसी गुफा के कैदखाने में बन्द कर दिया गया।

शंभुराजा को कैद में रख दिया सही, पर अब गोदावरी का क्या प्रबन्ध किया जाए? माँ साहब के सामने यह एक बड़ी समस्या खड़ी हो गयी। पर कुछ-न-कुछ फैसला करना आवश्यक ही था। मामला बड़ा नाजुक था—और जो गुत्थी निर्मित हो गयी थी उसे कोमल हाथों से सुलझाना जरूरी था। एक तरफ शंभुराजा के प्रति प्रेम—दूसरी तरफ गोदावरी के समूचे जीवन का प्रश्न! क्या किया जाए? मा साहब सोच में पड़ गयीं।

'अब गोदावरी का क्या प्रबन्ध करने का निश्चय किया है, शिवबा?'—आखिर माँ साहब ने शिवाजी महाराज से प्रश्न किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'यदि वह चाहेगी तो उसे कोंकण उसके ससुराल भेज देंगे। यदि उसकी इच्छा देश अपने पति के पास जाने की होगी तो उसे वहाँ पहुँचा देंगे ऐसा तय किया है हमने, माँ साहब।'

'मैं अब कहीं भी नहीं जाना चाहती, महाराज।' अपने मन का अभिप्राय अभिव्यक्त करती हुई गोदावरी बोली।

'क्यों ?'

'इसलिए कि मेरे शील के बारे में लोग अब शक करेंगे।'

'पर तुम्हारी निष्कलंकता के बारे में हम तुम्हारे पति को यकीन करा देंगे।'

'उसका अब कोई उपयोग न होगा, महाराज !'

'क्यों ?'

'क्योंकि मेरे पति के मन में, हर रोज होनेवाले मेरे दर्शन से एक ही विचार आता रहेगा।—'

'कौन-सा ?'

'युवराज की मुझ पर पापी नजर थी इसलिए—'

गोदावरी के ये शब्द सुनकर महाराज को अत्यंत दुख हुआ।

'पर हम उसे समझा देंगे कि तुम पूर्ण रूप से निष्कलंक हो।'-

'पर लोगों के मुँह कौन बन्द करेगा, महाराज ? उनके संशय का निराकरण किस प्रकार होगा—कौन करेगा ? लोगों की दृष्टि से यह सिद्ध होना चाहिए कि मैं निष्कलंक हूँ—पवित्र हूँ। सारी जनता को यह स्वीकार करना चाहिए—इसे मान्यता देनी चाहिए तभी—'

गोदावरी का यह दो टूक सवाल सुनकर महाराज सोच में पड़ गये।

'पर जनता की दृष्टि से भी तुम पवित्र ही सिद्ध होगी।'

'नहीं महाराज नहीं। जनता की दृष्टि से मैं पवित्र सिद्ध ही हो जाऊँगी यह बात नहीं।'

'क्यों ?'

'क्योंकि जानकी पूर्णरूपेण पवित्र हैं यह क्या श्री रामचन्द्रजी नहीं जानते थे ? फिर भी जनता ने उनकी पवित्रता के बारे में शक किया ही न ? जानकी जैसी परम पवित्र और महान् पतिव्रता को भी जनता के संशय का निराकरण करने के लिए अग्नि-परीक्षा देकर अपनी पवित्रता की साक्ष देनी पड़ी और ऐसा करने पर भी जनता ने अन्त में उसे कलंकिनी ठहराया ही था न महाराज। जहाँ जानकीजी का यह हाल वहाँ मुझ जैसी साधारण स्त्री किस खेत की मूली है ? इसलिए कहती हूँ कि यद्यपि आप ने मुझे पति के घर पहुँचा दिया फिर भी यह शल्य मुझे सदा चुभता रहेगा, महाराज, जन्म भर चुभता रहेगा।'

यह कहते समय गोदावरी के चेहरे पर के बदलनेवाले भाव महाराज की दृष्टि से छूट नहीं पाये।

'मतलब ? आखिर तुम्हारा विचार भी क्या है, गोदावरी ?'

'अपने प्राणों का मूल्य देकर ही अपनी पवित्रता—अपनी निष्कलंकता मैं सिद्ध करूँगी।'

'मतलब ?'—अत्यन्त आश्चर्य से महाराज बोले।

'आखिर करना क्या चाहती हो तुम ?'

'मैं जलती अग्नि में अपनी बलि दूँगी, महाराज !'

'क्या ?' विलक्षण चौंककर महाराज बोले।

और गोदावरी का यह निश्चय सुनकर महाराज व्यथित हो गये। शंभुराजा के व्यभिचारी बर्ताव के कारण गोदावरी जैसी एक सुकुमार और निष्पाप स्त्री का जीवन मिट्टी में मिल जाएगा इस कल्पना से उनका हृदय विदीर्ण हो गया।

'अपनी छोटी उम्र का भी तो कुछ ख्याल करो, गोदावरी !'

'सभी बातें क्या उम्र पर ही अवलम्बित होती हैं, महाराज ?'

'अरी, पर इस कोमल वय में अग्नि में जलकर बलि देने की बात किसलिए, लड़की ?—किसलिये ?—नहीं, गोदावरी, ऐसा मत करो—व्यर्थ का साहस करने को प्रवृत्त न हो, लड़की !'

'साहस ? इसमें साहस काहे का महाराज ?—यह तो पतिव्रता का धर्म ही है। मैंने दृढ़ निश्चय कर लिया है।'

'नहीं—गोदावरी—ऐसा न करो बेटी—मेरी बात सुनो।' उसे समझाती हुई माँ साहब बोलीं।

"नहीं—नहीं—माँ साहब, मुझे अपने निश्चय से परावृत्त करने का प्रयत्न न करें—और अब वह संभव भी नहीं होगा। अब सिर्फ मेरी अंतिम एक ही इच्छा है। वह आप पूरी करें ऐसी आपके चरणों में मेरी प्रार्थना है।"

"क्या इच्छा है तुम्हारी ?"

"मैं युवराज की मुक्ति चाहती हूँ।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"क्या ? विलक्षण चौंककर मां साहब बोलीं।"

"हाँ, माँ साहब।"

" अजी, तुम पर उसने इतना अन्याय किया, फिर भी—"

"हाँ माँ साहब, फिर भी उन्हें मुक्त कर दीजिए।"

"पर ऐसा क्यों चाहती हो तुम ?"

"क्या वे भी मुझ जैसे ही छोटे नहीं हैं ? माँ साहब आज के युवराज शंभुराजा कल के महाराष्ट्र के छत्रपति हैं। इन भावी छत्रपति को मेरे कारण कैद न भोगनी पड़े ऐसी मेरी इच्छा है। इसके सिवा मैंने उन्हें भाई माना है। इसलिए कहती हूँ कि अंतिम क्षण के समय बहिन और भाई की एक बार अंतिम भेंट हो जानी चाहिए ऐसी मेरी इच्छा है, माँ साहब।"

गोदावरी का कंठ भर आया।

और निष्पाप गोदावरी के ये समझदार बोल सुनकर माँ साहब का भी कंठ भर आया--" कहाँ—कहाँ सीखी तूने इतनी समझदारी ? धन्य है तू, लड़की—सचमुच ही साध्वी है।" अपने हृदय से उसे कसकर लगाते हुए सजल आँखों से माँ साहब बोलीं।

महाराज ने गोदावरी की बात मान ली और शंभुराजा को कैद से मुक्त कर दिया।

दहकती चिता में जलने की गोदावरी की सारी तैयारी पूरी हो चुकी थी। चिता रच दी गयी थी। अब कुछ ही क्षणों की देर थी। इसी समय शंभुराजा दौड़ते हुए वहाँ आये। उस सारे दृश्य को देखकर शंभुराजा की आँखों से आँसू बहने लगे। केवल मेरे कारण ही गोदावरी पर यह अवसर आया इसका उन्हें विलक्षण दुःख हुआ और झट से झुककर उन्होंने गोदावरी के चरण पकड़ लिये। पश्चात्ताप के आँसुओं से गोदावरी के चरण नहा गये।

"यह क्या—यह क्या कर रहे हैं युवराज ? मेरे चरण क्यों पकड़ते हैं ? उठिए—उठिए शंभुराजा—उठिए।" उन्हें उठाती हुई भरी आँखों से गोदावरी बोली।

"मुझ जैसे पापी मनुष्य को तुमने क्यों मुक्त करा दिया, गोदावरी ?—क्यों मुक्त कराया ?"

'इसलिए कि मैंने तुम्हें भाई माना है। कम-से-कम मेरे अंतिम समय में तो बहिन और भाई की भेट हो जाए इसलिए।'

'पर मेरे द्वारा किये गये अपराध का दंड तुम्हें क्यों गोदावरी ?' नहीं—नहीं गोदावरी—ऐसी भयंकर अग्नि भरी थी—सुनो—सुनो—मेरी सुनो।'

'वह वक्त कभी का गुजर गया है। युवराज, अब सिर्फ मैं क्या कहती हूँ वह सुनो। जनता की दृष्टि से यद्यपि मैं अपवित्र ठहरी होऊँ—कलंकित ठहरी होऊँ, फिर भी मैं पूर्ण पवित्र हूँ—' ऐसा कहकर गोदावरी जलती चिता में कूद पड़ी।*

* मराठी की सुप्रसिद्ध मासिक पत्रिका 'बंसत' से साभार।

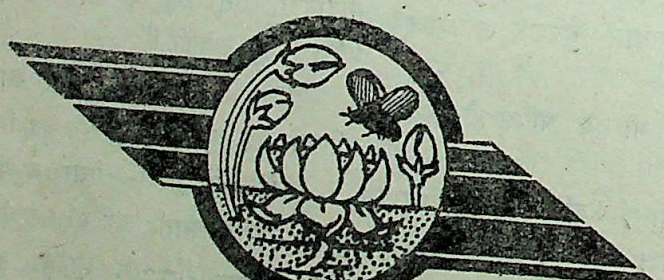

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नवीन प्रकाशन

सुगठित शरीर—लेखक, डा० चतुर्भुजदास मोदी। प्रकाशक, आरोग्य मन्दिर, गोरखपुर; प्रथम संस्करण, मूल्य—पाँच रुपये; पृ० सं० २०८; पूर्णतः सचित्र एवं कार्डबोर्ड बाइंडिंग के साथ एवं अच्छे ग्लेज कागज पर छपी।

भारत में स्वास्थ्य की जैसी उपेक्षा हो रही है वह सर्व-विदित है। मूल बात तो यह है कि हम सब अस्वस्थ हैं। स्वस्थ मन ही स्वस्थ तन का, समाज का, देश का निर्माण करता है। तन से स्वस्थ रहने पर ही मानसिक सन्तुलन प्राप्त हो सकता है। इसलिए हमारे शास्त्रकारों ने कहा था "शरीर माद्यं खलु धर्म साधनम्"।

प्रस्तुत पुस्तक एक अनुभवी चिकित्सक द्वारा लिखी हुई व्यवहारिक पुस्तक है। इस पुस्तक में स्वस्थ रहने तथा स्वस्थ रहकर दीर्घ जीवन प्राप्त करने के अनेक उपाय बताये गये हैं।

सुगठित शरीर का अर्थ मोटा होना या पहलवान होना नहीं है। लेखक ने ठीक ही कहा है कि "सुगठित शरीर की प्राप्ति का अर्थ पहलवान बनना नहीं है। .....आज हम जिन व्यक्तियों को पहलवान कहते हैं उनके अंगों में कोई अनुपात होता ही नहीं। वे सुगठित शरीर के प्रतिमान नहीं सुगठित शरीर की "पैरोडी" जान पड़ते हैं।

इनमें स्त्रियों, बच्चों एवं प्रौढ़ों के लिए कुछ विशिष्ट व्यायाम बताये गये हैं। लगभग २८ अध्यायों और २०० से ऊपर रेखाचित्रों और चित्रों द्वारा व्यायाम की सभी क्रियायें सरल भाषा में बताई गयी हैं। इस पुस्तक में पहले पहल यह जानकारी मिलती है कि हम अपने सामान्य कार्य-कलापों में ही व्यायाम करते हैं, कर सकते हैं। यदि हम नियमित रूप से केवल पाँच-दस मिनट दे सकें तो हमें सैकड़ों कष्टकर व्याधियों से छुटकारा मिल सकता है। प्रवाहमयी सरल भाषा के माध्यम से लेखक ने प्रत्येक आसन और व्यायाम से हर एक पहलू को समझाया है। साथ ही प्रत्येक आसन और उसकी हर स्थिति को अनेक सुन्दर चित्रों से पूर्णरूप से स्पष्ट किया है।

पुस्तक की भाषा सरल हिन्दी है। प्रत्येक कठिन बात को बार-बार उद्धरण देकर आवश्यकतानुसार चित्र देकर समझाया गया है। सफेद ग्लेज कागज पर सुरुचिपूर्ण ढंग से सचित्र प्रकाशित पुस्तक का मूल्य भी अधिक नहीं है। इतने सुन्दर पुस्तक के प्रणयन के हेतु निश्चय ही लेखक एवं अल्पमूल्य में इतने चित्रों के साथ छापने के हेतु प्रकाशक दोनों बधाई के पात्र हैं।

लद्दाख के वीर (द्वितीय संस्करण)—मूल लेखक, हरीश नायक, अनुवादक–राजगोपाल माथुर; प्रकाशक, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-१ ; पृष्ठ संख्या–१०४ मूल्य–२३० रु०।

'लद्दाख के वीर' एक ऐसी कहानी है जिसमें बताया गया है कि भारतीय वीरों ने किस बहादुरी से चीनियों के छक्के छुड़ाए। यह कहानी मूल गुजराती में लिखी गयी थी। गुजरात में इस पुस्तक का बहुत अच्छा स्वागत हुआ। लेखक ने कहानी को सफल बनाने के लिए कल्पना का भी सहारा लिया है। हिन्दी के पाठक वर्ग में भी यह पुस्तक लोकप्रिय हुई है और पुस्तक का यह दूसरा संस्करण है। यह किशोरों और नवसाक्षरों के लिए विशेष रूप से उपयोगी है।

स्वतंत्र भारत के बढ़ते कदम—प्रकाशक–प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-१ ; मूल्य २.०० रु० ; पृष्ठ संख्या १११।

पिछले २४ वर्षों में भारत में महान् परिवर्तन हुआ है। लोगों में विशेषकर युवा वर्ग में, एक नया आत्म-विश्वास जगा है। हम पुरातनपंथी सामंतवादी समाज को आधुनिक समाज में परिवर्तित होते देख रहे हैं।

प्रस्तुत पुस्तक विदेशी शासन से पददलित और शोषित लोगों के जीवन को सुखी और सम्पन्न बनाने के महान् प्रयत्न का कहानी है। इसमें विकास सम्बन्धी आँकड़ों के अलावा आयोजन और आर्थिक नीति, आर्थिक विकास के महत्त्वपूर्ण साधनों, प्रौद्योगिक नीति, विदेश व्यापार तथा विदेश नीति पर प्रकाश डाला गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो लोग स्वतंत्रता के बाद देश की प्रगति के बारे में थोड़े ही में अधिकतम जानकारी प्राप्त करना चाहते हैं उनके लिए यह बड़े काम की है।

बेताल कथाएँ—रूपान्तरकार—वीरेश्वर भट्टाचार्य; प्रकाशक—प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली १; पृष्ठ संख्या ८८; मूल्य रु० २·६० रु०।

बेताल कथाएँ १२वीं शताब्दी में सोमदेव भट्ट द्वारा लिखी गयी थीं। ये संस्कृत ग्रन्थ कथा सरित्सागर से ली गयी हैं। इन कथाओं से देश में लोग परिचित हैं और अनेक शतियों से इनसे हमारे बालकों का मनोरंजन हुआ है। वीरेश्वर भट्टाचार्य ने सरल हिन्दी में बच्चों के लिए जो रूपान्तर प्रस्तुत किया है उसकी लोकप्रियता असंदिग्ध है। ये कहानियाँ देश के साहित्य का अभिन्न अंग बन गयी हैं। और इनसे परिचित होना प्रत्येक किशोर के लिए आवश्यक है।

स्वतन्त्रता के मार्गदर्शक :—

दादाभाई नौरोजी—लेखक सूरजनारायण मुन्शी; प्रकाशक—प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-१; पृष्ठ संख्या ४४; मूल्य १.२५ रु०।

यह पुस्तक 'भारत के चरित्र' ग्रन्थमाला की दूसरी पुस्तक है। आधुनिक भारत के आदि निर्माताओं में दादाभाई नौरोजी का प्रमुख स्थान है। वे पहले भारतीय थे जो ब्रिटिश पार्लियामेंट के सदस्य अंग्रेजों द्वारा चुने गये थे और जिन्होंने अंग्रेजों को भारत की आर्थिक दुर्दशा का सही-सही परिचय देने का प्रयत्न किया। वे कांग्रेस के प्रतिष्ठापकों में से थे और एक बार उसके अध्यक्ष भी चुने गये थे। भारत को 'स्वराज' का नारा उन्हीं ने दिया था। लेखक ने इस छोटी सी जीवनी में उनके जीवन की मुख्य-मुख्य घटनाओं का संक्षिप्त वर्णन करने का प्रयास किया है। आशा है कि वह पुस्तक जहाँ बालक-बालिकाओं को उनके प्रेरक चरित्र का परिचय दे सकेगी वहाँ उनके हृदय में देशप्रेम और देशसेवा की भावना को भी जगा सकेगी।

खेमकरन की लाल रेखा—सूरजभान, आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली, मूल्य ३·५०; पृष्ठ संख्या—१२५।

हिन्दी में उपन्यासों का अभाव नहीं; नये उपन्यास भी बराबर प्रकाशित हो रहे हैं। उपन्यासों का वर्गीकरण किया जाय तो प्रायः सब वर्गों के उपन्यास प्राप्त हो जायेंगे और प्रत्येक वर्ग की रुचि के लिए पाठक भी मि जायेंगे। साहित्य की दृष्टि से देखा जाय तो उसमें कि खरे उतरेंगे, यह बात दूसरी रही। यह उपन्यास भी अधकचरे उपन्यासों में से है जो हिन्दी साहित्य उपन्यास की संख्या बढ़ाता है।

नायक सिद्धान्तवादी, घटनाएँ रोज घटती चली जा हैं कि नायक बनने के लिए उसको कोई प्रयास नहीं कर पड़ता है, और वह अनायास नायक बन जाता है पाकिस्तान का एक सी० आई० डी० इतनी जल्दी पकड़ आ जाता है; और ऐसी जल्दी भेद खोलता है कि लगता कि बस प्रश्न करने की देर थी। सहेलियों की बातचीत डाक्टर का 'डायग्नोसिस' जहाँ स्वाभाविक व सहज बनाने का प्रयास किया गया है वहाँ बहुत हल्कापन आ गया है और भाषा में कहीं-कहीं शिष्टता के अभाव के कारण वह खटकती और सुरुचि को ठेस पहुँचाती है। पुस्तक के अन्त में फिर आदर्शवादिता आ जाती है। नायक देश के लिए प्राण दे देता है। उसकी पत्नी 'परम वीर चक्र' प्राप्त करती है।

पुस्तक में जो वस्तु सराहनीय है वह है लेखक का उपन्यास लिखने का प्रयास। लेखक ने हाईस्कूल तक शिक्षा प्राप्त की है। उर्दू, हिन्दी, अँग्रेजी और पंजाबी भाषाओं का साधारण ज्ञान प्राप्त करके वे भारतीय सेना मेडिकल कोर में भर्ती हो गये। वहींसे उन्होंने लिखना प्रारम्भ किया। लेखक की यह लगन और यह अभिलाषा सराहनीय है। उन्होंने उस सेवा में जाकर अपनी साहित्य-सेवा प्रारम्भ की है जहाँ जाकर बहुत-से साहित्यकों की साहित्य-सेवा आगे बढ़ने की कौन कहे, समाप्त ही हो जाती है। लेखक का यह अदम्य उत्साह प्रशंसनीय है। यदि उनका यह उत्साह बना रहा तो उनकी लेखनी मँज जायेगी और एक दिन वे अवश्य सफल होंगे।

भाईजी—पावन संस्मरण—प्रधान सम्पादक, म० म० गोपीनाथ कविराज; सम्पादक, पंडित चिम्मनलाल गोस्वामी और डा० भगवतीप्रसादसिंह। बड़ा आकार। ८२ चित्र जिनमें अनेक रंगीन, पृष्ठ-संख्या ६७६ बहुत बढ़िया छपाई, सुन्दर पुष्ट कागज और कलापूर्ण रंगीन आवरण के साथ बहुत अच्छी जिल्द। मूल्य साधारण संस्करण ३१ रुपये, विशेष संस्करण ५१ रुपये। प्रकाशक, श्री राधामाधव सेवा-संस्थान, गीता वाटिका गोरखपुर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि किसी स्मृतिग्रन्थ का नाम 'पावन संस्मरण' और किसी व्यक्ति के संस्मरण पावन कहे जा सकते हैं तो वे स्व० हनुमानप्रसादजी पोद्दार थे, और इसलिए इस ग्रन्थ का नाम सार्थक है। पोद्दारजी—जो भाईजी के नाम से विख्यात थे—कोई शापभ्रष्ट देवता थे जिन्होंने अपने इस पार्थिव निवासकाल में देवत्व नहीं छोड़ा। उन्होंने समाज और हिन्दू जाति की जो अनुपम और महत्त्वपूर्ण सेवाएँ कीं हैं वे स्वर्णाक्षरों में लिखे जाने योग्य हैं। हमें बड़ी प्रसन्नता है कि श्री राधामाधव सेवा-संस्थान ने उनकी प्रथम पुण्य-तिथि पर इसका प्रकाशन कर हिन्दू जनता और देश का महान् उपकार किया है। इसमें पोद्दारजी के प्रति १७७ महापुरुषों की श्रद्धांजलियाँ तथा उनके जीवन के विविध कार्यकलापों पर १७५ अधिकारी विद्वानों के लेख हैं। साथ ही उनका संक्षिप्त जीवन-चरित्र भी है। म० म० गोपीनाथ कविराज ने इसका प्रधान सम्पादकत्व स्वीकार कर इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ का गौरव और भी बढ़ा दिया। सम्पादकद्वय ने इसका सम्पादन जिस प्रीति और कुशलता से किया है वह अत्यन्त श्लाघनीय है। इसके पढ़ने से भाईजी के वास्तविक स्वरूप और उनके बहुमुखी कृतित्व का स्पष्ट परिचय मिलता है। 'कल्याण' और 'गीता प्रेस' जिसके प्रकाशनों ने हिन्दू धार्मिक साहित्य की अनुपम सेवा की है, भाईजी की प्रतिभा, कल्पनाशीलता एवं धार्मिक प्रवृत्ति के जीवित और अमर स्मारक हैं। इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ ने उनकी कीर्ति को फैलाने में सराहनीय कार्य किया है। हिन्दी में गौरीशंकर हीराचन्द ओझा के स्मृति ग्रन्थ के बाद यह सर्वोत्तम स्मृति ग्रन्थ है और प्रत्येक हिन्दू के लिए संग्रहणीय है। हम इसके प्रकाशन के लिए, और इसे इतने सुन्दर ढंग तथा पूर्णता से निकालने के लिए संस्थान के अत्यन्त आभारी हैं और उसकी सफलता के लिए उसे हार्दिक बधाई देते हैं।

श्री युगलकिशोर चतुर्वेदी अभिनन्दन ग्रन्थ—एक सम्पादक मंडल द्वारा सम्पादित। प्रकाशक—'नवयुग संदेश कार्यालय' भरतपुर। सरस्वती का आकार। पृष्ठ-संख्या १४८+१८+१४ अनेक चित्र। मूल्य सजिल्द १० रु० अजिल्द ८ रु०।

श्री युगलकिशोर चतुर्वेदी भरतपुर राजस्थान के पुराने स्वतन्त्रता सेनानी हैं। जब देशी राज्यों में प्रजामंडल बने तभी से वे राजनीति में कूद पड़े और पूरा जीवन राजनीति में बिता दिया, तथा अन्य पुराने स्वतन्त्रता के सेनानियों की तरह वे भी गांधीजी के आकर्षण में आकर पक्के गांधी पन्थी बन गये और तदनुसार निष्ठापूर्वक गांधीवादी विचारधारा का परिपालन करते हैं। पुराने कांग्रेसियों की तरह उन्होंने भी अनेक उतार-चढ़ाव देखे। अनेक बार जेल गये और जब राजस्थान बनने के पूर्व मत्स्य राज्य बना तो वे उसके मन्त्री भी रहे। वे अपरिवर्तनशील गांधीवादी हैं। यद्यपि वे आचार्य विनोबा की तरह सर्वोदय आन्दोलन में सम्मिलित नहीं हुए तथापि उनकी निष्ठा आज भी पुरानी कांग्रेस के आदर्शों में अक्षुण्ण बनी हुई है। अवसरवादी न होने के कारण आजकल की राजनीति में उनके समान व्यक्ति का इस आपाधापी के युग की राजनीति में कोई 'अधिकार' वाला स्थान होना सम्भव नहीं है। वे अपना समय अनेक रचनात्मक कार्यों में लगाते हैं जिनमें हिन्दी की सेवा मुख्य है। वे पत्रकार भी हैं और 'लोकशिक्षक' साप्ताहिक का बड़ी योग्यता से सम्पादन कर रहे हैं। यह पत्र जयपुर से निकलता है। यद्यपि वे भरतपुर के हैं किन्तु अब स्थायी रूप से मकान बनाकर जयपुर में बस गये हैं। इस समय इनकी अवस्था ६९ वर्ष की है किन्तु इनकी कर्मठता और सार्वजनिक कार्यों में भाग लेने के उत्साह में कोई कमी नहीं है। आरम्भ में इनका स्वयं का लिखा आत्मचरित्र है जो बड़ा मनोरंजक है, उससे अनेक बातें मालूम हुईं। भरतपुर का 'नवयुग संदेश' प्रत्येक नहीं किसी विशिष्ट पुरुष के सम्मानार्थ एक 'अभिनन्दन अंक' निकालता है। उसे इस सूझ के लिए बधाई है कि उसने इस वर्ष श्री युगलकिशोर चतुर्वेदी पर अपना अभिनन्दन विशेषांक निकाला। इससे उनके बहुमुखी जीवन का अच्छा परिचय मिलता है और उनके साहस, लगन और कर्मठता के प्रति आदर उत्पन्न होता है। पुस्तक का स्वतन्त्रता संग्राम में ऐतिहासिक महत्त्व है और यह अंक राष्ट्रप्रेमियों और हिन्दी प्रेमियों के लिए संग्रहणीय है। हम भी इस अवसर पर श्री चतुर्वेदी को बधाई देते हैं। वे दीर्घायु हों और इसी प्रकार हिन्दी तथा देश की सेवा करते रहें। नवयुग संदेश भी इस प्रकाशन के लिए साधुवाद का पात्र है।

विश्वज्योति का उपनिषद् अंक (भाग १)—सम्पादक पद्मभूषण आचार्य विश्वबन्धु (१९ सहकारियों के सम्पादक मंडल की सहायता) मूल अंक की पृष्ठ-संख्या १२८।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपनिषत्सुधा पृष्ठ-संख्या १४० सरस्वती का आकार। मूल्य ५ रुपये।

विश्वज्योति कई महत्त्वपूर्ण विशेषांक निकाल चुकी है। यह अंक उन्हीं विशेषांकों की कड़ी है। इसमें उपनिषदों का संग्रह या उनकी व्याख्या नहीं है, प्रत्युत उनके महत्त्व, उनमें आये हुए कथानकों आदि की व्याख्या है। बृहदारण्यक, कठोपनिषद, छान्दोग्योपनिषद और माण्डूक्योपनिषद् पर गवेषणात्मक एक एक लेख भी हैं। यह अंक उपनिषदों के बारे में है जिससे पाठकों को उनके सम्बन्ध में जानकारी हो जाय और वे उनके महत्त्व और उनके सन्देशों का परिचय प्राप्त कर सकें। परिशिष्ट में उपनित्सुधा में प्रत्येक पेज के ऊपरी भाग में उपनिषदों से चुनकर एक श्लोक दिया गया है और साथ ही उसकी सुबोध भाषा में टीका। शेष आधे (नीचे के) भाग में दानदाताओं के विज्ञापन हैं। इस अंक में विज्ञापनों की भरमार है। उपनित्सुधा के ५० पृष्ठों के विज्ञापनों के अतिरिक्त आरम्भ और अन्त में ५२ पूरे पृष्ठों के विज्ञापन हैं। संस्थान की व्यापार-बुद्धि सराहनीय है। किन्तु इतने अधिक विज्ञापनों के कारण अंक का कलेवर भले ही बढ़ जाय, पाठ्य सामग्री अपेक्षाकृत कम ही मिलती है। अंक की लागत से अधिक विज्ञापनों से वसूल हो गया होगा, फिर भी इस अंक का मूल्य ५ रुपया रखा गया है। इसमें केवल २९ लेख और ६ कविताएँ हैं। कुछ लेखों को छोड़कर लेखों के आकार औसत से ४ पृष्ठ होंगे। किन्तु वे सभी अधिकारी विद्वानों के लिखे हैं और पठनीय तथा उपनिषदों के सम्बन्ध में काफी जानकारी देते हैं। ऐसे गम्भीर विषय के विशेषांक में कविता न दी जाती तो अच्छा होता। अधिकांश कविताएं सस्ती तुकबन्दियाँ हैं जैसे

सारा जग महिमा गाता है उपनिषदों के ज्ञान की
उपनिषदें हैं खान भारतीय संस्कृति के विज्ञान की।

हिन्दी कविता इन तुकबन्दियों से बहुत आगे बढ़ गयी है। उपनित्सुधा में श्लोकों का चयन सावधानी से किया गया है और उनका भावार्थ भी अपनी दृष्टि से अच्छा किया गया है। इन ब्रह्मविद्या सम्बन्धी श्लोकों के नीचे विज्ञापन पढ़कर ब्रह्मविद्या का प्रभाव तिरोहित हो जाता है।

इस अंक की कल्पना सराहनीय है किन्तु ब्रह्मविद्या और अर्थ संचय के लिए विज्ञापनों की भरमार 'गंगा मजार' ऐसा असंगत मालूम होता है। फिर भी अंक संग्रहणीय और उपयोगी है।

हल्लीशा (कविता)—लेखक, श्री केशिकान्त शकुन—प्रकाशक, नहीं छपा। मुद्रक मुक्ता प्रिन्टर्स, अम्बाला छावनी। सर्वाधिकार—विश्वपति समर्पित, मूल्य, सर्वथा विक्रय मुक्त। पृष्ठ संख्या ९६। अच्छी छपाई। आकार डबल क्राउन सोलह पेजी।

आरम्भ में लेखक लिखते हैं—"हल्लीशा एक प्रकार का स्त्री-नृत्य है जिसमें स्त्रियों को अपनी समग्र अभिव्यक्ति के लिए पुरुष की अनिवार्यता होती है वह प्रतीकात्मक में इस सम्पूर्ण पुस्तक में निनादित है।" हम स्वयं 'हल्लीशा' शब्द का अर्थ नहीं जानते थे। इससे इतना ज्ञानवर्द्धन हुआ। पुस्तक अभिन्न श्री संजय गांधी को समर्पित है। लेखक ने हल्लीशा को 'एक दार्शनिक दृष्टि' से लिखा है। इसकी कविताएँ विचार, भावना, मन और बुद्धि चार भागों में विभक्त हैं। कविताओं में शीर्षक नहीं हैं। कविता गूढ़ है और हम ऐसे सामान्य पाठक की समझ में नहीं आतीं। सत्रहवें दशक के आरम्भ की कविताएँ समझने के लिए जिस अनुभव और जीवन की आवश्यकता है वह हममें नहीं है। उदाहरण के लिए विचार खण्ड की यह कविता देखिए—

जिम
जितना
कि मैं हूं
पानी का माप
ज्यादा या कम नहीं है
खुला या बन्द
जबान का अपना अन्दाज है
मैं होठों को रोशन रखता हूं
हालांकि अँधेरी गली से
कोई चेहरा उभरता
मुझे दिखाई नहीं देता
मिसाल अपनी मिसाल होती है।

अवश्य ही इस 'दार्शनिक परि दृष्टि' में कोई गूढ़ अर्थ होगा, पर वह हमारे पल्ले नहीं पड़ा। यह तो कबीर की उलटवासियों से भी अधिक गूढ़ है। शायद श्री अज्ञेय,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९७३

डा० विद्यानिवास मिश्र या श्री सर्वेश्वर दयाल इसका अर्थ समझा सकें किन्तु वे हमें सुलभ नहीं हैं। अतएव अपनी आरसिकता और अज्ञान पर तरस खाने के अतिरिक्त हम कर ही क्या सकते हैं ? शायद आधुनिक और नई पीढ़ी के कवि इनका रस ले सकें। उन्हें इसे अवश्य पढ़ना चाहिए जिससे उन्हें मालूम हो कि १९७३ में हिन्दी कविता किस मानसिक और आध्यात्मिक ऊँचाई पर पहुँच गयी है। पर जहाँ तक हमारा सम्बन्ध है हम यही कह सकते हैं—

क़लामे मीर समझे, औ कलामे मीरजा समझे
मगर अपना कहा वह आप समझें या ख़ुदा समझे।

किन्तु हमारे समझने या न समझने से कुछ नहीं होता। हिन्दी में कवि के समानधर्मा कवियों और समीक्षकों की कमी नहीं है। उन्हें यह संग्रह जो सर्वथा विक्रय-मुक्त है, अवश्य पढ़ना चाहिए। यदि कोई अधिकारी आलोचक इसकी आलोचना (जिससे हमारे पाठकों का लाभ हो) भेजने की कृपा करें तो हम उसे प्रकाशित करने का प्रयत्न करेंगे बशर्ते कि वह बहुत बड़ी न हो।

राधा माधव कविता—श्रीमती शान्ति अग्रवाल एम० ए०, साहित्यरत्न, प्रकाशक, शान्ति प्रकाशन मन्दिर, ३५ई/५ सिविल लाइन्स, बरेली। मूल्य ३ रुपये। कई चित्र; पृष्ठ संख्या ९६।

आरम्भ में डा० रामकुमार वर्मा, श्री निरंकार देव सेवक और श्री चन्द्रप्रकाश (भू० पू० सम्पादक 'चरित्र निर्माण) की समीक्षात्मक प्रस्तावनाएं है। इसमें कालिन्दी के कूल पर, सुधियों की छाया में, श्यामसखा से और 'प्रणय की सीमा पर' नामक चार शीर्षकों में कविताएँ संकलित हैं। गीतों में भाषा की प्रांजलता और भावप्रवणता एवम् प्रसाद गुण हैं। कवयित्री का भाषा पर अच्छा अधिकार है। उसकी अभिव्यक्ति मर्यादित किन्तु भावपूर्ण है। प्रियतम के प्रति प्रेमिका को कितना मोह और उसको दुखी न करने की प्रबल अभिलाषा है, वह इन पंक्तियों से स्पष्ट है :

ठहरो, कह आऊँ कोकिल से
उड़कर उनके देश न जाये,
जाये तो वह गीत न गाये
जो सुन उनका मन भर आये।

अंतिम गीत बड़ा मर्मस्पर्शी है—

एक बार आकर फिर गा दो, पायल रुक जाने से पहले
पलकें झुक जाने से पहले
एक बार आकर मुसका दो
तुम, तम के आने के पहले
संध्या ढल जाने के पहले

इन हृदय को स्पर्श करनेवाली कविताएँ लिखने के लिए लेखिका को अनेक साधुवाद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनोरंजक संस्मरण

पं० बनारसीदास चतुर्वेदी ने अपने एक पत्र में हमें अपनी एक यह शिकायत भेजी है :

"श्री पन्तजी ने लोकायतन की प्रति मुझे नहीं भेजी यद्यपि लवणभास्कर की दो खुराकों के मूल्य में (जो उन्होंने रूस में मुझसे ली थीं) लोकायतन भेजने का वचन उन्होंने किएव में दिया था !"

हमारी समझ में नहीं आया कि उन्होंने हमें यह शिकायत क्यों भेजी क्योंकि हम उनकी तरह हिन्दी जगत् के "चौधरी" नहीं हैं। फिर भी चूंकि उन्होंने यह शिकायत एक सम्पादक को भेजी हम उसे 'सर्वजनहिताय' प्रकाशित कर देना उचित समझते हैं। कम से कम हिन्दी के 'चौधरी' का इतना सम्मान तो हमें करना ही पड़ेगा।

पन्तजी कवि ही नहीं व्यवहार-कुशल भी हैं। रूस में 'लवणभास्कर' अलभ्य है। चौबेजी से उसे प्राप्त करने के लिए कुछ 'चारा' दिखाना आवश्यक था। सो 'चारा दिखाकर चिड़िया फँसा ली। किन्तु वे यह भी जानते हैं कि पं० बनारसीदास डी०लिट्०, पद्मभूषण आदि-आदि घोर गद्यात्मक हैं। कविता से उनका उतना ही सम्बन्ध है जितना भैंस का बीन से। अतएव 'लोकायतन' ऐसे महाकाव्य को उन्हें देना पुस्तक का दुरुपयोग और अपव्यय होता क्योंकि उन्हें प्रकाशक से तीन चौथाई मूल्य पर लेकर उसे देना पड़ता। यद्यपि लोकायतन में काफी कवित्व है तथापि उसमें गद्य की भी काफी चाशनी है। शायद बनारसीदासजी ने इसीलिए उनके 'पल्लव' 'गुंजन' आदि (जो विशुद्ध काव्य हैं) न माँगकर 'लोकायतन' माँगा। किन्तु उसमें कवित्व की भी मात्रा है। पन्तजी कालिदास के भक्त और प्रशंसक हैं। उन्हें कुछ परिवर्तन के साथ कालिदास का यह श्लोक याद आ गया होगा—

"...गमिष्याम्युप हास्यताम्
प्रांशुलब्धे 'कृते'[१] लोभाद्विद्वाहु इव वामन !

फिर हमारी तथा अन्य हिन्दीवालों की तरह उन्हें यह अनुभव भी होगा कि जो पुस्तकें साहित्यिकों को भेंट में दी जाती हैं, वे बहुत कम पढ़ी जाती हैं। हमने तो यहाँ तक सुना है कि कुछ लोग भेंट की पुस्तकों को बेचकर पैसे खड़े करके अपनी व्यावसायिका बुद्धि का परिचय देते हैं। अतएव साहित्यिकों को पुस्तकें देना व्यर्थ है और पं० बनारसीदास 'साहित्यिक' हैं। हमारे पास आलोचना के लिए आने-वाली पुस्तकों के अतिरिक्त महीने में बीस-पचीस पुस्तकें लोग छपाकर भेंट में भेजते हैं। जो पुस्तकें हस्ताक्षरित होती हैं उन्हें तो हम बहुत सहेजकर लोहे की एक आलमारी में रख देते हैं। किन्तु सभी आयी हुई पुस्तकों को एक बार उलट-पुलट कर देख अवश्य लेते हैं। उनकी विषय-सूची भी देख लेते हैं और नमूने की तरह एक-साथ अध्याय पढ़ भी लेते हैं। यदि उतने से वे हमें पढ़ने योग्य मालूम हुईं तो पढ़ भी लेते हैं। उपन्यास के यदि २०-३० पृष्ठों के बाद उसकी कहानी ने हमारे मन को जकड़ न पाया तो उसे छोड़ देते हैं। यही कविता की पुस्तकों के साथ होता है। किन्तु हम सब पुस्तकों को रखते हैं और अब वे इतनी अधिक हो गयी हैं कि उनके रखने की समस्या उठ खड़ी हुई है। हम प्रयाग में एक सार्वजनिक पुस्तकालय खोलकर उन्हें (जो संख्या में आठ-दस हजार हो गयीं हैं) उसे देने का विचार कर रहे हैं।

रही पन्तजी की वादाखिलाफी की बात, सो हमें पं० बनारसीदासजी पर तरस आता है। अस्सी वर्ष के हो गये—बहुत लिखा, बहुत पढ़ा पर 'गुने' नहीं। उन्हें यह नहीं मालूम कि माशूकों, नेताओं और कवियों के वादे पूरे करने के लिए नहीं किये जाते। वे तो 'दिल को 'बहलाने' को किये जाते हैं। पन्तजी ने जो वादा किया था वह 'कवि-सुलभ' था। अपनी अज्ञानता के कारण बनारसीदासजी उसे सच्चा समझ बैठे। ऐसे लोगों के लिए हिन्दी में एक बड़ा सटीक शब्द है जिसका प्रयोग उनकी शान में हम न करें तो—यद्यपि नवीनजी को उसका प्रयोग करने में कोई संकोच नहीं होता। हम तो पन्तजी ही का समर्थन करेंगे क्योंकि उन्होंने-उपर्युक्त सिद्धान्त के अनुसार कवि-धर्म का पालन किया। चौबों और बन्दरों में गहरा सम्बन्ध है—दोनों ही मथुरा में जमुनाजी के किनारे मस्त घूमते हैं। और जिस प्रकार अदरक का स्वाद बन्दर नहीं जानता वैसे ही महाकाव्य का स्वाद चौबेजी भी नहीं ले सकते। बन्दर को अदरक खिलाना व्यर्थ है। पन्तजी ने ठीक ही किया— नाहक कई रुपये की चोट ऐसे कुपात्र के लिए क्यों सहते ? यदि ऐसे वादों से रूस में लवण भास्कर की दो खुराकें मिल जायं तो ऐसे वादे करने में संकोच करना बुद्धिमानी न होती।

१—आशय कृति से है यद्यपि व्याकरण की हत्या हो गयी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वास्थ्य-मंत्र

गोपाल दामोदर तामस्कर

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचार ।
असक्तो ह्याचरन् कर्म परमाप्नोति पूरुषः ।।

—श्रीमद्भगवद्गीता ।

गीता के पाठकों में बहुत ही कम लोग ऐसे होंगे जिन्हें गीता का यह श्लोक याद न होगा। कितने ही लोग तो इस श्लोक को अपने कमरों में अथवा, पुस्तकों के मुख्य पृष्ठों पर, बड़े-बड़े अक्षरों में लिख रखते हैं, जिससे उसका और उसके निमित्त से तदन्तर्गत तत्त्वों का मनन और तदनुरूप आचरण कम से कम उनकी चेष्टा, सदैव होती रहे। इस श्लोक का उपयोग लोग साधारणतः पारमार्थिक अधिक से अधिक परोपकारक, कार्यों में किया करते हैं। बहुत कम आदमी ऐसे होंगे जो यह जानते होंगे कि व्यवहार में भी इसका उपयोग हो सकता है। उसमें भी बहुत ही कम मनुष्यों को यह मालूम होगा कि तदन्तर्गत तत्त्व का उपयोग शरीर-स्वास्थ्य के लिए भी हो सकता है। पूर्वोद्धृत श्लोक का तत्त्वज्ञान तो अधिकांश लोग रखते हैं। परन्तु तदनुरूप आचरण बहुत कम लोगों से बन पड़ता है। यही कारण है जो इसका ज्ञान बहुत थोड़े लोगों को होता है कि शरीर-स्वास्थ्य से इसका क्या सम्बन्ध है। एक अमरीकन तत्त्व-विवेचक की एक पुस्तक के आधार पर इस लेख में यह दिखलाया जायेगा कि व्यवहार में यह तत्त्व कितना उपयोगी है और शरीर-स्वास्थ्य की साधना का यह कितना अनुपम मंत्र है।

हमारे मनोविकारों की उत्पत्ति प्रायः शारीरिक विकारों के कारण ही होती है। शारीरिक विकार बाहरी वस्तु किंवा स्थिति के प्रत्यावर्त्तन का परिणाम है। उदाहरणार्थ—भय अथवा आश्चर्य हमारे मन में किसी वस्तु के स्वतन्त्र या प्रत्यक्ष परिणाम से उत्पन्न नहीं होते अर्थात् किसी वस्तु को देखते ही हमारे मन पर एकदम सीधे उसका परिणाम नहीं होता। पहले शरीरिक विकार उत्पन्न होते हैं, फिर उनसे मनोविकारों की उत्पत्ति होती है। अतएव यदि हम शारीरिक विकारों का अवरोध कर सकें तो हमें उनके कारण भय या आश्चर्य न होगा, फिर वह वस्तु या स्थिति कितनी ही भयकारक किंवा आश्चर्य जनक क्यों न हो। एक लेखक तो कहता है कि हम रोते हैं, इसलिए कि हमें दुःख होता है, भागते हैं, इसलिए कि भय मालूम होता है। वास्तव में हम न तो दुःख के कारण रोते हैं और न भय के कारण भागते ही हैं। सम्भव है, कुछ लोगों को यह अत्युक्ति जान पड़े और इसमें विरोध भी देख पड़े। पर मैं उनसे सहमत नहीं। यदि थोड़ी देर के लिए यह मान लें तो भी हम प्रत्यक्ष देखते हैं कि आँसू बहाने से आन्तरिक दुःख और क्रोध प्रकट करने से क्रोध और भी तीव्र हो जाता है। अतएव बालकों को नीति या सदाचार की शिक्षा देने में जो करना, कहना या दिखलाना अभीष्ट है उसी पर हमारा ध्यान पूरा-पूरा रहना चाहिए। हमें क्या अनुभव हो रहा है, इस ओर हमें दृष्टिपात करने की आवश्यकता नहीं। यह सिद्धान्त बड़ा ही उपयोगी है। हमें अपने निज के सुधार—आत्म-संयमन—के लिए भी यह बड़े काम का है। यदि हम अपना डरपोकपन समय पर रोक सकें, उठाया हुआ घूंसा वापस ले सकें, अथवा कुत्सित शब्दों को मुँह में ही दबा सकें तो हमारे मनोविकार शान्त और स्वच्छ हो जायँगे। फिर हमें दुःख और पछतावा न होगा। सधारणतः तो यह देख पड़ता है कि मनोविकार कार्य के पश्चात् उत्पन्न होते हैं। परन्तु बात वास्तव में ऐसी नहीं है। मनोविकार और कार्य दोनों साथी हैं, मनोविकार की अपेक्षा कार्य, मनोबल के अधिक अधीन है। अतएव यदि हम कार्य को रोक सकें तो मनोविकार अप्रत्यक्ष रीति से आप ही रुक जायँगे।

मान लीजिए कि किसी की स्वाभाविक आनन्दवृत्ति नष्ट होगई तो इसके लिए उसे निराश होने की ज़रूरत नहीं। क्योंकि आनन्द-वृत्ति की प्राप्ति का सर्वोत्तम मार्ग तो उसके अधीन ही है। वह है—सदैव आनन्द रूप धारण किये रहना। अपने को आनन्दित दिखलाना और आनन्द पूर्वक समस्त व्यवहार करना। यदि इतना उससे न बन पड़े तो यही कहना चाहिए कि वह कभी आनन्दित नहीं हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकता। यदि हम अपने को शूर बनाना चाहें तो हमें शूरता-सूचक ही समस्त व्यवहार करने चाहिए। इसी में अपना सारा मनोबल लगा देना चाहिए। बस, भय के स्थान में धैर्य आ खड़ा होगा। शत्रु के साथ यदि समहार्दिकता प्रकट करना है तो जान-बूझकर उससे हँसिए, सहानुभूति की बातें कीजिए और नम्रता धारण करने का प्रयत्न कीजिए। अनुदार मनोविकारों से झगड़ने में, उनको रोकने में, उनको दबाने में, दोनों पक्ष घण्टों बिता देंगे, पर फल कुछ न होगा। परन्तु थोड़े ही हार्दिक हास्य से दोनों पक्षों का मेल शीघ्र हो जायगा; दोनों के हृदय मिल जायँगे। दुष्ट मनोविकारों से झगड़ा करते रहने में हमारा ध्यान उन पर और भी जम जाता है। वे चित्त में अधिकाधिक स्थान पाते जाते हैं। परन्तु, यदि अच्छे मनोविकार निरन्तर प्रकट किये जायँ तो पुराने दुष्ट मनोविकार अपना डेरा-डण्डा उठाकर चल देते हैं।

समस्त धर्म्म-ग्रन्थों और भक्ति-विषयक ग्रन्थों का यही कथन है कि हमें अपने मनोविकारों पर ध्यान रखना अनुचित है। तुम कितने ही सशङ्क-चित्त और श्रद्धा-हीन क्यों न हो, यदि श्रद्धा-पूर्वक कार्य करते रहोगे तो कभी न कभी श्रद्धावान् हो ही जाओगे। तुम्हारे मनोविकारों की ओर परमेश्वर ध्यान नहीं देता। वह तो तुम्हारे हेतु पर ही दृष्टि रखता है। अतएव तुम्हें अपने हेतु-मात्र पर ही ध्यान रखना चाहिए। मनोविकार उत्पन्न हों चाहे नष्ट हों; उन पर तुम ध्यान ही न दो। तुम्हारे कार्य से उनका कोई सम्बन्ध नहीं। वे तुम्हारी आत्मा की अवस्था के परिचारक नहीं। वे तो केवल तुम्हारे स्वभाव अथवा शरीरिक अवस्था के सूचक हैं। हमारे कार्यों और मनोवृत्तियों के अनुसार नाना प्रकार के इन्द्रियविकार हममें उत्पन्न होते रहते हैं। उन्हीं से हमारी आन्तरिक अवस्था जानी जाती है। मनोविज्ञान का मूल सिद्धान्त यही है।

एक विद्वान् लेखक लिखता है—जिस रोगी के मज्जा-तन्तु विकृत हो गये हैं उनकी अत्यन्त आन्तरिक अवस्था से वैद्य जबतक परिचित न हो तब तक उसकी चिकित्सा से विशेष लाभ होने की सम्भावना नहीं। इस आन्तरिक अवस्था का वर्णन करना कठिन है। वह मन के भीतर लुप्त सी रहती है। हम अपनी आन्तरिक अवस्था का ज्ञान किसी को शब्द द्वारा नहीं करा सकते। केवल हमारे कुछ मित्र ही उसका परिचय पा सकते हैं। इसी से वे हमारी व्यक्तिगत विशेषताओं के भी जानकार होते हैं। जिनका चित्त अस्वस्थ रहता है उसके हृदय में तरह-तरह के पश्चात्ताप, भीरुता के कारण नष्ट हुई वासनायें और लज्जा के कारण रुकी हुई महत्त्वाकक्षायें इत्यादि तो रहती ही हैं, परन्तु, विशेषकर, ऐसी शारीरिक अस्वस्थता भी उसमें रहती है जिसका वर्णन तो स्पष्टतया कर नहीं सकते, पर जिसके कारण आत्म-विश्वास नष्ट होता रहता है एवं ज्ञात होता रहता है कि शरीर की दशा ठीक नहीं है। संसार में मदिरापान की जो इतनी वृद्धि है उसका कारण यह भी है। सुरा-सेवन से मनुष्य केवल पूर्वोक्त अवस्था का ही नहीं, किन्तु सारे बाल-शोषक विकारों और विचारों को भी कुछ काल के लिए भूल जाता है। स्वस्थ-चित्त मनुष्य के हृदय में लज्जा अथवा भय स्थान नहीं पाते। यही नहीं, शरीर के कारण जो इन्द्रिय-विकार उत्पन्न होते हैं उनसे भी उनकी स्वस्थता बढ़ती जाती है और प्रत्येक कार्य में उत्साह की वृद्धि ही होती रहती है शरीर के पूर्णतया स्वस्थ रहने पर प्रत्येक इन्द्रिय उत्साह से सम्पन्न जान पड़ती है, स्फूर्ति बढ़ जाती है और हम अधिक कार्य-क्षम हो जाते हैं। इसलिए ज़रा-ज़रा सी बात के कारण उत्पन्न विकारों का अवलम्बन उचित नहीं।

बहुत से डाक्टरों का कथन है कि भोजन हज़म करने के लिए हमारी इन्द्रियों को भविष्यत् में बहुत कम श्रम करना पड़ेगा। क्योंकि अब ऐसे ऐसे भोजन आविष्कृत होंगे जो बहुत जल्द हज़म हो जाया करेंगे। यह शक्य है या अशक्य, इस विचार में उलझने की हमें आवश्यकता नहीं। इसकी शक्यता मान लेने पर भी हमारी इन्द्रियाँ निरर्थक नहीं हो सकतीं। हमारा चित्त स्वस्थ रहे, गम्भीर रहे, आनन्दित रहे. फुर्ती और उत्साह से हम भरे पूरे हैं, हमारा चिड़चिड़ापन दूर हो जाय, हमारे पास आने में—हमारे साथ व्यवहार करने में—किसी को कुछ भी भय अथवा शङ्का न हो—इन कार्य्यों की सिद्धि में हमारी इन्द्रियों से बड़ा काम निकलेगा—उनसे हमें बहुत लाभ होगा। शारीरिक दुर्बलता से ही मानसिक दुर्बलता उत्पन्न होती है और स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है। जिसका शरीर हृष्टपुष्ट है, स्वस्थ है—वही सुखी है। उसका चित्त सदा शान्त रहता है और आत्मविश्वास तथा सन्तोष उसके हृदय में निरंतर निवास करते हैं। ऐसी मनःस्थिति व्यवहार के लिए तो उपयोगी हुई है; परन्तु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुपरिणाम-कारक धार्म्मिक स्वस्थता भी इसी से उत्पन्न होती है। रात दिन अस्वस्थ रहना उचित नहीं। छोटी-मोटी बातों से भी घबरा जाने का परिणाम बहुत बुरा होता है।

शरीर के अस्वस्थ होने से इन्द्रिय-विकारों की धारा सतत बहती रहती है। इससे चित्त में सदा घबराहट बनी रहती है। परिणाम यह होता है कि आन्तरिक दशा बुरी हो जाती है। यदि तुम एक मिनट भी स्वस्थ-चित्त न बैठ सको, सोलह की जगह उन्नीस या बीस बार प्रति मिनट श्वासोच्छ्वास करने लगो, और तिस पर भी कभी पूरी साँस न खींच सको, तो तुम्हारी मानसिक दशा सदा क्लेश-मय बनी रहेगी। तुम्हें भविष्यत् का निकृष्ट स्वरूप ही सदा दिखाई देता रहेगा और तज्जात कष्ट तुम भोगते रहोगे।

उदासीन वृत्तिवाला रोगी अपनी रुग्णावस्था को देख-देखकर अधिक दुखी हो जाता है। उसके विचारों का प्रवाह फिर दूसरी दिशा नहीं देखता। उसका मन केवल अपना ही राग अलापा करता है। दूसरे विचारों की उसमें गुन्जाइश ही नहीं रहती। केवल दुःखकारक अवस्था से ही मन की दशा ऐसी नहीं होती। हर्षकारक विचारों से भी ऐसा ही होता है। अति हर्ष की अवस्था में साधु पुरुष भी गतिहीन और एक-विचारी हो जाता है। दूसरी बातों का कुछ प्रभाव उस पर नहीं पड़ता।

इस विवेचन से यह ज्ञात नहीं होता है कि यदि हम यह चाहें कि हमारा विचार-प्रवाह बन्द न होने पावे और हमारा मनोबल अच्छी दशा में बना रहे, तो हमें उचित है कि हम व्यर्थ विकारों का विचार ही न करें और उनके परिणाम पर ध्यान ही न दें। और और आदतों की तरह, हम यह आदत भी डाल सकते हैं। यदि हमने किसी कार्य का भार ग्रहण कर लिया है तो परिणाम की जवाबदेही और चिन्ता को चित्त से दूर हटा देना चाहिए। अपने मन को—अपनी बुद्धि को—बन्धनों से मुक्त रहने देना चाहिए और उसे स्वतंत्रतापूर्वक कार्य करने देना चाहिए। परिणाम यह होगा कि मनोबल-वृद्धि से दूना कार्य होगा। जिन विद्यार्थियों को परीक्षा-फल की चिन्ता सताती रहती है, जो पास फेल के विषय में बहुत उधेड़-बुन किया करते हैं वही परीक्षा-ग्रह में कोरी कापियाँ रख कर चले आते हैं। पर जो निश्चित रहते हैं वे बहुधा सफल मनोरथ होते हैं। चिन्ता और सोच के बोझ से मनुष्य की स्मरण-शक्ति दब जाती है। जो बहुत चिन्तनशील होते हैं उनको साधारण बात-चीत तुच्छ जान पड़ती है। उनकी सङ्गति में साधारण मनुष्य को आनन्द नहीं आता। कभी कभी तो उनके सङ्ग से जी उकता उठता है। उनसे जी खोल कर बातें नहीं हो पायीं। उनसे बात करते समय नाना प्रकार की शङ्कायें चित्त में उत्पन्न हुआ करती हैं। इसके विपरीत सरल-हृदय खुशदिल आदमी से दिल खोल कर बातें हो सकती हैं और उसकी सङ्गति से आनन्द भी प्राप्त हो सकता है।

चिन्ता के कारण मनुष्य अधिक गम्भीर और सङ्कोच-शील हो जाता है। वह समाज में स्वतन्त्रतापूर्वक विचरण करना छोड़ देता है। इससे वह कोई कार्य नहीं कर पाता। इस चिन्ता की सर्वोत्तम औषध है—धर्म्म-श्रद्धा। इसके बल पर जिसने अपना जीवन-क्रम विस्तृत और चिरस्थायी बना लिया उसको अपने जीवन के कलह-कलाप तुच्छ मालूम होते हैं। सच्चे धार्मिक पुरुष का मन डाँवाडोल नहीं होता। वह सदा सम बना रहता है। ऐसे पुरुष हर समय आपदाओं के स्वागत और कार्य्यों की सिद्धि के लिए उद्यत रहता है।

सारांश यह कि कोई भी कर्म असक्त होकर करना ही सर्वोत्तम है। परिणामों की चिन्ता करने से विशेष लाभ नहीं। मन को कष्ट हो तो शरीर को भी क्लेश होता है। इससे अन्य हानियाँ तो होती ही हैं; परन्तु शरीर-स्वस्थता भी जाती रहती है, जो ऐहिक दृष्टि से बड़ी भारी हानि है। कार्यों के परिणाम का भार परमेश्वर को सौंप दीजिये और निश्चित होकर कार्य्य करते रहिए। इसी से आप अधिक सफल-मनोरथ होंगे।

प्रकाशक—रा० वि० मिश्र, इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद
मुद्रक—पी० एल० यादव, इंडियन प्रेस प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्त्रियों के लिए शिक्षा-प्रद कुछ पुस्तकें

आदर्श महिला—इस पुस्तक में सीता, सावित्री, दमयन्ती, शैव्या और चिन्ता देवियों की जीवन-घटनाओं का सजीव वर्णन है। पृष्ठ २६८; मूल्य ३·०० रुपये।

ठाकुर दुर्गाशंकरप्रसाद सिंह

नारी-जीवन—बहू-बेटियों को उपयुक्त गृहस्थ-जीवन बिताने की विधियाँ मनोरंजक शैली में समझाई गई हैं। पृष्ठ २५१; मूल्य ३·५० रुपये।

पतिव्रता—इसमें छः पतिव्रताओं के चरितों का शिक्षाप्रद और मनोरंजक संग्रह है। पृष्ठ २४०; मूल्य १·२५ रुपये।

पं० देवीदत्त शुक्ल (संकलनकर्त्ता)

पंचसती—इस पुस्तक में सीता, सावित्री, दमयन्ती, शैव्या, चिन्ता आदि रमणी रत्नों का आदर्श-चरित्र वर्णित है। पृष्ठ १५४; मूल्य २·०० रुपये।

डाक्टर बोधराज चोपड़ा

माँ और बच्चा—इस पुस्तक में बच्चों का पालन-पोषण करने, उन्हें स्वस्थ-सबल बनाने आदि आवश्यक बातों पर, सुन्दर प्रकाश डाला गया है। पृष्ठ २५९; मूल्य ३·०० रुपये।

पतिव्रता गांधारी—कौरवों की माता पतिव्रता गांधारी का जीवनचरित, जो प्रत्येक नारी के लिए पठनीय है। पृष्ठ १३४; मूल्य १·५० रुपये।

श्री भगवानदीन पाठक

दमयन्ती—दमयन्ती की रहस्य और रोमांच से ओत-प्रोत कहानी जो उसके अडिग पातिव्रत पर प्रकाश डालती है। पृष्ठ ३७; मूल्य ०·५० पैसे।

सीता—इस पुस्तक में सीताजी की रोचक और शिक्षाप्रद कहानी बड़ी सरल भाषा में लिखी गई है। मूल्य ०·५० पैसे।

सुशील कन्या—इस पुस्तक में कहानियों के रूप में कन्याओं को शिष्टाचार, गृहप्रबन्ध, देशप्रेम आदि उपयोगी विषयों की शिक्षा दी गई है। पृष्ठ १३५; मूल्य १·२५ रुपये।

श्रीमती दुर्गादेवी और मायादेवी

शिशु-पालन—इस पुस्तक में प्रसूत-चर्या से लेकर बच्चों के पालन-पोषण तक की कई आवश्यक बातें बताई गई हैं। पृष्ठ २४०; मूल्य २·५० रुपये।

श्री संतराम

सुन्दरी सुबोध—गृहणियों को गृहस्थी की गुत्थियाँ सुलझाने में सहायता देनेवाली पुस्तक। पृष्ठ ३१६; मूल्य ३·०० रुपये।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महर्षि वेदव्यास की विशद कृति

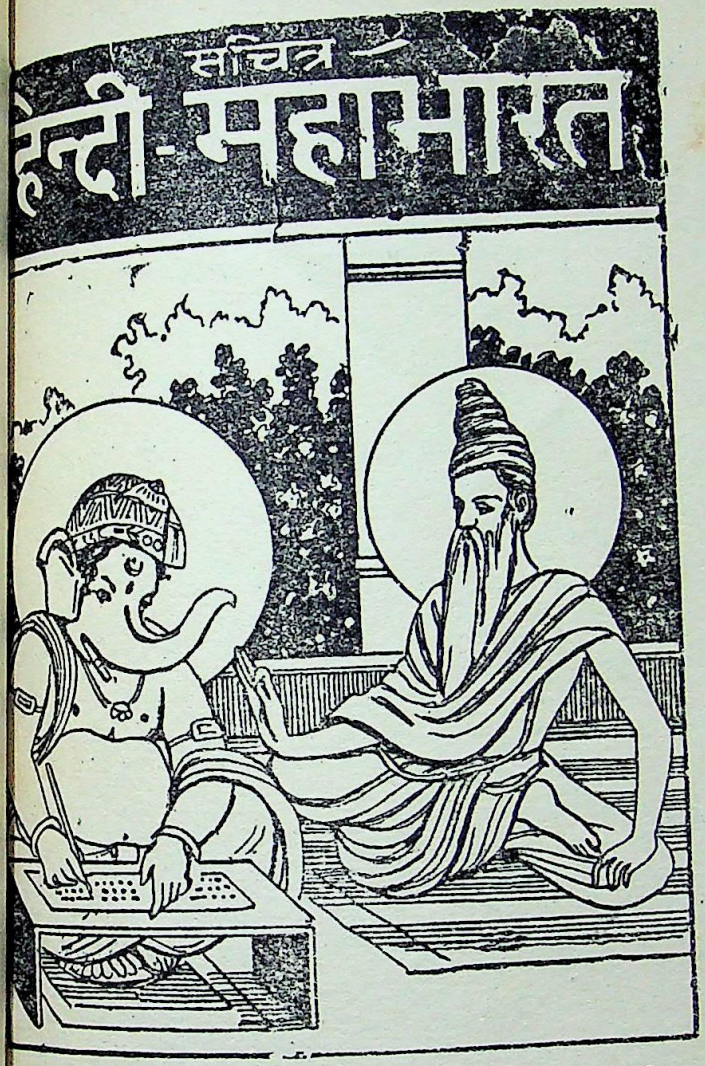

महाभारत को पाँचवाँ वेद कहते हैं। इस ग्रन्थ में महर्षि वेदव्यास ने अनेक शास्त्रों का वर्णन करके जीवनक्रम की सुलभ रीति बतलाई है। इसमें तीर्थों और व्रतों का वर्णन है, पुण्य पुरुषों की चरितावली है, ऋषियों के उपदेश हैं, सुन्दर उपाख्यान हैं और धर्म पर स्थिर रहकर उन्नति करने का मार्ग बतलाया गया है। यह ग्रन्थ १० खण्डों में समाप्त हुआ

। रंगीन और सादे चित्रों की अधिकता है। बढ़िया जिल्द है। १० खण्डों
के पूरे सेट का मूल्य १००) सौ रुपया मात्र।

सचित्र महाभारत

इसमें महाभारत के अठारहों पर्वों की कथा बहुत ही सरल भाषा में लिखी गई है। इसके लेखक आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी हैं। सचित्र और सजिल्द ग्रन्थ का मूल्य ८ रुपये।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Yearly Subscription : Rs. 9.00
Single Copy : Rs. 0.75
March 1973
SARASWATI—Reg. No. L. 24

हिन्दू-संस्कृति का अगाध सागर

यह हिन्दी के अम
कवि गोस्वामी तुलसी
दास की सुप्रसिद्ध रचना
है। इसमें गोस्वामीजी ने
अपने आराध्य देव राम
चन्द्रजी की कथा, सात
काण्डों में, दोहा-चौपाई
सोरठा और छन्दों में
कही है।

इस ग्रन्थ का प्रचार
हिन्दी-भाषी प्रान्तों में तो
है ही, दूसरे प्रान्तों में
भी है।

डाक्टर श्यामसुन्दर
दास ने इस अनुपम ग्रन्थ
पर जो टीका लिखी है
उससे अर्थ समझने में
बहुत सुविधा होती है।

इस संस्करण में क्षेपक आदि नहीं हैं। आरम्भ में विस्तृत भूमिका है जिसमें गोस्वामीजी के जीवनचरित और उनकी समस्त रचनाओं पर विशद विवेचन है। चित्रों की अधिकता है। सुन्दर जिल्द है। मूल्य १५)।

गोस्वामी तुलसीदासकृत रामचरितमानस—टीकाकार—रामेश्वर भट्ट। यह संस्करण बहुत ही उपयोगी, मनोहर और सस्ता है। टीका बड़े काम की है। दुरंगे-तिरंगे चित्रों की अधिकता है। सजिल्द प्रति का मूल्य ८)।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्रा० लि०, प्रयाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

22.6.73
अप्रैल १९७३
पुस्तकालय
गुरुकुल

सरस्वती

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महर्षि वेदव्यास की विशद कृति

महाभारत को पाँचवाँ वेद कहते हैं। इस ग्रन्थ में महर्षि वेदव्यास ने अनेक शास्त्रों का वर्णन करके जीवनक्रम की सुलभ रीति बतलाई है। इसमें तीर्थों और व्रतों का वर्णन है, पुण्य पुरुषों की चरितावली है, ऋषियों के उपदेश हैं, सुन्दर उपाख्यान हैं और धर्म पर स्थिर रहकर उन्नति करने का मार्ग बतलाया गया है। यह ग्रन्थ १० खण्डों में समाप्त हुआ है। रंगीन और सादे चित्रों की अधिकता है। बढ़िया जिल्द है। १० खण्डों के पूरे सेट का मूल्य १००) सौ रुपया मात्र।

सचित्र महाभारत

इसमें महाभारत के अठारहों पर्वों की कथा बहुत ही सरल भाषा में लिखी गई है। इसके लेखक आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी हैं। सचित्र और सजिल्द ग्रन्थ का मूल्य ८ रुपये।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

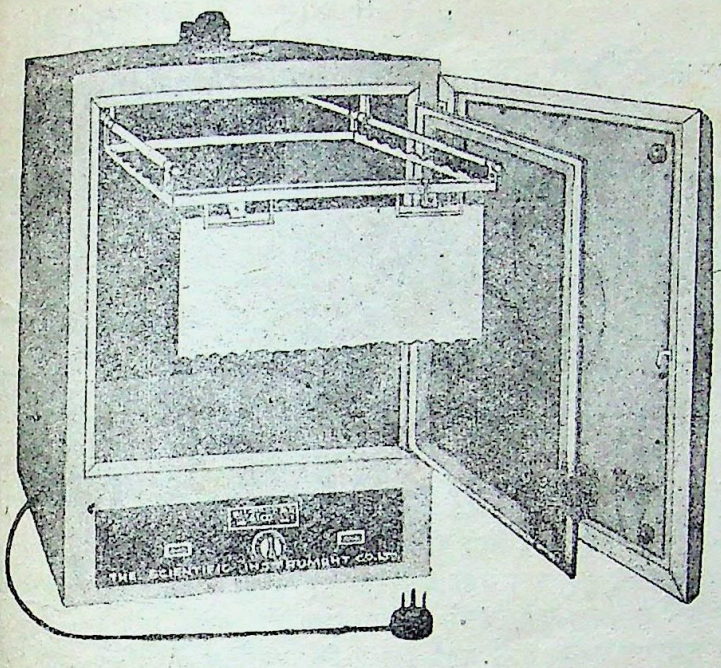

सीको कोमाटोग्राफिक ओवेन्स

THE SCIENTIFIC SICO TRADE MARK

सीको : विज्ञान की सेवा में

वैज्ञानिक अनुसंधान एवम् देश में वैज्ञानिक यंत्रों की कमी को पूरा करने के लिये, सीको अपने उत्पादन व दूसरे देशों से सर्वश्रेष्ठ यंत्रों को मँगाकर शिक्षा, उद्योग एवम् वैज्ञानिक खोज की सेवा में संलग्न है।

दी साइण्टिफिक इन्स्ट्रूमेंट कम्पनी लिमिटेड,

इलाहाबाद, बम्बई, कलकत्ता, मद्रास, नई देहली

हेड आफिस—६, तेजबहादुर सप्रू रोड, इलाहाबाद

जिन शहरों में स्टाकिस्ट नहीं हैं वहाँ के हेतु स्टाकिस्ट चाहिए।

शुद्ध बादाम रोगन पर बना

अलकपरी

केशों में प्रतिमास ३-४ इंच वृद्धि। ६ महीने में एड़ी-चुम्बी केश।

'अलकपरी' का कोर्स

पहले सप्ताह में रूसी-खुश्की दूर हो जाती है। दूसरे सप्ताह में केशों का झड़ना और उनके सिरों का फटना रुकता है।

तीसरे सप्ताह में नये केश उगते दिखाई देते हैं। चौथे सप्ताह के अन्त तक केश ३-४ इंच बढ़ जाते हैं। फिर प्रतिमास इसी औसत से बढ़ते रहते हैं।

६ महीने में केश एड़ी-चुम्बी बन जाते हैं।

मूल्य एक शीशी का ३·०० है जो एक महीने को काफी होती है। डाक-खर्च व पैकिंग पृथक्। ४ से अधिक शीशियाँ डाक से नहीं भेजी जायँगी। अधिक के लिए मूल्य पेशगी भेजिए।

माल भगवती संस्कृत संस्थान, कानपुर। मंगाकर देखिये।

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection, Chandigarh

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ ओम् दुर्गा दुर्गतिनाशिनी ॥ ॥ ओम् दुर्गा दुर्गतिनाशिनी ॥

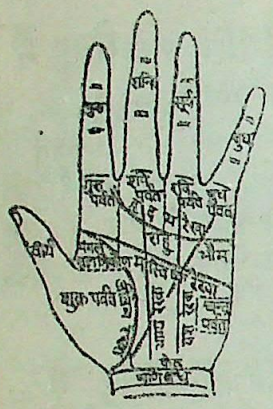

जीवन की विभिन्न जटिल समस्याओं के समाधान के लिए मिलिये या पत्र-व्यवहार करिये

ज्योतिषाचार्य—

प्रोफेसर प्रद्युम्ननारायण सिंह

वैज्ञानिक ज्योतिषी, हस्तरेखा-विशारद,

तांत्रिक और मानस शास्त्रज्ञ

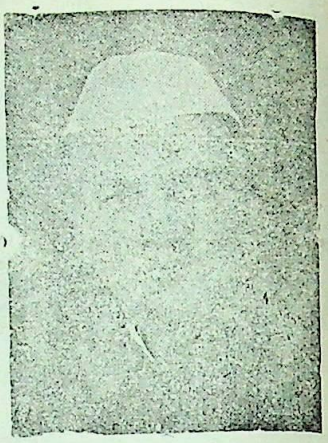

२८, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद (फोन नं० २८५८)

देखिये :—श्री आर० के० नेहरू, आई० सी० एस०, एम्बेसडर आफ इंडिया पेकिंग, चीन क्या कहते हैं :—

ज्योतिषाचार्य प्रो० पी० एन० सिंह जी को यह पत्र देते हुए मुझे बड़ी प्रसन्नता हो रही है। यह कहना उपयुक्त न होगा कि ज्योतिष शास्त्र में मेरा ज्ञान बहुत अधिक है परन्तु मुझे इसमें किंचित्मात्र भी संदेह नहीं है कि यह विषय एक बहुत ही उच्च-स्तरीय विज्ञान का है। मुझे यह सर्वदा भास बना रहा है कि ज्योतिष में अधिक पड़ने से मनुष्य के जीवन-विकास में गिरावट होती है। इस विचारधारा के होते हुए भी मेरे मित्रों ने मुझे ज्योतिषाचार्य श्री सिंह जी के पास अपनी कुंडली दिखाने का अनुरोध किया। उनके कतिपय भविष्य-फल इतने सत्य हुए कि मुझे आश्चर्यचकित रह जाना पड़ा। मुझे यह मानना ही पड़ता है कि उन्होंने इस विज्ञान का पूर्ण रूप से अध्ययन किया है और वे इस विषय के प्रगाढ़ पण्डित हैं। अतः जिन महानुभावों को इस विद्या में रुचि हो, मैं उनसे अनुरोध करूँगा कि वे उनसे अपनी कुंडली दिखाकर अवश्य लाभ उठावें।

त्याग की रायल्टी

लेखक—कृष्णकिशोर श्रीवास्तव

१. खेत की मेड़, २. मरे, अधमरे और जीवित, ३. कीटाणु,
४. त्याग की रायल्टी, ५. लाठी चार्ज

त्याग की रॉयल्टी में उपरोक्त ५ एकांकी संग्रहीत हैं। इन एकांकियों के माध्यम से समाज की प्रमुख ज्वलन्त समस्याओं की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित किया गया है। ये एकांकी सर्वथा अभिनेय हैं। इन्हें मंच की कसौटी पर कसिये और जाँचिये। किसान, मजदूर, व्यापारी वर्ग, महन्तवर्ग और आये दिन होनेवाली पुलीस की धींगा-धींगी पर अलग-अलग एकांकियों द्वारा मार्मिक चोट की गई है। यों तो इस स्वच्छन्द युग में ये एकांकी घर-घर पढ़े जाने योग्य हैं परन्तु देश के तरुण, देश के विद्यार्थी समय-समय पर इन एकांकियों का रंगमंच पर अभिनय कर विघटित विचारों को नये मोड़ दे सकते हैं। देश में नव स्फूर्ति, नव जागरण पैदा कर सकते हैं।

पृष्ठ संख्या १०४ मूल्य ३·००

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रत्येक का मूल्य १·५०

मोहन सिरीज का प्रत्येक उपन्यास स्वतः पूर्ण है। किसी भी उपन्यास को पढ़ते-पढ़ते आप आनन्द, आश्चर्य और रोमांच से अभिभूत हो जायेंगे।

१—मोहन।
२—मोहन जेल में।
३—रमा और मोहन।
४—रमा की शादी।
५—फिर से मोहन।
६—बिरही मोहन।
७—मोहन और पंचमवाहिनी।
८—फांसी के तख्ते पर मोहन।
९—नागरिक मोहन।
१०—मोहन बर्मा की सीमा पर।
११—नारी-रक्षक मोहन।
१२—मोहन का प्रथम अभियान।
१३—नेता मोहन।
१४—मोहन का जर्मनी अभियान।

मोहन को ही नायक बनाकर इस सीरीज के सब मनोरंजक रोमांचकारी उपन्यास लिखे गये हैं। ऐसे अद्भुत चरित-चित्रणों तथा स्तब्धकारी घटनावलियों से परिपूर्ण अन्य उपन्यासमालायें कहीं नहीं मिलेंगी।

१५—प्रिय मोहन।
१६—गेस्टापो के मुकाबले में मोहन।
१७—बर्लिन में मोहन।
१८—मोहन का तूर्यनाद।
१९—मोहन का अनुराग।
२०—मित्र मोहन।
२१—मोहन और स्वप्न।
२२—स्वप्न का महान्त-वसन।
२३—अफसर मोहन।
२४—डाकू मोहन।
२५—स्वप्न का सीमान्त संघर्ष।
२६—मोहन का प्रतिदान।
२७—नये रूप में मोहन।
२८—मोहन का नया अभियान।
२९—त्राता मोहन।
३०—मोहन का प्रतिशोध।
३१—जर्मन षड्यंत्र में मोहन।
३२—मोहन और अणुबम।
३३—मोहन के तीन शत्रु।
३४—तीनों के साथ मोहन का मुकाबला।
३५—सोवियत रूस में मोहन।
३६—मोहन की प्रतिज्ञा रक्षा।
३७—सुन्दर वन में मोहन।
३८—युवक मोहन।
३९—मोहन और वनविहारी।
४०—समुद्र-तल में मोहन।
४१—बन्दी मोहन।
४२—नारी त्राता स्वप्न।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किशोर सीरीज़ उपन्यासमाला

किशोरों या उदीयमान भावी युवकों को प्रेरणा, उत्साह, साहस और मनोरंजन की विशद सामग्री उपस्थित करनेवाले उपन्यासों का अनुवाद अंग्रेजी, फ्रांसीसी आदि भाषाओं से हिन्दी में कराकर हमने हिन्दी किशोर पाठकों के लिए सुलभ किया है।

समुद्र-गर्भ की यात्रा—(मूल लेखक जूले वर्न) अनु० श्रीमती जयन्ती देवी। मूल्य २·२५

वर-भक्षकों के देश में—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० कु० शैवालिनी मिश्र। मूल्य २·२५

उड़ते अतिथि—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्रीमती विनोदिनी पाण्डेय। मूल्य २·२५

रहस्यमय द्वीप—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्रीमती जयन्ती देवी। मूल्य १·५०

द्वीप का रहस्य—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्री सन्तकुमार अवस्थी। मूल्य २·५०

भूगर्भ की यात्रा—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्री प्रभात किशोर मिश्र। मूल्य २·२५

दृढ़प्रतिज्ञ—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्री रामअवधेश त्रिपाठी। मूल्य २·५०

गुब्बारे में अफ्रीका यात्रा—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० कु० शैवालिनी मिश्र। मूल्य २·५०

चन्द्रलोक की यात्रा—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्री सूर्यकान्त शाह। मूल्य २·२५

चन्द्रलोक की परिक्रमा—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्री केशव एस्० केलकर। मूल्य ३·२५

अस्सी दिन में पृथ्वी की परिक्रमा—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्री रामस्वरूप गुप्त। मूल्य ३·२५

गुलीवर की यात्राएँ—(मू० ले० जोनाथन स्विफ्ट) अनु० श्री शिवाकान्त अग्निहोत्री दो भागों में। मूल्य १·०० प्रत्येक

मास्टर मैन रेडी—(मू० ले० कैप्टेन मैरियट) अनु० कु० कौशल श्रीवास्तव। मूल्य ३·२५

नीली झील—(मू० ले० स्टैकपोल) अनु० डा० कुमुदिनी तिवारी। मूल्य २·५०

स्विस परिवार रॉबिसन—(मू० ले० रुडाल्फ वाएस) अनु० श्री देवेन्द्रकुमार शुक्ल। मूल्य ३·००

आकाश में युद्ध—(मू० ले० एच० जी० वेल्स) अनु० श्री सन्तप्रकाश पाण्डे। मूल्य २·५०

गुप्तधन—(मूल ले० राइडर हैगार्ड) अनु० श्री जे० एन० बत्स। मूल्य ३·२५

प्रत्येक विद्यालय के पुस्तकालय और अपनी संतान को उत्तम शिक्षा प्रदान करने का संकल्प रखनेवाले माता-पिता के निजी पुस्तक संग्रहों के लिए ये पुस्तकें बेजोड़ ही हैं।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश

डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, काशी नागरीप्रचारिणी सभा—'हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश को मैं जितना देख सका हूँ, उससे मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूं कि हिन्दी के दो-तीन उत्कृष्ट कोशों में से एक यह भी निस्सन्देह है।.....'

डॉ० रामकुमार वर्मा, भू०पू० अध्यक्ष हिन्दी विभाग प्रयाग विश्वविद्यालय—'हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश का उपयोग मैंने सफल रूप से किया है। मैं इसके देश-व्यापी प्रचार की कामना करता हूँ।.....'

हिन्दी के प्रतिष्ठित विद्वानों की सहायता से सम्पादित और श्री विश्वेश्वरनारायण श्रीवास्तव एम० ए०, एल्-एल० बी०, साहित्यरत्न तथा पं० बेवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त' द्वारा संकलित यह हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश हमारा नवीनतम और सर्वोपयोगी प्रकाशन है।

इस कोश का कागज, मुद्रण, आवरण, जिल्द सभी स्थायी और आकर्षक हैं। इसकी शब्द संख्या लगभग पचास हजार, पृष्ठ-संख्या लगभग १६०० और इसका मूल्य १६ रुपये है।

पापुलर
इंग्लिश
हिन्दी
डिक्शनरी

सजिल्द प्रति का मूल्य
६) रुपये

हिन्दी, अंगरेजी की अगणित डिक्शनरियों के आधार पर निर्मित इस डिक्शनरी की प्रामाणिकता और लोकप्रियता का यही सबसे बड़ा प्रमाण है कि इसके अनेक संस्करण हाथोंहाथ बिक चुके हैं। इस डिक्शनरी में अँगरेजी शब्दों के शब्दार्थ अँगरेजी और हिन्दी दोनों भाषाओं में दिये गये हैं। इस कारण यह डिक्शनरी न केवल अँगरेजी से अँगरेजी में शब्दार्थ जाननेवालों के लिए, प्रत्युत अँगरेजी से हिन्दी में शब्दार्थ जाननेवालों के लिए भी बड़ी उपयोगी है। छात्रों के लिए इस डिक्शनरी की उपयोगिता अपरिहार्य है। प्रायः सभी उपयोगी शब्द और मुहाविरे इसमें संकलित किये गये हैं। पृष्ठ पौने नौ सौ।

प्रकाशक—इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छोटे बच्चों के प्यारे कवि निरंकार देव 'सेवक' द्वारा लिखित

कुछ अपूर्व प्रकाशन

श्री शंकरसहाय सक्सेना डाइरेक्टर शिक्षा-विभाग, राजस्थान कहते हैं :—

"यह बालगीत बच्चों के लिए अत्यन्त सुन्दर और उपयोगी हैं। लेखक ने इन्हें लिखकर हिन्दी में बाल-साहित्य को धनी बनाया है। यह पुस्तकें प्रत्येक घर में जहाँ बालक-बालिकाएँ हों, रहना ही चाहिए।"

रिमझिम—रिमझिम में निरंकारजी के वह अनमोल बालगीत संग्रहीत हैं जिन्हें बच्चे बहुत पसन्द करते हैं। सभी कवितायें मीठी-मीठी और सुन्दर हैं। मू० २·५० रुपये।

फलों के गीत—बच्चे यदि बगिया में खिले नये-नये फूल हैं तो इस पुस्तक के बालगीत उनके मन के गीत हैं। इन गीतों को पढ़कर एक बार वे मस्ती में झूम उठेंगे। उनके मन उत्साह, उमंगों से भर जायेंगे। मू० २·०० रुपये।

दूध जलेबी—बहुत छोटी आयु के बच्चों के लिए यह अनुपम और बेजोड़ पुस्तक है। इसकी छोटी-छोटी सुन्दर कवितायें बच्चे पढ़ते ही याद कर लेते हैं। मू० १·७५ रुपये।

पंचतन्त्री—पंचतन्त्र की जिन कहानियों में ज्ञान और उपदेश की बातें कूट-कूटकर भरी हैं वह कविता में इस ढंग से कही गई हैं कि बालक एक बार प्रारम्भ करके पूरी पुस्तक बिना समाप्त किये नहीं छोड़ सकता। मू० ३·०० रुपये।

मुन्ना के गीत—बच्चों के सोने-जगने, खेलने-कूदने, उठने-बैठने, खाने-पीने, दौड़ने-भागने, चलने-फिरने, पढ़ने-लिखने के ऐसे रसमय बालगीत सूरदास के बाद पहिली बार हिन्दी में लिखे गये हैं। मू० ३·०० रुपये।

धूप छाया—बच्चों की भिन्न-भिन्न क्रीड़ाओं से सम्बन्धित इतने मनोहर और मीठे गीत इस पुस्तक में संग्रहीत हैं कि बच्चे इन्हें पढ़कर खुशी से झूम-झूम उठते हैं। मू० १·७५ रुपये।

माखन मिसरी—इस पुस्तक का प्रत्येक बालगीत मिसरी की तरह मीठा और मक्खन की तरह कोमल है। बच्चे इसे पढ़ते ही गले से उतार लेंगे। छोटी आयु के बच्चों को यह कवितायें बहुत प्यारी लगती हैं। मू० २·२५ रुपये।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नई साज-सज्जा में सरस्वती सीरीज़

इस सीरीज़ की पुस्तकों ने हिन्दी पुस्तक-जगत् में अपनी लोकप्रियता, सुलभता और विविध विषयता से धूम मचा दी थी। वे ही अब आकर्षक नये रूप-रंग में छापी गई हैं। प्रत्येक पुस्तक का मूल्य केवल एक रुपया पचास पैसे। इन सुलभ, लाभप्रद तथा मनोरंजक पुस्तकों का अभाव किसी भी पुस्तकालय या घरेलू पुस्तक-संग्रह में खटक सकता है।

समरकन्द की सुन्दरी—श्री ब्रजेश्वर वर्मा एम० ए०

पृथ्वी का इतिहास—श्री सुरेन्द्र बालूपुरी

चक्रभेद—श्री महावीरप्रसाद गहमरी

सूरसंदर्भ—श्री नन्ददुलारे वाजपेयी

रामकृष्णचरितामृत—लल्लीप्रसाद पाण्डेय

मेरा संघर्ष—गणेशप्रसाद द्विवेदी, एम० ए०

दैनिक जीवन और मनोविज्ञान—
संशोधित संस्करण—इलाचन्द्र जोशी

वंशानुक्रमविज्ञान—शचीन्द्रनाथ सान्याल

सरस्वती सीरीज की आज भी सुलभ कुछ पुस्तकें

प्रत्येक का मूल्य केवल ७५ पैसे

ये पुस्तकें अल्प मूल्य में आपके मनोरंजन और ज्ञानवर्द्धन का अत्यंत सुगम आधार हैं

समस्या का हल
मृत्युलोक की झाँकी
लाल दूत
अनन्त की ओर
वंशानुक्रम विज्ञान
मशीन के पुर्जे
रूपान्तर
रूस की क्रान्ति
धरती माता
इत्सिंग की भारत-यात्रा
परलोक-रहस्य
लखनऊ की शहजादियाँ

घर का भेदिया
अग्रणी
नीमचमेली
जीवन-शक्ति का विकास
साथी
निष्कलंकिनी
पश्चिम की चुनी हुई कहानियाँ
समस्या
च्यांगकाई शेक
हिन्दी के निर्माता (दूसरा भाग)
तीन नगीने
पूर्व के पुराने हीरे

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
१—सम्पादकीय	.... २४९
२—गुरु मत्स्येन्द्रनाथ की योग-साधना—श्री दुर्गा-प्रसाद श्रीवास्तव, एम० ए०	.... २५७
३—महाकवि विद्यापति का एक पद--रूपा० श्री रमाकान्त राय "रमा" साहित्याचार्य	.... २६१
४--रामचरितमानस में शिव-काव्य--डा० राम-गोपाल शर्मा 'दिनेश'	.... २६३
५—'राम-प्रेम-पुर'—चित्रकूट से तुलसी का नाता—श्री रामप्यारे त्रिपाठी	.... २६९
६—गीत—डा० कमलाकान्त 'हीरक'	.... २७३
७—'रामचरितमानस' की धर्म-भावना—डा० राजेश्वरप्रसाद चतुर्वेदी	.... २७४
८—आज की हिन्दी कहानी की प्रमुख प्रवृत्तियाँ—एक संक्षिप्त सर्वेक्षण—डा० ओमप्रकाश गुप्त	२७९
९—सुकवि 'श्याम' का ब्रजकाव्य सौष्ठव—डा० कैलाशनाथ द्विवेदी	.... २८२
१०--चारणकवि दुरसा आढा की पीतल-मूर्ति—पं० चन्द्रकान्त बाली	.... २८४
११—निराशा के आवर्त में—श्री इन्दुभूषण जोशी 'किरण'	.... २८७
१२--जापानी कला में सरस्वती—अनु० श्री बाबू-राम वर्मा	....
१३—चातक और पपीहा—श्री राजेश्वरप्रसाद-नारायणसिंह	....
१४—मुगल सम्राट् शाहजहाँ का मयूर सिंहासन—'तख्ते ताऊस'—श्री परमानन्द पांचाल	....
१५—राकेट का स्वागत—श्री वासुदेव गोस्वामी	....
१६—बीज का मुक्ति गान—प्रो० सुरेशचन्द्र	....
१७—मुसलमानों में गुलामी—श्री राजेन्द्रप्रसाद जैन	....
१८—उदयाद्रि से अरुणाचल--श्री इन्दुशेखर	....
१९—जीवन-तृण—श्री वसन्त शर्मा	....
२०—सत्यमेव जयति—श्री निरंकुश	....
२१—जागृति-दूत—श्री विनोद शाही	....
२२—रजाई—अनु०—प्रो० आशानन्द बोहरा	....
२३—अनहोनी बात—श्री विजयलक्ष्मी 'विभा'	....
२४—नवीन प्रकाशन	....
२५—मनोरंजक संस्मरण	....
२६—१९१८ की सरस्वती—सम्पादकों और अनुवादकों का ऊधम—श्री बदरीनाथ भट्ट	....

© सरस्वती के इस अंक में प्रकाशित सभी लेख के अधिकार सुरक्षित हैं।

इतना तो आप जानते ही हैं कि—

तुलसी साहित्य अमृत का सागर है। भारतीय साहित्य की अमर निधि है। इस सुधा सिन्धु में अमूल्य रत्न भरे पड़े हैं। पर आज आपाधापी के इस व्यस्त युग में लोगों के पास इतना समय कहाँ कि नरदेह को सार्थक बनानेवाले वृहत् तुलसी साहित्य सागर में डुबकियाँ लगाकर इन रत्नों को खोजने के क्षण भी बचा पायें। चिन्ताओं के बोझ को उतार पायें। विद्वान् संकलनकर्ता ने बड़े परिश्रम से इन रत्नों को एक जगह इकट्ठा किया और गागर में सागर की उक्ति चरितार्थ की। उपयुक्त शीर्षक दिये। सूक्तियाँ और स्फुट पद अलग-अलग दिये और पुस्तक को सार्थक नाम दिया—

तुलसी रत्नावली

रामायण, विनयपत्रिका, कवितावली, गीतावली, वैराग्य सन्दीपनी, दोहावली अथवा गोस्वामीजी के अन्य छोटे-बड़े सभी ग्रन्थों में जहाँ जो रोचक, उपदेशपूर्ण पद मिले उन सबका चयन तुलसी रत्नावली में है, उपदेशक, विद्वान् या साधारण जन सबके लिए यह संकलन उपादेय है।

संकलनकर्ता—**श्री केदारनाथ गुप्त, एम० ए०** **मूल्य २·०० रुपये**

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गत ७ अप्रैल, ७३ को प्रधान मन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने सराँय वैरिहाखेड़ा-दौलतपुर (आचार्य द्विवेदी मार्ग) का उदघाटन किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

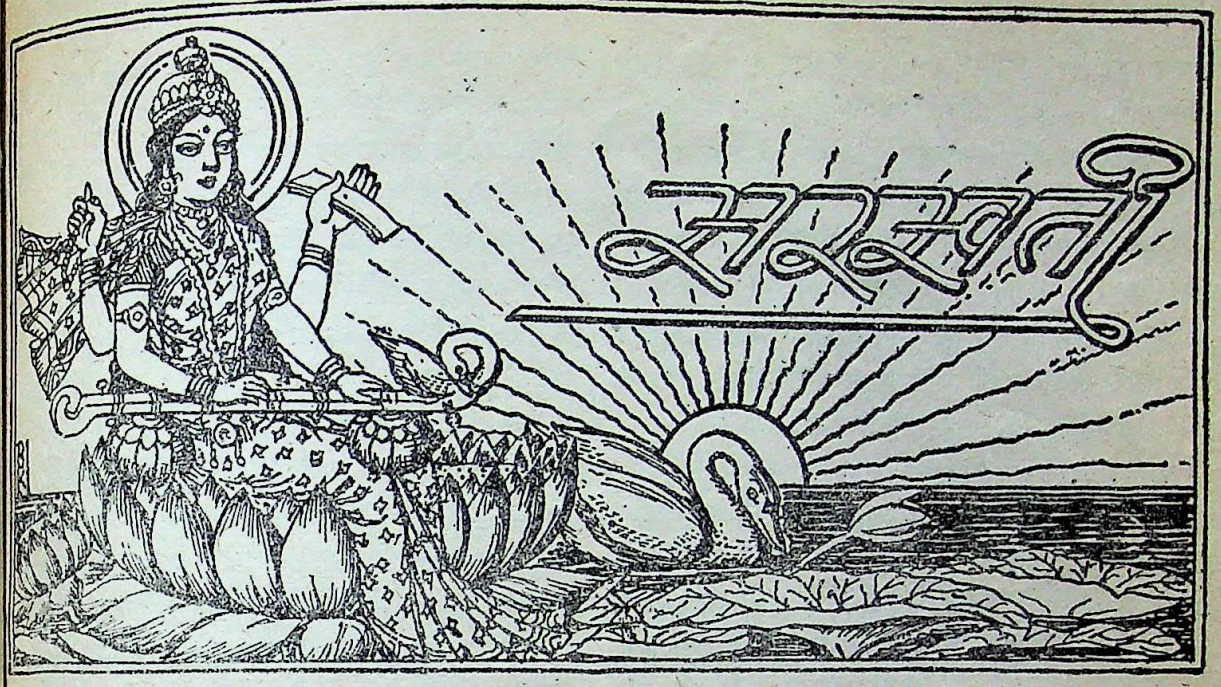

सम्पादक

श्रीनारायण चतुर्वेदी

सहायक सम्पादिका—शीला शर्मा

वर्ष ७४
पूर्ण संख्या ८८० | इलाहाबाद : अप्रैल १९७३ : चैत्र-बैसाख २०३० वि० | खण्ड १
संख्या ४

सम्पादकीय

जनाब आनन्दनारायण मुल्ला की स्याही की बूँद और बलिदानियों का रक्त—जनाब आनन्दनारायण मुल्ला इस समय शायद मुसलमानों से भी अधिक कट्टर उर्दू के हिमायती हैं। यह स्वाभाविक है कि उर्दू वाले उन्हें आसमान पर चढ़ाने का प्रयत्न करें। अभी हाल में उनका एक काव्य-संग्रह प्रकाशित हुआ जिसका नाम है 'स्याही की बूँद'। उसके विमोचन के लिए लखनऊ के रवीन्द्रालय में 'जश्न-ए-मुल्ला' के नाम से एक बड़ा शानदार जलसा किया गया—वह इतना शानदार था कि स्वयं प्रधान मन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी उसमें पधारीं और उन्होंने उसका विमोचन किया। मुख्य मन्त्री पंडित कमलापति त्रिपाठी ने भी उस अवसर पर ऐसी सलीस उर्दू में भाषण दिया कि जिसे सुन कर श्रोता चकित रह गये। पुस्तक विमोचन का इस अवसर का उपयोग जनाब मुल्ला की प्रशंसा ही में नहीं किया गया पर उर्दू की प्रचारात्मक प्रशंसा में भी किया गया। हमें इस पर कोई आपत्ति नहीं है। 'पुस्तक विमोचन' की विचित्र प्रथा इस क्षेत्र में प्रकाशकों द्वारा पुस्तक के, और लेखकों द्वारा अपने प्रचार के लिए आवश्यक समझी जाने लगी है। प्रचार के युग का यह एक सिद्धान्त है कि इतनी अधिक पुस्तकें निकलती हैं और लोग अपने कामों में इतने उलझे रहते हैं कि जब तक ढोल पीटकर किसी पुस्तक की ओर उनका ध्यान न दिलाया जाय, अपने गुण के कारण वह लोगों को आकर्षित नहीं कर पातीं। हमारा अनुभव ऐसा नहीं है। हम बड़े-बड़े लेखकों की भी कई पुस्तकों को जानते हैं जो 'विमोचन' के बावजूद नहीं 'चलीं'। न तुलसीदास की रामायण का विमोचन हुआ, न सूर के सूर-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सागर का, न गुप्तजी के 'साकेत' का न प्रसादजी की कामायनी का, न हरिऔध के प्रियप्रवास का, न गालिब की 'कुल्लियात' का और न अकबर इलाहाबादी के संकलन का।

किन्तु जैसा कि हमारे अनेक मित्र कहा करते हैं, युग के अनुसार मान्यताएँ बदलती रहती हैं और इस 'प्रोपगेंडा' और 'प्रचार' के युग में ग्रन्थ-विमोचन की मान्यता भी युगानुकूल मान्यता है। हमें वह निरीह मालूम होती है। यदि उससे प्रकाशक को व्यापार में कुछ सहायता मिलती और लेखक के 'अहं' की कुछ तुष्टि होती है, तो इस पर किसीको क्या आपत्ति हो सकती है? अतएव जनाब मुल्ला की 'स्याही की बूंद' का 'विमोचन' उत्सव वाजिब ही था। वह इतनी शान से हुआ, यह भी ठीक ही था क्योंकि जनाब मुल्ला हाईकोर्ट के भूतपूर्व जज हैं, संसद के सदस्य हैं, उर्दू एकाडमी के अध्यक्ष हैं और भारत में उर्दू के चोटी के हिमायती हैं। लखनऊ उर्दू का गढ़ समझा जाता है। इस समय भारत और उत्तरप्रदेश सरकार में उर्दू के प्रति विशेष प्रेम उत्पन्न हो गया है। जनाब मुल्ला लखनऊ में उर्दू के सबसे बड़े स्तम्भ हैं। अतएव यह उत्सव बहुत शानदार और उर्दू-प्रचार का एक बड़ा साधन बन गया।

मंच पर 'स्याही की बूंद' की एक शैर बड़े अक्षरों में प्रदर्शित की गयी थी। वह शैर यह है :

"ख़ूने शहीद से भी है क़ीमत में कुछ सिवा
फ़नकार के क़लम की सियाही की एक बूंद।"

(कलाकार की क़लम की स्याही की एक बूंद शहीदों—बलिदानियों के रक्त से भी कुछ अधिक मूल्यवान होती है।)

इस शैर से लोगों में व्यापक असन्तोष उत्पन्न हो गया क्योंकि इसमें उन्हें शहीदों का अपमान लगा और बहुतों ने इसकी कड़ी आलोचना की। इस वाद-विवाद में कुछ व्यक्तिगत बातें भी मिला दी गयीं, जैसे यह कहा गया कि काकोरी षड्यंत्र मुकदमे में, जिसमें चार क्रांतिकारियों को फाँसी और कितने ही को लम्बी कड़ी सजाएँ दी गयी थीं, उसके सरकार की ओर से वकील जनाब मुल्ला के 'वालिद माजिद' थे। इन असंगत बातों से मूल बात कर कोई प्रभाव नहीं पड़ता और हम उनकी चर्चा नहीं करेंगे।

जनाब मुल्ला ने इस व्यापक विरोध (जिसकी गूँज विधान सभा में भी सुनायी पड़ी) का उत्तर देते हुए अपना स्पष्टीकरण दिया है। उन्होंने अंग्रेजी में उसका जो अनुवाद दिया वह अनुवाद नहीं है, लीपापोती है। उन्होंने स्वीकार किया कि इस विषय पर दो मत हो सकते हैं कि 'विचारक' और 'शहीद' में किसे वरीयता मिलनी चाहिए। व्यक्तिगत रूप से उनके विचार में 'विचारक' का स्थान बलिदानी से ऊँचा है क्योंकि उन्हीं के शब्दों में "थिंकर्स हैव यूनिवर्सलिटी ह्वाइल मार्टिर्स आर इन्स्पाइर्ड बाई ए कण्ट्री ऑर ए काज दि स्कोप आफ़ दि लैटर इज़ लिमिटैड। दस, थिंकर्स हैं ए प्रिसिडैंस ओवर मार्टिर्स। हैड देयर बीन नो 'दि कैपिटल', देयर उड नॉट हैव बीन रंशन रिवोल्यूशन। (विचारकों में सार्वभौमिकता होती है जब कि शहीद किसी देश या किसी उद्देश्य विशेष से प्रेरित होते हैं। शहीद का क्षेत्र सीमित होता है। इसलिए विचारक शहीदों की अपेक्षा वरीयताप्राप्त हैं। यदि (मार्क्स ने) 'दि कैपिटल' नामक पुस्तक न लिखी होती तो रूस में क्रान्ति नहीं हुई होती।

पहिली बात तो यह है कि जनाब मुल्ला ने 'फ़नकार' शब्द के अर्थ गलत किये हैं। 'फ़नकार' उर्दू में उसी तरह नया गढ़ा गया शब्द है जिस प्रकार हिन्दी में 'कलाकार' (सर्जनात्मक साहित्य (कवि, नाटक, नर्तक, अभिनेता के लिए) प्रयोग में आने लगा है। 'फ़नकार' के अर्थ आधुनिक उर्दू में 'कलाकार' हैं, न कि 'विचारक' जैसे कि बचाव के वकील की पुरानी आदत के अनुसार उन्होंने उसके गलत अर्थ करके प्रस्तुत विषय और आक्षेप से कतराने की कोशिश की है। यदि 'फ़नकार' जनाब मुल्ला के अनुसार विचारक या दर्शनिक हैं तो पाणिनि, कपिल, पतंजलि ही नहीं चार्ल्स डारविन, फ्रायड और आइन्स्टाइन भी फ़नकार हैं। यह बात इतनी हास्यास्पद होगी कि लोग उसे हँस कर उड़ा देंगे। जनाब मुल्ला विचारक भी हो सकते हैं किन्तु 'स्याही की बूंद' दर्शनशास्त्र की पुस्तक नहीं कविता की पुस्तक है। उसमें वे विचारक के रूप में नहीं उर्दू के शायर के रूप में जनता के सामने आये हैं और इसी शायरी के बल पर उर्दू के शायरों में उनका स्थान है। भारत के विचारकों में उनका क्या स्थान है, यह हम नहीं सुना। वे 'लेफ्टिस्ट' हैं। उनके विचारों का रंग हल्का गुलाबी है या गहरा लाल—हम यह भी नहीं जानते किन्तु जश्ने-मुल्ला में शायर मुल्ला का अभिनन्दन हुआ उनकी शायरी की किताब का विमोचन हुआ था—न विचारक मुल्ला के किसी दार्शनिक और विचारपूर्ण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का। 'फ़नकार' और 'विचारक या दार्शनिक' को गलत मिला कर उन्होंने जनता को भ्रम में डालकर मुख्य प्रश्न को टालने का असफल प्रयत्न किया है।

हमारे कहने का तात्पर्य यह नहीं है कि काव्य, उपन्यास या नाटक में विचार होते ही नहीं। ये तो उच्च कला के माध्यम हैं। लोगों को हिला देने और आन्दोलित करने का काम तो कभी-कभी बड़ी सफलता से कार्टून बनानेवाले या हास्य या व्यंग्य के लेखक भी कर देते हैं। वे भी 'फ़नकार' हैं न कि विचारक और दार्शनिक। और न हर 'फ़नकार' या 'विचारक' संसार को आन्दोलित ही कर सकता है। इकबाल बड़े ऊँचे 'फ़नकार' थे, किन्तु वे दार्शनिक और विचारक भी थे और उन्होंने 'पाकिस्तान' का विचार दिया। क्या फ़नकार मुल्ला फ़नकार इकबाल के पाकिस्तान के 'आइडिया' को 'यूनिवर्सल' मानते हैं? वह संकुचित नहीं हैं? फ़नकार जनाब मुल्ला ने दुनिया या भारत को हिलाने की बात तो दूर, उत्तरप्रदेश या लखनऊ नगर को ही अपनी फ़नकारी से हिलाने का करिश्मा अभी तक नहीं दिखाया। हम व्यास, वाल्मीकि, तुलसी, नानक, कबीर, शंकराचार्य आदि को संत मानते हैं न कि फ़नकार। उनके 'संतत्व' ने अवश्य जनता और देश को आन्दोलित किया—जो सैकड़ों ज़ौक, मीर, सौदा, देव, बिहारी या मतिराम जैसे 'फ़नकार' नहीं कर सके।

संभव है कि किसी 'फ़नकार' (जैसे बन्देमातरम् और झंडा ऊँचा रहे हमारा के लेखक) की कोई रचना जनता के हृदय को आन्दोलित करनेवाली हो और उसका बड़ा मूल्य हो। किन्तु हर 'फ़नकार' की हर रचना मूल्यवान नहीं होती। बहुधा वह थोड़ी देर के मनोरंजन के बाद भुला दी जाती है और राष्ट्र तथा समाज पर उसका दैनिक समाचार-पत्र के समाचारों से अधिक प्रभाव नहीं रह जाता। कभी-कभी तो इन 'फ़नकारों' की कृतियाँ स्पष्ट रूप से अशिव भी हो सकती हैं, किन्तु शहीदों के खून की एक-एक बूँद उच्च आदर्शों पर सर्वोच्च बलिदान का प्रमाण है जो सामान्यरूप से हृदयहीन व्यक्ति को भी हिला देती है। 'लेफ्टिस्ट' जनाब मुल्ला की निगाह में देशभक्ति या देश के लिए बलिदान संकुचित या सीमित आदर्श है। किन्तु जो मानवतावाद की हवाई बातें करता है, जो अपने जीवन के व्यक्तिगत सुख-समृद्धि को सर्वोच्च प्राथमिकता देता है, जनाब मुल्ला साहब की निगाह में, अपने देश के लिए सर्वोच्च बलिदान देने वाले शहीद के रक्त से अधिक कीमत का है! उनकी निगाह में भगतसिंह, चंद्रशेखर आजाद, बिस्मिल, अश्फाक के बलिदानी रक्त की बूँद, उनके समान 'मानवतावादी' फ़नकार की कलम की स्याही की एक बूँद के सामने हेय है!

भारत, पोलैण्ड, आयरलैण्ड, इटली, ग्रीस आदि के उन शहीदों को जाने दीजिए जिन्होंने अपने देश की मानव-स्वतंत्रता के लिए स्वेच्छा से और खुशी-खुशी अपना रक्त बहाया क्योंकि, बक़ौल फ़नकार मुल्ला के, उनका प्रेरणास्रोत संकुचित था। किंतु ईसा मसीह के बलिदान की, उनके प्राणोत्सर्ग के समय उनके हाथ-पाँवों में ठुकी कीलों से निकलते रक्तप्रवाह की बूँदों को वे अपनी 'स्याही की बूँद' के मुकाबले कहाँ रखेंगे? क्या जनाब मुल्ला शहीद हजरत ईसामसीह से भी अधिक 'विशाल हृदय', 'मानवतावादी' और 'यूनिवर्सल' हैं? गांधी, सुकरात, सरमद आदि कितने ही ऐसे और उदाहरण दिये जा सकते हैं।

जनाब मुल्ला ने इस पंक्ति से, अपनी अहमन्यता के कारण अगणित देशवासियों के हृदय को दुखाया है। विडम्बना यह है कि वे अब भी इसे अनुभव नहीं कर रहे। पर हम शायर मुल्ला की शायरी की बातों को महत्त्व देना इसलिए आवश्यक नहीं समझते क्योंकि हमने शेक्सपियर की (भला उससे अधिक कवियों की नस कौन पहचान सकता था) ये पंक्तियाँ विद्यार्थी जीवन में पढ़ी थीं—

The lover, the lunatic and the poet
All of imagination compact.

शेक्सपियर ने आशिकों, पागलों और शायरों को एक कोटि में रख दिया है। यदि शेक्सपियर की फ़नकारों (शायरों) के बारे में दी गई राय में किसी को शक हो तो वह फ़नकार मुल्ला के एक पूर्वज फ़नकार की इस शैर से जान जायगा कि शेक्सपियर कितना सही था, और वास्तव में ये फ़नकार विचारकों को वास्तव में क्या समझते हैं:

इक तिफ़्ल दबिस्ताँ है फ़लातूँ मेरे आगे
क्या ताब कि अरस्तूँ भी कुरे चूँ मेरे आगे!

बाबा तुलसीदास भी एक दूसरे संदर्भ में लिख गये हैं: "तुलसी बुरा न मानिये जो·····कहि जाय।"

शायर मुल्ला की 'स्याही की बूँद' ने चाहे और कुछ न किया हो, अनेक देशवासियों की निगाह में उनके कृतित्व पर स्याही अवश्य फेर दी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुद्धिजीवियों को निमंत्रण—केन्द्रीय मंत्री श्री उमाशंकर दीक्षित ने कानपुर में अपने एक भाषण में बुद्धिजीवियों को निमंत्रित किया है कि वे देश की समस्याओं और विशेषकर शिक्षा के सुधार में सरकार का सहयोग करें। यह एक अनोखा निमंत्रण और ताजगी लानेवाली बात है। कांग्रेस ने अभी तक बुद्धिजीवियों की उपेक्षा ही की है। चुनाव के अभ्यर्थी चुनते समय उसके सामने आरम्भ में एकमात्र योग्यता स्वतंत्रता आन्दोलन में जेल जाना था। उसके बाद चुनाव-क्षेत्र में अधिक संख्या में बसनेवाली जातियों और उपजातियों के लोगों को जो कांग्रेस के सदस्य हो जायँ वरीयता दी जाने लगी। कांग्रेस की धन से सहायता करने वाले कुछ पूँजीपतियों की भी घुसपैठ होने लगी। कांग्रेस बुद्धिजीवियों की कितनी कद्र करती है इसका एक ज्वलंत उदाहरण उत्तरप्रदेश में मिलता है। राज्यपरिषद् (उच्च सदन में) कुछ सदस्य सरकार द्वारा नामित होते हैं। आरम्भ में उसमें एक हिन्दी का साहित्यकार और एक संस्कृत का विद्वान् नामित किया जाता था। स्व० पंडित अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी, श्रीमती महादेवी वर्मा और स्व० कृष्णदेवप्रसाद गौड़ हिन्दी साहित्यकार के रूप में नामित हुए। संस्कृत विद्वानों में अंतिम व्यक्ति जो नामित हुए वे थे स्व० पंडित रामाज्ञा पांडे। उसके बाद यह क्रम बंद कर दिया गया। अंग्रेजी के दो पत्रकार नामित किये गये। उर्दू का भी एक कांग्रेसी पत्रकार नामित किया गया किन्तु हिन्दी और संस्कृत के साहित्यकारों और संस्कृत के विद्वानों का बहिष्कार कर दिया गया। अंग्रेजी पत्रकारों में एक स्वतंत्र किन्तु प्रभावशाली पत्रकार और दूसरे कांग्रेसी पत्रकार नामित किये गये। जो लोग नामित किये जाते हैं उनकी संख्या ६ है। वे अधिकतर 'कमिटेड' कांग्रेसी होते हैं। यह है कांग्रेस सरकार द्वारा 'बुद्धिजीवियों' के सहयोग और उनकी 'बुद्धि' से लाभ उठाने का तरीका। और इस पर भी श्री दीक्षित बुद्धिजीवियों को सहयोग का निमंत्रण देते हैं।

कोई बुद्धिजीवी यदि वह अपने प्रति ईमानदार है तो आँख बंद करके सरकार की हर बात का समर्थन नहीं कर सकता किन्तु जब सरकार सदस्यों पर प्रतिबद्धता (कमिटेड होने) की शर्त लगाती है तब कोई स्वाभिमानी और स्वतंत्रचेता अपने को प्रतिबद्ध करना स्वीकार न करेगा। श्री दीक्षित भी उन्हीं बुद्धिजीवियों को चाहते हैं जो सरकार की समाजवादी नीतियों का समर्थन और प्रचार करें। इस देश में 'समाजवाद' एक नारा बनकर रह गया है। हम कितने ही 'समाजवादी' और तथाकथित सैक्युलर कांग्रेसियों को जानते हैं जो निजी जीवन और व्यक्तिगत विश्वासों में दूसरे 'अप्रतिबद्ध' लोगों से भिन्न नहीं हैं किन्तु वे 'समाजवाद' और 'सैक्युलर' के नारे चिल्लाने में काफी तेज हैं। फिर जितने लोग 'समाजवाद' का नारा लगाते हैं उनकी समाजवाद की धारणा भी एक सी नहीं है क्योंकि वह 'नारा' मात्र है। समाजवाद और कम्यूनिज़्म में बड़ा सूक्ष्म भेद है। इस भेद को समझना हर एक का काम नहीं है। इसीलिए कांग्रेस में आज जाने-माने कम्यूनिस्ट 'समाजवाद' के प्रशस्तद्वार से उसमें घुस गये हैं और वह 'पिंक' (हलके लाल रंग) से दिनोंदिन चटक लाल होती जा रही है। राष्ट्रीयकरण, निजी व्यापार की समाप्ति, प्रत्येक नागरिक को सरकार का वेतनभोगी नौकर बनाना, उसके जीवन (उसके खाने-पीने से लेकर उसके कपड़ों तक) का नियंत्रण करना वे चीजें हैं जो कम्यूनिज़्म की ओर देश को ले जा रही हैं और यह सब 'समाजवाद' के नाम पर। कहा जाता है कि भारतीय समाजवाद अन्य देशों के समाजवाद से भिन्न है, किन्तु उस 'भारतीय समाजवाद' की प्रामाणिक और स्पष्ट व्याख्या (ऐसी जो हमारी तरह के राजनीति से दूर रहनेवाले सामान्य नागरिक सरलता से समझ सकें) हमें आज तक कहीं देखने या पढ़ने को नहीं मिली। जितने नेता, उतनी ही समाजवाद की व्याख्याएँ। प्रतिवद्धता (कमिटेड) होने का एक ही अर्थ रह गया है और वह यह कि जो भी सरकार या शक्ति में रहने वाला दल निश्चय करे उसका आँख मूँदकर समर्थन। ऐसी दशा में स्वतंत्र विचार वाले बुद्धिजीवियों का कांग्रेस में क्या स्थान है?

श्री दीक्षित ने यह भी कहा है कि शिक्षानीति में परिवर्तन की माँग तो की जाती है, लेकिन यह नहीं बताया जाता कि परिवर्तन क्या हो। बुद्धिजीवियों को चाहिए कि वे सारे प्रश्न पर विचार करके प्राइमरी से लेकर विश्वविद्यालय स्तर तक की शिक्षा के सुधार के उपाय बतावें। एक ओर तो सरकार शिक्षा को अपने पूरे अधिकार में लेने की कार्रवाई कर रही है (लखनऊ विश्वविद्यालय के 'पुनर्गठन' का प्रस्तावित विधेयक इसका प्रमाण है), प्राइमरी शिक्षा का सरकारीकरण हो ही गया है और शायद वह दिन दूर नहीं कि जब माध्यमिक शिक्षा भी सरकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिकार में ले लेवे। उनको और उनकी नीतियों को नेताशाही और नौकरशाही (जिनका शिक्षा की सूक्ष्म बातों से उतना ही संबंध है जितना पटवारी का स्कूल से) संचालित करेंगी। शिक्षक और शिक्षाशास्त्री यदि जीवित रहना चाहते हैं तो उन्हें सरकार का 'मोस्ट ओबिडियन्ट और हम्बल सर्वेण्ट (अत्यन्त आज्ञाकारी और विनम्र नौकर) होकर रहना होगा। नये शिक्षा-सम्बन्धी प्रयोगों, चरित्र-निर्माण की योजनाओं की इन लाल फीताशाही में बँधे नौकरशाहों (जो आज शिक्षा सचिव हैं तो कल कलक्टर या कमिश्नर पद को सुशोभित करेंगे) के संचालन में क्या गुंजाइश हो सकती है, इसे समझने के लिए बहुत कल्पना की आवश्यकता नहीं है। एक समय फ्रांस में इसीप्रकार सरकार द्वारा शिक्षा का संचालन होता था। एक बार वहाँके शिक्षा-मंत्री ने बड़े गर्व से कहा था कि मैं बतला सकता हूँ कि इस समय फ्रांस के सारे स्कूलों की अमुक कक्षा में अमुक विषय का अमुक पाठ पढ़ाया जा रहा है। हमारी सरकार तो इतनी कुशल और दक्ष भी नहीं है कि वह यह भी कर सके।

भारत ने अपनी पुरानी शिक्षा-प्रणाली मैकाले के बाद छोड़ दी और यहाँ वही शिक्षा-प्रणाली चल रही है जो इंग्लैण्ड या योरप या अमरीका में चलती है। प्रायः वे ही पाठ्यक्रम हैं, वैसी ही परीक्षाएँ हैं। हमारे विश्वविद्यालय लंदन विश्वविद्यालय की नकल करके बनाये गये। हाल में अमरीका की नकल में हमारे अनेक विश्वविद्यालयों ने 'सेमिस्टर सिस्टम' भी चला दिया है। हमारी शिक्षा-प्रणाली पश्चिम की शिक्षा-प्रणाली की 'कार्बन कॉपी' है। उसमें भारतीयता का लेश नहीं है। वे ही विषय, वे ही या वैसी ही पुस्तकें, वैसी ही प्रयोगशालाएँ, वैसे ही दीक्षान्त समारोह, वैसी है यूनियनें—सब कुछ नक़ल। भेद क्या है? जो असल और नक़ल में होता है। वहाँ प्रथम श्रेणी के मेधावी लोग, दरिद्रता का वरण करके शास्त्र और ज्ञान से प्रेम होने के कारण अपना जीवन शिक्षा को समर्पित करते हैं। यहाँ वह एक आराम का अच्छी आमदनीवाला सुखकर 'जॉब' है। आज के प्राध्यापकों या अध्यापकों में कितने ऐसे हैं जिन्होंने मेधावी होने पर भी दूसरी अधिक रोबीली और अधिक रुपये देनेवाली नौकरियों को ठोकर मारकर शिक्षा का प्रथम वरण किया? फिर, यहाँ 'उन्नति' योग्यता पर नहीं, अधिकारियों की कृपा अथवा जातीय अथवा अन्य प्रकार की दलबन्दी पर निर्भर है। लन्दन में जब डाक्टर रामप्रसाद त्रिपाठी हमारे साथ शिक्षा ले रहे थे (हम किंग्स कालिज में थे और वे लन्दन स्कूल आफ इकनामिक्स में) तब एक बार उन्हें यह जानने की उत्सुकता हुई कि लन्दन विश्वविद्यालय के कुलपति और उपकुलपति कौन हैं। यह उन्होंने अपने प्रोफेसर लास्की से पूछा तो वे हँस दिये। बोले, तुम्हें उनसे क्या लेना-देना है? प्रोफेसर लास्की स्वयं कभी कुलपति या उपकुलपति से नहीं मिलते थे—उन औपचारिक अवसरों को छोड़कर जब उनका उन समारोहों में भाग लेना अनिवार्य था जिनमें वे भी आते थे। यहाँ तो प्राध्यापकों में उपकुलपति की हाजिरी बजाने की होड़ है। और उपकुलपति भी इसे प्रोत्साहन देते हैं क्योंकि इससे उनका रोब और शान बढ़ती है।

अंग्रेजों ने अपने स्कूलों में और विश्वविद्यालयों में भी जो शिक्षा-प्रणाली चलायी और चला रहे हैं उसे वे 'लिबरल ऐजूकेशन' (उदार शिक्षा) कहते हैं। उसका ध्येय विद्यार्थी की बहुमुखी और समग्र उन्नति तथा उसकी निहित योग्यता को विकसित करना है। वहाँ विद्यार्थियों से कस कर काम लिया जाता और खेलों पर भी उतना ही बल दिया जाता है जितना पढ़ाई पर। इसीलिए किसी ने कहा था कि "वाटरलू की लड़ाई ईटन और हैरो के खेल के मैदानों में जीती गयी थी।" बालक में तीन अंगों की शिक्षा देनी आवश्यक है जिसे अंग्रेजी में कहते हैं—"हैड, हार्ट और हैण्ड" (मस्तिष्क, हृदय और हाथ)। मस्तिष्क की शिक्षा के लिए 'आवश्यक' विषयों के अतिरिक्त ऐसे कठिन विषय भी पढ़ाये जाते हैं जैसे ग्रीक, लैटिन, उच्च गणित जो विद्यार्थियों को लोहे के चने मालूम होते हैं। शायद जीवन में उनका कभी 'उपयोग' भी नहीं होता, किन्तु इनसे यह लाभ होता है कि विद्यार्थियों को अरुचिकर और कठिन काम में जी लगाने और उसे पूरा करने का अभ्यास हो जाता है। हमारे देश में इसका उल्टा है। मा-बाप सोचते हैं कि परीक्षा पास करने को कौन से विषय आसान हैं या बच्चे की रुचि किस विषय में है। इसीलिए बड़े होने पर जब वे अधिकारी या बाबू होते हैं तो कठिन और उलझी हुई फाइलों को टालते रहते हैं जिससे सामान्य प्रकरणों के निर्णय में यदि वर्षों नहीं, तो महीनों तो लग ही जाते हैं। हृदय की शिक्षा के लिए काव्य, चित्रकला और संगीत सिखाया जाता है तथा विद्यार्थियों को एक साथ रखा जाता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है जिससे वे सभी तरह के लड़कों के साथ रहने और उनके साथ सौहार्द स्थापन की शिक्षा पा सकें। हाथ की शिक्षा के लिए जहाँ बढ़ईगीरी या लोहारी नहीं भी सिखाई जाती, वहाँ भी लड़कों में रचनात्मक 'हॉबियों' को प्रोत्साहन दिया जाता है।

यही शिक्षा-प्रणाली जो भारत में है—छोटे-मोटे परिवर्तनों के साथ—सारे संसार में प्रचलित हैं। वह भारतीय आविष्कार नहीं है। वह यहाँ क्यों सफल नहीं है? इसके उत्तरदायी नेता, नौकरशाह और वे प्राध्यापक या अध्यापक हैं जो और बेहतर नौकरी न पाने के कारण विवश होकर इस पेशे में आ गये हैं पर जिनका हृदय उसमें नहीं है। इस देश की विशेषताएँ—जातिवाद, दलबन्दी, अफसरों की चापलूसी से असमय पदोन्नति, बाबूशाही, प्राध्यापकों से क्लर्क का बहुत-सा काम लेना, उनका समय अनेक समितियों में नष्ट करना, परीक्षक होकर रुपया कमाने की आपाधापी, पाठ्य-पुस्तकें लिखकर रुपया कमाना, दिल्ली और लखनऊ में लाभदायक सम्पर्क, राजनीतिक दलों का शिक्षा में हस्तक्षेप आदि अनेक कारण हैं। सरकार ने शिक्षा के सुधार के लिए आधे दर्जन आयोग बनाये, किन्तु उनकी रिपोर्टों और सिफारिशों पर क्या कार्रवाई की? हाँ, जहाँ राजनीतिक कारणों से कार्रवाई करना आवश्यक समझा वहाँ उसमें विद्युत्चालित तेजी आ गयी, जैसे, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में।

हमारे स्कूलों और विश्वविद्यालयों की सबसे बड़ी कमी यह है कि वहाँ 'एकडेमिक एटमास्फियर' (शैक्षणिक वातावरण) नहीं बन पाता। इसके कहीं-कहीं ही—बहुत कम—अपवाद हैं। किन्तु जब प्रोफेसर ऐसे हों जो ज्ञानपिपासु नहीं हैं, केवल विवशता से विश्वविद्यालय में आ गये हैं, जहाँ प्रोफेसर इस बात की चेष्टा में रहें कि राजनीतिक अधिकारियों को प्रसन्न कर दूसरे बड़े पदों पर पहुँच जायँ, जहाँ उपकुलपति के पद पर आई० सी० एस०, आई० ए० एस०, जनरल, चुनाव में हारे राजनीतिज्ञ नियुक्त किये जायँ, जहाँ विद्यार्थियों के सामने प्रोफेसर और अधिकारी स्वार्थपरता, दलबन्दी के उदाहरण रखें, वहाँ शिक्षा की उन्नति और सुधार करने की बात नारेबाजी और समस्या को टालना मात्र है। आज का विद्यार्थी 'अनुशासनहीनता' के लिए बदनाम कर दिया गया है (और इन्हें अनुशासनहीन राजनीतिज्ञों ने बनाया है) पर हमने इन्हीं 'अनुशासनहीन' विद्यार्थियों में कितनों को उन प्राध्यापकों का हार्दिक आदर करते ही नहीं, उनका चरण-स्पर्श करते भी देखा है जो चरित्रवान् हैं, विद्यार्थियों के हितचिन्तक और ज्ञान और अध्यापन में निष्णात और कर्तव्यपरायण हैं। भला सच्चे अध्यापकों और बुद्धिजीवियों को इससे अधिक और सम्मान क्या हो सकता है!

किन्तु केन्द्रीय मन्त्री श्री दीक्षित सभी बुद्धिजीवियों का सहयोग नहीं चाहते। ये केवल अपने विचारवाले बुद्धिजीवियों का सहयोग चाहते हैं जो उनके विचारों को बुद्धिवाद का जामा पहना कर जनता के गले उतारने में उनकी सहायता कर सकें। स्वतन्त्र चिन्तन करनेवाले बुद्धिजीवी न उनके काम के हैं और न वे उनका स्वागत ही करेंगे। प्रतिबद्ध बुद्धिजीवियों को इस निमंत्रण से लाभ उठाने में न चूकना चाहिए।

तुलसी इन सों बोलिये इन सों मिलिये धाय,
ना जाने सम्पर्क सों एस० एल० ए० बनि जाय!

स्वतन्त्रचेता और स्वाभिमानी अप्रतिबद्ध बुद्धिजीवी के लिए स्वतन्त्र भारत में एक ही स्थान है—रद्दी की टोकरी।

हिन्दी के लिए एक अप्रत्याशित उत्साहवर्द्धक घटना—वैसे, ऊपर से, इस समय राष्ट्रभाषा हिन्दी के लिए स्थिति उत्साहवर्द्धक नहीं है। कहा जाता है कि बंगाल और तमिलनाडु में उसका घोर विरोध है। हम स्वयं किसी पर हिन्दी 'थोपने' के विरुद्ध हैं। किन्तु हमसे बारबार यही कहा जाता है कि तमिलनाडु के लोग बड़े हिन्दी-विरोधी हैं। इसलिए नीचे का समाचार पढ़कर हमें साश्चर्य प्रसन्नता हुई।

भारतीय विमान सेवा बिल्कुल अंग्रेजी ढाँचे पर ढाली गयी है। यदि उसमें कहीं भारतीयता का कुछ 'छींटा' है तो 'एयर होस्टैस' (परिचारिकाकार्यों) की साड़ी। किन्तु ये 'एयर होस्टैस' भी सामान्यतः अंग्रेजी ही बोलती हैं और यदि वे कभी हिन्दी में बोलने को विवश हो जाती हैं तो प्रायः उनकी हिन्दी का उच्चारण, व्याकरण आदि विदेशियों सा, या उनसे भी बदतर होता है। घटना बम्बई के सान्ताक्रूज विमान-अड्डे की है। बम्बई से दिल्ली जाने वाला एक विमान उड़ने को तैयार था। उस समय विमान के अधिकारियों और एयर होस्टैस ने देखा कि विमान पर चढ़ने की सीढ़ी के पास एक सूटकेस (चमड़े का बक्स) पड़ा है जो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी यात्री का है। आजकल विमान अपहरण और बक्सों में हथियार ले जाने की आशंका से जब तक उस सूटकेस के स्वामी का पता नहीं लगा लिया जाता तब तक वह विमान पर चढ़ाया नहीं जा सकता। एयर होस्टेस ने अंग्रेजी में कई बार घोषणा की कि जिस यात्री का वह सूटकेस हो वह तुरन्त आकर उसे ले जाय। किन्तु कोई यात्री न बोला। देर हो रही थी, और उस सूटकेस का कोई दावेदार आगे नहीं आ रहा था, इसलिए विमान के कप्तान ने घोषणा की कि वह अब रुक नहीं सकता क्योंकि विदा होने का समय हो गया है और वह सूटकेस को वहीं पर छोड़ जायगा।

तुरन्त ही एक उत्तेजित यात्री खड़ा हो गया। उसने पहिले अपना नाम बताया जो विशुद्ध तमिल भाषा का था। उसके बाद उसने कहा—"यह सूटकेस मेरा है। किन्तु मैं अभी तक इसलिए चुप रहा कि तुम लोग अब तक सारी घोषणाएँ केवल अंग्रेजी में करते रहे हो। तुम यह भूल गये कि तुम्हें ये घोषणाएँ राष्ट्रभाषा में भी दुहरानी थीं।"

उस अज्ञात राष्ट्रभाषा प्रेमी और भारतीय संविधान के सम्मान करने वाले तमिल भाई के प्रति श्रद्धा और अभिवादन में हमारा मस्तक नत है। राष्ट्रभाषा के भविष्य में हमें निराश होने की आवश्यकता नहीं। यह राष्ट्र और राष्ट्रभाषा प्रेम चिरजीवी हो!

ज्ञानपीठ का लखटकिया पुरस्कार श्री 'दिनकर'जी को—हमें यह जानकर परम प्रसन्नता हुई कि इस वर्ष का ज्ञानपीठ का एक लाख रुपये का पुरस्कार हमारे मित्र और हिन्दी के गौरव पद्मभूषण डाक्टर रामधारी सिंह 'दिनकर' को मिला है। यह उन्हें उनके 'उर्वशी' नामक काव्य पर मिला है। उर्वशी बहुत ऊँचे दर्जे का काव्य है। हमने सुना था कि 'विद्यावतां भागवते परीक्षा।' उसी प्रकार उर्वशी भी हिन्दी काव्य मर्मज्ञों के लिए चुनौती है। अब 'समीक्षाएँ' तो निकलती हैं, पर 'टीकाएँ' लिखने का साहस विद्वानों को नहीं होता, और 'उर्वशी' इतना गहन और ऊँचा काव्य है कि बिना गुरुमुख से पढ़े—या बिना अच्छी टीका के उसका आनन्द और आशय ठीक तरह समझ में नहीं आता। हमने उसे पढ़ा है। उसकी भाषा, प्रवाह, शैली और समस्या पर हम मोहित हैं किन्तु यह दावा नहीं कर सकते कि हम उसे ठीक तरह से समझ पाये हैं। ऐसे महत्त्वपूर्ण और उच्च श्रेणी के काव्य को पुरस्कृत कर ज्ञानपीठ ने अपनी गुणग्राहकता का परिचय दिया है। सरस्वती उसे और 'दिनकर'जी को इस अवसर पर हार्दिक बधाई देती है। हमने व्यक्तिगत रूप से अपनी बधाई उन्हें इन दो पंक्तियों में भेजी है—

लक्ष्यपति तुम सव्यसाची के सदृश कब से रहे हो,
धन्य देवी उर्वशी, जो लखपती भी बन गये हो!

उर्वशी से हिन्दी काव्य का मस्तक सारे देश में ऊँचा होगा। दिनकरजी को हमारी पुनः हार्दिक बधाई।

डॉ० धीरेन्द्र वर्मा का निधन—हमें अपने पाठकों को यह समाचार देने में अत्यन्त दुःख होता है कि डा० धीरेन्द्र वर्मा की मृत्यु इलाहाबाद में उनके एलेनगंज स्थित निवासस्थान पर २३ अप्रैल को अपराह्न में हो गयी। उनकी आयु ७६ वर्ष की थी। डॉ० वर्मा का जन्म १७ मई १८९७ ई० में बरेली में हुआ था। डॉ० वर्मा सक्सेना कायस्थ थे। आपके पितामह शैव थे किन्तु वर्माजी के पिता दयानन्द सरस्वती के प्रभाव में आकर आर्यसमाजी हो गये। डॉ० वर्मा अपने पिता के एकमात्र पुत्र थे। आपके पिता का संस्कृत एवं हिन्दी से अत्यधिक अनुराग था। ये सुसंस्कृत व्यक्ति थे। वे प्रायः कहा करते थे कि उनका परिवार गौड़ ब्राह्मण से कायस्थ हुआ था।

डॉ० वर्मा के पिता ने अपने पुत्र को उच्च अध्ययन के लिए इलाहाबाद भेजा। यहीं से डॉ० वर्मा ने १९२१ में वैदिक वर्ग से संस्कृत में एम० ए० किया। जुलाई सन् १९२४ में जब इलाहाबाद युनिवर्सिटी का नवीन रूप में संगठन हुआ और हिन्दी का विभाग स्वतंत्ररूप से पुनर्गठित हुआ तो डॉ० वर्मा हिन्दी के प्रथम व्याख्याता नियुक्त हुए। इसप्रकार प्रयाग विश्वविद्यालय में हिन्दी अध्ययन एवं अध्यापन-परम्परा को समारम्भ करनेवाले आप प्रथम व्यक्ति थे। सन् १९३४ में डॉ० वर्मा पेरिस गये और वहाँ ब्रजभाषा पर अधिनिबन्ध लिखकर उन्होंने डी० लिट्० की उपाधि प्राप्त की। सन् १९४६ में आप प्रयाग विश्वविद्यालय में हिन्दी के अध्यक्ष (प्रोफेसर) नियुक्त हुए और मार्च सन् १९५९ में यहींसे अवकाश ग्रहण किया। इसप्रकार उन्हें हिन्दी विभाग को इच्छानुसार मोड़ देने का ३५ वर्ष का दीर्घकाल मिला, और नये कालिजों में उनके विद्यार्थियों ने उन्हींकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रणाली पर चलकर उसे सारे देश में फैला दिया। इसके बाद डॉ० वर्मा नागरी-प्रचारिणी-सभा में विश्वकोष के सम्पादक हुए। वे कुछ दिनों तक सागर विश्वविद्यालय में भाषाविज्ञान के प्रोफेसर भी रहे। वहाँ उनके मित्र और सहपाठी पं० द्वारकाप्रसाद मिश्र उस समय उपकुलपति थे। अन्त में उनकी नियुक्ति जबलपुर विश्वविद्यालय के उप-कुलपति-पद पर हुई। वहाँ तीन वर्ष का कार्यकाल सम्पन्न कर उन्होंने अवकाश ग्रहण किया और पुनः अपने घर प्रयाग लौट आये।

प्रयाग विश्वविद्यालय में, हिन्दी के उच्च अध्ययन एवं अनुसन्धान को उसकी वर्तमान दिशा देने का वास्तविक श्रेय डॉ० वर्मा को ही है। प्रयाग से पूर्व कलकत्ता एवं बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में हिन्दी विभागों का समारम्भ हो चुका था। हिन्दू युनिवर्सिटी के प्रथम अध्यक्ष डॉ० श्याम-सुंदर 'दास' थे। इसके बाद पं० रामचन्द्र शुक्ल तथा पं० केशवप्रसाद मिश्र वहाँ के अध्यक्ष हुए। प्रयाग विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग को आधुनिक तथा सुसंगठित रूप देने के लिए उन्होंने डॉ० श्यामसुंदरदास एवं आचार्य शुक्ल से भी सहायता ली। डॉ० वर्मा भाषाविज्ञान के भी विशेषज्ञ थे। प्रयाग विश्वविद्यालय में आपने प्राचीन साहित्य, संस्कृति एवं भाषाविज्ञान पर अनेक शोध प्रबन्ध तैयार कराये। एम० ए० के पाठ्यक्रम में संस्कृत तथा पालि, प्राकृत तथा अपभ्रंश, लोकसाहित्य एवं हिन्दी की विविध बोलियों तथा पाठालोचन को निर्धारित कर हिन्दी के अध्ययन को आधुनातन एवं विशद बनाया।

वे हिन्दी के कट्टर समर्थक थे और 'मध्यदेश' (हिन्दी क्षेत्र) के भाषायी एकीकरण के पक्षपाती थे। उन्होंने अनेक पुस्तकें भी लिखीं जिनमें 'हिन्दी राष्ट्र', 'अष्टछाप', 'ग्रामीण हिन्दी', 'हिन्दी भाषा और लिपि', 'यूरोप के पत्र', 'हिन्दी भाषा का इतिहास' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। वे कई वर्ष तक हिन्दुस्तानी एकेडमी के सचिव भी रहे। भारतीय विश्वविद्यालयों के हिन्दी अध्यापकों का उन्होंने एक संगठन बनाया जो 'भारतीय हिन्दी परिषद्' के नाम से विख्यात है। उनके संचालन में वह एक क्रियाशील संस्था बन गयी है। वे मितभाषी और व्यवहार में बड़े शिष्ट थे। इधर कई वर्षों से उनका स्वास्थ्य गिर गया था और उन्हें दमा का रोग हो गया था।

डॉ० वर्मा के निधन से हिन्दी जगत् की अपूरणीय क्षति हुई है। हम उनके परिवार के प्रति अपनी हार्दिक समवेदना प्रकट करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वर्गीय डॉ० धीरेन्द्र वर्मा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

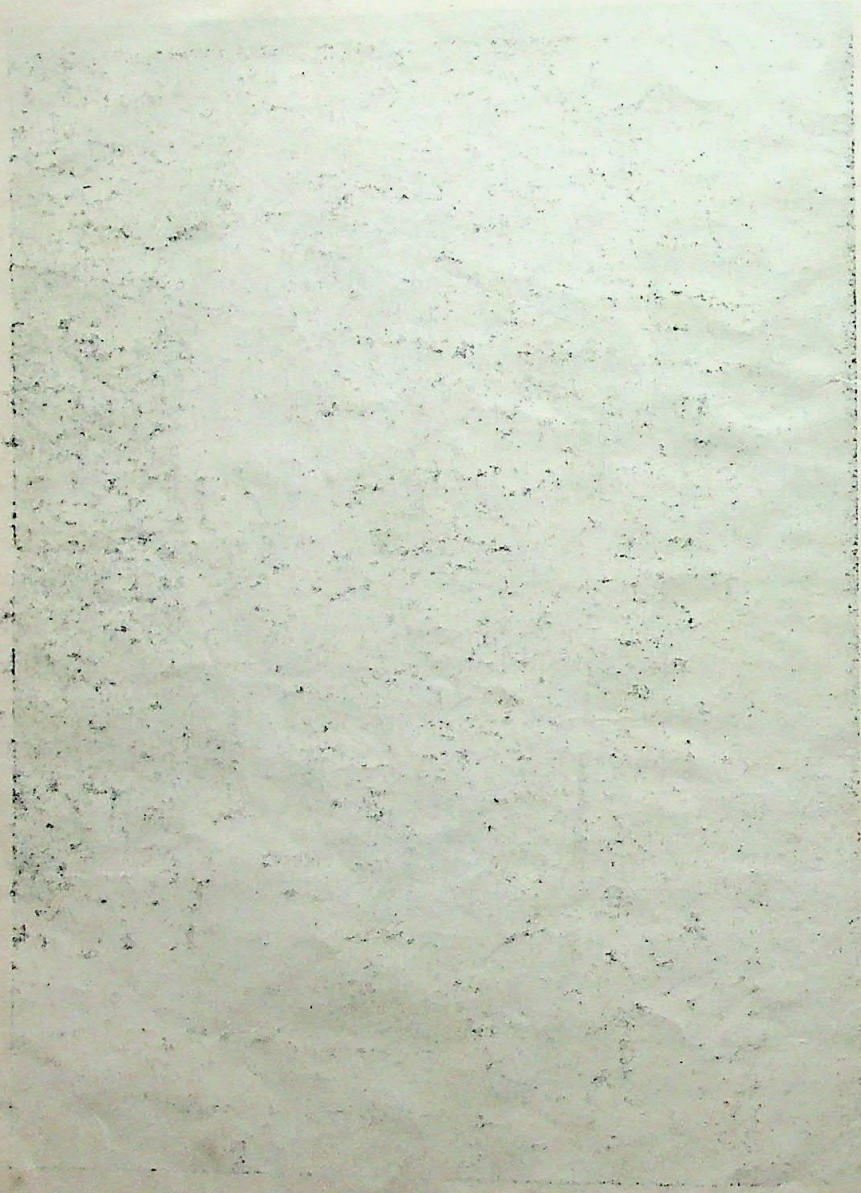

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरु मत्स्येन्द्रनाथ की योग-साधना

श्रीदुर्गाप्रसाद श्रीवास्तव, एम० ए०

योग-साधना के बीज वैसे तो वेदों और उपनिषदों में प्राप्त होते हैं परन्तु इसको व्यवस्थित रूप देनेवाले महर्षि पतंजलि ही हैं। महर्षि पतंजलि के बाद यह साधना कई रूपों में प्रचलित हुई। यहाँ तक कि आज ५५ प्रकार की योग-साधनाएँ बतायी जाती हैं। इन्हीं साधनाओं में से एक साधना-मार्ग का प्रवर्त्तन गुरु मत्स्येन्द्रनाथ ने किया था जो योगिनी कौल मार्ग के नाम से प्रसिद्ध है। 'कौल मार्ग' का एक अर्थ तो वाम मार्ग होता है और दूसरा अर्थ है कुल और अकुल की साधनावाला मार्ग। 'योगिनी' शब्द का तात्पर्य है वह 'कौलमार्ग' जिसका प्रचार योगिनियों के मध्य किया गया।

गुरु मत्स्येन्द्रनाथ शैव-शाक्त-तंत्र साधना से प्रभावित थे। तंत्र साधना का प्रभाव उन पर वज्रयानी और सहजयानी साधकों से होता हुआ आया। शैव मतावलम्बी शिव को और शाक्त मतावलम्बी शक्ति को ही सब कुछ मानते हुए एक 'अद्वय तत्त्व' में विश्वास करते हैं जिसके दो भिन्न रूप शिव और शक्ति माने जाते हैं। इन दोनों के मिलन की अवस्था को 'परमानन्द' या 'महासुख' की अवस्था कहा जाता है। गुरु मत्स्येन्द्रनाथ भी एक अद्वैतवादी की भाँति समस्त विश्व को शिवमय मानते थे और शिव एवं शक्ति के मिलन में विश्वास करते थे। उनके कौल मार्ग का लक्ष्य शक्ति का शिव में लय करना है। उन्होंने शिव को अकुल और शक्ति को कुल का नाम दिया। जिस साधना द्वारा कुल (शक्ति) का अकुल (शिव) के साथ योग (मिलन) किया जाता है उसे 'कौल योग-साधना' के नाम से अभिहित किया जाता है। शरीर के अन्दर शक्ति का स्थान मूलाधार चक्र और शिव का स्थान ब्रह्मरंध्र माना जाता है।

मूलाधार चक्र में पड़ी हुई शक्ति (कुंडलिनी) को यौगिक क्रियाओं द्वारा उत्थापित करके ब्रह्मरंध्र स्थित शिव तत्त्व में लीन कर देना ही मत्स्येन्द्रनाथ की योग साधना का लक्ष्य रहा। उन्होंने सहजयोग को भी स्वीकार किया था परन्तु उस पर उतना बल नहीं दिया जितना उनके शिष्य गोरखनाथ ने दिया। गुरु गोरखनाथ ने भी कुण्डलिनी योग को स्वीकार किया परन्तु उन्होंने बल सहजयोग पर ही अधिक दिया। हठपूर्वक कुण्डलिनी-उत्थापन में शरीर को क्लेशपूर्ण क्रियाओं में डालना पड़ता है। इसीलिए बड़े से बड़े योगी के भ्रष्ट हो जाने की आशंका बनी रहती है। भ्रष्ट योगी का योग तो भोग का एक साधन बन जाता है जैसा कि हम स्वयं गुरु मत्स्येन्द्रनाथ के सम्बन्ध में देखते हैं।

जिस प्रकार महायानियों के बोधिचित्त की अवस्था ने वज्रयानियों में आकर स्त्री-पुरुष के मिलन की अवस्था का रूप धारण कर लिया था उसी प्रकार गुरु मत्स्येन्द्रनाथ की कुल अकुल के मिलन की साधना ने स्वयं उन्हींके साथ स्त्री-पुरुष संभोग की साधना का रूप धारण कर लिया। महायानियों ने शून्यता और करुणा की मिश्रित अवस्था को बोधिचित्त का नाम दिया था। यही परम आनन्द की अवस्था कही जाती है। वज्रयानियों में आकर शून्यता ने प्रज्ञा का और करुणा ने उपाय का रूप ले लिया। शिव और शक्ति की मिलन-अवस्था का प्रज्ञा और उपाय के रूप में वर्णन होने लगा। बोधिचित्त को बोधिसत्व का नाम देकर उसे प्रज्ञा और उपाय का 'युगनद्ध' रूप कहा गया।

कुछ समय पश्चात् उपाय तो योगी का प्रतीक बन गया और प्रज्ञा मुद्रा का। मुद्रा पहले तो शरीर, हाथ, पैर आदि की विशेष स्थिति का प्रतीक थी, परन्तु कालान्तर में वह स्त्री का प्रतीक बन गयी। भिन्न-भिन्न प्रकार की मुद्राओं को जब भिन्न-भिन्न जातियों या प्रान्तों की स्त्रियों (जैसे डोम्बी, रजकी और अवधूती आदि) के नामों से पुकारा जाने लगा तब तो योगी 'योग' में काम आनेवाली मुद्रा के स्थान पर स्त्री का सेवन करने लगे। बोधिसत्व या युगनद्ध (परमानन्द की अवस्था) भी स्त्री-पुरुष की आलिंगनबद्ध अवस्था में बदल गया। कुछ दिनों बाद प्रज्ञा और उपाय स्त्री-पुरुष के ही प्रतीक न रहकर स्त्री-योनि और पुरुष-लिङ्ग के प्रतीक बन गये। वज्रयानियों ने इनके लिए कमल और कुलिश (वज्र) जैसे शिष्ट शब्द भी गढ़ लिये।

यह अवश्य नहीं कहा जा सकता है कि सभी वज्रयानी साधक इसी प्रकार योग के नाम पर भोग में लिप्त थे। कुछ ऐसे भी साधक थे जो प्रज्ञा को इड़ा का, उपाय को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पिंगला का और युगनद्ध को सुषुम्ना का प्रतीक मानकर योग-साधना में भी लीन थे, परन्तु इतना निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि नाड़ी साधना के साथ-साथ बहुत से साधकों में यौन-साधनाएँ ही अधिक प्रचलित रहीं।

गुह्य साधना के नाम पर इन साधकों में जो स्त्री-संभोग की छिपी हुई क्रिया प्रचलित हुई उसने सहजयानी साधकों (तथाकथित सिद्धों) को भी प्रभावित किया। ८४ सिद्धों में से बहुत से वाममार्गी साधक रहे। सहजयानी साधकों में भी 'मुद्रा' का प्रयोग पार्थिव रूपवती स्त्री के लिए होने लगा।

"नवयौवन सम्पन्ना प्राप्य मुद्रां सुलोचनाम्।
त्रकचन्दन सुवस्त्राद्यै भूषयित्वा निवेदयेत॥
गन्धमाल्यादिसत्कारैः क्षीर पूजादि विस्तरैः।
मत्तया सम्पूज्य यत्नेन मुद्राया सह नायकम्॥[१]

अर्थात् शिष्य को आचार्य के समीप नवयौवन सम्पन्न सुलोचना मुद्रा को जो माला चन्दन आदि से विभूषित की जा चुकी हो, साथ लेकर जाना चाहिए। शिष्य को चाहिए कि वह गन्ध-मालादि के साथ सत्कारपूर्वक भक्ति से यत्न-पूर्वक मुद्रा के साथ गुरु की पूजा करे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वे वज्रयानी और सहज-यानी साधक (सभी नहीं) जो योग की सूखी चट्टानों पर चढ़ते-चढ़ते थक गये थे, स्त्री के शीतल अञ्चल की छाया में जाकर अपनी क्लान्ति का परिहार करने लगे। इस शीतल छाया को छोड़कर वे पुनः योग की मरुभूमि में नहीं गये। साधना का वस्त्र ओढ़े हुए उनकी वासना को जो तृप्ति यहाँ मिली वह योग के क्षेत्र में न मिल सकी थी।

इसी साधना का प्रभाव मत्स्येन्द्रनाथ की योग-साधना पर भी पड़ा। उनकी गणना बहुत से विद्वान् तो ८४ सिद्धों में ही करते हैं। इन सिद्धों में से कुछ सिद्ध भ्रष्ट भी हो गये थे। भ्रष्ट सिद्धों में मत्स्येन्द्रनाथ का भी नाम आता है। डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने भी उन्हें सिद्ध ही माना है और अपनी 'नाथ सम्प्रदाय' पुस्तक में लिखा कि वे वाम-मार्गी हो गये थे। बाद में उनके शिष्य गोरखनाथ ने उनको इस मार्ग से निकाला।

इतना निश्चित है कि जब उनका मन-कुरङ्ग योग के मार्त्तण्ड की मृग-मरीचिकाओं के ताप से झुलसने लगा उसने स्त्री के शीतल क्रोड़ में जाकर ही शान्ति प्राप्त की मत्स्येन्द्रनाथ ने अपने हृदय का भार स्त्री के दिल उतारकर ही संतोष का अनुभव किया।

शुष्क कायिक साधनाओं के पाषाणों के अन्दर वासना की जो निर्झरिणी छिपी हुई थी वह योग के से द्रवित होकर निकल पड़ी। योग का झीना आवरण उस योग को छिपा न सका। यह अवश्य है कि उन्होंने छिपाने का प्रयास अन्त तक किया। आज भी उनकी प्रसि एक योगी के रूप में ही है। यह सत्य भी है कि वे महान् योगी रहे परन्तु ऐसा लगता है कि उनका बाह्य योग या शारीरिक योग ही अधिक था। अगर ऐ न होता तो उनका मन-मृग स्त्री के रूप-पाश में न फँसता शरीर साधना के साथ वे मन-साधना में सफल नहीं थे। वास्तव में योगी वही है जिसका मन किसी भी प स्थिति में चंचल न हो। अगर विषय-वायु के हल्के झोंके भी मन की शिखा हिलने लगे तो योग को बाह्य समझना चाहिए। जिस योगी का मन 'पद्मपत्रमिवाम्भ न हो उस योगी का योग शारीरिक योग या बाह्ययोग कहा जायगा। योग के क्षेत्र में वासना की अग्नि शान्त हो जाना तो पहली आवश्यकता है।

अगर गुरु मत्स्येन्द्रनाथ की वासनाग्नि बुझ गयी होती तो वह कामरूप देश की स्त्रियों को पाकर प्रज्ज्वलित होती। जब उन्होंने अपने योग का प्रचार कामरूप देश स्त्रियों में किया तो वे अपनी सम्पूर्ण अर्जित साधना को बैठे। कण्हपा जैसे सिद्धों ने यह उपदेश दिया था कि का वरण करके भी जिसका चित्त-रत्न क्षुब्ध न हो सच्चा योगी है। यह उपदेश अव्यावहारिक ही सिद्ध हुआ। मुद्रा रूपिणी नारी योग-साधना में सहायक होकर काम-भावना की सन्तुष्टि का साधन बन गयी। मार्गी शाक्तों द्वारा चलाये हुए पंचमकार (मत्स्य, मदिरा, मैथुन और मुद्रा) सेवन ने स्थूल अर्थ ग्रहण योग-साधना और तंत्र-साधना में जो विकृतियाँ उत्पन्न वे कालान्तर में भीषण रूप ही धारण करती चली गयीं पंचमकार सेवन का दुष्परिणाम यह हुआ कि साधक को भूलकर इन्हीं में आसक्त हो गये। मत्स्येन्द्रनाथ ने जिस योग साधना का प्रवर्त्तन किया उसे वे स्वयं भूल और स्त्री-संभोग को ही अपनी साधना का लक्ष्य बना बैठे

१. हिन्दी की निर्गुण काव्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि, डॉ० गोविन्द त्रिगुणायत, पृ० २५७ पर उद्धृत।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९७३

मत्स्येन्द्रनाथ के शिष्य गुरु गोरखनाथ ने अपने को स्वयं चेतावनी देते हुए कहा,

"बांमां अंगे सोइबा जमचा भोगबा, संगे न पीवणां पांणीं।
इसतौ अजरांवर होइ मंछिंद्र, बोल्यौ गोरष बांणीं ॥"[1]

अर्थात्—स्त्री के अंग में अर्थात् पास सोना यम का भोग करना या भोग होना है। उसके (स्त्री के) साथ तो पानी भी न पीना चाहिए। हे मत्स्येन्द्र! इसी प्रकार अमर हो जाओ। गोरखनाथ ऐसी वाणी बोलता है।

विद्यानगर में पहुँचकर मत्स्येन्द्रनाथ अपनी साधना से भ्रष्ट होकर कामिनियों के जाल में फँस गये थे जैसा कि गोरखनाथ के कथन से स्पष्ट है। गोरखनाथ अपने कथन की पुष्टि करते हुए कहते हैं,

"छाँटै तजौ गुरू छाँटै तजौ तजौ लोभ मोह माया।
आत्मां परचै राषौ गुरुदेव सुन्दर काया ॥
कान्हीं पाव भेटीला गुरू, विद्यानग्र सैं।
तार्थं मैं पाइला गुरू, तुम्हारा उपदेसैं ॥१॥
एतैं कछू कथीला गुरू, सबैं भैला भोलै।
सर्ब रस सोईला गुरु बाघंनी चै षोलै ॥२॥[2]

अर्थात् हे गुरु लोभ और माया को (छाँटै) अलग से अर्थात् बिना स्पर्श किये हुए छोड़ दो। हे गुरुदेव, आत्मा का परिचय रक्खो जिससे यह सुन्दर काया रह जाय, नष्ट न हो। विद्यानगर के (या से आये हुए) कान्हापा से भेंट हुई थी। उसीसे आपकी इस दशा का पता लगा कि आप कामनियों के जाल में पड़े हुए हैं।

इससे स्पष्ट है कि मत्स्येन्द्रनाथ की योग-साधना एक परिधानमात्र थी जिसमें छिपकर वे निर्बाध रूप से भोग का आनन्द प्राप्त करते थे। उनके योग की जर्जर तरणी नासना के महानद में पहुँचकर भग्न हो गयी और उन्हें पुनः योग के तट पर लाने का प्रयास उनके शिष्य ने किया,

"गुरूजी ऐसा करम न कीजै, तार्थं अमीं महारस छीजै ॥
दिवसैं बाघणि मन मोहै राति सरोवर सोषै।
जाणि बूझि रे मूरिष लोया घरि घरि बाघणी पोषै ॥
नहीं तौरै बिरषा नारी संगै पुरषा अलप जीवन की आसा,
मनथैं उपज मेर षिसि पड़ई तार्थैं कंध विनासा ॥१॥[3]

अर्थात् हे गुरुदेव, ऐसा कर्म न कीजिए जिससे महारस अमृत का क्षय हो। दिवस में मायारूपी नारी (बाघिनी) मन को मोहित करती है और रात्रि में (शुक्रस्खलन द्वारा) सरोवर (अमृत) को सोख लेती है। जानबूझकर मूर्ख लोग घर-घर में बाघिनी (नारी) को पालते-पोषते हैं। स्त्री के साथ रहनेवाले पुरुष के जीवन की अल्प आशा होती है। ऐसे पुरुष की दशा सरिता के तट पर खड़े हुए वृक्ष के समान होती है। मन में ज्योंही मनसिज पैदा हुआ त्योंही मेरु (शिखर अर्थात् ब्रह्मरंध्र) से अमृत नीचे गिर पड़ता है। इससे शरीर (कंध) का नाश हो जाता है।

इस प्रकार गोरखनाथ के ये शब्द इस तथ्य की पुष्टि करते हैं कि उनके गुरु का मन-मृग स्त्री के नेत्र-शरों का शिकार हुआ था। इसका यह तात्पर्य नहीं कि स्त्री कोई उपेक्षणीय वस्तु है। उसे काम-क्रीड़ा का कन्दुक बनाना या उसे साधना मार्ग का रोड़ा समझना ही उपेक्षणीय है। गुरु मत्स्येन्द्रनाथ ने पहले तो नारी को अपने मार्ग में बाधक समझकर उसकी उपेक्षा की और बाद में उसे अपनी काम-भावना की संतुष्टि का साधन बनाया। इसीलिए उनके इस कृत्य की आलोचना और निन्दा की जाती है। यहाँ पर उसी नारी की निन्दा की गयी है जिसे मत्स्येन्द्रनाथ ने काम की पुतली मात्र समझ लिया था। अगर वे नारी के साथ रहते हुए लोक और परलोक, प्रवृत्ति निवृत्ति, प्रेय-श्रेय, भोग-योग में संतुलन रखते हुए सामरस्य की प्राप्ति करते तो नारी भी निन्दा से बच जाती और उनकी योग-साधना की भी आलोचना न होती।

नारी को प्राप्त करके काम को विकृत करना लोक और परलोक दोनों ही दृष्टियों से अहितकर होता है। काम की प्रवृत्ति तो निम्नगा होती ही है परन्तु उसे ऊर्ध्वगामी बनाना ही प्रत्येक साधना का लक्ष्य होता है। योग, भक्ति और ज्ञान आदि साधनाओं के द्वारा काम का परिष्करण, दिव्यीकरण और उदात्तीकरण किया जाता है। अतः जिस योग द्वारा काम का पवित्रीकरण न हो वह योग व्यर्थ और थोथा है। 'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः' का तात्पर्य है योग द्वारा काम की निम्नगावृत्ति के स्रोत को ऊर्ध्वगामी बनाकर उसे उदात्तरूप प्रदान करना। चित्तवृत्तियों के निरोध का तात्पर्य यह नहीं है कि चित्त की वृत्तियों को दबाया या वर्जित किया जाना चाहिये। 'निरोध' का अर्थ है उनके निम्नगा प्रवाह को रोककर ऊर्ध्वगामी करना। इस प्रकार

१—गोरखबानी, भाग १, पृ० ८६
२—(वही, पृ० ८७)
३—(वही, पृ० १३७)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब काम को परिष्कृत बना लिया जाता है तब उसके विकृत होने की सम्भावना नहीं रहती।

गुरु मत्स्येन्द्रनाथ अपनी योग-साधना द्वारा अपनी काम-भावना का उदात्तीकरण न कर सके थे। इसीलिए उनके काम ने बाद में विस्फोट का रूप ले लिया। विवर्जित या दमित काम स्पृहणीय नहीं है। फ्रायड ने भी काम को दमित करना हानिकारक बताया। मत्स्येन्द्रनाथ ने कायिक चेष्टाओं द्वारा जिस काम को दबा दिया था उसी ने उनकी सम्पूर्ण साधना को क्षण भर में भस्म कर दिया। काम के सहज प्रवाह को रोका नहीं जा सकता। रोकने पर तो यह बाढ़ का रूप धारण कर बहने लगता है जिसमें उच्च से उच्च साधनाओं के वृक्ष समूल नष्ट हो जाते हैं। जिन साधकों ने इसे रोकने का प्रयास किया उन्हीं के अन्दर से यह उफन-उफन कर बहने लगा। काम के सहज प्रवाह को एक दिशा से दूसरी दिशा में उसी प्रकार परिवर्त्तित अवश्य किया जा सकता है जैसे जल के प्रवाह को एक दिशा से दूसरी दिशा में कर दिया जाता है।

मत्स्येन्द्रनाथ ने ऐसा न करके हठयोग का आश्रय लिया। यहाँ 'हठयोग' का तात्पर्य उस योग से नहीं है जिसके प्रवर्त्तक गुरु गोरखनाथ कहे जाते हैं। यहाँ हठयोग से हमारा मतलब इतना ही है कि मत्स्येन्द्रनाथ ने हठपूर्वक अर्थात् कुछ शारीरिक क्रियाओं द्वारा अपने काम को दबाया था। उन्होंने बलपूर्वक इन्द्रियों को विषयों से रोका था जबकि उनका मन उन्हीं में विचरण करता रहता था। जो व्यक्ति मन पर नियन्त्रण नहीं रख सकता है वह योग को प्राप्त नहीं कर सकता जैसा कि 'श्रीमद्भगद्गीता' में कहा गया है।

"असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः।
वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्तुमुपायतः॥"

[अध्याय ६, श्लोक ३६]

अर्थात् मन को वश में न करनेवाले पुरुष द्वारा योग दुष्प्राप्य है, और स्वाधीन मनवाले प्रयत्नशील पुरुष द्वारा साधन करने से प्राप्त होना सहज है।

अगर मन वश में नहीं है तो काम का प्रभंजन साधनाओं के बादलों को पल भर में उड़ा देता है। यही गुरु मत्स्येन्द्रनाथ की साधना के साथ हुआ। वे योग के जिस भवन के कोने में छिपकर भोग कर रहे थे वह भी विषयों की झंझा में खड़ा न रह सका। उनकी योग-साधना सिद्धान्त रूप में तो दृढ़ मनोवैज्ञानिक आधार पर स्थित थी, परन्तु व्यावहारिक रूप में वह मन को छोड़कर ही आगे बढ़ी। इसीलिए उस पर कलङ्क की कालिमा चढ़ गयी। 'कौल-ज्ञान निर्णय' में लिखा है कि शक्ति का लय शिव में, शिव का लय क्रिया में, क्रिया का लय ज्ञान में और ज्ञान का लय इच्छा में किया जाता है। इसी प्रकार इच्छा का लय शिव में किया जाना चाहिए। उन्होंने शिव के मानस लिंग की पूजा का अहिंसा, करुणा, उदारता, ध्यान और ज्ञान आदि पुष्पों द्वारा विधान भी बनाया था। इस मानस-पूजा के लिए उन्होंने काम, क्रोध और दम्भ आदि का त्याग भी आवश्यक ठहराया। कौल-ज्ञान मत में योग साधनाङ्ग व्रत, तीर्थ, सेवन, पूजन, स्नान और होम आदि बाह्य मिथ्याचार भी त्याज्य कहे जाते हैं।

गुरु मत्स्येन्द्रनाथ के इन सब सिद्धान्तों का निर्गुणिया सन्तों पर तो बहुत प्रभाव पड़ा परन्तु स्वयं मत्स्येन्द्रनाथ का व्यवहार इनके अनुरूप न रह सका। उनकी कथनी और करनी में बड़ा अन्तर रहा। आज उनकी ख्याति उनकी दार्शनिक विचारधारा और सैद्धान्तिक साधना पर ही अधिक आधारित है, व्यावहारिक रूप पर नहीं। उन्होंने भावना और मानसिक साधना पर अधिक बल दिया; परन्तु व्यवहार रूप में शारीरिक साधना को अपनाया। इसीलिए वे वासना के ज्वर से मुक्ति प्राप्त न कर सके। वासना की कुहू में उनके योग की चन्द्रिका छिप गयी। विषयों की उद्दाम सरिता के प्रवाह में उनकी योग-साधना का महल क्षण भर में ही बह गया। योग के सुमेरु पर चढ़कर उन्होंने नीचे वासना की जिस तरंगिणी को देखा उसमें वे स्वयं कूद पड़े जैसा कि उनके शिष्य गोरखनाथ के शब्दों में दिखायी देता है। योग के क्षेत्र में उन्होंने कैसी भी सिद्धियाँ प्राप्त की हों और कैसे भी चमत्कार दिखाये हों परन्तु वे अपनी साधना से उस आध्यात्मिक सत्य की प्राप्ति न कर सके जो उनका प्रारम्भ में लक्ष्य था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाकवि विद्यापति का एक पद

मूल लेखक—स्व० महामहोपाध्याय डा० उमेश मिश्र, एम० ए०, डी० लिट्०
रूपान्तर—श्री रमाकान्त राय "रमा" साहित्याचार्य

महाकवि विद्यापति शुष्क अनचीतशास्त्र कवि नहीं थे। इनके समय में मिथिला शास्त्र चर्चा से चतुर्दिक्षु प्रख्यात हो चुकी थी। न्याय दर्शन के द्वारा न केवल वाह्य जगत् का अपितु आन्तरिक जगत् के पदार्थों को, एवं साथ ही साथ आत्मज्ञान प्राप्त करने में शतशः धुरन्धर विद्वान् मान रहते थे। महाकवि विद्यापति भी पक्षधर मिश्र सदृश पण्डित के सहपाठी थे। ये समयानुसार दर्शन, धर्मशास्त्र तथा नीतिशास्त्र के ज्ञाता थे, संसार का अनुभव प्राप्त कर चुके थे। शास्त्र ज्ञान तथा साक्षात् अपने अनुभव के बल से अदृश्य तथा पूर्व अज्ञात विषय का भी ज्ञान इन्हें था। वस्तुतः कवि के लिए अज्ञात कोई वस्तु नहीं है; यही कारण था कि—

"कामिनि करए सनाने।
हेरितहि हृदय हजए पंचवाने॥
चिकुर गरए जलधारा,
जनि शशि मुख डरें रोअए अंधारा॥"

इस प्रकार से सद्यःस्नाता का वर्णन कवि ने किया है फिर—

"सजनि! निहुरि फुकू आगि!
तोहर कमल भ्रमर मोर देखल मदन उठल जागि!"

इत्यादि अदृश्य वर्णन में सफलता प्राप्त की।

यथार्थ में ज्ञानी के लिए 'अदृश्य' कोई वस्तु है ही नहीं। भविष्य वर्तमान तथा भूत इस प्रकार जो काल का विभाजन किया गया है वह लौकिक व्यवहार के लिए है।

जो एक क्षण पहले 'भविष्य' था, अंधकार में था, अज्ञात था, सम्भवतः अनायास प्रकृति के नियमानुसार दूसरे ही क्षण 'वर्तमान' हो जाता है, आँखों के सामने आकर चक्षु-गोचर हो जाता है। वही पुनः तीसरे क्षण में सामने से हटकर 'भूत' हो जाता है। साधारण लौकिक दृष्टि से वह फिर अंधकार में चला जाता है। उसे इन आँखों से कोई देख नहीं सकता।

तीनों क्षणों में वह एक ही वस्तु रहता है, वस्तु में कोई वास्तविक परिवर्तन नहीं होता फिर भी केवल आवरण और अनावरण मात्र का भेद उसमें आविर्भूत और तिरोभूत होता रहता है। यही जानकर योगिराज भर्तृहरि ने कहा है—

'आगतनागतज्ञानं प्रत्यक्षान्नविशिष्यते।'

चूंकि वस्तु में कोई वास्तविक परिवर्तन नहीं होता है अतः सभी वस्तु हमेशा आँखों के सामने रहती हैं फिर भी वह वस्तु नहीं दिखायी पड़ती है इसमें एकमात्र कारण है आँखों की तेजहीनता। निविड़ अन्धकार में कूदते हुए चूहे क्या आँखों के सामने नहीं हैं? यदि नहीं तो बिल्ली उसे कैसे आँखों से देख लेती है? यदि मनुष्य की आँखों में भी उतना तेज रहे तो बिना किसी बाहरी ज्योति के उसी प्रकार अंधकार में रखी हुई वस्तु को क्यों नहीं देख सकता है? ऋषि-मुनिगण समस्त संसार को हस्तामलक की भाँति किस तरह देखते हैं? श्रुति में "आत्मा वा अरे दृष्टव्यः" जो कहा गया है, क्या वह मिथ्या है? आँखों से देखने योग्य वस्तु के लिए 'दृष्टव्यः' शब्द प्रयोग किया गया है। देखना तो आँख से ही हो सकता है। हाँ फिर आँखों में उतना तेज चाहिये जो लौकिक अन्धकार को हटाकर जड़ वस्तु को भी प्रकाशित कर सके। यही कारण है कि विद्यापति कहते हैं—

"कर धरु करु मोहे पारे
देव हम अपरूप हारे, कन्हैया!
सखि सम तजि चलि गेली
न जानू कोन पथ भेली, कन्हैया!
हम न जाएब तुअ पासे
जाएब अउघट घाटे, कन्हैया!
विद्यापति कवि भाने
गूँजरि मजु भगवाने।"

कोई भक्त उसी समय अपने रक्षक स्वामी की सेवा कर सकता है जब उसे उसके स्वामी के स्वरूप का साक्षात्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रत्यक्ष होता है ! इसके अभाव में भक्त सेवा नहीं कर सकता है। इसीसे एक भक्त गोपी अपनी सेवा से भगवान् श्रीकृष्ण को अपनी ओर आकर्षित कर उनके साथ अपने को एक समझकर प्रौढ़ होकर प्रार्थना करती है कि हे कृष्ण ! मुझे मेरे सभी सम्बन्धियों ने छोड़ दिया है, कौन कहाँ गया यह भी मुझे पता नहीं, कोई भी मेरा सहायक नहीं है। मैं एक मात्र आपकी शरण में आई हूँ। अब मुझे अपने में कोई शक्ति नहीं है। अतः आप मेरे हाथ पकड़कर इस संसार सागर से पार कर दीजिए। मेरा जो सबसे अमूल्य हृदय के समीप रहनेवाला हार अर्थात् जीवात्मा है वह मैं आपको समर्पित कर दूंगी। शंकराचार्य का भी कहना है कि—

"सत्यपि भेदापगमे नाथ !
तवाहम् न मामकीनस्त्वम् ।।

परन्तु एक बात कह देना आवश्यक है कि मैं आपके समीप नहीं जाऊँगी। आप रसेश्वर हैं—'रसो वै सः' आपको उपनिषद् कहती है। मुझे रसमय जीवन व्यतीत करने की तनिक भी इच्छा नहीं, सभी का परित्याग कर चुकी हूँ। अब द्वैतभाव में रहने की स्पृहा नहीं। आपका जो अलौकिक रसरूप है कि आप रसेश्वर कहलाते हैं, उस पर से परात्पर जो आपका अवाङ्मनसगोचर स्वरूप है जहाँ कोई नहीं जाता है, इसीलिए वह 'अघट' है। वहाँ जाने में बड़े-बड़े ऋषियों को भी भय होता है। अतः 'अस्पर्श योग' साधारण रूप में किसीको प्रिय नहीं। वहाँ जाने से अपने अस्तित्व लोप हो जाने का भ्रमात्मक भय लोगों को होता है। वहीं मुझे ले चलिये, जैसे 'माण्डुक्य कारिका' में कहा गया है—

"अस्पर्शयोगोवै नामदुर्दशः सर्वयोगिभिः
योगिनोविभ्यतिह्यस्मादभये भय दर्शिनः" (३।३६)

परन्तु इसमें भय नहीं है, यह तो अभय स्थान है। अज्ञान के कारण लोगों को इसमें भय दीख पड़ता है। वस्तुतः इसका स्वरूप तो उसी 'कारिका' ग्रन्थ में कहा गया है—

"अस्पर्शयोगोवैनामसर्वसत्त्वसुखोहितः ।
अविवादोऽविरुद्धश्चदेशितस्तं नमाम्यहम् ।।४।१२)

हे कृष्ण ! मेरा अब किसीसे स्पर्श (सम्बन्ध) नहीं है। सभी से मैं विरक्त हो गयी हूँ। अतः आप मुझे उस अघट घाट अवाङ्मनसगोचर स्थान पर पार उतार दीजिये। मैं यद्यपि आपको पहचानती हूँ, आप रसमय हैं; मुझे भी रस में मिला लीजियेगा। इसी भय से 'हम न जाएब तुअ पासे।' (मैं आपके निकट नहीं जाऊँगी।) परन्तु बिना कर्णधार के संसार सागर पार भी नहीं हो सकता हूँ, इसीलिए आपसे अनुरोध है।

अतः विद्यापति कहते हैं—'गूंजरि भजु भगवाने।'

इस प्रकार की भावना से प्रेरित होकर महाकवि विद्यापति ने उक्त पद गाकर 'कवि' के अद्भुत अलौकिक शक्ति का परिचय दिया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामचरितमानस में शिव-काव्य

डा० रामगोपाल शर्मा 'दिनेश'

गोस्वामी तुलसीदासजी ने रामचरितमानस की रचना शिव-पार्वती-संवाद के रूप में की है। प्रारम्भ से अन्त तक वे दोनों इस काव्य में वक्ता-श्रोता के रूप में मिलते हैं। तुलसी ने प्रारम्भ में यह भी बतलाया है कि रामचरित को शिव ने स्वयं उत्पन्न किया है—

संभु कीन्ह यह चरित सुहावा।
बहुरि कृपा करि उमहि सुनावा॥[1]

× × ×

रामचरितमानस मुनि भावन।
बिरचेउ संभु सुहावन पावन॥[2]

× × ×

रचि महेस निज मानस राखा।
पाइ सुसमउ सिवा सन भाखा॥[3]

यद्यपि रामचरित के वक्ता-श्रोता कई हैं, किन्तु प्रधान एवं प्रथम वक्ता-श्रोता शिव-पार्वती हैं :—

सोइ शिव काग-भुसुंडिहि दीन्हा।
राम भगति अधिकारी चीन्हा॥
तेहि सन जागबलिक पुनि पावा।
तिन्ह पुनि भरद्वाज प्रति गावा॥
ते श्रोता-वक्ता सम सीला।
सँवदरसी जानहिं हरिलीला॥[4]

रामचरितमानस पढ़ते समय अनेक ऐसे विश्राम मिलते हैं, जहाँ तुलसीदासजी अवसर पाते ही अपने पाठक के मानस-पट पर शिव-पार्वती को श्रोता-वक्ता के रूप में ला उपस्थित करते हैं। अतः राम का चरित-गायन 'रामचरित-मानस' का मुख्य उद्देश्य होते हुए भी उसकी रचना-पद्धति को देख कर ऐसा प्रतीत होने लगता है, मानो वह समस्त काव्य एक शिव-काव्य है, जिसमें प्रारम्भ से अन्त तक शिव-द्वारा पार्वती के संशय मिटाने का यत्न किया जा रहा है। यह संशय इतना अधिक है कि एक जन्म में उसका निवारण नहीं हो सकता। सती को उसके लिए शरीर त्याग कर पार्वती के रूप में पुनर्जन्म धारण करना पड़ता है। भयंकर तपस्या के पश्चात् वे शिव को पुनः पति रूप में प्राप्त करती हैं और उसके पश्चात् समस्त रामचरितमानस में एक श्रोता के रूप में उपस्थित रह कर संशय से मुक्ति पाती हैं। वे रामचरितमानस का अन्त होते-होते यह स्वीकार करने को बाध्य हो जाती हैं :—

नाथ कृपा मम गत सन्देहा।
रामचरण उपजेउ नव नेहा॥
मैं कृत-कृत्य भइउँ अब, तव प्रसाद बिस्वेस।
उपजी रामभगति दृढ़, बीते सकल क्लेस॥[1]

तुलसी ने भी यह स्वीकार किया है कि रामचरित-मानस शिव-पार्वती का संवाद है और उसका मुख्य उद्देश्य सन्देह या संशय का मूलोच्छेदन करना है :—

यह सुभ संभु उमा संवादा। सुखसंपादन समन विषादा॥
भव भंजन गंजन संदेहा। जन रंजन सज्जन प्रिय एहा॥[2]

सती के संशय और उसके समाधान की भूमिका में तुलसीदास जी ने शिव-पार्वती के चरित का भी बालकाण्ड के आरम्भ में विस्तार से वर्णन किया है। जो इस प्रकार है :—

सती-संशय

रामचरितमानस में शिव-चरित का प्रारम्भ सती-संशय की इस पृष्ठभूमि से होता है :—

ऐसेइ संसय कीन्ह भवानी।
महादेव तब कहा बखानी॥
कहहुँ सो महि अनुहारि अब, उमा संभु-संवाद।
भयहु समय जेहि हेतु जेहि, मुनि मुनि मिटहि विषाद॥[3]

---

१. रामचरितमानस, बालकाण्ड, दोहा ३० क, चौपाई २।
२. ,, ,, ,, ३५ क, चौपाई ५।
३. ,, ,, ,, ३५ क, चौपाई ६।
४. ,, ,, ,, ३० क, चौपाई २-३।

१. रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड दोहा १२९, चौपाई ४।
२. ,, ,, ,, १३०, चौपाई १।
३. ,, बालकाण्ड, दोहा ४७।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और फिर शिव-चरित का प्रारम्भ करते हुए तुलसीदासजी आगे कहते हैं—

एक बार त्रेता जुग माहीं।
संभु गए कुंभज ऋषि पाहीं॥
संग सती जगजननि भवानी।
पूजे रिषि अखिलेश्वर जानी॥[१]

जब शिव कुम्भज ऋषि के यहाँ से लौटे, उस समय पिता की आज्ञा मानकर राम दण्डक वन में विचरण कर रहे थे। शिव ने उनके दर्शन किये और प्रसन्न होकर 'सच्चिदानन्द की जय' कहते हुए वे आगे बढ़े। यह देखकर सती के हृदय में विशेष सन्देह उत्पन्न हुआ :—

चले जात सिव सती समेता।
पुनि पुनि पुलकत कृपानिकेता॥
सती सो सदा सम्भु के देखी।
उर उपजा सन्देहु विसेषी॥
संकर जगतवंद्य जगदीसा।
सुर नर मुनि सब नावत सीसा॥
तिन्ह नृपसुतहिं कीन्ह परनामा।
कहि सच्चिदानन्द परधामा॥
भये मगन छवि तासु विलोकी।
अजहुँ प्रीति उर रहति न रोकी॥[२]

शिव ने पहले तो उनको समझाने की चेष्टा की किन्तु जब वे राम के ब्रह्मत्व के विषय में संशय का त्याग न कर सकीं तो शिव ने उन्हें राम की परीक्षा लेने के लिए स्वतंत्र छोड़ दिया—

जो तुम्हरें मन अति संदेहू।
तौ किन जाइ परीछा लेहू॥
तब लगि बैठ अहहुँ बट छाहीं।
जब लगि तुम्ह ऐहहु मोहिं पाहीं॥[३]

सती ने सीता का रूप धारण कर राम की परीक्षा ली और उनकी माया का पार न पाकर अपनी भूल पर पश्चात्ताप करती हुई लौट कर शिव के पास आईं। पूछने पर उन्होंने शिव से असत्य भाषण किया :—

सती समुझि रघुबीर प्रभाऊ।
भय बस सिव सन कीन्ह दुराऊ॥
कछु न परीक्षा लीन्ह गुसाईं।
कीन्ह प्रनामु तुम्हारिहि नाईं॥

किन्तु शिव ने ध्यान-योग से यह जान लिया कि सती ने राम की परीक्षा के लिए सीता का रूप धारण किया था। अतः उन्होंने निश्चय किया कि अब मैं सती से प्रेम नहीं करूँगा—

एहि तन सतिहिं भेंट मोहि नाहीं।
सिव संकल्प कीन्ह मन माहीं॥[१]

कैलास पर पहुँचकर जब शिव ने अखण्ड समाधि लगा ली, तो सती भयंकर मनस्ताप से जलती हुईं शरीर त्याग देने की इच्छा करने लगीं—

तो मैं बिनय करउँ कर जोरी।
छूटहु बेगि देह यह मोरी॥[२]

इस प्रकार सती के मनस्ताप और शरीर-त्याग की कामना का चित्रण करके तुलसीदासजी ने एक ओर तो दक्ष-यज्ञ-विध्वंस की भूमिका प्रस्तुत की है तथा दूसरी ओर उस संशयात्मक मन-स्थिति का चित्रण किया है, जिसके निवारणार्थ आगे शिव ने राम-कथा का वर्णन किया।

सती-दाह और दक्ष-यज्ञ-विध्वंस

सती-संशय से तुलसीदास ने दक्ष-यज्ञ की कथा को जोड़ा है। सती ने शरीर-त्याग की कामना की थी, कुछ पर्याप्त समय व्यतीत होने पर उसके अनुकूल एक अवसर उपस्थित हुआ। प्रजापति दक्ष ने एक यज्ञ किया, जिसमें भाग लेने के लिए आमन्त्रण पाकर सभी देवता जाने लगे। सती भी वहाँ जाने को इच्छुक हुईं, तो शिव ने समझाया—

१—रामचरितमानस, बालकाण्ड, दोहा ४८ (क) चौपाई १।
२—रामचरितमानस, बालकाण्ड, दोहा ५० चौपाई २-४।
३—रामचरितमानस, बालकाण्ड दोहा ५२, चौपाई १।

१—रामचरितमानस, बालकाण्ड, दोहा ५७ (क) चौपाई १।
२— ,, ,, दोहा, चौपाई ४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहेहु नीक मोरेहुँ मन भावा।
यह अनुचित नहिं नेवत पठावा॥
दच्छ सकल निज सुता बोलाईं।
हमरें बयर तुम्हउँ बिसराईं॥
ब्रह्म सभा हम सन दुखु माना।
तेहि तें अजहुँ करहिं अपमाना॥
जो बिनु बोलें जाहु भवानी।
रहइ न सीलु सनेहु न कानी॥[1]

किन्तु सती की समझ में कुछ भी नहीं आया। अन्त में दुराग्रह करके शिव से आज्ञा पाकर वे गणों के साथ दक्ष-गृह पहुँची। वहाँ न तो उनका आदर हुआ, न उन्होंने यज्ञ में शिव का भाग ही देखा। अतः दुखी होकर वे योगाग्नि में जल कर भस्म हो गयीं—

तजिहउँ तुरत देह तेहि हेतू।
उर धरि चंद्रमौलि बृषकेतू॥
अस कहि जोग अगिनि तनु जारा।
भएउ सकल मख हाहाकारा॥[2]

जब शिव को यह समाचार मिला, तो वे क्रुद्ध हो उठे। उन्होंने वीरभद्र को भेज कर यज्ञ-विध्वंस करा दिया—

समाचार सब संकर पाये।
वीरभद्र करि कोप पठाये॥
जग्य विधंस जाइ तिन्ह कीन्हा।
सकल सुरन्ह विधिवत फलु दीन्हा॥[3]

पार्वती-विवाह

कथा को आगे बढ़ाते हुए तुलसीदासजी ने लिखा है कि सती ने मरते समय हरि से प्रत्येक जन्म में शिव-पद-प्रेम का वरदान माँगा और उसी के कारण वे हिमालय के घर पार्वती के रूप में उत्पन्न हुईं।[4] समस्त वातावरण उनके जन्म से आनन्दपूर्ण हो उठा। समाचार पाते ही नारद वहाँ जा पहुँचे। हिमाचल और मैना ने उनका स्वागत-सत्कार करने के पश्चात् पार्वती का भविष्यकाल पूछा। नारद ने अनेक शुभ लक्षणों का उल्लेख करते हुए बतलाया :—

सैल! सुलच्छन सुता तुम्हारी।
सुनहु जे अब अवगुन दुइ चारी॥
अगुन अमान मातु पितु हीना।
उदासीन सब संसय छीना॥
जोगी जटिल अकाम मन, नगन अमंगल बेष।
अस स्वामी एहि कहँ मिलिहि, परी हस्त अस रेख॥[1]

नारद की भविष्यवाणी सुनकर पार्वती प्रसन्न हुईं, किन्तु मैना और हिमाचल चिन्तित हो उठे। नारद ने उनकी चिन्ता मिटाने के लिए कहा—

जे जे वर के दोष बखाने। ते सब सिव पहिं मैं अनुमाने॥
जो बिबाहु संकर सन होई। दोषउ गुन सम कह सबु कोई॥[2]

उन्होंने शिव को प्राप्त करने के लिए तपस्या की आवश्यकता बतलाई—

संभु सहज समरथ भगवाना।
एहि बिबाह सब बिधि कल्याना॥
दुराराध्य पै अहहिं महेसू।
आसुतोष पुनि किये कलेसू॥[3]

नारद के चले जाने के पश्चात् हिमाचल और मैना पार्वती की विवाह-चर्चा में उलझ गये। हिमाचल ने कहा—

अब जौं तुमहि सुता पर नेहू।
तौ अस जाइ सिखावन देहू॥
करै सो तपु जेहिं मिलहिं महेसू।
आन उपाय न मिटिहि कलेसू॥[4]

मैना पति की आज्ञा मान कर पार्वती को तपस्या के लिए समझाने गयीं। किन्तु उनके पास पहुँच कर भाव-विह्वलता के कारण मैना का कण्ठ अवरुद्ध हो गया। पार्वती ने उनकी मानसिक स्थिति को समझ कर स्वयं ही एक स्वप्न का उल्लेख करके उनकी इच्छा को स्वीकार

१. रामचरितमानस, बालकाण्ड, दोहा ६२, चौपाई १-२।
२. ,, ,, ,, ६४, चौपाई ४।
३. ,, ,, ,, ६५, चौपाई १।
४. ,, ,, ,, ६७, चौपाई ३।

१. रामचरितमानस, बालकाण्ड, दोहा ६७, चौपाई ४।
२. ,, ,, ,, ६९, चौपाई २।
३. ,, ,, ,, ७०, चपाई २।
४. ,, ,, ,, ७४, चौपाई १।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया। उसके पश्चात् वे माता-पिता को समझा कर तप करने के लिए वन में चली गयीं। तुलसीदास लिखते हैं :—

उरधरि उमा प्रानपति चरना।
जाइ बिपिन लागीं तपु करना॥
अति सुकुमार न तनु तपु जोगू।
पति पद सुमिरि तजेउ सब भोगू॥[१]

जब उमा का तप चरम सीमा पर पहुँच गया, तो आकाश से गंभीर ब्रह्मवाणी सुनायी दी।

भयउ मनोरथ सुफल तव, सुनु गिरिराजकुमारि।
परिहरु दुसह कलेस सब, अब मिलिहहि त्रिपुरारि॥[२]

तुलसीदासजी ने यहाँ राम और शिव के चरित्रों का परस्पर सम्बन्ध स्थापित किया है। पार्वती के जन्म और तप का समाचार शिव को राम ही देते हैं और वे पार्वती से विवाह करने के लिए भी शिव से प्रार्थना करते हैं :—

अब बिनती मम सुनहु शिव, जौं मो पर निज नेहु।
जाइ बिबाहहु, सैलजहि, यहि मोहि माँगे देहु॥[३]

जब शिव राम की आज्ञा मानकर पार्वती से विवाह करने को तैयार हो गये, तब सप्तर्षियों से उनकी भेंट हुई। शिव ने उन्हें आदेश दिया कि—

पारबती पहिं जाइ तुम्ह, प्रेम परिच्छा लेहु।
गिरिहि प्रेरि पठएहु भवन, दूरि करेहु संदेहु॥[४]

सप्तर्षियों ने पार्वती के पास जाकर तपस्या का कारण पूछा। इस प्रसंग में तुलसी ने अत्यन्त सरस संवाद की योजना की है। पार्वती कहती हैं—

नारद कहा सत्य सोइ जाना।
बिनु पंखन्ह हम चहहिं उड़ाना॥
देखहु मुनि अविवेक हमारा।
चाहिअ सदा सिवहि भरतारा॥[५]

१. रामचरितमानस, बालकाण्ड, दोहा ७४, चौपाई १।
२. ,, ,, दोहा ७४।
३. ,, ,, दोहा ७६।
४. ,, ,, दोहा ७७।
५. ,, ,, दोहा ७८।; चौपाई ४।

सप्तर्षि उत्तर देते हैं—

नारद सिख जे सुनहिं नर नारी।
अवसि होहिं तजि भवनु भिखारी॥
मन कपटी तन-सज्जन चीन्हा।
आपु सरिस सबही चह कीन्हा॥[१]

सप्तर्षियों ने शिव की निन्दा करके पार्वती के प्रेम की परीक्षा ली और कहने लगे—

अजहूँ मानहु कहा हमारा।
हम तुम्ह कहँ बस नीक बिचारा॥
अति सुन्दर सुचि सुखद सुसीला।
गावहिं बेद जासु जस लीला॥
दूषन रहित सकल गुन राखी।
श्रीपति पुर बैकुण्ठ निवासी॥[२]

इस संवाद के माध्यम से जहाँ एक ओर तुलसी ने पार्वती को पूर्व जन्म की कथा का स्मरण दिलाया है, वहीं दूसरी ओर उन पर विनोदपूर्ण व्यंग्य भी किया है, क्योंकि वे सीता का वेश बनाकर राम की परीक्षा लेने गयी थीं। किन्तु जब पार्वती का शिव को पति रूप में प्राप्त करने का दृढ़ निश्चय देखा तो वे उसकी महिमा का वर्णन करते हुए चरणों में शिर झुका कर चले गये।[३] उनकी प्रेरणा से हिमालय पार्वती को घर ले गए। जब सप्तर्षियों ने शिव को पार्वती के प्रेम की दृढ़ता बतलाई, तो वे मन को स्थिर करके राम का ध्यान करने लगे। इस प्रकार यहाँ तुलसी ने पुनः शिव और राम का सम्बन्ध स्थापित किया है। वे लिखते हैं :—

भये मगन शिव सुनत सनेहा। हरषि सप्त रिषि गवने गेहा॥
मनु थिर करि तब संभु सुजाना। लगे करन रघुनायक ध्याना॥

यहाँ पर तुलसीदास ने तारक-वध की कथा का पार्वती-विवाह की कथा से जोड़ा है। उन्होंने लिखा है कि उस समय तारक नाम का एक असुर था, जिससे पीड़ित होकर देवगण रक्षा के लिए, ब्रह्मा के पास पहुँचे। ब्रह्मा ने

१. रामचरितमानस, बालकाण्ड, दोहा ७९, चौपाई २।
२. ,, ,, दोहा ८६, चौपाई १-२।
३. ,, ,, दोहा ८१।
४. ,, ,, ,, ८३, चौपाई ३।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहा कि शिव से उत्पन्न पुत्र ही उनका वध कर सकता है और उसके अनुकूल इस समय अवसर भी है, क्योंकि सती ने पार्वती के रूप में जन्म लेकर उन्हें पाने के लिए तप किया है। शिव-पार्वती-विवाह के साथ काम-दहन की कथा भी जुड़ी हुई है। तुलसी ने उसका सूत्र यहाँ पर निम्नांकित पंक्तियों में प्रस्तुत किया है :—

पठवहु कामु जाहि सिव पाहीं।
करै छोभु संकर मन माहीं ॥
तब हम जाइ शिवहिं सिर नाई।
करवाउब विवाहु बरिआई ॥[१]

उसके पश्चात् देवताओं की इच्छा पूरी करने के लिए मदन प्रकट हुआ और अपने प्रभाव से उसने समस्त संसार को कामातुर बना दिया। जब शिव के निकट पहुँचा और उनके ध्यान को भंग करने लगा, तो क्रोध से उनका तृतीय नेत्र खुल गया, जिसकी अग्नि से उसे जला कर भस्म कर दिया। उसकी पत्नी रति विलाप करती हुई शिव के पास पहुँची तो उन्होंने कहा—

अब तें रति, तब नाथ कर होइहि नामु अनंगु।
बिनु बपु व्यापिहि सबहि पुनि सुनि निज मिलन प्रसंगु ॥

इस प्रसंग में तुलसी ने दो बातों की ओर संकेत किया है। प्रथम बात यह कि काम के प्रयत्न से शिव का ध्यान टूटा और दूसरी बात यह कि शिव के हृदय में क्रोध के साथ रति के प्रति करुणा उत्पन्न हुई, जिसके माध्यम से देवगण उन्हें पार्वती पर भी करुणा करने की प्रेरणा दे सके।

इस प्रकार अनुकूल भूमिका बन जाने पर देवताओं के प्रतिनिधि ब्रह्मा ने शिव से प्रार्थना की :—

सकल सुरन्ह के हृदय अस, संकर परम उछाहु।
निज नयनन्हि देखा चहहिं, नाथ तुम्हार बिबाहु ॥[१]

शिव ने प्रसन्न होकर अपनी स्वीकृति दे दी। उसके पश्चात् सप्तर्षियों ने हिमाचल के यहाँ से लग्न-पत्रिका लेकर ब्रह्मा के पास पहुँचा दी। जब ब्रह्मा ने उसे पढ़कर सबको सुनाया तो सर्वत्र हर्ष का वातावरण छा गया। शिव की बरात तैयार होने लगी। जब वर-यात्रा प्रारम्भ हुई, उस समय विष्णु को विनोद सूझा। शिव का वेश देखकर वे कहने लगे—

बर अनुहारि बरात न भाई।
हँसी करैहहु पर पुर जाई ॥[१]

उधर शिव भी विष्णु की मनोदशा को समझ गए। तुलसी ने लिखा है :—

मनही मन महेशु मुसुकाहीं।
हरि के बिंग्य बचन नहिं जाहीं ॥
अति प्रिय बचन सुनत प्रिय केरे।
भृंगिहि प्रेरि सकल गन टेरे ॥[२]

तुलसी ने बारात का बहुत तल्लीनता और रुचि के साथ वर्णन करके हिमाचल के घर होनेवाली स्वागत-व्यवस्था का भी विस्तार से चित्रण किया है। जब बारात हिमाचल के यहाँ पहुँची उस समय शिव के दल को देखकर सभी लोग भयभीत हो उठे। बालकों ने भाग कर माता-पिता को बतलाया—

कहिअ काह कहि जाइ न बाता।
जम कर धार किधौं बरिआता।
बरु बौराह बसहँ असवारा।
ब्याल कपाल बिभूषन छारा ॥[३]

तुलसी ने इस अवसर पर स्त्रियों की दशा का भी अच्छा चित्रण किया है। वे कहते हैं :—

कंचन थार सोह बर पानी।
परिछन चलीं हरहिं हरषानी ॥
बिकट बेष रुद्रहिं जब देखा।
अबलन्ह उर भय भयउ बिसेषा ॥
भागि भवन पैठीं अति त्रासा।
गये महेसु जहाँ जनवासा ॥
मैना हृदय भयउ दुखु भारी।
लीन्हीं बोलि गिरीसकुमारी ॥[४]

---

१. रामचरितमानस, बालकाण्ड, दोहा ८७।
२. ,, ,, ,, ८८।

१. रामचरितमानस, बालकाण्ड, दोहा ९३, चौपाई १।
२. ,, ,, ,, ९३, चौपाई ३।
३. ,, ,, ,, ९४, चौपाई ४।
४. ,, ,, ,, ९६, चौपाई २-३।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैना को अत्यन्त दुखी देखकर नारद ने पार्वती के पूर्व-जन्म की समस्त कथा संक्षेप में सुनाई, जिससे सबका भ्रम दूर हो गया। उसके पश्चात् वेद-विधि से शिव-पार्वती का विवाह सम्पन्न हुआ—

जस विवाह के विधि श्रुति गाई।
महा मुनिन्ह सो सब करवाई॥
गहि गिरीस कुस कन्या पानी।
भवहिं समरपैं जानि भवानी॥[१]

जब पार्वती शिव के साथ विदा होने लगीं, उस समय का तुलसी ने अत्यन्त हृदय-द्रावक चित्रण प्रस्तुत किया है। वे लिखते हैं :—

पुनि-पुनि मिलति परति गहि चरना।
परम प्रेमु कहु जाइ न बरना॥
सब नारिन्ह मिलि भेंटि भवानी।
जाइ जननि उर पुनि लपटानी॥[२]

हिमाचल से विदा लेकर जब शिव-पार्वती कैलाश पर पहुँच गये और वहाँ बहुत समय तक साथ रहे, तब पार्वती ने कार्तिकेय को जन्म दिया, तुलसीदासजी तारक-वध की कथा कहने में रुचि नहीं रखते थे, अतः उस प्रसंग को उन्होंने केवल इतना कहकर समाप्त कर दिया है—

तब जनमेउ षटबदन कुमारा।
तारकु असुरु समर जेहिं मारा॥
आगम निगम प्रसिद्ध पुराना।
षन्मुख जन्मु सकल जग जाना॥[३]

१—रामचरितमानस, बालकाण्ड, दोहा १०१, चौपाई १।
२— ,, ,, ,, १०२ चौपाई ४।
३— ,, ,, ,, १०३ चौपाई ४।

निष्कर्ष

इस अनुशीलन से स्पष्ट है कि रामचरितमानस शि काव्य-धारा की एक महत्त्वपूर्ण निधि है। उसमें विस्ता से राम के चरित का वर्णन होने पर भी उसके शि विधान ने उसे एक शिव-काव्य का रूप प्रदान कर दिया है काव्य के आरम्भ में सती-संशय, सती-दाह और पार्व विवाह के रूप में विस्तार से शिव-चरित का वर्णन क कवि ने आगे के समस्त रामचरित-वर्णन को शिव-पार्व संवाद बना दिया है, जिससे ऐसा प्रतीत होता है, मा विवाहोपरान्त शिव-पार्वती राम-कथा को अपने मनोरं के लिए कहते-सुनते हैं और सती को पूर्व जन्म में राम प्रति जो सन्देह था, शिव उसको नष्ट करना चाहते है काव्यान्त में कवि ने पार्वती को इस उपलब्धि तक पहुँ कर पूर्वोक्त तथ्य को पर्याप्त स्पष्ट भी कर दिया है।

काव्य-कला की दृष्टि से भी रामचरितमानस में उ लब्ध शिव-प्रसंग का अपना विशेष स्थान है। तुलसी शिव-कथा के अत्यन्त रमणीय प्रसंगों को खण्ड-काव्य शैली में प्रस्तुत किया है। सती-संशय से पार्वती-विव तक की जो कथा रामचरितमानस के बालकाण्ड में प्रस्तु हुई है, उसमें कुमारसंभव का पूर्णतः अनुकरण न होत अनेक मौलिकताएँ भी हैं। हृदय को प्रभावित करनेवा प्रसंगों को कवि ने बहुत दक्षता के साथ भावों के विवि रंगों से सजाया है। कवित्व की सरसता और कला सौन्दर्य सर्वत्र झलकता है। कवि ने शिव के प्रति भक्ति जो दृष्टिकोण अपनाया है, उसमें वह पूर्ण सफल हुआ है रामचरित को जिस सशक्त धार्मिक आधार की आवश्यक थी, वह इस शिव-काव्य में विद्यमान है। लोक-जीवन विभिन्न संस्कारों के आधार पर प्रसंगों का चित्रण कर कवि ने अपने वर्णनों को पर्याप्त मात्रा में लोक-ग्राह्य बना दिया है।

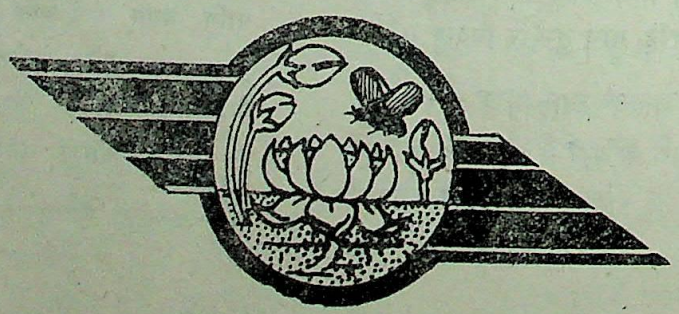

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'राम-प्रेम-पुर'—चित्रकूट से तुलसी का नाता

श्री रामप्यारे त्रिपाठी

तुलसीदास की जीवनी से यदि हम कुछ स्थानों को निस्संदिग्ध रूप से जोड़ सकते हैं, तो वह हैं अयोध्या, काशी और चित्रकूट। यहाँ हम चित्रकूट के सम्बन्ध में कुछ चर्चा करेंगे। तुलसीदास के ग्रन्थों में कुछ ऐसे छंद आते हैं, जिनसे यह पता चलता है कि उन्होंने चित्रकूट की यात्रा एक से अधिक बार की थी और वहाँ पर काफी समय तक निवास भी किया था। कब-कब उन्होंने चित्रकूट की यात्राएँ कीं, कितने दिन वहाँ निवास किया, इसे ठीक-ठीक जान लेने का कोई सूत्र उपलब्ध नहीं है। हम अपने उपर्युक्त कथन के प्रमाण में कुछ ऐसे छंद उद्धृत करते हैं जो कथा-प्रसंग के नहीं है और जो स्वतंत्र रूप से चित्रकूट से तुलसी का सम्बन्ध स्थापित करते हैं :—

चित्रकूट पय तीर सो सुरतरु बास।
राम लखन सिय सुमिरहु तुलसीदास॥
पय नहाइ फल खाहु परिहरिय आस।
सीय राम-पद सुमिरहु तुलसीदास॥

—बरवै रामायण, उत्तर०, ४३

तुलसी जौं राम सों सनेह साँचों चाहिये,
तो सेइए सनेह सों विचित्र चित्रकूट सो।

—कवितावली उत्तर०, १४१

भव भुअंग तुलसी नकुल डसत ग्यान हरि लेत।
चित्रकूट इक औषधी, चितवत होत सचेत॥

—दोहावली, १८०

तुलसी जो राम पद चाहिये प्रेम,
सेइय गिरि करि निरुपाधि नेम॥

—विनयपत्रिका, पद २३

सैल सृंग भवभंग हेतु लखु, दलन कपट-पाखंड-दंभ-दलु।
काम-दमन कामता-कल्प तरु सो जुग जुग जागत जगतीतलु।
तुलसी तोहि बिसेषि बूझिए एक प्रतीति, प्रीति, एकै बलु॥

—विनयपत्रिका, पद २४

इन छंदों से यह भी पता चलता है कि चित्रकूट में उन्होंने पयस्विनी नदी एवं कामता पर्वत का सेवन अवश्य किया था। निम्नलिखित सवैया चित्रकूट के हनुमान से भी तुलसी का सम्बन्ध स्थापित कर देता है :—

लागि दवारि पहार ठही लहकी कपि लंक जथा खर-खौंकी।
चारु चुवा चहुँ ओर चलैं, लपटैं-झपटैं सो तमीचर तौंकी॥
क्यों कहि जात महा सुखमा, उपमा तकि ताकत है कवि कौंकी।
मानों लसी तुलसी हनुमान हिये जग जीति जराय की चौंकी॥

—कवितावली, उत्तर० १४३

तुलसीदास का चित्रकूट जाना किस हेतु हुआ, इसका कुछ आभास ऊपर के छंदों से तो होता ही है, परन्तु इस सम्बन्ध में निम्नलिखित छंद विशेष विचारणीय हैं :—

सब सोच बिमोचन चित्रकूट।
कलिहरन करन कल्यान-बूट।

—विनय० पद २३

अब चित चेति चित्रकूटहि चलु।
कोपितकलि, लोपित मंगल मगु, बिलसत बढ़त मोहमाया मलु॥

—विनय० पद २४

इन पद्यांशों से तो यही कहा जा सकता है कि तुलसीदास ने अपने चित्त को सचेत करते हुए कभी कहा था कि "कलि ने कुपित होकर मंगल मार्गों का लोप कर दिया है, माया, मोह और पाप बढ़ रहे हैं, अतः तू अब चित्रकूट को ही चल। कब ऐसा कहा, कहाँ पर कहा, और "कुपित कलि", की क्या-क्या करतूतें थीं, इनका पता लगा-लेना सरल नहीं। तुलसीदास को कभी कलि की कुचालों से ऊब-कर अवध से काशी जाना पड़ा था। इस प्रसंग में भवानी-दास का कहना है :—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब थहि बिधि विपुल बिताइ काल।
कछु दृष्टि परचौ कलि को कुचाल॥
हिंसादिक बाधक भक्त रीति।
शुचि मुक्तिपुरी बिच लखि अनीति॥
तब जगनायक सों बिनै ठानि।
यह देखि न जात दयानिधान।
भइ आज्ञा, यह युग-धर्म नीति।
यहि बिधि प्रपंच की राह रीति॥
जो सहि न जात यह कलि कुपास।
निज काशी मो कीजै निवास॥
सुनि आये काशी हरन शोक।
भये अति प्रसन्न शोभा बिलोक॥

—गोसाई चरित्र।

अनुमान किया जा सकता है कि काशी में "कलि की कुचालों" से घबराकर उन्होंने चित्रकूट की राह ली। "विनय पत्रिका" के इन पदों का "विनय" से कोई सीधा मेल नहीं है। ये पद कभी स्वतंत्र रूप से रचे गये थे, पीछे कभी इन्हें "विनय" में मिला दिया गया। इतना अवश्य है कि तुलसीदास "कलि की कुचालों" को भूले नहीं, उसका उल्लेख बार-बार करते रहे। "विनय" में उन्होंने आगे पुनः कहा है :

चित्रकूट गये लखि कलि की कुचाल सब।

—विनयपत्रिका, पद २६६

"चित्रकूटहिं चलु" से यह भी व्यंजना होती है कि इससे पहले भी वह चित्रकूट एकाध-बार जा चुके थे। तुलसी ने चित्रकूट को किस रूप में देखा, इसे जानने के लिए उनकी निम्नलिखित पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं :—

लखन दीख पय उतर करारा।
चहुँ दिसि फिरेउ धनुष जिमि नारा॥
नदी पनच सर समदम दाना।
सकल कलुष कलि साउज नाना॥
चित्रकूट जनु अचल अहेरी।
चुकइ न घात मार मुठ भेरी॥

—मानस, द्वितीय सोपान १३३

यही बात कवितावली की निम्नलिखित घनाक्षरी में भी कही गयी है :—

मोह बन कलिमल पल-पीन जानि जिय,
साधु गाय बिप्रन के भय सो नेवारिहै।
दीन्हीं रजाइ राम, पाइ सो सहाय लाल,
लखन समर्थ बीर, हेरि हेरि मारिहै॥
मंदाकिनी मंजुल कमान असि, बान जहाँ,
बारि धार-धीर धरि सुकर सुधारिहै।
चित्रकूट अचल अहेरि बैठ्यो घात मानों,
पातक के ब्रात घोर सावज संहारिहै॥

—कवितावली १

"अचल अहेरी चित्रकूट" साधु-गाय-विप्रन, के भय निवारण करनेवाला है। उसका निशाना अचूक है। कलि के समस्त कलुष रूपी सौंजा (शिकार योग्य पशु) आमने-सामने से मारनेवाला है। फिर यदि तुलसी उसकी शरण गये तो क्या आश्चर्य ? 'साधु-गाय-विप्रन' क्या उनकी गणना नहीं की जा सकती ?

× × ×

तुलसी कभी लोकरीति में भी पड़े थे। कहना उन्हीं का है कि :—

बालपने सूधे मन राम सनमुख भयों,
राम नाम लेत माँगि खात टूक टाक हौं।
पर्यौ लोकरीति में पुनीत प्रीति सम राय,
मोह बस बैठों तोरि तरक तराक हौं॥

—बाहुक

राम राय की पुनीत प्रीति को तोड़ बैठने की वेदना तुलसी को बराबर सताती रही है :

जानि पहिचानि मैं बिसारे हौं कृपानिधान,
एतो मान ढीठ हौं उलट देत खोरि हौं।
करत जतन जासों जोरिबे को जोगी जन,
तासों क्यों हूँ जुरी सो अभागों बैठों तोरिहौं।

—विनय० २४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९७३

यह तो निश्चित है कि राम से नाता जोड़ने के बाद ही कभी तुलसी "लोकरीति" में पड़े। "लोकरीति" में पड़ना विवाह करके गृहस्थ-जीवन में फँसने के अतिरिक्त और क्या हो सकता है? कहाँ "लोकरीति" में पड़े, इस प्रश्न के उत्तर में निम्नलिखित पंक्तियाँ हमारी सहायता करती हैं :—

ज्यों ज्यों निकट भयों चहौं, कृपालु त्यों त्यों दूरि परयों हौं।
तुम चहुँ जुग रस एक राम हौंहूं रावरों जदपि अघ
अवगुननि भरयो हौं ॥

बीच पाइ नीच बीच ही छरनि छरयो हौं।
हौं सुबरन कुबरन कियों, नृपतें भिखारि करि सुमति तें
कुमति करयौ हौं ॥

अगनित गिरि कानन फिरयौं, बिनु आगि जरयौ हौं।
चित्रकूट गये लखि कलि की कुचाल सब, अब अपडरनि
डरयौ हौं ॥

—विनय पद २६६

इन पंक्तियों के सहारे इतना ही कहा जा सकता है कि चित्रकूट के संसर्ग में ही तुलसी राम से दूर पड़ गये और बीच में ही वे छरे गये तथा अपने ही "अपडरों" से उन्हें डरना पड़ा। यह अपडर क्या था, इसका कुछ सूत्र "मानस" में भी मिलता है :—

अति बड़ि मोरि ढिठाई खोरी।
सुनि अघ नरकहुँ नाक सकोरी ॥
समुझि सहम मोहि अपडर अपने।
सो सुधि राम कीन्ह नहि सपने ॥
सुनि अवलोकि सुचित चख चाही।
भगति मोरि मति स्वामि सराही ॥
कहत नसाइ होइ हिय नीकी।
रीझत राम जानि जन जीकी ॥
रहत न प्रभु चित चूक किये की।
करत सुरति सयबार हिये की ॥

—मानस, प्रथम सोपान २९

तुलसी की वह 'ढिठाई' तथा 'खोरी" क्या थी, और उनका वह अघ क्या था जिसे सुनकर नरक ने भी नाक सिकोड़ ली? जिसे सोचकर उन्हें अपने ही 'अपडर' से सहमना पड़ा, वह अपडर क्या था? इसे समझने के लिए इसी प्रसंग की आगे की पंक्तियों पर ध्यान देना होगा :—

जेहि अघ बधेउ ब्याध जिमि बाली।
फिरि सुकंठ सोइ कीन्हि कुचाली ॥
सोइ करतूति बिभीषन केरी।
सपनेहु सो न राम हिय हेरी ॥

जो 'अघ' बालि में था, फिर जो 'कुचाल' सुग्रीव ने की और फिर जो 'करतूत' विभीषण ने की क्या वही 'ढिठाई' हम तुलसी की नहीं मान सकते? प्रसंग से तो ऐसा ही लगता है क्योंकि आगे वह पुनः कहते हैं :

राम निकाई रावरी, है सबही को नीक।
जौ यह साँची है सदा, तौ नीको तुलसीक ॥

एहि बिधि निजगुन दोष कहि, सबहि बहुरि सिरुनाइ।
बरनँउ रघुबर बिसद जसु, सुनि कलि कलुष नसाइ ॥

'बालि', 'सुकंठ' एवं विभीषन सबमें एक ही दोष है और वह है पर-स्त्री भोग। तो क्या वही दोष 'तुलसी' में भी है? तुलसी के विवाह की कथा कही अन्य प्रकार से जाती है, परन्तु स्वयं तुलसी के उल्लेखों एवं उनकी परिस्थितियों से उसका मेल नहीं बैठता। यह बात कुछ समझ में नहीं आती कि गृहस्थ माता-पिता ने गृहस्थी जमाने के लिए तुलसी का विधिवत् पाणिग्रहण-संस्कार अपनी कुँवारी कन्या से किया होगा। प्रणय के रूप में ही उसका सूत्रपात होना अधिक संगत लगता है। चित्रकूट ही में उसका संयोग बना, तभी तो उन्हें कहना पड़ा :—

चित्रकूट गये लखि कलि की कुचाल सब,
अब अपडरनि डरयो हौं।

परम्परा से भी यही प्रसिद्ध है कि उसी क्षेत्र में तुलसी का विवाह हुआ था। 'लोकरीति' में पड़ने के उपरान्त क्या हुआ, इसका उत्तर हम तुलसी से ही क्यों न पूछें?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'लोकरीति' में पड़कर वह राम राय की पुनीत-प्रीति को मोहवश बड़ी शीघ्रता से तोड़ बैठे, यह बताते हुए वह आगे कहते हैं :—

खोटे खोटे आचरन आचरत अपनायो,
अंजनीकुमार सोध्यों राम पानि पाक हौं ।।

—बाहुक ४०

खोटे-खोटे आचरण करते हुए भी अंजनीकुमार ने राम के पवित्र हाथों द्वारा उनका उद्धार कराया। 'विनय-पत्रिका' में यही बात इस रूप में आई है :—

नये नये नेह अनु भए देह-गेह बसि,
परखे प्रपंची प्रेम परत उघरि सो ।
सुहृद-समाज दगाबाजि ही को सौदा सूत,
जब जाको काज तब मिलै पाय परिसों ।।
सीतापति सारिखों न साहिब सील निधान,
कैसे कल परै सठ बैठों सो बिसरि सो ।।
जीव को जीवन प्रान प्रान को परम हित,
प्रीतम पुनीत कृत नीचन निदरि सो ।।

—विनय० पद २६४

'सोध्यों राम पानि पाक हों', ही यहाँ 'प्रीतम पुनीत कृत' हो गया है। अंजनीकुमार ने राम के पवित्र हाथों कैसे तुलसी का उद्धार कराया, इस सम्बन्ध में प्रसिद्ध है कि चित्रकूट में ही हनुमान की प्रेरणा से तुलसी को राम के दर्शन हुए। इसके दो रूप प्रचलित हैं। एक अहेरी-वेश में, दूसरे चंदन लगाते हुए। 'प्रीतम पुनीतकृत नीचन निदरि सो' के आगे जब तुलसी कहते हैं :—

तुलसी तोको कृपालु जो कियो कोसल पाल,
चित्रकूट को चरित्र चेतु चित करि सो—

तो 'चित्रकूट को चरित्र' का रहस्य भी समझ में आ जाता है। 'लोकरीति' में पड़कर 'घर बसाकर' तुलसी चित्रकूट में ही रहे या कहीं अन्यत्र, इसका पता पाना तुलसी से सम्भव नहीं। अन्य सूत्र खरे नहीं हैं। राजापुर की जनश्रुति कहती है कि तुलसीदास का परिचय राजापुर से ८ महेवा गाँव के एक ब्राह्मण घर में विवाह के कारण हु जो तहसील सिराथू जिला इलाहाबाद में है। जनश्रुति सत्य का अंश कितना है, पता नहीं। तुलसी का दोहा है :—

घर कीन्हें घर जात है, घर छाड़े घर जाय।
तुलसी घर बन बीच ही, राम प्रेम पुर छाइ ।।

—दोहावली

यह 'राम-प्रेम-पुर' है कहाँ ? इसके लिए हमें गीताव का सहारा लेना पड़ता है। 'गीतावली' में चित्रकूट सम्ब ८ पद मिलते हैं, और उसमें राम और सीता के प्रेम झाँकी देखने को मिलती है। यहाँ यौवन नये साँचे ढलता है, अलिंगिनी, पुर-पुरंगिनी आदि उन्मत्त हुए राम शोभा का आनन्द लेते हैं। सभी ऋतुओं में ऋतुराज व का प्रभाव बना रहता है। कला-निधान राम सीताजी अंगप्रत्यंगों पर धातुओं से पत्र-रचना करते हैं, और फलों आभूषण बनाते हैं। कमलनयन राम अपने ही हाथों नवीन और कोमल पत्तों की शय्या रचते हैं, क्योंकि उ परस्पर प्रेम-रसपान की प्यास है। यहाँकी शोभा की उप काम केलि-वाटिका या नन्दन-वन से देते हुए कवि लज्जा अनुभव करते हैं। लक्ष्मण कहते हैं कि हे रघुनन्दन ! व वन का समाज ऐसा लग रहा है मानों कामदेव के नगर उसका प्रिय सुहृद ऋतुराज बसंत आनन्द मनाने आया है अथवा चित्रकूट पर आपका अधिक अनुराग देखकर मान अपने सखा सहित कामदेव फाग खेलने आया हो। अपन क्रीड़ा में ही कामदेव ने सुर-असुर-नाग को जीत लिया है और हठपूर्वक सिद्ध और मुनियों के पीछे लगा हुआ है उसने अपने मंत्री कलियुग के सहित विश्व को अपने अधिका में कर लिया है और विरहियों पर नित्य नई मार पड़ती है सिद्ध तथा साधकों को ललकारकर दंड दिया जाता है सिद्ध-मुनियों के साथ क्या तुलसी भी वही काम शिकार हुए ?

'काम केलि-वाटिका' में राम और सीता के 'माधुर्य विलास हास' का आनन्द लेना हो तो 'गीतावली' अयोध्या काण्ड के छंद संख्या ४३ से ५० का अध्ययन करना चाहिये। ऊपर के पैराग्राफ में उसका सार-मात्र दिया गया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। उसमें प्रकृति का संश्लिष्ट चित्रण भी मिलता है, जो अन्यत्र दुर्लभ है। यह चित्रण तुलसी के चित्रकूट-प्रेम को अमर कर देता है। इन छंदों के परिशीलन से जो विशेष बात निकलती है वह यह है कि इनके आधार पर हम सरलता से चित्रकूट को 'राम-प्रेम-पुर' कह सकते हैं और तुलसी के उक्त दोहे में आये 'राम-प्रेम-पुर' का भाव खुल जाता है। राम और सीता के 'माधुरी विलास-हास' में क्या तुलसी और उनकी मोहनी का कुछ सहयोग नहीं माना जा सकता? लगता तो यही है कि जो काम 'हठि सिद्ध मुनिन के पंथ' लगा था और जो 'डांड़ियत सिद्ध साधक प्रचारि' था, वही तुलसी के पीछे भी चित्रकूट में ही लग गया, और तभी उन्हें कहना पड़ा—

चित्रकूट गये लखि कलि की कुचाल सब,
अब अपडरनि डरचो हौं।

तभी उन्होंने यह भी कहा :—

चीन्हों चोर जिय मारिहै, तुलसी सो कथा सुनि,
प्रभुसों गुदरि निबरचौं हौं।

अस्तु, 'घर कीन्हें' 'घर जात' वाले दोहे में तुलसी की आप-बीती बात का भी पता चलता है। प्रतीत यही होता है कि घर-वन के बीच 'रामप्रेम' पुर—चित्रकूट में ही तुलसी मध्यम मार्ग का अनुसरण करने लगे।

गीत

डा० कमलाकान्त 'हीरक'

आँसुओं से फिर लिखूँगा आज मैं अपनी कहानी।
विरह की सीमा नहीं जो दग्ध अंतर में छुपा लूँ
अश्रुकण से धुल रहे पद चिह्न पलकों पर उठा लूँ
सिसकते मधुमास की प्रतिध्वनि सदृश तूफान पल में
मूक-संसृति पृष्ठ पर लिख गीतमय जीवन बना लूँ
स्नेह-लौ की ज्योति में है झिलमिलाती चिर-निशानी।

स्वर अपरमित में कभी ना बँध सका विश्वास मेरा
तिमिर-सागर में नियति का डूबता मधुमय सबेरा
शिथिल कम्पनहीन स्वप्निल भावनाओं की तरी में
द्वंद्व होता औ व्यथामय प्राण देता नित्य फेरा
क्षार जलकर हो गया संकल्प तन में शेष पानी।

प्रात सुख का सृजन-क्षण अनगिन दुःखों में झूलता है
जन्म का अभिशाप शैशव कंटकों में फूलता है
एक क्या सौ-सौ युगों से तारकों का मूक मेला
जुड़ रहा फिर भी हमी से 'सृष्टि-लय' क्या पूछता है
मुस्कराकर भोग मैं पाया नहीं अपनी जवानी।
आँसुओं से फिर लिखूँगा आज मैं अपनी कहानी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'रामचरितमानस' की धर्म-भावना

डा० राजेश्वरप्रसाद चतुर्वेदी, एम० ए०, पी-एच० डी०, डी० लिट्०

गोस्वामी तुलसीदास प्रणीत 'रामचरितमानस' का तात्त्विक रूप हृदय का विषय है। इसका महत्त्व बौद्धिक विवेचना का विषय न होकर अनुभूति का विषय है। अनुभूति व्यक्ति के चेतना विकास के स्तर अनुरूप होती है। इसके लिए श्रद्धा और विश्वास का होना अनिवार्य है। 'रामचरितमानस' के सबसे अधिकारी वक्ता एवं श्रोता शिव-पार्वती श्रद्धा-विश्वास रूप माने गये हैं—

भवानीशंकरौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तःस्थमीश्वरम्॥

'रामचरितमानस' में यद्यपि साहित्य, समाजनीति, राजनीति आदि सबकी चर्चा उपलब्ध होती है, तथापि यह इनमें किसीका ग्रन्थ नहीं है। यह एक धार्मिक ग्रन्थ है जिसमें भगवान् राम की भक्ति की प्रतिष्ठा की गयी है।

गोस्वामी तुलसीदास के आविर्भाव काल में विदेशी आक्रमणकारी मुगल शासक हिन्दू समाज के ऊपर मनमाने ढंग से अत्याचार कर रहे थे। यहाँके हिन्दू राजाओं ने मुगल शासकों के सम्मुख घुटने टेक दिये थे। सामान्य जनता अवतारवाद के प्रति शंकालु हो उठी थी। गज की टेर सुनकर आनेवाले खरारि और द्रौपदी की पुकार सुनकर आने वाले मुरारि के दर्शन दुर्लभ हो रहे थे। हिन्दू जनता के मन में परित्राणाय साधूनाम् और विनाशाय दुष्कृताम् अवतार धारण करनेवाले विष्णु अवतार के प्रति विश्वास नहीं रह गया था क्योंकि उनकी आँखों के सामने ही देव-मन्दिर गिराए जाते थे तथा नारियों के सतीत्व का अपहरण किया जाता था और फिर भी भगवान् उनके रक्षार्थ प्रकट नहीं हो रहे थे। गोस्वामीजी ने भगवान् के प्रति इस अविश्वास के निराकरण के लिए ही वस्तुतः 'रामचरितमानस' की रचना की थी।

'रामचरितमानस' का उपक्रम इस प्रकार होता है कि पार्वती जी शिवजी से कतिपय प्रश्न करती हैं। शिवजी उनके उत्तर देते हैं। बस यही रामचरितमानस का वस्तु-विस्तार है। पार्वतीजी का प्रथम प्रश्न यह है कि भगवान् क्यों किसलिए तथा किस प्रकार जन्म लेते हैं—

प्रथम सो कारण कहहु विचारी।
निर्गुण ब्रह्म सगुण बपुधारी॥

पार्वतीजी के इस प्रश्न के उत्तरस्वरूप भगवान् शिव भी भारतीय अवतारवाद का पूर्ण विवेचन कर डालते हैं। इस विवेचन का सारांश यह है कि निर्गुण ब्रह्म और सगुण ब्रह्म वस्तुतः अभिन्न हैं, वे सापेक्ष हैं। जिस प्रकार अन्धकार के बिना प्रकाश की चर्चा अर्थहीन है, उसी प्रकार निर्गुण ब्रह्म को समझने के लिए सगुण ब्रह्म की चर्चा अनिवार्य है—

ज्ञान कहे अज्ञान बिनु, तम बिनु कहे प्रकास।
निर्गुण कहे सगुन बिनु, सो गुरु तुलसीदास॥

निर्गुण ब्रह्म और सगुण ब्रह्म अन्धकार और प्रकाश की भाँति सापेक्ष हैं—

एक दारुगत देखिए एकू। पावक सम जुग ब्रह्म विवेकू।

निर्गुण ब्रह्म यदि काष्ठ में व्याप्त अग्नि के सदृश है तो सगुण ब्रह्म की समता लोक में प्रकट अग्नि, उसके व्यक्त स्वरूप के साथ की जा सकती है। गोस्वामीजी की स्थापना है कि ज्ञान के क्षेत्र में जो एकत्व (unity) है, व्यवहार के क्षेत्र में वही 'प्रेम' है। सर्वव्यापी अव्यक्त ब्रह्म ही 'प्रेम' के रूप में व्यक्त ब्रह्म बनता है—

व्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुण विगत विनोद।
जो अज भगति प्रेम बस कौसिल्या के गोद॥

जहाँ प्रेम और सदाचार का व्यवहार है, वहीं विश्व चेतना रूप भगवान् राम की लीलास्थली अयोध्या (युद्ध रहित भूमि) है। "मद्भक्तां यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद" का भी यही अभिप्राय है।

'रामचरितमानस' भारतीय पौराणिक परम्परा का ग्रन्थ है। भारतीय पुराण वस्तुतः रूपक काव्यग्रन्थ हैं जिनके अन्तर्गत प्रतीकात्मक शैली में तत्त्व-ज्ञान का निरूपण किया गया है। पौराणिक पात्र व्यक्ति न होकर चेतना-विकास के विभिन्न स्तरों के प्रतीक हैं। प्रत्येक पात्र का नामकरण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चेतना-विकास के स्तर-विशेष का द्योतक होने के कारण अभिप्राय गर्भित है। राम प्रत्येक परमाणु में व्याप्त चेतना-शक्ति हैं। शिव लोककल्याण के प्रतीक हैं, पार्वती पर्वत-पुत्री होने से भौतिक समृद्धि की प्रतीक हैं, भौतिक समृद्धि जब लोककल्याण के प्रति उन्मुख होती है, तभी विश्वव्यापी चेतना स्वरूप लोक रंजक राम का प्रादुर्भाव होता है। 'रामचरितमानस' के उपक्रम का यही रहस्य है—

रचि महेस निज मानस राखा।
पाइ सुसमउ सिवा सन भाखा।
तातें रामचरित मानस बर।
धरेउ नाम हियँ हरि हरषि हर।

तुलसी-प्रणीत 'रामचरितमानस' चतुर्विधि कहा जाता है। गोस्वामीजी ने ग्रन्थ का उपक्रम करते हुए लिखा है कि नानापुराणनिगमागमसम्मतं यद् रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि। अर्थात् रामायण की इस विषय वस्तु में वेद, शास्त्र तथा पुराण की परम्परा का निर्वाह है और इसके अतिरिक्त भी कुछ इधर-उधर की सामग्री है।

चतुर्विधि रामचरितमानस के चार वक्ता हैं—शिव, कागभुशुंडि, याज्ञवल्क्य तथा तुलसीदास। तदनुरूप चार श्रोता हैं—पार्वती, गरुड़, भरद्वाज तथा संतजन। 'मानस' के चारों घाटों पर रामचरित की कथा होती है। प्रत्येक घाट पर वक्ता-श्रोता उपस्थित हैं। वक्ता-श्रोता की ये चार जोड़ियाँ इस प्रकार हैं—शिव-पार्वती, कागभुशुंडि-गरुड़, याज्ञवल्क्य-भरद्वाज तथा तुलसीदास और संतगण। वेद के सामान्यतत्व के अनुसार परब्रह्म राम की कथा का निरूपण शिव करते हैं, शास्त्र-सम्मत साधना-पद्धति पर दृष्टि रखकर कागभुशुण्डि विष्णु के अवतार राम की कथा का वर्णन करते हैं, दाशरथि राम की लोकविश्रुत कथा याज्ञवल्क्य कहते हैं और अवतार प्रसंगों एवं प्रासंगिक कथाओं की चर्चा चौथे घाट पर गोस्वामी तुलसीदास कहते हैं। 'रामचरितमानस' के कथा प्रबन्ध का यही सौष्ठव है कि प्रत्येक श्रोता अपने विकास-स्तर के अनुरूप रामचरित का सुधा-पान करने में समर्थ होता है।

मानव-चेतना को विकास-क्रम के अनुसार स्थूलतः चार वर्गों में विभाजित किया जा सकता है; यथा—मूलवृत्ति (instinct), आवेग (impulse), बौद्धिकता (intelligence) और अन्तर्ज्ञान (intuition), इन्हींके अनुरूप मानव-समाज का श्रेणी-निर्धारण भी किया जा सकता है। गोस्वामी जी ने चारों प्रकार के व्यक्तियों के लिए राम-कथा के कथन-श्रवण की व्यवस्था की है। प्रत्येक व्यक्ति अपने विकास-स्तर के अनुसार अपने मनोनीत घाट पर जाकर रामचरित-सुधा का श्रवण कर ले। उसको राम-कथा में रस आ ही जाएगा—

रामकथा जे सुनत अघाहीं। रस विशेष पावा तिन नाहीं॥
....
श्रोता सुमति सुसील सुचि कथा रसिक हरिदास।
पाइ उमा अति गोप्यमपि सज्जन करहिं प्रकास॥

समाज के व्यक्तियों के उक्त चार वर्ग ही गोस्वामीजी के चार वर्ग हैं। निम्नतम विकास-स्तर पर स्थित व्यक्ति मजदूर यानी शूद्र है और उच्चतम विकास-स्तर पर स्थित मनुष्य ज्ञानी अर्थात् ब्राह्मण है। समसामयिक सामाजिक व्यवस्था एवं परम्परा के अनुसार गोस्वामीजी मजदूरी करनेवाले शूद्र को ज्ञानी ब्राह्मण के समकक्ष पूजनीय नहीं मानते हैं, यद्यपि साधना के क्षेत्र में सब समान हैं—

भगति हीन विरंचि किन होई।
सब जीवहु सम प्रिय मोहि सोई॥
भगतिवंत अति नीचउ प्रानी।
मोहि प्रानप्रिय असि मम बानी॥

टुकड़े डालकर वोट प्राप्त करने की दृष्टि से प्रत्येक अवसर पर विशेषाधिकार प्रदान करने की परम्परा गोस्वामीजी को मान्य नहीं है। साधना की दृष्टि से वह प्रत्येक वर्ग से समान निष्ठापूर्वक कर्तव्य-पालन की अपेक्षा करते हैं। दृष्टव्य यह है कि 'रामचरितमानस' में जिनको राम का सर्वाधिक श्रेष्ठ भक्त बताया गया है, वे सब निम्नवर्ग, शूद्र वर्ग, सेवा करके पेट पालनेवाले वर्ग में उत्पन्न प्राणी हैं। गुह निषाद, शबरी, गिद्धराज जटायु और कागभुशुण्डि इसके ज्वलंत उदाहरण हैं। 'रामचरितमानस' को आद्यन्त पढ़ने पर हम देखते हैं कि केवल केवट ही भगवान् राम के मर्म को जानता है, अन्य कोई नहीं। शिवजी कहते हैं 'उमा मरम यह काहु न जाना।' गोस्वामीजी कहते हैं—'लछिमन हूँ यह मरम न जाना।' 'अथवा जाना मरम न मात पिता हूँ।' परन्तु केवट कहता है कि मैं तुम्हारा मर्म जानता हूँ—

CC-0. In Public Domain, Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माँगी नाव न केवट आना।
कहिय तुम्हार मरम मैं जाना॥

और वह 'मर्म' को प्रकट करते हुए कहता है कि—

चरन कमल रज कहँ सब कहई।
मानुष करन मूरि कछु अहई॥

अर्थात् चरणों से उत्पन्न शूद्र-वृत्तिरूपी सेवाभाव में कुछ ऐसी शक्ति है, जो मनुष्य को मानव बना देती है। निःस्वार्थ भाव से, अर्थ निरपेक्ष भाव से श्रम करनेवाला निषाद सच्ची सेवा का अधिकारी बना था और वह विश्व-चेतना का संस्पर्श प्राप्त कर सका था। विश्व-चेतना का अनुभूति लाभ ही वस्तुतः राम के वास्तविक रूप का साक्षात्कार है, जो मानव-जीवन की स्पृहणीय उपलब्धि है—

कहेउ कृपाल लेहि उतराई। केवट चरन गहे अकुलाई॥
नाथ आजु मैं काह न पावा। मिटे दोष दुख दारिद दावा॥
बहुत काल मैं कीन्हि मजूरी। आजु दीन्ह बिधि बनि भलि भूरी॥

× × ×

बहुत कीन्ह प्रभु लखन सियँ नहिं कछु केवट लेइ।
बिदा कीन्ह करुनायतन भगति बिमल बरु देइ॥

सेवाधर्म की रसात्मक अनुभूति वस्तुतः 'रामचरित-मानस' के अन्तर्गत प्रतिपाद्य भक्ति का मूलमन्त्र है। भगवान राम स्वयं कहते हैं—

सो अनन्य मति जाके मति न टरइ हनुमंत।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत॥

सेवा के अवसर पग-पग पर उपस्थित हैं। हम दो मीठे शब्द कहकर यदि किसी दुखिया के आँसू पोंछ दें—यह बहुत बड़ी सेवा है। हम किसी भूले-भटके को रास्ता बता दें, यह भी सेवा है। कोलकिरात से लेकर सम्पाति और स्वयंप्रभा इसी प्रकार की सेवा करके कल्याणपद प्राप्त करते हैं। हम यदि कुछ भी न बन पड़े, तो कम से कम किसीका जी तो न दुखाएँ, किसीकी कोई हानि तो न करें। यह भी सेवा का एक रूप है। कोल किरातों ने इसी प्रकार की सेवा के द्वारा प्रभु को अपने वश में करने की बात कही है—

यह हमार अति बड़ सेवकाई। लेहिं न भूषन बसन चुराई॥

अपने विकास-स्तर के अनुरूप निर्धारित मान्यताओं के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति सेवा के अवसर निकाल सकता है। केवल यह सोचना अपेक्षित है कि जिस समाज के बीच रह कर मैं इतना बड़ा हुआ हूँ उसके प्रति मैं क्या कुछ कर सकता हूँ?

समाज-सेवा की भाव-भूमि पर ही भारतीय धर्म-साधना का विधान हुआ है—

अष्टादश पुराणेषु व्यासस्य बचनद्वयम्।
परोपकारः पुण्याय पापायपरपीडनम्॥

गोस्वामीजी प्रणीत 'रामचरितमानस' की धर्म-भूमि का आधार भी लोक-रंजन है—

परहित सरिस धर्म नहिं भाई। परपीड़ा सम नहिं अधमाई॥

'रामचरित मानस' में प्रतिपादित धर्म किसी सम्प्रदाय विशेष से सम्बन्धित नहीं है। उसका सम्बन्ध केवल मानवोचित कर्तव्यों के प्रति आस्था एवं निष्ठा से है। गोस्वामीजी का 'धर्म' वाह्योपचारों पर आधारित तथाकथित धर्मों के सार तत्त्व 'धर्म' पर अवलम्बित हैं। वह वस्तुतः 'धर्मों का धर्म है। वह धर्म किसी व्यक्ति के द्वारा गौरवान्वित होनेवाला धर्म नहीं है, वह प्रत्येक व्यक्ति को गौरव प्रदान करनेवाला धर्म है। वह ऐक्य का प्रतिपादक एवं अभेद-बुद्धि की प्रतिष्ठा करनेवाला धर्म है। भक्त विभीषण के प्रति 'धर्मरथ' का निरूपण करते हुए भगवान् राम का कथन है कि—

सखा धर्ममय असरथ जाकें। जीतन्ह कहँ न कतहुँ रिपु ताकें॥
महा अजय संसार रिपु जीति सकइ सो बीर।
जाकें अस रथ होइ दृढ़ सुनहु सखा मतिधीर॥

तुलसी के इस धर्मरथ का निर्माण करनेवाले अवयव मानवोचित समस्त उदात्त गुण हैं—

सौरज धीरज तेहिरथ चाका।
सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका॥
बल बिबेक दम परहित घोरे।
छमा कृपा समता रजु जोरे॥
ईस भजनु सारथी सुजाना।
बिरति चर्म संतोष कृपाना॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दान परसु बुधि सक्ति प्रचंडा ।
बर बिग्यान कठिन कोदंडा ।।
अमल अचल मन त्रोन समाना ।
सम जम नियम सिलीमुख नाना ।।
कवच अभेद्य बिप्र गुरुपूजा ।
यहि सम बिजय उपाय न दूजा ।।

तुलसी का 'धर्म' किसी व्यक्ति पर विजय की बात नहीं करता है, वह आत्म-विजय की प्रेरणा प्रदान करता है, वह व्यक्ति को नहीं, अवगुणों को प्रबलतम शत्रु मानता है। भारतीय परम्परा लोहे की विजय की नहीं, धर्म की विजय की परम्परा रही है।

इस धर्म-पालन के क्षेत्र में कामना का प्रवेश नहीं है, वहां भुक्ति और मुक्ति दोनों ही त्याज्य हैं। मोक्ष की कामना अथवा कामना-रहित हो जाने की कामना सबसे बड़ी कामना है। इस कारण भक्तजन मोक्ष की कामना नहीं करते हैं। वे तो बस अनन्त सौन्दर्य, अनन्त शक्ति और अनन्त शील के सागर राम के रूप तरंगों के आनन्द को ही जीवन का सर्वस्व मानते हैं। निष्ठापूर्वक धर्म-पालन के द्वारा कागभुशुण्डि भगवान् राम के मुख में प्रवेश करते हैं। वहां उन्हें विश्व-चेतना का संस्पर्श प्राप्त होता है। वह कृतकृत्य हो जाते हैं। वह भगवान् राम के मुख के बाहर आने पर कहते हैं कि—

जो नहिं देखा नहिं सुना जो मनहुँ न समाइ ।
सो सब अद्भुत देखउँ बरन कवन बिधि जाइ ।।

कागभुशुण्डि जी द्वारा राम-रूप का दर्शन सर्वथा श्रीमद्भगवद्गीता में वर्णित अर्जुन के विराट् रूप दर्शन के समान है; यथा—

कोटिन्ह चतुरानन गौरीसा ।
अगनित उडगन रबि रजनीसा ।।
अगनित लोकपाल जम काला ।
अगनित भूधर भूमि बिसाला ।।
सागर सरि सर बिपिन अपारा ।
नाना भाँति सृष्टि बिस्तारा ।।

इत्यादि ।

जीवन के चरम साध्य का साक्षात्कार हो जाने पर कागभुशुण्डि को कोई कामना नहीं रह जाती है। निज स्वभावानुसार निष्ठापूर्वक धर्माचरण करके वह अपनी स्थिति के प्रति परम संतोष का अनुभव करते हैं। उन्हें जब कागयोनि में ही परम फल की उपलब्धि हो गयी, तब वह अन्य किसी योनि को लेकर क्या करते ? ठीक ही है—"काम जो आवै कामरी, तौ कहा लै करै कमाँचु।" वह अत्यन्त सहज सरल भाव से कह देते हैं—

यातें यह तन मोहि प्रिय भयउ राम पद नेहु ।
निज प्रभु नयनन्ह देखेउँ शमन सकल संदेह ।।

आजकल साम्यवादी जीवन-दर्शन के सर्वग्रासी प्रभाव में बहकर तथाकथित दलित वर्ग की जोरदार वकालत की जाती है। गोस्वामीजी के इस कथन को लेकर कतिपय प्रगतिवादी आलोचक काफी ऊहा-पोह करते हैं—'ढोल गँवार शूद्र पशु नारी। सकल ताड़ना के अधिकारी।' इन महानुभावों द्वारा उठाई गयी आपत्तियों को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि इन लोगों ने 'रामचरितमानस' में केवल यही एक पंक्ति पढ़ी है। अथवा गोस्वामीजी ने 'रामचरितमानस' में केवल इसी एक स्थल पर नारी और शूद्र को लक्ष्य करते हुए कथन किया है। हमारा निवेदन है कि 'रामचरितमानस' एक महाकाव्य है। महाकाव्य के नाते उसमें समस्त वर्गों के पात्र हैं। उक्त कथन समुद्र का है, जो जड़ है। उसने राम की प्रार्थना पर ध्यान नहीं दिया और एक अत्यधिक समर्थ धनुर्धारी के प्रति अवज्ञा का प्रदर्शन किया था और जब राम ने दण्ड-विधान की ठानी, तब वह रास्ते पर आ गया। आते ही उसने कहा—प्रभु भलि कीन्ह मोहि सिख दीन्हीं। यदि वह ऐसा न कहता, तो उसकी क्या दुर्दशा होती, इसकी कल्पना पाठक स्वयं कर लें। और फिर जो बातों से न मानकर लातों से मानते हैं, उन्हें क्या आज भी हम गँवार नहीं कहते हैं। समुद्र ऐसा ही गँवार था। लोक-व्यवहार की दृष्टि से भी शारीरिक श्रम करने के कारण शूद्र वर्ग के अन्तर्गत आने वाले व्यक्तियों को राह पर लाने के लिए क्या उपाय अपनाए जाते हैं, यह हम सब जानते हैं।

नारी के प्रति गोस्वामीजी ने कितने अवसरों पर विपुल सम्मान का प्रदर्शन किया है, इसे 'रामचरितमानस' के पाठक भली प्रकार जानते हैं। स्वयं भगवान् राम बालि से कहते हैं कि तूने नारी की सीख नहीं मानी, इसीसे तेरी यह दुर्गति हुई—

"मूढ़ तोहि अतिसय अभिमाना ।
नारि सिखावन करसि न काना ।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समुद्र का उक्त कथन दीनता का सूचक है। दीनता भक्तों का बहुत बड़ा बल है। दैन्य सूचक कथन प्रायः समस्त सत्पात्रों ने किये हैं। स्वयं गुरु वशिष्ठजी भी अपनी दीनता प्रकट करते हुए कहते हैं कि पुरोहिताई का कर्म अत्यन्त ओछा है—

उपरोहित्य कर्म अति मंदा। बेद पुरान शास्त्र कर निंदा।

ऐसे कथनों पर विचार करते समय दो बातें देखी जाती है कि यह कथन सिद्धान्त वाक्य है अथवा अर्थ वाक्य मात्र है, तथा इसका अभिधार्थ अभिप्रेत है अथवा लक्ष्यार्थ अभीष्ट है ?

गोस्वामी तुलसीदास के समय में प्रचलित सामाजिक बन्धनों की कठोरता के संदर्भ में ही हमको 'रामचरितमानस' में वर्णित जाति-प्रथा का यह विचार करना चाहिए। गुह निषाद से भरत ही नहीं, अपितु गुरु वशिष्ठ भी अंक भर कर भेटते हैं। प्रगतिशीलता का इससे अधिक और क्या प्रमाण चाहिए। जातीयता पर आधारित ऊँच-नीच की भावना की अवहेलना करके गोस्वामीजी ने व्यक्ति की समानता का प्रतिपादन किया है। समानता का अर्थ यह है कि सब लोग समान रूप से अपनी असमानता का निर्वाह करने के लिए समान अवसर प्राप्त कर सकें। उच्च स्थान पर प्रतिष्ठित व्यक्ति अपेक्षाकृत निम्न स्थान पर स्थित व्यक्ति के प्रति सहिष्णु एवं सहायक का भाव रखे तथा निम्नस्तरीय व्यक्ति उच्च आसन पर स्थित व्यक्ति को घृणा एवं विद्वेष की दृष्टि से न देखकर उसके प्रति सम्मान एवं श्रद्धा का भाव रखे। असमानता में समानता की व्यवस्था ही 'रामचरितमानस' का समाज धर्म है, जो हमें कर्त्तव्य-पालन की शिक्षा देता है। उसके व्यावहारिक रूप की स्थापना 'राम-राज्य' के रूप में की गयी है। 'रामचरितमानस' के 'रामराज्य' के रूप में ही सर्वप्रथम कल्याणकारी राज्य Welfare state की परिकल्पना की गई है। पूज्य गांधीजी भी भारत में इसी 'राम-राज्य' की स्थापना का सुख-स्वप्न देखते थे—

दैहिक दैविक भौतिक तापा।
राम राज नहिं काहुहि ब्यापा॥
सब नर करहिं परस्पर प्रीती।
चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीती॥
बयरु न कर काहू सन कोई।
राम प्रताप बिषमता खोई॥

'रामचरितमानस' में निरूपित 'धर्म' का अर्थ आचार संहिता में निरूपित कर्त्तव्य का पालन है, जब कि आधुनिक बौद्धिक युग में 'धर्म' का अर्थ संविधान में उल्लिखित अधिकारों का उपभोग मात्र है। इसी कारण आज के शंकालु नागरिक को 'रामचरित मानस' में वर्णित 'धर्म' के स्वरूप को समझने में कठिनाई का अनुभव होता है। रामचरितमानस का 'धर्म' हृदय की आँखों से समाज को देखने की शिक्षा देता है, जबकि आज के बुद्धिवादी अपने धर्म चक्षुओं को 'धर्म' की सीमा मान लेते हैं।

'रामचरितमानस' के राम लौकिक और पारलौकिक सभी दृष्टियों से शील, विनय, सद्भाव, सहिष्णुता, उदारता, प्रेम आदि उदात्त वृत्तियों के सजीव रूप और साक्षात् अवतार हैं। राम की उपासना और मानवोचित गुणों का निर्वाह एक ही बात है। धर्म का विरोध राम का विरोध है। जो व्यक्ति इस तथ्य को समझता है, वह 'रामचरितमानस' के धर्म के मर्म को समझता है।

दशरथ के अजिर में खेलनेवाले राम तथा पुरारि द्वारा आराध्य राम दोनों ही मंगल भवन और अमंगल हारी हैं। दशरथ-नन्दन राम अनाथ पर दया करने वाले कृपानिधान कौशलाधीश हैं। साकेत धामवासी राम निर्वाण प्रदान करने वाले अकाम ब्रह्म हैं। उनकी विश्वव्यापी चेतना का संस्पर्श प्राप्त करके किसको परम विश्राम की प्राप्ति नहीं हुई ?

पाईन केहि गति पतित पावन राम भजि सुनु सठ मना ?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज की हिन्दी कहानी की प्रमुख प्रवृत्तियाँ—एक संक्षिप्त सर्वेक्षण

डा० ओमप्रकाश गुप्त

मार्कण्डेय की कहानी 'काक्रोच' का शीर्षक देखने पर हमें एकदम काफ़्का की उस कहानी की याद आ जाती है जिसमें जार्ज सैम्सा नाम का जर्मन यात्री सेल्समैन सुबह उठने पर पाता है कि वह मनुष्य न होकर एक काक्रोच है—एक तिलचट्टा है। कहानी के अन्तरंग में झाँके बिना हम इससे सहज ही में यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि आज की कहानी विदेशी चिन्तन और टैक्नीक से प्रभावित है। इसका प्रमुख कारण संभवतः यह है कि साहित्यकार ने मान लिया है कि मानवीय नियति सभी देशों में एक-सी है। समय और स्थान की दूरियाँ सिमट जाने के फल-स्वरूप कहानी को सार्वभौमिक स्तर पर लाने का प्रयास किया जा रहा है। लेकिन इसका यह अभिप्राय कतई नहीं कि नई कहानी देशीय परिवेश से अलग जा पड़ी है।

आज सारा इन्सान यथार्थ के प्रकाश में यह देखकर-हैरान है कि जिस चीज को इन्सान कहा जाता है, वह परि-स्थिति और व्यवस्था की सीमाओं में जकड़ा निरीह और मजबूर प्राणी है। उसकी आजादी एक बिडम्बना है। विचार और भाव की शक्तियाँ उसकी दशा को और भी दयनीय बना देती हैं। एक ओर उसके कन्धों पर भारी उत्तरदायित्व है तो दूसरी ओर वह चाह कर भी कुछ कर नहीं पाता और इसीलिए उसे मिलती है, अक्षय पीड़ा।

आदिम युग में मनुष्य को सर्प, परियाँ या इसी प्रकार अन्य मनुष्येतर शक्तियाँ त्राण प्रदान करती थीं। इति-हास के विकास के साथ-साथ मनुष्य के चिन्तन का ढंग और तदनुरूप प्रतीकों की व्यवस्था भी बदलती जा रही है। परिवेश के बदल जाने के फलस्वरूप मनुष्य प्रतीक भी परिवेश से चुनता है।

मनुष्य का दुर्भाग्य यह है कि उसे किसी व्यवस्था से मोक्ष प्राप्त नहीं होता। अस्तित्व के लिए जरूरी है कि वह जीना है तो कोई न कोई व्यवस्था अपने लिए चुन ले लेकिन हर नई व्यवस्था से वह शीघ्र ऊब जाता है इसीलिए आज की कहानी का स्तर अनास्था और ऊब का है।

हिन्दी की नयी कहानी सामान्यतया १९५० के बाद की कहानी है। १९४७ से १९५० का अन्तराल एक ऐसा समय है जब हर चीज़ "मैल्टिंग-पॉट" में थी। आज़ादी का रक्तभरा चेहरा जनता को देश के विभाजन, हिन्दू-मुस्लिम दंगों, शरणार्थी-समस्या के साथ ही निराश करने लगा था। फिर भी एक तरह का आशाबाद, भविष्य के प्रति एक आस्था का भाव विद्यमान था। नेताओं की योग्यता में उसे विश्वास था। नव-निर्माण की लालसा ने साहित्यकार को आशा के रज्जु से बाँधे रखा। शांति के नारे से विश्व में बढ़ते देश के सम्मान से वह गौरवान्वित अनुभव करता था। लेकिन धीरे-धीरे पर्दे उठते चले गये और उसे ज्ञात हुआ कि जिसे वह सत्य समझ बैठा था, उसके चारों ओर ऐसे अनेक कठोर सत्य विद्यमान थे जो उसे निराश ही कर सकते थे। चुनाव कुर्सियों के लिए घिनौनी दौड़ बनकर रह गये, भ्रष्टाचार का "आक्टोपस" हमें हर दिशा से जकड़ने लगा। टूटता पारिवारिक जीवन, स्त्री-पुरुष के बीच नये सम्बन्ध-सूत्रों की तलाश, आर्थिक विषमता का शिकार मध्य-वर्ग नयी कहानी के विषय बन गए। भीड़ भरी ज़िन्दगी में पति-पत्नी, प्रेमी-प्रेमिका के अर्थ बदलने लगे जिसके कारण वे एक दूसरे को सही सही समझ पाने में असमर्थ होने लगे। अद्यतन कहानी इन्हीं समस्याओं को लेकर आगे बढ़ रही है।

आज ज़िन्दगी की रोटीन में सभी सम्बन्ध जल्दी ही बासी और ऊब भरे हो जाते हैं। शैलेश मटियानी की कहानी 'देहान्त' का यह उदाहरण प्रस्तुत है—

"उसने अपनी पत्नी की वस्त्र-रहितता को ऐसे देखा जैसे खिड़की पर से रोज दिखाई दे जानेवाले किसी प्राकृतिक दृश्य को देख रहा हो। वह (पत्नी) भी लापरवाह सी बैठी रही। जब सामान्य जीवन से मनुष्य रोमांचित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं होता तो वह असाधारण की ओर झुकता है। जीवन में ग्लैमर बढ़ता चला जाता है—उद्देश्यहीन गति के साथ।

कहानियों में बुरांश या सिलवर ओक के पेड़ आने लगे हैं। वस्त्रों में स्लीवलेस-ब्लाऊज़ और प्रिंटेड रूबिया की नाइटी का ज़िक्र देखने को मिलता है, भाषा में अंग्रेजियत झलकने लगी है।

सांत्वना निगम की कहानी 'एक और सीता' के ये संवाद देखिए :—

अगर सचमुच डीपली किसीके साथ इन्वाल्व हो जाओ तो सारी ज़िन्दगी मन में उस आदमी के प्रति कैसी टैंडरनेस पनप जाती है।

खास कर अगर उसके साथ शादी न हो सके तो—

देखो देखो सपने खूब देखो!

दफ़्तर में काम करती स्टेनों का यह ज़िक्र सुरेन्द्र वर्मा की कहानी "घर से घर तक" में है।

वह कारोबारी बारीक मुस्कान से उसके केबिन में दाखिल होती थी और निगाह झुकाए हुए हस्ताक्षर के लिए खुली फ़ाइल मेज़ पर रख देती थी पर वापिस लौटते हुए खुले अंगों की त्वचा पर बराबर उसकी दृष्टि की ऊष्मा का अनुभव होता था।

नारी ने आज, जहाँ अपने अधिकार पहिचाने हैं, वहाँ वह सभी सीमाएँ तोड़कर भी आगे बढ़ने लगी है।

'औरत सदा मर्द के लिए ज़िन्दा रही है—पति के मरने पर वह लाश के साथ जलती रही है····यदि बच्चा नाजायज़ हो तो आत्म-हत्या औरत ही करती है, मर्द नहीं····' इन विचारों की उधेड़-बुन में दीप्ति खंडेलवाल की कहानी 'हव्वा' की नायिका निश्चित करती है—"मुझे अपने नारी शरीर की, नियति में मरना नहीं जीना सीखना है।" वह मनरो जैसे बाल कटवाते हुए कहती है—"मैं स्यूसाइड करूँगी नहीं, करवाऊँगी।" सारे नियम, सारे बंधन, सारी वर्जनाएँ या टैबू सिर्फ औरत के लिए!

उसने मन में सोचा था "यदि पुरुष की ज़िन्दगी में कई औरतों का आना सहज है तो औरत की ज़िन्दगी में कई पुरुष असहज क्यों?"

अविवाहित मातृत्व कठोर सत्य बनकर सामने आने लगा है। सुशील गुप्ता की कहानी 'अभिशप्त' की सोनल अपने प्रेमी से यह कहने का साहस रखती है— "तुम्हारे साथ बिन ब्याहे रहे लिया, टीनू की माँ बन गयी तो मुझमें इतना साहस भी है कि उसे अपना बेटा कह सकूँ।"

स्वतंत्रा-प्राप्ति के बाद जिस बदलाव को व्यक्ति, वार और समाज ने सहा है, उसकी छाप आज की पर पूरी गहराई के साथ अंकित है। आज की कहानी में मूल्यों का विघटन, अव्यवस्था आदि जो हैं, वे परिवेश से उपजे हैं। आज पुराने आदर्श बदली हुई स्थितियों में व्यर्थ समझे जाने लगे हैं। बोझ को ढोता हुआ इन्सान विद्रोही होने लगा है।

सुशील शुक्ल की कहानी "इनर्शिया" में दो का वार्तालाप इस प्रकार है :—

यू नो द रीज़न। दे एडवरटाइज़ द पोस्ट्स फ़ार दि सेक आव फ़ारमेल्टी।

जानता हूँ। क्या तुम्हें नहीं लगता कि हम कुछ जानकर भी अनजान बने रहना चाहते हैं।

सैद्धांतिक बातें मुझे बोर करती हैं।

मुझे आदमी, औरत, सड़क, पार्क, लैंप पोस्ट दिन सभी-बोर करते हैं।

तुम नकाब ओढ़कर बातें करते हो।

मैं सच कहता हूँ। मुझे लगता है कि कहीं घटित नहीं हो रहा है और सारा का सारा परिवेश व्यवहार से मुझे बोर कर रहा है।

काफ़्का और कामू के अब्सर्ड-बोध ने चिन्तन को विशेष प्रभावित किया है। जीवन लिए मनुष्य के सभी प्रयास मौत की सीमा पर जाकर हो जाते हैं। सार्त्र के अस्तित्ववादी सिद्धांत ने को और भयावह रूप में प्रस्तुत किया है। महा विभीषिका से संत्रस्त योरुपीय मानस से उद्भूत दर्शन आज़ादी के बाद के अनुभवों से भारतीय भी पूरे बैठने लगे। भारतीय दर्शन का किसी शाश्वतता में विश्वास, भारत जगत् का गुरु है— की आस्थाएँ बेकार युवक के लिए बेमानी हो गयीं

हीरोशिमा और नागासाकी, मीलाई हत्याका पिक रक्तपात और हमारे बहुत पास बांगल बलात्कार के बाद भविष्य के प्रति आस्था का क जाता है? विश्वविद्यालय के हालों से निकलने और प्रोफ़ेसरों के शव, कीमती साड़ियों में लिपटी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या इसी परिणाम के लिए उन लोगों ने कुछ ही साल पहले एक अलग देश की माँग की थी ?

युद्ध समाप्त हो गया किन्तु युद्ध की कहानियों की एक लंबी शृंखला पत्रिकाओं में अभी तक चली आ रही है। इनमें शहीदों का शौर्य, वीरों का अदम्य साहस, जुल्म का घिनौना कृत्य और साथ ही मानव मन के अनेक अंतर्द्वन्द्व उभरे हैं। अमृता प्रीतम की कहानी 'आज' के नायक पाकिस्तानी एयरफोर्स के फ़्लाइट-लेफ्टीनेंट अनवर को ढाका युनिवर्सिटी पर बम गिराने का मिशन सौंपा गया। किन्तु उसके मन में नजमां का यह निमन्त्रण गूंज रहा था—तुम मेरा बंगाल नहीं देखोगे ? तुमने जैसोर के सिवा कुछ भी नहीं देखा ! कभी छुट्टियाँ लेकर ढाका आना, मेरी युनिवर्सिटी बहुत खूबसूरत है·····!

और अनवर ने निश्चय किया कि वह नजमां को 'आज' बचा लेगा। 'कल' तो शायद वह खुद भी नहीं होगा।

युद्ध और उसके परिणाम-स्वरूप प्राप्त विजय का उल्लास देर तक चलने वाला नहीं था। देश की जनता और नेता दोनों के सामने एक मंज़िल थी—गरीबी हटानी है। भरसक प्रयत्नों के बावजूद वही सामाजिक विषमताएं, वही महँगाई, वही बेकारी ! ऐसे में साहित्यकार आँखें मूंदे नहीं बैठ सकता।

रमेश उपाध्याय की कहानी 'आने वाले के लिए' में जागीरदार कुमरजी ने चन्ना की गर्भवती पत्नी के पेट में लात मारी है। चन्ना क्या कर सकता है ? पंचायत उसका साथ नहीं देती। उसके पास एक ही उपाय है—गाँव छोड़ कर भाग जाए। लेकिन उसके ये शब्द उल्लेखनीय हैं—

"यह मत समझना कि आज जो कुछ हुआ है उसे मैं भूल जाऊँगा मैं भूल भी गया, तो वह नहीं भूलेगा जिसने माँ के पेट में ही कुमरजी की लात खाई है।"

आनेवाली पीढ़ी निश्चित रूप से विद्रोही होगी। शोषण का बदला लेगी।

आज डिग्रियों का पुलिंदा उठाए नौजवान बेकार है, दिन भर मेहनत करता मज़दूर भूखा है। हृदयेश की कहानी 'एक भूमिका' में सत्रह वर्ष का छात्र हाई स्कूल की परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास करता है किन्तु घर की अवस्था में वह अपना मन किताबों में नहीं गड़ा पाता। उसका भाई कार्पोरेशन में क्लर्क है। आर्थिक तनाव पारिवारिक सम्बन्धों पर भी हावी होते हैं, अपने घर के सामने वह एक इश्तहार देखता है—'साबुनों का सरताज—हिमालय सोप—स्वयं भी इस्तेमाल कीजिए और मित्रों को भी सलाह दीजिए।' वह युवक रात के अन्धेरे में उसे यूँ बदल देता है—'चोर बाज़ारी और तस्करी का सरताज़ माताप्रसाद गुप्ता। स्वयं भी, जानिए और दूसरों को भी बताइए।' उस लड़के ने अपना छद्म नाम रखा—राघव भोंसले और खाद्य विभाग के रिश्वतखोर इंस्पेक्टर को धमकी भरा पत्र लिखा। और अंत में एक दिन जब उसे ज्ञात हुआ कि शिव मन्दिर में पूजा करनेवाला एक ईमानदार व्यक्ति मुकद्दमा हार गया है, तो वह एक तनी हुई मुद्रा में मन्दिर के सामने से निकल गया—एक भरे-पूरे विद्रोही का जन्म हो चुका था।

प्रधानतया आज की कहानी हर स्तर पर विद्रोह की कहानी है। विषय और भाव के अतिरिक्त शिल्प के क्षेत्र में भी। किसी शास्त्रकार द्वारा नियत तत्त्वों के आधार पर किसी ऐसे साँचे का निर्माण नहीं किया जा सकता जिसमें हर कहानी को ढाला जा सके। भाव और टैक्नीक की दृष्टि से जितनी विविधता कहानी में मिलती है, उतनी किसी अन्य विधा में नहीं। साहित्य के विकास की दृष्टि से यह स्वतंत्रता अच्छी ही कही जा सकती है।

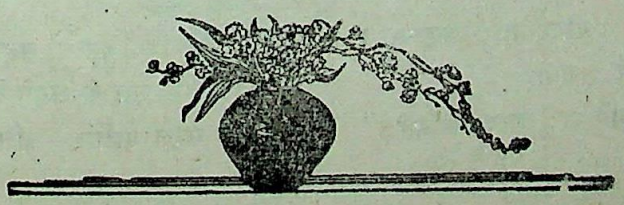

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुकवि 'श्याम' का ब्रजकाव्य सौष्ठव

डॉ० कैलाशनाथ द्विवेदी

हिन्दी काव्य जगत् लीलापुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण की मधुर लीलाओं के अमर गायक सूरदास, नन्ददास, रत्नाकर इत्यादि महाकवियों की महती प्रतिभा से आज भी उद्भासित हो रहा है। सरस्वती के इन अमृत पुत्रों ने अपनी उत्कृष्ट मौलिक कल्पना एवं प्रतिभा या शक्ति से काव्य का कोना-कोना छान डाला है कि कवि जिसमें विशेष प्रतिभा एवं शक्ति न हो, इस काव्य प्राङ्गण में सरलता से प्रवेश नहीं कर सकता; क्योंकि पग-पग पर पिष्टपेषण तथा भावापहरण के दोष आ जाने की सम्भावना रहती है; परन्तु प्रतिभा के धनी, कानपुर जनपद के देरापुर निवासी, सुकवि पं० श्यामनारायण मिश्र 'श्याम' ने अपने काव्य वैशिष्ट्य से लोक विश्रुत उद्धव-गोपी संवाद या भ्रमरगीत के वर्ण्य-विषय को ग्रहण करके हिन्दी-काव्य जगत् में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बना लिया है।

सुकवि श्याम ने ब्रजभाषा में मार्मिक काव्य की सर्जना की है। संवत् २०१० वि० में प्रकाशित उनकी उत्कृष्ट काव्य कृति 'निःश्वास' (मुक्तक छन्द काव्य) काव्य-प्रेमी मर्मज्ञ जनों में विशिष्ट स्थान रखती है। यह ग्रन्थ नौ भागों में विभक्त है तथा २०० से अधिक हृदयग्राही कवित्त एवं सवैया छन्दों में इसकी रचना हुई है। इन छन्दों के भाव पुराने होते हुए भी उनकी गठन, वेशभूषा, सजावट एवं पदावली सफल कवि ने बड़े मनोहारी नवीन रूप में सँजो दी है। जो भाव नये हैं, वे भी बहुत सुन्दर बन पड़े हैं। इस मुक्तक छन्द काव्य के रूप में हम ब्रज की उस अतीत में लीन विरहवेदना का प्रत्यक्ष-सा अनुभव करने लगते हैं। एक स्थल पर जब उद्धवजी धैर्य धारण करने का उपदेश देकर श्रीकृष्ण के आने की बात कहते हैं तो गोपियों के हृदय से करुणा की धारा फूट निकलती है—

"दीनन पै न दया सरसावत,
कैसे वे दीनदयाल कहावत।
धीर कहाँ लौं धरैं सजनी,
जुग बीत गये उन्हें आवत-आवत।"

हृदय की एक स्मरणजन्य टीस का वृश्चिक दंश से अनुभव और उनके स्वानुभूत मानसिक भावों की मौलिक का सुस्पष्ट निदर्शन यहाँ उपलब्ध होता है—

"गिरधार बचायो हमैं नभधार सौं,
आँसुन धार डुबावै सोई।
जिन लाल दवागिनि पान करी,
विरहानल हाय जरावै सोई॥
ढँग रास सिखायो ढिगै रहिकै
किन आइकै जोग सिखावै सोई।
जिन केसन पाटल श्याम गुहे,
तिन आइकै खेह रमावै सोई॥"

अधीरता और झुँझलाहट भरे इन शब्दों से गोपी-हृदय की पीर और मन की अकुलाहट का रूप स्पष्ट परिलक्षित हो जाता है। उद्धव की विदा-बेला पर तत्सुखसुखत्व की भावना में लीन गोपाङ्गनाएँ अपने प्रियतम कृष्ण के कोमल हृदय को दुःखित न होने देने का अनुरोध कितने सरल एवं मार्मिक शब्दों में कर रही हैं—

"जननी की बबा की प्रिया की दशा,
तिन पूछत हू चुप ही रहियौ तुम।
दुख बाँट हमारे परचौ सो सुनाइ,
दुखाइयौ ना सुकुमार हियौ तुम॥
सुख साने रहैं बलि ! श्याम रहैं जहँ,
ना ब्रज क्लेश कथा कहियौ तुम।
चित चोरचौ सो फेरैं हमारौ हमैं,
कहि एतौइ मौन हहा गहियौ तुम॥"

सुकवि 'श्याम' सहृदय एवं भावुक कवि हैं। अपने भाव-विभोरता के क्षणों में उन्होंने जिन मनोरम कल्पनाओं तथा सरल मार्मिक उक्तियों का चयन किया है, उन्हींकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यंजना उनके काव्य का प्रधान सौष्ठव है। इसमें सन्देह नहीं, वर्ण्य विषय की उन्हें व्यापक अनुभूति प्राप्त हुई है। उदाहरणार्थ—गोपियों का कृष्ण को यह सुन्दर उपालम्भ द्रष्टव्य है—उद्धव को सुनाती एक गोपी से मार्मिक शब्दों में दूसरी कहती है—

"बात करौ जनि साँवरे की सखि !
वाके चबाउ को ओर न छोर है।
माखन खाइकै नेह बढ़ाइ कै,
पाछे न मानत नेक निहोर है।
बाकी चितौनि के घाय बचावै न,
ऐसो लखात कोऊ बरजोर है
माखनचोर कि है दधिचोर
कि अम्बरचोर किधौं चितचोर है ॥"

सूर साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान् आचार्य डॉ० मुंशीराम शर्मा 'सोम' ने उनके काव्य का मूल्यांकन करते हुए लिखा है—"'श्याम' का काव्य आज की दृष्टि से अधिक लोकोपकारक बनेगा। उनकी रचना को पढ़ने से काव्यानन्द प्राप्त होता है।"

आज से १८ वर्ष पूर्व अखिल भारतीय ब्रज साहित्य मण्डल के अध्यक्ष, अधिकारी विद्वान् प्रो० कृष्णदत्त बाजपेयी ने लिखा था—

"सुकवि 'श्याम' की सरस वर्ण्य शैली तथा शब्द संयोजन उच्च कोटि के हैं। वर्तमान काल में 'रत्नाकर' के 'उद्धव-शतक' के बाद पहली बार आपने इस करुणाजनक विषय पर सर्वाङ्ग सुन्दर रचना प्रस्तुत की है।"

ब्रजमण्डल की मुख पत्रिका 'ब्रजभारती' (वर्ष ११-४) ने सुकवि 'श्याम' के काव्य सौष्ठव की द्विपृष्ठीय प्रशंसात्मक समीक्षा प्रकाशित की थी। इसके अनुसार उनकी रचनाओं के कथानक में प्रेमाभक्ति योग और ज्ञान का मनोहर संपुंजन है, जिसे करुण रस की भावनाएँ देकर अभिनव स्वरूप प्रदान किया गया है। कवि ने विविध परिस्थितियों एवं तज्जनित मनोभावों का यथास्थान मार्मिक चित्रण किया है। करुण रस में ओत-प्रोत विप्रलम्भ शृङ्गार का उन्होंने निःसन्देह हृदयग्राही वर्णन किया है। अनेक स्थानों पर स्वानुभूति की गहरायी तथा नवीन आकर्षक भावों की योजना मिलती है, जो कवि का निजत्व है। 'श्याम' की वर्णन-शैली सरल एवं स्वाभाविक है।

"सुकवि 'श्याम' की रचनाओं में उनकी मानसिक विकृतियों का स्वानुभूत अनुभव है। उनकी रचना में मनोविज्ञान-प्रेमी कोई समीक्षक यदि गहन वेदना एवं रति प्रतारण से अभिभूत गोपिकाओं के वर्णन में मानसिक विकृति या मानसिक भ्रान्ति का किञ्चित् सहेतुक एवं काव्यात्मक निदर्शन पा सका तो वही काव्यकार की मौलिकता का प्रमाणपत्र होगा।" प्रसिद्ध समीक्षक एवं साहित्यकार आचार्य पं० सद्गुरुशरण अवस्थी की यह इनके काव्य सौष्ठव की समीक्षा वस्तुतः तथ्यपूर्ण है।

संक्षेप में, आज के इस खड़ीबोली के युग में ब्रजभाषा के प्रति अनुराग व्यक्त करके कवि अपने पाठकों या श्रोताओं को काव्य के उस युग की ओर ले जाता है, जहाँ भाषा का सहज माधुर्य विषय के प्रति राग की सृष्टि करता था। वस्तुतः सुकवि 'श्याम' के भक्तहृदय से निकले छन्दोमय 'निःश्वास' सभी सहृदयों के हृदय को आवर्जित करते हैं। कवि के ये शब्द कितने सार्थक हैं—

तेरा तुझको सौंपता क्या लागे है मोर !"
"ब्रज-रज, विटप-कछार, काव्यजनक कवि जन कहे।
वनितन उर उद्गार, की संज्ञा का है सके ?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चारणकवि दुरसा आढा की पीतल-मूर्ति

पं० चन्द्रकान्त बाली

प्रसिद्ध त्रैमासिक 'राजस्थान-भारती' के जुलाई १९५३ के (भाग ३, अंक ३-४) पृष्ठ ७५ पर राजस्थान के ख्यात-नामा आद्यश्री अगरचन्द नाहटाजी का लेख छपा है; जिसका शीर्षक वही है, जो हमने यहाँ उद्धृत किया है। लेख का प्रतिपाद्य विषय उक्त शीर्षक से ही सुस्पष्ट है। हम चारण-कवि दुरसाजी के प्रसंग में कुछ नहीं लिख रहे; कारण, हम चारण-कवि के बारे में एकदम से अनभिज्ञ हैं; अलबत्ता मूर्ति पर अंकित संवत्-गणना पर अपना अभिमत जरूर प्रकट करेंगे, जो कि हमारी रुचि का विषय है। मूर्ति पर अंकित है और जैसा श्री नाहटाजी ने उद्धृत किया है :—

"संवत् १६८६ वर्षे शाके १५५९ प्रवर्तमान
वैशाख सुदि ५, बुधे··· कराव" इत्यादि।

जो संवत्-विज्ञान से अनभिज्ञ हैं, उनके लिए यह सब कालगणना जाली है। अथवा, जिनकी पकड़ में जब कोई कालगणना नहीं आती, वे उसे जाली सिद्ध करने का भरसक प्रयत्न करते हैं। यह एक फैशन चल पड़ा है। पीतल-मूर्ति पर अंकित काल-बोधक संख्या में भ्रान्ति उत्पन्न करनेवाले तत्त्व विद्यमान हैं; यथा—

संवत् : संवत् लिखने-पढ़ने में प्रायः 'विक्रम-संवत्' समझा जाता है। हम भी इसे विक्रम संवत् मान लेते हैं। विक्रम-संवत् को ईसवी सन् में परिणत करने के लिए अभीष्ट संख्या में से ५८ वर्ष घटा देने का नियम है। हम भी ऐसा करेंगे—१६८६ − ५८ = १६२८ ईसवी सन् सिद्ध हुआ।

शक : शाके नाम से उद्धृत काल-बोधक अंक 'शक-संवत्' के ही होने चाहिए—इस पर किसीकी दो राय नहीं होनी चाहिए। शक-संवत् को ईसवी सन् में परिणत करने के लिए अभीष्ट संख्या में ७८ के अंक जमा करने होते हैं। यथा १५५९ + ७८ = १६३७ ईसवी प्रकट हुआ।

प्रश्न होना स्वाभाविक है कि पीतल-मूर्ति पर उक्त संवत्-गणना का यथार्थ है? इसका उत्तर यदि 'हाँ' में तो दोनों गणनाओं का ईसवी सन् 'एक मेन' प्रतिफलित होना चाहिए था, जो नहीं है; यदि इसका उत्तर 'ना' में तो ये संवत्-गणनाएँ कौन सी हैं? इसका संतोषप्रद समाधान ढूँढ़ना चाहिए।

हम जानते हैं, इसका समाधान खोजने में बड़े-काल-विज्ञानी डगमगा जाएँगे।

संवत्-गणना की शोध करते-करते हमें जो तथ्य मिलते हुए नजर आये हैं, उन पर सभी पण्डितों का सहमत हो सकना कठिन है। कोई नया फार्मूला, कोई नयी उपलब्धि अथवा कोई नया निर्णय सहसा किसीको मान्य नहीं होता। उनका प्रभाव पड़ते-पड़ते ही पड़ेगा। इस संदर्भ में भवभूति ने कहा था—'उत्पत्स्यते च मम कोऽपि समानधर्मा'।

संवत्

यह ठीक है, 'संवत्' मात्र लिख देने से 'विक्रम-संवत्' का बोध होता है; और विक्रम-संवत् का यथार्थ नाम 'मालव-गणस्थिति-काल' है। मालवों ने उज्जयिनी पर शासन किया था—इतना तो सब मानते हैं; पर, कब से कब तक—यह कोई नहीं बताता। पुराण-ग्रन्थ भी इस बारे में हमारी कोई सहायता नहीं करते। अलबत्ता पुराण-वेत्ता यह जरूर बताते हैं कि गर्दभिल्ल-वंश ने (संभवतः मालववंश) सात पीढ़ी राज्य किया।[1] पर, सात पीढ़ी के शासन-कालावधि की बात फिर भी रह जाती है। जैन-ग्रन्थ भी सीधे तौर पर गर्दभिल्ल-वंश की शासन-कालावधि की बात नहीं करते। जैसे बछड़ा गो-स्तनों से दूध चूस लेता

१. सप्त चैव गर्दभिल्ला भोक्ष्यन्तीमां वसुन्धराम्।—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैसे कोई महान् जैन-ग्रन्थों से गर्दभिल्ल-वंश के बारे में स्वार्थ-सिद्धि-संदोहन कर ले तो कर ले; अन्यथा जैन-स्रोत इस प्रसंग में शुष्क पड़े हैं।

और हम, यदि हम यह लिख दें कि मालव-वंश (गर्दभिल्ल वंशधरों) ने उज्जयिनी पर सात पीढ़ी राज्य किया और ९५ ईसापूर्व से लेकर ३२ ईसवी तक (कुल १२७ वर्ष) राज्य किया तो हमारी स्थापना पर सहसा कोई विश्वास न करेगा। विश्वास करने-न करने का सवाल ही क्या है? जब कि प्रमाण सामने पड़ा है—दुरसा आढा की पीतल-मूर्ति पर अंकित लेख--

(क) १६८६ – ९५ = १५९१ ईसवी सन्; तथा
(ख) १५५९ + ३२ = १५९१ ईसवी सन्।

अभी हमारी बात खत्म नहीं हुई। मालव-वंश को अपने दो-दो प्रतिद्वन्द्वियों से टक्कर लेनी पड़ी; इनमें एक कुषाणवंश हैं, दूसरा शालिवाहनवंश। कुषाणवंश को प्रतिशोध-दग्ध कालकाकार्य ने प्रेरित किया था और शालिवाहन-वंश मालवों का वर्ण (वर्ग)-परम्परागत वैरी था। कुषाण वंश के साथ भिड़ते-भिड़ाते मालव-वंशी उज्जयिनी से चार बार उखड़े और चार बार बसे। इस उखाड़-पछाड़ की चार घटनाओं पर चार 'मालव-गणस्थित काल' प्रशिद्ध हुए; यथा—

(१) प्रथम मालव-गणस्थित काल : ९५ ईसापूर्व
(२) द्वितीय मालव-गणस्थिति काल ६७ ईसापूर्व;
(३) तृतीय मालव-गणस्थिति काल : ५८ ईसापूर्व; तथा
(४) कृत-मालव गणस्थिति काल : २८ ईसापूर्व।

इनमें द्वितीय मालव-गणस्थिति काल को छोड़कर शेष संवत् परम्पराएँ मिलती हैं। लीजिए एक ज्वलन्त उदाहरण :

"मालवानां गणस्थित्या याते शत-चतुष्टये,
त्रि-नवत्यधिकेऽब्दानाम ऋतौ सेन्यधनस्वने।
वत्सरशतेषु पञ्चसु विंशत्यधिकेषु नवसु चाब्देऽब्षु,
यातेष्वभिरम्य तपस्य-मास-शुक्ल द्वितीयायाम्॥"

—वत्सभट्टिकृत प्रशस्ति

इसमें सूर्य-मन्दिर के उद्धार का जिक्र है। इस पर फ्लीट-प्रभृति विद्वानों ने अलग-अलग अर्थाधान का प्रस्ताव किया है। यथा—"मालव संवत् ४९३ पौष मास में यह प्रासाद बना·····और अब ५२९ वर्ष बीतने पर फाल्गुण मास में इसका जीर्णोद्धार किया गया।" यह अर्थ संवत्-विज्ञान के सर्वथा प्रतिकूल है। पंजाब के ख्यातनामा श्री भगवद्दत्त ने इसका नया अर्थ प्रस्तावित किया है : "बात वस्तुतः यह है कि कृतसंवत् शूद्रक-विक्रम संवत् से ४०० वर्ष पहले चल चुका था। तदनुसार इस भवन का निर्माण ९३ विक्रम संवत् में हुआ था।·····विक्रम संवत् का प्रारम्भकर्ता चन्द्रगुप्त विक्रमाङ्क-साहसाङ्क अथवा समुद्रगुप्त विक्रमाङ्क था। उससे ९३ वर्ष पश्चात् कुमारगुप्त के सम-सामयिक बन्धुवर्मा का पुत्र राज्य कर रहा था। कुमारगुप्त का राज्य उससे लगभग २० वर्ष पहले होगा। अर्थात् विक्रम-संवत् ७३ में--उससे ५२९ वर्ष बीतने पर, अर्थात् ५२९ + ९३ = संवत् ६२२ में इस भवन का जीर्णोद्धार हुआ।[२]" यह सब द्रविड़-प्राणायाम के सिवाय कुछ भी नहीं है। वस्तु-स्थिति यह है कि सूर्य-मन्दिर का जीर्णोद्धार ईसवी सन् ४३५ में हुआ; उस समय प्रथम गणस्थिति काल ५२९ [– ९४ = ४३५] था और तृतीय मालव-गणस्थितिकाल ४९३ [– ५८ = ४३५] था। मजे की बात यह है कि उस समय बन्धुवर्मा का युग था और बन्धुवर्मा कुमारगुप्त का सम-सामयिक माना जाता है। यथा—

१. चन्द्रगुप्त ७ वर्ष : ३०७—३१४ ईसवी;
२. समुद्रगुप्त ५१ वर्ष : ३१४—३६४ ईसवी;
३. चन्द्रगुप्त[३] ३६ वर्ष : ३६५—४०१ ईसवी; तथा
४. कुमारगुप्त ४० वर्ष : ४०२—४४१ ईसवी।

स्पष्ट हो, हम गुप्त संवत् का अभ्युदय ३१९ ईसवी से—जैसा कि समस्त इतिहास-कोविदों का अभिमत है—न मानकर उसे ईसवी ३०७ से मानते हैं। खैर। दोनों काल-गणनाओं में ईसवी ४३५ में सूर्य-मन्दिर का जीर्णोद्धार मान लेने पर कुमारगुप्त का युग समादृत हो जाता है।

वत्सभट्टि-रचित प्रशस्ति में दो-दो मालव-गणस्थिति-काल का उल्लेख अपने-आपमें महत्त्वपूर्ण सूत्र है, जिसका

---

२. भारतवर्ष का बृहद् इतिहास : प्रथम भाग; पृष्ठ १६५।

३. मुद्राराक्षस का काल-निर्धारण, सूर्यकान्त—सरस्वती, नवम्बर १९६५।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्यत्र अस्तित्व दुरसा आढा की पीतल-मूर्ति पर मिल गया है।

शब्दकाल

रह जाती है शक-संवत् की बात। हमने अभी-अभी लिखा है—मालव-वंश को दो-दो प्रतिद्वन्द्वियों से संघर्ष करना पड़ा। कुषाणवंश से टकराकर मालव-वंश उत्थान-पतन के चक्र-भ्रमण में पड़ा रहा; परन्तु शालिवाहन-वंश से भिड़न्त मालवों को बड़ी महँगी पड़ी और वह इस वंश की जानलेवा सिद्ध हुई। शालिवाहन ने स्वयं विक्रम-पौत्र से उज्जयिनी छीन ली[४]। यह ईसवी सन् ३२ का साल था। ७ पीढ़ियों के लिए १२७ वर्ष पर्याप्त हैं—यह हम पहले लिख आये हैं। १८ वर्ष प्रति पीढ़ी का शासन-काल तर्क-संगत और इतिहास-क्षम है। ईसवी सन ३२ से ३८० वर्ष तक लगातार शब्द-वंश उज्जयिनी में जमा रहा। ३२+३८०=४१२ ईसवी में शक-शासन की समाप्ति इतिहास-सम्मत है। सो, यदि ईसवी सन् ३२ से प्रथम शक काल की स्थापना मान ली जाय तो बात बन जाती है। इसका भी ज्वलन्त प्रमाण देखिए :—

"त्रिंशत्सु त्रिसहस्रेषु भारताद् आहवादितः।
सप्ताब्द-शत युक्तेषु शतेस्वब्देषु पंचसु।
पञ्चाशत्सु कलौ काले षट्सु पंचशतासु च,
समासु समतीतासु शकानामपि भूभुजाम्॥"

श्री कीलहार्न ने जो अर्थ प्रस्तावित किया है, वह हमें मंजूर है। यथा—"३०+३०००+७००+५=३७३५ महाभारत संवत् तथा ५०+६+५००=५५६ शक-भूभुजों के वर्ष में।" एतदनुसार—

(क) हम भारताहव को ३१४८ ईसा पूर्व में मानते हैं। सो, ३७३५−३१४८=५८७ ईसवी सन् सिद्ध हुआ।

(ख) शब्द भू भुजों का संवत् ईसवी सन् ३२ का प्रस्ताव है ही। सो, ५५६+३२=५८८ ईसवी सन् प्रतिफलित हुआ।

---

४. एतस्मिन्नन्तरे, शालिवाहन भूपतिः।
विक्रमादित्य पौत्रस्य पितृराज्यं गृहीतवान्।
—भविष्य पुराण-

टिप्पणी

इस काल-बोध में १-वर्ष की कमी पड़ती है। हमारे विश्वास में शकों ने ईसवी सन् ३१ में मालवों को परास्त किया होगा। अधिक शोध करने पर अधिक पता चलेगा।

ईसवी सन् ३२ से चलनेवाले शक-संवत् के उद्धरण अन्यत्र भी मिलते हैं। इसका सबसे बड़ा प्रमाण 'पृथ्वीराज-रासो' है। रासो की संवत्-सिद्धि पर दो-दो दिग्गजों की दन्त-भिड़न्त बड़ी प्रसिद्ध है। उस समय शोध की इतनी ललक नहीं थी, जितनी उत्कंठा पर-पक्ष को गिराने की रहती थी। रासो के पक्ष में विक्रम-संवत् ५८ ईसा पूर्व+ईसवी सन् ३२=९० वर्षों की न्यूनता-मूलक पं० मोहनलाल विष्णुलाल पाण्डया की स्थापना आज भी जीवन्त है। दुरसा आढा की पीतल-मूर्ति पर अंकित शक-संवत् का सूत्र श्री पाण्ड्याजी की उपलब्धि की अभिनव गोष्ठी है, इसे कौन पराभूत कर सकता है?

शकों के बारे में एक बात और। जैसे मालव-वंश के चार-चार संवत् हैं, वैसे शक-वंश की पाँच काल-गणनाएँ हैं :—

शालिवाहन-शब्द (ईसवी ३२)

साहसाङ्क शक संवत्[५] (ईसवी ६६)

विक्रमाङ्क शक संवत्[६] (ईसवी ७८)

हर्ष विक्रम संवत्[७] (ईसवी २१४)

विषमशील विक्रम संवत्[७] (ईसवी ४१२)

---

५. इसी साहसाङ्कशक-संवत् से २४२ वर्ष पश्चात् गुप्त-संवत् चला। ६५+२४२=३०७ ईसवी से गुप्त-संवत् का आरंभ अलबेरूनी को अभीष्ट है।

६. राष्ट्रिय संवत्

७. विक्रमादित्य भूपालात् पञ्चर्षित्रिक वत्सरे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस पर विस्तार-पूर्वक अन्यत्र लिख चुके हैं। चारण-कवि दुरसा आढा की पीतल-मूर्ति पर अंकित संवत्-गणना ने हमारी उपलब्धियों को उजागर किया है, अतः शोधार्थियों का ध्यान आकर्षित करने के लिए यह लेख प्रकाशित किया है।

सारिणी

महाभारत-काल	कलि-संवत	१–मालव-संवत	३–मालव-संवत	१–शक संवत	ईसापूर्व
००	....	....	....	....	३१४८
४७	००	....	....	....	३१०१
३०५३	३००६	००	....	....	९५
३०८०	३०४३	३७	००	....	५८ ई.पू.
३१७०	३१३३	१२७	९०	००	३२ ईसवी
....८	....	५२९*	४९३	....	४३५ ई.
३७३५९§	....	....	....	५५६§	५८८
....५०	....	१६८६*	....	*१५५९§	१५९१

जातोऽयं बल्लभी भङ्गो ज्ञानिनः प्रथमं ययुः।

(क) विक्रम हर्ष संवत् २१४+५७३=७८७ ईसवी में वल्लभी भंग हुआ।

(ख) विषमशील विक्रम-संवत् ४१२+३७५=७८७ ईसवी में वल्लभी भंग हुआ।

उक्त श्लोक में दोनों संवत् समाहृत किये गये हैं।

८. प्रथम मालव संवत् ५२९=तृतीय मालव संवत् ९९३ में सूर्य-मन्दिर का जर्णोद्धार।

९. महाभारत संवत् ३७३५=शक संवत् ५५६।

१०. दुरसा आढा की पीतल मूर्ति : (मालव) संवत् १६८६=शक संवत् १५५९।

निराशा के आवर्त में

श्री इन्दुभूषण जोशी 'किरण'

हर साँझ मिली रोती मुझको,
हर चंदा मुझे उदास मिला।
कलियाँ सब वैरागन दीखीं
औ संन्यासी मधुमास मिला ॥१॥

सूरज आहें भरता सा,
स्मृति गर्त में जाकर डूब गया।
हर एक तारक विचलित सा था,
दिक्काल हृदय में फूट गया ॥२॥

नीले अगाध नभ के नीचे,
सोये सपने अलसित मौन।
टूटे वे कब औ क्यों कैसे,
यह बता सकेगा मुझे कौन ॥३॥

उड़ती थी नजर हवाओं में,
लेकर जीवन के कोष्ठक को।
अब मृदु स्मृतियाँ ही रहीं शेष,
विलखाती मेरे तन मन को ॥४॥

हर आह बनी मेरी मंजिल,
तड़पन है मेरी राह बनी।
हर सांस निरंतर चल-चल कर,
स्मृतियों की सोपान बनी ॥५॥

बीता अब चिर सुख है मेरा,
आशा भी है अवसान बनी।
सपनों की दुनियाँ में खो खोकर,
कविता मेरी अनजान बनी ॥६॥

बढ़ते दावानल की सुधियाँ,
अब हाय! हृदय दहकाने को।
घुमड़ घुमड़ कर आती हैं सब,
बिसरी पीड़ा सुलगाने को ॥७॥

कुछ नहीं समझ में है आता,
क्यों सब दुखियों की आहों में।
क्यों खींच सभी को लायी है,
पीड़ा दुःखों की बाहों में ॥८॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जापानी कला में सरस्वती

डा० लोकेशचन्द्र, डी० लिट्०

अनु० श्री बाबूराम वर्मा

सरस्-वती या 'प्रवाहित वाग्मिता' प्रज्ञा की देवी, स्वयं को सृजन में व्यक्त करनेवाली वाणी की माता है। वह पारगामी शब्द है। पुराण गाथा में वह और लक्ष्मी विष्णुप्रिया हैं। जापान में **सरस्वती** (जापानी भाषा में बेन-तेन या **बेन्-जाई-तेन**) लक्ष्मी के साथ आठवीं शताब्दी से मिलती है। टोडाई-जी बिहार के इतिवृत्तों में कहा गया है कि लक्ष्मी और सरस्वती की पूजा करने का **किचीजो-गेक्का** उत्सव सर्वप्रथम सन् ७२२ ई० में मनाया गया। यह वही वर्ष रहा होगा जब इन दोनों प्रतिमाओं की प्राण-प्रतिष्ठा की गयी होगी। तब से टोडाइजी, नारा नगर में किचीजो-गेक्का उत्सव प्रतिवर्ष मनाया जाता चला आ रहा है।

टोडाइजी की सरस्वती प्रतिमा देवी-देवताओं के क्रोधी रूपों के विपरीत शान्त प्रकार की है। उसकी यह शान्त प्रकृति सुन्दर संकीर्ण नेत्रों और प्रसन्न ओष्ठों के अंकन में दिखायी देती है। पहले इस सरस्वती प्रतिमा की आठ भुजाएँ थीं जिनमें से पाँच भुजाएँ अभी वर्तमान हैं परन्तु किसीमें भी उनकी मूल वस्तुएँ नहीं हैं। उसके आठ हाथों में कभी धनुष, बाण, खड्ग, त्रिशूल, परशु, वज्र, चक्र (धर्मचक्र) और पाश थे। इस प्रतिमा को ९५४ ई० में लगी भयंकर आग से हानि पहुँची जैसा कि फ्यूजीवारा काल में लिखे गये ग्रन्थ **टोडाइजी यौरोकु** सं० ४ में अभिलिखित है। इन प्रतिमाओं को अतिथि देवता के रूप में संगत्सु-दो शाल में आश्रय दिया गया। वे अब श्वेत-सी मिट्टी के रंग की रह गयी हैं, जिससे प्रकट होता है कि अनपकाई मिट्टी की बनी हुई हैं। सरस्वती-प्रतिमा साढ़े छह फुट की है।

लक्ष्मी और सरस्वती की पूजा सन् ७६४ में अच्छी फसल प्राप्ति के लिए टोडाइजी बिहार में किये गये उत्सव से आज तक लोकप्रिय रही है। अष्टभुजा सरस्वती

जापान की वीणावादिनी द्विभुज सरस्वती

शिनकाकु (?-११८० ई०) द्वारा लिखित तथा इस नन्नाजी बिहार, क्योतो की ५७ आवलियों में सुरक्षित **बेसोन-जक्की** (देव-वर्णनावलि) में दिखायी गयी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९७३

इसमें सरस्वती का यह मंत्र सिद्धम लिपि में दिया गया है :—

"सरस्वत्यै स्वाहा, नमः सरस्वत्यै महादेव्यै स्वाहा, नमः भगवती महादेवी सरस्वती सिध्यतु मन्त्रपदमी स्वाहा।" इसमें इसके चार रूपों के चित्र हैं।

१—सरस्वती तंत्री (lyre) लिये हुए

२—सरस्वती वीणा (lute) लिये हुए

३—अष्टभुजा सरस्वती जिसमें टोडाइजी सरस्वती के त्रिशूल के स्थान पर बाँस के डंडे के अतिरिक्त अन्य सभी विशेषण हैं।

४—षड्भुज सरस्वती, दो हाथ, नमस्कार मुद्रा में, तथा शेष में खड्ग, त्रिशूल, वज्र-घंटिका, पाश।

अष्टभुजा सरस्वती श्रीदेवी के छोटे मन्दिर के १२१२ ई० के फलक पर चित्रित की गयी है, जो तोक्यों (टोकियो) ललित कला विश्वविद्यालय, तोक्यो (टोकियो) में सुरक्षित है। इसमें अष्टभुजा रूपवाले सभी आयुध हैं परन्तु इसके ऊपर की ओर दो धर्मपाल तथा नीचे की ओर देवी हारिति और मारीचि बनाई हुई हैं।

अष्टभुजा सरस्वती रूप शोचो (११५०-१२८२ ई०) चित्रित विश्वकोशीय ग्रन्थ **असाबाशो** में भी दिया हुआ है। इसके चित्र में भी आठों आयुध हैं किन्तु ग्रन्थ में वीणा को इसके समय या गुह्य प्रतीक से बताया गया है।

कोयासान के एंतसुजी बिहार में रखे हुए जुजो-शो, 'चित्रों का चयन', में भी सामान्य अष्टभुजा सरस्वती का चित्र दिया गया है।

शिकाशो-जजो, 'चार आचार्यों द्वारा उतारे गये चित्र' में अष्टभुजा सरस्वती थोड़े अन्तर से दिखायी गयी है : खड्ग और परशु की जगह इसमें एक दूसरे पर रखे दो खड्ग किये गये हैं। वीणा लिये हुए सरस्वती का चित्र भी दिया गया है।

दायगोजी विहार, क्योतो में रखे हुए **दायगोबोन जुजो** अष्टभुजा सरस्वती का चित्र दिया हुआ है जिसमें त्रिशूल की जगह बाँस का डण्डा है।

दायगोजी, क्योतो में रखी हुई **तेम्बू-ग्यो-जो** आवलि में अष्टभुजा सरस्वती का चित्र लापरवाही से बनाया गया है और पाशयुक्त भुजा की उपेक्षा कर दी गयी है। उसी आवलि में कमल और चिंतामणि लिये एक और प्रतिमा है जिसपर सरस्वती का अभिधान दिया गया है परन्तु अपने आयुधों के कारण इसकी पहचान श्रीदेवी लक्ष्मी से की जा सकती है।

कानाजावा-बुङ्को, कानाजावा में रखाए हुए शोसोन-जुजो-शू, "अनेक देवताओं के चित्रों का संग्रह", में अष्टभुजा सरस्वती के सामान्य रूप का चित्र है जिसकी दो दाता भेंट चढ़ाकर अर्चना कर रहे हैं। इन आवलियों में तन्त्री लिये हुए, तथा वीणा लिये हुए द्विभुजा सरस्वती के चित्र भी हैं।

भारत में अष्टभुजा सरस्वती दुष्प्राप्य प्रतीत होती है। खजुराहो संग्रहालय की एक अष्टभुजा मूर्ति के निचले दो हाथों में वीणा है, जिसमें ऊपरवाला दायाँ हाथ वीणावादन कर रहा है तथा शेष पाँच हाथ टूटे हुए हैं। अष्टभुजा सरस्वती के एक अन्य भारतीय रूप में उसके विशेषण ये हैं, वीणा, ग्रन्थ, माला, अंकुश परन्तु उसे "वाण, गदा, माला, चक्र (discus), शंख, घंटी, हल और वाण लिये हुए भी दिखाया गया है।" (करपात्री, श्री भगवती तत्त्व)। इनमें से कोई भी ठीक जापानी रूपों जैसा नहीं है यद्यपि अनेक आयुध एक समान हैं।

द्विभुज सरस्वती

अष्टभुजा सरस्वती के अतिरिक्त इसका दूसरा जापानी रूप द्विभुज सरस्वती का है। चतुर्भुज सरस्वती जापान में नहीं पहुँची।

वीणा (जापानी में बीवा) वादिनी द्विभुज सरस्वती को सर्वप्रथम कोबो दाइशी द्वारा चीन से लाये गये युग्म मण्डलों में से एक महाकरुणागर्भ मण्डल में ८०६ ई० में चित्रित किया गया। जापान में ये अनेक बार चित्रित किये गये। इनकी प्राचीनतम उपलब्ध प्रतियाँ ८२४ ई० (ताकाओ मण्डल), ८९९ ई० (शिंगोन-इन, तोजो में रखी प्रति), ९५२ ई० (दायगोजी मण्डल), मध्य हई युग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(कोजिमा मण्डल), १०३५ ई० (केन-ई की एकवर्गीय प्रति), १११२ ई०, ११९०-९८ ई० (केतक्यू युग) आदि हैं। इन मण्डलों में सरस्वती को बाहरी भाग में नीचे बाईं ओर बनाया गया है। शिंगन या मन्त्रयान के सम्पन्न देव मण्डल के साथ द्विभुज सरस्वती का भी बहुत आधार किया जाने लगा। नीचे ओमुरो (अर्थात् निन्नाजी) काष्ठ मुद्रण से, जिसकी परम्परा १०३५ ई० की केन-ई प्रति तक पहुँचती है, इसकी अनुकृति दी गयी है—

कोयासान के रेइहोकान संग्रहालय में वीणावादिनी, शिलासीन द्विभुज सरस्वती का सुन्दर चित्र है। यह स्याही से रेशम पर बना हुआ है तथा राजवंश युग का है।

त्सुरोणाओका हाशीमान मठ में द्विभुज सरस्वती की १३वीं शताब्दी की एक प्रतिमा है जिसे रेशमी वस्त्रयलंकृत किया तथा एक छोटी वीणा दी जानी थी। जिस युग में इसकी प्रतिमा बनी उसमें यथार्थवाद के प्रति बहुत आग्रह था। देवताओं और साधुओं (monks) की मूर्तियाँ उकेरी जाती थीं तथा उन्हें वास्तविक वस्त्र पहनाए जाते थे। देवी सरस्वती की इस अकेली नग्न मूर्ति बनाए जाने का यही स्पष्टीकरण है क्योंकि जापानी कला में नग्न नारी मूर्तियाँ बिल्कुल नहीं हैं।

शिशु-गोम-होंजन-नरबिनी-केंजोकु-जुजो, 'प्रधान देवताओं तथा चार प्रकार के, उनके अनुचरों के चित्र', में जिसे ८२१ ई० में चिसेन की शैली में बनाया गया वीणा और ? लिये हुए द्विभुज सरस्वती का चित्र है।

तेरहवीं शताब्दी के रायसन (१२७९-१४४९ ई०) के बामाकु-होक्कु-शो, 'श्वेत मणि की मौखिक परम्परा' ग्रन्थ का १४९ वाँ अध्याय सरस्वती की पूजा विधि के विषय में है।

निजुहाशी-बु-शू नरबिनी-जूनी-शिनगो-जु, '२८ प्राणि जातियों और १२ देव सेनापतियों के चित्र', में जिसकी प्रति १३५९ ई० में बनायी गयी सरस्वती गुणदेवी को दो हाथ, एक मुद्रा में तथा दूसरा कमल पुष्प लिये हुए, वाली चित्रित किया गया।

कुहारा-बोन-जुजो अर्थात् 'श्री कुहारा की प्रति के चित्र' में द्विभुज सरस्वती दो त्रिशूल लिये हुए दिखाई गयी है।

ईहान द्वारा संकलित **जो-बोदाई-शू** 'बोधि प्राप्ति संग्रह' सरस्वती पर एक खण्ड दिया गया है।

१५१ आवलियों का दोनों मण्डलों का एक **बायाकुजु शो**, 'श्वेत मणि संकलन' नामक वृहत् ग्रन्थ है जिसमें सरस्वती के मंत्र दिये गये हैं तथा उसकी पूजा-विधि सविस्तार बताई गयी है।

सरस्वती को मौखिक स्तर पर भिक्षु चोजेन द्वारा बबामबुन युग (१६६१-७३ ई०) में प्रकाशित शुजो शो 'बीज संग्रह', में बीजाक्षर या न्यष्टिक अक्षर सु द्वारा बताया गया है।

मिक्कयो दाम्जीतेन 'गुह्य बौद्धमतकोश' में सरस्वती का बीज मण्डल **बेनजायतेनयो मन्दर** प्रविष्टि के अन्तर्गत दर्शाया गया है।

सरस्वती की विशिष्ट वीणा मुद्रा भी है जो जापान में अब तक प्रचलित है। यह शिंगन मुद्राओं के पाठ्यक्रम शिंगन मिक्कयो-जु-इन-शू, 'गुह्य बौद्धमत की मुद्रा संग्रह' में चित्रित की गयी है।

आठवीं शताब्दी में जापान में आगमन के पश्चात् देवी लक्ष्मी के साथ सरस्वती लोकप्रिय बौद्धधर्म का अनिवार्य अंग बन गयी है। इनकी लोकप्रियता इतनी दूर-दूर तक फैली हुई है कि उन्हें देशी शिन्तो देवमण्डल में भी ले लिया गया है। सरस्वती की वाग्मिता में प्रवीणता, प्रज्ञा, आयु तथा युद्ध में विजय देने के अतिरिक्त प्राकृतिक उत्पात से सुरक्षा प्रदान करने के लिए भी पूजा की जाती रही है—कोंकोम्यो-क्यो (सुवर्णप्रभास सूत्र) के अनुसार वह एम्मा-ओ (यमराज) की अष्टभुजा बहिन कही गयी है।

सरस्वती प्रत्येक घर को पवित्र करनेवाली सात भाग्य देवियों में से एक देवी के रूप में घर-घर की देवी बन गयी है। यहाँ उसे सर्वदा वीणावादिनी रूप में दिखाया जाता है तथा वह संगीत व कला की अधिष्ठात्री देवी है। रीति रिवाजों के उद्गम की पुस्तक **फ्यूजोकुत्सु** के अनुसार बीणा या वीणा साढ़े तीन फुट की है तथा वह स्वर्ग, धरा और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानव की प्रतिनिधि है; इसके पाँच अंग मानवता के पाँच गुणों तथा इसके चार तार वर्ष की चार ऋतुओं के सूचक हैं।

जापान में सरस्वती को समर्पित कई मन्दिर हैं जिसमें कोकोजो मन्दिर उल्लेख्य है। इसमें वीणायुक्त द्विभुज सरस्वती अधिष्ठित है। सरस्वती का वार्षिक होम उत्सव इस विहार की नियमित विशेषता है। इस अवसर पर उत्सव में भाग लेनेवालों को उसके माहात्म्ययुक्त काष्ठ खण्ड से मुद्रित चित्र दिया जाता है। माहात्म्य में कहा गया है 'कोकोजी विहार के प्रधान मन्दिर की सरस्वती पुण्यमयी बुद्ध देवी है। वह तथागत शाक्य मुनि की अनुगता है। वह सभी चेतन प्राणियों की करुणामयी माता है। उसका पुण्य प्रताप तीन सहस्र जगत् में व्याप्त है। वह धनदात्री है। वह अद्भुत प्रज्ञा है। वह आयुष्य और आनन्द देनेवाली है। संगीत और वाग्मिता की अधिष्ठात्री होने से वह 'सुन्दर शब्द देवी' भी कही जाती है। लाभ, गुण और ज्ञान की देवी होने से वह गुण देवी है। यह सरस्वती वीणावादिनी है। यह उन सबकी इच्छा पूरी करती है जो चतुरता, धन या लाभ, वाग्मिता, मधुर स्वर, संगीत या प्रज्ञा के लिए इसकी उपासना करते हैं। पन्द्रह कुमारियाँ प्रथम से पन्द्रहवें दिन तक इसकी सेवा करती हैं। एक सूत्र में कहा गया है कि यदि कोई निर्धन हो तो वह सात दिन तक मेरा होम करे मैं उसे अनन्त धन प्राप्ति का वर दूँगी।'

उपर्युक्त विवरण से पता चलता है कि जापानी मूर्ति निर्माण कला में सरस्वती को निम्नलिखित दस प्रकार से दिखाया गया है—

अष्टभुजा सरस्वती—

१—बाण, धनुष, खड्ग, त्रिशूल, परशु, वज्र, चक्र और पाश लिये हुए। यह अष्टभुजा सरस्वती का सामान्य रूप है।

२—त्रिशूल की जगह बाँस का डण्डा लिये हुए।

३—खड्ग और परशु की जगह एक दूसरी पर आड़ी रखी दो तलवारें लिये हुए।

षड्भुज सरस्वती—

४—दो हाथ नमस्कार मुद्रा में तथा खड्ग, त्रिशूल (?) वज्र-घंटी, पाश (?) लिए हुये।

द्विभुज सरस्वती—

५—वीणा लिये हुए। यह इस देवी का सामान्यतम रूप है।

६—वीणा और खड्ग (?) लिये हुए।

७—तन्त्री लिये हुए।

८—कमल और चिन्तामणि लिये हुए।

९—एक हाथ में कमल लिये तथा दूसरा मुद्रा में।

१०—दो त्रिशूल लिये हुए।

इनके अतिरिक्त सरस्वती को बीज सु, विस्तृत बीज मण्डल तथा अपनी बिशिष्ट मुद्रा द्वारा भी दिखाया गया है।

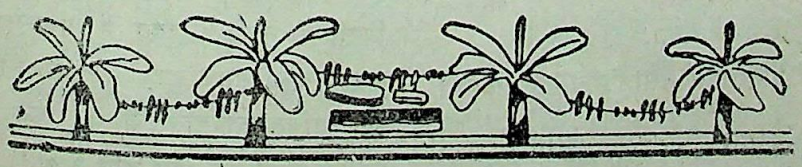

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चातक और पपीहा

श्री राजेश्वरप्रसादनारायणसिंह

'चातक और पपीहा'—पाठक इस शीर्षक को देखकर शायद आश्चर्य करेंगे चूँकि भारतीय साहित्य में ये दोनों शब्द पर्यायवाची माने गये हैं, पर वस्तुतः ये दो पक्षी हैं जिनमें पारस्परिक समानताएँ भी हैं, असमानताएँ भी। रूप-रंग में इनके काफी भेद है पर बोली में समानता है तथा दोनों ही—

'तृषाकुलैस्चातकपक्षिणां कुलैः
प्रयाचितास्तोयभरावलम्बिनः।
प्रयान्ति मन्दं बहुधारवर्षिणो,
बलाहकाः श्रौत्रमनोहरस्वनाः

महाकवि कालिदास की इस उक्ति को चरितार्थ करनेवाले हैं। दरअसल संस्कृत-साहित्य में सर्वत्र चातक का ही उल्लेख आया है, पपीहे की कहीं चर्चा नहीं है। हाँ, चातक के दो और नाम अवश्य पाये जाते हैं—सारंग और स्तोक। सम्भव है, इनमें से कोई उस पक्षी के लिए प्रयोग होते हों जिसे हम पपीहा कहते हैं। हिन्दी-साहित्य में बगैर किसी भेद-भाव के चातक और पपीहे का उल्लेख होता आया है, मानों दोनों एक ही पक्षी हों, यथा—

'चातक रटनि तृषा अति ओही'
'ऊँची जाति पपीहरा, पियत न नीचो नीर।'

आदि गोसाईं तुलसीदास के कथन या कि सूरदास का—

'सखी री, चातक मोहि जियावत,
जैसेहि रैन रटति हौं 'पिय-पिय' तैसेहि पुनि-पुति गावत।'

पर, जैसा कि पूर्वकथित है, 'ककू' जाति के ये दो विभिन्न पक्षी हैं। पपीहा छोटे कबूतर के कद का, रंग-रूप में शिकरे (एक शिकारी पक्षी) से शत-प्रतिशत मिलता हुआ स्लेटी भूरे रंग का, एक पक्षी है जिसके उड़ने का ढंग भी वही है जो शिकरे का। चातक मैना से कुछ छोटा, लम्बी पूँछ का पक्षी है जिसके बदन का ऊपरी हिस्सा गाढ़ा चमकीला काला, निचला सफेद होता है। पाँव पर बाज की सफेद घने बाल होते हैं। सर पर बुलबुल की तरह काला तुर्रा होता है। देखने में यह काफी चित्ताकर्षक है।

ये दोनों ही मेघ से जल की याचना करते हैं, अर्थात् वर्षाकाल में जब आकाश में बादल मँडराने लगते तो ये 'पी-पी-हो' की रट लगाते हैं मानों मेघ से कह रहे हों—

प्यास मरत हौं देहु टुक, जल-बूँदनि कौ दान।
है प्रियतम, वारिद सुभग, हे मम जीवन-प्रान!!

पर जिस-तिस मेघ से ये जल की याचना भले ही करते रहते हों, इनकी संतुष्टि तभी होती है जब स्वाति-नक्षत्र के मेघ अपनी बूँदों से इनके अधर का स्पर्श करते हैं, तभी इनकी प्यास मिटती है। ऐसे अपनी बेवकूफी में ये सभी मेघों को अपना प्रियतम मान बैठते हैं, यह नहीं समझते कि अंबर मंडल में हर प्रकार के बादल विचरा करते हैं, कुछ ऐसे जो पानी बरसाते हैं, कुछ जो वृथा ही गरजते हैं, बरसते नहीं। तभी तो किसी कवि ने इन्हें राय दी है कि 'यं यं पश्यसि तस्य-तस्य पुरतो मा ब्रूहि दीनं वचः।'

इस देश की लोकोक्तियों में पपीहे का जिक्र बहुतायत से आया है चूँकि 'पी-पी-हो' की इसकी रट बसंत काल ही आरम्भ हो जाती है। यह कामोद्दीपक ऋतु है, अतः विरहिणी नारी के हृदय में प्रवासी पति का स्मरण कर ये शब्द उसके हृदय में तीर की तरह चुभते हैं और उसे व्यथित कर डालते हैं, वह कह उठती है—'पपीहा बैरी तू पी-पी की बोल जनि बोल!

प्रकृति से यह वृक्षों पर रहनेवाला पक्षी है, जमीन पर शायद ही कभी उतरता हो। जब मस्ती में आता है, तभी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के शीर्ष-भाग पर बैठकर जोरों में बोलने लगता है, बोलता है, बोलता ही जाता है, दिन भर बोलता रहता है, अक्सर रातों में भी, यदि वह चाँदनी रात हुई। तमाम ग्रीष्म और वर्षाकाल यह करुण स्वरों में 'पी-पी-हो' अथवा 'पी-पी' रटता हुआ काट देता है। वर्षा का वास्तविक स्वाति नक्षत्र के व्यतीत होने पर ही होता है और तभी इसका बोलना भी बन्द होता है। यही कारण है इस जनश्रुति का कि पपीहे अथवा चातक की प्यास स्वाति-जल से ही मिटती है। यह जल मीठा, अत्यन्त गुणद, होता है, पृथ्वी के पेड़-पौधों से लेकर सभी जीव-जन्तु—प्राणियों—के लिए। सम्भव है, उसके जल से ही पपीहे की पूर्णरूपेण परितुष्टि होती हो।

अब आप चातक-सम्बन्धी कुछ बातें सुनें—

यह उन पक्षियों में है जो बसंत नहीं, वर्षाकाल में अपना मुँह खोलता है। मानसूनी हवा का बहना शुरू हुआ नहीं कि चातक आ धमके, कुछ अफ्रीका की ओर से, कुछ पहाड़ों से। ऐसा लगता है मानों ये रातोंरात आ पहुँचते हों। मैं जभी इन्हें पहली-पहली बार अपने बाग में देखता हूँ, छोटे-छोटे झाड़ीदार वृक्षों पर या उनसे नीचे उतर कर जमीन पर एक दूसरे का दौड़-दौड़कर पीछा करते हुए, बीच-बीच में मन्द पर मधुर स्वर में 'पिऊ-पिऊ', 'पीं-पी-पिऊ', 'पी-पी-पिऊ' बोलते हुए, तो फौरन समझ जाता जाता हूँ कि अब वर्षा होने ही वाली है। और बगैर नागा दो-एक दिनों में बादल आ पहुँचते हैं और अपनी पहली बौछार से धरती को सिक्त कर डालते हैं।

महाकवि कालिदास ने अपनी कृतियों में पक्षियों का व्यापक रूप से उल्लेख और वर्णन किया है और इनके पढ़ने से यह साफ परिलक्षित होता है कि वे एक कुशल पक्षी-निरीक्षक भी थे। इनमें चातक का भी उल्लेख है, बहुतायत से, 'वामश्चायं नदति मधुरं चातकस्ते सगन्धः' आदि उक्तियों में दरअस्ल चातक को मेघ के प्रति आकर्षण का उल्लेख समस्त संस्कृत-साहित्य में है तथा इसके अन्य दो नामों की जगह-जगह पर चर्चा पायी जाती है। 'वाचस्पत्याभिधान' में चातक का अर्थ इस प्रकार लिखा है—'सारंगस्तौककश्चातकः समाः इत्यमरः'। मेघदूत में कालिदास ने लिखा है—

'सारंगास्ते जललवमुचः सूचयिष्यति मार्गम्'

मेघदूत के अंग्रेजी टीकाकार होरेस विलसन ने चातक के सम्बन्ध में लिखा है—

The *Chataca* is a bird supposed to drink no water but rain weter. × × × In the translated *Amar Cosha*, it appears that the *Chataca* is a bird not yet well known, but that it is possibly the same as the *Pipiha*, a kind of Cuckoo.

मोनियर उलियम्स ने भी चातक को Cucculus melanoleucus बताया है—a bird said to subsist on rain drops.

अर्थात्, वह पक्षी जो मेघ की बूँदों पर निर्वाह करता है।

प्रसिद्ध पक्षी-विशेषज्ञ श्री स्टुअर्ड बेकर ने चातक को पपीहा बताया है, पर विहंगतत्वविद् जोर्डेन ने इस पक्षी के स्वभाव और आदतों का जो वर्णन किया है वह पपीहे पर लागू नहीं होता, वह लिखते हैं—'प्रजनन ऋतु के आने पर यह अत्यन्त वाचाल हो उठता है; दो-दो, तीन-तीन नर मादा के पीछे दौड़ते रहते हैं, साथ-साथ जोर से बोलते भी जाते हैं, उच्च-स्वर में एक प्रकार की धातुसदृश बोली। एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर उड़ते हुए भी—पर यह उड़ान तेज नहीं होती—ये अनवरत बोलते रहते हैं, जब-तब आकाश में काफी ऊँचा उड़ते हुए भी ये बोलने से बाज नहीं आते।' पर ये कभी गला फाड़-फाड़कर पपीहे की तरह रट नहीं लगाते।

एक दूसरे पक्षीशास्त्रवेत्ता श्री व्हिसलर के कथनानुसार कक्कू जाति का तथा अधिकतर पेड़ों पर रहनेवाला होते हुए भी यह अक्सर छोटे-छोटे झाड़ीदार पेड़ों पर भी बैठा हुआ पाया जाता है और जमीन पर उतरकर भोजन संग्रह करता है।

उपर्युक्त बातों से यह स्पष्ट है कि चातक पपीहा नहीं है, वह जो कभी न तो झाड़ियों पर आकर बैठता है और न बड़े वृक्षों से उतरकर जमीन पर पाँव धरता है। अधिकांशतः वह वृक्ष के शीर्ष भाग पर बैठा हुआ आकाश के बादलों की ओर देखता है तथा पी-पी-हो की तीव्र ध्वनि से सारे वातावरण को गुंजायमान बनाये रहता है।

कालिदास ने मेघों के भीतर से चातक की ध्वनि के आने की चर्चा की है। ऊपर आकाश में उठने की प्रवृत्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी चातक में ही पायी जाती है, पपीहे में नहीं। इसी तरह पर्वतों पर भी चातक के होने का उल्लेख उन्होंने किया है। इसका समर्थन श्री स्टुअर्ट बेकर के इस कथन से होता है कि एवरेस्ट पर्वतारोहियों ने १४,००० फुट की ऊँचाई पर भी उन चातकों को देखा था जिनका रूप-वर्णन इस लेख में हम कर आये हैं बल्कि उनमें से एक को पकड़-कर वे अपने साथ लेते भी आये थे। इसका वैज्ञानिक नाम Clamator Jacobinus (Bodd) है और इसकी सारी आदतें शैलशृंग पर अवस्थिति, वर्षा के साथ इसका घनिष्ठ सम्बन्ध, उसके आते ही इसमें चंचलता एवं प्रगल्भता का उद्रेक, छोटे से दल में मेघ मंडल का इसका परिभ्रमण, ये सभी उस चातक में पाये जाते हैं जिसका महाकवि कालिदास ने अपनी कृतियों में वर्णन किया है। पपीहा, इसके ठीक विपरीत, पहाड़ों पर नहीं होते, बल्कि इस देश के बंगाल से लेकर राजस्थान तक में ही विशेष रूप से प्राप्य है। बंगाल में ये 'पपिया' के नाम से पुकारे जाते हैं।

चातक और पपीहे स्वयं नीड़ नहीं रचते, दूसरे पक्षियों के नीड़ में—खास कर चरखी के—अण्डे पार आते हैं। यह सर्वमान्य है, पर जहाँ तक पपीहे का प्रश्न है, इसकी एक उपजाति है जो दक्षिण-पूर्व-एशिया तथा भारत के कई हिस्सों में प्राप्य है, जिसकी मादा यदा-कदा-संभव है, मनोरंजनमात्र के लिए ही—घोंसला बनाती हुई पायी जाती है। इसकी दूसरी असाधारण प्रकृति यह है कि अक्सर दूसरे पक्षी के घोंसले में अण्डा पारने के पूर्व यह उसके भीतर के सभी अण्डों का भक्षण कर जाती है जिसके चश्मदीद गवाह श्री हागसन नामक एक पक्षी-पर्यवेक्षक हैं। पर यह हमेशा ऐसा करती हो, कोई प्रमाण नहीं है।

तो मतलब यह कि उस पक्षी की जिसके सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि—

सत् का प्रकाश

श्री गङ्गाधर मिश्र

सत् का प्रकाश साधनाधीन,
है असत् सहज कुत्सित विरूप।
सत् की उपासना से स्रष्टा
भव को देते नव नाम-रूप।

परिवर्त्तन की है असत् योनि
सर्जन नियमन सत् का स्वभाव।
सत् के सौरभ से असत् विश्व
पाता है अद्भुत दिव्य भाव।

सत् है चेतन आनन्द पूर्ण
अद्वैत सदाशिव अभयधाम।
सुन्दरता जिसको कहते हैं—
वह सत् की नव परिणति ललाम।

यह असत् असुर सत् देव रूप
दोनों का है संघर्ष नित्य।
आतंक असत् का प्रलयङ्कर
सत् की होती है विजय सत्य।

——

एकएव खगौ मानी वने वसति चातकः
पिपासितो वा म्रियते याचते वा पुरंदरम्,

दो अलग जातियाँ हैं, एक दूसरे से देखने में बिलकुल भिन्न पर बोली में समानता रखनेवाली। संस्कृत-साहित्य में इन दोनों को चातक नाम से ही पुकारते आये हैं। हिन्दी-साहित्य में पपीहे को भी चातक कहने की परम्परा बनी रही है, पर स्पष्टतः ये दोनों ही भूल हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुगल सम्राट् शाहजहाँ का मयूर सिंहासन--'तख्ते ताऊस'

श्री परमानन्द पांचाल

औरंगजेब की अदूरदर्शी नीतियों के फलस्वरूप ही विशाल मुग़ल साम्राज्य का पतन आरंभ हो गया था। उनकी मृत्यु (१७०७ ई०) के पश्चात् तो कोई भी ऐसा शासक दिल्ली की गद्दी पर नहीं बैठा जो साम्राज्य को छिन्न-भिन्न होने से बचा सकता और उसके वैभव की रक्षा कर सकता। आंतरिक कलह और फूट से ग्रस्त, इस ह्रासोन्मुख साम्राज्य को १७३९ ई० में नादिरशाह जैसे क्रूर और आततायी आक्रमणकारी के हाथों विनाश का मुँह देखना पड़ा। उसके एक हुक्म से दिल्ली में जो कत्लेआम हुआ उसे सुनकर आज भी रोंगटे खड़े हो जाते हैं। दिल्ली के लाखों निरीह, निरपराध नागरिकों को मौत के घाट उतार दिया गया। नादिरशाह ने तलवार म्यान से निकालकर हुक्म दिया 'जब तक मैं तलवार म्यान में न रखूँ दिल्ली के एक-एक नागरिक को मौत के घाट उतार दिया जाये।' फिर क्या था उसके सैनिक दिल्ली वालों पर बाज़ की तरह टूट पड़े। स्त्री-पुरुष, बूढ़े-बच्चे, पशु-पक्षी, जो भी मिला कत्ल कर दिया गया। हर घर से खून की धारा बह निकली। चाँदनी चौक, दरीबा कलाँ, जामा मस्जिद का आस-पड़ोस सभी आग में जल उठे। ९ घंटे तक हत्याकांड चलता रहा। यह एक लम्बी कहानी है कि किस प्रकार यह रक्तपात बंद हो पाया और नादिरशाह को कहाँ से विदा किया गया, किंतु कहते हैं कि दिल्ली के पूरे एक लाख नागरिक इस हत्याकांड के शिकार हुए थे।

इस दिल दहलाने वाले नर-संहार के साथ-साथ ही नादिरशाह ने शाही खज़ाने को भी खाली कर दिया और समकालीन दिल्ली सम्राट् मुहम्मद शाह रंगीला असहाय होकर सब कुछ देखता रहा। बादशाह से नादिरशाह ने करोड़ों रुपये तथा प्रायः साढ़े तीन सौ वर्षों से संगृहित शाही खज़ाने के जवाहिरात लिये और इनसे भी बढ़कर मुगल-साम्राज्य का वैभव 'कोहेनूर हीरा' और शाहजहाँ का बहुमूल्य सिंहासन 'तख्ते ताऊस' भी उसके हाथ लगा।

'कोहेनूर' की भाँति ही तख्ते ताऊस भी शाहजहाँ की प्रसिद्ध निधियों में था। कोहेनूर तो कट छँट कर आज भी इंगलैंड की महारानी के ताज की शोभा बढ़ा रहा है, किन्तु अभागे 'तख्ते ताऊस' का कहीं भी नामों निशान नहीं रहा। आइये एक बार फिर, इसके स्वरूप पर विचार करें।

मुगल बादशाहों में शाहजहाँ जैसा रत्नों का पारखी और प्रेमी कोई दूसरा नहीं हुआ। प्रतिदिन उसके दरबार में देश-विदेश के जौहरी बहुमूल्य हीरा, माणिक, पन्ना, पुखराज आदि पत्थरों को लेकर उपस्थित हुआ करते थे। वह उन्हें आँखों से देखकर ही उनका मूल्यांकन करते तथा पसंद की चीजों को खरीदा करते थे। स्वभावतः बादशाह का रत्न-भंडार संसार के तात्कालीन सभी रत्न-भंडारों से सवाया था।

१६२८ ई० में औपचारिक रूप से सिंहासनारूढ़ होने के तुरंत बाद शाहजहाँ ने निश्चय किया कि वह एक ऐसे राज-सिंहासन का निर्माण कराकर अपने आपको गौरवान्वित करेगा, जो अन्य किसी भी बादशाह के सिंहासन से कहीं अधिक श्रेष्ठ एवं मूल्यवान् हो। अप्राप्य रत्नों को भारी मात्रा में खरीदा गया और इस प्रकार राजकीय रत्नागार के भंडार में भारी वृद्धि की गई। इस समस्त संचित भंडार को श्रेष्ठ 'तख्ते ताऊस' को अलंकृत करने में लगा दिया गया। यूरोप के दो प्रसिद्ध कारीगर-आस्टिन, जो बोरडों का रहने वाला था, तथा जेरेनिमों वेरोनियो, संयोगवश उन दिनों मुग़ल दरबार में ही थे। उनकी देख-रेख में इसकी रूप-रेखा तैयार की गई थी।

विन्सेंट ए० स्मिथ

तख्ते ताऊस का आकार-प्रकार—आक्सफोर्ड हिस्टरी आफ इंडिया के पृष्ठ ३७७ पर लिखा है कि :—

"इसका निर्माण बेबदल खाँ के निरीक्षण में ७ वर्षों (१६२८-३५) में पूर्ण हुआ। यह सिंहासन एक पलँग के प्रकार का था, जिसके पाए सोने के बने थे। इसकी चित्रित छत, पन्ने के बने बारह स्तम्भों पर टिकी हुई थी और प्रत्येक स्तम्भ पर दो-दो मोर थे जिनके ऊपर रत्न जड़े हुए थे। प्रत्येक जोड़ के पक्षियों के बीच में एक वृक्ष था

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो हीरों, पन्नों और माणिक तथा मोतियों से सुसज्जित था। यह अलंकृत सिंहासन जिसकी लागत कम से कम एक करोड़ रुपये अर्थात् उस समय के साढ़े बारह लाख पौंड के बराबर होगी, १७३९ तक उस समय तक शोभायमान रहा जब तक कि नादिरशाह उसे उठाकर ईरान नहीं ले गया।"

भूतपूर्व संसद सदस्य श्री **आर० पी० नारायणसिंह** के शब्दों में "यह देखने में चारपाई के किस्म का, छह फुट लम्बा, सोने के चार खम्बों पर स्थित था। तख्त का पिछला हिस्सा हू-बहू मोर की पूँछ के रंग और आकार-प्रकार का था जिसमें उच्च श्रेणी के हीरे, माणिक और नीलम लगे हुए थे। छत के छोटे-छोटे आधार-स्तम्भ सोने के बने हुए, पन्ना तथा मोतियों से आच्छादित थे।"

(मुग़ल साम्राज्य की जीवनसंध्या पृ० २२)

१७वीं सदी में **जीन थेवनो**—एक फ्रांसीसी यात्री भारत आया था। उसने लिखा है—"कहते हैं इसमें २० करोड़ का तो सोना ही लगा है पर कौन इसकी कीमत कूत सकता है? इसका मूल्यांकन तो इसके उन बहुमूल्य पत्थरों की कीमत जानने पर ही किया जा सकता है जिनसे यह लदा हुआ है।"

इसी प्रकार अन्यान्य विदेशी यात्रियों ने इसके सम्बन्ध में लिखा है और इसकी कीमत के सम्बन्ध में तरह-तरह की अटकलबाजियाँ लगाई हैं, किंतु प्रसिद्ध यात्री **टेवर्नियर** ने जो इसका आँखों देखा विवरण प्रस्तुत किया है वह अधिक प्रामाणिक है। उनके शब्दों में :—

"मुख्य सिंहासन जो पहले दरबार के मुख्य भवन में स्थित है वह हमारे शिविर की चारपाइयों से आकार और प्रकार में मिलता-जुलता है, अर्थात् वह लगभग ६ फुट लम्बा और ४ फुट चौड़ा है। चारों पायों के ऊपर ४ सलाखें लगी हुई हैं जो २० से लेकर २५ इंच तक ऊँची हैं। ये सिंहासन के आधार को सहारा दिये हुए हैं। इन सलाखों के ऊपर बारह स्तम्भ हैं जो इसकी छतरी को तीन ओर से सँभाले हुए हैं। पायों और सलाखों, दोनों ही के ऊपर जो १८ इंच से बड़े हैं, सोने के पत्र चढ़े हुए हैं और उन पर अनेक हीरे, माणिक और पन्ने जड़े हुए हैं।

"मैंने इस सिंहासन के बड़े-बड़े माणिकों को गिना है, वे १०८ के लगभग हैं। इनमें सबसे छोटे का भार १०० केरेट है किंतु कुछ ऐसे भी हैं, जो २०० केरेट या उससे बड़े दिखाई देते हैं।

"छतरी का अन्दर का भाग हीरों और मोतियों से ढका हुआ है, जिसके चारों ओर मोतियों की झालर लगी हुई है। छतरी के ऊपर, जो एक चौकोर गुम्बद की शक्ल की है, एक मोर स्थित है जिसकी पूँछ ऊपर को उठी हुई है। पूँछ नील मणि तथा अन्य रंगों के पत्थरों से बनी है। मोर का शरीर सोने का है जिसमें बहुमूल्य पत्थर लगे हुए हैं। उसकी छाती के सामने एक बड़ा माणिक लगा है जिसके ऊपर भाले के आकार का एक लगभग ५० कैरेट भार का मोती है, जो कुछ कुछ पीले जल जैसा है।"

टेवर्नियर का कथन है कि तैमूरलंग के समय से संग्रहीत धन से प्रारंभ और शाहजहाँ द्वारा पूर्ण इस सिंहासन का मूल्य १,०७,००० लाख है। किन्तु **वी० बाल** के अनुसार यह राशि १०७० लाख होनी चाहिए।

इस भव्य सिंहासन के पीछे एक छोटा सिंहासन है, जो स्नान कुंड के आकार का है। यह अंडाकार है जिसकी लम्बाई ७ फुट और चौड़ाई ५ फुट है। इसके बाहर हीरे और मोती जड़े हुए हैं, किंतु इसकी छतरी नहीं है।

लार्ड कर्जन ने जिस तख्त को तेहरान में देखा था उसके विषय में वह लिखता है कि तख्त ताऊस बिलकुल भी भारतीय कृति नहीं है। इसका निर्माण इस्फहान के मुहम्मद हुसैन खाँ सदर ने फतह अली शाह (१७९३-१८४७) के लिये उस समय कराया था, जब शाह ने एक इस्फहानी युवती के साथ विवाह किया था। नादिरशाह के मूल 'मयूर सिंहासन (अर्थात् दो प्रतिकृतियों के अवशेष) को आगा मुहम्मद शाह (१७८५-९७) ने टूटी फूटी और जीर्ण-शीर्ण अवस्था में प्राप्त किया था। उसने इसे विजेता के रूप में अन्य जवाहिरात के साथ प्राप्त किया था। इसके बाद इसके प्राप्त अंशों से आधुनिक रूप और प्रकार का एक अन्य सिंहासन बनाया गया जो आज तेहरान के महल में स्थित है।.....अतः इस तख्त पर महान् मुगलों के मयूर सिंहासन के अवशेष विद्यमान हैं।

नादिरशाह को यह इतना अधिक पसन्द था कि वह जहाँ कहीं भी जाता इसे साथ ले जाता था। इसके बाद यह तख्त आगा मुहम्मद शाह—जिसने फारस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बादशाहत भी नादिरशाह के मरने पर हड़प ली—के हाथों पड़ा।

१९१९ में यह एक अफवाह फैली थी कि मुग़ल सम्राटों का तख्त-ए-ताऊस कुस्तुनतुनिया में है और तुर्कों से खरीदकर इसे शायद दिल्ली लाया जायेगा। लार्ड कर्ज़न ने 'दि टाइम्स' में १० सितम्बर १९१९ को लिखे अपने एक पत्र में उपर्युक्त तथ्य को दोहराया है। उसने कहा है कि नादिरशाह की मृत्यु से दो वर्ष पूर्व जब तुर्कों ने ईरान पर आक्रमण किया तो उन्हें भारी पराजय का मुंह देखना पड़ा और यह विजयोपहार उनके हाथ में न आ सका।

किंतु निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता फिर भी यह मत अधिक प्रचलित है कि १८वीं शताब्दी के अन्तिम भाग में यह सिंहासन अंग्रेजों के हाथ लगा। मद्रास लाया गया और वहाँ से **'ग्रास भेनर'** जहाज से जून १७८२ में इंगलैंड के लिए रवाना किया गया। किन्तु दुर्भाग्यवश जहाज पूर्वी अफ्रीका के आसपास एक घोर तूफान के चंगुल में जा फँसा और अंत में जल समाधि को प्राप्त हुआ—और साथ ही तख्ते-ताऊस भी! तब से प्रायः सोलह बार हिन्द महासागर के गर्भ से उसे बाहर निकालने के यत्न हुए पर वह निकल न सका। सिंधु-क्रोड़ में सोया हुआ वह आज भी शाहजहाँ-कालीन वैभव के स्वप्न देखा करता है कि काश वह घड़ी फिर आये और वह भारत भूमि को लौट सके।

हास्य-व्यंग्य—

राकेट का स्वागत

श्री वासुदेव गोस्वामी

हिन्दी में हम राहु-केतु जिसको कहते हैं,
इंगलिश उच्चारण में वह 'राकेट' हो गया।
चन्द्र-ग्रहण के हेतु पड़ा रहता था पीछे,
खैर, सफल इस युग में वह आखेट हो गया॥

चन्द्र-लोक राकेट गया जब भागा-भागा,
समझा गया वहाँ पर यह जयन्त-सा कागा।
क्योंकि काक की तरह उड़ा द्रुत गति से सीधा,
और मार्ग में कहीं न ठहरा, कहीं न बीधा।

इस मिथ्या वायस की खूब हुई पहुनाई,
नारे गूँजे—"कौवा-चन्दा भाई-भाई।"
चन्द्र-लोक में बस देता था यही सुनाई—
"चन्दा-कौवा कौवा-चन्दा भाई-भाई॥"

मैंने जब से सुना तभी से था भी चिन्तित,
आखिर, होते-करते वही समस्या आई।
मुझसे कहा गया है, इसे प्रभाणित करिये—
कौवा-चन्दा, ये दोनों हैं भाई-भाई॥

कौवा तो कौवा है, चन्दा भी चन्दा है,
लेकिन इन्हें सिद्ध करना है भाई-भाई।
क्या मानी है वरना मेरी विद्वत्ता के,
राजनीति की गुत्थी अगर नहीं सुलझाई॥

मैं बोला—बच्चे जिन-जिन से मामा कहते,
उनके आपस के रिश्ते में क्या कठिनाई?
वे चाहे कौवा हों, चाहे हों वे चन्दा,
एक-दूसरे के लगते हैं भाई-भाई॥

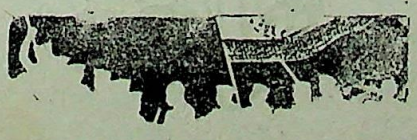

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बीज का मुक्ति गान

प्रो० सुरेशचन्द्र

मुक्ति की ओर ज्यों ज्यों बढ़ाए कदम
बन्धनों ने मुझे बाँध उतना लिया !
बीज की पर्त तोड़ कर मैं चला
बँध गया माँ धरा की नरम गोद में,
और साहस किया, और ऊपर बढ़ा
बाँह में भर लिया तब अनिल ने हमें !
पल्लवों के मृदुल पंख को खोलकर
वायु के संग उड़ने की इच्छा हुई
किन्तु सब की निगाहों से निज को छुपा
मूल मेरी चरण में लिपट ही गई !
प्रेम के बन्ध को तोड़ पाया नहीं
किन्तु भावी का मैंने भरोसा किया !!
मुक्ति की ओर ज्यों ज्यों बढ़ाए कदम !!

भोर होते सुनहली किरन चूमकर
इक गुलाबी जगत् में नयन खोल दे,
साँझ भी जब पहन लाल साड़ी चली
जाय, आए रुपहली परी चाँद से !
औ' अँधेरा कभी मौन हो प्यार से
नींद आराम वाली मधुर देखता
हर सितारा सजाने खिलाने मुझे
दूब के हाथ से मोतियाँ भेजता !
और कोयल ने इक रात मेरी कड़ी
बाँह पर गीत मधुमास का गा दिया !!
मुक्ति की ओर ज्यों ज्यों बढ़ाए कदम !!

भर गई गर्म सिहरन सभी अंग में
लाल कोंपल के पहने मुलायम वसन,
भीड़ भौरों की झुक झूम आने लगी
मंजरी से सजा मेरा महकीला तन !
फल हजारों लगे झूमने गोद में
देखते लोग सब आस रस से भरे
ध्यान मेरा लगा बस उन्ही में सतत
मुक्ति के भाव सब डूब उनमें गये !
मैं फला, मैं झरा किन्तु इसका न दुख
एक सुख से नये, भर रहा था हिया !!
मुक्ति की ओर ज्यों ज्यों बढ़ाए कदम !!

मैं ऋणी हूँ धरा, वायु औ' हर किरन,
सब सितारों का, नभ का, हरी दूब का,
पंछियों बादलों का; बनूँ मैं उऋण
किस तरह मैं खड़ा मौन था सोचता,—
एक बुझते दिये ने बताया मुझे—
'छाँह में यदि तेरी धूप से तप्त हो,
एक पंछी, पथिक को ठिकाना मिले,
तो समझ लो कि तुम बन गये मुक्त हो !'
दूसरे के लिए मैं फलूँ औ' तपूँ—
कर्म यह मुक्ति का धर्म मधु बन गया !!
मुक्ति की ओर ज्यों ज्यों बढ़ाए कदम
बंधनों ने मुझे बाँध उतना लिया !!

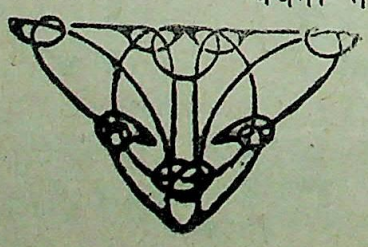

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुसलमानों में गुलामी

श्री राजेन्द्रप्रसाद जैन

मुसलमानों में जो गुलामी की प्रथा रही है उस पर सरस्वती के फरवरी'७३ अंक में श्री शीला चतुर्वेदी का सुन्दर लेख निकला है। इसी विषय पर शमशुलउलेमा मौलाना शिब्ली नोमानी ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक शेरुल अजम में जो कुछ लिखा है वह भी ध्यान देने योग्य है।

भाग-४ प्रकाशक मआरफ़ प्रेस आजमगढ़ सन् १९५१ ई० पृष्ठ १५५ से लेकर मनुष्य की स्वाभाविक प्रकृति के अनुसार पुरुष प्रेमी व स्त्री प्रेयसि है। हिन्दी भाषा में पुरुष प्रणयि (माशूक) ठहराया गया है परन्तु क्योंकि स्त्री प्रेमी (आशिक) है इसलिए यह भी प्रकृति के बहुत कुछ निकट है।* परन्तु ईरान की यह उपज कि प्रेमी और प्रणयि (आशिक व माशूक) दोनों पुरुष घोर विस्मयकारक हैं और न्याय यह है कि ईरान की इस बेहूदगी ने ईरान के प्रेम काव्य को जो सारे विश्व से उच्च और सरस था मिट्टी में मिला दिया····।

जिन कारणों से अरब में यह धारा बही थी वे ईरानियों को बहुत विस्तृत और प्रचुर मात्रा में प्राप्त थे। तुर्क गुलाम जो सामान्यतः सुन्दर होते थे घर-घर फैल गये थे और रंगीन गोष्ठियों में मदिरा पिलाने व उनकी शोभा बढ़ाने की सेवा इन्हींसे सम्बन्धित थी। एकान्त में व भीड़ में, घर में व बाहर सदैव साथ रहते थे और निरन्तर सेवा में रहने के कारण सहचर व सखा बन जाते थे। हर समय के मेल-मिलाप से आँखें लड़ती रहती थी। धीरे-धीरे वे गुलाम व सेवक होने के स्थान पर प्रियतम और प्रियदर्शनः बन गये। दक़ीक़ी, फ़र्ख़ी इत्यादि के काव्य में स्थान-स्थान पर इसके संकेत नहीं स्पष्ट उल्लेख पाये जाते हैं। हकीम बतलाई कहते हैं, "बड़े-बड़े सम्राट् और सामन्त इन्हीं मोल लिये गुलामों के गुलाम थे।"

*हिन्दी में स्त्री भक्त और पति परमेश्वर है। स्त्री में जब पति के प्रति उत्कट प्रेम उत्पन्न होता है तो वह भक्ति का रूप धारण कर लेता है। पुरुष के हृदय में जब किसी स्त्री के प्रति भक्ति उत्पन्न होती है तो वह स्त्री माता का रूप बन जाती है। पतिभक्ति एक सत्य है पत्निभक्ति एक मनोवैज्ञानिक असत्य।

मोतसिम बिल्ला ने अरबों को सेना से निकालकर तुर्क भर लिये थे। उस समय से ईरान, खुरासान और ईराक अजम में हर स्थान पर सेना में तुर्क ही तुर्क दिखलायी देते थे। ये युवा सैनिक सुन्दर और कमनीय होते थे····काव्य से प्रकट होता है कि यही सैनिक प्रेममार्ग के गुरु थे। फ़र्ख़ी कहता है।

धीरे से जुल्फ की धूल झाड़ दे कि उस धूल पर पैदल और सवार टूट पड़ें। राज़ी कहता है।

खुदाया, ये तुर्क बच्चे कैसे माशूक हैं कि देखने वाले की आँख में उनको देखकर बहार आ जाती है।

बगह रज़्म नदानन्द बजुज़ अस्मो सलाह
बगह बज़्म नदानन्द मगर बोसो कनार

युद्ध के समय घोड़े और अस्त्र के अतिरिक्त कुछ नहीं जानते और गोष्ठियों में चुम्बन ब आलिङ्गन को छोड़कर कुछ ज्ञान नहीं रखते।

क़ाफ़ी हमदानी लिखता है—

वास्तव में ये तुर्क हैं परन्तु सौन्दर्य में सूर्य हैं :

दर रज़्म बजुज़ तेग़ज़दन राये न बीनन्द
दर बज़्म बजुज़ दिलस्तदन कार नदानन्द

युद्ध में केवल तलवार चलाना जानते हैं। सभा में केवल हृदय चुराना जानते हैं।····

अय्याज का नाम तुमने महमूद के माशूक के रूप में सुना होगा परन्तु वह एक योद्धा भी था····तुर्कों की माशूकी ने यहाँ तक विस्तार लिया कि तुर्क का अर्थ ही माशूक हो गया।····

यह शौक इतना बढ़ा कि सम्राट् व सामन्त तक खुल्लम-खुल्ला अप्राकृतिक प्रणय में लीन रहते थे। कवियों से इन माशूकों की प्रशस्ति में कविताएँ लिखवाई जाती थीं और कविगण अपने आश्रयदाताओं के अप्राकृतिक प्रणय की घोषणा करते थे। फर्ख़ी एक प्रशस्ति में जो अयाज़ की प्रशंसा में है अयाज़ के रूप लावण्य की प्रशंसा लिखकर लिखता है :—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोई कहता है कि वह पहाड़ पर सरो है,
कोई कहता है कि डाल पर फूल है
महमूद ने उसको यूँही हृदय नहीं दे दिया,
महमूद का हृदय हँसी खेल नहीं है

स्त्रियाँ जब तक माशूक थीं प्रेम चर्चा इतनी नहीं फैली थी और न फैल सकती थी। एशिया में स्त्रियाँ कभी बेपर्दा होकर नहीं रहीं और रहीं भी तो पुरुषों से हर समय मिलना-जुलना सम्भव न था परन्तु जब किशोर मैदान में आ गये तो घर-घर आग लग गयी। बड़े-बड़े पवित्र संन्यासी और उच्चपदस्थ लोग पाठशालाओं में बच्चों को घूरने जाते थे....

आक़ा व गुलाम, गुरु व शिष्य, पीर-ओ-मुरीद ऐसे पवित्र और प्रतिष्ठित सम्बन्ध भी प्रेमलीला से अछूते नहीं थे। इससे देश व जाति की राजनैतिक व नैतिक दशा इस प्रकार बिगड़ी कि मुट्ठी भर तातारियों ने खुरासान से लेकर बगदाद तक को धूल में मिला दिया।....

कुछ कवि वास्तव में अपने माशूकों के हाथ से मारे गये। दक़ीक़ी की जिसने शाहनामे की नींव रक्खी उसके माशूक ने हत्या की थी। इसी प्रकार कुछ और कवि अपने माशूकों द्वारा मारे गये।....

सलजूकियों में सुल्तान सञ्जर बड़ा प्रतापी सम्राट् था। अमादुद्दीन इस्फ़हानी ने तारीख सलजूकिया में इस पर एक अध्याय लिखा है। जिसमें लिखता है।

"सम्राट् सञ्जर को जो गुलाम अच्छा लगता उसे मोल ले लेता। फिर उससे इश्क करता था और वह प्रसिद्ध हो जाता था तब उस पर तन मन धन न्यौछावर कर देता था।" इतिहासकार ने उन गुलामों के नाम और प्रणय-लीला भी लिखी है परन्तु इसे यहाँ देने की आवश्यकता नहीं है।"

शेरुल अजम भाग ५, प्रकाशक पूर्ववत सन् १९५७ पृष्ठ ६७ से १६५ तक।

"बड़े-बड़े सम्राट् सौन्दर्य उपासना करते थे। उनकी जो प्रशस्ति लिखी जाती थी उनमें उनके माशूकों का भी उल्लेख होता था। स्वयं नृपगण कवियों से आग्रहपूर्वक अपने माशूकों की प्रशंसा में काव्य लिखवाते थे। ग़ज़ारी राज़ी ने सुल्तान महमूद के आग्रह पर अयाज़ पर कविताएं लिखीं और भरपूर पुरस्कार पाया।....

तुर्क गुलाम घर-घर फैले हुए थे और एकान्त व में साथ रहते थे। बहुधा कविगण इन गुलामों पर आ थे और अपनी शृंगारिक कविताओं में इन्हीं का उ करते थे। फ़र्ख़ी ने एक प्रशस्ति की भूमिका में लिखा "मेरा परीमुख तुर्क आज तन्द्रा में है क्योंकि कल प्रा सन्ध्या तक मदिरा पिलाता रहा। मैंने दो बार आ संकेत दिया कि सो रह परन्तु वह यही कहता रहा कि दौर तो हो जाय। ऐसे स्वामि-भक्त पर कौन प्रा देगा। ऐसे सेवक के नाज़ कौन न उठायेगा।"

मनोलहरी एक प्रशस्ति में लिखता है—

न कुनम बर तो जफ़ा दर तो जफ़ा क़स्द कुनी
न गुज़ारम के कसे कस्द जफ़ाए तो कुनद

मैं तुझे नहीं सताऊँगा और तू मुझे सताये तो कि और को तुझे सताने न दूँगा।

यह प्रकट ही है कि यह शेर नौकर व गुलाम के ही कहा गया है।" (पृष्ठ ६८ तक)।

ऊपर हमने मौलाना शिब्ली के बचन उद्धृत किये जिनका समर्थन सभी मुस्लिम कवियों और इतिहासका किया है। आतिश और इकबाल ने अपने-अपने का महमूद गज़नवी और अयाज़ की प्रेम कहानी का उ किया है। फ़रिश्ता ने इसे अधिक विस्तार से लिखा मलिक काफ़ूर जो अलाउद्दीन खिल्ली का गुलाम था जो उसकी मृत्यु के पश्चात् खिल्जी साम्राज्य का सर्वेसर्वा गया था फ़रिश्ता के अनुसार अलाउद्दीन का माशूक व वर था। इसी प्रकार खुसरो भी मुबारक खिल्जी का मा गुलाम था जो अपने आशिक़ और स्वामी की हत्या दिल्ली का सम्राट् बन बैठा था। सभी उद्धरण देने अ हैं उनके लिए एक ग्रन्थ की आवश्यकता है। अब हम सादी के कुछ उद्धरण देकर लेख को समाप्त करते हैं।

गुलिस्ताँ ले० शेख सादी अध्याय-५.

"ऐ बिरादर चूँ इक़रार दोस्ती करदी, तव्वक्कोफ़ मदार के चूँ आशिक़ी ओ माशूक़ी दरम्यान आसद आ ओ ममलूकी बरखास्त।

ऐ भाई जब आपने अपने गुलाम से प्रेम कि उसने सेवा की आशा न रखिये। जब आशिक़ी

*हमने अपनी ओर से उनमें एक शब्द जोड़ा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९७३

माशूकी बीच में आ गयी तो स्वामी और सेवक का सम्बन्ध समाप्त हो गया।

ख़्वाजा बा बन्दये परी रुख़सार,
चूँ दर आयद बबाज़ी व ख़न्दा
च अजब को चू ख़्वाजा हुक्म कुनद,
वीं कुशद बार नाज़ चूँ बन्दा

स्वामी सुन्दर गुलाम के साथ जब क्रीड़ा व हास-परिहास करे तो कुछ आश्चर्य नहीं कि वह गुलाम स्वामी की भाँति आज्ञाएँ दे और स्वामी उसके नख़रे गुलाम की तरह उठाये।"

बोस्ताँ ले० शेख सादी अध्याय ७

१. शीराज़ के इसी नगर में मैंने सुना कि एक व्यापारी ने एक गुलाम मोल लिया परन्तु रात्रि के समय उसके शरीर के निचले भाग में हाथ लगाया (शर्वा के मगर दस्त बुरदश नशेव) क्योंकि वह सुन्दर मुखवाला और मनहरन करनेवाला था। परीमुख गुलाम के हाथ में लकड़ी या पत्थर जो कुछ भी आया उस मूर्ख स्वामी के सिर में मारकर तोड़ दिया।

२. यह एक लम्बी कहानी है जो 'शुनदिम के तुग़रल शबे दर खिजाँ' से आरम्भ होती है। तुग़रल, सञ्जर व तैमूर ये तीन तुर्किस्तान के सबसे प्रतापी सम्राट् हुए हैं।

एक दिन जाड़े की रात में सम्राट् तुग़रल एक गुलाम प्रहरी के पास गया। हिमपात, वर्षा और पानी के कारण वह कड़ कड़ काँप रहा था। सम्राट् को प्रहरी पर दया आयी और बोला मैं तेरे लिए रुएँदार गर्म चादर भेज रहा हूँ। कुछ समय कोठे की ओर प्रतीक्षा करो। अभी किसी गुलाम के हाथ भिजवाता हूँ। इतने में पवन चलने लगी। सम्राट् राजभवन में चला गया। एक गुलाम परी जैसे मुखवाला उसकी सेवा में खड़ा था। सम्राट् का मन उसकी ओर मचल गया। उस गुलाम की छवि इतनी सुन्दर लग रही थी कि वह दरिद्र प्रहरी को भूल गया। रुएँवाली गर्म चादर कान से सुन ली परन्तु दुर्भाग्य से वह काँधे पर नहीं आयी। जाड़े का कष्ट सम्भवतः उसके लिए पर्याप्त नहीं था कि अब प्रतीक्षा का कष्ट और बढ़ गया। सोचो जब सम्राट् सो गया तो प्रातःकाल नौबत बजाने वाले ने कहा। 'सम्भवतः उस भले प्रहरी को तू भूल गया जब तेरे बाहुपाश में आग़ोश नामक गुलाम आ गया। तेरी रात आनन्द व विलास में बीतती है। तुझे क्या पता हमारी रात कैसे कटती है। सार्थ के संघपति ने भोजन की ओर ध्यान दिया। उसको उनसे क्या लेना जिसके पाँव रेत में धँस गये हैं। ऐ स्वामी नाव को पानी पर चला क्योंकि दरिद्रों के सिर पानी में डूबे जा रहे हैं। ठहरो, हे बलिष्ठ कुशल युवको, हमारे सार्थ में मन्दगति बूढ़े भी हैं। तू अम्बारी में सुखपूर्वक सोया हुआ है और चालक ऊँट चला रहा है। तेरे लिए क्या वन, क्या पर्वत और पत्थर। उनकी दशा देख जो मार्ग में पीछे रह गये हैं। तू पर्वताकार घोड़े या ऊँट पर जाता है। तू क्या जाने कि पैदल रक्त पीता है। अपने माशूक़ों के साथ घर में सोने वाले क्या जानें भूखे पेट वालों पर क्या बीतती है।"

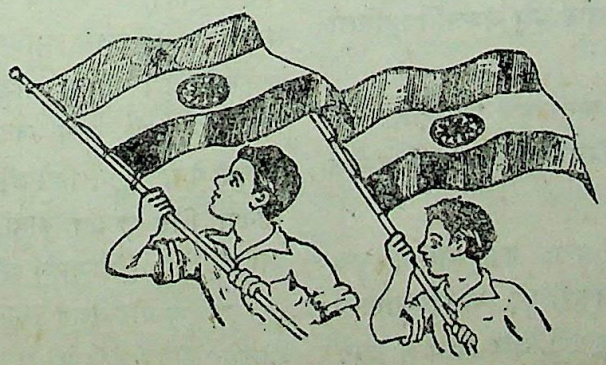

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उदयाद्रि से अरुणाचल

श्री इन्दुशेखर

कामेंग—जहाँ मौनपोओं का सौन्दर्य आकर्षण का केन्द्र है।

क्रमशः अरुणाचल के प्रत्येक जिले के सम्बन्ध में बतलाऊंगा। सर्वप्रथम कामेंग को लें। यह अरुणाचल का पश्चिमी और दक्षिणी जिला है। इस जिला के उत्तर में तिब्बत (सम्प्रति चीन), दक्षिण में असम प्रदेश का दरंग जिला (कुछ लोग दाराङ्ग भी कहते हैं), पूर्व में अरुणाचल प्रदेश का ही सुबन सिरी (सुवर्ण श्री ?) जिला और पश्चिम में भूटान अवस्थित हैं।

कामेंग ! कामेंग वही जिला है जिसकी छाती पर चीनियों ने '६२ में सबसे बड़ा नरमेध रचाया था। इसी कामेंग सीमान्त को देखकर असमिया के प्रख्यात गीतकार (साथ ही साहित्यिक, राजनीति विद्, फिल्म निर्माता और चित्रकार) डॉ० भूपेन हाजरिका ने "कतो जोवानर मृत्यु होल" शीर्षक से एक ऐतिहासिक गीत लिखा था, जिसकी कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं :—

कतो जोवानर मृत्यु होल,
कार जीवनऽ यौवन गोंल
एइ मृत्यु अपराजेय ते ने मृतक न होलों मइ किय
कतो.....
हेनु हिमालय भारतर प्रहरी ना हानी हुनिसिलों काहिनी
पीछे मृतऽजोवान सवे चियँरिसे, चिर जाग्रत एहि वाहिनी
आजि कामेंग सिमान्तऽदेखिलों, देखी शत्रु प्रभुत्व चिनी लों
आरु मृतऽ मौन कतो जोवान लै मोर अश्रु अञ्जलि जासिलों
कतो.....
कतो पितृ-पुत्र हारा होल, कतो मातृर बुक सुदा होल
रङा सिन्दुर कार कतो मुछा गोल, कार वासनाओ पूर्ण न रोल
कतो.....

यह वही जिला है जिसके बरफ ढके प्राचीन गुप्त व्यापारिक मार्ग से (ल्हासा से चलकर) श्री दलाई लामा ने भारत में प्रवेश किया था वर्ष ५९ में। और विश्व में सबसे

तिरप की तांग्सा युवती : चित्रकार—उपो

अधिक ऊँचाईवाले स्थानवाला गोम्पा इसी जिला में स्थि है। बौद्धधर्मियों का वह गोम्पा ता-वाङ्ग नामक स्थ में है। यह पूरा इलाका मोनपा जनजाति का है। मोन अरुणाचल की सबसे अधिक संस्कृतिनिष्ठ सभ्य और न जनजाति है। 'गोम्पा' बौद्ध विहार को कहते हैं।

कामेंग की अन्य जन जातियाँ हैं—अँका (हस्स शेरदुक पेन, बुगुन (खोवा), भुटिया, बुत मोनपा, दिरंग मोनपा, लिस मोनपा, ब्राह्मी मोनपा (तावांग) सदर्न मोन मोम्बा, मिजु (धाम्माई) आदि।

भालुक पोङ (यह स्थान असम के दरांग जिले से सट है पहाड़ की तलहटी में) से जिमी थाङ्ग (कामेंग के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

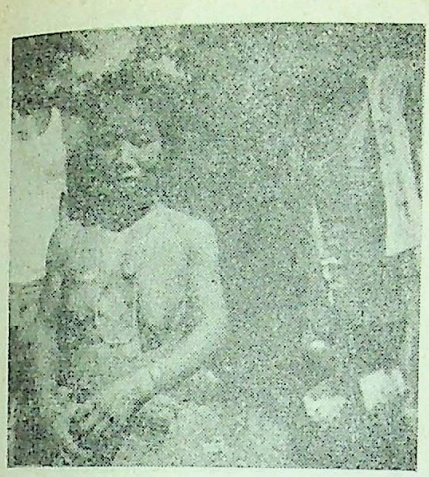

अरुणाचल का एक निवासी

से सटते अंचल में है) तक और शेरगाँव (भूटान से सटा) सेपला (सुवर्ण श्री जिला से सटा स्थान) तक का पूरा कामेंग वन और ऊँचे पहाड़ों से भरा है। सम्पूर्ण अरुणाचल को दृष्टि में रखते हुए यदि कहा जाय तो कामेंग ही वह जिला है जहाँ के पहाड़ अपनी ऊँचाई में अन्य जिलों के पहाड़ों से आगे हैं। यहाँ 'ला' का अर्थ पर्वत होता है जबकि तिब्बती में 'ला' का अर्थ दर्रा।

बरफ से ढके सिर ऊपर उठाये से-ला, वुम-ला, गे-से-ला अपनी शानी नहीं रखते। ठंडे दिनों में इनका सौन्दर्य अनुपम होता है। बरफ के बीच से टेढ़ी-मेढ़ी सड़कें और उन पर गुजरती हैं अनेक गाड़ियाँ। '६२ से पूर्व ये सड़कें नहीं थीं। बरफ में हजारों सैनिक भटक गये थे। अपना रास्ता भूल गये थे। रास्ता भटकने का खतरा अब भी उत्पन्न होता है जब बरफ सड़कों का अस्तित्व मिटा देती है।

ठंढ का मत पूछिए। १४ हजार फुट की ऊँचाईवाले इलाके से गुजरती हुई गाड़ियाँ ठहर जाती हैं। डिजिल जमने लगता है वहाँ। स्टार्ट करने के बाद भी गाड़ियाँ नहीं चलने की स्थिति में होती हैं।

ऊँचाईवाले इन पहाड़ों के बीच से ही कामेंग, भरली, धन श्री, वेलशिरी, पाँच नै, गाभरू नै, ता-वांग-च्छू, जङ्ग च्छू, तामे पुंच्छू आदि बड़ी-बड़ी नदियाँ निकलती हैं जिनमें से अधिक पहाड़ों से उतर दरांग जिले के मैदानी हिस्से को सींचती हैं।

कामेंग में तीन अनुमण्डल हैं— ता-वाङ्ग, सेपला और वोम-दि-ला, इनके कुछ सर्कलों के नाम इस प्रकार हैं—

लुमला, जिमि थाङ्ग, मुक्तो, थिम्बु (ये सब ता-वाङ्ग अनुमण्डल के सर्कल हैं।) धिराङ्ग, रूपा, कालाक् ताङ्ग (ये सब बोम-दि-ला अनु० के सर्कल हैं।)

वोम-दि-ला कामेंग जिला का मुख्यालय है। डिपुटी कमिश्नर का आफिस, इन्जीनियरिंग, पोस्ट आफिस, हा० से० स्कूल, सरकारी अस्पताल, ब्रिगेड हेड क्वार्टर आदि यहाँ हैं। यह स्थान भालुक पोङ्ग से १५० किलोमीटर दूर ऊपर पहाड़ के मध्य है। ६ हजार फुट की ऊँचाई पर बसा यह नगर भारत के किसी भी 'हिल स्टेशन' से कम आकर्षक और कम स्वास्थ्यप्रद नहीं है।

यहाँ जाने के लिए असम के दरांग जिला स्थित रांगा पाड़ा रेलवे स्टेशन से बस की यात्रा शुरू करनी पड़ती है।

रास्ते में ये सब स्थान पड़ते हैं—रांगा पाड़ा, भालुक थोङ्ग, सीसा, दिरांग, रूपा, वोम-दि-ला।

वोम-दि-ला से ही ता-वाङ्ग तथा सेपला जाने के रास्ते हैं।

ता-वाङ्ग भारत तिब्बत सीमा की ओर वोम-दि-ला से १८० किलोमीटर दूर उत्तर दिशा में हैं। वोम-दि-ला और ता-वाङ्ग के मध्य ये प्रमुख स्थान हैं—धिरांग, सफर कैम्प, सेङ्गे-जाङ्ग, नूरा नाङ्ग, जाङ्ग, लाहू।

कामेंग के उत्तरी भारत तिब्बत-सीमा के कुछ जगहों के नाम जहाँ इस प्रकार हैं—मागो थिम्बु, गे-शे-ला, जिमि थाङ्ग शो, कितपी, थोङ्ग लिङ्ग, खेत, लाओ, जाङ्ग आदि वहीं असम के दरांग जिले के कुछ स्थान इस प्रकार हैं—ओरांग जुलि खेर खेरिया, भुटिया चाङ्ग, भैरवकुण्ड, राता-बारी, हुग्ना जुलि, ढेकिया जुलिरोड, बेलशोरी, मिछामारी, उत्तर रांगापाड़ा, वालिपारा, चार दुआर, दिकराइ, मिज़िका, जिञ्जिया, हेलेम, गहपुर, कलाबारी।

मोनपा जो तिब्बत के सटे अंचल में रहते हैं उनके गाँव हैं—गोमाक्लिङ्ग, गेङ्गर, मिरवा, ग्यामदोङ्ग, सुरपी, रो, जामदा, गिसपो, सत्ती, ढिल्लम, मुक्तुर, दुदुङ्गर ब्लैटिंग आदि।

मोनपा पुरुषों के नाम रिनच्छेन दोरजी, च्छेरिङ्ग दोरजी, दोर्जे नोखू, दोर्जे गोम्बू, शनम ताशी, पेम ताशी, पेमा खाण्डू, फुरपा च्छेरिङ्ग, लामू गाम्बू और स्त्रियों के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाम रिनच्छेन लामू, शेरिङ्ग लाम, ताशी ड्रेमा, पेम ड्रेमा, पेम लामू—इस प्रकार होते हैं।

भौगोलिक तथ्यों को छोड़ अब आपको वहाँ ले चलता हूँ जहाँ इन भोले-भाले मोनपा जनों को स्वधर्म और स्वभाषा से नीचे गिराने की साजिश चलाई जा रही है। यदि ऐसा कहा जाय कि अरुणाचल में मोनपा अपनी भाषा और अपने धर्म के प्रति सबसे अधिक जागरूक हैं तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। फिर भी जब अंग्रेजी माध्यम की घोषणा की गयी (वर्ष १९७२ में जब अरुणाचल को केन्द्रशासित राज्य बनाया गया तो उन्हीं दिनों यहाँके विद्यालयों में अंग्रेजी माध्यम चलाने का फरमान भी जारी किया गया। सन् '७२ से पूर्व यहाँके विद्यालयों में असमिया और हिन्दी माध्यम चलते थे। असमियामाव दारांग जिले से सटे अंचल में तथा हिन्दी पूरे कामेंग में माध्यम-भाषा थी।) तो कामेंग भी उस पाश में जा फँसा। बेकस, लाचार सा।

हालाँकि यहाँके मोनपाओं ने सरकार की इस नीति का विरोध किया। उनका कहना था—उन्हें हिन्दी माध्यम के ही विद्यालय चाहिये। बोम-दि-ला में जब ४५ दिनों का 'इंगलिश रेफरेसर कोर्स' फरवरी-मार्च '७२ में चलाया गया तो वहाँ उपस्थित सभी मोनपा शिक्षकों ने इसका विरोध किया।

शिक्षा विभाग के निदेशक श्री शामलाल सोनी जो वहाँ उपस्थित थे, उनसे जब मोनपा शिक्षकों--श्री उरगेन च्छेवाङ्ग, श्री लोव जाङ्ग च्छेगे, श्री साङ्गे च्छेरिङ्ग, श्री दोर्जे च्छेरिङ्ग, श्री न्यापू आदि ने अपना विरोध बतलाया। श्री सोनी साहब ने कहा—'यह मेरा निर्णय नहीं है। राजा साहब से पूछो।'

पर उन्होंने यह नहीं बतलाया कि यह किसका निर्णय है। श्री के० ए० ए० राजा (अरुणाचल के चीफ कमिश्नर) तो अब तक यह बतलाते रहे हैं कि अंग्रेजी माध्यम की माँग यहाँकी जन-जातियों की माँग है। तो क्या ये मोनपा जन जाति नहीं हैं? ये मोनपा जो हिन्दी माध्यम के विद्यालय की माँग करते हैं इनकी आवाज क्यों अनसुनी की जा रही है? क्यों इन्हें अंग्रेजी पढ़ने को वाध्य किया जा रहा है?

एक ओर तो सरकार संसद में कानून बना रही है कि मारधार तथा सेक्सवाली फिल्मों पर प्रतिबन्ध लगाया जायेगा। दूसरी ओर अरुणाचल में अंग्रेजी और अंग्रेजीयत

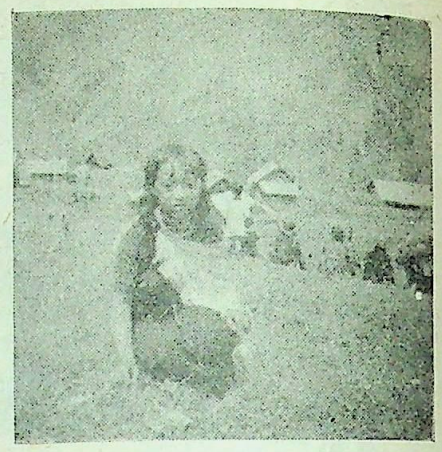

सियांग़का एक युवक

के द्वारा सेक्स का बाजार क्यों खोलना चाहती सरकार?

अपनी सुन्दरता से आधुनिक किन्नरों, गंधर्वों, और यक्ष राजों (अरुणाचल में कार्यरत अधिकारी को इन्द्र से कम नहीं मानते) को काम विह्वल करनेव जनजातीय किन्नरियाँ (सुन्दरियाँ) जब अंग्रेजी का प्राप्त कर लेंगी तो उन्हें अमरीका, इंगलैण्ड, फ्रांस खुले बाजारों में निर्यात किया जा सकेगा, क्या सरक अंग्रेजी इसीलिए इन्हें पढ़ाना चाहती है? अरुणाचल सेक्स पर प्रतिबन्ध नहीं है।

मेघालय, नगाराज्य, मिजोरम की समस्याओं सरकार अब तक नहीं निपट पाई है। अभी-अभी दो सप्ताह पूर्व नागाओं का उपद्रव अपने चरमान्त पर गया है फिर भी यहाँके कामान्ध अधिकारियों की नहीं खुल पा रही हैं। 'श्री एक्स रम' का नशा गजब रहा है यहाँ। स्मरणीय है कि वी. आई. पी. के आने ग्रामवासियों को यहाँ रम की बोतलें दी जाती हैं।

जिस अंग्रेजी भाषा को भारत के विभिन्न राज्यों माध्यम के तौर पर रखकर हम बेकार शिक्षिकों की खड़ी करते रहे हैं पिछले अनेक वर्षों से वही माध्यम यहाँ लाया गया है। अब तक तो यह भी था कि शिक्षा होने के कारण बच्चे काम को नीची निगाह से देखते रहे हैं। हस्तकला खेती और गृहकार्य में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

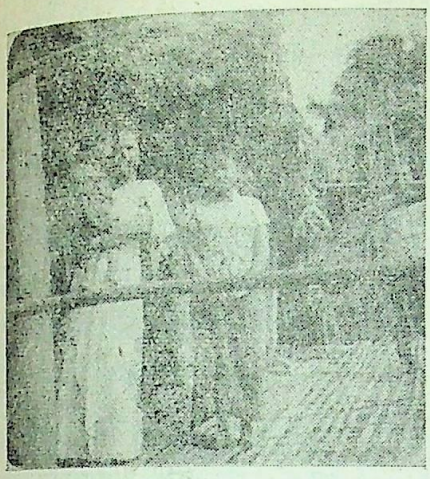

अरण्य में भारतीय और स्थानीय पहरावे का संयोग

के छात्र अब टाई कोट तथा चुस्त पैन्ट पहनने का अभ्यास करने लगे हैं। 'भारत दर्शन' टूर से लौटकर आनेवाले छात्र हिप्पियों की तरह के कपड़े पहनता है तथा उसी ढंग के बाल रखने की चेष्टा करता है। जिनके माँ-बाप साल भर अपने खाने का अनाज नहीं उगा पाते, तन भर कपड़े नहीं पहनते उनके सुपुत्र अब अंग्रेजी पढ़कर गिटार बजायेंगे।

श्री पेमा गम्बू (लाओ के गाँवप्रमुख) जैसे १४० गाँवप्रमुखों ने १९६४ ई० में एक दस्तावेज लिखा था तावाङ्ग में। जिसमें एक स्वर से माँग की गयी थी कि कामेंग में हिन्दी माध्यम के विद्यालय चाहिए। वह दस्तावेज ता-वाङ्ग गोम्पा में अब भी है। ता-वाङ्ग गोम्पा के मठाधीश श्री रिगिया रिम्पोच्छे (आप १९५९ ई० में प्रधान लामा बने। आपसे पहले प्रधान लामा पद पर थे श्री थाम्बू।) भी हिन्दी के पक्ष में हैं। आपका कहना है यदि अंग्रेजी माध्यम रह गया तो कामेंग से बौद्ध धर्म का नाम मिट जायेगा। अंग्रेजी और अंग्रेजीयत से बौद्ध धर्म पर जो प्रभाव पड़नेवाला है उससे वहाँ के सभी लामा चिन्तित हैं।

ता-वाङ्ग गोम्पा में इन दिनों ५०० से ऊपर बौद्ध भिक्षु हैं। स्वर्ण, कांस्य, पीतल, लकड़ी तथा ताम्बे की बुद्ध मूर्तियाँ दर्शकों के लिए कौतूहल की चीजें हैं। मठ का खर्च वस्तीवालों के दिए हुए टैक्स से चलता है। रंग बिरंगे पताके, रंग-बिरंगे चित्र, पीत वस्त्रों में सुसज्जित लामा, ओम् मणि पेमे हूँ की जयध्वनि वातावरण को स्निग्ध किये रहता है। ताल पत्रों और कागजों पर लिखे सैकड़ों अनमोल ग्रन्थ इस गोम्पा में हैं जो तिब्बती लिपि में हैं। काश सरकार इनका अनुवाद करवाती हिन्दी में।

तिब्बती भाषा से रुचि रखनेवाले शोधार्थी के लिए यह स्थान अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण है। यहाँ का पुस्तकालय काफी समृद्ध है। पीले कपड़ों में लिपटे सैकड़ों तिब्बती ग्रंथ। गोम्पा में चित्रकारों की कलाकृतियाँ गोम्पा के सौन्दर्य में चार चाँद लगाती हैं।

असम के रांगा पाड़ा से लगभग ४०० किलोमीटर दूर उत्तर की ओर भारत-तिब्बत सीमा पर रहनेवाली जन-जाति मोनपा का हिन्दी स्नेह अत्यंत प्रशंसनीय है। इस घोर अहिन्दीभाषी प्रदेश में एकबारगी जब कोई दिल्ली, कलकत्ता, बम्बई या देश के किसी भी-भाग से वहाँ पहुँचता है तो जन जातियों से एक मात्र हिन्दी में ही बातचीत करता है। सिनो तिब्बतन परिवार की भाषा बोलनेवाले मोनपाओं को हिन्दी में बोलते बातचीत करते देख किसी भी भारतीय का मन खिल उठता है।

पर यह भी एक दुर्भाग्य ही है कि जहाँ हिन्दी की माँग जनजातियों की ओर से हो रही है वहाँ उन पर जबरन अंग्रेजी थोपी जा रही है। यहाँके शासक अरुणाचल को भारत के शेष भागों की अपेक्षा इंगलैण्ड अमरीका से जोड़ने का स्वप्न देख रहे हैं। नहीं तो हिन्दी माध्यम को हटाकर अंग्रेजी माध्यम शुरू करने के पीछे क्या उद्देश्य हो सकता है ?

जो लोग असम प्रदेश में रहते हुए भी असमिया न पढ़कर अंग्रेजी पढ़ने की माँग कर रहे हैं वे अरुणाचल में अंग्रेजी के जमते हुए पैर को स्थिर करने में भी अपना योगदान कर रहे हैं। यह कितनी अधिक शर्म की बात है कि असम के बङ्गला भाषाभाषी जन (असमिया और बङ्गला की लिपियाँ एक सी हैं फिर भी) असमिया माध्यम का विरोध कर रहे हैं तथा अंग्रेजी को असम में बनाये रखने की माँग भी। पर वे असमिया माध्यम के विद्यालयों में नहीं पढ़ना चाहते। ज़बकि असमिया की लिपि से हिन्दी की लिपि (देवनागरी) काफी भिन्न है फिर भी हिन्दी भाषी असमिया माध्यम के पक्ष में हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जहाँ तक मेरा मत है देश से अंग्रेजी भाषा की अनिवार्यता समाप्त करने के लिए स्वतंत्रता संग्राम से भी बढ़कर एक आन्दोलन की जरूरत है। नहीं तो भारतीय भाषाओं के विस्थापित होने की शृंखला बन्द नहीं होगी।

मोनपा एक विकसित होती हुई भाषा है जिसे तिब्बती लिपि में लिखा जाता है। इसका लोक साहित्य प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। यहाँ मोनपा भाषा के कुछ शब्द दे रहा हूँ जिससे पाठक यह अन्दाज लगा सकते हैं कि यह भाषा तिब्बती के कितनी समीप है :—

प्लाङ–सूरज	ले–चाँद	म्हामी–सेना
करमा–तारा	च्छी–पानी	खि–कुत्ता
खेरेत–हवा	मि–आदमी	नोर–गाय
आबा–पिता	आमा–मा	थान्–शेर
आये–भाई	आवू–बहन	प्रा–बन्दर
गर्गेन–शिक्षक	लुम्पा-देश	आकपू–कौआ
च्छारशाम–सीमा	बुद्पा लुम्पा–तिब्बत देश	
सेङ्ग–लकड़ी	कोत–सिर	सेङ्ग–गाछ
लेमेन–पैर	ला–हाथ	खिक–ठीक
न्यिती–दिन	नपती–रात	फ्लैक्सो–सुन्दर

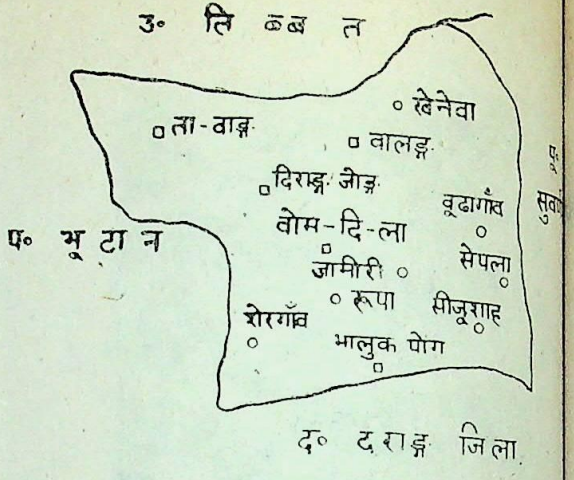

द० दराङ्ग जिला

कामेंग जिला

ला–पहाड़	थाङ्ग–दाङ्ग–दर्रा	नाम दानी–अच्छा
सेङ्ग नाङ्ग–जंगल	यू–गाँव	शक्पू–बच्चा
बक्सर–पा–शादी	गइज्यू–जाना	जोमू–बच्ची
नइयू–सोना	थोङ्गयू–पीना	ओङ्गयू–आना
सिसग्यू–मरना		

प्रदेश कौंसिल में एक मोनपा युवक ही (नाम–पेमा खाण्डू) कौंसिलर है कामेंग की ओर से। मोनपा की सुन्दरता एवं उनकी सरलता देश के लिए गौरव की चीज है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन-तृण

श्री वसन्त शर्मा

एक प्रश्न उभरता है बार-बार
मानस पटल पर
जल पूरित चक्षु
उठ जाते हैं हर बार
मुझे ही क्यों चुना गया
क्यों बनाया गया मुझही को
वेदनाओं का आहार

अभिलाषित नेत्र
सूख चुके
पथ की धूल समेटते हुए
प्रतीक्षा में किसी की
सोख लिया है हृदय की आर्द्रता को
पतझड़ से लौटती हवा ने
जलविहीन मीन सी
पल रही एक तड़प
फिर मुझे ही क्यों दी जाती है
दर्द भरी पुकार

तारों की टिमटिमाहट
जैसे पाषाण के आघात
सिमट चुकीं आकांक्षाएँ
टकरा के बार बार
साँस नहीं
आहों का धूम्र
चाँद की ठण्डी ज्वाला में
झुलसता हृदय
फिर क्यों दिया जाता है मुझे ही
उष्ण रश्मियों का उपहार

क्या बिखेर पायेंगे ये कर ?
कटु क्षणों पर
स्नेह की बूँदें
अधर खुले मुँह निहारता चातक
निराशाओं की आँधी
धूमिल जीवन-तृण
क्या होंगे स्वप्न साकार ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्यमेव जयति

श्री निरंकुश

जिस प्रकार चुनाव कराते रहना प्रत्येक विकसित अथवा विकासशील राष्ट्र की सरकार का प्रमुख कर्त्तव्य होता है उसी तरह इंतजामिये-इलाही की सख्त जिम्मेदारी होती है कि वह कयामत बरपा करती रहे। यह बात और है कि जैसे जनहित में निर्वाचन स्थगित कर दिया जाता है वैसे ही अवाम की बहबूदी के खयाल से हश्र की तारीख को मुल्तवी करना पड़ जावे, मगर दोनों दशाओं में तैयारी का काम बन्द नहीं होता। इधर निर्वाचक सूचियाँ बनकर प्रकाशित होती रहती हैं और उधर उन लोगों की फेहरिस्तों को मुकम्मल रक्खा जाता है जिनकी महशर के वक्त पेशी होनी है। खुदाई मजलिस में वर्षों से इस बात की माँग की जा रही थी कि कयामत हो जानी चाहिये। मियाँ चाहते थे कि हिन्दुओं की प्रलय और मुसलमानों की कयामत को साथ साथ करें ताकि व्यय कम हो, परन्तु जब इस्लामी नुमायंदों ने सिविल नाफरमानी की तहरीक छेड़ने की धमकी दी तो प्रजापति महशर का तमाशा दिखलाने के लिए उद्यत हो गये। भारतीय शासन की यह व्यवस्था बड़े काम आई कि लोकसभा और विधान सभा के चुनाव अलग-अलग हो सकते हैं। यह निश्चय हुआ कि कयामत के परिणामों का जायजा लेने के बाद प्रलय कराने पर विचार किया जायेगा।

हस्ब-मामूल कयामत में भाग लेनेवालों की नामावली शायः की गयी। उसके एक खण्ड में पाण्डव पत्नी द्रौपदी के नाम की प्रविष्टि को देखकर सबको हैरत हुई। पाँचों भाई बारी-बारी से कयामत-कार्यालय गये। वहाँ उन्होंने निदेशक मौलवी बुखार उल्ला शाह अताई से अलग-अलग भेंटकर इंदिराज के बारे में प्रतिवाद किया, मगर रहे ढाक के तीन पात, यानी जौजे पांडवान का नाम फहरिस्त से खारिज नहीं हो सका। उन्होंने शुभचिन्तकों से परामर्श किया परन्तु वे भी इससे अधिक राय नहीं दे सके कि खुदाबन्द ताला के यहाँ अपील दायर की जाये। मरह क्या न करतावाली मसल का स्मरण कर पाण्डवों पुनर्विचार याचिका को पंच परमेश्वर के न्यायालय प्रस्तुत कर दिया। बहस में एक ओर से खड़े हुए पोंगा पण्डित और दूसरी तरफ से कठमुल्ला काजी। अद लत में कार्यवाही टेप हुई। मूल टेप से सम्वाददाता ने टेप तैयार की उसके कुछ अंश उपलब्ध कराये जाते हैं।

पण्डित—द्रौपदी आर्य थी उसका कयामत से क्या सरोकार

मुल्ला—आरया तो हिन्दुस्तान का हर बाशिन्दा है। न
नहीं पाकिस्तान, अफगानिस्तान, ईरान तक के
आरया हैं। उनमें से बहुत-सों के नाम फहरिस्त में
हैं बल्कि बड़ी तादाद में लोग रोजाना नये नाम
वाने के लिये हाजिर होते हैं। महज आरया का
अलापने से कुछ नहीं होगा पंडतजी!

पण्डित—मेरा आशय हिन्दू से था।

मुल्ला—अब आप आये सही रास्ते पर, मगर जनाब
दावे का सबूत चाहिये।

पण्डित—प्रत्यक्ष को प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती

मुल्ला—वाह मियाँ। यह एक ही कही। अदालत में
बात का सबूत देना लाजिम होता है।

पण्डित—द्रौपदी को बुलवाकर पूछ लिया जावे।

मुल्ला—हमें क्या जरूरत पड़ी है।

पण्डित—मैं बुला लूँगा।

मुल्ला—बछिया के ताऊ। यह अदालत आलिया है,
की मातहत नहीं। यहाँ गवाही नहीं लिखी
बहस सुनी जाती है।

पण्डित—फिर ?

मुल्ला—फिर क्या ? अपील को खारिज करा लो।

पण्डित—यह कैसे हो सकता है ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९७३

मुल्ला—तो हम साबित किये देते हैं कि द्रौपदी हिन्दू नहीं थी।

पण्डित—यह असम्भव है।

मुल्ला—जरा सुनो तो। क्यों धोती में से निकले पड़ते हो?

पण्डित—कहिये।

मुल्ला—तुम्हारी द्रोपदी का असली नाम क्या था?

पण्डित—कृष्णा।

मुल्ला—यानी कीसना।

पण्डित—जी हाँ।

मुल्ला—सकीना का नाम सुना है?

पण्डित—हाँ।

मुल्ला—कीसना और सकीना में फर्क ही क्या है? सीन, काफ, ये नून और हे की उलट फेर ही तो है। तुम्हारी जबान में यह अलटा-पलटी और भी आसान होगी।

पण्डित—आप कहना क्या चाहते हैं?

मुल्ला—बड़ी मोटी अक्ल है तुम्हारी जो इतनी सीधी-सादी बात नहीं समझते। अरे उल्लू की दुम फाख्ता। मैं यह साबित कर रहा था कि द्रोपदी कीसना नहीं थी बल्कि उसका नाम सकीना था।

पण्डित—यह कैसे हो सकता है?

मुल्ला—क्यों नहीं हो सकता? जब लखनऊ, का नखलऊ, लायब्रेरी का रायबरेली, पब्लिसिटी का पब्लिक सिटी—यहाँ तक कि सुयोधन का दुर्योधन और जैकसन का जयकिशन बिला किसी गुरेज के हो जाता है।

पण्डित—मेरे पल्ले कुछ नहीं पड़ा।

मुल्ला—सभी अक्ल के दुश्मनों के साथ ऐसा ही होता है। नीचे की दुनिया में एक साहब थे जी० एस० शुक्ला। वह ईसाई थे और उनका पूरा नाम था गई शेरिंग शुक्ला। जानते हो तुम्हारे भाई-बन्दों ने उन्हें गौरीशंकर शुक्ला बना दिया।

पण्डित—तो यूँ कहो कि द्रोपदी के नाम कृष्णा को कीसना करके जबर्दस्ती सकीना में परिवर्त्तित करने का षड्यंत्र रचा गया है।

मुल्ला—इसमें तुम्हारा नहीं तुम्हारी औंधी खोपड़ी का कसूर है। अरे बाबा, हमें कीसना को सकीना बनाने की क्या जरूरत थी? तुमने हमारी सकीना को कीसना-किसना और न जाने क्या-क्या बना डाला बिल्कुल वैसे ही तुम कहते हो सक्सेने कायस्थ सैक्सन लोग हैं, जरमनी तुम्हारा शर्म्मनी था जहाँ से शर्मा बाम्हन निकले वगैरा वगैरा।

पण्डित—अच्छा आगे चलो।

मुल्ला—आगे जाने की जरूरत क्या है? बात खत्म हो गयी। जब तुम्हारी द्रोपदी सकीना है तो उसका नाम तो इस फहरिस्त में आयेगा ही।

पण्डित—केवल इतने से मैं संतुष्ट नहीं हो सकता।

मुल्ला—ठूँसकर खाना तुम्हारी आदत है। अच्छा एक सबूत और देता हूँ। फिर अपनी शिकस्त तस्लीम कर लेना।

पण्डित—देखा जायेगा।

मुल्ला—तुम्हारी द्रोपदी ने कितनी शादियाँ कीं?

पण्डित—एक।

मुल्ला—क्यों हिमाकत की बात करते हो? क्या उसके पाँच शौहर नहीं थे?

पण्डित—थे परन्तु विवाह तो एक ही हुआ था।

मुल्ला—ऐसी अनोखी शादी की कोई दूसरी मिसाल दे सकते हो?

पण्डित—आवश्यकता क्या है?

मुल्ला—है, तुम मेरे सवाल का जबाब दो। रस्सी तुड़ाकर भागने की कोशिश मत करो।

पण्डित—इस समय स्मरण नहीं आता।

मुल्ला—इस वक्त क्या ताउम्र नहीं बतला सकोगे पोंगा महाराज।

पण्डित—तुम अपनी बात पूरी करो।

मुल्ला—तुम्हारी द्रोपदी के हर पाण्डव भाई से औलाद हुई?

पण्डित—हाँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुल्ला--यह कैसे मुमकिन हो सका ?

पण्डित--इसलिए कि पाँचों पाण्डवों में से नपुंसक कोई नहीं था।

मुल्ला--कितनी काबलियत की बात कही है ! जी चाहता है तुम्हारा मुँह चूम लूँ। अरे खरदिमाग ! औलाद तो तभी जुदा-जुदा होगी जब शादी अलग की गयी होगी।

पण्डित--फिर तुमने गोरखधन्धे में डालने का प्रयास किया।

मुल्ला--मजबूरी यह है कि तुम्हारे पास भेजा है नहीं, फिर आसान से आसान बात पल्ले कैसे पड़े ?

पण्डित--तुम कहना क्या चाहते हो ?

मुल्ला--तुमने मुताह का नाम सुना है ?

पण्डित--सुना है।

मुल्ला--किसे कहते हैं ?

पण्डित--जो विवेकशून्य होकर मूत्र त्यागे।

मुल्ला--किस्मत फूट गयी जो ऐसा गावदी जोड़ीदार मिला।

पण्डित--तुम बताओ किसे कहते हैं ?

मुल्ला--मुता एक किस्म की आरजी शादी होती है।

पण्डित--होती होगी। मैं क्या करूँ ?

मुल्ला--करो यह कि अपनी पंडिताइन से इजाजत लेकर एक मुता कर लो।

पण्डित--क्या नरक में ढकेलने का विचार है।

मुल्ला--वहाँ तो सीट रिजर्व करा दी गयी है। कोई नेक काम कर डालोगे तो मुमकिन है जन्नत के कारीडॉर में खड़े होने को जगह मिल जाये।

पण्डित--आगे चलो।

मुल्ला--हकीकत यह है कि तुम्हारी द्रोपदी से बार-बार मुता किया जाता था। जहाँ एक पाण्डव से तलाक मिला कि दूसरे ने उससे मुता कर लिया।

पण्डित--कोई गुड्डे गुड़िया का खेल समझ रक्खा है जो ऐसी बचकाना बात करते हो ?

मुल्ला--बचकानी नहीं, बड़ी पते की बात कही है मैंने। गाँठ बाँधकर रखना।

पण्डित--अजी मेरी तो जूती भी नहीं रक्खेगी। देखो नहीं बिना लेस का न्यू कट पहने हूँ।

मुल्ला--जब दलील नहीं सूझी तो लगे खिसियाने। हिम्मत हो तो काटो मेरी बात !

पण्डित--काटना वाटना हमें आता होता तो इतनी नहीं सुनते। हम तो भलमनसई में विश्वास करते हैं

मुल्ला--मैं मानता हूँ। अब यह बतलाओ कि कौनसी बात तुम्हारी खोपड़ी में दाखिल नहीं हो रही है।

पण्डित--यही कि पाण्डवों ने मुता वुता किया होता तो उनके नाम हिन्दुओं जैसे नहीं रहते।

मुल्ला--बस इस जरा सी उलझन से घबरा गये। तुम्हें सिनेमा का शौक रहा है।

पण्डित--खूब।

मुल्ला--दिलीपकुमार का नाम सुना है।

पण्डित--अनेक बार।

मुल्ला--जानते हो वह मुसलमान है।

पण्डित--अच्छी तरह जानता हूँ। एक वही क्या संजय जयंत आदि अभिनेता भी मुस्लिम हैं।

मुल्ला--शाबाश मेरे मिट्टी के शेर। इसी तरह अब जरा एक्ट्रेसेज के नाम भी गिना डालो।

पण्डित--मीनाकुमारी, मधुबाला आदि आदि।

मुल्ला--तुम्हारी वगैरा वगैरा की बात तो करता नहीं अलबत्ता मीनाकुमारी और मधुबाला दोनों मुसलमान थीं। इतना जरूर कहना चाहूँगा।

पण्डित--यह जतलाकर तुम सिद्ध क्या करना चाहते हो ?

मुल्ला--सिर्फ इतनी सी बात कि गैर हिन्दू भी हिन्दू नाम रखते रहे हैं और इसी रिवाज के मुताबिक तुम्हारे पाण्डव और उनकी बीबी हिन्दू नामों को दस्तबरदार नहीं दे सके।

पण्डित--परन्तु इस प्रकार के उदाहरण अभिनय जगत तल्लीन वर्ग में ही मिलते हैं।

मुल्ला--तुम्हारे मुँह में मिल्क चाकलेट। हकीकत भी यही है कि सारे पाण्डव और द्रोपदी अच्छे फनकार थे और उन्होंने जगह बजगह अपने फन की नुमायश की थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पण्डित—ऐसा लगता है सारी महाभारत घोटकर आये हो।

मुल्ला—बिना इसके तुम आलिम फाजिल से भिड़ता कैसे ?

पण्डित—तुम्हारी बात अब कुछ समझ में आ रही है।

मुल्ला—आयेगी कैसे नहीं ? मैंने मेहनत नहीं की है ?

पण्डित—और कुछ कहोगे या चर्चा को यहीं समाप्त किया जावे।

मुल्ला—जैसी तुम्हारी मर्जी। वैसे चाहो तो यह भी सुन लो कि द्रोपदी से ही नहीं पाण्डवों ने और औरतों से भी मुता किया।

पण्डित—जैसे,

मुल्ला—भीम ने हडम्बा से और अर्जन ने अलोपी से।

पण्डित—मगर यह सब संभव कैसे हुआ ? इस्लाम धर्म की आधारशिला तो युगों पश्चात् रक्खी गयी।

मुल्ला—तुमने फिर बहकना शुरू किया। ऐसे कवानीन से वाकिफ नहीं हो जिनका निफ़ाज़ उनके पास किये जाने की तारीख से पहले हो जाता है।

पण्डित—सो तो ठीक है।

मुल्ला—बस उसी तरह समझो कि ये लोग इस्लाम के वजूद में आने से पहले मुसलमान हो गये थे।

पण्डित—तुम कहते हो तो माने लेता हूँ परन्तु है यह घोर अन्याय।

मुल्ला—इंसाफ की दुहाई देना तुम्हारा पेशा रहा है। उसका न कभी असर हुआ और न होगा।

पण्डित—जैसी तुम्हारी इच्छा।

मुल्ला—तो मिलाओ हाथ दोस्ती का और खुशी से खारिज कराओ अपनी अपील को।

पण्डित—व्ययभार का क्या होगा ?

मुल्ला—उसे फरीकैन बर्दाश्त करेंगे।

जागृति-दूत

श्री विनोद शाही

साँझ को ही किरण चुन ले,
रात कुंठा की घुटन सी बात होगी
बालुका सट पे लहर की घात होगी
रे अलक से तम भरी बरसात होगी
तू प्रभाती स्वप्न बुन ले,
साँझ को ही किरण चुन ले।

मधुमास बीता, कोकिला तक खो गई
धृतराष्ट्र सी, अंधी गुफाएँ हो गईं
यूँ चेतना शिवकंठ बनकर सो गई
धरा पहले, फिर गगन ले,
साँझ को ही किरण चुन ले।

रुदन से पहले हृदय संत्रस्त होता
संकेत पा तम का रवि भी अस्त होता
निष्क्रिय आखिर को उठा हर हस्त होता
यूँ मत मिनारी स्वप्न ले,
साँझ को ही किरण चुन ले।

देखना है, सामने जब हों सितारे
कौन लुटती रोशनी हित टूटता रे
कौन सूरज मावसों में भी उतारे,
आरती क्या, ईश गुन ले,
साँझ को ही किरण चुन ले।

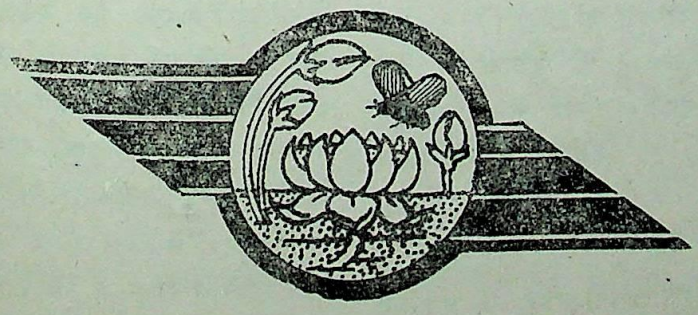

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रज़ाई*

मूल लेखक—श्री सुजानसिंह

अनुवादक—प्रो० आशानन्द बोहरा

छुट्टी के समय जब स्कूल-मास्टर स्कूल से बाहर निकलता तो वह लड़कों की एक बाढ़ में होता। कई बार उसे ऐसा प्रतीत होता कि लड़कों की बाढ़ में वह एक नौका की तरह है। आज उसने सोचा यदि लड़कों का यह प्रवाह सदैव इसी भाँति न चलता रहे तो उसका जीवन भी सूखी नदी से बालुकामय तट पर व्यर्थ पड़ी हुई नौका की भाँति निकम्मा होकर ही रह जाये। उसने फिर से सोचा कि नौका तो ठीक है। प्रत्येक वर्ष वह विद्यार्थियों के झुंडों के झुंड परीक्षाओं के किनारे से पार उतारता है। उसकी समझ में न आया कि विद्यार्थी जल प्रवाह और यात्रियों का झुंड दोनों चीज़ें कैसे बन सकते हैं? आखिर प्रवाह तो ठीक ही था जिस पर उसके जीवन की टूटी-फूटी नौका तैरकर एक काम करती जा रही थी। कठिन से कठिन गणित के प्रश्नों को मिनटों में निकाल लेनेवाली उसकी प्रतिभा, उस अदृष्ट प्रवाह को समझ सकने में असमर्थ थी।

मास्टर ने सहज स्वाभाविक कई परिचित व्यक्तियों के सलामों का उत्तर हाथ जोड़कर दिया। कई की नमस्ते, सति श्री अकाल, जय रामजी की, झुककर व्याज सहित वापिस की। परन्तु अन्दर ही अन्दर उसे कोई फिकर खा रही थी। बाज़ार में तो वह मशीनी हरकतें करता चला आ रहा था। सहसा उसे एक दौड़ती आ रही गाय बाह्य होश में ले आने में समर्थ हुई। वह हैरान था कि वह किसीके साथ क्यों नहीं जा टकराया या समीप में बह रही गहरी नदी में ही क्यों नहीं जा गिरा।

मोड़ मुड़ते हुए एक कबाड़ी की दुकान पर एक पुरानी लटकती हुई रज़ाई देखी। अन्दर से कांपते हुए उसने इधर-उधर देखा। कहीं उसे किसी ने पुरानी रज़ाई की ओर ललचाई नज़रों के साथ देखते हुए देख तो नहीं लिया? वह जल्दी से मोड़ मुड़ गया।

मास्टर पाँच बच्चों का पिता है। आजकल इनको पाँच गलतियाँ कहता है। पुराने जर्मन और आ कल के रूस में शायद उसकी स्त्री को अधिक बच्चे करने का मैडल और इनाम मिलता। वह सोच रहा कि हालात कैसे गलतियों को दुरस्तियाँ और दुरस्ति को गलतियाँ बना देते हैं। काश! कि हालात सब के में होते। हालात की कुंजी केवल कुछ एक के हाथ ही न होती।

पाकिस्तान से आये तीन रिश्तेदार भी उसके रहते हैं। कभी उन्होंने भी इसकी कठिन घड़ी में सहा की थी, जब वे स्वयं खुशहाली में थे। मास्टर की तन्ख अब सब कुछ मिलाकर एक सौ साढ़े सतार्इस रुपये बड़ी तन्खाह है केवल वह आटा जो सहायता दिये के समय दो रुपये तेरह आने मन बिकता था, अब रुपये मन बिकता है। परन्तु मास्टर की तन्खाह तो है। एक सौ साढ़े सतार्इस रुपये, प्रावीडैंट फंड का अतः अब कठिन समय में उन्हें कैसे सहारा न देते कृतघ्न न कहलवाने का भी तो मूल्य होता है न।

राशन डिपो पर कई लोग खड़े थे, परन्तु साहिब को डिपो से भी कुछ नसीब नहीं होता मास्टर साहिब की तन्खाह एक सौ साढ़े सतार्इस है। बताई हुई रकम से एक रुपया अधिक लेने वाला डिपो से सस्ता राशन लेने का हकदार नहीं और साहिब तो पूरे ढाई रुपये अधिक लेते हैं। उनके किरायेदारों में एक बैंक क्लर्क भी था। उसकी और वह बस यही उसका परिवार था। उसको डिपो सस्ता राशन मिलता था। परन्तु मास्टर साहिब परिवार भी तो तन्खाह की तरह बड़ा था इस लिए किसी रियायत का हकदार नहीं था।

मास्टर ने देखा उससे कई गुना अधिक हैसि वाले डिपो से राशन ले रहे थे। परन्तु वह तो दुकानका कोई नौकरी पेशा नहीं थे। बेचारी गवर्नमेंट के पास तो उनकी स्वयं लिखी बहियों के सिवाये आमदनी

* 'नरकां दे देवत' नामक कहानी संग्रह में संकलित इस कहानी का अनुवाद मूल लेखक की अनुमति से किया गया है।

—अनुवादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का कोई यन्त्र नहीं था। मास्टर झूठ नहीं बोल सकता था। उसे सभी सज्जन कहते हैं कोई तनज़ के साथ ही, जैसे लुच्चा या बेईमान होना कोई गुण होता हो। मास्टर कानून का पक्का पाबन्द है। पढ़े-लिखे आदमी को कानून का उल्लंघन करने को वैसे भी अधिक सजा मिल सकती है। मास्टर साथ में देशभक्त भी है। अपने या अपने सम्बन्धियों के कारण वह देश और कौम का नुकसान नहीं सहन कर सकता।

मास्टर रास्ते से गुजर गया, सब कुछ देखता। उसको फिर रास्ते में रज़ाई का ध्यान आया। नई रज़ाई के लिए कम से कम बीस रुपयों की आवश्यकता है। उसने हिसाब लगाया ढाई मन आटा, तीस दूने साठ और पन्द्रह, पच्चहत्तर रुपये, घी वनस्पति बारह रुपये, ईंधन पन्द्रह रुपये और बड़ी रकम उसे बाद में याद आई, किराया तीस रुपये, दूध चाय के लिए तेरह रुपये और इसी तरह आगे। कुल जोड़ एक सौ छिआसी रुपये। घर में हर मास लगभग साठ रुपये का घाटा। उसे बजट बैलेंस करना चाहिये। परन्तु उसने गृहविज्ञान के अनुसार कई किताबों और रिसालों के लिए खर्च की थी सात रुपये की रकम के सिवाय कुछ भी अनावश्यक न प्रतीत हुई। वह मन में ही इस खर्च पर लकीर लगाने लगा था, परन्तु उसे प्रतीत हुआ कि वह खर्च उसकी खुराक पर हो रहे खर्च से भी अधिक जरूरी है। आखिर उसने सोचा, मैं हेडमास्टर की आज्ञा से एक सज्जन रखूंगा। तीस की आमदनी बढ़ जायेगी, तीस का खर्च कम करूँगा, जैसे कैसे। परन्तु रजाई के लिए बीस रुपये कहाँ से आयेंगे? सर्दी के लिए बड़ी जरूरी चीज है। सन्तानियों को अलग-अलग चारपाई-बिस्तर देना तो अत्यावश्यक था। तीन लड़कियाँ इकट्ठा सोती थीं, एक ही चारपाई पर एक रज़ाई में सोने से कद बेढ़ंगे हो जायेंगे। लड़कियों के कद बुत बेढंगे हो जाने से उनकी आजकल दुनियाँ में कोई पूछ नहीं। कल उसने अपनी पत्नी को कहा से बड़ी को अलग सुलाने के लिए कहा था।

"थोड़ी चारपाइयें हैं कलाश? फिर तू इन को अलग क्यों नहीं सुला देती?"

कलाश ने नम्रता से उत्तर दिया, "चारपाई तो एक एक है परन्तु रज़ाई फालतू कोई नहीं। अभी तो बिल्लू मेरे साथ सोता है।"

बीस रुपये की रज़ाई। आगे ही बजट में घाटा है। तीस की ट्यूशन, तीस खर्च से बचाने पड़ेंगे। परन्तु बीस और रज़ाई के लिए कहाँ से आयेंगे? उसे ध्यान आया कि परसों उसने अपनी किताबें और रद्दी बेचकर सात रुपये बारह आने बट्टे थे। परन्तु रज़ाई के लिए बीस रुपये। वही। कबाड़ी से पुरानी रज़ाई। हाँ ठीक है, कल पता करूँ।

कई दिन वह सवेरे अवसर की तलाश में रहा। दिन के समय उसका कबाड़ी से फिर पूछने का साहस न हुआ। एक दिन रात के समय गया। बाज़ार बन्द था। बेचारा नेशन-बिल्डर (Nation builder) कौम का उस्ताद, निराश वापिस आया। बनानेवाला स्वयं बनाये जानेवालों के हाथों क्या बन रहा था।

उसने फिर सोचा, आखिर सुबह ही अवसर निकालकर काम बनेगा। कम्बख्त रज़ाई भी तो ऐसी थी कि जिसे कोई खरीदता ही नहीं था। किसीके सामने खरीदते इज्जत जाती थी—यदि उसकी नहीं तो अध्यापक श्रेणी की और साथ ही कौम की। बेचारा मास्टर क्या कर रहा था? किससे क्या छिपा रहा था? उसने फिर सोचा, यह 'इज्ज़त' को आँच नहीं आने देगा।

रविवार तो नहीं था, परन्तु छुट्टी का दिन था। वह अपने बड़े लड़के को साथ लेकर उस दुकान पर गया। रज़ाई बदस्तूर वहीं ही पड़ी थी। वह एक ही हमला मारकर दुकान में चला गया। सात रुपये में सौदा हो गया। रुपये देकर वह शीघ्र वापिस निकल आया। दस कदम ही चला होगा कि किसी ने आवाज लगाई "मुरदों से उतारी हुई रज़ाई खरीद ली!"

मास्टर से पीछे मुड़ कर देखे बिना न रहा गया। कहनेवाला एक दर्जी था, पास ही मास्टर का एक शिष्य भी था, जिसे आज से उसके घर पढ़ने आना था। उसने भी मास्टर के समीप आकर कहा, "यह तो मुरदों से उतारी हुई रज़ाइयाँ बेचता है मास्टरजी।"

मास्टर ने सत्य जैसा झूठ बोला, "हाँ काका, परन्तु किसी जरूरतमन्द की जरूरत तो पूरी हो जायेगी।"

स्वर ऐसा था कि जिससे सन्देह पैदा हो सकता था। कि उसने किसी और के लिए रज़ाई खरीदी है। आखिर यदि यह झूठ भी था तो धर्मराज युधिष्ठिर के बोले झूठ से बुरा नहीं था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारा दिन रज़ाई धूप में पड़ी रही। शाम हुई तो रज़ाई कमरे में लाई लई। दीपक जलने के पश्चात् वह लड़का पढ़ने आ गया। उसने रज़ाई को पड़ी देखकर नमस्ते कहने के पश्चात् पूछा, "क्या मास्टरजी यह वही रज़ाई है न ?"

मास्टरजी ने दूसरी बार झूठ बोलने की समर्थता न रही। उसने कहा, "वही ही है काका, पर मैं आज तुझे पढ़ा नहीं सकूँगा, मेरी तबीयत ठीक नहीं तुम, कल आना।"

सचमुच उसकी तबियत खराब थी। लड़का वापिस चला गया। मास्टर ने रसोई में काम करती पत्नी को मुरदों से उतारी रज़ाई की ओर इशारा करके कहा "कलाश नई रज़ाई मुझे दे दो। मेरे वाली पहली रज़ाई लड़कियों पर देना। हाँ सच्च गोमती को अलग सुलाना।"

"क्यों आपने रोटी नहीं खानी ?" कलास ने वह रज़ाई पैरों पर डालते हुए कहा।

"नहीं।" मास्टर ने कहा और रज़ाई अपने ऊपर खींच ली। कितनी देर वह सोचता रहा कि कौन मुरदे पर से रज़ाई उतार लेता है और कौन जीवितों पर से वह बड़ा बेचैन था।

——

अनहोनी बात

श्री विजय लक्ष्मी 'विभा'

सखी री, मैं जलती बरसात।

सतरंगी विपदायें घेरे,
पीड़ा का आकाश,
आशाओं के नन्हें बादल,
उड़ते बिना प्रयास,
ला ला देते मुझको अपनी,
अनचाही सौगात।

बरसूँ तो भरु बनते सागर,
भू बनती श्मशान,
न बरसूँ तो मैं ही बनती,
अनचाहा तूफान,
भरी रहूँ या बरसूँ आली,
दोनों में व्याघात।

तन की तड़पन तड़ित सदृश ही,
झुलसाती सब अंग,
भावी का भय गरज गरज कर,
रखता नया प्रसंग,
दिन पर भी जो छायी रहती,
मैं वह काली रात।

ससि निदाघ सी तपती बूँदे,
बरसाऊँ किस ओर,
जला विश्व को ही देंगी ये,
ज्वालायें घनघोर,
अपनी बारिस में मैं बहती,
यह अनहोनी बात।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नवीन प्रकाशन

गोस्वामी तुलसीदासजी कृत श्रीकृष्ण पदावली तथा अविनाशराय ब्रह्मभट्ट कृत तुलसी प्रकाश—सम्पादक, ज्यो० राधेश्याम द्विवेदी। आकार डिमाई। पृष्ठ संख्या २० + ६३। प्रकाशक भारती अनुसंधान भवन, स्वामीघाट, मथुरा। मूल्य, २ रुपये।

इस पुस्तक में एक साथ दो महत्त्वपूर्ण पुस्तकों क प्रकाशन किया गया है। गोस्वामीजी की श्रीकृष्ण पदावली प्रसिद्ध ग्रन्थ है। वह विशुद्ध ब्रजभाषा में है। उनका ब्रजभाषा पर कितना सम्पूर्ण अधिकार था, यह इससे स्पष्ट हो जाता है। यह पुस्तक अन्य संग्रहों में छपी है और यह रचना १६२८ की बतायी जाती है। इसका महत्त्व जितना भाषा और विषय की दृष्टि से है, उतना काव्य की दृष्टि से नहीं। अनन्य राम-भक्त होते हुए भी वैष्णव होने के कारण उन्होंने भगवान कृष्णावतार की लीला का पारस्परिक ढंग से वर्णन किया है। उसमें आश्चर्य की बात नहीं। ब्रजभाषा काव्य की दृष्टि से उनकी कवितावली कहीं अधिक मूल्यवान है। किन्तु इस कृति की ओर लोगों का ध्यान उतना नहीं गया, जितना जाना चाहिए, इसमें ठेठ ब्रजभाषा का प्रयोग किया गया है। शायद उसके इसी रूप की ओर ध्यान आकर्षित करने के लिए, अनुसंधान भवन ने इसे प्रकाशित किया है।

दूसरी पुस्तक अधिक महत्त्वपूर्ण है। वास्तव में उसे स्वतन्त्ररूप से अलग प्रकाशित किया जाना था। इस संकलन में यह दब गया है। हमारी सम्मति में अनुसंधान भवन को उसे अलग तथा और अधिक विस्तृत भूमिका के साथ प्रकाशित करना उचित होता।

'तुलसी प्रकाश' तुलसीदासजी का छन्दबद्ध जीवन चरित्र है। अविनाशराय भट्ट गोस्वामीजी के समकालीन ही नहीं, उनके मित्र भी थे। इस पुस्तक की दो प्राचीन हस्तलिपियाँ मिली हैं। एक प्रति भोगीराम मिश्र नामक किसी व्यक्ति ने सोमवार ज्येष्ठ कृष्ण ३०, संवत् १८५९ वि० को किसी प्राचीन प्रति से नकल किया था। वह बाजिदपुर (जिला बदायूँ) के वैद्य पं० नरोत्तमजी के पुस्तकालय से मिली। दूसरी प्रति १८८९ की लिखी है। उसकी पुष्पिका में लिखा है: "संवत् १८८९ भाद्रपद शुक्ला ऋषि पंचमी गुरुवासरे लिखितम् मुन्शी रामदीन चित्रकूट मद्धे वैष्णव गंगादास निमित्तम्।" शायद खोज करने से इनकी अन्य प्रतियाँ भी मिल जायँ। अविनाशराय भट्ट सोरों के निकट तारी ग्राम के निवासी थे। वे तुलसीदासजी के समकालीन ही न थे, वे उनसे मिलने दो बार चित्रकूट और राजापुर भी गये थे। यह तुलसीदास की जीवनी कविता में है और अविनाशराय भट्ट ने इसे सं० १६७७ वि० में लिखा था। इसमें उनके परिवार, निवासस्थान, ननिहाल तथा परिवारवालों के परिचय के साथ-साथ उनके जीवन की घटनाएँ क्रमबद्ध रूप से दी गयी हैं। अपने चचेरे भाई (अमरगीतकार) नन्ददास से मिलने आने के लिए उनकी ब्रजयात्रा की चर्चा भी है। उनके अयोध्या, काशी, प्रयाग, चित्रकूट, राजापुर की अनेक यात्राओं के भी वर्णन हैं जिनमें कई विवरणपूर्ण हैं। तुलसीदासजी के जीवन को लेकर इस समय संसार में इतना वैमत्य है कि सत्य का जानना कठिन हो गया है। राजापुर लखीमपुर खेरी और गोंडा के उनके जन्मस्थान होने के दावे तो हम कई वर्षों से सुनते आये हैं, किन्तु अभी हाल में बिहार के एक सज्जन श्री कुलदीप नारायण राय 'झड़प' ने ६८५ पृष्ठों के एक वृहद् और सचित्र ग्रन्थ में यह प्रमाणित करने का बड़े परिश्रम से प्रयास किया है कि तुलसीदासजी की जन्मभूमि बलिया के निकट नियाजीपुर और सरहार के पास राजापुर-गंगौली है। हमारे स्कूली जीवन तक पाठ्यपुस्तकों में तुलसीदास सोरों ही के निवासी लिखे जाते थे। किन्तु जब से हिन्दी में विद्वानों, डाक्टरों और शोधकर्ताओं की संख्या बढ़ी, तुलसीदासजी 'लावतन' हो गये! कहावत है कि "दो मुल्लों के बीच में मुर्गी हलाल हो जाती है, यहाँ तो बीसों मुल्लों (विद्वानों और डाक्टरों) के बीच में तुलसीदास रूपी मुर्गी फँस गयी है।" इस विवाद में अविनाशराय भट्ट का तुलसी प्रकाश भी एक पक्ष का सहायक होगा। स्थानीय प्रेम तथा शोधकर्ताओं की 'नवीन शोध' की प्रवृत्ति कभी इस समस्या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को हल न होने देगा। उनका एकमत होना सम्भव नहीं है। किन्तु अनुसन्धान भवन ने तुलसी प्रकाश कर शोधकर्ताओं और जिज्ञासुओं को एक मूल्यवान स्रोत ग्रथ उपलब्ध कर उनको सेवा की है। जो विद्वान् और पाठक तुलसी के जन्मस्थान के सम्बन्ध में रुचि लेते हों उन्हें यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए। उससे निष्कर्ष निकालना उनके ऊपर निर्भर है किन्तु जो तटस्थ भाव से इस विषय पर विचार करना चाहें वे इस पुस्तक की उपेक्षा नहीं कर सकते।

महाभारत के बाद की कुछ झलक—लेखिका श्रीमती इंद्राणी पाठक। प्रकाशक, श्रीमती अनसूया प्रसाद, स्वरूपनगर, कानपुर। पृष्ठ संख्या २०४, मूल्य ३ रुपये।

श्रीमती इंद्राणी पाठक में पुराने और नवीन विचारों का अद्भुत समन्वय है। वे विचारक हैं और उनकी प्रवृत्ति धार्मिक तथा विचारशैली भारतीयता से ओतप्रोत है। उन्होंने कई पुस्तकें लिखी हैं। यह उनकी नवीनतम पुस्तक है। इसमें उनके ५८ लेखों का संकलन है जो मूल रूप से महाभारत के बाद की धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक विषयों पर हैं। इन निबन्धों की विशेषता इनकी स्पष्टवादिता तथा तर्कपूर्ण शैली है। भारत के वर्तमान नैतिक पतन से (जो हमारी दुरवस्था का इतने दिनों से मुख्य कारण रहा है) वे मर्माहत हैं। वे नैतिकता को त्रिशंकु की तरह निराधार लटका हुआ नहीं मानतीं, और उसे व्यापक अर्थ में धर्म पर आधारित मानती हैं। इसलिए उनके निबन्धों में एक निर्दिष्ट दिशा है जो पाठकों को प्रभावित करती है। सभी निबन्ध पठनीय और मननीय हैं। किसी-किसी निबन्ध को पढ़कर तो पाठक इच्छा न रहते हुए भी विचार करने को विवश हो जाता है। यह लेखिका की सबसे बड़ी सफलता है। जो पाठक भारत की नाना प्रकार की गम्भीर समस्याओं में रुचि लेते हैं और जो देश के उत्थान के लिए धर्म भारतीय संस्कृति और नैतिकता का मूल्य समझते हैं उन्हें यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए। यह पुस्तक ज्ञानवर्द्धक, प्रेरणाप्रद और विचारोत्तेजक है और गम्भीर विषयों पर एक नये और अनूठे दृष्टिकोण को प्रस्तुत ही नहीं करती, प्रत्युत सूक्ष्म विश्लेषण द्वारा हमारे समाज और देश की अनेक कम[illegible] पर भी प्रकाश डालती है। हिन्दी में एक लेखिका [illegible] इतनी गम्भीर पुस्तक का हम स्वागत करते हैं। इसकी [illegible] बड़ी विशेषता यह भी है कि इसकी भाषा बड़ी सरल [illegible] शैली इतनी सुबोध है कि सामान्य पाठक भी इससे [illegible] उठा सकता है। गम्भीर पाठकों को तो इसे पढ़ना ही चाहि[illegible] किन्तु यह पुस्तकालयों में भी रहनी चाहिए जहाँ साम[illegible] पाठक भी इससे लाभ उठा सकें।

श्री अरविन्द का जीवन दर्शन—लेखक, श्री इन्द्रदेव[illegible] प्रकाशक, सस्ता साहित्य मण्डल, कनाट प्लेस, नई दिल्ली[illegible] पृष्ठ संख्या ११४। अच्छा कागज और स्पष्ट छपाई। मू[illegible] ३.५० रुपये।

इधर महर्षि अरविन्द पर अनेक ग्रन्थ निकले हैं। [illegible] प्रायः वृहदाकार और इतने गहन हैं कि सामान्य पाठक [illegible] उन्हें समझने में कठिनाई होती है। वे विशेषज्ञों या [illegible] विन्द दर्शन के अध्येताओं के लिए अधिक उपयोगी [illegible] इसलिए हम इस छोटी पुस्तक का स्वागत करते हैं। [illegible] विन्द का जीवन-दर्शन समझना सरल नहीं है क्योंकि [illegible] ऐसे ऊँचे धरातल पर है जिस पर कुछ लोग ही [illegible] सकते हैं। इस पुस्तक का मूल्य और महत्त्व यह है [illegible] इसमें थोड़े में, और ऐसी भाषा में जो दार्शनिक शब्दा[illegible] से बहुत बोझिल नहीं है, उनके जीवन-दर्शन को सामा[illegible] पाठक के लिए सरल भाषा और सुबोध शैली में स्पष्ट [illegible] दिया गया है। अरविन्द इस युग की महान् विभूति [illegible] और यह क्षोभ की बात थी कि सामान्य व्यक्ति को [illegible] जीवन-दर्शन को समझानेवाली कोई सरल और [illegible] पुस्तक नहीं थी। इस पुस्तक ने उस अभाव की पूर्ति [illegible] दी है। उदाहरण के लिए कर्मसिद्धान्त के विषय में हिंदु [illegible] की जो सामान्य धारणाएं हैं उनके सम्बन्ध में अरविन्द [illegible] विचार मौलिक ही नहीं, चिन्तन योग्य भी हैं। लेखक [illegible] उनका स्पष्टीकरण इतने अच्छे ढंग से किया है कि प्राचीन [illegible] कर्मसिद्धान्त के साथ-साथ ही पाठक को अरविन्द के [illegible] सम्बन्ध के मौलिक विचार स्पष्टरूप से समझ में आ [illegible] हैं। श्री अरविन्द के जीवन-दर्शन को समझने के लिए [illegible] पुस्तक हस्तामलक है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनोरंजक संस्मरण

'शिवराजभूषण' कैसे प्रकाशित हुआ ?

लक्षण ग्रंथों और लोकप्रिय शृङ्गारिक कविताओं तथा धार्मिक भजनों और काव्यों के कारण भूषण की कृतियाँ विस्मृत हो गयी थीं। बहुत से लोग उनका नाम भी भूल गये थे और उनके छुटपुट छन्दों का प्रचार भी बहुत कम था। भूषण के ग्रंथ के प्रकाश में आने की कहानी बड़ी मनोरंजक है।

लोग शिवराजभूषण तक को भूल गये थे। इसकी एक हस्तलिखित प्रति त्रिपाठी श्यामनाथ कवि के पास थी जो महाराज रीवा और जयपुर के आश्रित थे। जयपुर के प्रसिद्ध राजपंडित पंडित दुर्गाप्रसाद जी का ध्यान उसकी ओर गया। उन्होंने उसका महत्त्व महाराष्ट्र के लिए समझकर एक प्रति तत्कालीन मराठी विद्वान् रा० रा० काशीनाथ पाण्डुरंग परब के पास भेज दी।

श्री परब ने उस पुस्तक को डेकन कॉलिज के श्री जनार्दन बालाजी मांडक को दिया और उनसे उसे प्रकाशित करने का आग्रह किया। उन्होंने पंडित दुर्गाप्रसाद जी की सहायता से उसे शुद्ध कराके 'महाराष्ट्र काव्येतिहास संग्रह' के तीसरे खंड में १८८९ ई० में प्रकाशित कर दिया। इस प्रकार यह महत्त्वपूर्ण पुस्तक प्रथम बार प्रकाशित हुई।

किन्तु 'महाराष्ट्र काव्येतिहास संग्रह' में प्रकाशित होने से उसका काफी प्रचार नहीं हुआ। अतएव श्री परब ने यदुवंशीय पुस्तकालय के अध्यक्ष श्री गोवर्धनदास लक्ष्मीदास को वह दी। उन्होंने दो काम किये। वे उसे सर्वांगपूर्ण निकालना चाहते थे। इसलिए उन्होंने श्री गोपालराम गहरी से भूषण का एक जीवन-चरित्र लिखने को कहा। उस समय गहपरी जी 'भाषाभूषण' नामक पत्र का सम्पादन कर रहे थे और साहित्य-जगत् में उनकी प्रतिष्ठा हो गयी थी। दूसरा काम उन्होंने यह किया कि 'महाराष्ट्र काव्येतिहास संग्रह' जो संस्करण छपा था उसमें अनेक अशुद्धियाँ रह गयी थीं क्योंकि महाराष्ट्र में उस समय ब्रजभाषा के मर्मज्ञ विद्वान् नहीं मिलते थे। श्री गोवर्द्धनदास लक्ष्मीदास का परिचय संयोग से जामनगर के श्री त्रिविक्रमलालजी से हो गया। उन दिनों गुजरात में ब्रजभाषा का बहुत प्रचार था। उसका गहन पठन-पाठन होता था और कितने ही गुजराती ब्रजभाषा के गम्भीर विद्वान् ही नहीं, उच्च कोटि के कवि भी थे। वे छंदशास्त्र और ब्रजभाषा के अधिकारी विद्वान् थे। उन्होंने शिवराजभूषण को शुद्ध किया और उसका प्रूफ भी देखा। यह पुस्तक गोवर्द्धनदासजी लक्ष्मीदासजी ने उसे उस समय के बम्बई के सर्वोत्तम प्रेस—निर्णय सागर प्रेस में छपाया। श्री त्रिविक्रमलालजी ने बड़े परिश्रम से शिवराजभूषण का सम्पादन किया। उन्होंने अन्त में एक छन्द शिवाजी पर भूषण के अनुकरण में बनाकर जोड़ा और भूमिका में भी छन्द लिखा। वे छन्द ये हैं—

चढ़त अमित उच्छाह धरैं सन्नाह सूरजन
देत हाँक हय चढ़ें, हींस रथ होत महाघन।
दिल्ली दल खलभलैं, हलैं अवरंगशाह मन
आर्यधर्म थिर थपें, कहें द्विज देव सबै 'धनि'।
डगमगात धरा धरकत हियो, परें काल पर पच्छ पर
सिवराज वीर सिरजा जबें, देत स्वच्छ कर मुच्छ पर॥

(भूमिका का छंद)

कविगन भूषन महान कवि भूषन कौ
विरचित 'शिवराज भूषन' ललित ग्रन्थ।
लक्ष्मीदास तनै यदुवंशी परशंसी बुध
गोवर्धनदास दियो शोधन बिनै अनन्त।
भूषन की बानी शिव कीरति समानी यामें
निरखि त्रिविक्रम यथामति कवित्त पंथ।
शोध्यौ वृत्त विषय विचार अर्थ भूषण कौ,
तदपि भई जो होय भूल ताहि सोधौ संत।

इनसे गुजराती ब्रजभाषा कवियों के ब्रजभाषा पर अधिकार की बानगी मिल सकती है। गोबर्द्धनदासजी लक्ष्मीदासजी गोस्वामी गट्टूलालजी के परम भक्त थे। सम्वत् १९५४ में गोस्वामीजी का स्वर्गवास हुआ और उसीके बाद उन्होंने श्री शिवराजभूषण प्रकाशित किया और उन्होंने इस ग्रन्थ को उन्हींकी स्मृति में अर्पित किया।

इस प्रकार 'शिवराजभूषण' हिन्दी जगत् में महाराष्ट्र और गुजराती गुणग्राहकों, काव्यरसिकों और विद्वानों के सहयोग से सबसे पहले प्रकाश में आया। यह डिमाई आकार में ५२ पृष्ठों में छपा था। २४ पृष्ठों में जीवनी तथा काव्य की समीक्षा तथा ८ पृष्ठों में अनुक्रमणिका अलग थी। छपाई निर्णय सागर प्रेस की थी और पूरे कपड़े की सुन्दर जिल्द थी जिस पर अर्द्धचन्द्रकार में श्रीशिवराज भूषण काव्य और नीचे शिवाजी की भवानी तलवार सच्चे सोने के स्तवकों में अंकित थे जिनकी चमक आज भी बहुत मद्धिम नहीं पड़ी।

हमने भूषण ग्रन्थावली का दूसरा संस्करण बंगवासी प्रेस, कलकत्ता द्वारा प्रकाशित 'बंगवासी' के सम्पादक स्व० श्री प्रभुदयाल पांडे द्वारा सम्पादित देखा था जिसमें शिवराजभूषण के अतिरिक्त उनकी कुछ अन्य कृतियाँ भी थीं।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादकों और अनुवादकों का ऊधम

श्री बदरीनाथ भट्ट

मौलिकता की भूमि पर साहित्य की नींव का पड़ना नैसर्गिक नियम है; पर आजकल इस नियम के अनेकों अपवाद देख पड़ते हैं। बल्कि यों कह सकते हैं कि हमारे अपवादों की बदौलत अब इस नियम की सत्ता ही उठ सी गयी है। कारण यह है कि छापेखाने और डाकखाने की कृपा से, दूसरी भाषाओं के साहित्यों को अवगत करने के साधन सुलभ हो गये हैं। विचारपूर्वक देखा जाय तो यह भी एक कारण है जिससे मौलिकता का अस्तित्व दब सा गया है। हम हिन्दी-साहित्य की दशा को ध्यान में रखते हुए ही यह सब कह रहे हैं। अतएव हमारे विचार दूसरी भाषाओं के सम्बन्ध मे चरितार्थ होते हैं तो कहाँ तक, इस पर विचार करने के खटराग में हम नहीं पड़ा चाहते।

आज कल हिन्दी-साहित्य में जिधर देखिए उधर ही जल्दी काम और सस्ते दामवाली कहावत चरितार्थ होती हुई दिखाई दे रही है। हिन्दी-प्रेमी कहलानेवालों के हाथों बेचारी हिन्दी की तो बड़ी ही दुर्दशा है। उन्नति के नक्कारखाने में वास्तविकता की तूती की बोलती बन्द है। उस बेचारी की आवाज़ सुनता ही कौन है? मतलब यह कि लोग विचारपूर्वक यह देखने का कष्ट नहीं उठाते कि हम उन्नति कर भी रहे हैं या नहीं; हम किधर झुक रहे हैं; वहाँ कुछ सार भी है या नहीं; या यों ही जोश में अन्धाधुन्ध लपके पड़ते हैं। सड़ी गली और निकम्मी पुस्तकों के ग़लत-सलत और आदर्श-हीन अनुवादों की बदौलत यदि किसी भाषा या राष्ट्रभाषा की उन्नति होना सम्भव है, तो हमारी हिन्दी भी अब उन्नति की चरम सीमा शीघ्र ही पहुँच जायगी; बल्कि सम्भव हुआ तो उसे भी जायगी और ऐसी जगह जा पहुँचेगी कि यद्गत्वा न निवर्त्तन्ते।

सम्पादकों का काम है, भाषा तथा साहित्य की की पूरी-पूरी देख-रेख रखना और त्रुटियों से उसे पर यहाँ का हाल कुछ और ही है। यहाँ अपने ही की गर्दन सम्पादक-पुङ्गवों द्वारा सरे बाज़ार नापी जा है और कोई चूँ नहीं करता! 'परस्परं प्रशंसन्ति' मसले का दर्शन दिन-दहाड़े, और फिर भी लालटेन जला कर, कराया जा रहा है। मिथ्या प्रशंसा के पु से साहित्य-शिशु अथाह सागर में ढकेला जा रहा साहित्य की उन्नति में अनुवादों के द्वारा योग देना नहीं। पर केवल अनुवादों के ही सहारे, अपरिचित के ज़बर्दस्ती प्रचार के ऊपर ही अवलम्बित रहकर, को उन्नत कर डालने का बीड़ा उठा कर स्वाभाविक और सुन्दरता का बहिष्कार कर देना घोर परा बुद्धि-हीनता, प्रतिभा-शून्यता और भिखमङ्गेपन का देना ही नहीं, बल्कि भावी उन्नति के मार्ग में बड़े काँटे बखेरना है। जो मस्तिष्क अपनी प्रतिभा की कितनी ही मौलिक रचनायें करके हिन्दी का सम्मान सकते थे वे आज अनुवादक, बल्कि यों कहना चाहि किसी न किसी अन्य-प्रान्तीय भाषा के अक्षर-ज्ञा बदौलत, प्रकाशकों के क्रीत-दास बने हुये हैं! बजाय कि अपनी सामाजिक अवस्था में सुधार करने की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१७३

ी जाय हमें ज़बर्दस्ती बङ्ग या महाराष्ट्र-प्रांत की सामाजिक अवस्थाओं की दुर्दशायें और उनके सुधार के उपाय-पुञ्ज सुझाये जा रहे हैं, जिनसे रत्ती भर भी फ़ायदा नहीं, बल्कि उलटी बड़ी भारी हानि यह हो रही है कि हम क्या हैं' इसको भी हम भूले जा रहे हैं। यदि बँगला या मराठी की अच्छी पुस्तकों का अनुवाद हो जाय तो कोई हर्ज नहीं, पर केवल अक्षर पहचान कर निकम्मी पुस्तकों के अनुवादक बन बैठने की धुन हमारी रही-सही इज्ज़त बट्टा लगवा रही है।

हमारी इस चोरी-चकारी की आदत की बदौलत जितने ही हिन्दीविरोधियों के दिमाग़ चढ़ गये हैं। उनका कहना है कि हिन्दी में हई क्या! बँगला की रद्दी पुस्तकों के अनुवाद ही तो हैं। पर यहाँ सुनता कौन है? हमें तो दाम और नाम पाने की वह धुन सवार है जिसका कुछ हिसाब नहीं। खेद है कि विश्वविद्यालयों में उच्च शिक्षा पाये हुए पदवी-धारी सज्जन भी अनुवाद के झंझट-झंझले में कूद कर हाथा-बाहीं कर रहे हैं। वे लोग अपनी योग्यता की ओर कुछ भी ध्यान नहीं देते। अगर चाहें तो बहुत से मौलिक लेख लिख सकते हैं। पर ऐसा करे कौन! ओह, बेढब नशा चढ़ा है। देखिए, अनुवाद, और सो भी गलत! और किसका? और किसी काम का भी नहीं!

सच पूछिए तो इन लोगों ने हिन्दी के सिर पर इतनी बदनामी लादी है कि इनके साथ काम करने को जी नहीं चाहता। चोरों का साथी गँठकटा! एक उदाहरण लीजिए। हमारे एक मित्र को आख्यायिकायें पढ़ने का कुछ दिनों से शौक़ रहा है। दुर्भाग्य से आप बँगला भी जानते हैं अतएव आपने कई अख्यायिकायें बँगला से अनुवाद करके छपाईं। इसी प्रकार आख्यायिकायें पढ़ते-पढ़ते आपकी भी सहसा जागृत हुई, और अब बँगला के ढंग की मौलिक आख्यायिकायें भी आप बहुत अच्छी लिखने लगे हैं। आपकी शिकायत है कि मेरी मौलिक आख्यायिकायें भी अनुवादित ही समझी जाती हैं! और, लोग यह भी समझते हैं कि मैं बँगला से आख्यायिकायें चुरा कर उन्हें प्रकाशित कराता हूँ, पर बँगला का नाम नहीं देता! खूब! बद अच्छा बदनाम बुरा! यह दशा देख कर तो यही जी चाहता है कि बेहतर होता अगर इस देश पर डाक-खाने और छापेखाने की कृपा ही न हुई होती—ताकि हम लोग कम से कम अपने आपे में तो रहते।

अब सम्पादकों की बात सुनिए। जिसे और कोई भी काम नहीं मिलता, जो गणित में कमज़ोर होने के कारण सातवें या आठवें दरजे के आगे न घिसट सका, वही बँगला या और किसी प्रान्तीय लिपि के अक्षर मात्र पहचान कर बड़ी धूमधाम से हिन्दी-सम्पादकों की पंक्ति में बैठा बातें बघार रहा है। जिसके लेख या तुकबन्दी को दूसरे अख़बारों ने छापने से इन्कार कर दिया उसी ने चट नया अख़बार निकाल दिया, और जब वह न चला तब हिन्दीवालों के सिर कृतघ्नता के कलङ्क का टीका लगा दिया! कहिए, क्या सस्ता खेल है! एकोऽहं बहु स्याम् वाली प्रवृत्ति के कारण ही निर्विकार ब्रह्म को त्रिगुणमयी उपाधि ग्रहण करनी पड़ी; पर हिन्दी वालों ने और भी आगे क़दम बढ़ाया। उन्होंने कवि-लेखक-सम्पादक-प्रकाशक-विक्रेता-देशभक्त-रूपिणी षड्गुणमयी मूर्ति धारण कर परमात्मा की उस त्रिगुणमयी मूर्ति को भी नगण्य सा कर दिखलाया! द्वैत-बुद्धि के कारण, जैसे उसकी माया हमारी समझ में नहीं आती वैसे ही इनकी माया भी इनके विराट् रूप के रौब के कारण, हम नहीं समझ सकते। सच मानिए, जिन्हें हिन्दी में एक पत्र लिखने का भी शऊर नहीं, बोलचाल की हिन्दी में जो ठीक ठीक बातें भी नहीं कर सकते वे, आज, चाहे जिस विषय की पुस्तक का थड़ाधड़ सम्पादन करने को तैयार हैं। आप कहेंगे कि विषय न सही, भाषा को ही वे लोग दुरुस्त कर देते होंगे, क्योंकि भाषा की त्रुटियों को दूर कर देना भी तो सम्पादकों का एक कर्त्तव्य है। पर महोदय, जिन सज्जनों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के 'हाथी आई' संस्कार तक अभी दूर नहीं हुए हैं (और न इस जन्म में दूर होने की आशा ही है) वे किस बिर्त पर किसी की भाषा को दुरुस्त करने का साहस करते हैं, यह समझ में नहीं आता। हँसी नहीं, हिन्दी-साहित्य जीवियों में प्रतिष्ठा और लक्ष्मी जैसी टके सेर मारी फिरती हैं वैसी दुनिया के पर्दे पर और कहीं न मिलेगी—लूट ले जिसका जी चाहे। लल्लूजीलाल, राजा लक्ष्मणसिंह, पण्डित प्रतापनारायण मिश्र आदि प्राचीन लेखकों की स्वाभाविकता-पूर्ण भाषा में कतर-ब्योंत की कारस्तानी दिखलाना हिन्दी-साहित्य के क्रमशः विकास के इतिहास का साधन नष्ट करके हिन्दी की जड़ पर कठिन कुठाराघात करना है। किसी को भी ऐसा करने का अधिकार नहीं, चाहे वह हिन्दी-कोविद-रत्न हो या हिन्दी-अजागलस्तन। पर खेद की बात है कि अब ऐसा भी ग़ज़ब देखने में आरहा है! आज लल्लूजीलाल, अथवा राजा साहब, अथवा मिश्रजी अथवा और दूसरे प्राचीन लेखकों की आत्मायें उन सम्पादकों अथवा संशोधक-महोदयों से रो रो कर कह रही होंगी कि दया करो, जो भाषा हमने लिखी है उसे वैसी ही रहने दो, हमारी स्वाभाविक भाषा वही है, उसे अपनी निरङ्कुशता का शिकार न बनाओ पर सम्पादक महोदय क्यों सुनने लगे—हम चौड़े, बाज़ार सकड़ा!

इधर तत्समानन्दियों ने भी बड़ा बखेड़ा मचा रक्खा है। ये लोग भाषा की ख़ास ख़ूबियों के ज़रा भी क़ायल नहीं। ये हिन्दी के प्रत्येक शब्द को वही पुराने कपड़े ज़बर्दस्ती पहनाना चाहते हैं। इनकी बदौलत हिन्दी एक प्रफुल्ल कुसुमोद्यान से बदल कर सङ्कुचित बीहड़ होती जा रही है। ज़रा ज़रा सी बात के लिए संस्कृत के व्याकरण की टाँग तोड़ने वाले व्याकरणियों ने भी इनका खूब साथ दिया है। इन तत्समानन्दियों के मारे हमारे 'बनारसीदास' जी बेतरह परेशान हैं। मारे फ़िक्र के उन्हें रात को नींद नहीं आती। 'बनारसीदास' से वे ज़बर्दस्ती 'वाराणसीदास' बना दिये जायँगे, इसकी उन्हें उतनी अधिक चिन्ता नहीं; उन्हें डर है कि हिन्दी में अपनी धाक जमाने के लिए कहीं कोई तत्समानन्दी उन्हें 'वाराणसीदास' से 'वाराणसीदस्यु' न कर डाले! इन तत्समानन्दियों से भाषा के माधुर्य की रक्षा भगवान् ही करे तो करे।

अब हमारी अन्तिम प्रार्थना यही है कि यह लेख द्वेष-बुद्धि से नहीं लिखा गया है। अतएव इस पर संजीदगी के साथ विचार करने की आवश्यकता है। आगे आप की मरज़ी—हमें जो कहना था कह चुके।

प्रकाशक—रा० वि० मिश्र, इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद
मुद्रक—पी० एल० यादव, इंडियन प्रेस प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे धार्मिक साहित्य

● ज्ञानेश्वरी

गीता इस संसार के कंटकाकीर्ण अँधेरे मार्ग का सबसे तेजस्वी प्रकाश-स्तंभ है। बड़े-बड़े विद्वानों की बुद्धि जितनी गहराई में उतर सकी अपनी-अपनी प्रतिभा के अनुसार सभी ने गीता की चमत्कारी टीकाएँ कीं। यद्यपि अनुवादों की अजस्र धारा आज भी रुकी नहीं, मगर संत ज्ञानेश्वर की विचित्र व्याख्या हृदय को जो आनन्द देती है वह बात दूसरी टीकाओं, व्याख्याओं में उपलब्ध नहीं। संत की पावन-वाणी मराठी से हिन्दी में अनुवाद ही ज्ञानेश्वरी के नाम से विख्यात है। बड़े-बड़े अक्षरों में मूल संस्कृत श्लोक और सामान्य अक्षरों में व्याख्या बड़ी ही हृदयग्राही है। मूल्य ८ रुपये।

● ● ●

● दुर्गापाठ

सब रूपों में लय हैं दुर्गा सारा जग दुर्गा में लीन।
विश्वरूपिणी नमस्कार हो, परम ईश्वरी मैं आधीन॥

जगदम्बा दुर्गा इस युग की जाग्रत देवी हैं। माँ का उपासक कभी दुखी नहीं रह सकता। दुर्गापाठ के नाम से ७०० संस्कृत मन्त्रों का यह पद्यबद्ध हिन्दी अनुवाद हिन्दी जाननेवालों, विशेषतयः स्त्री समाज में इतना लोकप्रिय हुआ कि पाँचवाँ संस्करण भी प्रायः समाप्त होने पर है। संस्कृत मन्त्र व हिन्दी पद्य दोनों साथ-साथ छापे गये हैं। मातृका स्तुति, सप्तसती पाठ विधि, देवी कवच, अर्गला स्तोत्र, कीलक स्तोत्र, तीनों चरित्र तथा तीनों रहस्य सभी कुछ इसमें है। माँ दुर्गा के अनन्य उपासक अनुवादक राय साहब राधामोहन लाल व संशोधक जस्टिस हरिश्चन्द्र बार० एट् ला दोनों रिटायर्ड जजों का सारा प्रयास स्तुत्य है। सजिल्द, सचित्र, सुन्दर, बड़े अक्षरों में छपी पुस्तक का प्रचारार्थ मूल्य ३ रुपये मात्र।

● ● ●

● श्रीमद्भागवत

श्रीमद्भागवत में भगवान् कृष्ण की चमत्कारी लीलाओं, प्राचीन राजवंशों, ऋषि-महर्षियों की गौरव गाथाओं और तात्कालिक भारत की सामाजिक दशा के साथ-साथ ज्ञान की पावन धारा बहाने का जो भगीरथ प्रयास वेदव्यासजी ने किया उसका गुणगान राजमहल से लेकर झोपड़ी तक समान रूप से होता है। हिन्दी पाठकों की सुलभता के लिए यह पुराण हिन्दी में २ खण्डों में छपकर प्रकाशित हुआ है। जिल्द बढ़िया, चित्रों की भरमार ग्रन्थ की विशेषता है। प्रत्येक खण्ड का मूल्य १० रुपये।

● ● ●

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Yearly Subscription : Rs. 9.00
Single Copy : Rs. 0.75
april 1973
SARASWATI—Reg. No. L. 24

हिन्दू-संस्कृति का अगाध सागर

यह हिन्दी के अमर कवि गोस्वामी तुलसीदास की सुप्रसिद्ध रचना है। इसमें गोस्वामीजी ने अपने आराध्य देव रामचन्द्रजी की कथा, सात काण्डों में, दोहा-चौपाई सोरठा और छन्दों में कही है।

इस ग्रन्थ का प्रचार हिन्दी-भाषी प्रान्तों में तो है ही, दूसरे प्रान्तों में भी है।

डाक्टर श्यामसुन्दरदास ने इस अनुपम ग्रन्थ पर जो टीका लिखी है उससे अर्थ समझने में बहुत सुविधा होती है। इस संस्करण में चेपक आदि नहीं हैं। आरम्भ में विस्तृत भूमिका है जिसमें गोस्वामीजी के जीवनचरित और उनकी समस्त रचनाओं पर विशद विवेचन है। चित्रों की अधिकता है। सुन्दर जिल्द है। मूल्य १५)।

गोस्वामी तुलसीदासकृत रामचरितमानस—टीकाकार—रामेश्वर भट्ट। यह संस्करण बहुत ही उपयोगी, मनोहर और सस्ता है। टीका बड़े काम की है। दुरंगे-तिरंगे चित्रों की अधिकता है। सजिल्द प्रति का मूल्य ८)।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्रा० लि०, प्रयाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती

१९७३
पुस्तकालय
कांगड़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे धार्मिक साहित्य

● ज्ञानेश्वरी

गीता इस संसार के कटकाकीर्ण अंधेरे मार्ग का सबसे तेजस्वी प्रकाश-स्तंभ है। बड़े-बड़े विद्वानों की बुद्धि जितनी गहराई में उतर सकी अपनी-अपनी प्रतिभा के अनुसार सभी ने गीता की चमत्कारी टीकाएँ कीं। यद्यपि अनुवादों की अजस्र धारा आज भी रुकी नहीं, मगर सत ज्ञानेश्वर की विचित्र व्याख्या हृदय को जो आनन्द देती है वह बात दूसरी टीकाओं, व्याख्याओं में उपलब्ध नहीं। संत की पावन-वाणी मराठी से हिन्दी में अनुवाद ही ज्ञानेश्वरी के नाम से विख्यात है। बड़े-बड़े अक्षरों में मूल संस्कृत श्लोक और सामान्य अक्षरों में व्याख्या बडी ही हृदयग्राही है। मूल्य ८ रुपये।

● ● ●

● दुर्गापाठ

सब रूपों में लय हैं दुर्गा सारा जग दुर्गा में लीन।
विश्वरूपिणी नमस्कार हो, परम ईश्वरी मैं आधीन॥

जगदम्बा दुर्गा इस युग की जाग्रत देवी हैं। माँ का उपासक कभी दुखी नहीं रह सकता। दुर्गापाठ के नाम से ७०० संस्कृत मन्त्रों का यह पद्यबद्ध हिन्दी अनुवाद हिन्दी जाननेवालों, विशेषतयः स्त्री समाज में इतना लोकप्रिय हुआ कि पाँचवाँ संस्करण भी प्रायः समाप्त होने पर है। संस्कृत मन्त्र व हिन्दी पद्य दोनों साथ-साथ छापे गये हैं। मातृका स्तुति, सप्तसती पाठ विधि, देवी कवच, अर्गला स्तोत्र, कीलक स्तोत्र, तीनों चरित्र तथा तीनों रहस्य सभी कुछ इसमें है। माँ दुर्गा के अनन्य उपासक अनुवादक राय साहब राधामोहन लाल व सशोधक जस्टिस हरिश्चन्द्र बार० एट् ला दोनों रिटायर्ड जजों का सारा प्रयास स्तुत्य है। सजिल्द, सचित्र, सुन्दर बड़े अक्षरों में छपी पुस्तक का प्रचारार्थ मूल्य ३ रुपये मात्र।

● ● ●

● श्रीमद्भागवत

श्रीमद्भागवत में भगवान् कृष्ण की चमत्कारी लीलाओं, प्राचीन राजवंशों, ऋषि-महर्षियों की गौरव गाथाओं और तात्कालिक भारत की सामाजिक दशा के साथ-साथ ज्ञान की पावन धारा बहाने का जो भगीरथ प्रयास वेदव्यासजी ने किया उसका गुणगान राजमहल से लेकर झोपड़ी तक समान रूप से होता है। हिन्दी पाठकों की सुलभता के लिए यह पुराण हिन्दी में २ खण्डों में छपकर प्रकाशित हुआ है। जिल्द बढ़िया, चित्रों की भरमार ग्रन्थ की विशेषता है। प्रत्येक खण्ड का मूल्य १० रुपये।

● ● ●

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गेहूँ खरीद की सरकारी योजना

सरस्वती के ग्राहकों को आवश्यक सूचना

.....जून.....सन् १९७३ की सरस्वती का अंक भेजने के बाद आपका वार्षिक चन्दा समाप्त हो जाता है। चन्दा समाप्त होने के बाद अभी तक वी० पी० द्वारा सरस्वती भेजकर हम पुनर्नवीकरण हेतु चन्दा आपसे प्राप्त कर लेते थे। इधर वी० पी० व्यय (पोस्टेज का मूल्य) अधिक बढ़ गया है। इसके अतिरिक्त वी० पी० पहुँचने पर ग्राहकों के अपने निवास से कहीं इधर-उधर चले जाने तथा पोस्टेज विभाग की असावधानी के कारण अधिकांश संख्या में वी० पी० 'लेने से इनकार' लिखकर वापस लौटा दी जाती है और हमें व्यर्थ मे आर्थिक हानि उठानी पड़ती है। अतः जिन कृपालु ग्राहकों का चन्दा समाप्त हो जायगा, केवल उन्हींके अंक पर यह सूचना-पत्र लगा रहेगा। इस सूचना-पत्र का अर्थ है कि कृपालु ग्राहक मनीआर्डर द्वारा पुनर्नवीकरण हेतु अपना चन्दा भेजें ताकि पूर्ववत् सरस्वती उनकी सेवा में जाती रहे। यदि किसी कारणवश, यद्यपि हमें ऐसी आशा नहीं है, कोई कृपालु ग्राहक सरस्वती नहीं मँगाना चाहते हैं तो वे कृपया एक पोस्टकार्ड द्वारा हमें सूचित करें। मनीआर्डर भेजते समय मनीआर्डर कूपन पर अपनी ग्राहक संख्या, पता साफ-साफ अक्षरों मे लिखना चाहिए। सरस्वती का वार्षिक शुल्क ७.५० रुपये है।

प्रबन्धक—
पत्रिका विभाग
इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

किसान को क्या मूल्य मिलेगा ?

औसत किस्म के लाल देशी गेहूँ का ७४ रुपये, सफेद मेक्सिकन और समान किस्मों के गेहूँ का ७६ रुपये तथा उत्तम फार्म गेहूँ का ८२ रुपये प्रति कुन्तल मूल्य मिलेगा।

इसके अतिरिक्त सरकार किसान को दो रुपये प्रति कुन्तल गेहूँ ढुलाई का भाड़ा और देगी। उनसे गाड़ी से गेहूँ उतराई, छनाई और मंडी शुल्क नहीं लिया जायगा। दी गई चुंगी टोल टैक्स या घाट उतराई की रसीद पेश करने पर उसका भी भुगतान सरकार करेगी।

किसान को पूरी रकम आसानी से भुगतान हो जाने वाले वियरर चेकों द्वारा दी जाएगी। उसकी रकम से किसी प्रकार की कटौती नहीं की जाएगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे धार्मिक साहित्य

लाल व सशोधक जास्टस हारश्चन्द्र बार० एट् ला दोना रिटायड जजा का सारा प्रयास स्तुत्य है। सजिल्द, सचित्र, सुन्दर बड़े अक्षरों में छपी पुस्तक का प्रचारार्थ मूल्य ३ रुपये मात्र।

● ● ●

● श्रीमद्भागवत

श्रीमद्भागवत में भगवान् कृष्ण की चमत्कारी लीलाओं, प्राचीन राजवंशों, ऋषि-महर्षियों की गौरव गाथाओं और तात्कालिक भारत की सामाजिक दशा के साथ-साथ ज्ञान की पावन धारा बहाने का जो भगीरथ प्रयास वेदव्यासजी ने किया उसका गुणगान राजमहल से लेकर झोपड़ी तक समान रूप से होता है। हिन्दी पाठकों की सुलभता के लिए यह पुराण हिन्दी में २ खण्डों में छपकर प्रकाशित हुआ है। जिल्द बढ़िया, चित्रों की भरमार ग्रन्थ की विशेषता है। प्रत्येक खण्ड का मूल्य १० रुपये।

● ● ●

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गेहूँ खरीद की सरकारी योजना

किसान
और
उपभोक्ता की अपनी योजना है
इसकी सफलता में दोनों का लाभ है

किसान गेहूँ कहाँ बेचें ?

राज्य सरकार सहकारी संघ और भारतीय खाद्य निगम द्वारा खोले गये क्रय केन्द्र ही केवल गेहूँ की थोक खरीद करेंगे। खरीदारी साल भर होगी। किसान थोक में गेहूँ इन्हीं क्रय केन्द्रों पर बेचें।

ये एजेंसियाँ किसानों से हर किस्म का गेहूँ प्रतिदिन खरीदेंगी। किसान चाहे तो बिनावट का अन्न अपने साथ वापस ले जा सकता है लेकिन यदि वह उसको बेचना चाहेगा तो सरकार उसकी खरीद का भी प्रबंध मुर्गियों और पशुओं के उपयोग के लिये कर लेगी।

किसान को अपने गाँव से मंडियों तक गेहूँ बेचने के लिए लाने पर कोई रोक-टोक नहीं है। लेकिन गेहूँ प्रदेश के बाहर कोई भी नहीं ले जा सकता है।

किसान को क्या मूल्य मिलेगा ?

औसत किस्म के लाल देशी गेहूँ का ७४ रुपये, सफेद मेक्सिकन और समान किस्मों के गेहूँ का ७६ रुपये तथा उत्तम फार्म गेहूँ का ८२ रुपये प्रति कुन्तल मूल्य मिलेगा।

इसके अतिरिक्त सरकार किसान को दो रुपये प्रति कुन्तल गेहूँ ढुलाई का भाड़ा और देगी। उनसे गाड़ी से गेहूँ उतराई, छनाई और मंडी शुल्क नहीं लिया जायगा। दी गई चुंगी टोल टैक्स या घाट उतराई की रसीद पेश करने पर उसका भी भुगतान सरकार करेगी।

किसान को पूरी रकम आसानी से भुगतान हो जाने वाले वियरर चेकों द्वारा दी जाएगी। उसकी रकम से किसी प्रकार की कटौती नहीं की जाएगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२)

उपभोक्ता गेहूँ कहाँ से प्राप्त करें ?

राशन की दूकान से निर्धारित मात्रा में।

खुले बाजार में लाइसेंस प्राप्त फुटकर विक्रेता से ४० किलो तक एक समय में।

रजिस्टर्ड परचूनी से २० किलो तक एक समय में।

वह स्वयं अपने उपभोग के लिए किसान से सीधा एक कुन्तल गेहूँ खरीद सकता है।

वह अपने गाँव से अपने खेत की उपज का एक कुन्तल गेहूँ एक समय में अपने शहर के निवासस्थान पर भी ला सकता है।

कौन कितना गेहूँ रख सकता है और कितना बेच सकता है ?

किसान जितनी भी मात्रा में चाहे गेहूँ बेचने के लिए क्रय केन्द्र पर ला सकता है। लेकिन वह १० कुंतल तक गेहूँ लाइसेंस प्राप्त फुटकर विक्रेता को और दो कुंतल तक रजिस्टर्ड परचूनी को और एक कुंतल तक उपभोक्ता को बेच सकता है।

लाइसेंस प्राप्त फुटकर विक्रेता १० कुंतल तक एक वक्त में खरीद सकता है और ५० कुंतल तक स्टाक कर सकता है।

रजिस्टर्ड परचूनी दो कुंतल तक एक वक्त में खरीद सकता है और ५ कुंतल तक स्टाक कर सकता है।

योजना से क्या लाभ होगा ?

किसान को वर्ष भर गेहूँ का उचित मूल्य मिलेगा।

उपभोक्ता को वर्ष भर गेहूँ उचित कीमत पर मिलेगा।

शिक्षित बेरोजगारों और मजदूरों को अधिक रोजगार मिलेगा।

मूल्यों में स्थिरता आने से समाज के समस्त वर्ग लाभान्वित होंगे।

सूचना विभाग उत्तर प्रदेश, लखनऊ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिन शहरों में स्टाकिस्ट नहीं हैं वहाँ के हेतु स्टाकिस्ट चाहिए।

शुद्ध बादाम रोगन पर बना

अलकपरी

केशों में प्रतिमास ३-४ इंच वृद्धि। ६ महीने में एड़ी-चुम्बी केश!

'अलकपरी' का कोर्स

पहले सप्ताह में रूसी-खुश्की दूर हो जाती है। दूसरे सप्ताह में केशों का झड़ना और उनके सिरों का फटना रुकता है।

तीसरे सप्ताह में नये केश उगते दिखाई देते हैं। चौथे सप्ताह के अन्त तक केश ३-४ इंच बढ़ जाते हैं। फिर प्रतिमास इसी औसत से बढ़ते रहते हैं।

६ महीने में केश एड़ी-चुम्बी बन जाते हैं।

मूल्य एक शीशी का ३·०० है जो एक महीने को काफी होती है। डाक-खर्च व पैकिंग पृथक्। ४ से अधिक शीशियाँ डाक से नहीं भेजी जायँगी। अधिक के लिए मूल्य पेशगी भेजिए।

त्याग की रायल्टी

लेखक—कृष्णकिशोर श्रीवास्तव

१. खेत की मेड़, २. मरे, अधमरे और जीवित, ३. कीटाणु, ४. त्याग की रायल्टी, ५. लाठी चार्ज

त्याग की रॉयल्टी में उपरोक्त **५ एकांकी** संग्रहीत हैं। इन एकांकियों के माध्यम से समाज की प्रमुख ज्वलन्त समस्याओं की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित किया गया है। ये एकांकी सर्वथा अभिनेय हैं। इन्हें मंच की कसौटी पर कसिये और जाँचिये। किसान, मजदूर, व्यापारी वर्ग, महन्तवर्ग और आये दिन होनेवाली पुलीस की धींगा-धींगी पर अलग-अलग एकांकियों द्वारा मार्मिक चोट की गई है। यों तो इस स्वच्छन्द युग में ये एकांकी घर-घर पढ़े जाने योग्य हैं परन्तु देश के तरुण, देश के विद्यार्थी समय-समय पर इन एकांकियों का रंगमंच पर अभिनय कर विघटित विचारों को नये मोड़ दे सकते हैं। देश में नव स्फूर्ति, नव जागरण पैदा कर सकते हैं।

पृष्ठ संख्या १०४ मूल्य ३·००

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ ओम् दुर्गा दुर्गतिनाशिनी ॥ ॥ ओम् दुर्गा दुर्गतिनाशिनी ॥

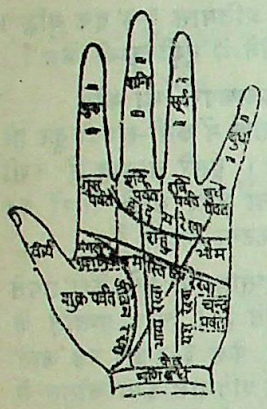

जीवन की विभिन्न जटिल समस्याओं के समाधान के लिए मिलिये या पत्र-व्यवहार करिये

ज्योतिषाचार्य—

प्रोफेसर प्रद्युम्ननारायण सिंह

वैज्ञानिक ज्योतिषी, हस्तरेखा-विशारद,

तांत्रिक और मानस शास्त्रज्ञ

२८, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद (फोन नं० २८५८)

देखिये :—श्री बी० मलिक, बैरिस्टर एट्-लॉ, (भूतपूर्व) चीफ जस्टिस हाईकोर्ट, इलाहाबाद क्या कहते हैं :—

मेरे पूर्ववर्ती चीफ जस्टिस श्री के० वर्मा के सम्बन्ध में इलाहाबाद के ज्योतिषी तथा हस्तरेखा-विशारद श्री पी० एन० सिंह ने अनेक भविष्यवाणियाँ की थीं और वे सभी भविष्यवाणियाँ सत्य सिद्ध हुईं। भू० पू० चीफ जस्टिस श्री के० वर्मा ने ही मुझे श्री पी० एन० सिंह का परिचय कराया है। मुझे यह स्वीकार करना ही पड़ता है कि श्री पी० एन० सिंह मुझे ऐसे सज्जन प्रतीत हुए जिन्होंने अपने विषयों का गहरा अध्ययन किया है और अपने शास्त्र का उन्हें पूर्ण ज्ञान है।

अभी तक मेरे सम्बन्ध में श्री पी० एन० सिंह ने जो भी भविष्यवाणियाँ की हैं, वे सत्य सिद्ध हुई हैं। मैं उनकी सफलता की कामना करता हूँ।

कामायनी-रहस्य

लेखक—श्री विजयबहादुरसिंह राठौर

विद्वानों की दृष्टि में कामायनी आधुनिक हिन्दी काव्य का गौरव ग्रन्थ है। विभिन्न विद्वानों ने कामायनी के अनेक भाष्य किये हैं। यों तो सभी की व्याख्या शैली महत्त्वपूर्ण है परन्तु कामायनी का सर्वोत्तम भाष्य 'कामायनी रहस्य' में प्रगट कर लेखक की लेखनी अमर हो गयी है। सभी छः सर्गों के आख्यान, चारित्रिक विकास आदि का परिचय देते हुए विद्वान् लेखक ने शास्त्रीय और मनोवैज्ञानिक पद्धति की आधारशिला पर प्रत्येक पद के काव्य सौन्दर्य, छन्द, रस, अलंकार, शब्दशक्ति पर पूरा-पूरा प्रकाश डाला है।

दार्शनिक और पौराणिक संदर्भों का उल्लेख बड़ा ही हृदयग्राही हुआ है। विवादास्पद पदों की व्याख्या के कठिन कर्तव्य पूरी शक्ति और मनोबल के साथ निभाये गये हैं। यह एक ऐसी विशेषता है जो **'कामायनी रहस्य'** के अतिरिक्त कामायनी के अन्य भाष्यों में दी ही नहीं गयी। तपोनिष्ठ विद्वान् ने आत्म-विश्वास के साथ स्वमत स्थापन कर गंभीर स्थलों को सुगम और सुरुचिपूर्ण बना दिया है। विश्वास रहे कामायनी के रहस्योद्घाटन में **कामायनी-रहस्य** का योगदान सर्वोपरि है। प्रत्येक कामायनी अध्येता इस ग्रन्थ की भूरि-भूरि प्रशंसा करेगा और पूरा लाभ उठायेगा ऐसा हमारा दृढ़ विश्वास है।

पृष्ठ संख्या ५२७ मूल्य ८·००

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रत्येक का मूल्य १·५०

मोहन सिरीज़ का प्रत्येक उपन्यास स्वतः पूर्ण है। किसी भी उपन्यास को पढ़ते-पढ़ते आप आनन्द, आश्चर्य और रोमांच से अभिभूत हो जायेंगे।

१—मोहन।
२—मोहन जेल में।
३—रमा और मोहन।
४—रमा की शादी।
५—फिर से मोहन।
६—विरही मोहन।
७—मोहन और पंचमवाहिनी।
८—फांसी के तख्ते पर मोहन।
९—नागरिक मोहन।
१०—मोहन बर्मा की सीमा पर।
११—नारी-रक्षक मोहन।
१२—मोहन का प्रथम अभियान।
१३—नेता मोहन।
१४—मोहन का जर्मनी अभियान।

मोहन को ही नायक बनाकर इस सीरीज़ के सब मनोरंजक रोमांचकारी उपन्यास लिखे गये हैं। ऐसे अद्भुत चरित्र-चित्रणों तथा स्तब्धकारी घटनावलियों से परिपूर्ण अन्य उपन्यासमालायें कहीं नहीं मिलेंगी।

१५—प्रिय मोहन।
१६—गेस्टापो के मुकाबले में मोहन।
१७—बर्लिन में मोहन।
१८—मोहन का तूर्यनाद।
१९—मोहन का अनुराग।
२०—मित्र मोहन।
२१—मोहन और स्वप्न।
२२—स्वप्न का महान्त-दमन।
२३—अफसर मोहन।
२४—डाकू मोहन।
२५—स्वप्न का सीमान्त संघर्ष।
२६—मोहन का प्रतिदान।
२७—नये रूप में मोहन।
२८—मोहन का नया अभियान।
२९—त्राता मोहन।
३०—मोहन का प्रतिशोध।
३१—जर्मन षड्यंत्र में मोहन।
३२—मोहन और अणुबम।
३३—मोहन के तीन शत्रु।
३४—तीनों के साथ मोहन का मुकाबला।
३५—सोवियत रूस में मोहन।
३६—मोहन की प्रतिज्ञा रक्षा।
३७—सुन्दर वन में मोहन।
३८—युवक मोहन।
३९—मोहन और वनविहारी।
४०—समुद्र-तल में मोहन।
४१—बन्दी मोहन।
४२—नारी त्राता स्वप्न।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किशोर सीरीज़ उपन्यासमाला

किशोरों या उदीयमान भावी युवकों को प्रेरणा, उत्साह, साहस और मनोरंजन की विशद सामग्री उपस्थित करनेवाले उपन्यासों का अनुवाद अंग्रेजी, फ्रांसीसी आदि भाषाओं से हिन्दी में कराकर हमने हिन्दी किशोर पाठकों के लिए सुलभ किया है।

समुद्र-गर्भ की यात्रा—(मूल लेखक जूले वर्न) अनु० श्रीमती जयन्ती देवी। मूल्य २·२५

वर-भक्षकों के देश में—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० कु० शैवालिनी मिश्र। मूल्य २·२५

उड़ते अतिथि—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्रीमती विनोदिनी पाण्डेय। मूल्य २·२५

रहस्यमय द्वीप—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्रीमती जयन्ती देवी। मूल्य १·५०

द्वीप का रहस्य—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्री सन्तकुमार अवस्थी। मूल्य २·५०

भूगर्भ की यात्रा—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्री प्रभात किशोर मिश्र। मूल्य २·२५

दृढ़प्रतिज्ञ—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्री रामअवधेश त्रिपाठी। मूल्य २·५०

गुब्बारे में अफ्रीका यात्रा—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० कु० शैवालिनी मिश्र। मूल्य २·५०

चन्द्रलोक की यात्रा--(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्री सूर्यकान्त शाह। मूल्य २·२५

चन्द्रलोक की परिक्रमा—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्री केशव एस्० केलकर। मूल्य ३·२५

अस्सी दिन में पृथ्वी की परिक्रमा—(मू० ले० जूले वर्न) अनु० श्री रामस्वरूप गुप्त। मूल्य ३·२५

गुलीवर की यात्राएँ—(मू० ले० जोनाथन स्विफ्ट) अनु० श्री शिवाकान्त अग्निहोत्री दो भागों में। मूल्य ३·०० प्रत्येक

मास्टर मैन रेडी—(मू० ले० कैप्टेन मैरियट) अनु० कु० कौशल श्रीवास्तव। मूल्य ३·२५

नीली झील—(मू० ले० स्टैकपोल) अनु० डा० कुमुदिनी तिवारी। मूल्य २·५०

स्विस परिवार राबिंसन—(मू० ले० रुडाल्फ वाएस) अनु० श्री देवेन्द्रकुमार शुक्ल। मूल्य ३·००

आकाश में युद्ध—(मू० ले० एच० जी० वेल्स) अनु० श्री सन्तप्रकाश पाण्डे। मूल्य २·५०

गुप्तधन—(मूल ले० राइडर हैगार्ड) अनु० श्री जे० एन० वत्स। मूल्य ३·२५

प्रत्येक विद्यालय के पुस्तकालय और अपनी संतान को उत्तम शिक्षा प्रदान करने का संकल्प रखनेवाले माता-पिताओं के निजी पुस्तक संग्रहों के लिए ये पुस्तकें बेजोड़ ही हैं।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश

डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, काशी नागरीप्रचारिणी सभा--'हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश को मैं जितना देख सका हूँ, उससे मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूं कि हिन्दी के दो-तीन उत्कृष्ट कोशों में से एक यह भी निस्सन्देह है।.....'

डॉ० रामकुमार वर्मा, भू०पू० अध्यक्ष हिन्दी विभाग प्रयाग विश्वविद्यालय--'हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश का उपयोग मैंने सफल रूप से किया है। मैं इसके देश-व्यापी प्रचार की कामना करता हूँ।.....'

हिन्दी के प्रतिष्ठित विद्वानों की सहायता से सम्पादित और श्री विश्वेश्वरनारायण श्रीवास्तव एम० ए०, एल्-एल० बी०, साहित्यरत्न तथा पं० देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त' द्वारा संकलित यह हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश हमारा नवीनतम और सर्वोपयोगी प्रकाशन है।

इस कोश का कागज, मुद्रण, आवरण, जिल्द सभी स्थायी और आकर्षक हैं। इसकी शब्द संख्या लगभग पचास हजार, पृष्ठ-संख्या लगभग १६०० और इसका मूल्य १६ रुपये है।

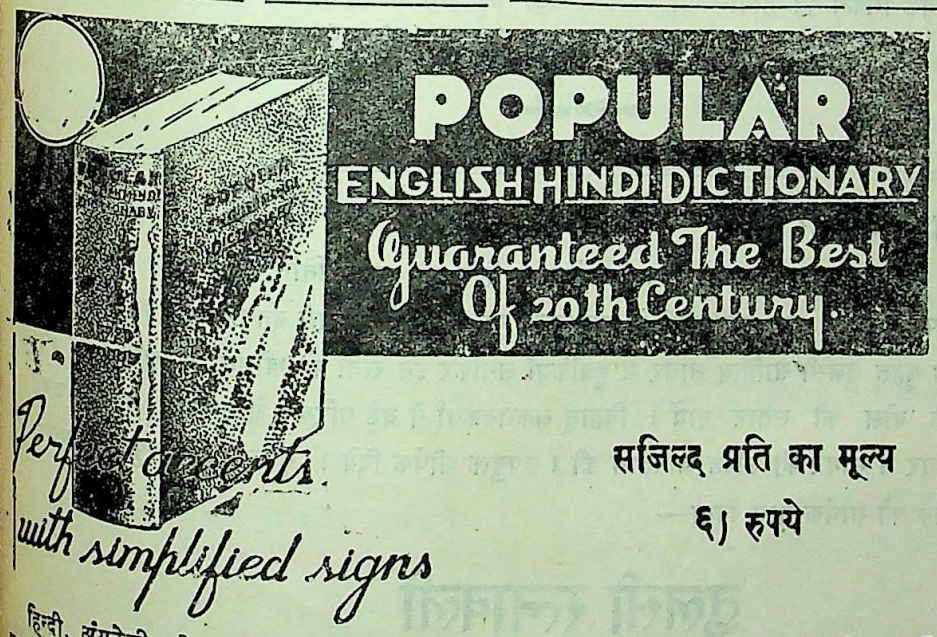

पापुलर
इंग्लिश
हिन्दी
डिक्शनरी

सजिल्द प्रति का मूल्य
६) रुपये

हिन्दी, अंगरेजी की अगणित डिक्शनरियों के आधार पर निर्मित इस डिक्शनरी की प्रामाणिकता और लोकप्रियता का यही सबसे बड़ा प्रमाण है कि इसके अनेक संस्करण हाथोंहाथ बिक चुके हैं। इस डिक्शनरी में अँगरेजी शब्दों के शब्दार्थ अँगरेजी और हिन्दी दोनों भाषाओं में दिये गये हैं। इस कारण यह डिक्शनरी न केवल अँगरेजी से अँगरेजी में शब्दार्थ जाननेवालों के लिए, प्रत्युत अँगरेजी से हिन्दी में शब्दार्थ जाननेवालों के लिए भी बड़ी उपयोगी है। छात्रों के लिए इस डिक्शनरी की उपयोगिता अपरिहार्य है। प्रायः सभी उपयोगी शब्द और मुहाविरे इसमें संकलित किये गये हैं। पृष्ठ पौने नौ सौ।

प्रकाशक—इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
१—सम्पादकीय	४०९
२—रामचरितमानस के उपेक्षित अंग—श्री रामप्रसाद पांडेय	४१९
३—'मानस' में खल-प्रकृति-निरूपण—आचार्य गंगाधर मिश्र	४२२
४—जन्म-मरण की जटिल पहेली—श्री सन्तराम बी० ए०	४२५
५—देश का आर्थिक ढाँचा चरमरा रहा है—श्री शंकरसहाय सक्सेना	४२७
६—दो गीत—श्री प्रेमजी प्रेम....	४३१
७—महाराजा कवि छत्रसाल का कवि-समुदाय—श्री रमेश ठाकुर	४३२
८—नारों का देश—श्री यशवन्त कोठारी	४३५
९—अमरीका को अखंड बनाये रखने के लिए गृह-युद्ध और उनके नायक लिंकन की हत्या—श्री राजेन्द्रप्रसाद जैन	४३६
१०—निचुड़ गया मन—श्रीमती विजयलक्ष्मी 'विभा'	४४१
११—बालि में संस्कृत—अनु०—श्री बाबूराम वर्मा	४४२
१२—मधुमक्खी (२)—श्री रामेश बेदी	४४७
१३—पंडित नेहरू की भूटान-यात्रा (२)—श्री फेनी मुकर्जी	४५३
१४—कुर्सी-वंदना—श्रीमती शकुंतला सिरोठिया	४५९
१५—नाम बदलू—श्री दुर्गाशंकर त्रिवेदी	४६०
१६—मेरा क्या अपराध था?—श्रीमती शारदा मिश्र	४६२
१७—दो लघु गीत—डा० रामगोपाल सोनी	४७१
१८—नवीन प्रकाशन	४७२
१९—मनोरंजक संस्मरण	४७६
२०—१९१८ की सरस्वती—डाक्टर जानसन—श्री सन्तराम बी० ए०	४७९

© सरस्वती के इस अंक में प्रकाशित सभी लेख सर्वाधिकार सुरक्षित हैं।

इतना तो आप जानते ही हैं कि—

तुलसी साहित्य अमृत का सागर है। भारतीय साहित्य की अमर निधि है। इस सुधासिन्धु में अमूल्य रत्न भरे पड़े हैं। पर आज आपाधापी के इस व्यस्त युग में लोगों के पास इतना समय कहाँ कि नरदेह को सार्थक बनानेवाले वृहत् तुलसी साहित्य सागर में डुबकियाँ लगाकर इन रत्नों को खोजने के क्षण भी बचा पायें। चिन्ताओं के बोझ को उतार पायें। विद्वान् संकलनकर्ता ने बड़े परिश्रम से इन रत्नों को एक जगह इकट्ठा किया और गागर में सागर की उक्ति चरितार्थ की। उपयुक्त शीर्षक दिये। सूक्तियाँ और स्फुट पद अलग-अलग दिये और पुस्तक को सार्थक नाम दिया—

तुलसी रत्नावली

रामायण, विनयपत्रिका, कवितावली, गीतावली, वैराग्य सन्दीपनी, दोहावली अथवा गोस्वामीजी के अन्य छोटे-बड़े सभी ग्रन्थों में जहाँ जो रोचक, उपदेशपूर्ण पद मिले उन सबका चयन तुलसी रत्नावली में है, उपदेशक, विद्वान् या साधारण जन सबके लिए यह संकलन उपादेय है।

संकलनकर्ता—**श्री केदारनाथ गुप्त, एम० ए०** **मूल्य २·०० रुपये**

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

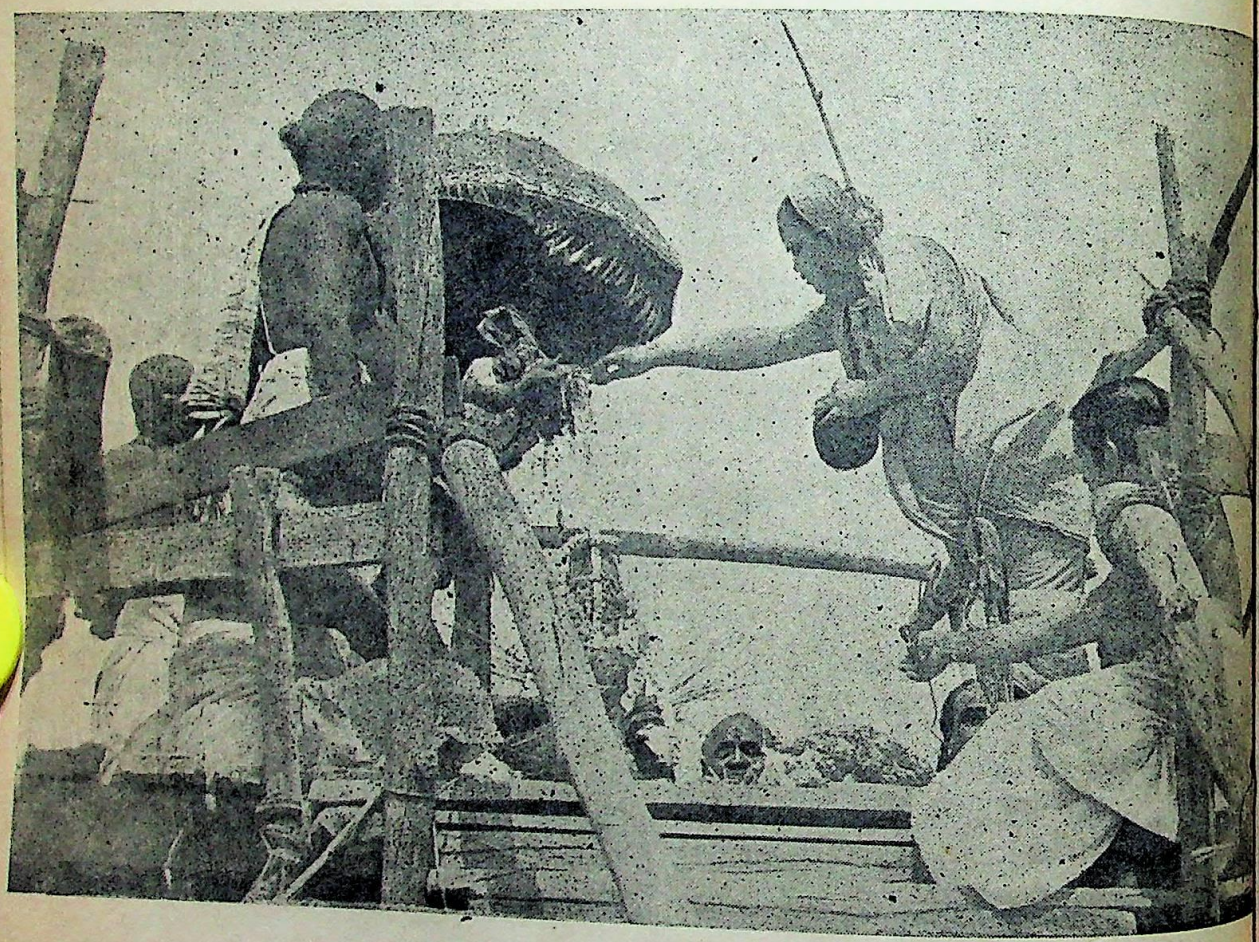

दिल्ली में सुब्रह्मण्य स्वामी का मंदिर

दिल्ली में गतमास कांची कामकोटि पीठ के श्री शंकराचार्य ने भगवान् कार्तिकेय के मंदिर का महा कुम्भाभिषेक किया। यह मंदिर दक्षिण के एक मंदिर की प्रतिकृति है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

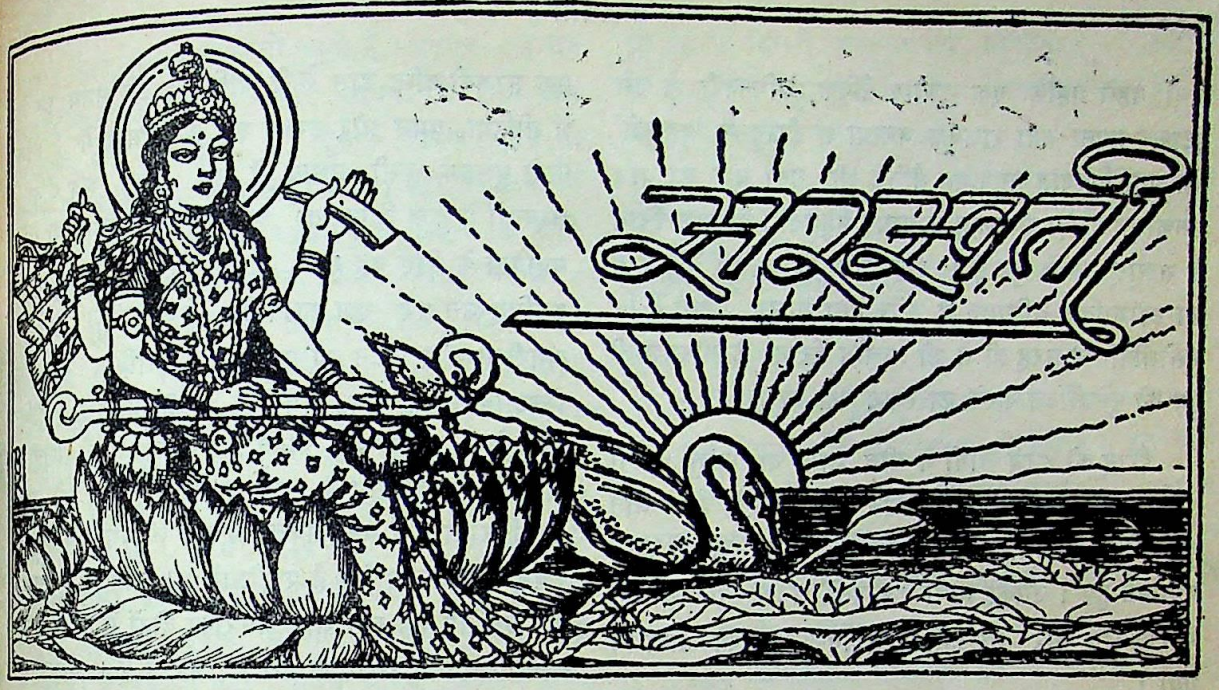

सम्पादक

श्रीनारायण चतुर्वेदी

सहायक सम्पादिका—शीला शर्मा

वर्ष ७४
पूर्ण संख्या ८८२

इलाहाबाद : जून १९७३ : आषाढ २०३० वि०

खण्ड १
संख्या ६

सम्पादकीय

पश्चिमी एशिया में सैनिक-शक्ति संचय और उससे खतरा—किसी समय रोम (इटली) का साम्राज्य योरोप, पश्चिमी एशिया और उत्तरी अफ्रीका में दूर-दूर तक फैला हुआ था। वह समय रोम का स्वर्णिम युग था। रोम के सम्राट् सीज़र (क़ैसर) कहलाते थे और उनकी बड़ी धाक थी। कालान्तर में वह साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया और इटली पराधीन हो गया। बाद में गेरीबाल्डी और मेजिनी के प्रयत्नों से इटली योरोप का एक सामान्य राज्य बन गया। किन्तु वहाँ कुछ दिनों बाद मुसोलीनी का उदय हुआ जो इटली को फिर रोमन साम्राज्य के समान शक्तिशाली और गौरवपूर्ण बनाना चाहता था। उसने अपनी सैनिक शक्ति बेतरह बढ़ाई। ईथोपिया, लीबिया आदि को विजय किया और भूमध्य सागर पर, जो रोमन साम्राज्य के समय 'रोमन झील' कहलाता था, अपना एकाधिकार करना चाहा। उसका जो रक्तरंजित परिणाम हुआ वह सर्वविदित है।

ईरान का साम्राज्य रोमन साम्राज्य से भी पुराना था और एक समय भूमध्य सागर से सिन्ध तक फैला हुआ था। उसकी भी बड़ी शानदार परम्परा थी और सैकड़ों वर्ष वह महान् शक्ति रहा। बाद में सिकन्दर और फिर अरबों ने उसे ध्वस्त कर दिया। वह एशिया के पिछड़े हुए राज्यों में समझा जाता था। रूस और अंग्रेज़ दोनों ही उसे अपने-अपने प्रभाव में लेना चाहते थे, किन्तु अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति ने ऐसा मोड़ लिया कि उस पर कोई शक्ति अधिकार न कर सकी। इस बीच वहाँ मिट्टी के तेल के अनेक अपार भंडार मिले और उनसे उसकी आय बेतहाशा बढ़ गयी। वहाँका पुराना राजवंश पतनोन्मुख और अप्रगतिशील था। कुछ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिनों पहले वहाँके एक सुयोग्य सैनिक अधिकारी ने उसे हटाकर अपना नया राजवंश चलाया। ईरान में 'पहलवी' वंश बड़ा विख्यात था। वह सैनिक भी उसी वंश का था। उसका नाम पड़ा शाहंशाह रज़ाशाह पहलवी। वर्तमान ईरान के सम्राट् उसीके पुत्र हैं। इन्हें ईरान के अतीत के गौरव का स्वाभाविक अभिमान है, और ऐसा मालूम पड़ता है कि मुसोलीनी की तरह ही ये भी प्राचीन ईरान के गौरवशाली युग को पुनर्जीवित करने का स्वप्न देख रहे हैं।

ईरान को अरब लोगों ने जीत लिया था, किन्तु ईरानी सभ्यता और संस्कृति इतनी उन्नत थी कि अरबों द्वारा जीते हुए और मुसलमान बनाये गये बहुत से देश भी उससे प्रभावित हुए। उसकी भाषा 'फारसी' अनेक मुस्लिम देशों में राजकाज और सांस्कृतिक आदान-प्रदान की भाषा हो गयी।

अरबों ने उत्तरी अफ्रीका और पश्चिमी एशिया के अनेक देश जीते और वे उनमें बस गये। आज मोरक्को, अलजीरिया, लीबिया, मिस्र, लेबनान, जार्डन, सऊदी अरब, यमन, कुवैत, बहरीन, इराक़ में वे (अरब लोग) ही बसे हैं और उनकी भाषा अरबी है। किन्तु तुर्की में तुर्क और ईरान तथा अफगानिस्तान में आर्यवंश के मुसलमान हैं। सारे अरब देश में सुन्नी मुसलमान हैं, किन्तु ईरान शिया है। ईरान की पश्चिमी सीमा इराक़ और तुर्की से मिली हुई है। इराक़ के अरबों और ईरान के लोगों में आपस में वैमनस्य है। ईरान को आर्य होने का गर्व है और इसीलिए ईरान के शाहंशाह का एक विरुद 'आर्यमिहिर' है। संस्कृत और फारसी आर्य भाषाएँ हैं। दोनों मौसेरी बहिनें हैं। संस्कृत के 'अश्व' और फारसी के 'अस्प', संस्कृत के 'सप्त' और फारसी के 'हफ्त' में बड़ा साम्य है। 'मिहिर' के अर्थ संस्कृत और फारसी में 'सूर्य' हैं। ईरान का यह नया सूर्य उदय हुआ है और यह अपना तेज, प्राचीन ईरान की तरह, बढ़ाना चाहता है। ईरान के शाहंशाह ने हाल में एक वक्तव्य में कहा है कि मैं ईरान को स्वेज के पूर्व और जापान के इस ओर सबसे बड़ी सैनिक शक्ति बनाने को कृत संकल्प हूँ। यह कोरी डींग नहीं है। इसे कार्यान्वित करने के लिए उसने ठोस कदम उठाये हैं।

ईरान की सैनिक योजनाओं का वर्णन करने के पूर्व पश्चिम-दक्षिण एशिया के वर्तमान राजनीतिक नक्शे पर एक सरसरी दृष्टि डाल लेनी चाहिए। इस समय इन देशों में सीरिया, यमन और इराक़ रूस के प्रभाव में हैं। मिस्र पहले एकदम रूसी प्रभाव में था, किन्तु अब दोनों के सम्बन्धों में कुछ शिथिलता आ गयी है। फिर भी सैनिक सहायता के लिए वह मुख्य रूप से रूस पर निर्भर है और इसलिए उस पर रूस का परोक्ष प्रभाव है। जार्डन पर अमरीका और ब्रिटेन का प्रभाव है। लीबिया घोर कम्युनिस्ट विरोधी है। वह अमरीका के भी विरुद्ध है। लीबिया और मिस्र एकीकरण चाहते हैं, किन्तु मिस्र राजनीतिक और सैनिक विवशता के कारण अपनी नीति को उतना रूस-विरोधी नहीं बना सकता जितना लीबिया चाहता है। लेबनान भी अरब देश है पर उसमें ४५ प्रतिशत ईसाई भी हैं। इसलिए वह रूस और अमरीका दोनों से अपने सम्बन्ध सामान्य बनाये रखने का प्रयत्न करता है। यमन और सऊदी अरब तथा इराक़ और ईरान में आपस में वैमनस्य है। यमन और इराक़ को रूसी सैनिक सहायता मिलती है, इसलिए सऊदी अरब और ईरान सैनिक सहायता के लिए अधिकाधिक अमरीका पर निर्भर होते जा रहे हैं। इस प्रकार अरब देशों में आपस में फूट है। कुवैत का इराक़ से युद्ध हो चुका है और अब भी दोनों में तनाव है। यमन और सऊदी अरब में झगड़ा है। सीरिया से जार्डन और लेबनान की नहीं पटती। ये सब अरब देश हैं। उधर, ईरान ने तुर्की और पाकिस्तान से मित्रता कर ली है। इस प्रकार 'मध्य-पूर्व' के देशों में एका नहीं है। अफगानिस्तान की नीति सब बड़े राष्ट्रों से अच्छे सम्बन्ध बनाये रखने की है। वह एक ओर चीन से, तो दूसरी ओर उसके विरोधी रूस से भी सहायता लेता है। अमरीका और ब्रिटेन से भी उसके सम्बन्ध अच्छे हैं। इधर तुर्की, ईरान और पाकिस्तान में प्रगाढ़ मैत्री हो गयी है। अतएव बास्फोरस से भारत की सीमा तक तीन राष्ट्रों का एक गुट बन गया है। पाकिस्तान के कारण इस गुट का रुख भारत की ओर मैत्री का नहीं है।

मध्यपूर्व का क्षेत्र इस समय अंतर्राष्ट्रीय दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है। इसके दो कारण हैं: एक तो उसकी भौगोलिक स्थिति। स्वेज नहर इसी क्षेत्र में है और एक अरब राष्ट्र की सम्पत्ति है। योरोप से एशिया का यही समुद्री मार्ग है। वायुयानों को भी योरोप से एशियायी देशों में जाने के लिए इसी क्षेत्र पर से होकर और उन देशों की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुमति लेकर ही उड़ानें करनी पड़ती हैं। अतएव यह क्षेत्र अंतर्राष्ट्रीय यातायात और संचार साधनों के लिए परम आवश्यक और महत्त्वपूर्ण है। दूसरा कारण इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण है। आज मिट्टी के तेल और उससे बनाये हुए डीज़ल और पेट्रोल की आवश्यकता संसार के सभी औद्योगिक देशों को है। जापान, ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी—यहाँ तक कि अमरीका भी मिट्टी के तेल, पैट्रोल और डीज़ल के लिए बहुत कुछ लीबिया, सऊदी अरब, इराक़, कुवैत, बहरीन और ईरान के तेल के भंडारों पर निर्भर है क्योंकि इन देशों में संसार के सबसे बड़े तेल भंडार हैं। संसार में १९७०-७१ में २४,६४,७२०,००० टन तेल का उत्पादन हुआ था। इसमें ८१,८२,२०,००० टन 'मध्यपूर्व' के देशों (तुर्की, इराक़, ईरान, सऊदी अरब, कुवैत, बहरीन, क़तार, अबूधाबी, दुबाई, ओमान, सीरिया, मिस्र और इसराइल) में निकाला गया। सबसे अधिक उत्पादन ईरान (२,२२,०००,००० टन) इराक़ (२,२७,०००,००० टन) और सऊदी अरब (१,४५,०००,००० टन) में था। कम्यूनिस्ट देशों और पश्चिम के देशों में जो तेल उत्पन्न होता है वह प्रायः वहीं काम में आ जाता है क्योंकि वे औद्योगिक देश हैं। 'मध्यपूर्व' के देशों में औद्योगिक प्रगति नहीं हुई और वे अपने तेल को बेचते हैं। ईरान के राजस्व को १९७०-७१ में तेल से १५,७६२,००,०० लाख रियाल (ईरानी मुद्रा) प्राप्त हुई थी। अन्य स्रोतों से राज्य की आय केवल ४,८२,५५० लाख रियाल थी। १९६९-७० में इराक़ का सारा राजस्व २,५०,५९१,००० इराक़ी दीनार था। इसमें लगभग आधा धन तेल की रायल्टी और बिक्री से प्राप्त हुआ। सऊदी अरब का १९७०-७१ का बजट ६३,८०० लाख सऊदी अरब रियाल का था। इसमें ८० प्रतिशत आय तेल से थी। कुवैत की तेल से आय १९७१-७२ में ३३,२९० लाख कुवैती दीनार थी। ईरान की तेल से आय का एक अंश ही राजस्व को दिया जाता है। उसका बहुत बड़ा अंश विकास योजना और सेना पर व्यय होता है, जो राजस्व से अलग है।

(ईरानी रियाल ७५·७५ = १ अमरीकी डालर; सऊदी अरब रियाल ४·५ = १ अमरीकी डालर; इराक़ी दीनार १ = १·७ ब्रिटिश पाउंड; कुवैती दीनार १ = १·१७ ब्रिटिश पाउंड)।

इन आँकड़ों से मालूम हो सकता है कि इन देशों को तेल से कितनी अनाप-शनाप आमदनी है। जनसंख्या की दृष्टि से ये देश बहुत छोटे हैं। इनकी जनसंख्या अंतिम गणना के अनुसार इस प्रकार थी :

	(क्षेत्रफल वर्ग कि० मी०)
ईरान—२,५७,८१,०९०	१६,२१,८६०
इराक़—८०,९७,२३०	४,३८,४४६
सऊदी अरब—अनुमान से ५० और ६० लाख के बीच	२४,००,०००
कुवैत—७,३३,०००	२४,२८०

कुवैत में असली कुवैती केवल चार लाख के लगभग हैं। शेष तीन लाख से कुछ अधिक विदेशी हैं। इन देशों की जनसंख्या और सामान्य राज्य प्रशासन की आवश्यकताएँ देखते हुए, इनकी आमदनी बहुत अधिक है और वह तेल के कारण है। इसलिए इन तैल उत्पादक देशों के पास बहुत अधिक फालतू धन है।

अपने पड़ोसियों से आशंकित रहने के कारण अब इन देशों का ध्यान अपनी सैनिक शक्ति बढ़ाने की ओर गया है। इस समय अमरीका में वियतनाम युद्ध की समाप्ति से वहाँके सैनिक सामान बनानेवाले कारखानों को अपने माल की बिक्री के लिए नये बाज़ार चाहिए। वैसे भी अमरीका राजनीतिक कारणों से दूसरे देशों को अपार सैनिक सामान मुफ्त या नाममात्र मूल्य पर देता रहा है। इसराइल, तुर्की, पाकिस्तान, थाईलैण्ड आदि अनेक देश उससे अपार आधुनिक सैनिक अस्त्र-शस्त्र पा चुके हैं। फ्रांस खुले रूप से आधुनिक अस्त्र-शस्त्रों को जिस किसीको भी नकद मूल्य लेकर बेचता रहा है और इससे उसके व्यापार को बड़ा लाभ होता है। इसी प्रकार बेलजियम और स्वीडन भी आधुनिक अस्त्र-शस्त्रों का व्यापार बड़े पैमाने पर करते हैं। जर्मनी भी इस क्षेत्र में आ गया है। इंग्लैण्ड भी उन देशों को, जो उसके मित्र हैं या जिन्हें वह प्रसन्न करना चाहता है, आधुनिक अस्त्र-शस्त्र बेचता है। कम्यूनिस्ट देश (रूस, चैकोस्लोवाकिया, पूर्वी जर्मनी) भी राजनीतिक कारणों से अपने प्रभाव के देशों को बड़े परिमाण में आधुनिक अस्त्र-शस्त्र देते हैं। इराक़, यमन, मिस्र, सीरिया इसके उदाहरण हैं। अतएव 'मध्यपूर्व' के ये तेल से धनी देश अपने फालतू धन से जो अस्त्र-शस्त्र खरीदना चाहते हैं उनमें उन्हें कोई कठिनाई नहीं है। वास्तव में इन शस्त्र व्यापारी देशों में आजकल इन देशों के हाथ अपने अस्त्र-शस्त्रों को बेचने के लिए होड़ लगी है। कुवैत ५,००० लाख डालर के अस्त्र-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शस्त्र खरीद रहा है। (१ डालर = ७·५ रुपये) सऊदी अरब ने १०,००० लाख डालर के आधुनिक अस्त्र-शस्त्र खरीदने का निश्चय किया है। किन्तु ईरान ने इन सबको पीछे छोड़ दिया है। उसने अमरीका से २०,००० लाख डालर के आधुनिकतम अस्त्र-शस्त्र खरीदने का करार कर लिया है।

ये देश आधुनिकतम और अद्यतन उन्नत लड़ाकू विमान, टैंक, प्रक्षेप अस्त्र (मिसाइल्स), पनडुब्बी, होवर क्राफ्ट, आधुनिकतम हैलिकाप्टर, रडार, लड़ाकू जहाज खरीद रहे हैं। ईरान के पास आज भी संसार का सबसे बड़ा होवर क्राफ्ट का समुद्री बेड़ा है। वह इसे और बढ़ा रहा है। (होवर क्राफ्ट वह यांन है जो समुद्र के जल से, या पृथ्वी से एक-दो फुट ऊपर रहकर चलता है। चलते समय वह जल या पृथ्वी को नहीं छूता। इसलिए वह सब प्रकार के ऊबड़-खाबड़ स्थानों और समुद्र पर आसानी से चल सकता है।) ईरान को दो वर्षों में यह सब सैनिक सामान मिल जायगा। विशेषज्ञों का कहना है कि इतने आधुनिक अस्त्र-शस्त्र अमरीकनों ने केवल वियतनाम में एकत्र किये थे। शायद मिस्र को भी रूसियों ने इतने आधुनिक अस्त्र-शस्त्र नहीं दिये। इनमें संसार के सबसे शक्तिशाली लड़ाकू फैण्टम विमान, धरती से वायु में, वायु से धरती पर और वायु से वायु में फेंके जानेवाली मिसाइल (प्रक्षेप) भी बड़ी संख्या में हैं। ईरान अपनी नौसेना पर विशेष ध्यान दे रहा है। उसने कुछ दिनों पूर्व इटली से सात पनडुब्बियाँ खरीदी थीं। अब वह और भी पनडुब्बियाँ तथा छोटे-बड़े लड़ाकू जहाज खरीदकर दक्षिण एशिया में सबसे शक्तिशाली नाविक शक्ति होने की योजना बना रहा है।

ईरान यह सब क्यों कर रहा है? क्यों इतनी सैनिक शक्ति बढ़ा रहा है? उसके दाहिने-बाएँ दो-दो पड़ोसी हैं। पश्चिम में इराक़ और तुर्की, पूर्व में अफगानिस्तान और पाकिस्तान है। पाकिस्तान और तुर्की से उसकी प्रगाढ़ मैत्री है। अफगानिस्तान इतना छोटा और सैनिक दृष्टि से कमजोर राष्ट्र है कि उससे उसे कोई खतरा नहीं है। उससे उसके संबंध भी खराब नहीं हैं। केवल इराक़ से उसका झगड़ा है, किन्तु आकार, जनसंख्या और सैनिक शक्ति में वह ईरान से बहुत छोटा और कमजोर है। फिर, उसका झगड़ा कुवैत, जार्डन आदि से भी है और उसे कुर्दों के आंतरिक विद्रोह का भी सामना करना पड़ता है। अतएव उसे दबाने के लिए ईरान को इतनी सैनिक शक्ति बढ़ाने की आवश्यकता नहीं है। तब यह अभूतपूर्व सैनिक शक्ति संचय क्यों?

इसका उत्तर पाने के लिए हमें पहले फारस की खाड़ी पर एक निगाह डालनी होगी। उसीमें होकर ईरान, इराक़, कुवैत का तेल जहाजों द्वारा दूसरे देशों को जाता है। वह खाड़ी इस व्यापार के लिए केवल तेल-उत्पादक देशों ही के लिए नहीं, किंतु इस तेल का उपयोग करनेवालों के लिए भी महत्त्वपूर्ण है। यह खाड़ी हिन्द महासागर के उत्तर पश्चिमी भाग में है। जब तक ब्रिटिश साम्राज्य था तब तक इस महासागर पर ब्रिटेन का वर्चस्व था। अब उसकी समाप्ति पर ब्रिटिश नौसेना यहाँसे हट गयी है और इस समय अमरीका और रूस में इस महासागर में प्रवेश करने की मौन होड़ चल रही है। अमरीका इन देशों के तेल का बहुत बड़ा ग्राहक है। उसके लिए यह बहुत आवश्यक है कि कोई विरोधी शक्ति यहाँ इतनी शक्तिशाली न हो जाय कि वह तेलवाहक जहाजों का आवागमन रोक सके। उधर रूस यमन, इराक़ को अपने प्रभाव में ले आया है जो उसकी संसार में प्रभाव विस्तार की योजना का अंग है। अतएव रूस और अमरीका दोनों ही हिन्द महासागर में प्रवेश कर गये हैं। अमरीका ने मारिशस से डीगो-गार्शिया नामक एक जेबी द्वीप पट्टे पर लेकर वहाँ अपना एक अड्डा बना लिया है जिसमें विमानों के लिए उतरने की ८,००० फुट लम्बी एक हवाई पट्टी भी तैयार कर ली है। उस द्वीप में संचार के आधुनिकतम साधन लैस कर दिये गये हैं तथा अभी एक छोटा नाविक अड्डा भी बना लिया गया है। शायद कालान्तर में उसका विस्तार किया जायगा। अमरीका का प्रसिद्ध सातवाँ बेड़ा अभी तक प्रशान्त महासागर में गश्त लगाता था, पर अब उसका कार्य-क्षेत्र हिन्द महासागर भी बना दिया गया है। बहरीन में अमरीकनों ने ब्रिटिश नौसेना द्वारा छोड़ी हुई विशाल नाविक गोदी का बहुत सा भाग किराये पर लेकर वहाँ अड्डा बना लिया है और उसके दो-तीन छोटे सैनिक जहाज वहाँ स्थायी रूप से नियुक्त हैं। इस प्रकार अमरीका ने हिन्द महासागर में अपने पैर जमा लिये हैं। इराक़ और यमन रूसी प्रभाव में हैं। वहाँ आगे चलकर शायद रूस को अपने सैनिक जहाजों के लिए कुछ सुविधाएँ मिल जायँ। किंतु वे आज भी उनके मित्र और अमरीका-विरोधी हैं। इसलिए रूसियों के प्रति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९७३

उनकी सद्भावना है। कुछ रूसी जहाज हिन्द महासागर में बराबर गश्त लगाते रहते हैं। अभी उनकी संख्या दस से अधिक नहीं है, पर यह कभी भी बढ़ सकती है। लाल सागर के मुहाने पर यमन का सकोत्रा नामक एक द्वीप है। कुछ लोगों ने यह खबर उड़ा दी थी कि वहाँ रूस को सैनिक अड्डा बनाने की अनुमति मिल गयी है, पर इसकी पुष्टि नहीं हुई।

इसी पृष्ठभूमि में ईरान के हाथ दो अरब डालर के आधुनिकतम भयंकर सैनिक अस्त्र-शस्त्रों की बिक्री की घटना देखनी चाहिए। दक्षिण एशिया में दोनों महाशक्तियाँ अपना वर्चस्व स्थापित करना चाहती हैं और वहाँके राष्ट्रों के आपसी झगड़े या महत्त्वाकांक्षाएँ उन्हें अपनी योजना सफल करने में सहायता दे रही हैं। अमरीका ईरान में अपने कई हजार सैनिक विशेषज्ञ भेज रहा है जो ईरानी सैनिकों को आधुनिकतम अस्त्रों के उपयोग का प्रशिक्षण देंगे। ईरान अरब सागर पर, बलूचिस्तान से कुछ हट कर एक बड़ा नाविक अड्डा बना रहा है। वह एशिया में सबसे बड़ा और आधुनिकतम जहाजी अड्डा होगा।

ईरान ने पिछले पाक-भारत युद्ध में पाकिस्तान की सहायता की थी और इस समय वह खुलकर उसका समर्थन कर रहा है। बलूचिस्तान का कुछ भाग ईरान में भी है और यदि वह सारे बलूचिस्तान को अपने साम्राज्य में मिलाना चाहता हो तो कोई आश्चर्य नहीं। आजकल राष्ट्रपति भुट्टो बलूचिस्तान में कोई काम ईरान के शाह की सहमति के बिना नहीं करते। पाकिस्तान इतना कमजोर हो गया है कि उसे ईरान की सहायता की आवश्यकता है। यदि ईरान अपने अतीत के साइरस द्वारा आदि सम्राटों के साम्राज्य का स्मरण कर अपने साम्राज्य का विस्तार करने के लिए इस भयंकर सैनिक शक्ति का उपयोग करे तो आश्चर्य नहीं। सिवाय इसके उसे इतनी सैनिक शक्ति बढ़ाने की क्या आवश्यकता हो सकती है? इसका भारत पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ेगा। अब भारत को पाकिस्तान-ईरान की धुरी का सामना करने का संकट आ सकता है, और इस धुरी के पीछे अमरीका और तुर्की का परोक्ष समर्थन होगा। हमारे शांतिप्रिय और अहिंसक होने से इस यथार्थता पर पर्दा नहीं पड़ सकता। अतएव हमें दूरदर्शिता से काम लेकर इस संभाव्य संकट का सामना करने के लिए अपनी सैनिक शक्ति को बढ़ाने और आधुनिकतम बनाने का तथा अपने देश में 'वादों' के झगड़े समाप्त कर देश में वास्तविक भावनात्मक एकता स्थापित कर जनता को देश-प्रेम के रंग में भली भाँति रँग देना चाहिए।

डाक विभाग की नयी सनक—पिन नंबर—अमरीका बड़ा उन्नत देश है। वहाँके लोग शिक्षित हैं। वहाँ साक्षरता का प्रतिशत बहुत ऊँचा है। नगरों और गाँवों के रहन-सहन और शिक्षा-दीक्षा के स्तर में बहुत कम अन्तर है। वहाँ डाक विभागों ने नगरों, कस्बों और गाँवों को क्रमबद्ध करके उन्हें उसी प्रकार नम्बर दे दिये हैं जिस प्रकार जेलखाने में कैदियों को नम्बर दिये जाते हैं। वहाँ शिक्षा के अधिक प्रचार के कारण तथा समाचार-पत्रों, औद्योगिक और व्यापारिक संस्थानों की बेतहाशा विज्ञापनबाजी के कारण डाक से भेजे जानेवाले पत्रों, पुस्तकों, विज्ञापन-पत्रों की संख्या भी बहुत अधिक है। वहाँ शायद डाक को, अत्यधिक होने के कारण भिन्न स्थानों के लिए अलग अलग समूहों में नम्बरों के अनुसार लगाने और छाँटने में अधिक सुभीता होता है। नगरों, कस्बों और गाँवों को जो नम्बर दिये गये हैं वे पिन नम्बर कहलाते हैं। ये लाखों में होते हैं और जानी हुई जगहों के नम्बरों का याद रखना बड़ा कठिन है। किंतु अमरीका में शिक्षा इतनी व्यापक है और वहाँके अधिकांश लोग इतने व्यवहार-कुशल और दक्ष हैं कि वे काम चला लेते हैं। भारत में स्थिति बिल्कुल भिन्न है। यहाँ शिक्षितों का अनुपात अपेक्षाकृत कम है और निरक्षरता का प्रतिशत बहुत ऊँचा है। यहाँ अमरीकी प्रथा का चलाना जनता के लिए मुसीबत पैदा करना है। किन्तु हमारे डाक-विभाग ने अमरीका के अंधानुकरण में यहाँ भी पिन नम्बर की प्रथा चलाने का निश्चय किया है। शहरों के जो पिन नम्बर हमारे देखने में आये हैं वे ६ अंकों में हैं। एक-दो बार हमारे पत्रों पर रबर की मोहर से बतलाया गया कि हमारा पिन नम्बर क्या है। किन्तु आज तक हमारे पास एक भी पत्र नहीं आया जिसमें हमारे पते पर हमारा पिन नम्बर लिखा हो। हमें बंगलोर, गौहाटी, तिनसुखिया, छतरपुर, कायमगंज आदि कितने ही स्थानों को पत्र लिखने पड़ते हैं। वहाँसे हमारे पास पत्र नहीं आते। हम उनका पिन नम्बर नहीं जानते। जब एक प्रमुख नगर में रहने वाले का यह हाल है तब बेचारे देहात या छोटे स्थानों में कम शिक्षित लोगों को उन स्थानों के पिन नम्बर कैसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मालूम होंगे जहाँ वे अपनी ओर से पत्र लिखना चाहते हैं ? शायद पिन नम्बर प्रणाली अमरीका में सफल हो, संभव है कि वह अधिक 'वैज्ञानिक' हो, यह भी मान लिया जाय कि डाक विभाग के लिए वह बड़ी सुविधाजनक है, पर डाक विभाग जनता की सुविधा के लिए है या जनता डाक विभाग की सुविधा के लिए ? यह प्रणाली जनता के लिए अत्यन्त असुविधाजनक है। डाक विभाग यदि अमरीका की नकल करके अपनी सामान्य सेवा अधिक कुशल बना सके तो इस अनुकरण से कुछ लाभ भी है। हमें लखनऊ में इलाहाबाद के पत्र प्रायः तीसरे, चौथे और कभी-कभी तो पाँचवें दिन मिलते हैं। वहाँकी रजिस्ट्री यदि चौथे दिन मिल जाय तो हम अपने भाग्य को सराहते हैं। डाक बटने में लखनऊ ऐसे नगर में भी जो विलम्ब होता है, (किसी किसी दिन तो एक समय डाक आती ही नहीं), उसमें यदि कुछ सुधार हो तो जनता अधिक संतुष्ट होगी। अमरीका के अंधानुकरण में पिन नम्बर के चलाने से हमारा डाक विभाग अमरीकी नहीं हो जायगा। उससे केवल जनता का सिरदर्द बढ़ेगा और अभी निकट भविष्य में इस देश में उसके सफल होने की कोई आशा नहीं है। जिस देश में लोग जानते हुए भी पते पर नगर के डाक क्षेत्र (पोस्टल जोन) की संख्या भी नहीं लिखते, उसमें यह आशा करना कि २०००६५ या २०००० लिखेंगे व्यर्थ है। डाक तार विभाग यदि तारों को शीघ्र निर्धारित स्थान पर पहुँचा दे और पत्रों की चाल में कुछ गति लावे तो जनता उसे धन्यवाद देगी। पिन नम्बर ऐसी प्रणाली के उपयोग की अपेक्षा वह तब करे जब वह स्वयं अमरीकी ढग की दक्षता प्राप्त कर ले। इस देश की जनता को अमरीकी जनता के स्तर पर पहुँचने में अभी बहुत विलम्ब है।

लखनऊ विश्वविद्यालय के उपद्रव—बाबा तुलसीदास ने लिखा है—"अति संघरषन जौं कर कोई, अनल प्रगट चंदन ते होई।" उनकी यह उक्ति लखनऊ विश्वविद्यालय में चरितार्थ हो गयी। वहाँ छात्रों में आपस में, छात्रों और प्राध्यापकों में, छात्रों और कुलपति में, प्राध्यापकों में आपस में, प्राध्यापकों और उपकुलपति में मनोमालिन्य, गलतफहमी, अविश्वास, संदेह और झगड़ों ने ऐसा रूप ले लिया कि परीक्षाएँ कराने के लिए सशस्त्र पुलिस बुलानी पड़ी। दुर्भाग्य से सशस्त्र पुलिस की कुछ टुकड़ियों में अपने अधिकारियों के प्रति इतना असंतोष था कि उनमें भी आपसी संघर्ष की नौबत आ गयी। परिणाम यह हुआ कि लखनऊ विश्वविद्यालय के अनेक भवन जला दिये गये—विद्या मंदिर के स्वाभाविक शान्त और शीतल वातावरण में इन संघर्षों के सन्निपात से 'अनल' 'प्रकट' हो गयी। कई लाख रुपयों की क्षति हुई। विश्वविद्यालय के इस अग्निकांड के प्रकाश ने सशस्त्र पुलिस के दबे हुए असंतोष को प्रकाश में ला दिया। भौतिक अग्नि तो लखनऊ के विश्वविद्यालय ही में सीमित रही, किंतु उसने सशस्त्र पुलिस के असंतोष की छिपी अग्नि को राज्य के कई स्थानों में प्रकट कर दिया। इस अग्नि ने राज्य की प्रजातंत्रीय सरकार को भस्म कर दिया। लखनऊ विश्वविद्यालय ही नहीं, राज्य के सभी विश्वविद्यालयों को इन उपद्रवों से उत्पन्न शीतल अग्नि में झुलसना पड़ा। विश्वविद्यालयों के ढाँचे ही बदल गये। लखनऊ के उपकुलपति तो इतने झुलस गये कि शायद अब वे कार्य करने में असमर्थ हैं। इस अग्नि के परिणाम राज्य में कितनी दूर तक फैलते हैं, यह देखना है।

जब तक सरकार इस काण्ड की न्यायिक जाँच न करावे तब तक प्रामाणिक रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि इस अभूतपूर्व और दुर्भाग्यपूर्ण भीषण अग्निकांड के लिए कौन उत्तरदायी है। यह अग्निकांड सहसा नहीं हो गया। असंतोष और संघर्ष की चिनगारियाँ काफी दिनों से देखनेवालों को प्रत्यक्ष दिखलायी पड़ती थीं। अग्निकांड और सशस्त्र पुलिस की अनुशासनहीनता को राज्य के कुछ लोगों ने विद्रोह की संज्ञा दी है। वह उस दबे हुए असंतोष का अंतिम विस्फोट और चरम परिणति थी। उस विस्फोट ने सारे राज्य को हिला दिया। इस संबंध में हमारे लिए प्रामाणिक तथ्यों के अभाव में कुछ कहना अनुचित होगा। यह ऐसे सार्वजनिक महत्त्व का विषय है कि सारे काण्ड की गहराई से छानबीन आवश्यक है। हमारी सम्मति में प्रजातंत्र में यह आवश्यक है कि विश्वविद्यालय काण्ड की खुली जाँच करायी जाय, और सशस्त्र पुलिस की अनुशासनहीनता की जाँच उच्चस्तरीय आयोग से, जिसमें उच्च प्रशासन और हाईकोर्ट के न्यायाधीश भी हों, चाहे गुप्त बैठकों द्वारा चाहे खुले रूप से, करायी जाय। किंतु इन जाँचों का निष्कर्ष जनता को अवगत कराया जाय तथा जो अपराधी पाये जायँ उन्हें निर्ममता से समुचित दण्ड भी दिया जाय। इस समय जनता को विवरण की जानकारी नहीं है और न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९७३

वह इस दुःखान्त नाटक के अभिनेताओं ही को जानती है। तथ्यों के अभाव में तरह-तरह की कहानियाँ फैल रही हैं जिनसे संभव है कि निर्दोष बदनाम हो जायँ और वास्तविक दोषी जनता के श्रद्धापात्र बने रहें। इन दोनों काण्डों ने उत्तर प्रदेश को बुरी तरह झकझोर दिया है। जनता का अधिकार है कि उसे तथ्यों से अवगत कराया जाय, और वे तथ्य तभी मान्य होंगे जब एक उच्चस्तरीय आयोग—जिसकी निष्पक्षता और योग्यता में उसे विश्वास हो—इन दोनों काण्डों की जाँच कर अपना निर्णय देगा। तब तक सिवाय यह कहने के कि ये काण्ड इस राज्य ही नहीं, सारे देश के लिए बड़े दुर्भाग्यपूर्ण हुए हैं, हम अभी इन पर कोई टिप्पणी करना उचित नहीं समझते।

महँगाई की विभीषिका—हम किसी 'वाद' से बँधे नहीं हैं। प्रशासन की अच्छाई का एक ही मानदंड है कि शासन घड़ी की तरह ठीक ढंग से चलता रहे और जनता को कष्ट न हो। किंतु इधर कुछ दिनों से जनता के कष्ट बेतहाशा बढ़ गये हैं। एक ओर अनुशासन ढीला होता जा रहा है और शान्ति व्यवस्था कमजोर होती जा रही है। ग्रामीण क्षेत्रों ही में नहीं, नगरों में भी लूटपाट और हत्याओं की संख्या बढ़ रही है। किसी भी क्षेत्रीय समाचारपत्र को खोलिए, तरह-तरह के दर्जनों अपराधों के समाचार मिलेंगे। यहाँ तक कि राजमार्गों पर 'बसें' और 'मोटरें' भी लुट जाती हैं। रेलों में चोरी और हिंसक अपराधों की संख्या बढ़ रही है। किंतु इससे भी अधिक कष्ट जनता को खाद्य पदार्थों की कमी और उनके बढ़ते हुए मूल्यों से हो रहा है। हम राष्ट्रीयकरण के विरोधी नहीं हैं, पर वृक्ष की पहचान उसके फल से होती है। यदि राष्ट्रीकरण से जनता को लाभ और सुविधा हो तो वह अभिनन्दनीय है। किंतु हो क्या रहा है? जिस-जिस वस्तु को सरकार अपने अधिकार में लेती है वह बाजार से अंतर्धान हो जाती है और उसके मूल्य अनाप-शनाप बढ़ जाते हैं। चीनी का नियंत्रण जब से सरकार ने लिया तब से उसके मूल्य में उत्तरोत्तर वृद्धि होती जा रही है। सरकारी दूकानों पर वह राशन के रूप में बहुधा निर्धारित मात्रा में नहीं मिलती और खुले बाजार में उसके मूल्य इतने बढ़ गये हैं कि एक बार हमें लखनऊ में एक किलो चीनी के लिए चार रुपये देने पड़े। सरकार ने मिट्टी के तेल का नियंत्रण लिया, वह न तो आसानी से मिलता है और न निर्धारित भाव पर। वैसे भी सरकार उसका मूल्य धीरे-धीरे बढ़ाती जाती है। इधर कोयले का राष्ट्रीयकरण किया गया और सरकार ने स्वयं उसके भाव बढ़ा दिये। गेहूँ के थोक व्यापार का राष्ट्रीयकरण हुआ और गेहूँ नगरों में सामान्य जनता को मिलना दूर हो गया। सरकार ने गेहूँ की मात्रा प्रति व्यक्ति वैसे भी कम कर दी है, किन्तु उपभोक्ताओं को कभी उस न्यून मात्रा में भी गेहूँ नहीं मिलता। 'स्टाक समाप्त हो गया' कहकर बहुधा उपभोक्ता लौटा दिये जाते हैं। जो सबसे आपत्तिजनक बात है वह यह कि उपभोक्ताओं को घंटों पंक्ति में खड़ा रहना पड़ता है और उनका समय नष्ट होता है। शायद सरकार की निगाह में जनता के समय का कोई मूल्य नहीं है। यदि होता तो वह ऐसी व्यवस्था करती कि जो कुछ भी वस्तु वह दे सकती है—पूरी या न्यून मात्रा में—वह जनता को बिना समय नष्ट किये मिल जाया करती। सरकार कारखानों की हड़तालों के आँकड़े निकालती है कि हड़तालों से वर्ष में इतने लाख कार्य-दिन नष्ट हुए। क्या उसने सोचा है कि सरकारी दूकानों में दो-चार किलो अनाज के लिए देश में कितने करोड़ लोगों के कितने घंटे नष्ट होते हैं? क्या यह राष्ट्रीय क्षति नहीं है? ऐसा मालूम होता है कि सरकार जिस वस्तु पर हाथ लगा देती है वह अलभ्य या दुर्लभ हो जाती है। इस संबंध में जनता में कितनी ही मनगढ़न्त मनोरंजक कहानियाँ प्रचलित हो गयी हैं जो सरकार के 'इमेज' के लिए बहुत अच्छी नहीं हैं। हम उन मनगढ़न्त कहानियों को नहीं दुहरायेंगे। किंतु मैसूर विधान सभा में एक विरोधी सदस्य ने जो बात कही वह प्रामाणिक कथन है। वहाँके एक मंत्री से मिलने एक महिला आयी। बाद में जैसा कि इस देश में सामान्य बात है उस घटना को लेकर कुछ अफवाहें फैलायी गयीं। अब पुलिस उस महिला से पूछताछ करने के लिए उसे खोजने लगी, पर वह ऐसी अंतर्धान हुई कि अनेक प्रयत्न करने पर भी अभी तक उसका पता नहीं लगा। इस घटना को लक्ष्य करके मैसूर विधान सभा के एक निर्दलीय सदस्य श्री आनन्दराव ने कहा—"मैसूर सरकार जिस वस्तु को स्पर्श कर लेती है वह गायब हो जाती है। सरकार ने गेहूँ, किरोसीन और सीमेंट में हाथ लगाया, वे बाजार से अंतर्धान हो गयीं। और अंत में उसने एक महिला को छूना चाहा, और वह भी गायब हो गयी।" यह कथन व्यंग्य में कहा गया है, पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह आज के जनता के विचारों को प्रतिबिम्बित करता है। राष्ट्रीयकरण बड़ी अच्छी चीज है, पर सरकार की मशीन इतनी शिथिल है, और उसके कुछ स्तरों में भ्रष्टाचार इतना अधिक व्याप्त है कि राष्ट्रीयकरण के बाद वितरण की योजना सफल नहीं हो पाती। दूसरी बात जो जनता को बेहद कष्ट दे रही है वह आवश्यक वस्तुओं की आये दिन मूल्य-वृद्धि है। सामान्य जनता का कष्ट इस समय अवर्णनीय है। हमें बहुधा मित्रों और परिचितों से जो निजी पत्र मिलते हैं उनमें इन कठिनाइयों का वर्णन रहता है। अभी हाल में एक अकिंचन साहित्यसेवी ने हमें एक पत्र भेजा। वह पद्य में था। उसकी कुछ पंक्तियाँ देखिए जो किसी टिप्पणी की अपेक्षा नहीं करती :

कवि श्रीवर के कमल पद मैं नावत नित माथ।
चिरजीवो, बहुसुख करो, विनय सुनें रघुनाथ॥

× × ×

माता जी बीमार हैं, मरने की अब आस।
कफ़न, श्राद्ध को द्रव्य नहिं, इससे चित्त उदास॥
नहीं समझ में आ रहा, कैसा हुआ सुराज।
अन्न-वस्त्र मिलता नहीं, देश दुखी है आज॥
महँगाई कितनी बढ़ी, दिन दिन बढ़ती जात।
आटा, चावल, दाल बिन सूखा जाता गात॥

× × ×

एक दूसरे कवि मित्र ने अधिक कलापूर्ण ढंग से स्वराज्य के सुखों के संबंध में यह छन्द निजी रूप से भेजा है :

पतझार ही देखा अभी तक है,
तुम क्यों कहते मधुमास है ये ?
अनाचार से पीड़ित है जनता,
तो समाज का कैसा विकास है ये ?
करते जो बिना रसवाले मज़ा,
सो कहाँ रसवालों के पास है ये ?
दिन में भी अँधेरा बसेरा किये,
दिनराज का कैसा प्रकास है ये ?

क्या शासन के कर्णधार जनता की इस दुर्दशा और उसकी भावनाओं से अपरिचित हैं ? हम यह कैसे मानें कि वे जनता के दुखों के प्रति उदासीन हैं। तब क्या वे स्थिति सुधारने में असमर्थ हैं ?

कथनी और करनी—हमारे नेता दूसरों को उपदेश देने में बड़े पटु हैं, किंतु स्वयं उस पर अमल करना आवश्यक नहीं समझते। 'टाइम्स आफ इण्डिया' का यह समाचार हम ज्यों का त्यों उद्धृत कर रहे हैं। उसे हमारी टिप्पणी की अपेक्षा नहीं है। समाचार यह है :

"बंबई जून १०. केन्द्रीय वित्त मंत्री श्री वाई० बी० चह्वाण ने आज मोटर रखनेवालों को सलाह दी कि वे अपनी गाड़ियाँ यथासंभव कम चलाया करें और पैट्रोल बचाया करें।

वे बंबई प्रदेश कांग्रेस कमेटी में बोल रहे थे। उन्होंने कहा कि पैट्रोल का दाम बढ़ जाने पर भी उसकी खपत बढ़ गयी है।

बैठक समाप्त होने पर श्री चह्वाण एक विदेश से मँगायी गयी बड़ी मोटर में बैठकर किसी दूसरे आयोजन में सम्मिलित होने को चले गये। उनकी मोटर के आगे एक 'पाइलट कार' चल रही थी, और पीछे तीन मोटरों में उनके मित्र और विशिष्ट व्यक्ति चल रहे थे। सबसे पीछे एक मोटर और थी जिसमें उनकी सुरक्षा के लिए नियुक्त अधिकारी सवार थे।

शनिवार को श्री चह्वाण ने कई सभाओं को संबोधित किया। मोटरों का यह जलूस बराबर उनके पीछे-पीछे चलता रहा।"

बेचारे मंत्री क्या करें ? बाबा तुलसीदास कह ही गये हैं "पर-उपदेस कुसल बहुतेरे, जे आचरहिं ते नर न घनेरे।" प्रजातंत्र में यह स्वाभाविक है कि मंत्री महोदय 'बहुमत' (बहुतेरों) के साथ रहें। अल्पमत में रहना प्रजातंत्र में खतरनाक है।

श्री मोहन कुमारमंगलम् की विमान दुर्घटना में मृत्यु—केन्द्रीय ईस्पात मंत्री श्री सुरेन्द्र मोहन कुमारमंगलम् की आकस्मिक मृत्यु दिल्ली में एक भयंकर विमान-दुर्घटना में हो गयी। यह दुर्घटना पालम हवाई अड्डे से प्रायः दो मील पर हुई—अर्थात् यदि कुछ सेकण्ड तक यह दुर्घटना न होती तो इतने लोगों के प्राण न जाते—

किस्मत को देखिए कहाँ टूटी है ये कमन्द
दो-चार हाथ जब कि लबे-बाम रह गया !

किंतु नियति का रहस्य इस विज्ञान के अति उन्नत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

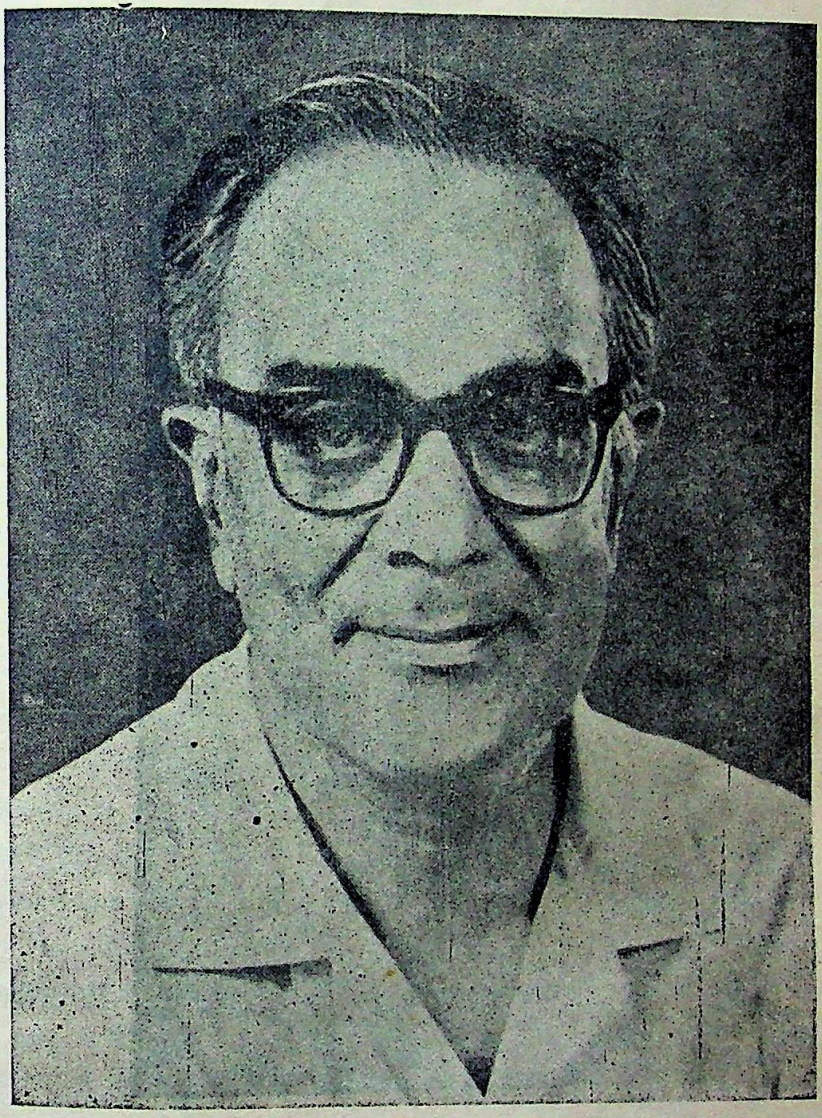

श्री सुरेन्द्र मोहन कुमारमंगलम्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

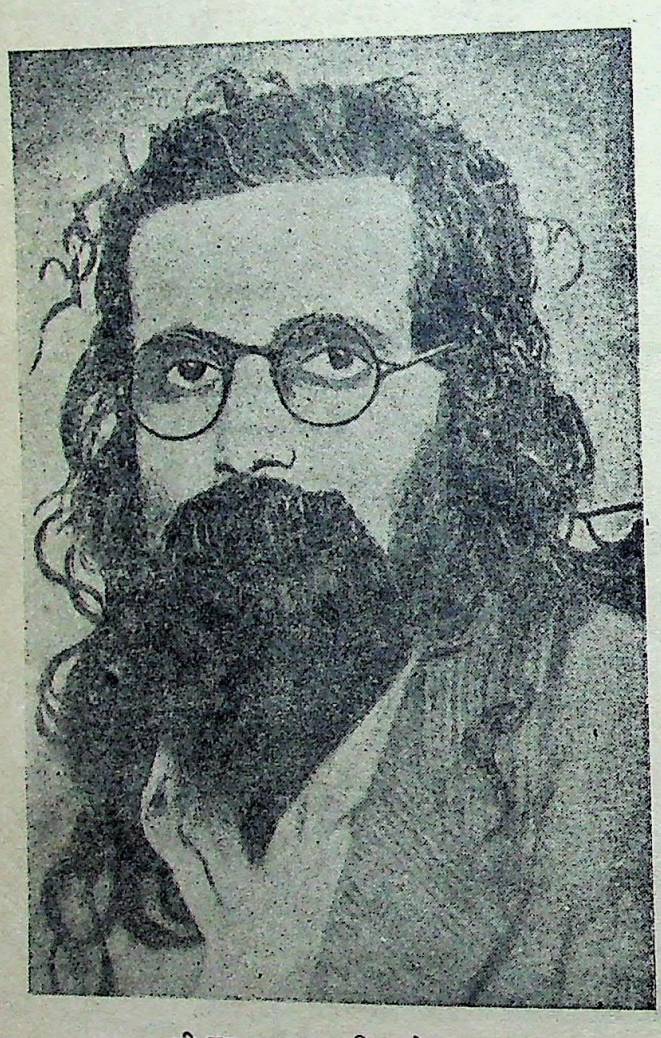

श्री गुरु माधव सदाशिव गोलवलकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युग में भी कोई नहीं जान पाया। इस विमान में ६५ यात्री थे, जिनमें केवल पंद्रह घायल अवस्था में जीवित बचे। शेष जलकर इतने विकृत हो गये कि यह पहचानना कठिन हो गया कि कौन सा शव किस व्यक्ति का है। श्री कुमारमंगलम् के अतिरिक्त इस दुर्घटना में कई अन्य प्रमुख व्यक्तियों के प्राण गंये, जिनमें श्री गुरनाम सिंह (आस्ट्रेलिया में भारतीय राजदूत और पंजाब के भूतपूर्व मुख्य मंत्री और हाईकोर्ट के न्यायाधीश), कई श्रमिक नेता और पत्रकार भी थे। उनमें प्रयाग विश्वविद्यालय के डा० अमर नारायण अग्रवाल भी थे, जिन्होंने हिन्दी में अर्थशास्त्र पर कई प्रामाणिक पुस्तकें लिखी थीं।

इस दुर्घटना की उल्लेखनीय विशेषता यह है कि जहाँ यह दुर्घटना हुई वहीं दो विमान दुर्घटनाएँ पहले भी हो चुकी हैं, और ये तीनों वृहस्पतिवार को ही हुई।

श्री मोहन कुमारमंगलम् केन्द्रीय मंत्रिमंडल के बहुत ही प्रभावशाली और महत्त्वपूर्ण सदस्य थे। कुछ लोगों का मत तो यह है कि राजनीतिक और प्रशासनिक—विशेषकर आर्थिक—मामलों में प्रधान मंत्री पर उनका सर्वाधिक प्रभाव था। गेहूँ के थोक व्यापार और कोयले की खानों के राष्ट्रीयकरण के लिए मुख्य रूप से वे ही जिम्मेदार थे। ईस्पात के कारखानों की दशा बहुत बिगड़ गयी थी। उसे भी उन्होंने बहुत कुछ सुधारा था, और आशा थी कि यदि वे कुछ दिनों जीवित रहते तो ये घाटा देनेवाले अदक्ष कारखाने शायद अपनी दक्षता बढ़ा कर लाभ देने लगते।

श्री कुमारमंगलम् के पिता डा० सुब्बारायन् बड़े प्रतिष्ठित कांग्रेसी नेता थे और केन्द्र में मंत्री भी रह चुके थे तथा बाद में राज्यपाल नियुक्त हुए थे। श्री कुमारमंगलम् दो भाई थे। दूसरे भाई सेना में थे और प्रधान सेनापति के पद से सेवानिवृत्त हुए। श्री मोहनकुमार मंगलम् की स्कूली शिक्षा इंग्लैंड के ईटन स्कूल में और उच्च शिक्षा कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में हुई। बाद में उन्होंने लन्दन में रह बैरिस्ट्री पास की। इंग्लैंड में वे श्रमिक समस्याओं में रुचि लेने लगे और कम्यूनिस्ट पार्टी के सदस्य हो गये। भारत लौटकर उन्होंने मदरास में वकालत आरंभ की और बड़े सफल वकील हुए। किंतु कम्यूनिस्ट पार्टी के सक्रिय सदस्य होने के कारण उन्हें कई बार जेल जाना पड़ा। बाद में मदरास के तत्कालीन मुख्य मंत्री श्री कामराज ने उन पर जोर देकर उन्हें मदरास के एडवोकेट जनरल (महाधिवक्ता) के पद को स्वीकार करने को राजी कर लिया। इस पद को स्वीकार करने से उन्हें कम्यूनिस्ट पार्टी से त्यागपत्र देना पड़ा। पिछले चुनाव में वे पांडेचरी से कांग्रेस टिकट पर संसद के चुनाव में खड़े हुए और विजयी हुए। श्रीमती गाँधी ने उन्हें ईस्पात मंत्री बनाया। उन्होंने अपने विभाग में नये प्राण फूँक दिये। वे प्रधान मंत्री के अत्यन्त विश्वस्त सलाहकार हो गये और अन्य विभागों की समस्याओं को सुलझाने में वे उनकी सलाह लेतीं और उसका आदर करती। गेहूँ की थोक बिक्री, कोयले और ताँबे की खानों का राष्ट्रीयकरण वास्तव में उन्हीं की सूझ थी।

उनका व्यक्तित्व विवादग्रस्त था और उनके कम्यूनिस्ट पार्टी के पुराने सक्रिय घनिष्ट संबंध के कारण कितने ही कांग्रेसी उन्हें शंका की दृष्टि से देखते थे। इसमें संदेह नहीं कि भारत सरकार की नीतियों को बामपन्थ की ओर अधिक ले जाने में उनका बड़ा हाथ था। यद्यपि न्याय विभाग उनके अधीन नहीं था तथापि तीन वरिष्ठ न्यायाधीशों को छोड़कर चौथे न्यायाधीश को सर्वोच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश नियुक्त कराने में उनका बड़ा हाथ था। संसद में—न्याय मंत्री न होने पर भी—उन्होंने उस नियुक्ति का जिस प्रकार समर्थन किया और उस भाषण में नियुक्ति के लिए जो एक एकदम नये सिद्धान्त का प्रतिपादन किया, उससे उनका व्यक्तित्व अत्यधिक विवादग्रस्त हो गया था।

व्यक्तिगत रूप से श्री कुमारमंगलम् एक आदर्श व्यक्ति थे। वे बड़े मेधावी, बड़े उच्च कोटि के वाग्मी, धन की ओर से निस्पृह, उदार, सादा जीवन व्यतीत करनेवाले और अत्यन्त सहृदय व्यक्ति थे। उनके राजनीतिक विरोधी भी उनके उच्च चरित्र और उनकी योग्यता के लिए उनका आदर करते थे। वे ब्रह्मसमाजी थे। उनकी धर्मपत्नी बंगाली महिला हैं। वास्तव में उनके असामयिक निधन से भारत ने एक उच्च चरित्र का अत्यन्त मेधावी नेता खो दिया जिसके केवल दो वर्ष के मंत्रित्व ने उसके लिए भविष्य में उन्नति की अपार संभावनाएँ बना दी थीं, और जिससे देश को बड़ी-बड़ी आशाएँ थीं।

पूज्य गुरु गोलवलकरजी का स्वर्गवास—राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरसंघ संचालक श्री माधव सदाशिव गोलवलकर जी का कैंसर की लंबी बीमारी के बाद नागपुर में स्वर्गवास हो गया। वे 'गुरुजी' के नाम से विख्यात थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यद्यपि संघ के संस्थापक स्व० डा० हेडगेवार थे तथापि उसके संगठन को दृढ़ करने, उसका देश भर में विस्तार करने तथा उसे ऐसी शक्ति बनाने का श्रेय गुरुजी ही को है जिसकी उपेक्षा उसके विरोधी भी नहीं कर सकते। उन्हें बड़ी-बड़ी कठिनाइयों और विरोधों का सामना करना पड़ा। महात्मा जी की दुखद हत्या के बाद संघ अवैध घोषित कर दिया गया तथा वे जेल में बंद भी कर दिये गये। तथापि उनका मानसिक संतुलन कभी विचलित नहीं हुआ। यद्यपि गांधी हत्याकांड से संघ का कोई संबंध नहीं था फिर भी कांग्रेस ने संघ की गतिविधियों पर रोक लगा दी थी। जब बहुत समझाने-बुझाने से भी कांग्रेस सरकार न पिघली तब गुरुजी ने स्वयंसेवकों को सविनय अवज्ञा करने का आदेश दिया था। देश को यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि उनके आदेश से एक सप्ताह में साठ-सत्तर हजार संघ के कार्यकर्ताओं ने 'जेलें भर दीं।' बाद में गुरुजी छोड़े गये और संघ के ऊपर से भी रोक हटा दी गयी।

गुरुजी का जीवन समर्पित जीवन था। वे काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से उच्च शिक्षा प्राप्त कर वहाँ प्राध्यापक भी हो गये थे। किंतु उनमें धर्म के प्रति बड़ी आस्था थी। वे रामकृष्ण मिशन को अपना जीवन देना चाहते थे और मिशन के एक प्रमुख स्वामीजी के शिष्य भी हो गये थे। किंतु इसी बीच वे डा० हेडगेवार के सम्पर्क में आये, जिन्होंने भारतीय संस्कृति और हिन्दू-उत्थान के लिए राष्ट्रीय स्वयं-सेवक संघ की स्थापना की थी। इस उद्देश्य ने उनके हृदय को स्पर्श कर लिया और वे उसके काम में लग गये। डा० हेडगेवार ने अपनी मृत्यु से पहिले उन्हें अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया। इससे अच्छा चुनाव असंभव था। गुरुजी ने अपने कार्यकाल में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ को सारे देश में—नगरों ही नहीं, सुदूर ग्रामों में—पहुँचा दिया। उनकी संगठन शक्ति अप्रतिम थी। पूँजीपतियों की सहायता के बिना, उन्होंने बिना पैसे के देश का सबसे बड़ा और सबसे अनुशासित संगठन खड़ा कर दिया। संघ में सेवाभाव से प्रेरित लोगों को आकर्षित करने और उन्हें संगठित और अनुशासित करने की अपूर्व क्षमता का सारा श्रेय गुरुजी ही के आदर्श और समर्पित जीवन को है।

उनका उद्देश्य सांस्कृतिक था। उनके कितने ही अनुयायी यह अनुभव करते थे कि वर्तमान सरकार उन्हें सांस्कृतिक कार्य भी नहीं करने देती, अतएव उन्हें राजनीति में भाग लेकर सरकार का सामना राजनीतिक क्षेत्र में करना चाहिए। गुरुजी संघ को राजनीतिक संस्था बनाकर उसे अपने मुख्य उद्देश्य—चरित्र-निर्माण और भारतीय संस्कृति के उत्थान—से हटने नहीं देना चाहते थे। उन्होंने ऐसे लोगों को छूट दे दी कि वे संघ से अलग होकर राजनीतिक संस्था बना लें, पर संघ राजनीति में नहीं पड़ेगा। राजनीति में रुचि लेनेवाले संघ के कार्यकर्ताओं ने संघ से अलग होकर भारतीय जनसंघ स्थापित किया। किंतु वह संस्था रा० स्व० से० संघ से अलग रही।

शायद आधुनिक भारत में दूसरा ऐसा व्यक्ति नहीं हुआ जिसमें इतनी उच्चकोटि की संगठन शक्ति हो जितनी उनमें थी। इस राजनीतिक वाद-विवाद के युग में संघ के कार्य का ठीक-ठीक मूल्यांकन नहीं हुआ, किंतु हम इतना अवश्य जानते हैं कि जो नवयुवक उसके प्रभाव में आये वे अनुशासित, गंभीर और उच्च आदर्शों में विश्वास करनेवाले हो गये तथा उनका चरित्र भी उठा। यह सब गुरुजी के पारस व्यक्तित्व, उच्च त्यागमय जीवन का फल था। इस छोटी टिप्पणी में हम उनके बारे में अधिक नहीं कह सकते। इस समय हम उनके प्रति अपनी विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करके ही संतोष करते हैं।

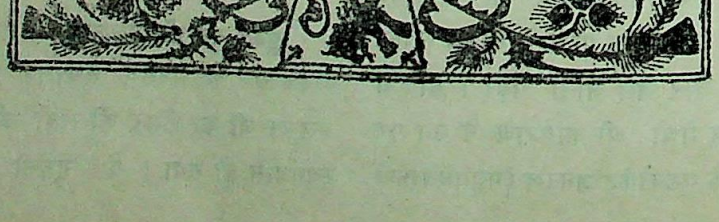

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामचरितमानस के उपेक्षित अंग

श्री रामप्रसाद पांडेय

तुलसी-काव्य के बाह्य अंग इतने विस्तृत एवं लोक-रंजक हैं कि सामान्य पाठक उन्हींके पठन, अनुशीलन तथा मनन में मग्न रहता है। उसे काव्य के अंतरंग में जाने की न आवश्यकता प्रतीत होती है, न अवकाश ही उपलब्ध होता है।

इसका फल यह हुआ है कि, जैसा प्रोफेसर सुरेशचन्द्र ने विगत जनवरी के एक निबंध में संकेत किया है, महाकवि के यथार्थ एवं आदर्श विचारों को मिला-जुला दिया गया है, और उस महात्मा के ऊपर तथाकथित प्रगतिवादी आलोचकों ने ये सारहीन लांछन भी लगा दिये हैं कि तुलसीदास संकीर्ण कट्टरपंथी तथा स्त्री-निन्दक कवि थे और वर्त्तमान युग में तुलसी काव्य की उपादेयता सीमित है। यही नहीं, कुछ पाठक उन्हें प्रगति-विरोधी भी कहते हैं। यह बड़े परिताप का विषय है कि चार सौ वर्ष बाद भी हम रामचरितमानस के अंतस्तल को ठीक-ठीक नहीं देख पाये। सूक्ष्म एवं समत्वभाव से देखा जाय तो रामचरितमानस सदाकालीन मानवता का ही चित्र उपस्थित नहीं करता वरन् उत्कृष्ट प्रगतिवाद का आदर्श भी प्रस्तुत करता है। प्रस्तुत लेखक की सदा से यह भावना बनी हुई है कि हृदय में सिद्ध योगी और आदर्श में अत्यंत अर्वाचीन विचारोंवाला वह संत कवि है। लगभग पैंतीस वर्ष पूर्व प्रकाशित लेखक के "तुलसी सुधासार" की भूमिका में इन विषयों का विवेचन किया गया था। यहाँ तुलसीदास के स्त्रीविषयक विचारों तथा कवि के हृदय मात्र पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया जायेगा।

रामचरितमानस का स्त्री-आदर्श अत्यंत उदात्त एवं उदार है। ध्यान से देखने पर, उसका आज के उत्कृष्ट सुधारवाद से मेल खाता है, जो सामान्य उपेक्षा का विषय बना हुआ है। कवि का हृदय स्त्री के प्रति आदर और कृतज्ञता से भरा हुआ है। "मैं तो चाखा प्रेमरस पत्नी के उपदेश" यह स्वीकारोक्ति कवि की सामाजिक मान्यता का प्रदीप है। तुलसीदास स्त्री को समाज का श्रेष्ठ अंग एवं नेता समझते हैं। स्त्री पात्रों के चित्रों से यही प्रतिबिंबित होता है।

आदि कवि वाल्मीकि के समय से लेकर अब तक राम-सीता को लेकर अनेक काव्य रचे गये हैं, और उनमें अनेक उच्चकोटि के हैं। परन्तु "सीय स्वयंवर" प्रकरण को जो महत्त्व और विस्तार रामचरितमानस में दिया गया है वह अनन्य है। यह प्रसंग तुलसीदास के हृदय की उपज है, और समाज के प्रति उनकी सबसे बड़ी देन है।

रामायण-महाभारत में स्वयंवर की प्रथा को मुक्तकंठ से स्वीकार किया गया है। परन्तु उसका आधारस्तंभ कोई कौशल अथवा शौर्य का कार्य है। उसके पूर्व वैदिक काल में वह आधार पारस्परिक प्रेम और अनुराग था। वैदिक ऋचाओं में मुक्त प्रेम के अनेक उल्लेख हैं। स्वतः भगवान् को "जारः कनीनाम्" अर्थात् कुमारियों का प्रेमी भी कहा गया है। युवक-युवतियों के अनुरागपूर्ण अन्योन्य आकर्षण के अनेक चित्र उल्लिखित हैं। तुलसी दास ने उस आदर्श को पुनः जीवित कर दिया। धनुष-टूटना पर्याप्त नहीं है। उसके पूर्व ही राम-सीता को जनक-वाटिका में एक दूसरे को दिखाना और अपूर्व अनुरक्ति के उद्रेक-चित्र को प्रस्तुत करना महाकवि का अत्यंत साहसिक कार्य है। ऐसा लगता है कि जनक-नन्दिनी के अनन्य अनुराग के बल से ही धनुष टूटा। यह प्रसंग रहस्य से भरा है, और एक उत्कृष्ट आदर्श को प्रतिबिंबित करता है। "बुध समाज बड़ अनुचित होई"। यह नारी को उस विशाल उत्सव की साम्राज्ञी घोषित करता है, और शौर्य-आधार की भर्त्सना भी करता है। जिस सामाजिक वातावरण में कवि ने रामचरितमानस की रचना की उसको देखते हुए, उनका यह बड़ा साहस विशेष सराहना का विषय हैं। परन्तु कवि अपनी भावना से अभिभूत है, उसे दबा नहीं सकता, निर्भय होकर उसे व्यक्त ही कर देता है। इससे अधिक ऊँचाई तक अब तक पूर्व या पश्चिम में कोई प्रगतिवाद अथवा सुधारवाद नहीं गया है।

प्रधान नायिका जानकी के अतिरिक्त, कवि से स्त्री-पात्रों को अपेक्षाकृत अधिक ऊँचा दिखाया है। सीता में अधिक शौर्य, साहस और नीतिमत्ता तो है ही; कौशिल्या,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उर्मिला, तारा और मन्दोदरी की ज्ञान-गंभीरता और व्यावहारिक स्थिरता भी देखते ही बनती है। सभी अपने पतियों से श्रेष्ठ एवं अधिक गौरवपूर्ण हैं। यह चित्रण "क्वचिदन्यतोऽपि" अर्थात् कवि की मौलिक देन है। यह कवि के श्रद्धा-विश्वास की अभिव्यक्ति है।

वास्तविकता यह है कि "रससिद्ध कवीश्वर" की कृतियों में तीन भूमियाँ होती हैं। एक वर्णित समाज की यथास्थिति है, जैसा वह अपने चारों ओर देखता है वह काव्य की यथार्थ भूमि है, वह समय की लोक-परम्परा है। उसके वर्णन बिना सामान्य रसोद्रेक नहीं होगा, सामान्य पाठकों की सहानुभूति नहीं प्राप्त होगी। इसी को 'रियलिज्म' कहते हैं। परन्तु उसके मध्य विशिष्ट आचार-विचारवाले पात्र भी होते हैं। उनका वर्णन आदर्श भूमि का विषय है। यहाँ-वहाँ रखे गये वे जगमगाते रत्न हैं, जो सामान्य चित्रण को आलोकित करते हैं। इन दोनों यथार्थ व आदर्श, भूमियों के अतिरिक्त कवि की अपनी अनुभूति, अपनी प्रिय मान्यताओं की भूमि होती है, जिसको वह विशेष पात्र एवं प्रसंग द्वारा व्यक्त करता है। यही तीसरी भूमि कवि की अपनी कृति है। इन तीनों भूमियों —प्लेनो—को क्रमशः लोक, वेद और कवि कह सकते हैं। इन तीनों को अलग-अलग समझने का नाम वास्तविक समीक्षा है। इनको यथास्थान न देखने से, न बैठाने से, कवि के विषय में भ्रांति उत्पन्न होती है। शूर्पणखा, कैकेयी, लक्ष्मण क्रमशः अधम, मध्यम और उत्तम लोक-स्थिति के चरित्र हैं। अनुसूया, सुमित्रा, कौशल्या, शिव और जनक आदर्श वैदिक चरित्र हैं। परन्तु सीता तुलसी-मानस की उपज है। स्वयंवर से लेकर वनवास के समय तक का सीता का आचार-व्यवहार रमणी के स्वतंत्र जीवन को सूचित करता है। वन में संग ले चलने की सीता की अभ्यर्थना, सीय-राम संवाद, स्त्री-पद को गौरव प्रदान करता है, और स्त्री-पुरुष की एक संयुक्त सत्ता बनाता है, जिसमें स्त्री अंग प्रधान है। वन में आये हुए पितृ-परिवार से मिलने के बाद जब माता-पिता उनके पास ही जानकी से रात्रि बिताने का अनुरोध करते हैं, तब स्पष्ट शब्दों में जानकी उत्तर देती हैं कि "इहाँ न भल रजनी कर वासू", 'भल'—उचित—नहीं होगा, और राम के पास वापिस आ जाती हैं। यह प्रसंग अत्यंत गंभीर है। लौकिक शील संकोच छोड़कर, पत्नी अपने श्रेष्ठ धर्म का पालन करती है। यह तुलसीदास का स्त्री-आदर्श है, और अनुपम है।

इसी श्रेणी की मौलिकता केवट, निषादराज और वनवासिनी भिल्लिनी के साथ भगवान् राम के व्यवहार में है। लोक-वेद दोनों को अनदेखा कर, भगवान् उनको अपना लेते हैं, भिल्लिनी के जूठे बेर खाकर प्रसन्न होते हैं। उनके कर्मों पर ध्यान न देकर, सभी बैरियों को, राम, शरीर त्याग के उपरान्त, बैकुण्ठवास की गति देते हैं। यह तुलसीदास की सामाजिक न्याय की भावना है। आज की कौन सुधार-योजना स्त्री और तथाकथित दलित समुदाय को उच्चतर प्रेरणा प्रदान कर सकती है? बहुओं और अन्य सभी वर्गों की स्त्रियों को ये आदर्श अत्यन्त ऊँचे पद पर आसीन करते हैं। खेद है, आज का युवतीसमाज रामचरित-मानस के अध्ययन से विमुख होता जा रहा है।

इस विमुखता का कारण निर्मूल भ्रांति है। उनके कानों में कदाचित् दो-चार चौपाइयाँ गूँजती रहती हैं—जैसे,

शूद्र गँवार ढोल पशु नारी,
ये सब ताड़न के अधिकारी।
सहज अपावनि नारि, आदि।

परन्तु यह उस पतित समाज की वाणी है, जिसमें विद्या-विचार का लोप हो गया था। यह उस समाज की ध्वनि है जिसमें ताड़का, शूर्पणखा, मन्थरा, कैकेयी आदि दिखायी गयी हैं। ये जैसे स्मरणीय नहीं हैं, वैसे कवि की तत्सम्बन्धी उक्तियाँ भी। वे तो उद्यान के काँटे, कंकड़ी और गली हुई मिट्टी हैं। उद्यान के सम्बन्ध में हम सुन्दर फूलों का ही ध्यान रखते हैं और हमारे मानस में 'फुलवारी' का ही चित्र होता है। जिस नारी-समाज में जगज्जननी हैं, सुमित्रा-कौशल्या जैसी सपत्नियाँ और मातायें हैं, तारा-मंदोदरी जैसी विशुद्धहृदया, महिलायें हैं, अनुसूया जैसी ऋषि-पत्नी है. भिल्लिनी जैसी परमभक्त है, उसको अपावन कैसे कहा जा सकता है? इनका हृदय शुद्ध होकर, ज्ञान और दर्शन का स्रोत है, जिसको राम का वास्तविक रूप दिखायी दे जाता है, जब दूसरे अभी भ्रम में रहते हैं। हमारी युवतियाँ यह क्यों भूल जाती हैं कि राम के विराट् और चतुर्भुज रूप का प्रथम दर्शन कौशिल्या को मिला। यह स्त्री-हृदय की सहज पावनता का प्रमाण है अथवा अपावनता का? सत्य तुलसी का श्रद्धा-विश्वास इनसे प्रतिबिम्बित होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चतुःशती के सुअवसर पर, रामचरितमानस विषयक भ्रम दूर हो जाना चाहिए और उसके दिव्यरूप का निखार हो जाना चाहिए। महात्मा तुलसीदास का सामाजिक आदर्श सर्वथा प्रगतिशील है। समझने मात्र की आवश्यकता है। कवि अर्वाचीनों का भी नेता है।

रामचरितमानस के कवि का दूसरा उपेक्षित अंग उसका हृदय है। काव्य के गुणों और दार्शनिक पृष्ठभूमि को लेकर पर्याप्त विचार हुआ है। परन्तु कवि के सिद्ध-योगी-हृदय पर ध्यान नहीं दिया गया है। इससे कोई भ्रान्ति तो नहीं उत्पन्न हुई है परन्तु तुलसी विषयक ज्ञान अपूर्ण अवश्य रह गया है।

प्रस्तुत लेखक की दृढ़ धारणा है कि तुलसीदास ब्रह्म-दर्शी योगी थे, और स्वभाव से ब्राह्मी स्थिति में ही बने रहते थे। लौकिक भान उनके लिए छुट्टी बिताने के सदृश था। ऐसी धारणा कवि के कतिपय उपमानों से बनती है। उदाहरण के लिए दो-तीन उपमायें पर्याप्त होंगी—

उभय मध्य सिय सोहति कैसी,
ब्रह्म जीव बिच माया जैसी ॥
सुनहु नाथ कह मुदित विदेहू,
ब्रह्म जीव इव सहज सनेहू ॥ रामचरितमा०

× × ×

जलजुत विमल सिलनि
झलकत नभ वन प्रतिबिम्ब तरंग।
मानहु जग रचना विचित्र
बिलसति विराट अँग-अंग ॥ (गीतावली)

उपमान का प्रयोग उपमेय के चित्र को अधिक सुबोध बनाने, अधिक स्पष्ट करने के लिए किया जाता है। कवि उन उपमानों को लेता है, जिन्हें वह अधिक सफाई से देखता रहता है, जो उसके लिए सहज दृश्य होते हैं। राम और लक्ष्मण के बीच सीताजी वन मार्ग में जारही हैं। इस उपमेय को कवि स्पष्ट करता है ब्रह्म और जीव के मध्य माया की वर्तमानता को लेकर। कवि के लिए ये तत्त्व सहज दर्शन के विषय हैं। उसके लिए ब्रह्म, जीव और माया तत्त्व अधिक मूर्त्त हैं। इसी प्रकार ब्रह्म और जीवात्मा का सम्बन्ध तुलसी-हृदय के लिए अधिक सुगम है। वह महायोगी विराट् के गर्भ को भी देखता रहता है, जिसमें सृष्टि-रचना के उपादान वर्त्तमान रहते हैं। अनेक पाठकों के लिए ये उपमान और भी दुर्बोध, दुर्गम प्रतीत होते हैं। परन्तु कवि तो अपने अनुभाव में लीन रहता है, और अपनी देखी बातों को व्यक्त करता है। आरम्भ में ही कवि ने घोषित कर दिया है कि "स्वान्तःसुखाय" यह गाथा लिखी जा रही है।

कवि की यही ब्रह्म-दृष्टि उससे बार-बार कहलाती है कि राम तो परब्रह्म हैं जो लीला हेतु चरित कर रहे हैं :

निगम नेति शिव अंत न पावा,
ताहि धरे जननी हठि धावा ॥ रामचरितमा०

× × ×

तुलसी जेहि के पदपंकज तें
प्रगटी तटिनी जो हरै अघ गाढ़े।
सो प्रभु स्वै सरिता तरिबे कहँ
माँगत नाव करारे ह्वै ठाढ़े ॥ कविता०

इन दिव्य उक्तियों से सामान्य कोटि के पाठकों के काव्य-रसास्वादन में व्यवधान पड़ जाता है, जैसा स्वर्गीय पदुम-लाल पुन्नालाल महोदय का मत था। परन्तु अध्यात्मरस में लीन पाठकों का गहरा रंजन होता है।

इस प्रकार हमने देखा कि उपर्युक्त दो विषयों को सामान्यतः किस प्रकार उपेक्षित किया गया है। वास्तव में इनसे ही महाकवि की महिमा का अनुमान लगाया जा सकता है। अपनी गहराई, गहनता, उच्चता एवं विस्तार से तुलसीदास विश्वसाहित्य में अप्रतिम हैं—"समुझत बनै बरनि नहिं जाई।"

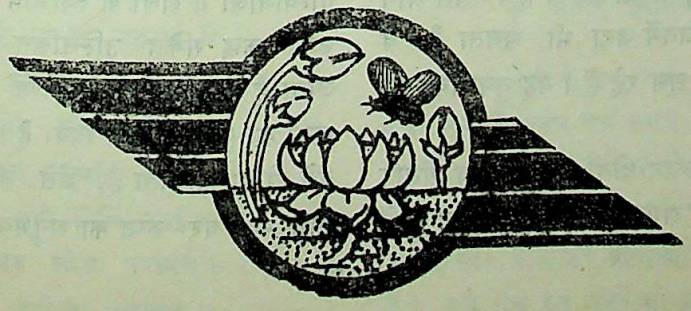

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'मानस' में खल-प्रकृति-निरूपण

आचार्य गंगाधर मिश्र

किसी युग का सच्चा साहित्यकार ही उस युग का सच्चा चिकित्सक होता है। जिन आंतरिक रोगों की प्रतिक्रिया मनुष्य के बाह्य जीवन पर होती है, उन्हें दूर किये बिना बाह्य रोगों की चिकित्सा कभी स्थायी फलवती नहीं सिद्ध हो सकती है। बाहरी दुर्बलताएँ किसी प्रकार कम होने पर भी यदि भीतरी दुर्बलताएँ बढ़ती जायें, तो फिर बाहरी दुर्बलताओं का ध्वंसक हो जाना नितान्त स्वाभाविक है। मनुष्य-जीवन को उन्नतिशील एवं नीतिनिष्ठ बनाने के लिए जिस प्रकार गोस्वामीजी ने मानव के महत्त्व-बोध का परिचय दिया है, उसी प्रकार मानव-जीवन की ऊर्ध्वगतियों और अधोगतियों का भी प्रत्यक्ष कराया है। जब तक मानव अपने विकास की ऊँचाई तथा ह्रास की विवशताओं को ठीक-ठीक हृदयंगम नहीं कर लेता है, तब तक अधोगतियों से बचकर ऊपर उठने का दृढ़ संकल्प लेने में वह असमर्थ ही रहता है। गोस्वामीजी ने अपने युग के सामाजिक जीवन में अधोगतिजन्य नैराश्य एवं दैन्य को देखा ही नहीं था, बल्कि अनेक मुसीबतों को भोगा भी था। अधोगति के प्रवाह में बहनेवाले जीवों को उन्होंने खल, असंत एवं राक्षस के रूप में दिखलाया है। इससे मनुष्य को अपनी कमजोरियों को समझने में सर्वदा सहायता मिलेगी। उनके 'श्री रामचरितमानस' में खल, असंत अथवा राक्षस-जीवन की निंदा इसी कारण की गयी है। 'विनयपत्रिका' जैसी भक्ति-प्रधान रचना में भी उन्होंने खल-शक्ति के व्यापक प्रभुत्व का परिचय देते हुए कहा है :—

सीदत साधु साधुता सीदति,
खल विलसत हुलसत खलई है।

भावार्थ यह है कि सज्जन लोग ही दुःखी नहीं हैं, जिनमें जरा भी सज्जनता है, वे भी संतप्त हैं। खल लोग ही मौज नहीं उड़ा रहे हैं, जिनमें जरा भी खलता है, वे भी आनन्द की मस्ती में झूम रहे हैं। यह युगजीवन का उनका अपना अनुभव है।

वास्तव में खल और सज्जन दोनों का अस्तित्व संसार में स्वाभाविक है इसीलिए 'रामचरितमानस' में सज्जनों की वन्दना के साथ-साथ खलों की वन्दना भी की गई है। खल-प्रवृत्ति के प्राणी दूसरों के हित की हानि में अपने लाभ का अनुभव करते हैं, दूसरों को नष्ट करने में ही उन्हें आनन्द की प्राप्ति होती है, दूसरों की सुखाशयता को देखकर ही वे विषाद का अनुभव करते हैं, दूसरों के दोष को वे हजार आँखों से देखते हैं, और दूसरों के भलाईरूपी घी में उनका मन मक्खी के समान दूषण का कारण बनता है। जिस प्रकार आकाश से गिरनेवाले ओले कृषि को नष्ट करते हुए स्वयं नष्ट हो जाते हैं उसी प्रकार दूसरों के अनिष्ट के लिए वे अपने शरीर तक का त्याग करने को प्रस्तुत हो जाते हैं। इसीलिए तुलसीदासजी ऐसे खलों को नमस्कार करते हैं, जो शेषनाग की तरह क्रोधरूपी विष से उत्तेजित हजार मुखों से दूसरों की निन्दा करते फिरते हैं। वचन रूपी बज्र से दूसरों का अहित करना ही खलों को प्रियतर जान पड़ता है और हजार नेत्रों से वे दूसरों की बुराई को हर समय देखने में लगे रहते है :—

परहित हानि लाभ जिन्ह केरे।
उजरे हरष विषाद बसेरे।
जे पर दोष लखहिं सहसाखी।
परहित घृत जिन्ह के मन भाखी।
पर अकाजु लगि तनु परिहरहीं।
जिमि हिम उपल कृषि दलि गरहीं।
बंदौं खल जस सेष सरोषा।
सहस बदन बरनै परदोषा।
वचन बज्र जेहि सदा पियारा।
सहस नयन परदोष निहारा।

'मानस' के आरम्भ में खलों की वंदना करते हुए गोस्वामीजी ने खलों के स्वाभाव का जो परिचय दिया है उसका कुछ संकेत उल्लिखित चौपायों द्वारा प्राप्त हो जाता है। 'मानस' 'उत्तरकाण्ड' में भगवान् राम ने स्वयं खलों का पूर्ण परिचय दिया है। खल का साहचर्य सर्वदा वैसे ही दुःखद होता है, जैसे सीधी गाय को दुष्ट गाय के साथ रहने पर कष्ट का अनुभव करना पड़ता है। खलों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९७३

के हृदय में विशेष दुःख उस समय होता है, जब वे दूसरों की बढ़ती हुई सम्पत्ति को देखते हैं। यदि कहीं दूसरों की निन्दा सुनने का उन्हें अवसर मिलता है, तब वे इतना प्रसन्न होते हैं, जैसे कहीं पड़ी हुई अर्थ-राशि ही उन्हें प्राप्त हो गई हो। वे काम, क्रोध, मद और लोभ के कार्य में हर समय लगे रहते हैं। वे स्वभावतः क्रूर, छली, दुष्ट और सब प्रकार के पापों के केन्द्र होते हैं। बिना कारण दूसरों से बैर करना उनके लिए स्वाभाविक होता है। जो लोग उनकी भलाई भी करते हैं, उनके साथ भी उनका शत्रुता का ही व्यवहार होता है। उनका लेन-देन असत्यमय होता है। यद्यपि उनकी वाणी मोर के समान मधुर होती है किन्तु उनका हृदय मोर के समान ही कठोर होता है, जो सर्प को खाकर भी पचा लेता है। इंद्रियों के सुख में वे इतने तन्मय रहते हैं कि यमराज के भय को भी भूल जाते हैं। किसीकी प्रसंशा सुनने पर वे ऐसी साँस लेते हैं, जैसे उन पर जाड़ा देकर भस्मीभूत ज्वर का आक्रमण हो गया हो। जब कहीं किसीको विपत्ति में देखते हैं, तो इतना आनंदित हो जाते हैं, मानो उन्हें सारे संसार का राज्य मिल गया हो। व्यक्तिगत स्वार्थ के पोषण में परिवार का विरोध करते हुए भी उन्हें संतोष मिलता है। वे लम्पट, कामी, लोभी तथा अत्यंत क्रोधी होते हैं एवम् माता, पिता, गुरु और ब्राह्मण को सम्मान नहीं देते हैं। अपने को तो बर्बाद करते ही हैं, जो उनके साथ रहते हैं उन्हें भी नष्ट कर देते हैं। वे मोह के वश में होकर दूसरों से शत्रुता बढ़ाते रहते हैं। सज्जनों का संग और भगवान् की कथा उन्हें अच्छी नहीं लगती है। वे मूर्ख, कामी तथा दुर्गुणों के समुद्र-स्वरूप ही होते हैं। वे वेदों की निन्दा करते हैं और दूसरों की सम्पत्ति हड़प कर उसका स्वामी बन जाते हैं :—

सुनहु असंतन्ह केर सुभाऊ।
भूलेहु संगति करिय न काऊ॥
तिन्ह कर संग सदा दुखदाई।
जिमि कपिलहिं घालइ हरुहाई॥
खलन्ह हृदय अतिताप बिसेखी।
जरइ सदा पर संपति देखी॥
जहँ कहुँ निन्दा सुनहिं पराई।
हरषहिं मनहुँ परी निधि पाई॥
काम क्रोध मद लोभ परायन।
निर्दय कपटी कुटिल मलायन॥
बयरु अकारन सब काहू सों।
जो कर हित अनहित ताहू सों॥
झूठइ लेना झूठइ देना।
झूठइ भोजन झूठ चबेना॥
बोलहिं मधुर बचन जिमि मोरा।
खाहिं महा अहि हृदय कठोरा॥
परद्रोही परदार रत, पर धन पर अपवाद।
ते नर पांवर पापमय, देह धरे मनुजाद॥
लोभइ ओढ़न लोभय आसन।
सिस्नोदर पर जमपुर त्रासन॥
काहू कै जौ सुनहिं बड़ाई।
स्वास लेहिं जनु जूड़ी आई॥
जब काहू कै देखहिं बिपती।
सुखी भये मानहुँ जग नृपती॥
स्वारथरत परिवार विरोधी।
लंपट काम लोभ अति क्रोधी॥
मातु पिता गुरु बिप्र न मानहिं।
आपु गये अरु घालहिं आनहिं॥
करहिं मोहबस द्रोह परावा।
संत संग हरि कथा न भावा॥
अवगुन सिंधु मंद मति कामी।
वेद विदूषक पर धन स्वामी॥

खलों के इस बढ़ते हुए समुदाय को ही शंकरजी ने पार्वती से 'राक्षस' कहा है, जिनका परिचय अधोलिखित पंक्तियों द्वारा प्राप्त हो जाता है—

बाढ़े खल बहु चोर जुआरा।
जे लंपट परधन पर दारा॥
मानहिं मातु पिता नहिं देवा।
साधुन्ह सन करवावहिं सेवा।
जिन्ह के यह आचरन भवानी।
ते जानेहु निसिचर सब प्रानी।

गोस्वामीजी के इन खल-प्रकृति के प्राणियों को हम अपने युग में सर्वत्र देख सकते हैं। इन खलों की ही माया से नैतिक पतन, पर-श्रम-शोषण और उत्पीड़न के वैषम्य में आज सारे देश की प्रगति अवरुद्ध है। नित्यप्रति हत्या, चोरी और डाके की घटनाओं से अखबारों के पृष्ठ रँगे रहते हैं। जब तक इन खलों का प्रभाव प्रबल रहेगा, तब तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन में सामंजस्य अथवा संतुलन की आशा आकाश-कुसुम के समान असंभव है।

गोस्वामी तुलसीदासजी का मानव-अधोगति दर्शन आज के मानव के आत्मनिरीक्षण के लिए भी प्रेरक है। इस कथन में किसी भी प्रकार के भ्रम की आशंका नहीं है। कभी-कभी दुष्ट प्राणी भी अच्छे मनुष्य का साहचर्य होने पर कुछ समय के लिए अच्छा कार्य करते दिखाई देते हैं, पर उनकी पाप-प्रवृत्तियाँ कभी दबती नहीं हैं। कभी-कभी संसार को धोखा देनेवाले लोग भी सुन्दर वेश धारण करके वेश के प्रभाव से पूजा के अधिकारी बन जाते हैं। गोस्वामीजी का यह कथन आज के लिए भी पूर्ण सत्य है:—

खलउ करहिं भल पाइ सुसंगू।
मिटइ न मलिन सुभाउ अभंगू॥
लखि सुवेष जग वंचक जेऊ।
वेष प्रताप पूजिअहिं तेऊ॥

खल और संत-प्रकृति में भेद

खल और सज्जन दोनों का उद्भव स्थान एक है। दोनों माता की गोद को अलंकृत करते हैं। दोनों की स्थिति संसार-रूपी जल में उत्पन्न होनेवाले कमल और जोंक के समान होती है। उनकी स्थिति अमृत और विष के तुल्य होती है :—

उपजहिं एक संग जग माहीं।
जलज जोंक जिमि गुन बिलगाहीं॥
सुधा सुरा सम साधु असाधू।
जनक एक जग जलधि अगाधू॥

सज्जनों के साहचर्य से आनन्द की अपूर्व प्रतीति होती है। उनसे दूर होते समय प्राणांत जैसा कष्ट होता है। इसके ठीक विपरीत दुर्जनों के साहचर्य से इतना कष्ट होता है कि जीवन भर उनका मुँह देखने की इच्छा नहीं होती। गोस्वामी तुलसीदासजी ने खलों और संतों के अन्तर को अत्यन्त स्पष्टता से अभिव्यक्त किया है:—

बिछुरत एक प्रान हरि लेहीं।
मिलत एक दारुन दुख देहीं॥

संत और खल दोनों ही अपने-अपने व्यवहार से सुयश एवं अयश प्राप्त करते हैं। सज्जन चन्द्रमा, गंगा और अमृत के समान होते हैं, जो दूसरों को अमृतत्व एवं पवित्रता प्रदान करते हैं। इसके ठीक विपरीत खल विष, आग, कर्मनाशा नदी और व्याध के समान होते हैं :—

भल अनभल निज-निज करतूती।
लहत सुजस अपलोक बिभूती॥
सुधा सुधाकर सुरसरि साधू।
गरल अनल कलिमल-सरिब्याधू॥

खलों और सन्तों के मौलिक भेद की ओर संकेत करते हुए भगवान् राम ने भरतजी को समझाया है कि कुल्हाड़ी और चन्दन के समान खलों एवं सज्जनों की कार्यपद्धति होती है। कुल्हाड़ी चन्दन को काटती है, पर चन्दन अपना गुण देकर उसे सुगंधित कर देता है। इसीलिए चन्दन देवताओं के मस्तक पर चढ़ता है, किन्तु कुल्हाड़ी के मुख को आग में तपाकर पीटा जाता है :—

संत असंतन्ह के असि करनी।
जिमि कुठार चन्दन आचरनी॥
काटइ परसु मलय सुनु भाई।
निज गुन देइ सुगन्ध बसाई॥
तातें सुर सीसन्ह चढ़त, जगबल्लभ श्रीखंड।
अनल दाहि पीटत घनहिं, परसुबदन यह दंड॥

सन्तों और खलों के व्यवहार की जीवन में किस प्रकार परिणति होती है, उसे अवगत कराने की ही भावना से गोस्वामीजी ने सम्भवतः निम्नलिखित पंक्ति लिखी है :—

साधु असाधु सदन सुक सारी।
सुमिरहिं राम देहिं गनि गारी॥

मनुष्य यदि अपने भीतर के संतत्व एवं खलत्व पर विचार करने की शक्ति प्राप्त करने में समर्थ हो जाय, तो रामराज्य की भावना अवश्य सार्थकता प्राप्त कर सकती है। इसलिए गोस्वामीजी ने अत्यन्त विशद रूप से खल एवं संत-प्रकृति का प्रत्यक्ष कराते हुए दोनों के अन्तर को स्पष्ट किया है। खलों के दुर्गुणों पर संतों के सद्गुणों की विजय से ही 'रामराज्य' की स्थापना सम्भव है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन्म-मरण की जटिल पहेली

श्री सन्तराम बी० ए०

जन्म-मरण सचमुच जटिल पहेली है। इसका ठीक-ठीक पता लगाना कोई आसान बात नहीं है। मैं करीब ४० वर्षों से इसकी शोध करता आ रहा हूँ। मैंने अपने पिछले जन्मों की बातें बतानेवाले बच्चों की बहुत-सी घटनाएँ इकट्ठी की हैं। मैं ऐसे बच्चों से स्वयं भी मिला हूँ। २½ वर्ष हुए अपने पूर्व जन्म की बातें बतानेवाले एक बच्चे से मुझे मिलने का अवसर मिला। मेरे गाँव पुरानी बसी जिला होश्यारपुर से २ मील के अन्तर पर नारा नाम का गाँव है। वहाँ सात-आठ वर्ष का एक लड़का कपड़ों में आग लग जाने से जलकर मर गया था। मरकर वह वहाँ से लगभग १५ मील के अन्तर पर ठाडा नामक गाँव में पैदा हुआ। वहाँ वह शायद सातवीं-आठवीं कक्षा में पढ़ता था जब कि कुएँ में गिरकर उसकी मृत्यु हो गयी। उसने मरकर वहाँसे निकटवर्ती गाँव टोडरपुर में लड़की के रूप में जन्म लिया। जब लड़की कोई पाँच वर्ष की हुई तब अपने पिता चमनलाल रन्तू को तंग करने लगी कि मुझे मेरे घर नारा ले चलो। चमनलालजी नारा गाँव नहीं जानते थे। लड़की यशोदा ने कहा कि मैं आपको रास्ता बता दूँगी। जब वह उसे लेकर नारा आये तब मुझे भी उस लड़की को देखने का अवसर मिला। उसके बाद चमनलालजी उसे लेकर मेरे पास मेरे गाँव भी आये। मैंने यह सारी घटना पत्रों में छपवा दी। उसे पढ़कर इलाहाबाद की मनोविज्ञानशाला के प्राध्यापक श्री जमुनाप्रसादजी और अमरीका के वर्जिनिया विश्वविद्यालय के प्रधान आचार्य श्री स्टीवेन्सन (Stevenson) यशोदा को देखने आये। तब वे मुझसे भी मिले। श्री स्टीवेन्सन ने पुनर्जन्म के सिद्धान्त पर अपनी लिखी Twenty Cases Suggestive of Re-incarnation नाम की पुस्तक की एक प्रति, जिसका भार लगभग दो किलो है, मुझे समुद्र मार्ग से भेजी है।

मरणोपरान्त अपनी माँ को पुकारनेवाली एक लड़की की घटना मुझे अभी मालूम हुई है। उसका पूरा हाल जानने के लिए मैंने उसके पिता श्री लेखराज ग्रोवर को पत्र लिखा था। उसके उत्तर में उन्होंने जो मुझे अंग्रेजी में पत्र भेजा उसका हिन्दी अनुवाद आगे दिया जाता है।

एल० आर० ग्रोवर,
बी, १ पासी रोड, पटियाला
२७-३-७३

आदरणीय सन्तरामजी,

नमस्ते। २६-३-७३ को भेजा हुआ आपका पत्र मुझे प्राप्त हुआ। खबर लेने के लिए बहुत धन्यवाद। गंभीर रूप से जल जाने के कारण मेरी पुत्री अरुणा का स्वर्गवास जो हुआ उसका विवरण निम्न प्रकार से है।

(१) १५-१-७३ को सायंकाल ६ बजे के लगभग कोई दम्पति अतिथि उसके यहाँ पधारे। उसने और उसके पति ने आगतों का चाय आदि से सत्कार किया। जाते समय मेहमानों ने यह प्रस्ताव रखा कि अरुणा उनके साथ सिनेमा चले। पर थकी हुई होने के कारण उसने यह प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया। उसके पति व दोनों बच्चे टहलने के लिए बाहर चले गये। साग-सब्जी बनाने के लिए वह घर पर ही रही और वह अकेली थी। रसोई-घर में वह गंभीर रूप से जल गयी और सहायता के लिए बाहर दौड़ी। तुरन्त ही वह फ़र्टिलाइज़र अस्पताल पहुँचाई गयी जो उनके घर के बहुत ही निकट है।

उसी दिन सन्ध्या को हमें यह खबर मिली और अगले दिन सबेरे साढ़े दस बजे हम नया नंगल पहुँचे। सड़ने के कारण उसके शरीर पर कोई कपड़ा नहीं था और वह खाट पर एक छोलदारी के नीचे पड़ी थी। छूत हो जाने के डर से सिवाय डाक्टरों और नर्सों के किसीको अन्दर जाने नहीं दिया जाता था। पहले हम भी उससे नहीं मिल सके क्योंकि एक तो छूत का डर, दूसरे हमें देखकर भावावेग से उसका काम तमाम हो सकता था। अधिकांश समय उसे मार्फिया देकर संज्ञाहीन रखा जाता था और जब उसका असर दूर हो जाता और वह पूर्णतः सचेतन हो जाती तब हमें सूचना दी जाती थी।

(२) १६-१-७३ को सायं काल पाँच बजने के बाद उसने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नर्स से पूछा कि हम लोग पटियाला से आये या नहीं। नर्स ने उसे बताया कि हम लोग बाहर बैठे हैं। तब उसने नमस्ते कहने के लिए हाथ ऊपर उठाये और नर्स से अनुरोध किया कि हमसे उसका नमस्ते कह दे। तदनन्तर वह इस संसार से विदा हो गयी। उसके हाथ वैसे ही जुड़े पड़े थे। साढ़े पाँच बजे डाक्टरों ने कहा कि उसका निधन हो गया है। तुरन्त ही मैं उसका मुख देखने के लिए कमरे के भीतर चला गया। वस्तुतः मैं और मेरी पत्नी उसकी मृत्यु के समय कमरे के बाहर अस्पताल में ही उपस्थित थे।

(३) १७-१-७३ को सुबह दस बजे उसका शवदाह हुआ। रात भर उसका शरीर अस्पताल में ही रखा रहा और हम सब जामाता के घर गये, जो अस्पताल से लगभग एक फर्लांग दूर पर है।

मेरी पत्नी, अरुणा की ननद पुष्पा और उसका पति सब एक कमरे में सो रहे थे तथा मैं और कुछ अन्य सज्जन घर के मुख्य द्वार की ओर जानेवाले गलियारे के पारवाले कमरे में सोये पड़े थे। अरुणा के शवदाह की पहली रात को लगभग डेढ़ बजे श्रीमती ग्रोवर जिस कमरे में सो रही थीं उस कमरे की खिड़की से "ममी, ममी" पुकारने की वैसी ही धीमी आवाज आयी जैसी अरुणा पुकारा करती थी। यह आवाज श्रीमती ग्रोवर और पुष्पा ने सुनी। पुष्पा ने श्रीमती ग्रोवर से कहा कि हमारे रिश्तेदारों में से कोई आया है। इस पर श्रीमती ग्रोवर ने कहा कि हमारे पुत्र अनिल ने सवा आठ की गाड़ी से आने की सूचना दी है। पुष्पा को लगा कि यह अरुणा की आवाज़ है। तत्पश्चात् तुरन्त ही नितान्त परिचित 'ममी' की पुकार फिर आयी और प्रवेश द्वार पर जोर से खड़का हुआ। पुष्पा के पति ने आवाज़ सुनी और कहा कि कोई आया है। मैं जिस कमरे में सो रहा था उस कमरे में सो रहे एक अन्य सज्जन ने भी यह आवाज़ सुनी। श्रीमती ग्रोवर ने दरवाज़ा खोलकर बाहर देखा। वहाँ कोई नहीं था। हवा भी नहीं चल रही थी।

चूँकि हम आर्य-समाजी हैं, इसलिए ऐसी चमत्कारी घटनाओं पर विश्वास नहीं करते। पहले श्रीमती ग्रोवर ऐसी बातों पर ध्यान नहीं देती थीं, लेकिन जब उपर्युक्त अन्य लोगों द्वारा भी आवाज़ सुनने और दरवाज़ा खड़खड़ाने की पुष्टि की गयी तब हम इस विषय में अधिक जानकारी पाना चाहते हैं। क्या अरुणा की आत्मा अपनी माँ से अन्तिम भेंट के लिए आयी थी अथवा यह जाँचने के लिए कि हम सचमुच नये नंगल (गाँव) में हैं? 'ममी' पुकारने की आवाज़ उसी कमरे की खिड़की से ही क्यों आयी, जिसमें श्रीमती ग्रोवर सो रही थीं? मेरे कमरे की खिड़की से क्यों नहीं आयी? इसकी सरल व्याख्या क्या हो सकती है? क्या भौतिक शरीर के बिना आत्मा बोल सकती है?

आपका

एल० आर० ग्रोवर

शरीर के बिना मृत आत्मा के अपनी माँ को बुलाने की बात असम्भव नहीं कही जा सकती। जब कोई आत्मा अपने मरणस्थान से चलकर कई मील दूर दूसरी माता के गर्भ में जा सकती है तब यह बोल भी सकती है।

पूर्व जन्म की ऐसी बातें प्रायः वही बच्चे बताते देखे गये हैं जिनकी पूर्व जन्म में मृत्यु किसी दुर्घटना से हुई थी, या मृत्यु के समय में कोई लालसा जिनके मन में रह गयी थी।

आध्यात्मिक विषयों और पुनर्जन्म में रुचि रखनेवाले सज्जनों को इस विषय की शोध के लिए यत्न करना चाहिए। जीवन के ८७ वर्ष में मेरा शरीर और विशेषकर दृष्टि इतनी दुर्बल हो गयी है कि मैं शोध कार्य के लिए कहीं यात्रा नहीं कर सकता।

(नवम्बर १९६५ की सरस्वती में 'मरणोत्तर क्रियाशीलता' के नाम से गवर्नमेंट इंटर कालेज, इटावा के हिन्दी प्राध्यापक श्री शिवदत्त चतुर्वेदी एम० ए० का एक लेख छपा है। उसमें मरणोपरान्त एक व्यक्ति के शरीर रूप में रात में उस मंदिर में जाकर दर्शन करने और उसके पुजारी से एक संन्यासी से वार्तालाप करने की घटना छपी है जिसने दर्शन करने प्रति रात्रि वह जाया करता था। यह घटना श्री ग्रोवर की पुत्री के मरणोपरान्त अपनी माँ को आवाज देने तथा दर्वाजा खटखटाने की संभावना को पुष्ट करती है।—**सम्पादक, सरस्वती**।)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देश का आर्थिक ढाँचा चरमरा रहा है

श्री शंकरसहाय सक्सेना

आज देश में जितनी निराशा और क्षोभ व्याप्त है वह किससे छिपी नहीं है। महँगाई आकाश छू रही है। यही नहीं कि वस्तुओं के मूल्य बहुत ऊँचे हो गये हैं वे प्रतिदिन ऊँचे होते जा रहे हैं। मूल्यों की इस अबाध गति से वृद्धि को रोकने की बात सरकार बहुधा करती है परन्तु उसके इस कथन पर अब कोई विश्वास नहीं करता। जब प्रथम बार रुपए का अवमूल्यन किया गया तब सरकार ने बड़े उत्साह और गर्वोक्ति के साथ यह घोषणा की थी कि मूल्यों को बढ़ने नहीं दिया जावेगा। परन्तु सर्व-साधारण ने देखा कि वह गर्वोक्ति केवल शेखचिल्ली की डींग से अधिक कुछ नहीं थी। तब से बराबर जब सरकार कोई आर्थिक निर्णय लेती है, जिससे कि मूल्यों में वृद्धि होने की सम्भावना होती है, सरकार फिर घोषणा करती है कि सरकार मूल्यों को बढ़ने नहीं देगी परन्तु मूल्य बढ़ जाते हैं। अस्तु, सर्वसाधारण का सरकार के कथन पर विश्वास नहीं रहा है। सम्भवतः यही कारण है हमारे वित्तमन्त्री श्री यशवन्त राव चह्वाण ने अब यह कहना आरम्भ कर दिया है कि विकासोन्मुख देशों में थोड़ी मूल्य वृद्धि होना अनिवार्य है उससे बचा नहीं जा सकता। परन्तु स्थिति यह है कि मूल्यों की वृद्धि इतनी अधिक और इतनी तेजी से हो रही है कि सर्वसाधारण की बचत और पूँजी समाप्त होती जा रही है। अभी हाल में वित्त मन्त्री ने स्वीकार किया है कि देश का अर्थतन्त्र मुद्रा-स्फीत के कुचक्र में फँस गया है।

१९७२ के वित्तीय वर्ष को ही लें तो गत वित्तीय वर्ष में मूल्यों की वृद्धि १४ से १६ प्रतिशत तक हुई। कल्पना कीजिए कि एक नागरिक ने अपने व्यय को सीमित कर वर्ष में दस हजार रुपये बचाए और बैंक में एक वर्ष की मुद्दती जमा (फिक्सड डिपाजिट) में ३ प्रतिशत ब्याज पर रख दिए। उस वर्ष के अन्त में जब निक्षेप या जमा की अवधि समाप्त हुई तो उसको दस हजार छै सौ रुपए बैंक से मिले परन्तु वस्तुओं और सेवाओं का मूल्य तब तक १४ या १६ प्रतिशत बढ़ गया अर्थात् रुपए की क्रय शक्ति १४ प्रतिशत अथवा १६ प्रतिशत कम हो गयी। दूसरे शब्दों में यद्यपि उस नागरिक को ६०० रु० ब्याज के अवश्य प्राप्त हुए परन्तु उसके १०,६०० रु० वास्तव में ९२०० रु० ही रह गये क्योंकि उस रकम की क्रय शक्ति अब ९२०० रु० के बराबर है। कालान्तर में यदि यही क्रय रहा तो आठ-दस वर्ष में जो उसने अपने उपभोग पर संयम करके खर्च को सीमित करके दस हजार रुपए बचाए थे दस या बारह वर्ष में समाप्त हो जावेंगे। मूल्य वृद्धि के कारण उसकी त्याग, संयम और श्रम से की हुई बचत नष्ट हो जावेगी। ऐसी दशा में यदि साधारण नागरिक बचत न कर आय का उपभोग कर लेना चाहता है तो आश्चर्य की बात क्या है। जब वह देखता है कि उसकी बचत को मूल्य-वृद्धि अर्थात् रुपए की क्रयशक्ति में उत्तरोत्तर ह्रास खा जावेगी तो वह बचत न कर उसका तत्काल उपभोग कर लेना चाहता है। आज जो विलासिता और प्रदर्शन पर लोग अधिक व्यय करते दिखलाई देते हैं उसके पीछे रुपए की क्रयशक्ति का तीव्र ह्रास है। जब तक सरकार मूल्य वृद्धि को नहीं रोक सकती तब तक यह कहना कि जनता सादगी का जीवन व्यतीत करे, बचत करे केवल लोगों को धोखा देना है।

मुद्रा स्फीत—मूल्यों के अबाध गति से बढ़ने का मुख्य कारण अधिकाधिक मुद्रा का प्रसार और उस प्रसार के अनुपात में धनोत्पादन की वृद्धि का न होना है। सरकार घाटे की अर्थ-व्यवस्था के द्वारा जो अन्धाधुन्ध मुद्रा-स्फीत कर रही है उसका ही यह परिणाम है। गत वर्ष को ही लें १९७२-७३ के वित्तीय वर्ष में बजट में २५० करोड़ रुपए की घाटे की अर्थव्यवस्था (डैफिसिट फाइनैंसिंग) की गयी थी अर्थात् करों द्वारा प्राप्त होनेवाली अनुमानित आय से अनुमानित व्यय २५० करोड़ रुपए अधिक रक्खा गया था जो कि कागजी नोट छापकर पूरा किया जाने वाला था। वर्ष के अन्त में जहाँ अनुमानित आय से ५०० करोड़ रुपयों की अधिक वास्तविक आय हुई वहाँ घाटे की अर्थव्यवस्था में २५० करोड़ के स्थान पर ८०० करोड़ की वृद्धि हुई। अर्थात् कुल मिलाकर १३०० करोड़ रुपयों की घाटे की अर्थव्यवस्था हुई। कहने का अर्थ यह है कि सरकार का वित्त विभाग अन्य विभागों पर वित्तीय अनुशासन लागू करने में असमर्थ है और राज्य के विभाग बजट में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो उनके लिए रकम की व्यवस्था की गयी है उसकी अवहेलना कर अधिक व्यय करते हैं। इसी प्रकार १९७३-७४ के बजट में अभी ८० करोड़ रुपए के घाटे की व्यवस्था है और वित्तमन्त्री का अनुमान है कि वेतन आयोग की सिफारिशों को कार्यान्वित करने पर सम्भवतः २५० करोड़ की घाटे की अर्थव्यवस्था करनी होगी परन्तु बहुत कुछ प्रयत्न करने पर भी लोकसभा में उन्होंने घाटे की अर्थव्यवस्था वास्तव में कितनी होगी उसको नहीं बतलाया। उद्योगपतियों और व्यापारियों का मानना है कि घाटे की अर्थव्यवस्था ८०० करोड़ रुपए से कम नहीं होगी। सम्भवतः हमारे वित्तमन्त्री तथा उनके परामर्शदाता वित्त विशेषज्ञ जर्मनी के मुद्रा-स्फीत सम्बन्धी कटु अनुभव को भूल गये हैं। प्रथम महायुद्ध के समय जर्मनी ने जो कल्पनातीत मुद्रा-स्फीत की उसका भयंकर परिणाम एक उदाहरण से स्पष्ट हो जायेगा। एक पिता ने मरने पर अपने दो लड़कों के लिए एक-एक लाख मार्क की धनराशि छोड़ी। बड़ा भाई मितव्ययी, परिश्रमी और सादा था। उसने उस राशि को व्यय न करके बैंक में जमा कर दिया। छोटा भाई शराबी था। उसने उस राशि को शराब पीने पर व्यय कर डाला। यह १९२१-२२ की घटना है। १९२२ में मार्क का मूल्य इतना गिर गया था कि बाजार में उसके बदले साधारणतया कोई दूकानदार वस्तु बेंचने को तैयार नहीं होता था यद्यपि मार्क के कागजी नोट को अस्वीकार करने पर फाँसी की सजा का विधान था। मार्क का मूल्य इतना कम हो गया था कि मितव्ययी बड़े भाई की बैंक में वह कुल एक लाख मार्क की रकम सूद सहित एक समय की चाय भर खरीद सकती थी जबकि शराबी छोटा भाई जो हजारों खाली शराब की बोतलें उसके पास जमा हो गयी थीं उनमें से केवल एक बोतल बाजार में ले जाकर एक समय का भरपेट उत्तम भोजन प्राप्त कर सकता था। मुद्रा-स्फीत के परिणामस्वरूप उस मितव्ययी परिश्रमी भाई की समस्त पूँजी ब्याज सहित समाप्त हो गयी। वह अत्यन्त निर्धन हो गया और शराबी भाई सम्पन्न बन गया। मुद्रा-स्फीत पर यदि अंकुश न लगायी जावे तो कितनी भयावह स्थिति उत्पन्न हो सकती है यह ऊपर लिखे उदाहरण से स्पष्ट हो जाती है।

धनोत्पादन की कमी—घाटे की अर्थव्यवस्था से उस समय मुद्रा-स्फीत नहीं होती और उसके दुष्परिणाम प्रगट नहीं होते जबकि उसके अनुपात में उत्पादन की भी वृद्धि होती रहे परन्तु दुर्भाग्यवश भारत में उत्पादन की गति बहुत धीमी है। प्रतिवर्ष सरकार मुद्रा-स्फीत दस या ग्यारह प्रतिशत कर रही है जबकि वास्तविक उत्पादन में वृद्धि केवल तीन प्रतिशत के लगभग होती है। ऐसी दशा में भयंकर मुद्रा-स्फीत का होना अनिवार्य है। अस्तु देश के सामने सबसे बड़ी समस्या धनोत्पादन की गति को तीव्र करना है जिससे कि जो अधिक कागजी मुद्रा छापी जावे वह उसको सोख सके। इसके लिए जहाँ एक ओर धनोत्पादन को तीव्र गति से बढ़ाना होगा वहाँ दूसरी ओर मुद्रा स्फीत को रोकना होगा।

देश में धनोत्पादन की गति अत्यन्त मन्द है, उसका कारण यह है कि धनोत्पादन के मार्ग में बहुत-सी बाधाएँ खड़ी हो गयी हैं—कच्चे माल की कमी, बिजली की कटौती, कोयले की कमी, आए दिन हड़तालें और तालाबन्दी, रेलों द्वारा व्यापारिक माल को शीघ्रतापूर्वक एक स्थान से दूसरे स्थान पर न पहुँचा सकना, सरकार की गलत नीतियाँ। सरकार की आर्थिक नीति अधिकतर राजनीतिक लाभ को दृष्टि में रखकर निर्धारित की जाती है। इसके विपरीत सरकार का गैरविकास सम्बन्धी व्यय तेजी से बढ़ता जा रहा है। यदि सरकार आर्थिक विकास के कार्यों पर व्यय करती है तो धनोत्पादन में वृद्धि होने से उस व्यय के कारण मुद्रा-स्फीत की स्थिति उत्पन्न नहीं होती परन्तु जब गैर-विकास कार्य पर अधिक व्यय होता है तो भयंकर मुद्रा-स्फीत की स्थिति उत्पन्न होने का भय उत्पन्न हो जाता है। आज हो यह रहा है कि विकास पर जो व्यय होता है उसके अनुपात में धनोत्पादन नहीं होता साथ ही अनुत्पादक व्यय जिसका आर्थिक विकास से कोई सम्बन्ध नहीं है वह भी तेजी से बढ़ रहा है। फलतः मुद्रा-स्फीति तीव्र गति से हो रही है। जब मुद्रा-स्फीति के कारण कीमतें तेजी से बढ़ती हैं तो वेतन आयोग बिठाया जाता है, वेतन और मजदूरियाँ बढ़ाई जाती हैं, योजना का व्यय और अधिक बढ़ जाता है और घाटे की अर्थव्यवस्था का कुचक्र स्थापित हो जाता है। आज देश की आर्थिक स्थिति इस कुचक्र की शिकार हो गयी है। उसका निराकरण करना अत्यन्त आवश्यक है अन्यथा देश का आर्थिक ढाँचा चरमरा उठेगा।

निराकरण—इस भयावह स्थिति से देश की रक्षा करने के लिए मुद्रा-स्फीत को रोकने और धनोत्पादन को बढ़ाने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की आवश्यकता है साथ ही अनावश्यक और विलासिता उपभोग पर कड़ा प्रतिबन्ध लगाने की आवश्यकता है। कुछ वर्षों के लिए अनुत्पादक तथा गैर-विकास सम्बन्धी व्यय को कठोरतापूर्वक बढ़ने से रोका जावे और प्रतिवर्ष उसमें पाँच या दस प्रतिशत की कमी की जावे।

जीवन के लिए अनिवार्य आवश्यकता की वस्तुओं की कीमतों को बढ़ने न दिया जावे। आवश्यकता हो तो सरकार सभी अनिवार्य आवश्यकताओं की वस्तुओं को स्थिर मूल्य पर देने का उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले। वेतन और मजदूरी का स्थिरीकरण कर दिया जावे, उनको बढ़ाया न जावे और वेतन अथवा मज़दूरी में जीवन की अनिवार्य आवश्यकता की वस्तुएँ दी जावें। जहाँ मजदूरी का स्थिरीकरण हो वहाँ लाभ किराया, लगान और ब्याज का भी स्थिरीकरण हो। यही नहीं अधिक वेतनवाले उच्च कर्मचारियों के वेतनों का भी स्थिरीकरण कर दिया जावे। कहने का तात्पर्य यह कि मज़दूरी, वेतन, लाभ, लगान, किराया और ब्याज सभी का स्थिरीकरण हो।

हड़तालों और तालाबन्दी पर रोक लगा दी जावे। कोई भी उद्योगपति कारखाने को बन्द नहीं कर सकता और न कोई मजदूर यूनियन हड़ताल ही कर सकती है। प्रत्येक उद्योग में पंच बोर्ड स्थापित कर दिए जावें जिसमें मजदूर और मालिकों के प्रतिनिधियों के अतिरिक्त कुछ स्वतंत्र सदस्य हों। यदि किसी भी पक्ष को शिकायत हो तो बोर्ड उसके सम्बन्ध में विचार करके निर्णय दे दे। यदि बोर्ड का निर्णय मान्य न हो तो औद्योगिक न्यायालय में उस मामले को भेज दिया जावे। औद्योगिक-न्यायालय का निर्णय उभय पक्षों को मानना-अनिवार्य होगा। किसी भी दशा में हड़ताल अथवा तालाबन्दी की छूट नहीं दी जानी चाहिए। जब देश के समक्ष भयंकर आर्थिक स्थिति खड़ी हो तब हड़ताल या तालाबन्दी ठीक उसी प्रकार का अक्षम्य अपराध है कि जब देश पर शत्रु ने आक्रमण किया हो और सेना कहे कि सैनिकों का वेतन बढ़ाया जावे नहीं तो वे रणक्षेत्र में अपने हथियार डाल देंगे, शत्रु का सामना नहीं करेंगे। आज जबकि देश के समक्ष भयंकर आर्थिक संकट है तब हड़ताल या तालाबन्दी उसी प्रकार का अक्षम्य अपराध है।

आज यह प्रचलित फैशन बन गया है कि जब सरकार की कोई आर्थिक नीति असफल होती है तो उद्योगपतियों, व्यापारियों, विरोधी दलों और संयुक्तराज्य अमेरिका पर हम दोषारोपण करते हैं। इस बात की चेष्टा नहीं करते कि अपनी नीति का विश्लेषण करें। हमें अपनी औद्योगिक नीति को देश की आवश्यकता के अनुसार बनाना होगा। विदेशों की नकल कर हम अपनी समस्याओं को हल नहीं कर सकेंगे।

नवीन औद्योगिक संगठन की आवश्यकता—भारत कृषि-प्रधान देश है आज भी राष्ट्र की आधी धनोत्पत्ति कृषि द्वारा ही होती है अतएव हमें उसीके अनुकूल अपना औद्योगिक संगठन बनाना होगा जो भी कृषि-आधारित उद्योग हैं उनके स्वरूप में क्रान्तिकारी और मूलभूत परिवर्तन करना होगा। उदाहरण के लिए चीनी के भीमकाय कारखाने स्थापित न कर अपेक्षाकृत छोटे औद्योगिक संस्थान खड़े करने होंगे। अवश्य ही उनमें यांत्रिक शक्ति, विद्युत् तथा हल्के अथवा छोटे यांत्रिक शक्ति द्वारा चालित यंत्रों का उपयोग होगा। इसके लिए हमें हल्के तथा छोटे यंत्रों का आविष्कार करना होगा तथा उनका बड़ी मात्रा में उत्पादन कर उन्हें सुलभ करना होगा। आज हो यह रहा है कि गन्ना दूर-दूर से कारखाने तक लाया जाता है, मजदूरों के आवास का प्रश्न उठता है क्योंकि वह मौसमी उद्योग है वर्ष भर मज़दूर को कार्य नहीं दे सकता फिर चीनी को बाज़ारों तक ले जाना होता है। यही दशा अन्य कृषि-आधारित उद्योगों की है। देश को एक नवीन प्रकार के औद्योगिक संगठन को जन्म देना होगा उसके लिए विकेन्द्रित तकनीकों को भी जन्म देना होगा। इससे बहुत-से लाभ होंगे। दोहरे यातायात का व्यय बचेगा, मजदूरों के आवास आदि की समस्या खड़ी नहीं होगी, जो तेजी से शहरीकरण हो रहा है वह रुकेगा, गाँवों में उद्योग पनपेंगे। केन्द्रित उत्पादन से उत्पन्न होनेवाली आर्थिक विषमता और आर्थिक शक्ति का केन्द्रीयकरण नहीं होगा। जीवन की आवश्यक वस्तुओं के उत्पादन और वितरण में सामंजस्य सहज ही स्थापित हो जावेगा। चीनी, तिलहन पर आधारित उद्योग, कपास को ओटने, सूत कातने तथा मोटा सादा कपड़ा बनाने के उद्योग, चमड़ा तथा चमड़े से बननेवाली वस्तुओं के उद्योग, वन-सम्पत्ति पर आधारित उद्योगों आदि का इस प्रकार नवीन औद्योगिक संगठन करना होगा।

राज्य ने जिन उद्योगों का राष्ट्रीयकरण कर लिया है उनकी उत्पादन-क्षमता को बढ़ाना होगा और उनको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लाभदायक बनाना होगा। आज स्थिति यह है कि राष्ट्रीकृत उद्योगों से लाभ होने के स्थान पर हानि हो रही है। अकेले इस्पात के कारखानों में प्रतिवर्ष चालीस करोड़ रुपयों से अधिक की हानि होती है। कल्पना तो यह की गयी थी कि राज्य द्वारा संचालित उद्योगों से जो लाभ होगा उससे आर्थिक विकास की पंचवर्षीय योजनाओं के लिए वित्तीय साधन उपलब्ध होंगे परन्तु हो उल्टा रहा है। उन उद्योगों की हानि को पूरा करने के लिए जनता पर अधिकाधिक कर लगाना पड़ रहा है। सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों की हानि भी मुद्रा स्फीति का एक कारण है अतएव जब तक सरकार को यह निश्चय न हो जावे कि उद्योग को लाभदायक ढंग से चलाया जा सकता है आज की स्थिति में उसका सरकारीकरण नहीं करना चाहिए। यदि सरकार के पास उद्योगों को लाभदायक ढंग से चलाने के लिए दक्ष और कुशल प्रबन्धक नहीं हैं तो उसे निजी कुशल व्यवसायियों को उसके उद्योगों की व्यवस्था और प्रबन्ध करने के लिए आमंत्रित करना चाहिए। आज उद्योगपतियों और व्यवसायियों को गाली देने और देश की समस्त आर्थिक कठिनाइयों का कारण उनको बतलाने की परम्परा बन गयी है। अवश्य ही निजी व्यवसायियों में ऐसे लोग हैं जो आर्थिक कठिनाई का लाभ उठाकर आर्थिक शोषण करते हैं परन्तु उनमें भी देशभक्त और देश का हित चाहने वाले प्रगतिशील विचारों के व्यक्ति हैं जिनको यदि राज्य, आदर और प्रतिष्ठा के साथ देश के इस आर्थिक संकट के समय देश की सेवा के लिए आमंत्रित करे तो वे राज्य के कारखानों की व्यवस्था कर सकते हैं। राज्य को उनकी सेवाओं का उपयोग करना चाहिए। इस दृष्टि से ऐसे कारखानों की स्थापना वाञ्छनीय है जिनमें ५१ प्रतिशत पूँजी राज्य सरकार की हो और ४९ प्रतिशत निजी पूँजी हो तथा प्रबन्ध और व्यवस्था निजी व्यवसायियों को सौंपा जावे।

विलासिता की वस्तुओं के उत्पादन का नियन्त्रण—निजी क्षेत्र के उद्योगों में विलासिता की वस्तुओं का उत्पादन केवल निर्यात के लिए किया जावे और यह नियम बना दिया जावे कि यदि वे देश में उन वस्तुओं को बेंचना चाहेंगे तो उनको शत-प्रतिशत अथवा उससे भी अधिक उत्पादन-कर देना होगा। आज हो यह रहा है कि सूती वस्त्र बनानेवाली मिलें मोटा कपड़ा न बनाकर फाइन, सुपर फाइन, मरसिराइज्ड कपड़ा बनाती हैं तथा रेशमी, नाइलौन आदि अधिक मूल्य के वस्त्र तैयार करती हैं जबकि सर्वसाधारण को उचित मूल्य पर मोटा कपड़ा नहीं मिलता। सरकार को करना यह चाहिए कि उस पर शत-प्रतिशत से भी अधिक कर लगा दिया जावे; यदि वह देश में बेंचा जावे, अवश्य वह निर्यात किया जा सकता है। इसी प्रकार सभी विलासिता की वस्तुओं पर भारी उत्पादन कर लगा देना चाहिए। जो लोग विलासिता की वस्तुओं का उपभोग करना चाहते हैं उनको उसका बहुत ऊँचा मूल्य देना होगा अन्यथा उसका केवल निर्यात किया जावे जिससे कि हम विदेशी विनिमय अर्जित कर सकें। जो देश आर्थिक संकट में से निकल रहा हो उसके निवासी विलासी जीवन व्यतीत करें यह अक्षम्य अपराध है। इसके लिए हमारे राजनेताओं को सादे जीवन का आदर्श उपस्थित करना होगा।

उत्पादन क्षमता का अपव्यय—प्रत्येक कारखाने की जो उत्पादन क्षमता है यदि वह कारखाना उत्पादन-क्षमता का नब्बे प्रतिशत उत्पादन नहीं करता तो उस पर दण्ड-स्वरूप जितना उसने कम उत्पादन किया है उसके अनुपात में कर लगाना चाहिए। यदि बिजली की कटौती अथवा राज्य की किसी नीति के कारण कारखाने को उत्पादन में कमी करनी पड़े तो वह इससे मुक्त होगा। एक निर्धन राष्ट्र जिसे भयंकर आर्थिक संकट का सामना करना पड़ रहा हो यह सहन नहीं कर सकता कि राष्ट्रीय पूँजी, कारखानों के यन्त्र बेकार पड़े रहें उनपर उत्पादन न हो। आज देश के विभिन्न उद्योगों की जितनी उत्पादन-क्षमता है उसकी तुलना में उत्पादन बहुत कम है यह घोर राष्ट्रीय अपव्यय है। मुद्रा-स्फीत के दुष्परिणामों से बचने का एक रचनात्मक उपाय उत्पादन को बढ़ाना है। अतएव राष्ट्र की सारी शक्ति धनोत्पादन को बढ़ाने में लगनी चाहिए।

कहने का तात्पर्य यह है कि मुद्रा-स्फीत को कठोरतापूर्वक रोकना होगा, धनोत्पादन को अधिक बढ़ाना होगा तथा उपभोग को कठोरतापूर्वक मर्यादित या सीमित करना होगा। इसके लिए मजदूरी, वेतन लगान, किराया, लाभ, ब्याज सभी की वृद्धि को रोकना होगा। मजदूरी और वेतन का स्थिरीकरण तभी किया जा सकता है कि जीवन के लिए आवश्यक वस्तुओं के मूल्य को बढ़ने न दिया जावे और वे सुलभ हों। परन्तु आज भी सरकार इस प्रकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो गीत

श्री प्रेमजी प्रेम

(१)

जन-गण के मन

आँधी आई
पेड़ों ने हिल हिलकर
उसका अभिवादन किया।
पत्तों की तड़तड़ाहट से
जय जयकार कर सम्मान दिया।
और उसके जाने के बाद
वैसे ही ढीला पड़ गया
हरेक वृक्ष का तन बदन
जैसे भाषण के पश्चात्
जनतंत्र में
जन-गण के मन।

(२)

लू से

कितनी मूर्ख है री
पछुआ से पैदल आती लू
भूनना चाहती है
उन्हीं के शरीर।
रेगिस्तान की भाड़ ने
जलाकर राख कर दिये हैं
जिनके तन, मन और तकदीर।
उन्हें न जला सकी है और
न ही जला पायेगी तू
राख को जला नहीं सकेगी
बल्कि बुझकर रह जायेगी तू।

का आर्थिक संयम तभी आरोपित कर सकती है जब उसको सर्वसाधारण का विश्वास और सहयोग प्राप्त हो।

आज देश जिस कठिन आर्थिक परिस्थिति का सामना कर रहा है उसको हल करने के लिए केवल हम देश की जनसंख्या से आर्थिक संयम करने की अपेक्षा करते रहें और राज्य अपव्यय करता रहे तो समस्या हल नहीं होगी। सरकार को भी आर्थिक संयम करना होगा। अनावश्यक व्यय को कठोरता से रोकना होगा और अनुत्पादक व्यय फिर चाहे वह कितना ही आवश्यक क्यों न हो उसकी वृद्धि को रोकना होगा तभी देश इस आर्थिक कुचक्र से बाहर निकल सकेगा।

पिछले चुनाव में भारतीय जनता ने सरकार को जो अभूतपूर्व समर्थन दिया था उसके पीछे उसकी यही आशा थी कि देश इस आर्थिक संकट का मुकाबला करने में सफल हो। परन्तु उसकी आशा निराशा में परिणत होती जा रही है। यदि शीघ्र ही देश इस आर्थिक कुचक्र से बाहर न निकल सका तो स्थिति भयावह हो उठेगी और देश का आर्थिक ढाँचा ढह जावेगा।

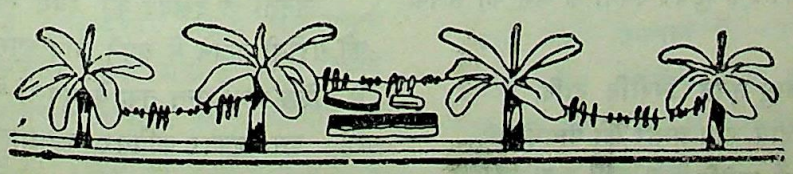

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाराजा कवि छत्रसाल का कवि-समुदाय

श्री रमेश ठाकुर

बुन्देलखण्ड के महाराजा छत्रसाल के हृदय में भारती हिन्दी के प्रति अपार प्रेम और काव्यमयी अभिरुचि होने के कारण वे एक सफल सर्वोच्च कोटि के कवि भी थे। वीर छत्रसाल जैसे कविताप्रेमी स्वभाव होने के कारण ही उनके समकालीन कवियों का पूर्ण आश्रय प्राप्त हुआ—पूर्ण सम्मान मिला—यहाँ तक कि स्वयं: "भूषण" की पालकी में कवि छत्रसाल ने अपना कन्धा लगाया था। उनके समय के कवि—प्राणनाथ, अक्षरअनन्य, भूषण, गोरेलाल, लालकवि, चिन्तामणि, मतिराम, नेवाज, भगवत, करनकवि, हरिकेश, लालदास, नवरंग, माखनकवि, गुलाब, जीवनमस्तान, हृदयशाह आदि प्रमुख थे। छत्रसाल का कवि-समुदाय पूरा एक परिवार जैसा था जिसमें कुछ उनके आश्रित कवि थे और कुछ दरबारी, कुछ श्रद्धेय और समकालीन।

वीर छत्रसाल के अनेकों रूपों में उनकी साहित्य-साधना का यह साहित्यसेवी रूप जब हम देखते हैं तो आश्चर्य-चकित होकर कहना पड़ता है कि कवि छत्रसाल केवल वाह-वाह करनेवाले न होकर स्वयं हिन्दी साहित्य को १७वीं शताब्दी में बहुत कुछ दे गये। वीर चम्पतराय के बहादुर सुपुत्र छत्रसाल का जन्म जेष्ठ शुदी ३ सम्वत् १७०६ वि० में हुआ। आपके ग्रन्थों का संग्रह (छत्रसाल-ग्रन्थावली) के नाम से श्री वियोगी हरिजी ने सम्पादित किया है। सर्वप्रथम कवि छत्रसाल की एक सुन्दर रचना के अंश की झलक देखिये—

अगम अनादि जासु सुनत पिरीदि दादि,
होत है सहाय भाय अन्तर को पायबो।
तासों राजनीति में अनीति कहौ कौन करें,
'छत्रसाल' भाखतु है वेदनि को गायबो।

महाराजा छत्रसाल

जो पै कोऊ निबल पै सबल जनावें जोर,
ताको मदतोरि आप करै जन भायबो।
मानियो रे मनुज विचारि उर आनियो रे,
जानियो रे गजब गरीब को सताइबो।
'छत्रसाल' जनपालिका, अरिहि घालिबो दोय।
नहिं बिसारियो धारियो धरा धरन कोउ होय।
रैयत सब राजी रहै, ताजी रहै सिपाहि,
'छत्रसाल' तेहि भूप को बाल न बाँको जाहि॥

जनता के दुखदर्द को स्वयं महसूस करके वे जन-जन की गरीबी हटाने में अपने कवित्वपूर्ण विचार ही नहीं रखते थे बल्कि अन्त-अन्त तक वे मुगलों के विरुद्ध डटे रहे—जमे रहे—इस प्रकार कविवर छत्रसाल के समकालीन श्रद्धेय कवियों में सबसे पहले प्रणामी धर्म के महाप्रभु प्राणनाथजी, जो छत्रसाल के पथ-प्रदर्शक, गुरु, उपदेशक थे आते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपका जन्म सम्वत् १६७५ वि० में जामनगर (सौराष्ट्र) में हुआ था। आपने अठारह हजार छन्दों का 'कुलजुम-स्वरूप' नामक विशाल ग्रन्थ लिखा है। अन्य ग्रन्थों में प्रमुख कीर्तन, कयामतनामा, पदावली, प्रकटवानी—ब्रह्मावानी और राजविनोद आदि हैं। और इस प्रकार महाप्रभु प्राणनाथजी ने १४ ग्रन्थ रचे हैं। स्वामी प्राणनाथजी की एक काव्य-पंक्ति इस प्रकार है—

फरमान मेरे महबूब का ले आया अरस से रसूल।
भज्या अपनी अरवाहों पर साहिब हुए सनकूल ॥

साहित्यकार रत्नकान्तजी ने वीर छत्रसाल के १७वीं सदी में उत्थानकाल के अन्तर्गत व्यक्त किया है कि इस काल में भी निर्गुण, सगुण धाराओं और रीति परम्परा का प्राबल्य रहा। सगुणधारा की प्रेम-मार्गी शाखा के कवि प्राणनाथजी हुए। इन्होंने अठारह हजार छन्दों का 'कुलजम-स्वरूप' नामक एक विशाल धार्मिक ग्रन्थ उर्दू, गुजराती, राजस्थानी, अवधी और सम्मिलित ब्रजभाषाओं में लिखा। इस ग्रन्थ में प्रेम-लक्ष्य भक्ति-प्रधान हैं। यह ग्रन्थ धार्मिक मान्यता के अनुसार अब तक प्रकाशित नहीं किया गया है और भविष्य में भी प्रकाशित होने की आशा नहीं दिखलाई पड़ती है। यह प्रणामी धर्म का प्रमुख धर्म-ग्रन्थ है।

निर्गुणधारा की ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रमुख कवि 'अक्षरअनन्य' भी इसी काल में हुए। यह विद्वान् और वेदान्त के अच्छे ज्ञाता थे। इन्होंने ३१ ग्रन्थों की रचना की, जिनमें २२ प्राप्य हैं। अनन्य-ग्रन्थावली के नाम से १४ अध्यायों में अनेक ग्रन्थों का संग्रह किया गया है। चार भाग नागरी प्रचारणीसभा द्वारा प्रकाशित भी हो चुके हैं। सम्वत् १७१० वि० में सेवड़ा (दतिया जिले) में जन्में इस महाकवि का सम्पर्क कवि छत्रसाल से था। दोनों कवियों में पत्रों द्वारा भावनाओं का आदान-प्रदान पद्यों में होता था जो साहित्य-जगत् की अमूल्य निधि हैं। १७वीं शताब्दी में जन्मे इस प्राचीन साहित्यकार का आज की २०वीं शदी के सुप्रसिद्ध साहित्यकार श्रद्धेय अम्बाप्रसाद श्रीवास्तवजी द्वारा शोधकार्य किया गया है जिसमें उन्होंने विस्तृतरूप से सरल, रुचिपूर्ण भाषा में उनके जीवन-दर्शन और साहित्य-साधना में विद्वत्तापूर्ण प्रकाश डाला है। तुलसी और सूर की श्रेणी में आनेवाले 'अक्षरअनन्य' की रचनायें एक ही ईश्वर में समावेश हैं —

ब्रह्मा विष्णु, रुद्र तीनों रूप ये निर्गुण भेद,
निर्गुण का रूप एक निर्गुन निदान हैं।
एक ही ते तीन होत तीन मिलि एक होत,
तीन चार ना ही एक कारन प्रमान हैं।
जैसे एक सूत का जनेऊ तीन भाग जान,
तीनहू को सूत एक जाहिर जहान हैं।
'अक्षरअनन्य' ज्ञानवन्त गनि एक लहैं,
भिन्न-भिन्न मानस ते मानस अजान हैं ॥

पन्ना की साहित्य-सेवा बुन्देलखण्ड के महाराणा कवि-छत्रसाल जैसे प्रसिद्ध वीरभक्त और कवि के कारण बड़ी गर्वीली रही है क्योंकि महाकवि भूषण की पालकी में अपना कन्धा लगाकर वीर छत्रसाल ने साहित्यकार के प्रति जो सम्मान प्रकट किया उसकी समानता कोई भी राजाश्रय नहीं कर सका और इसीलिए भूषण कवि भी छत्रसाल के दरबार में कुछ दिन रहे। और एक कवि को इतना अधिक सम्मान प्राप्त होते ही भूषण की काव्यमयी चेतना मुखरित होकर पुकार उठी—'साहू को सराहों की सराहों छत्रसाल को' आप कवियों के लिए कल्पतरु थे। भूषण का हिन्दी-साहित्य के काव्य-क्षेत्र में ऐतिहासिक स्थान है और अपार काव्य-सम्पत्ति प्रदान की है।

वीर छत्रसाल के दूसरे सबसे अधिक भूषण के बाद एक कवि और प्रिय थे—लालकवि। ऐतिहासिक दृष्टि से श्री गोरेलाल 'लाल' का 'छत्र-प्रकाश' नामक ग्रन्थ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसमें दोहा और चौपाइयों में छत्रसाल की जीवनी लिखी गयी है। इस ग्रन्थ में सम्वत् १७६४ तक का वृत्तान्त आया है। आप छत्रसाल के साथ युद्ध में भी जाते थे और युद्धभूमि में ही वीरगति पायी थी। लालकवि का जन्म मऊ में १७१४ वि० में हुआ था। आपने छत्रप्रकाश के अतिरिक्त छत्रप्रशस्ति, छत्रछाया, राजविनोद और विष्णुविलास नामक ग्रन्थों की भी रचना की है। राज-विनोद अप्रकाशित है। कवि लाल की एक सुन्दर बानगी देखिये—

दान दया घमसान में, जाके हिये उछाह।
सोई वीर बखानिये, ज्यों छत्ता छितिनाह ॥
छत्ता तेरे राज में धक-धक धरती होय।
जित-जित घोड़ा मुख करे, उत-उत फत्ते होय ॥

छत्रसाल के दरबारी कवियों में श्री नेवाजजी भी थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्वत् १७३७ में इन्होंने शकुन्तला नाटक लिखा। इनकी सुन्दर रचनाओं को छत्रसाल प्रमुख स्थान देते थे। इनकी रचना का लघ्वांश—

आगे तो कीन्हीं लगा लगी लोयन,
कैसे छिपै अजहूँ लौ छिपावति।
तू अनुराग को सोधकियो,
ब्रज की बनिता सब यों ठहरावति॥
कौन संकोच रह्यो है 'नेवाज'
जो तू तरसै उनहू तरसावति।
बावरी! जो पै कलंक लग्यो,
तो निशंक ह्वै क्यों नहिं अंक लगावति॥

कवि नेवाज के ही समय एक अन्य कवि श्री भगवतजी छत्रसाल के आश्रित कवि थे। इनको छत्रसाल नेवाज से कम महत्त्व नहीं देते थे इसलिए भगवत कवि चिढ़ से गये और एक दिन छत्रसाल को यह सुनाया—

तुम्हें न ऐसी चाहिये, छत्रसाल महराज।
जहँ 'भगवत' गीता पढ़ी, तहँ कवि पढ़त नेवाज॥

यह सुनकर कवि छत्रसाल मुस्कराने लगे और भगवतजी की रचनाओं को भी प्रमुखता देने लगे।

छत्रसाल के ग्रन्थों का संग्रह छत्र-विलास के नाम से सर्वप्रथम उनके दरबारी कवि हरिकेश ने किया। हरिकेशजी की रचनायें वीररसपूर्ण हैं। समय सम्वत् १७६० के लगभग है। हरिकेशजी की वीरतापूर्ण निम्न पंक्ति हैं—

डहडहे डंकन को सबद निसंक होत,
बहबही सत्रुन की सेना आनि सरकी।
हाथिन को झुण्ड मारू राग को उमंड इतै,
चम्पत को नन्द चढ़्यो उमंग समर की।
कहै 'हरिकेश' काली ताली दै नचत ज्यों—
ज्यों लाली दरसत छत्रसाल मुखबर की॥

बुन्देली भाषा के इन कवियों के अतिरिक्त ब्रजभाषा के करनकवि भी छत्रसाल के दरबारी कवियों में थे। इनके समय में वीर छत्रसाल का स्वर्गलोक होना बताया जाता है। उस समय यह मऊ में ही थे और इस प्रकार आपने शौकोद्गार प्रकट किया था—

भौंरिन को कंज राजहंसिनी को मानसर,
चन्द्रमा चकोरिन कोकहन बितै गयो।
द्विजनि को कामतरु कान्ह ब्रजमण्डल को,
जलद पपीहन को काहू ने रितै गयो॥
दीपनि को दीप हीरा हार दिगवालिनी को,
कोकनि को बासरेस देखत चितै गयो।
छत्ता छित्तिपाल छित्ति मंडल उदार धीर,
धरा को अधार जो सुमेरु धौं कितै गयो॥

कविद्वय सर्वश्री लालदास और नवरंगजी महाप्रभु प्राणनाथजी के प्रमुख शिष्यों में थे। लालदास ने खड़ीबोली का प्रथम जीवन वृत्त 'बीतक' और नवरंगजी ने 'चिद्विलास' नामक सुन्दर ग्रन्थ रचित किये हैं।

महाकवि अक्षरअनन्य के अतिरिक्त कवि छत्रसाल के समकालीन कवियों में 'माखनकवि' का नाम भी आता है। ये सखी सम्प्रदाय के अनुयायी स्वामी नित्यानन्दजी के शिष्यों में से थे। इन्होंने स्वयं अपना परिचय इस प्रकार दिया है-

बाबा नित्यानन्द के, चेला माखन आप,
महानन्द पद भो हैं, दासीभाव कि छाप।
जनम शहर पन्नापुरी, गुरुद्वारा असथान।
बाबा नित्यानन्द कौ है माखन के ज्ञान॥

साहित्यसेवी छत्रसाल की काव्यमयी रुचि को सुनकर शाहगढ़ (सागर) से श्री लघुराम कृष्ण भी छत्रसाल के कवि-समुदाय में सम्मिलित हो गये और यहीं शरीरान्त भी हुआ।

अक्षर कोहि लख्यो जब से तब से बिसर्‌यो परिवार हमारो।
जाय परी क्षर के गृह में सोइ भूल गयो पुरुषोत्तम प्यारो॥
नागर नींद उड़ाय दई ढूँढ़ लियो छत्रसाल दुलारो।
लघुराम सखी परनाम कहै परना के धनी परनाम हमारो॥

इसके उपरान्त कवि गुलाब का भी नाम आता है जो छत्रसाल के दरबारी कवि थे। आपकी रचनाओं में बहुत ही साधारण भाषा का प्रयोग किया गया है—

घनघोर घटा बरसे दिल अन्दर बीज चमक्कत वेद की बानी।
वेद कतेब मिले दुहु दीनह मानो समुद्र में लैर समानी॥

छत्रसाल के अन्य दरबारी कवियों में श्री केशवराय (१७५०), गुलालसिंह (१७५०), जसवन्तभास्कर, जगन-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिंह विजयाभिनन्दन, विष्णुदास कायस्थ, हरिचन्द के साथ-साथ अन्त में एक कवि की याद बरबस आ जाती है—कवि-छत्रसाल के जेष्ठ पुत्र हृदयशाह की। आप ही छत्रसाल की प्रधान गद्दी पन्ना के प्रथम शासक थे। जब छत्रसालजी ने अपने पुत्रों में राज्य का बटवारा किया तो आपको पन्ना, कालिंजर और शाहगढ़ आदि की अड़तीस लाख की जागीर दिया था। आप भी अपने पिता की तरह कवियों का आदर करते थे और स्वयं भी एक अच्छे कवि थे। आपका 'हृदय प्रकाश' ग्रन्थ आध्यात्मिक दृष्टि से अत्यन्त ही मूल्यवान है। इस ग्रन्थ में महाप्रभु प्राणनाथजी से जो आपने प्रश्न किये हैं और उन्होंने उनका जो उत्तर दिया है, उन्हें ही पद्यबद्ध किया गया है। यह गद्य-पद्य ग्रन्थ है। स्वामी प्राणनाथजी से आप भी विशेष प्रभावित हुए थे। आपका राजत्वकाल सन् १७३२ से १७३९ तक था। आपकी रचित रचना का एक सुन्दर अंश निम्न प्रकार है—

श्रीप्राणनाथ सनाथ किय, छत्रसाल सुत जान।
हिरदै हिरदैशाह के, दीन्हीं भक्ति निदान॥
देवचन्द उपदेश दिय, प्राणनाथ निजभाव।
ब्रह्म सृष्टि सब जगत में, ताको जाए जगाव॥
पुरी परम पदमावती सो परना को जान।
श्रीप्राणनाथ छत्रसाल को मिले आय पहिचान॥
वेद भेद जानै सबै, तारतम्य उज्जास।
तायें कीन्हों ग्रन्थ यह भाषा हृदयप्रकाश॥

इति जमुना-उत नर्मदा, इत चम्बल, उत टौंस।
छत्रसाल सो लरन की रही न काहू हौंस॥

इन लोकप्रिय पंक्तियों के कवियों के साथ उस राष्ट्रप्रेमी कवि के प्रति हम सबकी अनायास ही अत्यधिक श्रद्धा उमड़ पड़ती है। जिस समय वृद्ध कवि छत्रसाल की स्वतन्त्र भारत माँ की धरती पर मुगलों का अत्याचार प्रारम्भ हो जाता है और उस समय भारत माँ की इज्जत बचाने को सिर्फ इतना ही कहते हैं—

जो गति ग्राह गजेन्द्र की, सो गति भई है आज।
बाजी जात बुन्देल की राखौ 'बाजी' लाज॥

नारों का देश

श्री यशवन्त कोठारी

मेरा देश नारों का देश है,
नारों के इस ऊँचे टँगे सलीब पर,
से मेरे देश की हर समस्या
समाधित हो जाती है,
नारों से गरीबी हट गयी,
मेरे देश में समाजवाद आ गया,
नारों के बिना देश मुझे
सूना लगता है,
नारों के पीछे से कराहती हुई
आवाज मुझे भी सुनाई नहीं देती,
लेकिन कभी कभी,
नारों की आवाज भी,
दब जाती है, इस कराहट में,
पता नहीं कब मेरा देश
कराहटों का देश बनेगा ?

——

कविवर छत्रसाल के समकालीन कवियों ने हिन्दी-जगत् को जो अमूल्य-अमर अमिट साहित्यिक निधि प्रदान की है उसके लिए हम सब चिरऋणी हैं और गोरव है कि हिन्दी माँ के लाड़ले सुपुत्रों में तुलसी, सूर, केशव, बिहारी, ईसुरी की तरह छत्रसाल, भूषण, लाल ने भी माँ भारती की सेवा तन-मन से कर अपना सर्वस्व निछावर कर दिया है। जिनके साहित्य की सुरक्षा करने का दायित्व हम सब पर है और यह सभी का कर्तव्य हो जाता है कि इनकी छिपी साहित्य-साधना रूपी अमृत का शोधकार्य करें और सब हिन्दी-प्रेमियों को पिलायें। यही हमारी इन सब महान् साहित्यिक आत्माओं के प्रति श्रद्धांजलि होगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमरीका को अखंड बनाये रखने के लिए गृहयुद्ध
और
उनके नायक लिंकन की हत्या

श्री राजेन्द्रप्रसाद जैन

[संयुक्त राष्ट्र अमरीका के सामने एक समय उसके विभाजन की समस्या आ गयी थी, पर तत्कालीन राष्ट्रपति एब्राहम लिंकन ने उसे किसी भी हालत में स्वीकार करने से इन्कार कर दिया और इसके परिणाम-स्वरूप वहाँ भयंकर गृहयुद्ध हुआ जिसमें दोनों ओर से प्रायः २५ लाख सैनिकों ने भाग लिया। यह महाभारत की तरह का युद्ध था जिसमें परिवारों के लोग भिन्न दलों में होने के कारण एक दूसरे से लड़ रहे थे। अंत में लिंकन की विजय हुई और अमरीका विभाजन से बच गया, किन्तु युद्ध समाप्त होने के शीघ्र बाद ही राष्ट्रपति लिंकन की हत्या कर दी गयी। लिंकन का जन्म एक मज़दूर-घर में हुआ था और वह स्वाध्याय, परिश्रम और उच्च चरित्र के बल पर उन्नति करते करते अमरीका का राष्ट्रपति हो गया था। गेटिसवर्ग नामक युद्धस्थल में स्मारक बनाते समय उसने केवल दो मिनिट का भाषण दिया था किन्तु वह भाषण जनतंत्र में विश्वास करने-वालों के लिए मार्गदर्शक है। उसने अपने समय के अमरीकनों को ही नहीं, बाद की पीढ़ियों को भी प्रेरित और प्रभावित किया है। वाशिंगटन और लिंकन अमरीकी राष्ट्र के सबसे अधिक श्रद्धेय पूर्वज हैं। वाशिंगटन नगर में लिंकन का स्मारक है जो संसार के सर्वोत्तम स्मारकों में है। लिंकन के समय में अमरीका में थोरो नामक एक संत कवि और विचारक था जिससे महात्मा गांधी ने सत्याग्रह की प्रेरणा ली थी। उसने लिंकन की मृत्यु पर एक बड़ी मर्मस्पर्शी कविता लिखी थी। सम्पादक, सरस्वती।]

गृहयुद्ध

भारतवर्ष को छोड़कर दासप्रथा प्राचीन काल में सभी सभ्य देशों में प्रचलित थी जिसका सबसे अधिक भीषण रूप पाश्चात्य देशों में देखने को मिलता था। नैतिक भावना के ऊँचे उठने पर धीरे-धीरे वह सभी देशों में समाप्त हो गयी परन्तु संयुक्त राष्ट्र अमरीका में इसे लेकर तीव्र मत-भेद उत्पन्न हो गया था जिसके कारण भयानक गृहयुद्ध छिड़ने तक की नौबत आ गयी जिसमें लगभग २५ लाख सैनिक एक दूसरे से कई महीने भयंकर लड़ाई लड़ते रहे।

वास्तव में इस गृहयुद्ध का कारण केवल दासप्रथा नहीं थी। संयुक्त राष्ट्र अमरीका के दक्षिणी और उत्तरी राज्यों में सदैव ही मौलिक मतभेद रहा है। जिस समय अमरीका की खोज हुई तो ग्रेट ब्रिटेन से जो लोग भागकर अमरीका आ बसे थे उनमें प्रधानतया दो वर्ग थे, एक तो प्योरिटन जो वहाँके धार्मिक अत्याचारों से ऊबकर भागे थे। ये लोग मुख्यतः व्यापारी, शिल्पी और नौकरी-पेशा लोग थे। ये अमरीका के उत्तरी भाग में आकर बस गये और इनका प्रधान राज्य न्यू इङ्गलैण्ड था। दूसरे लोग इङ्गलैण्ड में बढ़ते हुए जनतन्त्रवाद से घबराकर भागे थे। ये लोग मुख्यतः सामन्त और सरदार थे और इनका प्रधान केन्द्र वर्जीनिया था। इन सामन्तों के पास बहुत धन था और इन्हें कृषि तथा सैन्य संचालन का अनुभव भी था। इसलिए इन सामन्तों ने दक्षिण की सारी उपजाऊ भूमि पर अधिकार कर लिया और वहाँ दासों से खेती कराने लगे। अमरीका में उन दिनों आबादी कम थी। खेत बहुत बड़े थे। उनके लिए मज़दूर नहीं मिलते थे और कृषि की मशीनों का तब तक आविष्कार नहीं हुआ था। इसलिए ये लोग अफ्रीका के नीग्रो दासों की खरीदकर उनसे काम लेते थे। ये दास अपने मालिक की 'सम्पत्ति' समझे जाते थे और इनसे मार-मारकर खूब काम लिया जाता था। वर्जीनिया के राबर्ट कांटर के अधिकार में ६० हजार एकड़ भूमि थी। दक्षिण की कड़ी धूप में इतनी बड़ी-बड़ी खेती बिना दासों के नहीं चल सकती। इसलिए दक्षिण वालों ने बहुत-से दास मोल ले लिये। सन् १८५० में अमरीका में ३२ लाख दास थे जो लगभग सभी दक्षिणवालों के पास थे।

नैतिक आदर्श ऊँचे होने पर अमरीका में भी दासप्रथा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के विरुद्ध आन्दोलन चला परन्तु दक्षिणी राज्यों ने इन आन्दोलनों का विरोध किया, न केवल इसलिए कि इससे उन्हें आर्थिक हानि पहुँचती थी बल्कि इसलिए भी कि अब उत्तर दक्षिण में तनाव बढ़ता जा रहा था। विज्ञान की उन्नति के साथ-साथ अमरीका में भी मशीन और उद्योग-धन्धे पनपने लगे थे। यह सारा औद्योगिक विकास उत्तर में हुआ। उत्तर की धन-सम्पत्ति और वैभव तथा जन-संख्या भी, जिसका प्रजातन्त्र में बहुत महत्त्व है, बड़ी तेजी से बढ़ने लगी। राजनीतिक शक्ति दक्षिण के हाथ से निकलने लगी। प्रारम्भ के सात राष्ट्रपतियों में चार वर्जीनिया और एक टेनेसी राज्य के थे। ये दोनों राज्य दासप्रथा समर्थक थे। अब्राहम लिङ्कन तक ९ राष्ट्रपति और हुए जिनमें केवल ३ ही दक्षिण के थे (१ वर्जीनिया १ टैनेसी १ लुईसाना)। कालचक्र के इस परिवर्तन से दक्षिणवाले तिलमिला उठे। उन्हें भय हुआ कि उत्तर के लोग दासप्रथा का अन्त नैतिक भावना से प्रेरित होकर नहीं, बल्कि दक्षिणवालों को चौपट करने की भावना से करना चाहते हैं। दक्षिण के इस भय को दो बातों से और बल मिला : पहली तो यह कि उत्तर-वाले इस पर कभी सहमत नहीं हुए कि दासों को मुक्त करने के बदले दक्षिणवालों को मुआवज़ा दिया जायगा। यह बड़ी आर्थिक चोट थी। एक दास का उस समय मूल्य लगभग ५०० रु० से लेकर २५०० रु० तक लगता था। ३२ लाख दासों को मुक्त करने का अर्थ था लगभग २ अरब से १० अरब रुपये तक की हानि। दूसरे उत्तरवाले दासप्रथा के विरुद्ध लिखते समय बहुत असभ्य भाषा का प्रयोग करते थे। एक मनचले ने तो यहाँ तक लिख मारा कि वह समय शीघ्र आनेवाला है जब हब्शी गुलाम दक्षिण के सामन्तों की लड़कियों को अपनी रखेल बनाएँगे। दासप्रथा विरोधी प्रसिद्ध पत्र 'विक्सबर्ग जरनल' के ५ सम्पादक १३ वर्ष के अल्प समय में दक्षिणवालों द्वारा मारे गये।

कटुता बढ़ती गयी और दक्षिणवाले उत्तर से अलग होकर अपना स्वतंत्र राष्ट्र बनाने की कल्पना करने लगे जिसे रोकने के लिए सन् १८२० में 'मिसूरी कम्प्रोमाइज' के नाम से एक कानून पास हुआ जिसके अनुसार ३६° ३०′ उत्तरी अक्षांश से उत्तर के सभी प्रदेशों में दासप्रथा अवैध घोषित की गयी और इससे नीचे वैध। परन्तु १८४५ में यह समझौता टूट गया। टैक्सास का प्रदेश जो मेक्सिको से लड़कर स्वतन्त्र हो गया था। संयुक्तराष्ट्र अमरीका के संघ में आने का इच्छुक था। टैक्सास में दासप्रथा बड़े उग्र रूप में थी। इस कारण दासप्रथा-विरोधी राज्यों ने उसके संघ में लिये जाने का विरोध किया। परन्तु केवल एक मत के बहुमत से राष्ट्रपति पॉक ने इसे संयुक्तराष्ट्र में सम्मिलित कर लिया। इन्हीं दिनों राष्ट्रपति पॉक ने मेक्सिको को युद्ध में हराकर उससे कई बहुत बड़े प्रदेश छीन लिये जिनमें दासप्रथा नहीं थी। उत्तरवालों का कहना था कि जो ऐसे नये प्रदेश हमारे राष्ट्र में आयें जिनमें पहिले से दास-प्रथा नहीं थी, कम-से-कम उनमें तो दासप्रथा की छूट नहीं दी जानी चाहिए। दक्षिणवाले कहते थे कि मेक्सिको के युद्ध में उत्तर से अधिक हमने बलिदान किया है। बात हमारी चलनी चाहिये। मतभेद तीव्र से तीव्रतर होता गया और राष्ट्रपति पीयर्स ने झगड़ा शान्त करने के लिए इन नये प्रदेशों को आत्मनिर्णय का अधिकार दे दिया कि वहाँकी जनता का जैसा बहुमत होगा वैसा ही मान लिया जायगा। इससे पहिले राष्ट्रपति फिलमोर ने १८५० में एक कानून पास किया कि दक्षिण से यदि कोई दास भागकर उत्तर के राज्यों में आ जाय तो पुलिस उसे पकड़कर उसके मालिक के पास पहुँचा देगी।

इन दोनों निर्णयों के विरुद्ध उत्तर के राज्यों में बड़ा रोष फैला। राष्ट्रपति पीयर्स का निर्णय सन् १८२० के मिसूरी कम्प्रोमाइज ऐक्ट के विरुद्ध था। पीयर्स और फिल-मोर के 'काले' कानूनों के विरोध में अमरीका में एक नये राजनीतिक दल का जन्म हुआ जिसका नाम है रिपब्लिकन पार्टी। महात्मा गान्धी के आध्यात्मिक गुरु थोरो ने इन्हींके विरुद्ध सत्याग्रह किया और राज्यकर देने से इन्कार कर दिया। थोरो ने इन्हींके विरोध में अपना Civil Disobe-dience (सविनय अवज्ञा) नाम का निबन्ध लिखा जिसमें सत्याग्रह की रूपरेखा दी हुई है।

अब अमरीका में दासप्रथा ही सबसे बड़ा प्रश्न बन गयी। पीयर्स ने जो नये जीते हुए प्रदेशों को दासप्रथा के संबंध में आत्मनिर्णय का अधिकार दिया था उसका बड़ा भयङ्कर परिणाम हुआ। उत्तर और दक्षिणवाले भाग-भागकर इन प्रदेशों में अपनी-अपनी मत गणना बढ़ाने के लिए जाकर बसने लगे और इसी धमाचौकड़ी में वहाँ उपद्रव प्रारम्भ हो गये। कंसास प्रदेश में इन दंगों में बहुत सी जानें गयीं और धीरे-धीरे इन्होंने गृहयुद्ध का रूप धारण कर लिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नवम्बर सन् १८६० में जब दास प्रथा के कट्टर विरोधी अब्राहम लिङ्कन राष्ट्रपति चुने गये तो दक्षिण के राज्यों में खलबली मच गई। वे आत्मनिर्णय और एक पृथक् राष्ट्र की माँग करने लगे। सर्वप्रथम दक्षिण कैरोलिना राज्य ने केन्द्र से अलग होने का अपना निश्चय प्रकट किया और ४ फरवरी सन् १८६१ को ऐसे कई राज्यों ने अपना एक नया पाकिस्तान और नया राष्ट्रपति चुन लिया। धीरे-धीरे इस विद्रोही संघ में ११ राज्य सम्मिलित हो गये। १. वर्जीनिया, २. उत्तर कैरोलिना, ३. दक्षिण कैरोलिना, ४. जार्जिया, ५. आलाबामा, ६. टैक्सास, ७. मिसिसिपी, ८. लुईसाना, ९. टैनेसी, १०. फ्लोरिडा, ११. अरकंसास।

लिङ्कन ने इन राज्यों को विद्रोही घोषित किया और इनके आत्म-निर्णय के अधिकार को मानने से इन्कार कर दिया। लिङ्कन कहता था कि दासप्रथा रहे या जाय, इसकी मुझे चिन्ता नहीं है। परन्तु किसी भी दशा में मैं अपने राष्ट्र का विभाजन स्वीकार नहीं करूँगा। विद्रोही राज्यों ने अपना अलग झण्डा बना लिया और १२ अप्रैल १८६१ को समटर के गढ़ पर लहरानेवाले राष्ट्रीय ध्वज को काटकर पैरों तले रौंद दिया। अब खुलमखुल्ला युद्ध प्रारम्भ हो गया। २२ सितम्बर १८६२ को लिङ्कन ने घोषणा की कि यदि विद्रोही राज्य अपना अलग संघ तोड़कर फिर हमारे साथ आ जायँ तो उन राज्यों में दास प्रथा अवैध घोषित नहीं की जायगी। उन्हें लौट आने के लिए १ जनवरी १८६३ तक की छूट दी गई जिससे उन्होंने कोई लाभ नहीं उठाया। फलतः १ जनवरी १८६३ को लिङ्कन की एक घोषणा के अनुसार सारे संयुक्तराष्ट्र अमरीका से दासप्रथा उठा दी गयी। ९ अप्रैल १८६५ को गृहयुद्ध समाप्त हुआ और १४/१५ अप्रैल १८६५ को लिङ्कन की हत्या हुई।

सन् १८७० ई० में एक कानून द्वारा नीग्रो लोगों को वोट का अधिकार दिया गया।

राष्ट्रपति कैनडी ने नीग्रो जाति को पूर्ण सामाजिक व नागरिक अधिकार देने के लिए सिविल राइट्स बिल के नाम से एक कानून रक्खा था कि इसी बीच में उनकी हत्या हो गयी। उनके इस अधूरे काम को उनके उत्तराधिकारी राष्ट्रपति जानसन ने पूरा किया। यह बात कम आश्चर्य की नहीं, क्योंकि कैनडी और जानसन दोनों ही डिमोक्रैटिक दल से सम्बन्ध रखते हैं और इस दल को कभी दासप्रथा का विरोध करने का साहस नहीं हुआ। इस दल के अधिकांश सदस्य दासप्रथा के प्रबल समर्थक रहे हैं। राष्ट्रपति जानसन तो बदनाम राज्य टैक्सास के निवासी थे, जो सदैव नीग्रो जाति पर अत्याचार करने में सबसे आगे रहा है।

अब्राहम लिङ्कन के पश्चात् १९-२० राष्ट्रपति अमरीका में और हो चुके हैं जिनमें लिण्डन बी० जानसन ही एक ऐसे थे जो दासप्रथा समर्थक राज्य के निवासी थे और विधिवत् चुनाव जीतकर राष्ट्रपति बने। इनसे पहिले टैनेसी के निवासी एण्ड्रचू जानसन भी राष्ट्रपति रह चुके थे परन्तु उन्होंने कोई चुनाव नहीं जीता था। लिङ्कन की मृत्यु के पश्चात् उन्हें राष्ट्रपति का पद उत्तराधिकार के रूप में मिला था। उन्हें अगले राष्ट्रपति के चुनाव में खड़े होने तक का साहस नहीं हुआ।

लिंकन की हत्या

१४-१५ अप्रैल १९६५ को संयुक्त राष्ट्र अमरीका के सोलहवें राष्ट्रपति अब्राहम लिङ्कन की दक्षिण के विद्रोही राज्यों के समर्थकों द्वारा हत्या कर दी गयी। लिङ्कन की हत्या और मृत्यु सम्बन्धी समाचार उस समय अमरीका के समाचार-पत्रों में किस प्रकार छपे, यह जानना पाठकों के लिए मनोरंजक होगा। कुछ नमूने ये हैं :

न्यूयार्क ट्रिब्यून, अप्रैल १५, १८६५

अत्यन्त महत्त्वपूर्ण

राष्ट्रपति को गोली मारी

सेक्रेटरी सीवार्ड पर आक्रमण

प्रथम सन्देश

एसोशियेटेड प्रेस की सेवा में

वाशिङ्गटन, शुक्रवार, अप्रैल १४, १८६५—राष्ट्रपति को आज रात थियेटर में गोली मारी गयी, और सम्भवतः उनके घाव घातक हैं।

द्वितीय सन्देश

सम्पादकों की सेवा में—हमारे वाशिङ्गटन स्थित प्रतिनिधि ने आज्ञा दी है कि राष्ट्रपति सम्बन्धी समाचार रोक दिया जाय। पता नहीं यह समाचार झूठ है या सच है।

तृतीय सन्देश

न्यूयार्क ट्रिब्यून के लिए विशेष सम्वाद। राष्ट्रपति के फोर्ड थियेटर में गोली लगी। गोली उनकी गर्दन में घुस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गयी। कहा नहीं जा सकता कि घाव घातक है या नहीं। अत्यधिक उत्तेजना।

चतुर्थ सन्देश

न्यूयार्क ट्रिब्यून के लिए विशेष सम्वाद

राष्ट्रपति का पौने बारह बजे देहान्त हो गया।

पञ्चम सन्देश

ऐसोशियेटेड प्रेस के नाम

वाशिङ्गटन, १५ अप्रैल १२-३० बजे प्रातः

आज रात राष्ट्रपति को एक थियेटर में गोली मारी गयी, और सम्भवतः घाव घातक है।

राष्ट्रपति के सूर्योदय तक जीवित रहने की सम्भावना नहीं है। सेक्रेटरी सीवार्ड की भी हत्या कर दी गयी।

कोई नस नहीं कटी थी।

पूरे समाचार बहुत शीघ्र।

छठा सन्देश

न्यूयार्क ट्रिब्यून के लिए विशेष सम्वाद

वाशिङ्गटन, शुक्रवार, अप्रैल १४, १८६५

—आकाश में से निकली हुई बिजली की कड़क जैसे चारों ओर गुँज जाती है इसी प्रकार राष्ट्रपति लिङ्कन के फोर्ड थियेटर में गोली लगने की घोषणा चारों ओर फैल गयी। नगर उत्तेजना से पागल है। एक सज्जन जो वहाँ उपस्थित थे, इस घटना का वर्णन इस प्रकार करते हैं :—

लगभग साढ़े दस बजे एक अङ्क के बीच में एक पिस्तौल की गोली की आवाज सुनी गयी और उसी समय राष्ट्रपति जिस बाक्स में बैठे हुए थे वहाँसे एक आदमी मंच पर कूदा और अपना लम्बा छुरा हवा में घुमाते हुए वह चिल्लाया 'Sic semper tyrannis !'[1] तब वह पर्दे के पीछे को भागा और थियेटर के चोर दर्वाजे से बाहर निकल गया। यह सब काम इतनी शीघ्रता से हुआ कि दर्शकों में से बहुतों ने इसे भी नाटक का एक दृश्य समझा। कुछ समय के पश्चात् ही लोगों को इस भयानक दुखद घटना का ठीक-ठीक अनुभव हुआ। थियेटर के एक कर्मचारी ने हत्यारे का पीछा किया, परन्तु वह घोड़े पर चढ़कर भाग गया। घुड़सवार सैनिक चारों दिशाओं में भेज दिये गये हैं कि जो आदमी भी घोड़े पर सवार मिले उसे पकड़ लो।

यह सम्वाद हम पूरी तरह से लिखने भी नहीं पाये थे कि सेक्रेटरी सीवार्ड के यहाँ से आये हुए दूतों ने बतलाया कि उनकी भी हत्या कर दी गयी। नीचे हम प्रामाणिक समाचार देते हैं :—

सातवाँ सन्देश

न्यूयार्क ट्रिब्यून के लिए विशेष सम्वाद

वाशिङ्गटन, शुक्रवार, अप्रैल १४, १८६५

आज रात राष्ट्रपति फोर्ड थियेटर में गये और १० बजे के लगभग हत्यारा उनके बाक्स में घुसा और उनके सर की गुद्दी में उसने गोली मारी। गोली उनके सिर में घुस गयी और वे थियेटर के सामने एक घर में ले जाये गये जहाँ वे मूर्च्छित अवस्था में पड़े हुए हैं। उनके बचने की कोई आशा नहीं। लारा कीन[1] का कहना है कि मैंने हत्यारे को पहिचान लिया है वह जे० विल्कस बूथ है। नगर में शोक की घटा छाई हुई है।

सेक्रेटरी सीवार्ड की हत्या

ठीक उसी समय एक घुड़सवार सेक्रेटरी सीवार्ड के मकान पर आया और घोड़े से उतरकर उसने कहा कि मैं सेक्रेटरी के लिये कुछ लिखित आदेश लाया हूँ जो केवल उन्हींको दिये जा सकते हैं। मेजर सीवार्ड और उनकी बहिन इस समय अपने पिता के साथ थीं। प्रवेश करने पर आगन्तुक ने वह कागज शय्या पर लेटे हुए सेक्रेटरी सीवार्ड को दिये और तुरन्त कान से कान तक उनका गला काट डाला। सौभाग्य से गर्दन की बड़ी नस (jugular vein) नहीं कट पाई और सम्भव है श्री० सीवार्ड बच जायँ।

सेक्रेटरी स्टैण्टन अपने घर पर चैन से हैं। अब तक उनके ऊपर किसी आक्रमण की सूचना नहीं मिली। यह भाग्य की ही बात है कि आज रात जनरल ग्राण्ट[2] न्युजर्सी

---

१. अत्याचारियों की यही दशा होती है। यह लैटिन का आदर्श वाक्य है जिसे वर्जीनिया राज्य ने अपनी सील में १७७६ में लगाना स्वीकार किया था और आज भी यह उसकी सील में है। वर्जीनिया दासप्रथा का समर्थक राज्य है, और तम्बाकू, जार्ज वाशिङ्गटन, व जनरल ली के कारण प्रसिद्ध है।

१. नाटक की एक अभिनेत्री।

२. दास प्रथा समर्थक संघ के सेनापति ली ने इन्हीं के सामने आत्मसमर्पण किया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चले गये यद्यपि यह घोषणा हो चुकी थी कि आज रात्रि में वे राष्ट्रपति के साथ नाटक देखने जायँगे। सारा नगर हर प्रकार की अफवाहों, पीड़ा, शोक और उत्तेजना से भरा हुआ है।

अष्टम सन्देश

न्यूयार्क ट्रिब्यून के लिए विशेष सम्वाद।

वाशिङ्गटन, शुक्रवार, अप्रैल १४, १८६५

हत्यारे ने भेंट करने के लिए कार्ड भेजकर राष्ट्रपति के बाक्स में प्रवेश पाया बताते हैं। बाक्स में लिङ्कन की धर्मपत्नी और जनरल ग्राण्ट के नीचे काम करनेवाले कर्नल पार्कर भी थे। दुष्ट ने लिङ्कन की स्त्री के कान पर पिस्तौल रखकर निशाना लगाया। कर्नल पार्कर ने कूदकर हत्यारे को पकड़ लिया, परन्तु उसने अपना हाथ छुड़ा लिया और जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है वह स्टेज पर कूद गया। हत्यारे की बूट में लगी लोहे की एड़[1] झण्डे में उलझ गयी और वह धड़ाम से जा पड़ा। उसने एड़ जूते से निकाल कर फेंक दी और अपना रिवाल्वर और छुरा दिखाता हुआ पीछे की ओर भाग गया।

नवाँ सन्देश

एसोशियेटेड प्रेस के नाम

वाशिङ्गटन, शुक्रवार, अप्रैल १४, १८६५

—राष्ट्रपति लिङ्कन, उनकी धर्मपत्नी अपने मित्रों के साथ आज सन्ध्या समय फोर्ड थियेटर में 'अवर अमेरिकन कज़िन' (Our American Cousin[2] = हमारा अमरीकी भाई) नामक नाटक देखने गये थे।

समचार-पत्रों में घोषित किया गया था कि जनरल ग्राण्ट भी वहाँ उपस्थित होंगे, परन्तु वे रात की पिछली गाड़ी से न्यूजर्सी चले गये। थियेटर में बहुत भीड़ थी और हर कोई नाटक का दृश्य देखने में मग्न था। तीसरे अंक में जब एक अभिनेता खाली मञ्च पर प्रवेश करने ही वाला था, पिस्तौल की तेज आवाज सुनी गयी। जिसने केवल ध्यान खींचा परन्तु कोई गम्भीर बात नहीं समझी गयी। इसी समय एक आदमी अपने दाहिने हाथ में एक लम्बा छुरा घुमाता हुआ और Sic semper tyrannis (अत्याचारियों का यही अन्त होता है) चिल्लाता हुआ राष्ट्रपति के बाक्स के सामने झपटा और तुरन्त ही बाक्स से जो दूसरे सोपान पर था नीचे स्टेज पर कूद पड़ा और दर्शकों को चकित करता हुआ पीछे की ओर से निकलकर घोड़े पर सवार होकर भाग गया।

लिङ्कन की पत्नी की चिल्लाहट से पता चला कि राष्ट्रपति के गोली मारी गयी है और तभी दर्शकगण 'उसे फाँसी दो', 'उसे फाँसी दो' चिल्लाते हुए मंच की ओर झपटे।

भयानक उत्तेजना फैल गयी और नाटक बन्द कर दिया गया।

राष्ट्रपति के बाक्स की ओर भीड़ बढ़ने लगी और लोगों ने सुना, 'पीछे खड़े हो, हवा आने दो।' 'किसीके पास कोई होश में लानेवाली वस्तु है?'

सरसरी परीक्षा से पता चला कि राष्ट्रपति की गुद्दी में गोली मारी गयी है और उनके मस्तिष्क से रक्त बह रहा है।

उन्हें थियेटर के सामने एक घर में लाया गया है और सेना के सर्जन-जनरल तथा दूसरे शल्य चिकित्सकों को बुलवाया गया है।

परीक्षा करने पर जिस आगे-पीछे सरकसेवाली गद्देदार कुर्सी पर राष्ट्रपति बैठे हुए थे उसकी पीठ पर लकड़ी की दीवार पर और फर्श पर रक्त के धब्बे मिले। एक साधारण जेबी पिस्तौल दरी पर पड़ी हुई मिली।

जिस घर में राष्ट्रपति को लिटाया गया है उसके आगे सैनिकों का पहरा लगा दिया गया है। राष्ट्रपति की दशा जानने के लिए व्याकुल जनता की बहुत भारी भीड़ लगी हुई है। पहिले ही यह घोषणा कर दी गयी थी कि घाव घातक है, परन्तु फिर भी लोगों को आशा बँधी हुई थी कि राष्ट्रपति अच्छे हो जायेंगे। राष्ट्र को एक भयानक आघात पहुँचा।

आधी रात के समय मन्त्रिमण्डल के सदस्य, सर्वश्री सेवर्ड, समनर, कॉल फैक्स, और पलान्सवर्थ, न्यायाधीश कर्टिस, गवर्नर ओगलेस्बे, जनरल मीडस, कर्नल हे, कुछ थोड़े से

---

१. लोहे का एक काँटा घुड़सवार अपने जूते के तले में घोड़ा तेज करने के लिये लगा लेते हैं।

२. यह एक प्रहसन है। मिस लारा कीन नाम की उस समय की लोकप्रिय अभिनेत्री इसमें अभिनय कर रही थी। उसी का अभिनय देखने के लिये अपनी पत्नी के अनुरोध पर लिङ्कन थियेटर में पधारे थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यक्तिगत मित्र, सर्जन जनरल बार्न्स और उनके कर्मचारी उनकी शय्या के पास थे।

राष्ट्रपति पूर्णतः संज्ञाहीन अवस्था में थे। उनकी साँस धीरे-धीरे चल रही थी। उनके सिर के पार्श्व भाग से रक्त बह रहा था। चिकित्सकों ने भरपूर प्रयत्न किये परन्तु फिर भी कोई आशा दिखाई नही देती।

दशम सन्देश

न्यूयार्क ट्रिब्यून के लिए विशेष सम्वाद

वाशिङ्गटन, अप्रैल १५, प्रातः १ बजे। हमारा एक सम्वाददाता अभी-अभी राष्ट्रपति भवन से लौटा है और कहता है कि मुझे एक अर्दली ने बतलाया है कि राष्ट्रपति की साँस अब भी चल रही है परन्तु उनके बचने की कोई भी सम्भावना नहीं है।

ग्यारहवाँ सन्देश

विशेष सम्वाद

वाशिङ्गटन, शुक्रवार, अप्रैल १४, १८६५[1]

सवा बजे प्रातः राष्ट्रपति धीरे-धीरे मर रहे हैं। मस्तक के छेद द्वारा उनके मस्तिष्क से धीरे-धीरे रक्त आ रहा है। वे निःसन्देह संज्ञाहीन हैं। कभी कभी उनका हाथ ऊपर उठता है और वे घड़ घड़ करके साँस ले रहे हैं। इसके अतिरिक्त कुछ नहीं।

लिङ्कन की पत्नी अपने दो पुत्रों के साथ फोर्ड थियेटर के सामने राष्ट्रपति के बराबरवाले घर में ठहरी हुई हैं। मिस्टर समनर राष्ट्रपति के सिराहने बैठे हुए हैं। सेक्रेटरी स्टैण्टन वैल्स, डेनिसन, अशर और मैकलाक और श्री स्पीड कमरे में अन्दर हैं। सर्जनों, जनरलों और राष्ट्रपति के व्यक्तिगत मित्रों से घर भरा हुआ है। सब की आँखों में आँसू हैं। एण्डी जानसन (उपराष्ट्रपति) यहीं हैं। वे किर्कवुड में अपने कमरे में सो रहे थे जबकि हत्या की गयी। उन्हें तुरन्त समाचार भेजा गया और वे उठ खड़े हुए। उनकी सुरक्षा का समुचित प्रबन्ध किया गया। हत्या का समाचार पहुँचने से पूर्व ही सुरक्षा के लिए सैनिक उनके यहाँ पहुँच गये थे। ऐलबेनी के कप्तान रैथबोन राष्ट्रपति के साथ बाक्स में थे। उन्हें भी साधारण चोट आई है।

सम्पादक की टिप्पणी—उपर्युक्त संदेश जिस क्रम से हमें प्राप्त हुए हैं उसी क्रम से हमने उन्हें छाप दिया है। प्रथम संदेश अर्द्ध रात्रि से कुछ पूर्व प्राप्त हुआ था। हम जानते हैं कि इन सम्वादों की प्रत्येक पंक्ति, इनका प्रत्येक अक्षर बड़ी व्यग्रता और ध्यान के साथ पढ़ा जायगा। इस विशाल देश में एक भी ऐसा व्यक्ति नहीं है जिसे अपने देश से प्रेम हो, जो अपनी जाति का शुभ चिन्तक हो और उसका इस घटना के शोक से सिर झुक न गया हो। एक बार तो सारी दलबन्दी भुलाकर प्रत्येक विचारशील व्यक्ति लिङ्कन की मृत्यु को एक राष्ट्रीय विपत्ति से कम समझने के लिए तैयार न होगा। हम भविष्य के लिए कुछ नहीं कह सकते। ईश्वरीय इच्छा अपने मङ्गलमय विधान के साथ इस विपत्ति के रूप में राष्ट्र के सामने उपस्थित हुई है। हम भविष्य को उसीके ऊपर छोड़ते हैं।

बाद का समाचार—समाचार परस्पर विरुद्ध और गड़बड़ी में डालनेवाले हैं। एक सम्वाद के अनुसार राष्ट्रपति का देहान्त १२-३० पर हुआ। दूसरे एक घण्टे बादवाले सम्वाद के अनुसार राष्ट्रपति अभी जीवित हैं और धीरे-धीरे प्राण छोड़ रहे हैं। हम यह सब बिना यह जाने हुए कि कौन सी बात ठीक है प्रेस में दे रहे है परन्तु हम यह मान लेते हैं कि आशा के लिए अब कोई स्थान नहीं है।"

यह है सौ वर्ष से भी अधिक पुरानी अमरीकी पत्रकारिता का नमूना।

(२)

लिङ्कन के हत्यारे जान विल्कस बूथ और उसका साथी डेविड ई० हैरल्ड भाग निकले थे। बाक्स से स्टेज पर कूदते समय बूथ की टाँग टूट गयी थी और वह लँगड़ा हो गया था, फिर भी उसने अदम्य साहस का परिचय दिया। हैरल्ड और बूथ दोनों एक खलियान में छिपे हुए पाये गये। अधिकारियों के यह धमकी देने पर कि या तो बाहर आओ नहीं तो हम खलियान को आग लगाते हैं, हैरल्ड ने आत्म-समर्पण कर दिया परन्तु दुर्योधन के आदर्श पर चलते हुए बूथ ने गरजकर कहा कि एकएक करके तुम लोग मेरे सामने आते रहो मैं तुम्हें देखूँगा (Captain, give me a chance. Draw off your men, and I will fight them singly.) परन्तु अमरीकन अधिकारियों

१. यह सम्वाददाता की भूल है। नई पद्धति के अनुसार शनिवार १५ अप्रैल १८६६ होना चाहिए क्योंकि आधुनिक पद्धति में सूर्योदय के बजाय वार व तिथि रात्रि के १२ बजे बदल जाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में कोई युधिष्ठर नहीं था। उन्होंने खलियान को आग लगा दी। बूथ आक्रमण के लिए झपटा, परन्तु एक सैनिक ने उसे ऐसी चोट मारी कि वह मूर्च्छित होकर गिर पड़ा और कुछ क्षणों के पश्चात् मर गया। मरते समय उसके अन्तिम शब्द थे, "माँ से कह देना मैं मरता हूँ—अपने देश के लिए। (Tell mother—I die—for my country.)"

लिङ्कन हत्याकाण्ड में ९ व्यक्तियों पर अभियोग चला जिसमें हैरल्ड और ३ अन्य व्यक्तियों को कुल मिलाकर ४ को प्राणदण्ड मिला, चार को कारावास का दण्ड मिला और १ छोड़ दिया गया।

हत्या से कई दिन पूर्व बूथ को वाशिंगटन के एक होटल में संदिग्ध अवस्था में घूमते हुए पाया गया था।

हत्या से कुछ दिन पूर्व लिंकन ने एक स्वप्न में देखा कि राजभवन में चारों ओर रोवाधोई मची हुई है। स्वप्न ही में लिंकन उठकर पूर्व के कमरे में गया जहाँ उसने एक ताबूत में एक लाश देखी। लिंकन के पूछने पर लोगों ने बतलाया कि यह राष्ट्रपति की लाश है जिनकी किसी ने हत्या कर दी है।

लिंकन की पत्नी मेरी टॉड पति की हत्या से बिल्कुल पागल हो गयीं। उन्होंने शोक के कारण उनसे अन्तिम संस्कार में भी कोई भाग नहीं लिया। लिंकन की मृत्यु के समय उन्होंने बार-बार डाक्टर से कहा, "मुझे गोली मार दो, डाक्टर, तुम मेरे गोली क्यों नहीं मार देते। मैं जीवित नहीं रह सकती। मैंने उनसे प्रार्थना की थी कि अभी मत जाओ।"

लिंकन ने अमरीका से दासप्रथा उठाने का दृढ़ संकल्प लिया था। दासप्रथा को लेकर ही अमरीका में गृहयुद्ध छिड़ा जिसमें लिंकन विजयी हुए। ९ अप्रैल १८६५ को विद्रोही राज्यों की सेना के सेनापति जनरल ली ने संयुक्त-राष्ट्र अमरीका के सेनापति ग्राण्ट को आत्मसमर्पण कर दिया। परन्तु यह विजयोल्लास शोक में बदल गया। जब ५ दिन बाद ही १४ अप्रैल १८६५ को गुड फ्राइडे के दिन दासप्रथा के समर्थक दलवालों ने उनकी हत्या कर दी। लिंकन वीरगति को प्राप्त हुए। वे एक शहीद हैं। उनकी स्मृति में हजारों एक से एक सुन्दर कविताएँ लिखी गयी हैं। जिनमें सबसे प्रसिद्ध वाल्ट ह्विटमैन की 'ह्वैन लिलाक्ज़ लास्ट इन दी डोर यार्ड ब्लूम्ड' समझी जाती है। जो सम्मान अमरीकन जनता ने जार्ज वाशिंगटन और अब्राहम लिंकन को दिया है वह किसी अन्य राष्ट्रपति को प्राप्त नहीं हुआ।

परन्तु, लिंकन की पत्नी मेरी टाड का जीवन बड़े कष्ट और दुःख में कटा। मेरी लिंकन बहुत खर्चीली थी। जब अमरीका में गृहयुद्ध चल रहा था तब भी वे बड़ी बेदर्दी के साथ पैसा फूँकती थीं जिससे समाचारपत्रों में उनकी कटु आलोचना होती थी। एक बार तो जब वे २५०० डालर (१२,५०० रु०) में एक कम्बल लेकर आईं तो लिंकन ने बहुत फटकारा। एक बज़ाज़ के ही उन पर २७,००० डालर निकलते थे। मेरी टॉड का एक सगा भाई, बहिनोई और अन्य निकट सम्बन्धी दासप्रथा समर्थक थे और वे इस गृहयुद्ध में राष्ट्र के विरुद्ध लड़ रहे थे। इस कारण भी अमरीकन जनता मेरी टॉड को सन्देह की दृष्टि से देखती थी। यहाँ तक कि लोकमत का आदर करते हुए लिंकन को अपनी पत्नी की डाक पर सेन्सर बिठलाना पड़ा।

इसी युद्ध में लिङ्कन की छोटी साली के पति लिङ्कन के सैनिकों से लड़ते हुए मारे गये। विधवा साली जब अपने पति का अन्तिम संस्कार करके लौट रही थी तो मार्ग में लिङ्कन के सैनिकों ने उसे पकड़ लिया और कहा कि यदि तुम अमरीकन राष्ट्र के प्रति निष्ठा की शपथ ग्रहण करो तो तुम्हें छोड़ा जा सकता है अन्यथा नहीं। इस पर उस वीर बाला ने उत्तर दिया कि "जिस आदर्श के लिए मेरे पति ने प्राणों का उत्सर्ग किया उसका विरोध करने से पूर्व मैं मृत्यु का आलिङ्गन करना श्रेयस्कर समझूँगी।" इस पर सैनिकों ने उसे बन्दी बना लिया और लिङ्कन को तार दे दिया कि तुम्हारी साली पकड़ ली गयी। इस पर लिङ्कन ने लिखा कि मेरी साली को मेरे पास भेज दो। अतः वह राष्ट्रपति भवन में जाकर अपनी बहिन के पास रहने लगी। दासप्रथा समर्थक राज्यों ने अपना एक अलग राष्ट्रपति चुन रक्खा था—मिसीसीपी राज्य का जेफर्सन डेविस। वे राज्य डेविस की ही आज्ञा मानते थे और लिङ्कन को स्वीकार नहीं करते थे। एक दिन लिङ्कन और उसकी साली के बच्चों में इसी बात को लेकर झगड़ा हो गया। साली का एक पुत्र चिल्ला-चिल्लाकर कह रहा था कि लिङ्कन हमारा राष्ट्रपति नहीं है। संयोग से लिङ्कन यह हंगामा सुनकर वहाँ आ गये और उन्होंने हँसते हुए बच्चे को गोद में उठाकर उसे चूमते हुए कहा, "ठीक कहते हो बेटा, मैं तुम्हारा राष्ट्रपति नहीं। तुम्हारा तो मैं मौसा हूँ।"

कुछ समय के पश्चात् वह विधवा साली अपने घर लौट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गयी। अमरीका का गृहयुद्ध एक छोटा-सा महाभारत था जिसमें भाई भाई से लड़ा था। जब युद्ध प्रारम्भ हुआ तो लिङ्कन ने वर्जीनिया के जनरल ली को अपना प्रधान सेनापति बनाया, परन्तु जब वर्जीनिया राज्य ने दासप्रथा समर्थक संघ का साथ देने का निश्चय किया तो विभीषण के आदर्श पर न चलकर भीष्म और द्रोण का अनुकरण करनेवाले ली ने अपना पद त्याग करके दासप्रथा समर्थक संघ का सेनापतित्व स्वीकार किया। ली ने लिङ्कन के जिस सेनापति के सामने आत्मसमर्पण किया था, उन जनरल ग्राण्ट के श्वसुर भी दासप्रथा के बहुत बड़े समर्थक थे और सबसे बड़ी बात तो यह कि वे अपने दामाद के पास ही रहते थे और इसी कारण ग्राण्ट के माता-पिता ने ग्राण्ट के पास रहना बन्द कर दिया था। वे जब भी ग्राण्ट से मिलने आते तो होटल में ठहरते थे।

लिङ्कन की मृत्यु के पश्चात् अमरीकी सरकार ने लिङ्कन की पत्नी को २२,००० डालर दिये। परन्तु वह पेंशन के लिए बराबर लड़ती रही। जिस पर अमरीकन जनता बहुत अप्रसन्न हो उठी। यहाँ तक कि मेरी टॉड को अमरीका छोड़कर योरोप में रहना पड़ा। पेंशन के लिए मेरी टॉड ने अपना आन्दोलन वहाँसे भी जारी रक्खा जिसके फलस्वरूप सन् १८७० के उन्हें ३००० डालर वार्षिक पेन्शन स्वीकृत हो गयी।

मेरी टॉड का जीवन दुःखों से भरा था। उनके ४ पुत्रों में से दो तो पहिले ही मर चुके थे, एक युवा पुत्र अब चल बसा। वे पागल हो गयीं और आत्माघात करती हुई पकड़ी गयीं और पागलखाने में बन्द कर दी गयीं। पागलखाने से छूटने पर वे फिर योरोप गयीं और १८८० में जब वे फ्रांस से अमरीका वापिस आयीं तो सम्भवतः उन्हें उन दिनों की याद आ रही थी जब लिङ्कन की जीवित अवस्था में उनके आने पर आकाश उनकी जय-जयकारों के नारों से गूंज उठता था। परन्तु आज उनकी बात भी पूछनेवाला कोई नहीं था। यकायक एक पुलिसवाले ने उन्हें धक्का देकर पीछे धकेल दिया क्योंकि उसी जहाज से प्रसिद्ध नर्तकी सारा बर्न हार्ट उतरी थी और उसकी सवारी निकलनी थी।

जून १६ सन् १८८२ को मेरी टॉड पक्षाघात से मरी।

निचुड़ गया मन

श्रीमती विजय लक्ष्मी 'विभा'

बूँद बूँद चूनर सा निचुड़ गया मन,
तार तार सिकुड़ गया मानवी वसन।
सूख सूख टूट गये,
चाहों के ताने,
इधर उधर फैल गये,
सपनों के बाने
असहनीय हुई इसे धूप की तपन।
उड़ उड़ के रंग हुआ,
ऐसा चितकबरा,
दिखता ज्यों सावन का,
अम्बर में बदरा,
नये नये जीवन को लग गया व्यसन।
गीतों के मैंने,
पैबन्द कुछ लगाये,
फटी हुई चूनर न,
पूरी फट जाये,
जोड़ जोड़ छिने सकल बीते कुछ क्षण।
पीड़ा ने छिद्र छिद्र,
फाड़ दी चुनरिया,
दुनिया ने जीवन की,
लूट ली बजरिया,
बचा नहीं भावों का एक भी कफन।
किसको है फुरसत,
जो धूप से बचाये,
तपने को एक बार,
आँगन में आये,
छाया से निकल कौन सहे यह जलन।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बालि में संस्कृत

ले०—राय सुधार्त त्जोक

अनु०—श्री बाबूराम वर्मा

बालि उन तीन सहस्र द्वीपों में से एक द्वीप है जिन्हें मिलाकर इन्दोनीसिया (भारतीय नाम द्वीपान्तर) बना है जिसने अपनी स्वतन्त्रता डचों से १९४५ में प्राप्त की। बालि द्वीप जावा के पूर्व में अवस्थित है। जावा शब्द का अर्थ सभी को ज्ञात है जो जौ (यव) होता है जिस आकृति का यह द्वीप है। किन्तु **बालि** शब्द के अर्थ पर अभी तक विद्वानों का मतैक्य नहीं हो पाया। कुछ विद्वानों का कहना है कि बालि के हिन्दू धर्म में बलि पर जोर दिया जाता है इसलिए बालि का अर्थ बलि है। अन्य विद्वानों का कथन है कि जावा की पश्चिमी नोक पर एक प्रदेश है जिसे बान्तेन कहा जाता है इसलिए बालि द्वीप के मुख्य जावा भूमि से पृथक् होने से पूर्व यह उपयुक्त ही था कि पूर्वी नोक पर स्थित प्रदेश को बालि नाम दिया गया क्योंकि बान्तेन और बालि दोनों का एक ही अर्थ है और इसीलिए प्रतीक रूप में दोनों को जावा के सिंहश्री साम्राज्य के द्वारपाल माना जाता है। इन मतों के विरुद्ध आर० फ्रीडरिश का मत है कि बालि को बलि नहीं समझा जाना चाहिए बल्कि इसे बलिन् संज्ञा का कर्ता रूप मानना चाहिए जिसका अर्थ बलिष्ठ, शक्तिशाली, वीर होता है। इस प्रकार बालि का अर्थ वीर होता है और **उसन-बालि** में इस देश को **बलि अंक** अर्थात् वीरों की गोद (जन्म-स्थान) नाम दिया गया है। यह इस पवित्र देश का बहुत सुन्दर नाम है जो इस देश की वीर भावना को भी अभिव्यक्त करता है।

बालि के इतिहास पर दृष्टिपात करने पर हम आर० फ्रीडरिश के मत से सहमत हो सकते हैं क्योंकि बालि में अभी तक हिन्दू धर्म और जीवन प्रणाली की ही प्रतिरक्षा नहीं की गयी बल्कि समूचे कवि (प्राचीन जावानी) साहित्य तथा संस्कृत भाषा को गद्य और पद्य रूपों में लगभग सजीव बनाकर रखा गया है। इन्दोनीसिया (द्वीपान्तर) के साहित्यिक इतिहास में कवि और संस्कृत भाषाओं के कम से कम पाँच युग हैं—१—पश्चिम जावा युग, २—सुमात्रा युग, ३—मध्य जावा युग, ४—पूर्व जावा युग, ५—बालि युग।

१-२—पश्चिम जावा और सुमात्रा युगों में लगभग ७वीं शताब्दी ई० तक अत्युत्तम संस्कृत में लिखित अधिकांशतः राजाओं की घोषणाएँ और अभिलेख मिलते हैं जो पूर्व जावा युग की तुलना में बहुत अच्छे हैं। इनमें प्राचीनतम अभिलेख पलेम्बांग (सुमात्रा) के निकट केदुकन-बुकित में चट्टान पर लिखा हुआ ६०५ शक सम्वत् (६८३ ई०) का है। इसके पश्चात् पलेम्बांग के निकट टलाङ्-तुन का ६०६ शक सम्वत् (६४८ ई०), कोट-कपूर (बङ्का) का ६०८ शक सम्वत् (६८६ ई०) तथा मूसी नदी के किनारे करङ्-ब्राही में ६०८ शक सम्वत् (६८६ ई०) के अभिलेख और मिलते हैं।

३—मध्य जावा का प्रतिनिधित्व **कवि रामायण** करती है जो पद्य शैली (काकविन) का प्राचीनतम ज्ञात ग्रन्थ है। बाल्मीकि रामायण पर आधारित न होकर यह रावणवध या भट्टिकाव्य पर आधारित है।

४—पूर्वजावा युग का प्रतिनिधित्व **अर्जुन-विवाह** करता है जो इस युग का प्राचीनतम कवि काव्य है जिसकी कथा भारवि की कृति **किरातार्जुनीय** के जैसी है। इस युग में महाराज ऐरलांग से महाराज जयामय के शासनकाल के बीच, अनेक कविग्रन्थ लिखे, संस्कृत से अनूदित या उनसे अनुकूलित किये गये। इस साहित्यिक सक्रियता के सम्बन्ध में डा० स्टुट्टरहाइम ने कहा है "इस गतिविधि के महत्व को कम आँकना कठिन है क्योंकि इसी ने जावानियों के वास्तविक हिन्दूकरण का समारम्भ किया। अभी तक हिन्दू धर्म का ज्ञान उन्हीं लोगों, जिन्हें संस्कृत आती थी, पुरोहितों और सम्भवतः कुछ राजाओं, तक सीमित था। पर अब महाभारत की विषयवस्तु सभीकी समझ में आनेवाली कर दी गयी। इसके परिणाम का अन्दाज तब लगाया जा सकता है जब यह समझा जाय कि उच्च जावानी विचार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धारा के बहुत से आदर्श आज भी वही हैं जिनका उपदेश और व्यवहार महाभारत में किया गया है जो इन्दोनीसिया के कठपुतली नाटक, ब्यंग की मदद से सर्वत्र फैल गये तथा जो जन-सम्पर्क का सबसे लोकप्रिय और प्रभावशाली (तथा कलात्मक) साधन है। इसके बाद जल्दी ही संस्कृत साहित्य में पाये जानेवाले अन्य विषय भी देशी साहित्य में व्यवहार किए जाने लगे।"

५—**बालि युग**—इन्दोनीसिया के अन्य भागों की भाँति बालि में भी उसी महान् आस्ट्रिक परिवार की एक शाखा बसती है, जिसमें प्रधान भारत भूमि के मुण्डा आते हैं। इसके अतिरिक्त वहाँ बर्मा, मलय, थाईदेश और इण्डोचीन से लगभग १५०० ई० पूर्व में आकर बसे हुए लोग भी हैं। आठवीं शताब्दी में बालि जावा के शैलेन्द्र वंश के शासनाधीन था। परन्तु दसवीं शताब्दी में जावा के शासकों की शक्ति क्षीण हो रही थी और वर्गदेव का बालि राजवंश शासन कर रहा था। १०वीं शताब्दी की समाप्ति पर बालि पुनः जावानी राजवंश की अधीनता में चला गया परन्तु पराजय के कारण नहीं, बल्कि बालि राजकुमार (उदयन) और जावानी राजकुमारी (महेन्द्रदत्ता) के वैवाहिक सम्बन्ध के कारण, जिससे महाराज ऐरलांग (९९१-१०५० ई०) का जन्म हुआ जिसके राज्यकाल में कवि साहित्य की बड़ी उन्नति हुई। ऐरलांग के पश्चात् बालि पुनः जावा से स्वतन्त्र हो गया। परन्तु १२८४ ई० में बालि फिर जावा (सिंहश्री के शासक कृतगातर) के अधीन हुआ और थोड़े से समय तक स्वतन्त्रता भोगकर अन्ततः मजपहित, राजवंश (१२९४-१४७८ ई०) की अधीनता में चला गया। मजपहित, पूर्व जावा युग, के बाद जावा पर इस्लाम ने आक्रमण किया पर बालि पर कभी नहीं। यहाँ तक कि डच भी, जो जावा पर १५वीं शताब्दी से शासन करते चले आ रहे थे, बालि को पूरी तरह से २०वीं शती के आरम्भ में १९०८ में क्लुङ्ग कुङ्ग के पतन पर ही जीत सके। यद्यपि बालि में जावानियों के आव्रजन की अन्तिम अवस्था मजपहित के विध्वंस के कारण हुई किन्तु सांस्कृतिक प्रव्रजन ऐरलांग युग से ही आरम्भ हो गया था और जावा से शैव पुरोहित डाङ्ह्यान निरर्थ के आने पर समाप्त हुआ जो वर्तमान बालि के सभी पुरोहितों (ब्राह्मणों) का पूर्व पुरुष है जिनमें से कुछ उसके साथ जावा से बालि आई हुई उसकी जावानी पत्नियों से और कुछ उसकी बालि पत्नियों से हुए पुत्र हैं।

जावा और बालि दोनों की वर्णमाला पल्लव लेखन शैली से प्रसूत है जिसे दक्षिण भारत के हिन्दू शक सम्वत् के आरम्भ में यहाँ लाये। किन्तु बालि लिपि में हुए कुछ परिवर्तनों के कारण जावानी इसे आसानी से नहीं पढ़ सकते। जावानी वर्णमाला में २० अक्षर (व्यंजन) हैं किन्तु बालि वर्णमाला में १८ ही अक्षर हैं। आर० फ्रोडरिश के अनुसार "ये १८ अक्षर जहाँ तक पोलीनिसियन अवयवों की मूल आवश्यकता है पर्याप्त हैं तथा द्वितीय ड और ट वास्तव में इन भाषाओं के लिए विदेशी हैं।[१]" परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि बालि-वासियों ने अपने अक्षरों के अनुकूल बनाने के लिए कवि और संस्कृत लेखन में जानबूझकर कोई परिवर्तन किया। आज तक भी वे अधिकतर कवि और संस्कृत ग्रन्थों का निष्ठापूर्वक अनुकरण करते रहे हैं और आवश्यकता पड़ने पर वे उनकी टीका या अर्थ भी देते हैं। डा० स्टुट्टरहाइम का कथन है, "बालि और लम्बक से ही हमें वे पाण्डुलिपियाँ मिलीं जिनसे हमें जावा के इतिहास का अधिकांश ज्ञान प्राप्त हुआ और हिन्दू संस्कृति बनी रहने के सौभाग्य से ही ये वहाँ सुरक्षित रही; यदि बालि भी इस्लामी बन जाता तो बहुधा समझ में न आनेवाली घोषणाओं और प्रलेखों में से कुछ भी शेष न रहता। इस समय बालि एक जीते-जागते संग्रहालय के समान है।"

जावानी और बालि वर्णमालाएँ इन्दोनीसिया में महाराज अजीशक द्वारा लाई तथा आरम्भ की गयी मानी जाती हैं। इन दोनों वर्णमालाओं की वर्ण-संख्या में अन्तर है तथापि इनके द्वारा सूचित कथा एक जैसी है और इसमें भी हम बालिवासियों की वीर प्रकृति अनुभव कर सकते हैं। जावानी के बीस वर्ण ह-न च-र-क दत स-व-ल प-ड ज-य-ञ म-ग-ब-ट-ङ। इनका अर्थ है '(राजा अजीशक के) दो सेवक थे, दोनों को कुछ पत्र या सन्देश (सवल) दिये गये थे (दत) (सन्देश के अनुसार) वीरतापूर्वक परस्पर लड़े (पदजयञ) कि वे दोनों मर गये (मगबटङ)।' यह जावानी वर्णों की कथा है। बालि वर्णमाला के १८ अक्षर हैं ह-न च-र-क ज-त-म-ङ-ब स-व-ल, प-ड ज-य-ञ। इनका अर्थ है (राजा अजीशक के) दो सेवक थे, दोनों कुछ पत्र या सन्देश (स व ल) लाने (म ङ ब) गये (ग त) और (सन्देश के अनुसार) वे परस्पर वीरतापूर्वक लड़े (प द ज य ञ)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह बालि रूपान्तर है। दोनों का अन्तर यह है कि जावानियों को सन्देश **दिया गया था** और वे वीरतापूर्वक लड़कर मर गये। परन्तु बालि रूपान्तर में वे (जावा से बालि ?) **गये** और अपने साथ सन्देश **लाये** (ग-त म-ङ-ब) और वे वीरतापूर्वक लड़े। बालि वर्णमाला की कथा में सेवकों की मृत्यु का उल्लेख नहीं है।

बालि का इतिहास अन्य प्राचीन इतिहासों की भाँति अभिलेखों तथा प्राचीन वस्तुओं, मन्दिर अवशेषों, मूर्तियों आदि पर आधारित है। बालि के अभिलेख पाषाण (मूर्तियों के पृष्ठ भाग), पर खुदे, कांस्य फलकों पर उत्कीर्ण किये हुए हैं तथा बहुत कम लकड़ी पर खोदे हुए हैं जैसे कि कुछ बैसाकिह मन्दिर में रखे हुए हैं। सभी अभिलेख पावन माने जाते हैं और इसीलिए वे मन्दिरों के विशेष कोष्ठों में सुरक्षित हैं। साधारण जनता उन्हें स्पर्श नहीं कर सकती और जब कोई पुरोहित या अधिकृत व्यक्ति पढ़ता है तो ऐसा करने से पूर्व एक विशेष प्रकार की भेंट चढ़ाई जाती है। इन अभिलेखों की भाषा संस्कृत, प्राचीन बालि और प्राचीन-जावानी या कवि भाषा है। इनकी संख्या बहुत अधिक है और काफी अर्वाचीन समय तक नये अभिलेख मिलते रहे हैं। अभिलेख ८०४ शक संवत् (८८२ ई०) से १२६५ शक संवत् (१३४३ ई०) तक के हैं जब मजपहित के प्रधान मन्त्री गजःमद ने बालि को विजय किया। अभिलेख अधिकांशतः प्राचीन बालि में लिखे रहने पर भी उनमें सर्वत्र संस्कृत शब्द पाये जाते हैं क्योंकि बालि के सभी राजा संस्कृत नाम और उपाधियाँ धारण करते थे जैसे श्री केसरि वर्मदेव, श्री उग्रसेन, तबनेन्द्र वर्मदेव और सुभद्रिका वर्मदेवी, जयसिंह वर्मदेव, जनसाधु वर्मदेव, विजय महादेवी, गुणप्रिया धर्मपत्नी और धर्म उदयन वर्मदेव, श्री आज्ञादेवी, श्री बलप्रभु, सकलेन्दु किरण, श्री सूराधिप, श्री जयशक्ति, श्री अष्टसुर रत्नभूमि बान्तेन (बालि) आदि। पूर्णतया संस्कृत भाषा में लिखे हुए अभिलेख ८४१ शक संवत् (९१९ ई०) और ८७५ शक संवत् (९५३ ई०) के हैं।

साहित्य क्षेत्र में संस्कृत का प्रायः बालि भाषा में या प्राचीन जावानी भाषाओं में अनुवाद, संक्षिप्तीकरण या टीका कार्य किया जाता है। बालि पुरोहितों के अपने वेद मूल संस्कृत भाषा में हैं; संस्कृत व्याकरण और संस्कृत छन्दों के ग्रन्थ भी हैं। संस्कृत पाठावली के भेद भी मिलते हैं जिनमें एक का नाम **स्वर संहिता** है। कुछ ग्रन्थों की संस्कृत अच्छी है यद्यपि आर० फ्रीडरिश का पछतावा है कि जावानी और बालि भाषाओं में "निस्सन्देह संस्कृत का रूप परिवर्तन (inflexion) नहीं लिया जा सका क्योंकि उसे समझने के लिए, जनता को समूचे व्याकरण से परिचित कराना पड़ता, जो बहुत ही अधिक कष्टप्रद होता।"

इस बात को समझाने के लिए हम स्वर संहिता नामक तथाकथित पाठावली का उदाहरण लेंगे। इस पाण्डुलिपि की प्रतिलिपि १८८५ शक संवत् (१९६३ ई०) में उदयन विश्वविद्यालय, देन पासर के कला संकाय के लिए की गयी थी। इसमें दोनों तरफ लिखे हुए ९८ ताड़पत्र (लोन्तार) हैं। प्रत्येक पृष्ठ पर चार पंक्तियाँ, प्रत्येक में ३२ से ३४ संस्कृत शब्द और उनके अर्थ हैं। पहले नौ पृष्ठों में सर्वनामों के रूप दिये गये हैं तथा अन्तिम तीन पृष्ठों में कुछ बीज और उनके अर्थ दिये गये हैं। पहला पन्ना इस प्रकार हैं :—

व्याकरण

यः सः असः असो **प्रथमा**—यस्मात् तस्मात् एतस्मात् अस्मात् अमुष्मात् यम् तम् एतम् इमम् एमुम्, **द्वितीया**—यस्याम् तस्याम् एतस्याम् अस्याम् अमुस्याम् येन् तेन् एतेत् अनेन् एमुम्, **तृतीया**—तस्मिन् तस्मिन, एप्रस्मिन् एतस्मिन अमुष्मिन यस्मे तस्मे एतस्मे अस्मै अमुस्मै, **चतुर्थी—विभक्तिन्या एकवचन पुंल्लिग**—याभ्याम् ताभ्याम् एतो इमो अमु, **पंचमी**—एताभ्याम् आभ्याम् अमुभ्याम् ययोः तयोः एताभ्याम् आभ्याम् अमुभ्याम्, **षष्ठि**—एतयोः अनयोः अमुयोः ययोः तयोः एताभ्याम् आभ्याम् अमुभ्याम्, **सप्तमी**—एतयोः अनयोः अमुयोः.... **विभक्तिन्या द्विवचन पुंल्लिग इक त कबः**।

शब्दावली (पन्ना ६क)

क्षत्र ङ सङ रतु (राजा) **अन्वयः** ङव्क-व्कनिरा (उसके पुत्र) **पङतीर्थ** ङ सङ दशरथ (राजा दशरथ) **अभिधानः** ङ यवकानि ङरनिर (अपना कहा जाता है) **भर्ता** ङरतुत्या (उसका राजा) **भुवौः** ङइमहन्या (उसकी भूमि) **भानुदिनः** ङहयांग आदित्य (सूर्य देवता) प्रभवः ङयीर्य्य (गरिमा), **अखण्ड** ङतनपियक (विभाजित न होनेवाला); **वनौः** ङकहगंकरनिर (उसके स्वार्थ), **मनुजेश्वराणम्** ङ सङ रतु (राजा), **मान्य** ङ पिनुजनिर (उसके द्वारा पूजित), **मनोज्ञ** ङ कोनङगुनङ (प्रसन्नता), **गुणज्ञेः** ङकसवतयान (शक्ति), **गुणज्ञः ङ पूजाज्ञानाति**, चकार ङ गवे आदि-आदि (ङ=है)

बीज (पन्ना ९७ ख)

पङ ङ पृथिवी **गोङ** ङ आकाश **रोङ** ङ **रादित्य सोङ** ङ सोम **स्लोङ** ङ गुरु **कोङ** ङ नन्दीश्वर **घोङ** ङ महाकाल सङ, सोम, श्वेतवर्ण (सफेद) बङ, बुद्ध कदीमस (स्वर्ण जैसा) बरेङ, बृहस्पति, कुनिङ (पीला) भङ भार्गव, कदी पेहन (दूध जैसा) अङ अंगार, रक्त (लाल) सङ, शनिश्चर, कृष्णवर्ण (काला) रङ, राहु रजतवर्ण (चाँदी जैसा), कङ, केतु, वलावु (घूसर) अङ कङ कसौल ङ उपहृदयमन्त्र।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मधुमक्खी (२)

श्री रामेश बेदी

नर मक्खी

रानी से छोटी और मजदूर से बड़ी काले रंग की मक्खी है। इसकी पीठ पर ताम्रवर्ण धारियाँ नहीं होतीं। अधिक बड़ा तथा हट्टा-कट्टा मजबूत शरीर और बहुत विशाल आँखें जो सिर के ऊपर के भाग में मध्य में आपस में मिल सी गयी हैं इसे घर के दूसरे सदस्यों से पृथक् करते हैं। इसकी छाती पर बाल बहुत घने और छोटे होते हैं। पिछली टाँगों की आकृति भी भिन्न होती है। एण्टिनी (Antennoe) अधिक लम्बे होते हैं। इसके शोर की ध्वनि अधिक ऊँची और अधिक गहरी होती है। इसका कार्य रानी को गर्भित करना मात्र ही है। वंशवृद्धि के लिए स्थान परिवर्तन के कुछ दिन पूर्व मक्खियाँ इन्हें पैदा करती हैं। रानी के गर्भाधान के बाद इन्हें उपनिवेश से बाहर निकाल दिया जाता है या मार डाला जाता है। वसन्त ऋतु में इनकी संख्या कुछ अधिक हो जाती है। प्रति सौ मक्खियों में इनकी संख्या तीन से अधिक नहीं होती। दूसरी ऋतु में ये बिलकुल नहीं रहते। डंक न होने से ये अपनी रक्षा या दूसरों पर आक्रमण कर उन्हें सता नहीं सकते। शहद के लोभ में दूसरे छत्तों में भी घुस जाते हैं।

मधुमक्खियों की जीवन कथा

भूण्ड, दीमक, चींटी और मधुमक्खी ये सब एक ही श्रेणी के जीव हैं। इनके जीवनों का अध्ययन बहुत अधिक मनोरंजक है। मधुमक्खियों के एक उपनिवेश में मक्खियों की संख्या एक हजार से साठ हजार तक हो सकती है। एक रानी कुछ नर और शेष सब हजारों मजदूर मक्खियाँ होती हैं। ये सब एक परिवार की तरह रहती हैं। दिन में छत्ते में मक्खियाँ बहुत कम होती हैं। जो होती भी हैं वे अपने कार्य विशेषों के कारण रहती हैं। अड़तालीस घन इंच का छत्ते का प्रत्येक चौखट जब मक्खियों से लदा होता है तो उसमें लगभग पांच हजार मक्खियाँ होती हैं।

छत्ते की कोठरियों के तल में रानी मक्खी अण्डे रखती जाती है और अपने शरीर से निकलनेवाले एक चिपचिपे पदार्थ से इन्हें वहीं चिपकाती जाती है। एक निश्चित समय के बाद अण्डे फूटकर लार्वे बन जाते हैं और तब युवा मक्खियाँ उन्हें शाही खुराक देती हैं। कुछ समय के बाद लार्वे स्वप्नावस्था में पाले जाते हैं और इस बीच में इनके विभिन्न अंग-प्रत्यंगों का विकास होकर ये पूर्ण मक्खी के रूप में बाहर निकल आते हैं।

रानी, मजदूर और नर तीनों अण्डे की अवस्था में तीन दिन रहते हैं। लार्वे की अवस्था में रानी ५½ दिन, मजदूर मक्खी छह दिन और नर मक्खी ६½ दिन रहती है। इन दिनों में से रानी मक्खी पूरे ५½ दिन और शेष दोनों तीन दिन तक शाही खुराक पर पाली जाती हैं। इस अवस्था के बचे हुए क्रमशः ३ और ३½ दिन तक मजदूर और नर मक्खी सामान्य खुराक पर पाली जाती हैं। इस खुराक में शहद और फूलों के पराग होते हैं। फिर स्वप्नावस्था में रानी, मजदूर और नर मक्खी क्रमशः ६½, १२ और १४½ दिन तक रहकर पूर्ण मक्खी बन जाती हैं। इस प्रकार १६, २१ और २४ दिन में तीनों मक्खियों का पूर्ण विकास हो जाता है।

मक्खियाँ जब तक उड़ना नहीं सीखतीं तब तक उनसे छत्ते के अन्दर ही काम लिया जाता है। ये मक्खियाँ अपने सिर से एक विशेष प्रकार का दूधिया रस निकालकर रानी मक्खी और लार्वों को खिलाती रहती हैं, इस रस को ग्राही खुराक (Royal jelly) कहा जाता है।

शिशु मजदूर ज्योंही कोठरी से निकलते हैं उसी क्षण से इनका क्रियाशील जीवन आरम्भ हो जाता है। जब मधु अधिक शक्ति से इकट्ठा किया जा रहा है उस समय इनका जीवन डेढ़ या अधिक से अधिक दो मास तक सीमित होता है। परन्तु साधारण अवस्था में ये तीन से छः मास तक जीवित रह सकते हैं। नर की आयु दो से तीन मास और रानी की दो से तीन साल तक होती है।

मधुमक्खी का छत्ता उनकी शिल्पचातुरी और गृह निर्माण कला का एक अनुपम उदाहरण—कला की कदाचित् सर्वोत्कृष्ट कृति है। शहद तथा पराग का संग्रह सामान्यतया छत्ते के ऊपर के हिस्से में करती हैं और अण्डे बच्चों को निचले हिस्से में रखती हैं। छत्ते में छोटी-बड़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो प्रकार की कोठरियाँ होती हैं। छोटी मजदूर मक्खियों के लिए और बड़ी नर मक्खियों तथा भोज्य सामग्री के लिए। एक और प्रकार की गोस्तनाकार कोठरियाँ छत्ते के निचले भाग या पार्श्व में रानी के लिए होती हैं। सामान्यतया ये एक से तीन परन्तु कभी कभी दस-पन्द्रह तक भी देखने में आती हैं। जिस ऋतु में फूल नहीं होते उसके लिए ये पहले से ही खाद्य पदार्थ छत्ते की कोठरियों में जमा करके मोम से बन्द कर देती हैं।

मक्खियों का गृह जीवन

इनमें घर की भावना बहुत विकसित रूप में होती है। अपने घर में किसी नई मक्खी को नहीं आने देतीं। अपने बच्चों और रानी मक्खी के लिए इनमें बहुत अधिक प्रेम होता है। छत्ते में अण्डे-बच्चे हों तो उसे नहीं छोड़तीं। अण्डे-बच्चोंवाले किसी दूसरे के छत्ते को भी अपना घर बना लेती हैं, यह आश्चर्य की बात है। उन पराये बच्चों को पाल लेती हैं। अण्डे बच्चों वाले छत्ते पर नई मक्खियों को सुगमता से आकर्षित किया जा सकता है। रानी मक्खी न हो या मर गई हो तो उन अण्डों में से कुछ को विशेष भोजन देकर रानी बना लेती हैं। उसके रहने के लिए बड़ी कोठरी और सब प्रकार की सुविधाएँ प्रदान कर देती हैं। रस और पराग की खोज में मक्खी छत्ते पर से उड़कर सीधी फूलों से खिले हुए खेतों में दो-तीन मील दूर तक चली जाती है। संग्रह करने के बाद बिना किसी भूल के सीधा अपने घर में आ जाती है। मक्षिकागृह में एक सदृश अनेक घरों में बीच में यह अपना घर दूर से पहिचान लेती है और एक तीव्र गति से इसमें लौटती है। इस और परागवाले स्थान को खोज लेने पर या किसी अन्य महत्त्वपूर्ण बात का समाचार अपने साथियों को देने के लिए ये अनेक प्रकार के नृत्य करती हैं। भोजन इकट्ठा करते हुए तथा अन्य घरेलू कार्य करते हुए मित्रतापूर्वक रहती हैं, किसी प्रकार का लड़ाई-झगड़ा नहीं करतीं।

मक्खी का अनुभव करने का ज्ञान बहुत अधिक प्रशंसनीय है। छत्ते के अन्दर मक्खी की दृष्टि कार्य नहीं करती। दृष्टि का प्रतिनिधि यहाँ अनुभव होता है। मक्खियाँ अपना छत्ता बनाती हैं, छत्ते के छिद्रों में शहद और पराग रखती हैं, बच्चों को खिलाती हैं। उनकी और जरूरतों का अनुमान करती हैं, अपनी रानी को पहिचानती हैं, यह सब कुछ अन्धकार में करती हैं। इन कार्यों में इनके विशेष संज्ञावाही अंग एटिनी (Atenae) सहायता करते हैं। हमारे हाथों की अपेक्षा ये एटिनी वस्तुओं को पहिचानने में कहीं अधिक अभ्यस्त होते हैं।

उपनिवेशों की स्थापना

छत्ते की आबादी बढ़ जाने से रानी छत्ता छोड़कर कुछ मजदूर मक्खियों के साथ दूसरी जगह जाकर नया घर बसा लेती है। उसके बाद छत्ते में बचे हुए मजदूर रानी की कोठरी (Queen cell) में से नई रानी को निकाल लेते हैं। रानी अण्डे देना आरम्भ करती है और इस उजाड़ घर को फिर से आबाद कर लेती है।

उत्क्रमण (Swarm) का मतलब मजदूर मक्खियों की अधिक उत्पत्ति के कारण छत्ते में आबादी अधिक हो जाना है। आक्रमण एक वैवाहिक उड़ान नहीं है जैसा कि प्रायः समझा जाता है, परन्तु यह वंश विस्तार के लिए की जाने वाली प्रक्रिया है।

मक्खियों का उत्क्रमण आमतौर पर एक गरम और शान्त दिन में मई या जून में होता है। घर छोड़कर दूसरी जगह जाने से पूर्व इनके विशेष हावभाव और चेष्टाओं से आमतौर पर इसका ज्ञान हो जाता है। कुछ दिन पहले ही छत्ते में चहल-पहल रहती है, भनभनाहट अधिक सुनाई देती है, मजदूरों के दल इधर-उधर चक्कर काटते रहते हैं। प्रस्थान के समय पहले कुछ मजदूर बाहर निकलते हैं और चलने की सूचना देने के लिए जोर का शब्द करते हैं। अन्य मक्खियाँ शीघ्रता से बाहर निकलकर छत्ते के ऊपर आस-पास मँडराती रहती हैं और सबके बाहर आ जाने पर प्रयाण आरम्भ हो जाता है। एक जीवित तेज धारा में मक्खियाँ शीघ्रता से सीधा ऊपर हवा में उड़ जाती हैं और इस तरह चक्कर लगाती हैं जैसे कि छोटा सा बादल बन गया हो। इस सारे समय में ये विशेष प्रकार से भनभनाती रहती हैं। यह भनभनाहट इनके उड़ने के समम के विशेष शब्द की सृष्टि करती है जिसे पालक अच्छी तरह पहिचानता है। थोड़े या अधिक समय के बाद पड़ोस की डाल पर ये घने समूह में जमा होनी शुरू हो जाती हैं जहाँ कि इनकी रानी पहले ही बैठ चुकी है। आकाश में चक्कर काटती हुई मक्खियों पर सूक्ष्म छिद्रोंवाली पिचकारी से पानी छोड़कर या मुट्ठी में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंडित नेहरू महाराज के कक्ष में महाराज से वार्तालाप करते हुए

राजप्रासाद के मंदिर में पंडित नेहरू (पीछे महारानी के साथ श्रीमती इंदिरा गांधी)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

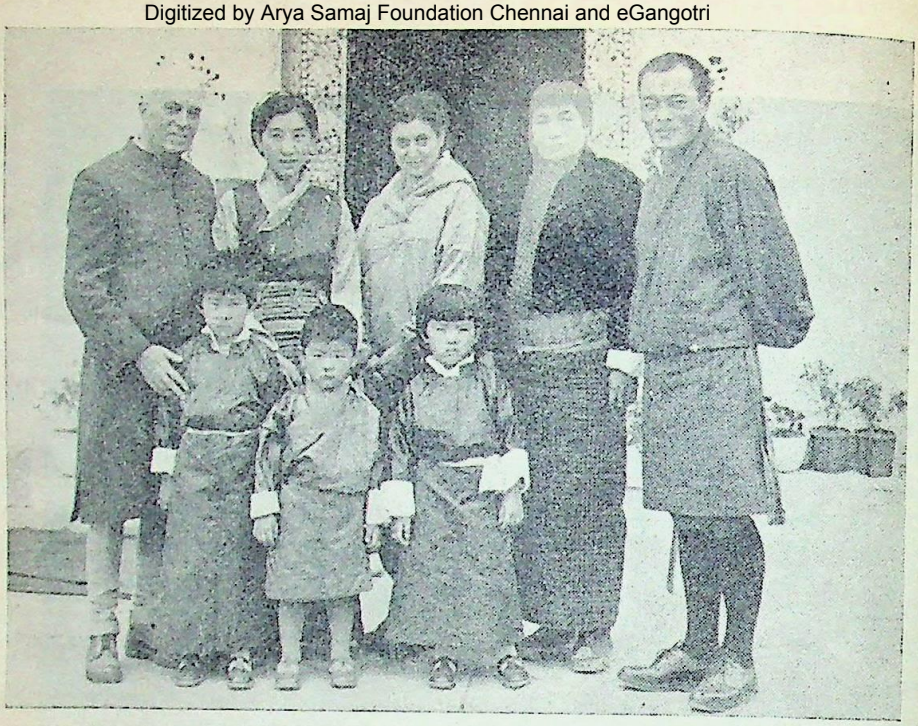

१. महामहिम श्री ४ जिग्मी दोरजी वांगचुक, महाराजा भूटान २. महामहिम राजमाता ३. श्रीमती इंदिरा गांधी ४. महामहिम महारानी के संग दोरजी ५. पंडित नेहरू (आगे दो राजकुमारियाँ और राजकुमार) (यह चित्र विदा होने से पूर्व महाराज के आदेश से लिया गया)

श्री फेनी मुकर्जी और पंडित नेहरू का यह चित्र पारो से विदा होते समय संयुक्त सचिव श्री जगन्नाथ मेहता ने लिया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिट्टी भरकर फेंकने से भी ये पास की किसी शाखा पर बैठ जाती हैं। उड़ने से पूर्व मक्खियों ने पर्याप्त परिमाण में शहद खा लिया होता है जिससे हर एक मजदूर का पेट कम या अधिक भरा होता है और इसलिए वह कुछ समय तक बिना अतिरिक्त भोजन की प्राप्ति के भी गुजारा कर सकता है। उत्क्रमण के समय ये अपने डंक का प्रयोग करने में बहुत सुस्त होती हैं और यदि डंक का प्रयोग किया भी जाय तो अपेक्षाकृत कम कष्टकर होता है। उत्क्रमण के बाद शाखा पर एक झुण्ड आश्चर्यजनक देर तक टँगा रह सकता है, खासकर तब जब कि मौसम खराब हो। कभी-कभी चार दिन तक लटका हुआ देखा गया है। यदि बिना छेड़े लटका रहने दिया जाय तो कुछ घण्टों के बाद किसी अनुकूल आश्रय पर खोखले वृक्ष में या दूसरे स्थान में उड़ जाता है। अपने पहले घर में भी दुबारा जाते हुए कई बार देखा गया है।

झुण्ड का आकार और भार बहुत अधिक भिन्न-भिन्न होता है। एक तुच्छ सा झुण्ड मुट्ठी से बड़ा नहीं होता। इसके अलावा ऐसा भी होता है कि जब शाखा को काट कर झुण्ड थामा जाय तो कन्धे से पैर के गिट्टे तक पहुँच जाता है और उसे थामने के लिए एक हाथ दूसरे का सहारा चाहता है। औसत झुण्ड प्रायः फुटबॉल के आकार के होते हैं और भार में लगभग चार पौंड। आम-तौर पर झुण्ड उसी दिन शाम को अपने स्थिर निवास में घर बना लेता है।

मक्खी का भार डेढ़ ग्रेन होता है। इसके क्रियाशील जीवन की समाप्ति के साथ-साथ यह कम होकर १$\frac{1}{2}$ ग्रेन रह जाता है। उत्क्रमण के समय मक्खी $\frac{3}{10}$ ग्रेन शहद अपने अन्दर भर लेती है जो उसके साहसिक जीवन के प्रारम्भिक दिनों में उसकी सहायता करता है और खराब मौसम में छोटे से समय के लिए उसे सहारा देता है। मक्खियों का एक पौण्ड भार इस लिए चार हजार मक्खियों के होने को प्रकट करता है और नया घर बसाने के लिए उड़नेवाले एक झुण्ड का भार छह से दस पौण्ड तक होना असाधारण बात नहीं है।

जब उत्क्रमण (Swarm) एक स्थान पर घर कर लेता है तो मक्खियाँ अपने नये मकानों के लिए मोम पैदा करके काम-काज करना आरम्भ कर देती हैं। शरीर के पिछले भाग में स्थित ग्रन्थियों (Glands) से मोम पैदा होता है और पतली लम्बी परतों के रूप में यह शरीर से बाहर आता है। टाँगों के पिछले जोड़े पर विद्यमान एक उपकरण इसे ले लेता है और हन्वस्थियों (Mandibles) से ठीक करने के बाद इसे इस तरह से लगाता जाता है जिससे कोठरियाँ (cells) बनती जाती हैं जिनमें बच्चों का पलना है और भोजन संगृहीत होना है। सब इकट्ठा मिल कर काम करती हुई मक्खियों की एक बड़ी संख्या इस प्रकार एक नियमित और सुन्दर रचना बना देती हैं जिसे छत्ता कहा जाता है। बाद में रानी प्रत्येक कोठरी में एक अण्डा रखती जाती है और जब ये शीघ्र ही फूटकर बच्चे बन जाते हैं तो इनको खिलाने-पिलाने के लिए मजदूर मक्खियों पर बहुत काम आ पड़ता है। ये जो शहद और पराग खाती हैं वह इनके पाचक अंगों के एक भाग द्वारा एक प्रकार के मृदु सुपच भोजन में बदल जाता है और तब छोटे बच्चों को दिया जाता है। इसका कुछ भाग कोठरी के अन्दर रख दिया जाता है जिससे लार्वे इसमें सन जायँ और मुख द्वारा खाने के अतिरिक्त सम्भवतः त्वचा से भी भोजन को ग्रहण कर सकें। जब उपनिवेश (Colony) अच्छी उन्नति में होता है और छोटी मक्खियाँ बाहर निकल आती हैं तो नवजात मक्खियाँ धायों का काम करती हैं। पुरानी मक्खियाँ भोजन बनाना बन्द कर देती हैं और बाहर से शहद और पराग लाती हैं जो कि पृथक्-पृथक् कोठरियों में संगृहीत कर दिया जाता है।

श्रम विभाग

छत्ते के ऊपर के भाग में चिपटी हुई मक्खियाँ मोम बनाने का काम करती हैं। मोम उत्पादकों के जरा नीचे छत्ते के केन्द्र में जहाँ कुछ दिन पूर्व रानी ने सबसे पहले अण्डे रखे थे, कुछ मजदूर मक्खियाँ पशुओं के समूह जैसी बिखरी हुई हैं जिनमें से प्रत्येक अपनी मनोनुकूल इच्छा के अनुसार कार्य कर रही है, ये बच्चों की संरक्षक हैं।

कोठरियों में पड़े हुए अण्डों और लार्वों को गरमी पहुँचाने का काम भी मजदूर करते हैं। इनकी रक्षा में कोठरियों के ऊपर लेटे हुए मजदूरों को ध्यान से देखने पर मालूम होगा कि अभी इनका श्वासोच्छ्वास अधिक तेज हो गया है और तेज धड़कनों के साथ-साथ पेट जल्दी-जल्दी फैल और सिकुड़ रहा है। इस प्रकार इच्छापूर्वक प्रयत्न से इन्होंने रक्त के प्रवाह को शीघ्र और निरन्तर कर लिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है अब खून का बहाव पहले से अधिक बढ़ जाने से इनका तापमान भी धीरे-धीरे ऊँचा हो रहा है। इस थकानेवाले श्रम को ये कई घण्टों तक लगातार कर सकती हैं, यहाँ तक कि एक ज्वराक्रान्त रोगी के हृदय की धड़कन के समान इनका शरीर एक मिनिट में एक सौ बीस बार धड़कने लगता है और ये पीसने से तर हो जाती हैं। अत्यन्त थकान के बाद ठण्डी वायु के स्पर्श से शरीर में कँपकँपी का दौरा होने पर ये अन्त में वहाँसे हट जाती हैं और दूसरी मक्खियाँ शीघ्रता से आकर इनका स्थान ले लेती हैं।

आधी खुली हुई कोठरियों के तल में पड़ी हुई अपनी छोटी बहनों को, जो अभी आकृतिहीन क्रिया रहित सफेद से पदार्थ के धब्बे मात्र ही हैं, धायें पोषक भोजन देती हैं। इनके क्रियाशील आमाशय में प्रचुर परिमाण में रक्त के साथ-साथ मानों जीवन के प्रवाह की बाढ़ आती है। आमाशयिक रस बहुतायत में पैदा होता है जो पराग और मधु दोनों को पचाकर ऐसे इसके रूप में परिवर्तित कर देता है जिससे प्रसुप्तावस्था में पड़े हुए लार्वे और प्यूपे जीवन लेते हैं। सदा सतर्क धायें इन छोटे लार्वों को एक क्षण के लिए भी अकेला नहीं छोड़तीं। यदि हम परीक्षा के लिए पेटी में से एक चौखटा निकालें तो लार्वों वाली कोठरियों के साथ इन्हें चिपका हुआ पायेंगे—हमला करने के लिए बिलकुल बेखबर, एक दम निश्चेष्ट और हानि रहित, क्योंकि इन्हें जीवन के खतरों का कुछ ज्ञान ही नहीं है और क्योंकि ये वास्तव में केवल एक ही चीज जानती हैं कर्तव्य, जो उनका हृदय इन्हें आदेश देता है और जो आनन्दमय सेवाभाव के रूप में मानों उन पर थोप दिया गया हो।

छत्ते के लगभग निचले हिस्से में इधर-उधर घुमती हुई छत्ते के कोनों और कोठरियों के अन्दर से धूल के कण, मक्खियों की मृत लाशों और बाहर से किसी प्रकार के आए हुए कूड़े कचरे को बहुत ध्यान से ढूँढ़ती हुई और बहुत इत्मिनान से इसे फिर बाहर ले जाती हुई भंगी मक्खियों को हम देखते हैं। आयु में ये औरों की अपेक्षा अधिक बड़ी हैं। जिन केले के रेशों से हमने प्रारम्भ में चौखटों के साथ छत्तों को बाँधा था उन रेशों को ये भंगी पेटी से बाहर निकाल फेंकते हैं जब कि छत्ते का ऊपर का भाग मोम द्वारा चौखटों से चिपका दिया जाता है।

छत्ते में हमेशा ताजी और नयी वायु का संचार करते रहना है। अनियमित तीव्र वेदना पैदा करता हुआ और के लिए और छत्ते के वातावरण को फिर से नया कर देने के लिए कुछ मक्खियाँ पंखे का काम करती हैं। हम छत्ते में इन्हें प्रायः सब जगह देखते हैं परन्तु प्रवेश-द्वार के पास विशेषकर अधिक संख्या में जमा रहती हैं। प्रत्यक्ष दर्शन में ये सर्वथा निश्चेष्ट मालूम देती हैं परन्तु इस प्रकट स्थिरता और निष्क्रियता में ये महान् कार्य कर रही हैं। पेट ऊपर उठाये हुए और पीछे की ओर झुकाये हुए ये वायु नियन्ता चौड़ाई हुई टाँगों से तो तिपाई की तरह स्थिर संयुक्त हैं पर ये अपने पंखों को इतनी तेजी से कँपा रही हैं कि हम इस गति को किसी हद तक देख भी नहीं सकते।

सचेष्ट गति से मोम के पृष्ठ के ऊपर धीरे-धीरे चहल-कदमी करती हुई या इधर-उधर दौड़ती हुई, प्रवेश-द्वार को एक क्षण से अधिक समय के लिए भी कभी नहीं छोड़ती हुई ये विचित्र मक्खियाँ क्या हैं? ये घर की ईमानदार पहरेदार हैं। सब मजदूर मक्खियों की अपेक्षा संभवतः इन्हें समीप से देखना अधिक मनोरंजक है। ये सम्पर्क स्त्री पोलीस प्रत्येक गुजरती हुई मक्खी का चाहे वह छत्ते को छोड़कर बाहर जा रही है या अन्दर घुस रही है, निरीक्षण करती है। यह कार्य अजनबी को पहिचानने, उसे पकड़कर गिरफ्तार कर लेने और बाहर निकाल देने के उद्देश्य से किया जा रहा है। इसके लिए ये अपने विशेष ज्ञानवाही sensitive) अंगों का उपयोग करती हैं। ये अंग (atinae) इनके मस्तक पर सदा गतिशील पतले से कोमल सींगों की शक्ल में लगे होते हैं जिनका जादू का-सा रहस्यपूर्ण कार्य आधुनिक वैज्ञानिकों की समझ से परे है। कई विद्वानों के ख्याल में ये स्पर्श ज्ञान के अंग हैं, कई इन्हें श्रवण इन्द्रिय समझते हैं, दूसरे इन्हें गन्ध की ज्ञापक इन्द्रिय कहते हैं जिसके द्वारा ये अपने छत्ते की और दूसरी मक्खियों में भेद कर सकती हैं। जो कुछ भी हो, इनके द्वारा ये सब गुजरती हुई मक्खियों में से अजनबी को इतनी शीघ्रता और अचूक भूल से परख लेती हैं कि कम आश्चर्य नहीं होता। इतनी बड़ी भीड़ में किसी अजनबी को पहिचानते ही ये खतरे का इशारा देती हैं। एक छोटी सी तेज उड़ान के साथ ये शत्रु पर झपटकर आक्रमण करती हैं। शत्रु अधिक शक्तिशाली हो या संख्या में बहुत अधिक हों इस बात की कोई परवाह नहीं। उनका उद्बुद्ध सन्देह और क्रोध एक भयंकर शस्त्र की तरह कार्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जलाते हुए ज्वर की तरह प्रविष्ट होता हुआ डंक शत्रु का मुकाबला करने और उसकी जान लेने में बहुत सहायता करता है। डंक पैना, पतला, तेज, दो धारों वाला, लोहे की अपेक्षा अधिक लचकीला, काटते हुए आरे से अधिक तेजी से छेदता हुआ और इसीके समान दन्तुर होता है जिससे घाव में यह अच्छी तरह गड़ सके, और अपनी पकड़ को शिथिल करने के बजाय टूट जाना अधिक पसन्द करता है।

ऊपर के छत्तों में मक्खियों ने जो पुष्प रस रखा है वह अब तक पक्व शहद नहीं है और अपनी अन्तिम घनता नहीं पहुँचा। यह अब भी बहुत अधिक स्वच्छ पारदर्शक द्रव है। इसमें विद्यमान पानी के और अधिक वाष्पीभवन के लिए कुछ मजदूर छत्ते की वायु के आवागमन को तेज करने का कार्य ले लेते हैं। उनमें से कुछ प्रवेश-द्वार के पास अपने आपको पंक्तिबद्ध कर लेते हैं और अपने पंखों के गतिमान् कम्पन से वायु की धाराओं को घर के अन्दर तथा बाहर और छत्तों के पृष्ठों के ऊपर फेंकते हैं। ऐसे समय हाथ को चुपके से प्रवेश-द्वार के समीप ले जाकर छत्ते में ले बाहर आती हुई गरम वायु की तेज धारा को अनुभव करना आसान होता है। यह प्रक्रिया सारी रात भर थोड़ी बहुत होती रहती है और किसी ग्रीष्म रात्रि में विस्तृत अन्धकार छा जाने पर किसी भी स्वस्थ छत्ते में सुनाई देनेवाली भनभनाहट का यह कारण होती है।

मक्खियों की भनभनाहट को ध्यान से सुना जाय तो इसमें दो स्पष्ट भिन्न शब्द सुनाई पड़ते हैं। एक गम्भीर आवाज पंखों के कम्पन के कारण है और यह आवाज तब उत्पन्न होती है जब कभी किसी शीघ्र किये जानेवाले काम की जरूरत होती है। दूसरा, एक तीव्र शब्द है और कहा जाता है कि छाती की दीवारों के कम्पन के कारण होता है।

पेटी की परीक्षा

मक्खियाँ ठीक तरह कार्य कर रही हों तो पेटी को हर वक्त खोलने की आवश्यकता नहीं। सरसरी निगाह से देखना काफी होता है और सप्ताह में एक बार पेटी को खोलकर अच्छी तरह निरीक्षण कर लेना चाहिए। दिन में चार से दस तक का समय परीक्षा के लिए अच्छा होता है। तेज हवा, अधिक शीत, वर्षा आदि में परीक्षा स्थगित कर देनी चाहिए। शान्ति और स्थिरता से बिना घबराहट के परीक्षा करें। मक्खियों को किसी प्रकार की तकलीफ न होने देने का पूरा ध्यान रखें। असावधानी से छेड़ी जाने पर आक्रमण करती हैं। परीक्षा करते समय सिर पर जाली और हाथों में रबड़ के दस्ताने पहिनना अच्छा रहता है। प्रत्येक बार की परीक्षा में निम्न बातों का रिकॉर्ड रखें—

१. परीक्षा की तिथि।
२. छत्तों की संख्या।
३. परीक्षा करने का ठीक समय।
४. उस समय की मौसम की अवस्था।
५. प्रवेश-द्वार पर मक्खियों का कार्य।
६. क्या मक्खियाँ बहुत अधिक डंक मारती हैं?
७. चौखटों में फासला ठीक है या नहीं? ठीक न हो तो कर दें।
८. भूण्डों का कोई छत्ता हो तो तोड़ डालें।
९. मधु बॉक्स के चौखटों में शहद है या नहीं? है तो अन्दाजन कितना है?
१०. यह मोहर बन्द है या खुला?
११. क्या आप ने रानी देखी है?
१२. क्या वह क्रियाशील है और अण्डे दे रही है?
१३. लार्वों के लिए भोज्य सामग्री पर्याप्त जमा है या नहीं?
१४. अण्डों की अवस्था क्या है?
१५. क्या पेटी में मधुमक्खियों की बहुत अधिक भीड़ है—मध्यवर्ति या मधु बॉक्स में?
१६. कोई नर है?
१७. कोई नर अण्डा—मोहर बन्द या खुला हुआ?
१८. सारे छत्ते सीधे और ठीक तरह बनाये जा रहे हैं?
१९. रानी के कोई घर हैं?
२०. छत्ते में किसी प्रकार का लड़ाई झगड़ा?
२१. तितली या मोम तितली आदि कोई शत्रु? हो तो निकालकर मार दें।
२२. जहां मक्खियाँ नहीं जा सकतीं ऐसे हिस्सों को साफ कर दें।
२३. पेटी की लकड़ी में कोई बड़ी दरार?
२४. वातायन (वायु के लिए लगाई गयी जाली) की अवस्था?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२५. वायु का आवागमन पर्याप्त है ?
२६. धूप और बारिश में पेटी अधिक तो नहीं रहती ?
२७. पेटी को रखने का स्थान उपयुक्त है ?
२८. पिछली परीक्षा की अपेक्षा छत्ते की अवस्था में कुछ उन्नति मालूम होती है ?
२९. परीक्षा के समय कितने और कौन-कौन व्यक्ति थे—नये हैं या पुराने ?
३०. कोई विशेष बात ?

मक्खियों का डंक

मक्खियों के पास जाने से लोगों को यही चीज रोकती है। काले रंग के डंक के आधार पर एक सफेद छोटी विषैली थैली होती है। इसमें विष तरल पदार्थ के रूप में रहता है। मक्खी जब डंक मारती है तो इस विष की थैली के साथ डंक आक्रान्त भाग पर रह जाता है। डंक के द्वारा तरल विष शरीर के अन्दर प्रविष्ट होता है और क्षोभ तथा शोथ उत्पन्न करने का कारण बनता है। ऐसे समय यदि हाथ से रगड़ या खुजला दिया जाय तो विष की थैली फट जाने से विष को अन्दर प्रविष्ट होने में और अधिक सहायता मिलती है जिससे कष्ट बढ़ जाता है। इसलिए डंक लगने पर सबसे पहला कार्य यह होना चाहिए कि चाकू की नोक या अँगुलियों के नाखून से डंक पकड़कर बाहर निकाल फेंकना चाहिए। विष की थैली को बिना हानि पहुँचाए यदि डंक निकाल लिया गया है तो क्षोभ तथा सोजिश बहुत नहीं होंगे। बेञ्जीन, द्रव अमोनिया, टिञ्चर आयोडीन या मधु आदि का बार-बार लगाना भी क्षोभ और सोजिश को रोकता है। सोजिश बहुत अधिक हो और स्थान वेदन युक्त हो तो हलके पानी का सेंक कष्ट कम करता है। मक्खियों के डंक में दर्द का कारण जो पदार्थ है वह साँप और बिच्छू के विष से बहुत मिलता है। कहते हैं कि हाथी भी मक्खियों के डंक से मर जाते हैं।

मक्खियों के डंक से बचने के लिए शहद तोड़नेवाले रात को शहद तोड़ते हैं। वे अपने शरीर पर तीव्र गन्धी पौदों को मसल लेते हैं, मशाल की ज्वाला से मक्खियों को भून देने की कोशिश करते हैं जिससे मक्खी उड़कर डंक न मार सके। जिस मनुष्य को मक्खियाँ कई बार डंक मार चुकी हों, बार-बार विष-प्रवेश से धीरे-धीरे उसके ऊपर इसका असर कम होने लगता है। गठिया के रोगी के लिए यह एक उत्तम औषधि का काम करता है।

परीक्षा के लिए जब मक्खियों के चौखटों को बाहर निकाला जाता है तो अचानक झटका लगने से ये क्रुद्ध हो जाती हैं और डंक मारती हैं। या शहद निकालने के लिए यदि छत्तों को बाहर निकालना है और उन पर से मक्खियों को झटका देकर अलग करना है तो वे उत्तेजित हो जाती हैं और क्रोध में डंक मारती हैं। बिना किसी भय और विश्वास के साथ और बहुत धीरे-धीरे बिना किसी जल्दबाजी की चेष्टा किये इन्हें पकड़ने में किसी प्रकार से भी इनके उत्तेजित होने की सम्भावना नहीं रहती जिससे इन्हें डंक मारने को प्रोत्साहन मिले। मक्खियों की देख-भाल करते हुए हाथों या दस्तानों के ऊपर मक्खियाँ डंक मारें तो डंक को तुरन्त निकालकर फेंक देना चाहिए और हाथों को पानी में धो देना चाहिए जिससे डंक की गन्ध अन्य मक्खियों को विक्षुब्ध न कर दे।

डंक मक्खी के पेट के अन्दर की आँतों से संयुक्त होता है। यह एक पतली नलिका के रूप में होता है जिसके ऊपर सींग सदृश पदार्थ का एक आवरण होता है। इसीके कारण यह कुछ कठोर मालूम होता है। उत्तेजित होने पर मक्खी डंक मारकर डंक को उस स्थान के अन्दर प्रविष्ट कर देती है। डंक की रचना इस प्रकार की होती है कि चाहती हुई भी मक्खी उसे फिर बाहर नहीं निकाल सकती। आँतों के कुछ हिस्से भी डंक के साथ टूटकर उस स्थान पर रह जाते हैं, उससे मक्खी अपने जीवन से हाथ धो बैठती है।

काली मिरच, सोंठ, सुगन्धबाला तथा नागकेसर को पीसकर लगाने से मक्खी का विष उतर जाता है।

मरिच महौषध बालक नामाइवैर्मक्षिका विषे लेपः।
चक्रदन्त, विष चिकित्साः।।

श्लोक २७।

डंकवाले प्राणियों में यह सामान्य नियम है कि मादा के ही डंक होता है नर पूर्णतया हानि रहित होते हैं। यही बात शहद की मक्खी के लिए है।

मक्खी के पेट को दबायें जिससे डंक बाहर निकल आता हैं यह बहुत पतला मन्त्र लगभग पारदर्शक, तेज नुकीला, ही एक किनारे पर दन्तुर होता है। नग्न आँखों से ये दाँतें नहीं दीखते। दोलफे धागे जैसी पतली प्रायः मनुष्य के बाल जितनी मोटी थी नहीं—ग्रन्थियों से विष स्रवित किया जाता है ही तब डंक के आधार में स्थित एक छोटी-सी थैली में भ्ररम किया जाता है। जब जीव इस शस्त्र का उपयोग करता है तो वह पेट को सिकोड़ता है जिसके द्वारा डंक जोर बाहर निकला जाता है ही विष थैली या दबाव डाला जाता है। उस झटके की शक्ति से, जो डंक को रक्त में पहुँचा देत है, डंक का विष थैली पर दबाव पड़ता है ही विष की थोड़ी सी मात्रा घाव में प्रविष्ट कर दी जाती है। यदि मक्खी को छेड़ा न जाय तो वह डंक को वापिस बाहर निकाल लेती हैं परन्तु क्योंकि सामान्यतया वेदना से झटका लगता है तो दन्ड़ा शस्त्र बाहर नहीं निकल पाता है। सारा विष मन्त्र डंक, विष थैली ही ग्रन्थियाँ दूर जाती हैं जो मक्खी की मौत का कारण बनती हैं।

[समाप्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंडित नेहरू की भूटान-यात्रा (२)

श्री फेनी मुकर्जी

हा-जोंग के पड़ावों पर हमारे रहने का बड़ा ही सुन्दर इन्तजाम था। हमारे लिए अलग सुसज्जित कमरों का प्रबन्ध था और हर एक प्रकार के खाने-पीने का बहुत ही शानदार प्रबन्ध किया था भूटान के प्रधान मन्त्री महोदय ने। ऐसा लग रहा था मानों हम सब उनके घर मेहमान थे। पंडितजी, श्रीमती इन्दिराजी और भूटान के प्रधान मन्त्रीजी के साथ हम सबों ने बड़ी शानदार चाय पीकर सब लोग अपने अपने कमरों में आराम करने के लिए लेट गये थे। पंडितजी को अपने कमरे में जाते देखकर मैंने अपनी छुट्टी समझी और अपने शान्त कमरे में आकर जुट गया अपने कमरे की सफाई करने में। चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ था, सब ही थके माँदे लोग सो गये थे। मौका पाकर खूब मन लगाकर मैं अपने कैमरों की सफाई और देखभाल में लगा हुआ था बड़े ध्यान से। अचानक मेरी पीठ पर कुछ आ गिरा बड़े जोर से। चौंककर पीछे घूम कर देखा एक बड़ा-सा सन्तरा पड़ा था बगल में। यह सन्तरा कैसे और कहाँ से गिरा मेरी पीठ पर सोचता रहा थोड़ी देर। जब कुछ समझ में नहीं आया तो फिर शुरू कर दिया अपना काम जल्दी-जल्दी। पीछे की खिड़की की रोशनी से एक परछाईं-सी हिलती देखी सामने की दीवार पर। चट-से पीछे मुड़ कर देखा हमारे आदरणीय पंडितजी खड़े मुस्कुरा रहे थे मुझसे छेड़खानी में। इस कमरे से हटकर फिर चले बिल्ली की तरह पाँव दबाते हुए दूसरे लोगों की नींद को खराब करने के लिए। छोटे बच्चों की तरह हमारे हरदिल अजीज सत्तरवर्षीय प्रधान मन्त्री, अपनी थकान की परवाह न करते हुए लगे रहते थे छोटे बड़े सब ही साथियों को ताजा दम बनाने में।

विश्व ब्रह्माण्ड के अनन्त प्रांगण में अजस्र तारे चमक रहे हैं। असीम सागर की छाती पर अनगिनत लहरें मौज में आकर लोट-पोट करती रहती हैं। जो कुछ भी है आती-जाती है पर छोड़ जाती है अपनी निराली चाल की अनोखी रेखा छाप मानव जीवन के पथ पर। महानों के पदचिह्न के सहारे चलते रहते हैं भूले-भटके काफिले सही दिशा की ओर। प्रातः साढ़े आठ बजे इतवार के दिन पंडित नेहरूजी रवाना होनेवाले थे भूटान की राजधानी पारो की ओर। रोजाना वह हमसे आगे निकल जाते थे तेजी से और पहुँच जाते थे हमसे बहुत पहले पड़ाव पर। पारो में पहुँचने पर भूटान के महाराजा करेंगे उनका स्वागत बड़ी धूमधाम से। उस महत्त्वपूर्ण स्वागत के सारे चित्र उतारने का भार मेरे ऊपर था। सोच-विचार कर मैंने मन में तय कर लिया था कि मैं भी उन खच्चरवालों के दल के साथ ही चल पड़ूँगा जो चल पड़ते थे हमारा माल असबाब लाद कर प्रातः चार बजे अँधेरे में। बिना मुँह धोये, बिना चाय पिये मैं अपने कैमरे के झोले को लेकर खड़ा हो गया माल लदते हुए खच्चरों के पास। सर्राटे की ठंडी हवा में सिकुड़ा हुआ सिगरेट पीते-पीते ऐसा लगा कि कोई मुझको अन्धेरे में खड़ा ताक रहा है। काला ओवर कोटवाला आदमी जब निकट आकर मेरे सामने खड़ा हो गया तो घबराहट से मेरे हाथ से सिगरेट छूट पड़ी जमीन पर। पंडित नेहरू ने मुस्कुराते हुए पूछा—'यहाँ क्या हो रहा है?' उत्तर में मैंने सहम कर कहा था—'हुजूर की सवारी रोजाना आगे निकल जाती है इसलिए····? मेरे उत्तर को सुनकर बड़े अन्दाज से बोले थे—'अच्छा····' और कुछ बोले नहीं, घूम-घूमकर देखते रहे कि खच्चरवाले किस प्रकार माल लाद रहे थे खच्चरों की पीठों पर। उन बेचारों को क्या पता था कि कौन महान् पुरुष इस कड़ाके की सर्दी में छिपा खड़ा देख रहा था उनके जीवन धारा की बातों को। लगभग पचास साठ माल लदे खच्चरों के काफिले के पीछे मैं चल पड़ा था। आज की चढ़ाई जितनी खतरनाक और कठिन थी उससे कहीं ज्यादा थी तकलीफ-देह बर्फ के समान ठण्डी तेज हवा। घने जंगल को चीरते हुए हम चढ़े चले जा रहे थे टेढ़ी-मेढ़ी खड़ी चढ़ाई की पग-डंडी पर। पहाड़ों की पगडंडी घुमावदार होती है और हर घुमाव पर नीचे देखने से सिर चकरा जाता है। ज्यों-ज्यों ऊँचाई बढ़ती जाती है त्यों-त्यों घुमाव छोटा और संकीर्ण होता रहता है। जरा भी खच्चर की भूल-चूक से हजारों फुट नीचे गिर कर खो जाता है सब कुछ सदा के लिए। अपने खच्चर को सण्टी मार-मारकर बढ़ाये चले जा रहे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे तेजी से पंडित नेहरूजी से पहले पहुँचने के लिए। तमतमाता हुआ सुन्दर सूर्य निकल रहा था हमारे सामने नीले कोहरे की चादर उतार कर। सूर्य की सुन्दर किरणों के स्पर्श से शरीर में कुछ गरमी-सी आई और खच्चर भगा कर काफिले के आगे दौड़ गया काफिले के फोटो खींचने के लिए। घने जंगल के भीतर दूर से आ रही थी उन घंटों की आवाज जो खच्चरों के गले से घंटियाँ टनटना रही थीं। खच्चरों के सिरों के ऊपर फहरा रही थीं भूटान राज्य की रंगीन झंडियाँ। बड़े-बड़े सन्दूक और मोटे-मोटे बिस्तरों के बण्डल लादे खड़े कानवाले भूरे खच्चरों की कतार चली आ रही थी घनघनाती हुई तेज गति से। खच्चरवालों की चिल्ल पुकार और साथ में चलनेवाली भूटानी मजूरनियों के गीतों की सुरीली तान से जंगल गूँज रहा था। मन में सोच रहा था शायद इसी प्रकार पुराने जमाने में यात्रा करते होंगे हमारे बड़े-बड़े महान् पंडित। जाया करते होंगे वह भगवान बुद्ध के बौद्ध धर्म का सन्देशा पहुँचाने को सुदूर देशों में। क्या ही शानदार काफिला होता होगा उस जमाने का जिसमें होते थे भारत के छटे हुए उत्तम कलाकार, शिल्पी, वैज्ञानिक और दक्ष राजनीतिज्ञ उन महान् पंडितों के साथ। बन्दूक, पिस्तौलधारी सशस्त्र पलटन के बजाय चला करती थी पुजारियों की लम्बी-लम्बी टोलियाँ धर्म की पोथियाँ अपने कन्धों पर लादे। दुनिया के रास्ते की हर प्रकार की खाइयों के पाटने और सुगम जीवन-पथ के निर्माण का भार रहता था उन ज्ञानी, महान् पंडितों के ऊपर। उस स्वर्ण युग की झाँकी की झलक पाई थी हमारे महान् पंडित नेहरू ने भारत के प्राचीन इतिहास के पन्नों में। इसी प्रकार की पागलपन की बातें सोचते-सोचते देखा पंडितजी चले आ रहे हैं तेजी से हमारी ओर। देखते ही देखते तीर के समान तेजी से निकल गये आड़ी नजरों से मुस्कुराते हुए। ऐसा लगा मानों कह गये—"कहो कैसा रहा....?" दस बजे बाजी मार कर आगे निकल गये जब कि हम चले थे चार बजे प्रातः के अँधेरे में। बीच राह में छन्ना नामक पड़ावों पर भोजन के लिए आ रुका था काफिला। सुरक्षा पुलिस के साथ हम दो-चार आदमी तुरन्त चल पड़े थे एक प्याली चाय के साथ दो बिस्कुट खाकर। हमको पारो पहुँचना ही था पंडितजी के वहाँ पहुँचने से पहले। तीन बजे से पहले हमने गोरीना नामक पड़ाव पर पहुँच कर देखा था कि सुन्दर सफेद तम्बू लगे हुए थे। यहाँ से पारो नगर का दृश्य बड़ा ही सुहावना लग रहा था।

भूटान की राजधानी पारो नगर घिरा हुआ है ऊँचे ऊँचे पहाड़ों से इस प्रकार मानों प्रकृति के हरे रंग की कटोरी में चमक रही है एक सुन्दर मणिमाला। सूर्य अस्त की सुनहरी किरणों में चाँदी के मुकुट की भाँति चमचमा रही थीं पहाड़ों की बर्फीली चोटियाँ नीले गगन के ओट में। शान्त, सुहावने वातावरण में दूर से बही चली आ रही थी बाजों की सुरीली आवाज मन्द हवा के साथ-साथ। गम्भीर वातावरण में प्रकृति बाट लगाये खड़ी थी महान् पंडित के आगमन की शोभा देखने को। तमतमाते हुए सूर्य की भाँति जब निकल पड़े थे सजबज कर अपने सफेद घोड़ी को एड़ लगाकर ऊँचे पठार पर तो ऐसा लगा था मानों बिजली तड़क रही हो हिमालय पर्वत के शिखरों पर। उनके पीछे-पीछे दुलकी चाल से चली आ रही थी पंडितजी की दुलारी लाड़ली गुड़िया। पीछे-पीछे चला आ रहा था एक से एक बढ़कर काबिल आदमियों का काफिला। शंख, घड़ियाल, तुतेरी के साथ लगभग तीन सौ उच्च पदाधिकारी और भूटानी भिक्षु आये थे हमको लिवा ले जाने गोरीना नामक पड़ाव पर। चौड़े घुमावदार पगडंडी के दोनों तरफ रंग-बिरंगे रेशमी झंडे हवा में फरफरा रहे थे। सब ही भिक्षु अपने देवी-देवताओं के मुखास (Mask) लगाये सुसज्जित थे कलात्मक धार्मिक वेशभूषा में। विभिन्न रंगरूप की छोटी-छोटी टुकड़ियाँ धार्मिक नाच-गान करती हुई उछलती हुई चल रही थीं भारतीय दल के सामने सामने। लगातार एक घण्टे तक भूटानी आओमान का आयोजन चलता रहा था पहाड़ी की तीन मील की उतराई पर। राजप्रासाद के सम्मुख सुन्दर हरी भूमि पर खड़े थे भूटान के महाराजा साहिब अपने सौभाग्यशाली कुटुम्ब, परिवार और योग्य दरबारियों के साथ। दोनों महान् शक्तियाँ आ मिलीं जब एक दूसरे से तो भूटानी सुरीला बाजा बज उठा दोनों देशों के राष्ट्रगान बजा कर। सब ही एक दूसरे से गले-मिलकर याद दिला रहे थे राजा रामचन्द्र के भरत-मिलाप की पौराणिक कथा की।

सुसज्जित राजभवन में आयोजित जलपान पर बिठाये गये थे पंडित नेहरूजी कलात्मक सुन्दर ऊनी मसनद पर जरी के कामदार गाओ तकिए के सहारे। हृष्ट-पुष्ट नवयुवक महाराजा प्रफुल्लता से बैठे थे सौभाग्यवती लक्ष्मी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९७३

स्वरूप भूटान की महारानी आशी के संग और अपने योग्य दरबारी तथा उच्च पदाधिकारियों के साथ। भूटान की राज्यसभा के सदस्यगण बैठे थे भारतीय दल के प्रतिनिधियों के दल के साथ उसी बड़े हाल कमरे में दोनों के समुख। शाही मेलमिलाप के समारोह के बाद पंडित नेहरू और वे महाराजा साहिब के महल पर सलामी देने और वहाँसे लौटते हुए गये थे जनप्रिय भूटान के प्रधान मन्त्री के निवासस्थान पर उनके परिवार से मिलने। भारतीय दल को रात्रि के भोजन परोसने स्वयं आई थीं, भूटान के प्रधान मन्त्री की सरस्वती रूपा धर्मपत्नी जी। राजभोज उपहार के पश्चात् हम सब लौटे अपने-अपने सुन्दर लकड़ी के बने निवासों पर। अँधेरी रात के सन्नाटे में टर्रा रही थीं बिजली पैदा करनेवाली मोटर और झिल-मिला रही थी बिजली की रंग-बिरंगी बत्तियों की मालाएँ। हमारे रहन-सहन तथा हर एक प्रकार की सुविधाओं तथा मनोरंजन के प्रबन्ध की बागडोर थी वहाँ के प्रधान मन्त्री श्री जिगमी दोरजी साहिब के हाथों में।

सोमवार, २२ सितम्बर १९५८ को प्रातः दस बजे श्रीमती इन्दिरा गांधी के साथ पंडितजी गये थे लाहखंग नामक भगवान् बुद्ध देवता के राजमन्दिर के दर्शन करने। प्राचीन मूल्यवान् धार्मिक चित्र तथा पूजापाठ की ऐतिहासिक वस्तुओं को देखने के पश्चात् वह गये थे जोंग नामक राजप्रासाद पर भूटान के महाराजा से हम सबों की सलामी दिलाने। पारी-पारी से हम सबों ने भेंट में चढ़ाई थी देव स्वरूप महाराजा को श्रद्धांजलि में काथा नामक कपड़े की एक-एक माला उनके रसमोरिवाज के अनुसार। उसके बाद भारत की ओर से उनको सम्मानित किया गया था विभिन्न प्रकार की भारतीय हस्तकौशल की सामग्रियों को भेंट में चढ़ा कर। अपने विशेष दरबारियों के साथ महान् महाराजा ने हम सबों को आशीर्वाद प्रदान किया था अपने धार्मिक आधार पर। पंडित नेहरू और श्रीमती इन्दिराजी आमन्त्रित हुए थे आज दिन के भोज पर राजप्रासाद में। सायंकाल वहाँ के मन्त्रिमण्डल और राज्यसभा के सदस्यों के साथ बैठक हुई थी भूटान और भारत के राजनैतिक, रक्षा तथा वाणिज्य सम्बन्धित मसलों को समझने समझाने के लिए। भूटान के महाराजा साहिब आये थे महारानीजी के साथ पंडितजी के डुंगरियाना नामक निवासस्थान पर एक साथ चाय पीने के लिए। झिल-मिलाते झाड़-फानूस के नीचे चलती रही थी महत्त्वपूर्ण बैठक रात में देर तक। रात्रि के भोजन समाप्ति के बाद चली थी भारतीय सुन्दर-सुन्दर चलचित्रों की मशीन। हजारों की तादाद में बैठे भूटानी नर-नारी मजा ले रहे थे भारतीय कला-कौशल की झाँकी देखकर खुले मैदान में। हम सब एक-दूसरे से मिलकर खुशियाँ मना रहे थे और इसी प्रकार के आमोद-प्रमोद में बीत गयी थी वह हमारी अनोखी रात पंडित नेहरूजी के साथ। मजे की बात तो यह थी कि थकावट और नींद दोनों ही खो गयी थीं भूटान के चार दिन की खुशी में। कहाँ से सूर्य निकलता था और कब छिप जाता था; दौड़-धूप काम-काज में रात-दिन एक ही समान से लगते थे। डाक, तार का अनुकूल प्रबन्ध था भारत-भूटान के बीच में। बेतार जगत के द्वारा मिनट-मिनट में आदान-प्रदान चल रहा था दोनों राज्यों के बीच में। आधुनिक वैज्ञानिक सुविधाएँ उपलब्ध थीं हमारे हर प्रकार की आवश्यकता के लिए।

दूसरे दिन शानदार आयोजित सार्वजनिक समारोह में भूटान निवासियों ने पंडित नेहरूजी को अभिनन्दन-पत्र भेंट में दिया था। यह सुन्दर समारोह राजभवन के निकट एक निर्धारित बाग के चौक में हुआ था। इस चौक के चारों ओर विशेष प्रकार के लम्बे पेड़ों की चहारदीवारी सी बनी हुई थी। समारोह में सबों के महत्त्वपूर्ण भाषणों के बाद डिजाइनदार सफेद तम्बुओं में दिन का राजभोज आयोजित था बड़े-बड़े घने पेड़ों के नीचे। स्वादिष्ट भोज के बाद भूटानी नाच-गान का आयोजन था। सुन्दर-सुन्दर देवी-देवताओं के मुखस पहिनकर भिक्षुओं ने अपना धार्मिक नृत्य प्रस्तुत किया था मधुर संगीत के लय और ताल के साथ। सूर्य अस्त से पहले भूटान के प्रधान मन्त्री की ओर से चाय पार्टी के बाद लौट गये अपने-अपने निवासस्थानों पर। रात्रि के भोजन पर उपस्थित थीं वहाँ के प्रधान मन्त्री की धर्मपत्नी जी खाना परोसने के लिए।

२४ सितम्बर को पूजा-पाठ और नाश्ते के बाद हम सब चल पड़े पारोछू नदी के किनारे-किनारे पूरब की ओर शाबीथांग नामक मनोरम स्थान पर वनभोज के लिए। राह में अनेक नर-नारी कतार लगाये खड़े थे पंडित नेहरूजी के दर्शन के लिए। पंडित नेहरू अपने घोड़े से उतर कर दौड़ पड़ते थे उनसे मिलने को। बच्चों के प्रेमी चाचा नेहरूजी उछल-कूद और छेड़छाड़ करने लगते थे भूटान के अबला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बालक, बालिकाओं के साथ। मेल-मिलाप और हँसी-मजाक करते हुए वह देखने गये थे वहाँके ग्राम-निवासियों के घरों को। घर-घर में जाकर देखे उन्होंने साफ-सुथरे दो मंजिले मकानों को। वह क्या खाते हैं, किन-किन चीजों का उत्पादन करते हैं तथा किस बात की उनको जरूरत है उन भोले-भाले ग्राम-निवासियों से पूछताछ करने के बाद गये थे भाकर्प-गुप्पा नामक प्रसिद्ध मठ को देखने। शाबी-थांग नामक स्थान पर एकत्रित थे सैकड़ों नर-नारी उनके स्वागत में। घोड़ी को ऐड़ लगाकर आगे झपटा पंडितजी से पहिले पहुँचने के लिए तो उछल कर आ गिरा था जमीन पर घोड़ी के पैर फिसल जाने की वजह से। किसीने बता दी जाकर उनको मेरे गिरने की बात तो खाना खाकर सिग्रेट पीते हुए चुपके से आकर मेरे सिर में बँधी पट्टी को देखकर मजाक करने लगे। जब कभी कोई हमारे दल का आदमी घोड़ी से गिरकर घायल हो जाता था तो उससे हँसी मजाक करके दिल बहलाने को जरूर पहुँचते थे। सूर्य अस्त तक भारतीय दल लौट आया पारो के निवास-स्थान पर। चाय-पानी के बाद पंडितजी बैठे थे रात्रि के भोजन तक राज्यसभा के सदस्यगणों से वार्तालाप करने। खाना खिलाने के लिए प्रधान मन्त्रीजी की धर्मपत्नी श्रीमती दोरजी स्वयं उपस्थित थीं।

दूसरे दिन का प्रोग्राम सबसे अधिक कलात्मक और रंगीन था। महाराजा भूटान अपने मंत्रिमंडल के साथ राज्यसभा और उच्च पदाधिकारियों के बीच तीर-कमान से निशानेबाजी की प्रतियोगिता में सम्मिलित हुए थे। अधिकांश भारतीय दल के लोग भूटानी वेश-भूषा में आये थे। एक तरफ सफेद छोटे-छोटे तम्बुओं में तिब्बती और भारतीय चाय परोसी जा रही थी। कोमल, मधुर धूप में आराम-कुर्सियों पर बैठकर श्रीमती इन्दिराजी, महारानी भूटान और श्रीमती दोरजी के साथ मजा ले रही थीं तीरों की निशानेवाली का। पंडित नेहरू श्री जिगमी दोरजी के साथ टहलते फिर रहे थे इधर-उधर तीरअन्दाजों की हिम्मत अफजाई करते हुए। भारी-भरकम धनुष के सहारे पाँच फुट लम्बे तीर चला कर तीन चार सौ गज की दूरी पर निशाना लगाना भूटान के जवाँमर्दों के बायें हाथ का खेल था। किसी की बर्फीली नोकदार तीर जब निशाने पर जा पड़ती तो मारे खुशी के इन्दिराजी ताली बजाकर उछल पड़ती थीं। दोपहर का राजभोज उसी जगह तम्बुओं में आयोजित था। खाने के बाद एकाएक शंख-घड़ियाल बज उठे और भूटान के लोक नृत्यकार विभिन्न पोशाकों में आ पहुँचे अपनी कलात्मक नृत्य कला की प्रदर्शनी करने। बड़े से हरे भरे मैदान पर जगह-जगह टोलियाँ नाच रही थीं अपने-अपने अंचल के लोक-गीतों को गा-गाकर। हरे मैदान के पीछे नीले गगन में सफेद बादलों के टुकड़े बहे चले जा रहे थे। ऊँचे बैंगनी रंग के पहाड़ की ओट में खड़ा दीख रहा था खूबसूरत शाही महल ऊँचे पठार पर। क्या ही मनोरम दृश्य था इस सुरीले मीठे वातावरण में जहाँ बैठे थे दो देश के दो महान् भारत-भूटान के मैत्री इतिहास का एक नया अध्याय लिखने को। नृत्य प्रदर्शनी का अन्तिम विषय था भारत-भूटान मैत्री सम्बन्धित एक लोकनृत्य जिसमें भूटान के मंत्रि-मंडल के साथ हाथ पकड़कर नाच रहे थे हमारे महान् पंडितजी और उनके प्रधान मन्त्री श्री दोरजी साहिब। लाल तमतमाता हुआ सूर्य चला जा रहा था बड़े-बड़े पेड़ों के पीछे अपनी काली परछाईं हरे मखमली मैदान पर। इस ऐतिहासिक नृत्य के साथ बजा रहे थे भूटानी दक्ष कलाकार बहुत मीठी कोमल रागनी। बाजा बजाने की कला में शायद भूटान के कलाकार किसी से कम नहीं हैं। दिल तोड़ देते हैं वह जब बजाते हैं दर्दभरी रागनियाँ अपनी भूटानी धुन में। आज रात को पंडित नेहरूजी की ओर से भूटान के महाराजा और महारानीजी के सम्मान में राज-भोज का आयोजन कराया था भारतीय दल ने। पंडित नेहरूजी के निवासस्थान के समीप सुन्दर चौक में फूल पत्ती और रंगीन बत्तियों तथा झंडियों से सजाकर आयोजन कराया था लगभग तीन सौ आदमियों को भोजन परोसने के लिए। भारतीय पाक आधार पर हर एक चीज पकवाई गई थी पर विशेष ध्यान रखा गया था भूटान निवासियों के स्वाद का। महाराजा भूटान उपस्थित थे अपने कुटुम्ब के साथ। छोटे-छोटे राजकुमारों के साथ थीं उनकी वृद्ध दादी माँ और उनकी मातारानी। असल में देखा जाये तो हमारी ओर से उस राजभोज की सफलता के पीछे हाथ था वहाँ के योग्य प्रधान मन्त्री की धर्मपत्नीजी का। राजपरिवार के साथ राजा के दरबारियों ने भी हमारे भोज की बड़ी प्रशंसा की थी।

भूटान जीवन के अन्तिम दिन २६ सितम्बर प्रातः दस बजे पंडितजी गये थे भारत सरकार के सहायता कोश से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बने हुए एक हस्पताल का निरीक्षण करने। उसके बाद वह गये थे फिर एक बार भगवान् बुद्ध के मन्दिर में दर्शन करने। बड़े बड़े प्राचीन काल के देवी-देवताओं के तेल चित्र दिखाये गये थे उनको वहाँ। उसी दिन रात्रि में राजभोज आयोजित था भूटान के महाराजा और महारानी जी की ओर से पंडित नेहरू और श्रीमती इन्दिराजी की विदाई सम्मान के उपलक्ष्य में। आज का राजभोज कल के हमारे भोज से किसी अंश में कम नहीं था। भोज के बाद रात्रि में थोड़ी देर तक भूटान के श्रेष्ठ कलाकारों ने नाच-गान के आयोजन में पेश की थी अपने करुण रागिनी में विदाई की एक झलक। भोज-समारोह के समाप्ति के बाद पंडित नेहरू गये थे महाराजा और उनके परिवार को थोड़ी दूर तक पहुँचाने को।

दूसरे दिन प्रातः से ही माल-असबाब उठा ले गये खच्चरवाले। पंडित नेहरूजी के निवासस्थान पर सुबह से ही आने लगे थे भूटान के बड़े-छोटे लोग। महाराजा और महारानी पधारे थे निश्चित समय पर पंडितजी को विदाई देने। हाथ मिलाते हुए गले मिले थे सब ही लोग एक दूसरे से जबकि सुरीला राष्ट्रगान बज रहा था दोनों देशों की ओर से। मिल-मिलाकर जब भारतीय दल चल दिया था चढ़ाई की ओर तो भूटान के बाजेवाले रुला रहे थे हमको विदाई के करुण लय की रागिनियाँ बजा बजाकर।

प्रातः साढ़े नौ बजे तेजी से चलकर हमने रास्ते में थोड़ा-सा भोजन किया था जल्दी से और दिन छिपने से पहले ही आ पहुँचे थे हाजोंग नामक ऊँची चढ़ाई के नीचे बने हुए पड़ाव पर। चारों तरफ से काले-काले बादल आकर जमा होने लगे थे तेज ठण्डी हवा के साथ। ऊँचाई पर पहुँचने पर अगर तूफान के साथ बारिश आ गयी तो हमारा क्या हाल होगा सोचकर सब ही परेशान हो रहे थे। किसी तरह उस पड़ाव पर रात बिताई और दूसरे दिन प्रातः सात बजे ही चल पड़े पन्द्रह हजार की ऊँची पहाड़ी को पार करने के लिए। हाला नामक पहाड़ी को पार करके हाँफते हुए जुट गये थे दिन के भोजन को जल्दी से समाप्त करने में। खाना शुरू ही हुआ था कि तूफानी हवा चलने लगी और बड़े-बड़े बूँदों के साथ ओले पड़ने लगे। खच्चर-घोड़े हिनहिना उठे और कुली मजदूरों में एक भगदड़ सी मच गयी। मुसीबत पर मुसीबत आती है; उसी विपद के समय वायरलेस द्वारा खबर मिली कि श्रीमती इन्दिराजी के पतिदेव अस्वस्थ हो गये हैं। श्रीमती इन्दिराजी के नैनों में अश्रु देखकर वीर पंडित जवाहर के पुट्ठों में खून उतर आया और निकल पड़े उस भयंकर सर्दी में बारिश, हवा और ओलों से लड़ते हुए पन्द्रह हजार फुट ऊँची छू-लाह नामक पहाड़ पर चढ़ने के लिए। किसकी मजाल थी कि वह रुक जाये। सब ही लोग बिना बरसाती कोट के चले जा रहे थे भींगते हुए पंडितजी के पीछे-पीछे। चीजें सब ही थीं हमारे पास पर उस बारिश और तूफान में सन्दूक और बण्डलों को खोलकर निकाला कैसे जाये। ठंडी बर्फ के समान हवा-पानी में पिट रहे थे हम सब अपनी-अपनी घोड़ियों की पीठों पर। पंडितजी नौजवान सिपाही की भाँति चढ़ गये थे पहाड़ की चोटी पर देखते ही देखते। पहाड़ की उतराई के गोल पत्थरों पर पानी के कारण बड़ी फिसलन हो गयी थी। हम सबों को घोड़े से उतरकर पैदल चलना पड़ा था सारे दिन। हमारे जनप्रिय प्रधान मन्त्री सत्तरवर्षीय बूढ़े जरूर थे पर उछलते हुए चले जा रहे थे एक गोल पत्थर से दूसरे पर सावधानी से पाँव रखते हुए। उनके पगों की फुर्ती को देखकर हम अपनी मुसीबत को सोच नहीं सकते थे। घण्टे-घण्टे में भारत से आनेवाली वायरलेस की खबरें पंडितजी को बताई जा रही थीं। अँधेरे से पहले अधमरे की हालत में भारतीय दल आ पहुँचा था छारीथांग नामक पड़ाव पर। रात में फिर भारत से खबर आई कि डाक्टरी परीक्षा के अनुसार श्री फीरोज गांधीजी दिल की बीमारी से पीड़ित हैं और उनको विलिंगडन अस्पताल में ले जाया गया है। पंडितजी और इन्दिराजी के साथ हम सब ही दुखी थे। भोजन के बिना हम सब पड़े रहे अपने दिलों में दर्द छिपाए। पौ फटते ही भारतीय दल चल पड़ा भारतीय दूतावास यातुंग की ओर। बारिश रुकी हुई थी पर आरी के समान तेज ठण्डी हवा को चीरते हुए बढ़े चले जा रहे थे बिना खाये पीये पागलों की तरह। चार दिन की चाँदनी और फिर अँधेरी रात, भूल गये हम सब लोग भूटान के रंगीन जीवन के चार दिन। दिन छिपने से पहले हम लोग आ पहुँचे थे यातुंग के दूतावास पर। जाते समय हमारे दिलों में खुशी और उत्साह था वह अब नहीं था। भारतीय और नैपाली व्यापारी संघ की ओर से सभा का एक विराट् आयोजन किया था। यातुंग निवासियों ने दुखदाई खबर सुनकर सभा मुलतवी कर दी थी और कुछ लोग आये थे पण्डितजी से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुलाकात करने दूतावास पर। दूसरे दिन सूर्य की पहली किरण के साथ फिर चल पड़े थे यातुंग को छोड़कर। उतने सबेरे ठंड में दूतावास से निकलकर जब पंडितजी ने देखी सैकड़ों आदमियों की भीड़ तो उनसे न रहा गया था। इतने परेशान होते हुए भी श्रीमती इन्दिराजी और पंडितजी अपने घोड़ों से उतर पड़े थे यातुंग निवासियों से मेल-मुलाकात करने को। चारों ओर संगीन धारी चीनी फौजियों का सख्त पहरा लगा हुआ था। हर एक गली कूचे के नुक्कड़ पर चीनी सिपाही रोके खड़े थे बेचारे तिब्बती नर-नारियों को आगे बढ़ने से। उनको डर था कि कहीं वह दुखी तिब्बती बता न दें अपने दुख तकलीफ और चीनी फौजियों की दुर्व्यवहार की बातों को। इन्दिराजी ने जब उनको भेड़-बकरियों की तरह खड़े देखा था तो स्वयं पंडितजी का हाथ पकड़कर हर गली में घुसकर उनके बच्चों को मिठाई वितरण की थी। उन बेचारों की बेकसी को देखकर हम दुखी हो रहे थे पर करते क्या।

ज्यों-ज्यों आगे बढ़ते गये कोहरा घना होता गया था। चारों तरफ धुन्दी छाई हुई थी और तेज हवा के साथ आसमान पर बिजली कड़क रही थी। मीलों लम्बे ऊँचे पठार पर ठण्डी तेज हवा को ठेलते चले जा रहे थे द्रुत गति से भारत-तिब्बत सीमा नाथूला नामक दर्रे की ओर। सीमा रेखा पर पहुंचकर झटपट चीनी फौजियों से विदाई लेकर भाग पड़े थे पंडितजी श्रीमती इन्दिराजी के साथ सिक्किम की राजधानी गंगतोक की ओर। वहाँ पहुँचकर जब टेलि-फोन द्वारा उनको कुशल सम्वाद प्राप्त हुई थी श्री फीरोज गांधी के अच्छे रहने की तो उनकी खुशी के साथ-साथ हम सबों ने चैन की साँस ली थी। इस प्रकार पंडित नेहरूजी का महत्त्वपूर्ण संकल्प सफल हो गया था भगवान् की कृपा से। उनके करकमलों द्वारा लगाया हुआ मैत्री सम्बन्ध का अंकुर बढ़कर आज एक बड़ा होनहार पेड़ बनकर लहरा रहा है शान से हिमालय पर्बतों के बीच में। उस दूरदर्शीय महान् पंडित का लगाया हुआ पेड़ दिन दूना रात चौगुना बढ़ता ही जा रहा है और अमर होकर रह गयी पंडितजी की महत्त्वपूर्ण भूटान यात्रा की घटना भारत के ऐति-हासिक सुनहले पन्नों में।

हिमालय पर्वत के उस पार से बढ़ती हुई लाल बाढ़ को देख कर भूटान को जो घबड़ाहट हो रही थी वह पंडितजी के स्वयं वहाँ पहुँचने पर दूर हो गयी। उनकी दूरदर्शी सलाहों को उन लोगों ने बड़े ध्यान से सुनी थीं और उनके पालन का वचन दिया था। उनके बताए हुए मार्ग पर चलते हुए आज भूटान प्रगतिशीलता की सीढ़ियों पर चढ़कर काफी ऊपर चढ़ आया है। भारत सरकार के बलवान हाथों के सहारे आज भूटान में सैकड़ों स्कूल और बहुत-से अस्पताल बनकर खड़े हो गये हैं। खेती बाड़ी की उन्नति के वैज्ञानिक साधन तथा व्यापार से देश की धन सम्पत्ति बढ़ गयी पहले से कहीं ज्यादा। वास्तव में भूटान निवासी अब सोच रहे हैं गणतन्त्र आधार पर अपने भविष्य के उन्नत जीवन की योजनाओं पर। भारतीय रिजर्व बैंक आफ इण्डिया के सहारे और रक्षा मंत्रालय के सहारे भूटान अमन चैन से तरक्की करता हुआ चैन की बाँसुरी बजा रहा है। कदम-कदम पर भारत के सरकारी विभाग हर प्रकार की उचित सहायता पहुँचाते रहते हैं हमारे विदेश मन्त्रालय के इशारे पर। दोनों पड़ोसी देश आपस में मिल-जुलकर मान-सम्मान से रहते हैं भाई-भाई बनकर।

जलधाका-हाइड्रो इलैक्ट्रिक प्रोजेक्ट, पेपर मिल, मेटल रोड्स, पी० एण्ड टी० के साथ-साथ अनेक विभिन्न प्रगति-शील योजनाओं का निर्वाण हुआ भूटान देश में भारत की सहायता कोष के सहारे। उभरते हुए भारत सरकार को देखकर भूटान के सुयोग्य महाराजा ने षोंगडू नामक नेशनल एडवाइजरी कौंसिल की स्थापना कर दी है। वहां के योग्य शिक्षित अफसरों की देख-रेख में भूटान राज्य का कार्य चालू हो गया है। एडमिनिस्ट्रेटिव आफिसर, टैक्स कलेक्टर आफिस, मैजिस्ट्रेट आफिस और डिस्ट्रिक्ट आफि-सर्स आफिस के विभिन्न भूटानी सरकारी विभाग हमारे गणतन्त्र के आधार पर कार्य करने लगे हैं। उनके आधुनिक प्रयोजन के अनुसार भारत सरकार के सहारे एक नये किस्म की सुन्दर राजधानी बन रही है। एक पर एक कोठियाँ बनकर खड़ी कर दी गयी हैं। पक्की सड़कों के साथ सुन्दर सुन्दर पार्क और बिजली के रोशनी में चमक रही है नये भूटान की राजधानी। हरे भरे वातावरण में नीले आकाश के नीचे ऊँची-ऊँची बर्फ जमी चोटियोंवाले पहाड़ों के बीच में लहराती हैं यमुना, गोमती की भाँति हरी नदियाँ उस सुहावने वातावरण में जब गूँज उठेगी शंख, घड़ियाल, और तुतेरी की आवाज भगवान् गौतम बुद्ध के नये मन्दिर में तो याद आयेगी हमारे पूज्य महान् पंडित नेहरूजी और पूज्य श्री जिगमी दोरजी साहिब की। दोनों देशों के स्वर्गीय दोनों महानों की याद बनी रहेगी सदा जीवित रहनेवाली हमारे इतिहास के पन्नों में अमर ज्योति बनकर।

[समाप्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुर्सी-वंदना

श्रीमती शकुंतला सिरोठिया

देवि,
तुम्हें शत नमस्कार है।
हे दीना भगिनी,
जग तारणि;
भक्तों की उद्धार कर्त्री,
संकट सागर में बहतों को
पार लगातीं।
किन शब्दों में गान करूँ माँ ?
कैसे तव गुण-गान करूँ माँ ?
कैसे महिमावान बनूँ माँ ?
कितने ही पशुओं को
तुमने मनुज बनाया
वरद तुम्हारा हस्त प्राप्त कर
गर्दभ ने सिंहनाद सुनाया।
देवि तुम्हारी चतुर्भुजाओं में
लक्ष्मीपति का सा बल है,
जिनसे गज को मुक्ति मिली थी
द्रपुदसुता की लाज बची थी।
तुम चाहो तो बड़े बड़े दिग्गज को
चरणों तले रौंद दो,
जैसे महिषासुर को
दुर्गा ने रौंदा था।
देवि तुम्हारी छोटी छोटी ये लीलाएँ
महामूर्ख को भी तुम
कालीदास बनातीं।
किस मुख से गुणगान करूँ माँ ?
कैसे महिमावान बनूँ माँ ?
ब्रह्मा यदि दश आनन देता
शेषनाग की या अशेष जिह्वाएँ देता,
तो भी जनम जनम तक माता,
पूर्ण न होती तेरी गाथा।
मैं अबला हूँ देवि
बहुत ही दुर्बल नारी।
दीना पर भी दया करो माँ,
प्रतिभाशाली भक्त तुम्हारे
मैं असमर्थ हूँ।
वर दो माता,
तव भक्तों की भक्ति कर सकूँ।
उनकी पूजा, अर्चन
और गुणगान कर सकूँ।
कृपा तुम्हारी कोर मिले तो
'मूक होहिं बाचाल
पंगु चढ़हि गिरिवर गहन।'
तुमको शत शत नमस्कार है।
तुमको शत शत बार नमन है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाम बदलू

श्री दुर्गाशंकर त्रिवेदी

दुनिया का रवैया भी 'देवो न जानाति कुतो मनुष्यः' वाला ही है। देखिये न हमारे एक विधायक ने दल बदल लिया तो थू थू कर उठी और लगी उनकी गैरत को ललकारने और इधर हमारे एक कवि मित्र ने नाम बदल लिया तो वाह-वाह कर उठी। वाह रे ज़माने!

और जनाब नाम नये चोलों में कोई आजकल ही नहीं आने लगा है। इतिहास गवाह है आर्यावर्त का सदियों से ये नाम बदलू अपने नाम को नये-नये चोलों में फिट करते चले आ रहे हैं। ऊपर से मजा यह है कि ये बदलू-पन भरे नाम इतने प्रचलित हो उठते हैं कि लोग असली नाम को जान ही नहीं पाते हैं।

आप मेरे इस कथन को पूरे दम खम से चैलेन्ज नहीं कर पाएँगे। करेंगे तो मात ही खाएँगे। क्योंकि कालिदास के यथार्थ नाम से कितने लोग परिचित हैं? और कालिदास के जमाने में ही क्यों जाते हो हमारे बाल कवि बैरागी के मूल नाम 'नन्दरामदास' को उनके पूरे वोटर ही जानते हों तो हम शर्त बद सकते हैं। और तो और हमारे ब्रजेश चंचल को 'भेरू लाल' के नाम से सिर्फ स्कूल का उपस्थिति पत्रक ही जानता है और 'शचीन्द्र उपाध्याय' के 'कन्हैयालाल' को रेलवे आफिस का रजिस्टर ही या फिर उनके रिश्तेदार ही जानते होंगे।

पर जनाब दल बदलू जिस तरह दल बदलने की प्रक्रिया के साथ ही साथ एक लच्छेदार वक्तव्य दे सकता है तो हमारे नाम बदलू भी अपने साथ इतिहास छिपाये हुए हैं। मेरी नहीं मानते हैं आप तो लीजिए मुलाहज़ा फरमाइये एक उदाहरणस्वरूप।

सुप्रसिद्ध सन्त वाल्मीकि पहले डाकू थे और नाम संज्ञा थी उनकी 'रत्नाकर'। हृदय-परिवर्तन के बाद वे साधना-लीन हो गये और उनके ध्यानस्थ शरीर पर दीमकों ने बाँबी बना ली। शरीर पर इस वाल्मीक के कारण ही वे वाल्मीकि बन गये। है, न इतिहास।

हमारे यहाँ तो 'दल बदलू' अभी-अभी चले हैं, पर नाम बदलूओं की सूची तो बड़ी लम्बी है। उसके अनुसार भृगुपुत्र उशना शुक्राचार्य बन गये तो विष्णुगुप्त 'चाणक्य' हो गये। 'कर्ण' का नाम भी वसुषेण था। समर्थ रामदास पहले 'नारायण' थे, तो स्वामी दयानन्द सरस्वती 'मूल-शंकर'। प्रोफेसर तीरथराम 'रामतीर्थ' हो गये। ऐसी सूची लम्बी है शेरशाह सूरी (फरीद), टीपू सुल्तान (फतह अली), तात्यां टोपे (रामचन्द्र पाण्डुरंग), नाना फडनवीस (बाला जी जनार्दन भानु), चैतन्य महाप्रभु (विश्वम्भर), तुलसीदास (रामबोला), आचार्य विनोबा भावे (विनायक राव नरहरि), बीरबल (महेशदास भट्ट), स्वामी विवेकानन्द (नरेन्द्र), रसखान (सैयद इब्राहीम), सरदार भगतसिंह (रणजीत) आदि के मूल नामों को सामान्य लोग कम ही जानते हैं।

साहित्यकारों में नाम बदलू सबसे अधिक मिलेंगे। क्योंकि उपनाम, छद्मनाम आदि लगाने की प्रथा है। कभी-कभी ये बदलने की लम्बी प्रक्रिया से गुजरते हैं। उपन्यास सम्राट् श्री प्रेमचन्द पहले धनपतराय थे, फिर नवाबराय बन गये और अन्त में प्रेमचन्द।

श्री सुमित्रानन्दन पन्त को 'गोसाँई दत्त' के रूप में आज कितने लोग जानते हैं। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी पहले बैजनाथप्रसाद थे, और आचार्य विनयमोहन शर्मा थे शुकदेवप्रसाद तिवारी। इसी प्रकार शांतिप्रिय द्विवेदी 'मुच्छन' द्विवेदी थे। वियोगी हरि असल में हरिप्रसाद द्विवेदी हैं तो 'बेधड़क बनारसी' काशीनाथ उपाध्याय! इधर भैयाजी बनारसी मोहनलाल गुप्त हैं तो 'बेढब बनारसी' असल में कृष्णदेवप्रसाद गौड़ थे। डा० सुधीन्द्र 'ब्रह्मदत्त मिश्र' थे तो 'रांगेय राघव' ही राघवाचार्य।

श्री विष्णु प्रभाकर के नाम ने काफी बार नाम बदलूत्व का मजा लिया। कभी वे विष्णुदयाल बने तो कभी विष्णु गुप्त। फिर विष्णुदत्त बने और अन्त में विष्णु प्रभाकर। हिन्दी लेखकों में सुप्रसिद्ध 'प्रभाकर माचवे' को ही 'विष्णु प्रभाकर' समझ एक बार एक पाठक ने उनका नामकरण 'विष्णु प्रभाकर माचवे' तक कर डाला था। महापण्डित राहुल सांस्कृत्यायन भी दामोदर साधु बने थे एक बार और पहले थे केदारनाथ।

सुप्रसिद्ध कथा-लेखिका शिवानी असल में गौरा पंत है तो मामा वरेरकर भार्गवराम विठ्ठल वरेरकर थे। बँगला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९७३

के 'वनफूल' का यथार्थ नाम बलाईचन्द मुखोपाध्याय है, तो 'परशुराम' का 'राजशेखर वसु' था। और तो और मराठी के 'धूमकेतु' असल में गौरीशंकर गोवर्धन जोशी हैं तो विज्ञान की ज्ञान गंगा में आप सबको गोते लगवाने वाले 'भगीरथ' श्री मनहर चौहान ही हैं।

पाश्चात्य कथाकार 'ओ० हेनरी' का यथार्थ नाम सिडनी पोर्टर है। 'जार्ज इलियट' मेरी नाम की नारी है तो 'सू' का यथार्थ नाम आर्थर क्विलर काउच है। कन्नड लेखक श्रीनिवास 'मास्तिवेंकटेश अय्यंगर हैं तो 'वेंद्रे' पत्रिका तनयदत्त !

कभी-कभी उपाधियाँ भी नाम का ही अंग या स्वरूप बन जाती हैं। 'भूषण' असल में उपाधि ही थी। मराठी नाटकों के श्रेष्ठतम अभिनेता बालगंधर्व का भी मूलनाम बालगण ही था। बहुत कम लोग उन्हें 'नारायण श्रीपद राजहंस' के नाम से पहचान पाएँगे।

सिने-जगत् भी नाम बदलूओं से बचा हुआ नहीं है यहाँ मीनाक्षी ए० रशीद 'नरगिस' हो गयी तो बलराज 'सुनील-दत्त'। किशनगोवामी 'मनोज कुमार' बन गये। हिन्दू नामों ने मुस्लिम और मुस्लिम नामों ने हिन्दू नामकरण भी किये हैं। उनकी चर्चा नहीं करूँगा, अन्यथा आप 'फासिस्ट' होने का फ़तवा पढ़ बैठें शायद।

हँसा-हँसाकर लोट-पोट कर देनेवाले काका हाथरसी 'प्रभुदयाल गर्ग' हैं तो गुलकन्द सी मीठी चुटकी लेनेवाले महाकवि गुलकन्द 'जगदीश विमल' हैं। 'चीमटाराम' को हरिवल्लभ 'हरि' के रूप में कौन जानता है ? और तो और हमारे बाबा नागार्जुन, 'राष्ट्रबन्धु' भैया आदि ने भी अपने-आपको नाम बदलुओं की पंक्ति में ला खड़ा किया है तो काका कालेलकर जैसे निस्पृही भी क्यों पीछे रहते।

नाम बदलुओं की इसी रामायण को गाते-गाते मेरी आँखों के आगे कर्नल जोरावार सिंह, अग्निमित्र, अग्निव्रत, मुक्ताराजे, ज्योति पुरुष आदि नाम भी असली नाम प्रकटाने को उत्सुक खड़े हैं। पर छोड़िये फिर कभी इनके असली चेहरे देखिएगा ! और आप देख चुके हों तो मुझे बताइयेगा। 'परदेशी', 'रमई काका', 'सव्यसाची' आदि भी शिकायत कर बैठेंगे ना। इसलिए नाम बदलू पुराण यहीं बन्द करता हूँ। क्योंकि नाम की माया ही तो है सब और नाम चाहे किसी भी चोले में हो वह अपना रंग दिखायेगा ही। आपका स्वयं का नाम भी तो रंग दिखा ही रहा है न।

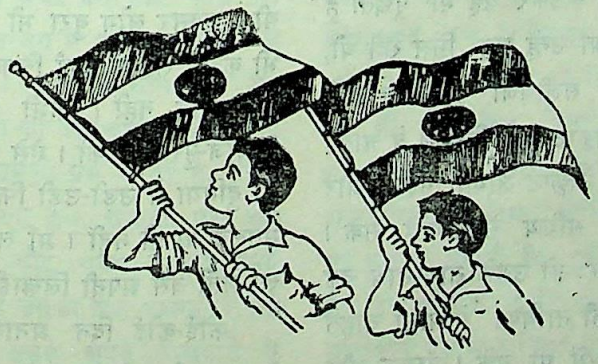

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरा क्या अपराध था ?

श्रीमती शारदा मिश्र

मुझसे शादी करके मेरे विद्वान् और महिमाशाली पति ने न केवल मुझ पर बल्कि मेरे सारे खानदान पर एहसान किया है, इस तथ्य को मैं नजर-अन्दाज नहीं कर सकती। मैं साफ कहती हूँ मेरे साधारण हैसियत के पिता की यह हिम्मत न थी कि वे अपनी लड़की के लिए एक विश्व-विख्यात भाषा-शास्त्री और दार्शनिक वर ढूँढ़ते। अगर मैं कहूँ कि उन्होंने मेरी विद्वत्ता और ज्ञान-गरिमा से आकृष्ट होकर मुझसे शादी की तो लोगों को जरा कम ही यकीन होगा। एक औरत की कैसी ज्ञान-गरिमा और कैसी विद्वता। औरत का शरीर देखा जाता है, रूपरंग देखा जाता है और देखा जाता है उसके अंगों का उतार-चढ़ाव, कटाव-छँटाव। आज तक कहीं यह नहीं सुना गया कि किसी मर्द ने किसी लड़की की विद्वत्ता पर रीझकर उससे शादी कर ली। हर कोई यही कहेगा। लेकिन मेरे विश्व-विख्यात पतिदेव का यह मत नहीं है। वह कहते हैं, उन्होंने मुझसे शादी इसलिए नहीं की थी कि मैं मेरिलिन मनरो की तरह खूबसूरत ब्लोण्ड थी या आशा पारिख की तरह नशीली अदाओं से चलनेवाली चंचल नवयुवती अथवा साधना की तरह बिखरे बालों और मनमोहक मुस्कानवाली तरुणी थी। इन सब बातों का कुछ महत्त्व नहीं। (मैं पूछती हूं अगर महत्त्व नहीं है तो लोग इन पर क्यों मरते हैं। मैं रूठकर यह भी पूछती हूँ क्या मैं सुन्दर नहीं हूँ) सुन्दरियाँ उन्हें खूब मिल रही थीं, लेकिन उन थोथे विचारोंवाली सजीधजी गुड़ियों ने कभी उनके हृदय और आत्मा को आकृष्ट नहीं किया। वे चाहते थे एक ऐसी लड़की जो उनकी उत्कृष्ट जीवन पद्धति और उच्च जीवनादर्शों को अपना सक्रिय सहयोग दे सके। विचारों की ऊँची चोटियों पर जो उसके साथ-साथ चढ़ सके। वे जो कुछ अपने सपनों की नायिका में पाना चाहते थे उससे कुछ ज्यादा ही वे मुझमें पा सके। संस्कृत और अंग्रेजी पढ़ने-बोलनेवाली बहुत-सी लड़कियाँ मिल सकती हैं। कान्वेंट स्कूलों की लड़कियाँ स्मार्ट होती हैं और खटा-खट इंगलिश बोलती हैं। गुरुकुलों की पढ़ी लड़कियाँ थोड़ी गाबदू जरूर होती हैं किन्तु धारावाहिक रूप से मंत्रों और श्लोकों का पाठ कर सकती हैं। अपने साधारण स्कूलों की लड़कियाँ चटर पटर कुछ इंगलिश भी पढ़ लेती हैं कुछ संस्कृत भी घोंट लेती हैं। थोड़ी सी सिलाई और कुछ ऊट-पटाँग रसोई भी कर लेती हैं। किन्तु मैं इन सबसे विचक्षण थी। सत्रह साल की उम्र में धकाधक संस्कृत के श्लोकों की रचना कर मैं अपने प्रोफेसरों को चकित कर चुकी थी। उपनिषद् अपनी सम्पूर्ण टीकाओं के साथ मुझे कंठस्थ थे। भागवत के अध्याय के अध्याय मैं पंडितों से अच्छी तरह गा सकती थी। 'नव-प्रताप' साप्ताहिक पत्र की ओर से हुई संस्कृत कहानी प्रतियोगिता में मेरी लिखी हुई संस्कृत कहानी प्रथम आई थी। अंग्रेजी और फ्रेंच के करीब-करीब सभी विख्यात लेखकों की रचनाएँ मैं हजम कर चुकी थी। अब इक्कीस साल की उम्र में मैं एक ऐसे शब्द-कोष निर्माण की धुन में लगी हुई थी जिसमें एक साथ ही सारी भारतीय भाषाओं के पर्यायवाची शब्द मिल सकें। इसके लिए मुझे मेहनत भी काफी करनी पड़ रही थी। किसीसे बातचीत करना, सैर-सपाटे पर जाना या सिनेमा देखना हराम था। बस मैं भली कि मेरी किताबें। कोई घर में आये जाये मेरी बला से। मैं बन्दी अपने कमरे से निकलकर नहीं आती थी। अक्सर लोग बुरा भी मानते, कुछ स्त्रियाँ मुझे घमंडी भी कहतीं लेकिन यहाँ चिकने घड़े की तरह सुनती रहती कोई असर नहीं। कभी बाहर आकर मिलनेवालों की मिजाज-पुरसी न की। ऐसे ऊँचे दिमाग थे मेरे, बस विचारों की दुनिया में उड़ी-उड़ी फिरती, घर के काम-धन्धों से कुछ मतलब था ही नहीं। माँ लाड़ कर करके जो भी खिलाती खा लेती बस अपनी लिखाई-पढ़ाई में उलझी रहती।

कोई-कोई दिन अनायास ही खुशियों के समाचार ले आता है और सचमुच ही उस दिन के प्रति मन में बड़ा ही मोह और प्यार उमड़ आता है मानो अपना कोई प्रिय बन्धु हो। ऐसा ही एक खुशियों का दिन आया हुआ था, खुशी मेरे छोटे से दिल में समा नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रा रही थी। जी चाहता था खूब शैतानियाँ करूँ जी भरकर ऊधम मचाऊँ। छुटका भैया हरी तीन पहिये की साईकिल चला रहा था और बड़बड़ा रहा था—'एक तो देर हो रही है, एक तो देर हो रही है।' मैंने उसे साईकिल से उठाकर गोद में ले लिया और उसे समझाने लगी—तुम्हारी जीजी बहुत बड़ी आदमी होने वाली है। देखो अखबार पढ़कर देखो।

पाँच बरस का हरी इस बात पर सहमत नहीं हुआ। जीजी आदमी कैसे हो सकती है। उसके तो मूँछें होती हैं।

खुशियों के इस सैलाब के उमड़ने के कई कारण इकट्ठे हो गये थे। आज कई दिनों की बदली-बारिश के बाद चमकदार धूप की झील में उजले-उजले सफेद बादल तैरते हुए दिखाई दे रहे थे और ठंडी हवा के झोकों में सामने सूखते हुए कपड़े फरफरा रहे थे। यह गगन! यह पवन मेरी खुशी के पहले कारण थे। यह दृश्य देखकर मुझे ऐसा लगता था मानों मैं इन बादलों पर बैठकर तेजी से जाने कहाँ उड़ी जा रही हूँ। खुशी का दूसरा कारण 'चुप-यामिनी' पत्र का वह अंक था जिसे अभी-अभी डाकिया मेरे हाथ में डाल गया था। इस पत्र के दिसम्बर अंक में मेरा वह लेख बड़े गौरव के साथ प्रकाशित हुआ था जिसमें मैंने कथा सरित्सागर की प्राकृत कथाओं के आधार पर उस प्राचीन युग की सामाजिक और राजनीतिक दशा के खाके खींचे थे। मेरा विचार था कि उन कहानियों में एक ऐसा नशा है कि पढ़नेवाला अपने देश और काल को भूलकर कहानियों के उस प्राचीन युग में पहुँचकर पात्रों के जीवन-प्रवाह में बहने लगता है। कथासरित्सागर के युग की नारी कोई महाभारत पुराणों की दबी-बँधी नारी नहीं है। वह जिसको प्रेम करती है उसको प्रेम करती है, जिसे घृणा करती है उससे सचमुच घृणा है। अटारी पर खड़े होकर बाल सुखाते समय अगर कोई युवक उसे लालसा-भरी निगाहों से देखता है तो वह उसका दिल रखना जानती है। बड़ी आजादी के साथ वह उससे अपने पिछवाड़े के बगीचे में मिलती है। पातिव्रत के फिजूल के पचड़े उसे जरा भी पसन्द नहीं। आदि।

खुशियों के सैलाब के उमड़ने का तीसरा कारण था, कि विद्वान् लेखक ने हिन्दी के उदीयमान लेखकों की गणना में मुझे दूसरा नंबर दिया था। यह सब बातें मैं बड़े विस्तार से हरी को बताने जा रही थी (और इस बात से मुझे कोई मतलब न था कि उसकी समझ में आ रही है या नहीं) कि सीढ़ियों पर आहट हुई साथ ही आवाज लगी—दीदी! बाबा ढाक्छे। नृपेन्द्रनाथ चाचा का बुलावा आ गया। आठ बरस की बुलू मुझे बुलाने ऊपर आ गयी।

बुलू पिताजी के अभिन्न मित्र नृपेन्द्रनाथ बनर्जी की पुत्री है। बनर्जी महोदय और पिताजी दोनों का बचपन वृन्दाबन में बीता है। दोनों ने एक ही स्कूल से हाईस्कूल पास किया है। बंगाली परिवारों में अधिकतर मांस-मछली खाने का चलन है। पर बनर्जी चाचा ठहरे चैतन्य महाप्रभु के अग्रज, नित्यानन्द महाप्रभु के वंशज। वृन्दाबन में उनका खानदानी मन्दिर भी है। मांस-मछली छोड़ प्याज-लहसुन भी नहीं छुई जाती उनके घर में। हमारे उनके परिवारों का खानपान एक था। चाचा इस समय शहर के श्री गोविन्दराम डिग्री कालेज के प्रिन्सिपल थे, सामने ही उनका बंगला था। चाचा मेरे बड़े प्रशंसक थे। मैं भी उन्हें अपना सगा चाचा ही समझती थी। कितने दिनों तक मुझे यही पता न चला था कि वे पिताजी के सगे भाई नहीं सिर्फ मित्र हैं। न मेरा ध्यान इस बात पर गया था कि क्यों उनके घर में बँगला बोली जाती है और हमारे घर में हिन्दी। मैं समझती थी यह वृन्दाबन में रहने का प्रभाव है जहाँ करीब-करीब हर व्यक्ति हिन्दी के साथ-साथ बँगला बोल-समझ लेता है, कोई यह नहीं कहता कि हम बँगला नहीं समझेंगे। अगर एक भाषा के सीखने-समझने से चार पैसों की आमदनी होती है तो क्यों न सीखी समझी जाय। नृपेन्द्रनाथ चाचा के विचार से ऐसी विदुषी, ऐसी प्रतिभा-शाली लड़की धरातल पर मिलनी मुश्किल है। एक लड़की वह थी जो मंडन मिश्र की पत्नी बनी और जिसने शंकराचार्य के साथ शास्त्रार्थ में भाग लिया था और शंकराचार्य का माथा पसीने से भीग गया था अब दूसरी यह हमारी भारती पैदा हुई है। दोनों का नाम भी एक है। इस तरह की बातें कर करके उन्होंने मेरा दिमाग आसमान पर चढ़ा दिया था।

उनकी भी एक लड़की थी श्यामली। चाचा उससे तनिक भी खुश न थे। कहते थे, एकदम कूड़ा है यह लड़की। राम राम कर दसवें के दलदल से निकली तो इन्टर के दलदल में आ फँसी तो ऐसी फँसी कि आज तक नहीं निकल पा रही है। हाँ, सन्देश बनवा लो, रसमलाई बनवा लो, रोशोगुल्ला बनाने की पूरी विधि आती है। यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी कोई लड़की है। प्रतिभा का विकास नहीं, श्यामली की कोई तारीफ करता था तो मेरी माताजी। उनका कहना था लड़की के जीवन में यही रसमलाई, रोशोगोल्ला काम आते हैं। इन्हींके द्वारा वह अपने पति का दिल जीतती है, ये लेख, कहानी, पत्र-पत्रिका और किताबें नारी के जीवन में कुछ काम नहीं आते धरे विराजते हैं आलमारी में।

शिक्षा-शास्त्री होने के कारण नृपेन्द्रनाथ चाचा का भारी मतभेद था मेरी माताजी से। हाँ इतना जरूर हुआ कि गुस्से में आकर उन्होंने श्यामली की शादी ऐसी जगह कर दी जहाँ वह मजे में रसमलाई और रसगुल्ले बनाती रहे और खाती रहे। श्यामली भी यह सुभीता पाकर खुश थी। अब चाचा का वात्सल्य सहस्र-धार होकर मेरे ऊपर बरस रहा था।

चाचा बंगाली होने के कारण ललित कलाओं और सांस्कृतिक कार्यक्रमों में गहरी दिलचस्पी लेते थे। हर साल पूजा के दिनों में उनके यहाँ एक प्राचीन नाटक खेला जाता था, वह भी अधिकतर संस्कृत में। चाचा कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी के अनुयायियों में से थे। उनका विश्वास था कि, संस्कृत भाषा को ही हिन्दी के स्थान पर राष्ट्रभाषा बनाने से देश की एकता बच सकती है और कोई दूसरा उपाय नहीं है। आखिर हम लोग अंग्रेजी घोंट सकते हैं तो संस्कृत क्यों नहीं घोंट सकते। मैं स्वयं इस विचार की कायल न थी। मेरा ख्याल था संस्कृत को राष्ट्रभाषा बनाकर तो हम एकदम ही रेड़ मार लेंगे। सेक्रेटेरियट और कचहरियों की इमारतों में बड़े बड़े चोटीधारी पोंगे पंडित दिखाई देंगे। पार्लियामेंट में तब हिन्दू ला और दहेज़ प्रतिरोध बिल पास न हो सकेंगे। और देशों के लोग अन्तरिक्ष में अपने रौकेट भेजेंगे और हमारे यहाँके लोग काल्पनिक पाशुपत अस्त्र के गीत गायेंगे।

अपने मत के प्रतिपादन में मैंने चाचाजी के ऊपर इतना दबाव डाला कि हर साल पूजा के दिन होनेवाला संस्कृत का नाटक (जिसे समझता कोई नहीं था हाँ श्रद्धा से सुनते सब थे) इस बार हिन्दी में हो रहा था। हाँ, यह जरूर था इस बार चाचा ने खेले जाने से लिए उत्तर राम-चरित सुना था और उसका अनुवाद करने का भार मुझी पर डाला क्योंकि उन्हें और किसी लेखक के अनुवाद पसन्द नहीं थे। बीच-बीच में ऐसे गीत भी जोड़ने पड़े जो चालू होते और जनता को आकर्षित करते। चाचाजी खुद प्रधान निर्देशक थे और मैं उनकी सहायक निर्देशक। परसों ही नाटक का समारोह था। बुलू इसी लिए मुझे बुलाने आई थी।

हमेशा की तरह चाचा आरामकुर्सी के हत्थे पर पैर पसारे हुए थे। विद्यालय से आकर वे इसी प्रकार आराम-कुर्सी पर लेट जाते थे। फिर वहीं लाकर गरम-गरम चाय देनी पड़ती थी, वहीं लाकर पकौड़ियों की प्लेट थमानी पड़ती थी, चाचा फिर हिलकर नहीं लेते थे। यही नित्य का कार्यक्रम था, मैं निस्संकोच चाचा के पास भगी चली जा रही थी, अचानक ही दर्वाज़े का पर्दा हटाते-हटाते ठिठक गई।

चाचा की बगल की कुर्सी पर कोई एक व्यक्ति बैठा था जिसे मैंने कभी उस बैठक में नहीं देखा था। एकदम अपरिचित आगन्तुक। लम्बी नुकीली उठी हुई नाक के ऊपर काली रिंग का चश्मा, चेहरा लम्बा किन्तु सुडौल, पतले और मज़बूत ओठ एक दूसरे पर भिंचे हुए। आगन्तुक शान्त गम्भीर था किन्तु बूढ़ा नहीं था। उस अवस्था का है जिससे मेरी जैसी लड़कियाँ संकोच कर सकती हैं। यह सब मैंने आँखें नीची किये हुए ही भाँप लिया फिर शालीनता का नाट्य करती हुई चाचा के पीछे जाकर खड़ी हो गयी। मन में सोचा ज़रूर कोई काश्मीरी सज्जन हैं। मरे जा रहे हैं अपने गोरे रंग पर। काश्मीरियों के अलावा, यह सौन्दर्या-भिमान और किसमें हो सकता है। वाह क्या शान से पैर पर पैर रखे बैठे हैं। इतनी भी तमीज़ नहीं कि एक नारी को कमरे में आते देखकर खड़े हो जाएँ—हमारे देश के लोगों ने अंग्रेजों से सिर्फ सभ्यता का दिखावा सीखा है, उनकी तहज़ीब नहीं। मुझे भी क्या ज़रूरत पड़ी है जो मैं नमस्ते कर इन्हें लिफ्ट दूं·····दूं। मैं विरोधी बनी खड़ी रही। मानों वे वहाँ थे ही नहीं।

करमा बाई चाय की ट्रे सजा लाई। सामने टेबिल पर रख दी। चाचा ने अखबार एक ओर रखकर आदेश दिया तीन प्याले चाय बनाने का। चाय बनाकर आगन्तुक के पास प्याला ले गयी। उन्होंने मुस्कराते हुए चश्मे में से मेरी ओर झाँका। मैंने चुपचाप चाय थमा दी, मन में सोचा इतने अभिमानी तो नहीं लगते हैं, जितने मैंने सोचा था। बहुत ही जल्दी दूसरों का चरित्र-निर्णय कर लेना चाहती हूँ तभी तो मेरी मान्यताएं गलत सिद्ध हो जाती हैं। मुझे नमस्कार कर लेना चाहिए था जाने कौन हों ?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९७३

तभी चाचा अखबार एक ओर रखकर सीधे बैठ गये और बोले—"भारती ! तेरे सामने प्रो० चन्द्रमोहन शिवपुरी बैठे हैं। अपने देश के प्रसिद्ध लेखक, शिक्षाशास्त्री और दार्शनिक। चार साल तक आक्सफोर्ड में पढ़ाया है अब पिछले तीन साल से हिन्दी भाषा की शिक्षा के लिए अध्यापक दंपत्ति प्रशिक्षित करने के लिए मास्को में रह रहे थे।"

मेरे ख्याल से आप मुझे नहीं जानती होंगी", प्रोफेसर साहब ने कहा। कहते-कहते वे सामने झुक गये, नाक की नोक अनायास लाल हो गयी।

"ग्लैड टु मीट यू" मैंने आतंकित स्वर में कहा।

"और यह है हमारे नगर की गार्गी, मोहल्ले की भारती। सरस्वती के कंठ का हार। उपनिषद् इसके प्राण और भागवत इसकी आत्मा है।"

प्रोफेसर शिवपुरी ने मेरी ओर आश्चर्य और व्यंग से देखा—'ऐसा तो आप संस्कृत में क्यों नहीं बोलीं ? इंग्लिश का आश्रय क्यों लिया ?"

"जब संस्कृत के नाटकों में सीता और अरुन्धती जैसे पात्रों को संस्कृत बोलने का अधिकार नहीं है तो मैं यह साहस कैसे कर सकती हूँ।

"देखा आपने। इन शीयर विट यू कैन नौट ओवरपावर हर।" चाचा का उत्साह मुझे लेकर उमड़ रहा था।

धीरे-धीरे मालूम पड़ा प्रोफेसर शिवपुरी को, भारत सरकार ने विशेष अनुरोध कर मास्को से वापस बुला लिया है। यहाँ राष्ट्रभाषा का स्वरूप निर्धारित करने के लिए एक कमेटी बनी है उसके अध्यक्ष हैं। अब हर प्रान्त का दौरा कर रहे हैं। साथ ही दिल्ली युनिवर्सिटी के कला-विभाग के डीन भी हैं। चाचा के पुराने मित्र डा० शिवपुरी (जो बड़े ऊँचे खानदान से वास्ता रखते हैं, अपने समय के पीयूषपाणि डाक्टर थे) के पुत्र हैं। घर में लक्ष्मी और सरस्वती घुटने तोड़कर आ बैठी हैं।

मैं कुछ समझ बूझकर आतंकित हो उठी। चाचा भाट की तरह मेरी स्तुति किये चले जा रहे थे। यह वह लड़की है जिसे बी० ए० में सारे पुराने रिकार्ड तोड़ने के लिए सर सुल्तानुद्दीन गोल्ड मैडल मिला था। एम० ए० में प्रथम आने के लिए सर हैरी हेग स्कालरशिप पाया था। इसके लिए लेखों का अनुवाद भारत की तेरह भाषाओं के अलावा रूसी और चीनी में भी हो चुका है। अब जो कोष वह बना रही है जरा उस पर गौर करिये—क्या चीज है आदि आदि।

और उसी रात को ऊपर के लम्बेवाले एकान्त कमरे में प्रोफेसर शिवपुरी मुझे अपने विगत जीवन का कारुण इतिहास सुना रहे थे। सौन्दर्याकर्षण के चक्कर में उन्होंने कभी एक स्विस ब्यूटी से मोहब्बत की थी। उसका वह सौन्दर्य जो शुरू में इतना नयनाभिराम इतना प्रिय मालूम होता था, बाद में एक आफत लगने लगा। गिनकर तीन घंटे उसके भूरे बालों को घुँघराले बनाने में लगते हैं। एक घण्टा भौहों को नुकीला कमानीदार करने में। बीस मिनिट लिपिस्टिक लगाने में, आधा घण्टा चेहरे के दाग आदि ठीक करने में। पूरा एक घण्टा शरीर की रेखाओं को उभाड़नेवाली पोशाकों को चयन करने में। उस नारी के लिए जो कुछ था बस शरीर ही शरीर। इससे आगे पीछे कुछ भी नहीं, वह प्रेम करती थी तो सिर्फ अपने से, परवाह करती थी तो सिर्फ अपनी। मुझे जब मालूम पड़ा तो मैं घबड़ाया। केवल शरीर के सौन्दर्य से मेरी चाह बुझने वाली न थी। मुझे तो मेधा का सौन्दर्य भी चाहिए। तब मुझे भारतीय युवतियाँ याद आईं।

नीचे आई तो पिताजी और चाचा के सम्मिलित उपदेश सुनने को मिले। स्त्री का जीवन अभिभावक के बिना नहीं कट सकता। हर लड़की को जीवन में एक संरक्षक चाहिये। फिर प्रोफेसर शिवपुरी के यहाँ कौन-सा आराम नहीं है। दोनों खूब विद्याध्ययन करो, पढ़ो-पढ़ाओ, लिखो-लिखाओ, दुनिया में नाम पैदा करो। कौन रोकता है। नौकर-खानसामे लगे हैं। प्रोफेसर की निगरानी में महीनों की जगह हफ्तों में तुम्हारा राष्ट्रभाषा कोष समाप्त हो जायगा। बल्कि हम लोग तो तुम्हें इतनी सुविधायें दे भी नहीं सकते। इतने बड़े आदमी हैं एक से एक सुन्दर लड़कियाँ आ रही हैं। अपना भाग्य सराहो आदि।

मेरी पढ़ने-लिखने की प्रवृत्तियाँ देखकर प्रोफेसर साहब ने आश्वासन दिया कि वे ज्यादा से ज्यादा समय मुझे अपने मन के कामों के लिए देंगे। वह स्वयं ऐसी लड़की चाहते हैं जो उनके यश को और उठा सके। योरप अमेरिका आदि जगहों में साथ ही साथ ले जाने का विचार है।

गरज यह कि बड़े-बड़े वायदों और तसल्लियों के बाद मैं बहुत शीघ्र कुमारी भारती से मिसेज शिवपुरी बना दी गयी। इन वायदों और तसल्लियों के बावजूद मेरी जिन्दगी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किन-किन चक्रों से गुजरी, याद करती हूँ तो आज भी मन सुन्न सा पड़ जाता है। पूर्वार्ध की झाँकी तो देख ही ली अब जीवन के शेषार्ध की ओर चलिये जरा।

× × ×

रात के नौ बजे से दस बजे तक, यही एक घण्टा था जिसे मैं अपना केवल अपना कह सकती थी। उस एक घंटे में भी करने के लिए मेरे पास तीन बहुत ही जरूरी कार्य थे। रात के आठ बजे तक घर के कामों का अविरल समुद्र ठाठ मारता रहता था और दस बजे के बाद नींद धर दबोचती थी। बस वही एक घंटा बचता था जिसमें मैं अपना कुछ लिखा-पढ़ी का कार्य कर सकती थी। अब कौन सा काम करूँ यह समस्या थी।

मेरी बेटी मौना उसी समय कहानी सुनने की जिद करती थी। मौना को कहानियाँ सुनाना भी जरूरी था; न सुनाऊँ तो वह नौकर-महरियों से फिजूल की कहानियाँ सुनती फिरेगी।

अधूरे लिखे हुए उपन्यास के परिच्छेद आगे बढ़ाऊँ··· राष्ट्रभाषा कोष तो तारुराय प्रभाराय के शाप से शून्य में विलीन हो गया था।

जब हम इंटर में पढ़ते थे तारुण्य प्रभा राय हमें संस्कृत पढ़ाती थीं। हम लड़कियों को हर शब्द की व्युत्पत्ति पूछने की झक चढ़ी रहती थी। मलीनम् में कौन-सा प्रत्यय है। समक्षम् में कौन-सा उपसर्ग है।

तारुराय प्रभाराय थकी-थकी रहती थीं। स्कूल में पढ़ाकर जातीं तो घर के धन्धे समेटने पड़ते थे। अपने से छोटी आयु के पति से प्रेम विवाह कर बैठी थीं। साल की साल बच्चे होते थे, पति महोदय कुछ कमाते-धमाते नहीं थे। वे कालेज में और घर में खटतीं, पतिदेव कला की आराधना करते रहते थे। कभी रवीन्द्र संगीत जम रहा है, कभी चित्र बन रहे हैं। कला-जिज्ञासु लड़कियाँ आदर-भाव से घेरे रहतीं। हम विद्या-व्यसनी लड़कियाँ मिसेज रॉय को नित्य नये कोष देखने को मजबूर करती थीं। एक दिन उन्होंने चिढ़कर शाप दे दिया—जब तुम लोग मेरी उम्र की होगी तो तुम्हें मुझसे भी कम चीजें याद रहेंगी।

आज देख रही हूँ कि उनका शाप फलित हो रहा है। मुझे सचमुच कुछ याद-वाद नहीं रहता। राष्ट्रभाषा कोष बिना स्मृति के कैसे बने?

तीसरा काम इन सबसे जरूरी था। यानी सामयिक पत्र-पत्रिकाओं को पढ़ना। अब चाहे मौना को कहानी सुना लूँ, चाहे उपन्यास पूरा कर लूँ, चाहे पत्र-पत्रिकाएँ पढ़ लूं। यही अवकाश है।

याद आया, जब मैं अपने विद्वान् पति के आश्वासन के सहारे यहाँ आई थी तब कैसे-कैसे अरमान मन में उछल-कूद मचा रहे थे। बड़ा भारी बँगला था, लौन और बगीचे से घिरा हुआ। मुझे दिखाकर उन्होंने कहा था, यह है तुम्हारा मैन्डरले। बड़े उत्साह के साथ मैंने अपने घर में अध्ययन-कक्ष, ड्राइंगरूम, शयन कक्ष आदि सजाये। उमंगों का अन्त नहीं था। यहाँ दोनों जने बैठकर दैनिक पत्रों की घटनाओं पर बातचीत करेंगे। दफ्तर जाने से पहले वे मुझे राष्ट्रभाषा स्वरूप निर्णय कमेटी की नीति समझायेंगे। इतने बजे मैं अपने कोष पर काम करूँगी, लेख-कहानियाँ लिखूँगी आदि। हर पत्र-पत्रिका पढ़ेंगे गरम-गरम चाय पीकर फिर काफी दूर तक घूमने निकल जायेंगे। मुझे याद आ रहा है शादी के तुरन्त बाद ही प्रोफेसर साहब मुझे घुमाने नैनीताल, नौकुचिया ताल, भीमताल आदि ले गये थे। जब हम लौटे तो प्रणय की मादक अनुभूतियों में आकंठ सराबोर हो रहे थे। पढ़ाई-लिखाई सम्बन्धी बातें कुछ जम नहीं रही थीं। दिल्ली आने के चार-पाँच दिन बाद हमारे बँगले पर ही विद्वानों की एक अर्ध-सरकारी मीटिंग का आयोजन था। इस मीटिंग में आक्सफोर्ड के प्रोफेसर ब्लैक का भी आगमन होनेवाला था। मैं उनसे मिलने के लिए बहुत उत्सुक थी। पढ़ा था कि प्रोफेसर ब्लैक का विचार है अंग्रेजी केवल अंग्रेजों की भाषा नहीं है। वह विश्व-भाषा है। उससे नाता तोड़कर भारत कुछ गँवायेगा ही पायेगा नहीं। वे अब भी इंग्लिश को राष्ट्र-भाषा बनाये रखने के पक्ष में थे। मै उनसे खुलकर बात-चीत करना चाह रही थी। मैं उन्हें बता देना चाहती थी कि विश्व-भाषा के चक्कर में हम विचारों की मौलिक चिन्तन-धारा खोये दे रहे हैं। अंग्रेजी के कारण अधिकांशतः हम लोगों का बचपन, हिज्जे और उच्चारण रटने में ही बीतता है। जो चीज एक सहज सरल भाव से आनी चाहिये वह मस्तिष्क पर दबाव बन जाती है। मैंने चन्द्रमोहन जी से पूछा—क्या मीटिंग में मैं भी कुछ बोल सकूंगी। सरकारी कामों में मेरा दखल देना उन्हें पसन्द नहीं आया। फिर भी इस बात पर सहमत हो गये कि एक कोने के सोफे पर बैठकर चुपचाप उनके भाषण सुनती रहूँ और सभा की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाप्ति के बाद जब हम ड्राइंग-रूम में व्यक्तिगत रूप से उनकी खातिर-तवज्जह करेंगे तब तुम्हारा परिचय करा दिया जायगा। तुम चाहे जिससे बातचीत कर लेना।

उस मीटिंग में जैसा कि प्रोफेसर साहब का आदेश था मैंने चुपचाप सारी कार्रवाई देखी। तत्पश्चात् ड्राइंग रूम में अनौपचारिक चाय-पार्टी हुई। इन्होंने मेरा परिचय प्रत्येक आगत-विद्वान् से कराया। प्रो० ब्लैक तो युवती आतिथेया की प्रतिभा और ज्ञान-गरिमा से बड़े प्रभावित हुए थे। उन्होंने चन्द्रमोहन को ऐसी विदुषी, ऐसी सुन्दर पत्नी पाने पर बधाई दी, जो इतने गम्भीर विषयों में इस कदर रुचि ले। एक औरत के लिए यही क्या कम है कि वह इन विषयों में रुचि ले, समझे-बूझे।

पार्टी के बाद ये मेरे पास आये। मैं उम्मीद कर रही थी शायद ये इस वाद-विवाद को और बढ़ायेंगे किन्तु इन्होंने बड़े सहज भाव से मुझसे कहा—रानी! थोड़ा रसोई घर की ओर झाँक लिया करो। आज खानसामा चाय के संग ज्यादातर मीठी चीजें भर लाया था। सैण्डविच भी ठीक नहीं बनी थी।

'हाँ! यह मैं भी सोच रही थी', मैंने एक अनाड़ी की तरह उनकी हाँ में हाँ मिलाई। पर वे नाखुशी के स्वर में कहने लगे—केवल सोचने से ही काम नहीं चलता देवीजी। तुम्हारा काम है देखना कि किचन में क्या हो रहा है। आज तो खैर चल गया आयन्दा ख्याल रखना।

शब्दों का तीखापन मुझे काटे डाल रहा था। मैं खिसियाई हुई उनकी ओर देखती रह गयी और वे एक शासक की तरह दंड सुनाकर चले गये। थोड़े दिनों के अनुभव से मैं समझ गयी कि जब कभी अतिथि अभ्यागत आयें मेरा स्थान उनके पास की कुर्सी या सोफे पर नहीं है बल्कि रसोई में चूल्हे के पास है जहाँ से मुझे तरह-तरह के व्यंजन और भाप निकलती हुई चाय की केटली भेजनी है। इसीमें मेरी प्रतिष्ठा है।

मेरी सास मिसेज शिवपुरी सीनियर वैसे माडर्न ख्यालात की महिला हैं। लेकिन लड़का खानसामे के हाथ की कच्ची-पक्की खाता रहे और बहू अध्ययन कक्ष में कलम चलाती रहे, यह उन्हें भी पसन्द नहीं है। कई दफा उन्होंने मेरे कानों में डाला—बहू तो न जाने क्या करती रहती है। खाली लिखने-पढ़ने में ही होशियार है। कम-से-कम नौकर के काम की देख-भाल तो करनी चाहिये।

बेटे ने हँस कर कहा—जब वह जानेगी तभी तो देख-भाल करेगी। धीरे-धीरे मेरे चारों ओर का व्यंग्यपूर्ण वातावरण मुझे असह्य हो उठा। भाभी आटा गूँधना नहीं जानतीं; कपड़े कैसे धोती हैं कहीं उँगलियाँ छिल न जायें। बुनती कैसे हैं मानों एक-एक फन्दा गिन रही हों।

सुबह दफ्तर जाते समय कमीज या पेंट में कोई बटन टूटा दिख जाता तो प्रोफेसर साहब का मूड खराब हो जाता, लाख सुई डोरा लेकर दौड़ती, जल्दी-जल्दी बटन लगा-कर कपड़े तैयार कर देती किन्तु उनका मूड खराब हो जाता सो हो ही जाता। शाम की चाय में अगर ठीक खुशबू न आ पाती तो राजनीति की चर्चा छोड़कर वे ऐसी नजरों से मेरी ओर देखते कि मैं खामखा अपराध की भावना से ग्रस्त हो उठती। तरह-तरह के बहाने बनाकर और सफाइयाँ देती हुई फिर से किचन भागी जाती। चाय फिर से तैयार होती किन्तु मेरे अनाड़ीपन से साहब का वक्त जाया होता। कितनी ही थीसिसें देखनी थीं, रिपोर्टें तैयार करनी होती थीं। दो-एक पुस्तकें भी चल रही थीं। मनुष्य को वक्त की कीमत पहचाननी चाहिये। मेरे अन्दर की विदुषी सो गयी, गृहिणी सजग और सचेष्ट हो उठी। मुझे स्वयं किसीके कहे बिना घर के अनगिनत कामों की फिक्र रहने लगी। सुबह का खाना बनाकर उठती तो शाम का मीनू सोचने लगती। नाश्ते के लिए दालें भिगो देती। घर की चारदीवारी के अन्दर न जाने कितने काम बिखरे हैं। जाड़े आ रहे हैं, इनके लिए एक पुलोवर बुननी है। कल जज साहब को एक पूरी बाँह की बन्द गले की स्वेटर पहने देखा, वैसा ही मुझे इनके लिए बुनना चाहिये। डिप्टी साहब की बीबी ने जैसे पैचवर्क के कुशन्स काढ़े हैं क्या मैं वैसे नहीं काढ़ सकती। इन्सान चाहे तो क्या नहीं कर सकता। इधर कुछ दिनों तक लेखों और कहानियों के लिए सम्पादकों और प्रकाशकों की माँग आई। पर कुछ तो मैं ध्यान नहीं दे सकी, जवाब भी नहीं दिया। वक्त ही नहीं मिलता था। फिर अपने उन छोटे-मोटे कामों को करती या पतिदेव के बड़े-बड़े कामों के महत्त्व को देखती। कभी-कभी समय निकालकर कोई लेख लिखकर भेजती तो एकाग्रता के अभाव में वह चीज न बनी जो बननी चाहिये थी। मेरे लेख सम्पादकीय दफ्तरों से लौटने लगे। मेरा भी कुछ ऐसा दिल उचटा कि लिखना तो दूर अच्छी-खासी पत्रिकाएँ पढ़ने की तबियत न करती। कोई उपन्यास शुरू

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करके उसे पूरा न कर सकती थी बीच में ही छोड़ देती। रेडियो पर खबरें तक न सुनती। अब मुझसे सब खुश थे सिवाय मेरे पतिदेव के। उन्हें मुझसे जो आशाएँ थीं वे पूरी न हुई। वे उम्मीद कर रहे थे एक ऐसी लड़की की जो उनके बौद्धिक स्तर तक पहुँच सके। साधारण लड़कियों की उन्हें क्या कमी थी।

एक दफा एक बँगला कहानी पढ़ी, किसी कापालिक ने सरस्वती देवी को अपने वश में करने के लिए तन्त्र-साधना की। जब वे उसके वश में आ गयीं तो तन्त्र के प्रभाव से अपने देवत्व को भूल गयीं। वे कापालिक का खाना बनातीं; पोखर से उसके लिए पानी भरकर लातीं, बिस्तर बिछाती उन्हें यह भी याद न रहा कि वे कोई देवी हैं। वह भी ज्ञान और विद्या की। मेरी आत्मा और मन गृहस्थी के दायरे में रम गये। बच्चे भी हो गये, उनका लाड़-प्यार, उनका काम।न किसी बात की फुरसत थी न सुधि। सुबह घर के कामों में गुजरती थी, शाम पिक्चर देखने, सैर-सपाटा करने में। कोई दुःख नहीं सब आराम ही थे। मोटरों और हवाई जहाजों पर घूमती थी, समाज में बड़े आदमी की बीबी कहलाती थी, गोद में गोलमटोल प्यारे-प्यारे बच्चे और प्रेमाकांक्षी पति। फिर भी न जाने कहाँ क्या सालता था जिसे प्रकट नहीं कर पाती थी, जो छाती के अन्दर बन्द कमरे के धुएँ की तरह घुमड़ता-सुलगता रहता था। काम करते-करते अकारण खीज पड़ती थी, रात के तीसरे पहर अकेले में पड़े-पड़े रो पड़ती थी। इधर प्रोफ़ेसर साहब का रुख मेरे प्रति बड़ा आलोचनात्मक और व्यंग्यपूर्ण हो गया था। उन्हें शिकायत थी कि मैं उनके मनोवैज्ञानिक और बौद्धिक स्तर तक नहीं पहुँच पा रही हूँ। अक्सर अपने लम्बे-लम्बे लेख या समीक्षायें मेरे बिस्तर पर रख जाते हैं पढ़ने के लिए। मैं भई साफ कह देती हूँ नींद आँखों में झूम रही है। सुबह फुरसत मिलेगी तो पढ़ लूँगी। मन में जानती हूँ यह कठिन भाषा, यह विचार मेरी तो समझ में आने से रहे। फुरसत सुबह भी नहीं मिलती। मौना को सजाने-धजाने में और नीलू को गिनती-पहाड़े सिखाने में, घर की सफाई-सजावट करने में, उनके कपड़े-लत्ते दुरुस्त करने में, नाश्ते और खाने तैयार करने में सारी सुबह गुजर जाती। जब विश्वविद्यालय जाते समय मैं उनकी कमीज में बटन टाँक रही हूँगी या खोये हुए बक्कल ढूँढ़ रही हूँगी उस समय पूछेंगे, मेरा लेख पढ़ा? पढ़ने की फुरसत नहीं मिली न? तुम्हारे बंगाली चाचा ने बड़ा धोखा दिया। भागवत ही उसका प्राण है। मांडूक्य उपनिषद् पढ़े बिना पानी भी नहीं पीती। कहाँ गयीं ये सब बातें। हमने तो कभी देखा नहीं।

आजकल श्रीमान्जी को एक नया शौक चर्राया है, सांख्ययोग का गहन अध्ययन करने का। तेज बुद्धि की धार को तरह-तरह के श्लोकों और वादों पर चमकाया जारहा है। एक-एक शब्द का इस तरह माइक्रोस्कोपिक विश्लेषण हो रहा है कि स्वयं शंकराचार्य और कपिल मुनि झक मार जायँ। यूनिवर्सिटी के दर्शन शास्त्र के दो-एक प्रोफेसरों को पकड़ लाते हैं। रात रात तक गोष्ठी चलती रहती है। कई-कई दफा काफी, चाय व जलपान के दौर चलते रहते हैं। मुझसे भी कहा गया गोष्ठी में शामिल होने के लिए। शाम भर मौना चीखती-चिल्लाती रही थी। बच्चों के मन की बात समझना आसान नहीं। वह रो रही थी कब्ज के कारण और मैं उसे भूखी समझकर दनादन दूध पिलाये जा रही थी। उसे चुप करते कराते मैं पूरी तौर से थक गयी। मेरे मन और मस्तिष्क पर बड़ा दबाव पड़ा। स्नायुओं में इतना दम कहाँ बचा था कि सांख्य की बारीकियों पर विचार करती। थोड़ी देर बाद ही माथे में दर्द होने लगा। अन्यमनस्क होकर कह बैठी—सांख्य के अध्ययन पर इतनी शक्ति व समय नष्ट करना मैं उचित नहीं समझती। खुद भगवान् कृष्ण भी उसको उचित नहीं समझते।

"तो आपका ख्याल है, कृष्ण सांख्य की इज्जत नहीं करते थे। सांख्य के प्रति उनकी श्रद्धा न थी।"

"जहाँ तक मैं समझती हूँ वे कर्मयोग को श्रेष्ठ समझते थे। सांख्य में उनका विश्वास न था।" लापरवाही से कहकर मैं चली आयी। चुपचाप ऊपर आकर सो गयी। थोड़ी देर बाद देखती हूँ प्रोफेसर एक असहनशील निरीक्षक की मुद्रा में चले आ रहे हैं। हाथ में श्री मद्भगवद् गीता की प्रति थी, दन से मेरे मुँह पर दे मारी। इससे पहले कि मैं रुआँसी होकर रो भी सकूँ उन्होंने वाग्बाणों से मुझे छेद डाला।

"जिस विषय पर आपका ज्ञान नहीं के बराबर है उस पर बोलने की क्या आवश्यकता है। मेरे साथियों के सामने आपकी इस हरकत ने मेरी नाक कटा दी। छिः मैं हमेशा उन लोगों पर यह जाहिर करता रहा था कि मेरी पत्नी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपनिषद् और गीता पर प्रमाण है।.....यहाँ" क्रोध के कारण उनसे बोला नहीं जा रहा था।

"क्या खता हुई ? मैंने पूछा।

"सांख्य योगौ प्रथग्बालाः प्रवदान्ति न पंडिताः, उन्होंने एक श्लोक के ऊपर इशारा किया। गीता में कृष्ण योग और सांख्य को अलग समझनेवालों को मूर्ख बताते हैं और आप कह आयीं कृष्ण को सांख्य में श्रद्धा नहीं। याद नहीं पड़ता था तो कह देतीं, गलत कहकर मेरी नाक तो न कटवातीं। आपके चाचा ने मुझे बड़ा धोखा दिया।"

"चाचा को क्यों कोसते हैं ?"

कोसूँ नहीं एक साधारण विद्या-बुद्धि की लड़की को अ-साधारण कहकर मेरे सिर थोप दिया।"

"वह गलती अब भी सुधारी जा सकती है," कहकर मैं चली गयी। वहाँ ठहर न सकी।

कुछ ही दिनों बाद एक और अक्षम्य भूल मुझसे हो गई। अक्षम्य इसलिए कि आजकल वे मेरी छोटी से छोटी भूल को विराट् करके देखते थे। किसी तरह सहन करने को तैयार न थे।

प्रोफेसर साहब के एक गुरुजी भी थे। काफी रुपया खर्च करके उन्होंने पुत्री का विवाह बिरादरी के एक लड़के के साथ किया था। लड़की उनकी फिर भी सुखी न रह सकी। जाने क्यों जमाई साहब ससुर के गुरुडम से प्रसन्न न थे। (काफी बड़े-बड़े लोग गुरुजी को अपना गुरुजी मानते थे) उसका कहना था पिताजी ने बड़े ऊँचे दर्जे का ढोंग फैला रखा है। उसे बीबी के चरित्र पर भी सन्देह था। गाहे-बगाहे मारता-पीटता और लड़की को मायके छोड़ जाता, तलाक देने को धमकियाँ देता रहता था। फिर काफी तुक्का-फजीहत करके दो-चार महीने बाद ले जाता। चार-छः महीने शान्त रहने के बाद फिर वही क़िस्सा दोहराया जाता। गुरुजी आजिज आ गये। लेकिन उन्होंने ब्रह्मज्ञान का पल्ला न छोड़ा। शान्ति से काम लेते रहे। लड़की के तीन छोटे बच्चे भी थे। तलाक दिलवा भी देते तो कहाँ जाती।

माताजी और ये गुरुजी की बिटिया के दुर्भाग्य की चर्चा कर रहे थे। मैं सहानुभूति में बहकर कह बैठी—"इसीलिए मुसलमानों में मेहर की प्रथा है। जो कुछ मेहर लड़कीवालों की तरफ से दिया जाता है वह सब तलाक होने पर लड़केवालों को लौटाना पड़ता है। काजी के यहाँ सब नोट रहता है। डर के मारे इतने तलाक नहीं होते हैं।"

प्रोफेसर गम्भीर हो गये—आप जानती हैं मेहर किसे कहते हैं ?

"वह दहेज जो लड़की के साथ आता है।"

"आप गलती पर हैं। मेहर कभी दिया नहीं जाता है। यह वह धन राशि होती है जो लड़केवालों की ओर से लड़की को स्त्री-धन के रूप में मिलनी चाहिये। वैसे यह धन माँगा नहीं जाता। लेकिन जब तलाक की नौबत आती है तो पति को देना पड़ता है समझीं।"

"मैंने तो किताबों में यही पढ़ा था कि मेहर दहेज को कहते हैं।"

माताजी (सास) को कुछ काम था उठते समय फुलझड़ी छोड़ गयीं—"पढ़ी-लिखी लड़की है मोहन ! दब नहीं सकती।"

इन्सान जब ढिठाई पर उतर आता है तो किसीकी कही मान नहीं सकता। अपनी गलत बात भी उसे सही जँचने लगती है। समय-बे-समय अपने पढ़ने-लिखने की प्रवृत्ति की खिल्ली उड़ते देखकर मैं ढीठ हो चुकी थी। उस विषय में किसीको अपने से श्रेष्ठ मानने को मैं तैयार न थी। एक उपेक्षापूर्ण दृष्टि उनके ऊपर डालकर मैं अपने कमरे में आकर जान-बूझकर तकिये के कवर काढ़ने लगी। कढ़ाई से इन्हें चिढ़ थी इसलिए इनका दिल दुखाने के लिए। थोड़ी देर में अलसाकर लेटी ही थी कि देखती हूँ चन्द्रमोहन एक मोटी सी कानून की किताब लिये हाँफते-हाँफते चले आ रहे हैं। मैं समझ गयी यह भावी संघर्ष की भूमिका है। भीतर से डरकर और ऊपर दृढ़ होकर मैं बैठ गयी।

"तुम समझती तो हो अपने को अविजेय, भले ही कुछ न समझो-बूझो आज तुम्हें विश्वास दिलाने के लिए मुझे सिविल लाइन्स जाकर श्रीकांत बैरिस्टर इन लॉ से यह किताब लानी पड़ी।"

कहकर उन्होंने एक शहीद की तरह पुस्तक खोली और कानून की धारा खोलकर परिभाषा दिखाई जिसमें मेहर क्या है यह बताया गया था। सच ही मेरा कहना एकदम गलत था। अपनी हार देखकर मैं एकदम खिसिया गयी।

"अगर तुम अपनी गलती मान लेतीं तो आज मुझे इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्दी में चार मील का चक्कर न काटना पड़ता । अब अगर मुझे पुरानी साँस की बीमारी उखड़ आये तो उसकी जिम्मेदारी सिर्फ तुम्हारे ऊपर होगी ।"

"मैंने तो आपसे नहीं कहा था कि आप कानून की किताब लाने का कष्ट करें आप स्वयं ही तो चले गये थे ।

"चला गया था ! बेवकूफ औरत तुम्हारी वजह से—जब तुम स्वयं कुछ नहीं जानती हो तो कम-से-कम उन लोगों की तो मान लिया करो जो तुमसे ज्यादा जानते हैं । इसका तो लिहाज किया करो कि मैं तुमसे दस साल बड़ा हूँ । दस साल पहले मर जाऊँगा ।"

आक्रोश में वे हाँफने लगे ।

"लेकिन आपने ही तो बताया था कि बिना खोज और जाँच किये किसी बात को सच न माना करो चाहे वह कितना ही बड़ा क्यों न हो ?"

"यह तो नहीं कहा था कि अपने से बड़े पति का ही अपमान किया करो ।"

यह पहली बार आज मैं इनके मुँह से आयु और पद की दुहाई सुन रही थी । इससे पहले तो यही सुना करती थी कि प्रज्ञा की कसौटी पर सही न उतरे तो किसीकी भी बात पर विश्वास न करो । लेकिन गलती तो मेरी ही थी । घूँट-सा पीकर रह गयी ।

इस घटना के बाद हम दोनों में तनाव इतना ज्यादा बढ़ गया कि मुँह से कुछ न कहने पर भी दूसरे लोग उसे अनुभव करने लगे । उनके विचार में मैं एक झगड़ालू और जाहिल स्त्री थी और मेरे विचार से वे एक आतंकवादी तानाशाह थे । जिनकी हर उचित-अनुचित इच्छा मुझे पूरी करनी पड़ती थी । हृदयहीन दानव । कभी-कभी तो मेरे दिल में आता था अपने बच्चों को लेकर यहाँसे भग जाऊँ, यहाँ मेरा है ही कौन । उनकी निर्मम उदासीनता हर समय मेरा दिल बेधती रहती थी । मैं इस कदर घबरा उठी—कुछ सूझता न था । पहले ये विश्वविद्यालय जाते समय या वहाँ से आने पर मुझे आवाज देते थे अब नौकर को आवाज दी जाती थी । मैं भी इनके आने के समय बच्चों का कुछ काम करने बैठ जाती थी ताकि लोग मुझे व्यस्त समझें । तनाव का प्रभाव हमारे दाम्पत्य सम्बन्धों पर भी पड़ने लगा । लगता था जैसे हममें कभी प्रेम था ही नहीं । इसी तरह महीनों बीत गये ।

कांगो की समस्या जटिल से जटिलतर होती जा रही थी । हर अखबार पढ़नेवाला सबसे पहले दूसरे के हाथ से अखबार छीनकर देखता था लुमुम्बा अभी जेल में है या बाहर है । कासाबूबू का ऊँट किस करवट बैठ रहा है । कांगो के समाचारों के सामने अन्य सब समाचार फीके पड़ गये थे यहाँ तक कि लाओस के भी ।

चन्द्रमोहन राजनीतिशास्त्र के विशेष ज्ञाता थे । लुमुम्बा के साथ उनकी हार्दिक सहानुभूति थी । उनका वश चलता तो लुमुम्बा के साथ मक्कारी करनेवाली बड़ी शक्तियों का पर्दाफाश कर देते । हैमरशोल्ड से तो उन्हें अजीब चिढ़ हो गयी थी । उनके मत से हत्या की रूखड़ी वही था । उस दिन वे सुबह ही सुबह बड़ी बेचैनी के साथ छतपर आराम-कुर्सी पर लेटे हुए अखबार पढ़ नहीं पी रहे थे । पास ही खटोले पर हमारा साल भर का गजरा सो रहा था । बेचैनी का कारण रेडियो की वह खबर थी कि रात को लुमुम्बा जेल से भाग गया है । चन्द्रमोहन ने अपने मित्रों को बता रखा था यह खबर गलत है । उसे मार डाला होगा बाद में हल्ला मचा दिया जायगा कि पीछा करते समय सिपाहियों द्वारा मार डाला गया । इस खबर से वे बेहद चिन्तित और बेचैन थे इसी बीच गजरा सोकर उठा और खाट की पाटी के किनारे पर बैठ गया और संतुलन खोकर गिर पड़ा । बड़े जोर का पटाखा हुआ, बच्चा धाड़ मार-मार कर रोने लगा । प्रोफेसर साहब लुमुम्बा और कांगो के गम में इस कदर बेकरार थे कुछ सुन न सके ।

नीचे की मंजिल पर जैसे ही मैं नहाकर गुसलखाने से निकली बच्चे के चिल्लाने की आवाज सुनी । मैं ऊपर भागी । देखा बच्चा जमीन पर पड़ा चिल्ला-चिल्लाकर बाबरा हुआ जा रहा है । प्रोफेसर साहब शान्त स्थिर मुंह पर अखबार रखे बैठे हैं । मैं अपने को सँभाल न सकी बे-इख्तियार निकल गया । बच्चा जमीन पर गिरा रो रहा है और आप अखबार पढ़ रहे हैं । अच्छा बाप का दिल पाया है आपने । बच्चा अब भी रोये जा रहा था । उसके माथे पर घूमरा पड़ गया था । आलमारी से बाम लेकर लगाई तब चैन पड़ा । प्रोफेसर साहब ने आँखों पर से अखबार उठाकर कुछ इस प्रकार देखा मानों उनका इस घटना से कोई सम्बन्ध ही न हो—

"बच्चों की देख-रेख करना माँ का फर्ज है", नपे तुले शब्द हथौड़े की तरह मेरे दिल पर चोट कर रहे थे ।

"हाँ और बाप का फर्ज है मजे में अखबार पढ़ता रहे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहे बच्चा जमीन पर गिरकर दम तोड़ दे। जो अपने बच्चे का सगा नहीं वह कांगो का क्या सगा होगा।"

बहुत दिनों से दबा हुआ बाँध टूट पड़ा। मैं आर्तनाद कर उठी। सिसकियों का महासागर उमड़ पड़ा। यहाँ तक कि घर के नौकर-चाकर अन्य लोग आकर तमाशा देखने लगे। मेरा रोना फिर भी चालू रहा। वे धैर्य खो बैठे। गरज उठे·····"क्या तमाशा बना रखा है। गँवार कहीं की। ले जा अपने बच्चे को। गिर पड़ा तो क्या हुआ। बच्चे गिरा ही करते हैं। अगर तुम पौलिटिक्स में रुचि नहीं ले सकतीं तो कम से कम उन लोगों को तो चैन से रहने दो जो उसे समझने की कोशिश करते हैं। जाओ तकिये के गिलाफ काढ़ो। सीलोन रेडियो सुनो। एक औरत से और क्या उम्मीद की जा सकती है।"

"ठीक है", मैंने बच्चा उठा लिया और केले के पत्ते की तरह काँपती वहाँसे चली गयी। आज तक मैंने सहा अब नहीं सहूँगी। मैं गँवार हूँ, जाहिल हूँ। अखबार की खबरें तक नहीं समझ सकती, इतनी गयी-गुजरी हूँ। तुम प्लेटो, एरिस्टोटिल हो। अपना बच्चा सामने पड़ा बिलख रहा है और आप एक दूर देश के गम में आठ-आठ आँसू बहा रहे हैं। यही इनकी विद्वत्ता है, यही इनकी इन्सानियत है।

अपमानों की चोट खाकर मेरे अन्दर बहुत दिनों से सोई विदुषी, ज्ञान-गरिमा से मंडित गौरवशालिनी नारी जाग उठी। भीता त्रस्ता ममतामयी गृहिणी बिलखकर सो गयी। इस हृदयहीन पुरुष के साथ नहीं रहूँगी नहीं रहूँगी मैं। चाहे मुझे अपने कलेजे के टुकड़ों से ही जुदा क्यों न होना पड़े। रात होने तक मैं अपने कमरे में बन्द होकर रोती रही। कहाँ गयी वह वह मोहब्बत ? वे वायदे, वे चाँदनी रातों के अफसाने, वह सब क्या झूठ था ? फिर मैंने सोच-समझकर उनके नाम एक पत्र लिखा—

मेरे किसी समय के प्रियतम,

अच्छा हुआ जो आपने इतने स्पष्ट शब्दों में अपने मनोभाव प्रकट कर दिये। इसके लिए मैं आपको धन्यवाद देती हूँ। जिस दिन से मैंने आपके घर में पैर रखा, आपको प्रसन्न रखने की हरचन्द कोशिश की। मैंने अपनी आकांक्षायें कुचल डालीं ताकि आपकी महत्त्वाकांक्षायें पनप सकें। अपनी ख्याति खाक कर डाली ताकि मेरी ख्याति की राख पर आपकी ख्याति का विकास हो सके। मैं भी चाहती तो आपकी तरह एकचित्त होकर साहित्य और राजनीति की आराधना कर सकती थी। नाम और यश पा सकती थी लेकिन मैंने अपने को धूल में मिला डाला ताकि वह यश, वह नाम आपको मिल सके।

इसके बदले यदि मुझे आपका प्यार मिला होता तो कुछ गिला न होता। लेकिन मुझे तो वह भी न मिला। मेरा अमूल्य जीवन यों ही गया। मुझे वह दिन भी याद है जब नौकर के हाथ की बनी बिना नमक की उड़द की दाल खाकर चुपचाप यूनिवर्सिटी चले जाते थे और वह दिन भी याद है जब रात के एक बजे आपका सेवईं खाने का तानाशाही हुक्म होता था। मैंने सेवईं बनाईं भी और आपकी डाँट भी खायी। डाँट क्यों न खाती, गँवार जाहिल औरत ठहरी। फिर भी मैं आपको यह बता देना चाहती हूँ मैं सचमुच गँवार और मूर्ख थी नहीं—आपकी वजह से हो गयी। खैर अब भी कुछ नहीं बिगड़ा। पैंतीस साल के भी तो नहीं हैं अभी आप। फिर से किसी विदुषी से ब्याह रचा लीजिए। बस इतनी विनती है कि उसे अपने धन्धों में इस तरह न जोतना कि वह मेरी तरह अपना पढ़ा-पढ़ाया भूलकर गँवार हो जाय। एक प्रार्थना और है, मुझे मेरे बच्चों से जुदा न किया जाय। मैं इसी सोमवार को अपने पिता के घर चली जाऊँगी।

आपकी भारती

धड़कते दिल से मैं पत्र उनकी मेज पर रख आयी। रात बीती, सुबह बीती, शाम आयी, मैं घबड़ाई और सहमी उनके प्रत्युत्तर का इन्तजार कर रही थी। शाम को जब मैं छज्जे पर खड़ी होकर सूर्यास्त के दृश्य देख रही थी, मुझे भी अपने जीवन का सूर्य डूबता नजर आ रहा था। मौना और गजरा को मुझसे छीन लेंगे, मैं कैसे रहूँगी। मेरे जीवन में क्या रह जायगा, खाली ऐंठ को लेकर क्या करूँगी। अचानक सीढ़ियों पर परिचित पैरों की आहट सुनाई पड़ी। मैंने मुँह फेर लिया। आँखों में आये आँसुओं को आँचल की नोक से रगड़कर साफ करने लगी।

बड़ी कठोरता थी उनकी वाणी में—"तो तुमने निश्चय कर लिया है तुम जरूर जाओगी ?"

"हाँ।"

"हम लोगों ने तुम्हें बहुत दुःख दिये हैं।"

"अपने दिल से पूछिये।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'ये कोठी, ये मोटर, ये क्लब इनके बिना जीवन काट सकोगी ?'

मैं सर्पिणी की तरह फुफकार उठी—पहले रह सकती थी तो अब भी क्यों न रह सकूँगी। मुझे कुछ नहीं चाहिए। सिर्फ मेरे बच्चे मुझे दे दीजिये।

प्रोफेसर गरज उठे—हरगिज-हरगिज तुम्हें बच्चे नहीं मिल सकते। जाना चाहो तो अकेली जा सकती हो। तुमने अपने को समझ क्या रखा है। तुम बच्चों के लिए अनिवार्य नहीं हो।

हाय रे पुरुष की नीचता ये बच्चे जो मेरी कोख फाड़कर निकले थे, जिनके जन्म के लिए मैंने अपार कष्ट सहे थे, पराये हो गये और वे लोग जो इनके गिर जाने पर इन्हें गोद में भी नहीं उठा सकते इनके सब कुछ हो गये।

तीन दिन बाद बिजनौर से बूढ़ी बूआ सास ने आकर बच्चों का चार्ज सँभाल लिया। मेरे अन्तर्द्वन्द्व की थाह न थी। खड़ी होती तो चक्कर खा जाती। घंटों अपनी मौना, नीलू और गजरा की ओर ताकती रहती। विद्वत्ता की चाह क्या इन प्यारे बच्चों की चाह से भी बढ़ जायगी। जिस दिन मौना की प्यारी प्यारी बातें नहीं सुनूंगी उस दिन कैसे रहूँगी। कौन मुझसे पौनी टेल बँधवाने के लिए जिद किया करेगा। किसकी स्कूल ड्रेस रोज इस्तरी करूँगी। अपने साल भर के गजरा के बिना कैसे रहूँगी। ओ भगवान् वह तो मेरी छाती से भी अलग नहीं हुआ। पुरुष कितना आत्मकेन्द्रित, कितना स्वार्थी जीव है मैं हर समय रोती ही रहती थी। घरवालों को इस झगड़े का कुछ पता न था। वे लोग समझ रहे थे मैं ही स्वामी की इच्छा के खिलाफ पीहर जाना चाहती हूँ। यही झगड़ा है।

वह दिन आया जब मैं जाने के लिए तैयार थी। मेरा सूटकेस व होल्डौल तैयार हो चुका था। बच्चों को गोद में लेकर मैं सोफे पर बैठी थी। गजरा मेरी छाती से लगा था, मौना घपल घपल कुछ गा रही थी। नीलू गजरा को गोद से गिराये दे रहा था। वह सृष्टि जो सिर्फ मेरी सिर्फ मेरी थी, जिसके हर कण पर मेरी छाप थी वह भी आज से मेरी न रहेगी। आज इतने विश्वास से मेरी गोद में बैठे हैं कल मुझे पहचानेंगे भी नहीं।

आवेग से मेरा दिल भर आया। आँसुओं से धुंधली दृष्टि ऊपर उठी तो देखा ये खड़े हैं।

"तुम्हारा सामान तैयार है।"

"जी हाँ।" मैंने सूटकेस व हाल्डौल की ओर इशारा किया।

"इस छोटे से सूटकेस से तुम्हारा काम चल जायेगा ?"

"मुझे ज्यादा चीजों का क्या करना है ? काफी हैं।"

"मेरे ख्याल से तो काफी नहीं हैं। जाड़ों के कपड़े कहाँ हैं ? चैस्टर स्वेटर स्लैक्स वगैरा। अमेरिका में बड़ा जाड़ा पड़ता है।"

"अमेरिका ? कौन जा रहा है अमेरिका ? मैं तो इलाहाबाद जा रही हूँ जो काफी गरम है।"

"आप गलत समझ रही हैं। हम लोग अगले हफ्ते ही अमेरिका जा रहे हैं और उस यात्रा के लिए यह सामान पर्याप्त नहीं है।"

मैं चकित रह गयी। मैंने उनकी ओर देखा। उनकी आँखों में कठोरता न थी। मेरी कुछ समझ में न आया। मैं खड़ी हो गयी, आश्चर्य से स्तब्ध उनकी ओर देखने लगी।

"यों घबड़ाकर मत देखो भारती। मैं सचमुच तुम्हें लेकर अमेरिका जा रहा हूँ।"

"मैं तो माँ के घर इलाहाबाद जा रही हूँ।"

"इस समय नहीं फिर कभी। इस समय तो हम तुम विदेश-यात्रा करने जा रहे हैं।"

"और बच्चे !" मैं अँधेरे में राहें टटोल रही थी।

"जहाँ तू वहाँ तेरे बच्चे पगली !" मुझे नहीं याद मैं दीवार का सहारा लिये खड़ी थी, गिरी या क्या हुआ उन्होंने आगे बढ़कर मुझे थाम लिया। वर्षा की बड़ी-बड़ी बूंदों जैसे आँसुओं से वे भीगने लगे।

"मुझे क्या पता था तुम अन्दर ही अन्दर इतना घुट रही हो। मैं तो समझता था तुम्हें सिर्फ कढ़ाई-बुनाई का चस्का है बाकी सब बातें शादी के बाजार में तुम्हारी कीमत बढ़ाने के लिए गढ़ी गयी हैं। इसीलिए तुम्हारे ऊपर छींटें कसता रहता था।

"उन कामों के लिए आपने समय ही कब दिया था।"

"हाँ मैं मानता हूँ मेरी गलती थी। अपने स्वार्थ के शिकंजे में हर समय तुम्हें कसता रहता था। यह कर वह कर, इससे मेरे पुरुष का अहं सन्तुष्ट होता था। अब तुम्हें शहीद होने की जरूरत नहीं पड़ेगी।"

× × ×

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और आज मैं सान्ताक्रूज हवाई अड्डे पर खड़ी हूँ। आधे घंटे में वह जैट विमान आनेवाला है जिसके द्वारा हम न्यूयार्क वाया लंदन जानेवाले हैं। चन्द्रमोहन कस्टम्स की ओर सामान की चैकिंग कराने गये हैं। तीनों बच्चे भी बड़े प्रसन्न और उत्तेजित दिखाई दे रहे हैं। "मम्मी पापा के साथ हाई जाज में जा लहे हैं न ?" बुआजी भी बड़े ठाठ की महिला लग रही हैं। काश्मीर सिल्क की साड़ी में गोरी-गोरी, बिल्कुल काश्मीरी दिद्दा जँच रही हैं।

चन्द्रमोहनजी का आदेश है, बड़ी सतर्क और सजग दृष्टि से उद्‌बुद्ध अमेरिकन नारी के जीवन का अध्ययन कर मुझे उस जीवन और संसार को एक उच्च कोटि के उपन्यास में प्रस्तुत करना होगा।

मैं पूछती हूँ—क्या मैं एक साल, तीन साल और पाँच साल के बच्चों को लेकर यह कठिन कार्य कर सकूँगी। बहुत दिनों के आराम से मेरी लेखनी जंग खा गयी है।

इनका कहना है मैं सब कुछ कर सकती हूँ। फिर बुआजी तो बच्चों की खातिर साथ चल रही हैं. वे बच्चों को संभाल लेंगी तो क्या मैं एक उपन्यास नहीं लिख सकूँगी। उपन्यास न हो यात्रा-वृत्तान्त सही। कुछ न कुछ तो मुझे लिखना पड़ेगा।

मुझे क्या पता था ये महाशय मुझ पर इस कदर मेहरबान हो उठेंगे।

दो लघु गीत

डा० रामगोपाल सोनी

(१)

आकाश में लटके हुए
सूरज चाँद तारे
ध्यान में डूबे
धरा के
किरण के संदेश
प्रेषित कर रहे हैं।
मिलन के पागल क्षणों की
आतुर प्रतीक्षा
कर रहे हैं।

(२)

अमायी वेदनाएँ
छा गईं
बरसा गईं
तुम्हारी याद का सावन।
गगन की दौड़ती
अल्हड़ घटाएँ
मुसका गईं
गुनगुना कर गा गईं
तुम्हारी प्रीति का गायन।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नवीन प्रकाशन

हृषीकेश-रचनावली—[हृषीकेश चतुर्वेदी की समस्त रचनाओं का संग्रह] सम्पादक—शतीशचन्द्र चतुर्वेदी, पृष्ठ संख्या—७५२। साइज—क्राउन साइज। मूल्य—३५ रुपये। प्रकाशक—चन्द्रादित्य प्रकाशन, किनारी बाजार, आगरा।

यह ग्रन्थ स्व० हृषीकेश चतुर्वेदी की समस्त रचनाओं का संग्रह है। रचनावली को देखने से विदित होता है कि चतुर्वेदीजी खड़ीबोली के चलते हुए, उर्दू मिश्रित एवं परिनिष्ठित रूपों के अतिरिक्त, ब्रजभाषा संस्कृत तथा अंग्रेजी में भी साधिकार कविता करने में सक्षम थे। उन्होंने संस्कृत और अंग्रेजी की कई रचनाओं के पद्यानुवाद भी किये, जो ब्रजभाषा और खड़ीबोली दोनों में हैं। भाषा सम्भवतः उनकी चेरी थी।

संस्कृत में उन्होंने गणपति, शिव, कृष्ण आदि पौराणिक देवताओं की स्तुति के अतिरिक्त राष्ट्रीय उपास्यों की स्तुतियाँ लिखी हैं। गण-नायक की स्तुतिपरक राष्ट्रगीत अपनी गरिमा एवं मधुरिमा की दृष्टि से सरलतापूर्वक राष्ट्रगान के समकक्ष ठहरता है—इसमें विभिन्न प्रदेशों के नाम भी सुस्पष्ट हैं।

माननीय राष्ट्रपति के सम्बन्ध में जो आपने पद्य लिखा है, उसकी पंक्तियों के प्रथमाक्षरों से—वराहगिरि की जय—बनता है। इस प्रकार का पद-विन्यास उनके बाएँ हाथ का खेल था। यह चमत्कार हम कई अन्य छन्दों में भी देख सकते हैं।

आपने कई हुतात्माओं के सम्बन्ध में भी लिखा है। जिनमें महाराणा प्रताप, शिवाजी आदिक मध्यकालीन भारत वीरों से लेकर परमवीर-चक्र विजेता अमर शहीद अब्दुल हमीद खाँ तक का गुण-गान किया है। इन कविताओं में चतुर्वेदीजी की राष्ट्रीय भावना दृष्टव्य है। यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि आपने देवता के अनुरूप पूजावाली कहावत चरितार्थ की है। आपने अब्दुल हमीद खाँ के प्रति श्रद्धांजलि में ठीक उसी भाषा-शैली का प्रयोग किया है जो सर्वथा उनकी आत्मा को ग्राह्य हो—

बालवृद्ध माँगते ईश से यही दुआ,
वह तुझे बहिश्त में पूर्ण शांति दे सदा।
उस उमंग का बयाँ, कर नहीं सके जुवाँ,
जान दे जिहाद में, मिल गई जिसे कि ईद।

आपने खड़ीबोली में संस्कृत के अनेक अतुकान्त वर्णवृत्तों का सफल प्रयोग किया है। हिन्दी में संस्कृत वृत्तों के प्रयोग की परम्परा के प्रवर्तक हरिऔध हैं। उनके बाद इस प्रयोग में चतुर्वेदीजी ही इतने सफल हुए हैं। मालिनी छन्द का यह सफल प्रयोग देखिये—

कुविषय-कलुषों को कूप में डाल के तू,
मुदमय मन से सन्मार्ग का आसरा ले।
सफल अवगुणों से भागना चाहता जो,
कर सुमिरन प्यारे, बुद्धि-विद्याधरी का।

उर्दू की बहरों में हिन्दी कविता की परम्परा भारतेन्दु ने चलाई। उन्होंने हिन्दी खड़ीबोली में कई लावनियाँ लिखीं। चतुर्वेदीजी ने हिन्दी में नये ढंग की गजलें लिखकर हिन्दी भाषा की अभिव्यंजना शक्ति को नई दिशा प्रदान की। उनका वसन्त-गीत अपने ढंग की निरासी हिन्दी गजल है—

बहारें रंग लायेंगी, सजन जब आप आयेंगे।
नई कोंपल, नये बौरों से सुरभित आम पर कोयल,
मधुर कूकें सुनायेगी, सजन जब आप आयेंगे।

इस प्रकार के गीतों के पीछे हृषीकेशजी का शृंगारी हृदय झाँकता हुआ दिखाई देता है। हिन्दी गजल के अन्तर्गत हरिगीतिका, दिक्पाल, विध्वंक-माला आदि छन्दों का सफल निर्वाह उनके पिंगल-शास्त्र के अधिकार का स्वयं प्रमाण है। उन्होंने उर्दू में भी जूमानी शेर जैसे चमत्कारी छन्द की रचना कर डाली है। चतुर्वेदीजी के पिंगलशास्त्र-परक ज्ञान के संदर्भ में यह कह देना ही आवश्यक प्रतीत होता है कि उन्होंने दो-तीन जलहरण घनाक्षरी भी लिखे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे, जिनमें वर्णों के साथ गणों का भी निर्वाह किया जाता है। यह कविता ब्रजभाषाकाव्य में ही बहुत कम प्रयुक्त हुए हैं। खड़ीबोली की कविता तो ऐसी चीजों से कोसों दूर है। उन्होंने कई नवीन छन्दों का प्रयोग किया है। केवल प्रयोग ही नहीं, उनके लक्षण स्थापित करके उन्हें शास्त्रोक्त भी प्रमाणित किया है।

ब्रजभाषा तो उनकी मातृभाषा ही थी। चतुर्वेदीजी कृत ब्रजभाषा रचनाओं के विषय में तो हम केवल इतना ही कह सकते हैं कि रत्नाकरजी के पश्चात् इने-गिने व्यक्ति ही प्रांजल एवं परिमार्जित ब्रजभाषा लिख सके हैं।

चमत्कारी काव्य को रसवादियों एवं ध्वनिवादियों ने अधम कोटि का काव्य कहा है और अलकारवादी उसे उत्तम कोटि का काव्य मानते हैं। जो भी हो, यह तो निर्विवाद है कि चमत्कारी काव्य की रचना के लिए शास्त्र-ज्ञान, अभ्यास, अध्ययन एवं अध्यवसाय और अनुभव अपेक्षित रहते हैं। हृषीकेशजी विद्याव्यसनी एवं साहित्यानुरागी व्यक्ति थे। उनके द्वारा विरचित चमत्कारी काव्य इसका प्रमाण है। इनका श्रीरामकृष्ण काव्य-विलोम काव्य का उदाहरण है तथा श्रीरामकृष्णायन यमक-श्लेषपरक काव्य है। श्रीरामकृष्णायन में ३५ छन्द हैं। प्रत्येक पद्य अपने अर्थों से दोनों ही पक्षों की कथाओं का पूर्वापर सम्बन्ध बनाये रखता है। इनकी श्रीकृष्ण-नाम माला भी इस कोटि की रचना है जिसमें २३ छन्द हैं और प्रत्येक छन्द का आरम्भिक शब्द ऐसा है जो कवर्ग से आरम्भ होता है तथा श्रीकृष्ण का पर्यायवाची है। उन्होंने कई चित्र-काव्य भी लिखे हैं। कौन नहीं जानता है कि चित्र-काव्य एक अत्यन्त श्रम-साध्य विद्या है और हिन्दी काव्यान्तर्गत अत्यन्त दुर्लभ है।

रचनावली को देखने पर विदित होता है कि चतुर्वेदीजी व्यंग्य-विनोद की जीती-जागती मूर्ति थे। छेड़छाड़ नाम से उनके लिखे अनेक व्यंग्य-वाण एवं हास्य के छींटे उपलब्ध हैं। समाज का कदाचित् ही कोई शोषक वर्ग हो जो उनकी पैनी दृष्टि से बच सका हो।

चतुर्वेदीजी आचार्य भी थे। देवनागरी लिपि विज्ञान—उनकी छोटी-सी पुस्तक उनके भाषा के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण का यशःगान करती है।

चतुर्वेदीजी की संगीत-साधना के प्रमाण भी इस पुस्तक में उपलब्ध हैं। उन्हें समाज की रीति-रिवाजों, संस्कारों का भी यथोचित ज्ञान था। अपने माथुर चतुर्वेदी समाज के सस्कारों में प्रयुक्त कुछ विशेष शब्दों के अर्थों पर भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से विचार किया है। और उनके अर्थ किये हैं। उन्होंने गद्य पर भी लेखनी चलायी। अनेक विषयों पर छोटे-छोटे निबन्ध इनकी गद्य शैली की सम्पत्ति है, जिसमें इनकी मान्यताएँ एवं इनके जीवन-मूल्य अभिव्यक्त हैं। वे भी इस ग्रन्थ में संग्रहीत हैं।

ग्रन्थ के अन्त में अतिरिक्त उपयोगी सूचनाएँ दे दी गयी हैं—यथा चतुर्वेदीजी द्वारा प्रकाशित पुस्तकों की सूची एवं उनकी कुल पृष्ठ-संख्या, उनकी जीवनी, उनके सम्बन्ध में प्रकाशित लेखों की सूची, रत्नदीप गोष्ठी का परिचय तथा उसमें वितरित परिपत्रों की सूची, चतुर्वेदीजी के स्वर-दर्पणांकित वाणी की सूची तथा चतुर्वेदी स्मृति संग्रहालय में संग्रहीत वस्तुओं की सूची। कहने का तात्पर्य यह है कि रचनावली स्व० चतुर्वेदीजी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व की समग्र झाँकी प्रस्तुत करने में सर्वथा समर्थ है। हमें आशा है कि अब उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व का विश्लेषणात्मक अध्ययन करते हुए शोध कार्य शीघ्र ही आरम्भ हो जायगा।

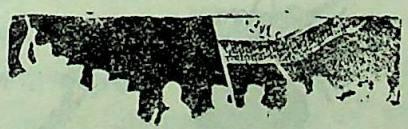

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनोरंजक संस्मरण

हा गुरु सेवक की करनी...

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' बाल्यकाल से ही क्रान्तिकारी स्वभाव के थे। पं० गयाप्रसादजी शुक्ल उनके सहपाठी रहे हैं। आपने उग्रजी के बाल्यकाल की एक घटना सुनायी जिससे उनकी विद्रोही प्रवृत्ति, जिसमें साहित्यिक पुट भी विद्यमान है, का पता चलता है।

उन दिनों 'उग्र' जी सेंट्रल हिन्दू स्कूल, वाराणसी में कक्षा ८ के विद्यार्थी थे। उस समय पं० गुरुसेवक उपाध्याय (हिन्दी के प्रसिद्ध कवि पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' के अनुज) उस स्कूल के प्रधानाचार्य थे जो अपने कठोर अनुशासन के लिए प्रसिद्ध थे। 'उग्र' जी ने अपनी आत्मकथा 'अपनी खबर' में उनके सम्बन्ध में लिखा है "तब मैं आठवें दर्जे में पढ़ता था। तब स्कूल के हेड मास्टर श्री गुरुसेवक उपाध्याय थे। महामना मालवीयजी ने उपाध्यायजी की शिक्षा सम्बन्धी योग्यता से मुग्ध होकर उन्हें सरकार से हिन्दू स्कूल का प्रधान (अध्यापक) बनाने के लिए कुछ वर्षों के लिए उधार माँग लिया था। गुरुसेवकजी सरकारी ड्यूटी से ताजा-ताजा आने के सबब हेड मास्टर होने पर भी छुट्टी पर डिप्टी कलेक्टर' भी थे। आते ही उन्होंने विद्यार्थियों पर नियन्त्रण का नीरस पंजा कसा—सिर पर टोपी क्यों नहीं है? जुल्फें सँवरी क्यों हैं? बोलते वक्त मुस्कराते क्यों हो? रामू श्यामू के गले में हाथ डालकर क्यों चला? खबरदार जो कोई विद्यार्थी किसी के गले में हाथ डालकर चलता पाया गया! ठीक नहीं होगा। क्या जनानी सूरत बना रखी है? मर्दों की तरह रहो।" (पृष्ठ ९४-९५)

कहने की आवश्यकता नहीं कि 'उग्र' जी में उपर्युक्त सभी 'गुण' विद्यमान थे। एक बार 'उग्र' जी की उद्दंडता से रुष्ट होकर गुरुसेवकजी ने उन्हें स्कूल से निष्कासित कर दिया। फिर क्या था 'उग्र' जी ने उनके विरुद्ध विद्रोह का झंडा उठा लिया। उन्होंने गुरुसेवकजी की इस 'करनी' पर एक कवि सम्मेलन का भी आयोजन किया था जिसमें समस्यापूर्ति हेतु निम्नलिखित पंक्ति रखी गयी थी—

'हा गुरु सेवक की करनी कछु—
भाखे बनै, न बनै बिनु भाखे।'

यहाँ 'गुरु सेवक' में श्लेष द्वारा गुरु शिष्य की अच्छी व्यंजना हुई है।

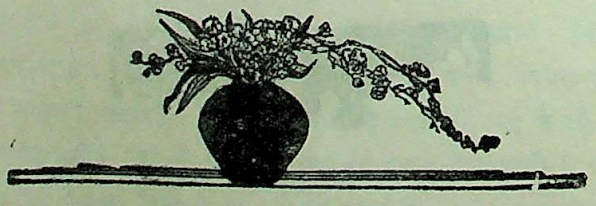

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डाक्टर जानसन

श्री सन्तराम बी० ए०

डाक्टर जानसन इंगलेंड के एक बहुत बड़े साहित्य-सेवी होगये हैं। आपका पूरा नाम सैम्युअल जानसन था। उनका जन्म १७०९ ईसवी में लिचफील्ड नामक स्थान में हुआ था। उनके पिता मिचल जानसन पुस्तक बेचने का व्यवसाय करते थे। पादरी-मण्डल में उनका अच्छा सम्मान था। उनका मन और शरीर तो अच्छा बलिष्ठ था, पर वे वहम (Hypochondria) से सदैव पीड़ित रहते थे। पुत्र ने भी ये सब बातें पिता से बिरासत में पाईं। रोग और वहम माता की गोद में ही उसे मिले और आजन्म उसके साथ रहे। इँगलेंड में एक अन्ध-विश्वास प्रचलित था। वहाँ लोग समझते थे कि किंग्ज ईविल (King's Evil) नामक रोग के रोगी को यदि राजा स्पर्श करे तो उसका रोग शान्त हो जाता है। सैम्युअल की माता भी उसे रानी एन के पास ले गयी। पर रानी के स्पर्श से रोगी को कुछ भी फायदा न हुआ।

जन्म से तो जानसन की मुख-मुद्रा प्रभावशालिनी और सुन्दर थी, पर इस व्याधि ने उसे कुरूप और बेडौल बना दिया। इससे उसकी आँखों को हानि पहुँची। एक आँख की दृष्टि तो बिलकुल नष्ट ही हो गयी। जानसन आध गज की दूरी से ही अपने मित्र के भी चेहरे को पहचान सकते थे। चित्र उन्हें व्यर्थ धन्धे से जान पड़ते थे। वे यह न जान सकते थे कि यह चित्र किस चीज का है। दृष्टि की दुर्बलता के अलावा सङ्गीत का आनन्द लेने की क्षमता भी उनमें बहुत कम थी। बहुधा वे ऐसी विचित्र चेष्टायें किया करते कि देखकर हँसी आती थी। इसका कारण उनकी व्याधि ही थी। कमरे में प्रवेश करने के पहले वे एकदम ठहर जाते और मुड़कर हास्यजनक संकेत करते। कभी कभी वे गली या कमरे के मध्य खड़े हो जाते, ताकि उसे वे ठीक तौर पर पार कर सकें। कभी-कभी वे बाजार में मकानों को हाथ लगाते चलते। कभी-कभी फर्श के प्रत्येक पत्थर के बीच पाँव रख कर चलते। यदि ऐसा करने में कभी भूल हो जाती तो पूर्व-क्रिया को फिर दुहराते।

ऐसी विचित्र बातों के होते हुए भी उनमें, उनके ऊँचे कद और भारी शरीर के अनुरूप, शारीरिक बल था। वे खेलों में भी निपुण थे। एक दफे उन्होंने थिएटर में एक कुरसी किराये पर ली। उनकी अनुपस्थिति में कोई अन्य व्यक्ति उस पर आ बैठा। इस पर जानसन साहब ने उसे कुरसी सहित उठाकर एक गढ़े में फेंक दिया। पचपन वर्ष की आयु में एक बार वे अपने मित्र के साथ एक पर्वत पर गये। वहाँ जाकर आप कहने लगे कि चिरकाल से मैं कभी लुढ़का नहीं। इतना कहते ही आपने अपनी जेबें खाली कर डालीं और पहाड़ी के एक कगार पर लेट गये। फिर वहाँ से लुढ़क कर वे नीचे धड़ाम से गिरे! ऐसे विचित्र शरीर-रूपी पिंजड़े के भीतर एक अतीव प्रखर बुद्धि बन्द थी। जानसन की स्मरण-शक्ति बड़ी तेज थी। दृष्टि-दौर्बल्य उन्हें साधारण बालकों के खेलों में सम्मिलित होने से रोकता था। उन्हें पुराने किस्से-कहानियाँ पढ़ने में विशेष आनन्द प्राप्त होता था। पहले उन्होंने एक स्त्री के स्कूल में पढ़ना लिखना सीखा। फिर वहाँ से लिचफील्ड के एक छोटे से स्कूल में, और वहाँ से स्टौरब्रिज के स्कूल में वे भरती हुए। वे बेत की मार की खूबियों के बड़े कायल थे। उनका सिद्धान्त था कि लड़कों के बेत लगने पर उन्हें उनके अपराधों का यथेष्ट दण्ड मिल जाता है और मामला वहीं खतम हो जाता है। पर एक दूसरे से बढ़ जाने के लिए लड़कों को प्रोत्साहित करने से भारी उपद्रव की नींव पड़ जाती है। इससे भाई-भाई और बहन-बहन एक दूसरे से घृणा करने लगते हैं।

जानसन ने सोलह वर्ष की आयु में स्कूल छोड़ दिया। दो वर्ष अपने पिता का व्यवसाय सीखने के लिए उन्होंने घर में लगाये। यही उनके अध्ययन का मुख्य समय प्रतीत होता है। बहुत वर्ष बाद, त्रेपन वर्ष की आयु में, उन्होंने एक दफे कहा कि जो कुछ इस समय मुझे आता है वह मैं अठारह वर्ष की आयु में ही जानता था। वे पुस्तकों को नियमपूर्वक न पढ़ते थे; उन्हें चीर कर उनका हृदय वे निकाल लेते थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थोड़ी ही उम्र में वे निर्धनता के भार का अनुभव करने लगे, क्योंकि उनके पिता का कारोबार बिगड़ गया। वे १७२८ में पेम्ब्रोक कालेज, आक्सफर्ड, में भरती हुए। लिचफील्ड के एक पादरी, जो उनके पिता के मित्र थे और जो उनकी योग्यता को भी जानते थे, उन्हें सहायता देते थे। रहने को तो वे तीन वर्ष तक आक्सफर्ड में रहे, पर बिना डिग्री लिए ही वहाँ से चले आये। इस समय उनके पिता का दिवाला निकल जाने से उन पर भारी सङ्कट पड़ रहा था।

विश्वविद्यालय छोड़ देने पर, १७३१ ईसवी में, सारा संसार उन्हें अन्धकार-पूर्ण दिखाई दिया। उसी वर्ष के अन्त में उनके पिता का देहान्त होगया। इस समय उनकी सारी सम्पत्ति बीस पौण्ड थी। प्रतिदिन के भोजन के लिए वे कहाँ जाते? जानसन ने स्कूल में नौकरी करनी चाही। पर सफलता न हुई। एक हेड मास्टर ने उन्हें नौकरी न देने का कारण यह बताया कि उनकी शकल और चेष्टाओं को देखकर बालक हँसी न रोक सकेंगे।

१७३३ ईसवी में जानसन बर्मिङ्घम नगर में रहने लगे। वहाँ उन्हें लिखने पढ़ने का कुछ काम मिल गया। उन्होंने एक स्थानीय पत्र को लेख लिखे और एबीसीनिया देश की यात्रा पर एक पुस्तक का अनुवाद किया। अपनी इस पहली पुस्तक के लिए उन्हें पाँच पौण्ड मिले।

जानसन के पास न पैसा था और न आगे के लिए कोई आशा। तिसपर भी उन्होंने विवाह कर लिया। वधू एक विधवा थी। उसकी आयु उस समय (१७३५ में) छियालीस वर्ष की थी। दूल्हा महाशय अभी पूरे छब्बीस के भी न थे। जब तक उनकी स्त्री जीती रही, पति-पत्नी का आपस में गाढ़ा प्रेम रहा। जानसन के भद्दे वस्त्रों को देख कर वह अप्रसन्न न होती थी। उसने एक दफे अपनी पहली पुत्री से कहा था कि ऐसा समझदार मनुष्य मैंने पहले कभी नहीं देखा।

श्रीमती जानसन के पास ८०० पौण्ड की जायदाद थी। जानसन ने उस पूँजी से लैटिन और ग्रीक भाषायें सिखलाने के लिए एक स्कूल खोला। पर सफलता न हुई। वे अध्यापक बनने के योग्य न थे। छात्रों का शासन करने की शक्ति उनमें थी ही नहीं। जानसन के समय में इंगलैंड में साहित्य की बड़ी दुर्दशा थी। जिन लोगों ने उस समय केवल कलम की कमाई से अपना पेट पाला उनके बुरे हाल हुए। स्पेन्सर, बटलर, ओटवे आदि के नाम ले लेना इस विषय में पर्य्याप्त होगा। जानसन कहा करते थे कि सिवा मूर्ख के और कोई भी मनुष्य बिना पैसे लिये नहीं लिखता। लन्दन में ग्रब-स्ट्रीट नाम की एक तङ्ग और मैली गली थी। उसी में दरिद्र साहित्य सेवी लोग रहा करते थे। दरिद्रता के कारण इन्हें बहुत कष्ट सहन करने पड़ते थे। ग्रन्थकार पुस्तक-विक्रेता के दास हो रहे थे। वे ऋण से सदा दबे रहते थे। पर धीरे-धीरे साहित्य-कार्य्य का मूल्य बढ़ने लगा था। धर्म्म और नाटक-सम्बन्धी साहित्य की कदर होने लगी थी। बक्सटर नामक एक लेखक उस समय से एक शताब्दी पहले ६० से ८० पौण्ड तक वार्षिक कमाता था। उसकी मृत्यु पर उसकी एक पुस्तक का कापी-राइट २५०० पौण्ड को बिका था। यङ्ग नाम के एक लेखक ने अपने एक ग्रन्थ (Universal Passion) से ३०० पौण्ड कमाये थे। राबर्टसन ने अपनी पुस्तक, "स्काटलैंड के इतिहास" (History of Scotland) से ६०० पौण्ड पैदा किये थे।

जानसन के एक मित्र ने डब्लिन-विश्वविद्यालय से जानसन को डिग्री देने की सिफारिश की, ताकि उसे ६० पौण्ड वार्षिक का अध्यापन-कार्य्य मिल सके पर डिग्री न मिली। इन दिनों जानसन पुस्तक-विक्रेताओं के लिए अनुवाद करके ही अपनी गुजर किया करते थे। यह काम बड़ा नीरस था। सदा दूसरों के दान पर जीवन बिताना या ऋणदाताओं की चाँदी की जंजीरों से जकड़ा रहना बहुत बड़ा दुर्भाग्य है। जानसन साहब अपनी एक कविता में कहते हैं कि दरिद्रता से दबी हुई योग्यता हौले-हौले उठती है।

जानसन की लन्दन नामक कविता ने कुछ प्रसिद्धि लाभ की। उसके लिए उन्हें १० गिनी पुरस्कार मिला। इसके दस वर्ष बाद (१७४९) में उन्होंने Vanity of Human Wishes नामक) एक कविता लिखी। इसके लिए उन्हें १५ गिनी मिलीं। उन दिनों नाटक लिख कर कई लेखकों ने अच्छा धन कमाया था। अतएव जानसन ने भी एक नाटक लिखा। पर उन्हें कामयाबी न हुई।

१७४९ ईसवी में जानसन ने एक क्लब खोला। उसमें उनके बहुत से मित्र एकत्र होकर साहित्यचर्चा आदि किया करते थे। लेखकों की पुस्तकों का गुणदोष-विवेचन भी उसमें हुआ करता था। वहाँ की बातचीत जानसन के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रेम्बलर (Rambler) नामक अर्द्ध-साप्ताहिक पत्र के लेखों के लिए सामग्री देती थी।

१७ मार्च १७५२ को जानसन की धर्म्मपत्नी का देहान्त हो गया। जानसन को इससे भारी दुःख हुआ। इन दिनों उनकी आर्थिक दशा बहुत खराब थी। उधर वे अँगरेजी भाषा का एक शब्दकोष तैयार कर रहे थे। इस समय किसी भी धनी ने उन्हें सहायता न दी। पर जब कोश छप गया तब लार्ड चेस्टरफील्ड ने उनका संरक्षक बनने की इच्छा प्रकट की, परन्तु जानसन ने फटकार बता कर उनसे सहायता लेना अस्वीकार कर दिया।

१७५३ ईसवी में रिचर्डसन नामक उनके एक मित्र ने उनकी जमानत देकर, और ६ गिनी ऋण भी देकर, उन्हें गिरफ्तार होने से बचाया। १७५९ में नब्बे वर्ष की आयु में उनकी माता का देहान्त होगया। उस समय जानसन घर न जा सके। पर उसके अन्त्येष्टि-संस्कार के खर्च का ऋण चुकाने के लिए उन्होंने रैसलस (Ressles) नामक एक कहानी लिखी। उसके लिए उन्हें १०० पौण्ड पुरस्कार मिला, और उसके दूसरे संस्करण के लिए २५ पौण्ड। इस कहानी में जानसन की विचित्र प्रकृति की पूरी पूरी झलक देख पड़ती है।

तृतीय जार्ज के सिंहासनारूढ़ होने पर साहित्यसेवियों को कुछ सहायता मिलने लगी। जानसन को भी ३०० पौण्ड वार्षिक पेनशन मिली। इसके पूर्व वे अपने शब्दकोष (Dictionary) में लिख चुके थे कि पेनशन का मतलब वह वेतन है जो राज्य के भाड़े के टट्टुओं को देश-द्रोह के लिए मिलता है। पर अब आपने कहा कि मैं इस श्रेणी में नहीं आता।

जानसन के मोटे वस्त्र और उनका विलक्षण स्वभाव उन्हें शौकीनों के समाज में सर्वप्रिय होने से रोकता था। विशेषतः स्त्रियाँ उनसे अप्रसन्न रहती थीं। जानसन के प्रति अपने पति की भक्ति और श्रद्धा को देखकर एक दफे उनके एक मित्र की पत्नी ने अपने पति से कहा—मनुष्य को तो रीछ नचाते कई बार देखा है, पर रीछ को मनुष्य नचाते आज तक कभी न देखा था।

अपनी पिछली उम्र में जानसन ने लिखना बिलकुल छोड़ दिया था। वे प्रायः गप्पाष्टक ही में रत रहते थे। बात करते समय वे सबसे बढ़े रहना चाहते थे। उनके कटाक्ष कभी-कभी असह्य हो जाते थे। पर उनकी नीयत सदा अच्छी रहती थी। इस कारण उनके मित्र उनसे बुरा न मानते थे।

अब जानसन ने मदिरा का परित्याग कर दिया था। इससे उनकी तन्दुरुस्ती सुधर गयी थी। साथ ही उन पर उदासी के दौरे की तेजी भी कम हो गयी थी। उन्होंने, १७७७ में, पुस्तक-विक्रेताओं के कहने पर, अपनी प्रसिद्ध पुस्तक का कविचरितमाला (Lives of the Poets) लिखी। इसके लिए उन्हें २०० गिनी पुरस्कार मिला।

साहित्य-सेवियों में अब जानसन का बड़ा मान था। वे लोग उनसे सब प्रकार की सलाह लिया करते थे। क्लब में लोग दूर-दूर से बूढ़े जानसन से मिलने आते थे।

एक दफे उनके जीवन-चरित के लेखक, बासवेल, ने उनसे कहा कि मैंने क्वेकर नामक सम्प्रदाय की एक स्त्री को उपदेश देते सुना है। इस पर आप बोले—स्त्री का उपदेश देना ऐसा ही है जैसा कि कुत्ते का अपनी पिछली टाँगों के बल चलना। विवाह के विषय में उनकी राय थी कि स्त्री के पढ़ लिख जाने से वह बुरी पत्नी नहीं हो जाती। पर उनके मित्र बासवेल कहते थे कि पत्नी को कुछ ही ज्ञान होना चाहिए। वह स्वभाव से ही बुद्धिमती हो, पर विद्या से बहुत विदुषी न हो।

जानसन स्काटलैंड और वहाँ के अधिवासियों के बहुत विरुद्ध थे। वे उन्हें तुच्छ समझा करते थे। यह पक्षपात उनमें स्वाभाविक था। आप कहा करते थे कि स्काच लोगों का पाण्डित्य सेना से घिरे हुए नगर में रोटी के सदृश है, जहाँ ग्रास-ग्रास अन्न तो सब को मिल जाता है, पर पेट किसी का भी नहीं भरता। जानसन का कोई कटु कटाक्ष सुन कर स्ट्राहन नामक एक मनुष्य ने कहा—स्काटलैंड को भी परमात्मा ही ने बनाया है। इस पर आपने उत्तर दिया—पर हमें सदा स्मरण रखना चाहिए कि उसने उसे स्काच लोगों ही के लिए बनाया है। मुकाबला करना अच्छा नहीं, नरक भी तो परमात्मा ही ने बनाया है।

आक्सफोर्ड-विश्वविद्यालय ने, १७७५ में, जानसन को एल० एल० डी० की डिग्री से सम्मानित किया। १७६५ में यही डिग्री डब्लिन-विश्वविद्यालय उन्हें प्रदान कर चुका था। पर जानसन ने अपने नाम के साथ कभी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'डाक्टर' नहीं लिखा। वे सदा अपने लिए केवल मिस्टर ही लिखते रहे।

जानसन बड़े दयालु-हृदय थे। वे अपनी ३०० पौण्ड की पेनशन में से २०० पौण्ड दान में दे दिया करते थे। उनके घर पर दीनदुखियों का सदा मेला लगा रहता था। पर बनावटी दुःख पर उनका हृदय कभी न पसीजता था। एक दफे एक स्त्री के अपने उद्देश में विफल-मनोरथ होने का समाचार सुना कर उनके एक मित्र ने उनके सामने उस स्त्री के साथ सहानुभूति प्रकट की। इस पर आप बोले—उस स्त्री को अपनी विफलता पर उतना ही कष्ट हुआ होगा जितना कि उसके अस्तबल के घोड़े को उसकी गाय के गर्भपात पर होगा।

१७८३ में डाक्टर जानसन पर फालिज गिरा और मृत्यु की घण्टी बजने लगी। जानसन मृत्यु से बहुत डरते थे। लूसी पीटर नामक एक स्त्री को उन्होंने लिखा—मृत्यु बड़ी भयानक है। मरते समय उन्होंने अपने मित्र रेनाल्ड से तीन प्रार्थनायें कीं,—एक तो मेरे तीस पौण्ड के ऋण को भूल जाना; दूसरे बाइबल का पाठ किया करना; तीसरे आदित्यवार को चित्र न खींचना। १३ दिसम्बर १७८४ ई० को लन्दन नगर में वे शान्तिपूर्वक अपनी मानव-लीला समाप्त कर गये। उनका शव वेस्ट-मिनिस्टर एबी नामक गिरजे में गाड़ा गया। यह उनके लिए एक बहुत बड़ा सम्मान समझा जाता है।

डाक्टर जानसन कवि, निबन्ध-लेखक, यात्री, गुण-दोष-विवेचक और जीवन-चरित-लेखक थे। उनकी लेखन-शैली निराली थी। वे सदा बड़े-बड़े और विलष्ट शब्दों का प्रयोग करते थे। इस पर भी उनकी भाषा स्वच्छ और चुभनेवाली होती थी।

प्रकाशक—रा० वि० मिश्र, इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद
मुद्रक—पी० एल० यादव, इंडियन प्रेस प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महर्षि वेदव्यास की विशद कृति

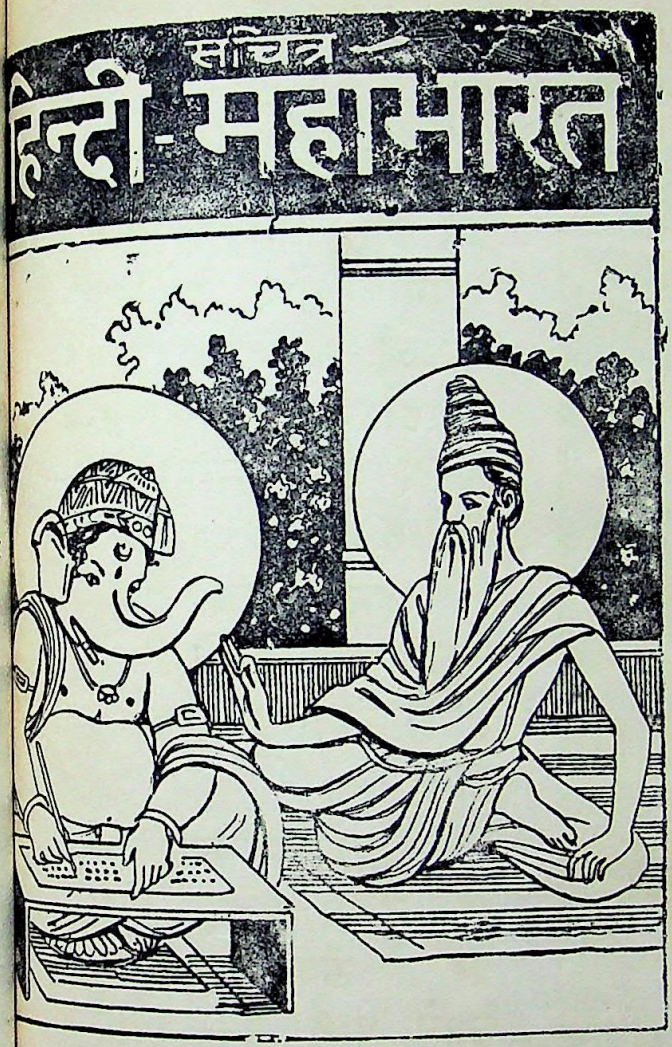

महाभारत को पाँचवाँ वेद कहते हैं। इस ग्रन्थ में महर्षि वेदव्यास ने अनेक शास्त्रों का वर्णन करके जीवनक्रम की सुलभ रीति बतलाई है। इसमें तीर्थों और व्रतों का वर्णन है, पुण्य पुरुषों की चरितावली है, ऋषियों के उपदेश हैं, सुन्दर उपाख्यान है और धर्म पर स्थिर रहकर उन्नति करने का मार्ग बतलाया गया है। यह ग्रन्थ १० खण्डों में समाप्त हुआ रंगीन और सादे चित्रों की अधिकता है। बढ़िया जिल्द है। १० खण्डों पूरे सेट का मूल्य १००) सौ रुपया मात्र।

सचित्र महाभारत

इसमें महाभारत के अठारहों पर्वों की कथा बहुत ही सरल भाषा में लिखी गई है। इसके लेखक आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी हैं। सचित्र और सजिल्द ग्रन्थ का मूल्य ८ रुपये।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
SARASWATI—Reg. No. L. 248

Yearly Subscription : Rs. 9.00 June 1973
Single Copy : Rs. 0.75

हिन्दू-संस्कृति का अगाध सागर

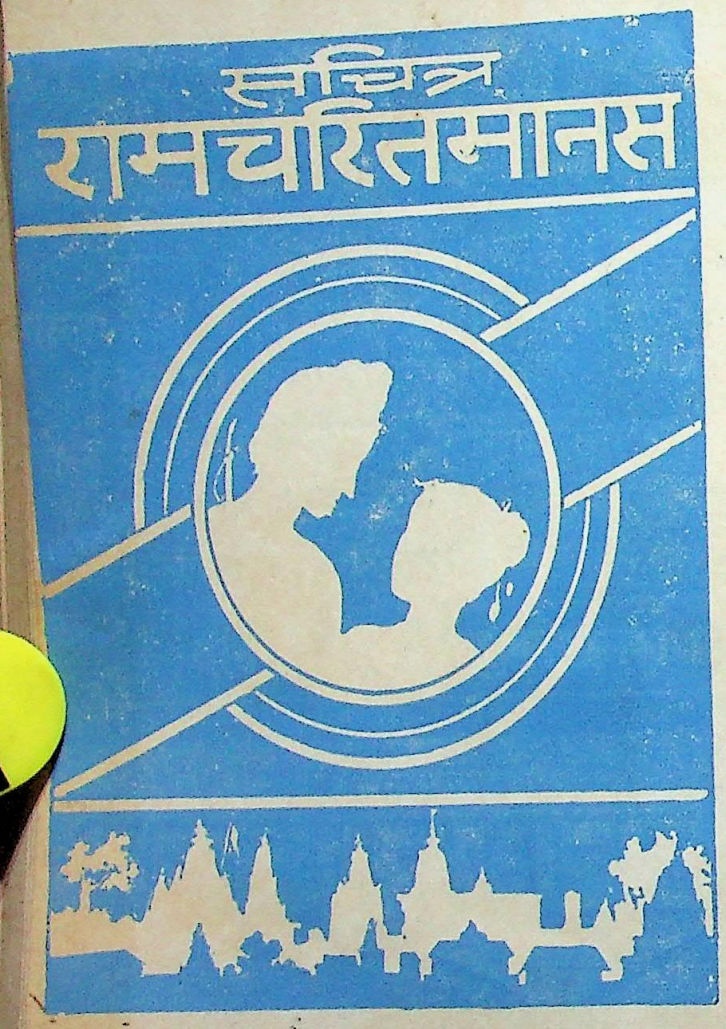

यह हिन्दी के अमर कवि गोस्वामी तुलसीदास की सुप्रसिद्ध रचना है। इसमें गोस्वामीजी ने अपने आराध्य देव रामचन्द्रजी की कथा, सात काण्डों में, दोहा-चौपाई-सोरठा और छन्दों में कही है।

इस ग्रन्थ का प्रचार हिन्दी-भाषी प्रान्तों में तो है ही, दूसरे प्रान्तों में भी है।

डाक्टर श्यामसुन्दरदास ने इस अनुपम ग्रन्थ पर जो टीका लिखी है उससे अर्थ समझने में बहुत सुविधा होती है। इस संस्करण में क्षेपक आदि नहीं हैं। आरम्भ में विस्तृत भूमिका है जिससे गोस्वामीजी के जीवनचरित और उनकी समस्त रचनाओं पर विशद विवेचन है। चित्रों की अधिकता है। सुन्दर जिल्द है। मूल्य १५)।

गोस्वामी तुलसीदासकृत रामचरितमानस—टीकाकार—रामेश्वर मट्ट। यह संस्करण बहुत ही उपयोगी, मनोहर और सस्ता है। टीका बड़े काम की है। दुरंगे-तिरंगे चित्रों की अधिकता है। सजिल्द प्रति का मूल्य ८)।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्रा० लि०, प्रयाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती

4/9/73
पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी

प्राचीनतम हिन्दी मासिक पत्रिका
(संस्थापित सन् १९००)
जुलाई १९७३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नई साज-सज्जा में सरस्वती सीरीज़

इस सीरीज की पुस्तकों ने हिन्दी पुस्तक-जगत् में अपनी लोकप्रियता, सुलभता और विविध विषयता से धूम मचा दी थी। वे ही अब आकर्षक नये रूप-रंग में छापी गई हैं। प्रत्येक पुस्तक का मूल्य केवल एक रुपया पचास पैसे। इन सुलभ, लाभप्रद तथा मनोरंजक पुस्तकों का अभाव किसी भी पुस्तकालय या घरेलू पुस्तक-संग्रह में खटक सकता है।

अमरकन्द की सुन्दरी—श्री ब्रजेश्वर वर्मा एम० ए०

पृथ्वी का इतिहास—श्री सुरेन्द्र बालूपुरी

चक्रभेद—श्री महावीरप्रसाद गहमरी

सूरसंगम—श्री नन्ददुलारे वाजपेयी

रामकृष्णचरितामृत—लल्लीप्रसाद पाण्डेय

मेरा संघर्ष—गणेशप्रसाद द्विवेदी, एम० ए०

दैनिक जीवन और मनोविज्ञान—संशोधित संस्करण—इलाचन्द्र जोशी

वंशानुक्रमविज्ञान—शचीन्द्रनाथ सान्याल

सरस्वती सीरीज को आज भी सुलभ कुछ पुस्तकें

प्रत्येक का मूल्य केवल ७५ पैसे

ये पुस्तकें अल्प मूल्य में आपके मनोरंजन और ज्ञानवर्द्धन का अत्यंत सुगम आधार हैं

समस्या का हल
मृत्युलोक की झाँकी
लाल दूत
अनन्त की ओर
वंशानुक्रम विज्ञान
मशीन के पुर्जे
रूपान्तर
रूस की क्रान्ति
धरती माता
इत्सिंग की भारत-यात्रा
परलोक-रहस्य
लखनऊ की शहजादियाँ
घर का भेदिया
अग्रणी
नीमचमेली
जीवन-शक्ति का विकास
साथी
निष्कलंकिनी
पश्चिम की चुनी हुई कहानियाँ
समस्या
च्यांगकाई शेक
हिन्दी के निर्माता (दूसरा भाग)
तीन नगीने
पूर्व के पुराने हीरे

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिन शहरों में स्टाकिस्ट नहीं हैं वहाँ के हेतु स्टाकिस्ट चाहिए।

शुद्ध बादाम रोगन पर बना

अलकपरी

केशों में प्रतिमास ३-४ इंच वृद्धि।
६ महीने में एड़ी-चुम्बी केश!

'अलकपरी' का कोर्स

पहले सप्ताह में रूसी-खुश्की दूर हो जाती है। दूसरे सप्ताह में केशों का झड़ना और उनके सिरों का फटना रुकता है।

तीसरे सप्ताह में नये केश उगते दिखाई देते हैं। चौथे सप्ताह के अन्त तक केश ३-४ इंच बढ़ जाते हैं। फिर प्रतिमास इसी औसत से बढ़ते रहते हैं।

६ महीने में केश एड़ी-चुम्बी बन जाते हैं।

मूल्य एक शीशी का ३·०० है जो एक महीने को काफी होती है। डाक-खर्च व पैकिंग पृथक्। ४ से अधिक शीशियाँ डाक से नहीं भेजी जायँगी। अधिक के लिए मूल्य पेशगी भेजिए।

कामायनी-रहस्य

लेखक—श्री विजयबहादुरसिंह राठौर

विद्वानों की दृष्टि में कामायनी आधुनिक हिन्दी काव्य का गौरव ग्रन्थ है। विभिन्न विद्वानों ने कामायनी के अनेक भाष्य किये हैं। यों तो सभी की व्याख्या शैली महत्त्वपूर्ण है परन्तु कामायनी का सर्वोत्तम भाष्य 'कामायनी रहस्य' में प्रगट कर लेखक की लेखनी अमर हो गयी है। सभी छः सर्गों के आख्यान, चारित्रिक विकास आदि का परिचय देते हुए विद्वान् लेखक ने शास्त्रीय और मनोवैज्ञानिक पद्धति की आधारशिला पर प्रत्येक पद के काव्य सौन्दर्य, छन्द, रस, अलंकार, शब्दशक्ति पर पूरा-पूरा प्रकाश डाला है।

दार्शनिक और पौराणिक संदर्भों का उल्लेख बड़ा ही हृदयग्राही हुआ है। विवादास्पद पदों की व्याख्या के कठिन कर्तव्य पूरी शक्ति और मनोबल के साथ निभाये गये हैं। यह एक ऐसी विशेषता है जो 'कामायनी रहस्य' के अतिरिक्त कामायनी के अन्य भाष्यों में दी ही नहीं गयी। तपोनिष्ठ विद्वान् ने आत्म-विश्वास के साथ स्वमत स्थापन कर गंभीर स्थलों को सुगम और सुरुचिपूर्ण बना दिया है। विश्वास रहे कामायनी के रहस्योद्घाटन में **कामायनी-रहस्य** का योगदान सर्वोपरि है। प्रत्येक कामायनी अध्येता इस ग्रन्थ की भूरि-भूरि प्रशंसा करेगा और पूरा लाभ उठायेगा ऐसा हमारा दृढ़ विश्वास है।

पृष्ठ संख्या ५२७

मूल्य ८·००

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ ओम् दुर्गा दुर्गतिनाशिनी ॥ ॥ ओम् दुर्गा दुर्गतिनाशिनी ॥

जीवन की विभिन्न जटिल समस्याओं के समाधान के लिए मिलिये या पत्र-व्यवहार करिये

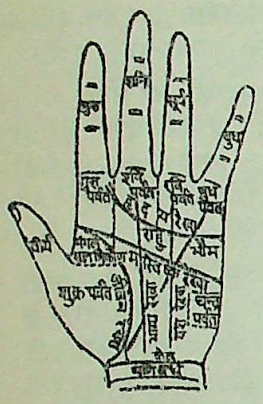

ज्योतिषाचार्य—

प्रोफेसर प्रद्युम्ननारायण सिंह

वैज्ञानिक ज्योतिषी, हस्तरेखा-विशारद,

तांत्रिक और मानस शास्त्रज्ञ

२८, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद (फोन नं० २८५८)

देखिये :—श्री बी० मलिक, बैरिस्टर एट्-लॉ, (भूतपूर्व) चीफ जस्टिस हाईकोर्ट, इलाहाबाद क्या कहते हैं :—

मेरे पूर्ववर्ती चीफ जस्टिस श्री के० वर्मा के सम्बन्ध में इलाहाबाद के ज्योतिषी तथा हस्तरेखा-विशारद श्री पी० एन० सिंह ने अनेक भविष्यवाणियाँ की थीं और वे सभी भविष्यवाणियाँ सत्य सिद्ध हुईं। भू० पू० चीफ जस्टिस श्री के० वर्मा ने ही मुझे श्री पी० एन० सिंह का परिचय कराया है। मुझे यह स्वीकार करना ही पड़ता है कि श्री पी० एन० सिंह मुझे ऐसे सज्जन प्रतीत हुए जिन्होंने अपने विषयों का गहरा अध्ययन किया है और अपने शास्त्र का उन्हें पूर्ण ज्ञान है।

अभी तक मेरे सम्बन्ध में श्री पी० एन० सिंह ने जो भी भविष्यवाणियाँ की हैं, वे सत्य सिद्ध हुई हैं। मैं उनकी सफलता की कामना करता हूँ।

मनोरंजक संस्मरण

प्राचीन और आधुनिक हिन्दी कवियों और साहित्यकारों के कुछ फुटकर संस्मरण

लेखक

सरस्वती—सम्पादक पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी

सरस्वती में प्रतिमास लिखकर इन संस्मरणों के प्रकाशित होने लगने पर एक बार स्वर्गीय बाबू शिवपूजन सहायजी ने सरस्वती-सम्पादक से कहा था कि वे सबसे पहले "मनोरंजक संस्मरण" ही पढ़ते हैं। इसी प्रकार अन्य साहित्यिकों ने भी उनकी प्रशंसा की थी। सामान्य पाठकों में भी वे लोकप्रिय हुए थे।

इस पुस्तक में सरस्वती-सम्पादक की सिद्धहस्त लेखनी से लिखे हुए साहित्यिक संस्मरण हैं जो उनके, सरस्वती-सम्पादक के, दस वर्ष की अवधि में जुलाई १९५५ से जून १९६५ तक 'सरस्वती' में प्रायः प्रति मास प्रकाशित होते रहे हैं।

वे ही साहित्यिक संस्मरण साहित्यिकों और पाठकों के निरन्तर अनुरोध पर इस पुस्तक रूप में प्रकाशित हुए हैं। इनसे हिन्दी पाठकों का स्वस्थ मनोरंजन होगा और उन्हें हिन्दी साहित्य तथा हिन्दी कवियों और साहित्यकारों के व्यक्तित्व को समझने में सहायता मिलेगी।

पृ० सं० (डिमाई) २९०, सजिल्द, मूल्य ५·०० रुपये

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महामानव जवाहरलाल नेहरू

की

अमर कहानी

पत्रकार पी० डी० टंडन

द्वारा

प्रणीत

मानवता का प्रहरी

कौन नहीं जानता कि स्वर्गीय पं० जवाहरलाल नेहरू ने आज के भारत का निर्माण किया है, संसार की राजनीति में उन्होंने हमारे देश को विशेष स्थान दिलाया है। उन्होंने देश की, तथा विदेशों की बहुत सी पेचीदी समस्याओं के सुलझाने में हाथ बटाया। उनका हृदय विशाल था, मस्तिष्क ऊँचा था, अपने सिद्धान्त से, ध्येय से ये किसी भी शक्ति या कठिनाई द्वारा हट नहीं सके। उन्होंने ऊँचे मानव का हृदय पाया था। पत्रकार टंडन ने ऐसे महामानव के जीवन की दिलचस्प झाँकी इस पुस्तक में प्रस्तुत की है। यह पुस्तक उबा देनेवाली गाथाओं का पिटारा नहीं है, बल्कि स्वर्गीय महापुरुष के संबंध की छोटी छोटी कहानियों का खुशनुमा गुलदस्ता है। इसमें उनके जीवन संबंधी अलभ्य प्रचुर चित्र भी हैं। पुस्तक ज्ञानवर्धक होने के साथ-साथ सरल और बड़ी ही मोहक है। मूल्य ५·५० रुपये।

• • •

लेखक की अन्य कृति

कुछ देखा कुछ सुना

टंडनजी कुशल पत्रकार ही नहीं कुशल लेखक भी हैं। उनकी पैनी लेखनी से निकले इन १२ व्यंगात्मक लेखों में आप देखेंगे कि आज सर्व उच्च विचारों के पीछे नीचता, बड़प्पन के पर्दे में ओछापन और बुद्धिमत्ता की ओट में मूर्खता के कैसे दर्शन होते हैं। हास्य एवं व्यंग्य का सहारा लेकर समाज का जो विश्लेषण लेखक ने किया है वह हिन्दी साहित्य में एकदम नया प्रयोग है। यथास्थान सामयिक कार्टूनों से किताब और भी सजीव हो गई है। मूल्य २·०० रुपये।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचारोत्प्रेरक नवीन साहित्य

संयुक्त राज्य अमेरिका ने भौतिक उन्नति का जैसा अद्भुत नमूना रखा है, उससे हम लोग परिचित हैं। विज्ञान, उद्योग, कला, राजनीति आदि सब क्षेत्रों में उसकी उपलब्धियाँ हैं। वहाँ के विद्वान् विचारकों, कलाकारों, साहित्यिकों, वैज्ञानिकों आदि का परिचय हमें उनकी जीवन कथाओं और रचनाओं द्वारा प्राप्त हो सकता है। अमरीकी साहित्य की ऐसी कुछ महत्त्वपूर्ण निम्नांकित पुस्तकें हिन्दी में अनुवादित कराकर प्रकाशित हुई हैं—

ले० लारा इंगल्स : **बड़े वन में छोटा घर** : मूल्य ३·०० पैसे : पृष्ठ १८७

ले० लैंग्स्टन ह्यूजेज : **प्रसिद्ध अमरीकी नीग्रो** : मूल्य ३·२५ पैसे : पृष्ठ १७०

ले० राल्फ मूडी : **किट कार्सन और जंगली सीमान्त** : मूल्य ३·५० पैसे : पृष्ठ २०४

ले० हेलेन केलर : **अध्यापिका ऐन सलिवाँ मेसी** : मूल्य ४·२५ पैसे : पृष्ठ १७६

ले० कार्ल सैण्डबर्ग : **प्रेयरी नगर का बालक** : मूल्य ४·०० पैसे : पृष्ठ २४४

ले० डब्लू० ओ० स्टीवेन्स : **प्रसिद्ध वैज्ञानिक** : मूल्य ४·०० पैसे : पृष्ठ २३४

ले० फ्रैंक तथा क्लार्क : **दृष्टिदात्री** : मूल्य ५·०० पैसे : पृष्ठ १७४

ले० सेलिग हेक्ट : **परमाणु का रहस्य** : मूल्य ४·०० पैसे : पृष्ठ १९८

ले० रिचर्ड मेसन : **अमेरिका के महान् उदारवादी** : मूल्य ३·२५ पैसे : पृष्ठ १७८

ले० इर्मनगार्ड एबर्ल : **आधुनिक औषधि-आविष्कार** : मूल्य ३·०० पैसे : पृष्ठ १५६

लिंकन वाणी : मूल्य ३·२५ पैसे : पृष्ठ १७०

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पं० देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त' की कृतियाँ

१. **रानी दुर्गावती**—ओजपूर्ण और लोकप्रिय खण्डकाव्य का तीसरा संशोधित संस्करण। मूल्य २·०० रुपये।

२. **उड़ते पत्ते**—सामाजिक क्रान्ति का सन्देशवाहक सशक्त उपन्यास। मूल्य ३·५० रुपये।

३. **अपना-पराया**—मनोरंजक और कौतूहलप्रद उपन्यास। मूल्य ३·०० रुपये।

४. **हवा का रुख**—उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश शासन द्वारा पुरस्कृत कलात्मक और मनोरंजक कहानी-संग्रह। मूल्य २·२५ रुपये।

५. **रङ्गीन डोरे**—मार्मिक और मनोरंजक कहानी-संग्रह। मूल्य ३·०० रुपये।

६. **धरती-आकाश**—वैज्ञानिक निबन्धों का ज्ञानवर्द्धक और मनोरंजक संग्रह। मूल्य २·०० रुपये।

श्रीमती हीरादेवी चतुर्वेदी की कृतियाँ

१. **मधुमास**—उत्तर प्रदेश शासन द्वारा पुरस्कृत ललित गीतों का संग्रह। मूल्य २·०० रुपये।

२. **रङ्गीन पर्दा**—सामाजिक, कलात्मक और अभिनेय एकांकी-संग्रह। मूल्य २·०० रुपये।

३. **बुन्देलखण्डी लोकगीत**—मानवमात्र को गुदगुदानेवाले सरस बुन्देली गीतों का सव्याख्या संकलन। मूल्य ०·७५ पैसे।

४. **गल्प-गवाक्ष**—श्रेष्ठ हिन्दी कहानियों का सम्पादित संकलन। मूल्य २·२५ रुपये।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लि०, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानस-चतुर्शती

के

अवसर पर

गोस्वामी तुलसीदास

के

जीवन पर आधारित

प्रथम महान् औपन्यासिक कृति

सन्त और संसार

लेखिका

शारदा मिश्र

मूल्य १० रुपये

आज ही

मँगाकर

पढ़िए

हिन्दी साहित्य के इतिहास का गौरवशाली प्रतीक

प्राइवेट लिमिटेड

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्त्रियों के लिए शिक्षा-प्रद कुछ पुस्तकें

आदर्श महिला—इस पुस्तक में सीता, सावित्री, दमयन्ती, शैव्या और चिन्ता देवियों की जीवन-घटनाओं का सजीव वर्णन है। पृष्ठ २६८; मूल्य ३·०० रुपये।

ठाकुर दुर्गाशंकरप्रसाद सिंह

नारी-जीवन—बहू-बेटियों को उपयुक्त गृहस्थ-जीवन बिताने की विधियाँ मनोरंजक शैली में समझाई गई हैं। पृष्ठ २५१; मूल्य ३·५० रुपये।

पतिव्रता—इसमें छः पतिव्रताओं के चरितों का शिक्षाप्रद और मनोरंजक संग्रह है। पृष्ठ २४०; मूल्य १·२५ रुपये।

पं० देवीदत्त शुक्ल (संकलनकर्त्ता)

पंचसती—इस पुस्तक में सीता, सावित्री, दमयन्ती, शैव्या, चिन्ता आदि रमणी रत्नों का आदर्श-चरित्र वर्णित है। पृष्ठ १५४; मूल्य २·०० रुपये।

डाक्टर बोधराज चोपड़ा

माँ और बच्चा—इस पुस्तक में बच्चों का पालन-पोषण करने, उन्हें स्वस्थ-सबल बनाने आदि आवश्यक बातों पर, सुन्दर प्रकाश डाला गया है। पृष्ठ २५९; मूल्य ३·०० रुपये।

पतिव्रता गांधारी—कौरवों की माता पतिव्रता गांधारी का जीवनचरित, जो प्रत्येक नारी के लिए पठनीय है। पृष्ठ १३४; मूल्य १·५० रुपये।

श्री भगवानदीन पाठक

दमयन्ती—दमयन्ती की रहस्य और रोमांच से ओत-प्रोत कहानी जो उसके अडिग पातिव्रत पर प्रकाश डालती है। पृष्ठ ३७; मूल्य ०·५० पैसे।

सीता—इस पुस्तक में सीताजी की रोचक और शिक्षाप्रद कहानी बड़ी सरल भाषा में लिखी गई है। मूल्य ०·५० पैसे।

सुशील कन्या—इस पुस्तक में कहानियों के रूप में कन्याओं को शिष्टाचार, गृहप्रबन्ध, देशप्रेम आदि उपयोगी विषयों की शिक्षा दी गई है। पृष्ठ १३५; मूल्य १·२५ रुपये।

श्रीमती दुर्गादेवी और मायादेवी

शिशु-पालन—इस पुस्तक में प्रसूत-चर्या से लेकर बच्चों के पालन-पोषण तक की कई आवश्यक बातें बताई गई हैं। पृष्ठ २४०; मूल्य २·५० रुपये।

श्री संतराम

सुन्दरी सुबोध—गृहणियों को गृहस्थी की गुत्थियाँ सुलझाने में सहायता देनेवाली पुस्तक। पृष्ठ ३१६; मूल्य ३·०० रुपये।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
१—सम्पादकीय	९
२—वर्तनी-विवाद का एक तमाशा—पण्डित किशोरीदास वाजपेयी	२०
३—देश जिन्हें भूल गया—श्यामजी कृष्ण वर्मा—श्री शंकरसहाय सक्सेना	२१
४—गुजराती साहित्य और जन-जीवन पर रामचरितमानस का प्रभाव—डा० रणधीर उपाध्याय	२७
५—भारतीय प्रकाशन : १९७२—श्री शिवनारायण खन्ना	३०
६—नई कविता : सांस्कृतिक परावर्तिता और सृजन-प्रक्रिया की नई भावभूमि—श्री घनश्याम चतुर्वेदी 'घनश्री' एम० ए०	३४
७—'शंख-सिन्दूर' : समीक्षा—प्राचार्या श्रीमती कमला रत्नम्	३९
८—मणि-कुट्टिम काव्य : "उर्वशी"—श्री चन्द्रशेखर शुक्ल	४६
९—परसाई के कथा-नायक—श्री श्यामसुन्दर त्रिपाठी	४९
१०—ब्लैक—श्री राजेन्द्रप्रसाद जैन	५३
११—केरल का अश्रुतर्पण—डॉ० विश्वनाथ अय्यर	५७
१२—चर्म तथा जिलेटीन—श्री पुरुषोत्तमदास स्वामी	६०
१३—सरल फलित ज्योतिष—श्री परिपूर्णानन्द वर्मा	६४
१४—अलका सुन्दरी—अनु०—श्री विजय राघव रेड्डी	७३
१५—नवीन प्रकाशन	७८
१६—मनोरंजक संस्मरण	८०

© सरस्वती के इस अंक में प्रकाशित सभी लेख सर्वाधिकार सुरक्षित हैं।

इतना तो आप जानते ही हैं कि—

तुलसी साहित्य अमृत का सागर है। भारतीय साहित्य की अमर निधि है। इस सुधासिन्धु में अमूल्य रत्न भरे पड़े हैं। पर आज आपाधापी के इस व्यस्त युग में लोगों के पास इतना समय कहाँ कि नरदेह को सार्थक बनानेवाले वृहत् तुलसी साहित्य सागर में डुबकियाँ लगाकर इन रत्नों को खोजने के क्षण भी बचा पायें। चिन्ताओं के बोझ को उतार पायें। विद्वान् संकलनकर्ता ने बड़े परिश्रम से इन रत्नों को एक जगह इकट्ठा किया और गागर में सागर की उक्ति चरितार्थ की। उपयुक्त शीर्षक दिये। सूक्तियाँ और स्फुट पद अलग-अलग दिये और पुस्तक को सार्थक नाम दिया—

तुलसी रत्नावली

रामायण, विनयपत्रिका, कवितावली, गीतावली, वैराग्य सन्दीपनी, दोहावली अथवा गोस्वामीजी के अन्य छोटे-बड़े सभी ग्रन्थों में जहाँ जो रोचक, उपदेशपूर्ण पद मिले उन सबका चयन तुलसी रत्नावली में है, उपदेशक, विद्वान् या साधारण जन सबके लिए यह संकलन उपादेय है।

संकलनकर्ता—**श्री केदारनाथ गुप्त, एम० ए०**

मूल्य २·०० रुपये

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

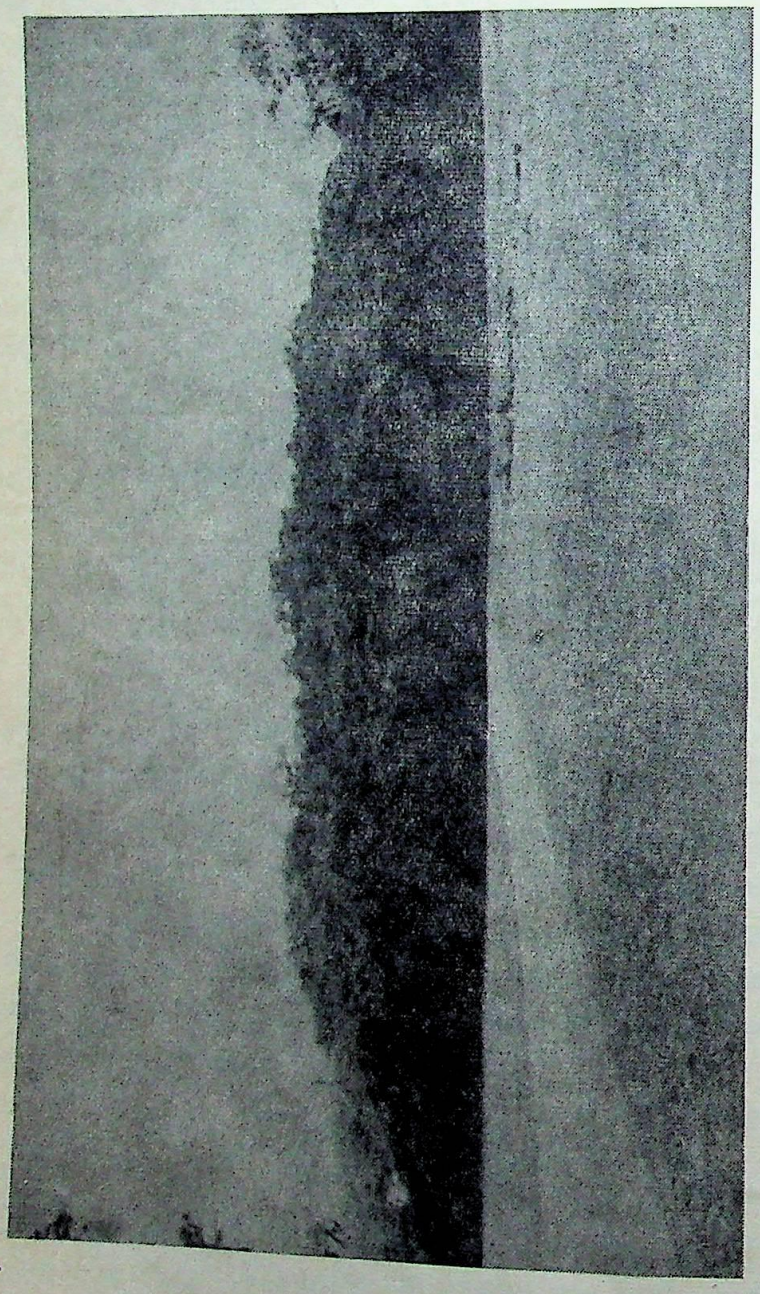

संसार का सबसे विशाल वट-वृक्ष

यह कलकत्ते के बोटैनिकल गार्डन में है और दूर से एक पहाड़ी मालूम होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

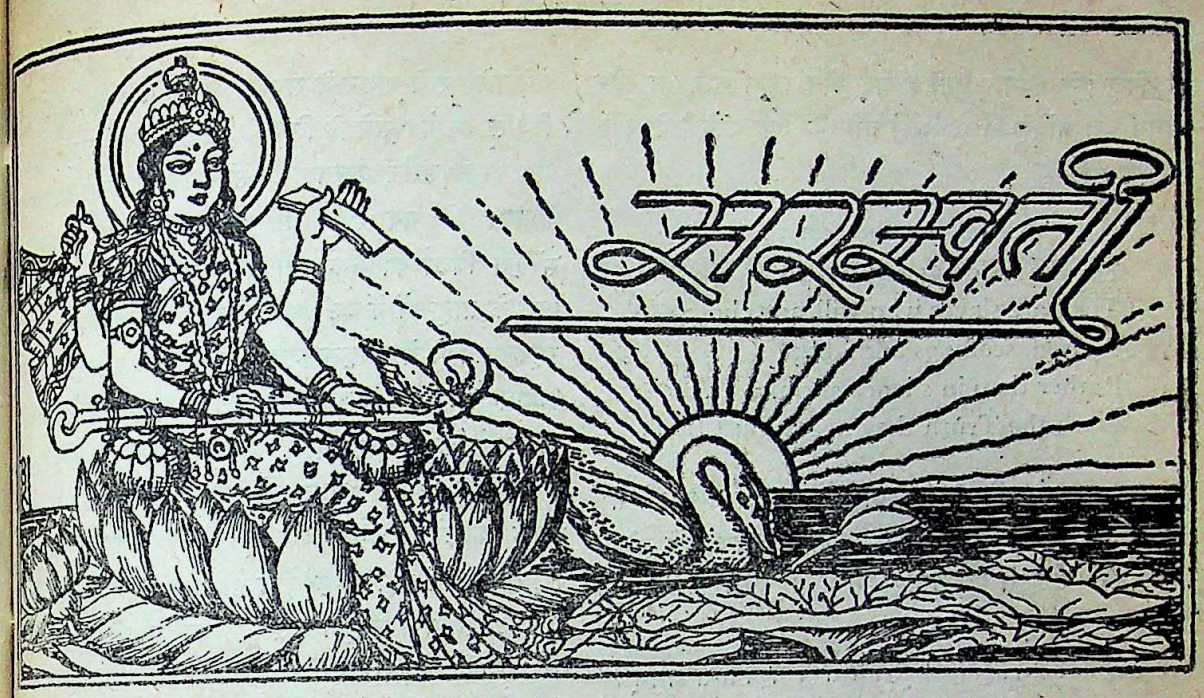

सम्पादक

श्रीनारायण चतुर्वेदी

सहायक सम्पादिका—शीला शर्मा

वर्ष ७४ पूर्ण संख्या ८८३ | इलाहाबाद : जुलाई १९७३ : श्रावण २०३० वि० | खण्ड २ संख्या १

सम्पादकीय

माननीय पंडित कमलापति त्रिपाठी और हम—त्रिपाठीजी उन थोड़े से व्यक्तियों में हैं जिनके लिए हमारे हृदय में अत्यंत आदर है। हमारा उनका परिचय कम से कम चालीस वर्ष पुराना है और इस काल में उनके प्रति यह आदर और प्रशंसा का भाव उत्तरोत्तर बढ़ा ही है। वे काशी की पवित्र जाह्नवी के समान ही एक पवित्र और प्रतिष्ठित ब्राह्मण वंश की विभूति हैं। उनके मातामह महामहोपाध्याय पंडित शिवकुमार शास्त्री अपने प्रकाण्ड पाण्डित्य, गंभीर ज्ञान और चरित्र के लिए विख्यात थे। अतएव उन्हें पितृकुल और मातृकुल दोनों ही से काशी की आभिजात्य ब्राह्मण परम्परा दाय में मिली है। हम स्वयं पुरातन-पंथी हैं और इसलिए त्रिपाठीजी की नैष्ठिकता, आस्तिकता और पाण्डित्य के हम हृदय से प्रशंसक हैं। इसके अतिरिक्त हिंदी-प्रेमी होने के कारण हमें त्रिपाठीजी की दीर्घकालीन हिंदी वाङ्मय और पत्रकारिता की मूल्यवान सेवाओं ने प्रभावित किया है। वे अप्रतिम वाग्मी हैं और इस समय हिंदी में उनकी टक्कर के प्रभावशाली वक्ता शायद ही दो-एक मिलें। हम राजनीति-निरपेक्ष हैं। अतएव हमें उनकी राजनीति में कभी कोई रुचि नहीं रही। राजनीति में भी उनकी उत्तरोत्तर वृद्धि से हमें 'ज्यों बड़री अँखियाँ निरखि आँखिन को सुख होत' प्रसन्नता ही हुई है। हमारे और उनके सम्बन्ध सदैव बड़े ही मधुर रहे हैं और हमें उनके व्यवहार से कभी कोई शिकायत नहीं रही। उन्होंने हमारे सुझावों और निवेदनों को बड़ी सहानुभूति-पूर्वक सुना और उन्हें अधिकतर स्वीकार भी किया है। ऐसे व्यक्ति के कार्यों की आलोचना हमारे लिए बड़ा अप्रिय कार्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, किंतु ऐसे अवसर आते हैं जब मौन रहना कायरता और अधर्म है। लॉवेल (Lowell) नाम के एक अंग्रेजी के कवि ने लिखा है—

They are slaves who fear to speak
For the fallen and the weak
They are slaves who will not choose
Hatred, scoffings and abuse
Rather than in silence shrink
From the Truth they needs must think.

(वे गुलाम हैं जो पतितों और निर्बलों के पक्ष में बोलने से डरते हैं। वे गुलाम हैं जो घृणा, मजाक बनाये जाने और गालियों के डर से वह सत्य कहने में हिचकते हैं जिसे वे ठीक समझते हैं।)

संस्कृत में भी कहा है—वृद्धा न ते ये न वदन्ति धर्मम्।

अब हम अस्सी वर्ष होने को आये। अब हमारी गणना हिंदी-जगत् के वृद्धों में होती है। अतएव हम विवश होकर ये टिप्पणियाँ लिख रहे हैं। यह कार्य हमारे लिए अप्रिय है, और हम इन्हें आक्रोश से नहीं हृदय की वेदना के कारण लिख रहे हैं।

वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय का नया नामकरण—माननीय पंडित कमलापति त्रिपाठी की सरकार ने पदत्याग करने के पूर्व जो प्रायः अन्तिम कार्य किया वह था एक अध्यादेश निकालकर वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय का नाम बदलकर सम्पूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय कर देना और काशी विद्यापीठ को पूरे विश्वविद्यालय का पद दे देना। काशी विद्यापीठ व्यावहारिक रूप से बहुत दिनों से विश्वविद्यालय के रूप में ही कार्य करता आ रहा है। अब इस वस्तुतः (डि फैक्टो) स्थिति को विधितः (डि जूरे) स्थिति देकर वैधानिक रूप दे दिया गया है। यह काम बहुत उचित किया गया।

प्रायः एक हजार वर्ष उत्तर भारत विभिन्न मुस्लिम सुल्तानों और नवाबों के अधीन रहा। उनके शासन में देवालय नष्ट किये जाते थे, पुस्तकालय जला दिये जाते थे, हिंदू प्रजा को कोई नागरिक अधिकार नहीं थे, उन पर तरह-तरह के जजिया आदि कर लगाये जाते थे। ऐसी स्थिति में उत्तर भारत के हिन्दुओं के सामने अपना अस्तित्व बनाये रखने का प्रश्न सबसे प्रमुख था। संस्कृत को प्रश्रय देनेवाले राजे-महाराजे समाप्त हो गये थे या स्वयं अपनी स्थिति बनाये रखने के लिए वे संघर्ष करते रहते थे। ऐसी अवस्था में उत्तर भारत में संस्कृत का पठन-पाठन प्रायः समाप्त हो गया था। किंतु वाराणसी अनादि काल से संस्कृत विद्या का केन्द्र रही और यहाँके तथा इसके आस-पास के ब्राह्मणों ने बड़ी विपरीत और विपन्न अवस्था में रहकर काशी में संस्कृत विद्या को जीवित रखा। यदि ये ब्राह्मण अपने त्याग, अपनी तपस्या और अपनी धार्मिक भावना के कारण स्वेच्छा से दरिद्रता को वरण कर संस्कृत के अध्ययन-अध्यापन में न लगे रहते तो उत्तर प्रदेश तथा उसके निकटवर्ती अन्य प्रदेश, जो लम्बे समय तक मुस्लिम पराधीनता में रहे, संस्कृतहीन हो जाते। वाराणसी में ही नहीं, उसके द्वारा उन्होंने उत्तर भारत में भी संस्कृत विद्या और उसके गम्भीर पाण्डित्य को बड़ी विपरीत अवस्था में जीवित रखा और जब कभी इस देश का निष्पक्ष सांस्कृतिक इतिहास लिखा जायगा तब उसमें एक हजार वर्ष तक विपरीत परिस्थितियों में भी संस्कृत की ज्योति को जीवित रखने और उत्तर भारत से संस्कृत के लोप न होने देने का श्रेय उन ब्राह्मणों को मिलेगा। उन्हींके कारण जब अंग्रेज सत्ता उत्तर भारत में स्थापित हुई तब अंग्रेजों ने देखा कि काशी संस्कृत विद्या का महत्त्वपूर्ण केन्द्र है।

लार्ड कार्नवालिस के समय में महाराज बनारस के दरबार में जोनाथन डंकन नामक एक विद्याव्यसनी अंग्रेज रेजीडेंट था। उसने यहाँ एक संस्कृत विद्यालय स्थापित करने का विचार किया जिसका अनुमोदन लार्ड कार्नवालिस ने किया। महाराज बनारस ने सैकड़ों एकड़ जमीन इस विद्यालय के लिए बिना मूल्य दी और इसके विशाल भवन के बनाने में भी प्रचुर आर्थिक महायता दी। इस विद्यालय का भवन डंकन साहब ने मध्यकालीन योरप की गोथिक स्थापत्य शैली में बनवाया, जो कला की दृष्टि से उत्तर भारत में अपने ढंग का एक ही भवन है। इसके निकट केवल इलाहाबाद की पब्लिक लाइब्रेरी का भवन ही आ सकता है, किन्तु काशी के विद्यालय का भवन आकार और कला की दृष्टि से अत्यंत श्रेष्ठ है।

वाराणसी में जब यह विद्यालय बना तब स्वाभाविक था कि इसमें वहींके तत्कालीन प्रसिद्ध संस्कृत विद्वान् अध्यापकों के रूप में नियुक्त किये जायँ और ये सभी उसी वर्ग के ब्राह्मण थे जिस वर्ग ने इस क्षेत्र में संस्कृत को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९७३

जीवित रखा था। इसका प्राचार्य या प्रिंसिपल अंग्रेज होता था। इन प्राचार्यों में बेलेंटाइन, थीबो, वेनिस जैसे धुरंधर संस्कृतज्ञ भी थे। कहने का सारांश यह कि यह संस्कृत विद्यालय महाराज बनारस की सहायता से बना और काशी के विद्वान् अध्यापकों के कारण थोड़े ही दिनों में सारे भारत में संस्कृत की उच्च शिक्षा के महत्त्वपूर्ण केन्द्र के रूप में विख्यात हो गया। इन पुराने अध्यापकों में ऐसे प्रकाण्ड पण्डित और महान् विद्वान् थे, जैसे बापूदेव शास्त्री, गंगाधर शास्त्री, शिवकुमार शास्त्री, राम मिश्र शास्त्री, सुधाकर द्विवेदी आदि, जिनका कृतित्व और पाण्डित्य आज भी संस्कृत के अध्येताओं को प्रेरणा देता है।

हम उन परिस्थितियों का वर्णन नहीं करेंगे जिनमें काशी ही के कुछ लोगों को इस भारत विख्यात विद्यालय पर वहाँके ब्राह्मण पण्डितों का वर्चस्व अच्छा नहीं लगता था और अंत में कुछ लोगों ने इस विद्यालय पर से (जिसकी परीक्षाएँ सारे भारत में मान्य हो गयी थीं और जिनके महत्व को सारे संस्कृत संसार ने ही नहीं, विदेशों के संस्कृतज्ञों ने भी स्वीकार कर लिया था) ब्राह्मणों का एकाधिकार हटाने के लिए यही उचित नीति समझी कि इसे विश्वविद्यालय बना दिया जाय और अन्य विश्वविद्यालयों की तरह उसमें इक्जीक्यूटिव कमेटी हो, वाइस चांसलर हो, कोर्ट हो, एकाडेमिक काउंसिल हो, जिनमें नवीन चुनाव-प्रणाली और चांसलर द्वारा नामित सदस्यों के कारण पर्याप्त संख्या में ब्राह्मणेतर लोग आ सकें और शनैः-शनैः सेलेक्शन कमेटियों आदि की सहायता से इस संस्था में ब्राह्मणों का एकाधिकार समाप्त किया जा सके। साथ ही प्राचीन प्रणाली के पण्डितों से विरक्त होने के कारण उन्हें 'आधुनिक' बनाने के लिए उस विद्यालय में, जिसमें विशुद्ध संस्कृत विद्यालयों की शिक्षा दी जाती थी, ऐसे विषय भी रख दिये गये जैसे इतिहास, समाजशास्त्र, अर्थ-शास्त्र, अंग्रेजी आदि।

यह कार्य स्वर्गीय डाक्टर सम्पूर्णानन्दजी के मुख्य मंत्रित्व काल में सम्पन्न हो सका। वे काशी के थे और वे इस विवाद में आरम्भ से ही सक्रिय भाग लेते थे।

माननीय त्रिपाठीजी काशी विद्यापीठ के रत्न हैं, जहाँ अन्य अध्यापकों के साथ उन्होंने डा० सम्पूर्णानन्दजी से भी शिक्षा प्राप्त की थी। अपने शिष्यों में डा० सम्पूर्णानन्दजी 'मास्टर साहब' के नाम से विख्यात थे। माननीय त्रिपाठीजी बड़े ही गुरुभक्त हैं और उन्होंने काशी में शायद डा० सम्पूर्णानन्दजी का कोई अन्य स्मारक बनाने में अपने को असमर्थ पाकर अपनी गुरुभक्ति प्रकट करने के लिए सबसे सस्ता नुस्खा यही समझा कि वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय (जो संयोग से उन्हींके समय में बना था) के साथ उनका नाम सम्बद्ध कर काशी में उनका एक स्मारक बना दिया जाय।

हम स्वयं डाक्टर सम्पूर्णानन्दजी के प्रशंसकों में हैं और जो लोग सम्पूर्णानन्दजी के अंतरंगों में हैं वे जानते हैं कि हमारे और उनके सम्बन्ध कैसे थे। अतएव हमें उनकी स्मृति के प्रति आज भी हार्दिक आदर है। डाक्टर साहब बड़े संस्कृतनिष्ठ थे। संस्कृत में उनकी पैठ भी थी। वे गहन चिन्तक और दार्शनिक थे। समाजवाद के अधिकारी विद्वान् थे। शिक्षाशास्त्री थे और इन क्षेत्रों में उनका महत्त्वपूर्ण स्थान था। किन्तु जहाँ तक संस्कृत में पाण्डित्य का सम्बन्ध है या जहाँ तक संस्कृत भाषा में अधिकार का प्रश्न है, उनका काशी में क्या स्थान था, यह हम नहीं जानते और न हमने कभी संस्कृत के विद्वान् के रूप में उनके नाम की चर्चा ही सुनी। यदि हम उत्तर प्रदेश को छोड़ भी दें, तो काशी ही में कितने ऐसे अनेक विद्वान् हो गये हैं जिनका संस्कृत का पाण्डित्य और जिनकी संस्कृत की महती सेवाएँ इतनी विख्यात हैं जिनके बारे में हमें कुछ कहने की आवश्यकता नहीं। उदाहरण के लिए केवल एक नाम पर्याप्त होगा श्री गोपीनाथ कविराज, जो सौभाग्य से अभी भी वर्तमान हैं। क्या डा० सम्पूर्णानन्द उनके समकक्ष बैठाये जा सकते हैं?

हमारे विरोध का कारण यह है कि सारे संसार में इस संस्था की जो गरिमा वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय नाम से होती है वह एक विशिष्ट व्यक्ति के नाम के जोड़ने से नष्ट हो जाती है। योरप और अमेरिका में संस्कृत में रुचि रखने वाले वाराणसी के महत्त्व को जानते हैं और उनके लिए वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय का जो महत्त्व है वह डा० संपूर्णानन्द के नाम से उसके सम्बद्ध होने के कारण नहीं हो सकता। उनमें से कितने ही उनके नाम से आज भी परिचित न होंगे और भविष्य में वे कितने याद रखे जायँगे, इसका केवल अनुमान ही किया जा सकता है। अतएव जो गरिमा वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाम से हो सकती है वह उसके साथ डा० सम्पूर्णानन्दजी के नाम के जोड़ने से नहीं हो सकती।

यदि संस्कृत की इस प्राचीन संस्था की सेवाओं के उपलक्ष में किसी का नाम इससे जोड़ा जा सकता है तो वह काशिराज का है। जैसा कि हम आरम्भ में बता चुके हैं, बनारस के महाराजाओं ने इस संस्था की मुक्तहस्त और प्रचुर सहायता की है। इसका यह आशय नहीं है कि हम वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय का नाम बदलना चाहते हैं। हमारी दृष्टि में उसकी गरिमा अप्रतिम है।

हमें आश्चर्य है कि यदि संस्कृत विश्वविद्यालय की स्थापना डा० सम्पूर्णानन्दजी के मुख्य मंत्रित्व काल में हुई, इसीलिए उनकी संस्कृत सेवा इतनी महत्त्वपूर्ण समझी गयी कि उनका नाम संस्कृत विश्वविद्यालय के साथ जोड़ा गया तो त्रिपाठीजी जिस संस्था के स्नातक हैं, अर्थात् काशी विद्यापीठ, उसके नाम के साथ उसके संस्थापक पुण्यश्लोक बाबू शिवप्रसाद गुप्त का नाम क्यों नहीं जोड़ा गया? उस महान पुरुष ने राष्ट्रीय आंदोलन के उन दिनों इतनी विशाल भूमि और प्रचुर धनराशि दी जिससे यह संस्था बनी। यदि संस्था की सेवा की दृष्टि से देखा जाय तो काशी विद्यापीठ विश्वविद्यालय के नाम के आगे बाबू शिवप्रसाद गुप्त का नाम जोड़ना संस्कृत विश्वविद्यालय के साथ डा० सम्पूर्णानन्द का नाम जोड़ने की अपेक्षा सौ गुना अधिक समीचीन और न्यायसंगत है।

हम समझते हैं कि इस नाम परिवर्तन से संस्कृत विश्वविद्यालय की गरिमा देश-विदेश में घटेगी, बढ़ेगी नहीं। हम वैसे भी प्राचीन संस्थाओं के साथ 'साहबे-वक्त' लोगों के नाम जोड़ने के विरुद्ध हैं। डा० सम्पूर्णानन्दजी एक महान् पुरुष थे। हिन्दी और देश के प्रति उनकी सेवाएँ अमूल्य और महत्त्वपूर्ण हैं। उनका उपयुक्त स्मारक बनना चाहिए, किन्तु इस "हल्दी लगै न फिटकरी, रंग चोखा आवै" वाले सस्ते नुस्खे से जो स्मारक बनेगा वह उनके अनुरूप न होगा। हम उन्हें जितना जान पाये उसके अनुसार हमारी धारणा है कि शायद वे स्वयं यह परिवर्तन पसंद न करते।

सरकार आदेश, अध्यादेश, अधिनियम, कानून सब कुछ बनाकर नामों में हेरफेर कर सकती है, किन्तु देखना यह है कि क्या जनता इस परिवर्तन को पसंद करेगी? हम लखनऊ में रहते हैं। अतएव हम काशीवालों की प्रतिक्रिया नहीं जानते, किन्तु यहाँ जिन बहुत थोड़े, इस विषय में रुचि रखनेवालों से, हमारी बातें हुई हैं, वे इसे पसंद नहीं करते। और अध्यादेश निकालकर यह नाम परिवर्तन करना बहुत गलत था, क्योंकि अध्यादेश निकालने का अधिकार किसी आपात स्थिति के उत्पन्न होने पर उसका सामना करने के लिए सरकार को दिया गया है। हमारी मंद बुद्धि में ऐसी कोई आपात स्थिति नहीं थी जिसमें नाम बदलने के लिए अध्यादेश निकालने की आवश्यकता होती। अवश्य ही माननीय त्रिपाठीजी ने अपने इस कार्य से अपनी प्रगाढ़ गुरुभक्ति का परिचय ही नहीं दिया, वे गुरुऋण से शायद मुक्त भी हो गये, किन्तु इससे वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय की गरिमा समाप्त हो गयी है।

उत्तर प्रदेश में त्रिपाठीजी के समय में उर्दू का प्रचार और शिक्षा तथा राजकाज में उर्दू का प्रवेश और हिन्दी का अवमूल्यन—हमें माननीय त्रिपाठीजी के हिन्दीप्रेम में कोई सन्देह नहीं है, इसलिए इधर उनकी उर्दू प्रचार की गतिविधियों को देखकर हम आश्चर्यचकित हैं। वास्तव में वह कांग्रेस की केन्द्रीय मुस्लिम तुष्टीकरण की नीति का उत्तर प्रदेश में (जिसे मुसलमान विशेष महत्त्व देते हैं) प्रसार मात्र है। फ्रांस के बोर्बोन वंश की तरह कांग्रेस भी न कोई पुरानी नीति या बात भूलती है और न अनुभव से कोई नयी बात सीखती ही है। गांधीजी के समय में जो मुस्लिम तुष्टीकरण की नीति अपनायी गयी, उसी लकीर को वह आज भी पीटे चली जा रही है यद्यपि विभाजन के बाद स्थिति एकदम बदल गयी थी। परिणाम यह है कि आज पुरानी मुस्लिम लीग और मुस्लिम साम्प्रदायिकता फिर से जीवित हो गयी है, और उसका क्या परिणाम होगा वह तटस्थ भाव से विचार करनेवाले भली भाँति समझते हैं। 'राष्ट्रीय एकता' के नाम पर कांग्रेस जो मुस्लिम तुष्टीकरण की नीति अपना रही है उससे शीघ्र या देर में विभाजन के पूर्व की साम्प्रदायिक स्थिति उत्पन्न होने का भय है।

इसी नीति के अनुसार कांग्रेस जो पुकार-पुकार कर और पानी पी-पी कर साम्प्रदायिक दलों को कोसती नहीं अघाती, उसने केरल में उस मुस्लिम लीग से राजनीतिक गठबन्धन कर रखा है जिसके अध्यक्ष स्पष्ट रूप से घोषित करते हैं कि उनकी मुस्लिम लीग वही है जो श्री जिन्ना के समय में थी। कांग्रेस ने यह गठबन्धन कर अपनी अवसर-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९७३

वादिता का जीवन्त प्रमाण दिया और यह बतला दिया कि उनके सिद्धान्त कथा के बैंगन हैं।

इसी नीति की पृष्ठभूमि में त्रिपुरा, पांडिचेरी, राजस्थान और बिहार ऐसे हिन्दूबहुल राज्यों में कांग्रेस द्वारा या उसके समर्थन से मुसलमान मुख्य मन्त्री थोपे गये। उत्तर प्रदेश में यह सम्भव न था क्योंकि यहाँकी कांग्रेस में ऐसा करने से बड़ी उथल-पुथल मचती। पर यहाँ एक मुसलमान राज्यपाल भेजकर इस नीति का पालन किया गया जो राष्ट्रपति शासन लागू होने पर मुख्य मन्त्री से भी अधिक शक्तिशाली है।

उत्तर प्रदेश में अब तक आठ राज्यपाल आये। इनमें श्री मोदी और श्री के० एम० मुंशी बम्बई और गुजरात से, श्री विश्वनाथदास उड़ीसा से और शेष पाँच, श्रीमती सरोजिनी नायडू, श्री वी० वी० गिरि, श्री रामकृष्ण राव, श्री गोपाल रेड्डी तथा वर्तमान राज्यपाल आन्ध्र से आये। शायद उत्तर प्रदेश की सूबेदारी आन्ध्र के लिए सुरक्षित कर दी गयी है। इनमें श्री वी० वी० गिरि आन्ध्र प्रदेश के और शेष चार भूतपूर्व हैदराबाद राज्य के थे जहाँ संस्कार-वश निज़ाम के शासन में वे उर्दू के ज्ञाता ही नहीं, उर्दू के प्रेमी भी हो गये थे। इनमें श्री रामकृष्ण राव ही हिन्दी के अच्छे जानकार और हिन्दी प्रेमी थे। शेष उर्दू के मद्दाह थे। हम लोग जानते हैं कि श्रीमती नायडू और श्री गोपाल रेड्डी के समय में उर्दू शेर-ओ-शायरी की कैसी महफ़िलें राज्य-भवन में जमती थीं। वर्तमान राज्यपाल हिन्दी से अपरिचित हैं और स्वभावतः उनके संस्कार निज़ामी उर्दू के हैं। वे निज़ाम के वज़ीर थे। वे भाषा के सम्बन्ध में अपने संस्कारों के कारण विवश हैं। श्री गिरि श्रमिक नेता थे और वे हिन्दी से भी उतने ही निरपेक्ष थे जितने उर्दू से।

परम्परा (कन्वेंशन) यह है कि किसी राज्य में राज्यपाल की नियुक्ति के पूर्व उस राज्य के मुख्य मन्त्री की सम्मति ले ली जाती है और यदि वह विरोध करे तो नियुक्ति नहीं की जाती। बंगाल में श्रीमती पद्मजा नायडू के बाद जो कुछ हुआ उसे दुहराने की आवश्यकता नहीं, पर इस बात हमारी बतायी इस परम्परा को पुष्ट करती है। अतएव वर्तमान राज्यपाल की उत्तर प्रदेश में नियुक्ति के लिए कम से कम परोक्ष रूप से श्री त्रिपाठीजी की बहुत बड़ी जिम्मेदारी है।

हम वर्तमान राजनीतिक स्थिति और केन्द्र के राज्यों के मामलों में उचित-अनुचित हस्तक्षेप से एकदम अपरिचित नहीं हैं। यद्यपि ऐसी बातों में विशेष रुचि न लेने के कारण हमें बहुत से विवरण नहीं मालूम। अधिकांश कांग्रेसी राज्यों के मुख्य मन्त्री ऐसे हैं कि "सबहिं नचावत केन्द्र गुसाईं।" केन्द्र का वर्चस्व और आतंक इस समय इतना प्रखर है कि ये सूबेदार मुग़लकाल के सूबेदारों की याद दिलाते हैं। अतएव हम त्रिपाठीजी की विवशता का भी बहुत कुछ अनुमान लगा सकते हैं।

किसी भी कारण से हो, जब त्रिपाठीजी ने उर्दू को प्रोत्साहन देने का निश्चय कर लिया तब उन्होंने वह काम आधे मन से नहीं किया। अपनी स्वाभाविक कर्मठता, उदारता और कल्पना से किया। किसी राज्य को उर्दू एकाडमी बनाने की बात नहीं सूझी थी। त्रिपाठीजी ने उत्तर प्रदेश में उर्दू एकाडमी बनाकर उर्दू के प्रति सदाशयता का पूरा परिचय दिया। उसे बीस लाख रुपये की प्रचुर धन राशि भी दी। इस राज्य में श्री राय राजेश्वर-बली के समय से हिन्दुस्तानी एकाडमी काम कर रही है जिसका उद्देश्य हिन्दी और उर्दू दोनों का विकास करना है। उसके पहिले अध्यक्ष सर तेजबहादुर सप्रू और मन्त्री डा० ताराचन्दजी थे। दोनों ही अपने उर्दू प्रेम और हिन्दी निरपेक्षता के लिए प्रसिद्ध हैं। विभाजन के बाद जब कुछ लोगों ने उसका नाम बदल कर 'हिन्दी एकाडमी' बनाने का सुझाव दिया तब सरकार ने उसे हिन्दी और उर्दू के उन्नयन के लिए बनायी गयी संस्था बताकर उसके नाम या उद्देश्य में परिवर्तन करना अस्वीकार कर दिया। हमारी समझ से उसने यह काम ठीक ही किया। आज भी उसमें उर्दूवालों का काफी प्रतिनिधित्व है। दो में से एक उपाध्यक्ष उर्दू का विद्वान् होना अनिवार्य है। यदि त्रिपाठीजी चाहते तो उसी संस्था को उर्दू के लिए विशेष अनुदान देकर उससे उर्दू के उन्नयन का काम ले सकते थे। पर उन्होंने २० लाख रुपये देकर एक नयी उर्दू एकाडमी बनायी जिसमें चुन-चुनकर कट्टर उर्दू कार्यकर्ता रखे गये। उसे इतने विस्तृत अधिकार दिये गये जो हिन्दी समिति या हिन्दुस्तानी एकाडमी को (जो सरकारी संस्थाएँ हैं) कभी नहीं दिये गये। उसे राज्य के राजकाज में उर्दू की प्रगति तक का लेखा-जोखा लेने का अधिकार दिया गया। उसकी गतिविधियों से पाठकों को हम फिर कभी अवगत करायेंगे।

उर्दूवालों की मुख्य माँग और उद्देश्य यह है कि उत्तर प्रदेश में उर्दू सहराजभाषा बनायी जाय। यह माँग नयी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं है। डा० सम्पूर्णानन्द के समय में मौलाना आज़ाद से उनका शिक्षा-विभाग की पुस्तकों की विषयवस्तु तथा उर्दू को राजकाज में स्थान देने के बारे में बड़ा महत्त्वपूर्ण पत्राचार हुआ जो ऐतिहासिक महत्त्व का है, और यदि वह हमारे हाथ लग गया तो हम उसे पाठकों की जानकारी के लिए प्रकाशित करेंगे जिससे मालूम होगा कि डा० सम्पूर्णानन्दजी किस धातु के बने थे और वे अपने भाषा-सम्बन्धी सिद्धान्तों पर कितने दृढ़ थे। उन्होंने केवल इतना ही किया कि जिन थोड़े से जिलों में मुसलमानों का अनुपात एक निश्चित संख्या से अधिक था, उनमें उनकी जानकारी के लिए महत्त्वपूर्ण राजाज्ञाएँ, आदेश, विज्ञप्ति आदि उर्दू में भी निकाली जायँ और सरकारी गजट का एक संक्षिप्त उर्दू संस्करण भी निकाला जाय, यह आदेश दिया।

मुसलमानों का उर्दू आन्दोलन सुनियोजित है। उसका अंतिम उद्देश्य उत्तर प्रदेश ही नहीं, बिहार, राजस्थान, मध्यप्रदेश आदि हिन्दीभाषी राज्यों में उर्दू को सहराजभाषा बनाना है। किन्तु उसके लिए तैयारी की आवश्यकता है। अतएव उनके सभी कार्यकलाप उसी लक्ष्य की पूर्ति के लिए किये जाते हैं। इधर उत्तर प्रदेश में वर्षों से हिन्दी इंटरमीडिएट तक विद्यार्थियों को हिन्दी अनिवार्य रूप से पढ़नी पड़ती है। इसलिए वर्तमान राजकर्मचारियों और अधिकारियों की पीढ़ी उर्दू से अपरिचित है। अतएव उर्दूवालों ने माँग की कि एक तो सभी विद्यालयों में (चाहे वहाँ उर्दू की माँग हो या न हो) उर्दू पढ़ाने का प्रबन्ध किया जाय, अर्थात् उर्दू के अध्यापक रखे जायँ, दूसरे यह कि अंग्रेजों के समय में जिस प्रकार कक्षा ६, ७, ८ में हिन्दीवालों को उर्दू 'सैकण्ड फार्म' के रूप में पढ़ना अनिवार्य था, उसी प्रकार हिन्दी के विद्यार्थियों को उर्दू पढ़ाना अनिवार्य कर दिया जाय। वे त्रिभाषी सूत्र से संस्कृत निकाल कर उसकी जगह उर्दू रखने की माँग कर रहे हैं। नवीन कांग्रेसी अमनसभाई और तत्कालीन लखनऊ के उपकुलपति और काशी के रत्न "पण्डित" गोपाल त्रिपाठी ने एक उर्दू सम्मेलन में सैकंड फार्म के रूप में उर्दू को अनिवार्य रूप से पढ़ाने के प्रस्ताव का जोरदार समर्थन कर हिन्दी संसार को आश्चर्यचकित कर दिया। किन्तु उपकुलपति त्रिपाठी मुख्य मंत्री त्रिपाठी के इतने निकट और विश्वासपात्र हैं कि हम लोगों का माथा ठनका कि उन ऐसे 'टैक्नोक्रैट' का भाषा-सम्बन्धी विवाद में अनधिकार हस्तक्षेप किस स्रोत से प्रेरित है। और इसलिए बाद में जो कुछ हुआ, उससे हमें आश्चर्य नहीं हुआ।

हमारे देखने में सरकार द्वारा प्रकाशित आँकड़े नहीं आये जिससे मालूम हो कि मिडिल, हाईस्कूल या इंटरमीडिएट की परीक्षाओं में कितने विद्यार्थियों ने उर्दू भाषा में परीक्षा दी, किन्तु जब हिन्दी के परीक्षकों की हजारों की संख्या होती है तब उर्दू के परीक्षक पूरे एक कोड़ी या दर्जन भी मुश्किल से होते हैं। यदि कोई विद्यार्थी उर्दू भाषा पढ़ना चाहता है तो उस पर कोई रोक नहीं है। पर यदि उसकी माँग नहीं है तो इसमें किसका दोष है?

मातृभाषा के रूप में जो लोग उर्दू पढ़ना चाहते हैं और किसी स्कूल में उनकी संख्या केवल दस भी होती है, तो वहाँ उसका प्रबन्ध किया जाता है। किन्तु आँकड़ों के अभाव में हम नहीं जानते कि कितने प्राइमरी स्कूलों में दस लड़कों ने भी उर्दू को मातृभाषा बनाकर उसके माध्यम से पढ़ने की माँग की है। किन्तु हमें सूचना मिली है कि उनकी संख्या अत्यल्प है। उत्तर प्रदेश का अत्यन्त खर्चीला आँकड़ा विभाग ऐसी महत्त्वपूर्ण बातों के आँकड़े नहीं देता, अतएव जनता अन्धकार में पड़ी रहती है।

उ० प्र० सरकार ने राज्य की राजभाषा हिन्दी होते हुए भी ये आदेश निकाले हैं कि जो पत्र या आवेदनपत्र कार्यालयों अथवा कचहरियों में उर्दू में दिये जायँ (१) वे स्वीकार किये जायँ, (२) उन पर कार्यालय या अदालत में कार्रवाई उर्दू में हो, और (३) उनके उत्तर उर्दू ही में दिये जायँ। इसके क्या व्यावहारिक परिणाम होंगे? अभी ९९ प्रतिशत अधिकारी (कार्यालयों के, डिप्टीकलक्टर आदि) और कर्मचारी उर्दू नहीं जानते। अब मुसलमानों की ओर से यह माँग होगी कि इन अधिकारियों और कर्मचारियों को उर्दू में दक्षता प्राप्त करायी जाय और उनकी उर्दू में परीक्षा हो। इससे गत सप्ताह हमारे एक मित्र ने बतलाया कि अवध के एक जिले में वहाँके मुसलमान वकीलों और अदालत के मुसलमान कर्मचारियों की एक मीटिंग हुई थी जिसमें वकीलों ने प्रतिज्ञा की कि वे भविष्य में अदालत में कागज उर्दू में दाखिल करेंगे और कर्मचारियों ने प्रतिज्ञा की वे उन पर उर्दू में कार्रवाई करेंगे। और भी जिलों में उर्दू और मुसलमानों की संस्थाएँ ऐसी ही कार्रवाई करा तो आश्चर्य नहीं। तब उर्दू और हिन्दी का प्रश्न विशुद्ध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साम्प्रदायिक रूप ले लेगा क्योंकि ऐसी कार्रवाइयों की प्रतिक्रिया हिन्दुओं पर होनी अनिवार्य है।

श्री त्रिपाठी की सरकार ने उर्दू के लिए जो अन्य काम किये हैं उनमें से कुछ ये हैं।

(१) शिक्षा-विभाग में उर्दू की प्रगति को बल देने के लिए उसमें एक उपशिक्षा निदेशक (उर्दू) का नया पद बनाया गया और भर भी दिया गया है।

(२) सूचना-विभाग में सहनिदेशक (उर्दू) का एक नया पद बनाया गया है और उस पर एक मुसलमान सज्जन को जिनका कार्यकाल समाप्त हो गया था, सेवा विस्तार (एक्सटेंशन) देकर नियुक्त किया गया है।

(३) जूनियर और सीनियर बेसिक की हर विषय की पुस्तकें सरकार ने उर्दू में अपने व्यय से तैयार करायी हैं।

(४) निजी डिग्री कालिजों को लिखा गया है कि वे अपने यहाँ बी० ए०, एम० ए० में उर्दू खोलने का प्रयत्न करें। उसका सारा व्यय सरकार देगी।

(५) यदि किसी माध्यमिक स्कूल में कुछ लड़के भी उर्दू माध्यम से पढ़ना चाहें तो उसके लिए अध्यापक नियुक्त किये जायँ। इन अध्यापकों का कुल व्यय (सहायता-प्राप्त निजी स्कूलों में भी) सरकार देगी।

(६) माध्यमिक कक्षाओं की पुस्तकें सरकार प्रकाशित नहीं करती। वे निजी प्रकाशक करते हैं। विभिन्न विषयों में उर्दू की पुस्तकों की माँग न होने से वे उन्हें प्रकाशित नहीं करते। अब सरकार अपने व्यय से तैयार करके प्रकाशित करने की बात सोच रही है।

(७) उर्दू पुस्तकों को खरीदने के लिए उर्दू विद्यार्थियों को उदार 'बुक एड' देने की भी योजना चला दी गयी है। सूचना के अभाव में हमें यह नहीं मालूम कि यह राशि कितनी है।

(८) जूनियर और सीनियर बेसिक (प्राथमिक और मिडिल) स्कूलों में उर्दू के लिए ३८२३ अध्यापक नियुक्त करने की सरकार ने स्वीकृति दी है और वे तेजी से नियुक्त किये जा रहे हैं।

उत्तर प्रदेश शासन इतना विस्तृत और आकार में इतना बड़ा है तथा वहाँ अधिकारियों से सूचना प्राप्त करना इतना कठिन है कि हम नहीं जानते कि श्री त्रिपाठी की सरकार ने उर्दू को इस राज्य में प्रतिष्ठित करने के लिए और क्या-क्या कार्रवाई की है।

इसके विपरीत, हिन्दी के लिए इस सरकार ने क्या किया? शिक्षा-प्रसार-विभाग चालीस हजार रुपयों की पुस्तकें प्रतिवर्ष खरीदता था। 'रुपयों की कमी के कारण' पिछले वर्ष खरीद नहीं हुई। १९७३-७४ में उसकी हिन्दी समिति का सामान्य और योजना का मिलाकर कुल बजट (जिसमें १,९७,००० पंचवर्षीय योजना का इस वर्ष का बजट भी सम्मिलित है) केवल ३,७८,७०० रुपये का है। इसमें बहुत बड़ा अंश उसके विस्तृत कार्यालय के कर्मचारियों के वेतन पर व्यय होता है। हिन्दुतानी एकाडमी ऐसी प्राचीन संस्था को केवल पचास हजार रुपये इस वर्ष अनुदान दिया गया है। पहिले और भी कम मिलते थे। गत वर्ष उसने जब २० लाख उर्दू एकाडमी को दिये तब दस लाख की हिन्दी पुस्तकें खरीद कर डिग्री कालिजों, इंटर कालिजों और अनुदान प्राप्त पुस्तकालयों को देने के लिए दिये। किन्तु इस वर्ष यह राशि घटाकर आधी अर्थात् पाँच लाख कर दी गयी है। जहाँ तक हम जानते हैं, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन को वह कोई अनुदान नहीं देती। शायद काशी-नागरी-प्रचारिणी को कुछ (थोड़ी सी राशि) अनुदान में देती है। ब्रजसाहित्य-मण्डल दो-चार हजार रुपयों में एक (जब उसका भाग्य जोर मारता है) टरका दिया जाता है।

उत्तर प्रदेश की तीन और योजनाएँ हैं जिनसे संस्कृत, हिन्दी, उर्दू की पुस्तकों को पुरस्कार, लेखकों को पुस्तकें छपवाने के लिए अनुदान और विपन्नावस्था में पड़े हिंदी, संस्कृत, बँगला, उर्दू के साहित्यकारों, चित्रकारों और संगीतज्ञों को मासिक वृत्ति (पेंशन) दी जाती है। इनका विवरण इस प्रकार है :—

उत्तम पुस्तकों के लिए पुरस्कार पिछले तीन वर्षों में पुरस्कार के लिए अखिल भारतीय विज्ञापन देने पर विभिन्न भाषाओं में जो पुस्तकें आयीं, उनकी संख्या इस प्रकार है—

भाषा	पुस्तकें प्राप्त	पुरस्कृत
संस्कृत	३६	२५
हिन्दी	५४७	२००
उर्दू	७७	२७

इससे स्पष्ट है कि हिन्दी और उर्दू के प्रकाशनों की क्या स्थिति है, हमें कोई टिप्पणी देने की आवश्यकता नहीं।

अब लेखकों को अपनी पुस्तकों के प्रकाशित करने की योजना देखिए। इसके लिए इस विशाल राज्य में केवल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१०,००० (दस हजार) रुपये रखे गये हैं। १९७२-७३ के जो आँकड़े हम प्राप्त कर सके उनके अनुसार दस हजार में से २५०० उर्दू पुस्तकों के लेखकों को और शेष साढ़े सात हजार हिन्दी और संस्कृत के लेखकों को अपनी पुस्तक प्रकाशित करने के लिए सहायता रूप में दिये गये।

अब विपन्नावस्था में पड़े हिन्दी, उर्दू, बँगला, संस्कृत के लेखकों, संगीतज्ञों, वैद्यों, चित्रकारों तथा उनकी विधवाओं को दी जानेवाली वृत्ति (पेंशन) की भी स्थिति देखिए, इसकी दो योजनाएँ हैं : एक बड़ी जिसमें भारत सरकार की सहायता से वृत्ति दी जाती है। इसमें दो-तिहाई राशि भारत सरकार और एक-तिहाई उ० प्र० सरकार देती है। दूसरी योजना जो अपेक्षाकृत छोटी है, उसका सारा व्यय उ० प्र० सरकार वहन करती है। इसके लिए भी बहुत सीमित राशि है। पहिली योजना का विवरण हमें सरकारी ढंग से (ऑफिशियली) मिल गया। दूसरी योजना का विवरण हमें सरकारी ढंग से नहीं मिला। इसलिए हम उसके अंक और आँकड़े नहीं दे सकते। पहिली योजना ही मुख्य योजना है। इसके अंतर्गत १३३ सज्जनों और महिलाओं को वृत्ति मिलती है जिसका विवरण इस प्रकार है :—

हिन्दी साहित्यिकों या उनकी विधवाओं को	४०	(३९ हिन्दू, एक मुसलमान)
उर्दू साहित्यिकों या उनकी विधवाओं को	५३	(४८ मुसलमान, ५ हिन्दू)
बँगला साहित्यिकों को	३	(हिन्दू)
संस्कृत साहित्यिकों को	२१	(हिन्दू)
संगीतज्ञों को	२४	(१९ मुसलमान, ५ हिन्दू)
चित्रकार को	१	(हिन्दू)
वैद्य को	१	(हिन्दू)
	१३३	

किन्तु इन्हें जो धनराशि प्रतिमास मिलती है वह इस संख्या से कोई सम्बन्ध नहीं रखती। प्रतिमास प्रत्येक वर्ग के लोगों को जो धनराशि मासिक वृत्ति में दी जाती है, वह इस प्रकार है :—

संस्कृत साहित्यिकों को	९७० रु० प्रतिमास
हिन्दी साहित्यिकों को	२९५५ रु० प्रतिमास
उर्दू साहित्यिकों को	३७३५ रु० प्रतिमास
संगीतज्ञों को	१८९० रु० प्रतिमास
बँगला साहित्यिकों को	२५० रु० प्रतिमास
वैद्य को	७५ रु० प्रतिमास
चित्रकार को	१५० रु० प्रतिमास

पाठक स्वयं निष्कर्ष निकाल लें कि इस योजना से अधिक लाभ किसे हुआ।

इसकी दूसरी योजना (जिसका सारा व्यय उ० प्र० सरकार देती है) उसमें स्थिति कम या अधिक ऐसी ही बतायी जाती है।

उत्तर प्रदेश से केन्द्र को जो अनुशंसा जाती है वह अजीब ढंग से वहाँ स्वीकार की जाती है। एक उदाहरण पर्याप्त होगा। स्व० श्री जिगर मुरादाबादी की विधवा को १५० रु० मासिक वृत्ति मिलती है। जब डा० हेमचन्द्र जोशी की मृत्यु हुई तो उत्तर प्रदेश सरकार ने उनकी पत्नी के लिए भी १५० रु० मासिक वृत्ति की अनुशंसा की। किन्तु भारत सरकार के शिक्षा-विभाग के फरिश्तों ने उन्हें केवल ५० रु० मासिक का पात्र समझा और वही राशि उन्हें मिल रही है।

उपर्युक्त तथ्यों और आँकड़ों से स्पष्ट है कि जहाँ तक उत्तर प्रदेश शासन का सम्बन्ध है, वर्तमान उर्दू आंदोलन के पूर्व ही वह बराबर उर्दू वालों और मुसलमानों को उदारतापूर्वक सहायता कर रही है। उसने उनके पक्ष में तराजू के पलड़े को बराबर दबाया है। उसकी उदारता या निष्पक्षता पर कोई भी न्यायप्रिय और तटस्थ व्यक्ति अँगुली नहीं उठा सकता। उत्तर प्रदेश शासन के हाथों उर्दू, उर्दूवालों और मुसलमानों के हित सदैव सुरक्षित रहे, उसने उनके प्रति आवश्यकता से अधिक उदारता दिखायी है। यदि शिकायत हो सकती है तो हिन्दी वालों को जो संख्या में इतने अधिक होते हुए भी सरकार सहायता अपने दाय के अनुसार नहीं पा सके। जिस राज्य का बजट ६५० करोड़ है वह शायद सब मिलाकर १५-१६ लाख से अधिक हिन्दी के उन्नयन पर व्यय नहीं करती (गत वर्ष और इस वर्ष की खरीद को हम आकस्मिक समझते हैं।)

अंत में पाठकों के ज्ञानवर्द्धन के लिए पाठ्य-पुस्तकों के सम्बन्ध में भी कुछ मनोरंजक और रहस्य खोलने वाले आँकड़े प्रस्तुत कर रहे हैं। पाठ्य-पुस्तक अधिकारी कक्षा ८ से ८वीं कक्षा के लिए प्रायः सभी पुस्तकें छपवाते हैं क्यों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९७३

उनका राष्ट्रीयकरण हो गया है। १९७२-७३ में हिन्दी और उर्दू की जो पुस्तकें इन कक्षाओं के लिए निकाली गयीं, उनका विवरण इस प्रकार है :—

सब विषयों की हिन्दी पुस्तकें—दो करोड़ दस लाख छपीं—
सब बिक गयीं

सब विषयों की उर्दू पुस्तकें—एक लाख इक्यानवे हजार छपीं—
१,३२,००० बिकीं

इस पर हम कोई टिप्पणी न करेंगे। पाठक स्वयं अपने निष्कर्ष निकाल लें।

इतना सब होने पर भी उर्दू आन्दोलन के सामने मुस्लिम तुष्टीकरण की नीति के कारण हमारी राज्य सरकार ने घुटने टेक दिये। हमें माननीय त्रिपाठीजी की न्यायप्रियता और हिन्दीनिष्ठा में कोई संदेह नहीं है। किसी बहुत बड़े दबाव के कारण ही विवश होकर उन्हें यह कटु घूंट पीना पड़ा होगा। किंतु हमें जो शिकायत है वह यह है कि उन्होंने इस मामले में अपने गुरु डा० सम्पूर्णानन्दजी की दृढ़ता का अनुसरण नहीं किया। उनमें भी दृढ़ता की वाणी नहीं है। हम जानते हैं कि वे कुछ मामलों में चट्टान की तरह अविचल रहते हैं, सबसे ताजा उदाहरण यह है कि अनेक दबावों के बावजूद उन्होंने अपने कुछ सहयोगियों को अपनी दृढ़ता के कारण मंत्रिमंडल से अलग नहीं किया। काश! उर्दू के मामले में भी वे वैसी ही दृढ़ता दिखलाते, किसी भी मुख्य मंत्री का यह कार्य हमें दुखी करता, किंतु यह काम हमारे आदरणीय, प्रिय मित्र और हिन्दी के अध्वर्यु द्वारा हुआ—इसने हमारी वेदना को असह्य बना दिया है।

जो विषवृक्ष बोया गया है, वह राज्य के लिए अमंगलकारी होगा—इसमें हमें संदेह नहीं। अभी तो उर्दूवालों के प्रथम हल्ले का यह परिणाम है। अभी और भी ऐसे ही हल्ले होंगे।

इब्तदाए-इश्क है रोता है क्या?
आगे आगे देखिए होता है क्या?

अन्त में राज्यपाल महोदय की एक कार्रवाई की ओर सूचना दे दें। हमें विश्वस्त सूत्रों से पता लगा है कि उन्होंने राजभवन में उर्दू का एक विशेष कार्यालय (Cell) बनाया है जो उर्दू पत्रों का उत्तर राजभाषा हिन्दी में न देकर उर्दू ही में दिया करेगा और शायद वह उर्दूवालों से अपना पत्राचार भी उर्दू में करें। पता नहीं कि राजभवन में कभी कोई ऐसा हिन्दी का 'सैल' (Cell) भी बनाया गया था। राज्यपाल महोदय निज़ामी हैदराबादी हैं, उनके संस्कार उर्दू के हैं। वे निज़ाम के वज़ीर रह चुके हैं। उर्दू उनकी मातृभाषा है। अपनी मातृभाषा से इतना प्रेम करने के कारण हम उनकी प्रशंसा करते हैं। क्या अच्छा होता यदि उत्तर प्रदेश के मंत्रियों, विधायकों, अफसरशाही में भी अपनी मातृभाषा हिन्दी के प्रति ऐसा ही प्रेम और आग्रह होता।

(पुनश्च २८ जून से हम सहसा भयंकर रूप से बीमार हो गये। २९ जून और ८ जुलाई को हमारा तापमान १०५ और १०६ अंशों के बीच हो गया और दोनों दिन हम आठ-दस घंटे बेहोश रहे। बाद में चार बार तापमान इतना ही बढ़ा और उनमें दो बार हम चार-चार घंटे संज्ञाहीन रहे। डाक्टरों ने परीक्षण करके बताया कि हमारे किन्हीं भीतरी अवयवों में 'वाइरस इन्फैक्शन' है और साथ ही "बी-कोलाई" का उपद्रव है। चिकित्सा से लाभ भी हुआ किन्तु अभी भी हमारा तापमान १०० अंश या उससे दो-चार बिंदु अधिक रहता है। डाक्टरों के अनुसार हमें अच्छे होने में कई सप्ताह लगेंगे। पर 'सरस्वती' तो रुक नहीं सकती, और सम्पादकीय तथा मनोरंजक संस्मरण हमें ही लिखना पड़ता है, अतएव हमने इस अवस्था में ये सम्पादकीय लिखे हैं। रोग-जनित निर्बलता, स्नायुतंतुओं की कमजोरी के अतिरिक्त इन टिप्पणियों के लिखने में हमें व्यक्तिगत मधुर सम्बन्धों की भावुकता और सिद्धान्तों के संघर्ष के कारण विशेष कष्ट हुआ। यदि ऐसी अवस्था में अनजान में हम अपनी टिप्पणियों में किसी मित्र या सज्जन के प्रति कोई ऐसी बात कह गये हों, जो हमें नहीं कहनी चाहिए, तो हमें आशा है कि वे हमारी वर्तमान मानसिक और शारीरिक अवस्था का विचार कर हमें उदारतापूर्वक क्षमा करेंगे। – संपादक)

संपादक का निवेदन—जून के अंक के साथ हमारे "सरस्वती" के संपादन के १८ वर्ष पूरे हो गये और इस अंक के साथ उन्नीसवाँ वर्ष आरंभ होता है। जब हम १९५० में आल इंडिया रेडियो के डिप्टी डाइरेक्टर जनरल के पद से सेवा-निवृत्त हुए तब इंडियन प्रेस के तत्कालीन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी और हमारे सुहृद मित्र स्वर्गीय श्री हरिकेशव घोष ने हमसे "सरस्वती" का संपादन अपने हाथ में लेने का प्रस्ताव किया। हम इस प्रस्ताव को सुनकर चकित रह गये और हमने इस पर विचार करने के लिए समय माँगा। इसी बीच हमें मध्यभारत के शिक्षा-संचालक पद पर जाना पड़ा जहाँ हम ४ वर्ष रहे और १९५५ में लौटे। इस बीच श्री हरिकेशव घोष का स्वर्गवास हो गया। हमारे सेवा-निवृत्त होने का समाचार सुनकर उनके छोटे भाई स्वर्गीय श्री हरिप्रसन्न घोष हमसे मिलने ग्वालियर गये और उन्होंने कहा कि भाई साहब की बड़ी इच्छा थी और मेरा भी अनुरोध है कि आप "सरस्वती" का संपादन करना स्वीकार कर लें। मैंने उनसे विचार करने का समय माँगा और ६ महीने के बाद मैंने उनसे कहा कि मैं इन शर्तों पर संपादन करने को ५ साल के लिए तैयार हूँ कि मैं अवैतनिक संपादक रहूँगा मेरे संपादन में प्रेस के द्वारा किसी प्रकार का हस्तक्षेप न होगा। उन्होंने दोनों शर्तें स्वीकार कर लीं और हमने जुलाई, १९५५ से "सरस्वती" का संपादन आरंभ किया किंतु कितने ही ५ वर्ष बीत गये। हमने कई बार इस कार्य से निवृत्त होने का प्रयत्न किया किंतु ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हो गईं कि हम उसे नहीं छोड़ सके। इसी बीच श्री हरिप्रसन्न घोष का भी स्वर्गवास हो गया और "सरस्वती" का संचालन-भार श्री हरिकेशव घोष के सुपुत्र श्री देवप्रसाद घोष के पास आ गया। वे उत्साही युवक हैं किंतु इस बीच कई कारणों से उनको बड़ी विषम परिस्थितियों का सामना करना पड़ा और वे इतनी परेशानियों में रहे कि इच्छा रहते हुए भी हम संपादन से मुक्ति नहीं पा सके। अगले सितम्बर में हम जीवन के ८० वर्ष पूरे करेंगे। हमारे पास और भी कितने ही इसी प्रकार के अवैतनिक कार्य हैं। हम वृन्दावन के श्री रंग मंदिर के ट्रस्ट तथा ऐसे ही कई अन्य ट्रस्टों के ट्रस्टी हैं। कितनी ही समितियों के सदस्य हैं। हमें कुछ लिखने-पढ़ने का भी काम बराबर करना पड़ता है तथा बहुत सी पारिवारिक समस्याओं में भी उलझना पड़ता है। दुर्भाग्य से प्रयत्न करने पर भी हमें कोई योग्य और उपयुक्त सहायक नहीं मिला क्योंकि हम अच्छा वेतन नहीं दे सकते और सेवाभाव से कम वेतन पर काम करनेवाला सहायक इस युग में मिलना दुर्लभ है। परिणाम यह है कि हम अपने अनेक कृपालु लेखकों के पत्रों का उत्तर भी नहीं दे पाते। हम नहीं जानते कि इन १८ वर्षों में हमने इस कारण अपने कितने कृपालु लेखकों को असंतुष्ट और नाराज कर दिया है। "सरस्वती" के लिए इतने लेख आते हैं और "सरस्वती" का आकार इतना छोटा है कि हम ५ प्रतिशत लेखों को भी स्थान नहीं दे सकते। कितने ही लेखों को प्रकाशन के योग्य समझते हैं और उन्हें प्रकाशन के लिए अलग रख भी लेते हैं। किंतु इस बीच अन्य महत्त्वपूर्ण लेखों के आने के कारण वे सब रह जाते हैं और उनमें से कितने ही लेख प्रकाशित करना चाहते हैं, परन्तु नहीं कर पाते। हमारी दूसरी कठिनाई यह है कि इस व्यावसायिक युग में अधिकांश लेखक पारिश्रमिक चाहते हैं और यह उचित भी है। किन्तु सरस्वती को एक बंगाली संस्था हिन्दी प्रेम के कारण बराबर घाटा सहकर निकालती जा रही है और हमारे पास लेखकों को पुरस्कार देने के लिए धन की अत्यंत कमी है। अतएव हम बहुत से लेखकों को पुरस्कार नहीं दे सकते और जिनको पुरस्कार देते हैं, वह भी नाममात्र के लिए और अपनी विवशता के कारण हम उसे समय से नहीं दे पाते। लेखकों का सम्पर्क संपादक से रहता है और इन सब बातों के परिणामस्वरूप हमें उनकी नाराजगी का शिकार होना पड़ता है। कभी-कभी लोग हमें बड़े भर्त्सनापूर्ण पत्र लिखते हैं जिनका हम बुरा नहीं मानते क्योंकि हम जानते हैं कि उनकी शिकायत ठीक है। फिर भी हमारे सौभाग्य से पृथ्वी अभी 'वीर विहीन' नहीं हुई है, और अब भी ऐसे लेखक हैं जो हिन्दी सेवा की भावना से हमें लेख भेजते हैं और पारिश्रमिक पाने या न पाने की परवाह नहीं करते। "सरस्वती" मुख्यतः इन्हींके सहयोग से चल रही है। स्कूलों और कालेजों के प्राचार्य तथा हिन्दी प्रोफ़ेसर भी 'सरस्वती' ऐसी साहित्य पत्रिका को प्रोत्साहन नहीं देते। वे कहानीप्रधान पत्रिकाओं और चटकीले सामान्यजनोपयोगी साप्ताहिकों को खरीदते हैं। जनता की क्रयशक्ति इतनी कम हो गयी है कि कितने ही साहित्य रसिक उसे खरीदने में असमर्थ हैं। हम मंत्रियों और अधिकारियों के पीछे नहीं दौड़ते। इसलिए सरकार से भी हमें प्रोत्साहन नहीं मिलता। इन १८ वर्षों के अपने संपादन के बारे में हम कुछ नहीं कहना चाहते। भरसक हमने आचार्य द्विवेदी की परम्परा की भावना को "सरस्वती" में जीवित रखने का प्रयत्न किया है और पाठकों को भिन्न-भिन्न विषयों पर अपनी समझ से अच्छी पठन-सामग्री दी है। हमने अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समय में संपादकीय टिप्पणियों की एक विशेष शैली अपनायी और हमें संतोष है कि हमारे पास उनकी प्रशंसा में बहुधा पत्र आते रहते हैं, जो हमारे लिए बड़े उत्साहवर्द्धक हैं। ८ वर्षों से हम बराबर 'मनोरंजक साहित्य संस्मरण' देते आ रहे हैं जो सरस्वती का विशेष स्तम्भ हो गया है।

इधर कई महीनों से हमारा स्वास्थ्य सहसा बिगड़ गया है। हम कुछ दिनों गंभीर रूप से बीमार रहे और अभी भी पूर्ण स्वस्थ नहीं हुए। हम संपादन के कार्यभार से मुक्त होना चाहते हैं किन्तु कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं (जिनको लिखने की आवश्यकता नहीं है) कि हमें इस कार्य से मुक्ति नहीं मिल रही है। हम उपयुक्त उत्तराधिकारी की तलाश में हैं जो सरस्वती का संपादन पारिश्रमिक के लिए नहीं, हिन्दी की सेवा की भावना से करे और हिन्दी की इस सबसे पुरानी और ऐतिहासिक मासिक पत्रिका को जीवित रखे। जब तक ऐसा उत्तराधिकारी नहीं मिलता तब तक या जब तक प्रकृति का अनिवार्य नियम ही हमें विवश न कर दे, हम यह कार्य इस अवस्था में भी यथाशक्ति करते रहेंगे। यह सब लिखने का तात्पर्य केवल इतना ही है कि हमारे कृपालु लेखक और पाठक स्थिति को समझ लें। हमारे उनके पत्रों का उत्तर न देने या लेखों के न छपने के कारण को भी जान लें। क्योंकि स्थिति समझ लेने से संभव है हमारे लेखकों और पाठकों को हमारे ऐसे व्यक्ति के साथ सहानुभूति उत्पन्न हो, और वे हमारे पत्रोत्तर न देने, लेख न छाप सकने की विवशता को समझ सकें, जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं। हम लेखकों की अवज्ञा नहीं करते। कितने ही लेख छापने योग्य चुन लेते हैं किन्तु विवशतावश छाप नहीं पाते। उन लेखकों को हम यह भी नहीं लिख पाते कि उनके लेख अस्वीकार हो गये हैं।

इधर कई वर्ष से प्रेस की गड़बड़ी, बिजली की कमी तथा कर्मचारियों के आंदोलनों के कारण 'सरस्वती' समय से नहीं निकल पा रही है। इसका हमें अत्यंत खेद है। प्रेस की भी कुछ विवशताएँ हैं, किन्तु देर ही से सही, हम "सरस्वती" बराबर निकाल रहे हैं और अपने कृपालु पाठकों और लेखकों से उनके सहयोग और सहानुभूति की अपेक्षा करते हैं। हम पत्रों के उत्तर नहीं दे पाते। इसका कारण अशिष्टता नहीं, हमारी विवशता है। हम उन सब लोगों से क्षमाप्रार्थी हैं जिन्हें हमने नाराज होने का अवसर दिया है, किन्तु हमें विश्वास है वे "सरस्वती" के ऐतिहासिक महत्त्व को जानते हुए हमारी भूल-चूकों को क्षमा करेंगे और अपने हिन्दी प्रेम के कारण "सरस्वती" के प्रति दयादृष्टि रखेंगे।

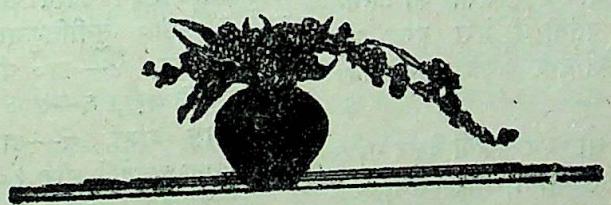

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्तनी-विवाद का एक तमाशा

पण्डित किशोरीदास वाजपेयी

'काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा' ने हिन्दी का व्याकरण लिखने के लिए मुझे आमंत्रित किया और मेरी सब शर्तें स्वीकार करके छत्तीस सौ रुपये मुझे पेशगी दिये; इस शर्त के साथ कि रायल्टी में धीरे-धीरे कुछ काटकर ये रुपये वापस लिये जायेंगे। रायल्टी २०% पक्की हुई। शर्तनामे में यह भी मैंने लिखा लिया था कि जो कुछ और जैसा कुछ भी मैं लिखूंगा, 'सभा' को वैसे का वैसा ही प्रकाशित करना होगा—उसमें कुछ भी परिवर्तन-परिवर्द्धन या काट-छाँट करने का अधिकार 'सभा' को न होगा।

दो वर्ष लगाकर मैंने हिन्दी का व्याकरण 'हिन्दी शब्दानुशासन' नाम से लिखकर तैयार कर दिया और 'सभा' को प्रकाशनार्थ सौंप दिया।

अब 'सभा' ने वर्तनी का सवाल उठाया और कहा कि ग्रन्थ में वर्तनी का रूप कुछ और है; 'सभा' में कुछ और रूप चलता है। इसलिए 'सभा' अपने नियमानुसार वर्तनी इस ग्रन्थ में भी रखेगी। मैंने 'सभा' की बात अस्वीकार कर दी और कहा कि मेरा ग्रन्थ मेरी वर्तनी में ही छपेगा। 'सभा' की ओर से कहा गया—

"'सभा' और हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन (प्रयाग) ने मिल कर हिन्दी-वर्तनी के कुछ सिद्धान्त निश्चित और मान्य किए हैं। दोनों जगह के प्रकाशनों में वे ही सिद्धान्त बर्तनी में चलते हैं। 'सभा' का प्रकाशन उसी वर्तनी में होगा—'हिन्दी शब्दानुशासन' भी 'सभा' अपनी ही वर्तनी में छापेगी।" मैंने कहा—"'सभा' और 'सम्मेलन' ने वर्तनी-सम्बन्धी निर्णय किस तरह किये? क्या हिन्दी के मान्य शब्द-शास्त्रियों के परामर्श से किये थे? कोई विद्वत्समिति बनी थी? चाहे जो भाषा-सम्बन्धी नियम बना ले, यह ठीक नहीं है। विचार-विमर्श कर लिया जाये और यदि 'सभा' की वर्तनी ठीक ठहरे, तो वही सही; उसी वर्तनी में मेरा ग्रन्थ भी छपेगा। अन्यथा, मैं सब कुछ आँखें बन्द करके मानने को तैयार नहीं हूँ।" तब कहा गया—

"'सभा' ने आपको छत्तीस सौ रु० पेशगी देकर ग्रन्थ लिखाया है। वह यहींसे प्रकाशित होगा; और 'सभा' की वर्तनी में प्रकाशित होगा। नियम में आप बाधा नहीं दे सकते।" मैंने निवेदन किया—

"ठीक है, मैं नियम में बाधा नहीं दे सकता; परन्तु 'सभा' भी शर्तनामे को भंग नहीं कर सकती; जिसकी एक प्रति मेरे पास है और वह अदालत में काम आयेगी। शर्त-नामे में लिखा है कि 'लेखक जो कुछ, **जिस रूप में भी** लिखेगा, 'सभा' उसे **उसी रूप में** प्रकाशित करेगी।"

तब शर्तनामा निकलवाया गया और देखा गया। उसमें वह शर्त थी ही! क्या करते? तब तय यह हुआ कि "वाज-पेयीजी की ही वर्तनी में उनका यह ग्रन्थ छापा जाये; परन्तु प्रकाशकीय वक्तव्य में 'सभा' की ओर से सब स्थिति प्रकट कर दी जाये।"

इतने संघर्ष के बाद 'हिन्दी शब्दानुशासन' मेरी अपनी वर्तनी में प्रकाशित हुआ। 'सभा' की ओर से 'प्रकाशकीय वक्तव्य' डा० श्रीकृष्णलाल (साहित्य विभाग के मंत्री) ने लिखा और उसमें उपर्युक्त वर्तनी-विवाद लिखकर स्पष्ट कर दिया कि इस ग्रन्थ में वर्तनी वाजपेयीजी ने अपनी ही रखी है; इस सम्बन्ध में उन्हींकी जिम्मेदारी है। 'सभा' के वर्तनी-नियम कुछ भिन्न हैं।

'सम्मेलन' आगे बढ़ा

'हिन्दी शब्दानुशासन' छपने के बाद अ० भा० हिन्दी प्रकाशक संघ, भारतीय हिन्दी-परिषद् तथा हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन (प्रयाग) ने बार-बार वर्तनी-निर्णय करने-कराने के लिए उत्सुकता प्रकट की; परन्तु काम कुछ भी न हुआ।

पिछले दिनों मैंने 'सम्मेलन' को प्रेरित किया कि वर्तनी तथा शब्दों की एकरूपता का निर्णय करने के लिए एक विद्वत्समिति बनाई जाए और उसके सर्वसम्मत या बहु-सम्मत निर्णय ही सम्पूर्ण हिन्दी-जगत् के निर्णय समझे-माने जायं, तो सब झमेले दूर हो जायें। मैंने यह भी कह दिया कि इस काम में मेरा पूरा सहयोग रहेगा और समिति के सब निर्णय ज्यों के त्यों मेरे लिए शिरोधार्य होंगे।

'सम्मेलन' के अधिकारियों ने मेरी बात मान ली और विद्वत्समिति में इन विद्वानों को रखा गया—१—बाबू रामचंद्र वर्मा, २—डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या, ३—डा० बाबू-राम सक्सेना, ४—डा० धीरेन्द्र वर्मा, ५—डा० उदय-नारायण तिवारी, ६—डा० भोलानाथ तिवारी, ७—डा० रामविलास शर्मा, ८—डा० आर्येन्दु शर्मा, ९—पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी और १०—इन पंक्तियों का लेखक।

सबके पास 'सम्मेलन' से सूचना भी पहुँच गयी। परन्तु उसके बाद सन्नाटा है। पत्र भेजो, तो जवाब नहीं आ रहा है। संभव है, राष्ट्रीय संकट के कारण वह सब स्थगित कर दिया गया हो। बड़े कामों में उलझने पर फिर ऐसे मामलों में पत्रों का उत्तर देना संभव भी नहीं! हिन्दी तो भगवान् के भरोसे चलकर ही यहाँ तक आई है; आगे भी उसीके भरोसे है। यह एक दस्तावेज है, 'सरस्वती' में सुरक्षित रहे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देश जिन्हें भूल गया--श्यामजी कृष्ण वर्मा

श्री शंकरसहाय सक्सेना

जब भारत की स्वतंत्रता का प्रथम युद्ध लड़ा जा रहा था; जब स्वतंत्रता की देवी रानी लक्ष्मीबाई तथा वीरवर तात्या टोपे माँ भारती की दासता की शृंखलाओं को काट डालने के लिए जूझ रहे थे तब कच्छ (राज्य) के मांडवी नामक स्थान पर श्यामजी कृष्ण वर्मा का ४ अक्टोबर १८५७ को जन्म हुआ। श्यामजी कृष्ण वर्मा बचपन में स्वतंत्रता के युद्ध की कहानियाँ सुनते और आत्म-विभोर हो उठते। श्यामजी असाधारण प्रखर बुद्धि के धनी थे अतएव निर्धन माता-पिता ने कच्छ राज्य की राजधानी 'भुज' के स्कूल में उन्हें अंग्रेजी पढ़ाने का निश्चय किया। भुज के अंग्रेजी स्कूल के अध्यापक उनकी कुशाग्र बुद्धि और अद्भुत मेधा से चकित थे। उन्हें यह समझने में देर नहीं लगी कि यह बालक महान् प्रतिभासम्पन्न है। बालक श्यामजी कृष्ण वर्मा की विलक्षण प्रतिभा की कहानी कच्छ भुज के एक व्यापारी मथुरादास लवानी के कानों तक पहुँची। वे उसे भुज से बम्बई ले आये और उसको प्रसिद्ध विल्सन हाईस्कूल में रख दिया। श्यामजी दिन में विल्सन स्कूल में अध्ययन करते और रात्रि को शास्त्री विश्वनाथ की संस्कृत पाठशाला में संस्कृत का अध्ययन करते थे। विल्सन स्कूल में सर्वप्रथम आने पर उन्हें छात्रवृत्ति मिली और वे ऐल्फिन्सटन स्कूल में पहुँचे जहाँ बम्बई के धन कुबेरों के पुत्र पढ़ते थे। ऐल्फिंस्टन स्कूल में भी उस प्रतिभाशाली अद्भुत मेधावी बालक ने सबको प्रभावित कर दिया। अपने सहपाठी रामदास के पिता बम्बई के प्रसिद्ध धनाढ्य व्यवसायी सेठ छबलियादास लल्लूभाई की दृष्टि उस मेधावी बालक पर पड़ी। वे उससे इतने अधिक प्रभावित हुए कि उन्होंने अपनी पुत्री का उसके साथ विवाह कर दिया। वह अकिंचन छात्र धनकुबेर का जामाता बन गया। परन्तु उस स्वाभिमानी युवक ने अपने धनी श्वसुर से कभी सहायता नहीं ली।

बीस वर्ष की आयु में श्यामजी कृष्ण वर्मा ने संस्कृत तथा शास्त्रों का इतना ऊँचा ज्ञान प्राप्त कर लिया कि उन्होंने देश के संस्कृत केन्द्रों में घूमकर संस्कृत में भाषण देने का निश्चय किया। जहाँ भी वे गये संस्कृत के विद्वानों ने उनके संस्कृत ज्ञान की मुक्त कंठ से प्रशंसा की। बम्बई के टाइम्स आफ इंडिया पत्र ने उनकी प्रशंसा में संपादकीय टिप्पणी लिखी। नासिक, बम्बई, बड़ौदा, अहमदाबाद काशी आदि सभी स्थानों पर उनके भाषणों को धारा-प्रवाह में सुनकर संस्कृत के विद्वान् मंत्र-मुग्ध हो गये। उनकी ख्याति देश भर में फैल गयी। आक्सफोर्ड के संस्कृत के प्रोफेसर विलियम्स ने उन्हें छात्रवृत्ति देकर आक्सफोर्ड आने का निमंत्रण भेजा। आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में भी युवक श्यामजी कृष्ण वर्मा ने अपने पांडित्य से सबों पर अपनी धाक जमा ली। आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के उपकुलपति तथा प्रोफेसरों ने उनकी विद्वत्ता की भूरि-भूरि प्रशंसा की। भारत-मंत्री ने प्राच्य विद्या की बर्लिन कांग्रेस में भारत का प्रतिनिधि बनाकर भेजा जहाँ उनके भाषण का गहरा प्रभाव पड़ा।

राजनीति में प्रवेश—पाँच वर्ष आक्सफोर्ड में अध्ययन करके १८८५ में भारत वापस लौट आये और बम्बई के उच्च न्यायालय में बैरिस्टर के रूप में कार्य करने लगे। रतलाम राज्य के तत्कालीन दीवान श्री गोपालराव देशमुख वृद्धावस्था के कारण अवकाश प्राप्त करनेवाले थे। उन्होंने श्यामजी वर्मा को रतलाम के महाराजा से मिलाया। महाराजा श्यामजी से इतने अधिक प्रभावित हुए कि उन्होंने उन्हें रतलाम राज्य का दीवान नियुक्त कर दिया। उस समय उनकी आयु केवल अट्ठाइस वर्ष की थी। उनकी कार्यदक्षता से महाराजा इतने अधिक प्रसन्न हुए कि एक वर्ष के उपरान्त महाराजा ने खिलअत देकर सम्मानित किया। भारत का राजनीतिक विभाग भी उनकी कार्यकुशलता से बहुत प्रभावित था परन्तु रतलाम में श्यामजी कृष्ण वर्मा का स्वास्थ्य एक साथ गिर गया। उन्होंने दो वर्ष के उपरान्त दीवान पद से त्यागपत्र दे दिया और अजमेर आकर बैरिस्टरी करने लगे। श्यामजी कृष्ण वर्मा को वहाँ आश्चर्यजनक सफलता मिली और धन की वर्षा होने लगी। उन्होंने अजमेर के समीप ही तीन काटन जिनिंग कारखाने खड़े किये और प्रसिद्ध देशभक्त सेठ दामोदरदास राठी के सहयोग से ब्यावर में सूती कपड़े की मिल की स्थापना की। अजमेर के सार्वजनिक जीवन में शीघ्र ही उनका महत्त्व-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्ण स्थान बन गया। वे अजमेर नगरपालिका के अध्यक्ष चुने गये।

अपने परामर्शदाता बारहट कृष्णसिंह के सुझाव पर उदयपुर के महाराणा ने उन्हें एक हजार मासिक वेतन पर मेवाड़ राज्य का दीवान नियुक्त कर दिया। यद्यपि श्यामजी की आय इससे कहीं अधिक थी परन्तु राजनीतिक उद्देश्य से देशी रियासतों के द्वारा देश की स्वतंत्रता के लिए कार्य किया जा सकता है इस विचार से उन्होंने मेवाड़ का दीवान पद स्वीकार कर लिया। रतलाम की भाँति ही श्यामजी कृष्ण वर्मा ने अपनी कार्य-कुशलता और पांडित्य से महाराणा को इतना अधिक प्रभावित कर लिया कि वे उनके अनन्य प्रशंसक बन गये। कुछ समय के उपरान्त जूनागढ़ राज्य के दीवान पद का उनके पास निमंत्रण आया। महाराणा ने अत्यन्त अनिच्छापूर्वक उनको जूनागढ़ जाने की आज्ञा दे दी और एक वर्ष का सवेतन अवकाश दे दिया।

जूनागढ़ की दशा अत्यन्त खराब थी। नवाब नाममात्र का शासक था; सारी सत्ता बहाउद्दीन वजीर के हाथ में थी। वह राज्य का नायब दीवान पुरुषोत्तम राय नागर के द्वारा शोषण करता था। श्यामजी कृष्ण वर्मा ने यह सब रोक दिया। अतएव वे उनके विरोधी हो गये। भाग्यवश उन्हें एक अंग्रेज सिविलियन मैकानोमी जिसे श्यामजी कृष्ण वर्मा ने ही नियुक्त किया था मिल गया। उसको मिलाकर उन्होंने श्यामजी कृष्ण वर्मा के विरुद्ध षड्यंत्र खड़ा कर दिया। इस षड्यंत्र के फलस्वरूप उन्हें जूनागढ़ से हटना पड़ा।

महाराणा उदयपुर ने पुनः श्यामजी को मेवाड़ राज्य का दीवान नियुक्त कर दिया परन्तु उदयपुर के पोलीटिकल एजेंट कर्नल वायली ने श्यामजी की नियुक्ति का घोर विरोध किया। यही नहीं अंग्रेजों के समर्थक अंग्रेजी पत्रों ने श्यामजी कृष्ण वर्मा के विरुद्ध विष उगलना आरम्भ कर दिया, राजनीतिक विभाग भी उनके विरुद्ध हो गया। परन्तु महाराणा उदयपुर उनके प्रशंसक थे। उन्होंने कर्नल वायली के विरोध की परवाह न कर उन्हें मेवाड़ का दीवान नियुक्त कर दिया। उस समय तक श्यामजी कृष्ण वर्मा का तिलकजी से संबंध स्थापित हो गया था। वे क्रान्तिकारी विचारों के बन चुके थे और क्रान्तिकारियों से उनका संबंध स्थापित हो चुका था। उनका यह दृढ़ विश्वास बन गया था कि अंग्रेजों को भारत से बलपूर्वक ही निकाला जा सकता है अस्तु देश को स्वतंत्र बनाने का सही मार्ग क्रान्तिकारी मार्ग ही है।

उसी समय नाटू बन्धुओं को सरकार ने पकड़ कर अज्ञात स्थान पर निर्वासित कर दिया। लोकमान्य तिलक को लम्बे समय का कारावास हुआ और रैंड की हत्या के संबंध में, छापेकर बन्धुओं को फाँसी दे दी गयी। सेडीशन कमेटी की रिपोर्ट के अनुसार श्री श्यामजी कृष्ण वर्मा का रैण्ड की हत्या में हाथ था परन्तु वे भारत से निकल गये इस कारण उन पर अभियोग नहीं चल सका। (सेडीशन कमेटी रिपोर्ट पृष्ठ ४५)

वास्तविकता जो भी हो, उस समय तक श्यामजी कृष्ण वर्मा ने मातृभूमि की स्वतंत्रता के लिए कार्य करना अपने जीवन का उद्देश्य बना लिया था किन्तु उन्होंने देखा कि भारत में लेखन और भाषण की स्वतंत्रता नहीं है। यदि वे भारत में रहे तो वे भी नाटू बन्धुओं और लोकमान्य तिलक की भाँति निर्वासित कर दिये जावेंगे, अस्तु उन्होंने विदेश में रहकर भारत की स्वतंत्रता के लिए कार्य करने का निश्चय कर लिया और १८९७ में वे भारत से लंदन चले गये।

इस संबंध में अपने पत्र "सोस्योलाजिस्ट" में लिखते हुए उन्होंने लिखा था कि १८९७ में उन्होंने भारत और १९०७ की जूलाई में लंदन क्यों छोड़ा।

"संस्कृत में एक कहावत है कि अपना पैर कीचड़ में रखकर फिर धोने की अपेक्षा कीचड़ में पैर न रखना ही उत्तम है।" एक दुष्ट सरकार द्वारा अपने को कैद करने देना भूल है क्योंकि उससे कार्य रुक जाता है जब कि उस सम्भावना को जानकर उससे बचा जा सकता है।

आज से ठीक दस वर्ष पूर्व जब मेरे मित्र श्री बाल गंगाधर तिलक और नाटू बन्धु कैद कर लिये गये तो हमने भारत को छोड़कर इङ्गलैंड में बसने का निश्चय किया। अब जब कि हमारे दूसरे मित्र लाला लाजपतराय को देश से निर्वासित कर दिया गया तब हमारे भाग्य में लिखा था कि हम बहुत अधिक व्यय और असुविधा उठाकर इङ्गलैंड को छोड़कर पैरिस को अपना निवासस्थान बनायें। हमारा दृढ़ विश्वास है कि कोई भी भारतीय जो अपने देश को स्वतंत्र करना चाहता है ब्रिटिश साम्राज्य में कहीं भी सुरक्षित नहीं है। भारतीयों को छोड़कर इङ्गलैंड संसार में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९७३

सभी देशों के राजनीतिक पीड़ितों के लिए सुरक्षित आश्रय-स्थल है।

लंदन आकर श्यामजी कृष्ण वर्मा ने उन सभी नेताओं से सम्बन्ध स्थापित कर लिया जो अपने देश की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष कर रहे थे। उसी समय बोअर-युद्ध छिड़ गया। महात्मा गांधी उस समय दक्षिण अफ्रीका में थे। उन्होंने भारतीयों को ब्रिटेन से युद्ध करने के लिए सेना में भर्ती किया और अंग्रेज सरकार का साथ दिया। श्यामजी कृष्ण वर्मा ने गांधीजी तथा उनके अनुयायियों की इस कृत्य के लिए कठोर भर्त्सना की। उन्होंने लिखा कि भारतीय स्वयं अंग्रेजों के दास हैं। वे अंग्रेजों द्वारा स्वतंत्र देशों को दास बनाये जाने में सहायक हों, यह अत्यन्त लज्जा की बात है। यदि दक्षिण अफ्रीका के भारतीय अंग्रेजों की सहायता करने की अपेक्षा बोअर लोगों की स्वतंत्रता की रक्षा के लिए युद्ध में सहायता करते तो उनका नाम दक्षिण अफ्रीका के इतिहास में श्रद्धा से लिया जाता।

श्यामजी ने भारतीय विद्यार्थियों के लिए इङ्गलैंड में अध्ययन करने के लिए दो-दो हजार रुपये वार्षिक की ६ छात्रवृत्तियाँ स्वामी दयानन्द तथा स्पैन्सर के नाम से स्थापित कीं। छात्रवृत्ति की केवल एक ही शर्त थी कि जब छात्र भारत लौटेगा तो सरकारी नौकरी नहीं करेगा।

अपने राजनीतिक विचारों का प्रचार करने के लिए श्यामजी कृष्ण वर्मा ने लंदन से जनवरी १९०५ में 'इंडियन सोस्योलाजिस्ट' पत्र प्रकाशित करना आरम्भ किया। उसका आदर्श मंत्र था :—

"अभ्याक्रमण का प्रतिरोध केवल उचित ही नहीं अनिवार्य है—प्रतिरोध न करने से परार्थ और स्वार्थ दोनों की हानि होती है।"

अब श्यामजी अपने पत्र के द्वारा भारत की दयनीय स्थिति का चित्र उपस्थित करने लगे। वे संसार को यह बताने का प्रयत्न करते थे कि भारत की दासता ही वहाँ का सबसे बड़ा अभिशाप है। भारत की उन्नति तभी होगी जब भारत पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त करेगा। यही नहीं, उन्होंने लंदन में जो भी भारतीय थे उनका एक क्रान्तिकारी संगठन उपस्थित किया। १८ फरवरी १९०५ को श्यामजी कृष्ण वर्मा के मकान पर बीस भारतीयों ने मिलकर 'इंडियन होम-रूल सोसायटी' की स्थापना की जिसका उद्देश्य भारत को स्वतंत्र करना था।

इसके अतिरिक्त श्यामजी कृष्ण वर्मा ने हाइगेट लंदन में भूमि और भवन खरीदकर वहाँ 'इंडिया हाऊस' की स्थापना की। इंडिया हाऊस में वे भारतीय छात्र रहकर अध्ययन करते थे जो उसके क्रान्तिकारी उद्देश्यों को स्वीकार करते थे। शीघ्र ही श्यामजी के नेतृत्व में इंडिया हाऊस तरुण भारतीयों का क्रान्तिकारी केन्द्र बन गया।

श्यामजी ने इंडिया हाऊस का उद्घाटन करने के लिए श्री हाइंडमैन को आमंत्रित किया। उस सभा में इङ्गलैंड के सभी राजनीतिक दलों के प्रतिनिधि तथा प्रमुख पत्रों के संवाददाता उपस्थित थे। भारतीयों में श्री दादाभाई नौरोजी, लाला लाजपतराय, मैडम कामा, हंसराज दोस्त-मुहम्मद तथा बड़ी संख्या में भारतीय छात्र उपस्थित थे।

श्री हाइंडमैन ने उस अवसर पर जो भाषण दिया वह ऐतिहासिक था, उन्होंने कहा 'आज जो स्थिति है उसमें ब्रिटेन के प्रति भक्ति और निष्ठा भारत के प्रति विश्वासघात है, इङ्गलैंड से कोई आशा रखना व्यर्थ है, भारत की मुक्ति के प्रश्न को क्रान्तिकारी, दृढ़ निश्चयवाले, मातृभूमि के लिए अपने को बलिदान करनेवाले लोग हल करेंगे। इंडिया हाऊस की यह संस्था भारत की मुक्ति के मार्ग में एक बड़ा कदम है और आज जो लोग यहाँ जमा हैं उनमें से कुछ लोग उसकी सफलता के प्रथम पुष्पों को देखने के लिए जीवित रहेंगे।'

श्यामजी कृष्ण वर्मा उन अंग्रेजों के भी कटु आलोचक थे जो अपने को भारत का मित्र और हितैषी घोषित करते थे। उनके सम्बन्ध में श्यामजी ने लिखा "वे अच्छे दासों का संचालन करके मालिकों की भाँति अथवा भेड़ का मांस खानेवाले गड़रियों की भाँति भारतीयों को सम्पन्न और संतुष्ट देखना चाहते हैं जिससे कि भारत में ब्रिटिश शासन स्थायी बन सके।"

श्यामजी के इन सब कार्यों का परिणाम यह हुआ कि भारत में ऐंग्लो इंडियन पत्र बौखला उठे। उन्होंने उनके विरुद्ध विष वमन करना आरम्भ कर दिया परन्तु क्रान्तिकारी विचारों के भारतीयों ने उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। लोकमान्य तिलक ने उन्हें बधाई दी। श्यामजी कृष्ण वर्मा भारतीय कांग्रेस के नरमदलीय नेताओं का विरोध करते थे और गरमदल का समर्थन करते थे तथा भारत के हितैषी बनने का दावा करनेवाले ह्यूम, वैडरबर्न, काटन आदि अंग्रेजों की जिनका कांग्रेस पर बहुत प्रभाव था, भर्त्सना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करते थे। इस कारण सभी अंग्रेज उन्हें अत्यन्त खतरनाक समझते थे।

हैनरी काटन के सम्बन्ध में लिखते हुए श्यामजी ने लिखा "प्रत्येक विचारवान भारतीय भारत के राजनीतिक पुनर्जीवन के प्रति निराश हो जाता है जब वह देखता है कि जिस ऐंग्लो इंडियन ने पैंतीस वर्ष तक भारत का खून चूसा, और जो आज भी एक हज़ार पौंड के रूप में भारत के रुधिर को पी रहा है कांग्रेस का मार्ग-दर्शक है।"

श्यामजी की लेखनी ने इस भ्रम को छिन्न-भिन्न कर दिया कि अंग्रेजी शासन भारत के लिए एक वरदान है। 'इंडियन सोश्योलाजिस्ट' में तथ्यों के आधार पर उनके लेख प्रकाशित होते जिनमें वे सिद्ध करते कि ब्रिटिश शासन में भारत का सर्वांगीण पतन हुआ है। ऐंग्लो इंडियन पत्र उनका कोई समाधानकारक उत्तर तो दे नहीं पाते वे उनको हिंसक विप्लवी कहकर केवल बदनाम करते थे।

श्यामजी अत्यन्त स्पष्टवादी थे सिद्धान्त का जहाँ प्रश्न आता वे बड़े से बड़े नेता पर कठोर प्रहार करने से नहीं चूकते थे। जब दक्षिण अफ्रीका के भारतीयों के अधिकारों की पैरवी करने महात्मा गांधी लंदन आये तो उन्होंने उनकी यह कहकर कड़ी आलोचना की कि उनके नेतृत्व में भारतीयों ने बोअर-युद्ध में अंग्रेजों की सहायता की थी। इस सम्बन्ध में 'इंडियन सोश्योलाजिस्ट' में लिखते हुए उन्होंने आइरिश नेता से माइकेल के उन शब्दों का उल्लेख किया जो उन्होंने ब्रिटिश पार्लियामेंट में कहे थे। "यदि मुझे केवल होमरूल ही नहीं ब्रिटिश सरकार ट्रांसवाल के जनतंत्रों की स्वतंत्रता को नष्ट करने के लिए लड़े जानेवाले इस युद्ध में एक शब्द बोलने या अपना एक मत देने के बदले स्वतंत्र आयरिश जनतंत्र भी देती तो भी मैं इस युद्ध के पक्ष में एक शब्द नहीं बोलता और एक मत नहीं देता। श्रीमन् मैं दक्षिण अफ्रीका की स्वतंत्रता के विरुद्ध मत देने की नीचतापूर्ण कीमत पर आयरलैंड की स्वतंत्रता नहीं खरीदूंगा।"

श्यामजी कृष्ण वर्मा के कार्य का अब प्रभाव पड़ने लगा। देश में तथा विदेशों में देशभक्त भारतीय श्यामजी कृष्ण वर्मा को श्रद्धा से देखने लगे। उनको श्री यस० आर० राणा सहयोगी के रूप में मिल गये। वे पेरिस में बस गये थे और हीरों का व्यापार करते थे। वे इंडिया होमरूल लीग के उपाध्यक्ष थे। श्यामजी की प्रेरणा से उन्होंने दो-दो हज़ार रुपये की दो छात्रवृत्तियाँ राणा प्रताप, शिवाजी के नाम से स्थापित कीं और तीसरी किसी मुस्लिम नेता के नाम से स्थापित करने की घोषणा की। श्यामजी कृष्ण वर्मा ने अपनी ओर से ६ छात्रवृत्तियाँ स्थापित करने की और घोषणा की।

उसी समय बी० पी० एम० बापट (जो बाद को सेनापति बापट के नाम से प्रसिद्ध हुए) जो ऐडिनबरा विश्वविद्यालय में अध्ययन करते थे, उन्होंने एक भाषण में ब्रिटिश शासन की आलोचना कर दी। उनकी छात्रवृत्ति बन्द कर दी गयी। लोकमान्य तिलक ने श्यामजी कृष्ण वर्मा को उन्हें साथ ही विनायक दामोदर सावरकर (वीर सावरकर) को आर्थिक सहायता देने के लिए लिखा। श्यामजी ने दोनों को छात्र-वृत्तियाँ दे दीं। दोनों ने ही माँ भारती के चरणों में अपना जीवन समर्पित कर दिया। श्यामजी कृष्ण वर्मा ने इंडिया हाउस के द्वारा अनेक क्रांतिकारी देशभक्तों को मातृभूमि के लिए बलिदान होने की प्रेरणा दी थी।

श्यामजी कृष्ण वर्मा 'इन्डियन सोश्योलाजिस्ट' के द्वारा भारत में गरम दल का समर्थन करते थे। गुप्त रूप से पत्र भारत में बड़ी संख्या में आता था। यही नहीं उन्होंने एक समिति का संगठन किया जो लोकमान्य तिलक के विचारों का प्रचार करें। इसके लिए श्यामजी कृष्ण वर्मा ने एक बड़ी रकम दी और सर्वप्रथम इस योजना में गरम दल के विचारों का प्रचार करने के लिए श्री बिपिनचन्द्र पाल व्याख्याता मनोनीत किये गये।

श्यामजी कृष्ण वर्मा एशियाई देशों की स्वतन्त्रता के प्रयत्नों की अपने पत्र में विशद चर्चा करते थे और भारतीयों को प्रोत्साहित करते थे। आयरलैंड की स्वतन्त्रता के आन्दोलन से प्रेरणा लेने के लिए वे आयरलैंड के देशभक्तों के भाषणों को अपने पत्र में प्रकाशित करते थे। जब डबलिन में दो आयरिश देशभक्तों पर राजद्रोहात्मक पर्चों को चिपकाने के अपराध में अभियोग चलाया गया तो श्यामजी कृष्ण वर्मा ने उस पर्चे के लेख को अपने पत्र में छापकर भारतीयों को उससे पाठ पढ़ने के लिए कहा। वह लेख इस प्रकार था :—

"आयरिशमैन, क्या तुम अपने देश को इंग्लिश सेना तथा पुलिस में भर्ती होकर दासता में जकड़ने और इंग्लैंड

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एड़ी के नीचे दबाए रखना चाहते हो। तुम्हारी प्यारी मातृभूमि की कलाइयों में दासता की हथकड़ी मजबूत और कड़ी हुई है। क्या तुम जंजीर को सेना में भर्ती होकर जो ले दास बनाए हुए है और अधिक जकड़ने में सहायता दोगे।''

उसी समय १८५७ के भारतीय स्वतन्त्रता के प्रथम युद्ध का पचासवाँ वर्ष आ गया। श्यामजी कृष्ण वर्मा ने उसकी जुबली मनाने और भारतीयों को उन वीरों की याद करने के लिए धुआँधार प्रचार किया। वीरवर दामोदर विनायक सावरकर जो उस समय लन्दन में इन्डिया हाउस में अध्ययन करते थे, उनके प्रयत्नों से १० मई को १८५७ के विद्रोह की जयन्ती मनायी गयी। उसी दिन भारत में लाला लाजपत राय और सरदार अजीत सिंह को भारत सरकार ने कैद कर लिया और उन्हें अज्ञात स्थान को ले जाया गया। समस्त भारत में क्षोभ की लहर फैल गयी। श्यामजी कृष्ण वर्मा ने ब्रिटिश शासन पर कठोर प्रहार किया। उन्होंने लिखा कि लाला लाजपतराय का देश-निकाला एक ऐसी घटना है जो भारत में ब्रिटिश शासन के पतन का आभास है। अन्त में उन्होंने लिखा कि लाला लाजपतराय का यह बलिदान भारतीयों को प्रेरणा देगा और इस सत्य को उद्भासित करेगा कि संसार की उन्नति के चरण एक सूली से दूसरी सूली की ओर बढ़ते हैं।

अब अंग्रेज राजनीतिज्ञ श्यामजी कृष्ण वर्मा से बहुत अधिक क्षुब्ध हो उठे। सभी पत्र उनके विरुद्ध कड़ी कार्यवाही की माँग करने लगे। स्काटलैंड यार्ड के गुप्तचर श्यामजी कृष्ण वर्मा के चारों ओर चक्कर काटने लगे। फोटोग्राफ की पिछली प्रतियाँ पुलिस ले गयी। स्काटलैंड यार्ड के अधिकारी आये दिन पूछ-ताँछ के लिए आने लगे। इसी समय श्यामजी कृष्ण वर्मा ने फ्रांसीसी क्रान्ति के प्रसिद्ध गीत 'ला मार्सलीज़'' को अपने पत्र में प्रकाशित किया और साथ ही उसका हिन्दी, उर्दू, संस्कृत, बँगला, गुजराती, मराठी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में पद्यानुवाद भी छाप दिया जिससे कि वह क्रान्ति गीत समस्त भारत में गाया जा सके।

अब श्यामजी कृष्ण वर्मा समझ गये कि उन पर वार होनेवाला है, अस्तु उन्होंने पैरिस चले जाने का निर्णय किया और लंदन छोड़ दिया।

उस समय भारत में घोर दमन-चक्र चल रहा था। श्यामजी कृष्ण वर्मा पैरिस से अपने पत्र द्वारा अंग्रेजों के इस दमन की कथा समस्त योरोप को सुनाते रहे और योरोप के सभी देशों तथा अमेरिका में भारत के लिए सहानुभूति उत्पन्न कर दी। उधर वे भारतीय क्रान्तिकारियों को प्रोत्साहन देते, अस्त्र-शस्त्र तथा आर्थिक सहायता गुप्त रूप से फ्रैंच उपनिवेश के द्वारा पहुँचाते।

श्यामजी कृष्ण वर्मा ने भारत की स्वतंत्रता-प्राप्ति के लिए जो कार्य-क्रम बनाया था उसका रूप बहुत कुछ महात्मा गांधी के असहयोग आन्दोलन से मिलता-जुलता था। उनका कहना था देशव्यापी आम हड़तालों के द्वारा सरकार से प्रत्येक स्तर पर पूर्ण असहयोग कर शासन को पंगु बना देना चाहिए। यद्यपि श्यामजी की योजना शान्तिपूर्ण ढंग से स्वतंत्रता प्राप्त करने की थी; परन्तु उनका यह भी कहना था कि यदि ब्रिटिश सरकार इसी प्रकार कठोर दमन करती रही और भारतीयों को शान्तिपूर्ण ढंग से आन्दोलन नहीं करने दिया तो हिंसा को बचाया नहीं जा सकता। किसी भी पराधीन के लिए यदि हिंसा द्वारा मुक्ति मिल सकती है तो उसे स्वीकार करना चाहिए।

उस समय भारत में क्रान्तिकारी युवकों को फाँसी दी जा रही थी और गोलियों से उनका शिकार किया जा रहा था। श्यामजी कृष्ण वर्मा ने क्रान्तिकारियों का समर्थन किया और प्रफुल्ल चाकसी, खुदीराम बोस, कनाईलाल दत्त, सत्येन्द्रनाथ बोस जो मातृभूमि की बलिवेदी पर शहीद हो गये, उनके स्मारकस्वरूप उनके नाम की छात्रवृत्तियाँ घोषित कीं। जब मदनलाल धींगरा ने लंदन में कर्नल वायली की हत्या कर दी तो समस्त इङ्गलैंड में भय और सनसनी फैल गयी। धींगरा ने भारतीय क्रान्तिकारी इतिहास में एक नया और गौरवशाली अध्याय जोड़ दिया। उसने भारतीय विद्रोह का ब्रिटिश साम्राज्य के हृदय में उसकी राजधानी में शंखनाद किया था। ब्रिटेन की जनता अत्यन्त आतंकित और क्षुब्ध हो उठी। ब्रिटेन के पत्रों ने इस कांड में श्यामजी कृष्ण वर्मा का हाथ बतलाया और उन्होंने सरकार से माँग की कि वह फ्रैंच सरकार से कहे कि वह उन्हें ब्रिटिश सरकार के सुपुर्द कर दे। पैरिस के 'डेलीमेल' के प्रतिनिधि ने श्री श्यामजी कृष्ण वर्मा से कर्नल वायली की हत्या के सम्बन्ध में साक्षात्कार किया और उसने उनके विचारों को तोड़-मरोड़कर प्रकाशित कर दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि राष्ट्रीय विचारों के भारतीयों ने श्यामजी की कड़ी आलोचना की। इस पर श्यामजी कृष्ण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्मा ने टाइम्स में एक पत्र प्रकाशित किया और धींगरा के त्याग और बलिदान की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए अपनी श्रद्धा के प्रतीकस्वरूप उसके नाम पर चार छात्रवृत्तियाँ देने की घोषणा की। ब्रिटिश सरकार ने 'इंडियन सोश्योलाजिस्ट' के प्रकाशकों पर अभियोग चलाया और इंडिया हाऊस समाप्त हो गया। धींगरा कांड के कारण श्यामजी कृष्ण वर्मा एकाकी पड़ गये। उनके मित्र और सहयोगी श्रीमती कामा, राणा तथा सावरकर उनसे पृथक् हो गये। श्रीमती कामा ने लाला हरदयाल के सम्पादकत्व में पैरिस से 'बन्देमातरम्' पत्र निकालना आरम्भ कर दिया और कुछ दिनों के उपरान्त मदनलाल धींगरा के नाम पर 'मदन तलवार' जैनेवा से निकालना आरम्भ किया।

इसी समय प्रथम विश्व-युद्ध आरम्भ होने की सम्भावना स्पष्ट हो गयी। श्यामजी कृष्ण वर्मा पैरिस में अब अकेले पड़ गये थे। साथ ही उन्होंने यह भी देख लिया कि विश्व-युद्ध में फ्रांस और ब्रिटेन के मित्रराष्ट्र बन जाने पर भारतीय राष्ट्रवादियों का पैरिस में रह सकना कठिन होगा; अस्तु उन्होंने पैरिस छोड़ दिया और वे जैनेवा चले गये। जब युद्ध छिड़ गया तो स्विस सरकार ने उनसे यह वचन ले लिया कि वे ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध कोई राजनीतिक संगठन स्विटजरलैंड में खड़ा नहीं करेंगे। यद्यपि श्यामजी ने जैनेवा में अपने वचन के अनुसार ब्रिटिश सरकार के विरोध में कोई कार्य नहीं किया परन्तु वे भारतीय क्रान्तिकारियों से सम्पर्क बनाये रहे और उनकी सहायता करते रहे।

३१ मार्च १९३० को सायंकाल ६ बजे श्यामजी कृष्ण वर्मा का जैनेवा में अपने निवासस्थान पर स्वर्गवास हो गया। अपने लम्बे जीवन में श्यामजी कृष्ण वर्मा ने भारत की स्वतंत्रता के लिए अनवरत प्रयत्न किया। वे भारत की स्वतंत्रता के लिए जिये और मरे। विदेशों में भारत की स्वतंत्रता के लिए जो प्रयत्न हुए उनमें उनका प्रभावकारी सहयोग रहा और भारत की भूमि पर जो भी क्रान्ति के प्रयत्न हुए उनमें श्यामजी कृष्ण वर्मा का हाथ रहा; परन्तु देश उन्हें सर्वथा भूल गया। भारत के स्वतंत्र हो जाने के उपरान्त उनकी स्मृति को चिरस्थायी करने का कोई प्रयत्न नहीं किया गया। उनका कोई स्मारक नहीं बना। पार्लियामेंट भवन में उनका कोई चित्र नहीं लगाया गया। डाक-विभाग ने उनके नाम का टिकिट निकालने की भी कोई आवश्यकता नहीं समझी। आज की पीढ़ी यह भी नहीं जानती कि श्यामजी कृष्ण वर्मा नाम का कोई व्यक्ति था जिसने विदेशों में रहकर आजन्म भारत की स्वतंत्रता के लिए कार्य किया और अपने समस्त जीवन को भारतमाता की सेवा में अर्पण कर दिया था। श्यामजी कृष्ण वर्मा के प्रति हम भारतीयों की कृतघ्नता को देखकर स्वयं कृतघ्नता भी लज्जित होती होगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुजराती साहित्य और जन-जीवन पर रामचरितमानस का प्रभाव

डा० रणधीर उपाध्याय

रामकथा भारतवर्ष के आदि-काव्य की कथा है। महाकवि वाल्मीकि के युग से आज दिन तक भारतीय साहित्य और जन-जीवन में राम-कथा को जो स्थान और सम्मान प्राप्त हुआ है, वह कृष्ण-कथा को छोड़कर भारत की किसी अन्य कथा को नहीं मिला। भगवान् राम का व्यक्तित्व इतना मधुर, मनोहर और मंगलकारी है कि वह किसी भी कवि को सहज ही अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने 'साकेत' में ठीक ही कहा है—

'राम, तुम्हारा वृत्त स्वयम् ही काव्य है,
कोई कवि बन जाय, सहज संभाव्य है।'

इस रामवृत्त ने सर्वप्रथम आदि-कवि वाल्मीकि से 'रामायण' की सृष्टि करवाई। तदंतर तापनीय उपनिषद्, अध्यात्म रामायण, भागवत-पुराण आदि में क्रमशः राम की महिमा और गरिमा रूपायित होती रही। हमारे देश में व्यापक रूप से रामभक्ति का प्रचार करने का विशेष श्रेय रामानुजाचार्य की शिष्य-परंपरा के पाँचवें शिष्य संत रामानंद को है। उन्होंने समस्त उत्तर भारत में जाति-पाँति के बंधनों को ढीला कर सर्व-साधारण में रामनाम का प्रचार किया। गोस्वामी तुलसीदास ने अपने 'मानस' का सर्जन करते समय इन्हीं संत रामानंद के लोकसंग्रह के आदर्शों को ध्यान में रखते हुए राम के लोक-मंगलकारी रूप को हिन्दू जनता के इतना समीप पहुँचा दिया कि वह 'सियाराम मय' बन गयी। रामनाम का जो बीज आदि कवि वाल्मीकि ने भारत की भावभूमि में बोया था उसे विकसित और दृढ़मूल करने का श्रेय महाकवि तुलसीदास को है। इसीलिए तो 'भक्तमाल' के रचयिता नाभादास ने कहा है कि :

"कलि कुटिल जीव निस्तार हित,
बालमीक तुलसी भयो।"

अर्थात् इस कुटिल कलि-काल में मनुष्य-जीवों का उद्धार करने के लिए महाकवि वाल्मीकि संत तुलसीदास के रूप में अवतरित हुए हैं। उनके ग्रंथ 'रामचरित मानस' ने इस देश की कोटि-कोटि जनता को राम-भक्त बनाया, सभी वर्णों और वर्गों को एक सूत्र में बाँधा और राष्ट्र का सांस्कृतिक संगठन कर भावात्मक ऐक्य की स्थापना की। 'मानस' की लोकप्रियता देखकर सुप्रसिद्ध विदेशी विद्वान् डॉ० ग्रियर्सन ने लिखा है कि "उत्तर भारत में 'रामचरित-मानस' का जितना प्रचार है, उतना इंगलैंड में बाइबल का भी नहीं है।"

महाकवि तुलसीदास ने 'श्रुतिसम्मत' या 'नाना पुराण-निगमागम-सम्मत' रामकथाश्रित 'रामचरितमानस' महाकाव्य का प्रणयन संवत् १६३१ में प्रारंभ किया और संवत् १६३३ में समाप्त किया। तदंतर क्रमशः उसका प्रचार एवम् प्रसार समस्त उत्तर भारत में हुआ। गुजरात प्रदेश का जनजीवन और साहित्य 'मानस' से सत्रहवीं शती के उत्तरार्द्ध से धीरे-धीरे प्रभावित होने लगा। कालान्तर में यह प्रभाव अधिक व्यापक एवम् सुदृढ़ बना। यहाँ यह उल्लेख्य है कि गुजरात में कृष्णभक्ति का जितना अधिक प्रचार हुआ है उतना रामभक्ति का नहीं हुआ। महाप्रभु वल्लभाचार्य और उनके सुपुत्र श्री विट्ठलनाथजी की गुजरात-यात्राओं ने पुष्टि-संप्रदाय के प्रचार में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। संत तुलसीदास का गुजरात में पदार्पण नहीं हुआ, किन्तु रामानन्दी संतों और महन्तों की गुजरात-यात्राओं ने यहाँ रामभक्ति को लोकप्रिय बनाया। इसीके साथ गुजरात से जो तीर्थ-यात्री अयोध्या, काशी, चित्रकूट, पंचवटी, इत्यादि तीर्थ-स्थानों की यात्राएँ करते, वे भगवान् रामचन्द्रजी के भजन, कीर्तन, नामस्मरण, कथाश्रवण इत्यादि के आयोजनों से अत्यधिक प्रभावित होते और अपने चित्त पर उनकी अमिट छाप लेकर लौटते। इसीके परिणामस्वरूप गुजरात में रामभक्ति और राम-चरितमानस का प्रचार हुआ और वह लोकप्रिय बना। पिछले चार सौ वर्षों से यह प्रभाव गुजरात के साहित्य और जनजीवन पर अक्षुण्णरूपेण परिलक्षित होता है।

गुजराती साहित्य पर 'मानस' का प्रभाव सत्रहवीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शती के उत्तरार्द्ध से पाया जाता है। गुजराती के सर्वश्रेष्ठ आख्यानकार प्रेमानन्द ने 'मानस' से प्रेरित एवम् प्रभावित होकर सन् १६८५ ई० में 'रणयज्ञ' नामक आख्यान-काव्य की रचना की। तत्पश्चात् एक वृद्ध रामभक्त साधु के आश्रय में रहकर डभोई की विधवा ब्राह्मण-युवती दीवाली-बाई ने रामजन्म, रामबाल-लीला, राम-विवाह, राम-राज्याभिषेक इत्यादि विषयों की 'गरबियाँ' रचीं। उमरेठ की पुरीबाई ने भी 'सीता-मंगल' नामक सीताजी के विवाह के वर्णनात्मक कथा-काव्य का प्रणयन किया। इसमें उन्होंने गोस्वामी तुलसीदासजी के प्रति अपना आदर-भाव प्रकट करते हुए उन्हें 'बाबा गुरुजी' कहा है। इसी परंपरा के गिरधर कवि हैं जिन्होंने गुजराती भाषा में संवत् १८९३ में 'रामायण' की रचना की जो अत्यधिक लोकप्रिय हुई। गिरधर कवि हिन्दी के भी अच्छे ज्ञाता थे। अपनी गुजराती 'रामायण' में बीच-बीच में हिन्दी के छंदों का भी प्रयोग किया है। इस कृति पर 'रामचरित मानस' की रचना-पद्धति, चरित्रांकन और भक्ति-भावना का पूरा प्रभाव पाया जाता है। सौराष्ट्र के मूलदास मोहनदास नीमावत ने १९५२ में रचित अपने 'वीरायण' शीर्षक महावीर स्वामी के काव्यात्मक जीवन-वृत्तांत में 'मानस' की दोहा-चौपाई शैली, अवधी भाषा और कांड परंपरा का निर्वाह किया है। यहाँ भक्त-कवयित्री गवरीबाई के रामभक्ति के पदों का भी उल्लेख करना युक्तियुक्त होगा।

कथावाचकों की तरह गुजरात में 'भाणभट्टों' की परंपरा कई वर्षों से चल रही है। भाणभट्ट श्रोताओं के सामने मंच पर बैठकर पीतल या ताँबे की बड़ी-सी गागर (भाण) अपने दोनों हाथों की अँगुलियों में पहनी अँगूठियों से बजा-बजाकर सुरीले कंठ से गाकर धार्मिक आख्यान प्रस्तुत करते हैं। इनमें 'मानस' के प्रसंग भी यदा-कदा गुजराती भाषा में प्रस्तुत किये जाते रहे हैं। प्रेमानन्दकृत 'रणयज्ञ', शामल भट्टकृत 'अंगद विष्टि' एवम् 'रावण-मंदोदरी संवाद' सूरत के भाणभट्ट हरि राम-कृत 'सीता-स्वयंवर', सौराष्ट्र के नागर कवि कालिदास कृत 'सीता-स्वयंवर' इत्यादि आख्यान भाणभट्टों की कथाओं में अधिक लोकप्रिय हुए हैं। अन्य कई अलिखित एवम् अप्रकाशित राम भक्ति-विषयक आख्यान भी भाणभट्टों ने प्रस्तुत किये हैं। जिनसे भावना-शील जनता के जीवन में भक्तिधारा का सिंचन हुआ है। इसी प्रकार गुजरात में सर्वत्र 'गरबियों' और 'गरबों' द्वारा भी रामकथा के महत्त्वपूर्ण अंश गाये जाते रहे हैं।

गुजरात का अत्यन्त लोकप्रिय लोकनाटक 'भवाई' है। यह विगत चार सौ वर्षों से जनसाधारण का मनोरंजन करता चला आ रहा है। भवाई में संगीत, नृत्य और गद्य-पद्यात्मक संवादों के द्वारा विभिन्न विषयों के 'वेश' प्रदर्शित किये जाते हैं। 'वेश' से भवाई के 'खेल' का बोध होता है जिसे 'स्वांग' भी कहते हैं। एक रात में क्रमशः चार-पाँच 'वेश' 'भवैयों' के द्वारा प्रदर्शित किये जाते हैं। गणपति, कालिका, कान्ह-गोपी, शंकर-पार्वती आदि धार्मिक वेशों के साथ 'राम-लक्ष्मण' भवाई-वेश भी खेला जाता है। 'राम-लक्ष्मण-वेश' का आधार 'राम-चरित-मानस' की रामकथा है। इस वेश में एक स्थान पर यह प्रसिद्ध दोहा गाया जाता है :

'राम राम सब कोइ कहे, दशरथ कहे न कोय।
एक बार दशरथ कहे, तो कोटि यज्ञ-फल होय॥'

भवाई वेशों ने मनोरंजन प्रदान करने के अतिरिक्त गुजरात की पिछड़ी जातियों में भक्ति-भावना को भी जाग्रत रखा है। इसी प्रकार 'कठपुतली' के खेलों में भी यदा-कदा 'रामकथा' के विविध प्रसंग प्रस्तुत किये जाते हैं।

गुजरात का अपना निजी रंगमंच है जिसका प्रारंभ सन् १८५२ के आसपास हुआ था। सन् १८९० से १९२० तक गुजराती रंगमंच पर नाट्य प्रवृत्ति अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँची हुई थी। कई व्यावसायिक और अवैतनिक नाटक-मंडलियों ने गुजरात, सौराष्ट्र और बंबई में अपने नाट्याभिनय कर पर्याप्त संपत्ति और कीर्ति संपादित की। इनमें मोरबी आर्य सुबोध नाटक मंडली, बांकानेर आर्य हितवर्द्धक नाटक मंडली, देशी नाटक समाज, लक्ष्मी विजय नाटक मंडली, आर्य नैतिक नाटक समाज, लक्ष्मीकांत नाटक मंडली आदि उल्लेखनीय हैं। इन नाटक मंडलियों ने सामाजिक और धार्मिक नाटक खेलकर गुजरात की जनता को मनोरंजन के साथ-साथ सदुपदेश भी दिया। विगत सौ वर्षों में जो धार्मिक नाटक गुजराती रंगमंच पर खेले गये हैं उनमें मानसाश्रित रामकथा के नाटक भी हैं। पारसी-गुजराती रंगमंच के शिष्ट भी नाटकों के सर्वश्रेष्ठ लेखक केखुशरू काबराजी ने अपने अन्य नाटकों के साथ रामकथा पर आधृत गुजराती में 'लवकुश', 'सीताहरण' इत्यादि नाटक लिखे जो हजारों प्रेक्षकों के समक्ष अभिनीत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९७३

हुए। इसी विषय से सम्बद्ध वाघजी भाई आशाराम ओझा का 'सीता-स्वयंवर' और 'रावण-वध' नामक रंगमंचीय नाटक लोकप्रिय बने। कवि नर्मद ने समकालीन व्यावसायिक नाटक मंडली की माँग पूरी करने के लिए 'राम-जानकी नाटक' लिखा। सांप्रत युग के सुप्रसिद्ध नाटककार चन्द्रवदन मेहता का 'सीता' नाटक सीता की कारुण्य-मूर्ति चित्रित करता है। यह अभिनेय नाटक 'रामचरितमानस' की कथा पर आधारित है।

'भवाई' की भाँति गुजरात में 'रामलीला' का भी बहुत प्रचार है। कहा जाता है कि गोस्वामी तुलसीदास ने सर्व-प्रथम रामलीला का प्रारंभ काशी और अयोध्या में किया था। तदंतर इसका सर्वत्र प्रचार हुआ। रामलीला की कथावस्तु 'रामचरितमानस' से ही ली जाती है। खुले मैदान में या किसी मंदिर के चौक में गुजरात में रामलीला का नाटक के रूप में अभिनय होता है। नट-गण रामायण के स्त्री-पुरुष पात्रों की भूमिकाएँ लेकर अभिनय करते हैं। गुजरात की ग्रामीण अशिक्षित जनता में रामलीला बहुत लोकप्रिय है। प्रेक्षक-गण रामलीला के पात्रों को कभी-कभी वास्तविक मानकर उनकी पूजा, आरती और स्तुति करते हैं। जिस प्रकार 'रामचरित मानस' शिक्षित समुदाय का आदरणीय धर्म ग्रंथ है, उसी प्रकार 'रामलीला' अशिक्षितों का धार्मिक रंगमंचीय नाटक है। दोनों की लोकप्रियता असंदिग्ध है।

रामानंदी संप्रदाय यद्यपि संत रामानंद द्वारा प्रवर्तित हुआ, पर इसे लोकप्रिय बनाने का श्रेय 'मानस' के स्रष्टा गोस्वामी तुलसीदास को ही है। सौराष्ट्र में रामानंदी पंथ का विशेष प्रचार है। गुजरात के अधिकांश गाँवों और शहरों में 'रामजी मंदिर' पाये जाते हैं जहाँ तुलसीकृत रामायण की नियमित कथाएँ होती हैं और प्रतिदिन 'मंगले प्रकट कृपाला दीनदयाला कौसल्या हितकारी' गाकर आरती होती है। रामजी मंदिर के महंत, साधु या पुजारी 'रामचरितमानस' से भगवान् रामचन्द्रजी के पुनीत प्रसंगों को चुन-चुनकर उन पर व्याख्यान करते हैं और रामभक्ति की सरिता में भक्तों को निमज्जित कर पावन करते हैं। 'जय रामजी की' और 'राम राम' तो सामान्य जनता के सार्वजनिक अभिवादन हैं। गुजरात की लोहार, भरवाड़, कोली, पाटीदार, बढ़ई इत्यादि जातियों का तो 'राम राम' ही एकमात्र स्वागत सूचक शब्द है। आज भी गुजरात के कई परिवारों में प्रतिदिन धार्मिक भावना से 'रामचरित-मानस' का पारायण किया जाता है। कुछ लोग इसका पारायण भी करते हैं। गुजरात के कतिपय सज्जनों को तुलसीकृत रामायण की अधिकांश चौपाइयाँ और दोहे कंठस्थ हैं।

आधुनिक युग में गुजरात में रामचरित मानस और संत तुलसीदास को लोकप्रिय बनाने का श्रेय राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी को है। उन्हें राम का व्यक्तित्व और कृतित्व इतना उत्कृष्ट कोटि का और आदर्श संपन्न प्रतीत हुआ कि उन्होंने रामचरितमानस से 'रामराज्य' की भव्य कल्पना अंगीकार की और साबरमती आश्रम की अपनी दैनिक प्रार्थना में 'रघुपति राघव राजा राम, पतित-पावन सीताराम' की धुन अपनाई। यही नहीं, 'मानस' की एक प्रति पाठ करने के लिए उन्होंने हमेशा अपने पास रखी और जब सत्याग्रह आश्रम की स्थापना के अनंतर स्वर्गीय नारायण मोरेश्वर खरे द्वारा 'आश्रम भजनावली' का उन्होंने संपादन करवाया तब उसमें तुलसीदासजी के कुछ पदों के साथ 'मानस' की चौपाइयों और दोहों को भी सम्मिलित किया।

'परहित सरिस धरम नहिं भाई।
पर पीड़ा सम नहिं अधमाई॥
जेहि के जेहि पर सत्य सनेहू।
सो तेहि मिलत न कछु संदेहू॥'

इत्यादि कई सुप्रसिद्ध अर्द्धालियाँ भजनावली में संकलित हैं। आश्रम में पूज्य बापू स्वयम् 'रामायण' का पाठ करते और अपने अंतेवासियों को उसका पाठ करने का आदेश देते।

संत तुलसीदास ने रामचरित मानस में मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् राम का दैवी रूप चित्रित किया है। इसी के साथ उसमें राम का नरत्व भी पूर्णता लिए हुए है इसीलिए गांधीजी को वह ग्राह्य था। राम के इस रूप के आकर्षण का एक अच्छा उदाहरण डॉ० कामिल बुल्के ने दिया है। भारतीय विद्याओं के विशेषज्ञ उनके एक मित्र जब इन्डोनेशिया के एक मुसलमान से यह पूछा कि वह रामायण क्यों पढ़ता है तो उत्तर दिया कि "मैं रामायण एक बेहतर इन्सान बनने के लिए पढ़ता हूँ।" भारत के लोगों को बेहतर इन्सान बनाने के लिए ही 'बापू' ने रामायण-पाठ का आग्रह रखा था। उनके कारण गुजरात में 'रामायण' का महत्त्व बढ़ा। इसी प्रकार स्वर्गीय भिक्षु अखंडानंद ने 'रामचरित मानस' का सरल गुजराती अनुवाद करवाकर उसे काफी सस्ती कीमत से अपने अहमदाबाद स्थित सस्तु साहित्यवर्धक कार्यालय द्वारा प्रकाशित किया। उन्हींके कारण 'रामायण' ग्रंथ गुजरात के घर-घर में पहुँचा है। हम यहाँ दोनों परम पूज्य स्वर्ग-वासी महात्माओं को सादर प्रणाम करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय प्रकाशन : १९७२

श्री शिवनारायण खन्ना

१९७२ का वर्ष पुस्तक प्रकाशन की दृष्टि से उल्लेखनीय है। इस वर्ष को सम्पूर्ण विश्व ने अन्तर्राष्ट्रीय पुस्तक वर्ष के रूप में मनाया। अन्तर्राष्ट्रीय पुस्तक वर्ष मनाने की घोषणा संयुक्त राष्ट्र शैक्षिक, वैज्ञानिक, सांस्कृतिक, संगठन (यूनेस्को) ने की। मार्च-अप्रैल ७२ में यूनेस्को के सहयोग से भारत की राजधानी दिल्ली में विश्वपुस्तक मेला आयोजित हुआ। इस मेले में भारतीय तथा विदेशी पुस्तकें प्रदर्शित थीं। पुस्तकों के विक्रय की व्यवस्था भी थी। नेशनल बुक ट्रस्ट ने राष्ट्रीय पुस्तक प्रदर्शनी भी आयोजित की। स्वतन्त्रता के बाद भारत में प्रकाशित सभी भाषाओं को मिलाकर लगभग १०,००० पुस्तकें प्रदर्शित की गयीं।

संयोग से अन्तर्राष्ट्रीय पुस्तक वर्ष तथा विश्व पुस्तक मेला का वही वर्ष है जब स्वतन्त्र भारत ने अपनी रजत जयन्ती मनायी। अन्तर्राष्ट्रीय पुस्तक वर्ष का उद्देश्य है सभी मनुष्यों को कम से कम समय में अधिकतम पुस्तकें उपलब्ध करना। विश्व पुस्तक मेला के साथ-साथ उन्हीं दिनों दिल्ली में विश्व संस्कृत सम्मेलन, साहित्य अकादमी का सेमीनार तथा पुरस्कार वितरण समारोह तथा अखिल भारतीय पुस्तकालय संघ का १९वाँ अधिवेशन भी मनाया गया। इस प्रकार लेखक, प्रकाशक, प्रेस, पुस्तक विक्रेता और पाठक सभी ने एक साथ पुस्तक निर्माण एवं उनके वितरण पर विचार विनिमय किया।

अंग्रेजी--पिछले वर्ष के समान ही इस वर्ष भी अंग्रेजी भाषा के प्रकाशनों की संख्या सर्वाधिक है। अंग्रेजी भाषा में इस वर्ष ४१५८ पुस्तकें शासकीय क्षेत्र से तथा ३५५६ निजी क्षेत्र से प्रकाशित हुईं। अंग्रेजी प्रकाशनों के आधिक्य का प्रमुख कारण अंग्रेजी भाषा का केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों की राजभाषा होना है। अंग्रेजी पुस्तकें भारत के सभी राज्यों से पर्याप्त संख्या में प्रकाशित होती हैं।

विषय विश्लेषण की दृष्टि से अंग्रेजी भाषा में सर्वाधिक प्रकाशन सामाजिक विषयों से सम्बन्धित हैं। सामाजिक विषयों के अन्तर्गत समाजशास्त्र, राजनीति शास्त्र, अर्थशास्त्र, विधिशास्त्र तथा शिक्षाशास्त्र आदि विषय सम्मिलित हैं। १९७२ में अंग्रेजी भाषा में प्रकाशित होनेवाले निजी प्रकाशनों का विषयनुसार विश्लेषण इस प्रकार है :—

सामान्य विषय	५०
दर्शनशास्त्र	९
धर्म	२९
सामाजिक विषय	८०
भाषाशास्त्र	७
विज्ञान	२५
तकनीकी तथा औद्योगिकी शास्त्र	१७
आमोद-प्रमोद, खेलकूद और कला	२
साहित्य	४
इतिहास, जीवनी तथा भूगोल	२
बाल साहित्य	१
पाठ्य पुस्तकें	३
सहायक पुस्तकें	४
विविध	१

अंग्रेजी भाषा में प्रकाशित शासकीय प्रकाशनों का ब्योरा निम्नलिखित है:—

सामान्य विषय	
धर्म	२
सामाजिक विषय	
भाषाशास्त्र	१
विज्ञान	४
तकनीकी तथा औद्योगिकी शास्त्र	
आमोद-प्रमोद, खेलकूद और कला	
साहित्य	१
इतिहास, जीवनी तथा भूगोल	१
बाल साहित्य	२
विविध	२

अरबी—भारत में इस वर्ष अरबी भाषा की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकें छपीं। विषय की दृष्टि से साहित्यिक पुस्तकों की संख्या अधिक है।

असमी—इस वर्ष असमी भाषा की ३०३ पुस्तकें छपीं। सांख्यकीय दृष्टि से आधे से अधिक प्रकाशन साहित्यिक विषयों से सम्बन्धित हैं। असमी भाषा के प्रमुख प्रकाशन केन्द्र गोहाटी, कलकत्ता, शिलांग तथा जोरहाट हैं। प्रकाशनों का विषयानुक्रम निम्नलिखित है।—

सामान्य विषय	५
दर्शनशास्त्र	९
धर्म	१२
सामाजिक विषय	२३
भाषा शास्त्र	६
विज्ञान	६
तकनीकी तथा औद्योगिकी शास्त्र	५
आमोद-प्रमोद, खेल-कूद और कला	१२
साहित्य	१८७
इतिहास, जीवनी और भूगोल	३८

उड़िया—उड़िया भाषा की इस वर्ष ४८० पुस्तकें छपने का विवरण मिला है। प्रमुख प्रकाशन नगर कटक, भुवनेश्वर, पुरी और कलकत्ता हैं। विषयानुसार प्रकाशन क्रम निम्नलिखित है :—

सामान्य विषय	६
दर्शनशास्त्र	५
धर्म	१२
सामाजिक विषय	७१
भाषाशास्त्र	१२
विज्ञान	४३
तकनीकी तथा औद्योगिकी शास्त्र	१३
आमोद-प्रमोद, खेलकूद और कला	५
साहित्य	२८०
इतिहास, जीवनी और भूगोल	३३

उर्दू—उर्दू भाषा की अधिकतर पुस्तकें उत्तरप्रदेश, बिहार, पंजाब और दिल्ली से प्रकाशित होती हैं। १९७२ में उर्दू की ३२३ पुस्तकें छपने का विवरण मिला है। विषयानुसार ब्यौरा इस प्रकार है :—

सामान्य विषय	३
दर्शनशास्त्र	१
धर्म	२६
सामाजिक विषय	१८
भाषाशास्त्र	५
विज्ञान	६
तकनीकी तथा औद्योगिकी शास्त्र	११
आमोद-प्रमोद, खेलकूद और कला	२
साहित्य	२३९
इतिहास, जीवनी तथा भूगोल	१२

कन्नड़—मैसूर की राजभाषा कन्नड़ के प्रमुख प्रकाशन केन्द्र मैसूर, बंगलोर तथा मद्रास नगर हैं। इस वर्ष कन्नड़ भाषा की ५२९ पुस्तकें छपने का विवरण मिला है। विषयानुसार क्रम निम्नलिखित है :—

सामान्य विषय	११
दर्शनशास्त्र	२८
धर्म	४०
सामाजिक विषय	११
भाषाशास्त्र	१६
तकनीकी तथा औद्योगिकी शास्त्र	८
आमोद-प्रमोद, खेलकूद और कला	६
साहित्य	३०३
इतिहास, जीवन और भूगोल	५३

खासी—१९७२ में खासी भाषा की २७ पुस्तकें छपने का विवरण मिला है। उपन्यास, कहानी और काव्य पुस्तकों की संख्या अधिक है।

गुजराती—इस वर्ष गुजराती भाषा की ७३६ पुस्तकें छपीं। गुजराती भाषा के प्रमुख प्रकाशन नगर अहमदाबाद, बड़ौदा, राजकोट और बम्बई हैं। सांख्यकीय दृष्टि से विषयानुसार प्रकाशन क्रम निम्नलिखित हैं :—

सामान्य विषय	९
दर्शनशास्त्र	३९
धर्म	४८
सामाजिक विषय	१४६
भाषाशास्त्र	६
विज्ञान	२०
तकनीकी तथा औद्योगिकी शास्त्र	५७
आमोद-प्रमोद, खेलकूद और कला	१३
साहित्य	३६१
इतिहास, जीवनी और भूगोल	३७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डोंगरी—डोंगरी भाषा की इस वर्ष ४८ पुस्तकें प्रकाशित होने का विवरण मिला है। इनमें साहित्यिक पुस्तकों की संख्या अधिक है।

तमिल—इस वर्ष तमिल भाषा की ६८७ पुस्तकें छपीं। इनमें दो तिहाई मद्रास तथा शेष तमिलनाडु के अन्य नगरों से प्रकाशित हुईं। सांख्यकीय दृष्टि से विषयानुसार प्रकाशन क्रम निम्नलिखित है :—

सामान्य विषय	२९
दर्शनशास्त्र	२२
धर्म	१०२
सामाजिक विषय	३१
भाषाशास्त्र	३८
विज्ञान	७
तकनीकी तथा औद्योगिकी शास्त्र	१९
आमोद-प्रमोद, खेल-कूद और कला	२३
साहित्य	३६३
इतिहास, जीवनी तथा भूगोल	५३

तेलुगु—तेलुगु भाषा की इस वर्ष ५७६ पुस्तकें छपने का विवरण मिला है। तेलुगु भाषा के प्रमुख प्रकाशन केन्द्र सिकन्दराबाद, हैदराबाद, विजयवाड़ा और मद्रास नगर हैं। विषयानुसार प्रकाशन क्रम इस प्रकार है :—

सामान्य विषय	१२
दर्शनशास्त्र	२४
धर्म	७८
सामाजिक विषय	३५
भाषाशास्त्र	९
विज्ञान	१३
तकनीकी तथा औद्योगिकी शास्त्र	१९
आमोद-प्रमोद, खेल-कूद और कला	८
साहित्य	३२९
इतिहास, जीवनी और भूगोल	४९

पंजाबी—इस वर्ष पंजाबी भाषा की ४४५ पुस्तकें छपने का विवरण मिला है। अधिकतर प्रकाशन चण्डीगढ़, दिल्ली, अमृतसर तथा जालंधर से प्रकाशित हुए। सांख्यकीय दृष्टि से विषयानुसार प्रकाशन-क्रम इस प्रकार है:—

सामान्य विषय	४
दर्शनशास्त्र	२३
धर्म	२८
सामाजिक विषय	७१
भाषाशास्त्र	४
विज्ञान	१६
तकनीकी तथा औद्योगिकी शास्त्र	३६
आमोद-प्रमोद, खेल-कूद और कला	१०
साहित्य	२१७
इतिहास, जीवनी और भूगोल	३१

फारसी—फारसी भाषा की २ पुस्तकें इस वर्ष भारत में प्रकाशित होने का विवरण मिला है।

बँगला—१९७२ में बंगला भाषा की १०७३ पुस्तकें छपीं। सांख्यकीय दृष्टि से भारतीय भाषाओं में बंगला भाषा का तृतीय स्थान है। लगभग दो-तिहाई पुस्तकें कलकत्ता से और शेष अन्य नगरों से प्रकाशित हुईं। विषयानुसार विश्लेषण निम्नलिखित है:—

सामान्य विषय	२६
दर्शनशास्त्र	२२
धर्म	४३
सामाजिक विषय	१२१
भाषाशास्त्र	१९
विज्ञान	३३
तकनीकी तथा औद्योगिकी शास्त्र	१९
आमोद-प्रमोद, खेल-कूद और कला	६१
साहित्य	५८९
इतिहास, जीवनी और भूगोल	१४६

मणिपुरी—इस वर्ष प्रकाशित होने वाली मणिपुरी भाषा की ११ पुस्तकों का विवरण मिला है। इनमें साहित्यिक पुस्तकों की संख्या अधिक है।

मराठी—सांख्यकीय दृष्टि से भारतीय भाषाओं में इस वर्ष मराठी भाषा का द्वितीय स्थान है। इस वर्ष मराठी भाषा की १२०१ पुस्तकें छपीं। बम्बई, नागपुर, सूरत और पूना आदि नगर मराठी भाषा के प्रमुख प्रकाशन नगर हैं। विषयानुसार प्रकाशन क्रम निम्नलिखित है :—

सामान्य विषय	३
दर्शन शास्त्र	९
धर्म	२०९
सामाजिक विषय	२१
भाषाशास्त्र	६३
विज्ञान	

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तकनीकी तथा औद्योगिकी शास्त्र	३१
आमोद-प्रमोद, खेल-कूद और कला	१५
साहित्य	५८५
इतिहास, जीवनी और भूगोल	१३५

मलयालम--मलयालम भाषा के प्रमुख प्रकाशन नगर त्रिवेन्द्रम तथा मद्रास हैं। १९७२ में मलयालम भाषा की ६७९ पुस्तकें छपने का विवरण मिला है। इनमें साहित्यिक पुस्तकों की संख्या सर्वाधिक है। सांख्यकीय दृष्टि से विषयानुसार प्रकाशन-क्रम निम्नलिखित है :—

सामान्य विषय	१०
धर्म	६३
सामाजिक विषय	४३
भाषाशास्त्र	१८
विज्ञान	३२
तकनीकी तथा औद्योगिकी शास्त्र	३८
आमोद-प्रमोद, खेल-कूद और कला	८
साहित्य	३९३
इतिहास, जीवनी और भूगोल	६७

संस्कृत—संस्कृत भाषा के प्रमुख प्रकाशन राज्य उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, बिहार तथा केन्द्रीय शासित प्रदेश दिल्ली हैं। इस वर्ष संस्कृत भाषा की १८८ पुस्तकें छपीं। विषयानुसार विवरण निम्नलिखित हैं।

सामान्य विषय	३८
दर्शनशास्त्र	६
धर्म	६६
सामाजिक विषय	९
भाषाशास्त्र	२२
विज्ञान	१
तकनीकी तथा औद्योगिकी शास्त्र	४
कला	१
साहित्य	३९
जीवनी तथा इतिहास	२

हिन्दी--भारतीय भाषाओं में हिन्दी की सर्वाधिक पुस्तकें प्रकाशित हुई। यह संख्या सभी भारतीय भाषाओं के योग का लगभग एक तिहाई है। हिन्दी में सर्वाधिक पुस्तकें सामाजिक विषयों से सम्बन्धित हैं। सामाजिक विषयों के अन्तर्गत समाजशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र, विधिशास्त्र और शिक्षा शास्त्र सम्मिलित हैं। विषयानुसार विश्लेषण इस प्रकार है :—

सामान्य विषय	३७
दर्शनशास्त्र	७३
धर्म	१२७
सामाजिक विषय	१११५
भाषाशास्त्र	१२९
विज्ञान	२१३
तकनीकी तथा औद्योगिकी शास्त्र	११४
आमोद-प्रमोद, खेल-कूद और कला	८२
साहित्य	८९८
इतिहास, जीवनी और भूगोल	२२१

उपर्युक्त विश्लेषण से ज्ञात होता है कि अंग्रेजी तथा हिन्दी में सर्वाधिक, प्रकाशन सामाजिक विषयों से सम्बन्धित हैं। अन्य सभी भारतीय भाषाओं में साहित्यिक पुस्तकों की संख्या अधिक है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नई कविता : सांस्कृतिक परावर्तिता और सृजन-प्रक्रिया की नई भावभूमि

श्री घनश्याम चतुर्वेदी 'घनश्री' एम० ए०

"The world of the man of refinement is imbued with instilling ability. He sees mere things clearly, knowing that insofar as they genuenely are, they exhibit the principles according to which they are what they are. And of all these principles beauty is ultimate."

'—*Douglas N. Morgan*'

नई कविता के साथ उपर्युक्त उद्धरण नितान्त सही रूप में घटित होता है। पुरानी कविता की भाँति नई कविता भी मात्र उन्हीं उद्देश्यों पर आधारित थी, जिनका इष्ट था—सौन्दर्यान्वेषण। मानव मन की विशेषता है। वह आदिकाल से ही सौन्दर्य की खोज करता रहा है, जहाँ भी जिस विधा में भी उसे सौन्दर्यानुभूति का आभास हुआ उसने अपना लिया।

"एषां मनो मे प्रसभं शरीरात
पितुःपदं मध्यमुत्पतन्ति
सुरांगना कर्षति खण्डिताग्रात
सूत्रं मृणालादिव राजहंसी"

इस श्लोक के रचियता कालिदास हों या फिर प्रयोगवादी कवि अज्ञेय हों—

"तुम्हारे नयन पहले भोर की दो ओस बूँदें हैं
अछूती, ज्योतिमय, भीतर द्रवित"

सभी का इष्ट सौन्दर्यानुभूति की अभिव्यक्ति या दूसरे शब्दों में सौन्दर्यसृजन करना ही था। नई कविता, न तो वास्तव में पुरानी कविता के विद्रोह के रूप में आयी और ना ही वह पुरानी कविता के उत्तर ग्रहण के रूप में अवतरित हुई, वरन् यह तो विकासमान भाषा की विकसित अभिव्यक्ति है, जो छन्द, लय, तुकों आदि के बन्धनों और परम्परागत काव्यमानकों द्वारा अवरुद्ध हो गयी थी, उसी की छटपटाहट रूप में व्यक्त हुई। नई कविता का बड़े से बड़ा विरोधी आलोचक भी यह नहीं कह सकता कि पुरानी कविता में कुछ भी अनकहा नहीं था, उस विधा में अनुभूतियों की जटिलतम अभिव्यक्ति की वाणी देना सहज था, पुरानी कविता में जहाँ कालानुरूप प्रतीक, उपमेय, उपमान, हाव, भाव और स्थितियाँ जड़ीभूत हो चुकी थीं; यह एक ऐसी स्थिति थी जिसे तोड़ने के लिए कुछ साहसी कवि सामने आये, क्योंकि इन स्थिर हो गये काव्यमानकों के प्रति उन्हें उबकाहट होने लगी थी।

"देवता इन प्रतीकों के कर गये हैं कूच
कभी बासन अधिक घिसने से मुलम्मा छूट जाता है"

—अज्ञेय

नई कविता न तो किसी सस्ती प्रसिद्धि की प्रतिक्रिया अथवा न किसी चमत्कारिक दावे के रूप में आयी वरन वह तो सिर्फ स्थिर काव्यमानकों के प्रति उकताहट की प्रतिक्रिया के रूप में अवतरित हुई। कुछ नई कविता के विरोधियों का यह कथन कि नये कवि छन्दोबद्ध और पुराने काव्यमानकों में कविता करने में अक्षम हैं बड़ी हास्यास्पद लगती है क्योंकि पुराने की पीठिका उनके संस्कारों और अध्ययन में तो जन्म से ही है फिर नूतन सृजन अधिक दुष्कर है अथवा पुरातन का पिष्टपेषण। लोगों को यह कहते सुना गया है कि नई कविता में रसोद्रेक नहीं होता। जो रस के सिद्धान्त को जानते हैं वे यह भी भली भाँति जान सकते हैं कि रसोद्रेक या काव्य में रस की अवस्थिति और रस ग्रहण दोनों एक बात नहीं हैं। रस में जहाँ काव्यानुभूतियों के साथ तादात्म्य स्थापित हो जाता है वहाँ रस की अनुभूति होती है और तादात्म्य स्थापित वही कर सकता है जो अनुभूतियों को ग्रहण करने में सक्षम है। कवि कालिदास का 'मेघदूत' अगर साहित्यिक संचेतन से अलग के किसी व्यक्ति को सुनाया जाये तो उसमें रसोद्रेक नहीं होगा। यही बात साधारणीकरण के सिद्धान्त अथवा काव्यसंप्रेषण के विषय में लागू होती है।

काव्य एक संवेदनशील, अनुभूतियों की उपज है और वह मनुष्य की संवेदना को झकझोरता है, जहाँ संवेदन होगा वहाँ रस भी होगा। नई कविता के प्रति यह सम्पूर्ण आरोप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खोखले और जड़ीभूत संस्कारों के परिचायक हैं और नये के प्रति यह विरोध नया नहीं है, बहुत पुराना है। कविता अथवा संस्कृतियों के विकास पर दृष्टिपात करें तो हर युग की नई चेतना लाने वाले व्यक्तियों को यह विरोध किसी न किसी रूप में सहना पड़ा है। नई कविता वास्तव में काव्य के अधुनातम विकास की एक पीठिका है जो विकास के सिद्धान्तों के अनुसार 'कोन्डर सेट' के शब्दों में "किसी एक क्षण में प्राप्त निष्कर्ष उससे पूर्ववर्ती-क्षण के प्राप्त निष्कर्षों पर निर्भर करता है और परवर्ती क्षणों या निष्कर्षों को भी प्रभावित करता है" अभी और विकसित और पल्लवित होगी। नई कविता को जो विकास नहीं मानते वे जर्मन दार्शनिक 'हीगल' के इस ऐतिहासिक सत्य से कैसे इन्कार कर सकते हैं कि--"The universal races to each next state of determination on the whole mass of its anticedent content and by its dialectical progress not only loses nothing and leaves nothing behind, but carries with it all that it has acquired enriching and concentrating itself"

अतः नई कविता जहाँ पुरानी उपलब्धियों के आधार पर विकसित हुई है वहाँ परम्परोच्छेद, नहीं है वरन् सामयिक संवर्तिता के संदर्भ में परम्परा की विकसित परावर्तिता है।

जटिलतम बिम्बों से उद्भूत नये प्रतीकों और जटिलतम अनुभूतियों की अभिव्यक्ति का एक विशालतम चित्रफलक :--

"पोएट्री इज वन वे ऑफ सफरिंग एण्ड कोआपरेटिंग विद् रिएलटी, इट क्रिएट्स रिएलटी ऑनली इन द सैन्स दैट इट रिएरेंजेज डेटा इन्टु न्यू पैटर्न्स"

--'सेसिल डे लुइस'

किसी भी नये युग के निष्कर्ष उसका यथार्थ होते हैं। और उस यथार्थ का सृजन तभी सम्भव है जब युग के निष्कर्ष और उपलब्धियों को युगानुरूप नये रूपों में पुनर्संयोजित किया जाय। कविता मानव मन की पीड़ा या दर्द के साथ उस यथार्थ के साक्षात्कार का ही एक प्रकार से दूसरा नाम है। मानव मन की पीड़ा शाश्वत और अशाश्वत दोनों रूपों में निरंतर अभिव्यक्त होने को आकुल रहती है और इस पीड़ा का कोई एक रूप नहीं है, सिर्फ ज्ञानात संवेदन एक-सा प्रखर होता है। पीड़ा जहाँ बाह्य सामाजिक स्थितियों से उत्पन्न होती है वहाँ ऐन्द्रिय आभ्यान्तरिक पीड़ा भी होती है जिसका मूल कारण अतृप्ति है। जो चक्रवर्ती गति से तुष्टि होने पर भी ऊपर और ऊपर निरन्तर बढ़ती जाती है और जितने इस पीड़ा के रूप हैं उतने अभिव्यक्ति के चित्रफलक नहीं, कोई बन्धन नहीं, कोई मर्यादा नहीं, कोई सीमारेखा नहीं, जैसे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में परिव्याप्त संवेदनों के साथ में पीड़ा का साक्षात्कार कभी प्रश्न बन जाता है। श्री प्रयागनारायण त्रिपाठी के शब्दों में--

"वृक्ष। पूँछूँ
किसलिए निश्शब्द तुम
इतने सटे से
निर्वसन
निश्चेष्ट
गुरु भू वक्ष से
जैसे कि बर्फ ?
बर्फ। पूँछूँ
किसलिए निश्शब्द तुम
इतनी सटी सी
निर्वसन
निश्चेष्ट
दृढ़ गिरि वक्ष सी
जैसे कि चाँद ?"

--'प्रश्न' : श्री प्रयागनारायण त्रिपाठी

कभी जिज्ञासा—

"योगी फिर आया
बसन्त की स्मृति फिर जागी
एक फूल कन्नेरी फिर खिला
लेकिन तृण भी फिर मेरी आँखों के सामने आ गया
हर बार मैं रहा हूँ
तृण रहा है
क्या वह भी रहा है एक फूल कन्नेरी"

—'एक फूल कन्नेरी' श्री भुवनेश्वर शर्मा

और कभी समाधान--

"अर्पण अर्पण है तभी अगर पीड़ा है,
पीड़ा पीड़ा है तभी अगर सोऽहं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोऽहं जब त्वं हो जाय तभी सोऽहं है,
सोऽहं का त्वं में लय ही लक्ष्य परम है ।।"

—'लक्ष्य' श्री प्रयागनारायण त्रिपाठी

काव्य रचना की प्रक्रिया 'नीतशे' के शब्दों में स्वप्न-प्रक्रिया के समान ही है जिस तक पहुँचने के लिए हमको सीधे रास्ते से नहीं वरन् घूमकर जाना पड़ता है ।[१]

और 'सेसिल डे लुइस' के शब्दों में वह पीड़ा जो यथार्थ से साक्षात्कार करती है उसके अगणित रूप हैं कभी वह 'Agapic' (एगेपिक) होती है और कभी वह 'genital' (जेनीटल) कभी उसकी तुष्टि के लिए '(स्कोपोफोलिक इन्स-टिंक्ट) scopofolic instinct[२] का सहारा लिया जाता है ।

"उस स्वप्न स्पर्श चुम्बन की याद आ रही है
याद आ रही है
अज्ञात प्रणयिनी कौन थी, कौन थी ?"

—'सुनहली तस्वीरें' : मुक्तिबोध

यह एगेपिक पीड़ा भी जहाँ कवि मन को संवेदित करती है—

"यों
तुमसे पायी ज्योति शिखा के शुभ्र वृत्त में
मैंने अपना
पल-पल जलता जीवन जिया
पर तुमने तुम, गुरु, सखा, देवता
तुमने क्या किया ?

—'एक प्रश्न' : अज्ञेय

वहाँ उसका जैनीटल रूप भी संवेदनों को फन हिलाने पर विवश करता है—

"वासना को बाँधने को
तूमड़ी जो स्वर-तार बिछाती है
आह ! उसी में कैसी एकान्त निविड़
वासना थरथराती है
तभी तो साँप की कुंडली हिलती नहीं
फन डोलता है" ।

—'साँस का पुतला' : अज्ञेय

इस प्रकार पुराने समय से अब तक कवि इस पीड़ा की तुष्टि के लिए उसे नये-नये शब्द विधान, नये-नये ध्वन्याभूषण पहनाकर संवेदनों के साथ उसकी भाँवरें रचाते रहे हैं । लेकिन नये कवि ने जहाँ सहस्राब्दियों से संचित और रक्षित काव्य परम्परा के तथ्यों को अपनाया वहीं कलानुरूप सर्वथा नूतन निष्कर्षों का सहारा लिया । क्योंकि परम्परागत निष्कर्ष मौजूदा सामाजिक एवं आर्थिक परिवेश में अपनी इयत्ता और अर्थवत्ता खो चुके थे । नये कवि के सामने सबसे बड़ा आग्रह अभिव्यक्ति की ईमानदारी था । उसे अनुभूतियों की अभिव्यक्ति के लिए परम्परागत काव्य-मानकों की 'सैन्सरशिप' स्वीकार नहीं थी । वह तो—

"अपनी उठती गिरती लौ की लीलाओं में
अपनी छायाओं की लीला देखता रहा"

—'जब प्रश्न चिह्न बौखला उठे' : मुक्तिबोध

और तब न यह लौ थी और न छायाएँ । एक एक छाया के पल-पल परवर्तित हाव-भाव अगणित नूतन बिम्बाकृतियाँ लौ थी कि अनवरत काँपती जा रही थी । और छायाएँ थीं कि अगणित रूप धरती चली जा रही थीं, और कवि मन पीड़ित था उन सम्पूर्ण छवियों को वाणी देने के लिए । चयन वह चाहता नहीं था । और सामर्थ्य में उसके में थे शब्द जो युगयुगों से बहुत घिस चुके थे । कवि को इन शब्दों का संस्कार करना था—नूतन संस्कार यही उसकी पीड़ा का एकमात्र उपचार था । वह शब्द को नये संस्कार देना चाहता था इसलिए वह प्रयोक्ता बना उसे नई विधा खोजनी थी । नये संकेत खोजने थे । 'अज्ञेय' के शब्दों में "शब्द का कोई स्वयंभूत अर्थ नहीं है, वह संकेत है जिसमें अर्थ की प्रतिपत्ति होती है" लेकिन इस कथन को अधिक वैज्ञानिक बनाने के लिए इसका पल्लवन किया जाना चाहिए कि शब्द में अर्थ की प्रतिपत्ति संकेत, ध्वनि और व्याकरण समस्त संयोजता से होती है । अज्ञेयजी का शब्द 'संकेत' इन तीनों चीजों को समाहित करके ही चलता है । जैसे आम, आदमी, लोटा, घर, साईकिल, मेज, औरत इन शब्दों का अपने आप में कोई समूहगत अर्थ

---

१. In dreams some perelleal relic of humanity is at work which we can now scarcely reach any longer by a direct path.

२. देखिये फ्राईड की 'साइक्लॉजी आफ ड्रीम्स'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९७२

नहीं है जब तक कि कोई 'संकेत' नहीं देते। और शब्द 'संकेत' देते हैं ध्वनि और व्याकरण सम्मत संयोजन से। नया कवि इसी शब्द को नया संस्कार देना चाहता है; नया संकेत बदलकर, इसलिए वह श्री भुवनेश्वर शर्मा के अनुसार एक शब्द द्वीप से अनगिनी शब्द द्वीपों में अपनी इस पीड़ा के परिहार के लिए यात्रा करता है—

"किन्तु हर बार चमकता नीलम बिन्दु
मुझे खींच ले गया है—दूर
एक शब्द द्वीप से दूसरे
अनगिन शब्द द्वीपों में
कोई मेरे कान में कहता है
इन्हीं में कहीं स्वर-वापी है—मूलस्थ
जो न अर्थ देती है न निरर्थ
मात्र स्वर
मिलेगी तब झेलूँगा अर्थ निरर्थ बोझ
और यह यात्रा कितने शब्द द्वीपों में कितनी ही बार"

—'कितने शब्द द्वीपों में कितनी बार :
श्री भुवनेश्वर शर्मा'

और ये स्वर जिसकी तलाश जारी है निश्चित है नये कवि का अपना स्वर है, नई कविता की अपनी विशिष्टता है। नया कवि आकुल है; तमाम विसंगतियों और अति-रंजनात्मक निषेधों के परिशमन के लिए जहाँ वह अपनी सम सामयिकता का परिष्कार करना चाहता है, वहीं वह परम्परा के रक्षण के लिए आकुल है—

"किस फूल को व्रण लगा है
किस गन्ध को कोढ़ है
कौन प्रस्तर मूर्ति या कांस्य प्रतिमा
जीर्ण ज्वर से पीड़ित है
कौन शास्त्र दीमकों की भेंट चढ़ गया है
कौन समाधि बर्फ के नीचे ढक गई है।
चीन ने एटम बम बना लिया है
उसका प्रथम प्रयोग
वह बौद्ध प्रतिमाओं पर करेगा
जो बहुत पहले ही समुद्र में डुबो दी गयी थीं
चीन ऐसा क्यों करेगा
मेरे पास फुरसत कहाँ
यह सब सोचूं
क्योंकि
मैं बहुत पहले आजाद कर दिया गया हूं
जैसे इस शहर से दूर
युद्ध ध्वस्त टीले और खण्डहर"

—मुक्तिप्रसंग : घनश्री

नई कविता की वाग्मिति (Rhetorics) और डाइ-लेक्टिक्स : दार्शनिक भाव-भूमि : सामाजिक और आर्थिक सन्दर्भों का सचेष्ट परिवहन :—

नई कविता में जहाँ नई बिम्ब योजना और नये प्रतीकों द्वारा रमणीयता लाने का प्रयास किया गया, वहीं उसकी वाग्मिता में ध्वनि को अधिक महत्त्व दिया गया और वाच्य से अधिक व्यंग की प्रधानता द्वारा ध्वनि उत्पन्न करने के लिये नई कविता में आचार्य 'कुन्तक' के बक्रोक्तिवाद और 'क्रोचे' के अभिव्यंजनावाद का अधिक सहारा लिया गया। नई कविता का अलंकरण सहज और परम्परागत है। कहीं-कहीं ऐसा भी हुआ है कोई कविता अपने में सहज या अनुभूतिपरक न होने के कारण नितान्त बौद्धिक विवेचना मात्र रह गयी है।

जहाँ ऐसा हुआ है वहाँ वे मात्र सादृश्यमूलक ऊहाएँ रह गयी हैं जो पुरानी कविता में भी पायी जाती हैं। नया कवि जहाँ अलंकरण से अधिक ध्वनि, ध्वनि से अधिक बिम्ब के अवतारण पर बल देता है, वहाँ उसे अभिव्यक्ति की प्रभावोत्पादक अभिव्यञ्जना इष्ट है—

"वातायन
संसृति से मेरे रागबन्ध के
लोचन दो
सम्पृक्ति निविड़ की
स्फटिक विमल वापियाँ
अचंचल
जल
गहरा—गहरा—गहरा"

—अन्तरंग चेहरा : अज्ञेय

नई कविता की दार्शनिक भावभूमि में विशेष प्रभाव 'जीनपाल सात्रे' 'की के गार्द' और 'काफ्का' के त्रिमिति-दर्शन का है। यद्यपि 'अज्ञेय' के काव्य प्रयोग की दार्शनिक पृष्ठभूमि भारतीय परम्परा के अनुरूप है किन्तु ऐसा नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है कि उन पर 'जीन पाल सात्रे' के अस्तित्ववादी दर्शन और मानवीय आचार की दार्शनिक भित्ति का 'एक्सियोलाजी'* के रूप में प्रभाव दृष्टिगत न होता हो—

"शून्य को भजता हुआ भी मैं
पराजय को बरजता हूँ
चेतना मेरी बिना जावे
प्रभा में निमजती है
उस ज्योति से अभिषिक्त
सजता हूँ।"

—चक्रान्त शिला (१७) : अज्ञेय

अज्ञेय के बाद की नई कविता की भावभूमि में जहाँ एक ओर हमें विशुद्ध वेदान्त दर्शन की झलक मिलती है वहीं अधिकांशतः नई कविता का आग्रह मनुष्य में ईश्वरत्व के आरोपण के प्रति है—

"गंगा की गहरी धारा में बस इसीलिये
सब ज्ञान ध्यान का मल धो आया मैं ज्ञानी
जिससे यह मेरी खोज बहुत निश्चिन्त जिये
जिससे पा जाऊँ कोई ईश्वर इन्सानी ।।"

—प्रभु की खोज : श्री प्रयागनारायण त्रिपाठी

* देखें 'जीनपाल सात्रे' कृत 'क्रिटिक डी ला रीजन डाइलेक्टिक' पेरिस १९६०

नई कविता अपने सामाजिक और आर्थिक परिवेश से कहीं भी कटी हुई नहीं है वरन् उस व्यक्ति की सापेक्षता है जो स्वयं सामाजिक है और जो समाज के घातों-प्रतिघातों को निरन्तर झेलता है। इस सन्दर्भ में नई कविता भी समाज सापेक्ष है। उसे बदलते हुए जीवन मूल्यों का संवहन और वैज्ञानिक निष्कर्षों का निर्वाह है। नई कविता की सामाजिकता सैद्धान्तिक (Conceptual) नहीं है वरन् व्यावहारिक है। नई कविता में जहाँ कलात्मक सौन्दर्य-बोध और प्रगतिशील विचारों का समन्वय है वहीं सृजनात्मक कला के नये शिल्पों का उद्घाटन भी हुआ है।

नई कविता, नये युग की कविता है जो व्यक्ति और समाज की विरोधात्मकता जो अपने मूल में कृत्रिम और 'ट्रान्जीटरी' होती है, को समाप्त करने के लिए कृत-संकल्प है—

"भटके हुए व्यक्ति का संशय
इतिहासों का अन्धा निश्चय
ये दोनों जिसमें पा आश्रय
बन जायेंगे सार्थक समतल
ऐसे किसी अनागत पथ का
पावन माध्यम भर है मेरी
आकुल प्रतिभा, अर्पित रसना।"

—'भारती'

कलकत्ते का विशाल वट-वृक्ष

(मुखपृष्ठ पर देखिए)

इस अंक में हम कलकत्ते के विशाल बट-वृक्ष का चित्र दे रहे हैं। अनुमान है कि यह सन् १७०७ में लगाया गया था और बंगदेश की उर्वरा भूमि में यह खूब फैला। आज यह दो हैक्टेयर से अधिक स्थान घेरे हुए है। इसमें इस समय ११०० जटाएँ हैं। हम संसार के बारे में तो नहीं कह सकते किंतु एशिया में यह निश्चय ही सबसे विशाल वृक्ष है। इसमें से नयी-नयी जटाएँ अब भी निकलकर धरती में घुसकर नये-नये तनें बनाती जाती हैं। इधर इसके कुछ भाग में फफूंदे और कुछ कीड़े लग गये हैं जो इसके कुछ भाग को हानि पहुँचा रहे हैं। किंतु बोटानिकल गार्डन, कलकत्ते के अधिकारी आधुनिक वैज्ञानिक कीट-मारक औषधियों का उपयोग कर उन्हें नष्ट करने का प्रयत्न कर रहे हैं और आशा है कि वे सफल होंगे। किंतु यह रोग उसके केवल पुराने भाग में हैं, नये भाग में नहीं। और उससे नयी जटाएँ निकलकर उसका विस्तार बराबर बढ़ा रही हैं।

—सम्पादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'शंख-सिन्दूर' : समीक्षा

प्राचार्या श्रीमती कमला रत्नम्

पूर्व बंगाल की रामायण लेखिका चन्द्रावती के उपन्यास शंख-सिन्दूर की समालोचना

आज़ादी की लड़ाई के नौवें दशक में जब यह स्पष्ट होने लगा कि देश में अंग्रेजों का शासन बहुत दिनों तक नहीं टिक सकता और जल्दी ही बोरिया-बिस्तर समेटकर यहाँसे चले जाना होगा, तब अंग्रेजों ने अपनी अन्तिम चाल चली। मुस्लिम लीग के नेताओं को उन्होंने देश के विभाजन पर तैयार कर लिया। भारत के पूरब और पश्चिम के सीमांचलों के मुस्लिम-बहुल प्रदेशों को जोड़कर एक नये राष्ट्र पाकिस्तान का निर्माण किया गया, जिसकी एकता का एकमात्र आधार इस्लाम समझा गया। इतिहास का यह तथ्य भुला दिया गया कि योरोप के विभिन्न देश समान धर्मावलम्बी होते हुए भी शताब्दियों तक आपस में लड़ते रहे हैं। पश्चिमी एशिया और मध्यपूर्व के छोटे-छोटे अरब कबीले इस्लाम के अनुयायी होते हुए भी एक-दूसरे का खून बहाते रहे थे, और अहिंसक बौद्ध-धर्म को मानते हुए भी चीन, जापान, मंगोलिया, कोरिया आपस में कभी मित्रभाव से नहीं रह सके थे। परन्तु खिसकती हुई सत्ता के एक अंश को भी स्वायत्त रखने के लोभ में ब्रिटिश ताकत ने यह सब नहीं सोचा और धर्म को राष्ट्रीयता का एकमात्र आधार बनाकर एक नये प्रकार की राजनीतिक पेचीदगी का सूत्रपात किया। पूर्वी और पश्चिमी-पाकिस्तान यद्यपि एक ही धर्म को मानते थे, फिर भी उनके सांस्कृतिक परिवेश और राष्ट्रीय हित अलग-अलग थे, उनकी पृथ्वी, उनका जलवायु विपरीत था, उनकी भाषा, भूषा, भोजन की रुचि भिन्न थी। पूर्वी पाकिस्तान का बंगप्रदेश जहाँ साहित्य-संगीत-कलाप्रेमी समन्वयात्मक प्रवृत्ति का था, वहाँ पश्चिमी पाकिस्तान निवासियों में अपनी युद्धलिप्सा और शासक होने का अभिमानी था। पूर्व बंग बंगभाषा से जुड़ा था जिसे कवि रवीन्द्र और नजरुल इस्लाम से प्राणवत्ता प्राप्त हुई थी, और जिसका स्वाभाविक परिवेश हिन्दू-मुस्लिम का भेद किये बिना समस्त बंगभूमि था। इसके विपरीत पश्चिमी पाकिस्तानियों को भ्रम था कि इस्लाम की भाषा उर्दू ही हो सकती है-यद्यपि वे भलीभाँति जानते थे कि इस्लाम की मूलभाषा अरबी है तथा विचारों की वाहक कोई भी भाषा हो सकती है। फिर भी उन्होंने बंगला और पश्चिमी पाकिस्तान की अन्य भाषाओं की अवहेलना कर उर्दू को समस्त पाकिस्तान की राष्ट्रीय भाषा घोषित किया। पूर्व बंग के निवासी अपने राष्ट्रीय त्यौहारों पर प्रकृति के उल्लास के सुर में सुर मिलाकर जब गाते थे और उनकी वाणी रवीन्द्र के स्वरों में गूँजती थी तो पश्चिम के हुक्मरानों को आश्चर्य होता था कि वे मुसलमान हिन्दुओं के गाने क्यों गाते हैं? अगर ऐसा ही है तो ये स्वयं अपने टेगोर-गीत क्यों नहीं लिख लेते।

सांस्कृतिक मूढ़ता के साथ-साथ पूर्वी पाकिस्तान का आर्थिक और प्रशासनिक शोषण भी बड़े पैमाने पर हो रहा था। समस्त राष्ट्रीय आय का ५५ प्रतिशत से भी अधिक भाग देकर बाँगला देश उसका ५ प्रतिशत ही लाभ उठा पाता था। केले और नारियल, जूट और धान से भरी यह शस्य-श्यामला भूमि निरन्तर अन्न संकट और भुखमरी के दौर से गुज़र रही थी। २५ वर्ष तक प्रयास करने पर भी बाँगला देश को उर्दू में अपनी आत्मा नहीं दिखाई पड़ी। ऐसी स्थिति में परिणाम वहीं हुआ जो होना था। बंगदेश में स्वतन्त्रता की आग फैली और उसकी सबसे चमकीली चिनगारी पश्चिमी पाकिस्तान में कैद कर ली गयी। उसके बाद पश्चिम की सेनाओं ने बंगदेश में जिस उन्माद और बहशीपन का परिचय दिया वह इतिहास के काले पृष्ठों पर सदा-सर्वदा के लिए लिखा गया है। लाखों और करोड़ों की संख्या में शरणार्थियों ने बंगला देश से भागकर भारत में शरण ली। देश के साहित्यिकों का ध्यान एकबारगी इस ओर गया। पीड़ित बंगालियों के प्रति सहानुभूति-भरे उनके लेख, कविता सभी पत्रों में निकलने लगे। इसी सम्बन्ध में डा० रमानाथ त्रिपाठी का एक लेख 'नवभारत टाइम्स' के २९ सितम्बर १९७१ के दशहरा अंक में प्रकाशित हुआ था। बाँगलादेश की विपत्ति और स्वभाषा के लिए तीव्र आन्दोलन ने भारतीय जनमानस को अचानक झकझोर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डाला और बौद्धिक वर्ग इस बारे में जागकर चिन्तन करने लगा। तभी यह तथ्य उजागर हुआ कि हिन्दू हो या मुसलमान, भाषा और संस्कार उनके एक ही रहते हैं, धर्म का इस पर कोई विशेष असर नहीं पड़ता। त्रिपाठीजी ने अपने लेख में पूर्वी बंगाल की रामायण-लेखिका चन्द्रावती का जिक्र किया था जिसके रसीले और हृदयस्पर्शी गीत 'पूर्ववंग गीतिका' में आज भी सुरक्षित हैं। इस लेख ने मेरे मन में मध्यकाल की रामायण लिखनेवाली महिला के प्रति आकर्षण भरी उत्सुकता उत्पन्न कर दी और मैंने 'नवभारत टाइम्स' में लिखा, 'बाँगला देश आन्दोलन का सबसे बड़ा अर्थ हमारे लिए यही है कि हम अपने साहित्य और संस्कृति का अर्थ समझें, उसके रक्षक बनें और उसके लिए खून बहाने को तैयार हों। अभी-अभी जब बँगला के प्रसिद्ध लेखक ताराशंकर बाबू की मृत्यु हुई, तो बंगाली जनता का शोक उमड़कर सड़कों पर आ गया था—और दिल्ली में इस ज्ञानपीठ-पुरस्कार-विजेता की शोकसभा में हाल खाली था, जबकि यह शोकसभा स्वयं ज्ञानपीठ द्वारा आयोजित की गयी थी। यथार्थ में हिन्दी का यह दुर्भाग्य रहा है कि जब किसी ने उसके लिए खून बहाने की बात कही है तब हिन्दी के नाम पर ऊँची तन्ख्वाह पानेवाले नेताओं ने उसका उत्साह ठण्डा किया है और कहा है कि 'हिन्दी को तुम्हारा खून नहीं परिश्रम चाहिए।' खून का सम्बन्ध भावना से होता है और भावना जब तक पूरे उफान पर नहीं होती परिश्रम नहीं होता। बंगाल की रामायण-लेखिका के सम्बन्ध में मैंने लिखा था, 'डा० त्रिपाठी की चन्द्रावती-सम्बन्धी सूचनायें रोचक और नवीन हैं। त्रिपाठीजी पूर्वांचलीय रामायणों के बहुज्ञ अध्येता हैं। उनकी कलम से इस प्रकार की अन्य सूचनायें मिलनी चाहिए क्योंकि रामायण ही ऐसा कल्पग्रन्थ है जो सारे भारत को अपने आप में और दूर विदेशों से भी संस्कृति के एक सूत्र में बाँधता है। धर्मनिरपेक्षता के भूत ने हमें राष्ट्रनिरपेक्ष बना दिया है जिससे हम अपने राष्ट्रीय पर्वों और राष्ट्रीय इतिहास की घोर अवहेलना अभिमानपूर्वक करते दिखाई देते हैं। रामायण के रूप में सहस्राब्दियों से देश को एक सूत्र में बाँधनेवाली जो परम्परा है उसे हमने धर्म के नाम पर त्याग दिया है। दशहरा को यदि हम राष्ट्रीय पर्व मान लें तो जनपद से लेकर राजधानी तक लोग इस यज्ञ में भाग ले सकते हैं।' यहाँ मैंने यह भी सुझाव दिया था कि जैसा कई अन्य देशों में होता है, भारत में भी राष्ट्र के कर्णधारों को दशहरा के अवसर पर वर्ष में एक बार अपने काम की सफाई देनी चाहिए और देश की उन्नति और प्रगति का लेखा-जोखा जनता के सामने रखना चाहिए। इन्दोनीशिया में डा० सुकर्ण और मैक्सिको में राष्ट्रपति दियास ओर्दाज ऐसा ही करते थे। परन्तु हिन्दी के पत्र में प्रकाशित सामग्री होने के कारण इस बात पर किसी ने ध्यान नहीं दिया। इसके बाद ही डा० त्रिपाठी ने एक दिन यह शुभ समाचार सुनाया कि चन्द्रावती को लेकर उन्होंने एक पूरे उपन्यास की रचना कर डाली है।

उपन्यास 'शंख-सिन्दूर' बंगदेश में हुए पाकिस्तानी अत्याचार के प्रति सहृदय लेखक की भावमयी प्रतिक्रिया है। नष्ट होती हुई संस्कृति को लेखक यदि तलवार और बन्दूक लेकर बचा नहीं सकता तो हाथ में कलम लेकर शब्दों के शरीर में उसे नया जन्म अवश्य दे सकता है। डा० त्रिपाठी ने यही किया है। उपन्यास का कलेवर छोटा है परन्तु उसके शिल्प और सौन्दर्यबोध में शुद्ध काव्य का सा आनन्द प्राप्त होता है। बालिका चन्द्रावती अपने पुजारी पिता के साथ केले और फूलों के वृक्षों से भरे एक उपवन में रहती है। यहीं नागेश्वर, रक्तजवा और मालती मल्लिका के बीच बालक जयचन्द्र आकर उससे खेलता है। गीतों के माध्यम से वह उससे मन ही मन कहता है, 'गोरी उपवन में फूल क्यों तोड़ रही हो, तुम्हारा तो सारा शरीर ही फूलों से बना है।' बालक जयचन्द्र रोज पानी से भरी फूलेश्वरी नदी को पारकर पातुवारी गाँव आता है। वहीं तो वह शिवमन्दिर बना है जहाँ चन्द्रावती उसके साथ खेलती है। गाँव में माझी, कैवर्त्त आदि अन्य जातियाँ भी रहती हैं। इन्हींकी एक लड़की मालो मछुआरिन चन्द्रा से कभी-कभी मिलने आ जाती है, आयु में उससे बड़ी है, पर उसे 'दीदीमोनि' कहकर प्रणाम करती है, क्योंकि वह ब्राह्मण कन्या है न।

चन्द्रा और जयचन्द्र रोज पक्षियों से भरे वन में खेलते हैं। जयचन्द्र कभी बुलबुल के बच्चे पकड़कर चन्द्रा को देता है कभी उसकी लिखी किसी कविता की पंक्ति को ठीक करता है। और एक दिन वह क्षण भी आ पहुँचता है जब जयचन्द्र अपने मन के भाव चन्द्रा पर व्यक्त कर देता है, उससे विवाह की अनुमति माँगता है। तब जैसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९७३

पार्वती ने शिव से कहा था--'दाता मे भूभृतां नाथः प्रमाणी क्रियतां वचः'--इसी प्रकार चन्द्रा ने गाया--

'घर में मेरे पिता बिराजै
बेबस मैं क्या जानूँ,
अबला नारी होकर बोलो
कैसे उत्तर दे दूँ।'

इतना कहकर चन्द्रा फिर से अपने लेखनकार्य में व्यस्त हो गयी। उसने केनाराम दस्यु की कथा पूरी लिख डाली। चन्द्रा से स्पष्ट उत्तर न पाकर जयचन्द्र को सन्तोष नहीं हुआ। वह हिंजल के पेड़ पर बैठकर सोचने लगा। युवावस्था की उसकी भूख जाग रही थी, ऐसे में उसने पुष्ट लावण्यमयी युवती को सरोवर में स्नान के लिए उतरते देखा। स्त्री ने 'सावधान होकर चारों ओर देखा, अंचल हटाया और कांचुली उतारने लगी।' उसे देख जयचन्द्र अवाक् रह गया। चन्द्रा का सौन्दर्य जहाँ स्निग्ध, शीतल और सुषुप्त था, वहाँ इस मुसलमान युवती आशमानी का यौवन उत्तप्त, मादक, अपने पूरे उफान पर था। इस लहर में जयचन्द्र बह गया। परन्तु विवाह तो चन्द्रा से होना था, अतएव उसके घर वसन्त ऋतु में घटकाली (सगाई) के लिए घटक भेजे गये। पिता वंशीदास ने जन्म कुण्डलियां देखीं और उनके मिल जाने पर सम्बन्ध पक्का कर लिया। चन्द्रा के जयचन्द्र से विवाह की तैयारियाँ होने लगीं। दरिद्र पिता ने पत्नी का गहना, घर की गाय और बछड़ा बेचकर विवाह का व्यय जुटाया। परन्तु भाग्य का खेल, इस सबसे बेखबर जयचन्द्र आशमानी के शिकार में व्यस्त रहा। उसे काव्य लिख-लिखकर भेजता रहा। 'माँ-बाप मेरा कोई नहीं है, भाई भी नहीं है, नदी में शैवाल जैसा अकेला बह रहा हूँ। तू यदि मेरी बन जाती तो घी का दीपक बार कर तेरा मुख देखा करता।' इसके उत्तर में मुसलमान लड़की ने लिखा, 'रे निर्लज्ज बाँभन, गले में कलसी-रस्सी बाँधकर डूब मर।' परन्तु जयचन्द्र तो कामान्ध हो रहा था। उसने उत्तर दिया—'कहाँ पाऊँगा कलसी-रस्सी, तू ही मेरी गहरी नदी है, तुझी में डूब मरूँगा।'

आशमानी की कविता बंगाल के वायु और आकाश से गाई हुई थी। उसका काका बूढ़ा सन्त बाउल मियाँ सूफी कविता करता था जिसमें अल्लाह का नाम लेने के साथ दसों इन्द्रियों और षडरिपुओं की बात कही जाती थी। जयचन्द्र दोहरा खेल खेल रहा था। एक ही समय में वह मालो के हाथ चन्द्रा को पातियाँ भेजता और स्वयं आशमानी को कविता लिखकर देता। उसका मन चन्द्रा के शीतल सात्विक प्रेम से भरता न था। उसे उद्दाम यौवन के भोग की लालसा पागल बना रही थी। त्रिपाठीजी ने बड़ी कुशलता से गाथा-गीतों को खोजकर उसके मन की बात कहलायी है। 'फागुन की बयार में भैंस के सींग हिलते हैं, युवती नारी ऐसे में कैसे धीरज रखती है।' आशमानी भी उसे फूल का भौंरा कहकर बहुत दिनों तक खिलाती रही। इसी बीच उसने यह भी प्रकट कर दिया कि बहुतों ने उसे चाहा है। परन्तु प्रेम में अन्धे जयचन्द्र के मन में इससे कोई फर्क नहीं पड़ा। धीरे-धीरे आशमानी जयचन्द्र की ओर खिंच गयी और लोकगीतों में ऐसे प्रसंग जुड़े, 'प्रिय मेरे घर में आओगे तो तुम्हारे लिए फर्श पर अपने घुँघराले केश बिछा दूँगी, वह भी न रुचे तो अबला के उरोजों पर मुख रख कर सोना।' मैं आँख के आँसू से तुम्हारे पैर पखारूँगी, माँग के सेंदुर से उन्हें रंग दूँगी।'

एक ओर जयचन्द्र आशमानी से प्रेम का यह खेल खेल रहा था, दूसरी ओर चन्द्रा के घर विवाह-मंगल की तैयारियाँ हो रही थीं—

"ढोल-दगड़-मादल का रोर,
उलुध्वनि, शंखध्वनि, स्त्रियों के मंगलगीत
बच्चों का शोर।"

एक लोकगीत के माध्यम से सारे विवाह-समारोह का चित्र खिंच जाता है। लेखक ने बड़े परिश्रम से पूर्वी बंगाल की विवाह-विधि का चित्र हमारे सामने प्रस्तुत किया है—परन्तु पूरी तैयारी के बाद भी यह विबाह हुआ नहीं। जैसा लोकगीतों में लिपिबद्ध है, ठीक विवाह के दिन जयचन्द्र ने धर्मपरिवर्तन करके आशमानी से विवाह कर लिया—जबरदस्ती या स्वेच्छा ? सहृदय लेखक ने तो उसे जबरदस्ती ही दिखाने की कोशिश की है। परन्तु उसने वर की प्रतीक्षा करती निराश बधू का मार्मिक चित्रण किया है। 'चन्द्रा न हिली, न डुली। न उसके अधरों पर हास, न आँखों में आँसू। मानों अटल चट्टान हो।' विवाह कौतुक में सजी चन्द्रा ऐसी लगी 'मानों विसर्जन के दिन गंगा में डूबती दुर्गा की पवित्र प्रतिमा हो।' बंगाली काव्य में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतीक्षा करती वधू और नहीं आये वर का प्रतीक समकालीन लेखन में भी आया है। इस वर्ष के ज्ञानपीठ-पुरस्कार विजेता विष्णु दे ने अपनी 'स्मृति सत्ता भविष्यत्' में लिखा है—

"आत्मा के द्वार पर, मन की सड़क पर
समाज के घूरे की सफाई-लारी पर चढ़े सत्ता के
भिखारी
बीमार.....
.....तरह, तरह के बाराती हैं, केवल वर नहीं है।
.....
लाल-नीले कमलों के देश में आज वर नहीं है।
विधवा के देश में चढ़ती उम्र की सुन्दरी के लिए
वर नहीं है।"

प्राचीन मेक्सिको के साहित्य में भी एक ऐसा प्रसंग आया है जहाँ दर्जी की लड़की कुमारी युवती नित्य वधू की सज्जा कर प्रतीक्षा में बैठती है, पर वर नहीं आता। युवती बूढ़ी हो जाती है, उसकी पोशाक फट जाती है पर वर नहीं आता। फल के रखे-रखे सड़कर बासी हो जाने की अपेक्षा दुःख की निरन्तर मार से जर्जरित होते रहने का यह भारतीय चित्रण कहीं अधिक जीवन्त और प्राणवान है।

अपना धर्म त्यागकर जयचन्द्र आशमानी के साथ जब विवाह के कड़ुवे-मीठे फल भोग रहा था, तब चन्द्रा ने आने वाले सब प्रस्तावों को ठुकराकर आजीवन कौमार्य व्रत धारण किया। इस तीव्र आघात को सहते हुए पिता ने कहा, 'बेटी, मैं तेरे लिए शिवमन्दिर का निर्माण करूँगा। तुम शिव की भक्ति करो और रामायण लिखो। राम-सीता का पावन चरित्र तुम्हें शान्ति देगा।' गाँववालों की सहायता से शिव-मन्दिर बनकर तैयार हो गया, परन्तु चन्द्रा की माँ परलोक सिधार गयीं।

तभी चन्द्रा ने "मलुआ सुन्दरी" नाम का काव्य लिखकर पूरा किया। इसमें उसकी मछुआरिन सखी मालो की करुण कथा लिखी थी—कैसे मुसलमान दीवान के घर उसे जबरन ले आया गया—कैसे उसके परिवारवालों ने उसे घर में लेने से इन्कार कर दिया—कैसे घर के बाहर से पति की सेवा करते-करते उसने नदी में डूबकर जान दे दी। करुण रस के प्रतिपादन में चन्द्रा सिद्धहस्त होती जा रही थी। लेखक डा० त्रिपाठी भी करुण से अछूते नहीं रह पाये। वे भी कह उठे, 'हाय नारी! ममता के किन सूत्रों में बँधकर तू इस कठोर धरती पर आ जाती है। क्या तेरे आँसू कभी इस धरती के एक भाग को भी नीला कर सकेंगे?"

जयचन्द्र ने ब्याह करके आशमानी को पाना चाहा था, परन्तु वह 'चंचल किरण अथवा बालू के कणों की उसकी मुट्ठी में से सरक जाती थी।' लेखक ने बहुत से सन्दर्भों में आशमानी और जयचन्द्र के असफल दाम्पत्य का चित्रण किया है—कैसे आशमानी उसे पूरा मुसलमान बनाना चाहती है, कैसे वह न चाहते हुए भी अनुसरण करता जाता है।

उधर चन्द्रा अपनी कुटी में बैठी ग्रामवासिनियों के लिए रामायण की रचना कर रही है—

"पत्थर से ठोकर लग जाने पर मेरे पैर से रक्त की धार छूटने लगी। प्रभु दुःखित होकर हवा करने लगे। देवर लक्ष्मण कमल के पत्ते में जल ले आये। पता नहीं मैं कब तक प्रभु की गोद में अचेतन पड़ी रही।

".....मैं देवर के गुणों का बखान नहीं कर पाऊँगी। वे वनफूल तोड़कर मेरे हाथ में दे देते थे।"

चन्द्रा ने सोने के मृग के प्रसंग की बड़ी सुन्दर और नारीसुलभ नवीनता और चतुराई दी है—जिससे सीता के चरित्र को चार चाँद लग गये हैं—

"ऐसा सुन्दर मृग तो कभी नहीं देखा। गोसाईं, इस सोने के हिरन को पकड़ दो। मैं इसे सूखी लताओं से अपने द्वार पर तब तक बाँधे रहूँगी, जब तक यह पालतू नहीं बन आता। हम लोग इसे अयोध्या ले जायेंगे। प्रभु इसे पकड़कर वन की निशानी के रूप में ले चलो।"

चन्द्रा को यह अच्छा नहीं लगा कि हिरन की खाल माँगी जाय इसलिए उसने सीता के मुख से हिरन को पालतू बनाने की बात कहलायी।

रावण द्वारा अपहरण की व्यथा को उसने इस प्रकार व्यक्त किया—

"सीता की आँखों में जितना जल है,
उतना मेघों में भी नहीं होगा।"

चन्द्रा रामायण की रचना करती रही और दुर्गा-पूजा का पर्व आ गया। गाँव के हिन्दू-मुसलमान मिलकर पर्व मनाने लगे। जयचन्द्र को याद आया वह तो प्रतिमा का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्यार किया करता था और आज इस सबसे कटा हुआ —घर से बाहर निकल गया—बड़ी रात गये लौटा तो र के भीतर से खुसुर-पुसुर की आवाज से सन्देह हुआ कि शमानी के साथ कोई है—वही आब्दुल्ला जिसे एक दिन हर बाद उसने अपने घर से निकलते देखा था और ने पर आशमानी ने इस बात को छिपाया था, कहा वह नहीं आया था। आब्दुल्ला जिसकी बर्बरता और ता की गन्ध उसे आशमानी के नित्य नये होनेवाले ामी प्रस्तावों में आने लगी थी।

जयचन्द्र का मन फिर पलट गया। खेतों में जब धान फसल पक गयी तब उसने चन्द्रा को पत्र भेजा—'प्राण ी चन्द्रा सुनो। मैंने फूलमाला के धोखे काले गाँप को गले डाल लिया है—मैं तुम्हें एक बार देखना चाहता हूँ। न्तिम बार तुम्हें देख कर संसार छोड़ दूँगा। चन्द्रा के आँसुओं ने चिट्ठी के अक्षर मिटा दिये। उसका क्षमाशील हृदय जयचन्द्र से मिलने को उत्सुक हुआ परन्तु पिता ने कहा, 'बेटी, जूठे फल से देवपूजन नहीं होता। तुम विश्वेश्वर में अपना मन लगाओ। 'चन्द्रा ने जयचन्द्र को नकारात्मक उत्तर दे दिया। और रामायण लिखने बैठ गयी—गर्भिणी सीता ने राम की गोद में बैठकर तमसा नदी के किनारे पुनः वन-विहार का वर माँगा। और चन्द्रा की लेखनी चीत्कार कर उठी—

"भाग्य का दुःख दूर नहीं किया जा सकता। हाय! जनकनन्दिनी तुमने क्या वर माँग लिया।"

सीता के निर्वासन की कथा लिखते समय चन्द्रा ने अपनी रामायण में कुकुआ ननद के कहने से सीता द्वारा रावण का चित्र बनाये जाने की कथा का उपयोग किया है। जान पड़ता है रामायण के प्रसार के साथ यह कथा भी भारत के बाहर फैल गयी क्योंकि थाइलैण्ड और लाओस की रामायणों में सीता-निर्वासन का प्रमुख कारण यही है कि उसने रावण का चित्र बनाकर अपने पलंग के नीचे छिपाया था। जो भी हो चन्द्रा ने अपनी रामायण में कैकेयी की पुत्री कुकुआ का बड़ा ही कर्कश चित्र खींचा है। और उसी के कथन से राम के मन में सन्देह उत्पन्न करवा कर सीता का निर्वासन कराया है—"विषबाण राम के हृदय में समा गया। वे उन्मत्त हो उठे। क्रोध से आँखें ओड़हुल के फल सी लाल हो गयीं। नथुने फड़क उठे। कुकुआ ने जो आग जला दी थी, उससे सीता राम के साथ जलकर नष्ट होगी। कुछ दिन बाद अयोध्या नगरी भी जल जायेगी। सारा राज्य लक्ष्मी-शून्य होकर नष्ट भ्रष्ट हो जायगा।"

"दूसरे की बात पर कान देने से अपना सर्वनाश होता है चन्द्रावती कह रही है कि राम की बुद्धि नष्ट हो गयी—"

इसके आगे चन्द्रा की लेखनी रुक गयी। मन्दिर के फर्श पर माथा टेक कर वह देर तक लेटी रही। आँसुओं का ढेर इकट्ठा होकर धीरे-धीरे बहने लगा।

जिस समय ये पंक्तियाँ लिखी जा रही थीं, उसी समय आब्दुल्ला बाउलमियाँ को पोखर में डुबो कर मार रहा था। जयचन्द्र अब और अधिक न सह सका। अपना घर छोड़ वह चन्द्रा के दर्शन के लिए चल पड़ा। मन्दिर के द्वार पर थाप मारी पर चन्द्रा तो लिखने में तल्लीन थी, उसने नहीं सुना।

"बचपन की सखी, यौवन की सहचरी चन्द्रा, अपराध क्षमा करना। तुमने मुझे पापी समझ दर्शन नहीं दिये, अब मैं जन्म भर के लिए विदा माँग रहा हूँ।"

मन्दिर के द्वार पर अपनी अन्तिम कविता लिख कर जयचन्द्र नदी में कूद गया। वह शव बन गया। प्रातःकाल जब चन्द्रा ने मन्दिर के द्वार खोले और उन पर लिखी कविता पढ़कर जाना तो नदी के जल से सीढ़ियों को धोया, जिसकी पगधूलि को वह अपने आँसुओं से धोती, उसी मुसलमान के स्पर्श-दोष से मन्दिर को मुक्त किया। फूलेश्वरी नदी में तैरते जयचन्द्र के शव को वह देख चुकी थी। स्वयं भी घर के पीछे कदम्ब वृक्ष के नीचे पद्मासन लगा कर बैठ गयी और प्राण त्याग दिये। एक ओर जयचन्द्र की कब्र बनी, जिस पर लड़के को गोदी में लिए अकेली आशमानी आकर रोई, दूसरी ओर चन्द्रा की चिता जली जिसकी पवित्र भस्म ले जाने के लिए सारा गाँव उमड़ पड़ा।

बेटी की दाहक्रिया करके पंडित वंशीदास वृन्दावन चले गये। दस्यु केनाराम और विधवा आशमानी पुत्र को लेकर उनके साथ हो लिए। चन्द्रावती के भाई ने उसकी बाँस की पिटारी खोली तो उसमें बहिन की लिखी तीनों पोथियाँ निकलीं। दस्यु केनाराम का पाला', 'मलुआ सुन्दरी' और 'रामायण'—जो अपूर्ण थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पिटारी में से एक जोड़ा शंख की चूड़ियाँ और सिन्दूर भी निकले, जिन्हें विवाह-बेला से पूर्व जयचन्द्र ने चन्द्रा के पास भेजा था। भाई ने बहिन की अस्थियों के साथ उन्हें भी नदी में प्रवाहित कर दिया।

समय की बहती नदी में से इन्हीं शंख और सिन्दूर को बाहर निकाल कर लेखक ने इस उपन्यास की रचना की है।

शिल्पगत सौन्दर्य

उपन्यास में लेखक ने बंगभूमि की बहुत सी ग्रामीण प्रथाओं का यथार्थ चित्रण किया है। मालो चन्द्रा से सिजगाछ (सेहुंड़) की पत्ती माँगती है। उससे आँख की पीर अच्छी हो जाती है। पीली गरदन और हरे रंग का सिरवाला हरियल पक्षी गरमी में गूलर के फल खाने आता है। हिन्ताल की लाठी से चाँद सौदागर मनसादेवी का घट फोड़ता है। बरसात में गाँवों की फूली नदियों पर आरंग की नौका-दौड़ का उत्सव होता है। पावन पर्वों पर ग्राम्य स्त्रियाँ मुँह पर हाथ रखकर 'उलु-उलु' और 'आबा-आबा' ध्वनि करती हैं। युवती आशमानी बंगाली नारी की भाँति आँचल में गाँठ बाँध उससे रगड़-रगड़ कर अंग धोती है। दूसरी फसल तैयार होने के पहले ही दरिद्र बंगाली का पुराने धान का भंडार खत्म हो जाता है, वह पके कटहल और साग-पात खा कर निर्वाह करता है। पूर्व वंग के मुसलमानों के घर के आगे भी गाय बँधी रहती है, यह कहकर जहाँ लेखक ने बंगाल की हिन्दू-मुस्लिम समन्वयात्मक संस्कृति का चित्रण किया है वहाँ वह यह कहना भी नहीं भूला है कि मुसलमान केले के पत्ते की उलटी ओर भात परोसते हैं, कि उनके सब आचरण हिन्दुओं से विपरीत होते हैं। मालो के माध्यम से ग्रामीण हिन्दू जनता पर मुस्लिम काजियों और दीवानों के अत्याचार का भी वर्णन किया गया है।

लेखक ने वंगभूमि की प्रकृति का भी ध्यानपूर्वक अध्ययन किया है और उसे बड़ी सहजता से पुस्तक के क्लेवर में पिरोया है। काजली के पीले फूल खिल गये थे। गरमी की ऋतु में कच्ची अँबियों के चूसने से आरंभ कर वर्षा की फुहार और शरद् ऋतु की चाँदनी का चित्र दिया गया है। प्रेम का आरंभ और उसकी परिणति ऐसे ही होती है जैसे कालिदास ने लिखा है "निर्वेक्ष्यावः परिणत-शरच्चन्द्रिकासु क्षपासु!" कुछ बातें ऐसी हैं जो पूर्व वंग के जन-जीवन को सामने लाकर खड़ा कर देती हैं—जैसे कि चन्द्रा की माँ जयचन्द्र को बैठने के लिए कटहल-काठ की पीढ़ी देती है। चावल, नारियल और खजूर के गुड़ से मिठाइयाँ बनती हैं। कहीं-कहीं मानव-अनुभूति को प्रकृति के बाह्य व्यापारों द्वारा प्रकट किया गया है—

'पेड़ों में कोंपलें फूट पड़ी थीं····जयचन्द्र के पोर-पोर में कोंपले फूट पड़ी थीं। पता नहीं कैसी एक बेचैनी, कैसी एक आँधी उसके मन में भर गयी थी।' 'वर्षा ऋतु में वंग देश की नदियाँ अतुल जलराशि लेकर उमड़ पड़ती हैं···· चन्द्रा के शरीर में भी यौवन का ज्वार आ गया था।' कहीं-कहीं सहज स्वाभावोक्ति मन को हर लेती है। 'छोटी बाँदी ने उसे कांचली तैयार कर दी। चन्द्रा लजा गयी, कुछ दिनों छिपाये रही, फिर पहनना ही पड़ा।' 'चन्द्रा की चोटी कमर से भी एक हाथ नीचे लटकती झूलती रहती थी। जयचन्द्र के मन में होता इस चोटी को हाथ में लेकर सूँघ ले।' कैशोर्य की उठती तरंगों में वह कल्पना करता बड़ी-बड़ी पलकें झुकाये चन्द्रा क्या उसकी थाली में सुगन्धित भात नहीं परोसेगी।

कहीं-कहीं ऐसी बात कही गयी है, जिसका अनुभव एक पुरुष लेखक को होना कठिन है।

'चन्द्रा के शरीर में परिवर्तन आने लगे थे, इससे उसे कुछ कष्ट भी होने लगा था।' एक उपमा मुझे बहुत पसन्द आई, 'सूर्य ऐसा प्रतीत होता था मानो वह हल्दी लगा कर स्नान कर आया हो।'

उपन्यास में लोकगीतों के प्रयोग के साथ-साथ इतिहास और प्रचलित पौराणिक कथाओं का भी समावेश किया गया है, जैसा कि केनाराम डाकू का पातुआरी ग्राम आना। चन्द्रा के पिता पंडित वंशीदास 'पद्म-पुराण' के ऐतिहासिक लेखक थे। इसमें उन्होंने शिव की पुत्री मनसा की कथा लिखी है। सौत की बेटी होने के कारण पार्वती मनसा को दुःख दिया करती थीं, बाद में सर्पों के माध्यम से मनसा का माहात्म्य बताया गया है। एक बार जब केनाराम ने पंडितजी को वन में पकड़ लिया तो उन्होंने उसे गाकर यही मनसा-मंगल सुनाया, जिसे सुनकर डाकू को ज्ञान हो आया। पंडितजी बेटी चन्द्रा और बालक जयचन्द्र को संस्कृत के महाकाव्य पढ़कर सुनाया करते थे। इसी सन्दर्भ में लेखक ने एक स्थान पर किशोर-वय के साहित्यिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुभव का वर्णन किया है, 'कई बार पढ़ी पंक्तियाँ अब उसे (चन्द्रा को) नूतन अर्थ देने लगीं।'

प्रकृति के साथ-साथ त्रिपाठीजी ने कतिपय आदर्श चरित्र प्रस्तुत किये हैं। मालो, चन्द्रा और बाउलमियाँ आदर्श व्यक्ति हैं। आस्था और दृढ़ता में मालो चन्द्रा से जीत ही बैठती है, उन्नीस नहीं। और मालो अनपढ़ अछूत कन्या है, अत्याचारों से पीड़ित। आब्दुल्ला कट्टर मुसलमान चरित्र है। आततायी निष्कारण पीड़ित करने वाला।

पश्चिम पाकिस्तानियों को बंगाली कभी अपना नहीं समझ सके। लेखक ने बताया है, पूर्वी बंगाल में पछाँह के मुसलमानों को एक प्रकार से अलग ही समझा जाता था। बंगाली मुसलमान अपनी धरती और उसकी संस्कृति से प्रभावित थे। आब्दुल्ला और बाउलमियाँ के एक संवाद से यह प्रकट हो जाता है—

'देखो बेटा, यह बंगाल की धरती है, अरब देश नहीं। यहाँ अकेला खजूर नहीं, सुपाड़ी और केला भी है, कटहल और हिजल भी है। जैसी यहाँकी धरती रसभरी है वैसे ही यहाँके धर्म-सम्प्रदाय रसभरे हैं—यहाँ खून और पानी के प्यासे रेगिस्तान नहीं हैं।'

आब्दुल्ला जब 'अल्लाह' को अल्लाजी कहने पर बिगड़ उठता है तो बाउलमियाँ कहते हैं—'हम बंगाली जिस तरह बोल पाएँगे, बोलेंगे। यहाँ की धरती का चावल खाकर अरबों की तरह क्यों बोलें?'

हिन्दू के एक बार मुसलमान होकर फिर हिन्दू न बन सकने को लेखक ने एक विदग्ध उपमा द्वारा समझाया है, 'दूध का मट्ठा बनाया जा सकता है, किन्तु मट्ठे का दूध नहीं। दूध का दूधपन बचा रहे इसके लिए विशेष प्रयास करने पड़ते हैं।

कुल मिलाकर 'शंख-सिन्दूर' की रचना डा० त्रिपाठी का एक स्तुत्य प्रयास है। उन्होंने परिमार्जित हिन्दी के द्वारा हमें पूर्व वंग की रसमयी भूमि के दर्शन कराये हैं और वहाँके मानव-मन को स्थानीय संस्कृति से अविच्छिन्न दिखा कर इस सत्य की स्थापना की है कि राजनीति और सत्ता की लिप्सा चाहे जितना प्रयास करे मनुष्य को उसकी भूमि और जलवायु से अलग नहीं कर सकतीं। मनुष्य जिस पृथ्वी पर उपजता है उसीका उपभोग करता है। और यह उपभोग उसका जन्मसिद्ध अधिकार है। इसके लिए वह अपनी जान तक दे देता है, जैसाकि बांगला देश के युद्ध में एक बार फिर प्रमाणित हुआ है। आशा करती हूँ सहृदय पाठकगण इस उपन्यास का स्वागत करेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मणि-कुट्टिम काव्य : "उर्वशी"

श्री चन्द्रशेखर शुक्ल

["उर्वशी" पर श्री दिनकर को ज्ञानपीठ पुरस्कार मिला है। इस लेख में पाठकों को उस काव्य-कृति की विशेषताओं का परिचय देने का प्रयास किया गया है।—सम्पादक]

सुकुमार कवि "दिनकर" ने हिन्दी साहित्य को, अपनी तरुणाई की सांध्य वेला में, एक ऐसा काव्य दिया जिसके अक्षर-अक्षर में बहुरंगे सपनों की सुघराई न्यस्त है। यह काव्य "उर्वशी" है। इस काव्य की रचना के लिए कवि आठ वर्षों तक जाने किस प्रेरणा से ग्रसित रहा और अन्ततः उसने कवि से यह काव्य लिखवा ही लिया। इस काव्य में "क्वणन क्वणन" की मादक ध्वनि से नैतिकवादी चौंक उठे कि "कुरुक्षेत्र" का महद् उद्घोष करनेवाला कवि कैसे "श्रुतिपट पर उतप्त श्वास का स्पर्श, अधरों पर रसना की गुदगुदी, रसमाती भटकती उँगलियों का संचरण त्वचा पर", जैसी निगूढ़ कूजन की बात करने लगा है।

किन्तु अब तक कवि सहजता से दूर था। वैराग्य और निषेध की बात उसकी ओढ़ी हुई थी। स्वीकृति और रागों से ही उसकी मैत्री थी। शुद्ध नहीं प्रेम, बुद्धि नहीं भाव, की मनोरम स्थितियों से ही उसका लगाव था। "उर्वशी" लिखकर वह कुछ, हलका हो गया। उसका स्वयं का कथन है कि "वह अकथनीय विषय इस पुस्तक में व्याप्त है।"

वह अकथनीय विषय 'काम' है जो पुरुषार्थ चतुष्टय के अन्तर्गत सबसे सहज, सबसे प्रबल है। "जीवन में सुख और निरुद्देश्य सुख के जितने सोते हैं वे कहीं न कहीं काम के पर्वत से फूटते हैं। जिसका काम कुंठित, उपेक्षित, अवरुद्ध है, वह आनन्द के अनेक सूक्ष्म रूपों से वंचित हो जाता है। हीन केवल वही नहीं, जिसने धर्म और काम को छोड़कर केवल अर्थ को पकड़ा है, न्यायतः उकठा काठ उस साधक को भी कहना चाहिए जो धर्म-सिद्धि के प्रयास में अर्थ और काम दोनों से युद्ध कर रहा है।"

इसलिए यह तर्क-विरत भावप्रधान काव्य है, निरुद्देश्य आनन्द का काव्य है, सहज संवेग का काव्य है, रागात्मक वृत्तियों का काव्य है, जिसमें "सूक्ष्म-प्रबल, कोमल-कठोर, तरल-प्रगाढ़, मोहक-पीड़क, दाहक-शीतल, मृण्मय-चिन्मय अनेक रूपों का मनोरम चित्रण है।" इसमें प्रेम के रूपादित स्वरूप का सजीव बिम्ब भी है, जिसका आभास "कुरुक्षेत्र" में कवि ने भीष्म के चरित्र में पहले ही दे दिया था—

"ब्रह्मचर्य के प्रण के दिन जो
रुद्ध हुई थी धारा
कुरुक्षेत्र में फूट उसी ने
बनकर प्रेम पुकारा"

काव्य अनुभूति का विषय है। जिस कवि की आत्मानुभूति जितनी ही तीव्र होगी, उसकी अभिव्यंजना के लिए वह उतना ही व्यग्र होगा और निश्चय ही उस अभिव्यंजना के अनुरूप वह चित्रात्मक बिम्बों का विधान करेगा। "दिनकर" की राष्ट्रीय कविताओं में अभिव्यंजना के अनुरूप बिम्ब विधान की संरचना नहीं हो पाई है। यह इसलिए कि राष्ट्रीयता कवि का ओढ़ा हुआ नकाब था "राष्ट्रीयता मेरे भीतर से नहीं जनमी, उसने बाहर से आकर मुझे आक्रान्त किया है।" कवि का झुकाव आरम्भ से ही, सुकुमारता एवं सुन्दरता के प्रति था। प्रेम ही उसका धरातल था। किन्तु युग की तर्जनी उठने के भय से वह उसके विरुद्ध सर ताने रहा। सौन्दर्य का यह उन्मेष "हुंकार" में शरीर पाया, "रसवन्ती" में रससिक्त हुआ और "उर्वशी" में पहुँचकर प्रगाढ़ बना।

"उर्वशी" प्रेम काव्य है—सनातन प्रेम, अविच्छिन्न प्रेम, तृप्त-अतृप्त प्रेम, रूपायिता-अरूपायित प्रेम, स्थूल-सूक्ष्म प्रेम, शारीरिक-मानसिक प्रेम, मृण्मय-चिन्मय प्रेम। इस जैव धरातल का सहज धर्म है—प्रेम। ऊर्ध्वगामी जीवन की आधारभित्ति है—प्रेम। इसी प्रेम की कथा को कवि ने उर्वशी एवं पुरूरवा के माध्यम से कहा है। किन्तु इस प्रेमाख्यान की पुनरावृत्ति की आवश्यकता क्या थी? वेदों, निगमागमों में यह कथा वर्णित है। कालिदास की मनोरम लेखनी से भी यह कथा निसृत हो चुकी है। किन्तु कवि "उर्वशी" के माध्यम से कुछ और कहना चाहता है। चक्षु, रसना, प्राण, त्वक तथा श्रोत की कामनाओं का प्रतीक है—उर्वशी। और पुरूरवा रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, एवं शब्द के प्रति ललक पड़नेवाला जीव नारी के अंग-अंग से ये कामनाएँ प्रस्फुटित होती रहती हैं। पुरुष इनकी प्राप्ति के निमित्त महारव करता हुआ इन पर टूट पड़ता है। नारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९७३

रही सहजता से अपनी इन रसमयी कामनाओं का पुरुष को रसपान कराती है—निर्द्वन्द्व, निश्चेष्ट, निर्विकार होकर। लेकिन पुरुष को जैव धरातल के अमृत रस से तृप्ति नहीं होती। इस भूतल के कुसुम-रस-पात्र पर ज्यों ही वह अधर लगाता है और सहमे-सहमे एकाध घूँट ही अभी पी पाता है कि वह इस आत्मजनित स्वर से चौंक पड़ता है : "दृष्टि का जो पेय है, वह रक्त का भोजन नहीं है। रूप की आराधना का मार्ग आलिंगन नहीं है।" तब वह अपने दृढ़ आलिंगन के कसे हुए नारी का बन्धन शिथिल कर देता है। उसके अंक में पड़ी हुई नारी जैसे कविता की कोई पुस्तक हो। वह तन से नारी के समीप, लेकिन मन से गगनचारी बन जाता है। सनातन नर और नारी के मध्य, प्रेम के शारीरिक धरातल से मानसिक धरातल पर विचरण करती, भटकती, मिलती, बिछुड़ती, मनोरम कथा की झाँकियाँ "उर्वशी" में पिरोई गयी हैं।

प्रेम का आधार सौन्दर्य है। सौन्दर्य की आधार-भित्ति, नर-नारी के मनोरम शारीरिक रूप हैं। स्वयं कवि का कथन है, "यदि कोई युवक किसी युवती को प्रशंसा की आँख से देख ले, तो दूसरे दिन से उस युवती के हाव-भाव बदलने लगते हैं, उसे पोशाक और प्रसाधन में नवीनता की आवश्यकता अनुभूत होने लगती है, उसके बोलने-चालने और देखने में एक नयी भंगिमा उत्पन्न हो जाती है। इसी प्रकार जब कोई नारी प्रशंसाभरी दृष्टि से किसी पुरुष को देख लेती है, कोई कविता सुगबुगाने लगती है, सौन्दर्य की कोई तृषा जगकर उसे आइने के पास ले जाती है। इसलिए उर्वशी की कनकमयी छवि को देखकर पुरूरवा व्यग्र-सा हो जाता है"—

"लाल-लाल वे चरण कमल-से कुंकुम-से जावक से
तन की रक्तिम कान्ति शुद्ध ज्यों धुली हुई पावक से
जगभर की माधुरी अरुण अधरों में धरी हुई-सी
आँखों में वारुणी रंग निन्द्रा कुछ भरी हुई-सी
तन प्रकान्त मुकलित अनन्त ऊषाओं की लाली-सी
नूतन सम्पूर्ण जगत की संचित हरियाली-सी
पग पड़ते ही फूट पड़े, विद्रुम प्रवाल धूलों से
जहाँ खड़ी हो वहीं व्योम भर जाए श्वेत फूलों से
नहीं, उर्वशी नारि, नहीं, आभा है, निखिल भुवन की
रूप नहीं, निष्कलुष कल्पना है, स्रष्टा के मन की।"

उर्वशी भी स्वर्ग के देवों की निर्ज्वलित शक्ति को लात मारकर पुरुष के पौरुषमयी बलिष्ठ भुजाओं की उष्मा में जीने आयी। पुरुष में देवों-सी मन्त्रमोहिता कान्ति है एवं नारी रत्न को आलिंगन में कसे रहने की शक्ति भी है। प्रकृति ने विराट् पुरुष प्रतिभा को किसी कनक पर्वत से काटकर, उसमें महाप्राण की शक्ति देकर, इस भूतल पर स्थापित किया है। शायद स्वर्ग सुन्दरियों, परियों को ललचाने के लिये। इसीलिए अब, पुरूरवा उर्वशी के शारीरिक संसर्ग में आता है तो उर्वशी के मुख से ये अस्फुट शब्द निकलने लगते हैं :—

"ऊफ, री, यह माधुरी ! और ये अधर बिकच फूलों से
ये नवीन पाटल के वन आनन पर जब फिरते हैं
रोम-कूप जाने भर जाते किन पियूष कणों से
और सिमटते ही कठोर बाहों के आलिंगन में
चटुल एक पर एक उष्ण ऊर्मिया तुम्हारे तन की
मुझमें कर सक्रमण प्राण उन्मत्त बना देती है
कुसुमायित पर्वत समान तब लगी तुम्हारे तन से
मैं पुलकित विह्वल प्रसन्न मूर्छित होने लगती हूँ
कितना है आनन्द फेंक देने में स्वयं-स्वयं को।
पर्वत की आसुरी शक्ति के आकुल आलोड़न में।"

पुरुष की शौर्य महिमा, नारी के रूप-सौन्दर्य पर आधारित है। नारी की ओर बिना मुड़े पुरुष रह नहीं सकता। और जो नर, जितना ही, विक्रमी और प्रबल है, नारी-सौन्दर्य के प्रति उतना ही वह उद्दाम और वेगमय होता है। अगाध, अप्रतिम तेजबलधारी पुरुष को रूपसी नारी बड़ी सहजता से विजित कर लेती है। किन्तु, जितने वेग से पुरुष नारी को ग्रहण करता है, उतनी ही शीघ्रता से वह नारी से पृथक् भी होना चाहता है। प्रेम-रस पान में नारी द्विधारहित होती। लेकिन पुरुष द्वन्द्वपूरित। उर्वशी को इसका आभास हो जाने पर वह प्रश्न करती है :—

"तन से मुझको कसे हुए अपने दृढ़ आलिंगन से
मन से किन्तु विषण्ण दूर तुम कहाँ चले जाते हो ?"

पुरूरवा चिन्तनशील प्राणी है। अपने अंकपाश में आबद्ध उस नारी के अतिरिक्त वह एक और नारी की झाँकी पाता है, जो प्रकृति की सम्यक् सुषमा से निर्मित है, जो अतीन्द्रिय है, परम चेतनशील है। यह नारी उसकी आभा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का सहस्रांश भी नहीं है। इसलिए वह शारीरिक मधु-सुख का अतिक्रमण करना चाहता है। जिससे वह उस अखण्ड मधुकान्तमान् सौन्दर्य को देख सके। यह देह-धर्म से उठकर अन्तरात्मा तक जाने की स्थिति है :—

'वहाँ जहाँ कैलाश प्रान्त में शिव प्रत्येक पुरुष है,
और शक्तिदायिनी शिवा प्रत्येक प्रणयिनी नारी'

उर्वशी पुरूरवा के इस ऊर्ध्वगामी मनोभावना में व्यवधान नहीं डालना चाहती है। किन्तु वह यह स्पष्ट कर देना चाहती है कि मानव की सहज वृत्ति भावात्मक है, तर्कात्मक नहीं। बुद्धि छलना उत्पन्न करती है, धोखा दे जाती है। किन्तु भावात्मक रक्त, सही और अभीप्सित दिशा की ओर ही दौड़ता है : "पर शोणित दौड़ता जिधर को उस अभिप्रेत दिशा में, निश्चय ही कोई प्रसून यौवनोत्फुल्ल सौरभ से, मौनविकल व्यग्र मधुकर को रस अभियन्त्रण भेज रहा है।"

नारी पुरुष की भावात्मक अन्विति की साक्षात् प्रतिभा है। वह सार्वकालिक, सार्वभौमिक है। उसके बिना चराचर की स्थिति नहीं है। उर्वशी कहती है :—

"कब था ऐसा समय कि जब मेरा श्रीत्व नहीं था ?
कब आये मा वह भविष्य जिस दिन मैं नहीं रहूँगी ?
कौन पुरुष जिसकी समाधि में मेरी झलक नहीं है ?
कौन त्रिया मैं नहीं राजती हूँ, जिसके यौवन में ?
कौन लोक कौंधती नहीं मेरी ह्लादनी जहाँ पर ?
कौन मेघ जिसको न सेज में अपनी बना चुकी हूँ ?
कहूँ कौन-सी बात और रहने दूँ क्या कहाँ की ?
मेरा तो इतिहास प्रकृति की पूरी प्रणय कथा है ?
उसी भाँति निस्सीम, असीमित जैसे स्वयं प्रकृति है ?"

उर्वशी ऐन्द्रिय सुख के लिए भूलोक में आई है। वह उत्तप्त काम का रस पीने आई है। देन दृष्टि का काम अतीन्द्रिय है। वह चेतना भर उत्पन्न कर सकता है, परितृप्ति नहीं दे सकता। उर्वशी पुरूरवा के शारीरिक अतिभ्रमण की बात सहृदय स्वीकार करती है। किन्तु वह उसे निपट गगनचारी बन व्यर्थ चिन्तन करने से रोकती है;—

"पर, मैं बाधक नहीं जहाँ भी रहो भूमि या नभ में,
वक्षस्थल पर इसी भाँति मेरा कपोल रहने दो,

कसे रहो बस इसी भाँति
उर पीड़क आलिंगन में
और जलाते रहो,
अधर पुट को कठोर चुम्बन से।"

"उर्वशी" में समाधिस्थ प्रेम की मनोरम चित्रकारी है। भावानुकूल विम्बों का सहज प्रवाह है। इसमें भाषा, छन्द, लय एक साथ मिलकर रूप-श्री की वर्षा करने लगते हैं। इसमें 'कामायिनी' की सुष्ठु दार्शनिकता एवं स्वस्थ मनोभूमि का अंकन है, 'पन्त की मानसी व्यंजना एवं प्रांजलता की छटा है, निराला के ओज, तेज एवं अदम्य प्रवाह का निरूपण है और साथ ही वेदना है महादेवी की।' हिन्दी साहित्य का यह अनुपम काव्य-ग्रन्थ है। पुरूरवा की दृष्टि में उर्वशी ही उसकी "मणि-कुट्टिम प्रतिभा" है। लेकिन कवि की कारयित्री प्रतिभा का उर्वशी मणि-कुट्टिम काव्य है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परसाई के कथा-नायक

श्री श्यामसुन्दर त्रिपाठी

श्री कमलेश्वर के अनुसार "श्री हरिशंकर परसाईजी ने हिन्दी कथा के बहुत बड़े शून्य को भरा है। उन्होंने व्यंग की बौद्धिकता को उजागर रखते हुए मानवीय संवेदना की धार्मिक उँचाइयों को स्वयं तो छुआ ही है, साथ ही साथ अपने पाठकों को भी बड़े सहज ढंग से वहाँ पहुँचा दिया है, परसाईजी की हर कृत्ति जीवन के यथार्थ की कृति है।"

परसाईजी की अधिकांश कहानियाँ समस्या-प्रधान सामाजिक कहानियाँ हैं, जो वर्तमान सामाजिक जीवन की विशृंखलताओं तथा असंगतियों पर करारी चोट करती हैं। उनमें राजनीतिक समस्याओं का यथार्थ रूप भी मिलता है। अपनी कहानियों के माध्यम से उन्होंने समाज के हर क्षेत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार को खोलकर रख दिया है। उन्होंने अपने कथा-शिल्प को सँवारने के लिए अतीत और भविष्य की लोक-प्रचलित कहानियों के माध्यम से लोक व्याप्त अन्तर्विरोधों और विकृतियों का सशक्त उद्‌घाटन किया है जिससे उनकी कहानियों में प्रतीकात्मकता आ गयी है। उनकी इन हास्य-व्यंग की कहानियों में भोंडापन, अश्लीलता या सस्तापन नहीं है। कहानियों की अभिव्यक्ति में जितनी सादगी है, प्रभाव में उतनी ही सक्षमता है। जीवन के गहन और व्यापक अनुभव उनकी कहानियों में अभिव्यक्त हुए हैं। परसाईजी ने समाज के विभिन्न सन्दर्भों को लेकर कहानियाँ लिखी हैं। उन्हींके अनुसार—"५६ के पहले तक मेरा मन बहुत गीला था, अब भी कोई सूखा नहीं है, पर तब विशेषकर अपने दुख के प्रति और सामान्यतः हर दुख के प्रति एक सम्मोहन भाव था। उस दौर में मैंने बेहद रुलानेवाली कहानियाँ लिखी थीं। ५६ के कुछ पहले ही गीली भावुकता छूट गयी थी और परिस्थितियों के व्यंग ने रचनात्मक चेतना पर कब्जा कर लिया था।"

परसाईजी ने देश में व्याप्त राजनैतिक भ्रष्टाचार पर अपनी अनेक कहानियों में अनेक दृष्टिकोणों से लिखा है। उनकी कहानी **"जैसे उनके दिन फिरे"** इस दृष्टि से उल्लेखनीय कहानी है। इस कहानी के चारों राजपुत्र भ्रष्टाचारी हैं पर राजगद्दी उसे मिलती है जो सबसे अधिक भ्रष्टाचारी है। इस कहानी के माध्यम से वह यह कहना चाहते हैं जैसे भ्रष्टाचार द्वारा उन राजपुत्रों के दिन फिरे वैसे ही आजकल भ्रष्टाचार द्वारा ही लोगों के दिन फिरा करते हैं।

"भोलाराम का जीव" नामक अपनी प्रसिद्ध कहानी में उन्होंने व्यंग के माध्यम से शासकीय ढाँचे की लालफीताशाही, घूसखोरी और क्रूरता को उजागर किया है। परसाईजी के विचारानुसार "हमारा शासकीय ढाँचा जड़ हो गया है। इसमें मनुष्य के जीवन के प्रति कोई कंसिडरेशन नहीं है। आदमी की जगह फाइल, टाइपराइटर, मीमो और रजिस्टर ने ले ली है। यह जड़ ढाँचा सिर्फ घूस से चलता है। बिना घूस के कोई कागज नहीं निकलता। भ्रष्ट नौकरशाही आदमखोर हो गयी है।"

"भोलाराम के जीव" की कहानी की तसवीर हमारे देश की तसवीर है, हमारी देश की जनता की तसवीर है। इस कहानी के नायक भोलाराम मास्टर का जीव अपनी पेंशन की दरख्वास्त में अटका है, लेकिन उसकी दरख्वास्तें हमेशा उड़ जाती रही हैं क्योंकि उन पर वजन नहीं रखा गया है। इन दरख्वास्तों को दबाने के लिए रिश्वत का पेपरवेट चाहिए। इस कहानी में राजनैतिक भ्रष्टाचार पर भी व्यंग किया गया है—"राजनैतिक दलों के नेता विरोधी नेता को उड़ाकर कहीं बन्द कर देते हैं। कहीं भोलाराम के जीव को भी तो किसी विरोधी ने मरने के बाद भी खराबी करने के लिए नहीं उड़ा दिया?" सामान्य व्यक्ति की पहुँच तो आज के इस प्रजातंत्रात्मक देश की राजनीति में हो ही नहीं सकती। इसीलिए धर्मराज कहते हैं—"भला, भोलाराम जैसे नगण्य, दीन आदमी से किसीको क्या लेना-देना।"

नौकरशाही का एक तीखा चित्रण उनकी **"ठण्डा शरीफ आदमी"** नामक कहानी में मिलता है—"धुन बाँधे वह चला जाता है। ओठों के पास कान लगाओ तो 'सर-सर' सुनाई पड़ेगा। कुछ भक्त 'राम-राम' बुदबुदाते चलते हैं क्योंकि उनके 'सर' 'राम' होते हैं।"

आज का व्यक्ति अपने देश एवं समाज की स्थिति से कितना निरपेक्ष और तटस्थ होकर अपने स्वार्थ में मशगूल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो गया है। इसी कहानी में जब एक दिन बिहार के अकाल-ग्रस्त लोगों के लिए उसके ठण्डे शरीफ आदमी से चन्दा माँगते हैं तो वह जवाब देता है—"क्या मजाक करते हो! अकाल तो बिहार में पड़ा है और पैसा यहाँ इकट्ठा कर रहे हो।"

इस ठण्डे शरीफ आदमी के माध्यम से लेखक ने आज की व्यवस्था में फिट होने वाले ऐसे व्यक्तियों का चित्र प्रस्तुत किया है जो बाहर से बड़े शरीफ और शान्त दिखते हैं परन्तु अन्दर से सब प्रकार के नैतिक-अनैतिक साधन अपनाकर सफलता के चरम शिखर पर पहुँच जाते हैं—लेखक कहता है—"इस आदमी की कोई आहट नहीं है, मगर एक दिन सुनते हैं कि वह नामजद हो गया। पुस्तकों पर पुरस्कार मिलते हैं, अच्छे से अच्छे ग्रन्थों की चर्चा हो रही है। पुरस्कारों की घोषणा होती है तो उसमें इसका नाम होता है।"

परसाई जी ने राजनैतिक भ्रष्टाचार पर खूब जमकर लिखा है। "चोरी के विधायक" नामक कहानी में दलबदलुओं की समस्या को प्रतीकों के माध्यम से उठाया गया है। इस कहानी में रानी का बटुवा खो जाता है जिसमें बीस विधायक होते हैं। इस कहानी के माध्यम से लेखक ने यह स्पष्ट किया है कि किस तरह हमारे आज की प्रजातंत्रात्मक राजनीति पर राजा, रानी और सेठ सर्वत्र हावी हो गये हैं। समाजवाद का नारा थोथा हो गया है और सिर्फ कहने मात्र के लिए प्रजातंत्र रह गया है। आगे चलकर एक अहम सवाल हमारे अन्दर उठ खड़ा होता है कि आज के युग में आखिर हमारा प्रजातंत्र कहाँ सुरक्षित है—सेठ की तिजोरी में, पुलिस की कोतवाली में या राजा की अटैची में?

इस कहानी में लेखक ने समसामयिक सन्दर्भ में राजनीतिक हलचलों को उजागर किया है। अन्त में मुख्यमंत्री और राजा साहब में आपस में इस प्रकार समझौता हो जाता है कि पाँच विधायक मुख्यमंत्री अपने पास रख लेता है क्योंकि उसकी पुलिस ने विधायकों को ढूँढ़ निकाला था और पन्द्रह विधायक राजा को वापस कर दिये जाते हैं। राजा साहब भी पन्द्रह विधायक वापस पाकर यह सन्तोष कर लेते हैं कि चलो इतने से ही वे प्रजातन्त्र की रक्षा कर लेंगे।

परसाईजी की कहानियों में वर्तमान भ्रष्ट और गलित व्यवस्था के कारण उत्पन्न हुई आदमी के टूटे हुए व्यक्तित्व की संवेदना जगह-जगह मिलती है। एक ओर उसकी टूटी हुई महत्त्वाकाँक्षायें हैं, दूसरी ओर समाज के हर क्षेत्र में फैली हुई मौजूदा जमाने की स्पर्धा, पक्षपात एवं नैतिकता की खरीद-फरोक्ति। परसाईजी की "असहमत" कहानी एक ऐसे ही टूटे हुए व्यक्तित्व की कहानी है, वह व्यक्ति अपने आस-पास के आगे बढ़ते हुए तुच्छ लोगों की भीड़ को देखता है और सबसे नफरत करता है—"एक कालेज में पढ़ाता है, कालेज से नफरत करता है, लौटता है तो जैसे पाप करके लौट रहा हो। प्रिन्सिपल से, साथियों से, विद्यार्थियों से नफरत करता है। बगीचे में खिले फूलों से भी उसे नफरत है।"

यह स्थाया असहमति उसका अपने आपको जोड़ने का प्रयत्न है। इससे वह विशिष्ट बने रहने का प्रयत्न करता है क्योंकि विशिष्ट हुये बिना वह जी ही नहीं सकता। भारतीय नवयुवक के व्यक्तित्व का यह विघटन सामान्यतः मध्यमवर्गीय परिवार में देखा जा सकता है—यह हमारी इस भ्रष्ट राजनैतिक और सामाजिक व्यवस्था की देन है। क्योंकि—

"—ऊपर के लोग अपनों को अच्छी जगहों पर फिट करते हैं।"
"और योग्य आदामियों की अवहेलना होती है।"
"हाँ, और नालायक ऊँचे पदों पर बिठाये जाते हैं।"
"तभी तो सब जगह स्तर गिर रहा है।"
"अरे भई स्तर तो कुछ रहा नहीं।"
"पता नहीं, कब तक यह अन्धेर चलेगा।"
"मैं भी यही सोचता हूँ कि आखिर ऐसा कब तक?"
—असहमत

"आखिर ऐसा कब तक चलेगा?" अपने पात्र के मुँह से यह कहलाकर परसाईजी ने आनेवाले भविष्य की सम्भावना के प्रति एक प्रश्नचिह्न लगा दिया है। उनके इस वाक्य से एक गहन निराशा झलकती है, जो हमारे आज के सन्दर्भों की एक पीड़ाजनक स्थिति का दिग्दर्शन हमें कराती है।

उन्होंने अपनी कहानियों के माध्यम से अन्य सामाजिक सन्दर्भों पर भी बहुत कुछ लिखा है। देश में धर्म के नाम पर फैली वैमनस्यपूर्ण धर्मान्धता का चित्रण भी उन्होंने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया है। उनकी "मौलाना का लड़का और पादरी की लड़की" एक ऐसी ही कहानी है जो धर्मान्धता पर एक गहरा कटाक्ष करती है। कहानी "मूर्त्ति-प्रसंग और जान की बाजी" के द्वारा लेखक ने देश के वर्तमान तथाकथित नेताओं के खोखलेपन, आत्मदम्भ, छलनामय, स्वार्थीपन तथा सस्ती लोकप्रियता प्राप्त करने की ओछी महत्त्वाकांक्षा का पर्दाफाश किया है।

दाम्पत्य जीवन पर मधुर कटाक्ष करते हुए परसाईजी अपने "चार बेटे" नामक कहानी में लिखते हैं—"इसमें कोई सन्देह नहीं कि वे आदर्श दम्पत्ति थे। गृहस्थ धर्म की एक जरूरी रस्म पत्नी को पीटने की होती है, जिसके बिना कोई भी पूर्ण पति होने का दावा नहीं कर सकता।"

"भगवान् का चौकीदार" नामक कहानी में धार्मिक पाखण्डियों के दोहरे चरित्र का भी पर्दाफाश किया गया है। मकान मालिक दूबे जी बड़े आध्यात्मिक पुरुष हैं, उन्हें देखते ही कथा नायक को लगता है कि वे बड़े पुण्यदर्शन पुरुष हैं और वह किसी वैदिक ऋषि के आश्रम में आ गया है। दुबेजी जब भी कोई बात करते हैं तो ऐसा लगता है जैसे आध्यात्म के आकाश में बड़ी ऊँचाइयों से बात कर रहे हों। वर्षा ऋतु में छत के टपकने पर किरायेदार शिकायत करता है—"छत जगह-जगह से फटी है, कमरे में पानी भर गया है।"

वह उसी प्रकार आत्मलीन मुद्रा में बोले—"तो मैं क्या कर सकता हूँ। भगवान् का घर है और भगवान् की ही वर्षा है। मैं भगवान् की वर्षा को भगवान् के मकान में आने से रोकनेवाला कौन।"

अन्त में जब किरायेदार रैन्ट कन्ट्रोलर से शिकायत करने की धमकी देते हैं तो भगवान पर अगाध श्रद्धा रखने वाले दूबे जी ठहाका मार कर कहते हैं—"मैं अगर पूरी छत भी खुलवा दूँ, तब भी रैन्ट कन्ट्रोलर यही कहेगा कि छत चलता है। कारण जानते हो ? मेरा सगा भतीजा डिप्टी मिनिस्टर है।"

हमारा प्रजातन्त्र देश के चन्द पूँजीपतियों के हाथ में बिका हुआ है। "चोरी के विधायक" कहानी में राजा साहब का यह वक्तव्य आज के जनता के प्रतिनिधि कहलाने वाले विधायकों के बारे में बड़ा सटीक है। राजा साहब नौकरवाल से कहते हैं—"उनकी (विधायकों की) जीभ कटी हुई है और हर एक के दाहिने हाथ में एक रस्सी बँधी है। मतदान के वक्त इस रस्सी को खींचकर हम विधायक का हाथ ऊँचा करते हैं।"

परसाईजी के सम्बन्ध में श्री उपेंद्रनाथ अश्क लिखते हैं—"परसाईजी महज हास्य और शौक के लिए नहीं लिखते। सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक कुरीतियों, धूर्तताओं, रियाकारियों का पर्दा ऐन चौराहे पर फास करते हैं। उनके अनुभव गहरे, दृष्टि साफ, वाक्य-विदग्धता में कौंधे की लपक और व्यंग में नश्तर की सी तेजी है। अपने व्यंग लेखों और कहानियों के माध्यम से वे हमारे अपने जीवन के विभिन्न क्षेत्रों की विसंगतियों को उभारकर रख देते हैं और तर्क का साथ नहीं छोड़ते।"

स्वातन्त्र्योत्तर भारत में व्यक्तिगत और सामाजिक दोनों स्तरों पर नैतिक मूल्य लगातार विघटित होते चले गये हैं। नैतिक मूल्यों के इस विघटन ने वर्तमान आदमी को अत्यधिक स्वार्थी और अहं केन्द्रित बना दिया है। अपनी "सुफ्तखोर" कहानी में इसी प्रकार के एक पात्र का चित्रण किया गया है।

प्राचीन संस्कृत साहित्य के पौराणिक आख्यानों एवं दृष्टांतों की परम्परा में इन्होंने लोक-कथायें भी लिखी हैं। उनकी इन लोक-कथाओं में भी एक गहरे व्यंग का स्वर निहित है, जो हमारे चारों ओर फैले अनाचार एवं अव्यवस्था पर तीखा कटाक्ष करता है।

स्वतन्त्रता की प्राप्ति के इतने वर्षों बाद हमारे देश की क्या उपलब्धियाँ रहीं, इसका सर्वेक्षण करते हुए परसाईजी अपनी डायरी के रूप में लिखी कहानी—"हम वे और भीड़" में लिखते हैं—"हमारे बापों से तब (स्वतन्त्रता पूर्व) कहा जाता था कि आजादी की घास गुलामी के घी से अच्छी होती है। हम तब बच्चे थे, मगर हमने भी इसे सुना, समझा और स्वीकारा। आजाद हो गये तो हमने कहा—"अच्छा अब हम गौरव के साथ घास भी खा लेंगे।" नारा लगवाने वालों से पूछना भूल गये, कब तक खायेंगे।

मगर हमने देखा कि कुछ लोगों ने अपनी काली-काली भैंसें आजादी की घास पर छोड़ दीं और घास उनके पेट में जाने लगी, तब भैंसवालों ने उन्हें दुह लिया और दूध का घी बनाकर हमारे सामने ही पीने लगे।"

इसी प्रकार इसी कहानी में एक दूसरे स्थान पर लेखक देश की उपलब्धियों पर लिखता है—"देश एक कतार में बदल गया है। चलती-फिरती कतार है, कभी चावल की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुकान पर खड़ी होती है, फिर सरककर शक्कर की दुकान पर चली जाती है।"

देश का बुद्धिजीवी प्राध्यापक वर्ग, जिससे यह अपेक्षा की जाती है कि वह स्वतन्त्र चिन्तक और देश का दिशा-निर्देशक होता है, वह भी राजनैतिक दबावों के कारण व्यक्तित्वहीन होता चला जा रहा है। परसाईजी की "ग्रान्ट अभी तक नहीं आई" कहानी में मंत्रीजी के आने पर प्राध्यापकों में क्या प्रतिक्रिया होती है, इसका एक चित्रण—"विश्वविद्यालय में मंत्रीजी के घुसते ही पहले तो ये आदमी थे, आदमी से हाथ हो गये और अभिवादन में कुहनी तक जुड़ आये····· घण्टा भर पहले चेहरों पर अलग-अलग भाव थे—अपने निजी भाव। अब ये चेहरे मात्र रिफ्लेक्टर हैं। पहले आँखों में ज्ञान की चमक थी अब ठकुर-सुहाती की टिमटिमाहट है।

स्वातन्त्र्योत्तर भारत की उपलब्धियों पर व्यंग करते हुए लेखक अपनी कहानी "समस्या वजन घटाने की" में लिखते हैं—"सारा देश १९४७ से वजन तौलने की मशीन पर खड़ा है, पर सुई आगे नहीं बढ़ती, पीछे ही खिसकती जा रही है। नेताओं के सफलता के भाषण सुनते हैं तो क्षण भर लगता है कि क्या मशीन खराब हो गयी। नहीं, मशीन खराब नहीं है। हम खड़े-खड़े ही दुबले हो रहे हैं।"

इसीमें—"सब मान बैठे हैं कि रोटी खाने से कोई मोटा नहीं होता, चन्दा या घूस खाने से ही आदमी मुटाता है। पौष्टिक तत्त्व अब सिर्फ बेईमानी में बचे हैं।"

परसाईजी मार्क्सवाद से अत्यन्त प्रभावित हैं। वे देश की इस वर्तमान दुर्दशा का कारण इस पूँजीवादी व्यवस्था को मानते हैं। अपनी "अन्न की मौत" नामक कहानी में उन्होंने चूहे के प्रतीक से इस पूँजीवादी व्यवस्था के दुष्परिणाम की विवेचना करते हुए लिखा है—"ये चूहे खाद्य व्यवस्था के बोरे में घुसकर वहीं मोटे होकर मर गये और सड़कर सारी व्यवस्था को नष्ट कर दिया। अन्न सब दफना दिया गया, हमें सिर्फ सड़ाँध का अनुभव हो रहा है। मुझे लगता है, सभ्यता के बोरे में ये चूहे घुसकर सड़ गये हैं।"

पूँजीपतियों ने किस प्रकार अन्न को गोदामों में सड़ा-सड़ाकर देश में भुखमरी और भ्रष्टाचार को बढ़ावा दिया है और देश के उच्चस्तरीय नेता राष्ट्र की भावनात्मक एकता की बात करते हैं, इस सम्बन्ध में परसाईजी लिखते हैं—"मुझे सहसा राष्ट्र की एकता का बोध होता है। कोटि-कोटि नर-नारी अन्न संकट के सूत्र से बँधकर एक हो गये हैं। भुखमरी और भ्रष्टाचार हमारी राष्ट्रीय एकता के सबसे ताकतवर तत्त्व बन गये हैं। धर्म, संस्कृति और दर्शन कमजोर पड़ गये हैं। कैसी अद्भुत एकता है।"

"इंस्पेक्टर मातादीन चाँद पर" नामक कहानी में इन्होंने पुलिस विभाग में चरम उत्कर्ष पर पहुँचे भ्रष्टाचार का चित्रण किया है। मातादीन कहता है—"पुलिस के लिए यह सवाल इतना महत्त्व नहीं रखता, जितना ये सवाल कि जुर्म किस पर साबित हो सकता है या किस पर साबित होना चाहिए। कत्ल हुआ है तो किसी मनुष्य को सजा होगी ही। मारनेवाले को होती है या बेकसूर को—यह अपने सोचने की बात नहीं है। मनुष्य-मनुष्य सब बराबर हैं, सबमें उसी परमात्मा का अंश है। हम भेदभाव नहीं करते। यह पुलिस का मानवतावाद है।"

परसाईजी प्रगतिवादी साहित्यकार हैं। वैचारिक स्तर पर वे मार्क्सवाद से प्रभावित हैं। गांधीवाद की अहिंसा और हृदय-परिवर्त्तन की बात पर उनका विश्वास नहीं है। दिसम्बर ६५ में आयोजित कलकत्ता कथा समारोह में अपना वक्तव्य देते हुए उन्होंने कहा—"·····प्रगतिवादी चेतना ने यथार्थ को निकट से जानने-समझने में सहयोग दिया है। कुछ लोग आत्मानुभूति की बात करते हैं। सम्भव है आप जिसे आत्मा की आवाज समझते हैं, वह स्वार्थ की आवाज हो। गाँधीवादी हृदय परिवर्तन की स्थिति भी यही है। कुछ के पास तो हृदय ही नहीं होता·····" नई पीढ़ी के सम्बन्ध में इसी कथा-समारोह में परसाईजी ने कहा—"नई पीढ़ी की कुन्डा घुटन तो समझ में आती है पर अगर वे आत्महत्या की बात करते हैं तो मुझे लगता है जैसे चौराहे पर जिन्दा ही कफन ओढ़कर चन्दा माँगना चाहते हों।"

शरद् जोशी के अनुसार—"थोथा दर्शन और राजनीति को एक्सपोज करने का काम केवल एक व्यंगकार-परसाई ने किया है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्लैक

श्री राजेन्द्र प्रसाद जैन

कारण :—

१—**हर प्रकार के पदार्थों की अत्यधिक माँग। कारण—**

(क) **जनसंख्या में अत्यधिक वृद्धि**—वारेन हेस्टिंग्ज के समय में एक अंग्रेज ने भारत की कुल जनसंख्या का अनुमान नौ करोड़ हिन्दू और एक करोड़ मुसलमान इस प्रकार कुल दस करोड़ लगाया था।[१] हमारे विद्यार्थी जीवन में वन्दे मातरम् में 'त्रिंशकोटि कंठ' गाया जाता था। इससे प्रकट है कि उस समय के भारत (भारत + पाकिस्तान + बंगला देश + बर्मा + अदन) की कुल जनसंख्या ३० करोड़ थी। वह अब इन सब देशों की लगभग ९० करोड़ है। यह ठीक है कि प्रत्येक मुँह के साथ परमात्मा ने दो हाथ दिये हैं, परन्तु प्रत्येक दो हाथ के साथ एक अंगुल भूमि भी नहीं उतारी। जब तक अतिरिक्त भूमि न उतरे तब तक हाथ अपना कार्य नहीं कर सकते। हाथ कार्य करें या न करें मुँह को हवि देनी पड़ती है। राज्य इस ओर जागरूक है, परन्तु परिवार-नियोजन के कुछ नैतिक व राजनीतिक परिणाम भी हैं। उनकी ओर से आँखें नहीं मूँदी जा सकतीं। मौलवियों ने परिवार-नियोजन को निषिद्ध ठहराया है।[२] यदि परिवार-नियोजन को केवल हिन्दू अपनाते रहे तो इसके भयङ्कर राजनीतिक परिणाम हो सकते हैं। पिछले २०० वर्ष में भारत उपमहाद्वीप में हिन्दू-मुस्लिम जनसंख्या का अनुपात ९:१ से घटकर ३:१ रह गया है। अंग्रेजों के आगमन के समय बँगला देश, पाकिस्तानी पंजाब, पूर्वी सिन्ध और कश्मीर अधिकांश हिन्दूबहुल प्रदेश थे। यदि जनसंख्या के इस घटते हुए अनुपात के प्रति हमने उपेक्षा न बरती होती तो आज देश का विभाजन न होता। यदि आगे भी यही उपेक्षा चलती रही तो उसके परिणाम और भी भयङ्कर हो सकते हैं। न केवल राजनीतिक अपितु, नैतिक, व्यक्तिगत और अन्य कारणों से भी परिवार-नियोजन की अपनी सीमाएँ हैं। जनसंख्या की वृद्धि रोकने के लिए हमें अन्य उपायों की भी खोज करनी चाहिए जो स्वाभाविक व प्राकृतिक हों, और जिनसे दाम्पत्य जीवन के धार्मिक तथा रसात्मक रूप पर चोट न पहुँचती हो और जो राजनीतिक और नैतिक दृष्टि से भी निरापद हों। अकबर के समय में भी भारत की जनसंख्या १० करोड़ कूती गयी थी और १७८९ में भी १० करोड़। अर्थात् २०० वर्ष में कोई वृद्धि नहीं हुई परन्तु अब पिछले २०० वर्षों में बढ़कर ९० करोड़ अर्थात् नौ गुनी होगयी है। मेरी समझ में इसका कारण सभ्यता का यन्त्रीकरण है, जिससे जीवन नीरस होता जा रहा है। उस नीरसता से त्राण पाने का एकमात्र साधन कामलीला रह गयी है।

(ख) **जीवन का उठता हुआ स्तर**—धन का स्वभाव है कि वह जिसके हाथ में जाता है उसकी वासनाएँ भड़का देता है। यौवन, सौन्दर्य और मदिरा वासनाओं को उतना नहीं भड़का पाते जितना धन भड़का देता है। बिहारी के अनुसार—'कनक कनकतें सौ गुनी मादकता अधिकाय। वा खाये बौरात है या पाये बौराय।' भोग-उपभोग की प्रत्येक सामग्री की माँग अत्यधिक रूप से बढ़ी है। कच्चे घरों के स्थान पर कोठियाँ, घाँघरे के स्थान पर साड़ियाँ, बोरियों के स्थान पर सोफा सेट। जीवन-स्तर का यह ऊँचा उठना अनेक अंशों में आवश्यक था, परन्तु अनेक अंशों में अनावश्यक। फिर सबसे बड़ी बात तो यह है कि हमें अपना व्यय अपनी आय से ऊपर नहीं जाने देना है चाहे वह व्यय आवश्यक या अनावश्यक हो। यदि हम इसका ध्यान नहीं रखते तो हम चोरी करेंगे, भ्रष्टाचार करेंगे, दिवाला निकालेंगे, जेल जायँगे या आत्मघात करेंगे। जो बात व्यक्तिगत स्तर पर लागू होती है वही राष्ट्रीय स्तर पर भी लागू होनी चाहिये। उत्पादन इतना नहीं बढ़ा जितनी माँग बढ़ गयी। राज्य ने उत्पादन बढ़ाने का तो प्रयत्न किया परन्तु माँग कम करने का कोई प्रयत्न नहीं किया। उल्टे जीवन का स्तर ऊँचा करने

---

१. ऐन हिस्टारिकल डिस्क्वीजिशन कनसर्निंग द नालेज ह्विच द एनशेण्टस हैड आव इण्डिया। लेखक विलियम राबर्टसन, प्रिन्सिपल एडिनबरा विश्वविद्यालय। प्रथम संस्करण १७८९। पुनर्मुद्रण १९०५।

२. क्या बर्थ कण्ट्रोल इसलिए किया जाता है कि मर्दुमशुमारी में कमी हो यानी नस्ल कम हो तो ख्याल फर्माइये कि नस्ल मंतका कर देने या नस्ल को कम करने को इस्लाम ने हराम ठहराया है। अलजमईयात साप्ताहिक २०-१०-६७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का राग अलाप-अलापकर लोगों की वासनाएँ भड़काता रहा। गाँव-गाँव बिजली, अर्थात् नगरों से भी बिजली अन्तर्धान।

प्राचीन संस्कृति त्याग-आधारित थी। वर्त्तमान संस्कृति भोग-आधारित है। और, जैसा कि भर्तृहरि ने कहा है, संसार के समग्र भोग्य पदार्थ एक मनुष्य की वासनाओं की पूर्त्ति करने के लिए भी पर्याप्त नहीं। संतति-निरोध से तब तक कोई लाभ नहीं होगा जब तक वासनाओं का निरोध नहीं होगा। दश भोगवादियों की माँग पूरी करना जितना कठिन है उतना एक हजार सन्तुलित व्यक्तियों की नहीं। ब्रह्मचर्य द्वारा सन्तति-निरोध के साथ-साथ वासनाओं का भी निरोध होता है, जबकि कृत्रिम साधनों द्वारा सन्तति-निरोध जितना जनसंख्या को सीमित करता है उससे अधिक वासनाओं को निर्बाध छोड़ देता है।

(ग) **कागजी मुद्रा**—कागजी मुद्रा मय दानव की नगरी जैसा बहुत बड़ा भ्रमजाल है, जहाँ दुर्योधन ही नहीं पाण्डवों के भी सिर फूटते हैं। वास्तव में महार्घता है ही नहीं। एक तोला चाँदी में जितना सामान १९३९ में मिलता था बहुत कुछ उतना ही अब भी मिलता है। १९३९ में चाँदी सात आने तोला थी और बढ़िया गेहूँ एक रुपये में १६ सेर मिलता था अर्थात् एक तोला चाँदी में सात सेर। अब चाँदी साढ़े सात रुपये तोला है और साढ़े सात रुपये में सात सेर गेहूँ कहीं भी मिल सकता है? सारा भ्रम कागजी मुद्रा ने फैलाया है। हमारे हाथ में भोज के लिए निमन्त्रणपत्र है। हम जाते हैं। अतिथियों की संख्या इतनी अधिक होती है कि उन्हें मिठाई कचौड़ी तो क्या बैठने को स्थान भी नहीं मिल पाता। हमारे हाथ में नोट हैं। हम समझते हैं कि हमें अधिकार है उन नोटों के बदले गेहूँ, चीनी, वस्त्र इत्यादि लेने का; पर वे मिलते नहीं। यदि मुद्रा चाँदी या सोने की होती तो राज्य अनाप-शनाप खर्च नहीं कर सकता था। अब तो खुली छूट है। जितना चाहो खर्च करो। नोट छापने की मशीन सलामत चाहिये।

मुद्रा-स्फीति ने न केवल अधिक धनवान होने का भ्रम उत्पन्न करके कामनाओं को भड़काया है, अपितु विभिन्न वर्गों तथा पदार्थों में असन्तुलन भी उत्पन्न किया है। १९४२ में मैं मुरादाबाद में ५६ रुपये मासिक पाता था। एकदम मेरी नियुक्ति १०१ रुपये पर हो गयी। मैं फूला नहीं समाया। सात रुपए के किराये का मकान छोड़कर बीस रुपये मासिक पर मकान लिया। एक-एक हजार के दो बीमे ले लिये। शीघ्र ही जो महार्घता आयी उससे मेरे होश उड़ गये। अब वे पिछले ५६ रुपये भी नहीं रहे। भगवान् ने सुनी। बीमा कम्पनी ने बीमे स्वीकार नहीं किये। जब जब मुद्रा के रूप में आय बढ़ी है मेरा सिर फूटा है, क्योंकि कुछ ही समय पश्चात् पता चलता कि वास्तविक आय की दृष्टि से तुम कोल्हू के बैल जैसे जहाँ थे वहीं हो। मुद्रा-स्फीति से उत्पादकों और व्यापारियों का लाभ बढ़ जाता है, परन्तु वेतनभोगी वहींके वहीं रहते हैं। उन्हें महार्घता भत्ता बढ़वाने के लिए संघर्ष करना पड़ता है। हड़ताल चलती है। गोली, लाठी, अश्रुगैस चलती हैं। इनसे उत्पादन गिरता है। राज्य का व्यय बढ़ता है। फलस्वरूप महार्घता और बढ़ती है। फिर उत्पादन भी आजकल कई श्रेणियों में होकर चलता है। खली, भूसा, चारे के दाम चढ़ जाते हैं, दूध के नहीं चढ़ते। ऐसी स्थिति में दूध का उत्पादन रुक जाता है। दूध के दाम चढ़ जाते हैं, घी के नहीं चढ़ते। घी वाले घी का उत्पादन बन्द कर देते हैं। इस प्रकार की हाय-हाय उत्पादकों में भी पड़ी रहती है। प्रत्येक उत्पादक कच्चे माल की तेजी का रोना रोता है, परन्तु अपना माल ऊँचे से ऊँचे दाम में बेचना चाहता है। इस मुद्रा-स्फीति से संस्थाओं को बहुत हानि पहुँची। आज के सन्दर्भ में चार आने या आठ आने वार्षिक का शुल्क क्या अर्थ रखता है? इस मुद्रा-स्फीति के कारण दण्डसंहिता अर्थहीन हो गयी। जिन अपराधों के लिए १००० रुपये का अर्थदण्ड था उनके लिए अब भी १००० रुपये का ही अर्थदण्ड है। अर्थात् वह घटकर १०० रुपये रह गया। जब हम पढ़ते थे तब भी विद्यार्थियों पर अनुपस्थिति दण्ड एक आने प्रतिदिन होता था। अब भी वही एक आना अर्थात् ६ पैसे प्रतिदिन। एक दिन मेरे एक विद्यार्थी ने कहा, कल मैं साइकिल से गिर पड़ा था, इसलिए विद्यालय नहीं आ सका। कृपा करके कल की मेरी अनुपस्थिति के स्थान पर अवकाश लगा दीजिए। मैंने कहा, तुम प्रार्थनापत्र दे दो। मैं अवकाश लगा दूँगा। वह चुप होकर बैठ गया। मैंने कहा, तुम प्रार्थनापत्र क्यों नहीं देते? वह बोला, वैसे ही अवकाश लगाइये तो लगा दीजिये नहीं तो जैसा ६ पैसे का दण्ड ऐसा ही ६ पैसे का कागज-रोशनाई चाहिए प्रार्थना-पत्र के लिए।

मुद्रा-स्फीति एक आपत्काल धर्म है। युद्धादि के समय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

र्थ-सङ्कट से पार पाने के लिए। राज्य ने इसे सामान्य धर्म बनाकर सारे आर्थिक ढांचे को चरमरा दिया है।

२—उत्पादक व व्यापारी की माल रोकने की बढ़ी हुई शक्ति—अब उत्पादक या व्यापारी माल बेचने के लिए विवश नहीं है। वह पहले की अपेक्षा अब माल को अधिक दिनों तक रोक सकता है। अनुभव ने उसे बतलाया है कि इसमें उसका लाभ है। धन एक शक्ति है। उसका सदुपयोग भी हो सकता है और दुरुपयोग भी। वर्तमान उत्पादक व व्यापारी उसका दुरुपयोग करते हैं। लोक व्यापारी व बड़े उत्पादक माल रोक लेते हैं। फुटकर व्यापारी यदि उनके मुँह माँगे दाम न दे तो उसकी दुकान बन्द हो जाती है। वह इतना धनवान नहीं कि दुकान बन्द करके भी दुकान का किराया, नौकरों का वेतन, ब्याज और पेट को भाड़ा देता रहे। उसे ऊँचे दामों माल लेना ही पड़ता है। उपभोक्ताओं को अपनी तात्कालिक आवश्यकताओं की पूर्त्ति के लिए फुटकर व्यापारी के आगे झुकना पड़ता है। अनेक धनवानों ने, जिन्हें व्यापार का कुछ भी अनुभव नहीं है, यह देखकर कि पदार्थों के मूल्य बढ़ते जा रहे हैं, अललटप किसी न किसी माल को रोकने का धन्धा आरम्भ कर दिया है। ये किसी भी माल को बड़े परिमाण में रोककर उसका कृत्रिम अभाव उत्पन्न कर देते हैं और मुँह माँगे दामों उसे बेचते हैं। व्यापारी इसे अपनी भाषा में खैला करना कहते हैं। वायदे के सौदों से खैला प्रकृति को और अधिक प्रोत्साहन मिलता है। राज्य ने इस संग्रह की प्रवृत्ति को रोकने के लिए बहुत से नियम-उपनियम बनाये हैं, परन्तु इन नियमों के अनुसार अब तक केवल छोटे उत्पादक तथा व्यापारी ही पकड़ में आये हैं। बड़े-बड़ों पर इनका कोई प्रभाव नहीं पड़ा है। मेरी समझ में इसे रोकने के लिए तीन उपाय काम में लाने चाहिए। प्रथम तो आंशिक रूप से सोने-चाँदी की मुद्रा का प्रचलन। नोट के रूप में धन संग्रह न करके धनिक किसी वस्तु के रूप में धन संग्रह करना अच्छा समझते हैं। किसी भी समय राज्य नोट अमान्य कर दे। जैसा पहले १००० रुपये वाले नोट को अमान्य कर दिया था। तब कुछ भी नहीं बचता। दूसरे नोट से सौन्दर्यासक्ति की भावना भी तुष्ट नहीं होती। सोने चाँदी में केवल धन का ही नहीं, रूप का भी आकर्षण है। मेरी समझ में यदि राज्य १००० रुपये तथा १०००० रुपये के बढ़िया सुन्दर सोना, चाँदी व प्लैटिनम चढ़े कागज पर नोट छापे, जो कला के उत्कृष्ट नमूने हों, तो पदार्थों का संग्रह बहुत कुछ रुक सकता है। इन नोटों पर यदि देवी-देवताओं के चित्र हों तो इनके संग्रह में धार्मिक प्रवृत्ति भी सहायक हो सकती है। दूसरे यह कि प्रत्येक उत्पादक को अपने उत्पादन का १०% राज्य को करके रूप में देना अनिवार्य किया जाय। इस कर के पश्चात् जब उत्पादक का लाभ २०,००० रुपये वार्षिक से ऊपर हो तभी उस पर आयकर लगे। तीसरे यह कि आयकर की दरें कम्युनिस्टों को प्रसन्न करने के लिए नहीं, धनवानों के प्रति प्रतिहिंसा की भावना से नहीं, अपितु मानव प्रकृति के अनुकूल और देश के सर्वोच्च हितों को ध्यान में रखकर निर्धारित करनी चाहिए। हमारी सारी कर-व्यवस्था इस विश्वास पर चलती है कि जितना भी धन अर्जित किया है वह सब भ्रष्टाचार व समाज-विरोधी क्रियाओं का परिणाम है। यह दूसरी बात है कि वह कानून की पकड़ में नहीं आया। अतः जिसके पास जितना भी धन है वह सब लूट लो। उधर धनवान झूठे बही खाते बनाकर छिपा लेता है। यह छिपी हुई आय काला धन कहलाती है। यह किसी बैंक में या किसी ऐसे काम में नहीं लग सकती जहाँ पकड़ में आ जाय। अतः यह रुपया खाली पड़ा रहता है और खाली मस्तिष्क शैतान का घर तो खाली रुपया शैतान का बाप। यह रुपया समाज-विरोधी कार्यों में लगता है। हमारी कर व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए कि लोग कर छिपाने के लिए विवश न हों। यदि कोई कर छिपाता हो तो जनता की सहानुभूति राज्य के साथ हो न कि कर छिपानेवाले के साथ। आजकल चूँकि सभी कर छिपाते हैं इसलिए काला धन पकड़ने में राज्य को जनता का सहयोग नहीं मिल पाता। यह हमारे जनतन्त्र का सबसे बड़ा अभिशाप है कि राज्य यह नहीं सोचता कि जो नियम-उपनियम वह बना रहा है उनके पालन कराने में उसे जनता का कितना सहयोग प्राप्त हो सकेगा। सब चीजें ऊपर से थोप दी जाती हैं। जब से डा० जाकिर हुसेन राष्ट्रपति के रूप में बिठाये गये थे तब से भारत में थोप युग आरम्भ हो गया है। यहाँ मुख्य मन्त्री थोपे जाते हैं, अध्यक्ष थोपे जाते हैं, अब उर्दू थोपी जा रही है। सारी योजनाओं, अर्थ-व्यवस्था और कर-व्यवस्था की जड़ जनता में न होकर राजतन्त्र पर हावी शक्तियों के मानस में है। जनता उनसे अब भी इतनी ही दूर है जितनी ब्रिटिश युग में थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३—कम्युनिस्टीकरण —भारतीय शासक दल पर इस समय कम्युनिस्ट हावी हैं। कम्युनिस्ट धर्म, ईश्वर, सदाचार, राष्ट्रीयता और प्राचीन संस्कृति व परम्पराओं का खुल्लमखुल्ला विरोध करते हैं। वैसे उन्हें जनकल्याण से भी कोई सरोकार नहीं। उनका अपना आर्थिक दर्शन है। वह लागू होना चाहिए, चाहे जनता मरे या जिये। मैं यहाँ केवल दो उदाहरण दूँगा। भूमि की सीमाबन्दी कम्युनिस्टों के प्रभाव में आकर लगायी गयी है। इससे कृषि का उत्पादन घटा है। हमारे क्षेत्र के बहुत-से कृषक पहले नलकूप लगानेवाले थे। अब उन्होंने नलकूप लगाने का निश्चय छोड़ दिया है। कारण, नलकूप लगाते ही उनकी भूमि का मूल्य बढ़ जायगा और वह उनके हाथ से निकल जायगी। कृषक को अब भूमि को उन्नत करने में रुचि नहीं रही। नगरों में भी लोगों ने मकान-दुकान बनाना बन्द कर दिया है। अब उन्हें इस बात में कोई रुचि नहीं कि हमारे मकान के आगे को सड़क निकले या हम अपने मकान पर दूसरा अथवा तीसरा खण्ड बनायें। कारण, ऐसा करने से उनके मकानों का मूल्य बढ़ जायगा और वे उनके हाथ से निकल जायँगे। दूसरा उदाहरण गेहूँ के थोक व्यापार का राष्ट्रीयकरण है। जब तक व्यापारी गेहूँ लेते थे वे किसान के राजनीतिक प्रभाव में नहीं थे। अब सरकार गेहूँ लेती है। उस पर किसानों का राजनीतिक दबाव पड़ सकता है और पड़ता है। कृषक समाज के वोट खोने का साहस राजनीतिक दल नहीं दिखा सकते। अतः कृषक राज्य से अधिक से अधिक मूल्य माँगता है। दूसरे, राज्य को व्यापारियों की तुलना में गेहूँ लेने और बेचने में १० गुना अधिक व्यय करना पड़ता है। अतः गेहूँ आशा से अधिक महँगा हो गया है। राज्य आज तक उपभोक्ता के मन में यह विश्वास उत्पन्न नहीं कर सका कि जिस वस्तु का राष्ट्रीयकरण हुआ है वह उसे उचित दामों पर मिलती रहेगी। अतः राष्ट्रीयकरण की भनक कान में पड़ते ही उपभोक्ता उस पर टूट पड़ता है। अब तक का इतिहास बतलाता है कि राज्य अपनी पुलिस, फौज, हथकड़ी, बेड़ी और प्रचार सब कुछ होते हुए भी मूल्य नियन्त्रण में असफल रहा है। १९३९ में जब द्वितीय विश्व-युद्ध छिड़ा तब चार रुपये मन का कन्ट्रोल लगा। अनेक व्यापारी इसका उल्लंघन करने से दण्डित हुए। अब वही ४ रुपये मन का कन्ट्रोल रेट बढ़ते-बढ़ते ३४ रुपये मन तक पहुँच गया है। कम्युनिस्टीकरण से उत्पादन घटा है। कम्युनिस्टीकरण व्यापारियों को बिचौलिया कहकर नष्ट करना चाहता है। उनका सहयोग लेना नहीं चाहता। अतः उसने जान में या अनजान ही समस्त व्यापारी वर्ग को अपना शत्रु बना लिया है। कोई भी अर्थ-व्यवस्था व्यापारियों के सहयोग के बिना नहीं चल सकती। राज्य जो कण्ट्रोल के नियम बनाता है उनको कृषकों, उत्पादकों, व्यापारियों, उपभोक्ताओं व राज्य कर्मचारियों द्वारा व्यापक स्तर पर तोड़ा जाता है। जिस नियम को व्यापक स्तर पर तोड़ा जाता है उसके तोड़ने को एक प्रकार से सामाजिक मान्यता मिल जाती है। राज्य दण्ड के भय से शासन नहीं चला करता। वह समाज का भय है जिसके कारण अपराध रुकते हैं। राज्य केवल समाज की सहायता के लिए है। कण्ट्रोल के कारण भावों में और तेजी आती है, क्योंकि जहाँ माल उपलब्ध नहीं होता वहाँ उपभोक्ता उसका मुँहमाँगा मूल्य देने के लिए तैयार हो जाता है। दूसरे कण्ट्रोल के नियमों का उल्लंघन करने के लिए व्यापारी को जो घूस देनी पड़ती है उसे भी वह अपने खर्चे में जोड़ लेता है। पकड़े जाने पर जो मुकदमे में खर्च होता है, जो दण्ड भोगना पड़ता है वह सब भी खर्च में जुड़ जाता है।

४—राष्ट्रीय चरित्र का अभाव—एक दिन मैं मुजफ्फरनगर के पूर्त्ति विभाग में गया। वहाँ पूर्त्ति विभाग के अधिकारी सरोष कह रहे थे क्या यह जनता का कर्तव्य नहीं है कि आप ब्लैक रोकें। क्या आप देश के नागरिक नहीं हैं जो ब्लैकियों को पकड़वायें। ब्लैक-ब्लैक सब चिल्लाते हैं, परन्तु जब कोई ब्लैक में पकड़ा जाता है तब जनता का कोई भी आदमी उसके विरुद्ध गवाही देने नहीं आता। ऐसी ही शिकायत सभी अधिकारी करते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि हम लोगों में राष्ट्रीय चरित्र नहीं है, परन्तु मैं पूछता हूँ कि क्या सत्ताधारियों में राष्ट्रीय चरित्र है? राज्य अर्थ के लोभ में जनता को मदिरा पिलाता है, जुआ (लाटरी) खिलाता है। हिन्दूकोड बनाकर भ्रूण-हत्या को वैध ठहराकर उसने सदाचार के बन्धन शिथिल किये हैं। केन्द्र में बैठे हुए मन्त्री अपने ही दल की प्रान्तीय सरकारों की तोड़-फोड़ में लगे हुए हैं। मैं पूछता हूँ कि राष्ट्रीय चरित्र के विकास के लिए राज्य ने अब तक क्या किया? आकाशवाणी से कामुक गीतों का प्रसार और

[शेष पृ० ५९ पर देखिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केरल का अश्रुतर्पण

डॉ० विश्वनाथ अय्यर

आचार्य विनयमोहन शर्मा की 'आँसू तथा अन्य कृतियों का अध्ययन' नामक पुस्तक पढ़ने की याद एक प्रमुख छन्द का स्मरण कभी दूर नहीं होती। उन्होंने प्रसादजी को श्रद्धांजलि चढ़ाते हुए स्व० मैथिलीशरण गुप्तजी का एक छन्द उद्धृत किया है—

जयशंकर कहते हुए अब भी काशी आवेंगे।
किन्तु प्रसाद न मूर्तिमान हम विश्वनाथ का पावेंगे ।।

जयशंकर प्रसाद से रहित काशी हिन्दी साहित्य के प्रेमियों को भगवान् शंकर के प्रसाद से हीन लगती है। इसी प्रकार प्यारे अग्रज डा० प्रेमनारायण टंडनजी से रहित लखनऊ और लंखनऊ विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग की बात सोचना केरलीय हिन्दी प्रेमियों के लिए बड़ा कठिन है।

टंडनजी से मेरा परिचय पहले उनकी कीर्ति से हुआ। बाद में मूर्ति का साक्षात्कार हो सका। छात्र के नाते मैंने उनकी गोदान व चन्द्रगुप्त की सहायक समीक्षा का अध्ययन किया था। दक्षिण के उच्च परीक्षार्थियों को सहायक समीक्षा के ऐसे ग्रन्थ पहले-पहल भेंट करनेवाले आदरणीय टंडनजी थे। सारे प्रमुख ग्रन्थों —काव्य, नाटक, उपन्यास- की समीक्षा प्रस्तुत कर उन्होंने इन जिज्ञासु छात्रों को बड़ा काम पहुँचाया। उनका लेखन सचमुच अथक था। दक्षिण में उनकी कृतियों का स्वागत अच्छी तरह किया। दक्षिण में केरल अग्रणी रहा है। अतः उसने टंडनजी के समीक्षा-ग्रन्थों का हृदय से स्वागत किया। उनका नाम अध्यापकों और विद्यार्थियों के जगत् में बड़ा ही लोकप्रिय निकला। शिक्षा-जगत् के धुरंधर आचार्य उनकी समीक्षा का समुचित मूल्य इसलिए संभवतः निर्धारित नहीं करते हों कि ये परीक्षोपयोगी हैं। परन्तु सन्तुलित समीक्षा के इन ग्रन्थों का मूल्य कम नहीं हो सकता। इतनी व्यापकता भी अन्य लेखकों के विषय में मिलना कठिन है।

आपने मौलिक साहित्य सृजन के क्षेत्र में भी सव्यसाची की तरह कितनी ही साहित्य विधाओं का प्रयोग किया था। कभी छद्म नाम से ब्रजभाषा में छन्द रचकर आनन्द पाते थे, कभी अपने नाम से ही खड़ीबोली में नाटक, एकांकी, कहानी आदि बहुत-कुछ लिखते थे। मासिक रसवन्ती की जिल्दों में उनकी प्रखर प्रतिभा प्रकट हुई है। मासिक रस-वन्ती उनकी प्रिय पुत्री (पत्रिका) थी जिसने उनसे बहुत कुछ लिया। इसके दुलराने-पालने में उनको बड़ी मेहनत, आर्थिक कठिनाई और अनेक प्रकार के कष्ट झेलने पड़ते थे। फिर भी वे सरस साहित्यकार इस सारस्वत साधना में तन-मन-धन से लगे थे। उन्होंने इस बेटी को जीवन भर पाला-पोसा, दुलारा। अब वह अपने पिता का अश्रुतर्पण कर रही है।

परीक्षार्थी के तौर पर मैंने इस गुरुदेव की वाणी से एकलव्य की तरह दूर बैठे शिक्षा ग्रहण की थी। रसवंती ने मुझे उनके पास ला दिया। मुझे ही नहीं, मेरे समान दाक्षिणात्य नौसिखुओं को बड़े प्रेम से हाथ देकर आगे बढ़ाने का कार्य टंडनजी ने चुपचाप किया है। उत्तर भारत की दिग्गज पत्रिकायें हिन्दीतर प्रांतों के लेखकों की रचनाओं पर जब प्रायः उपेक्षा ही करती थीं तब अकेले टंडनजी ने दक्षिण के इन गुदड़ी के लालों को भी सहर्ष स्वीकार किया। उन्हें लिखने और स्वयं सुधारने का मौका दिया। उस पारखी में अद्भुत परीक्षा-शक्ति थी। उन्होंने इन्हें प्रोत्साहन के रूप में प्रश्रय दिया। इसका सुफल यह था कि अनेकों अच्छे लेखक निकले। बाद में बड़ी-बड़ी पत्रि-काओं ने भी इन लेखकों का स्वागत किया। रसवंती ने आकार में छोटी होते हुए भी कई उत्तम और सफल प्रयोग किये थे। उत्तर-दक्षिण के अनेक लेखकों का एकत्र सम्मिलन करते हुए टंडनजी ने, निराला-विशेषांक, माखन-लाल चतुर्वेदी विशेषांक, काव्यालोचन-विशेषांक आदि प्रका-शित किये, जो स्वयं समीक्षा-ग्रन्थ प्रमाणित थे। उनके आधार पर समीक्षा-ग्रन्थ भी उन्होंने प्रकाशित किये। यह योजना कितना धीरज चाहती है, श्रम माँगती है, सो सम्पादन-संगठन के अनुभवी जानते हैं। टंडन जी ने अपनी लिखावट में कितने पत्र लिखे होंगे, इसका अन्दाज लगाना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तक कठिन है। पत्रोत्तर देने में, लेखकों के लिए पत्र लिखने में, हर विषय में वे बड़ी निष्ठा रखते थे। उनका सम्पादक बड़ा सजग भी था। बड़े प्रेम से वे कभी-कभी टोकते भी थे। मुझे खुद इसका अनुभव रहा है। एक बार उनका जरूरी पत्र पाकर जल्दी में कुछ हल्का-फुलका लिखकर भेजा था तो सस्नेह प्रतिक्रिया आयी कि आप थोड़ा समय ले सकते हैं, पर अपनी प्रतिष्ठा के अनुकूल सामग्री तैयार कर भेजें। मैं सचमुच लज्जित हुआ और दुबारा उनके आदेश का पालन किया। वे मेरे लिए अग्रज थे और उनका हर आदेश शिरोधार्य था।

हिन्दी जगत् को उनकी सबसे बड़ी देन दो प्रमुख ग्रन्थ हैं : 'ब्रजभाषा-सूरकोश' और 'हिन्दी-सेवी संसार'। ब्रजभाषा-सूरकोश की कल्पना अपने में अत्यधिक महत्त्व रखती है। जो कार्य एक बड़े विद्वत्-दल के वर्षों तक परिश्रम से ही सम्पन्न हो सकता है उसे अकेले टंडनजी ने कुछेक वर्षों तक प्रयत्न करके सम्पन्न किया। भगीरथ ने गंगा धरती पर बहायी। उस कोश को उन्होंने कई अंकों में ग्राहकों के बल पर प्रकाशित किया। सर्वथा उपादेय और प्रामाणिक ब्रजभाषा सूरकोश टंडन जी की अनुसन्धान-कुशलता और कोश-रचना में निपुणता का प्रकट प्रमाण है। उसकी देखादेखी अब प्रसाद-कोश, तुलसी-कोश आदि अवश्य निकले हैं। तथापि प्रथम और कठिन प्रयास के रूप में ब्रजभाषा-सूरकोश की महत्ता स्वीकार करनी पड़ेगी।

अँग्रेजी में हर जीवन-क्षेत्र के लोगों की 'हू इज़ हू' (who is who) बराबर निकलते रहे हैं। पर हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में 'हू इज़ हू' निकालने का सर्वप्रथम और सफल प्रयत्न शायद डा० प्रेमनारायण टंडनजी ने ही किया। साहित्यिक और व्यापारिक दोनों दृष्टियों से उन्होंने इस ग्रन्थ का निर्माण किया था। अतः ऐसे ग्रंथों में जो स्थूलता और विद्वानों की दृष्टि में अतिव्याप्ति दोष आ सकते हैं वे कुछ आये हैं। यह न समझना कि सम्पादक महोदय इससे अपरिचित थे। उनकी नीति के दो कारण हैं। एक तो विशाल देश की अनेकों होनहार एवं विकासशील प्रतिभाओं को प्रोत्साहन मिलता है। दूसरे, अनेक लोग अपने 'अहं' के कारण ग्रन्थ खरीदते हैं। यह रहा त्रुटिपक्ष। किन्तु इतना उपयोगी अन्य सन्दर्भ ग्रन्थ अन्यत्र मिलना भी कठिन है। मैं इसका स्वयं अनुभवी हूँ कि कई लेखकों का जन्म-संवत्, ग्रन्थ-परिचय आदि इसी से ही मिल सके हैं। अन्य स्रोत ही नहीं। 'हिन्दी-सेवी संसार' का तीसरा संशोधित संस्करण जब दस वर्ष पहले निकला तब वह अधिक गम्भीर था। इस कार्य के पीछे संपादन और लेखक का जो परिश्रम होता है, त्याज्य-ग्राह्य-विवेचन की आवश्यकता है, वह अनुभव की ही चीज है। हर क्षेत्र में प्रथम बार ऐसे सुनियोजित ग्रन्थ का प्रकाशन बड़ी साधना की बात है।

साहित्यकार टंडनजी की सहृदयता और साधना का परिचय उनके ग्रन्थों से प्राप्त होता है। इन ग्रन्थों को पढ़कर जैसी मूर्ति की कल्पना हम करते हैं, उससे कहीं भिन्न मूर्ति ही टंडन जी से प्रत्यक्ष भेंट करने पर मिलती है। बड़े हँसमुख, मस्त और प्रेमपूर्ण व्यक्ति, मित्रों के स्वागत के लिए बड़े ही उत्सुक। उनका दिल पहचानकर उनके अनुसार व्यवहार करनेवाले अनुभवी सज्जन। उनकी मित्रता सबको हासिल हो जाये, सो [illegible] की प्रशंसा सुनी थी। लखनऊ विश्वविद्यालय के प्रथम [illegible] केरलीय हिन्दी-अनुसन्धाता डा० के० भास्करन नायर के मुँह से टंडनजी के स्नेह की तारीफ सुनी थी। जब प्रथम बार वे ट्रिवेंड्रम आये तभी मेरी उनसे प्रथम भेंट हुई। इस बार अधिक घनिष्ठता तो नहीं हो सकी थी। आकार का दर्शन हो गया, बस। किन्तु कुछ वर्ष बाद केशवदास पर साहित्य चर्चा करने के लिए मैं लखनऊ में कुछ दिन रुका तो टंडन जी से मिला और सम्पर्क स्थापित कर सका। हिन्दी विभाग में उन्होंने अपने सहज कहकहे के साथ हमें काफ़ी पिलाई थी। बाद में अपने घर पर साहित्य-चर्चा की। उनमें विशेष आत्मीयता पायी थी। उन्हीं के साथ डा० दीनदयालु गुप्त से भेंट हो सकी। मुझ जैसे मामूली व्यक्ति में कितनी ही कमजोरियाँ हो सकती थीं। पर किसीकी तरफ इशारा या व्यंग्य कुछ न करके बड़े प्रेम से प्रोत्साहन देकर उन्होंने अपनी हृदयगत उदारता प्रकट की।

विभाग के छात्रों को साथ लेकर मैंने दो वर्ष [illegible] पुनः उत्तर की साहित्यिक यात्रा की थी। अबकी बार प्रेमनारायण टंडन जी का वात्सल्य अविस्मरणीय रहा। हमारे दल को सारे दर्शनीय स्थानों पर घुमाकर, यशपाल जैसे कई साहित्यिकों से मिलाकर, सम्मान-सभा आयोजित कर, और न जाने कितने प्रकार से हमारे छात्रों को हर्ष विभोर कर दिया। रेलवे स्टेशन पर उनकी मुक्त हँसी और बिदाई का दृश्य अब भी मुझे याद आ रहा है। वह [illegible] कुछ और ही था।

दंभ या दिखावे से दूर प्रेम को एकमात्र धन माननेवाले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...जी के अभाव से उनकी मित्रमंडली अवश्य बड़ी ...ता अनुभव करती होगी। लखनऊ का वह संध्याकाल मैं ...गी में कभी भूल नहीं पाऊँगा। जिस समय अन्य दो ...ओं के साथ प्रेमनारायण टंडनजी मुझे टहलने ले ...। टहलते-टहलते हम एक और नई जगह पर पहुँचे जहाँ ...नें थीं। लखनऊ की चाय की तारीफ पहले भी सुनी ...। केरल में हम लोग अंग्रेजियत के विशेष शिकार हैं। ...उत्तर की खुली भोजनशालाओं और चाय की दूकानों से ...में बड़ी झिझक हुआ करती है। किन्तु उत्तर भारत ...निरन्तर सम्पर्क और अपनी प्रवृत्ति के कारण मुझे ...कोच कम लगता रहा है। टंडनजी ने उस दिन मिठाइयों-...कीनों के कितने नाम गिनाये और कितने ही पदार्थ ...लाये, सो गिनना कठिन है। उस दिन की चाट खाने से ...भ चटोरी बन गयी है। उन खाद्य वस्तुओं से जो आनन्द ...ता था, उससे कई गुना आनन्द प्रिय प्रेमनारायण टंडन ...की बातों से प्राप्त हो रहा था। आज जब यह स्मरण करता हूँ कि अब प्रिय अग्रज टंडनजी न रहे, तब उन मिठाइयों की मिठास में आँसुओं की खटाई भी अनुभव होती है।

रसवंती के फरवरी अंक में प्रिय मित्र के ही शब्दों में उनका स्वास्थ्य-लाभ पढ़ा था तो मन को सान्त्वना मिली कि वे अब अच्छे हो जायेंगे। पर उनकी साहित्यालोचना का सौभाग्य हम आगे नहीं पा सकते। जहाँ तक उनकी बात है, उन्होंनें कभी विश्राम नहीं किया, कभी कर्तव्य नहीं भुलाया। उनकी कलम की स्याही कभी सूखती नहीं थी। वे अनेक मानस-शिष्य और प्रिय बन्धु यहाँ छोड़ गये हैं। यह उनकी महान् देन है। जैसा कि पं० गणेशशंकर विद्यार्थी ने महाराणा प्रताप के विषय में लिखा था हम भी उस महारथी से साश्रुजल सविनय प्रतिवेदन कर रहे हैं 'प्रिय बन्धु, आपने अपनी चिर-साधना से साहित्यिक क्षेत्र को बहुत कुछ दिया है। आपका जीवन धन्य हो गया। आपकी आत्मा संतोष और सुख-शांति से विश्राम करे'।

ब्लैक

श्री राजेन्द्र प्रसाद जैन

[शेष ५३ का शेषांश]

...भत्स अश्लील भारतीयता विरोधी-फिल्मों को प्रमाण-...। चरित्र विकास धार्मिक श्रद्धा व सांस्कृतिक चेतना के ...ना नहीं हो सकता। धर्म-निरपेक्षिता के मोह-जाल में ...सी हुई सरकार धार्मिक श्रद्धा के एकदम विरुद्ध है। ...व पाकिस्तानी तत्त्वों व कम्युनिस्टों के दो पाटों के बीच ...फँसकर वह सांस्कृतिक चेतना के उन्मूलन में लगी हुई ...। राज्य को सोचना चाहिए कि जिस जनता ने स्वराज्य ...न्दोलन, भारत-चीन युद्ध, भारत पाक-युद्ध, गोआ मुक्ति ...ग्राम व देशी राज्यों के विलय में उसके साथ पूर्ण सहयोग ...किया वह उसकी आर्थिक नीतियों में उसका साथ क्यों नहीं दे ...ही? कारण स्पष्ट है। भारत सरकार की आर्थिक नीति ...पर से थोपी हुई है। उसकी जड़ें जनता में नहीं हैं।

५—बेरोजगारी व एक दिन में टाटा बिड़ला बनने का स्वप्न—भारत सरकार कन्ट्रोल करते समय यथार्थ को बिल्कुल भूल जाती है। दिल्ली का एक ब्लैकिया कह रहा था कि बाजरे के एक ट्रक पर ५००० रुपये बचते हैं। बीस ट्रक बेच लो, फिर जीवन भर छुट्टी। ब्लैक के दामों और कन्ट्रोल के दामों में इतना अधिक अन्तर हो जाता है कि अच्छे-अच्छों का जी ललचाने लगता है। भारत जब एक देश है तो उसे आर्थिक दृष्टि से तो एक देश होना ही चाहिए। एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश, गाँव से नगर, नगर से गाँव माल ले जाने पर क्यों प्रतिबन्ध हो? ऐसे प्रतिबन्धों से कृत्रिम अभाव उत्पन्न होता है, भाव ऊँचे जाते हैं, पुलिस व अन्य कर्मचारियों की घूस के कारण एक स्थान से दूसरे स्थान तक माल ले जाने का खर्च बढ़ जाता है। उधर प्रशासन का व्यय बढ़ जाता है। हमारी समझ में यदि राज्य सारे कन्ट्रोल इत्यादि हटाकर व्यापार मुक्त कर दे तो भाव स्वाभाविक रूप से नीचे आ जायँगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चर्म तथा जिलेटीन

श्री पुरुषोत्तमदास स्वामी

मानव जाति के आदिम काल से ही मनुष्यों के लिए वस्त्र के रूप में तथा अन्य प्रकार से जानवरों की चमड़ी का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। प्रारम्भ में चर्म का प्रयोग बिना किसी उपचार के किया जाता था। जानवरों के मरने पर उनकी खाल निकालकर ऐसे ही उसका उपयोग कर लिया जाता था। पर शीघ्र ही मनुष्य को इस बात का पता चल गया कि यदि उस पर कुछ वृक्षों के रसों का उपचार किया जाय तो वह और अधिक मजबूत, लचकीली तथा टिकाऊ हो जाती है।

चर्म या चमड़ी जानवरों की खाल को कहते हैं, जो साफ की जाकर तैल, चिकनाई (ग्रीज) या वानस्पतिक कषाय द्वारा कमा ली गयी हो। इस उपचार से जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, यह कुछ अधिक लचकीली हो जाती है और जल्दी नहीं बिगड़ती। वानस्पतिक कषाय पदार्थ टैनिन कहलाते हैं। कमाने से पहले खाल गर्म पानी में घोली जा सकती है और इस प्रकार उससे जिलेटीन तैयार किया जा सकता है। कमाने के बाद चमड़ी अघुलनशील बन जाती है। खाल के पानी में घोल में यदि टैनिन डाल दिया जाय तो जिलेटीन का अवक्षेप प्राप्त होता है।

भैंस, गाय, बैल, बिना बियाई गाय, बछड़े आदि की चमड़ी साधारणतः बड़े आकार की चीजें बनाने में प्रयुक्त होती हैं। अन्तिम तीन प्रकार के जानवरों से प्राप्त चमड़ी अधिक समांग तथा सघन होती है। भेड़ तथा बकरी की खाल तथा कुछ अंश तक कंगारू व सील जानवरों की चमड़ी भी, छोटे आकार के लिए काम में ली जाती है। इनसे जूते का ऊपरी भाग तथा दस्ताने बनाये जाते हैं। घोड़े तथा टट्टू की खाल भी काम में ली जाती है, पर उसका अधिक महत्त्व नहीं है।

चर्म की ऊपरी पतली परत को अधिचर्म (एपिडर्मिस) कहते हैं। इसमें छोटे-छोटे गड्ढे होते हैं जिनमें केश तथा केश कूप (hair follicle) रहते हैं। अधिचर्म अर्थात् बाहरी त्वचा के नीचे निचर्म (डर्मिस) या अंतर्त्वचा जिसे चर्म भी कहते हैं, होता है। यह केरियम भी कहलाता है और यह बाह्य त्वचा से बहुत मोटा होता है। इसीसे चमड़ी या खाल बनती है। चमड़ी तैयार करने का अभिप्राय केशों तथा बाह्यत्वचा को हटाना, नीचे की चमड़ी के उस ओर के भाग को साफ करना जिसमें मांस लगा होता है तथा चर्म का इस प्रकार का उपचार करना है जिससे वह सड़े नहीं। चर्म का गठन तंतुमय है। यदि इसे कमाया गया न हो तो यह पानी को सोखती है। इसमें ८५% भाग कोलेजन होता है। कोलेजन पानी में मिलकर जिलेटीन बनाता है। सब कहीं चमड़ी एक-सी मोटी नहीं होती। इसका सबसे मोटा भाग पीठ की तरफ का होता है।

चमड़ी को कमाने की दो मुख्य विधियाँ हैं--क्रोम चर्म संस्कार विधि तथा वानस्पतिक चर्म संस्कार विधि। क्रोम चर्म संस्कार विधि अपेक्षाकृत आधुनिक है तथा इसमें कम समय लगता है। यह छोटी खालों के लिए प्रयुक्त होती है। छोटी खालें जूतों के ऊपरी भाग में अधिकतर काम में आती हैं। वानस्पतिक चर्म संस्कार विधि का प्रयोग जूतों के तले व चमड़ी के पट्टे बनाने में किया जाता है। छोटी खालों को कमाने में भी इस विधि का प्रयोग कुछ अंश में किया जाता है। यह बहुत समय लेती है। चार महीने में यदि यह पूरी हो जाय तो जल्दी ही माना जाता है। जूतों के तले तथा पट्टे तैयार करने की चमड़ी के संस्कार के लिए भी क्रोम संस्कार विधि का प्रयोग किया जाता है, इस विधि में पाँच से छः सप्ताह तक लग जाते हैं।

खालों का प्रारम्भिक उपचार—चर्मगृह में प्राप्त खालें विभिन्न अवस्थाओं में पहुंचती हैं। निकट के वधस्थान से प्राप्त खालों पर नमक का उपचार किया हुआ होता है। दूर से आनेवाली चमड़ी सूखी होने के कारण कड़ी होती है। खालों के गट्ठों को खोलकर उनकी जाँच पड़ताल करना जरूरी है। वे सिरे जिनकी चमड़ी नहीं तैयार की जा सकती, काटकर अलग कर लिये जाते हैं। कान, खुर आदि ऐसे ही भाग हैं। इनको जिलेटीन या सरेस तैयार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९७३

करने के लिए भेज दिया जाता है। इसके बाद इनसे नमक व धूल हटाने के लिए इन्हें पानी में डालकर तथा रगड़कर साफ किया जाता है। सूखी खाल को पानी में अधिक समय तक रखा जाता है जिससे वह लगभग अपनी पूर्वावस्था को प्राप्त कर ले।

इसके बाद चूने के पानी से भरे गर्त्तों में इन्हें डाला जाता है, इस प्रक्रिया में सात से दस दिन तक लगते हैं। चूना चढ़ाने से केश तथा अधिचर्म ढीले पड़ जाते हैं, निचर्म फूल जाता है और चर्म में विद्यमान चिकनाई प्रनिलंबित या स्वफेनित हो जाती है। निचर्म का फूलना स्थूल तंतुओं के अपने संगठक तंतुकों में विभाजित हो जाने के कारण होता है। यह सारी क्रिया अंशतः चूने के खारेपन के कारण और अंशतः इसके जलांशन अर्थात् हाइड्रोलाइसिस के कारण सम्भव होती है। छोटी खालों में यह क्रिया एक से तीन दिन में पूरी हो जाती है।

चमड़ी को अब घिसा जा सकता है। पहले यह क्रिया हाथ से की जाती थी पर अब यह मशीन द्वारा की जाती है। इस प्रकार की मशीन में घेरदार चाकू के फलक लगे रहते हैं जो खाल पर तेजी से घूमते रहते है। चमड़ी धीमे-धीमे चलती है। ऊपर की ओर से केश तथा अधिचर्म हटा लिये जाते हैं और नीचे की तरफ से मांस आदि के कण दूर किये जाते हैं। खाल को दो भागों में काट लिया जाता है पर यदि इसका पट्टा बनाना हो तो इसे नहीं काटा जाता। इसके बाद खाल पर लगा चूना अलग किया जाता है। इसके लिए चमड़ी को गोबरयुक्त पानी से धोया जाता है।

वानस्पतिक चर्म संस्कार विधि—अब खाल कमाने के लिए तैयार है। कमाने के वास्ते प्रयुक्त कषाय पदार्थों में टैनिन की मात्रा ३% से ३०% तक होती है। यह पेड़ों की छाल से प्राप्त किया जाता है। अन्य कषाय पदार्थों में पायरोगैलोल टैनिन भी हैं। ये गर्म किये जाने पर पायरोगैलोल में परिणत हो जाते हैं। पायरोगैलोल टैनिन में शर्करा होती है जो किण्वन से प्रांगारिक अर्थात् ऑर्गेनिक अम्लों में बदल जाती है। छाल से प्राप्त टैनिन में शर्करा नहीं होती। अतः उसमें इसे मिलाना पड़ता है। छाल से मिले टैनिन केटेकोल वर्ग में परिगणित होते हैं। इसका मुख्य यौगिक केटेकोल है जो लौह के लवणों के साथ मिल कर हरे-काले रंग में परिणत होता है। पायरोगैलोल लौह के लवणों के साथ मिलकर नीला-काला रंग बनाता है। इन प्राकृतिक टैनिन पदार्थों के अतिरिक्त संश्लेषित चर्म संस्कारक भी प्रयुक्त होते हैं। क्रीसोल, नैफ्थेलीन आदि से संश्लेषित चर्म संस्कारक तैयार किये जाते हैं। ये वास्तव में चर्म संस्कारक हैं क्योंकि इन्हें लगाने के बाद धोकर इन्हें अलग नहीं किया जा सकता। इस प्रकार कमाई गयी चर्म खाल से भारी होती है। ये पदार्थ चमड़ी में पैठकर स्थिर हो जाते हैं, धोने पर असली खाल के गुण तथा भार पूर्ववत् हो जाते हैं।

खाल को कमाने के लिए उसे लकड़ी की एक लाठी में लटकाकर चर्म संस्कारक द्रव में रखा जाता है और उसे ऊपर नीचे किया जाता है। प्रतिदिन द्रव को बदल दिया जाता है। दिन प्रतिदिन अधिक समाहृत घोल का प्रयोग किया जाता है। सर्वाधिक गाढ़ा घोल एक गड्ढे में खालों को डालकर तथा उन्हें छाल में ढककर डाला जाता है। इसमें खाल महीनों रखी जाती है। टैनिन का इस तरह शोषण होता रहता है जिससे खालें भारी हो जाती हैं। इस अवधि को खालों, द्रव तथा छाल को लकड़ी के बने ढोल में डालकर तथा उसे घुमाकर कम किया जा सकता है। गड्ढों में से या ढोल में से खाल को हटाकर उसे गर्म पानी से धोकर झुर्रियों को मिटाने के बाद सुखा लिया जाता है। इसके बाद खाल पर तैल या चिकनाई चुपड़ी जाती है। जूतों के तले में प्रयुक्त चर्म में ५% ग्रीज तथा पट्टे वाली चमड़ी में १७-१८% ग्रीज लगाई जाती है। जीन के लिए अपेक्षित चर्म में ग्रीज का २०-३०% तक लगाना आवश्यक है।

क्रोम चर्म संस्कार विधि—यह विधि मुख्यतः छोटी खालों के लिए प्रयुक्त होती है। खाल से चूने को हटाने के बाद उसे धोया जाता है जिससे चूने के कारण खाल का फूलना कम हो जाता है और खाल के कण चिकने बन जाते हैं। धोने के लिए अमोनियम लवण तथा कुछ ट्रिप्सिन का घोल काम में लिया जाता है। अमोनियम लवण-चर्म पी० एच० (PH) कर कम देते हैं जिससे उसका फूलना घट जाता है। खाल को इस घोल में से उपयुक्त समय पर निकाल लेना जरूरी है। यह तब किया जाता है जब चर्म चिकनी मालूम होने लगे। इसके बाद गन्धक के अम्ल के हलके घोल में इसे डालकर साफ किया जाता है। अम्ल चमड़ी में प्रविष्ट होकर उसे क्रोम लवण प्रति-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्रिया के लिए तैयार करता है। इसके बाद खाल को लपेटकर दबाया जाता है जिससे पानी निकल जाय। जब खालें प्रेस से बाहर निकलती हैं तो सूखी मालूम पड़ती हैं।

क्रोम चर्म संस्कार में क्रौमियम धातु का लवण वानस्पतिक टैनिन का स्थान लेता है। यह प्रक्रिया एक नहान या दो नहानों में की जाती है। एक नहान विधि में खाल को लकड़ी के ढोल में डाल दिया जाता है। यह ढोल क्षारीय क्रोम सल्फेट या क्रोमियम क्लोराइड के समाहृत घोल से भरा होता है। ढोल को पाँच से छः घंटे तक घुमाया जाता है। इससे खाल का कमाना पूरी तरह हो जाता है दुहरे नहान विधि में सोडियम डाईक्रोमेट तथा नमक के अम्ल के घोल से भरे ढोल में खाल को डालकर तीन घंटे तक घुमाया जाता है। इससे खाल पीली हो जाती है। क्रोम लवण को चर्म तंतु पर स्थिर करने के लिए सोडियम थायो सल्फेट (हाइपो) के नमक के अम्ल युक्त घोल से भरे ढोल में खाल को डालकर चार घंटे तक रखा रहने दिया जाता है। इससे खाल नीले रंग की हो जाती है और चर्म संस्कार सम्पन्न हो जाता है। इसके बाद दोनों प्रक्रियाओं से प्राप्त खाल को सुहागे व सोडियम बाई कार्बोनेट के घोल में डालकर पानी से धो लिया जाता है।

क्रोम द्रव साधारणतः सोडियम बाई-क्रोमेट तथा गंधक के अम्ल को समान मात्रा में लेकर मधुशर्करा (ग्लूकोज) से अपचयित करके तैयार किया जाता है। अपचयन के लिए सोडियम बाई-क्रोमेट के घोल में गंधक के डाई-ऑक्साइड को प्रवाहित किया जा सकता है।

इसके बाद खाल को सुखाकर काट लिया जाता है। यदि खाल को रँगना हो तो रंग को वसा-द्रव में डाल दिया जाता है या फिर अलग से रंग का घोल तैयार करके उसमें खाल को डुबोया जाता है। चमकदार रंग के लिए कैसीन, ऐल्बुमिन, चमड़ी तथा मोम के पानी में घोल या प्रनिलंबन वर्णक मिलाकर उसे चमड़ी पर फैलाया जाता है और फिर विशेष प्रकार के यंत्रों में घर्षण से पालिश चढ़ाई जाती है। इसके बाद चमड़ी को गर्म प्लेटों के बीच में रखा जाता है।

जूतों के तले के लिए व्यवहृत चमड़ी को क्रोम विधि से बहुत कम पकाया जाता है। वानस्पतिक चर्म संस्कार से चर्म का भार बढ़ जाता है। क्रोम विधि में भी भार बढ़ता है पर इतना अधिक नहीं। वानस्पतिक रीति से संस्कृत चमड़ा भार के तथा क्रोमविधि द्वारा कमाया गया चर्म क्षेत्रफल के आधार पर बेचा जाता है।

भेड़ की चमड़ी के भीतरी भाग से काटे गये टुकड़े से कैमोइस चर्म बनायी जाती है। इसके बनाने के लिए चमड़ी को मछली के तैल में डालकर तैल को उपचयित किया जाता है। वेलोर चर्म खाल के मांसवाले भाग की तरफ परिसज्जित अर्थात् फिनिश करने से तैयार होता है।

जिलेटीन—जानवरों की खालों, संयोजी ऊतकों, कंडरों अर्थात् मांसरज्जुओं तथा अस्थियों में कोलेजन पदार्थ रहता है। चर्म में इसकी मात्रा ७५% तक होती है। अस्थियों का एक तिहाई भाग कोलेजन है। जिलेटीन का उसके इस गुण के कारण अधिक महत्त्व है कि वह अपने भार से कई गुना पानी अर्ध ठोस अवस्था में रहकर रख सकता है। ऐसी अवस्था जैल कहलाती है। इसमें यह गुण भी काफी अच्छा है कि वह मणिभकरण को रोकता है। पानी में इसका ३% घोल ठंडा होने पर जैली बना देता है।

जिन खालों का उपयोग जिलेटीन बनाने में किया जाता है, वे काम की नहीं होतीं कि उन्हें कमाकर उनका चमड़ा तैयार किया जा सके। सींगों में भरा मज्जा भी जिलेटीन बनाने के काम में आता है पर सींग इस काम के लिए व्यर्थ है। कंडरा, ऊतक, हड्डी तथा मज्जा जिलेटीन बनाने के लिए अच्छे पदार्थ हैं।

जिलेटीन तैयार करने के लिए आपेक्षित पानी का बहुत ठंडा होना जरूरी है जिससे जलांशन अधिक मात्रा में न हो तथा जैली निर्माण शक्ति का ह्रास न्यूनतम हो। हड्डियों तथा खालों पर चूना चढ़ाने की प्रक्रिया से जिलेटीन बनाने में सुगमता होती है। इससे ६५% सेंटीग्रेड ताप पर्याप्त है तथा समय भी कम लगता है।

हड्डियों से ग्रीज को उन्हें दाब के साथ भाप द्वारा गर्म करके अलग कर लिया जाता है। पानी की सतह पर चिकनाई तैरने लगती है। इसे हटा लिया जाता है। इसका प्रयोग साबुन बनाने में किया जाता है, चिकनाई को कम तापक्रम पर उबलनेवाले पेट्रोलियम नैफ्था द्वारा निस्सारण विधि से भी हटाया जा सकता है। ऐसा करने से जिलेटीन निर्माणक पदार्थ की हानि नहीं होती। कुचली हुई अस्थियों को नमक के अम्ल के हलके ठंडे घोल में रखकर उनका खनिजात्मक भाग जो मुख्यतः कैल्सियम फास्फेट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९७३

तथा कार्बोनेट होता है, अलग कर लिया जाता है। बाकी अंगारिक (ऑर्गेनिक) भाग बच रहता है। यह कोलेजन होता है। इस प्रकार अस्थियों से प्राप्त कोलेजन को ओसीन कहते हैं। चमड़ी के साथ अम्ल उपचार की आवश्यकता नहीं होती क्योंकि उसमें कोलेजन खनिज-भाग से आवृत्त नहीं होता।

ओसीन को बुझे हुए चूने तथा पानी से भरे बर्तनों में डाला जाता है और वहाँ एक महीने या उससे अधिक समय तक रखा जाता है। इससे ओसीन फूलकर हिमश्वेत बन जाता है। म्यूसिन तथा ऐल्बुमिन घुल जाते हैं और अवशिष्ट ग्रीज का साफेनिन हो जाता है। उपयुक्त समय पर ओसीन को अलग करके पहले पानी से, फिर नमक के अम्ल से और तब दो बार पानी से धोया जाता है। इस क्रिया में एक दिन पूरा लग जाता है। ओसीन का अब जिलेटीन निस्सारण किया जा सकता है। चर्म पर भी यही उपचार किया जाता है। इससे यह पारभासक बन जाता है। जिलेटीन निस्सारण के लिए पानी का ताप ६०° सेंटीग्रेड रखा जाता है। आठ घंटे में पहला निःसृत द्रव मिलता है जिसमें ८-१०% जिलेटीन रहता है। दूसरा निस्सारण ६५° तापक्रम पर किया जाता है। इसमें जिलेटीन की अधिक मात्रा होती है। इसे छानकर ठंडा किया जाता है। तीसरा निस्सारण ७५° पर होता है। इसे निर्वाप में ठंडा किया जाता है जिससे इसकी जैली बन सके। जिलेटीन परतों को पीसकर उसका चूरा बना लिया जाता है।

जिलेटीन का खाद्य के रूप में उपयोग किया जाता है। यह पेट में पहुँचकर सुगमता से एचिनो अम्लों में परिणत हो जाता है। वसाओं तथा तैलों के साथ इसका प्रनिलंबन बनता है जो पाचन क्रिया में सहायक होता है। इसे आइसक्रीम में भी मिलाया जाता है। जिलेटीन का उपयोग दवाइयों के कैप्सूल बनाने में भी किया जाता है। दो खंडवाले कठोर कैप्सूल केवल जिलेटीन के बनाये जाते हैं। लचकीले कैप्सूल में ग्लिसरीन भी रहती है। फोटोग्राफी में प्रयुक्त प्लेट, फिल्म तथा चलचित्र तैयार करने की फिल्म में जिलेटीन का प्रयोग प्रकाश ग्राह्य आवरण के रूप में किया जाता है। यह आवरण रजत लवणों का संधारण करता है।

अस्थियों से जिलेटीन को तैयार करने पर उपफल के रूप में डाई-कैल्सियम फास्फेट और ज्यादा चूना काम में लेने पर ट्राई-कैल्सियम फास्फेट बनते हैं। पहले पदार्थ का प्रयोग खाद्य के रूप में तथा दूसरे का चीनी मिट्टी के बर्तन तैयार करने में किया जाता है। उपफल के रूप में कैल्सियम क्लोराइड भी मिलता है पर इसका कोई उपयोग नहीं किया जाता। चिकनाई को जैसा कि लिखा जा चुका है, साबुन बनाने के काम में लिया जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरल फलित ज्योतिष

श्री परिपूर्णानन्द वर्मा

भारत में ज्योतिषशास्त्र के वर्त्तमान युग के सबसे बड़े विद्वान् डाक्टर सूर्यनारायण व्यास ने जब मुझे यह बतलाया कि भारत की प्रधान मन्त्री इन्दिरा गांधी को फलित ज्योतिष में विश्वास है तो मुझे आश्चर्य हुआ। इसलिए कि नेहरू परिवार ने ऊपर से फलित ज्योतिष का इतना विरोध कर रखा है कि उनके भीतर की छिपी आस्था की जानकारी बहुतों को नहीं है।

अतएव भारत में एक वर्ग ही उन प्रमुख तथा ऊँचे पहुँचे लोगों का है जो भीतर ही भीतर फलित ज्योतिष से गणना तथा फलादेश कराता रहता है पर बाहर से उसे "दकियानूसी" "अवैज्ञानिक," कहने का फैशन अपनाये हुए है।

दूसरे वर्ग में श्री मुरारजी देसाई ऐसे विज्ञ तथा पठित लोग हैं। जून, १९७३ के अन्तिम सप्ताह में मुरारजी भाई ने मुझसे कहा कि "मैं फलित ज्योतिष के विज्ञान में विश्वास करता हूँ पर फलादेश सुनना नहीं चाहता। इसलिए कि जो होने वाला है उसे आगे से जानकर शोक या हर्ष करने से क्या लाभ होगा। जब जैसा पड़ेगा, भुगत लिया जावेगा।"

मुरारजी भाई ने एक बहुत अच्छी और मार्के की बात कही। केवल गणना से ही फलादेश नहीं हो सकता। गणना के साथ आन्तरिक प्रेरणा भी होनी चाहिए। आन्तरिक प्रेरणा केवल तपश्चर्या तथा सात्विक जीवन से पैदा होती है। ऐसे साधु ज्योतिषी कम मिलते हैं। इसी लिए आज हमारा ज्योतिषशास्त्र बदनाम हो रहा है।

एक तीसरा वर्ग भी है जिनमें जबलपुर के हमारे वयोवृद्ध साहित्यिक रामानुजलाल श्रीवास्तव हैं। इनको ज्योतिष शास्त्र पर इतना घोर अविश्वास है कि यदि इन्हें जबर्दस्ती फलादेश सुनाना चाहे तो कान में उँगली लगा लेंगे या लिख कर दीजिए तो कागज फाड़ डालेंगे।

फलित ज्योतिष के शत्रु

मैं इस महान् शास्त्र का क-ख नहीं जानता। पर इतनी समझ रखता हूँ कि आजकल जो घोर अवैज्ञानिक प्रथा चल निकली है उसकी निरर्थकता समझ लूँ। वह है वार्षिक फलादेश (वर्ष-फल) तथा दैनिक राशिफल। दोनों ही चीजें एकदम गलत, शास्त्र के विपरीत तथा बुद्धि से न समझने की चीजें हैं। ज्योतिष शास्त्र में, प्राचीन ज्योतिष में, कहीं भी वार्षिक फल या वर्ष-कुण्डली बनाने की प्रणाली न तो थी और न ऐसा नियम था। जो लग्न तथा जो राशि जीवन भर के समूचे प्रभाव को संचालित कर सकते हैं उन्हींके फल को तोड़-मरोड़कर वर्षफल निकालने से कभी भी सही फल नहीं निकल सकता। वैसे तो कुछ न कुछ बातें अंधा-चुक्की कह देने से भी सही बैठ जाती हैं।

पर दैनिक राशिफल तो एकदम तमाशा है। आज कल बड़े से बड़ा अखबार भी ऐसा फल निकालता है। किन्तु, एक ही राशि में पैदा करोड़ों व्यक्तियों का फल एक झटके में, बिना अन्य ग्रहों का योग देखे कोई कैसे कह सकता है। इसका उत्तर यह दिया जाता है कि लग्न तथा राशि दोनों को मिलाकर पढ़ना चाहिए। यानी यदि सिंह राशि है तथा वृश्चिक लग्न है तो दोनों के फल को मिलाकर पढ़ना चाहिए। पर इस धोखे की ट्टी से क्या लाभ? जो गणना मूलतः अवैज्ञानिक है वह कैसे ठीक हो सकती है। पर मानव स्वभाव इतना दुर्बल है कि लोग एक निगाह राशिफल पर डाल ही लेते हैं और दिन भर के लिए अपना दिल व दिमाग खराब कर लेते हैं।

कतिपय मौलिक सिद्धान्त

फलित ज्योतिष के कतिपय मौलिक सिद्धान्त हैं जिनकी जानकारी से हम बिना किसी दूसरे का सहारा लिये अपना फलादेश स्वयं निकाल सकते हैं। यदि जन्म का समय ठीक से लिखा गया है। १-२ मिनट के फर्क में ही लग्न, राशि, इष्टकाल बदल सकता है और एकदम दूसरा ही फल हो सकता है।

मोटे तौर पर यह सभी जानते हैं कि जन्म कुण्डली में १२ खाने होते हैं। उन खानों का भिन्न फल होता है। जैसे :—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

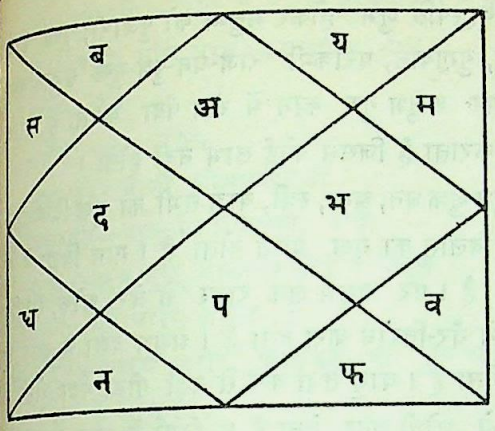

अ का घर शरीर, रंग अर्थात् तन का है।

ब—धन—आय, कुटुम्ब
स—सहज—भ्रातृ, पराक्रम
द—सुहृद्—बन्धुगृह, सुख
ध—सुत—पुत्र, विद्या
न—रिपु—शत्रु, द्वेष, रोग
प—मद—पत्नी, मित्र, कलत्र
फ—मृत्यु—मरण
व—भाग्य—शुभ, गुरु, धर्म
भ—मान—कर्म, व्यापार, राजपद
म—आयु—विभव, लाभ, मित्र
य—व्यय—अन्तिम व्यय

प्रत्येक घर किसी न किसी राशि का होता है। राशियाँ १२ हैं—मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ तथा मीन। हरएक राशि का अपना स्वामी होता है। मेष का स्वामी मंगल है, वृष का शुक्र, मिथुन का बुध, कर्क का चन्द्रमा, सिंह का सूर्य, कन्या का बुध, तुला का शुक्र, वृश्चिक का मंगल, धन का बृहस्पति, मकर तथा कुम्भ का स्वामी शनि है और मीन का स्वामी बृहस्पति है।

इस प्रकार मंगल मेष और वृश्चिक का स्वामी है, शुक्र वृष और तुला का, बुध मिथुन और कन्या का, बृहस्पति धन तथा मीन का, शनि मकर तथा कुम्भ का। सूर्य तथा चन्द्रमा केवल सिंह तथा कर्क के क्रमशः स्वामी हैं। राहु तथा केतु किसी घर के स्वामी नहीं हैं। जिस ग्रह के साथ बैठ गये, उसी का फल देते हैं।

केवल राशि के हिसाब से विचार करने से बड़ा धोखा हो सकता है। इसीलिए कभी राशिफल पर भरोसा नहीं करना चाहिए। जैसे आम सिद्धान्त के अनुसार मेष राशि में जन्म लेनेवाला चोर होता है, वृष में भोगवान, मिथुन में पंडित, कर्क में धनी, धन में दास, मकर में पापी, सिंह में राजा, कन्या में नपुंसक, तुला में शूर, वृश्चिक में "अद्रव्य भार ढोनेवाला" तथा मीन में निर्भय। हम स्वयं अपने जीवन से तुलना करें तो यह फल एकदम गलत तथा बकवास मिलेगा। राशि तथा लग्न के संयोग से अन्य ग्रहों के प्रभाव से ही फल बनता है।

ग्रहों में मित्र शत्रु

केवल ग्रह की जानकारी से ही काम नहीं चलता। इनकी परस्पर की मित्रता-शत्रुता का भी ध्यान रखना पड़ता है। यदि सूर्य के साथ शुक्र या शनि बैठ जाय तो शत्रु हुए, बुध बैठा हो तो समान भाव हुआ और चन्द्रमा बृहस्पति तथा मंगल बैठ जाय तो मित्र भाव हुआ। ग्रहों का पारस्परिक सम्बंध इस प्रकार है :—

ग्रह	मित्र	समभाव	शत्रु
१—सूर्य	चन्द्र, बृहस्पति, मंगल	बुध	शुक्र, शनि
२—चन्द्रमा	सूर्य, बुध	मंगल, बृहस्पति, शुक्र, शनि	कोई नहीं
३—मंगल	बृहस्पति, चन्द्र, सूर्य	शुक्र, शनि	बुध
४—बुध	शुक्र, सूर्य	मंगल, बृहस्पति, शनि	चन्द्रमा
५—बृहस्पति	सूर्य, चन्द्रमा, मंगल	शनि	बुध, शुक्र
६—शुक्र	बुध, शनि	मंगल, बृहस्पति	सूर्य, चन्द्र
७—शनि	शुक्र, बुध	बृहस्पति	सूर्य, चन्द्र, मंगल

यह भी ध्यान रखना चाहिए कि चन्द्रमा, बुध, बृहस्पति तथा शुक्र शुभ ग्रह हैं। ये कितना भी हो, शुभ ग्रह होने के कारण साधुता बरतते हैं। पर सूर्य, मंगल, शनि पापी ग्रह हैं। जब ये बुराई पर उतारू होते हैं तो रियायत नहीं करते। हरेक ग्रह शुभ तथा अशुभ दशा में भिन्न फल देते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूर्य शुभ दशा में चमड़ा का, स्वर्ण का लाभ कराता है। राजा से धन प्राप्त कराता है तथा और कोई लाभ कराता है। जब अशुभ होगा तो व्यय करायेगा, झगड़ा करायेगा, पेट व हृदय में पीड़ा होगी। शुभ दशा में चन्द्रमा स्वादिष्ट भोजन कराता है, अच्छा वस्त्र दिलाता है, अन्न का सुख तथा क्रीड़ा का सुख देता है। पर अशुभ हो जाने पर नींद बहुत आती है, सिर में दर्द रहता है, स्वभाव कोमल हो जाता है, कन्या पैदा होती है, भाई-बिरादरी में झगड़ा होता है।

शुभदशा में मंगल शत्रु को परास्त करता है, पीड़ा पहुँचाता है, भूमि प्राप्त होती है, राजा का राज्य से लाभ होता है, भाई से धन मिलता है। अशुभ होकर मंगल भूखा, ज्वराक्रान्त, रुधिर-विकार का रोगी तथा कुटुम्ब से बैर करा देता है। पर-स्त्री-गमन भी मंगल की अशुभ दशा में होता है। शुभ दशा में बुध विद्या लाभ कराता है। मित्रों से धन मिलता है, दूसरों से प्रशंसा प्राप्त होती है, स्वर्ण, भूमि प्राप्त होती है। बुद्धि का विकास होता है। धर्म में प्रवृत्ति होती है। दूसरों के प्रशंसा प्राप्त होती है। पर अशुभ बुध वात-पित्त-कफ का दोषी बना देता है, जाति-बिरादरी में झगड़ा पैदा करा देता है, कठोर वचन तथा अनेक प्रकार के दुःख का कारण बन जाता है।

वृहस्पति शुभ होकर मनुष्य को पुजारी, पुण्य कार्य में लगन, गुणवान, पराक्रमी राज-धन-पुत्र-सुख संयुक्त बनाता है। पर अशुभ गुरु कान में रोग पैदा करता है, परिश्रम खूब कराता है जिससे कोई लाभ नहीं होता।

शुभ शुक्र धन, अन्न, स्त्री, वस्त्र सभी का सुख दिलाता है। भोग विलास का सुख प्राप्त होता है। गान विद्या में रुचि होती है। पर अशुभ शुक्र राजा से बैर, शोक, स्नेही या प्रेमी से वैर-विरोध करा देता है। अशुभ दशा में शनि बड़ा कष्ट देता है। वायु तथा कफ से बड़ी पीड़ा पैदा होती है। मन को क्रोधी बना देता है। ईर्ष्या से मन जला करता है। बड़ी विपत्तियाँ पैदा हो जाती हैं। पर शुभ होकर शनि गधा, ऊँट या पक्षी से लाभ कराता है किसी बूढ़ी स्त्री से द्रव्य प्राप्त होता है।

बड़े मोटे तौर पर ग्रहों का यह शुभ-अशुभ फल हुआ।

ग्रहों का रूप-गुण

प्रत्येक ग्रह का अपना रूप, रंग, दिशा, पति या देवता, लिंग आदि होता है। यदि इनकी जानकारी हो जाय तो मनुष्य साधारण ढंग से अपनी कुंडली को बहुत कुछ समझकर उसके अनुसार कार्य कर सकेगा। ग्रह शान्ति में इससे बड़ा सहारा मिलता है।

	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	राहु-केतु
रंग	रक्त श्याम	गौर	रक्त गौर	दूर्वा श्याम	पीत	चित्र	कृष्ण	कृष्ण
वरण	ताम्र	श्वेत	अतिरिक्त	हरा	पीला	चित्र	कृष्ण	कृष्ण
पति या देवता	अग्नि	जल	अश्विनीकुमार	विष्णु	इन्द्र	इन्द्राणी	ब्रह्मा	राक्षस
दिशा	पूर्व	वायव्य	दक्षिण	उत्तर	ईषाण	आग्नेय	पश्चिम	नैऋत्य
शुभ	पाप	क्षीण पाप	पाप	पाप	शुभ	शुभ	पाप	पाप
लिंग	पुरुष	स्त्री	पुरुष	नपु०	पु०	स्त्री	नपु०	....
वर्ण	राजा	वैश्य	राजा	शूद्र	ब्राह्मण	ब्राह्म	राक्षस	राक्षस
सत्व	सात्विक	सात्विक	तामसिक	राजसिक	सात्विक	राजसिक	तामसिक	....

ग्रहों के पूजन में यदि दिशा, वर्ण, वरण, रंग आदि का ध्यान रखा जाय तो लाभ होगा।

द्वि-ग्रह योग

यदि कुंडली में एक साथ दो ग्रह का योग पड़ता हो तो नीचे लिखा फल होना चाहिये।

सूर्य—चन्द्र—यान्त्रिक, कारीगर
मंगल—पापी
बुध—निपुण, सौख्य
वृहस्पति—क्रूर प्रभाव
शुक्र—पहलवान तथा उससे धन प्राप्ति
शनि—धातु से धन प्राप्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९७३

बुध–बृहस्पति–योद्धा, गान तथा नाच विद्या में निपुण
शुक्र–चतुर, भूमि लाभ, गण नायक, नेता
शनि––धूर्त

चन्द्र–भौम––क्रूर, मद्यप
बुध–मधुर वाणी, सौभाग्यशाली
बृहस्पति––शत्रु–जित, प्रधान, धनी,
शुक्र––वस्त्र सुख, सीना-पिरोना में निपुण
शनि––दुराचारी, लम्पट

मंगल–बुध––स्वस्थ शरीर, जड़ी-बूटी या पुष्प-व्यवसाय से लाभ।
बृहस्पति––राजपक्ष से सुख, धनी, अधिकारी
शुक्र––जुआड़ी, व्यसनी, कामी, नायिका

बृहस्पति––शुक्र–विद्या, धन, स्त्री सुख,-गुणी
शनि––नाई का काम, कुम्हारी से लाभ, रसोईदारी भी कर सकता है।

शुक्र––शनि––अल्पदृष्टि, लेखक, स्त्री से धन प्राप्त हो।

बहुत संक्षेप में यह द्वि-ग्रह योग है। पर इसके साथ जन्म राशिफल मिलाकर अध्ययन करने से ही कुछ फल जाना जा सकता है।

जन्माति राशिफल

मेष राशि में––चन्द्रनेत्र, ताँबा का रंग, कोल मुख, मित-भोजी, शीघ्र प्रसन्न होनेवाला, कामी, स्त्रियों को मोहित करनेवाला, सर में चोट लग सकती है, जल से भय।

वृष––विलासी, मोटा जंघा हो, क्लेश सहने की शक्ति, खुराक ज्यादा हो, कन्या अधिक पैदा हो, पर मित्रता निभाता हो, सच्चा मित्र हो। मित्र समाज में आदर हो।

मिथुन––कामशास्त्र में निपुण, सुन्दर नेत्र, घुँघराले बाल, नौकर-चाकर का सुख, गवैया, जुआरी, बुद्धिमान।

कर्क––कुटिल, शीघ्रगामी, स्त्री के वश में रहनेवाला, नाटा कद, जल-तड़ाग-उद्यान से प्रेम, मित्रों को प्रिय, स्नेही स्वभाव।

सिंह–क्रोधी, कम सन्तान, स्त्री से विरोध, दन्त रोग, मातृभक्त, जल्दी भूख प्यास लगे।

कन्या––लज्जाशील, सुन्दर, ढीला स्कंध, गायक, मीठी वाणी, पंडित, धर्मात्मा, नर्म स्वभाव।

तुला––पवित्र, सात्विक जीवन, पुजारी, धनी, अंगहीन, रोगी, बंधु-त्यागी, कुटुम्ब का कल्याण करनेवाला, स्त्री के वश में रहने वाला।

वृश्चिक—बड़ी आँखें, चौड़ी छाती, बाल-रोगी, विषयी, गुप्तपापी, माता-पिता-गुरु के सुख से वंचित।

धन—दाता, कवि, उद्यमी, शिल्पी, धर्मात्मा, अजेय, बंधु-वैरी।

मकर––स्त्री, पुत्र से स्नेह, ममता, आलसी, सर्दी, जुकाम, खाँसी का रोगी, विद्वान्, लोभी, निर्लज्ज, निर्दयी, भाग्यवान।

कुम्भ—ऊँची गर्दन, ऊँचा शरीर, मूर्ख, पर-धन सेवी, ऐबी, पापी, मित्र-प्रेमी।

मीन—जल से उत्पन्न वस्तु से धन प्राप्ति, पराये धन का भोग करने वाला, सुन्दर शरीर, अच्छा वस्त्र पहनने का शौक, पंडित, स्त्री के वश में।

जन्म के समय में नक्षत्र का फल

जन्म के समय में जो राशि होती है उसका बहुत मोटा फल दे दिया गया। जन्म के समय जो नक्षत्र होता है उसका फल इस प्रकार है :––

अश्विनी—शृंगारप्रिय, रूपवान, प्यारा, चतुर, बुद्धिमान्।
भरिणी—कार्य पूरा करे, सत्यवादी, निरोग, चतुर, सुखी।
कृतिका––भोगी, कामी, पर-स्त्री-रत, तेजस्वी, विख्यात।
रोहिणी—सत्यवादी, मधुरवाणी, स्थिर बुद्धि, सुन्दर।
मृगशिरा––चंचल, चतुर, उद्यमी, भोगी।
आर्द्रा––शठ, अभिमानी, कृतघ्न, वधिक, पापी।
पुनर्वसु—इन्द्रजित, सुखी, सुशील, जड़, तृषार्त, सन्तोषी।
पुष्प––शिथिल, धर्मात्मा, सर्वप्रिय, धनी, लिंग-दुर्बलता।
श्लेषा—शठ, मांसाहारी, धूर्त्त, कृतघ्न, पापी।
मघा—कुटुम्बवान, धनी, भोगी, देवतुल्य, पितृभक्त, उद्यमी।
पूर्वाफाल्गुनी—मधुरवाणी, उदार, कान्तिमान, राजभोगी।
उत्तरा फाल्गुनी—सर्वप्रिय, विद्या विनोदी, धनी भोगी।
हस्त—उद्यमी, निर्लज्ज, मद्यपी, दयालु, चतुर और चोर।
चित्रा—वस्त्र प्रेमी, सुन्दर नेत्र, सुन्दर शरीर।
स्वाती––उदार व्यापारी, दयावान, मधुरवाणी, धर्मात्मा।
विशाखा––लोभी, कान्तिवान, चतुर, वाक् चतुर, कलह-प्रिय।
अनुराधा—धनी, विदेश सेवी, यात्राशील।
ज्येष्ठ—मित्रहीन, क्रोधी, धर्मशील, सन्तोषी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मूल--मानी, धनी, सुखी, स्थिर कर्म, अहिंसक ।
पूर्वाषाढ़ा--मनोवांछित स्त्री, प्रेमी, अच्छे मित्र ।
उत्तराषाढ़ा--नर्म, धार्मिक, मित्रयुक्त, उपकारी ।
श्रवण--लक्ष्मीवान, पंडित, विख्यात उदार स्त्री ।
धनिष्ठा--दाता, धनी, वीर संगीतप्रिय, लोभी ।
शतभिषा--स्पष्टवक्ता, व्यसनी, शत्रुजित, साहसी ।
पूर्व भाद्रपदा--उचटा मन, स्त्री-वश, कृपण ।
उत्तरा भाद्रपदा--वक्ता, सुखी, कुटुम्बवान, शत्रुजित ।
रेवती--स्वरूपवान, शूर, पवित्र, धनी ।

२७ नक्षत्रों का उपर्लिखित विशिष्ट प्रभाव है। राशि से अधिक नक्षत्र का प्रभाव मनुष्य के स्वभाव पर पड़ता है ।

राशियों का भी, ग्रहों के समान, अपना स्वरूप तथा स्वभाव होता है जैसे मेष, मिथुन, सिंह, तुला, धन, तथा कुम्भ पुरुष लिंग हैं। अन्य छः स्त्री लिंग है । मेष की दिशा पूर्व है, वृष की दक्षिण, मिथुन की पश्चिम, कर्क की उत्तर, सिंह की पूर्व, कन्या की पश्चिम, वृश्चिक की उत्तर इत्यादि । मेष का स्वभाव गर्म है, वृष का शीतल तथा इसी क्रम से अन्य राशियों का है । मेष क्षत्रिय वर्ण का है, वृष वैश्यवर्ण का, मिथुन शूद्र, कर्क ब्राह्मण, सिंह क्षत्रिय, कन्या वैश्य, तुला शूद्र, वृश्चिक ब्राह्मण, धन क्षत्रिय, मकर वैश्य, कुम्भ शूद्र तथा मीन ब्राह्मण है । इन राशियों का अपना वासस्थान भी है जैसे मेष का पर्वत, वृष का भूमि, मिथुन का वन, कर्क का जल, सिंह का पर्वत--इसी क्रम से ।

लग्न में ग्रहों का फल

जन्मकुंडली में किस घर में किस लग्न में कौन सा ग्रह बैठने पर क्या फल होता है, यह विचार बड़ा जरूरी है ।

सूर्य

१--घर में--हीनदृष्टि, निर्दयी, संग्रामप्रिय ।
२--घर में--धनी, राजा द्वारा धन हर लिया जाय, सुख में रोग हो ।
३--घर में--बुद्धिमान, पराक्रमी ।
४--सुखरहित, मानसिक पीड़ा ।
५--सन्तानहीन, दरिद्र ।
६--बलवान पर शत्रु से पराजित ।
७--स्त्री से पराजित ।
८--चंचल नेत्र, अल्प संतान ।
९--पुत्रवान, धनी ।
१०--सुखी, धनी ।
११--धनी,
१२--कर्मभ्रष्ट ।

चन्द्रमा

१--बहुपुत्रवान, २--अर्थवान, ३--बड़ा कुटुम्ब, ४--क्रूर स्वभाव, ५--सुखी, पुत्रवान, ६--बहुशत्रु, सुकुमार, आलसी, ७--कामी, विलासी, ८--बुद्धिमान्, रोगी, ९--प्रिय, पुत्रवान, धनी, १०--धर्मशील, धनी, बुद्धिमान्, ११--लाभ युक्त तथा १२--क्षुद्र, अंगहीन । १, २ तथा ४ घर में चन्द्रमा का फल होता है । गूँगा, मूर्ख, अंधा, नीच अथवा दास-वृत्ति वाला । पर इन व्यापक फलों से ही चरित्र का अनुमान नहीं लग सकता । इसके लिये अन्य अनेक विचार करने पड़ते हैं ।

प्रथम घर में मंगल बलवान, उद्यमी बनाते हुए भी प्रहारक्षत दोष पैदा करता है । दूसरे घर में मद्यपी अथवा खराब अन्न खाने वाला तथा ९वें घर में पापी बनाता है। बाकी उसका फल सूर्य के समान होता है ।

बुध प्रथम घर में विद्वान्, द्वितीय में धनी, तृतीय में खल, चतुर्थ में पंडित, पंचम में मंत्री, छठे में शत्रुहीन, ७वें में धर्मज्ञ, ८वें में गुणवान तथा शेष में सूर्य के समान फल देता है ।

बृहस्पति--१--पंडित, २--सुन्दर वाणी, ३--कृपण, ४--सुखी, ५--बुद्धिमान्, ६--शत्रुरहित, ७--पिता से अधिक धनी, ८--नीच कर्मी, ९--तपस्वी, १०--धनी, ११--लाभ, १२--खल ।

शुक्र--१--कामशास्त्र पंडित, सुखी, ५--सुखी, ७--कलहप्रिय तथा स्त्री सुख भोक्ता, शेष फल बृहस्पति के समान ।

शनि--१--दरिद्र, रोगी, कामी, मलीन । ७, ९, ११ तथा १२ में राजतुल्य भोग, ग्राम स्वामी, पंडित सुन्दर । शेष सूर्य की तरह । शनि का गुण है--स्थानो वृद्धि कर। जिस स्थान पर रहता है उसके गुण-दोष की वृद्धि करता है ।

स्त्री के लग्न में यदि चन्द्रमा तथा शुक्र एक साथ बैठे हों तो वह सुखी जीवन बिताती है पर बड़ी ईर्ष्यालु होती है । यदि बुद्ध तथा चन्द्रमा हो तो कला में निपुण, गुणी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा सुखी होती है। शुक्र तथा बुध का साथ होने पर रूपवती, सौभाग्यवती होती है। कन्या अधिक होती है।

मंगल, बुध तथा शुक्र का साथ होने पर स्त्री धनी, सुखी तथा गुणवान होती है। यही फल गुरु, बुध तथा शुक्र का साथ होने पर होता है। यदि मंगल सप्तम से तथा शनि की दृष्टि हो तो भग रोग होने का भय रहता है।

ध्यान रहे कि अश्विनी आदि २७ नक्षत्र चार-चार चरण के होते हैं—कुल १०८ हैं। इसी प्रकार मेषादि १२ राशियों के प्रत्येक के ९ भाग होते हैं—१०८ दिन का भोग हुआ।

बृहस्पति बड़ा बलवान ग्रह है। यदि वह केन्द्र में बैठा हो तो बुरे ग्रह भी उस व्यक्ति की हानि नहीं कर सकते।

किं कुर्वन्ति ग्रहाः सर्वे यस्य केन्द्रे बृहस्पतिः ॥

यह भी ध्यान रहे कि शनि तीसरे तथा १०वें घर को पूर्ण दृष्टि से देखता है। बृहस्पति ९वें तथा ५वें को। मंगल चौथे तथा आठवें घर को।

पादैक दृष्टि दशमे तृतीये
द्विपाद दृष्टि नव पंचमे च।
त्रिपाद दृष्टि चतुराष्टके वा
सम्पूर्ण दृष्टि सम सप्तमे व ॥

गणित-फलित

बिना गणित के फलित ज्योतिष हो नहीं सकता। ऊपर लिखी मोटी बातों से फल निकाल लेना सरल नहीं है। केवल अपनी कुंडली से मोटी बातें जानी जा सकती हैं। उनके आधार पर ज्योतिषियों से वार्ता कर सही फलादेश ले सकता है तथा धोखा भी नहीं हो सकता।

जन्म,कुंडली बनाने के लिए गणित करना जरूरी होता है। इसके लिये जन्म का समय निकालना होता है। ६० विपला का एक पल होता है। ६० पल की एक घड़ी होती है। २॥ घड़ी का एक घंटा होता है। २॥ पला = १ मिनट के तथा ६० पला २४ मिनट के बराबर होती है।

६० विपला = १ कला होता है। ६० कला = १ अशा तथा ३० अशा = १ राशि के होता है। सूर्य राशि के ३० अशा एक मास में भोग करता है। यदि ३० दिन का एक मास न हो तो कुछ पला का रोज अन्तर पड़ेगा।

जिस समय बच्चा पैदा हो उस समय सूर्योदय कितने घंटे पर है इसे निकाल कर जिस महीने में सूर्य जितने अंश में हो उसका लग्न सारिणी से ध्रुवांक निकाल कर उसीमें इष्ट घड़ी जोड़ देना होगा। जो अंक निकला वह अंक लग्न सारिणी में जिस राशि के जितने अंश में होगा वही लग्न जन्म का लग्न होगा। जितना अंश गया है, वहीं अंश होगा।

मेष, कर्क, तुला, मकर इनका आद्य अंश चलता है। यानी इसी से शुरू होता है ९ तक। वृष का मकर से, मिथुन का तुला से, कुम्भ का तुला से, सिंह का मेष से, कन्या का मकर से, मीन का कर्क से, वृश्चिक का कर्क से तथा धन का मेष से।

एक राशि का ९ बराबर हिस्सा नवांशक कहलाता है यानी :—

३-२०, ६-४०, १०-०, १३-२०, १६-४०, २०-०, २३-२०, २६-४० तथा ३०-०। यह हुआ ३० अंश का राशि।

जन्म-कुण्डली कैसे बनें

उदाहरण के लिए, वाराणसी में पौष शुक्ल, ७ संवत् १९८२ में मंगलवार को १२ बजे दोपहर को लड़का पैदा हुआ। उस दिन सूर्योदय ६ बजकर ४८ मिनट ५८ सेकेंड पर हुआ। अतएव १२ बजे दिन तक—

	घंटा	मिनट	सेकेंड
	१२	०	०
घटाया	६	४८	५८
	५	११	२

इसे घड़ी में बदल दें तो १२-५७-३५ हुआ। यही इष्टकाल हुआ। इसमें धन का सूर्य ८ अंश गया। लग्न-सारिणी का ध्रुवांक ४७-२ जोड़ दिया तो—

१५—५७—३५
+४७— २—०
५९—५९—३५

अंक सारिणी में मीन लग्न के ८ अंश के खाने में ०-०-० मिला। यानी यही लग्न तथा नवांशक हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात् मीन लग्न के कन्या नवांशक में जन्म हुआ। अतएव जन्मकुण्डली बनी :—

जन्मकुण्डली

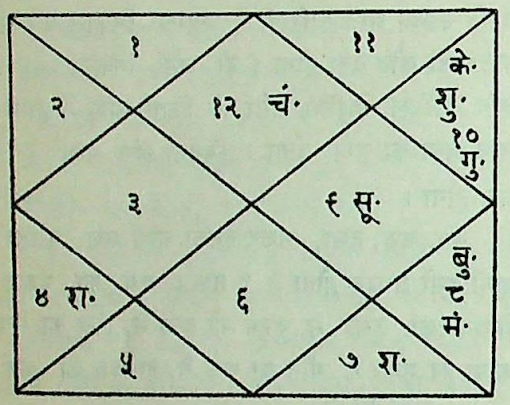

जो लोग वर्ष कुण्डली बनाते हैं उन्हें १-१५-३१-३० ध्रुवांक का गतवर्ष से गुणा करके जो अंक आया उसमें जन्म दिन का अंक तथा जन्म के समय का इष्टकाल जोड़ देना चाहिये। जन्म दिन का अंक इस प्रकार हुआ—रविवार के जन्म दिन को १—सोमवार को २—इसी प्रकार शनिवार को ७ का अंक मानना चाहिये। इनको जोड़ देने से जो अंक निकला वही वर्ष प्रवेश का इष्टकाल होगा।

मान लीजिये कि किसीका जन्म फाल्गुन, शु० १२, रविवार, संवत् १९४७ में हुआ। उस समय इष्टकाल १३ घड़ी ११ पला था। संवत् १९४३ में वर्ष कुण्डली बनाने के लिए १९८३ में से १९४७ घटाने में ३६ वर्ष निकला। यानी ३५ वर्ष बीत गया। ३६वाँ शुरू हुआ। लग्नसारिणी में दिये गये ध्रुवांक १-१५-३१-३० को ३५ से गुणा करें तो २-३-२२-३० मिला। हर बड़े पंचांग में वर्ष-प्रवेश लग्नसारिणी दिया रहता है। उसमें भी ३५ के नीचे देखने पर २-३-२२-३० का अंक मिलेगा।

इस अंक में अपने जन्म-दिन का अंक तथा इष्ट जोड़ देना चाहिये। रविवार का जन्म था, १ अंक हुआ। इष्ट १३-११-० था। अतः योग इस प्रकार हुआ।

२—३—२२—३०
१ —१३—११—०
३ —१६—३३—३०

अर्थात् वर्ष प्रवेश का इष्टकाल हुआ १६-३३-३० तथा ३ का अंक मंगलवार हुआ। वह नये वर्ष का जन्म-दिन हुआ।

वर्ष-कुण्डली

जिस दिन उपर्लिखित व्यक्ति का जन्म हुआ था—रविवार, फाल्गुन, शु० १२ का गतांश ११-९-१४-१७ था यानी सूर्य कुम्भ राशि बिल्कुल भोगकर मीन राशि का भी ९ अंश—१४ अंश, १४ घड़ी तथा १७ पला भोग चुके थे। वर्ष प्रवेश सं० १९८३ में भी सूर्य मीन के ९ अंश पर होगा। पंचांग देखने से पता चलेगा कि अधिक चैत्र शुक्ल १० को मंगलवार है और सूर्य मीन के ९ अंश पर है। इसीलिए हमारा वर्ष प्रवेश अधिक चैत्र शुक्ल १०, मंगलवार को १६-३३-३० इष्ट पर हुआ। इष्टकाल में लग्नसारिणी के मीन के ९ अंक (श) में जो ध्रुवांक है उसमें ९ अंक के नीचे जो अंक है उसे जोड़ना होगा।

३—१६—३३—३०
०—१४—४४
३—१६—४८—१४

अंक सारिणी में खोजने पर मिथुन लग्न के २६ अंश या अंक पर यह अंक मिला। इस प्रकार मिथुन लग्न के मिथुन नवांशक में वर्ष जन्म हुआ तथा पंचांग में देखकर ग्रह जिस राशि में है, वहाँ बिठा दिया जाय। वर्ष-कुण्डली इस प्रकार बनी :—

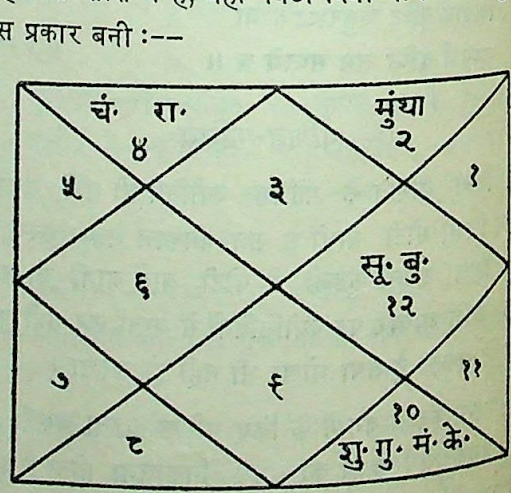

मुंथा तथा वर्ष का स्वामी

वर्ष-कुंडली में ९ ग्रह के अलावा मुंथा होता है। इसका बड़ा महत्त्व है। हरेक के जन्म के समय मुंथा जन्म लग्न में रहता है। यानी पहले घर में। दूसरे साल दूसरे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

या राशि में चला जाता है। इस प्रकार १२ साल में राशि की यात्रा कर फिर पहले घर में वापस आता १३वें साल में तथा २५वें साल में पुनः प्रथम घर में ता है। इस प्रकार जो वर्ष बीत गया उससे हिसाब ना लिया जाय कि मुंथा किस घर में घुसा होगा।

यानी, उपर्लिखित कुंडली में ३५ वर्ष में जन्म-लग्न लवार का ३ अंक जोड़ दें तो ३८ हुआ। ३८ को १२ भाग करें तो २ बचा। इस दो राशि यानी वृष के में मुंथा होगा। ऊपर दी गयी वर्ष-कुंडली में वृष राशि वें घर में है। अतएव मुंथा वहीं विराजमान है।

वर्ष कुंडली में एक ग्रह वर्षेश होता है। यह अधिकार, का स्वामी होने का अधिकार——जन्म-लग्न के स्वामी वर्ष-लग्न के स्वामी ग्रह, मुंथा जिस राशि में हो उसके मी ग्रह तथा यदि दिन में जन्म हों तो वर्ष-कुंडली में सूर्य स राशि में हों उसके स्वामी ग्रह अधिकारी हैं। यदि त्रि में जन्म हों तो वर्ष-कुंडली में जिस राशि में चन्द्रमा उसका स्वामी अथवा इनके अलावा त्रैराशिकेश्वर के का स्वामी होने का अधिकार होता है।

इन पाँचों ग्रहों में जो बलवान होकर लग्न देखता हो, ही वर्षेश होगा। यदि पाँचों ग्रह लग्न को देख रहे हों तो सबसे बलवान होगा, वही वर्ष का स्वामी होगा। यदि ोई ग्रह बलवान हो पर लग्न को देखता हो तो लग्न को खनेवाला कम बलवान ग्रह वर्ष का स्वामी होगा। यदि नमें से कोई बलवान ग्रह लग्न को न देखता हो मुंथेश-मुंथा हीं बैठा है उस राशि का स्वामी वर्ष का स्वामी हो गया।

ऊपर जो वर्ष कुंडली बनी है उसमें जन्म-लग्न मिथुन के स्वामी बुध हैं। मुंथा वृष में है। उसके स्वामी शुक्र है। वर्ष-लग्न के स्वामी भी बुध हैं। वर्ष-प्रवेश दिन में है। सूर्य मीन में है। मीन के स्वामी वृहस्पति हैं। पंचांग देखने से त्रैराशिकेश्वर शनि मिलेंगे। ये ४ ग्रह अधिकारी हैं। इनमें से तीन शनि, बृहस्पति तथा शुक्र लग्न को देख रहे हैं। बुध लग्न को देख रहा है। वही वर्षेश हुआ।

वर्ष-कुंडली तथा जन्मकुंडली में ग्रहों की दृष्टि भिन्न होती है। वर्ष-कुंडली में····

१–७ घर–पूर्ण दृष्टि, शत्रु दृष्टि
४–१०–आधी दृष्टि, शत्रु दृष्टि
५–९–तीन चौथाई दृष्टि, मित्र दृष्टि
३–११–एक चौथाई दृष्टि, मित्र दृष्टि

जन्मकुंडली में :—
७–पूर्ण दृष्टि
५–९–आधी दृष्टि
४–८–तीन चौथाई दृष्टि
३–१०–एक चौथाई दृष्टि

फल ऊपर के अनुसार। शुक्र की ५-९ पर पूर्ण दृष्टि, शनि की ३-१० पर तथा मंगल की ४-८ पर पूर्ण दृष्टि होती है।

ग्रहों के स्वामी

मेष और वृश्चिक के स्वामी मंगल हैं। मिथुन और कन्या के बुध हैं। धन और मीन के गुरू हैं। मकर और कुम्भ के शनि हैं। कर्क के चन्द्र, सिंह के सूर्य तथा इनके अलावा कन्या के स्वामी राहु और मीन के स्वामी केतु भी हैं।

मेष के सूर्य उच्च के होते हैं। वृष के चन्द्र, कन्या के बुध, तुला के शुक्र, कर्क के गुरु, मिथुन के राहु तथा धन के केतु—जब इन राशियों में ये ग्रह आते हैं तो उच्च के होते हैं तथा फलदायक होते हैं।

यह तो जन्मकुंडली या वर्षकुंडली का मोटा हिसाब हो गया। अब इनके अलावा विंशोत्तरी दशा, महादशा, योगिनी (मंगला, पिंगला, धान्य, भद्रिका, उलका, सिद्धा, संकठा) विचार, भभोग तथा मुक्त निकालना इत्यादि बहुत सी पेचीदी चीजें हैं जिन पर पुनः विचार करेंगे। ऊपर जो कुछ लिखा गया है उससे इतना स्पष्ट हो गया कि दैनिक राशिफल केवल धोखे की टट्टी है। उससे कुछ भी ज्ञात नहीं हो सकता। ऊपर लिखी बातों के आधार पर ही साधारण व्यक्ति अपनी जन्मकुंडली का फलाफल थोड़ा बहुत तो निकाल लेगा।

फलादेश

हरेक व्यक्ति की इच्छा होती है कि वह अपना भविष्य जान ले। युवक भाग्य तथा सम्पदा के विषय में चिंतित रहता है। वृद्ध को मृत्यु का भय रहता है। पर कोई भी फल बिना महादशा, अंतर्दशा तथा प्रत्यंतर दशा—सबका लम्बा-चौड़ा हिसाब लगाये बिना नहीं निकल सकता। जो लोग कुंडली सूँघकर, देखकर, फल बताने लगते हैं, उनकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कला भगवान् जाने (बात लग गयी तो जम गयी, वरना कौन पूछता है।)

आयु का निर्णय जैमनी आदि ऋषिप्रणीत परिपाटी से करना चाहिये। आयु का निर्णयकाल चक्र से करना चाहिये। अरिष्ट का पाराशरी से। काल चक्रदशा बनाना तथा फलादेश बड़ा कठिन कार्य है। वह दशा इतनी सूक्ष्म है कि उसमें चन्द्रमा के अंश, कला, विकला तक शुद्ध होना चाहिए। जन्म का समय भी शुद्ध होना चाहिये। अन्यथा अनर्थकारक फल निकल आयेगा।

अतएव आज बिना गणित किये फलादेश निकालने वाले बहुत बड़ी धोखेबाजी कर रहे हैं तथा हमारे प्राचीन विज्ञान को बदनाम कर रहे हैं।

ज्योतिषशास्त्र की प्राचीनता

ज्योतिषशास्त्र पर अश्रद्धा रखनेवाले भारतीयों से मैं दो शब्द कहना चाहता हूँ। ज्योतिषशास्त्र आज का नहीं है—५-७ हजार वर्ष पुराना भारत के ऋषियों द्वारा प्रणीत या परिलक्षित शास्त्र है जिसे हमने संसार को दिया है। इसकी मखौल उड़ाना अपनी सभ्यता तथा संस्कृति की खिल्ली उड़ाना है।

पश्चिमी विद्वानों ने यह नितान्त, भ्रम पैदा कर रखा है कि ज्योतिष गणना की कला अरब से भारत तथा पश्चिम को गयी। यज्ञ तथा अनुष्ठान की विधि बतलानेवाला शास्त्र बिना शुभ घड़ी तथा मुहूर्त का निर्णय किये कैसे पूरा हो सकता है? यह अवश्य है कि ज्योतिष तथा गणना के आदिकालीन पंडितों के अद्भुत मौलिक ज्ञान पर उनके अनुवर्ती विद्वानों ने निरन्तर शोध करके अभिवृद्धि की। वैसे ही जैसे शाकटायन ऐसे आदि व्याकरण-आचार्य के सिद्धान्तों के बल पर पाणिनी ने अष्टाध्यायी की रचना की।

यज्ञों के प्राचीन विधान ऋतु या सम्वत्सर से सम्बंध रखते हैं। प्राचीन काल में नया वर्ष माघ मास से शुरू होता था। तैत्तिरीय ब्राह्मण (१।१) के अनुसार ब्राह्मण वसन्त में, क्षत्रिय ग्रीष्म में तथा वैश्य शरद् ऋतु में यज्ञ की अग्नि का स्थापन (आधान) करे। यज्ञ के लिए अष्टका, फाल्गुनी पूर्णमासी में दीक्षा होनी चाहिये। वेदों में नक्षत्र, पक्ष, मास, तिथि, ऋतु तथा सम्वत्सर का विधान दिया गया है। बिना भलीभाँति ज्योतिष जाने सही यज्ञ नहीं हो सकता। जो नक्षत्र आदि का ध्यान नहीं रखते वे "असुर" होते हैं। वेदांगों में ज्योतिष को सिरमौर माना गया। सिद्धांत शिरोमणि के अनुसार ज्योतिष को सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त है। ऋग्वेद तथा यजुर्वेद से वेदांग ज्योतिष की उत्पत्ति हुई है। इसे वेद-पुरुष की आँख कहते हैं।

वेदांग ज्योतिष के रचयिता ने वैदिक मंत्रों से जिस शास्त्र का निर्माण किया है उसमें ऋग्वेद से ३६ तथा यजुर्वेद से ४३ श्लोक बनाये हैं। अनेक श्लोक दोनों में समान है। इन श्लोकों का अभी तक पूरी तरह से अनुवाद या व्याख्या भी नहीं हो पायी है यद्यपि बड़े-बड़े विद्वानों ने इस पर घोर परिश्रम किया है। इस ग्रंथ के रचयिता "लगध' नामक पंडित थे जिनके विषय में और कोई जानकारी नहीं है। उन्होंने अपने ग्रंथ में केवल अपना नाम दिया है। विद्वानों का अनुमान है कि ई० पू० १४०० वर्ष के लगभग इसकी रचना हुई थी। उस समय संसार की किसी सभ्यता को २७ नक्षत्रों की जानकारी नहीं थी। लगध के अनुसार वैदिक गणना २७ नक्षत्रों से की जाती थी। १२ राशियों का जिक्र नहीं है। तैत्तिरीय ब्राह्मण में जिन वर्षों का नाम दिया गया है—सम्वत्सर, परिवत्सर, इदावत्सर, अनुवत्सर तथा इदुवत्सर—उन पाँच वर्षों का एक युग गणना के लिए वेदाङ्ग ज्योतिष में माना गया है।

इस ग्रन्थ की प्राचीनता प्रमाणित हो जाने के बाद किसीके बाद किसीके पास ऐसा कोई तर्क नहीं रह जाता जो यह कह सके कि आज के ५-७ हजार वष पहले भारतीयों को ज्योतिष गणना का बहुत ऊँचा ज्ञान नहीं था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अलका सुन्दरी

मूल लेखिका : 'पांचाली'

अनुवादक : विजय राघव रेड्डी

वह ईस्वी सन् २०२ और २०८ के बीच का समय था, जब कि दक्षिण में आन्ध्र एवं कलिंग तथा सुदूर दक्षिण में चोल, पाण्ड्य और चेर वंश अपने पराक्रम की चरम सीमा पर पहुँचकर सारे दक्षिणा-पथ में राज्य कर रहे थे। एक दूसरे राज्य पर आक्रमण कर उसे अपने अधीन करने की ताक में था। उस समय आन्ध्र में यज्ञश्री शातकर्णी के सार्वभौम राजाधिकारी राजा विजय शातकर्णी राज्य कर रहे थे। इस आन्ध्र में बौद्धधर्म का सबसे अधिक प्रचार था। बौद्ध-धर्म को राजाश्रय देकर उसे वहाँके राज-धर्म के रूप में हजारों वर्षों तक प्रचार करने का श्रेय शातकर्णियों को है। आचार्य नागार्जुन के बाद सागरश्री बौद्धधर्म के पीठाधीश बन चुके थे।

वह एक सुप्रभात था।

भोर का तारा आसमान पर चमक रहा था। अंधकार में निमग्न जगत् को देख तारे के साथ प्राची दिशा भी मुस्करा रही थी। उस मुस्कान के साथ-साथ प्रातःकिरण-रूपी फव्वारे के समान ऊपर उठ रहा था। एक ओर निद्रा में लीन जगत् को जगाने के लिए दिशाएँ तैयारियाँ कर रही थीं, तो दूसरी ओर अंधकार अपना बोरिया-बिस्तर लपेट रहा था।

ठीक उसी समय चोल राज्य की सीमा पार कर तीन घुड़सवारों ने आन्ध्र की सीमा में प्रवेश किया। वे तीनों कुछ दूर अन्दर प्रवेश कर सबेरा होता देख वहाँ रुक गये। उनमें से एक सवार घोड़े से उतर गया। वह स्त्री-मूर्ति प्रतीत हो रही थी, फिर भी वह पहचानी नहीं जा सकती थी। बाकी दोनों सवार उस मूर्ति से कह रहे हैं—'होशियारी से काम लेना। किसी न किसी प्रकार मल्लिनाथ को अपने वश में करके जहर पिलाना। नित्य प्रति का समाचार अविलंब दूतियों द्वारा पहुँचाती रहना। प्राप्त अवसर को कभी हाथ से न खो देना।' इसके बाद वे दोनों उस तीसरे अश्व को भी अपने साथ लेकर वापस लौट गये।

सूर्य की सहस्र किरणें जगत् में चारों ओर फैलने लगीं। उनमें से कुछ पैदल चलनेवाली उस मूर्ति पर भी पड़ रही थीं। किन्तु वे बेचारी किरणें सत्वर लौट चलने लगीं, मानों उसकी शरीर-कांति के आगे हार गयी हों। वह प्रायः २० वर्ष की सुन्दरी होगी। यदि उस सुन्दरी के अंग-प्रत्यंग की रूपाभा शिल्पियों ने देखी होती तो कदाचित् अमरावती की आन्ध्र शिल्प-कला का रूप दूसरा ही होता, ग्रीक-गांधार शिल्प कृतियाँ और निखर उठतीं।

वह सुन्दरी साधारण वस्त्र ही धारण किये हुए थी, किन्तु उस सुन्दरी के पहनने के कारण उन साधारण वस्त्रों की सुन्दरता, प्रतिष्ठा, उपयुक्तता बढ़ गयी। सूरज आसमान पर चल रहा था तथा वह सुन्दरी पृथ्वी पर चल रही थी।

वह बीच नगर में गयी। सूरज बीच आसमान पर आया। आसमान के उस सूरज पर किसी की भी दृष्टि न पड़ी, किन्तु सबकी दृष्टि उस सुन्दरी पर केन्द्रित थी। भानु की किरणों से उसका किंचित् म्लान स्वेद से पूर्णतः सिंचित उसका दुकूल अब स्वेद को सोख न सका। वह सिंहपुरी-दुर्ग* के समीप पहुँच गयी।

द्वारपालक अचम्भे में पड़ गये। वह कौन है? किसके लिए आ रही है? वे इस शंका में पड़ गये कि उसे रोकें कि न रोकें? अपनी आँखों से उस सुन्दरी की सुन्दरता का आस्वादन करते हुए वे समझ गये कि न वह उस नगर की रहनेवाली है, और न वह दुर्ग में काम करनेवाली परिचारिका है। उनके हाथ एवं भालों ने अपना कर्तव्य सँभाल लिया। उन्होंने पूछा—"कौन हो तुम? किसके लिए आ रही हो?"

जैसे ही दोनों भाले सामने आये, अपने आंचल से ललाट को पोंछकर जोर से श्वास लेकर उसने कहा, "मैं धान्यकटक-वासिनी हूँ। मुझे दीवान में जाना है।"

"आज्ञा-पत्र कहाँ है?" एक ने पूछा।

"यदि धान्यकटक-वासिनी हो तो तुम्हारी पालकी

---

* वर्तमान 'नेल्लूर' नगर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहाँ ? और तुम्हारे दास-दासी-गण कहाँ ? तुम किसकी हो ?" दूसरे ने प्रश्न किया।

"रास्ते में डाकुओं ने लूट लिया। कहार तथा अन्य बचे-खुचे दास-दासी भी भाग गये। अकेली मैं इधर बचकर आ गयी हूँ। पत्र और आभूषण आदि डाकुओं के पंजे में पड़ गये।"

"अरे अचरज की बात है। तेलुगुनाडु में भी डाकुओं की लूट ? अच्छा, मैं अभी अंदर से पूछकर आऊँगा तब तक तुम यहीं रहना।" कहकर एक द्वारपालक दुर्ग के भीतर चला गया।

दूसरा उसकी ओर देखते हुए सोच रहा था—"ऐसा लग रहा है कि यह किसी रानिवास की स्त्री है, शायद इसे इस प्रकार रोकना हमारे लिए....."इतने में दुर्ग के सामने कई लोग इकट्ठे हो गये। वे उस स्त्री को देख, कहने लगे—"वाह, कैसी रूपसी है ? कौन है ? किसके लिए आई है ? अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार वे आपस में तर्क-वितर्क करके इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि कुछ भी हो आखिर यह अबला है, इसे दुर्ग के द्वार पर रोकना शोभा नहीं देता।" इस बीच में अंदर गया हुआ द्वारपालक लौट आया और उस सुन्दरी को लेकर दुर्ग के अंदर चला गया। उसने उसे सीधे मल्लिनाथ के सम्मुख प्रस्तुत किया।

मल्लिनाथ सिंहपुरी का सेनापति था। उसे उस समय सीमा की रक्षा का कार्य सौंपा गया था। सुन्दर और बलिष्ठ मांस-पेशियों से उसका शरीर चमक रहा था। उस दीर्घकाय की सुदीर्घ बाहुओं पर बलिष्ठ नसें ऐसी प्रतीत हो रही थीं मानों नागिनें फुफकार रही हों। पतली नुकीली मूँछें उसके मुँह पर शोभा दे रही थीं। पुरुष हो तो ऐसा हो। मल्लिनाथ को देखकर उस स्त्री ने सोचा था कि क्या मुझे इसीको जहर पिलाना होगा ?

उसे आपाद-मस्तक निरखकर मल्लिनाथ ने सोचा कि यह संभवतः कोई रानिवास की स्त्री, विपथगामी होकर यहाँ पहुँच गयी होगी। फिर भी अपने यहाँ बिना किसी-की आज्ञा लिए आई है, अतः उसने अधिकारपूर्वक पूछा कि कौन हो तुम ? "एक अनाथ हूँ" सुन्दरी ने जवाब दिया। इस एक वाक्य में ही उसने अपना सर्वस्व सौंप दिया। ओह ! कितनी चतुर है ! नहीं तो अकेली दुर्ग में एकाएक कैसे प्रवेश कर सकती ? उसका जवाब सुनकर मल्लिनाथ की समझ में नहीं आया कि उसे क्या किया जाय। एक क्षण तक मौन रहकर उसे एकटक देखते रह गया। अपने को कर्त्तव्य-च्युत होते हुए समझकर उसने अपने को सँभाल लिया। पुनः प्रश्न किया—"क्या यह सच है कि दुर्ग के द्वार पर तुमने कहा था कि रास्ते में डाकुओं ने लूट लिया और तुम धान्यकटक से आ रही हो ?"

"हाँ, यह सब सच है।"

"धान्यकटक में तुम्हारे कौन हैं ? वे क्या करते हैं ?"

"आज मेरे कोई नहीं है। परसों तक मेरे जामाता रहते थे। वे मर गये। अनाथ होकर इधर आयी हूँ। सोचा था कि किसी अन्य देश में जाकर जीविका अर्जित करूँ। पहले यहाँ आई हूँ।" दीन स्वर में सुन्दरी ने जवाब दिया।

मल्लिनाथ को कुछ न सूझा। फिर उसे एक बार नीचे से ऊपर तक देखा।

"हाँ ऐसा लगता है कि तुम धूप में चलकर बहुत थक गयी हो। आराम करो। बाद में सुभीते से बात कर लेंगे।" कहकर एक दासी को बुलाकर आदेश दिया कि इन्हें अन्दर ले जाओ और सारी सुविधाएँ दो।

दासी उसे अन्दर ले गयी। अन्दर जाती हुई सुन्दरी ने कृतज्ञता भरी दृष्टि से उसे देखा। उस दृष्टि ने मल्लिनाथ को अधिक आश्वस्त किया। उसको विश्वास हुआ कि सुन्दरी संपन्न परिवार की है।

वह संध्या का समय था।

सेनापति मल्लिनाथ के यहाँ उस सुन्दरी ने अधिक सौहार्द प्राप्त किया। सिंहपुरी में वह अलका सुन्दरी के नाम से पुकारी जाने लगी। मल्लिनाथ का संपर्क अलका सुन्दरी से यहाँ तक बढ़ गया कि वह उसे छोड़कर एक क्षण भी अलग नहीं रह सकता था। अपने महल में किसी को प्रवेश की अनुमति देनी हो तो पहले उसकी सम्मति लेनी पड़ती थी। कोई भी काम मल्लिनाथ सुन्दरी की अनुमति के बिना नहीं करता था। सुन्दरी नयनों से और अंग-संकेतों से आदेश देती, मल्लिनाथ सत्वर उन आदेशों का पालन करता। दुर्ग में ऐसा कोई स्थान नहीं है जो सुन्दरी से अपरिचित हो। सारे रहस्य-द्वार, रहस्य-मंदिर और रहस्य-छिद्र आदि उसे ज्ञात हो गये। यदि वह चाहती तो किसी भी क्षण अपने नियत कार्य की सिद्धि प्राप्त कर सकती थी। किन्तु अभी तक वह अपना कार्य न कर सकी। कदाचित् आगे भी नहीं कर सकेगी।

तभी अनुमति लेकर मल्लिनाथ किसीसे मिलने गये थे। सुन्दरी महल में खड़ी होकर डूबते हुए सूरज को देख रही थी। सूरज आधा डूब गया था, आधा दिखाई पड़ रहा था। पश्चिम दिशा का रंग ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो किसी अकुशल चित्रकार ने रंगों को फैलाया हो। उसी प्रकार वह सूरज को निरख रही थी। धीरे-धीरे अंधकार छा जाने लगा। इतने में पीछे से कोई आहट सुनाई पड़ी। मुड़कर देखा तो उसके पैरों के नीचे की जमीन हट गयी। वह जड़वत् रह गयी।

'क्यों जिस काम के लिए यहाँ आई हो उसे भूलकर आनन्द-सागर में डुबकियाँ लेने लगी हो ?' आगत मूर्ति ने प्रश्न किया। अलका सुन्दरी कोई उत्तर न दे सकी। फिर मूर्ति ने कहा, "छाया के समान तुम्हारे पीछे ही हम लगे हुए हैं। तुम्हारी प्रत्येक गति हमें सत्वर ज्ञात होती रहती है। अब देरी मत करो। जल्दी उसे खत्म करो।

यह सुनकर सुन्दरी हँसी।

'हँसती क्यों हो ?' अधिकारपूर्वक उसने पूछा।

"जिस काम के लिए आई हूँ उसको संपन्न करने के लिए नींव खोद रही हूँ। अभी यहाँके रहस्य ही मालूम न हो पाये।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"सारे रहस्य तुम जान गयी हो। पिछले सप्ताह ही पति के साथ जाकर सारे रहस्य स्थल देख तो आई अब उसकी हत्या करना ही बाकी है। अच्छा, 'यह तो को कि तुमने क्यों भेदियों से कोई भी समाचार नहीं दिया ?,

"मुझे कोई दिखाई पड़े तब तो।"

'तीन आये थे, तीनों को मल्लिनाथ ने बंदी बनाया।'

'अरे, मुझे पता तक नहीं।' सुन्दरी ने आश्चर्य से कह दिया।

"आज रात को उससे सारे रहस्य जानकर, उसे एक सप्ताह के भीतर खत्म करने की व्यवस्था करो।"

'क्या मल्लिनाथ जान गये कि मैं कौन हूँ।'

"नहीं उसे अभी पता नहीं। यही हमारे लिए बचा-खुचा सहारा है जैसे ही उसे यह पता लगेगा, वैसे ही तुम्हें खत्म कर देगा। वह तुम्हारे प्रति इसलिए अनुराग दिखा रहा है कि तुम उसकी कामनाओं की पूर्ति कर रही हो। होशियारी से काम लेना। अपना काम पूरा करके तुम यहीं चली रहना। अगली पूर्णिमा की रात तक उसे किसी न किसी प्रकार खत्म करो। सवेरा होते ही हमारी सेना किले को घेर लेगी। आज प्रतिपदा है। ठीक पन्द्रह दिन के बाद हमारी सेना आ जायेगी। याद रखना।"

वह मूर्ति दीप जलाने के लिए आई हुई दासी को धोखा देकर वहाँसे भाग गयी। सुन्दरी सोच में पड़ गयी—मैं यहाँ किसलिए आई हूँ ? अब तक क्या किया ? कर क्या रही हूँ ? मैं अपने कर्त्तव्य को भूल गयी। क्यों ? किसने मुझे भुला दिया ? मल्लिनाथ के सौहार्द ने। कितना महान् है वह ! उसने मुझे अपना सर्वस्व दिया। और मेरा क्या दिया। उसे धोखा दूँगी भी कैसे ? अपने इस अनन्य प्रेमी को जहर कैसे पिला सकूँगी ? मैं यहाँ महज इस उद्देश से आई थी कि उसकी हत्या करूँ ! उसकी हत्या क्यों करनी चाहिए ? कितना सुख, आदर और प्रेम प्रदान किया है उसने मुझे। उसकी क्या मैं हत्या करूँ ? उसकी हत्या कर क्या मैं जीवित रह सकूँगी ? मेरा मरना तो निश्चय ही है। मल्लिनाथ ने मेरी भलाई ही की थी, बुराई नहीं की। इसके अतिरिक्त अपना सर्वस्व मुझे दे रहे आदमी की हत्या करने का मतलब है कि अपने की हत्या करना। छिः उन लोगों की राज्य-लिप्सा मल्लिनाथ को खत्म करूँ ? अपने सर्वस्व, अपने नाथ को खत्म करने पर वे मुझे पारितोषिक देंगे। कितने भी हजार, कितने भी लाख दीनार मल्लिनाथ के समान अनुराग नहीं दे सकते। वे भीरु हैं, शक्तिहीन हैं। अतः सामने से मल्लिनाथ ने की हिम्मत नहीं की है। अतः धोखे से, प्रपंच खत्म करने के लिए उन्होंने मुझे भेजा है। मैं भी कर क्या कर सकी ? सारे रहस्य तो जान गयी। नाथ को मैंने अपने अनुराग रूपी नशे में डुबो दिया। कार डुबोये गये व्यक्ति की हत्या ! छिः छिः ! नहीं ना। उसे हानि नहीं पहुँचा सकती। उसने सुख दिया और दे रहे हैं। उसे जानबूझकर अपने हाथों से खत्म नहीं कर सकती। उसके सुविशाल वक्षस्थल में हर प्रकार से विलीन हो गयी हूँ। मैं उसकी बंदिनी हूँ। यह बंधन मुझे दुःखदाई नहीं, सुखदाई है। इस पावन बन्धन को क्यों तोड़ूँ ? तोड़ नहीं सकूँगी। तोड़ना नहीं चाहिए।"

"लेकिन अभी जो आया, सो कौन था ? मल्लिनाथ के महल में मुझे मल्लिनाथ की सर्वस्व को, आज्ञा दे गया। यह दुर्ग मल्लिनाथ का है। मैं मल्लिनाथ की सर्वस्व हूँ। स्वयं मल्लिनाथ भी मुझे आज्ञा नहीं दे सकता, लेकिन यह कौन था जो मुझे आज्ञा दे सका ? उसे शायद इस बात का घमंड है कि वह बहुत बलवान है। वह बिलकुल यह भूल गया कि अपनी कमजोरी के कारण ही मुझे यहाँ भेजा है। उससे भी अधिक अधिकार संपन्न तथा बलवान मल्लिनाथ भी मुझे असंतुष्ट नहीं कर सके। उसने मुझे अपना बना लिया। अब इस आदमी को खत्म करूँ तो भी इधर कौन है जो कि इसकी रक्षा करने आये।"

जब वह ये बातें सोचने लगी तब उसे आनन्द हुआ। अब वह एक निर्णय पर पहुँच गयी। तुरन्त उसने दासी को आवाज दी। दासी के आते ही उसने उसके कान में कुछ कहकर उसे भेज दिया। उसके जाते ही दो बलवान आये। उन्होंने उसे प्रणाम किया। सुन्दरी ने दोनों से पूछा कि अभी इधर जो आया था वह कौन था ? तुम लोगों ने सोचा होगा कि वह हमारा भेदिया है। नहीं। वह हमारे रहस्य जानने के लिए आया हुआ हमारा शत्रु था। जल्दी जाकर उसे खत्म कर दो। बगीचे के उस पेड़ के नीचे उसकी लाश पहुँचानी चाहिए।

दोनों वहाँसे आदेश लेकर चले गये।

उनके जाने के बाद सुन्दरी ने मन ही मन कहा —"हाँ ! अपने आदमियों के हाथों से ही वह खत्म हो जायगा। अब शेष रह जायेंगे ये दोनों। इनको खत्म करने की व्यवस्था ही अब अवशेष रह गयी। थोड़ी देर के बाद उसे समाचार मिला कि वे तीनों आदमी मार डाले गये। उनकी लाशें पेन्ना नदी में मिला दी गयीं। उस रात को वह निश्चिन्त सो सकी।

वह पूर्णिमा की रात थी।

चाँदनी छिटक रही थी। पवन के बहने के कारण उद्यान के पोखर में कमल डोल रहे थे। उसके डन्डे पानी में वलयाकार घूम रहे थे। उस पानी में पूर्ण-चन्द्र स्थान कर रहा था। उस वन के एक भाग में चार पेड़ खड़े थे। इन पेड़ों को 'मालती' लताएं घेरकर उस जगह को मंडप सा बना रखा था। वह श्वेत सुमनों से अलंकृत होकर ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मानों चांदनी की अवहेलना कर रहा हो। चन्द्र ऐसा भागता जा रहा था मानों चाँदनी की अवहेलना हो रही हो। चन्द्र ऐसा भागता जा रहा था मानों नीचे वाली चाँदनी को देख वह डर गया हो।

उन चारों पेड़ों के नीचे चाँदनी नहीं है। वर्षा तथा चाँदनी का प्रवेश रोकते हुए वह मंडप छाता का काम देता था। उन पेड़ों के नीचे एक संगमरमर का चबूतरा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस पर एक स्त्री बैठी है। उसकी सुकोमल जंघा पर एक बलिष्ठ पुरुष अपना सिर रखकर गहरी नींद सो रहा था।

हाँ! मैं कौन थी? कौन हूँ? और अब क्या कर रही हूँ? अन्यमनस्कता से स्त्री-मूर्ति सोचती हुई अपनी गोद में लेटे हुए उस पुरुष-शरीर पर ममता से, वांछा से, तृप्ति से, त्रप से, आनन्द से तथा अनुराग से अपने सुकोमल हस्तों को फेरते हुए अपने में खो गयी।

इस प्रकार चाँदनी की छत्र-छाया में वे दोनों आनन्द-सागर में डुबकियाँ ले रहे थे, तब एक पुरुष-मूर्ति पेड़ों की छाया में आकर बहुत देर तक उनका निरीक्षण करके मालती लता के पत्ते तोड़कर उन्हें गोलाकार बनाकर निशानी लगाकर उसने उसे उस स्त्री मूर्ति पर फेंक दिया। वह गोला बिना आहट किये आकर उसकी पीठ पर लगा। उसने मुड़कर देखा। वह पहचान गयी। दिल धड़कने लगा। पसीना निकल गया। रोंगटे खड़े हो गये। किन्तु इतने में अपने को सँभालकर संकेत से बताया कि—ठहरो! पुरुष ठहर गया।

कुछ क्षणों के बाद स्त्री-मूर्ति ने उस पुरुष के सिर को धीरे से अपनी जाँघों से खिसकाकर नीचे रख दिया और बिना आहट किये उठकर धीरे से इठलाती हुई उस पुरुष-मूर्ति के निकट पहुँच गयी।

पास आने पर उस पुरुष-मूर्ति ने प्रश्न किया, "क्या तुम्हारा काम अभी पूरा नहीं हुआ? क्या तुम्हें हमारा प्रेषित समाचार प्राप्त नहीं हुआ?"

"कौन-सा समाचार?" उस स्त्री ने आश्चर्य से पूछा।

"पूर्णिमा के दिन तक सारा कार्य पूरा करने का।"

"अरे! नहीं तो।"

"वह आदमी कहाँ?"

"कौन आदमी? क्या बात है?"

"एक पक्ष के पहले एक वार्ताहार से यह कहला भेजा था कि आज रात को सेना पेन्ना नदी पार करके आएगी, और इस रात तक तुम सब ठीक ठाक करके रखो।"

'अरे! मुझे तो कोई समाचार नहीं मिला। क्या हमारी सेना सचमुच पेन्ना नदी पार कर चुकी है?'

'हाँ, अब तक पार करती होगी। मैं जा रहा हूँ। यही अच्छा मौका है। उसका काम तमाम करो। यह बड़ी खुशी की बात है कि वह तुम्हारे जाल में फँसा हुआ है। अच्छा, जल्दी अपना काम कर लेना।'

'अरे, यह क्या बड़ी बात है! तुम अन्दर कैसे आए हो?'

'तीसरे दरवाजे के पासवाले पहरेदार को मार कर।'

'तो अब कहाँसे जाओगे?'

'जहाँ से आया था वहींसे।'

'अरे! वहाँ से? नहीं! अब तक वहाँ दूसरा पहरेदार आकर तैनात हो गया होगा और वहाँ अब तक गड़बड़ मच गयी होगी। इधर से जाओ दूसरा रास्ता दिखाऊँगी। तुम्हारे पास खंजर है?'

'हाँ! क्यों?'

'वह मुझे दे दो। अन्दर जाकर दूसरा ले आने के लिए फुरसत नहीं है। तुम तुरन्त जाकर सेना को जल्दी पेन्ना नदी पार करने की व्यवस्था करो। इस बीच में इस खंजर से इसका काम तमाम कर दूँगी।' कहकर उस स्त्री-मूर्ति ने उसे पेड़ों की छाया में थोड़ी दूर ले जाकर एक अँधेरी जगह में पहुँचा दिया और कहा, 'अन्दर चले जाओ, वहाँ तुम्हें एक दरवाजा मिलेगा और उस दरवाजे को खोलकर जाओगे तो बस दुर्ग के बाहर अपने को पाओगे।'

पुरुष दो कदम आगे बढ़ा। स्त्री ने उसी खंजर से उसकी पीठ में भोंक दिया। 'हा! धोखा' कहकर वह मुड़ गया तो फिर उसकी छाती पर खंजर मारकर वह स्त्री मूर्ति पीछे हट गयी। पुरुष जमीन पर गिर गया।

वह स्त्री मूर्ति वहाँसे चाँदनी में आयी और उस चाँदनी में अपनी साड़ी को नीचे से ऊपर तक एक बार देख लिया। उसने जोर से उसाँस ली और चारों पेड़ों के पास जाकर उनके नीचे के संगमरमर के चबूतरे के पास खड़ी हो गयी। जमीन पर पड़े हुए उस पुरुष के सिर को उठाकर बैठने लगी तो वह पुरुष एकदम उठकर खड़ा हो गया और अट्टहास कर उठा। उस विषपूरित अट्टहास को सुनकर वह स्त्री काँपने लगी। उसके ओंठ सूख गये। अचानक उसे कुछ सूझा। उसने धीरज बाँधा। वह जान गयी कि यह हँसी मल्लिनाथ की नहीं है।

उस पुरुष-मूर्ति ने व्यंग्य और क्रोध भरे शब्दों में कहा 'अच्छा! यही है तुम जो कर रही हो यहाँ? जो तुम्हारे पास आया उसे ऐसा ही खतम करके मल्लिनाथ से अठखेलियों खेल रही हो?'

उसका धीरज दृढ़ हो गया। वह सीमातीत धीरता जिसे हर कोई असीम वेदना में, असमर्थ स्थिति में, किसी व्यता की स्थिति में प्राप्त कर लेता है। वह एक अद्भुत साहस है। इस साहस का सामना दुनिया की कोई शक्ति नहीं कर सकती। इस साहस के सामने दुनिया नतमस्तक हो जाती है। वह सुस्पष्ट शब्दों में प्रत्येक बात का जवाब देने लगी।

'हाँ! तुम बुजदिलों ने एक वीर पराक्रमी और धीर वान की हत्या काम-लीला के जाल में फँसाकर, धोखे करने के लिए मुझे भेजा है। मैं वह काम कर न सकी। कारण क्या है? जानते हो, कारण क्या है? मैं जान गयी कि इसने मुझे जो सुख दिया, उसकी तुलना में तुम से प्राप्त होनेवाला पारितोषक तुच्छ है। मैंने अनुभव किया कि यदि चोल साम्राज्य और आन्ध्र साम्राज्य दोनों मिलकर भी मुझे अपने साम्राज्यों की सम्राज्ञी बनाएं, तो भी व्यक्ति से एक रात्रि में जो तृप्ति मिल जाती है, उसके सामने वह फीका है। इससे मुझे जो आनन्द मिला है उसके समकक्ष आनन्द मुझे इस दुनिया की किसी भी वस्तु से प्राप्त हो सकता। इसके द्वारा जो आनन्द मिल रहा है अतुलनीय है। उसीको पाने के लिए मैं जीवित हूँ।

'अब क्या पाओगी?'

'क्या मैंने मार डाला?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९७२

'हाँ ! अब तक खतम हो गया होगा ।'

'ओह !....'

'उसकी चिन्ता छोड़ दो । अब अपनी बात सोच लो ।'

'अपने बारे में मुझे कभी कोई चिन्ता नहीं है । यदि उसकी चिन्ता होती तो मैंने इस साहसपूर्ण कार्य को अपने हाथ में नहीं लिया होता । अच्छा, यह बतलाओ कि तुम यहाँ आए क्यों हो ?'

'तुम्हारे ऊपर संदेह होने के कारण । उसे पहले तुम्हारे पास भेजकर उस पर जासूसी करने के लिए मैं आया था । हाँ, अब तुम्हारा काम पूरा हो गया । अरे ! वह कौन आ रहा है ?' बात समाप्त होने के पहले ही चारों ओर से सैनिक आ खड़े हुए । बगलवाले पेड़ के नीचे से आकर मल्लिनाथ ने आज्ञा दी "बाँध लो इसे !"

'अरे अभी तुम जिन्दा हो ?'

'हाँ ! मेरे बदले वह चला गया ।'

'सेनापति, मुझे भी बाँध लीजिए' अलका ने कहा ।

'आवश्यक है, अलका ! फिर भी सोचूँगा । लेकिन कोई फायदा नहीं होगा । व्यक्ति के नाते हम अलग हैं । हमारा सम्बन्ध अलग है । राजनीति अलग है । जिस दुष्कार्य को तुम करने के लिए आई हो वह तुम न कर सकी । फिर भी तुम राजनीति की दृष्टि से दोषी हो । यद्यपि तुम अपने कार्य को भूल गयी तथापि तुम्हारा दिया हुआ सुख, हमारा स्नेह भुलाया नहीं जा सकता । अलका तुम जाओ, अन्दर चली जाओ । मुझे सोचने दो ।'

'स्वामी ! चिन्ता मत कीजिए । राजनीति का पालन कीजिए ।'

"अलका, यदि तुमने अपने कर्तव्य को निभाया होता तो अब मेरी यह दशा न हुई होती । यह व्यथा मुझसे सही नहीं जाती । यदि कभी तुमने अपने परिचय का संकेत तक किया होता तो तुम्हें मैं इतना निकट नहीं आने देता । तुम धोखा नहीं देती, नहीं दिया, नहीं दे सकती, लेकिन दोषी हो । अलका, तुम दोषी हो—मुझे सोचने दो । जाओ । तुम्हें मैं दंड नहीं दे सकता । काश ! तुमने मेरी हत्या की होती । अलका, जाओ तुम पहले यहाँ से चली जाओ ।"

'अलका वैसे ही खड़ी रही । वह धीरे से संगमरमर के चबूतरे पर बैठ गया । अलका ने आँसुओं से सिक्त अपने कपोल उसके पैरों पर समर्पित किये । मल्लिनाथ उसे उठाकर अन्दर ले गया । उसे भवन में छोड़कर पेन्ना नदी को पार करती हुई चोल सेना का मुकाबला करने वह अपनी सेना लेकर टूट पड़ा । उसका मन उसके साथ नहीं था, फिर भी कर्तव्य ने उसके शरीर को संचालित किया ।

चोळ सेना आन्ध्र सेना से भिड़ गयी । घोर युद्ध हुआ । इस युद्ध में मल्लिनाथ की दक्षिण बाहु कट गयी । पीछे से आक्रमण करके मल्लिनाथ को अकेला करके चोळ सेना ने सिंहपुरी को अपने वश में करना चाहा । इतने में विजय शातकर्णी अपनी शेष सेना लेकर चोळ सेना पर टूट पड़ा । उसने उसे परास्त किया तथा हस्तगत कर लिया ।

विजय शातकर्णी के अपने छः वर्ष के राज्य काल में किये गये युद्धों में वह भयंकर युद्ध था । उसके पूर्व नागार्जुन द्वारा उगाए गये अंकुरों को चोळ राजाओं ने नोच डाला । तब से चोळ और आन्ध्रों के बीच युद्ध प्रारम्भ हुए । उस दिन के युद्ध में आहत वीरों के साथ मल्लिनाथ नागार्जुन कोंड पहुँच गया ।

एक क्षण भी अलग न रहकर अपलक मल्लिनाथ की सेवा करती हुई अलका को देखकर सब ने सोचा कि वह मल्लिनाथ की धर्मपत्नी है । उसकी सेवा-सुश्रूषा से प्रभावित होकर स्वयं सागरश्री ने भी ऐसा ही समझा था ।

वह एक मध्याह्न था । लूले जीवन से मरना उचित समझकर मल्लिनाथ ने आत्महत्या कर ली । यह सुनकर अलका सुन्दरी कृष्णा नदी में कूद पड़ी । उसको कृष्णा नदी में कूदते देखकर सागरश्री के शिष्यों तथा श्रमणों ने उसे बाहर निकाला और उसकी परिचर्या की । सागरश्री को ज्ञात हुआ कि अलका मल्लिनाथ की हत्या करने के लिए भेजी गयी थी । वह मल्लिनाथ की हत्या न कर सकी, किंतु उसकी मृत्यु के साथ स्वयं मृत्यु का आलिंगन करने गयी ।

होश आने पर अलका ने आँखें खोलकर दीनता से पूछा, "मैं कहाँ हूँ ? क्या अभी मैं जिंदा हूँ ?" सामने खड़े उसे देखते हुए सागरश्री ने कहा, "विरह में मर गयी हो । बेटी, यदि व्यथा को दूर कर सको तो जिंदा रह सकोगी ।"

अलका सुन्दरी ने पूछा, "मुझे क्यों जिंदा रहना चाहिए ?"

"मरने के लिए, जीवितों की सेवा करने के लिए ।"

रोती हुई उसने पूछा, "मेरे मल्लिनाथ ?"

"वह चला गया । उसका मरण तुम्हारा व्रण नहीं होना चाहिए । समझ लो जो मारा नहीं जा सकता सो मर भी नहीं सकता ।"

"मैं अब किसलिए जीऊँ ?"

"धर्म के लिए ।"

"मैं क्यों नहीं मरूँ ?"

"संघम् के लिए ।"

"मुझे असीम बाधा हो रही है ।"

"बाधा का सहन कर सकोगी तो ज्ञान प्राप्त होगा ।

"मल्लिनाथ मर गया । वह अज्ञान था । तुम ज्ञानी हो । अतः तुमने उसे बचाने का यत्न किया । बाधा का निवारण आत्मार्पण नहीं है, किंतु उसको सहना ही है ।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नवीन प्रकाशन

जीवन और सुख—लेखक, शिवानन्द। मुद्रक, मोती लाल बनारसीदास, बंगला रोड, जवाहरनगर, दिल्ली-७। मूल्य सात रुपये।

इस पुस्तक के संकलन में सभी लेख जीवन से सम्बद्ध विषयों पर लिखे गये हैं। मानसिक तनाव से मुक्ति, ध्यान-दीप, मानव में आध्यात्मिक संप्रेरणा, स्वान्तः-सुखाय गुडाकेश, राम की विनयशीलता, राम की संघर्षशीलता, अत्याचार का प्रतिरोध, धर्मयुद्ध, मानव और मानवता, अमर ज्योति महात्मा गाँधी, स्वास्थ्य प्राप्ति के सात्विक उपाय, जीवन यात्रा की परम साधना, मृत्यु महोत्सव, सुख की चाह और उसकी सच्ची राह, अनूठा बदला, सृष्टि उत्पत्ति, मानव और ईश्वर तत्त्व, व्यक्तित्व का विकास; ये १८ लेख इस पुस्तक में संगृहीत हैं। पुस्तक का तीसरा संस्करण होना अपने में ही पुस्तक के विषय में बहुत कुछ कह रहा है। पुस्तक की भाषा सुन्दर और सादी है। विषय विचारोत्पादक हैं। तरुण वर्ग के लिए पुस्तक विशेष रूप से उपयोगी है। इतने सुलझे हुए लेख देखने में कम मिलते हैं।

पुस्तक के प्रारम्भ में कोई २८ मूर्धन्य साहित्यिकों व साहित्य-प्रेमियों की समालोचना व आशीर्वाद हैं। सभी लेखकों ने इसके शास्त्रीय दृष्टिकोण, विषय-विवेचना तथा व्याख्या की प्रशंसा की है।

सीता : एक प्रश्न—लेखक, चन्द्रावती। हिन्दी एकादमी, हैदराबाद। मूल्य २ रुपये।

यह ६८ पृष्ठों का तीन अंक का नाटक है। रामकथा पढ़ते समय बहुत से प्रश्न पाठकों के मन में उठा करते हैं। सीता हरण कैसे हो गया? सीता जनक-तनया थीं। रावण उनको कैसे हर ले गया? बालि को श्रीराम ने छल कर क्यों मारा? शूर्पनखा का विद्रूप करवाना क्या श्रीराम को शोभा देता था? सीता की अग्नि-परीक्षा क्यों हुई? आदि आदि। ऐसे कई स्थल हैं जहाँ पाठकों के हृदय में शंकाएँ उठा करती हैं। इस पुस्तक में नाटकीय पटाक्षेप देकर ऐसे प्रश्नों का समाधान करने का प्रयत्न किया गया है। सीता और राम अन्तःकक्ष में हैं। दोनों चित्रों की प्रदर्शिनी देख रहे हैं। ये चित्र उन्हींके जीवन वृत्तान्त के चित्र हैं। पुत्रेष्टि यज्ञ, वन-गमन, गुरु के साथ, विवाह, वनवास आदि आदि। इस प्रकार पूरा जीवन चित्रों में अंकित है। ये चित्र देखते समय सीता राम से वे ही प्रश्न पूछती जाती हैं जिनकी शंका पाठकों के हृदय में प्रायः उठा करती है। राम उनका उत्तर सहज रीति से देते चले जाते हैं। अन्त में लक्ष्मण का उनको वन में त्यागना, श्रीराम का अश्वमेध यज्ञ करने को सीता की प्रतिमा बनवाना, वाल्मीकि आश्रम में सीता का भरण-पोषण और फिर सीता का धरती में समा जाना। इस अन्तिम दृश्य से नाटक का अन्त होता है।

'सीता : एक प्रश्न' में सीता अन्त समय में एक प्रश्न तो बनी रहती है, भले ही चित्र प्रदर्शिनी देखने के समय बहुत से उन प्रश्नों का उत्तर श्रीराम-मुख से लेखिका ने अवश्य दिलवाये हैं जो पाठकों के हृदय में उठा करते हैं।

इसमें संदेह नहीं कि अनूठे ढंग से सारी रामायण दुहरा ली जाती है। मर्यादा जो रामायण का प्रमुख अंग है, इस पुस्तक में भी बनी रहती है। पुस्तक की भाषा भी विषयानुकूल है। अपने भाव व्यक्त करने में लेखिका को बहुत सफलता मिली है।

खेद है कि पुस्तक में छपाई की बहुत अशुद्धियाँ हैं। नाटक की सफलता उसके अभिनय में सफल उतरने पर होती है। इस बात की परीक्षा इस नाटक के खेलने के पश्चात् ही हो सकती है। वैसे नाटक का खेलना सम्भव है। उसकी जटिल भाषा हलके स्तर के दर्शकों में ऊब ला सकती है।

मानसिक स्वतंत्रता की ओर—लेखक कालीदास कपूर, प्रकाशक हिन्दी साहित्य भंडार, चौपटिया रोड, लखनऊ-३, मूल्य ५ रुपये।

इस पुस्तक में पन्द्रह लेखों का चयन है। ये सभी लेख अलग-अलग भी माने जा सकते हैं परन्तु एक साथ संकलित होने के कारण इनकी एकरसता प्रकट होती है। कारण, इन सबकी पृष्ठभूमि एक प्रकार से समान है। लेख इन विषयों पर हैं—मानसिक परतंत्रता की पृष्ठभूमि, मानसिक परतंत्रता का विश्लेषण, लम्बी परतंत्रता के आर्थिक व नैतिक परिणाम, निर्धनता और नैतिकता, भोजन की समस्या, उत्पादन और वितरण, मानसिक स्वतंत्रता और नैतिकता, भारतीय संविधान में मानसिक परतंत्रता के लक्षण, शासनिक सुधार के सुझाव, गाँधी सेवा संघ, समय और निधि का सदुपयोग, श्रमदान का निदान, शिक्षा, शिक्षक और शिष्य, हिन्दी बनाम अंग्रेजी, विकेंद्रीकरण और एकता का विकास, पंचशील।

लेखों की इस सूची से ज्ञात होता है कि सभी लेख सामयिक हैं। लेखक ने बड़ी सुन्दरता से अपने विचारों को व्यक्त किया है। उन्होंने कड़ुवा घूँट भीतर रखने के बाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी कड़ुवाहट निकाली है और विचारों को श्रेणीबद्ध कर के लिखा है। सभी विचारों में गम्भीर तथ्य है। भाषा सरल और विषय स्पष्ट है।

स्वतन्त्र भारत के बढ़ते कदम—प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, पटियाला हाउस, नई दिल्ली। मूल्य २ रु०

भारत में स्वतन्त्रता पाने के पश्चात् जो कुछ हुआ है वह सब इस पुस्तक में मिल जाता है। भारत का संक्षिप्त इतिहास लेकर प्रायः प्रत्येक क्षेत्र की प्रगति व इतिहास इसमें आ जाता है। ऐसा नहीं कहा जा सकता कि यह कोरा विज्ञापन है। इस पुस्तक में भारत की प्रगति का विवरण प्राप्त होता है। योजनाओं की चर्चा है; आँकड़े हैं और सुन्दर उपयोगी चित्र हैं। इसमें सन्देह नहीं कि भारत ने कई ओर से प्रगति की है। यदि हमें प्रगति दिखती नहीं तो उसका कारण यह है कि अभी और बहुत कुछ करना शेष है। हमारा सहयोग रहे तो प्रगति वास्तव में प्रगति दिखे। विदेश नीति, गुट-निरपेक्षता, पंचशील से लेकर वन, आबादी, रेल, सड़क, कृषि सब इसमें वर्णित है। अन्तिम लेख है आज की तस्वीर। पुस्तक की छपाई सुन्दर है। भाषा सरल है और वर्णन में सरसता है। नव-युवकों के लिए पुस्तक विशेष रूप से लाभदायक है।

पुस्तक ज्ञान विज्ञान परिचय—लेखक द्वारकाप्रसाद शास्त्री, प्रकाशक साहित्य भवन, इलाहाबाद। मूल्य १५ रुपए।

'लाइब्रेरी साइन्स' हिन्दी में नया विषय है। यह अपने में ही एक पूरा विषय बन जाता है। पुस्तकालय संगठन, संचालन वर्गीकरण, पुस्तक चयन, संदर्भ सेवा और वाङ्मय सूची—इसके प्रमुख अंग हैं। अंग्रेजी भाषा में इस विषय में अनेक ग्रन्थ प्राप्त हैं; परन्तु हिन्दी में इनकी कमी है। इस प्रकार की वैज्ञानिक पुस्तकें हिन्दी में इस कमी को पूरा करती हैं।

यह पुस्तक सरल भाषा और सुबोध शैली में लिखी गयी है। यह विद्यार्थियों के लिए लिखी गयी है। इसके लिखने की रूप रेखा से ही यह प्रकट होता है। दूसरे इसके अन्त में कुछ ऐसे प्रश्नपत्र दिये गये हैं जो परीक्षाओं में आते हैं।

यह पुस्तक ३८४ पृष्ठों की है; तथा विषय के सब अंगों की परिपूर्णता से व्यक्त करती है। इसमें स्थान-स्थान पर अंग्रेजी के वैज्ञानिक शब्द प्रयुक्त हैं। उनके हिन्दी अनुवाद भी दिये गये हैं। इससे यह तो आभास मिलता है कि लेखक ने अंग्रेजी की पुस्तकों से लिया है। यह विद्यार्थी के लिए हितकर भी है कि उसको अंग्रेजी का पर्यायवाची शब्द भी ज्ञात हो जाता है।

पाठ्यक्रम विशेषांक (साहित्य परिचय)—प्रधान सम्पादक डा० रामशकल पांडे, विनोद पुस्तक मन्दिर, रांगेय राघव मार्ग, आगरा। मूल्य ५ रु०।

पुस्तक प्रारम्भ ही बारह प्रमुख भारतीय वरिष्ठ लोगों के आशीर्वाद से होती है। उसमें सर्वप्रथम्य आशीर्वाद है अपने उपराष्ट्रपति श्री गोपालस्वरूप पाठक का और बाद में केन्द्रीय मंत्री व प्रादेशिक मंत्रियों का। अनुक्रमणिका में ५३ लेखों की सूची मिलती है जो पाठ्क्रम पर लिखे गये हैं। लेख लिखनेवाले सभी विज्ञजन हैं और शिक्षा जगत् से सम्बद्ध है। यह विचार सराहनीय है कि शिक्षा जगत् के लोगों से ही यह पूछा जाय कि पाठ्यक्रम में क्या दोष है। कुछ लेख अवश्य गम्भीर है। इन लेखों से लाभ कितना उठाया जा सकेगा यह विषय राजनीति का है। हम केवल पाठ्यक्रम पर लिखे लेखों के लिए संग्रहकर्ता की सूझ की प्रशंसा कर सकते हैं।

पतिवरण (मीमांसा तथा पद्धति)—लेखक श्री पं० सुदर्शनाचार्य शास्त्री—प्रकाशक लक्ष्मीनारायण उपाध्याय वैद्य शास्त्री, अमरोहा। मूल्य एक रुपया।

यह बीस पृष्ठों की साधारण कागज पर साधारण रीति से छपी पुस्तिका है। इसके प्रारम्भ में लिखा है कि यह एक शास्त्रीय अद्भुत-क्रान्तिकारी-आविष्कार है। भारत विशाल देश है। इसके निवासी आधुनिकता और रूढ़िवाद के नाम पर कई वर्गों में विभाजित हो सकते हैं। विधवा विवाह का विचार शास्त्रीय विरोध का विषय रहा। कुछ समय यह विरोध शक्तिवान रहा। अब यह चल निकला है। अगर विरोध है तो बहुत से इस ओर ध्यान नहीं देते परन्तु हो सकता है इस विशाल देश में अभी भी कुछ वर्ग ऐसे हों जो अपने जीवन काल में मनुस्मृति का विरोध पसन्द न करते हों। यह पुस्तक उन्हीं लोगों के लिए है। लेखक का कथन है कन्या का एक बार कन्यादान होने के बाद कन्यादान पुनः पिता द्वारा नहीं हो सकता। इस कारण उन्होंने दूसरी प्रकार की पद्धति निकाली है। जिससे विधवा विवाह हो सकता है। इसी पद्धति का नाम 'पति-वरण पद्धति' है। अभिप्राय यही है कि विधवा कन्या का विवाह हो सके। किसी भी रूप से हो। परन्तु अभी शास्त्रोक्त ढंग से चलनेवाले प्राणियों का हृदय सम्भवतः पुनः कन्यादान की गवाही न भरे। इस पद्धति द्वारा वे भी बिना मानसिक क्लेश के कन्या का पुनः विवाह कर सकते हैं। इस पुस्तक की यही बहुत बड़ी उपयोगिता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनोरंजक संस्मरण

कहते हैं कि अलीगढ़ जिले में किसी मन्दिर में शिवजी की स्थापना हुई। समापन के दिन लोगों को बुलावा दिया गया। पड़ोसी होने के कारण पं० नाथूराम शर्मा 'शंकर' को भी बुलावा आया। सौजन्यवश और गाँवों के पारस्परिक व्यवहार के कारण उन्हें जाना पड़ा। कार्य-समाप्ति पर सब लोगों ने शिवजी की प्रार्थना की। 'शंकर'जी आर्य-समाजी विचारों के थे। उनसे लोगों ने कहा—आप भी शिवजी की प्रार्थना कीजिए। आशु-कवि 'शंकर' ने तुरन्त ही रचकर नीचे का सवैया प्रार्थना के रूप में सुनाया जिसमें उनका आर्यसमाजत्व पद-पद में प्रकट होता है।

शैल विशाल महीतल फोड़ बढ़े तिनको तुम तोड़ गढ़े हो।
लै लुढ़की जलधार धड़ाधड़ जे धरि गोल मटोल गढ़े हो॥
प्राण-विहीन कलेवर धारि विराजि रहे, न लिखे,न पढ़े हो।
हे जड़देव ! शिला-सुत 'शंकर' भारत पै करिकोप चढ़े हो॥

(लुढ़की = पत्थर काटने का औजार।)

× × ×

गाँववाले इसका व्यंग्य नहीं समझे। उन्हें इतने ही से संतोष हुआ कि 'शंकरजी' ने कोई 'प्रार्थना' की। पं० पद्म-सिंह शर्मा हिन्दी-संस्कृत के अतिरिक्त फारसी और उर्दू के भी अच्छे ज्ञाता थे। उन्हें 'दाग' का नीचे लिखा शेर बहुत पसन्द आया। उसे 'शंकर' जी को सुनाकर शर्मा जी ने उनसे प्रार्थना की कि इसका सुन्दर भावपूर्ण अनुवाद सुनाइये। 'शंकर'जी ने उस शेर का नीचे लिखे दोहे में भाव ही नहीं उतार दिया, अपितु दोहा शेर से बहुत आगे बढ़ गया है।

शेर

रुखे रोशन के आगे शमअ़ रखकर वह य कहते हैं।
उधर जाता है या देखें इधर परवाना आता है?

बड़े मार्के का शेर है। माशूक अपने सामने शमअ़ (दीपक) रखकर यह कहता है कि देखें पतंगा मेरे प्रभापूर्ण मुख की ओर आता है या शमअ़ की ओर जाता है। माशूक ने अपने मुख और शमअ़ की रोशनी में कौन अधिक जोरदार है, इसका निर्णय पतंगे से करवाया है। पर निर्णय नहीं हुआ कि पतंगा किधर गया। अब 'शंकर'जी के दोहे की ऊँची उड़ान देखिये—

एक ओर तेरो बदन, चन्द्र दूसरी ओर।
जाय न कितहूँ बीच ही, नाचत फिरै चकोर॥

एक ओर नायिका का प्रभा-पूर्ण चन्द्रमुख है, दूसरी ओर चन्द्रमा है। इन दोनों के बीच चकोर नाच रही है। वह यह निर्णय नहीं कर पाती कि असली चन्द्र कौन है क्योंकि दोनों की आभा समान है। शेर में माशूक (पुल्लिंग) है, दोहे में नायिका है। शेर में पतंगा है, दोहे में चकोर है। शेर में शमअ़ है, दोहे में साक्षात् चन्द्र विराजमान है। पाठक स्वयं निर्णय करें कि शेर और दोहे के भावों में कितना अन्तर है? पर यह भी ध्यान रहे कि दोहे के भाव का आधार शेर ही है।

प्रकाशक—रा० वि० मिश्र, इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद
मुद्रक—पी० एल० मादन, इंडियन प्रेस प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती हीरक जयंती विशेषांक

१९०० ई० से १९५९ ई० तक सरस्वती में प्रकाशित हिन्दी के यशस्वी कवियों, कहानीकारों तथा लेखकों की चुनी हुई रचनाओं का संग्रह इस हीरक जयन्ती अंक में है। यह विशेषांक हीरक जयन्ती के अवसर पर २१ दिसंबर १९६१ को भारतीय गणतंत्र के प्रथम राष्ट्रपति को राष्ट्रपति भवन, नयी दिल्ली में समर्पित किया गया।

इस हीरक जयन्ती अंक में ८०८ + ५४ पृष्ठों की अनुपम पाठ्यसामग्री है जिसमें ५४ पृष्ठों में तो वर्तमान साहित्यकारों द्वारा लिखे संदेश और सरस्वती के इतिहास सम्बन्धी संस्मरण हैं और ८०८ पृष्ठों में १०९ कवियों की कविताएँ, ६० कहानी-लेखकों की कहानियाँ तथा १०० शीर्ष स्थानीय लेखकों के लेख सम्मिलित हैं। इसके अतिरिक्त ६५ रंगीन कलात्मक चित्र भी दिये हैं।

मूल्य—साधारण संस्करण—१६ रु०—डाक व्यय—२·१० पैसे

पुस्तकालय संस्करण (बढ़िया कागज पर सजिल्द)—३० रु०—डाक व्यय—२·७० पैसे

[दो साल के लिए सरस्वती के नये ग्राहक बनने वालों या पुराने ग्राहकों को—

साधारण संस्करण—१२ रु०, डाक व्यय के लिए २·१० पैसे अतिरिक्त]

माननीय श्री श्रीमन्नारायण (भारतीय राजदूत, नेपाल)

"यह अंक सचमुच बहुत उपयोगी सामग्री से परिपूर्ण है। सरस्वती के द्वारा हिन्दी साहित्य की जो अपूर्व सेवा हुई है उसकी झलक इस अंक द्वारा मिलती है।"

पद्मभूषण श्री सुमित्रानन्दन पंत

निःसंदेह यह एक अमूल्य उपलब्धि—हिन्दी ही नहीं—समस्त भारतीय साहित्यों के लिए है। यह अंक साहित्य-प्रेमियों के पुस्तकालयों में तो रहना ही चाहिए, इसे समस्त प्रादेशिक तथा केन्द्रीय सरकार के अंतर्गत ग्रंथालयों में भी—सांस्कृतिक मणियों से जटित हमारी भाषा के ऐतिहासिक विकास के सर्वोच्च गौरव मुकुट की तरह—सुशोभित रहना चाहिये।

श्री रघुवंशलाल गुप्त, आई० सी० एस० (अवकाशप्राप्त)

विशेषांक धीरे-धीरे पढ़ रहा हूँ। हिन्दी कविता, कहानी, लेख आदि के विकास की फिल्म की तरह है। कदम बकदम पूरी प्रगति की तस्वीर है। यह विशेषांक हिन्दी साहित्यप्रेमियों और हिन्दी साहित्यसेवियों के लिए अनमोल निधि है।

सरस्वती हीरक जयंती विशेषांक का परिशिष्टांक

पृष्ठ-संख्या ७८, मूल्य दो रुपये

इस परिशिष्टांक में दिल्ली में महामहिम राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद को सरस्वती का विशेषांक भेंट करने के समारोह से प्रारंभ कर प्रयाग में अनुष्ठित समारोह में सरस्वती के प्रतिष्ठित कतिपय लेखकों, विद्वानों और साहित्यकारों आदि के भाषण पठनीय हैं। साथ ही अनेक बहुरंगे और उत्सव के दृश्यों तथा व्यक्तियों के सुन्दर चित्र भी दिये गये हैं।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Yearly Subscription : Rs. 9.00 July 1973 SARASWATI—Reg. No. L. 248
Single Copy : Rs. 0.75

प्रत्येक का मूल्य १·५०

मोहन सिरीज का प्रत्येक उपन्यास स्वतः पूर्ण है। किसी भी उपन्यास को पढ़ते-पढ़ते आप आनन्द, आश्चर्य और रोमांच से अभिभूत हो जायेंगे।

१—मोहन।
२—मोहन जेल में।
३—रमा और मोहन।
४—रमा की शादी।
५—फिर से मोहन।
६—विरही मोहन।
७—मोहन और पंचमवाहिनी।
८—फांसी के तख्ते पर मोहन।
९—नागरिक मोहन।
१०—मोहन बर्मा की सीमा पर।
११—नारी-रक्षक मोहन।
१२—मोहन का प्रथम अभियान।
१३—नेता मोहन।
१४—मोहन का जर्मनी अभियान।

मोहन को ही नायक बनाकर इस सीरीज के सब मनोरंजक रोमांचकारी उपन्यास लिखे गये हैं। ऐसे अद्भुत चरित-चित्रणों तथा स्तब्धकारी घटनावलियों से परिपूर्ण अन्य उपन्यासमालायें कहीं नहीं मिलेंगी।

१५—प्रिय मोहन।
१६—गेस्टापो के मुकाबले में मोहन।
१७—बर्लिन में मोहन।
१८—मोहन का तूर्यनाद।
१९—मोहन का अनुराग।
२०—मित्र मोहन।
२१—मोहन और स्वप्न।
२२—स्वप्न का महान्-दमन।
२३—अफसर मोहन।
२४—डाकू मोहन।
२५—स्वप्न का नीलान्त धैर्य।
२६—मोहन का प्रतिवाद।
२७—नये रूप में मोहन।
२८—मोहन का नया अभियान।
२९—त्राता मोहन।
३०—मोहन का प्रतिशोध।
३१—जर्मन षड्यंत्र में मोहन।
३२—मोहन और अणुबम।
३३—मोहन के तीन शत्रु।
३४—तीनों के साथ मोहन का मुकाबला।
३५—सोविय[illegible] में मोहन।
३६—मोहन की प्रतिज्ञा रक्षा।
३७—सुन्दर रूप में मोहन।
३८—युवक मोहन।
३९—मोहन और वनविहारी।
४०—समुद्र-तल में मोहन।
४१—बन्दी मोहन।
४२—नारी त्राता स्वप्न।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतवर्ष

प्राचीनतम हिन्दी मासिक पत्रिका
(संस्थापित सन् १९००)
सितम्बर १९७३

पुस्तकालय
30-10-63

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे प्रकाशित नवीनतम उपन्यास

प्रान्तिक

श्रीयुत ताराशंकर वन्द्योपाध्याय

जीवन-संग्राम में लांछिता नायिका बृहत्तर जीवन की खोज में जाना चाहती है। इस शंकाकुल मार्ग में उसकी भेंट नायक से होती है जिसने सहायता के लिए हाथ बढ़ा दिया। इसी ताने बाने में प्रान्तिक प्रस्तुत है जो सर्वथा पठनीय है। नयन मनोहर आवरण पृष्ठ। पौने तीन सौ से अधिक पृष्ठों के सजिल्द उपन्यास का मूल्य केवल चार रुपये।

पुनर्जन्म

लेखक : हरिदत्त दुबे

उपन्यास साहित्य में दुबेजी का एक स्थान बन गया है। यह धारा-प्रवाह भाषा में लिखी गयी पुस्तक पाठकों की अनेक उलझी समस्याओं को सुलझाकर एक नया मार्ग प्रशस्त करनेवाली है। भाषा लालित्य, सरस कहानी और उत्तम शैली ने इस पुस्तक को ख्याति देने में बड़ी सहायता की है। नवीन उत्साह को जन्म दिया है। पुस्तक पठनीय है। मू० चार रुपये।

संकट

श्रीयुत हरिदत्त दुबे एम० ए०

लेखक ने बड़ी सुन्दरता से एक मध्यवित्त घर की कुमारी मनोरमा के विवाह समस्या में एक सम्पन्न परिवार के युवक किशोर तथा साधारण श्रेणी के मेधावी छात्र मनोहर को केन्द्रित करके ऐसे मनोवैज्ञानिक चरित्र की सृष्टि की है कि पाठक को मुग्ध हो जाना पड़ता है। सजिल्द प्रति का मूल्य चार रुपये।

ठाकुरद्वारा

श्रीयुत हरिदत्त दुबे

सुखी परिवार अपनी सम्पन्नता का उपयोग समाज के हित में किस सुन्दरता से करता है इसका चित्रण इसमें देखिए। मूल्य चार रुपये।

अभागिनी अन्ना (दो भाग)

अनुवादक : रुद्रनारायण अग्रवाल

लिओ टाल्सटाय का प्रसिद्ध उपन्यास अन्ना केरेनिना दो भागों में। प्रथम भाग पृ० २२४ मू० तीन रुपये। द्वितीय भाग पृ० १७६, मूल्य तीन रुपये।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाठकों से निवेदन

'सरस्वती' हिन्दी की प्राचीनतम सर्वश्रेष्ठ मासिक पत्रिका वर्ष १९०० से हिन्दी साहित्य के क्षेत्र को निरंतर आलोकित करती आ रही है। आज के बड़े-बड़े कवि और लेखक इसी प्रसिद्ध पत्रिका की देन हैं। 'सरस्वती' में प्रतिमास सामयिक, सामाजिक, राजनीतिक और अन्तर्राष्ट्रीय विषयों पर चुने हुए लेख, सरस कविताएँ और सुरुचिपूर्ण कहानियाँ रहती हैं।

इस घोर मँहगी में जब कि छपाई सम्बन्धी प्रत्येक वस्तुओं का दाम तिगुना हो गया है और मजदूरी सीमा के ऊपर बढ़ गई है सरस्वती के वार्षिक चन्दे की दर बीसों वर्ष से पुरानी ही रही है। जब कि इसके जोड़ की अन्य पत्रिकायें या तो बन्द हो गई हैं या मूल्यों में दुगनी वृद्धि कर दी गई है।

हमें इच्छा न रहते हुए भी पत्रिका को कायम रखने के लिए जनवरी ७३ से इसके वार्षिक मूल्य में थोड़ी वृद्धि करनी पड़ रही है। जनवरी ७३ से पत्रिका का वार्षिक मूल्य ९ रु०, एक प्रति का मूल्य ७५ पै० किया जा रहा है।

आशा है, हमारे प्रिय पाठक इसे पहिले ही की भाँति अपनाकर हमें इसके प्रकाशन को सुचारु रूप से कायम रखने के लिए अपना पूर्ण सहयोग देंगे।

व्यवस्थापक—

इण्डियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्रा० लि०, इलाहाबाद

...द्र बादाम रोगन पर बना

अलकपरी

...में प्रतिमास ३-४ इंच वृद्धि।
...महीने में एड़ी-चुम्बी केश।

'अलकपरी' का कोर्स

...सप्ताह में रूसी-खुश्की दूर हो ...है। दूसरे सप्ताह में केशों ...ड़ना और उनके सिरों का ...फटना रुकता है।

...सप्ताह में नये केश उगते ...देते हैं। चौथे सप्ताह के ...क केश ३-४ इंच बढ़ जाते ...र प्रतिमास इसी औसत से ...बढ़ते रहते हैं।

...ीने में केश एड़ी-चुम्बी ...बन जाते हैं।

...क शीशी का ४०० है जो ...ने को काफी होती है। ...व पैकिंग पृथक्। ४ ...शीशियाँ डाक से नहीं ...गी। अधिक के लिए मूल्य ...ए।

इस सुधासिन्धु में ...मय कहाँ कि नरदेह ...के क्षण भी बचा ...रत्नों को एक जगह ...र स्फुट पद अलग-

...के अन्य छोटे-

...सुमन रत्नावली में है, उपदेशक, विद्वान् ...साधारण जन सबके लिए यह संकलन उपादेय है।

संकलनकर्ता—श्री केदारनाथ गुप्त, एम० ए०

मूल्य २·०० रुपये

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन-संग्राम में
में उसकी भेंट नायक से
प्रस्तुत है जो सर्वथा पठ
उपन्यास का मूल्य केवल

उपन्यास साहि
पुस्तक पाठकों की अ
लालित्य, सरस कहा
उत्साह को जन्म दिय

लेखक ने ब
परिवार के युवक
चरित्र की सृष्टि क

सुखी परि
चित्रण इसमें देखि

लिओ ट
रुपये। द्वितीय भाग पृ० १७६, मूल्य तीन रुपये।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिन शहरों में स्टाकिस्ट नहीं हैं वहाँ के हेतु स्टाकिस्ट चाहिए।

शुद्ध बादाम रोगन पर बना

अलकपरी

केशों में प्रतिमास ३-४ इंच वृद्धि। ६ महीने में एड़ी-चुम्बी केश।

'अलकपरी' का कोर्स

पहले सप्ताह में रूसी-खुश्की दूर हो जाती है। दूसरे सप्ताह में केशों का झड़ना और उनके सिरों का फटना रुकता है।

तीसरे सप्ताह में नये केश उगते दिखाई देते हैं। चौथे सप्ताह के अन्त तक केश ३-४ इंच बढ़ जाते हैं। फिर प्रतिमास इसी औसत से बढ़ते रहते हैं।

६ महीने में केश एड़ी-चुम्बी बन जाते हैं।

मूल्य एक शीशी का ४.०० है जो एक महीने को काफी होती है। डाक-खर्च व पैकिंग पृथक्। ४ से अधिक शीशियाँ डाक से नहीं भेजी जायेंगी। अधिक के लिए मूल्य पेशगी भेजिए।

इतना तो आप जानते ही हैं कि—

तुलसी साहित्य अमृत का सागर है। भारतीय साहित्य की अमर निधि है। इस सुधासिन्धु में अमूल्य रत्न भरे पड़े हैं। पर आज आपाधापी के इस व्यस्त युग में लोगों के पास इतना समय कहाँ कि नरदेह को सार्थक बनानेवाले वृहत् तुलसी साहित्य सागर में डुबकियाँ लगाकर इन रत्नों को खोजने के क्षण भी बचा पायें। चिन्ताओं के बोझ को उतार पायें। विद्वान् संकलनकर्ता ने बड़े परिश्रम से इन रत्नों को एक जगह इकट्ठा किया और गागर में सागर की उक्ति चरितार्थ की। उपयुक्त शीर्षक दिये। सूक्तियाँ और स्फुट पद अलग-अलग दिये और पुस्तक को सार्थक नाम दिया—

तुलसी रत्नावली

रामायण, विनयपत्रिका, कवितावली, गीतावली, वैराग्य सन्दीपनी, दोहावली अथवा गोस्वामीजी के अन्य छोटे-बड़े सभी ग्रन्थों में जहाँ जो रोचक, उपदेशपूर्ण पद मिले उन सबका चयन तुलसी रत्नावली में है, उपदेशक, विद्वान् या साधारण जन सबके लिए यह संकलन उपादेय है।

संकलनकर्ता—**श्री केदारनाथ गुप्त, एम० ए०** **मूल्य २.०० रुपये**

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाभारत का पूरा सेट फिर से प्राप्त कीजिए

महर्षि वेदव्यास की विशद कृति

महाभारत को पाँचवाँ वेद कहते हैं। इस ग्रन्थ में महर्षि वेदव्यास ने अनेक शास्त्रों का वर्णन करके जीवनक्रम की सुलभ रीति बतलाई है। इसमें तीर्थों और व्रतों का वर्णन है, पुण्य पुरुषों की चरितावली है, ऋषियों के उपदेश हैं, सुन्दर उपाख्यान हैं और धर्म पर स्थिर रहकर उन्नति करने का मार्ग बतलाया गया है। यह ग्रन्थ १० खण्डों में समाप्त हुआ है। रंगीन और सादे चित्रों की अधिकता है। बढ़िया जिल्द है।

१० खण्डों के पूरे सेट का मूल्य २५०·०० रुपये।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ ओम् दुर्गा दुर्गतिनाशिनी ॥ ॥ ओम् दुर्गा दुर्गतिनाशिनी ॥

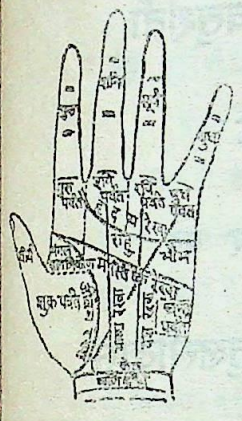

जीवन की विभिन्न जटिल समस्याओं के समाधान के लिए मिलिये या पत्र-व्यवहार करिये

ज्योतिषाचार्य—

प्रोफेसर प्रद्युम्ननारायण सिंह

वैज्ञानिक ज्योतिषी, हस्तरेखा-विशारद,

तांत्रिक और मानस शास्त्रज्ञ

२८, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद (फोन नं० २८५८)

देखिये :—श्री आर० के० नेहरू, आई० सी० एस०, एम्बेसडर आफ इंडिया पेकिंग, चीन क्या कहते हैं :—

ज्योतिषाचार्य प्रो० पी० एन० सिंह जी को यह पत्र देते हुए मुझे बड़ी प्रसन्नता हो रही है। यह कहना उपयुक्त न होगा कि ज्योतिष शास्त्र में मेरा ज्ञान बहुत अधिक है परन्तु मुझे इसमें किंचित्मात्र भी संदेह नहीं है कि यह विषय एक बहुत ही उच्च-स्तरीय विज्ञान का है। मुझे यह सर्वदा भास बना रहा है कि ज्योतिष में अधिक पढ़ने से मनुष्य के जीवन-विकास में गिरावट होती है। इस विचारधारा के होते हुए भी मेरे मित्रों ने मुझे ज्योतिषाचार्य श्री सिंह जी के पास अपनी कुंडली दिखाने का अनुरोध किया। उनके कतिपय भविष्य-फल इतने सत्य हुए कि मुझे आश्चर्यचकित रह जाना पड़ा। मुझे यह मानना ही पड़ता है कि उन्होंने इस विज्ञान का पूर्ण रूप से अध्ययन किया है और वे इस विषय के प्रगाढ़ पण्डित हैं। अतः जिन महानुभावों को इस विद्या में रुचि हो, मैं उनसे अनुरोध करूंगा कि वे उनसे अपनी कुंडली दिखाकर अवश्य लाभ उठावें।

दो रहस्य भरी पुस्तकें

अधूरा आविष्कार

इस संग्रह में डाक्टर नवलबिहारी मिश्र बी० एस्-सी०, एम० बी० बी० एस्० की लिखी एक से एक बढ़ कर १० कहानियां हैं। पहली कहानी के नाम पर संग्रह का नाम रक्खा गया है। प्रसिद्ध मनीषी डा० सम्पूर्णानन्द जी ने इसे नई धारा कहा है। इन कहानियों में आदि से अन्त तक आकर्षण शक्ति है। भाषा सरल और सुन्दर है। छोटे टाइपों में सुन्दरता से छापी गई डेढ़ सौ से अधिक पृष्ठों की सजिल्द पुस्तक।

मूल्य—चार रुपये पचास पैसे

अदृश्य शत्रु

डा० नवलबिहारी मिश्र की ये रहस्यभरी नई धारा की कहानियां, वैज्ञानिकों को चक्कर में डालने वाले अद्भुत बयान, पाठकों के सामने एक नयी समस्या उत्पन्न करते हैं। धरती के छिपे शत्रु किस गृह-नक्षत्र से कैसे कैसे धावे मारते हैं यह समझने के लिए इस पुस्तक की रचना हुई है। सन् १९५९ के फरवरी महीने में ईरान में अद्भुत दो विचित्र यान उतरे और हँसी खुशी के बीच ही ३०० बच्चों को लेकर उड़ गये। ये कालेज के विद्यार्थी थे। लड़कियां और लड़के दोनों। सनसनी पैदा करनेवाली इसी दुखद घटना से पुस्तक प्रारंभ होती है। उपन्यास से भी रोचक ये कहानियां १६ होते हुए भी आपस में सम्बद्ध हैं।

मूल्य—एक रुपया पचास पैसे

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

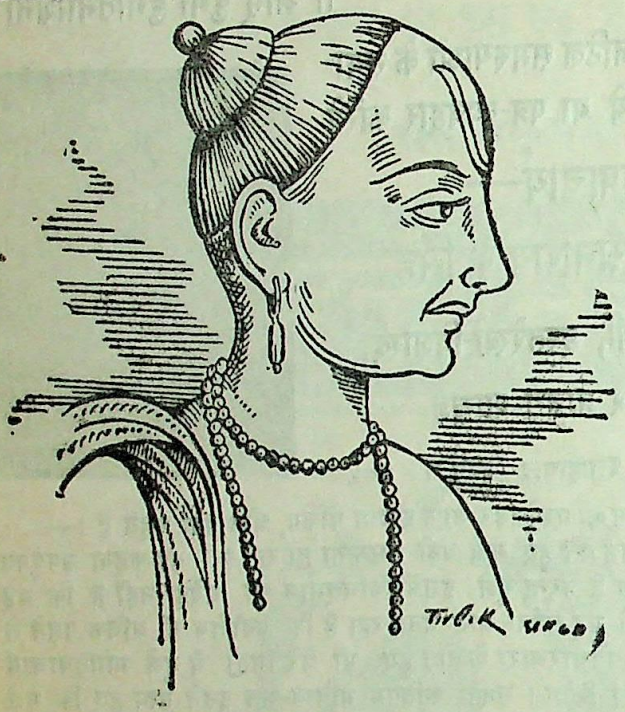

मानस-चतुर्शती

के

अवसर पर

गोस्वामी तुलसीदास

के

जीवन पर आधारित

प्रथम महान् औपन्यासिक कृति

सन्त और संसार

लेखिका

शारदा मिश्र

मूल्य १० रुपये

आज ही

मँगाकर

पढ़िए

हिन्दी साहित्य के इतिहास का गौरवशाली प्रतीक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे धार्मिक साहित्य

● ज्ञानेश्वरी

गीता इस संसार के कंटकाकीर्ण अँधेरे मार्ग का सबसे तेजस्वी प्रकाश-स्तंभ है। बड़े-बड़े विद्वानों की बुद्धि जितनी गहराई में उतर सकी अपनी-अपनी प्रतिभा के अनुसार सभी ने गीता की चमत्कारी टीकाएँ कीं। यद्यपि अनुवादों की अजस्र धारा आज भी रुकी नहीं, मगर संत ज्ञानेश्वर की विचित्र व्याख्या हृदय को जो आनन्द देती है वह बात दूसरी टीकाओं, व्याख्याओं में उपलब्ध नहीं। संत की पावन-वाणी मराठी से हिन्दी में अनुवाद ही ज्ञानेश्वरी के नाम से विख्यात है। बड़े-बड़े अक्षरों में मूल संस्कृत श्लोक और सामान्य अक्षरों में व्याख्या बड़ी ही हृदयग्राही है। मूल्य ८ रुपये।

● ● ●

● दुर्गापाठ

सब रूपों में लय हैं दुर्गा सारा जग दुर्गा में लीन।
विश्वरूपिणी नमस्कार हो, परम ईश्वरी मैं आधीन॥

जगदम्बा दुर्गा इस युग की जाग्रत देवी हैं। माँ का उपासक कभी दुखी नहीं रह सकता। दुर्गापाठ के नाम से ७०० संस्कृत मन्त्रों का यह पद्यबद्ध हिन्दी अनुवाद हिन्दी जाननेवालों, विशेषतयः स्त्री समाज में इतना लोकप्रिय हुआ कि पाँचवाँ संस्करण भी प्रायः समाप्त होने पर है। संस्कृत मन्त्र व हिन्दी पद्य दोनों साथ-साथ छापे गये हैं। मातृका स्तुति, सप्तसती पाठ विधि, देवी कवच, अर्गला स्तोत्र, कीलक स्तोत्र, तीनों चरित्र तथा तीनों रहस्य सभी कुछ इसमें हैं। माँ दुर्गा के अनन्य उपासक अनुवादक राय साहब राधामोहन लाल व संशोधक जस्टिस हरिश्चन्द्र बार० एट् ला दोनों रिटायर्ड जजों का सारा प्रयास स्तुत्य है। सजिल्द, सचित्र, सुन्दर बड़े अक्षरों में छपी पुस्तक का प्रचारार्थ मूल्य ३ रुपये मात्र।

● ● ●

● श्रीमद्भागवत

श्रीमद्भागवत में भगवान् कृष्ण की चमत्कारी लीलाओं, प्राचीन राजवंशों, ऋषि-महर्षियों की गौरव गाथाओं और तात्कालिक भारत की सामाजिक दशा के साथ-साथ ज्ञान की पावन धारा बहाने का जो भगीरथ प्रयास वेदव्यासजी ने किया उसका गुणगान राजमहल से लेकर झोपड़ी तक समान रूप से होता है। हिन्दी पाठकों की सुलभता के लिए यह पुराण हिन्दी में २ खण्डों में छपकर प्रकाशित हुआ है। जिल्द बढ़िया, चित्रों की भरमार ग्रन्थ की विशेषता है। प्रत्येक खण्ड का मूल्य १० रुपये।

● ● ●

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश

डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, काशी नागरीप्रचारिणी सभा—'हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश को मैं जितना देख सका हूँ, उससे मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि हिन्दी के दो-तीन उत्कृष्ट कोशों में से एक यह भी निस्सन्देह है।.....'

डॉ० रामकुमार वर्मा, भू०पू० अध्यक्ष हिन्दी विभाग प्रयाग विश्वविद्यालय—'हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश का उपयोग मैंने सफल रूप से किया है। मैं इसके देश-व्यापी प्रचार की कामना करता हूँ।.....'

हिन्दी के प्रतिष्ठित विद्वानों की सहायता से सम्पादित और श्री विश्वेश्वरनारायण श्रीवास्तव एम० ए०, एल्-एल० बी०, साहित्यरत्न तथा पं० देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त' द्वारा संकलित यह हिन्दी राष्ट्रभाषा-कोश हमारा नवीनतम और सर्वोपयोगी प्रकाशन है।

इस कोश का कागज, मुद्रण, आवरण, जिल्द सभी स्थायी और आकर्षक हैं। इसकी शब्द संख्या लगभग पचास हजार, पृष्ठ-संख्या लगभग १६०० और इसका मूल्य १६ रुपये है।

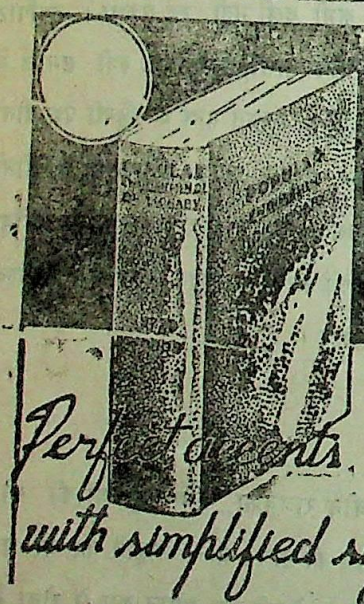

पापुलर इंग्लिश हिन्दी डिक्शनरी

सजिल्द प्रति का मूल्य ६) रुपये

हिन्दी, अंगरेजी की अगणित डिक्शनरियों के आधार पर निर्मित इस डिक्शनरी की प्रामाणिकता और लोकप्रियता का यही सबसे बड़ा प्रमाण है कि इसके अनेक संस्करण हाथोंहाथ बिक चुके हैं। इस डिक्शनरी में अँगरेजी शब्दों के शब्दार्थ अँगरेजी और हिन्दी दोनों भाषाओं में दिये गये हैं। इस कारण यह डिक्शनरी न केवल अँगरेजी से अँगरेजी में शब्दार्थ जाननेवालों के लिए, प्रत्युत अँगरेजी से हिन्दी में शब्दार्थ जाननेवालों के लिए भी बड़ी उपयोगी है। छात्रों के लिए इस डिक्शनरी की उपयोगिता अपरिहार्य है। प्रायः सभी उपयोगी शब्द और मुहाविरे इसमें संकलित किये गये हैं। पृष्ठ पौने नौ सौ।

प्रकाशक—इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छोटे बच्चों के प्यारे कवि निरंकार देव 'सेवक' द्वारा लिखित

कुछ अपूर्व प्रकाशन

श्री शंकरसहाय सक्सेना डाइरेक्टर शिक्षा-विभाग, राजस्थान कहते हैं :—

"यह बालगीत बच्चों के लिए अत्यन्त सुन्दर और उपयोगी हैं। लेखक ने इन्हें लिखकर हिन्दी में बाल-साहित्य को धनी बनाया है। यह पुस्तकें प्रत्येक घर में जहाँ बालक-बालिकाएँ हों, रहना ही चाहिए।"

रिमझिम--रिमझिम में निरंकारजी के वह अनमोल बालगीत संग्रहीत हैं जिन्हें बच्चे बहुत पसन्द करते हैं। सभी कवितायें मीठी-मीठी और सुन्दर हैं। मू० २·५० रुपये।

फूलों के गीत—बच्चे यदि बगिया में खिले नये-नये फूल हैं तो इस पुस्तक के बालगीत उनके मन के गीत हैं। इन गीतों को पढ़कर एक बार वे मस्ती में झूम उठेंगे। उनके मन उत्साह, उमंगों से भर जायेंगे। मू० २·०० रुपये।

दूध जलेबी--बहुत छोटी आयु के बच्चों के लिए यह अनुपम और बेजोड़ पुस्तक है। इसकी छोटी-छोटी सुन्दर कवितायें बच्चे पढ़ते ही याद कर लेते हैं। मू० १·७५ रुपये।

पंचतन्त्री—पंचतन्त्र की जिन कहानियों में ज्ञान और उपदेश की बातें कूट-कूटकर भरी हैं वह कविता में इस ढंग से कही गई हैं कि बालक एक बार प्रारम्भ करके पूरी पुस्तक बिना समाप्त किये नहीं छोड़ सकता। मू० ३·०० रुपये।

मुन्ना के गीत—बच्चों के सोने-जगने, खेलने-कूदने, उठने-बैठने, खाने-पीने, दौड़ने-भागने, चलने-फिरने, पढ़ने-लिखने के ऐसे रसमय बालगीत सूरदास के बाद पहिली बार हिन्दी में लिखे गये हैं। मू० ३·०० रुपये।

धूप छाया—बच्चों की भिन्न-भिन्न क्रीड़ाओं से सम्बन्धित इतने मनोहर और मीठे गीत इस पुस्तक में संग्रहीत हैं कि बच्चे इन्हें पढ़कर खुशी से झूम-झूम उठते हैं। मू० १·७५ रुपये।

माखन मिसरी---इस पुस्तक का प्रत्येक बालगीत मिसरी की तरह मीठा और मक्खन की तरह कोमल है। बच्चे इसे पढ़ते ही गले से उतार लेंगे। छोटी आयु के बच्चों को यह कवितायें बहुत प्यारी लगती हैं। मू० २·२५ रुपये।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
१—सम्पादकीय	१६९
२—अभिनवगुप्त : एक परिचय—डॉ० रामलखन शुक्ल	१७७
३—हिन्दी में इंजीनियरी साहित्य—एक अवकाश-प्राप्त इंजीनियर	१८०
४—निराशा—श्री मगन अवस्थी	१८१
५—फिलीपीन में रामकथा का रूपान्तर—श्री बाबूराम वर्मा	१८२
६—प्राकृत का महत्त्व—श्री विश्वनाथ पाठक	१८४
७—पं० ध्यानदास की स्मृति में—श्री भगवती-प्रसाद लडिया	१८७
८—वह क्या था ?—विद्वान् श्री के० नारायणन्	१८९
९—सर्कस : राष्ट्र-जीवन की एक विशिष्ट आवश्यकता—डॉ० स्वर्णकिरण	१९३
१०—वह मिनिस्टर था—श्री श्रीकान्त चौधरी	१९५
११—वर्षा की यह बूँदें—श्री जगपति चतुर्वेदी	१९७
१२—हिन्दी साहित्य सम्मेलन की वर्तमान दुरवस्था—पं० कन्हैयालाल मिश्र	२००
१३—नवगीत एक छोटे शहर का—श्री कृष्ण कमलेश	२०५
१४—माइकेल मधुसूदन दत्त : एक प्रसंग—अनु०—श्री ओमप्रकाश	२०६
१५—भोज चरित्र का रचनाकाल—श्री अगरचन्द नाहटा	२०८
१६—अर्जुन—श्री गणपति शंकर	२११
१७—श्री आदिनाथ-स्तोत्र—श्री राजेन्द्रप्रसाद जैन	२१४
१८—मैं डाक्टर से लेखक बना—अनु०—श्री मोहन शर्मा	२१६
१९—औवैयार—श्री वे० रंगराजन	२१८
२०—बाहर है संकट कि भीतरी उथल-पुथल है—श्री स्वर्णकिरण	२२०
२१—कन्नड़ भक्ति-कवि—श्री कनकदास—श्री एस० केशवमूर्ति, एम० ए०, साहित्यरत्न	२२१
२२—उठो उलीचो नई रोशनी—श्री रामबाबू सेंगर 'पथिक'	२२५
२३—स्वर्गदूत—श्री निरंकुश	२२६
२४—सम्पादक का निवेदन—श्री राजेन्द्रप्रसाद जैन	२२९
२५—जिजीविषा—श्री शीतांशु भारद्वाज	२३०
२६—नवीन प्रकाशन	२३४
२७—मनोरंजक संस्मरण	२३७
२८—१९२२ की सरस्वती—रामावतार—श्री रामचरित उपाध्याय	२३८

© सरस्वती के इस अंक में प्रकाशित सभी लेख सर्वाधिकार सुरक्षित हैं।

मनोरंजक संस्मरण

प्राचीन और आधुनिक हिन्दी कवियों और साहित्यकारों के कुछ फुटकर संस्मरण

लेखक

सरस्वती—सम्पादक पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी

सरस्वती में प्रतिमास लिखकर इन संस्मरणों के प्रकाशित होने लगने पर एक बार स्वर्गीय बाबू शिवपूजन सहायजी ने सरस्वती-सम्पादक से कहा था कि वे सबसे पहले "मनोरंजक संस्मरण" ही पढ़ते हैं। इसी प्रकार अन्य साहित्यिकों ने भी उनकी प्रशंसा की थी। सामान्य पाठकों में भी वे लोकप्रिय हुए थे।

इस पुस्तक में सरस्वती-सम्पादक की सिद्धहस्त लेखनी से लिखे हुए साहित्यिक संस्मरण हैं जो उनके, सरस्वती-सम्पादक के, दस वर्ष की अवधि में जुलाई १९५५ से जून १९६५ तक 'सरस्वती' में प्रायः प्रति मास प्रकाशित होते रहे हैं।

वे ही साहित्यिक संस्मरण साहित्यिकों और पाठकों के निरन्तर अनुरोध पर इस पुस्तक रूप में प्रकाशित हुए हैं। इनसे हिन्दी पाठकों का स्वस्थ मनोरंजन होगा और उन्हें हिन्दी साहित्य तथा हिन्दी कवियों और साहित्यकारों के व्यक्तित्व को समझने में सहायता मिलेगी।

पृ० सं० (डिमाई) २९०, सजिल्द, मूल्य ५·०० रुपये

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

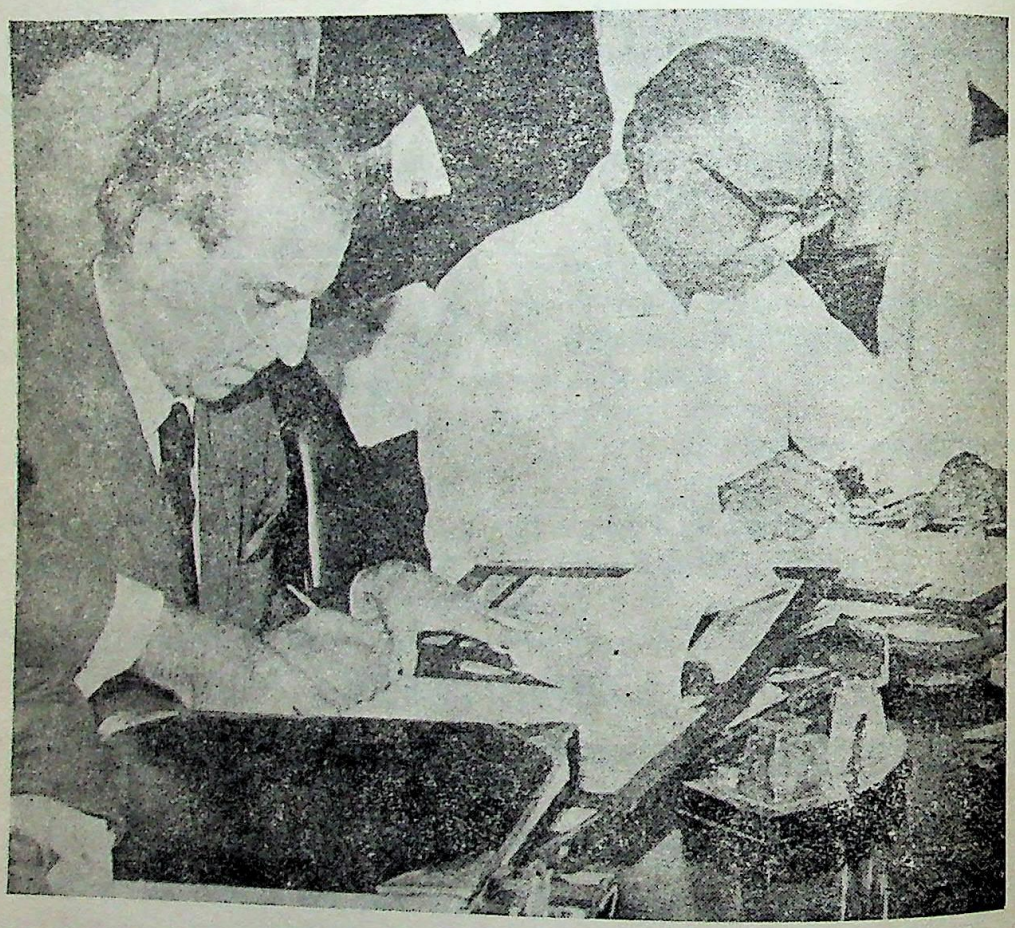

दिल्ली में युद्धबंदियों, पाकिस्तान में फँसे बँगलादेशीयों और बाँगला देश में पाकिस्तानी 'बिहारी' मुसलमानों की अदला-बदली के समझौते पर पाकिस्तान की ओर से श्री अज़ीज़ अहमद (बाएँ) और भारत की ओर से श्री पी० एन० हक्सर ने हस्ताक्षर किये ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

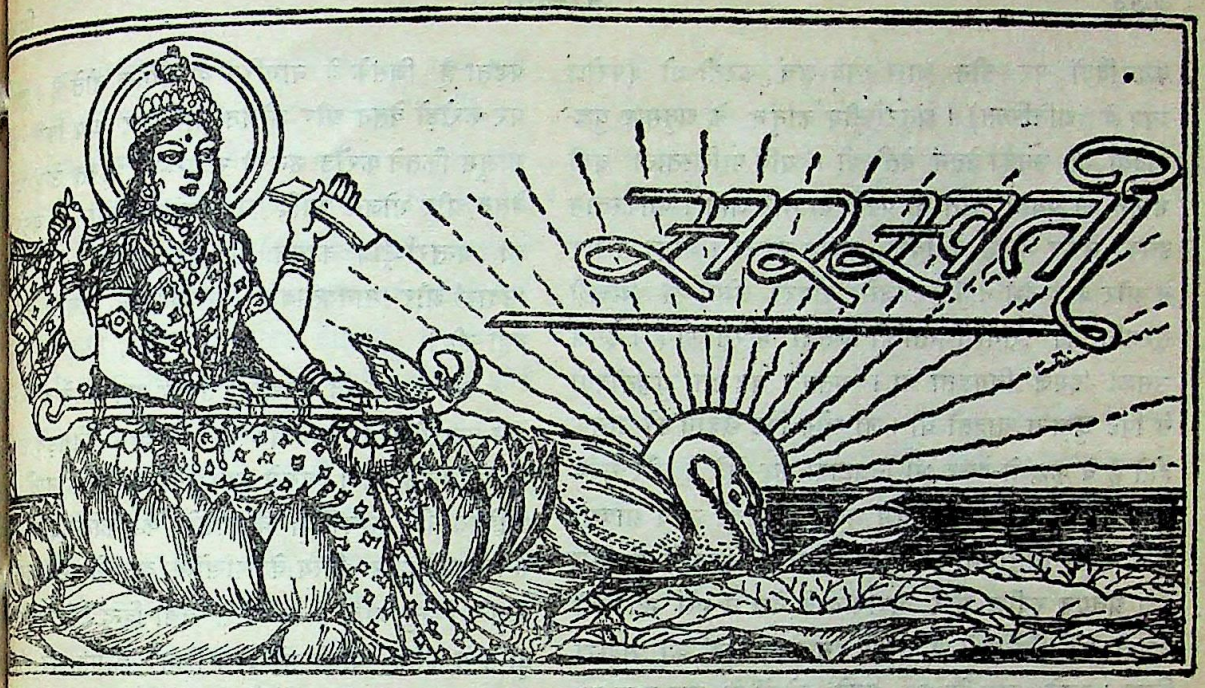

सम्पादक

श्रीनारायण चतुर्वेदी

सहायक सम्पादिका—शीला शर्मा

वर्ष ७४ पूर्ण संख्या ८८५ | इलाहाबाद : सितम्बर १९७३ : आश्विन २०३० वि० | खण्ड २ संख्या ३

सम्पादकीय

दिल्ली का त्रिदेशीय समझौता—हज़रत ईसा मसीह ने कहा है कि Blessed are the peacemakers for they shall inherit the kingdom of God. (महाभाग और धन्य हैं वे लोग जो शान्ति कराते हैं क्योंकि उन्हें स्वर्ग का राज्य मिलेगा)। अतएव दिल्ली में हाल ही में जो समझौता हुआ है, वह अभिनन्दनीय है। इसके फलस्वरूप भारत में बन्द प्रायः नब्बे हजार पाकिस्तानी युद्धबंदी, पाकिस्तान में बन्द रखे गये प्रायः चार लाख बाँगलादेशी और बाँगला देश में फँसे प्रायः ढाई लाख पाकिस्तानी 'बिहारी' मुसलमान शीघ्र-अपने देश जा सकेंगे। वर्षों से बिछुड़े परिवार मिल सकेंगे और ये लोग जो अपने देश से दूर शारीरिक, और उससे अधिक मानसिक कष्ट सह रहे और भविष्य की चिन्ता से दुबले होते जा रहे हैं, अपने परिजन और पुरजन से मिल कर जीवन को नये सिरे से आरम्भ कर सकेंगे। इससे यह भी सम्भव है कि पाकिस्तान और भारत तथा बाँगला देश और पाकिस्तान में जो वैमनस्य और तनाव है वह भी कुछ कम हो जाय। अतएव यह समझौता (जैसा कुछ भी है और जो बहुत पहले हो जाना चाहिए था) प्रत्येक दृष्टि से स्वागत के योग्य है।

मजे की बात यह है कि यद्यपि पाकिस्तान के नब्बे हजार युद्धबंदी भारत में कैद थे तथापि पाकिस्तान, सिवाय चिल्लाने के, उनको घर वापस ले जाने का कोई गम्भीर प्रयत्न नहीं कर रहा था। इस समस्या को हल करने की सबसे अधिक चिन्ता और उत्सुकता भारत को थी। अतएव उसने बाँगला देश को राजी करके पाकिस्तान से बातचीत करने की पहल की। भारत सरकार प्रतिदिन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युद्धबंदियों पर तीन लाख रुपये खर्च करती थी (परोक्ष व्यय के अतिरिक्त)। अंतर्राष्ट्रीय कानून के अनुसार युद्ध-बंदियों को उनका वेतन देती थी। यदि पाकिस्तानी बंदी भागने का प्रयत्न करते तो पकड़े या मारे जाते। पाकिस्तान इसको लेकर भारत के विरुद्ध प्रचार करता। शायद संसार में और कोई देश नहीं है जिसे बाहरी लोगों की 'अच्छी सम्मति' की इतनी चिन्ता हो जितनी भारत को है। इससे उसका 'इमेज' बिगड़ता था। अतएव वह इन युद्धबंदियों से पिंड छुड़ाना चाहती थी। जो लोग पिंड छुड़ाने को उत्सुक होते हैं वे कुछ ले-देकर भी निबटारा कर लेते हैं और सदैव दबने को तैयार रहते हैं। हम अपने कामों को उच्च आदर्शों और महान् सिद्धान्तों में लपेटकर प्रस्तुत करने में अप्रतिम हैं। अतएव रवीन्द्र और अरविन्द के देश ने गले में फँसी हड्डी को निकालने के लिए 'मानवतावाद' का सहारा लिया। हमने कहा कि यह इतने लोगों के सुख-दुःख का प्रश्न है, अतएव इसे हम मानवतावादी दृष्टिकोण से देखते हैं।

सिद्धान्त बहुत ऊँचा है। आदर्श उससे भी ऊँचा है। किन्तु क्या पाकिस्तानी युद्धबंदी, पाकिस्तान में घर से दूर रोक रखे गये बाँगलादेशी और बाँगला देश में फँसे पाकिस्तानी 'बिहारी' ही मुसलमान 'मानव' हैं, और क्या केवल उन्हींके लिए भारत सरकार के हृदय में मानवता की वेदना लहर मारती है? क्या गत युद्ध में सिंध और छम्ब से विस्थापित प्रायः दो लाख हिन्दू 'मानव' नहीं हैं? क्या वे घर से दूर अत्यन्त कष्टमय जीवन नहीं व्यतीत कर रहे? उनकी समस्या भारत सरकार ने 'मानवतावादी' क्यों नहीं मानी? क्या इसलिए कि वे 'घर की मुर्गी साग बराबर' हैं, और उनकी ओर से क्या पाकिस्तान, बाँगला देश और रूस या अमरीका विदेशों में प्रचार करेगा? शायद भारत सरकार की मानवतावाद की परिभाषा भी उसकी समाजवाद की परिभाषा की तरह बड़ी लचीली है और उसके 'मानवतावाद' में विस्थापित हिन्दू नहीं आते। यदि वह उनकी समस्या को भी 'मानवतावादी' समझती तो उसका निराकरण भी इस समझौते में कराती।

भारत सरकार इस समझौते के लिए इतनी उत्सुक थी कि उसने अपने कानूनी अधिकारों और दावों पर भी बल नहीं दिया। अंतर्राष्ट्रीय कानून के अनुसार युद्धबंदियों का वेतन और उन पर हुआ व्यय उस देश को देना पड़ता है जिसके वे नागरिक या सैनिक होते हैं। हमने उन पर करोड़ों वेतन और भोजन आदि पर व्यय किये, और मालूम कितने करोड़ उनकी रक्षा में। भारत उन्हें दिये वेतन और भोजन आदि का व्यय पाकिस्तान से वसूल का का अन्तर्राष्ट्रीय कानून से हकदार है। किन्तु हमा 'उदार' और 'मानवतावादी' सरकार ने उसकी चर्चा नहीं की।

इस प्रकार यह समझौता तनाव कम करने और कम कम कुछ दिनों भारत-पाकिस्तान सम्बन्ध बिगड़ने से रो में सहायक होगा। इससे हमारे गले में अटके नब्बे हजा पाकिस्तानी युद्धबंदियों के रखने की कठिनाइयों, जटि समस्याओं और नित्य के लाखों के व्यय से छुटकारा मि गया। किन्तु आर्थिक दृष्टि से तथा हिन्दू विस्थापितों दृष्टि से उसने बाजी खो दी। किस कीमत पर 'शा और 'मानवता' की रक्षा की गयी है!

उत्तर प्रदेश में राष्ट्रपति शासन या नवाबी—ह राज्यपाल महोदय उर्दू के इतने बड़े मद्दाह हैं कि उनके के साथ 'राज्यपाल' जोड़ना ऐसा ही मालूम होगा किसी छकड़े में ऊँट और बैल को एक साथ जोत दि जाय। वे दकन हैदराबाद के पुराने खानदानी रईस हैं वहाँ सब बड़े या महत्त्वपूर्ण रईस 'नवाब' कहलाते थे। निज़ाम के मंत्रिमंडल में मंत्री या वज़ीर थे। अतएव उ साथ 'नवाब' का लक़ब अधिक शोभा देता है। तो ह गवर्नर नवाब अकबर अली खाँ साहब हैं। वे पद ही नवाब नहीं, उन्होंने दिल और दिमाग़ भी नवाबी पाया है उनकी नवाबी के दो एक नमूने इतिहास में सुरक्षित र चाहिए जिससे भविष्य के शासकों को प्रेरणा मिले।

उर्दू में जिगर मुरादाबादी एक बहुत ऊँचे दर्जे के शा हो गये हैं। गोंडा से उनका निकट सम्पर्क था। अत उनके मित्रों और प्रशंसकों ने गोंडा में 'जिगर मैमोरि हायर सेकंडरी स्कूल' स्थापित कर दिया। स्पष्ट है कि उर्दू-प्रेमियों की संस्था है। हमारे नवाब अकबर अली साहब गत मास जून में गोंडा गये (जब स्कूल गर्मी की छुट्टि में बंद रहते हैं) और उन्होंने जिगर मैमोरियल स्कूल भी परिदर्शन किया। प्रबंध समिति ने शिक्षा विभाग किसी विशेष अनुदान की माँग भी न की थी और न उ पास विकास की कोई योजना ही तैयार थी। कि उर्दू के शायर जिगर के मैमोरियल स्कूल को हुजूर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दौसी का जो गौरव प्राप्त हुआ था, वह व्यर्थ नहीं सकता है। नवाबी शान और लहज़े से उन्होंने उसे लाख रुपये बख्शने का ऐलान कर दिया। दूसरे दिन ऊ लौटने पर सचिवालय को आदेश दे दिये गये कि उस स्कूल को एक लाख रुपये दे दिये जायँ। सरकार जट 'नवाबी' नहीं होता। वह साल भर पहिले बन और विधान सभा द्वारा स्वीकृत होता है। १९७३-७४ जट में जिगर मैमोरियल स्कूल के लिए अनुदान की कोई या नहीं थी। किन्तु उत्तर प्रदेश में इस समय राष्ट्र-शासन—अर्थात् नवाबी—है। सारी शक्ति राज्यपाल में है। हमारे नौकरशाह अपने आक़ाओं की इच्छापूर्ति में माहिर हैं। उन्होंने तरकीब निकाल दी और जो विभाग सौ रुपये के प्रस्ताव पर महीनों सोच-विचार भी निर्णय नहीं कर पाता और कोई न कोई आपत्ति लकर 'बुराई' को टाल देने में निष्णात है, उसने कार कर दिखाया। प्रायः ४८ घंटों में प्रशासनिक और विभागों ने वह कार्रवाई (जिसे करने में हम ऐसे लोगों लिए यदि वर्षों नहीं तो आठ-दस महीने ले लेते हैं) दिखायी। बिना बजट में प्राविधान के सरकार यदि तो किसीको रुपया कैसे दे सकती है, इसकी एक अप्रतिम नज़ीर है। फलस्वरूप यह शासनादेश ला गया :—

ज्ञा संख्या ३२२२/१५-८-३००७ (६२)/१९७३
शिक्षा अनुभाग ८, लखनऊ दिनांक १६ जून १९७३
विषय—जिगर मैमोरियल उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, गोंडा को शैक्षिक विकास के लिए अनुदान।

झे यह कहने का आदेश हुआ है कि राज्यपाल महोदय ने जिगर मैमोरियल उच्चतर माध्यमिक विद्यालय गोंडा को शैक्षिक क्रियाओं के विकास हेतु वर्तमान वित्तीय वर्ष १९७३-७४ में एक लाख रुपये मात्र का अनावर्तक अनुदान स्वीकृत किया है।

इस अनुदान का उपयोग बिद्यालय की उन विकास योजनाओं पर किया जायगा जो शिक्षा निदेशक माध्यमिक उ० प्र० इलाहाबाद द्वारा अनुमोदित होगा।

× × ×

इस अप्रत्याशित व्यय के लिए वर्तमान वित्तीय वर्ष के आय-व्ययक में कोई व्यवस्था नहीं है तथा व्यय का तुरन्त किया जाना अपरिहार्य है। अतः राज्यपाल महोदय ने एक लाख रुपये की धनराशि राज्य आकस्मिक निधि से अग्रिम लेने की स्वीकृति प्रदान कर दी है। यह अग्रिम धनराशि अनुपूरक माँगों द्वारा विधायकीय स्वीकृति प्राप्त कर उसी निधि को वापस कर दी जायगी।"

यह है नवाबी शासन का नमूना। अनुदान देने की एक निश्चित प्रक्रिया है। प्रस्ताव आते हैं, निदेशालय में उनकी जाँच होती है, जो आवश्यक समझे जाते हैं उनकी अनुशंसा सरकार को की जाती है। वहाँ उनकी फिर जाँच होती है और जो आवश्यक समझे जाते हैं वे वित्त विभाग की स्वीकृति को भेजे जाते हैं। यदि उसने सहमति दे दी तो वे अगले वर्ष के आय-व्ययक में सम्मिलित करने के लिए मंत्रिमंडल की स्वीकृति को भेजे जाते हैं और वहाँसे स्वीकृत होने पर आय-व्ययक में शामिल करके विधान सभा की स्वीकृति को प्रस्तुत किये जाते हैं। तब अगले वर्ष अनुदान मिलता है। यहाँ कोई योजना नहीं, कोई प्रस्ताव नहीं, कोई औपचारिक आवेदन पत्र नहीं, शिक्षा विभाग से पूछा तक नहीं गया; किन्तु चूँकि नवाब साहब के क़दम शरीफ़ जिगर साहब के स्मारक स्कूल में पड़ गये तो उसकी यादगार में यह नवाबी 'फ़ैयाज़ी' उत्तर प्रदेश के करदाताओं के माथे मढ़ दी गयी। यदि यह जिगर मैमोरियल न होकर तुलसी स्मारक या भारतेन्दु स्मारक स्कूल होता तो यह फ़ैयाज़ी कितनी होती, कहना कठिन है।

एक दूसरी नवाबी आज्ञा निकली है कि १८० गवर्मेंट माध्यमिक विद्यालयों में जहाँ अभी तक एक भी उर्दू पढ़नेवाला विद्यार्थी नहीं है, सी० टी० श्रेणी का एक उर्दू अध्यापक अनिवार्य रूप से दिया जाय। वे अलमोड़ा, नैनीताल और पौड़ी में भी दिये जायँगे, जहाँ उर्दू से लोग उतने ही परिचित हैं जितने ग्रीक भाषा से। पर वहाँ भी उर्दू अध्यापक देना अनिवार्य है। वह वहाँ क्या पढ़ायेगा? यह प्रश्न बेकार है। 'उर्दू टीचर' होना ही चाहिए चाहे पढ़नेवाले हों या न हों। उ० प्र० सरकार धन की कमी का रोना रोती रहती है, पर इस अपव्यय के लिए वह रुपया जुटाने को विवश है। नवाबी और अपव्यय का इस देश में चोली-दामन का साथ रहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीसरी आज्ञा है कि उत्तर प्रदेश के नगरों के (जहाँ शायद नगर महापालिका, नगरपालिका या टाउन एरिया है) प्रत्येक प्राइमरी स्कूल में एक उर्दू अध्यापक दिया जाय। इसका सारा व्यय सरकार देगी। उ० प्र० के कितने ही मोहल्लों में (जहाँ प्राथमिक पाठशालाएँ हैं) एक भी उर्दू पढ़नेवाला नहीं है। पर जैसे 'मजहब में अक़ल को दखल नहीं' वैसे ही उर्दू प्रचार के मामले में गवर्मेंट को बुद्धि से सरोकार नहीं।

एक चौथी बात यह है कि सारे उत्तर प्रदेश के डिग्री कालिजों को लिखा गया है कि वे यदि अपने यहाँ उर्दू में मान्यता चाहें तो उन्हें इच्छा प्रकट करते ही मिल जायगी। इतना ही नहीं, उर्दू प्राध्यापक का सारा व्यय उदारता-पूर्वक उत्तर प्रदेश की सरकार देगी। यदि कोई कालिज अपनी ओर से कोई नया विषय खोलना चाहता है तो उसके लिए आवेदन दीजिए, विश्वविद्यालय के निरीक्षक जायँगे, वे पढ़ाई का प्रस्तावित कमरा, पुस्तकालय आदि अनेक बातों की छानबीन करेंगे। फिर उस विषय के एक प्राध्यापक की नियुक्ति के लिए पूछा जायगा कि उसका वेतन आदि कहाँ से निकलेगा। नये पद और विषय के लिए मामला सचिवालय और चांसलर (राज्यपाल) तक जाता है। पर यदि आप उर्दू की कक्षा खोलना चाहें (चाहे विद्यार्थी हों या न हों) आपको कोई झंझट न करनी होगी। सरकार स्वयंसेवक के रूप में सेवा को तैयार खड़ी है और सारा व्यय वहन करने को तैयार है। यदि शिक्षा-जगत् में यह पक्षपात नहीं है तो 'पक्षपात' की परिभाषा बदलनी पड़ेगी।

हम विधायक नहीं हैं और न संसद की उत्तर प्रदेश राष्ट्रपति शासन समिति के सदस्य ही हैं। दुर्भाग्य से वे ऐसे लोक में रहते हैं कि हमारी उनसे भेंट ही नहीं होती। सरकार में भी हमारी पैठ नहीं है। किन्तु हम ही नहीं, हजारों हिन्दी-प्रेमी और करदाता यह जानने को उत्सुक हैं कि उ० प्र० सरकार ने हिन्दी के अवमूल्यन और राज्य पर उर्दू थोपने का जो अभियान चलाया है, उस पर उ० प्र० को कितना व्यय करना पड़ रहा है और एक पूरे वर्ष में वह कितना होगा। हमारा ही अर्थात् बहुसंख्यक हिन्दी-भाषी करदाताओं का पैसा, और वह इतनी बड़ी राशि में, हम ही पर उर्दू थोपने में लगाया जाय! क्या उत्तर प्रदेश के विधायक और संसद सदस्य इतने हिन्दी-जनता-निरपेक्ष हो गये हैं और उन्हें उसकी बोटें प्राप्त करने का इतना अखंड विश्वास है (क्योंकि वे उसे हाँकी हुई भेड़—डम्ब ड्रिवेन कैटल—समझते हैं) कि वे जानते हैं कि ये भेड़ें इसी बाड़े में मुड़ेंगी और इसलिए उन्हें उनकी भावना या उनके हितों पर ध्यान देने की आवश्यकता नहीं है। किन्तु अंग्रेजी की कहावत है—Even a worm turns sometime. (कभी-कभी पैर से कुचला जानेवाला कीड़ा भी उलटकर काट लेता है।)

पंडित कमलापति त्रिपाठी को उर्दू की सेवा का प्रमाणपत्र—माननीय त्रिपाठीजी ने उत्तर प्रदेश में उर्दू की कितनी बहुमूल्य सेवा की है, यह हम नहीं जानते थे। उत्तर प्रदेश की शासक कांग्रेस एक साप्ताहिक पत्र 'नया भारत' निकालती है। उसके ३ सितम्बर के अंक में श्री निसार आज़मी का एक लम्बा लेख 'उर्दू की तरक्की और कांग्रेस' छपा है। उसके एक अंश में त्रिपाठीजी की उर्दू की सेवाओं के सम्बन्ध में यह अंश दृष्टव्य और महत्त्व पूर्ण है :

"उत्तर प्रदेश में उर्दू—उत्तर प्रदेश जो आरम्भ से ही उर्दू भाषा व साहित्य का केन्द्र रहा है और जहाँ बोलने वालों की संख्या दूसरे तमाम राज्यों से अधिक है, दुर्भाग्य से उर्दू के विषय में ताअस्सुब का शिकार रहा है, स्वतंत्रता से पूर्व यहाँ उर्दू पहली से आठवीं कक्षा तक दूसरी सरकारी भाषा के स्थान पर पढ़ाई जाती थी। सरकारी महकमों में उर्दू की परीक्षा पास करना आवश्यक घोषित किया गया था। न्यायालयों और सरकारी कार्यालयों में उर्दू में प्रार्थना-पत्र स्वीकार किये जाते थे। परन्तु स्वतंत्रता के बाद यह सब सुविधाएँ समाप्त हो गयीं और उर्दू को कठिन विरोध का सामना करना पड़ा, शिक्षा-संस्थाओं में उर्दू एक विषय के रूप में बाकी रही। स्वयं विद्यार्थियों के संरक्षक अपने बच्चों को उर्दू पढ़ाने में हिचकिचाते हैं इसलिए यहाँ पर भी उर्दू जाननेवालों की संख्या दिन प्रति दिन कम होती गयी है।

परन्तु परिस्थितियाँ सदैव एक-सी नहीं रहतीं। १९४७ में कांग्रेसी सरकार के प्रयत्नों से इस प्रदेश तथा संपूर्ण देश में वातावरण उर्दू के पक्ष में होता जा रहा है तथा उपर्युक्त सारी शिकायतें दूर होती जा रही हैं और बटवारे से पहले भारत में उर्दू जिस स्थान पर थी अब फिर उसी स्थान पर पहुँचती जा रही है। उत्तर प्रदेश में उर्दू की उन्नति के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९७३

लिए जो कार्य त्रिपाठी सरकार ने किये हैं उनका उल्लेख न करना अन्याय होगा। प्रधान मंत्री मिसिज इन्दिरा गांधी, श्री कमलापति त्रिपाठी तथा बेगम हामिदा हबीबुल्लाह के प्रयत्नों से उर्दू को वह सब कुछ मिल गया जिसने पिछली तमाम कमियों की पूर्ति कर दी। संक्षेप में उर्दू के लिए जितना कार्य उत्तर प्रदेश की त्रिपाठी सरकार ने किया है वह कार्य किसी भी प्रदेश में नहीं किया गया।"

हम त्रिपाठीजी को उर्दू की अमूल्य सेवाओं के लिए बधाई देते हैं जिनके सम्बन्ध में कहा गया है कि "बटवारे के पहले भारत में उर्दू जिस स्थान पर थी अब फिर उसी स्थान पर पहुँचती जा रही है," तथा "उर्दू को वह सब कुछ मिल गया जिसने पिछली तमाम कमियों को पूरा कर दिया।" पंडितजी को एक उर्दू-प्रेमी मुसलमान से ऐसा प्रमाणपत्र मिलना वास्तव में उनकी अपूर्व राजनीतिज्ञ प्रतिभा का परिचायक है। उन्होंने "खुदा को भी खुश रखा और शैतान को भी बेज़ार नहीं होने दिया।" एक ओर वे काशी नागरी प्रचारणी सभा के अध्यक्ष और हिन्दी के जाने-माने नेता हैं, तो दूसरी ओर उर्दू के भी इतने बड़े सेवक हैं। इस प्रमाणपत्र को बड़े स्वर्णाक्षरों में लिखवाकर सुरक्षित रखना चाहिए। भारतेन्दु और राजर्षि की आत्माएँ उत्तर प्रदेश के राज-काज और शिक्षा में उर्दू की पुनर्स्थापना से स्वर्ग में पुलकित हो जायँगी।

क्या उत्तर प्रदेश में हिन्दी आंदोलन में भाग लेना अपराध है ?— उ० प्र० सरकार ने इधर उर्दू के प्रचार में जो अति उत्साह दिखाया है उसके दो परोक्ष परिणाम हुए हैं। पहला तो यह कि सरकार में हिन्दी का अवमूल्यन हो गया है, और दूसरा यह कि सरकार हिन्दी कार्यकर्त्ताओं को सन्देह की दृष्टि से देखने लगी है। वह आज भी हिन्दी के प्रति मौखिक सहानुभूति (लिप सिम्पथी) दिखलाती है, पर उसका हिन्दी का उपयोग प्रभावित हुआ है। उसके उदाहरण यहाँ देने का अवसर नहीं है। वह अवसर आने पर देंगे। किन्तु राष्ट्रपति शासन में सचिवालय में हिन्दी में कम और अंग्रेजी में अधिक काम करने की प्रवृत्ति बढ़ गयी है। राज्यपाल महोदय हिन्दी नहीं जानते। इसलिए उनके लिए फाइलें और कागज जो पहिले हिन्दी में होते थे अब अंग्रेजी में लिखे जाने लगे हैं। किन्तु सबसे बड़ी बात यह हुई है कि सरकार (जिसका इस काम का मुख्य अंग पुलिस है जो गृह विभाग के नियंत्रण में काम करता है) हिन्दी कार्यकर्ताओं की गतिविधियों को संदेह की दृष्टि से देखने लगी है। वह शायद उन्हें संभाव्य उपद्रवी (पोटेंशल ट्रबलमेकर) समझने लगी है। इस संबंध में हमें भी कुछ अनुभव हुआ है। हमने नीचे दिया हुआ पत्र उत्तर प्रदेश के पुलिस महानिरीक्षक श्री ए० के० दास आई० पी० को भेजा है। वह स्थिति स्पष्ट कर देता है। मूल पत्र अंग्रेजी में है। हम उसे ज्यों का त्यों दे रहे हैं :—

Aditya-Shail,
53, Khurshed Bagh,
Lucknow—4
12th Sept. 73

Dear Sri Das,

Perhaps you do not remember me, but I do so very well and have been watching your rise with pleasure and interest all these years.

Hindi Sahitya Sammelan, with H. Q. at Allahabad is an All-India body and Parliament has declared it an Institution of National importance. Its main object is to propagate Hindi and safeguard its interests. Sometime back, its Standing Committee decided to counter the present Pro-Urdu and anti-Hindi policies of the present U. P. Government. It decided to establish a Camp Office at Lucknow.

I am not a member of the Sammelan and therefore did not attend the meeting. As I am not its member, the question of my looking after the proposed Camp Office does not arise. Of course, if the office is established here, and its authorities seek my moral or other support I cannot refuse it as I am known as a Hindi-wala. But as I am 80 years old, my support would be very limited indeed.

But some how your Intelligence Deptt. got the wrong information that I am the man in-charge of this proposed Camp Office. I was, therefore, twice honoured with their visits and had to answer all sorts of questions. Never in

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

my life before this, any notice was taken of me by your Intelligence Deptt. As I have been ill since 28th June, I am confined to bed, and it was not pleasant to answer questions in that condition—one of the interviews lasted an hour and more. I could have been rude and showed them out, but my breeding prevented me from doing so. And they were not to blame as they were simply carrying out orders of their superiors. I even offered them tea.

But even if I were in charge of this 'office', is the working for Hindi and counteracting the unreasonable pro-Urdu policies of Govt. by legitimate means any crime under any law of the land ? A respectable body like the Sammelan will not do anything which is illegal. I do not understand why the Police unnecessarily harass private citizens like me even if they participate in such activities. There are enough anti-social elements in the State to merit the attention of your Intelligence Department.

If by any ordinance or order, Govt. has declared working for Hindi and counteracting its wrong pro-Urdu policies an offence it is not known to me.

I am bringing this fact to your notice to lodge my protest against the unwarranted and undesirable attention of your Intelligence Department which private citizens like me consider a nuisance.

Apologising for bothering you and for taking so much of your valuable time.

With kind regards,

Yours sincerely,
S. N. Chaturvedi

Shri A. K. Das, I. P.,
Inspector General of Police,
Uttar Pradesh,
Lucknow.

अनुवाद— आदित्य-शैल,
५३ खुर्शेद बाग,
लखनऊ—४
१२-९-७३

प्रिय श्री दास,

शायद आप मुझे भूल गये हों पर मुझे आपकी अच्छी तरह याद है और मैं प्रसन्नता और रुचिपूर्वक इतने वर्षों से आपकी उन्नति का परिदर्शन कर रहा हूँ।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन (जिसका मुख्यालय इलाहाबाद में है) एक अखिल भारतीय संस्था है और संसद ने उसे राष्ट्रीय महत्त्व की संस्था घोषित कर दिया है। उसका मुख्य उद्देश्य हिन्दी का प्रचार और उसके हितों की रक्षा है। कुछ दिनों पूर्व उसकी स्थायी समिति ने यह निश्चय किया कि वह वर्तमान उ० प्र० सरकार की उर्दू-प्रोत्साहन और हिन्दी-विरोधी नीतियों का विरोध करे। इसके लिए उसने लखनऊ में एक शिविर कार्यालय खोलने का निश्चय किया।

मैं सम्मेलन का सदस्य नहीं हूँ। इसलिए मैं उस बैठक में सम्मिलित नहीं हुआ। चूँकि मैं उसका सदस्य नहीं हूँ, प्रस्तावित शिविर कार्यालय का मेरे प्रभारी होने का प्रश्न ही नहीं उठता। अवश्य ही यदि यहाँ कार्यालय खुला और उसके अधिकारी मुझसे उसके लिए मेरा नैतिक या अन्य समर्थन चाहते हैं तो मैं उन्हें नाहीं नहीं कर सकता क्योंकि मैं 'हिन्दीवाला' हूँ। किन्तु चूँकि मैं ८० वर्ष का हूँ, अवश्य ही मेरा सहयोग बहुत सीमित होगा।

किन्तु किसी कारण से आपके गुप्तचर विभाग को यह गलत सूचना मिली कि मैं इस प्रस्तावित शिविर कार्यालय का प्रभारी हूँ, इसलिए उन्होंने दो बार मुझे अपने दर्शनों से गौरवान्वित किया और मुझे तरह-तरह के प्रश्नों के उत्तर देने पड़े। इसके पहिले आपके गुप्तचर विभाग ने मेरी ओर कभी ध्यान नहीं दिया था। चूँकि मैं २८ जून से बीमार हूँ, मैं शैयाशायी हूँ, और उस अवस्था में प्रश्नों का उत्तर देना सुखद नहीं था। उनकी एक भेंट एक घंटे से भी अधिक चली। मैं उनके प्रति अशिष्ट होकर उन्हें घर के बाहर निकाल सकता था किन्तु मेरे आभिजात्य ने मुझे ऐसा नहीं करने दिया। और उनका कोई दोष भी न था क्योंकि वे अपने उच्च अधिकारियों की आज्ञा का पालन मात्र कर रहे थे। मैंने उन्हें चाय भी पिलायी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किन्तु यदि मैं इस 'कार्यालय' का प्रभारी भी होता तो हिन्दी के लिए काम करना और वैधानिक उपायों से सरकार की उर्दू पक्षपात की बुद्धिहीन नीतियों का विरोध करना क्या देश के किसी कानून के विरुद्ध है ? सम्मेलन के समान प्रतिष्ठित संस्था कोई गैर-कानूनी काम न करेगी। मेरी समझ में नहीं आता कि पुलिस क्यों अकारण मेरे समान सामान्य नागरिकों को परेशान करती है यदि वे ऐसे कामों में भाग भी लेते हों। इस राज्य में आपके गुप्तचर विभाग का ध्यान आकर्षित करने के लिए काफी समाज-विरोधी तत्त्व विद्यमान हैं।

मैं आपके गुप्तचर विभाग के इस नाजायज और अवांछनीय कार्य के विरोध में आपको यह पत्र लिख रहा हूँ। मेरे ऐसे नागरिक इन कार्रवाइयों को आपत्तिजनक उत्पात समझते हैं।

आपको कष्ट देने और आपका इतना बहुमूल्य समय लेने के लिए क्षमा याचना।

सद्भावना सहित

भवदीय

श्रीनारायण चतुर्वेदी

माननीय त्रिपाठीजी ने अलादीन के बोतल में बंद जिन्न को खोलकर जो भूल की है उसके ये सब अप्रत्याशित परिणाम हैं। निम्न कर्मचारी 'ख़ैरख़ाही' और 'प्रतिबद्धता' का प्रमाण देने को आवश्यकता से अधिक उत्साह दिखलाने लगते हैं। उन्होंने शायद यही समझा कि जो व्यक्ति सरकार की उर्दू-पोषक नीति का विरोध करता है वह सरकार-विरोधी और ख़तरनाक है। उस पर निगाह रखनी चाहिए। यदि उ० प्र० में यह नीति कुछ दिनों और चलती रही तो हमें आश्चर्य न होगा कि नौकरशाहों और सरकारी कर्मचारियों की निगाह में हिन्दी के पक्ष में बोलना भी एक दिन 'अपराध' समझा जाने लगेगा। हम ऐसे व्यक्तियों पर गुप्तचर विभाग की दृष्टि का कोई प्रभाव नहीं पड़ने का, किन्तु छोटे और सामान्य कार्यकर्ता यदि उसकी दृष्टि के शिकार हो गये तो वे आतंकित हो सकते हैं। उ० प्र० में यह स्थिति कब तक सहन की जायगी ?

श्री पुलिस महानिरीक्षक महोदय की मेरे पत्र की प्राप्ति स्वीकृति मुझे १६ सितम्बर को दोपहर में मिली। वह यह है :

Inspector Genral of Police
Uttar Pradesh

Dated Lucknow Sept. 12, 1973

Dear Shri Chtaurvedi,

This is to acknowledge receipt of your letter dated Sept. 12, 1973 which I have received today.

2. I shall look into this matter.

With kind regards,

Yours Sincerely
(Sd.) A. K. Das

"प्रिय श्री चतुर्वेदी, यह आपके १२ सितम्बर १९७३ के पत्र की प्राप्ति स्वीकृति करने के लिए है।

२. मैं इस मामले को देखूँगा।

सद्भावना सहित

भवदीय

(हस्ताक्षर) ए. के. दास"

अर्जी लग गयी है। सरकारी तंत्र में मामले की छानबीन में समय लगता ही है। हम महानिरीक्षक महोदय के अंतिम उत्तर की धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा करते रहेंगे। पत्र की प्राप्ति स्वीकृति इतनी शीघ्रता से करने के लिए हम महानिरीक्षक महोदय के आभारी हैं।

उर्दू के प्रगतिशील लेखक श्री सैयद सज्जाद ज़हीर का निधन—हमें यह सुनकर खेद हुआ कि उर्दू के प्रसिद्ध प्रगतिशील लेखक और कम्यूनिस्ट नेता श्री सैयद सज्जाद ज़हीर का निधन काज़िकिस्तान (सोवियत रूस) में हृदय के दौरे के कारण गत मास हो गया। वहाँ प्रगतिशील लेखकों का एक सम्मेलन हो रहा था और वे भारतीय प्रतिनिधि दल के नेता के रूप में वहाँ गये थे। ऐसी अवस्था में, और विशेषकर विदेश में, यह मृत्यु अधिक दुखद हुई।

वे अवध चीफकोर्ट के मुख्य न्यायाधीश सर वज़ीर हसन के सबसे छोटे पुत्र थे। उन्होंने इंग्लैण्ड में शिक्षा पायी और वहीं वे कम्यूनिस्ट विचारधारा के अनुयायी हो गये, किन्तु स्वदेश लौटने पर जब देशप्रेमियों का मुख्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ध्येय देश को स्वतंत्र कराना था, सभी विचारधाराओं के लोग कांग्रेस में सम्मिलित हो जाते थे। श्री सज्जाद ज़हीर भी कांग्रेस में सम्मिलित हो गये और वहाँ अपनी योग्यता और कर्मठता के कारण एक विभाग के सचिव भी बना दिये गये। वे आन्दोलन में कई बार जेल भी गये।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश में राजनीतिक विचार-धाराओं के अनुसार अलग-अलग दल बन गये और स्वभावतः वे कम्यूनिस्ट दल में सम्मिलित हो गये। वहाँ वे अपनी कर्मठता, योग्यता और लगन के कारण उसकी सर्वोच्च कमान के एक प्रमुख सदस्य बन गये। विभाजन के बाद पाकिस्तान में कम्यूनिस्ट पार्टी नहीं थी। पार्टी ने उन्हें वहाँ जाकर कम्यूनिस्ट पार्टी संगठित करने का काम सौंपा। वे खुलकर न वहाँ जा सकते थे और न खुलकर काम कर सकते थे। उन्होंने वहाँ कार्य आरंभ किया और कुछ सफलता भी पायी, पर पाकिस्तान की सरकार उस समय कम्यूनिस्ट विरोधी दल में भागीदार थी। उसे पता लग गया। वे पकड़े गये और जेल में बन्द कर दिये गये। भारत तथा प्रभावशाली मुसलमानों के प्रयत्न से वे चार वर्ष बाद पाकिस्तान के जेल से छोड़े गये और उन्हें भारत भेज दिया गया।

श्री सज्जाद ज़हीर कोरे राजनीतिज्ञ ही नहीं थे। उनमें साहित्यिक प्रतिभा थी और वे उर्दू के अच्छे लेखक समझे जाने लगे थे। जब कम्यूनिस्ट इंटर्नेशनल कांग्रेस ने यह तय किया कि जो देश अभी कम्यूनिस्ट ढंग की क्रांति के लिए तैयार नहीं हैं, उन्हें मानसिक रूप से तैयार करने और साम्यवादी विचार फैलाने के लिए उनकी भाषाओं में साहित्य तैयार किया जाय और उसका प्रचार किया जाय तथा उस साहित्य को 'कम्यूनिस्ट साहित्य' न कहकर 'प्रगतिशील साहित्य' का आकर्षक नाम दिया जाय तब भारत में 'प्रगतिशील साहित्य' तैयार करने के लिए लाहौर में इस विचारधारा के प्रमुख व्यक्तियों ने सम्मेलन किया। उसमें ऐसे लोग भी बुलाये गये जैसे प्रेमचन्दजी। लाहौर के उस सम्मेलन के प्रमुख नेताओं में सैयद सज्जाद ज़हीर प्रमुख व्यक्तियों में थे।

उर्दू साहित्य में श्री सैयद सज्जाद ज़हीर ने अपनी एक विशिष्ट शैली, भाषा के सौष्ठव और विचारधारा के कारण अपना विशेष स्थान बना लिया था और उनकी गणना उर्दू के प्रथम पंक्ति के लेखकों में होती थी। हम उन्हें साहित्यकार के रूप में जानते हैं। हमें उनकी राजनीति से सरोकार नहीं। उनके समान प्रतिभाशाली उर्दू के लेखक के सहसा निधन से भारतीय साहित्य—विशेषकर उर्दू साहित्य की बड़ी क्षति हुई है। हम उनके शोक-संतप्त परिवार के प्रति अपनी हार्दिक समवेदना व्यक्त करते हैं।

अब भी भारत कर्तव्यनिष्ठ व्यक्तियों से एकदम हीन नहीं हुआ—महाराष्ट्र के कुलाबा जिले में पोलदपुर एक कस्बा है। यह एक छोटी नदी के किनारे बसा है जिसका नाम 'सरस्वती' है। नदी छोटी है। उसमें पानी कम है। धार सामान्यतः धीमी रहती है। इसलिए वहाँके अधिकारियों ने (स्वायत्तशासन के कानून से प्राप्त अधिकारों का उपयोग कर) नियम बना दिया कि नदी में न स्नान किया जाय, न उसमें कपड़े धोये जायँ और न उसमें बर्तन माँजे जायँ। इनमें से कोई भी काम करना दंडनीय अपराध घोषित कर दिया गया और पुलिस को आदेश दे दिये गये कि इन नियमों को भंग करने वालों का वह चालान करे।

एक दिन उस गाँव की पुलिस का एक सिपाही (कान्स्टेबल) जो उसी गाँव का रहने वाला था, नदी के पास अपनी नियमित गश्त पर था। उसने दूर से देखा कि कोई स्त्री नदी में बर्तन माँज रही है। वह तुरन्त उधर झपटा, किन्तु वहाँ पहुँच कर उसने देखा कि नियम भंग करने वाली स्वयं उसकी पत्नी है। अब उसके मन में कर्तव्य और व्यक्तिगत संबंधों के प्रति द्वन्द्व आरम्भ हुआ, किन्तु उस सिपाही ने कर्तव्य पालन करने का ही निश्चय किया और उसने उसे थाने पर ले जाकर उसका चलान कर दिया। इस युग में जब भाई-भतीजावाद तथा अपने रिश्तेदारों और मित्रों के बड़े अपराधों की ओर से भी बड़े नेता और अधिकारी बहुधा आँख मूँद लेते हैं, एक सामान्य पुलिस के सिपाही की ऐसी कर्तव्यनिष्ठा देख कर आश्चर्य होता है और विश्वास हो जाता है कि बाबा तुलसीदास के शब्दों में 'महि' अभी 'वीरविहीन' नहीं हुई। इतनी ऊँची कर्तव्यनिष्ठा और कठोर तथा निर्मम कर्तव्यपालन के लिए सरकार को उस सिपाही का विशेष सम्मान करना चाहिए। ऐसे लोगों को देख कर देश के शुभ भविष्य में आशा की क्षीण रेखा हृदय में उत्पन्न हो जाती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभिनवगुप्त : एक परिचय

डॉ० रामलखन शुक्ल

भारतीय मनीषियों की प्राचीन परम्परा से ही यह बात सिद्ध हो जाती है कि उन्होंने यद्यपि अपनी प्रतिभा के प्रकाश से भारतीय साहित्य और संस्कृति को समुज्ज्वल बनाये रखने में अत्यधिक योगदान दिया है, तथापि अपने व्यक्तिगत जीवन-वृत्त को प्रायः अप्रकाशित ही रखा है। संभवतः अपनी विनम्रता और शालीनता के कारण ही उन्होंने अपने व्यक्तिगत जीवन-वृत्त पर प्रकाश न डाला हो, किन्तु उनके इस दृष्टिकोण से एक क्षति अवश्य ही पहुँची है कि हम उनके जीवन-वृत्त से परिचित न होने के कारण उनकी रचनाओं के साथ उतना न्याय नहीं कर सके हैं जितना अपेक्षित है।

अन्य प्राचीन मनीषियों के समान अभिनवगुप्त अपने जीवन-वृत्त को लेकर एकदम मौन नहीं थे। उन्होंने अपनी कई रचनाओं में अपने जीवन-वृत्त पर थोड़ा-सा प्रकाश डालने का यत्न किया है, जिसके आधार पर हम उनके व्यक्तित्व का सामान्य परिचय प्राप्त कर सकते हैं। अभिनवगुप्त का जन्म काश्मीर में हुआ था, पर वे मूलतः काश्मीरी ब्राह्मण नहीं थे। उनके पूर्वज अन्तर्वेद (कन्नौज) के निवासी थे। आठवीं शताब्दी में कान्यकुब्ज-नरेश यशोवर्मा के दरबार में उनके पूर्वज अत्रिगुप्त का बहुत बड़ा सम्मान था। उनकी अपूर्व विद्वत्ता और विलक्षण पांडित्य की ख्याति चारों दिशाओं में फैली हुई थी। काश्मीर-नरेश ललितादित्य के कर्ण-कुहरों में भी उनके नाम की गूँज पहुँच चुकी थी। उन्होंने जिस समय कान्यकुब्ज पर आक्रमण किया और यशोवर्मा को विजित किया, उस समय वे अत्रिगुप्त को विस्मृत न कर सके और उन्हें अपने साथ काश्मीर ले गये। वहाँ पर उन्हें सम्मानपूर्वक बसाया। उसी समय से अभिनवगुप्त के पूर्वज काश्मीर में रहने लगे।

अभिनवगुप्त के प्रपिता वराहगुप्त प्रसिद्ध विद्वान् हो चुके हैं। उनकी विद्वत्ता की अच्छी धाक थी। अभिनवगुप्त के पिता नरसिंह गुप्त भी बहुत ही अच्छे विद्वान् थे। उनका दूसरा नाम चुलुखक था। वे इसी नाम से अधिक प्रसिद्ध थे। अभिनवगुप्त के पिता जैसे विद्वान् थे, वैसे ही वे शिव के परम भक्त भी थे। उनकी माता धर्मशीला, साध्वी और पति-परायणा नारी थीं। अभिनवगुप्त का जन्म ऐसे परिवार में हुआ, जिसमें एक ओर अपूर्व विद्वत्ता का आलोक था और दूसरी ओर भक्ति की पयस्विनी का निर्मल जल था। उन्हें पैतृक परम्परा की समस्त विशेषताएँ रिक्थ-रूप में प्राप्त थीं। उनका आविर्भाव कब हुआ, इसके सम्बन्ध में किसी प्रकार का संकेत उनके किसी भी ग्रन्थ से प्राप्त नहीं होता और बहिःसाक्ष्य के आधार पर भी किसी निर्णय पर नहीं आया जा सकता। उनकी रचनाओं के काल-क्रम के आधार पर इतना ही कहा जा सकता है कि सन् ९९० ई० से १०१४ ई० के मध्य वे विद्यमान थे; क्योंकि उनके ग्रन्थ 'बृहती-विमर्शिनी' का रचना-काल १०१४ ई० है और 'क्रम-स्तोत्र' का रचना-काल ९९० ई० है। इसके आधार पर यह बात निश्चयपूर्वक कही जा सकती है कि उनका आविर्भाव ९९० ई० से पूर्व हुआ होगा और उनका देहावसान १०१४ ई० के बाद ही हुआ होगा।

अभिनवगुप्त नाम को लेकर एक विशेष प्रकार की जनश्रुति प्रचलित है। ऐसा कहा जाता है कि अभिनवगुप्त बाल्यावस्था में बहुत ही चंचल और शरारती थे। पढ़ते समय वे अपने सहपाठियों को बहुत ज्यादा परेशान करते थे और इसी कारण उनके गुरुजनों ने उनका नाम अभिनवगुप्तपाद रख दिया। 'अभिनवगुप्तपाद' शब्द 'अभिनव' और 'गुप्तपाद' के योग से बना है। 'अभिनव' का अर्थ नवीन और 'गुप्तपाद' का सर्प। जो नवीन प्रकार का सर्प हो उसे 'अभिनवगुप्तपाद' कहेंगे। इस नाम से यही व्यंजित होता है कि गुरुजनों में भी वे अपनी चपलता के लिए ख्यात थे, किन्तु इस नाम से किसी प्रकार की कटुता या गुरुजनों के मनोमालिन्य का बोध नहीं होता; अपितु इससे उनके प्रति गुरुजनों के स्नेहातिशय्य का ही परिचय मिलता है। उन्हें स्वयं यह नाम इतना प्रिय लगा कि उन्होंने अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वास्तविक नाम को विस्मृत कर इसी नाम से ज्ञात होना अच्छा समझा। गुरुजनों द्वारा रखे गये इस नाम से वे वस्तुतः अभिमान का अनुभव करते थे।

अभिनवगुप्त ने अपनी आरम्भिक शिक्षा घर पर ही पूरी की। उनके पिता नरसिंह गुप्त ने उनमें बचपन से ही साहित्य के प्रति गम्भीर रुचि उत्पन्न कर दी और अभिनव-गुप्त साहित्य के सुन्दर, स्वच्छ सरोवर का अवगाहन कर प्रारम्भिक अवस्था से ही अपनी रुचि संस्कृत-परिष्कृत करने लगे। माता के स्नेहिल आँचल ने उनके विकास को बहुत ही स्वाभाविक बना दिया था तथा बचपन से ही उनकी तेजस्विता और प्रखर प्रतिभा से उनके सुन्दर भविष्य का आभास मिलने लगा था। किन्तु जब सारा वातावरण उनके लिए अत्यन्त स्निग्ध, मनोहारी और आकर्षक था, एकाएक एक ऐसी अघटनीय घटना घटित हो गयी, जिसने उनके ऋजु-सरल, सुन्दर, निष्कंटक जीवन-पथ को सभी प्रकार से कंटकमय, वक्र-अराल और अत्यन्त विषम बना दिया। माता की स्नेहमयी छाया से उन्हें सदा के लिए वंचित होना पड़ा। मातृ-छाया से वियुक्त बालक अभिनव गुप्त अपने पिता के क्रोड में छिपकर विश्रान्ति और शांति-प्राप्ति के लिए विह्वल हो उठा। परन्तु दैव योग से उनका भाग्य प्रतिकूल था। उनके पिता अपनी प्रिय पत्नी से सर्वदा के लिए वियुक्त होने के कारण शोकाध्मात हृदय हो सब कुछ भूल गये। जीवन-संगिनी का वियोग उनके लिए असह्य हो उठा और वे अपने प्रिय पुत्र अभिनवगुप्त को उसके पितृव्य (चाचा) आदि की शरण में छोड़ संसार से विरक्त हो गये। अभिनवगुप्त माता-पिता की स्नेहिल छाया से वंचित होने के कारण बाल्यावस्था में ही गम्भीर प्रकृति के बन गये और उन्होंने सरस साहित्य के अध्ययन से विरत हो दर्शन के अतल सागर में अपने आपको निक्षिप्त कर दिया। उन्होंने अपने जीवन का मार्ग निश्चित कर लिया और समस्त सांसारिक बन्धनों से मुक्त होकर वे ज्ञान-सरोवर के विभिन्न सोपानों से उसकी अतल गम्भीरता में प्रवेश पाने का प्रयत्न करने लगे। उनकी जिज्ञासा और कुतूहल-वृत्ति प्रबल हो उठी और वे उसकी पूर्ति के लिए विविध स्थानों पर भ्रमण करते रहे। जिस किसी भी विद्वान्-विशेष की वे चर्चा सुनते, उसके पास पहुँच जाते और उसकी ज्ञान-राशि से पूरा-पूरा लाभ उठाते। इस प्रकार उन्होंने अपने जीवन-काल में अनेक व्यक्तियों को गुरु-रूप में स्वीकार किया और उनकी ज्ञान-ज्योति से अपनी शक्ति और क्रिया दोनों को ज्योतित किया। ज्ञान ही उनका लक्ष्य था और ज्ञान ही उनका पथ था। यही कारण है कि अभिनवगुप्त अपने समय में उपलब्ध प्रायः समस्त ज्ञान-राशि के सुयोग्य अधिकारी बन गये थे। उनकी प्रतिभा बहुमुखी थी और उनकी ग्रहण-शक्ति असीम थी। वे वस्तुतः अपने युग के अत्यन्त उज्ज्वल और गरिमा-मंडित नक्षत्र थे।

बाल्यावस्था में ही माता-पिता के स्नेह से वंचित होने के कारण अभिनवगुप्त का स्वभाव गंभीर हो गया था और आजीवन ज्ञान-व्रत में लीन रहने के कारण वे वैवाहिक जीवन भी व्यतीत न कर सके। उनके इस आजीवन कौमार्य व्रत ने उनकी स्वाभाविक गंभीरता को और अधिक बढ़ा दिया तथा उनका सारा अस्तित्व कठोर और चिर-पिपासित धरती के समान काठिन्य और कठोरता का जीता-जागता प्रतीक बन गया। माता-पिता के स्नेह से वंचित अभिनवगुप्त को यदि पत्नी के पवित्र प्रेम की मधुरिम छाया मिली होती तो निश्चय ही उनका यह काठिन्य, गाम्भीर्य शीतल, स्निग्ध कोमलता में परिणत हो उनके समग्र जीवन को सरसता और मधुरता का मोहक परिग्रह बना देता। पत्नी का सभी ओर से घेर लेनेवाला प्रणय माता-पिता के स्नेहाभाव को अपनी अरुणिम आभा से आपूरित कर सकता था, किन्तु पत्नी-विहीन अभिनवगुप्त का मन दूसरी दिशा की ओर अभिधावित हो उठा और वे ज्ञान तथा भक्ति की धारा में अपने समस्त अस्तित्व को निमज्जित कर परम परितोष का अनुभव करने लगे।

उनकी ज्ञान-धारा त्रिविध प्रवाहित हुई। साहित्य के क्षेत्र में वे कविता-कामिनी को अपनी प्रोज्ज्वल प्रतिभा से समलंकृत कर सकते थे, किन्तु कविता-बन्ध से मुक्त वे काव्य-शास्त्र में लीन हो गये। 'नाट्यशास्त्र' पर उनकी 'अभिनवभारती' और 'ध्वन्यालोक' पर उनकी 'लोचन' नाम की टीकाएँ काव्य-शास्त्र के अध्येताओं के लिए प्रेरक ही नहीं हैं, अपितु उनकी प्रतिभाओं की कसौटियाँ हैं, जिन पर कसे जाने पर उनके खरेपन या खोटेपन का पता चल जाता है। दर्शन के क्षेत्र में अभिनवगुप्त ने प्रत्यभिज्ञादर्शन से सम्बन्धित ग्रंथ लिखे हैं। उन्होंने दर्शन का कोई मौलिक ग्रंथ न लिखकर उत्पलाचार्य कृत 'ईश्वरप्रत्यभिज्ञा' पर 'विमर्शिणी' और स्वयं आचार्य के इस ग्रंथ की विवृति पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'विमर्शिणी' लिखी है। 'भगवद्गीतार्थसंग्रह' भी उनकी दार्शनिक कृति है। जिस प्रकार काव्य-शास्त्र के क्षेत्र में उन्होंने कोई मौलिक ग्रंथ न लिखकर 'नाट्य शास्त्र' और 'ध्वन्यालोक' की टीकाएँ लिखकर अपनी मौलिक प्रतिभा तथा अपने मौलिक चिन्तन का परिचय दिया है, उसी प्रकार 'ईश्वर प्रत्यभिज्ञा-सूत्र' और 'ईश्वर प्रत्यभिज्ञा-विवृति' पर विमर्शिणी लिखकर उन्होंने मात्र मौलिकता का ही परिचय नहीं दिया है, अपितु प्रत्यभिज्ञादर्शन को अपनी सूक्ष्म प्रतिभा के बल पर अत्युच्च शिखर पर प्रतिष्ठित कर दिया है। उन्होंने 'भगवद्गीतार्थसंग्रह' में 'श्रीमद्भगवद्गीता' की व्याख्या शैव-दृष्टि से की है। तंत्र-शास्त्र के सम्बन्ध में अभिनवगुप्त की अनेक रचनाएँ आती हैं, जिनकी संख्या चौंतीस के आस-पास है। वस्तुतः उन्हें तंत्राचार्य कहना अयुक्तियुक्त न होगा। तांत्रिक साधनाओं में उनकी अपार रुचि थी।

अभिनवगुप्त ने एक ओर ज्ञान की विमल वारि-धारा प्रवाहित की और दूसरी ओर उन्होंने भक्ति की पावन पयस्विनी की शीतल वारि-धारा में निमज्जित हो आत्मिक और मानसिक तुष्टि प्राप्त की। शिव की भक्ति भी उन्हें परम्परा से प्राप्त हुई थी। माता के सुखद क्रोड से वंचित तथा पिता की शीतल, स्नेहिल छत्रच्छाया से वियुक्त अभिनवगुप्त की आत्मा स्नेह-प्राप्ति के लिए छटपटाने लगी और चतुर्दिक् अन्धकार-प्रसार देख ईश्वर के चरणों की ओर प्रधावित हो उठी और महेश भक्ति-रूपी नायिका उन्मत्त हो उठी। उसने स्वयं आगे बढ़कर अभिनवगुप्त का हाथ पकड़ लिया। उस दुर्मद भक्ति-रूपी नायिका ने जब उनका हाथ पकड़ ही लिया तब वे सब कुछ भूलकर उसीमें तन्मय हो गये। भक्ति के अनाविल प्रवाह में अभिस्नात अभिनवगुप्त ने लोक-व्यवहार, लोक-लज्जा आदि का अतिक्रम कर महेश के चरणों में निःशेष भाव से अपने आपको अर्पित कर दिया और द्राक्षाफल के समान अपने समस्त अस्तित्व को महेश के चरणों पर निचोड़ दिया तथा उन्होंने अपने जीवन-काल में ही महामाहेश्वर की उपाधि अर्जित कर ली।

ज्ञान-पिपासा की तृप्ति के लिए अभिनवगुप्त ने अनेक विद्वान् गुरुओं के सान्निध्य का लाभ उठाया था और उनकी अपूर्व विद्वत्ता पर उनके गुरु भी मुग्ध-विस्मित थे। उनकी कीर्ति अनधिक समय में ही पूरे काश्मीर में फैल चुकी थी और बड़े-बड़े जिज्ञासु विद्यार्थी अपनी जिज्ञासा-शांति के लिए उनके पास आया करते थे। साधक के रूप में भी उनकी कीर्ति बहुत दूर तक फैल चुकी थी और उनके जीवन के अंतिम समय में तो उनकी शिष्य-संख्या बहुत अधिक हो गयी थी। कहा जाता है कि अपने जीवन के अंतिम समय में अभिनवगुप्त श्रीनगर और गुलमर्ग के बीच मगम नामक स्थान से पाँच मील दूर भैरव नदी के तट पर भैरव नामक गाँव के समीप भैरव-कंदरा में साधना करने चले गये थे। यह स्थान उन्हें बहुत ही प्रिय था। यहीं पर उन्होंने अपनी अन्तिम समाधि ली। ऐसा कहा जाता है कि इस भैरव-कन्दरा में अभिनवगुप्त ने अपने बारह सौ शिष्यों के साथ प्रवेश किया था और उनमें से कोई भी बाहर नहीं निकला। भले ही उनके साथ समाधिस्थ होने के लिए बारह सौ शिष्य न गये हों, पर इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उनके जीवन के अंतिम समय में उनकी ख्याति बहुत अधिक हो चुकी थी और यह संभव है कि उनकी अंतिम समाधि देखने उनके बारह सौ शिष्य भैरव कन्दरा में आये हों। किसी समय अभिनवगुप्त से अध्युषित भैरव-कन्दरा आज भी मानो उनका यशोगान करती है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि अभिनवगुप्त ने अपने जीवन को निचोड़कर भारतीय वाङ्मय को जो देन दी है, वह अपने आपमें अद्वितीय है और जब तक काव्य-शास्त्र, दर्शन आदि का महत्त्व रहेगा तब तक निश्चय ही उनकी कीर्ति-पताका लहराती रहेगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी में इंजीनियरी साहित्य

एक अवकाश-प्राप्त इंजीनियर

हिन्दी को शिक्षा का माध्यम बनाने के विरोध में जो तर्क प्रायः प्रस्तुत किये जाया करते हैं, उनमें से मुख्य यह है कि हिन्दी में वैज्ञानिक और तकनीकी साहित्य का अभाव है, और यह भी कि इन विषयों के सूक्ष्म विचारों की सफल अभिव्यक्ति की क्षमता हिन्दी में नहीं है। किन्तु हमारी दृष्टि में इधर कुछ ऐसा साहित्य आया है, जिससे यह सिद्ध हो जाता है कि उपर्युक्त तर्क निर्मूल है। भारत की एक-मात्र और सर्वोच्च इंजीनियरी संस्था, इंस्टिट्यूशन आफ़ इंजीनियर्स (इंडिया) ८, गोखले रोड, कलकत्ता–२० में एक हिन्दी विभाग भी है और गत २२ वर्षों से इसकी पत्रिका 'जरनल आफ़ दि इंस्टीट्यूशन आफ़ इंजीनियर्स' हिन्दी में भी निकलती है। इस पत्रिका में समाचार या हलके-फुलके लेख नहीं, बल्कि इंजीनियरी के गम्भीर और जटिल विषयों पर महत्त्वपूर्ण गवेषणात्मक और विवेचनात्मक निबन्ध प्रकाशित होते हैं। हिन्दी विभाग का आरम्भ १९४९ में बम्बई लोक-निर्माण-विभाग के रिटायर्ड अधीक्षक इंजीनियर, और महाराष्ट्र के अत्यन्त दूरदर्शी विचारक श्रीनरहरि सदाशिव जोशी ने किया था। आजकल पंजाब लोक-निर्माण-विभाग के भवन व मार्ग शाखा के रिटायर्ड चीफ़ इंजीनियर श्रीब्रजमोहनलाल एफ० आई० ई०, इसके हिन्दी सलाहकार हैं।

इंस्टिट्यूशन का हिन्दी जरनल वर्ष में तीन बार निकलता है। सन् ७१-७२ के तीनों अंकों (दिसम्बर ७१, अप्रैल ७२ और अगस्त ७२) में इंजीनियरी की सभी शाखाओं के महत्त्वपूर्ण विषयों पर अनेक मौलिक निबन्ध हैं। इंजीनियरी शिक्षण-संस्थाओं के विद्वान् प्राध्यापकों और गवेषणा-शालाओं के शोधकर्ताओं के कार्यों के विवरण हैं। जहाँ तक हमारी जानकारी है, यह एक मात्र इंजीनियरी पत्रिका है जिसमें उच्च-स्तरीय शोध-प्रबन्ध हिन्दी में प्रस्तुत किये जाते हैं। सभी लेखों का स्तर उत्कृष्ट है और भाषा सरल, सुबोध और प्रवाहमयी है। हिन्दी पारिभाषिक शब्दों के अंग्रेजी पर्याय भी पाद-टिप्पणियों में दिये हुए हैं, जिससे अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोग भी हिन्दी का मामूली ज्ञान प्राप्त करके लेखों से लाभ उठा सकते हैं।

जरनल ने तकनीकी भाषा की एक शैली ही बनाई है। इसे इंजीनियरी के सभी विषयों के लेखक तैयार करने का भी श्रेय प्राप्त है। अनेक लेख जो आरम्भ में जनरल में छपे, बाद में महत्त्वपूर्ण पुस्तकों के रूप में सामने आए। इस जनरल के माध्यम से इंस्टिट्यूशन भारत सरकार द्वारा निर्मित पारिभाषिक शब्दावली का व्यावहारिक प्रयोग करके उसका व्यापक प्रसार कर रहा है, जो अत्यन्त मूल्यवान् देश-सेवा है।

जरनल के बाईस वर्ष के सफल प्रकाशन से यह तो अब निर्विवाद सिद्ध हो चुका है कि हिन्दी में जटिल से जटिल विषयों और गूढ़ से गूढ़ विचारों की अभिव्यक्ति की अपार क्षमता है। यह भी स्पष्ट है कि अंग्रेजी में जो विषय कठिन लगते हैं, वे ही हिन्दी में लिखे होने पर सरल और सुबोध हो जाते हैं। जरनल में हिन्दी के इंजिनियरी साहित्य की समीक्षा भी बराबर निकलती रहती है। इससे अब यह भी सिद्ध है कि हिन्दी में न लिखनेवालों की कमी है, न प्रकाशकों की। आवश्यकतानुसार साहित्य बराबर तैयार होता जाएगा। बस जरूरत है तो शिक्षा का माध्यम बदलने की। भारत सरकार की घोषित नीति है कि धीरे-धीरे शिक्षा का माध्यम हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाएँ हों। यह जनरल केन्द्रीय सरकार की इस नीति के सफल कार्यान्वयन के लिए सुदृढ़ आधार तैयार कर रहा है और देश की एक महत्त्वपूर्ण आवश्यकता की पूर्ति करता है।

इंजीनियरी विषयों पर दो उल्लेखनीय पुस्तकें भी इधर प्रकाशित हुई हैं, जो भारत सरकार के शिक्षा-मंत्रालय के केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय से अनुमोदित हैं। ये दोनों ही निबंधों के रूप में पहिले इंस्टिट्यूशन आफ़ इंजीनियर्स के जरनल में आंशिक रूप से प्रकाशित हो चुकी हैं। इनके लेखक श्रीविश्वम्भर प्रसाद, एफ० आई० ई०, केन्द्रीय लोक-निर्माण विभाग के वरिष्ठ कार्यपालक इंजीनियर और उसकी हिन्दी शाखा के अध्यक्ष एवं सम्पर्क अधिकारी (हिन्दी) हैं। वे विभाग द्वारा भारत सरकार की वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दावली आयोग की इंजीनियरी विशेषज्ञ समिति के सदस्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निराशा

श्रीमगन अवस्थी

निराशा···निराशा···निराशा···निराशा !

इधर भी अँधेरा
उधर भी अँधेरा
न आलोक किंचित्
न मिलने की आशा ।

निराशा···निराशा···निराशा···निराशा !

पवन हाय सन सन
रहा चल है क्षण क्षण
विकटतम ये आँधी
न रुकने की आशा ।

निराशा···निराशा···निराशा···निराशा !

नहीं सूझता मग
चला जा रहा जग
प्रवाहों में बहते
न रुकने की आशा ।

निराशा···निराशा···निराशा···निराशा !

——

नामित हुए थे। वैज्ञानिक और तकनीकी विषयों पर
की पाँच मौलिक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं, जिनमें
दो पर राष्ट्रपति पारितोषिक और एक पर भारत सर-
र का पुरस्कार मिले हैं। इस प्रकार दोनों ही पुस्तकें
धिकारी विद्वान् और अपने विषय के विशेषज्ञ द्वारा
खी होने के कारण महत्त्वपूर्ण और प्रामाणिक जानकारी
तुत करती हैं।

'अचल सम्पत्ति का मूल्यन' में इस विषय की सभी
त्वपूर्ण बातों का समावेश किया गया है। भारतीय परि-
स्थितियों की दृष्टि से विषय का विवेचन करनेवाली ऐसी
री पुस्तक हिन्दी में नहीं है। इसमें मूल्यन का उद्देश्य, अर्थ,
धा-प्रणाली, नव-निर्माण की लागत, मूल्य ह्रास, भूमि का
ल्यन, मूल्यन और किराया, वर्षाधार-तालिकाओं आदि पर
स्तार से प्रकाश डाला गया है। आमतौर से जो जानकारी
ल्यन सम्बन्धी लम्बी-लम्बी तालिकाओं में मिलती है,
का समावेश कुछ छोटे-छोटे ग्राफों में करके लेखक ने
ल्यन की सारी क्रिया-प्रणाली ही बहुत सरल कर दी है।
ह-जगह उदाहरण और अन्त में हिन्दी-अंग्रेजी शब्दावली
ने से पुस्तक की उपयोगिता बहुत बढ़ गई है। फार्मूले
हिन्दी, अंग्रेजी दोनों में दिये गये हैं। इसमें सन्देह नहीं
राष्ट्रपति पारितोषिक से पुरस्कृत यह रचना तकनीकी
न्दी साहित्य की श्रीवृद्धि करती है।

दूसरी पुस्तक है 'सुखदायी निवास'। इसमें आवासीय
स्तुकला के मौलिक सिद्धान्त समझाये गये हैं। इसमें वास्तु-
कला का इतिहास, आवासीय वास्तु का विवेचन, नगर-
योजन तथा ग्राम-नियोजन सम्बन्धी पुरातन तथा आधु-
क सभी जटिल, सूक्ष्म और गम्भीर वैज्ञानिक विचार
यन्त सरल और सुबोध भाषा में प्रस्तुत किये गये हैं।
स्तु के व्यवहार-पक्ष पर विशेष बल देते हुए, भारतीय
स्थितियों, स्थानीय सामग्रियों और चिर-प्रचलित विधियों
दृष्टि से निर्माण में मितव्ययिता पर आदि से अंत तक
ध्यान दिया गया है, और अत्यन्त उपयोगी, सरल तथा व्याव-
हारिक, फिर भी अपने-आप में क्रान्तिकारी बहुत से विकल्प
प्रस्तुत किये गये हैं। एक कमरे, दो कमरों और तीन कमरों
के मकानों के नक्शे भी दिये गये हैं, जिनमें पाठक विचार
ग्रहण करके अपनी रुचि और आवश्यकता के अनुसार स्वयं
घर का नक्शा बना सकते हैं।

सभी प्रकार के भावों और विचारों की अभिव्यक्ति के
लिए हिन्दी की क्षमता और भारतीय साहित्य की सम्पन्नता
का पुष्ट प्रमाण हमें इन पुस्तकों से अवश्य मिलता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिलीपीन में रामकथा का रूपान्तर

श्री बाबूराम वर्मा

इन्दोनीसिया की भाँति फिलीपीन लगभग सात हजार एक सौ द्वीपों में फैला हुआ विस्तृत भू-भाग है। इन द्वीपों में से चार सौ चालीस द्वीप ही बड़े हैं, जिनमें लोग बसते हैं। इसका पूरा विस्तार लगभग ११५,७०७ वर्गमील तथा १९६० की जनगणना के अनुसार जनसंख्या २७,४५५,७९९ है। इसमें अनेक धर्मावलम्बी हैं, जिनमें मुस्लिम मतावलम्बियों की संख्या भी पर्याप्त है। फिलीपीन के इस नृवंश पर सबसे पहले और सबसे गहरा प्रभाव भारत के साहित्य एवं संस्कृति का पड़ा है। यहाँकी भाषा मलयी पौलीनीसियन वंश की है, जिसकी प्रमुख भाषा टॅगलाग यहाँ की राजभाषा है। इसके माराणाउ वर्ग की प्रचलित कथा का अध्ययन श्रीफ्रान्सिस्को ने किया है। उनका विचार है कि फिलीपीन के अन्य मुस्लिम मतावलम्बी वर्गों—मागिन्दनाव और सुलु—में संस्कृत प्रभावों का अध्ययन करना बहुत लाभप्रद होगा।

फिलीपीन की स्थानीय भाषा माराणाउ (Maranaw) में, जिसका संस्कृत प्रभावों की दृष्टि से श्रीफ्रान्सिस्को ने अध्ययन किया है, महाराजा लावन (रावण) नामक लघ रामकथा प्राप्त हुई। उसके सारांश पर आधारित रामकथा का परिचय हिन्दी-भाषियों के लिए रोचक होगा।

महाराजा लावन (रावण) पुलु बन्दियारमासिर के सुलतान और सुलताना का पुत्र था तथा उसके आठ सिर थे। उसे बहुत जल्दी क्रोध आ जाता था। इसलिए सारी सल्तनत उससे भय खाने लगी। लोगों ने उसके सुलतान पिता से उसकी शिकायत की। उसने क्रुद्ध होकर लावन को देश से निष्कासित करके पुलु नागर नामक द्वीप में भेज दिया। पुल नागर में लावन ने घोर तप किया तथा अल्लाह से प्रार्थनाएँ कीं। जिबराईल फरिश्ते की कृपा से उसका तप पूरा हुआ और उसे उस द्वीप से मुक्ति मिली। वह अपने पिता के राज्य को लौट गया और वे प्रसन्न होकर पुनः उस पर कृपाभाव बरतने लगे।

एक दूसरा राज्य था आगम निओग। वहाँ के सुलतान और सुलताना के पुत्र राजा मंगनदिरी (मंजुश्री) और राजा मंगनवर्ण (मंजुवर्ण) बड़े होकर जवान हो गये परन्तु फिर भी दोनों कुवाँरे थे। दोनों पुलु नावन्दाई के सुलतान और सुलताना की पुत्री मलैला तिहाइया को व्याहने जाने की तैयारियाँ कर रहे थे। दोनों दस वर्ष का खाने-पीने का सामान एक नाव पर लादकर उसके नगर की तरफ चले। मार्ग में नाव टूट गयी और समुद्र की शक्तिशाली तरंगों ने उन्हें उठाकर तुआन पुत्री मलैला तिहाइया के देश के तट पर पटक दिया। वहाँ कबायन नाम की बुढ़िया ने उनकी रक्षा की और इस दुर्घटना से ठीक होने तक उसने उनकी सेवा-सुश्रूषा की।

उस राज्य में रहते हुए सिप को ठोकर मार महल के स्त्री-निवास में पहुँचकर राजा मंगनदिरी ने तुआन पुत्री मलैला तिहाइया का परिणय किया। वधू के यहाँ कुछ समय रहने के बाद राजा मंगनदिरी और राजा मंगनवर्ण को घर की याद सताने लगी और उन्होंने घर लौटने की आज्ञा माँगी। यात्रा के लिए सभी आवश्यक साज-सामान, नौकर-चाकर साथ लेकर वे अपने घर के लिए चले। यात्रा के दौरान धान और मक्का उगाने के लिए वे कुछ समय एक जगह ठहरे भी रहे।

जब धान पकने को हुए तब एक दिन संध्या के समय राजा मंगनदिरी, राजा मंगन वर्ण और तुआन पुत्री मलैला गांडिङ ने धान के खेतों में एक सोने की सींगोंवाला हिरन चरते देखा। तुआन पुत्री ने उसे पकड़कर लाने का हठ किया, अन्यथा वह अपनी जान दे देगी। दोनों भाई हिरन पकड़ने चले। पहले मंगनदिरी गया और जाकर हिरन से कुश्ती लड़ने लगा। लड़ते-लड़ते थककर सहायता के लिए उसने अपने भाई मंगनवर्ण को पुकारा, जो उस समय अपनी भाभी की रखवाली कर रहा था। अपने स्वामी के मारे जाने की आशंका से उसने अपने देवर से जाने और उसकी सहायता करने का आग्रह किया। उसके पहुँचने पर उस हिरन के दो हिरन बन गये और दोनों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ई एक-एक हिरन के पीछे दौड़े। हिरन चक्कर काटता
ा और राजा मंगनवर्ण उसका पीछा करता-करता
ब अपने घर पहुँचा तब उसने देखा कि तुआन पुत्री मलैला
डिङ वहाँ नहीं है और लावन उसे उठाकर ले गया
। वह तुरन्त समझ गया कि महाराजा लावन ही उन्हें
खा देने के लिए हिरन का वेश धरकर आया था ताकि
मलैला गांडिङ के निकट पहुँचकर उसे उठाकर ले
ा सके।

इतना समझ जाने पर मगनवर्ण अपने भाई की खोज में
या जो दूसरे हिरन के पीछे लगा हुआ था। खोजते खोजते
गनदिरी नदी में गिर पड़ा और अचेत होकर नदी में बह
या। अचेत अवस्था में उसने स्वप्न देखा कि उसकी एक
राबाओ से लड़ाई हुई। कराबाओ ने अपना सींग उसके
ीर में घुसेड़ दिया और उसका एक अण्डकोश पूर्व की
रफ फेंक दिया। पूर्व की रानी पुत्री लंगवी ने उसे निगल
या और उसे गर्भ रह गया। बाद में उसने एक बानर
ज को जन्म दिया। उसे लक्ष्मण नाम दिया गया। इसी
मय मंगनवर्ण के आने से मंगनदिरी की नींद खुल गयी और
जा मंगनदिरी ने देखा कि वास्तव में उसका एक अण्डकोश
हीं है। मंगनवर्ण ने मलैला गांडिङ के हरण की कथा
सने भाई को बताई। दोनों बहुत दुखी हुए कि महाराजा
वन के साथ लड़ने के लिए, जिसके राज्य में राजकुमारी
दी हो गयी है, उनके पास न तो हथियार हैं न सेना।

दोनों भाई अपनी विपदा पर विचार कर रहे थे कि बानर
ज लक्ष्मण प्रकट हुआ और उसने मलैला गांडिङ की खोज
सहायता देने के लिए अपनी सेवाएँ प्रस्तुत कीं। मंगनदिरी
स्वप्न सच्चा निकला। काफी झिझकने के बाद दोनों भाइयों
लक्ष्मण की बात मान ली। वह अपने साथी मगर,
राबाओ और बानरों को तैयार करके राजकुमारी की
ज में निकल पड़ा। अपने पिता राजा मंगनदिरी की
ीढ़ी पर खड़ा होकर, जिसने यह जान लिया था कि
वह मेरा ही लड़का है, लक्ष्मण ने सागर पर छलाँग लगाई और जाकर राजकुमारी को ढूँढ़ लिया। लक्ष्मण ने देखा कि जब-जब महाराजा लावन मलैला गांडिङ की ओर बढ़ता है तब-तब उन दोनों के बीच आग प्रकट हो जाती है।

फिर महाराजा लावन और मंगनदिरी के समर्थकों में डटकर युद्ध हुआ। लावन की सेना मारी गयी तब वह भी युद्ध में उतर आया। वह मंगनवर्ण, मंगनदिरी और पुनः मंगनवर्ण से लड़ने लगा। उसने लावन को एक पत्थर पर रगड़ कर तेज किए हुए खड्ग से घायल कर दिया जिसके लिए भविष्यवाणी की गई थी कि इस पर घिस कर तेज किये गये शस्त्र से ही लावन का पराभव हो सकेगा। लावन जख्मी होकर भूमि पर गिर पड़ा।

जब सब कुछ शान्त हो गया और लावन न्यायपूर्वक राज्य करने लगा तब मंगनवर्ण और मंगनदिरी दोनों भाई, मलैला गांडिङ, लक्ष्मण और उनके नौकर-चाकर (अनुचर) आगम निओग की तरफ चल पड़े। वहाँ उनका आनन्द और हर्ष से स्वागत हुआ। लक्ष्मण रूप-परिवर्तित होकर रूपवान दतु (जादूगर) बन गया। उसके बाद सब हँसी-खुशी से जीवन व्यतीत करने लगे।

फिलीपीन में प्रचलित रामकथा का यह संक्षिप्त रूप है। इसके सरसरी पर्यालोचन से स्पष्ट है कि भारत में प्रचलित रामकथा से यह कितनी भिन्न है। श्रीफ्रांसिस्को ने अपने लेख 'संस्कृत इन फिलीपीन लैंग्वेज एण्ड लिटरेचर' में इसे देते हुए मलय की प्रचलित रामकथा—हिकायात श्रीराम, रामकथा पर आधारित मलय में प्रचलित एक परिकथा तथा बाल्मीकि रामायण से तुलना की है और उनके कथातत्त्वों का विवेचन किया है।

इस प्रदेश का ऐसा विस्तृत साहित्य दरंगेन है जिसका अध्ययन किया जा रहा है। यह अध्ययन पूरा हो जाने पर फिलीपीन साहित्य पर संस्कृत प्रभावों का मूल्यांकन और भी अधिक अच्छी तरह किया जा सकेगा।

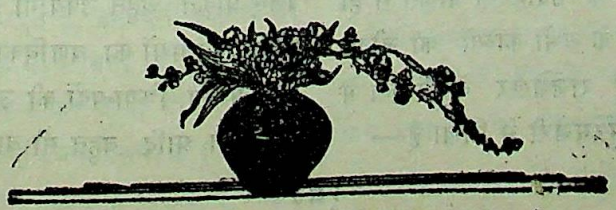

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राकृत का महत्त्व

श्रीविश्वनाथ पाठक

हमारे प्राचीन वाङ्मय की दो समानान्तर धाराएँ हैं—संस्कृत और प्राकृत। इन दोनों का परस्पर अटूट सम्बन्ध है। परन्तु प्राकृत संस्कृत की अपेक्षा सरल और सुबोध्य है। प्रकृति या स्वभाव से निष्पन्न भाषा प्राकृत कहलाती है। यही प्राकृत हिन्दी, बँगला, गुजराती, मराठी आदि प्रादेशिक भाषाओं की जननी है। महाकवि वाक-पतिराज ने 'गउडवहो' नामक काव्य में लिखा है कि जैसे समुद्र से वाष्परूप में जल बाहर निकलकर पुनः उसीमें प्रवेश करता है वैसे ही सभी भाषाएँ प्राकृत से उद्भूत होकर उसीमें विलीन हो जाती हैं—

सयलाओ इमं वाया विसन्ति एत्तो य णेन्ति वायाओ।
एन्ति समुद्दं चिय णेन्ति सायराओ चिय जलाइं॥

परन्तु हममें से कितने लोग प्राकृत के इस महत्त्व से परिचित हैं? कितने लोग उसके सूक्ति-सुधा-सिन्धु में अवगाहन करते हैं? इस समय तो उसके अध्ययन की शृंखला ही टूट चुकी है। अतएव यह वाणी विपुल साहित्य-संपत्ति-मंडित होने पर भी पांशु-पुंज-पिंजरित-विग्रहा, विलुलित-कुन्तला, वाष्पाकुलेक्षणा एवं परिक्षामवदना विधवा के समान अपने ही घर में अपमानित और उपेक्षित है। परन्तु इस देश के इतिहास ने वह भी समय देखा है जब लोगों के कंठों पर प्राकृत का ही साम्राज्य था और उसका महत्त्व संस्कृत से किंचिन्मात्र भी कम नहीं था। उसके साहित्योपवन में चतुर्दिक् किंजल्क-जाल बिखेरनेवाले ऐसे महकते काव्य-कुसुम हैं जिनका रस-पान कर आज भी सहृदय भ्रमर वृन्द आनन्द-विमुग्ध हो जाते हैं। संस्कृत साहित्याचार्यों ने अपने ग्रन्थों में ध्वनि नामक उत्कृष्ट काव्य के उदाहरण प्राकृत से ही दिये हैं। सुकुमारता ही प्राकृत के सभी काव्यों का जीवन है। उसी गुण पर मुग्ध होकर राजशेखर ने संस्कृत में पारुष्य का अनुभव करते हुए कर्पूरमंजरी में लिखा है—

परुसा सक्कअ-वन्धा पाउअबन्धो वि होइ सुअमारो।

मधुराक्षर, युवतीजन-वल्लभ एवं शृङ्गारपूर्ण प्राकृत काव्यामृत का पान कर लेने पर भला कौन संस्कृत पढ़ सकता है—

ललिए महुरक्खरए जुवईजणवल्लहे ससिंगारे।
सन्ते पाउअकव्वे को सक्कइ सक्कअं पढिउं॥

—वज्जालग्ग

इतना ही नहीं, संस्कृत की संस्कारोत्कृष्टता पर भी प्राकृत का ही प्रभाव है और प्राकृत पदों की छाया से ही संस्कृत पदों का लावण्य उन्मीलित होता है—

उम्मीलइ लायण्णं पयच्छायाए सक्कयवयाणं।
सक्कय सक्कारुक्करिसणे णं पययस्साबि पहावो॥

—गउडवहो

यही कारण है कि प्राकृत के अनेक शब्द संस्कृत में बिल्कुल घुल-मिल गये हैं। तितउ, आवुत्त (बहनोई), छुरिका (क्षुरिका), गोखुर, गल्ल, हाला, मरन्द, चन्दिर (चन्द्रमा), खिडक्किका (लघुद्वार) माकन्द (आम) आदि शब्द मूलतः प्राकृत के ही हैं।

पद्रहवीं शताब्दी तक प्रदेशीय भाषाओं का प्रमुख आश्रय प्राकृत ही थी। उनमें संस्कृत शब्दों का इतना बाहुल्य नहीं था, जितना आज है। प्राचीन व्रज और अवधी के काव्यों में असंख्य प्राकृत शब्द प्रयुक्त हुए हैं। पृथ्वीराज रासो आदि ग्रन्थों को तो केवल संस्कृत की सहायता से समझना भी कठिन है। अतः हिन्दी शब्दों की निरुक्ति के लिए प्राकृत बहुत उपयोगी है। हम उसकी सहायता से क्षेत्रीय भाषाओं का वर्णविकास-क्रम विभक्ति-प्राकट्य, देशी शब्द-प्रयोग, क्रिया-पदों की उत्पत्ति, तद्भव-शब्दों का अर्थ-परिवर्त्तन आदि बहुत सी बातों का ऐतिहासिक अध्ययन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकते हैं। हिन्दी छन्दों का उद्गम ढूँढ़ने के लिए भी प्राकृत-छन्दःशास्त्र का गम्भीर आलोडन करना आवश्यक है।

संस्कृत-रूपकों में महिलाओं और अधम पात्रों की भाषा प्राकृत ही होती है। भास, कालिदास, भवभूति, भट्टनारायण, हर्षदेव आदि यशस्वी नाटककारों की रचनाओं में अनेक हृदय-हृदयावर्जक संवाद एवं पेशल भावाभिव्यक्तियाँ प्राकृत भाषा में ही निबद्ध हैं। मृच्छकटिक में तो उसके अनेक अवान्तर भेदों का भी समावेश किया गया है। अतः जिनका लक्ष्य केवल संस्कृत पढ़ना है, वे भी प्राकृत को बिल्कुल छोड़ नहीं सकते।

साहित्यिक दृष्टि से भी प्राकृत पर्याप्त समृद्ध है। दो हजार वर्षों की साहित्यिक उपलब्धियाँ उसमें सुरक्षित हैं। आर्हतों के आगम, पुराण, ज्योतिष, आयुर्वेद, छन्द और अलंकार के प्रचुर ग्रन्थ उसमें विद्यमान हैं। 'लीलावई', 'पेमबन्ध', 'गउडवह', 'वज्जालग्ग' आदि की तुलना किसी भी भाषा के उत्कृष्ट ग्रन्थों से की जा सकती है। हम उन ग्रन्थों को अनूदित कर राष्ट्रभाषा की सम्पत्ति बना सकते हैं। 'वसुदेहिन्डी', 'कुवलयमाला', 'समराइच्चकहा', 'कुमारपाल प्रतिबोध', 'णाणपंचमीकहा', 'कहारयणकोस', 'कालकाचरिय कहाणय', 'तरंगलोला' आदि प्राकृत कथा साहित्य के भास्वर-रत्न हैं। हम आज उनका नाम तक नहीं जानते। जर्मन अंग्रेजी आदि यूरोपीय भाषाओं में इनके रूपान्तर हो चुके हैं। गुजराती में भी अनेक प्राकृत ग्रन्थों के अनुवाद प्रकाशित हो चुके हैं। परन्तु हमारी राष्ट्रभाषा हिन्दी अपने ही राष्ट्र की इस पुरानी सम्पत्ति से नितान्त अपरिचित है। क्या यह हमारे लिए लज्जाजनक नहीं है?

संस्कृत साहित्य में तो नगरों के ही अपरिमित वैभव के अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन मिलते हैं, किन्तु नगरों से बाहर गाँवों की चर्चा उसमें बहुत कम है। यदि हेमन्त की रातों में जहाँ कुहरे की परिधि में गेहूँ, चने और मटर के खेत ओस में नहा लेते हैं और जहाँ शीतल पश्चिमानिल के बरसते हुए तुषार से भुग्नग्रीव कुत्ते पैरों में पूँछ डाले हुए गुड़पाकशालाओं में भूँकते रहते हैं, उन घनी बँसवारियों से घिरे गाँवों में जीर्ण छप्पर के नीचे बिना खाये ही पुआल के ढेर पर सो जानेवाले ठिठुरते-काँपते, धूलि में सने, वस्त्रहीन किसानों के जीवन का करुण चित्र देखना है तो प्राकृत साहित्य अवश्य पढ़िये। वहाँ न विद्रुम के घर हैं, न वैदूर्य के कुट्टिम। न मेघों को चूमनेवाले सौध शिखर हैं, न गलियों के पार्श्व में अटारियों के वातायनों पर अपनी मुखकान्ति से चन्द्र को भी लज्जित कर देनेवाली मृदुहासिनी विलासिनियाँ। अपितु जीवन की कठोर यथार्थता विद्यमान है।

प्राकृत के ज्ञान के बिना हमारे देश का ऐतिहासिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक और भाषा-शास्त्रीय अध्ययन अधूरा है। उसमें विद्यमान शिलालेखों और साहित्य-ग्रन्थों में प्रचुर ऐतिहासिक उपकरण भरे पड़े हैं। हमारे लेखक यदि उनका उपयोग करते तो अब तक कितनी भ्रान्तियों का निराकरण हो गया होता। श्रमण संस्कृति के प्रतिपादक सभी ग्रन्थ प्राकृत एवं पालि में हैं। उनमें ज्ञानवर्द्धन की प्रभूत सामग्री बिखरी पड़ी है। हम उनका उपयोग कर इतिहास के टूटे तारों को जोड़ सकते हैं। इस विषय का जितना विश्वस्त और विस्तृत उपादान प्राकृत कथाओं में सुलभ है, उतना अन्यत्र कहीं मिलना बहुत कठिन है। इन कथाओं में प्राचीन जनपदों के शासन-तन्त्र, समाज संगठन, गृहस्थों के अर्थोपार्जन-साधन, वाणिज्य की स्थिति, धार्मिक सम्प्रदायों के सिद्धान्त, लोगों की जीवन-पद्धति, आध्यात्मिक-साधना-सरणि, वर्णों का परस्पर सम्बन्ध, विविध जातियों की रीति, शिक्षा की अवस्था और भाषाओं के विभेदों को जानने के लिए प्रचुर सामग्री भरी पड़ी है। उस सामग्री का उपयोग कर कोई भी विद्वान् भारत से सांस्कृतिक इतिहास का सर्वाङ्गीण चित्र बना सकता है।

हिन्दी और संस्कृत साहित्य की बहुत सी प्रवृत्तियों का उद्गम प्राकृत में ही मिलता है। कालिन्दी के किनारे कदम्ब कुञ्जों में विहरणशील राधा और माधव के पार्थिव प्रणयव्यापार का वर्णन पहले यहीं प्रारम्भ हुआ था। यहीं पहले पहल सहृदय कवियों द्वारा प्रवर्तित पीयूषनिष्यन्द निर्झर मुक्तक काव्य में परकीया को इतना प्राधान्य मिला कि वह आगे चलकर हिन्दी के रीतिकाल की एक विशेषता ही बन गया। संस्कृत पुराणों के अनेक अंश प्राकृत जैन पुराणों से प्रभावित हैं। प्राकृत रामायणों में वर्णित अनेक इतिवृत्तों को हिन्दी और संस्कृत के कवियों ने अपनाया है। रामचरितमानस का वस्तुविन्यास अनेक स्थलों पर विमलसूरि की परम्परा में होनेवाले कविराज स्वयंभूदेव प्रणीत अपभ्रंश रामायण का अनुसरण करता है।

खुले आकाश के नीचे, आँगन में बिछी शय्या पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वृद्धमातामही के पार्श्व में लेटे-लेटे, हमारे आग्रहशील बालक जिन्हें सुनते समय भोजन करना भी भूल जाते हैं उन प्राचीन लोककथाओं के मूल रूप आज भी प्राकृत में सुरक्षित हैं। गुणाढ्य प्रणीत 'वड्ढकहा' ऐसी कथाओं का बहुत बड़ा आकर था। उसके आधार पर संस्कृत में बहुत से काव्य और नाटक लिखे गये। 'वृहत्कथा मंजरी', 'कथा-सरित्सागर', 'कादम्बरी', 'रत्नावली', 'मालतीमाधव', 'द्वात्रिंशत्पुत्तलिका', 'वेताल पंचविंशतिका' प्रभृति अनेक ग्रन्थों की कथावस्तुएँ 'वड्ढकहा' से या तो ली गयी हैं या उससे प्रभावित हैं। जैनागमों, भाष्यों और टीका ग्रन्थों में आयी हुई कितनी दृष्टान्त-कथाएँ आज लोक-जीवन में बिल्कुल घुल-मिल गयी हैं। हाल-प्रणीत 'गाहासत्तसई' मुक्तक काव्य परम्परा का प्राचीनतम ग्रन्थरत्न है, जिसके प्रकाशपुंज से आज भी हमारी साहित्य-वीथियाँ प्रकाशित होती हैं। आनन्द वर्धन और मम्मट जैसे संस्कृत के साहित्याचार्यों ने भी उसके असामान्य काव्यत्व को स्वीकार किया है। उससे प्रभावित होकर आचार्य गोवर्धन ने संस्कृत में भी वैसा ही काव्य लिखने की इच्छा से 'आर्यासप्तशती' की रचना की। इसके पश्चात् तो सतसई साहित्य एवं शृंगार-प्रधान मुक्तक काव्य की परम्परा ही चल पड़ी। 'विहारी सतसई' इसी परम्परा का ग्रन्थ है। हाल के आदर्श का अनुसरण करनेवाले काव्यों में यह प्रमुख है। इसके अनेक पद्यों में प्राकृत गाथाओं के भाव ज्यों के त्यों आ गये हैं। 'रयण सेहरी' प्राकृत की सुन्दरतम कृति है। 'पद्मावत' और जटमलकृत 'गोरा बादल की वार्ता' के साथ उसका कथा-साम्य आश्चर्य-जनक है।

परन्तु यह अत्यन्त खेद का विषय है कि सांस्कृतिक दृष्टि से इतना महत्त्वपूर्ण साहित्य भी स्वतन्त्र भारत में नितान्त उपेक्षित है। न तो उसके पठन-पाठन का कोई प्रबन्ध है और न प्रकाशन का। शासन भी लोगों में उसके अध्ययन की रुचि उत्पन्न करने का कष्ट नहीं उठाना चाहता। जैन ग्रन्थागारों में हजारों हस्तलिखित ग्रन्थों को आज कीड़े खा रहे हैं। शिक्षा-क्षेत्र में उपयोग न होने के कारण अर्थ-लिप्सु प्रकाशकों में कोई भी उनको प्रकाशित करने का साहस नहीं करता। कतिपय धर्मप्रवण जैन विद्या संस्थानों के ही प्रयास से कुछ ग्रन्थ प्रकाश में आ सके हैं। हमारे विद्यालयों के पाठ्यक्रमों में प्राकृत का प्रवेश तक नहीं है। उत्तर प्रदेश के विश्वविद्यालयों में भी संस्कृत विश्वविद्यालय के अतिरिक्त और कहीं स्नातकोत्तर कक्षा तक उसके अध्ययन की कोई व्यवस्था नहीं है। कहीं हिन्दी साहित्य के पाठ्यक्रम में उसका स्वल्प समावेश कर दिया गया है तो कहीं संस्कृत पाठ्यक्रम में। प्राकृत भी स्वतन्त्र अध्ययन का विषय हो सकता है यह सोचने की फुर्सत किसी को नहीं है। इस समय यदि कोई प्राकृत पढ़ना चाहता है तो प्रकाशित ग्रन्थों का अभाव ही अन्तराय बनकर मार्ग रोक लेता है। अतः शासन का यह दायित्व है कि वह अपने व्यय से उसके साहित्य को प्रकाशित करवाने की व्यवस्था करे। अन्यथा हमारे राष्ट्र की यह विशाल सम्पत्ति धीरे-धीरे नष्ट होती जायगी।

वही राष्ट्र जगत् में दीर्घजीवी होता है जो अपनी संस्कृति की रक्षा करता है। साहित्य, संगीत और कला संस्कृति के अंग हैं। इन्हींसे मानव सभ्यता का प्रकर्ष सूचित होता है। अतः इनका पोषण समाज और राष्ट्र के विकास के लिए अनिवार्य है। आशा करता हूँ कि हमारे राष्ट्र के कर्णधार प्राकृत के महत्त्व को स्वीकार कर उसका संवर्धन एवं संरक्षण अवश्य करेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पं० ध्यानदास की स्मृति में

श्री भगवतीप्रसाद लडिया

पं० ध्यानदासजी इस संसार में नहीं रहे। किन्तु उनके द्वारा असम में स्थापित गोलाघाट, बरपथार, सरुपथार तथा अनेक अन्य विद्यालय और शिक्षण-संस्थाएँ हैं जो उनकी कीर्ति-स्तम्भ के रूप में स्थायी स्मारक हैं।

पं० ध्यानदासजी का जन्म सन् १८९२ ईस्वी के नवंबर महीने (संवत् १९४८) में बिहार प्रान्त के मुजफ्फरपुर जिले के दिस्तोलिया ग्राम के दीक्षित परिवार में हुआ था। पिता का नाम पं० मधुसूदन और माता का नाम बसंती देवी था। आपका जन्म का नाम रामसेवक था। बाद में सन् १९२५ में आपने गुरु सुखरामदासजी से दीक्षा लेने के पश्चात् अपना नाम ध्यानदास रखा। आपके गुरु खेतावाटी के लोहगिल नामक तीर्थस्थान के थे।

२५ वर्ष की वय में आप अपने एक रिश्तेदार के यहाँ कलकत्ते पहुँच गये। वहाँ देशबन्धु चितरंजनदास महोदय की कोठी पर महात्मा गांधी का दर्शन किया तथा उनके उपदेशों से प्रेरित होकर देशसेवा में लग गये। असम के कोकीरा नामक स्थान में आकर दो साल तक रहे और अपने गुरु से अनुमति लेकर शिवसागर, जोरहाट, तेजपुर होते हुए वापिस बिहार चले गये। वहाँ पर वे शिक्षा के प्रचार में लग गये। सन् १९३१ के सत्याग्रह आन्दोलन में कूद पड़े। प्रथम विहिया स्टेशन के पास सभा करने के अपराध में ९ महीने की सजा हुई। सन् १९३२ में कांग्रेस महासभा के गैर कानूनी ठहराये जाने पर कलकत्ता में महामना पं० मदनमोहन मालवीय की अध्यक्षता में कांग्रेस का अधिवेशन होने वाला था। गया स्टेशन पर उनकी गिरफ्तारी हो जाने पर उनके भाषण की प्रतियाँ छाप-कर ध्यानदासजी ने बाँटीं और प्रेस एक्ट के अनुसार पकड़ लिये गये। इस अपराध में कई महीने की सजा फिर भोगनी पड़ी।

सन् १९३४ में बिहार में भीषण भूकम्प आया। उसमें हजारों लोग मारे गये और लाखों व्यक्ति बे-घर-बार हो गये। इस संकट के समय देशरत्न बाबू राजेन्द्रप्रसादजी के आह्वान पर ध्यानदासजी भूकम्प-पीड़ितों की सहायता के काम में तन-मन से लग गये। इधर गांधीजी का ध्यान हरिजनों के सुधार एवं राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रचार की ओर गया। इस ध्येय को लेकर गांधीजी ने असम प्रान्त का भी भ्रमण किया था। वे १३ अप्रैल सन् १९३४ को गोलाघाट और १५ अप्रैल से १७ अप्रैल तक जोरहाट में रहे। वहाँ पर गांधीजी ने अपने एक भाषण में कहा कि मैं देखता हूँ कि असमिया भाषा तथा हिन्दी भाषा में काफी समानता है। जिस तरह हिन्दी भाषा में अनेक संस्कृत शब्द हैं उसी तरह असमिया भाषा में भी बहुत-से संस्कृत शब्द हैं। इसी कारण असमिया भाषा में दिये गये मानपत्र को मैं समझ सका। मैं असमिया भाषा की दिन-प्रतिदिन वृद्धि चाहता हूँ और साथ-साथ असमिया भाई-बहनों से राष्ट्रभाषा हिन्दी सीखने का अनुरोध करता हूँ।

गांधीजी की प्रेरणा से असम में हिन्दी पढ़ने की लोगों में इच्छा हुई। फलस्वरूप बाबा राघवदासजी के द्वारा असम में हिन्दी प्रचार का काम शुरू हुआ। पं० ध्यानदासजी ने गोलाघाट, पं० अम्बिकाप्रसाद त्रिपाठी ने जोरहाट एवं श्रीशिवसिंहासन मिश्र ने डिब्रूगढ़ में हिन्दी स्कूलों की स्थापना की। पं० ध्यानदासजी गोलाघाट को ही अपना कार्य-क्षेत्र बनाकर हिन्दी प्रचार के कार्य को सफल बनाने में जुट गये।

पं० ध्यानदासजी ने सन् १९३५ में हिन्दी विद्यालय की स्थापना समाज के प्रमुख स्व० शंकरचन्द बरुआ, बाबू बाँकेसिंह, श्रीराजेन्द्रनाथ बरुआ, श्रीगजानन्दजी जालान, श्रीइन्द्रचन्द लीला आदि महानुभावों के सहयोग से की। उस समय वहाँ पर हिन्दी माध्यम से शिक्षा प्रदान करने के लिए कोई संस्था नहीं थी। जब स्कूल को मिडिल का रूप दिया गया तब बैजनाथ ढंढारिया उसके अध्यक्ष एवं इन्द्रचन्द लीला मंत्री बनाये गये। हिन्दी हाईस्कूल (उच्च माध्यमिक विद्यालय) की स्थापना सन् १९४६ में समाजबन्धु स्व० बाबू गजानन्दजी जालान एवं उनके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिवार द्वारा निर्माण किये मकान में हुई। इसके अतिरिक्त बरपथार, सरूपथार, नाहरबारी तथा गोलाघाट के निकटवर्ती अन्य स्थानों में भी पं० ध्यानदासजी ने कई बुनियादी विद्यालयों की स्थापना की। वहाँ हिन्दी शिक्षा के साथ ही चर्खा तथा कताई एवं बुनाई का प्रशिक्षण दिया जाता था। सुदूर गाँवों तक में उन्होंने हिन्दी विद्यालयों एवं महाविद्यालयों की स्थापना कर हिन्दी प्रचार के साथ-साथ आदर्श शिक्षा देने का प्रबन्ध किया।

जन-साधारण में आप 'पण्डितजी' के नाम से ही परिचित थे। आपने उच्च शिक्षण-संस्थाएँ स्थापित कर छात्रों को हिन्दी माध्यम से पढ़ने का अवसर प्रदान किया। उस समय गोलाघाट में असमिया माध्यम से उच्च शिक्षा देनेवाले सरकारी स्कूल के अलावा कोई और अच्छी शिक्षण-संस्था नहीं थी। इस अभाव को दूर करने के लिए इसी स्कूल में हिन्दी तथा असमिया दोनों के माध्यम से उच्च शिक्षा देने की आपने व्यवस्था कराई। असम में अपने ढंग की यही एकमात्र शिक्षण-संस्था है। उन्होंने राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रचार के लिए शिक्षणकेन्द्रों तथा परीक्षा केन्द्रों की कई स्थानों में स्थापना की। आप असम राज्य राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के लगातार ८ वर्ष तक संगठन मंत्री रहे। अन्त तक आप कार्य-समिति के सदस्य रहे। बरपथार राष्ट्रभाषा परीक्षा केन्द्र के केन्द्र व्यवस्थापक भी रहे।

सन् १९४२ के आरम्भ में बर्मा पर जापानी आक्रमण से पीड़ित होकर हजारों की संख्या में भारतीय शरणार्थी वहाँसे भागकर मणिपुर होते हुए असम में आने लगे। उस समय 'पंडितजी' मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी के अनुरोध पर यहाँके कार्यकर्त्ताओं के दल के साथ डिमापुर, लामडिंग आदि स्थानों पर सेवाकार्य में जुट गये। इसके अतिरिक्त जहाँ कहीं भी सेवाकार्य की जरूरत होती थी वे अपनी निस्वार्थ सेवा प्रदान करते रहे। सन् १९४२ के 'भारत छोड़ो' आन्दोलन के समय जब देश के प्रायः सभी नेता अंग्रेज सरकार द्वारा पकड़ लिये गये तब पं० ध्यानदासजी ने असम में गुप्त रूप से स्वाधीनता आन्दोलन चलाने का प्रयास किया। कलकत्ते के श्रीभालचन्द्र शर्मा, श्रीभँवरलाल सिंघी आदि सेनानियों से आपने सम्पर्क बनाया और कलकत्ते से जो आन्दोलन सम्बन्धी साहित्य प्राप्त होता था उसका असमिया भाषा में अनुवाद कराकर सूदूर गाँवों तक वितरण करवाते थे। आन्दोलन में फरार अवस्था में रहने वाले क्रान्तिकारी श्रीशंकरचन्द्र बरुआ एवं बाबू बैकुंठ सिंह आदि से सम्पर्क रखकर उनकी सहायता करते थे। इसी प्रकार राजनीतिक मुकदमों में सहायता के लिए श्रीदोलेश्वर दत्त, बाबू मोहनप्रसाद राय एवं श्रीगजानन्द जालान के बराबर सम्पर्क बनाये रहे।

पंडितजी द्वारा स्थापित हिन्दी प्राथमिक विद्यालय को बाद में माध्यमिक विद्यालय के प्रबंध से अलग कर दिया गया। इस समय यह विद्यालय हिन्दी पुस्तकालय की जमीन पर है। इसको व्यापक रूप देने के लिए व्यवसायियों से चंदा संग्रह करके दुमंजिला भवन निर्माण किया गया है। इसमें बालिका विद्यालय एवं प्राथमिक विद्यालय का संचालन होता है।

ध्यानदासजी द्वारा रोपे गये विद्यारूपी इन पौधों के सहस्रों पुष्प विकसित हुए हैं। इन स्कूलों से निकले हुए छात्र सैकड़ों की संख्या में डाक्टर, इंजीनियर तथा अन्य बड़े-बड़े पदों पर आसीन हैं। हमारे केन्द्रीय मंत्री श्रीवेदव्रत बरुआ को पंडितजी ने ही हिन्दी पढ़ाई थी। इसी प्रकार आपके पढ़ाए हुए हजारों शिष्य हैं। आपके परिश्रम से जो जन हितकारी कार्य हुए हैं उनके लिए गोलाघाटवासी चिर-कृतज्ञ रहेंगे। आप आजीवन अविवाहित रहे। आप सादगी के अवतार थे। सर्व समुदायों के व्यक्ति आपके प्रति श्रद्धा रखते थे। आपकी शवयात्रा में हजारों व्यक्तियों ने सम्मिलित होकर अपनी श्रद्धांजलियाँ अर्पित कीं।

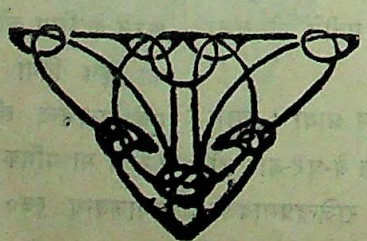

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह क्या था ?

विद्वान् श्री के० नारायणन्

शाम के साढ़े चार बजे मैं स्कूल से आया तो हमारे घर में कुछ नयी आवाजें सुनाई पड़ीं। मैं समझ गया कि घर के दायें भाग में, जो दो सप्ताह से खाली पड़ा था, कोई नये किरायेदार आ गये हैं।

कॉफी पीने के लिए रसोईघर की तरफ गया तो देखा कि माताजी के पास एक औरत खड़ी बातें कर रही है। मुझे देखते ही माँ ने कहा—"देखो बेटा, हमारे घर के नये किरायेदार के रूप में यह मामी रहने आयी हैं। नमस्ते करो।"

'नमस्ते।' कहते हुए मैंने उनकी ओर देखा। थोड़ी देर के लिए देखता ही रह गया। सोने जैसा दीप्त रंग, विशाल पानीदार आँखें, लम्बी, नुकीली नाक, मधु के प्याले के समान गाल, काले घुँघराले बाल, जिनमें से कुछ ललाट पर खेल रहे थे।

मगर यह वर्णन तो मैं अब कर पा रहा हूँ। उस समय तो मैं केवल दस साल का था। अतः उनके अंगों की सुन्दरता का अलग-अलग विश्लेषण उस वक्त मैं नहीं कर सकता था और यदि कोई दूसरा करता तो मैं समझ भी न सकता था। पर उन अंगों की सुन्दरता के समवेत प्रभाव ने मुझे हठात् आकर्षित कर लिया था। उसने मेरे दिल को जैसे झकझोर दिया।

मैं टकटकी बाँधकर देखता रह गया। मामी हँस पड़ीं। उस खिलखिलाहट में कैसी कशिश थी।

मामी सरल, सहज भाव से मेरे गाल पर हल्की चुटकी काटते हुए बोलीं—"कैसा प्यारा बच्चा है! किस दर्जे में पढ़ता है तू ?"

मैंने झेंपते हुए कहा—"छठी कक्षा में।" न जाने क्यों मामी द्वारा 'बच्चा' पुकारा जाना मुझे बहुत अखरा। मुझे अपने ही ऊपर गुस्सा आया कि मैं क्यों अब भी दस ही साल का और केवल छठी कक्षा में पढ़नेवाला था; क्यों न बड़ों के समान कॉलिज में पढ़ता था ? इसीलिए तो मामी मुझे 'बच्चा' पुकारती हैं। 'बड़ा' बनने की चाह मुझे इसके पहले कभी न हुई थी।

इस बीच माँ रसोईघर के अन्दर चली गयी थीं। वहाँसे उन्होंने पुकारा—"अरे मुन्ना! यहाँ काफी रखी है, आकर पी ले।"

मुझे बड़ी झुँझलाहट हुई। 'मुन्ना!'—चार बरस में भी मुन्ना! अब भी मुन्ना! क्या मैं हमेशा मुन्ना ही बना रहूँगा ?

मैंने निश्चय कर लिया कि माँ को समझाना चाहिए कि आगे से मुझे 'मुन्ना' कहकर न पुकारा करें।

कॉफी पीकर लौटा तो मामी ने मुझे उठाकर चूम लिया और पूछा—"नाम क्या है तेरा ?"

मेरा चेहरा संकोच के कारण सैकड़ों वक्र रेखाओं में सिकुड़ गया। शब्द निकलते ही न थे। फिर भी किसी प्रकार सँभलकर बोला—"कुमार।" मुझे लगा कि मेरे माँ-बाप मेरे लिए 'कुमार' से भी ज्यादा अच्छा नाम चुन सकते थे।

मैंने उनका नाम जानना चाहा, मगर पूछने की हिम्मत नहीं हुई। मुझे ऐसा जान पड़ा कि मामी सभी विषयों में मुझसे श्रेष्ठ हैं, भव्य हैं। उनके मुकाबले में मैं एक नाचीज मात्र हूँ। उनसे कुछ अंडबंड पूछकर अपने आपको उनकी नजरों में गिरा लेना मुझे गवारा नहीं था। मामी की नजरों में मैं जो कुछ भी था उसमें बट्टा लगने देना मुझे पसन्द नहीं था।

इस वक्त मेरा एक दोस्त मुझे बुलाने आया और मैं खेलने चला गया। किन्तु मेरा मन खेलने में बिलकुल न लगा। मामी की सूरत आँखों में बस गयी थी। उनकी ही बातें कानों में गूँजती रहीं।

मैं जल्दी ही खेल खतम करके घर लौटा—मामीजी से फिर मिलने की इच्छा से ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घर के अन्दर जाते ही मेरी आँखें मामी को ढूंढ़ने लगीं। मामी अपने घर पर थीं, उनकी आवाज वहींसे आ रही थी। मैं धीरे-धीरे वहाँ गया तो एक नये आदमी दिखायी पड़े। वे कुर्सी पर बैठे थे और मामी उन्हें पान दे रही थीं।

मामी ने मुझे देखते ही कहा—"आ कुमार, आ!" फिर वे उस नये आदमी की ओर मुखातिब हुईं—"यही पड़ोस का लड़का कुमार है जिसके बारे में मैं कह रही थी। कुमार, देख, ये ही तेरे मामा हैं।"

मामा! यानी मामी के पति। पति-पत्नी का सम्बन्ध क्या होता है, कितना गहरा होता है, इन बातों की स्पष्ट जानकारी न होते हुए भी मुझे इतना तो मालूम था कि पति का पत्नी पर हक होता है और वह उस पर अधिकार चला सकता है। मुझे उस आदमी से, जो मेरी मामी पर अधिकार चलाये, बड़ी नफरत हुई। साथ ही एक दूसरी तीव्र भावना भी—जिसे अब 'ईर्ष्या' समझ पाता हूँ—मेरे मन में उठी। मैं चाहता था कि मामी के प्रेम का पात्र एक मैं ही होऊँ और उन पर एकाधिकार हो मेरा ही।

मामा ने बड़े प्यार से मुझे अपने पास बुलाया और कहा—"आओ, कुमार, बैठो। सुनता हूँ तुम दर्जे में हमेशा अव्वल रहते हो। अच्छा, तुम्हें कौन-सा विषय पसंद है?"

मैं थोड़ी दूर पर ही खड़ा रहा।

मामा ने मुझे अपने पास खींचकर उठा लिया और गोद पर बिठा लिया। फिर वे मुझे बिस्कुट खिलाने लगे। उन्होंने मुझसे सहज भाव से कई प्रश्न किये। वैसे तो मैं कोई-न-कोई जवाब देता जा रहा था, पर आधे मन से। मामा के प्रश्न मुझे अखरते थे। ये कौन होते हैं मेरी बातें पूछनेवाले?

जब थोड़ी देर बाद मामा ने देखा कि मैं उनकी बातों में दिलचस्पी नहीं ले रहा, तो उन्होंने मुझे नीचे उतार दिया। मैं शीघ्र ही अपने घर चला आया।

× × ×

दूसरे दिन स्कूल में छुट्टी थी। मामा तो खा-पीकर दफ्तर चले गये, पर मैं घर पर रहा।

सबेरे नाश्ते के वक्त मैंने माताजी से कहा—"अम्मा, तुम आगे से मुझे 'मुन्ना' कहकर न बुलाया करो। मुझे वह पसन्द नहीं है।"

माँ चकित रह गयीं। उन्होंने पूछा—"क्यों? मैं तो सदा ही तुझे ऐसा ही पुकारती आयी हूँ!"

मैं बोला—"यही तो कह रहा हूँ। मुझे इस प्रकार बुलाया जाना पसंद नहीं है। मैं बड़ा हो गया हूँ न? बच्चा थोड़े ही हूँ।"

माँ के होठों पर हँसी की हल्की रेखा दिखायी पड़ी। 'अच्छा' कहकर वे अन्दर चली गयीं।

सबेरे लगभग ग्यारह बजे होंगे। मेरी छोटी बहन सरला और छोटा भाई केदार 'कैरम' खेल रहे थे। वे कुछ दिनों से मेरे साथ नहीं खेलते थे। इसका कारण यह था कि मैं यही चाहता था कि हमेशा मैं ही जीतूं। यदि कभी हार की संभावना दीखने लगे तो मैं नियमों के विरुद्ध खेलने लग जाता। इसका नतीजा झगड़े के सिवा और क्या हो सकता था?

केदार और सरला खेल ही रहे थे कि मामी घर का काम-काज खतम करके वहाँ आयीं। उन दोनों को 'कैरम' खेलते देखकर बोलीं—"कैरम? कितने दिन हो गये मुझे खेले। क्या मैं भी तुम्हारे साथ खेल सकती हूँ?"

केदार और सरला खेल में मामी के शामिल होने की बात से बहुत प्रसन्न हो गये। उन्होंने सहर्ष स्वीकृति दे दी। मामी भी खेलने बैठ गयीं पर चौथा स्थान खाली पड़ा था। इसलिए मामी ने मुझे पुकारा—"कुमार, तू भी खेलने आ जा न!"

मामी का यह निमंत्रण मुझे बहुत भाया। मुझे लगा मैं सम्मानित हुआ हूँ। मैं भी खेलने बैठ गया।

पर केदार और सरला चिल्ला उठे—"उसे खेल में शामिल नहीं कर सकते। बड़ा झगड़ालू है। नियमों को तोड़ता है।"

मामी मीठे स्वर में बोलीं—'झगड़ा क्यों करने लगा? वह तो बहुत अच्छा लड़का है। देखें तो सही, वह कैसे खेलता है।"

मेरा मन खिल उठा। जब स्वयं मामीजी मेरी तारीफ कर रही हैं तब इस बात की परवाह ही क्या कि दूसरे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोग क्या कहते हैं। मैंने केदार और सरला के कथन को झूठ प्रमाणित करने का निश्चय कर लिया।

हम खेलने लगे। सरला शिकायत करने लगी कि हम दोनों उन दोनों से बड़े हैं, इसलिए हमारी पार्टी अधिक शक्तिशाली हो गयी है। अतः मैं और सरला एक ओर और मामीजी और केदार दूसरी ओर बैठ गये।

मैं नियमसंगत रूप से, बड़ी सावधानी के साथ, खेलने लगा। मैं, जो खेलते वक्त हो-हल्ला मचाया करता था, आज बिलकुल चुप था और खेल में दत्तचित्त था। इसी कारण हमारी पार्टी का पल्ला भारी रहा और आखिर हमारी जीत की संभावना दीखने लगी। पर मामी का खेल भी गजब का था, वे भी हमारे बराबर पहुँच गयीं।

खेल निर्णायक अवस्था पर पहुँचा। बोर्ड पर हर पार्टी की एक ही गोट बाकी रह गयी थी। दोनों ही पक्ष अपनी-अपनी गोटों को थैली में पहुँचाने के लिए अत्यन्त सुविधाजनक स्थानों पर थे। जो अपनी गोट पॉकेट कर लेगा उसकी जीत सुनिश्चित थी। खेलने की बारी मेरी थी।

मेरी पार्टनर सरला साँस रोके मेरा खेल देख रही थी। उसकी तीव्र इच्छा थी कि हम जीत जायें। उसे पूरी आशा भी थी कि इतना अच्छा अवसर पाकर मैं नहीं चूकूंगा।

अब मेरे मन में हलचल होने लगी। यदि मैं सावधानी से खेलकर गोट पॉकेट करूँ तो मैं जीत जाऊँगा—यानी मामी हार जायेंगी। अपनी ही मान्यता के अनुसार मुझे यही सूझता आया था कि हारनेवाले बड़े दुःखी होंगे। तो क्या मैं मामी को दुःखी बनाऊँ ?

मैंने निशाना तो खूब साधा, लेकिन 'स्ट्राइकर' चलाते वक्त जान-बूझकर थोड़ा-सा दिशा-परिवर्तन कर दिया। 'स्ट्राइकर' गोट पर लगा पर गोट पॉकेट के अन्दर नहीं गयी।

सरला का चेहरा कुंभला गया। वह मुझे दोषी ठहराने लगी। केदार चिल्लाया—"हार्ड लक !" मगर मैं खूब जानता था कि वह मन-ही-मन खुश था।

मेरे बाद मामी के खेलने की बारी थी। उन्होंने अपनी गोट पॉकेट कर दी और उनकी पार्टी जीत गयी। यह पहला अवसर था कि मैं हारकर भी बहुत खुश था। वही मैं, जो अपनी जीत के लिए नियम-विरुद्ध खेल खेलने और झगड़ा करने के लिए बदनाम हो गया था।

× × ×

शाम की मनोरम बेला थी। सूरज की हल्की पीली किरणें अमलतास के फूलों पर पड़कर उनकी शोभा में चार चाँद लगा रही थीं। मैं अपने कमरे में बैठा खिड़की से अमलतास के फूलों की ओर देख रहा था। मुझे उनमें एक प्रकार की अनूठी, अवर्णनीय शोभा दिखाई दे रही थी। मेरे मन में यह विचार आया—"क्या ये फूल हमेशा ही इतने सुन्दर रहते आये हैं ? अब तक मैं इनकी सुन्दरता क्यों न पहचान सका था ?" मैंने अपने इस प्रश्न का समाधान भी आप ही ढूँढ़ लिया—"आखिर मैं इन फूलों की तरफ ध्यान देता ही कब था ?"

इसी वक्त पड़ोस से मामी के गाने की आवाज सुनाई दी। तानपूरे की झंकार में लीन होकर वे स्वाति तिरुनाल का यदुकुल का भोजी का पदवर्ण गा रही थीं—

'सामि निन्ने नम्मितिरा !'

मुझे संगीत में विशेष रुचि न थी। बल्कि यों कहिये थोड़ी नफरत ही थी। मगर उस दिन मैंने मामी के गायन में एक अभूतपूर्व आनन्द, एक अनोखी कशिश का अनुभव किया। उनकी मधुर आवाज सुनकर मेरे मन में कई भावनाएँ, जिनका कोई स्पष्ट रूप नहीं था, उठने लगीं। मेरे मन में एक प्रकार का उल्लास भर गया था, मानों मैंने कोई नयी चीज पायी हो। किन्तु इस उल्लास के साथ ही साथ मैंने अपने मन के अन्तरतम कोनों में एक अकथनीय वेदना, एक अजीब-सी टीस भी महसूस की। गाने के स्वरों के ऊँचे होते-होते मुझे ऐसा प्रतीत होने लगा कि मैं अनन्त नीलाकाश में कहीं दूर उड़ता चला जा रहा हूँ और गाने की आवाज किसी अज्ञात स्थान से गूंज रही है। मेरे नयन कहीं दूर उलझ गये और मैं कल्पना-लोक में खो गया।

सहसा जूतों की आवाज सुनकर मेरी तन्द्रा टूटी। मामा दफ्तर से आ चुके थे। वे मेरे लिए उपहारस्वरूप एक रंगीन पुस्तक लाये थे। उन्होंने मेरे पास आकर पुस्तक को बड़े प्रेम से मेरे हाथ में रख दिया। फिर बोले—"क्यों कुमार, शाम का वक्त है, क्या थोड़ी देर बाहर घूम आवें ?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मगर मुझे उनका आना बहुत अखरा। मैं उन्हें अपना प्रतिद्वंद्वी समझने लग गया था। प्रतिद्वंद्वी से कोई उपहार स्वीकार करना मुझे पसन्द न था। मैंने पुस्तक मेज पर रख दी और यह कहते हुए उठा—"मुझे खेलने जाना है।"

लेकिन मैं खेलने नहीं गया। मैदान के पास के पार्क में एक बेंच पर बैठ गया और न जाने किन-किन विचारों में खो गया। समय सरकता गया। मुझे समय का कोई ध्यान ही न रहा। आखिर जब दूर किसी घड़ी से सात बजने की ध्वनि सुनाई दी तब चौंककर उठा और पार्क छोड़कर मैंने घर की राह ली।

× × ×

अगले कुछ दिनों के अन्दर मुझमें कई परिवर्तन हो गये थे। मैं अब तक पहनने-सजने में बिलकुल लापरवाह रहता था। मेरे बाल हमेशा अस्तव्यस्त रहते थे। अब मैं सुचारु रूप से पहनने लगा। बाल नियमित रूप से सँवारने लगा। प्रसाधन वस्तुओं से भी मुझे लगाव होने लगा। मुझे हर चीज में नयी चमक, नया आकर्षण दिखाई देने लगा। मेरे मन में ऐसा भी भाव होने लगा कि मैं भी कुछ हूँ, लोगों को चाहिए कि मुझे मामूली लड़का नहीं समझें, मेरा ज्यादा आदर करें।

माँ की बातों से मैं समझ सका कि मामीजी का नाम 'कमलाक्षी' था। (मामा का नाम जानने या याद रखने की मैंने कोशिश ही नहीं की।) वैसे तो यह बहुत ही सुप्रचलित और आम नाम था और मैं ऐसे पुराने, घिसे-पिटे नामों की हँसी उड़ाया करता था, पर अब उस नाम में एक प्रकार की भव्यता, एक प्रकार की दिव्यता जान पड़ने लगी।

माँ ने कहा कि मामा और मामी का विवाह हुए पाँच साल बीत चुके हैं, फिर भी उनके कोई संतान नहीं है। शायद इसी कारण मामा मुझसे अतिशय प्यार दिखाते थे, पर मैंने उनके प्यार को कभी स्वीकारा ही नहीं। मुझे अपेक्षा थी केवल मामी के प्यार की।

दो सप्ताह बीत गये। सहसा एक दिन मालूम हुआ कि मामा का तबादला हो गया है और मामा व मामी अगले दिन ही हमारा घर छोड़कर जानेवाले हैं। मुझ पर मानों वज्र टूट पड़ा।

मामी ने जब मुझसे विदा ली तब मेरा गला भर आया। ऐसा लगा मानों हृदय से कोई चीज ऊपर उठकर गले में अटक गयी हो। कुछ बोल न पाया। फूट-फूटकर रोने लगा। हठ करके रोना-झगड़ना मेरे लिए मामूली बात थी, पर यही पहली बार थी जब मैं दुःख के कारण रोया था।

मामी चलीं गयीं। कई हफ्ते तक मैं खोया-खोया रहा। मेरा मन उचट गया था। घर, सड़क, स्कूल, मैदान-सभी वीरान-से लगे। मुझे फिर पुरानी हालत पर पहुँचने के लिए कई दिन लगे।

× × ×

अब पैंतीस वर्ष लुढ़क गये हैं। अब मैं विवाहित हूँ, मेरे बाल-बच्चे हैं, सभी दृष्टियों से सुखी व समृद्ध हूँ। मगर मेरे मन में एक प्रश्न है जिसका हल आज तक नहीं ढूंढ़ सका।

कमलाक्षी मामी के प्रति मेरे मन में जो भाव उठा था उसका नाम क्या है?

यह सुनिश्चित है कि यह मातृप्रेम के समकक्ष रखा जा सकनेवाला प्रेम नहीं था। मेरी माता मुझे अत्यन्त लाड़-प्यार से पालती थीं। अतः यह मुमकिन नहीं था कि मुझे मातृप्रेम की भूख रही हो और कमलाक्षी मामी ने उस क्षति की पूर्ति की हो।

क्या वह भाई का बहन से प्रेम था? यह भी असंभव था क्योंकि मेरे अपनी छोटी व बड़ी बहनें थीं और उनसे मेरा जो प्रेम का भाव था वह कुछ भिन्न ही प्रकार का था। अपनी बहनों से किसी दूसरे को बातचीत करते देखते वक्त मुझे ईर्ष्या नहीं होती थी, पर मामीजी को मामाजी के साथ बातचीत करते देखकर मुझे बड़ी ईर्ष्या हुई थी।

और मेरे वे विचित्र भाव····मेरे रहन-सहन और बर्ताव में वे अजीब परिवर्तन·····!

अब इतने वर्षों के बाद भी मुझे उन दिनों के अपने भाव व विचार याद हैं। पर अब बिना किसी बेचैनी या उत्तेजना के, तटस्थ रूप से उनका विश्लेषण कर सकता हूँ, जो उन दिनों संभव नहीं था। किन्तु अब भी ठीक-ठीक हल नहीं कर पाया हूँ कि वह भाव क्या था। कृपया कोई बताये, वह क्या था?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्कस : राष्ट्र-जीवन की एक विशिष्ट आवश्यकता

डॉ० स्वर्णकिरण

राष्ट्रीय जीवन-उन्नयन के क्रम में शारीरिक विकास चेतना का जितना स्फुरण सर्कस से होता है उतना वद अन्य किसी माध्यम से सम्भव नहीं है। सर्कस प्रत्य- आनन्द-प्राप्ति का साधन है। यूनान के प्रसिद्ध दार्श- प्लेटो ने काव्य अथवा साहित्य के आनन्द की उपमा र्कस' देखने के आनन्द से दी थी। सर्कस विभिन्न प्रकार कसरत, विभिन्न प्रकार के अभ्यास, विभिन्न प्रकार के -प्रशिक्षण, विभिन्न प्रकार की कला-साधना आदि का ामूहिक नाम है—जहाँ बालक एवं बालिका, पुरुष एवं ी, हिंस्र पशु एवं पालतू पशु सब अपनी साधना के त्कार दिखला सकते हैं, सब अपने असाधारण अभ्यास कारण दर्शकों को चौंकाते हैं। सर्कस असाधारणता, दैवी त्कार, जादुई साधना का सामूहिक नाम है।

सर्कस की विभिन्न कोटियाँ हैं, विभिन्न रूप हैं। छोटे र्कस में कम कलाकार रहते हैं, बड़े सर्कस में अधिक लाकार, अधिक सहायक, अधिक सहयोगी। यों प्रत्येक र्कस में रस्से या तार का प्रयोग होता है। उस पर आदमी लता है, नट करतब दिखलाता है। कभी-कभी बकरा या करी को तार पर चलाते हुए दिखलाया जाता है। प्रत्येक र्कस में साइकिल का अभ्यास दिखलाया जाता है। एक हिये की साइकिल, दो पहिये की साइकिल, तरह-तरह से ड़-भरोड़कर उसको चलाने का अभ्यास, इत्यादि। प्रत्येक र्कस में छोटी बच्ची, छोटे बच्चे; बड़ी बच्ची, बड़े बच्चे; ूती स्त्री, युवक पुरुष की असाधारण कसरतें हम देखते हैं हर तरह से अपने ऊपर दूसरे को उठाने, बिठाने का भ्यास, गिराने, उछालने का अभ्यास, इत्यादि। प्रत्येक र्कस में कुछ जादू का कार्य भी दिखलाया जाता है। यथा ीनी सर्कस में एक बड़ी बाल्टी के पानी को पी जाना र मुँह से पानी निकालकर बाल्टी को भर देना। प्रत्येक र्कस में कुछ निशाने का अभ्यास, कुछ गोले आदि उछा- का अभ्यास, कुछ झूले का अभ्यास, कुछ शारीरिक ों की असाधारणता का चमत्कार इत्यादि प्रदर्शित ता है। प्रत्येक सर्कस में बाघ, सिंह, हाथी, घोड़े आदि का खेल दिखलाया जाता है। यंग बंगाल, ह्वाइट वे, ग्रेट बाम्बे, जेमिनी, भारत आदि विभिन्न सर्कसों को उदाहरण के रूप में यहाँ प्रस्तुत किया जा सकता है। पर सब में कुछ न कुछ निजी विशिष्टता भी देखी जा सकती है। जेमिनी सर्कस जहाँ जादू-टोने के कारण अधिक प्रसिद्धि पा सका है, ग्रेट बाम्बे असाधारण शारीरिक कसरतों के कारण यशस्वी हुआ है, अलंकार सर्कस जानवरों को प्रशिक्षित करने, उनके द्वारा आज के आदमियों को सबक सिखलाने के कारण नाम पा रहा है; उदाहरणार्थ, हाथियों के द्वारा गणेश पूजा, हाथियों का सिलिंडर लुढ़काते हुए आदमी की तरह चलना, हाथियों का फुटबॉल खेलना, घोड़ों का अभ्यास, बकरे का तार पर चलना-घूमना, बाघों का पंजे के बल तिपाई पर बैठना, इत्यादि। आज के युग में जो काम आदमी को करना चाहिये वह जानवर करे, जो काम जानवर करता है, आदमी देखकर भी अनदेखा करे, नहीं देखने का नाट्य करे, यह कौतूहल का विषय है। कहते हैं, ग्रेट बाम्बे सर्कस की प्रसिद्धि विश्व भर में है।

कहा जाता है कि सर्कस का कलाकार साधारण व्यक्ति नहीं होता। जॉर्ज लेबोर्न (Geoge Ley Bourne) ने एक सर्कस के कलाकार के सम्बन्ध में कहा है :—

He'd fly through the air with the greatest of ease,

This handsome young man on the flying trapeze;

His movements were graceful, all girls he could please,

And my love he purloined away !

[The Man on the Flying Trapeze]

अर्थात् सर्कस का वह कलाकार आसानी से हवा के सहारे उड़ेगा। वह सुन्दर युवक झूलते हुए तार के खम्भे पर चढ़ेगा। उसके कार्य कलाप सुन्दर सिद्ध होंगे, वह सभी लड़कियों को प्रसन्न करेगा और मेरे प्यार को अपहृत कर लेगा।

निस्संदेह सर्कस के कलाकार में असाधारणता होती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। पर यह असाधारणता आसमान से नहीं टपकती, अभ्यास से निःसृत होती है। कोई भी व्यक्ति अपने मनोबल को जगा कर, अपनी आत्मा की शक्ति को पहचानकर, अपने इष्ट-देव की सहायता लेकर, अपने श्रद्धा-भाव को उद्बुद्ध कर, अपने भय को पराजित कर, अपने समय को समझकर अपने को आगे बढ़ा सकता है, अपने को ऊँचा उठा सकता है, अपने को चमका सकता है, अपने को एक मानक के रूप में ढाल सकता है। ईश्वर के कारखाने से मनुष्य ढलते हैं, पर मनुष्य अपने को सर्कस के कलाकार के रूप में प्रस्तुत करने का यदि व्रत ले ले तो निश्चय ही अपने को सर्कस के कलाकार के रूप में प्रस्तुत कर सकता है।

सर्कस श्रम की प्रतिष्ठा को रेखांकित करता है। आज के युग में जहाँ हम कामचोर बन गये हैं, बन रहे हैं, भाग्यवाद की डोर पकड़कर धीरे-धीरे कदम बढ़ा रहे हैं, अपने पुरुषत्व के प्रति विश्वस्त नहीं हैं, अपने भुजबल के प्रति आशंकित हैं, लूट-मार करके, नोच-खसोट कर किसी तरह पेट पाल रहे हैं वहाँ 'सर्कस' प्रेरणा-पुंज के रूप में हमें सावधान करता है और दूसरे की चीज को छीनकर खाने की तुलना में अपने शरीर, अपने दिमाग, अपने भुजबल के सहारे कमाकर खाने पर जोर देता है। यह राष्ट्रीय स्वास्थ्य सम्बन्धी कार्यक्रम में योगदान देता है यद्यपि सरकार की ओर से इस ओर असावधानी बरती जाती है। सरकार राष्ट्रीय स्वास्थ्य सप्ताह या स्वास्थ्य कार्यक्रम में करोड़ों रुपये व्यय करती है यद्यपि परिणाम के रूप में कुछ भी सामने नहीं आता। सर्कस के आयोजक, सर्कस के व्यवस्थापक अपने पुरुषत्व के सहारे जनता के मनोबल को ऊँचा करने का प्रयास करते हैं और जनता के स्वास्थ्य को ऊँचा उठाते हैं। निस्संदेह राष्ट्रीय स्वास्थ्योत्थान के कार्यक्रम में सर्कस के कलाकारों के योगदान का परीक्षण—मूल्यांकन सरकार के द्वारा होना चाहिए।

अलंकार-सर्कस के सचिव अमरेंद्रनाथ सिन्हा का कथन है कि केन्द्रीय सरकार अपने खर्चे से पूना में फिल्म व्यवसाय के संरक्षण एवं विकास के लिए एक संस्था चला रही है पर शारीरिक विकास की कला—सर्कस के संगठन एवं विकास के लिए उसने अब तक कुछ भी नहीं किया गया है। केन्द्रीय सरकार प्रायः प्रत्येक वर्ष फिल्मी कलाकारों को पुरस्कार देती है, उनके सम्मानार्थ उत्सव मनाती है पर भारतीय सर्कस के खेल के किसी भी कलाकार को अब तक न कोई पुरस्कार मिला है न कोई उत्सव ही मनाया गया है। यह अत्यधिक शोचनीय है। निश्चय ही सिनेमा जगत् की तरह सर्कस में 'सेक्स' का प्रदर्शन अभीष्ट नहीं है अपितु 'सेक्स' का संयम अभीष्ट है। कौन कह सकता है कि सर्कस की युवती का मांसल शरीर दर्शक की वासना या भोगवृत्ति को उकसाता है, शरीर को मांसल, पुष्ट एवं सुन्दर बनाने को प्रेरणा नहीं देता। फिल्म के जोकर की तरह सर्कस के जोकर हास्य-विनोद के छींटे मारते हैं, व्यंग्य करते हैं। अश्लील शब्दावली को सामने रखते हैं, चूतड़ पर बजनेवाली छड़ी लगाते हैं, पर यह सब तो मानसिक तनाव कम करने के लिए होता है, कलाकारों को किंचित् आराम पहुँचाने के लिए किया जाता है।

सर्कस, थियेटर या संगीत कम्पनी की तरह केवल दर्शकों मनुष्यों की रागवृत्ति को ही नहीं उकसाता अपितु उनके भीतर के पुरुषत्व को उकसाता है, उद्बुद्ध करता है। यह भाग्यवाद के बदले कर्मवाद का कंबुघोष करता है। यह अपने शरीर के माध्यम से दूसरे के शरीर को स्वस्थ, सुन्दर एवं उन्नत बनाने का प्रयत्न करता है। सर्कस का आयोजन एक-दो व्यक्तियों के बूते की बात नहीं है, अनेक लोगों का सहयोग, सह-भाव, सह-संकल्प इसके लिए आवश्यक है। यह चिन्ता की बात है कि सरकार का ध्यान सर्कस जैसे महत्त्वपूर्ण विकास-माध्यम, राष्ट्रीय जीवन के उन्नयन के ठोस आधार की ओर नहीं जा रहा है। सर्कस राष्ट्र-जीवन के लिए विशिष्ट आवश्यकता है। हिंस्र पशुओं को अहिंस्र के रूप में रखने का अभ्यास, अहिंस्र पशुओं से मनुष्य की तरह काम लेना—उनकी समझदारी को मनुष्य मात्र के लिए चिंतन, मनन का आधार बनाना, उनके माध्यम से मनुष्य के कुकर्म, मनुष्य के दुर्व्यवहार, मनुष्य की मूर्खता पर कशाघात करना सर्कस के आयोजक अथवा व्यवस्थापक का अभीष्ट है। सर्कस के कलाकार, सर्कस के आयोजक, सर्कस के व्यवस्थापक पुरस्कार एवं प्रोत्साहन के सर्वथा योग्य हैं, प्रशंसा के पात्र हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह मिनिस्टर था

श्री श्रीकान्त चौधरी

प्रदेश में एक मुख्य मंत्री होता है। केन्द्र में कई मंत्री हैं और आम चुनावों में तो सैकड़ों मंत्री आते हैं।

इस आम चुनाव में उसने कानून की पकड़ से परे कई रूह के अवैध तरीके अपनाये थे। जनहित और समाजवाद का चौखटा चढ़ाकर वह अपने चुनाव क्षेत्र में गया था। कड़ों सरकारी जीप, कारें धूल से बादलों को ढक देना चाहती थीं।

वह मिनिस्टर था।

× × ×

सूखाग्रस्त इलाका। चारों ओर दरकी हुई धरती के कैनवास पर मानव पशु के अस्थिपंजरों की पेंटिंग की थी कृति ने। जब लाशों के बाजार सजने लगे उसे आना पड़ा फेरा करने। पद की नियति थी। आग उगलते सूरज और अंगारे-सी तपती धरती पर सिंकते ३-४ मानव देहधारी प्राणियों, ७-८ पशुओं और साथ आये २० आफीसरों के समक्ष उसने जोरदार आश्वासन दिये थे। जब लौटा तब पसीने से कपड़े भीग चुके थे। प्यास से कंठ सूख चुका था। साथ लायी कोल्ड ड्रिंक की बोतलों के कार्क बाहर पड़े थे। उसे झुँझलाहट हुई थी—आज भी देश अर्धसभ्य है, लोगों को मरने की जगह तक की तमीज नहीं।

वह मिनिस्टर था।

× × ×

उसके अपने क्षेत्र में धर्म को सार्थकता देने के हेतु अधर्म की खूनी होली खेलनी पड़ी थी कुछ धर्माधिकारियों को। लगातार समाचार आ रहे थे। अखबारों की काली स्याही के शीर्षक धरती के गहरे-लाल होने, मांस के लोथड़ों से दल भर जाने के सजीव परिचायक थे। मानवता और धर्म के ये पक्षधर किस हद तक मानव हैं। क्या सचमुच है? वह नहीं समझ पाया। दुःख, शर्म, ग्लानि से गड़ गया वह। दंगे शांत होने पर कहा था—'दंगे राष्ट्र के नाम पर कलंक हैं। हिंसा हिंसा को जन्म देगी।' ठंडी राख और छिन्न-भिन्न ढाँचों पर दो बूंद आँसू उसने भी बहाये थे।

वह मिनिस्टर था।

× × ×

डूबते सूरज का मटमैलापन आ गया था उस दिन उसके चेहरे पर, जब चीफ मिनिस्टर ने उसे निजी कक्ष में बुलाकर समाचारपत्र दिखाते हुए कहा था—'यह सब क्या है? सरकार की प्रतिष्ठा तुम्हारी रंगीन रातों से अधिक महत्त्वपूर्ण है। करने का यह तरीका है! मेरा नाम आया आज तक अखबार में? जो भी करना है सभ्य आदमी की तरह करो! उसने गिड़गिड़ाकर क्षमा माँगी थी।

वह मिनिस्टर था।

× × ×

सुंदर समाजवादी जनहित की ब्लेड से शेव्ड मुखौटे पर उस दिन विरोधी नेता ने आरोपों के नाखून मार दिये थे। 'क्या यह सत्य नहीं कि आपने अपने भतीजे को ५ लाख का सरकारी ठेका दिलवाया, जब कि सरकार ने उसे ठेका देना अवैध घोषित किया है? धोखा-धड़ी और लूट के कई मुकदमे उस पर चल रहे हैं।' विरोधी नेता ने कई दस्तावेज और उसके हस्ताक्षरों से युक्त फोटो-कापियाँ सदन में रखी थीं। एक क्षण को उसे लगा कि मिनिस्टरी के सिंहासन को गटर में फेंक दिया गया है। परन्तु पुराने संस्कार दूसरे ही क्षण सामने आ गये। 'मैं त्यागपत्र देने को तैयार हूँ—यह झूठ है, विपक्षी नेता मुझे फँसाना चाहते हैं।' वह मुस्कराया था।

वह मिनिस्टर था।

× × ×

किस कठिनाई से कठोर राशनिंग, कंट्रोल और प्रतिबंधों के समय उसने अपने परिवार को १०-१५ वर्षों के लिए खाद्यान्न और अन्य सामग्री भिजवाई थी—यह वही जानता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह मिनिस्टर था।

× × ×

आलीशान भवन और राजसी शानशौकत के बावजूद वह दुखी था। अशान्ति और अव्यवस्था, हिंसा और असंतोष से उफनते विद्रोह! महीनों से मिलों की चर्खियाँ और आफिसों की कलमें चलना बंद थीं। लाठी-गोली और अश्रुगैस से समूचा प्रदेश स्वयंवर मंडप की तरह आच्छादित था। उसका मन विरक्त हो विदेश जाने को हो गया। कभी वह भी शहर की एक साधारण चाल में रहता था, अपनी चप्पलों को घिसता, रूखे बालों की फसल लिये नंगी धूप में नहाता और चाँदनी रातों को ओढ़कर सोता था—बेखबर! तब वह ३०वर्षीय सीधा-सादा शरीफ युवक था। अब वह ७०वर्षीय युवक नेता है। कैसे जाय उस वातावरण में। मोटर, बँगले, परमिट, लायसेंस, अभिनंदन और पद ने उसके हाथ-पैर जकड़ रखे थे।

वह मिनिस्टर था।

× × ×

आज उसके भाई-भतीजे ऊँचे पदों पर हैं। विरोधियों का पत्ता कटवाकर संस्था, सभा-समितियों में अपने समर्थक, छुटभैंये, चमचे और अपने आदमी भरकर उसने एकता और पवित्रता का समावेश किया था। आखिर वे सब भी तो इसी देश के नागरिक हैं। उसने देश की सेवा की। फाइलों के ढेरों, स्मृति-पत्रों, माँगपत्रों, चेतावनियों आदि से ऊबकर वह मनोरम ठंढे प्रदेशों में समस्याएँ हल करने चला जाता था।

वह मिनिस्टर था।

× × ×

भाई बड़े सरकारी ओहदे पर था। ३ साल में ही १० लाख की जायदाद हो गयी थी उनके पास। विरोधी अफसरों ने ईर्ष्यावश उन्हें गबन, घपलों, रिश्वत आदि के षड्यंत्र में फाँस दिया। एक तरफ मानवीय रिश्ते-नाते, दूसरी ओर तीसरे-चौथे वर्ग के अनशन-प्रदर्शन, माँगें और माँगे! उसने मानवीय रिश्ते को चुना। भाई बेदाग निकला। फर्ज पूरा हुआ।

वह मिनिस्टर था।

× × ×

अभिनंदन, उद्घाटन और शिलान्यास! कितने अमृतमय, माधुर्य और उल्लास से नहाए वे अविस्मृत क्षण! ऊँचे मंच पर बिछे कालीन में धँसते उसके चरण-कमल मानों आकाश की अनंत ऊँचाई नापते थे। कैमरों के फ्लैश लाइट उसकी जिन्दगी को कहीं अधिक चमकदार बनाते थे। अभिनंदन के शब्द उसके कानों में चाँदी की घंटियों सी मधुर ध्वनि पैदा करते। लगता उसके चरण-कमलों से लेकर कर-कमलों और मुख-कमल तक पर चाँदी का वर्क लिपट गया है। फीते को काटते समय उसे एहसास हो जाता कि शोषण, भूख, गरीबी की पर्तों को उसने काट फेंका है। शिलान्यास के वक्त वह सोचता—मैं स्वयं स्टेच्यू हूँ जहाँ लाखों की भीड़ प्रार्थना की मुद्रा में खड़ी है।

वह मिनिस्टर था।

× × ×

वह साहित्यिक गोष्ठियों, परिचर्याओं और सम्मेलन आदि में भाषण देता तो साहित्यकारों को नये-नये शब्द, अर्थ और समूचा साहित्य ही नया मालूम पड़ता। वे उसका अर्थ—भावार्थ समझने के लिए सिर धुनते रहते।

वह मिनिस्टर था।

× × ×

आज बँगला, मोटरकार आदि मंत्रित्वकाल की विरासत के रूप में खड़े हैं। पर कहीं कोई उद्घाटन-शिलान्यास अभिनंदन नहीं। लगता है जैसे किसी ने उसे अंदर से कैंची से काट दिया है, मालाओं से उसकी गर्दन कस दी है। कल तक हजारों उसके आगे-पीछे चलते थे। आज भी चलते हैं मगर उसके पीछे नहीं। जमानत जप्त हो गयी। मिनिस्टरी के उद्यान से सड़े हुए फूल की तरह वह बाहर फेंक दिया गया।

पद से व्यक्ति कितना सम्मानीय, नेतृत्वशाली, सुसंस्कृत प्रभावशाली और उपदेशक हो जाता है उसने अब जाना। पर अब अतीत की राख शेष है। फिर भी निमंत्रण-पत्रों में यह तो लिखा ही जायगा कि 'श्री·····जी भूतपूर्व मंत्री। इसीसे संतुष्ट है उसके अन्दर का मानव। वह अपराजेय है।

... .वह मिनिस्टर था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्षा की यह बूँदें

श्री जगपति चतुर्वेदी

वर्षा की बूँदें किस प्रकार बनती हैं इसका पूरा रहस्य अभी तक प्रकृति की अनबूझ पहेली है। परन्तु अनेक देशों के वैज्ञानिकों द्वारा इस विषय के आधुनिक शोध कुछ विलक्षण तथ्यों की जानकारी प्राप्त होती है। वर्षा की एक बूँद तीन सोपानों की प्रक्रिया का अंतिम परिणाम है: (१) वायुमंडल पानी की भाप से आपूर्ण होता है। (२) भाप जमकर बादल के बिन्दुक (नन्हीं बूँद) का रूप धारण करती है। (३) यह बिन्दुक एक साथ मिलकर वर्षा की बूँदें बनाते हैं।

पहले सोपान में एक भारी पम्प का काम होता है जो पानी की बड़ी राशि को वायुमंडल में ऊँचे उठाता है। इस पम्प का निचला खण्ड, पानी चूसने का सिरा, समुद्र के ठीक तल पर होता है जहाँ पर पानी उस तरह वाष्पित होता है जिस तरह खौलते पानी की पतीली में भाप उठती है। इस पम्प के कार्यकर भाग महान् हवाएँ हैं जो भूमध्यरेखा की ओर दौड़ करती हुई निम्नवलीय वाष्प को खसोट लेती हैं और भीषण अल्पोष्ण, आर्द्र वायु की भीषण ऊर्ध्वगामी लहरें, उत्पादित करती हैं। ये अदृश्य जल-बवंडर आकाश में एक मील से अधिक ऊँचे उठते हैं। यह प्राकृतिक पम्प रात दिन कार्यरत रहता है। प्रत्येक बार जब आपकी घड़ी एक 'टिक' का शब्द करती है, सात समुद्रों के उपरितलों से लगभग साढ़े सात अरब गेलन (या साढ़े सैंतीस अरब लिटर) पानी वाष्पित हो जाता है। एक बार जब यह मालमता आकाश में ढोकर पहुँचाया जाता है तब वर्षा की बूँदों के उत्पादन के दूसरे सोपान (बादल बनने) के लिए मंच तैयार होता है।

समुद्र से वाष्पित यह आर्द्रता मूलतः आसुत (डिस्टिल्ड) जल होती है जो इतना शुद्ध और असंदूषित (निर्दोष) होता है जितना रासायनिक औषधों में प्रयुक्त होनेवाला जल। किन्तु शुद्ध जल समाविष्ट रखनेवाले आकाशों में न तो बादल ही बनते और न वर्षा ही हो पाती यदि प्रकृति कुछ अन्य पदार्थों का प्रयोग न करती। यह हैं धूल, क्षुद्ध लहरों के झाग से लवण की कणिकाएँ, राख, मानवकृत या प्राकृतिक आगों द्वारा उत्पादित अन्य कचरे। मेघ-निर्माण के लिए यह अपद्रव्य (अशुद्ध पदार्थ) आवश्यक हैं।

आप देखते हैं कि बर्फ मिले पेय के गिलास पर जब हवा टकराती है तब वायु अपने वाष्प को लुप्त करती है जो तत्काल ठंढे गिलास तल से चिपक जाती है और तुषार के बादल रूप में संघनित हो जाती है। इसी प्रकार की प्रक्रिया ऊपरी वायुमंडल में घटित होती है। अंतर इतना ही होता है कि वहाँ वायु-वाहित कण ठंढे तल प्रदान करते हैं। एक अकेला विन्दुक (नन्हीं बूँद या बुँदकी) निर्माण करने में अरबों जल-वाष्प अणु एकत्र होते हैं। वह विन्दुक (ड्रापलेट) एक इंच के हजारवें भाग के व्यास का होता है जिसके अन्दर केवल कणिका इस तरह होती है जैसे फालसे के बीच में एक नन्हीं गुठली होती है। किन्तु अब भी हम वर्षा की बूँद की अवस्था तक नहीं पहुँचे हैं जल-विन्दुक झींसी पड़ने या घोर जलवर्षण उत्पन्न करने के लिए अत्यन्त ही क्षुद्र होते हैं।

द्वितीय महायुद्ध के बाद ही जनरल इलेक्ट्रिक प्रयोगशाला में आकस्मिक खोज इस प्रक्रम की अंतिम अवस्थाओं की अच्छी व्याख्या करते हैं। उस प्रयोगशाला में वैज्ञानिक विंसेंट शीफर ने एक 'नमूने का आकाश' सामान्य खाद्य-हिमकारी यंत्र (फूड-फ्रीज़र) में काले मखमल का अस्तर लगाकर बनाया है। इस हिमकारी यंत्र (फ्रीज़र) में मामूली साँस फेंकना क्षुद्र मेघ (भाप से जल-विन्दुक तक की अवस्था) उत्पादन के लिए यथेष्ट होता है। किन्तु वर्षा नहीं होती, आप चाहे जितनी फँक मारते रहें।

जुलाई मास के एक ऊमस के दिन अपराह्न में फ्रीज़र (हिमकारी यंत्र) इतना यथेष्ट तेज ठंढा नहीं हो रहा था कि भीतर मेघ को संरक्षित रख सके। इसलिए युवा ऋतु-अन्वेषक ने यह निश्चय किया कि वह बक्स के अन्दर कुछ सूखी बर्फ रखने का प्रयत्न करेगा। परिणाम तत्काल और अप्रत्याशित निकला। सम्पूर्ण मेघ करोड़ों क्षुद्र, चमकदार बर्फ के रवों की झड़ी रूप में परिवर्तित हो गया। इस बार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब शीफर ने बक्स में साँस फेंकी तो उनकी साँस की नमी संघनित हो गयी और उसने छोटे पैमाने पर वर्षा की बूँदें निर्मित कीं। इस प्रयोग ने इस सिद्धान्त को पुष्ट किया कि बर्फ के रवे (हिम-स्फटिक) वर्षा के पुरोवर्ती हो सकते हैं।

किसी शान्त दिन में अल्पोष्ण वायु (कोष्ण या नीम-गर्म हवा) धीरे-धीरे और सुस्ती से धुएँ की भाँति ऊपर उठना प्रारम्भ करती है। किन्तु शीघ्र ही, अकसर कुछ मिनटों में ही, प्रक्रम स्थापित हो जाता है। फिर बादल के केन्द्र भाग में कोष्ण (अल्पोष्ण) वायु और भी खिच आती है। ऊर्ध्वगामी धाराएँ तीव्र होती हैं, और धमन भट्ठी या होली की आग के ऊपर की हवा की तरह का शक्तिशाली ऊर्ध्ववर्ती वायु-प्रवाह उत्पन्न करती हैं। तूफान की नींव पड़ रही होती है। नन्हा मेघ तीन मील चौड़ा, गगनचुंबी काला दानव बन जाता है। आर्द्र वायु ऊपर, उससे भी ऊपर तब तक चढ़ती रहती है जब तक वह शून्य और उपशून्य तुंगता (ऊँचाई) तक नहीं पहुँच जाती। १५,००० फुट पर वह हिमीकृत हो जाती है, २५,००० फुट पर शून्य से तीन या चार अंश फारेनहाइट नीचे, और ४०,००० फुट पर लगभग ६० अंश नीचे हो जाती है। हिम जम जाता है और सबसे ऊँचे तल पर बर्फ के रवे (हिम-स्फटिक) बन जाते हैं। अब मेघ विन्दुक रवों के चारों ओर जमघट बनाते हैं, परस्पर जुट जाते हैं और वर्षा की अपेक्षाकृत बड़ी बूँदें बनाते हैं।

उस मेघ में वर्षा है; किन्तु अभी आप वर्षा-सिंचित नहीं हो सकते। पहले प्रत्येक वस्तु—जल विन्दुक, रवे, वर्षा—ऊपर उमड़ते वायु-प्रवाह में ऊपर खिच जाते हैं। वह वायु-प्रवाह प्रति घंटे ७० मील ऊँची गति तक पहुँच सकता है। किन्तु जब अधिकाधिक मेघ विन्दुक संयुक्त होते हैं वर्षा-विन्दु (बूँदें) अधिक बड़े और भारी हो जाते हैं। (जमीन तक पहुँचनेवाला औसत वर्षा-विन्दु एक इंच के पचीसवें भाग के व्यास का होता है।) तब वे मेघ के बीच से नीचे गिरना प्रारम्भ कर देते हैं और आप भीग उठने से बचने के लिए ओसारों या घरों में भाग खड़े होते हैं।

वर्षा के सम्बन्ध में बड़े रहस्यों में से एक रहस्य उन सर्व महत्त्वपूर्ण रवों से सम्बद्ध है। मेघ विन्दुकों की भाँति रवों को अपनी वृद्धि के लिए बीजों का काम देने के लिए कणिकाओं की आवश्यकता होती है। किन्तु मामूली ढंग की कणिकाएँ काम नहीं दे सकतीं क्योंकि वे बहुत अधिक मोटी होती हैं। नाजुक रवे सूक्ष्म कणिकाओं की माँग करते हैं और तब अंतरिक्ष रेणु सहायक बनते हैं, कदाचित् वे ही मेघ विन्दु के सब अवयवों में सर्वाधिक असाधारण होते हैं।

जब धरती सूर्य की परिक्रमा करती है, वह रेणु की बौछारों के मध्य से भागदौड़ करती है। वह रेणु या तो सौर मंडल के जन्म के बाद छूटे हुए कचरे हो सकते हैं, या वे कच्चे पदार्थ हो सकते हैं जिनसे तारा निर्मित होते हैं। इसकी सूक्ष्म कणिकाएँ वायुमंडल में अपवहित हो आती हैं और ऊँचे मेघों के सिरों पर प्रवेश करती हैं तथा वर्षा-उत्पादक रवों की रचना प्रस्तुत करती हैं। इस तरह हिम-स्फटिक (बर्फ के रवे)—और मेघ-विन्दु—आन्तर्ग्रहिक पदार्थ के रेणुओं के चारों ओर निर्मित होते हैं।

यह आस्ट्रेलिया के एक शीर्षस्थ भौतिकीविद डा० ई० जी० ब्राउन का नया सिद्धान्त है। अन्य विशेषज्ञ इसकी पुष्टि करते हैं। अन्तरिक्ष-यात्रियों का अनुमान है कि अदृश्य कणिकाओं की लगभग १०,००० टन मात्रा धरती पर प्रति दिन चुपके से गिरती है। ऐसा प्रतीत होता है कि आकाश में तारा-रेणु (अंतरिक्ष-रेणु) की प्रचुर मात्रा विद्यमान है जो धरती की अनेक प्रचंडतम तडित झंझाओं के लिए यथेष्ट है।

प्रकृति के जटिल वर्षा-उत्पादक यन्त्रों ने कतिपय अनोखे असाधारण कार्य किये है। अमरीका के ऋतु-संस्थान (ब्यूरो) के इतिहास में सर्वाधिक वर्षण का मिनट ४०-१० वर्षों पूर्व वसन्त काल में एक दिन केलिफोर्निया में देहात के एक छोटे पड़ाव ओपिड कैम्प में घटित हुआ जब आकाश ने उस क्षेत्र में दो तिहाई इंच वर्षा का पानी धरती पर उँडेला। यह सुनने में बड़ी बात न जान पड़ेगी, किन्तु सांख्यिकीविदों ने इसे अधिक प्रभावोत्पादक आँकड़ों में प्रदर्शित करने का हिसाब लगाया। इन ६० सेकेंडों की अवधि में एक वर्गमील धरातल पर एक करोड़ गेलन से अधिक पानी गिरा।

प्रत्येक तूफान, चाहे वह छोटे से छोटा ही क्यों न हो, अनेक प्रकार के विलक्षण प्रभाव उत्पन्न करता है—कोई बहुत लम्बी अवधि तक चलनेवाला होता है और अन्य एक क्षण भर के लिए। सामान्य रूप से इसका अनुभव नहीं किया जाता, परन्तु आकाश की बिजली (तडित) टकराते वर्षा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिन्दुओं का प्रत्यक्ष परिणाम हो सकती है। अनेक अति-सूक्ष्म मेघ-विन्दु नीचे गिरते समय फुहार फेंकते हैं। फुहार के समय इलेक्ट्रान भाग निकलते हैं। मेघ-विन्दुओं में धन विद्युत् का आवेश छोड़ आते हैं। जब ऐसा अधिक समय तक चलता रहता है तब तूफानी मेघ के पेंदे में यथेष्ट मात्रा में धन-विद्युत् का आवेश संचित हो उठता है। ऐसी परिस्थितियों में नीचे का धरातल ऋण-विद्युत् का आवेश ग्रहण करता है। विपरीत आवेश एक दूसरे को आकर्षित करते हैं। अतएव मेघ और धरातल के मध्य तनाव की वृद्धि होती है। अन्त में बिजली इस अंतराल के पार कूद पड़ती है और इस बिजली की कौंध के रूप में महा स्फुलिंग का दर्शन करते हैं।

सामान्यतया मेघ-विन्दु इतने अधिक मन्दतः कार्य करते हैं कि क्या घटित हो रहा है यह देख सकना कठिन होता है। हम उन्हें पृथ्वी की भू-आकृति पलटते नहीं देख पाते। इसके अतिरिक्त ये शक्तिप्रवण सम्पुट वायुमंडलीय नाइट्रोजन से निर्मित नाइट्रिक अम्ल (शोरे का तेजाव) और औद्योगिक धुवों से अन्य विनाशक पदार्थ अन्तर्विष्ट रख सकते हैं।

इनका निवल (शुद्ध) प्रभाव है गर्द और कंकड़ की विशाल मात्रा बहा ले जाना। प्रतिवर्ष मिसीसिपी नद का वर्षा-जन्य जल मेक्सिको की खाड़ी में ६० करोड़ टन कचरे या पदार्थ उँडेलता है। अकेले गंगा प्रति दिन ९,७३,००० टन तलछट बंगाल की खाड़ी में बहा ले जाती हैं। एड्रियाटिक समुद्र के उत्तरी सिरे पर एक भूखण्ड १०० मील लम्बा और २ से लेकर २० मील तक चौड़ा पिछले २००० वर्षों में तलछटों से ही निर्मित हुआ है। नदियों के मुहानों पर तलछटों का जमाव प्राचीन काल तक में ध्यान आकर्षित कर सका था। प्रसिद्ध प्राचीन यूनानी इतिहासकार हिरोडोटस (४८४-४२४ ईसा पूर्व) ने अनुभव किया था कि नील नदी का डेल्टा नदी द्वारा लाये गये तलछटों से बढ़ रहा है और उसने हिसाब लगाया कि यदि भूमध्यसागर के बजाय नील नदी लाल सागर में गिरती होती तो वह लाल सागर को १०,००० वर्षों में पूर्णतः पाट देती। विद्वानों ने अनुमान लगाया है कि विश्वव्यापी दृष्टि से वर्षा भूमि का धरातल प्रति चार शताब्दियों में एक इंच नीचा करती है।

भूवैज्ञानिक शोधों से प्रकट होता है कि भूकंप में मेघ-विन्दुओं (वर्षा की बूँदों) का बड़ा हाथ है। हारवर्ड विश्वविद्यालय में डा० वी० कोनरड ने इंगित किया है कि कुछ भूकम्प उस समय आते हैं जिस समय शिला स्तर संचित पंक और अन्य पदार्थों के भार से दबते हैं और अचानक टूट जाते हैं। इस दुर्घटना को वर्षा की अपरदन (क्षयकारक) क्रिया शीघ्र ला देती है।

प्रत्येक वर्षा विन्दु वायु को अनार्द्र करने में सहायता करता है, जो आर्द्रता समुद्र से बहा लायी गयी होती है, उसे दूर करता है। यदि हम वर्षा नहीं पाते तो आर्द्रता वायु में टिकी रहेगी। सारे संसार में वायुमंडल वाष्प-संतृप्त (अधिकतम वाष्पयुक्त) और मोटा बना रहेगा, जिस तरह कि अति प्राचीन काल में महागोधों (डिनोसौरों) के युग में वाष्प-आपूरित जंगल पड़े थे।

वर्षा होने से आप अपने साप्ताहिक अवकाश में व्याघात पड़ने का रोना रो सकते हैं। किन्तु वृष्टि तो सुरम्य मौसम बनाने की भूमिका बाँध रही है जिससे आपका आगामी कल या अगला सप्ताह अधिक सुखद बने। वर्षा प्रकृति का एक बहुधंधी कार्य है। इसका एक कार्य सार्वभौम वायु-अनुकूलन की महत्त्वपूर्ण व्यवस्था भी है।

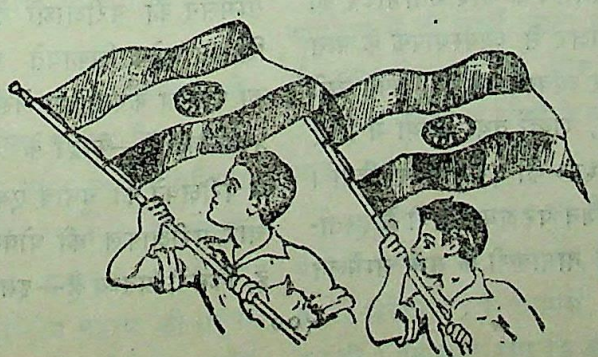

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी साहित्य सम्मेलन की वर्तमान दुरवस्था

पं० कन्हैयालाल मिश्र
कार्यवाहक उपाध्यक्ष, हिन्दी साहित्य-सम्मेलन

सम्मेलन की वर्तमान स्थिति इस समय ऐसी है कि एक ओर तो सम्मेलन की परीक्षाओं का तथा उनकी मान्यता का प्रसार हो रहा है और दूसरी ओर परीक्षाओं के संबंध में अनेक प्रकार के भ्रष्टाचार तथा अनियमितता की शिकायतें बढ़ती जा रही हैं। मुझे परीक्षा-संबंधी जो पत्र इत्यादि देखने को मिले हैं, उनके देखने पर, मुझे तनिक भी संशय नहीं है कि सम्मेलन की परीक्षाओं की बहुत-सी शिकायतें अतथ्य नहीं है। मेरे पास तो कुछ केन्द्रों के कागज-पत्र भी आये हैं। उनसे भी यही परिणाम निकलता है।

उदाहरणार्थ, मैं एक केन्द्र की, बिना उसका नाम लिये, कुछ असाधारण बातें संक्षेप में देना चाहता हूँ। उस केन्द्र के व्यवस्थापक ने सम्मेलन के अनेक परीक्षार्थियों से निश्चित परीक्षा शुल्क समय से ले लिया, परन्तु किसी भी परीक्षार्थी का परीक्षा शुल्क, निर्धारित समय के भीतर, सम्मेलन कार्यालय को नहीं भेजा। अपने पास उन्हें एकत्र करता रहा। निर्धारित तिथि के बीत जाने पर व्यवस्थापक ने शुल्क भेजना प्रारम्भ किया। यदि तीन परीक्षार्थियों का परीक्षा शुल्क २२ रु०, २२ रु० के हिसाब से ६६ रु० होता था, तो व्यवस्थापक ने सम्मेलन में केवल ६ रु० भेजा और मनीआर्डर फार्म पर, अंग्रेजी में लिखा कि 'रूपीज सिक्स ओनली'। परन्तु 'रूपीज' और 'सिक्स' के बीच में थोड़ा सा स्थान छोड़ दिया। संख्या में भी फार्म पर उसने ६ रु० अंग्रेजी में लिखा। सम्मेलन कार्यालय में मनीआर्डर ६ रु० का आया। मनीआर्डर मिलने के बाद मनीआर्डर का एक कूपन प्रधान मन्त्री के हस्ताक्षर से व्यवस्थापक के पास वापस गया। वापस जाने पर व्यवस्थापक ने, अपने उसी कलम और स्याही से कूपन में, शब्दों तथा संख्या में लिखे सिक्स को सिक्स टी सिक्स तथा ६रु० को ६६ रु० बना दिया। और इस प्रकार के कूपनों को, जिन पर प्रधान मंत्री के हस्ताक्षर हो चुके थे, परीक्षार्थियों की नामावली के साथ सम्मेलन में परीक्षार्थियों का पूरा शुल्क सम्मेलन में जमा होने के प्रमाण में भेजा और उनको परीक्षा में बैठाने की अनुमति माँगी। सम्मेलन कार्यालय में जब उस केन्द्र के पूरे शुल्क भेजने में संशय उत्पन्न हुआ और व्यवस्थापक को परीक्षा संबंधी पत्रादि नहीं मिले तब उन्होंने मुझसे आकर शिकायत की। मैंने उस परीक्षा केन्द्र की सारी पत्रावली मंगाकर देखी। तब तो व्यवस्थापक मुझसे यह प्रार्थना करने लगा कि किसी प्रकार का उस पर मुकदमा न चलाया जाय और मैं उसकी रक्षा कर दूँ।

ऐसे भी परीक्षा केन्द्रों के उदाहरण हैं, जहाँ सम्मेलन के प्रतिष्ठित पदाधिकारियों ने स्वयं जाकर देखा है कि वहां २० से कम परीक्षार्थी परीक्षा दे रहे हैं। सम्मेलन में इसकी रिपोर्ट भी आयी और उस पर भी उस परीक्षा केन्द्र पर १०० से अधिक परीक्षार्थियों के परीक्षाफल घोषित कर दिये गये हैं।

मेरे पास ऐसे भी पत्र आये हैं जिनसे स्पष्ट ज्ञात हो रहा है कि कुछ लोगों की पुस्तकों को सम्मेलन की परीक्षाओं के पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया गया है या कुछ अन्य प्रेसों में छपी पुस्तकें विभिन्न विश्वविद्यालयों के कोर्स में प्रचल करके रखाई गयी है और उसके बदले में उस विश्वविद्यालय तथा उससे संबंधित महाविद्यालयों के अध्यापक सम्मेलन में परीक्षक नियुक्त हुए हैं।

उपर्युक्त बातें मैंने केवल उदाहरणार्थ लिख दी हैं। सम्मेलन की परीक्षाओं के संबंध में मेरे पास इस तरह की लिखित अनेक शिकायते आई हैं। उनमें से कुछ शिकायतों का उल्लेख करना इस लेख में संभव नहीं है। वे कुछ इस प्रकार की हैं—केन्द्रों के बनाने में मनमानी, सभी विषयों के परीक्षकों का चुनाव एक व्यक्ति द्वारा, केन्द्रों में भ्रष्टाचार, परीक्षाफल की घोषणा आदि। उनमें कितने में तथ्य हैं, कितनी अतथ्य हैं—इसकी जाँच तो अभी नहीं हुई है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्मेलन के कर्मचारियों की भी अनेक शिकायतें मेरे पास आयी हैं। उनकी भी मैंने अभी जाँच नहीं की है।

यह निश्चय है कि सम्मेलन के पदाधिकारियों के विरुद्ध क्षोभ और अनेक प्रकार के वाद-विवाद इस प्रकार बढ़ते जा रहे हैं कि अब हमारा और आपका केवल पदाधिकारियों पर भरोसा करके चुपचाप एक आशा लगाए हुए भविष्य बैठे रहना उचित नहीं होगा।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन के पूर्व इतिहास से भी आपका सम्यक् परिचय हो जाना आवश्यक है। सम्मेलन में, १९५०-५१ के आस-पास, अनेक प्रकार के वाद-विवाद उत्पन्न हुए। राजर्षि श्रीपुरुषोत्तमदास टण्डन को यह संशय था कि कुछ लोग ऐसे हैं, जो सम्मेलन से आर्थिक लाभ तथा स्वार्थ सिद्धि करना चाहते हैं। इस आशंका को दूर करने के लिए, पहले उन्होंने नियमावली के संशोधन का प्रयत्न किया। पटना के विशेष अधिवेशन में नियमावली बनाने का कार्य आरम्भ हुआ। किन्तु अधिवेशन में एक-दो धाराओं पर भी निर्णय नहीं हो सका। सर्वसम्मति से ११ सदस्यों की एक नियमावली समिति बनायी गयी। उस समिति ने सम्मेलन की नियमावली बनायी। उस नियमावली समिति में राजर्षि टण्डनजी तथा सभी सदस्यों का सक्रिय योगदान था। उस नियमावली पर नियमावली समिति के ९ सदस्यों के हस्ताक्षर हो चुके थे और इस प्रकार सम्मेलन के पूर्व निश्चय के अनुसार वह नियमावली सर्वथा मान्य थी। किन्तु दुर्भाग्यवश, कोटा के वार्षिक अधिवेशन में सदस्यों द्वारा स्वीकृत तथा हस्ताक्षरित नियमावली की एक मात्र अधिमान्य प्रति चुरा ली गयी। फिर तो आपसी वाद-विवाद बहुत बढ़ गया और सम्मेलन न्यायालय में गया। सम्मेलन पर आदाता की नियुक्ति हो गयी और लगभग बारह वर्षों तक सम्मेलन आदाता के अधीन रहा।

इसी बीच उत्तर प्रदेश शासन द्वारा सम्मेलन को नियमित करने के लिए एक अधिनियम पारित किया गया, किन्तु इलाहाबाद हाईकोर्ट द्वारा वह उत्तर प्रदेश अधिनियम निरस्त कर दिया गया। तब राजर्षि टण्डनजी की प्रेरणा से केन्द्रीय शासन ने हिन्दी साहित्य सम्मेलन अधिनियम १९६२ के द्वारा सम्मेलन को राष्ट्रीय महत्त्व की संस्था घोषणा करके उसका संचालन अपने अधीन किया और १५ सदस्यों के प्रथम शासी निकाय का संघटन करके सम्मेलन के दैनन्दिन कार्यों के संचालन और उनकी नियमावली बनाने का कार्य उनको सौंप दिया गया।

प्रथम शासी निकाय जुलाई १९६२ से मई, १९७२ तक सम्मेलन का कार्य-संचालन करता रहा। उसने सम्मेलन की एक नियमावली लगभग तैयार कर ली थी। किन्तु उच्चतम न्यायालय ने केन्द्रीय अधिनियम को निरस्त कर दिया, जिससे सम्मेलन केन्द्रीय शासन द्वारा संघटित प्रथम शासी निकाय के अधिकार से मुक्त हो गया। किन्तु उच्चतम न्यायालय ने अपने निर्णय में इस बात की कोई व्यवस्था या आज्ञा नहीं दी कि आगे से सम्मेलन का कार्य-संचालन किस प्रकार होगा।

उच्चतम न्यायालय के निर्णय के अनन्तर सम्मेलन की बीस वर्ष पूर्व निर्वाचित स्थायी समिति ने सम्मेलन का कार्य-भार अपने हाथों में लिया। इस स्थायी समिति के अनेक दर्जन सदस्यों का देहावसान हो चुका है तथा पदेन अनेक सदस्य अपने पूर्व पद पर नहीं हैं। किन्तु फिर भी कार्य चलाने के लिए स्थायी समिति की दिनांक १६ मई, १९७१ की बैठक में इलाहाबाद उच्च न्यायालय के न्यायमूर्ति श्रीसुरेन्द्रनारायण द्विवेदी प्रधान मंत्री चुने गये। न्यायमूर्ति द्विवेदी बहुत व्यस्त पुरुष थे, क्योंकि उन पर उच्च न्यायालय का गुरु कार्यभार था। उन्होंने परीक्षाओं तथा प्रबंध की देख-रेख के लिए दो संयोजकों की नियुक्ति की। परीक्षा-संयोजक के रूप में श्रीप्रभातजी शास्त्री तथा प्रबन्ध संयोजक के रूप में डा० जयकांत मिश्र कार्य देखने लगे। श्रीजयकांत मिश्र को कुछ कारणों से अलग हट जाना पड़ा। परन्तु जस्टिस द्विवेदी के समय में ही परीक्षाओं के कार्यों में भी गड़बड़ी की शिकायतें होने लगीं।

अखबारों में भी कुछ चर्चाएँ चलीं। लिखित शिकायतें कार्यालय में भी आयीं, किन्तु समयाभाव के कारण द्विवेदी जी उनको देख नहीं सके, और उनकी जाँच नहीं कर सके। उनसे कई प्रकार के कार्यों के आदेशों पर हस्ताक्षर ले लिया जाता रहा।

सम्मेलन मुद्रणालय की शिकायतें भी मेरे पास आयीं। वे ऐसी गम्भीर थीं, जिन पर निष्पक्ष जाँच कराना आवश्यक था। द्विवेदीजी के परामर्श से मैंने एक निष्पक्ष जाँच करायी। तब ज्ञात हुआ कि बहुत सारे ऐसे अनियमित कार्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुए हैं, जो फौजदारी के अधिनियमों द्वारा संभवतः दण्डनीय हैं। मैंने द्विवेदीजी से लिखित अनुरोध किया कि वे इन सबकी पुलिस में रिपोर्ट करा दें। किन्तु अनेक कारणों से उन्होंने निर्णय किया कि ऐसा करना उचित न होगा।

परन्तु ऐसी स्थिति में द्विवेदीजी ने त्यागपत्र दे दिया और उनके स्थान पर स्थायी समिति ने श्रीसुधाकर पाण्डेय को प्रधान मंत्री चुना। पाण्डेयजी वर्षों से काशी नागरी प्रचारिणी सभा के प्रधान मंत्री हैं। उनके इस दीर्घकालिक अनुभव तथा लोकसभा के सदस्य होने के कारण उनके प्रभाव से यह आशा थी उनके कार्य-काल में सम्मेलन का भला होगा। मैंने प्रधान मंत्री चुने जाने के बाद उन्हें विश्वास दिलाया था कि यदि सम्मेलन का कार्य ठीक प्रकार से होता रहेगा तो मैं उनके साथ रहूँगा और उनके प्रबन्ध में अपने अधिकारों का प्रयोग करके हस्त-क्षेप नहीं करूँगा। परन्तु मुझे खेद है कि मेरी आशा पूर्ण-नहीं हुई। शिकायतें बढ़ती ही चली गयीं, जिनमें से कुछ का उल्लेख ऊपर है। श्रीसुधाकरजी भी इतने व्यस्त रहे हैं कि सम्मेलन के लिए अपना अधिक समय नहीं दे सके हैं। इधर समाचार-पत्रों में भी अब शिकायतें गूँज ने लगी हैं। प्रतिष्ठित व्यक्तियों ने उन पर हमारा आपका ध्यान आकृष्ट किया है।

सुप्रसिद्ध साहित्यकार तथा सम्मेलन के पूर्व परीक्षा एवं साहित्य-मंत्री पद्मभूषण डा० रामकुमार वर्मा ने कहा है—

"हिन्दी पर जब संकट नहीं था तब सम्मेलन ने अधिक कार्य किया। इधर ज्यों-ज्यों हिन्दी पर संकट बढ़ता जा रहा है, उसी अनुपात में सक्रिय होने के बजाय सम्मेलन निष्क्रिय होता जा रहा है।

विभिन्न अहिन्दी भाषियों में साहित्य सम्मेलन के बारे में अनेक तरह की बातें सुनने को मिलती हैं। अभी असम की यात्रा के दौरान अनेक हिन्दी प्रेमी छात्रों ने शिकायत की कि हिन्दी परीक्षा की समुचित व्यवस्था नहीं है। कई छात्रों ने शिकायतें कीं कि पत्रों का उत्तर नहीं मिलता। शुल्क-प्राप्ति तक की स्वीकृति नहीं मिलती।

थोड़े में यही कहीं जा सकता है कि हिन्दी साहित्य सम्मेलन अपने दायित्व का निर्वाह करने में अक्षम हो गया है। राजर्षि टंडन तथा पंडित मदनमोहन मालवीयजी ने जिस पुनीत अभिलाषा से सम्मेलन को जन्म दिया था, जो स्वप्न देखे थे, वे आज ६५ वर्ष बाद भी अधूरे हैं, वर्तमान गति-विधि अधोगति की ओर ही है।"

हिन्दी के वरेण्य लेखक तथा सुप्रसिद्ध भाषा-वैज्ञानिक एवं सम्मेलन के पूर्व प्रधानमंत्री डा० उदयनारायण तिवारी ने लिखा है—

"सर्वोच्च न्यायालय ने यह निर्णय नहीं दिया कि सम्मेलन का शासन किसे मिले। नियमतः अधिकार आदाता को मिलना चाहिए था, किन्तु ऐसा नहीं हुआ। पुरानी स्थायी समिति ही आयी। इसके साथ पुराना मंत्रिमंडल आना चाहिए था जो नहीं हुआ और कुछ लोगों को का का अधिकार मिला। यदि ये सम्मेलन के शुभचिन्तक होते तो सब मिलकर इसकी गतिविधि को ठीक कर लेते। ऐसा नहीं हुआ और कुछ लोग सम्मेलन पर इस तरह हावी हो गये जैसे उनका व्यवसाय यही हो। सम्मेलन का भयानक विघटन हुआ। सुनने में तो यह आया है कि सैकड़ों परीक्षार्थियों का परिणाम नहीं घोषित हुआ है, अनुत्तीर्ण परीक्षार्थियों को उत्तीर्ण कर दिया है, तमाम उत्तर पुस्तिकाएँ गायब हैं। इसकी जाँच होनी चाहिए।"

प्रयाग विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति तथा सम्मेलन के पूर्व प्रधानमंत्री एवं कार्यवाहक उपसभापति डा० बाबूराम सक्सेना ने लिखा है—

"सन् १९४७ के बाद से सम्मेलन को परीक्षा के माध्यम से धन मिलने लगा और यही धन स्वार्थ, गुटबंदी, दलबन्दी और अन्य तमाम अनियमितताओं का मूल बना। आज सम्मेलन की जो स्थिति है किसी से छिपी नहीं है। यह राष्ट्र और समाज के लिए दुर्भाग्यपूर्ण है।

जिस सम्मेलन को राजर्षि टण्डन के निर्देशन में हम लोगों ने तिल-तिल करके बनाया उसकी आज यह दुर्गति हो रही है। स्थिति सुधरने के बजाय बिगड़ती ही जा रही है। उस पर निहित स्वार्थों का अधिकार होता जा रहा है। इस स्थिति से सम्मेलन को उबारने के लिए हर हिन्दी-प्रेमी और राष्ट्रप्रेमी को आगे आना चाहिए।"

प्रयाग के सुप्रसिद्ध दैनिक भारत के स्तम्भलेखक श्री वेणीमाधव शर्मा ने दिनांक ५ सितम्बर के अंक में लिखा है—

"यदि भारत सरकार यह चाहती है कि हिन्दी की ये दोनों संस्थाएँ सक्षम रूप से हिन्दी की सेवा करें और बढ़े

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नेताओं के नाम पर किसी प्रकार का बट्टा न लगे तो
की काई का काटा जाना बहुत आवश्यक है। हाथ कंगन
आरसी क्या? भारत सरकार इन दोनों संस्थाओं की
धक व्यवस्था और कार्यविधि का किसी भी जाँच आयोग
परीक्षण कराकर देख ले कि ये कितने बड़े भ्रष्टाचार
ढ़ हो चुके हैं। कहीं ऐसा न हो कि जब तक भारत
कार देखे और अपराधियों का पता लगाये तब तक यहाँ
नाश का दृश्य उपस्थित हो जाय। प्रयाग और काशी
जनता यह चाहती है और इन्हीं दो नगरों की ही
सारी हिन्दीभाषी जनता यह चाहती है कि इन
ाओं की एक बार पूरी तरह से जाँच आयोग द्वारा
च करायी जाय ताकि दूध का दूध और पानी का पानी
जाय।"

सम्मेलन में मुख्य कार्य परीक्षाओं का हो रहा है। मेरी
ष्टि में उत्तर भारत में सम्मेलन की परीक्षाओं का अब
ई विशेष महत्त्व नहीं रहा। जिस समय उत्तर भारत के
श्वविद्यालयों में शिक्षा की माध्यम अंग्रेजी भाषा थी उस
मय हिन्दी माध्यम के द्वारा ज्ञान-विज्ञान की अनेक शाखाओं
परिचय प्राप्त कराना आवश्यक था। हिन्दी जाननेवालों
उन विषयों में योग्यता भी बढ़ाना आवश्यक था। इसी
चार से सम्मेलन की परीक्षाएँ चलायी गयी थीं। दक्षिण
रत में हिन्दी का प्रसार और हिन्दी की परीक्षाओं के
ालन का भार दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा तथा अन्य
तर राज्यों में राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के ऊपर रहा
दक्षिण भारत हिन्दी प्रधान सभा और रा० भा० प्र०
मिति—दोनों संस्थाएँ उस कार्य को कर रही हैं। उत्तर
रत के विश्वविद्यालयों में शिक्षा की माध्यम हिन्दी हो
हैं और सम्मेलन की परीक्षाओं की विशेष महत्ता और
योगिता नहीं रह गयी है। सम्मेलन के सामने उससे भी
बड़े कार्य और बड़े महत्त्व के प्रश्न और बड़ी-बड़ी
ाइयाँ उपस्थित हैं, जिन पर ध्यान देना और उचित
ना बनाकर हिन्दी को कम से कम वह स्थान दिलाना,
भारतवर्ष में अंग्रेजी को मिला था, अत्यन्त आव-
क है।

भारतवर्ष के संविधान में हिन्दी केवल आफिशियल
ज मानी गयी है। अंग्रेजी की भाँति समूचे भारत में
ी शिक्षा का माध्यम अभी नहीं है। देश में शिक्षा का माध्यम एक या अधिकतम दो भाषाएं हो सकती हैं, जैसे कनाडा में फ्रेंच और अंग्रेजी है तथा स्विटजरलैंड में तीन भाषाएँ हैं। परन्तु वहाँका प्रत्येक शिक्षित नागरिक तीनों भाषाएँ जानता है। उनमें आपस में कोई वैमनस्य या वैमत्य नहीं है। सोवियत रूस में अनेक भाषाएँ हैं, परन्तु वहाँ सारी विधि रूसी भाषा में बनती है और अन्यान्य भाषाओं के रहते हुए भी रूसी भाषा का ज्ञान प्रत्येक नागरिक के लिए आवश्यक है।

भारतवर्ष का कोई भी निवासी यह कहने को तैयार नहीं है कि हिन्दी के अतिरिक्त और कोई भारतीय भाषा है, जो अंग्रेजी का स्थान ले सके, परन्तु तब भी भारत सरकार ने निश्चय किया है कि प्रत्येक राज्य में वहींकी भाषा ही उच्च शिक्षा की माध्यम होगी। वहीं की भाषा में वहाँ की विधि बनेगी, वहाँका न्याय होगा, परीक्षाएँ होंगी। इसमें कोई संशय नहीं है कि ऐसी परिस्थिति में किसी प्रकार की अखिल भारतीय सेवा का रहना संभव नहीं होगा। केन्द्रीय लोकसेवा आयोग द्वारा किसी भारतीय सेवा में नियुक्ति के लिए—प्रत्येक राज्यों की अपनी-अपनी भाषा में परीक्षा—अखिल भारतीय परीक्षा न रह जायगी और नियुक्तियाँ योग्यता के आधार पर नहीं हो सकेंगी। भारत का प्रत्येक नागरिक अब अपने राज्य की भाषा को छोड़कर शेष भाषाओं में बनी हुई विधि तथा अन्य राज्यों के उच्च न्यायालयों के निर्णय को नहीं जान सकेगा। भारत की वह एकता और न्याय की एकता जो अंग्रेजी के आधार पर बनी है, छिन्न-भिन्न हो जायगी। ऐसी परिस्थिति में उच्चतम न्यायालय में पृथक्-पृथक् भाषाओं में उच्चशिक्षा प्राप्त व्यक्ति, किस प्रकार न्यायाधीश नियुक्त होंगे और उच्चतम न्यायालय का कार्य अंग्रेजी की अनभिज्ञता हो जाने पर और हिन्दी को उसका स्थान न मिलने पर, किस प्रकार हो सकेगा, इसका समझना कठिन है। भारत की सांस्कृतिक एकता तो सर्वदा सुदृढ़ रही है। विदेशी आक्रमण तथा विदेशी शासन भी उस सांस्कृतिक एकता को नष्ट नहीं कर सके हैं—परन्तु भारत में कुछ अल्प काल तक—अशोक के समय तक—मुगल साम्राज्य के अन्तिम दिनों को छोड़कर शेष इतिहास राजनीतिक एकता का नहीं रहा है। और अब इस अन्तर्राष्ट्रीय संघर्षों के युग में हम बिना राजनीतिक एकता के जीवित नहीं रह सकते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह राजनीतिक एकता तभी सुदृढ़ होगी जब हिन्दी को कम से कम अंग्रेजी का स्थान समस्त देश में और प्रत्येक राज्य में मिल जायगा।

मुझसे कुछ केन्द्रीय मन्त्रियों से बातें हुई हैं। उनमें से कइयों ने कहा है कि उन्होंने इन सब बातों पर अभी तक विचार ही नहीं किया है।

किसी भी राष्ट्रभाषा के लिए यह आवश्यक है कि वह टाइपराइटर पर शीघ्रता से टाइप की जा सके और आशुलिपि में द्रुत गति से लिखी जा सके और उसमें तार भी सुगमता से दिया जा सके। हिन्दी की वर्णमाला संस्कृत के आधार पर ऐसी बनी है, जो अद्वितीय है और उसकी समता रखनेवाली वर्णमाला संसार में नहीं है। इस वर्णमाला का एक अक्षर भी हम खो नहीं सकते, परन्तु उसका रूप हम बड़ी सुगमता से ऐसा बना सकते हैं, जिससे टाइप राइटर पर टाइप करने में समय अधिक न लगे।

अभी तक ज्ञान-विज्ञान की अनेक शाखाओं और विभिन्न देशों में प्रकाशित पुस्तकों का अनुवाद सारे भारतवर्ष को अंग्रेजी के माध्यम से प्राप्त हो जाता है। अंग्रेजी के समाप्त हो जाने तथा प्रत्येक राज्य में अपनी-अपनी भाषा के शिक्षा का माध्यम हो जाने पर, उन पुस्तकों का अनुवाद १५ या १६ भाषाओं में करना होगा—जो आर्थिक दृष्टि से भी असम्भव है। बाहर के ज्ञान की खिड़की जो अंग्रेजी द्वारा इस समय खुली है, केवल हिन्दी के द्वारा ही खुली रहकर सारे देश को प्राप्त हो सकती है। भविष्य के इस महान् प्रश्न पर भी अभी तक किसी ने विशेष ध्यान नहीं दिया है।

इसके अतिरिक्त अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्रों में हिन्दी को वह स्थान नहीं मिला है, जो अंग्रेजी, फ्रेंच अथवा रूसी भाषा को मिला है। उस स्थान को दिलाने का प्रयत्न करना तथा उसकी योजना बनाना सम्मेलन का मुख्य कार्य होना चाहिए। भारत सरकार भी अभी यह कार्य नहीं कर सकी है।

इन सब कठिनाइयों के अतिरिक्त, अकारण, बहुत से हिन्दीतर प्रान्तों में हिन्दी के प्रति वैमनस्य उत्पन्न हो रहा है। उसको हम लोगों को अपने सद्व्यवहार से जीतना है। हिन्दी का प्रसार भारत के हिन्दीतर प्रान्तों में उस पद्धति से नहीं किया जा सकता जो पाकिस्तान ने बँगला देश में उर्दू के प्रसार के लिए किया था। अन्य प्रान्तों में उनकी भाषा के चुने शब्दों का हिन्दी में समावेश करके यदि आवश्यकता हो तो नागरी लिपि में थोड़ा सा परिवर्तन करके हम उन भाषाओं के निकट जा सकते हैं और उस वैमनस्य को दूर कर सकते हैं।

भारतवर्ष में अहिन्दी क्षेत्रों की भाषाओं की वर्णमाला अधिकतर संस्कृत की वर्णमाला पर आधारित है। उनके लिखने के रूप अलग-अलग अवश्य हैं। हिन्दी के लिए यह असम्भव उद्देश्य नहीं है कि भारतवर्ष की विभिन्न भाषाएँ अपनी भिन्नता रखते हुए भी एक ही लिपि में लिखी जायँ। हिन्दी, मराठी, गुजराती, गुरुमुखी की वर्णमाला के लिखने के रूप में बड़ी समानता है और इन भाषाओं के भाषा वैज्ञानिकों को यदि आवश्यकता हो तो वहाँके राजनीतिक नेताओं को एकत्र कर नागरी वर्णमाला में थोड़ा सा आवश्यक परिवर्तन करके हम एक ऐसी लिपि स्थिर कर सकते हैं जिससे इन चारों भाषाओं की एक लिपि हो जाय। यह प्रयत्न भारत की एकता और हिन्दी की उन्नति के लिए इतना महत्त्वपूर्ण कार्य होगा, जो हिन्दी और भारत के भविष्य के लिए प्रभावशाली होगा। यह कार्य हिन्दी साहित्य सम्मेलन ही सफलतापूर्वक कर सकता है।

हिन्दी में भारत की अन्य भाषाओं की पुस्तकों के अनुवाद हुए हैं, परन्तु हिन्दी के ग्रन्थों का अनुवाद अथवा उद्धरण भारत की अन्य भाषाओं में उतना नहीं हुआ है। आज भी हिन्दी में प्रभावशाली और उच्चतम कोटि के कवि, लेखक और साहित्यकार हैं, और साहित्य के अतिरिक्त अन्य विषयों पर भी उत्तम मौलिक ग्रन्थों का निर्माण और प्रकाशन प्रारम्भ हो गया है। इनमें से बहुत सी कृतियाँ ऐसी हैं जो किसी भी भाषा के लिए गर्व की वस्तु हो सकती हैं। अपने कवियों, नाटककारों और लेखकों के ग्रन्थों का प्रचार अहिन्दी क्षेत्रों में करके हिन्दी को वहाँ के नागरिकों के लिए प्रिय वस्तु बनाना एक महान् कार्य है, जिसे केवल हिन्दी साहित्य सम्मेलन कर सकता है।

इनके अतिरिक्त और अनेक महान् कार्य हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सामने हैं। उन्हें सफलता से करके सम्मेलन के कार्यकर्त्ता केवल सम्मेलन को नहीं अपितु अपने को भी अमर बना सकते हैं और भारत के इतिहास में एक स्थान प्राप्त कर सकते हैं। यदि ये कार्य आरम्भ हुए तो मुझे तनिक भी संशय नहीं है कि हिन्दी के प्रमुख और सम्मानित समाचार पत्र भी इनमें सम्मेलन की सहायता करेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नवगीत एक छोटे शहर का

श्री कृष्ण कमलेश

सिकुड़ गया सस्ते कपड़े सा और ;
एक बहुत छोटा सा शहर।

× × ×

बिखरे-बिखरे हुए मुहल्ले,
तारतम्य का नाम नहीं हैं।
आवारा सड़कों, गलियों को
शायद कोई काम नहीं है।
अफ़वाहों का धुआँ उड़ रहा,
उगल रही है हवा जहर। सिकुड़.....

पहचानों के बीच अपरिचय;
किन्तु अपरिचय में पहिचाने।
रिश्ते कलफदार कॉलर से
जाने पर भी अनजाने।
प्यास धूप में पटक रही सिर
गंदी सी बह रही नहर। सिकुड़.....

तेज़ बहुत कारों की दौड़,
किन्तु मन्द मन की रफ्तार।
रिश्तों में हाँफ रही पीड़ा,
कैसा यह पीड़ा का विस्तार!
चलते-चलते दुआ-सलामी
कौन सकेगा यहाँ ठहर। सिकुड़.....
पाँवों की आहट गुमनाम—
लगता है घर तक आयेगी।
और सुबह की धूल, उदासी—
अपने हाथों पोंछ जायगी।
रुकना जिसे रुके, पर निष्फल
यह सुन्दर दीखता प्रहर। सिकुड़.....
लॉन बहुत अजनबी लग रही,
लॉन चेयर सूनी-सूनी सी।
सजे आँकड़ों की दुनिया भी-
लगती है इतनी ऊनी सी।
घबराई सी नदी लग रही
घबराई सी लगे लहर। सिकुड़.....

एक समय था, जब अनेक कठिनाइयों के रहते हुए भी भारत के निवासियों ने छोटी-छोटी नौकाओं में समुद्र के पास सुदूर देशों में जाकर भारतीय भाषा, संस्कृति और हिन्दी का प्रचार किया था, जिसके चिह्न वहाँ विद्यमान है। सम्मेलन को हिन्दी उसके साहित्य और इसकी लिपि को अन्तर्राष्ट्रीय स्थान दिलाना है और इसके लिए विस्तृत समुद्रों को पार कर जाना आज अधिक सुगम हो गया है और यह विजय यात्रा इतिहास के किसी भी साहसिक अभियान से कम न होगी। इस महान् विजय के प्रयत्नों को छोड़कर और इस विस्तृत समुद्र यात्रा को भूलकर हम अपने एक छोटे से तालाब, सम्मेलन की परीक्षाओं के चलाने में व्यस्त हैं। उस तालाब में स्थान की सुविधा भी अब कम होती जा रही है परन्तु उसीमें उछल कूद रहे हैं, लहरे उठा रहे हैं और एक दूसरे पर कीचड़ फेंक रहे हैं। इसी संकुचित दृष्टिकोण के कारण सम्मेलन के भविष्य की उन्नति संशय में पड़ गयी है और अनेक संघर्षों के प्रश्न हमारे सामने उपस्थित हो गये हैं। स्थायी समिति के लिए एक नये दृष्टिकोण से और एक नयी दिशा में सम्मेलन के कार्यों का नियंत्रण करना केवल सम्भव ही नहीं है, आवश्यक भी है।

कितने बड़े खेद की बात है कि इस महान् कार्य को सामने रखते हुए भी हम निरर्थक सम्मेलन की परीक्षाओं का उत्तर भारत में प्रसार करने में लगे हुए हैं, जिससे जितना ही अधिक प्रसार होता है उतनी ही अधिक भ्रष्टाचार की सीमा भी बढ़ती जाती है और अनेक लोगों को अपनी स्वार्थ-सिद्धि का अवसर प्राप्त होता है। इसे रोकना हमारे लिए कठिन नहीं है।

मैं उपर्युक्त कारणों से सम्मेलन की स्थायी समिति के सदस्यों का ध्यान सम्मेलन की वर्तमान अवस्था और भविष्य की आशाओं पर दिला रहा हूँ। मुझे विश्वास है कि समिति की अगली बैठक में वे व्यक्तियों को भूलकर और केवल सम्मेलन के हित को ध्यान में रख कर ऐसा निर्णय लेंगे, जिससे सम्मेलन में होने वाली शिकायतें दूर हो जायँ और वह एक नूतन उद्देश्य और नूतन उन्नति के शिखर की ओर अग्रसर हो सके।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माइकेल मधुसूदन दत्त : एक प्रसंग

मू० ले०—श्री विमल बोस

अनु०—श्री ओमप्रकाश

बंगाल के राष्ट्रीय आन्दोलन के विकास में स्व० दीनबन्धु मित्र रचित 'नील दर्पण' नाटक का ऐतिहासिक महत्त्व है। जहाँ इस नाटक ने बँगला नाटक को सामाजिक भूमि से उठाकर राजनीतिक स्तर पर पहुँचा दिया, वहाँ दूसरी ओर बंगला रंगमंच के विकास में 'नील दर्पण' ने उस समय नये इतिहास का निर्माण भी किया। सन् १८५९ में 'नील दर्पण' का प्रकाशन हुआ और सन् १८६१ में इसका अंग्रेजी अनुवाद। 'नील दर्पण' की पांडुलिपि में जिस प्रकार ग्रंथ के मूल लेखक श्रीदीनबंधु मित्र का नाम नहीं छपा था उस प्रकार अंग्रेजी अनुवाद में भी अनुवादक का नाम प्रकाशित नहीं हुआ। पर आज इसमें दो मत नहीं हैं कि 'नील दर्पण' का अंग्रेजी अनुवाद 'मेघनाद-वध' काव्य के रचयिता बँगला के सुप्रसिद्ध कवि माइकेल मधुसूदन दत्त द्वारा किया गया था।

यद्यपि ईस्ट इंडिया कम्पनी के अंग्रेज व्यापारियों को भारत में व्यापार करने का अधिकार मिलते ही सन् १६०० से ही नील के पौधों की खेती आरम्भ हो गयी थी तथापि १८५० से १८६० के बीच नील-कोठियों के निलहे गोरों और बंग-भूमि के—विशेषकर नदिया, जसोर और पावना क्षेत्रों के—बीच भयंकर संघर्ष छिड़ गया। इस संघर्ष की प्रतिक्रियास्वरूप सन् १८२२ के मई मास की 'समाचार-चन्द्रिका' और 'समाचार दर्पण' में सर्वप्रथम भारतीय किसानों पर इन निलहे गोरों के अत्याचारों की कहानियाँ प्रकाशित होनी आरम्भ हुईं। सन् १८४९ में श्रीअक्षय-कुमार दत्त ने 'तत्त्वबोधिनी' नामक पत्र में गोरों की भर्त्सना की। 'हिन्दू पेट्रियाट' के सम्पादक श्रीहरिश्चन्द्र मुखर्जी ने इन अत्याचारों के कुछ लोमहर्षक विवरणों का लगातार प्रकाशन किया। इन लेखों से क्षुब्ध होकर अंग्रेज व्यापारी समुदाय तथा उनके अखबारों ने सुसंगठित रूप से अपने अखबारों में इन लेखों तथा लेखकों के विरुद्ध आन्दोलन छेड़ दिया। फलस्वरूप वातावरण विषैला होता गया और राजनीतिक स्थिति चिंतनीय हो उठी। कथा-साहित्य के माध्यम से इन अंग्रेज व्यापारियों के आत्याचारों का विरोध करते हुए सन् १८६० में स्व० दीनबंधु मित्र ने 'नील दर्पण' नाटक लिखा, जिसका अंग्रेजी अनुवाद माइकेल मधुसूदन दत्त ने किया। इसके प्रकाशक थे रेवरेंड लांग।

माइकेल ने जिस समय 'नील दर्पण' का अनुवाद आरम्भ किया (अप्रैल, १८६१) उस समय तक उनके कई ग्रंथ—यथा 'तिलोत्तमा सम्भव' काव्य (१८६०) 'मेघनाद-वध' काव्य (१८६१), 'शर्मिष्ठा' नाटक (१८५९), 'क्या इसी का नाम सभ्यता है ?' (१८६०), 'पद्मावती' नाटक (१८६०) प्रकाशित हो चुके थे। बँगला नाटक 'रत्नावली' और 'शर्मिष्ठा' के अंग्रेजी अनुवाद भी क्रमशः १८५८ और १८५९ में प्रकाशित हो चुके थे। कवि माइकेल उस समय पुलिस कोर्ट में दुभाषिये के पद पर नियुक्त थे। माइकेल ने एक रात में, एक बैठक में ही 'नील दर्पण' का पूरा अनुवाद कर डाला था। इस सम्बन्ध में माइकेल के जीवनीकार श्री नरेन्द्र नाथ सोम 'मधु स्मृति' में लिखते हैं—'डिप्टी मजिस्ट्रेट तारकनाथ घोष के झामापुकुर स्थित मकान में सन् १८६१ में मधुसूदन ने एक रात में ही 'नील दर्पण' का पूरा अनुवाद समाप्त किया था।'

दीनबन्धु मित्र के सुपुत्र श्रीललितचन्द्र मित्र ने भी इस बात का समर्थन 'हिस्ट्री आफ इंडिगो डिस्टरबेन्स इन बेंगाल' नामक ग्रंथ में किया है। इस प्रसंग में कहा गया है —'एक व्यक्ति 'नील दर्पण' का वाचन करते जाते थे और मधुसूदन कुर्सी पर बैठे अविराम गति से अंग्रेजी में भाषांतर करते चले जा रहे थे।'

प्रश्न यह उठता है कि क्या माइकेल के हाथ की लिखी अंग्रेजी 'नील दर्पण' की पाण्डुलिपि मुद्रक श्रीक्लीमेंट हेनरी मैनुअल को कलकत्ता प्रिंटिंग ऐंड पब्लिशिंग प्रेस भेजी गयी थी ? 'नील दर्पण' मुकदमे के कागजात पढ़ने से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसा पता चलता है कि अनुवादक के नाम को छिपाने के लिए 'नील दर्पण' के प्रकाशक श्रीहेनरी लाँग ने स्वयं अपने हाथों पाण्डुलिपि की नकल उतारी थी और उसे ही प्रेस में भेजा था। इस तथ्य की पुष्टि अदालत में कहे गये मैनुअल के इस वाक्य से हो जाती है—'लाँग सेंट मी पोर्शन्स आफ दी कापी फ्राम टाइम टु टाइम' (लाँग ने समय-समय पर पाण्डुलिपि के अंश भेजे)। यह शंका की जा सकती है कि जब माइकेल ने 'नीलदर्पण' का आद्योपांत अनुवाद एक ही रात में पूरा कर दिया था तब 'प्रेस-मैटर' आंशिक रूप से भेजने की क्या संगति है। इसका समाधान यह हो सकता है कि श्रीहेनरी लाँग माइकेल की पाण्डुलिपि के थोड़े-थोड़े अंशों की प्रतिलिपि अपने हाथ से करके प्रेस को मुद्रण के लिए भेजते थे।

इस अनुवाद पर ब्रिटिश सरकार की ओर से माइकेल मधुसूदन दत्त को किस प्रकार की भर्त्सना मिली? बंकिम-चन्द्र ने दीनबन्धु की जीवनी में इस सम्बन्ध में लिखा है—'इसका ('नील दर्पण' का) प्रचार करने पर हेनरी लाँग साहब को कारावास मिला। हाईकोर्ट के जज सीटनकर अपमानित हुए। इसके अंग्रेजी अनुवाद पर अप्रत्यक्ष रूप से माइकेल की भर्त्सना हुई और अन्त में वे सुप्रीम कोर्ट की नौकरी भी छोड़ने पर बाध्य हुए।'

अगस्त १८५६ में माइकेल पुलिस-कोर्ट में नियुक्त हुए थे और जून, १८६२ में वे यूरोप चले गये। इसके पूर्व कब, किस अवस्था में, उन्होंने पुलिस-कोर्ट के दुभाषिया-पद से त्याग-पत्र दिया इसकी कोई सही जानकारी अभी नहीं मिल पायी है। इतना अवश्य कहा जा सकता है कि उनकी यूरोप-यात्रा के छह मास पूर्व 'हिन्दू पेट्रियाट' नामक मासिक का उन्होंने सम्पादन किया और नील-आन्दोलन पर कई जोशीले लेख भी लिखे। कदाचित् इन्हीं कारणों से माइकेल को हाईकोर्ट में बैरिस्टर का पद नहीं मिला। हाईकोर्ट के जज बर्निज पिकाक माइकेल को बैरिस्टर का पद देना चाहते थे, परन्तु मैकफर्सन और जैक्सन नामक न्यायाधीशों ने आपत्ति की।

'नील दर्पण' के अंग्रेजी अनुवाद की प्रतियाँ भारत तथा विदेशों में वितरित हुई थीं। ब्राइट, कवडेन, डिजराइली, ग्लैडस्टन जैसे अंग्रेज राजनीतिज्ञों के पास भी एक-एक प्रति पहुँची थी। इस ग्रंथ के प्रकाशक हेनरी लाँग के विरुद्ध १९ जुलाई, १८६१ को मुकदमा आरम्भ हुआ। २४ जुलाई को न्यायाधीश वैलेस ने लाँग को एक मास का कारावास और एक हजार रुपये का दण्ड दिया। दंण्ड की यह रकम बंगाल के नाटककार श्रीकालीप्रसन्न सिंह ने अदालत में जमा की थी। इस मुकदमे के अन्तिम दिन दीनबन्धु मित्र भी दर्शकों के बीच उपस्थित थे। 'इंगलिश रूल एण्ड नेटिव ओपीनियन इन इंडिया' नामक पुस्तक में जेम्स रटलेज ने अदालत में दीनबन्धु मित्र की उपस्थिति के सम्बन्ध में लिखा है कि वे अदालत में उपस्थित थे और स्वयं लाँग का स्थान लेने के लिए तैयार खड़े थे—यदि वह सम्भव होता। माइकेल भी वहाँ थे या नहीं इसका कोई पता नहीं है।

अनुवाद की दृष्टि से 'नील दर्पण' सुन्दर और सार्थक रचना थी। इस कृति पर बैरिस्टर पीटरसन की यह पंक्तियाँ उल्लेखनीय हैं—'हो सकता है कि इस पुस्तक का लेखक कोई हिन्दू हो, परन्तु यह अनुवाद किसी अंग्रेज के सिवा कोई हिन्दू कदापि नहीं कर सकता।'

माइकेल मधुसूदन दत्त को एक सशक्त अनुवादक के रूप में इससे बढ़कर सम्मान और कौन दे सकता है?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भोज चरित्र का रचनाकाल

श्रीअगरचन्द नाहटा

भारतीय साहित्य के रचयिताओं में बहुत-से ऐसे हैं जिन्होंने अपनी रचना में अपना जीवन-परिचय देना तो दूर अपने नाम तक का उल्लेख नहीं किया है। हम ऐसी रचनाओं के रचयिताओं के सम्बन्ध में परम्परा से प्राप्त लोकप्रवाद अथवा जनश्रुतियों के आधार पर ही स्वल्प जानकारी प्राप्त करते हैं। यदि कहीं दूसरे ग्रंथकारों ने किसी के रचयिता का उल्लेख अपने किसी ग्रन्थ में कर दिया है तो उसे आधार मान लेते हैं। बहुत से रचयिताओं ने अपने नाम का उल्लेख मात्र किया है, पर अपना कोई परिचय नहीं दिया और न रचनाकाल, स्थान आदि का ही निर्देश किया है। परन्तु मध्यकाल में प्रायः लेखकों ने अपने ग्रन्थ के अन्त में प्रशस्तियाँ दी हैं जिनसे आवश्यक जानकारी और ग्रन्थ का रचनाकाल निश्चित हो जाता है। इसमें भी एक कठिनाई यह होती है कि बहुत-से रचयिताओं ने अपने ग्रंथ का रचनाकाल सीधे संवतों में न देकर शब्दांकों में दिया है और उनमें से कुछ शब्दांक ऐसे भी हैं जो दो-तीन भिन्न संख्याओं के सूचक होते हैं। अतः किस शब्दांक से कौन-सी संख्या ग्रहण की जाय इसका निर्णय करने में कभी-कभी बड़े से बड़े विद्वान् भी चक्कर खा जाते हैं। ऐसा ही एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

भारतीय ज्ञानपीठ ने सन् १९६४ में डा० बी० सी० एच० छाबड़ा, एम० ए०, एम० ओ० एल०, पी-एच० डी० (लेडेन, होलेण्ड) एफ० ए० एस०, ज्वाइंट डायरेक्टर जनरल ऑव आर्किओलोजी इन इण्डिया तथा श्री एस० शंकर नारायणन्, एम० ए०, शिरोमणि, असिस्टेण्ट सुपरिटेण्डेण्ट फॉर एपिग्राफी—इन दो बड़े विद्वानों द्वारा सम्पादित राजवल्लभ रचित भोज चरित्र अंग्रेजी प्रस्तावना नोट्स और परिशिष्ट के सहित प्रकाशित किया है। ग्रन्थ के सम्पादन में दोनों विद्वानों ने काफी परिश्रम किया है। एक जैन रचना को इस तरह सुसम्पादित रूप में प्रकाशित देखकर मुझे बड़ा हर्ष हुआ। उन्होंने ८ मूल प्रतियों के आधार पर इसका सम्पादन किया है। जब यह ग्रन्थ मेरे अवलोकन में आया तब मुझे इसमें सं० १४९८ की लिखी हुई भण्डारकर ओरियण्टल इंस्टीट्यूट, पूना की एक प्रति का उल्लेख किसी भी तरह जँचा नहीं। कारण यह कि भोज चरित्र के रचयिता राजवल्लभ की अन्य दोनों रचनाएँ मेरे संग्रह में हैं, जिनका रचनाकाल संवत् १५२४ और १५३० है। ऐसी स्थिति में भोज चरित्र की १४९८ की लिखी हुई किसी प्रति का प्राप्त होना मुझे संदिग्ध ही लगा। परन्तु इतने बड़े और प्रसिद्ध दो विद्वानों की गलती को बिना जाँच किये प्रकाशित करना मैंने उचित नहीं समझा। मेरे मन में यह सन्देह हुआ कि प्रति की लेखन प्रशस्ति में जो 'उदधि' शब्दांक आया है उसका अर्थ उन्होंने ४ लगाया है किन्तु वस्तुतः वह ७ होना चाहिये, क्योंकि अन्य अनेक ग्रन्थों में भी 'उदधि' का अर्थ ७ लिया गया है।

लगभग ३५-४० वर्ष पहले जब मैंने हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज का काम आरम्भ किया था तब मुझे इन संवत् सूचक शब्दांकों के निर्णय करने में कठिनाई होने लगी। अतः मैंने ऐसे शब्दों का संग्रह प्रारम्भ कर दिया और सबके लाभ के लिये अपने उस संग्रह को व्यवस्थित करके शब्दांकों के कोश के रूप में एक लेख नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ४६ अंक २ में शब्दांक अर्थात् 'संख्यासूचक शब्द संकेत' के नाम से प्रकाशित कर दिया। अपने इस लेख में मैंने स्पष्ट किया था कि ४ और ७ इन दोनों अंकों के लिए 'उदधि', 'जलधि' आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है।

भोज चरित्र की इस प्रति का सही समय निश्चित करने के पहले मैंने भण्डारकर ओरियन्टल इंस्टीट्यूट की उस प्रति को स्वयं देख लेना आवश्यक समझा। हस्तलिखित ग्रन्थों में यदि उनका लेखन संवत् न भी दिया हो तो उनका कागज, लिपि आदि देखकर विशेषज्ञ लोग उनका रचना काल मोटे रूप में सहज ही निर्धारित कर लेते हैं। मुझे यह बहुत आश्चर्य-सा लगता है कि डा० छाबड़ा और श्रीशंकर नारायणन् जैसे विद्वान् हस्तलिखित प्रति को देखकर यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९७३

निर्णय नहीं कर पाये कि आखिर जिस प्रति को संवत् १४९८ की लिखी बतलाते हैं उसकी लिपि किस शताब्दी की है। वास्तव में उन्होंने लिपि शास्त्र का जो अध्ययन किया है वह शिलालेखों, ताम्रपत्रों पर ही आधारित है। हस्तलिखित प्रतियों की लिपि का उन्हें इतना अभ्यास सम्भवतः नहीं हैं। इसीसे यह गलती हुई है।

भोज चरित्र की इस प्राचीनतम कही जानेवाली प्रति के सम्बन्ध में विवरण देते हुए इन्होंने लिखा है :

'and Amritasunudina regularly corresponds to Monday, November 21, AD 1440' उन्होंने संवत् १४९८ कार्तिक १२ को सोमवार मानते हुए अंग्रेजी सन् तारीखों का मिलान करके उसे ठीक बतला दिया। पर वास्तव में सबसे बड़ी भूल तो उन्होंने यह की कि 'अमृतसूनु' को सोमवार मान लिया। वास्तव में 'अमृत' अर्थात् चन्द्र का पुत्र बुध ही यहाँ अभीष्ट है। 'अमृतसूनु' सोम या चन्द्र नहीं है। दूसरी इससे भी बड़ी गलती उन्होंने यह की कि उसी हस्तलिखित प्रति में ऊपर के बॉर्डर में जो संवत् के अंक १७८९ स्पष्ट लिखे हुए है उसकी ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। यदि यह प्रति मँगाकर मैं स्वयं नहीं देखता तो सम्भवतः एक गलती मैं भी यह कर देता कि संवत् १४९८ की जगह उदधि से ७ संख्या ग्रहण कर १७९८ मान लेता।

हाल ही में वह प्रति भण्डारकर ओरियंटल इंस्टीट्यूट, पूना से मँगाकर देखी तो देखते ही मेरी वह धारणा सिद्ध हो गयी। कागज, लिपि और स्याही से मैंने तत्काल निर्णय कर लिया कि यह प्रति १४९८ की हो ही नहीं सकती। यह १८वीं शताब्दी की ही है। अब मेरे सामने यह दुविधा आई कि सं० १७९८ जो 'अंका नाम वामतो गतिः' के नियम अनुसार बनता है वह सही है या ऊपर बॉर्डर में सूचित १७८९ सही है। सौभाग्य से मैंने जब हस्तलिखित ग्रन्थों का संग्रह प्रारम्भ किया था तब कई जैन संग्रहालयों से प्राचीन पंचांग कूड़े और रद्दी में डाले हुए मिले, जिन्हें मैंने मूल्यवान जवाहर समझकर अपने संग्रह में सुरक्षित कर लिया। फलतः संवत् १७०१ से आज तक ३२५ वर्षों के पंचांग मेरे संग्रह में हैं। उनके आधार में मैंने अनेक उलझी ग्रन्थियों को सुलझाया है। अतः उनके आधार पर निर्णय कर लेना ही मैंने उचित और आवश्यक समझा। संवत् १७९८ का पंचांग देखा। उसमें कातबदिक १२ को बुधवार नहीं पड़ता, जब कि संवत् १७८९ के पंचांग को देखने पर कालीबदि १२ को बुधवार मिला। इसलिए प्रति के बार्डर में लिखा हुआ १७८९ ठीक है यह निर्णय हो गया।

अब इसमें तनिक भी शंका की गुंजाइश नहीं है कि जो प्रति डा० छाबड़ा और श्रीशंकरनारायणन् जैसे भारत के लिपि-विशेषज्ञों ने संवत् १४९८ की बतलाई है वह वास्तव में संवत् १७८९ की ही है। इसलिए न तो वह प्राचीनतम प्रति सिद्ध होती है न उसके आधार से ग्रन्थ के रचनाकाल का किया गया निर्णय ही सही है। मूर्ति देवी जैन ग्रन्थमाला के मान्य प्रधान सम्पादक डा० हीरालाल जैन और डा० ए० एन० उपाध्याय ने सम्पादकीय में जो यह लिखा है कि सबसे प्राचीन प्रति सं० १४९८ की है और यही डा० छाबड़ा और श्रीशंकर नारायणन् ने कर्ता के काल ही अवधि मानी है, यह सही नहीं है। डा० छाबड़ा और श्रीशंकर नारायणन् से पहले भांडारकर ओरियंटल इंस्टीट्यूट की सूची बनाने वाले ने भी यही गलती की है। प्रति के ऊपर जो लेबल चिपका हुआ है उसमें १४९८ ही लिखा हुआ है।

अब भोज चरित्र के रचयिता कवि राजवल्लभ की अन्य रचनाओं का संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है जिससे कवि का रचना काल संवत् १५२५ के लगभग सिद्ध होता है। कवि की प्राप्त प्रथम रचना 'चित्रसेन पद्मावती कथा' है जो ५०८ श्लोकों में है। उसका रचना काल ग्रन्थ के अन्त में संवत् १५२४ आश्विन कृष्ण त्रयोदशी शनिवार दिया हुआ है।

युगे युग्मेसर बाण चन्द्रे संवत्सरे चास्वनिमास वेन। त्रयोदशी कृष्ण शनीश्वरेण कथाकृता शील समधृतेन ५०८

इसमें पद्मावती की कथा दी गयी है। हिन्दी के कई विद्वानों ने उसे पद्मावत की कथा के समान मान लिया था। इसका खण्डन और मूल कथा का संक्षिप्त सार आदि मैं नागरी प्रचारिणी पत्रिका में प्रकाशित कर चुका हूँ।

संवतोल्लेख वाली कवि की दूसरी रचना 'षडावश्यक बृति या वार्तिक' है, जिसमें प्राकृत के मूल सूत्रों का अर्थ तो राजस्थानी गद्य में लिखी गयी है और प्रासंगिक कथाएँ संस्कृत में पद्यबद्ध रची गयी हैं।

इसका रचना काल संवत् १५३० वैशाख सुदि ५ शुक्रवार है। अन्तिम प्रशस्ति के ३ श्लोक आगे दिये जा रहे हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री धर्म्मसूरी स्तदनुक्रमेण, सूरिर्वरौ भून्महिचन्द्र नाम्नाः शिष्यस्तदीयो महिमा निधान कथा करोत्पाठक राज-बंधने । ८८

रूपको एवं षडावश्यक वृत्तिं वार्त्तिका कृता वल्लभ भक्ता संकलिता श्लोक बद्धेन सन्त वाचन हेतवे । ८९

खगुणै वरिण इन्दुश्च वत्सरे विक्रमस्य च ।
वैशाखे शुक्ल पंचम्यां सोम्यक्षर्ये शुक्रवासरे । ९०

हमारे संस्कृत के विद्वान् प्रायः लोकभाषाओं के समुचित ज्ञाता नहीं होते । इसलिए संस्कृत ग्रन्थों में जहाँ प्राकृत अपभ्रंश राजस्थानी आदि भाषाओं के उद्धरण होते हैं, वहाँ उनकी संस्कृत विद्या काम नहीं आती । वे उसका भाव ठीक से समझ नहीं पाते । उन पद्यों का सन्धि-विच्छेद भी उनके सम्पादन में ठीक नहीं होता । डा० छाबड़ा और श्रीशंकर नारायणन् सम्पादित प्रस्तुत भोज चरित्र के संस्करण में भी ऐसा ही हुआ है ।

प्राकृत, अपभ्रंश और लोकभाषा के पद्यों का भाव ठीक नहीं समझने के कारण कहीं शब्दों का पद विच्छेद ठीक नहीं हो पाया और कहीं पाठ भी अशुद्ध छप गया । नीचे संशोधनीय शब्दों के उदाहरण दिये जा रहे हैं ।

पृष्ठ	पद्य संख्या	मुद्रित पाठ	शुद्ध पाठ
१०	१०६	सरसांधियै	सर सांधियै
१०	१०६	षांडै काढ़ीयै	खांडै काढ़ीयै
१०	१०६	विणषींषै	विरण खींखै
११	१२०	षंषे रीयो	खंखेरीयो
११	१२०	उरसा मुहां	उर सामुहां
१४	१४७	सारसदीयै	सारस दीयै
१४	१४७	का गा	कागा
१४	१५४	बीडेल हता	बीडे लहता
१४	१५४	दमामारण ढोलतूर	दमामा रण ढोल तूर
१४	१५७	कारि	करि
१४	१५७	महंता	मुहता
१५	१६२	कारि	करि
१५	१६२	पड्डरू आइं	पडुरूआइं
१५	१६२	छउदहसै	चउदहसै
१६	१७१	रोहंति	रोवंति
१६	१७२	कि	ति
१६	१७२	समयखण्ड	सय खण्ड
१९	२०७	थोरं सुयहिं	थोरं सुयहि
१९	२११	विरल इव हतै	विरलइ वहतै
२०	२१८	साटकमलनिद्धटिक	साटका मलनिर्द्धाटक
२२	२४२	काणवविरहकरा—लीयो	काणव विरह करालीयौ
२२	२४२	अचब्भूय उ	अचब्भूयउ
०	३३०	समा व सियव्वं	सया वसियव्वं
४९	१४०	णाहद्धे	णावरद्धे
४९	१४०	जक्खसुर	सव्व सुर
५०	१४२	अररद्धु	अरूडु
५०	१४२	धीरांइक्क	धीरां इक्क
५०	१४४	तणैकपाल	तरणै कपाल
५०	१४४	साहासियां वंड हलु	साहस जूतो हल
५०	१४४	मषूंटा	म खूंटा
५०	१४४	विणषीं षै	विरण खींखै
८९	४३३	देहच्छाय व्व	देहच्छायव्व
१०३	६००	पेम्माउ राण	पेमा उराण
१०३	६००	स्त्राण	रत्ताण
१०३	६००	संमुइयं	संमुइयं
१०४	९	हर ससोयवंताण	हरस सोयवंताण
१०४	९	अजम्म	आजम्म
१११	७७	निवडंतरइंताइं तिदुन्निणो	निवडंतर डंताइंति न्निणो
११४	११५	अह वा	अहवा
११४	११५	घडिओ सि	घडिओसि
११४	११५	विओगसमये	विओग समये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्जुन

श्रीगणपति शंकर

महाभारत के प्रमुख महारथियों की आयु-गणना के लिए इस महाकाव्य में कोई प्रमाण या आधार नहीं मिलता। किसी भी पात्र की आयु के विषय में महाभारत प्रायः मौन है। अपवाद रूप में दो स्थानों पर अर्जुन की वय का उल्लेख अवश्य आया है। यह उल्लेख भी है कि पाण्डवों में से तीनों कुन्ती-पुत्र एक दूसरे से एक-एक वर्ष छोटे या बड़े हैं। जिस दिन पाण्डु की मृत्यु हुई उस दिन अर्जुन अपनी वय के चौदह वर्ष पूरे कर चुका था। आदि पर्व में उल्लेख है—'पूर्णे चतुर्दशे वर्षे फाल्गुनस्यच भीमताः ।।' वैशंपायन कहते हैं—'तदा उत्तर फाल्गुन्या प्रवृत्ते स्वस्ति वाचने।' अर्थात् जब अर्जुन का चौदहवाँ वर्ष पूरा हुआ तब 'उसकी जन्मतिथि को उत्तर फाल्गुनी नक्षत्र में ब्राह्मणों ने स्वस्तिवाचन आरम्भ किया।' उसी दिन पाण्डु की मृत्यु हुई। इसके बाद पाण्डु की अंतिम क्रिया समाप्त करके अस्थियाँ लेकर हिमालय के शतशृंग शिखर निवासी ऋषि-मुनि पाण्डवों और कुन्ती के साथ हस्तिनापुर आये। अतः जब पाण्डव हस्तिनापुर आये तब अर्जुन १४, भीम १५ और युधिष्ठिर १६ वर्ष के थे।

अर्जुन की वय का दूसरा उल्लेख स्वयं अर्जुन के एक कथन में मिलता है। यह प्रसंग है विराट पर्व का। कौरव सेना विराट-राज्य पर चढ़ आई है। उसके साथ युद्ध करना है। यह समय पाण्डवों के अज्ञातवास का है और अर्जुन वृहन्नला नाम से स्त्री के वेश में है। अपने इसी रूप में वह विराट के राजकुमार 'उत्तर' के रथ का सारथी बनता है। अर्जुन कुमार उत्तर को एक वृक्ष के पास ले जाता है। वह शमी का वृक्ष है। वह कहता है—उत्तर, इस वृक्ष पर चढ़कर हमारे शस्त्र निकालो। वहाँ अर्जुन राजकुमार को अपना वास्तविक परिचय देता है। इस प्रसंग में महाभारत में जो श्लोक है उसके भाष्य के विषय में विद्वानों में मतभेद है। देखिये—

१—पार्थ पंच षष्ठिच वर्षाणि श्वेतवाहनः

महावीर्यं महादिव्यमेतद्धनुरनुत्तमम् ।। विराट ४३।७

नीलकंठी टीका—गुजरात प्रेस संस्करण।

भाष्य—(धनुष के विषय में काफी लम्बा इतिहास सुनाने के बाद अर्जुन कहता है)····'अब पैंसठ वर्षकाल अर्थात् साढ़े बत्तीस साल से यह परम दिव्य धनुष अर्जुन के पास है।

२—पार्थ पंचच षष्ठिच वर्षाणि श्वेतवाहनः

महावीर्यं महादिव्यं एतत्तद्धनुरुत्तमम् ।। विराट ३८।४१

भंडारकर संस्करण, पूना।

भाष्य—यह महादिव्य, महावीर्य और अद्वितीय (अनुत्तमम्) धनु श्वेत अश्वों के वाहनवाले पृथापुत्र अर्जुन ने पैंसठ वर्ष तक अपने पास रखा था।

इस संस्करण में अध्यायक्रमांक श्लोक-क्रमांक और दूसरी पंक्ति के पाठ और अर्थ में परिवर्तन हुआ है।

३—गीता प्रेस, गोरखपुर के संस्करण का श्लोक गुजरात प्रेस-संस्करण के समान ही है। लेकिन अर्थ में अन्तर है। भाष्य इस प्रकार है—श्वेतवाहन पार्थ पैंसठ वर्ष की अवस्था में इस महादिव्य, महावीर्यवान उत्तम धनुष को धारण कर रहा है।

इनमें नीलकंठी टीका का मत विवादास्पद है। अपनी टीका में नीलकंठ कहते हैं—'अर्जुन ने पैंसठ वर्ष गाण्डीव धारण किया। इसमें वर्ष का अर्थ वर्षा होता है। एक वर्षा शरद् ऋतु में आती है और दूसरी वर्षा वसंत में। इस तरह दो वर्षा मानी जाती है। इससे अर्जुन ने साढ़े बत्तीस वर्ष धनुष धारण किया ऐसा मानना चाहिये। कितने विद्वान् कहते हैं कि अंतिम और आगामी काल को लेकर पैंसठ वर्ष तक धनुष धारण करने को कहा गया है

इस भाष्य में दो प्रश्न उपस्थित होते हैं। क्या वर्षाणि का अर्थ वर्षा होता है? और अन्तिम और आगामी काल की व्याख्या क्या है? नीलकंठ अपने साढ़े बत्तीस को इस प्रकार स्पष्ट करते हैं—

१३ वर्ष वनवास और अज्ञातवास।
१२ वर्ष अर्जुन का वैयक्तिक वनवास और
७½ वर्ष राजसूय यज्ञ-काल तथा दिग्विजय आदि के।
३२½ कुल जोड़।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीआदिनाथ-स्तोत्र

श्रीराजेन्द्रप्रसाद जैन

आदिनाथ स्तोत्र जैनियों में सबसे अधिक प्रचलित व लोकप्रिय स्तोत्र है। जैनियों के सभी सम्प्रदायों व उप-सम्प्रदायों में इसका एक-सा प्रचलन है। अन्तर केवल इतना है कि जहाँ दिगम्बर सम्प्रदाय इसमें ४८ श्लोक मानता है वहाँ श्वेताम्बर सम्प्रदाय इसके चार श्लोकों—३२ से लेकर ३५ तक—को प्रक्षिप्त ठहराकर केवल ४४ श्लोकों को ही प्रामाणिक मानता है। साथ ही श्वेताम्बर सम्प्रदाय यह भी स्वीकार करता है कि जिन चार श्लोकों को उन्होंने प्रक्षिप्त ठहराया है उनमें कोई भी बात ऐसी नहीं है जो श्वेताम्बर मान्यता के विरुद्ध हो। इसलिए यह विवाद भी धार्मिक न होकर केवल साहित्यिक है। इस स्तोत्र की किसी-किसी प्रति में ५२ श्लोक भी देखने में आते हैं।

यह स्तोत्र संस्कृत में है और अपनी प्रथम पंक्ति के प्रारम्भिक शब्द 'भक्तामर प्रणत मौलि मणि प्रमाणा' के आधार पर 'भक्तामर जी' भी कहलाता है। इसके रचयिता आचार्य मानतुङ्ग सूरि हैं। उनकी इसके अतिरिक्त और अन्य रचना नहीं मिलती। केवल अपनी इस ४८ अथवा ४४ श्लोक वाली रचना के कारण उनका नाम अमर है। इस स्तोत्र की लोकप्रियता के कारण इसकी संस्कृत, हिन्दी, मराठी, गुजराती व कन्नड़ में अनेक टीकाएँ हो चुकी हैं। संस्कृत में सबसे अच्छी टीका विक्रम संवत् १६६७ की पं० रायमल्ल जी वाली है और हिन्दी में सबसे अधिक लोकप्रिय, लगभग इसी समय का, आगरे के पं० हेमराजजी का सरस छन्दोबद्ध रूपान्तर है।

आचार्य मानतुङ्ग सूरि का कोई जीवनवृत्त नहीं मिलता। उनके बारे में एक किम्वदन्ती चली आती है। जिस समय विहार करते हुए अपनी मुनि अवस्था में आचार्यश्री उज्जैन पहुँचे उस समय वहाँका राजा भोज उनके दर्शनों के लिए आया। वह उनकी विद्वता व तपस्या से बहुत प्रभावित हुआ। इस पर जैन धर्म के घोर विद्वेषी, राजा के प्रधान पण्डित कालिदास को बहुत आकुलता हुई। सम्भवतः उन्हें यह भय हुआ कि कहीं राजा जैनी न हो जाय। कविकुल-गुरु कालिदास छेड़छाड़ करने के लिए आचार्यश्री के पास पहुँचे, परन्तु थोड़े से ही वाद-विवाद में पराजित होकर अपना-सा मुँह लेकर लौट पड़े। रात भर कालिदास काली देवी की आराधना करते रहे। अगले दिन उन्होंने आचार्यश्री को राजसभा में शास्त्रार्थ के लिए ललकारा। राजा ने आचार्य के पास निमन्त्रण भेजा। परन्तु जैन साधु इस प्रकार राजसभाओं में नहीं जाते। इसलिए बार-बार बुलावा आने पर भी आचार्य ने राजसभा में जाने से इनकार कर दिया। इस पर राजा कुपित हुआ। उसने आचार्य को पकड़ बुलाया। उसने उन्हें हथकड़ी-बेड़ियों में जकड़कर ४८ तालोंवाले बन्दीगृह में डाल दिया। इसी सङ्कटापन्न स्थिति में आचार्य ने प्रथम तीर्थङ्कर भगवान् ऋषभदेव (आदिनाथ) की स्तुति में यह स्तोत्र रचा। रचना करते-करते आचार्य ४६वें श्लोक पर आये—

आपाद कण्ठमुरु शृङ्खलवेष्टिताङ्ग
गाढं बृहन्निगडकोटिनिघृष्ट जंघा।
त्वन्नाममन्त्रमनिशं मनुजाः स्मरन्तः
सद्यः स्वयं विगतबन्धभया भवन्ति॥

(जिनका पैरों से लेकर गले तक सारा शरीर बड़ी-बड़ी साँकलों से जकड़ा हुआ है और जिनकी जंघा बड़ी-बड़ी बेड़ियों के कारण छिल गयी हैं वे भी यदि आपके नाम का स्मरण करें तो शीघ्र बन्धन से छूट जाते हैं।) उसी समय एकाएक दैवी चमत्कार हुआ। आचार्य के समस्त बन्धन खुल गये और वे बन्दीगृह के बाहर आ गये। राजा ने जब यह सुना तब उसे अपनी भूल मालूम पड़ी। वह बार-बार आचार्य से अपने अपराध की क्षमा माँगने लगा। आचार्य उन्हें क्षमा करके और बहुत-सा धर्मोपदेश देकर चले गये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और भी कई स्थल इस स्तोत्र में ऐसे आते हैं जिनसे
कता है कि इसकी रचना घोर सङ्कट के समय में
ई है —

प्रीत्यात्मवीर्यमविचार्य मृगो मृगेन्द्रं,
नाभ्येति किं निजशिशोः परिपालनार्थम् ।।

(जैसे अपने बच्चे को छुड़ाने के लिए अपनी शक्ति
का विचार न करके केवल प्रेमवश हिरण सिंह से भिड़
जाता है ।)

ये संश्रितास्त्रिजगदीश्वरनाथमेकं,
कस्तान्निवारयति संचरतो यथेष्टम् ।।

(जिन्होंने एक त्रिभुवनाधिपति जगदीश्वर का आश्रय
लिया है उन्हें इच्छानुसार विहार करने से कौन रोक
सकता है ।)

उपर्युक्त किंवदन्ती में कई असंगतियाँ हैं । प्रथम तो यह
कविकुलगुरु कालिदास व राजा भोज समकालीन नहीं हैं ।
दूसरे स्वयं जैन विद्वानों ने आचार्य मानतुङ्ग सूरि का
समय ईसा की दसवीं शती ठहराया है । उधर कालिदास
का समय ईसा पूर्व प्रथम शती से लेकर ईसा की छठी शती
तक माना जाता है । इस प्रकार ये दोनों समकालीन
नहीं ठहरते । प्राचीन काल में ऐतिहासिक ज्ञान की उपेक्षा के
कारण प्रत्येक साहित्यिक घटना को राजा भोज व कालि-
दास के आधार से कहने का प्रचलन रहा है । उसीका
अनुसरण करते हुए आचार्यश्री व किसी अन्य राजपण्डित
के विवाद को जैन विद्वानों ने राजा भोज व कालिदास के
पर थोप दिया है । अकबर और बीरबल को लेकर जो
चुटकुले प्रचलित हैं उनमें भी यही प्रवृत्ति देखने को
मिलती है ।

इस घटना को कविकुलगुरु कालिदास के सर थोपने
के कुछ और कारण भी रहे हैं । कवि के ग्रन्थों से जैन
दर्शन का विरोध प्रकट होता है और प्राचीन काल में जैनी
उन्हें अपने धर्म का प्रधान विरोधी समझते रहे हैं । इसलिए
आचार्य पर उपसर्ग लानेवाले भी वे ही ठहरे । जैन धर्म
संन्यास प्रधान धर्म है, वैदिक धर्म में अंशतः भोगवाद को
भी स्वीकार किया गया है । कालिदास ने अपने ग्रन्थों
में भोगवादी रूप ही सामने रखा है । विक्रमोर्वशीयम्, मेघ-
दूत, शाकुन्तल घोर भोगवादी हैं । रघुवंश पर भी भोगवाद
की पूरी-पूरी छाप है । ऋतुसंहार में शृंगार प्रधान है ।
कुमारसम्भव में तो आदिदेव शिव और गौरी माता की
मर्यादा का भी ध्यान नहीं रखा गया है । यही कारण है कि
कवि सम्राट् होते हुए भी हिन्दू मानस में वे वह स्थान प्राप्त
नहीं कर सके जो बाल्मीकि, व्यास व तुलसी को प्राप्त है ।

जैन धर्म यजन का विरोधी था, परन्तु बाद में जैनियों
ने भी यजन की महत्ता स्वीकार की । पुण्य कर्म के लिए
चित्त शुद्धि की आवश्यकता है और चित्त शुद्धि के लिए
पूजन पाठ आवश्यक हैं । हिंसामय, सदाचार विरोधी और
आडम्बरपूर्ण यजन जो चित्त को कलुषित करें उनका
जैन धर्म आज तक विरोधी है । गीता ने भी यजन को
केवल चित्त शुद्धि के लिए स्वीकार किया है । इस प्रकार
सदाचार व कर्मकाण्ड के बीच की खाई पाटने में जैनियों
का बड़ा योगदान है । सङ्कट और आपदाओं के निवारणार्थ
जैनियों में भी बहुत से स्तोत्र, मन्त्र और अनुष्ठान प्रचलित
हैं । यह स्तोत्र भी यजनपरक है । इसके प्रत्येक श्लोक
को लेकर मन्त्र, ऋद्धि और यन्त्र का विधान है । पं० राय-
मल्लजी ने अपनी संस्कृत टीका में वे कथाएँ भी दी हैं
जिनके अनुसार भिन्न-भिन्न व्यक्तियों ने भिन्न-भिन्न श्लोकों
की आराधना से इच्छित फल प्राप्त किया है ।

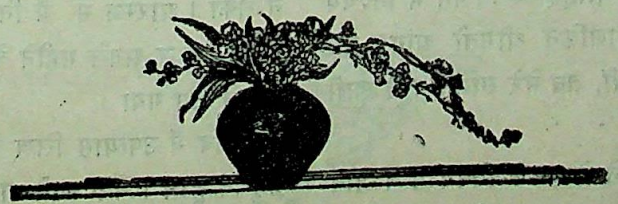

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं डाक्टर से लेखक बना

मू० ले०—ए० जे० क्रोनिन

अनु०—श्रीमोहन शर्मा

[ब्रिटिश लेखक ए० जे० क्रोनिन का जन्म जनवरी १८९६ में हुआ था। डाक्टरी की शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् कई अस्पतालों में कार्य किया। पेट में फोड़ा हो जाने पर आराम के लिए लन्दन से दूर पर्वतीय स्थान में गये और वहाँ लिखना शुरू किया। अपनी प्रथम रचना की सफलता पर डाक्टरी पेशा छोड़कर लेखक बन गये। लगभग बीस उपन्यास, छह नाटक, तीन कहानी-संग्रह प्रकाशन में आये। आपके उपन्यासों पर कई फिल्में भी बनीं। आपका स्वर्गवास १९४४ में हुआ।]

मेरी वय चौंतीस वर्ष की थी और मैं लन्दन में डाक्टरी का पेशा कर रहा था। पेट में फोड़ा हो जाने के कारण मुझे छह महीने के लिए पहाड़ी क्षेत्र में जाकर रहना पड़ा। वहाँ गये मुझे अभी एक सप्ताह ही हुआ था कि मैं बुरी तरह ऊब गया। मुझसे पूरा आराम करने के लिए कहा गया था और मैं भी चाहता था कि पूरा आराम करूँ, जैसा कई डाक्टरों ने कहा था। मगर समय काटना मेरे लिए बहुत बड़ी समस्या थी।

ऐसी निराशाजनक स्थिति में, यह सोचते हुए कि क्या करूँ, एक दिन अकस्मात् मुझे एक बात सूझी। पिछले कई वर्षों से मैं यह सोचता रहता था कि मैं कभी न कभी लेखक बनूंगा। मुझे लगा कि लिखना प्रारम्भ करने का इससे अच्छा अवसर कभी नहीं मिलेगा। इसलिए मैंने एक उपन्यास लिखने का निश्चय किया। तत्काल मैं बाजार गया और दो दर्जन कापियाँ खरीदकर ले आया।

मेरे साफ-सुथरे कमरे में मेज और कुर्सी पड़ी थी। अब मेरे सामने खुली हुई कापी थी। उसे देखकर मुझे विचार आया कि मैंने वर्षों से रोगियों के लिए नुस्खे लिखने के अलावा और कुछ भी नहीं लिखा है। यह एक निराशा-प्रद विचार था, लेकिन मैंने कलम उठाई। 'कुछ भी क्यों न हो, मुझे लिखना शुरू करना चाहिए'—मैंने मन में निश्चय किया। दो घण्टे बाद मकान मालकिन श्रीमती आंगस जब मुझे भोजन के लिए बुलाने आयीं, तब मेरे सामने पड़ी खुली कापी एकदम कोरी थी।

अगले कुछ सप्ताहों तक मैंने लेखन के विषय में न जाने कैसी-कैसी आत्म-पीडाएँ सहीं। हाँ, मेरे मस्तिष्क में उपन्यास की 'रूपरेखा' बिलकुल स्पष्ट थी—एक मनुष्य के अहंकार और झूठे गर्व के दुःखान्त की कहानी। यहां तक कि मैंने उपन्यास का नाम भी सोच रखा था। लेकिन उपन्यास की रूपरेखा और नाम के अतिरिक्त मेरे पास और कुछ नहीं था। मुझे न उपन्यास-कला की जानकारी थी, न शैली या शब्द का ज्ञान। स्पष्ट वाक्य लिखने में बड़ी कठिनाई होती। मैं अपने लिखे हुए को बार-बार काटता और सुधारता। इस संशोधन से सारा पृष्ठ खराब और गन्दा हो जाता। अन्त में मैं उसे फाड़ डालता और नये सिरे से लिखने लगता।

'लिखो! और लिखो! स्वयं जाँचो और पुनः लिखो!' यही मेरे जीवन का मूल मंत्र है। मैंने इसीके आधार पर इतनी बड़ी सफलता पायी है।

उपन्यास का विषय और रूपरेखा मेरे मस्तिष्क पर छायी हुई थी और मुझे शान्ति नहीं लेने दे रही थी। मेरे पात्र रूप लेते, मुझसे बातें करते, हँसते और रोते हुए मुझे उकसाते। मध्य रात्रि के समय जब कोई विचार सूझता तब मैं उठ बैठता और कमरे में टहलने लगता। मैं तब तक सो न पाता जब तक उसे शब्दों में उतार न लेता। यह काम अपने आप में इतना रुचिकर था कि मैं इसे छोड़ न सका। आरम्भ में मैं नित्य लगभग आठ सौ शब्द लिख पाता। मगर अगले महीने के अन्त तक मैं दो हजार शब्द लिखने लग गया।

जब मैं उपन्यास लिख चुका तब मुझे बड़ी उदासी का अनुभव हुआ। मैंने अपने आप से प्रश्न किया—'भला मैं ऐसे काम में इतना परिश्रम क्यों कर रहा हूँ जिसके लिए मुझमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोई योग्यता नहीं है ? मुझे तो आराम करना चाहिए, न कि इस प्रकार की माथा-पच्ची में समय नष्ट करना चाहिए।'

इसी मानसिक ऊहापोह में मैंने उपन्यास के शुरू के अध्याय पढ़े। मैं चकित रह गया। ऐसी बेहूदगी मैंने अपने सारे जीवन में कभी नहीं की थी। मुझे लगा कि यह पागलपन है। जो कुछ मैंने लिखा है और जो कुछ भी लिखूंगा उसमें समय बरबाद करना है। इसलिए मैंने उस काम को वहीं छोड़ देने का निश्चय किया। मैंने क्रोध में आकर सारे कागज जमा किये और उन्हें रद्दी की टोकरी में फेंक दिया।

उपन्यास से छुटकारा पाकर या कहूँ कि इस पागलपन से छुटकारा पाकर, मुझे सन्तोष हुआ। मैं उठकर कमरे से बाहर चला आया। वहाँ श्रीमती आंगस के पति सामने खड़े थे। उन्होंने मेरी ओर कुछ आश्चर्य और हैरानी के साथ देखा। जब मैंने उन्हें बताया कि मैं अभी-अभी क्या करके आया हूँ तब उनके चेहरे में धीरे-धीरे परिवर्तन होने लगा। उनकी आँखों ने मेरी ओर घृणा से देखा। वे बड़ी देर तक चुप रहे। फिर बोले—

'मेरे पिता ने सारी आयु इस दलदली भूमि को खोदा था। वे इसे खेती योग्य नहीं बना पाये थे। मैंने भी जीवन भर इसे खोदा है और मैं इसे खेती के योग्य बना पाया हूँ।' उन्होंने कुदाल पर हाथ रखा और कहा—'खोदने से मैं रह नहीं सकता हूँ। मेरे पिता जानते थे और मैं भी जानता हूँ कि यदि काफी परिश्रम किया जाय तो कोई कार्य असम्भव नहीं।'

उनकी बात मेरे दिल में गहरे पैठ गयी। उनकी काम में लगन देख मुझे अपने प्रति ग्लानि हुई। मुझे खलने लगा कि मेरे पास जो नहीं है, वह उनके पास है—हर दशा में काम पूरा करने की लगन, हठ और जीवन का कर्त्तव्य पूरा करने की अदम्य दृढता। तब एकाएक मेरी आत्मा मुझे चुनौती देने लगी।

मैं उसी हालत में वापस आया। रद्दी की टोकरी से अपना उपन्यास निकाला। मैंने उसे मेज पर रक्खा तथा एक नये जोश तथा उमंग के साथ लिखना आरम्भ किया। अपने मनोरथ की पूर्ति के लिए मैं काम में तल्लीन हो गया। मैं काम में इतना डूब गया कि मुझे समय का कुछ ध्यान ही न रहा।

तीसरे महीने के मध्य में मैंने उपन्यास पूरा कर लिया। उस समय मैंने जो सन्तोष और चैन की साँस ली, उसका वर्णन नहीं कर सकता। मैंने उपन्यास एक प्रकाशक को भेज दिया और उसके बारे में और आगे चिन्ता करना छोड़ दिया। वहाँ रहते हुए मैं भला चंगा और पूर्णरूप से स्वस्थ हो गया।

एक दिन वहाँके निवासियों से विदा लेने के लिए मैं बाहर निकला। जब मैं डाकखाने में पहुँचा तब पोस्ट मास्टर ने मुझे एक तार दिया। प्रकाशक मुझसे शीघ्रातिशीघ्र मिलना चाहता था। मैं वहाँसे सीधा वृद्ध आंगस के पास आया। मैंने उन्हें वह तार दिखाया।

जो उपन्यास—'हैटर्स कैसल'—मैंने प्रारम्भ में रद्दी की टोकरी में फेंक दिया था वह छपने पर एक पुस्तक संस्था द्वारा सम्मानित हुआ। उसके आधार पर एक नाटक लिखा गया। कई अखबारों में उसे धारावाहिक रूप से छापा गया। उसका उन्नीस भाषाओं में अनुवाद हुआ। वह हॉलीवुड द्वारा फिल्म बनाने के लिए खरीदा गया। उसकी लगभग तीस लाख प्रतियाँ बिकीं। उसने मेरे जीवन की दिशा ही बदल दी और मैं वह कुछ बन गया जिसकी मैंने कभी कल्पना भी नहीं की थी। यदि वृद्ध आंगस मुझे लगन, परिश्रम और दृढता का पाठ न पढ़ाते, तो मैं शायद वह कुछ न बन पाता जो आज हूँ—एक लेखक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

औवैयार

श्री वे० रंगराजन

आज से दो हजार साल पहले तमिलनाडु में कई कवयित्रियाँ हुई थीं। उनमें औवैयार का नाम बहुत मशहूर है। उन्होंने राजा-रंक, बूढ़े-बच्चे, पंडित-किसान, पुरुष-स्त्री आदि के लायक कई नीति-ग्रंथ तथा फुटकर कविताएँ हरेक के स्तर के अनुसार रचीं। उन्हें तमिल भाषा-भाषी चिरकाल से श्रद्धा के साथ जबानी याद करते रहते हैं। तमिलनाडु के प्रारम्भिक स्कूलों के बच्चे औवैयार के पद्यों को जबानी सुनाते-सुनाते आनन्द से प्रफुल्लित हो जाते हैं। ऐसी महान् कवयित्री के जीवन का थोड़ा-बहुत ज्ञान रखना हर भारत-वासी का कर्तव्य है।

औवैयार के जन्म के बारे में कई कहानियाँ प्रचलित हैं। उनमें एक यों है। एक बार ब्रह्मदेव ने एक यज्ञ किया। यज्ञ कुंड से अमृत का एक घड़ा निकला। उससे सरस्वती देवी का जन्म हुआ। ब्रह्मदेव ने उससे शादी कर ली। थोड़ी देर बाद उसी घड़े से अगस्त्य मुनि पैदा हुए। उनका विवाह समुद्रराज की बेटी से हुआ। उन दोनों को एक पुत्र हुआ जिसका नाम पेरुंचाहरर था। पेरुंचाहरर ने तिरुवारूर शहर की एक हरिजन स्त्री से शादी कर ली। उनको एक पुत्र हुआ। उसका नाम था भगवन। पेरुंचाहरर ने अपने बेटे को सभी शास्त्र सिखाये।

उस समय नवमुनिवर नामक एक ऋषि थे। उन्होंने अरुण्मंगै नामक एक ब्राह्मण कन्या को अपनी स्त्री बना लिया। उनके एक बच्ची पैदा हुई। बच्ची को उरैयूर शहर के एक हरिजन के हाथ सुपुर्दकर माँ-बाप दोनों तप करने वन चले गये। उनके चले जाने के बाद उरैयूर में रेत की वर्षा हुई। सर्वेश्वर के कृपा-कटाक्ष से बच्ची बची। बाकी सब मर मिटे।

उरैयूर के पास मेलूर नामक एक गाँव था। वहाँ नीति ऐयर नामक एक ब्राह्मण रहते थे। उन्होंने उस बच्ची का पालन-पोषण किया। बच्ची दिन-दूनी रात चौगुनी बढ़ने लगी। तब पेरुंचाहरर के पुत्र भगवन तीर्थयात्रा करते हुए मेलूर की धर्मशाला में जा ठहरे।

एक दिन भगवन पूजा-पाठ से निवृत्त होकर भोजन बना रहे थे। तब नीति ऐयर के घर में पली लड़की धर्मशाला में भगवन के पास खड़ी होकर तमाशा देख रही थी। भगवन ने समझा कि उसके देखने से उनका भोजन अपवित्र हो गया। अतः उन्होंने क्रुद्ध होकर एक लाठी उसके सिर पर मारी। लड़की का सिर फूट गया और खून बहने लगा। लड़की ने रोते हुए नीति ऐयर से सब हाल कह सुनाया। वे लड़की को तसल्ली देकर चुप रह गये।

कई साल बीत गये। भगवन तीर्थयात्रा करते हुए काशी पहुँचे। वहाँ थोड़े दिनों तक ठहरने के बाद अपने घर लौटे। लौटते समय भी मेलूर की धर्मशाला में ठहरे। अब तक नीति ऐयर की लड़की सयानी हो चुकी थी। वह बड़ी रूपवती और सौंदर्यवती थी। भगवन ने एक दिन उसको देखा तो दोनों एक दूसरे पर आसक्त हो गये। नीति ऐयर को इसका पता लगा तो उन्होंने दोनों के विवाह का प्रबंध कर दिया। पाँच दिन तक विवाह महोत्सव मनाया गया। उस समय के रीति-रिवाज के अनुसार पाँचवें दिन वर ने वधू के सिर पर तेल लगाया। जब भगवन ने सिर पर घाव का चिह्न देखा तब उनको शक हुआ। तुरन्त उसे त्यागकर भागने लगे। वधू ने भी जिनका नाम 'आदि' था पति का पीछा किया। बहुत दूर एक स्थान पर पति को रोककर कहा—"सर्वेश्वर की कृपा से हम दोनों का विवाह हो गया। मुझे त्यागकर आपका भागना नीति के विरुद्ध है। आपके वियोग में मैं जीवित नहीं रह सकती। आप मुझे त्यागकर जाते तो मैं आत्महत्या कर लेती।"

भगवन ने कहा—"अगर यह सच हो कि तुम मुझसे वास्तविक प्रेम करती हो तो तुम्हें मेरी आज्ञा का पालन करना चाहिए। जहाँ-जहाँ हमारे बच्चे पैदा होंगे वहाँ वहाँ उन्हें त्यागकर तुम्हें मेरे साथ जाना होगा।"

आदि ने भगवन की शर्त मान ली। दोनों तीर्थ-यात्रा करते जा रहे थे। उनके तीन बालक और चार बालिकाएँ हुईं। उघै, उरुवै, औवै, वल्ली बालिकाओं के नाम और तिरुवल्लुवर, अदियमान अंजि तथा कपिलर बालकों के नाम थे। अत्तुक्काडु में उघै का जन्म हुआ; वहाँके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक धोबी के हाथ में वह सुपुर्द की गयी। काविरिघूम्पट्टिनम में उरुवै और औवै (जो आगे चलकर औवैयार के नाम से प्रसिद्ध हुई) पैदा हुईं। उरुवै एक मधु-विक्रेता को तथा औवैयार एक गवैये को सौंपी गयी। पहाड़ी लोगों की बस्ती में वल्ली का जन्म हुआ। वह पहाड़ी लोगों के नेता को सौंपी गयी। मदरास के मैलापूर में तिरुवल्लुवर का जन्म हुआ। उन्होंने लोक प्रसिद्ध नीति ग्रंथ तिरुक्कुरल की रचना की। तिरुवल्लुवर मैलापूर के एक हरिजन के घर में पले। अंजि शहर में अदियमान अंजि का जन्म हुआ जो उस शहर के एक प्रतिष्ठित सज्जन के घर में पले और आगे चलकर एक प्रतिष्ठित दानी हुए। तिरुवारूर में कपिलर पैदा हुए और एक ब्राह्मण के घर में पल कर प्रसिद्ध कवि हुए।

हर बच्चे को त्यागकर जाते समय माता के मन में वात्सल्य की तरंगें उठतीं। माता आँसू बहाते हुए मन में सोचती कि इस बच्चे का पालन-पोषण कैसे होगा। तब हर बच्चा अपना-अपना कोमल मुँह खोलकर एक-एक गीत गाता। औवैयार ने जो गीत गाया उसका मतलब यों है—"सर्वेश्वर ने तुम्हारे गर्भ से मेरा जन्म कराया। वह मर जो नहीं गया। संसार के सभी जीवों की रक्षा वही करता है। अतः तुम दुःखी मत हो। चाहे सारे संसार में अकाल ही अकाल पड़ जाय, तब भी मेरी सुरक्षा का भार उसी सर्वेश्वर पर ही है। अतः तुम अधीर मत हो।"

औवैयार बड़ी होने पर सभी कलाओं में निपुण हो गयी। उसने अपने को विवाह-बंधन में बाँधना नहीं चाहा। अतः वह आजीवन अविवाहित ही रहीं।

एक बार औवैयार चेरनाडु (आजकल का केरल राज्य) के राजा अधियमान नेडुमान अंजि के दरबार में पहुँचीं। वह राजा बड़े धर्मात्मा, दानी, वीर व धीर थे। उन्होंने समर में सात राजाओं को हराया था। औवैयार के शुभागमन का समाचार पाते ही उन्होंने बड़े ठाठ-बाट से उनका स्वागत किया और ऊँचे आसन पर बिठाकर उनकी सलाह के अनुसार राज-काज किया। इसी बीच एक दिन एक ऋषि राजमहल में पधारे। वे अपने साथ एक काले आमलक (आँवले) का फल लाये जिसका मिलना दुर्लभ था। उसे राजा के हाथ में देकर कहा—"जो यह फल खायगा वह आजीवन युवावस्था में ही रहेगा। ऐसा आमला युगों में एक बार मेरे जैसे ऋषि-मुनियों को सर्वेश्वर की कृपा से मिलता है। हम इस नश्वर शरीर का भार उठाना पसन्द नहीं करते। तुम तो बड़े दानी हो। अतः मैं इसे तुम्हें देता हूँ। तुम इसे खाकर लंबे अरसे तक बुढ़ापे से बचकर जीवित रहो और जनता की सेवा करते रहो।"

अधियमान नेडुमान अंजि ने उस आमलक को खुद न खाकर औवैयार को खिलाया। उसे खाते ही औवैयार को फल का महत्त्व मालूम हुआ। राजा के मुँह से आमले का वृत्तान्त सुनकर उनकी बड़ी प्रशंसा की।

उस समय 'परंबु' पहाड़ और उसके आस-पास के प्रदेशों के राजा 'पारी' थे। पारी केवल राजा ही नहीं, बड़े दानी भी थे। एक बार औवैयार उनके दरबार में पहुँचीं। राजा ने उनका बड़ा आदर-सत्कार किया। उनको कीमती चीजें भेंट कीं। औवैयार उन भेंटों को लेकर खुशी-खुशी जा रही थीं। रास्ते में कुछ लुटेरों ने उन चीजों को लूट लिया। औवैयार फिर पुरस्कार पाने के लिए पारी के महल पहुँचीं और खुद उसके राज्य में लुट जाने की दुखद दशा सुनायीं। तब पारी ने मुस्कुराते हुए कहा—"मैंने ही आपको अपने दरबार में ठहरने के विचार से सिपाहियों को भेजकर ऐसा किया। आप कृपया मेरी धृष्टता को क्षमा करें और थोड़े अरसे तक मेरे दरबार को आप सुशोभित करती रहें।" ये बातें सुनकर औवैयार बहुत प्रसन्न हुईं। उन्होंने पारी की श्रद्धा की सराहना की।

समय बीतता गया। पारी के दो पुत्रियाँ थीं। उनके नाम थे अंगवै और संगवै। दोनों सयानी हुईं। चेर, चोल और पांड्य राजाओं ने पारी महाराज के दामाद बनने की अपनी-अपनी इच्छा प्रकट की। पर पारी ने उनमें से किसीको भी अपना दामाद बनाना स्वीकार नहीं किया। इससे तीनों राजाओं ने क्रुद्ध होकर उनके राज्य पर चढ़ाई कर दी। कपट से उनका वध किया और राज्य आपस में बाँट लिया। पारी की दोनों पुत्रियाँ अनाथ हो गयीं। दोनों अपना राज्य छोड़कर तिरुक्कोविलूर नगर के बाहर एक कुटी में रहने लगीं।

एक बार औवैयार देशाटन करती हुई तिरुक्कोविलूर की तरफ जा रही थीं। उस समय जोर की वर्षा हुई। औवैयार भीग गयीं। ठंढ के कारण उनका शरीर काँप रहा था। वे काँपते-काँपते अंगवै और संगवै की कुटी में पहुँचीं। दोनों बहनों ने औवैयार का स्वागत किया। उनकी भीगी साड़ी उतारकर उन्हें एक नीली साड़ी पहनायी। पिछवाड़े से याजी तोड़ लायीं। उसे पकाकर औवैयार को खिलाया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाहर है संकट कि भीतरी उथल-पुथल है

श्री स्वर्णकिरण

बाहर है संकट
कि भीतरी उथल-पुथल है !
मात्र घृणा है, ऊब या कि आक्रोश
बदलने को खुद को या उनको, उनको
या फिर उनको ?

अहमदमिका यहाँ है
या कि वहाँ छायी है,
मिथ्या दोषारोप,
काम की धुन गायब है
या इसको जबरन् ही गायब किया गया है ?
शब्द झनझनाते हैं
ध्वनियाँ निकल-निकल कर आती हैं
या निकल नहीं पाती हैं ध्वनियाँ,
जड़ता का अहसास नचाता है
तन को या केवल मन को !
ठंढी-ठंढी हवा कहाँ कुछ कर पाती
परिवर्त्तन तन में
या फिर मन में ?
प्रतियोगिता मात्र दिखलावा-सी लगती है,
कुतर रहे हैं पंख उधर वे
व्याधा कैसे निर्मम प्राणी !

वाणी की यह सुधा,
कहाँ कुछ पाती है
जड़ित-पिंड पर जादू-टोना !
जीवन का उल्लास सहज गति से मिलता है
या कि नहीं बिल्कुल मिलता है
यह नकली कपूर-सा उड़कर
चला गया है, दूर लोक में।
केवल है चेतना शेष
अपने को धरती पर रखने की,
धरती की करुणा भी कुछ-कुछ बची हुई है !

यह कैसा व्यामोह सालता
या कि फँसाता है
मिथ्या यायावर मन को !

ठोस कड़ी मिट्टी है यह
या ठोस, कड़ी मिट्टी की जगह
मात्र कंकड़ हैं, कंकरीट हैं
या केवल बालू के कण हैं
शुष्क, स्नेह से शून्य, खुरदरे !
लोगों में बदलाव है कि बदलाव नहीं है ?

उस दिन रात को दोनों बहनों ने चाँदनी में बैठकर औवैयार को अपनी दशा कह सुनायीं। औवैयार बेहद दुखी हुईं। उन्होंने दोनों बहनों की शादी दो छोटे राजाओं से कराने का प्रबन्ध किया। मेघों को उन्होंने आज्ञा दी कि वे सोने की वर्षा करें। नदी को आज्ञा दी कि वह तिरुक्कोविलूर तक दूध व घी बहावें। वहाँ पड़े हुए ताड़ के बीज को आज्ञा दी कि वह तुरन्त पेड़ बने और नौ मीठे फल दे। अन्त में चेर, चोल और पाण्ड्य राजाओं को आज्ञा दी कि वे विवाहमंडप में विवाह-भेंट सहित हाजिर होवें। सबों ने औवैयार की आज्ञा का पालन किया। अंगवै, संगवै का विवाह-महोत्सव बड़े ठाट-बाट से हुआ।

फिर वे आजीवन नगरों और गाँवों में घूम-घूमकर लोगों को धर्म और नीति की बातें समझाती रहीं। अंत में अपनी अद्वितीय कविताओं को तमिल भाषा-भाषियों को हृदयंगम कराकर वे कवयित्री के रूप में अमर हो गयीं। इतनी शतियों के बाद भी तमिल साहित्य को उनकी कविताओं पर गर्व ही नहीं, वे उनकी कंठहार हो गयी हैं और आज भी जनता में लोकप्रिय हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कन्नड़ भक्त-कवि—श्री कनकदास

श्री एस० केशवमूर्ति, एम० ए०, साहित्यरत्न

विजयनगर साम्राज्य सोलहवीं शताब्दी में संगम, सालुव, तुळुव और अरवीडु नामक चार राजवंशों के हाथों में जाकर आपसी फूट का केन्द्र बना हुआ था। समाज में अंधविश्वास, बाह्याडम्बर एवं जाति-भेद का ताण्डव नृत्य हो रहा था। भक्ति के विविध पंथ उठ खड़े हुए थे। एक ओर इस्लाम धर्म का प्रचार था तो दूसरी ओर वीर-शैव-जंगमों द्वारा लिंगायत मत का। एक ओर रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैत की धाक जमी थी तो दूसरी ओर निम्बार्काचार्य के द्वैताद्वैत की। एक ओर मध्वाचार्य का द्वैतवाद द्रुतगति से फैल रहा था तो दूसरी ओर हठयोगी और नाथ सिद्धों का योग-मत। ऐसी अवस्था में जनता का भ्रम में पड़ना स्वाभाविक था। इस स्थिति में कर्नाटक की जनता का मार्गदर्शन करने के लिए कई हरिदासों का जन्म हुआ था, जिनमें कनकदास अत्यंत प्रसिद्ध हैं।

कनकदास कन्नड़ भाषा के हरि-भक्त कवि हैं। यद्यपि उनकी विरक्ति वैयक्तिक ज्ञान का परिणाम है फिर भी समाज के लिए वरदान है। उन्होंने भक्ति, ज्ञान एवं वैराग्य का समन्वय कर, साधारण लोगों को भी मुक्ति का मार्ग सुगम बनाया।

अव्यवस्थित समाज को देख जहाँ भी उनका हृदय धधक उठा, वहाँ उन्होंने कठोर खण्डन द्वारा उसे ठीक करने का प्रयत्न किया। जहाँ उनके उपदेश को सुननेवाले थे, वहाँ सज्जन पद्धति द्वारा उन्हें समझाकर सुधारने का प्रयत्न किया और जहाँ उनके उपदेशों को सुननेवाले ही नहीं थे वहाँ परम्परा को ही साक्षी के रूप में रखकर गीत गाया। इस तरह कनकदास ने कभी प्रत्यक्ष रूप में समाज को सुधारा, तो कभी अप्रत्यक्ष रूप में।

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष मानव-जीवन के पुरुषार्थ कहलाते हैं। इन चार ध्येयों का संबंध अटूट है। हर एक मानव को इन चार सीढ़ियों पर होते हुए अपने लक्ष्य तक पहुँचना पड़ता है। मानव-जीवन का अन्तिम लक्ष्य है मोक्ष-प्राप्ति। मानव-जन्म को छोड़, अन्य जन्मों में यह असाध्य है। यद्यपि यह शरीर नश्वर है फिर भी नश्वर शरीर से ही अनश्वर तक पहुँचना पड़ता है। नश्वर शरीर को बड़ा मानकर, मनमाने ढंग से चलनेवाले लोगों को इस ओर ध्यान दिलाने के लिए कनकदास ने उपदेश दिया है—

एण्टु गेणिन देह, रोमगळेंटु कोटियु, कीलगळ खत्तेंटु
माँसगळिंद माडिद मनेय मनवोलिदु
नेंटु नीनिर्दगलिदोडे, श्रीरा
हेंटेयलि मुच्चुवरु देहद लुंटे फल पुरुषार्थ।

अर्थात् आठ हस्तों के मापवाला यह शरीर आठ करोड़ रोमों, अड़सठ कीलियों तथा मांस-पिंड से बना हुआ घर है। इसको बड़ा मानकर, इसके बताये अनुसार मन को क्यों छोड़ते हो? जब इस घर को तुम छोड़ते हो, तब इसे सूखे गड्ढे में गाड़ देंगे। सब पुरुषार्थ लुट जायँगे।

अतः इस शरीर के रहते ही मुक्ति का मार्गान्वेषण मानव को कर लेना चाहिए। इस मार्ग के साथी हैं सज्जन। उनकी संगति से मार्ग और भी सुगम बन जायगा।

केशवनोलुमेंयु आगुव तनक
हरि दासरोळगिरुतिरु हे मनुज॥

हे मनुष्य, जब तक केशव तुझ पर नहीं रीझता तब तक हरिदासों की संगति में रहा करो।

हरिदासों की संगति से अज्ञान मिटता है, और अज्ञानियों की संगति से अज्ञान बढ़ता है। इसीको कितने सुन्दर ढंग से समझाते हैं—

अज्ञानिगळ कूडे अधिक स्नेहांकित
सुज्ञानिगळ कूडे जगळवे लेसु॥

अज्ञानियों के साथ अत्यधिक प्रेम से रहने की अपेक्षा सुज्ञानियों के साथ झगड़ते रहना उत्तम है।

चाहे थोड़ा ही समय क्यों न हो, झगड़ा करते समय सज्जनों की संगति मिल जाती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस जगत् में मरने के बाद कोई हमारा साथ नहीं देता। किये गये अच्छे और बुरे कर्म ही हमारा साथ देते हैं। अच्छे कर्मों द्वारा सद्गति मिलती है तो बुरे कर्मों द्वारा दुर्गति। कनकदास सन्मार्ग पर चलने का उपदेश देते हुए कहते हैं—

यारिगारु बहरु संगड मुन्दे
मीरि नडेद संचित कर्मवंते कन्ते मुंगड ॥

× × ×

अच्युतन नामवनु नेनेदु सुखियागो।

मृत्यु के बाद कोई किसीके साथ नहीं जाता। अपने संचित कर्मों के अनुसार आगे का मार्ग मिलता है। इसलिए अच्युत के नामस्मरण से सुख प्राप्त करो।

कनकदास एकनाद (एक तारवाले तानपूरा) के साथ अपनी आवाज मिलाकर, हरिकीर्तन करते हुए गाँव-गाँव घूमकर भक्ति का प्रचार करते थे। उन्होंने अपनी आँखों से जो अन्याय कलियुग में होते देखा उसे जनता के सामने रखकर, उन्हें सुधारने का प्रयत्न किया।

मूग्हिडिदु नीरोळगे मुळुगि जपतपवमाडि
वेद शास्त्र पुराण गळनोदि तिळिदु
बागि परस्त्री यरिगे भ्रमिसि कण्णिडुवंथ
नीति तप्पिदवरेल्ल बाह्मणरे ?

रोज पानी में डुबकियाँ लगाकर, जप तप करते हुए, वेद-शास्त्र-पुराणों को पढ़कर, अपने को ज्ञानी समझनेवाला ब्राह्मण, यदि परस्त्रीगमन की इच्छा रखता है तो क्या वह असल में ब्राह्मण है ?

गुणों के आधार पर ही उच्च या नीच बनता है। कनकदास के जमाने में जाति-भेद के आधार पर बड़ा अन्याय होता था। स्वयं कनकदास को भी कई कष्ट भोगने पड़े। वे जानते थे कि समाज के लिए कुल-भेद बड़ा हानिकारक है। उसे हटाने के लिए उन्होंने इस तरह उपदेश दिया है—

कुल-कुल-कुल वेंदु होडेदाड दिरि निम्म
कलद नेलेयनेनादरु बल्लिरा ?
हुट्टद योनिगळिल्ल, मेट्टद भूमिगळिल्ल
अट्ट उण्णद वस्तु गळिल्ल।
गुट्ट काणिस बंतु हिरिदेनु किरिदेनु
नेट्टने सर्वज्ञन नेनेकण्डच मनुज ॥

हे मनुज, कुल-कुल-कुल कहते हुए झगड़ा मत करो। अपने कुल की मूल क्या तुम जानते हो ? इस मानव-जन्म को लेने से पूर्व चौरासी लाख योनियों में से गुजरकर आये हैं। न ऐसी कोई जगह है जहाँ हम पैदा न हुए हों और न ऐसी कोई वस्तु है जिसे पकाकर हमने न खाया हो। उस रहस्य को तुम क्या जानो ? ऐसी अवस्था में कौन उच्च कुलवाला और कौन नीच कुलवाला है ? इस झगड़े में न फँसकर सीधे भगवान् के ध्यान में मन लगाकर नर जन्म में ही मुक्ति को प्राप्त करो।

वैष्णवों के बाह्याडंबर देखिए—

पट्टेनामव बळिदु पात्रे कैयलि पिडिदु
गुट्टिनलि रहस्यव गुरुतरियदे
केट्ट कूगनु कूणि बगुळि बायारुवंथ
होट्टगुड मृगगळेल्ल श्रीवैष्णवरे ?

विष्णु के चिह्न 'नाम' को धारण करके, हाथ में बर्तन लिये अपने में स्थित परमात्मा के रहस्य को जाने बिना, मनमाने ढंग से चिल्लाकर, पेट के वास्ते भौंकर कण्ठ शोषण करनेवाले, मृग को क्या श्रीवैष्णव कह सकते हैं ?

अपने को वीर शैव बताकर लिंग धारण कर, ढोंग रचनेवाले लिंगायतों की करतूत देखिए—

लिंग लिंग दोळडगिरुव चिन्मयवतिळियदे
लिंगांगदा नेलेय गुरुतरियदे
जंगम स्थावर भाववनु तिळियदे
भंगि मुक्क गळेल्ल लिंगवंतरे ?

शिवलिंग एवं शिवलिंग के अन्दर रहनेवाले चिन्मय शिव को जाने बिना, लिंग और अंग की स्थिति को पहचाने बिना, कौन भाव जंगम के हैं और कौन भाव स्थावर के हैं—इसे जाने बिना, भाँग पीनेवाले क्या असल में लिंगायत हैं ?

मस्जिद में कान बन्द करके चिल्लानेवाले मुल्ला की कटु आलोचना यों की है—

अल्ला, खुदा एन्दु आत्मदलि तिळियदे
मुल्ल शास्त्रद नेलेय गुरुतरियदे
जळळु कूगनु कूगि बगुळि बायारुवंथ
कळ्ळ तुरुकरिगेल्ल वीर स्वर्ग बुंटे ?

अल्ला-खुदा को आत्मदान द्वारा हृदय में पहचाने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिना, कुरान के रहस्य को पहचाने बिना निस्सार चिल्ला-चोट से, भौंककर कण्ठ शोषण करनेवाले चोर तुरुकों (मुसल-मानों) को क्या वीर स्वर्ग मिल सकता है ?

संन्यासी का ढोंग रचकर, समाज को धोखा देनेवाले के चेहरे का पानी कैसे उतारते हैं—देखिए—

हास्यगळनु कलितु घोष वस्त्रगळ हाकि
आसेगळ तोरेदेनेंदु तपसु कुळितु
वासुदेय गुरुकृपा गुरुतरियदंथ
वेषधारिगळेल्ल संन्यासिगळागबल्लरे ?

गुरुकृपा की महिमा को जाने बिना, गेरुआ वस्त्र धारण कर, हास-परिहास में समय गँवाते हुए, तपस्या का ढोंग रचते हुए, आसन जमाकर यह कहनेवाले कि हमने सब इच्छाओं को त्याग दिया है, क्या असल में संन्यासी हैं ? वे तो वेषधारी बदमाश हैं। उनसे दूर रहना है।

कनकदास ने लोगों को समझाया कि लोग वेद, शास्त्र, पुराणादि को सुनाकर, उपदेश देने का काम अपने पेट और वस्त्र के वास्ते करते हैं। असल में उनमें भक्ति नहीं। संन्यासी, यती, योगी, बैरागी, जंगम, पहलवान आदि का वेष धारण करना, पेट और वस्त्र के लिए। उन पर विश्वास मत रखो। उनसे धोखा मत खाओ। यदि मुक्ति और परम सुख की इच्छा रखते हो तो आदि केशव का ध्यान मन लगाकर करो।

उन दिनों कर्नाटक में हठयोगी एवं सिद्धों की धाक जनता में खूब जमी थी। वे योग साधना एवं अलौकिक कृत्यों से अनपढ़ जनता को ही नहीं, पढ़े हुए लोगों को भी अपनी ओर आकर्षित कर, उनको भ्रम में डालकर, कुमार्ग पर ले चलते थे। जनता को उनसे बचकर रहने का उपदेश देते हुए सच्चे योगी के लक्षण कनकदास ने यों बताये हैं—

तान्यारो तन्न देह व्यारो
दिव्य ज्ञानदिंद तिळिदवने परम योगी।
घोर नरक तनुएन्दु मनदलि तिळिदु
गेरु हण्णिन बीजदंते होरगिद्दु
मारपित कागिनेले यादि केशवन पाद
पारिजव नेनेदवने परम योगी ॥

अर्थात् श्रेष्ठ योगी वही है जो स्वयं को पहचान लेता है। इसे दिव्य ज्ञान से जाननेवाला ही असल में योगी है कि मैं कौन हूँ और यह शरीर किसका है ? इसे मन में जानकर कि यह शरीर घोर नरक है, जैसा काजू का बीज फल में रहकर भी बाहर निकला हुआ रहता है, वैसा संसार में रहकर सब कर्म करते हुए भी, उससे बाहर रहनेवाला एवं आदि केशव के पादपद्मों का ध्यान करते हुए, अपने जीवन को जीवन मुक्त की तरह बितानेवाला ही, असल में श्रेष्ठ योगी है।

उन्होंने उपदेश दिया है कि जब तक हम अहं को नहीं छोड़ते तब तक हमें भगवान् के दर्शन नहीं होते। निष्काम जीवन बिताकर परमात्मा को अपने वश में कर लेना चाहिए। यही मुक्ति का सरल उपाय है।

इस दुनिया में कोई भी वस्तु हमारी अपनी नहीं है। सब उस परब्रह्म की है। इसलिए उन्होंने कहा है—

"मनवचनदि माडिद पापपुण्य गळ अर्पिसु अवनल्लि।"

मन, वचन तथा कर्म से कमाये गये पाप-पुण्यों को भगवद् चरणों में अर्पण कर दो। सर्वार्पण भाव से ही, परमात्मा अपने वश में होते हैं। तुम यह मत सोचो कि परमात्मा को कहाँ ढूँढ़ूँ? कैसे उनके चरणों में अर्पण करूँ ? भगवान् तो सर्वव्यापी हैं।

एल्लिरुवनो रंग एम्ब संशय बेड
एल्लि भक्तरु करेये अल्लि बंदोदगुवनु।

तुम यह संदेह मत प्रकट करो कि परमात्मा इधर है कि नहीं ? वह तो सर्वव्यापी है। जहाँ भक्त प्रेम से बुलाता है वहाँ, प्रकट होकर, उसकी रक्षा करता है।

तुम इस तरह अपने जीवन को बिताने का प्रयत्न करो—

हरिये सर्वोत्तम, हरिये सर्वेश्वर
हरिमयवेल्लवेनुत तिळिदु।

हरि ही सर्वोत्तम है, हरि ही सर्वेश्वर है, एवं हरिमयं सर्व जगत् समझते हुए हरि का भजन करो।

संसार-सागर वनुत्तरि सुवडे
कंसारि नामवोंदे साकुमनुज ॥

हे मनुज, संसाररूपी सागर को पार करने के लिए कंस के शत्रु श्रीहरि का नाम स्मरण मात्र काफी है। नाम लेकर ही हम मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं।

विविध देवताओं को पूजकर भ्रम में पड़े हुए लोगों को लक्ष्य कर उन्होंने कहा है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमात्मा एक है। ब्रह्म अनादि, अनंत, अखण्ड, निराकार है। वही भक्तों की इच्छा को पूर्ण करने के लिए साकार बन (सगुण) नारायण, गोविन्द, गोपाल, मुकुन्द, माधव, राम, कृष्ण, केशव, वासुदेव, दामोदर, रंग, विट्ठल, सदाशिव, नरसिंह, हरि, हर एवं ब्रह्मा के रूप में प्रकट होता है। इसलिए सब देवता एक हैं। देवताओं में भेद नहीं। देवताओं को अलग-अलग मानकर मत लड़ो।

उन्होंने कहा है हरि का नाम स्मरण करने से ही सकल पाप दूर हो जाते हैं। स्मरण से ज्ञानोदय होता है। नाम स्मरण मात्र से कितने ही लोग मुक्त हुए। स्नान, उपवास करने की जरूरत नहीं, न वैरागी बनने की—

नीर मणुगलु याके, नारियळ बिडलेके
वारकोंदुपवास माडलेके।
नारसिंहन दिव्य नामवनु नेनेदरे
घोरपातकवेल्ल तो लगि होगुबुदु।

न पुण्य तीर्थों में जाकर स्नान करने की जरूरत है, न पत्नी को छोड़ संन्यास लेने की। सप्ताह में एक दिन उपवास रखने की आवश्यकता भी नहीं। नरसिंह के दिव्य नाम का स्मरण करने से घोर पाप भी दूर हो जाते हैं। अतः बाह्याडंबर को छोड़कर हृदय में हरि का स्मरण करो।

कनकदास कुशल समाजसुधारक थे। जनता के अनुसार, अपने उपदेश का ढंग भी बदलते जाते थे। यदि पंडितों को उपदेश देकर सुधारना हो तो पंडिताऊ भाषा का इस्तेमाल करते थे, यदि पाकशास्त्रज्ञ को समझाना हो तो उन्हींकी वस्तुओं से उपमा देते थे। भक्ति, ज्ञान एवं वैराग्य की बातों को किसानों की भाषा में, किसान को समझाने की उनकी रीति देखते ही बनती है—

नारायण एम्ब नामद बीजवनु नालिगेया
कूरिगेय माडि बित्तिरय्या।
हृदय होलवनु माडि तनुव नेगिलु माडि
तन्विरा एम्ब एरडेत्त हूडि।
ज्ञान वेंबो मिगिय कण्णि हग्गव माडि
मनवेंब धरणिय तोडि बित्तिरय्या॥
कामक्रोधगळेंब गिडगळनु तरियिरय्या
मद मत्सरवेंब पोदेय इरियिरय्या।
पंचेंद्रियगळेंब मंचिकेय हाकिरय्या
चंचलवेंब हक्किय ओडेसिरय्या॥
उदयास्त मानवेंब एरडु कोळगव माडि
आयुष्यद राशियनु अळेयिरय्या।
इदु कारण कागिनेलेयादि केशवन
मुददि नेने नेनेदु सुखिया गिरय्या॥

नारायण के नाम रूपी बीज को जीभ रूपी बीज बोने के यंत्र द्वारा बीज बोइए। हृदय को खेत, शरीर को हल एवं श्वास-प्रश्वास को बैल बनाकर, ज्ञान रूपी रस्सी से बाँधकर मन रूपी वसुंधरा को जोतकर बीज बोइए। काम-क्रोध रूपी पौधों को निराकर, मद-मत्सरादि झाड़ को काट-कर दूर हटाइए। पंचेंद्रियों का मचान बनाकर चंचलता रूपी पक्षियों को दूर भगाइए। जन्म-मरण रूपी कोळग (चार सेरवाला मापने का एक बर्तन) से आयु रूपी ढेर को मापिए। इस तरह की खेती-बारी करते हुए, आदिकेशव का स्मरण करने से परमसुख प्राप्त कर सकते हैं।

उन दिनों भक्ति और मुक्ति का विषय सामान्य जनता की पहुँच के बाहर था। वे कटु नियमों, जप, तप, यज्ञ-यागादि क्रियाओं से युक्त होकर; जाति, धर्म, उम्र, लिंग एवं भाषा के बन्धनों में जकड़ जाने से दुर्लभ वस्तु बनी हुई थीं। उन सब बन्धनों को काटकर, जनता की कमी को दूर हटाकर उन्हें भक्ति, ज्ञान एवं कर्म की त्रिवेणी के संगम में नहला कर मुक्तिमार्ग पर ले चलने का श्रेय श्रीकनकदास को है। इस तरह हम देखते हैं कि कनकदास सच्चे अर्थ में माजसुधारक एवं पथ-प्रदर्शक भक्त कवि थे।

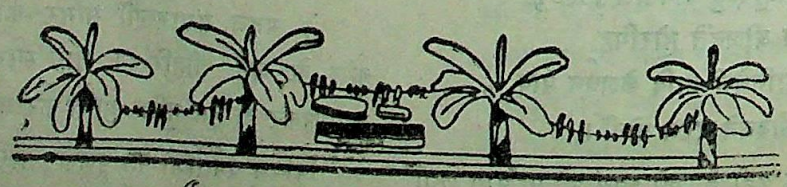

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उठो उलीचो नई रोशनी

श्री रामबाबू सेंगर 'पथिक'

विडम्बनाओं से बोझिल, उन्मन धुँधले परिवेश में,
उठो उलीचो नई रोशनी, अंधकार के देश में।

नग्न प्रदर्शन करे सभ्यता, और सरासर देखो तुम,
वर्तमान जलता सड़कों पर, जिसे खड़े अवलोको तुम।
कहाँ शिष्टता और मनुजता का गुजरापन खो डाला,
कहाँ विगत के आदर्शों के अवशेषों को धो डाला।।

शिलालेख सब खोज निकालो, संस्कृतियों के शेष में,
उठो उचीलो नई रोशनी, अंधकार के देश में।

नये राष्ट्र के नये सिरे से, सर्जनहार बनोगे तुम,
अधकुचले अवशेषों में, जब नूतन प्राण भरोगे तुम।
तब यह मावस नहीं रहेगी, रोज मनेगी दीवाली,
नई सृष्टि होगी वसुधा पर, झूमेगी डाली-डाली।

पुनः अवतरो धरती पर, गौतम-गांधी के वेश में,
उठो उलीचो नई रोशनी, अंधकार के देश में।

अमन चैन सुख शान्ति प्रेम से मानवता की माँग भरो,
लालबहादुर के सपनों को निज श्रम से साकार करो।
कंचन पैदा करो स्वेद से, स्वर्ग धरा पर लादो तुम,
कौन ऊँच है कौन नीच है, सब मतभेद मिटा दो तुम।

करो विषमता दूर आज से नृपति और दर्वेश में,
उठो उलीचो नई रोशनी, अंधकार के देश में।

यह प्रताप की धरती इस पर दानवता न करे नर्तन,
यह सुभाष की भू है इसमें भरा हुआ अविरल गुञ्जन।
इसी भव्य भू को आर्यों ने आर्यावर्त्त बनाया था,
यही भरत से पोषित-पूजित भारतवर्ष कहाया था।

आज पुकारा उसी वतन ने, नेहरू के सन्देश में,
उठो उलीचो नई रोशनी, अंधकार के देश में।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वर्गदूत

श्री निरंकुश

जब दर्वाजा खटकना बन्द नहीं हुआ तब झुँझलाकर उजागरलाल उठे और किवाड़ खोलकर बोले, "किसकी तलाश है ?"

"श्रीउजागरलाल की।" आगन्तुक ने कहा।

"मैं खड़ा हूँ आपके सामने। फ़रमाइये !"

"आपने शायद पहचाना नहीं ?"

"जी नहीं।"

"मेरा नाम तुलसीदास है।"

"तो क्या करूँ।"

"मैं एक आवश्यक कार्य से आया हूँ। यदि इस दुर्गंधमय वातावरण से हटकर किसी स्थान पर चल सकें तो बात-चीत की जाय।"

"मैं समझ गया। आप नम्बर बढ़वाने के लिए तशरीफ़ लाये हैं। मेरे यहाँ यह धन्धा नहीं चलता है। आप जा सकते हैं।"

"बिना मेरी बात सुने किसी निष्कर्ष पर पहुँचने की उतावली मत दिखलाइये। आपके प्रवेशद्वार पर जो कूड़े का यह ढेर लगा है उससे मेरी तबियत घबरा रही है वरना मैं आपसे यहीं खड़े होकर वार्त्तालाप कर लेता।"

"मैं भी तो निवेदन कर रहा हूँ कि आप जल्दी से जल्दी रफ़ा हो जाइये। यह गली का मकान है किसी करवंचक का रंगमहल नहीं। सड़ायँध और गन्दगी यहाँकी द्वारपालिकाएँ हैं।"

"कुछ भी हो। दम भर के लिए मुझे कहीं और ले चलिये। यहाँ तो खड़ा नहीं हुआ जाता।"

और न चाहते हुए भी उजागरलाल उस व्यक्ति को अपनी बैठकनुमा दहलीज़ में ले गये जहाँ मध्याह्न की बेला में बिजली का दिया टिमटिमा रहा था। ताश के पत्ते बिखरे पड़े थे। कोने में एक पन्द्रह-सोलह साल की लड़की किसी परीक्षा की उत्तर पुस्तिकाओं को समेटे बैठी थी।

"आप आ कहाँ से रहे हैं ?" उजागरलाल ने पूछा।

"अमरावती से।"

"तब तो रास्ता भटक गये। मैं महाराष्ट्र की किसी परीक्षा से सम्बन्ध नहीं रखता।"

"मैं जानता हूँ। फिर भी आपसे ही मिलने आया हूँ। वास्तव में बात यह है कि मैं उस अमरावती से आ रहा हूँ।" आकाश की ओर इशारा करके आगन्तुक ने कहा।

"यानी स्वर्गलोक से।"

"जी हाँ।"

"इस दिल्लगी का आशय ?"

"आपका मार्गदर्शन।"

"मेरा ख्याल है कि आप आगरे या बरेली के पागल-खाने से भाग निकले हैं। मुझे आपको हाथ पकड़कर निकटस्थ पुलिस स्टेशन पर पहुँचाना होगा।"

"यह बात नहीं है। मैं वही तुलसीदास हूँ जिसने रामचरितमानस लिखा था। तीन सौ से अधिक वर्ष बीत गये देवलोक में रहते हुए। इसलिए हुलिया बदल गया है। अन्तरिक्ष यात्रा की सुविधा उपलब्ध हो जाने के कारण आपके पास आ सका हूँ।"

"चालाकी की ये बातें किसी और से कीजियेगा। मैं भूत-प्रेत में विश्वास नहीं करता।"

"मत कीजिये, पर मेरी बात तो सुनिये।"

"सुन नहीं रहा हूँ तो इतनी देर से क्या झख मार रहा हूँ ? आप कोई पहुँचे हुए इंसान मालूम पड़ते हैं।"

"देखिये ! मुझे पता चला है कि आप शोध कार्य कर रहे हैं।"

"हाँ, कर रहा हूँ। आपको कोई ऐतराज़ है क्या।"

"जी हाँ। मुझे भारी आपत्ति है, क्योंकि आपने जो विषय चुना है उसका मेरे कर्तृत्व से सम्बन्ध न होकर व्यक्तित्व से ताअल्लुक है।"

"हुआ करे। तुलसीदास नाम धर लेने से गोस्वमी तुलसीदास तो बन नहीं जायँगे।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"आप पी-एच० डी० क्यों कर रहे हैं ?"

"कौन व्यक्ति अपना प्रोमोशन नहीं चाहता ?"

"तो आपने तुलसीदास के व्यक्तित्व पर नूतन प्रकाश डालने की प्रेरणा कहाँ से पायी ?"

"पाता कहाँ से ? तुलसीदास के जन्म-स्थान, उनकी जाति आदि विषयों पर आज तक मतैक्य नहीं हो सका है। इसलिए मैंने खोज करने का विचार किया।"

"ठीक है, पर तुलसीदास के सोरों की अपेक्षा राजापुर में जन्म लेने अथवा सनाढ्य के बजाय कान्यकुब्ज या सरयूपारीण कुल में अवतीर्ण होने से नफ़ा-नुक़सान क्या होता है ?"

"तथ्य-निरूपण व्यावसायिक दृष्टि से नहीं किया जाता।"

"मैं आपकी बात मान सकता हूँ, किन्तु व्यर्थ के विवाद में पड़ना कौन-सी बुद्धिमत्ता है ? आपने कैसे समझ लिया कि तुलसी का जन्म सोरों अथवा राजापुर के अलावा और कहीं नहीं हुआ ?"

"आपकी पैदायशगाह से मुझे कोई सरोकार नहीं। गोस्वामी तुलसीदास की बात कीजिये।"

"वही कर रहा हूँ।"

"गोस्वामीजी ने ही तो लिखा है—

मैं पुनि निज गुरु सन सुनी कथा सो सूकरखेत।
समझी नहिं तस बालपन तब अति रहेउ अचेत॥

तथा

पन्द्रह सौ चौवन बिषै कालिन्दी के तीर।
श्रावन सुक्ला सप्तमी तुलसी धरयौ सरीर॥

"ऐसा 'मूल गोसाईं चरित' में मिलता है।"

"आपके कहने का आशय यह है कि सूकरखेत सोरों में ही हो सकता है, अन्यत्र नहीं।"

"गोंडा ज़िले में भी सूकरक्षेत्र पाया गया है।"

"गोया कि शूकरों की बस्ती कुछ इने-गिने स्थानों पर ही रही थी। आपने यह अनुभव नहीं किया कि प्रत्येक नगर, उपनगर और देहात में शूकरक्षेत्र होते हैं। उनके आधुनिक ढंग से विकसित करने के लिए आज की पंचवर्षीय योजनाओं के पन्ने के पन्ने रँगे गये हैं। इसके अतिरिक्त खेत के ऊपर स्थानों के नामकरण का रिवाज कुमायूँ की पहाड़ियों पर विशेष रूप से देखने को मिलता है। क्या आपने रानीखेत, ताड़ीखेत जैसी जगहों के नाम नहीं सुने। आपने मेरी जन्म-भूमि को पर्वतीय प्रदेश में खोजने का प्रयत्न किया ?"

"जी नहीं।"

"मैं पूछता हूँ—क्यों ?"

"वहाँ सुरसरि की कलपना कैसे की जा सकती है।"

"हैं न आप वैशाखनन्दन ! पहाड़ों में जल की हर एक धार कोई न कोई गंगा है और प्रत्येक संगमस्थल किसी न किसी प्रकार का प्रयाग।"

"सो तो है।"

"फिर शूकर या सूकर आप किसे कहते हैं ?"

"सुअर को।"

"आप अंग्रेजी नहीं पढ़े हैं।"

"पढ़ा क्यों नहीं हूँ।"

"तो बतलाइये शूकर के क्या मानी होंगे।"

"जिसका सम्बन्ध 'शू' यानी जूते से रहता हो।"

"बिल्कुल। अब बतलाइये आपने उन नगरों में मेरे घर की तलाश की जहाँ जूते का उद्योग चलता हो।"

"जी नहीं।"

"तो आपने ख़ाक धूल किया क्या है ? राजापुर के समर्थन में आपने जो दोहा पढ़ा उसका 'संवत् सोरह सै इकतीसा, कहौं कथा हरिपद धरि सीसा' से तालमेल बैठाया ?"

"जी हाँ।"

"तब तो आप इस निष्कर्ष पर पहुँचे होंगे कि मानस की रचना मैंने पिछत्तर वर्ष की आयु में आरम्भ की।"

"मैंने इतना हिसाब तो नहीं लगाया।"

"लगाते भी कैसे ? अब यह बतलाइये कि आपने मुझे ब्राह्मण कैसे स्वीकार कर लिया ?"

"आपकी विनय-पत्रिका जो कहती है 'दियो सुकुल जनम सरीर सुंदर हेतु जो फल चार को'।"

"और इन पंक्तियों से क्या भावबोध होता ? सुकुल का सहज और शाब्दिक अर्थ क्यों नहीं लेते ?"

धूत कहौ अवधूत कहौ रजपूत कहौ जुलहा कहौ कोऊ....
जाको कुल मंगन बधावनो बजायो सुनि
भयो परिताप पाप जननी जनक को।
मेरी जाति पाँति, न चहौ काहू की जाति पाँति.....

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माँगि के खैबो मसीत को सोइबो लेबे को एक न देबे को दोऊ।
जाति पाँति पूछै नहिं कोई, हरि को भजै सो हरि का होई

"यही न कि मैं कम से कम ब्राह्मण नहीं था। यदि मैं ब्राह्मण होता तो 'द्विज श्रुति बेचक भूप प्रजासन' लिखकर अपनी बिरादरी की बुराई तो नहीं करता।"

"आपने तो यत्र-तत्र ब्राह्मणों की प्रशंसा भी की है। उन्हें भूसुर और महीसुर कहा है।"

"ऐसा तो मैंने व्यंग्य में कहा है। रावण ब्राह्मण था और मुझे उसकी हजो करनी थी।"

"तो महाराज आपका सम्बन्ध किस जाति से रहा था?"

"मैं ऐसे निरर्थक प्रश्नों का उत्तर देने के लिए नहीं आया हूँ।"

"श्रीमन्, यह तो बतलाइये कि आपने

ढोल, गँवार, सूद्र, पसु, नारी
ये सब ताड़न के अधिकारी

कैसे लिख मारा?"

"ये मेरे विचार नहीं हैं। मैंने गर्ग संहिता की इन पंक्तियों

दुर्जनाः शिल्पिनो दासाः दुष्टाश्च पटहाः स्त्रियाः
ताडिता मार्दवं यान्ति नैते सत्कारभाजिनः

का अनुवाद किया है"

"अब तो आप अपने पधारने का प्रयोजन व्यक्त करने का कष्ट करेंगे।"

"मैं चाहता हूँ आप शोधकार्य करें, प्रतिशोध नहीं।"

"प्रतिशोध! यह आप कैसा इल्ज़ाम लगा रहे हैं?"

"बिल्कुल ठीक कहता हूँ। आप हिन्दी का विकास करना चाहते हैं?"

"जी हाँ।"

"जी नहीं। आप उल्टे-सीधे विषयों को लेकर पी-एच० डी० और डी० लिट्० प्राप्त करना चाहते हैं ताकि आपकी ख्याति और समृद्धि में वृद्धि हो। आप पूँजीपति बनने के स्वप्न देख रहे हैं।"

"इसमें कोई हर्ज है क्या?"

"अवश्य।"

"आप क्या कम्यूनिस्ट विचारधारा रखते हैं?"

"मैं ऐसी कोई ऊल-जलूल विचारधारा नहीं रहता हूँ। मैं समन्वय में विश्वास रखता आया हूँ।"

"तो मुझे क्या करना चाहिए?"

"आपको दक्षिण में जाकर बसना चाहिये।"

"वह किस अपराध में।"

"उसी अपराध में जिसमें मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने उत्तर से सुदूर दक्षिण की यात्रा की थी"।

"उन्हें तो बनवास की आज्ञा मिली थी और उसी क्रम में उनकी स्त्री गुम हो गयी।"

"आप हिन्दी साधकों को भी बनवास की सज़ा दी गयी है और आपकी हिन्दी की लगभग वही दशा की गयी है जो सीता की हुई थी।"

"यह तो आप ज़बर्दस्ती की तुक बैठा रहे हैं।"

"मैं आजकल का मंच-प्रेत जैसा तुक्कड़ कवि नहीं हूँ। जो बात कहता हूँ उसमें गंभीर अर्थ निहित होता है।"

"कैसे?"

"रामायण काल में उत्तर और दक्षिण के सम्बन्ध बिगड़ गये थे। दक्षिण के लोग हठधर्म्मी पर उतर आये थे। वे सब कुछ भौतिकवाद की तुला पर तौलते थे। दशरथ नन्दन राम ने उत्तर और दक्षिण के मध्य व्याप्त वैमनस्य को युक्ति से दूर किया।"

"कभी ऐसा भी हुआ कि दक्षिण के किसी व्यक्ति ने उत्तरवासियों का दिमाग़ ठिकाने लगाया हो?"

"क्यों नहीं? जगद्गुरु शंकराचार्य का नाम इतनी जल्दी भूल गये! उन्होंने उत्तर और दक्षिण के मध्य की खाई को पाटकर सेतु का कार्य किया।"

"यह तो आप ठीक कहते हैं।"

"तो मेरी बात मानकर दक्षिण के किसी नगर में जाकर डेरा डालिये। हिन्दी के सम्बन्ध में वहाँके लोगों के मन में जो भ्रांतियाँ उत्पन्न हो गयी हैं उन्हें साधना और युक्ति से कुशलतापूर्वक दूर कीजिये।"

"भगवान् राम ने तो इस प्रकार के अभियान में अनेकानेक राक्षसों का संहार किया था।"

"जैसे।"

"खरदूषण।"

"आप भी जितने खरदिमाग़ हैं उन्हें ठिकाने लगा सकते हैं।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तो क्या हमें अस्त्र धारण करना होगा ?"

"हरगिज़ नहीं। आप एक शांतिप्रिय राष्ट्र के नागरिक हैं। आपको खून-खराबे की नहीं सोचनी चाहिए, परन्तु आप तर्क से सारे कुतर्कवादियों को परास्त कर सकते हैं।"

"तो मैं पी-एच० डी० का इरादा तर्क कर दूँ ?"

"बिल्कुल और इसी समय। आपने देर की तो सारा किया गोबर हो जायगा।"

"बहुत अच्छा, मगर महाराज, यह तो बतलाते जाइये कि क्या आपकी तरह अन्य स्वर्गवासी भी धरा पर पधारने का कष्ट करेंगे ?"

"क्यों नहीं।"

"मान लीजिये कल को मिर्ज़ा गालिब आ धमके और आपकी तरह उन्होंने उर्दू की बात चलाई ; तो क्या होगा ?"

"उनका मज़हब ऐसे सैर सपाटों की इजाज़त नहीं देता। अगर किसी तरह वह आ भी टपके तो उर्दू की चर्चा कदापि नहीं कर सकेंगे। वह हिन्दी के लिए ही ज़ोर लगायेंगे।"

"तब तो ठीक है। मुझे उन्हींकी तरफ़ से संदेशा था क्योंकि बड़े ज़ोर-शोर से उनकी याद ताज़ा करने की कोशिश की गयी है।"

"आप निश्चिंत रहें। आखिर हमें लौटकर तो देवलोक ही जाना है। उनकी देखभाल हम करते रहेंगे।"

"बहुत अच्छा। इतना ध्यान और रक्खियेगा कि किसी को कानों कान ख़बर न होने पाये कि आप मेरे कुटीर पर पधारे थे।"

"क्यों ?"

"मेरी कपाल क्रिया हो सकती है। दुर्भाग्य से मैंने अब तक अपनी खोपड़ी का बीमा नहीं कराया है।"

"अच्छी बात है। मैं किसीसे कुछ नहीं कहूँगा।"

सम्पादक का निवेदन

सरस्वती जुलाई ७३ में जो उपर्युक्त शीर्षक से सम्पादकीय छपा है उस पर उसके पाठकों की क्या प्रतिक्रियाएँ हैं यह जान लेने से सरस्वती प्रेमियों को सुविधा होगी।

सरस्वती न केवल हिन्दी की अपितु सारे भारत की एक बहुत पुरानी पत्रिका है। सरस्वती की जिन अग्रज व समवयस्का पत्रिकाओं को मुझे देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है उनमें से हिन्दी का बङ्गवासी, वेङ्कटेश्वर समाचार, जमाना (उर्दू), सिविल ऐण्ड मिलिट्री गज़ट (अंग्रेजी), इंगलिशमैन (अंग्रेजी) तो काल के गाल में समा चुके हैं। अंग्रेजी के पत्र अंग्रेजों द्वारा संचालित थे। वे इन्हें भारतीयों के हाथ बेचकर अपने देश चले गये। इनकी प्राचीनता केवल एक भ्रम है। सरस्वती ने न अपना स्वरूप खोया है और न वह अपनी परम्परा से हटी है। सरस्वती हिन्दी में तब निकली जब हिन्दी केवल पुरोहित वर्ग व स्त्रियों की भाषा समझी जाती थी। उसके बोलने वाले गँवार व अर्द्धशिक्षित माने जाते थे। फिराक गोरखपुरी तो अब भी हिन्दी को गँवारू (वलगर) कहते हैं। उस समय हिन्दी पत्रिका का अर्थ कोई धार्मिक पत्रिका अथवा स्त्री-सम्बन्धी पत्रिका होता था। ऐसी अवस्था में सरस्वती का ७३वें वर्ष में प्रवेश कुछ कम गर्व की बात नहीं है। सरस्वती की दूसरी उपलब्धि है उसके सम्पादन की कुशलता जिसने खड़ीबोली के स्वरूप को निखारा, हिन्दी पत्रकारिता में कई स्वस्थ परम्पराओं को जन्म दिया और प्रखर राष्ट्रवाद की समर्थक होती हुई भी कभी किसीका कोप-भाजन नहीं बनी। धारा १५३, मानहानि, अश्लीलता, जनता के विरोधी प्रदर्शन पत्र-पत्रिकाओं की नियति होती है। इनसे सरस्वती सदैव अछूती रही है। सरस्वती जीवित रहनी चाहिए—चिरयौवना जैसा वाग्देवी सरस्वती स्वयं हैं। इसके लिए मेरा सुझाव है कि सरस्वती का प्रत्येक पाठक इसके दो नये ग्राहक अवश्य बनाये।

—राजेन्द्रप्रसाद जैन
तिरसा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिजीविषा

श्रीशीतांशु भारद्वाज

काफी साँझ ढले, लाठी ठकठकाते हुए वे समीपवर्ती गाँव से किसी रोगी को देखकर घर की ओर लौट रहे थे। थके हुए और श्रांत।

पेशे से वे वैद्य हैं। पीढ़ी-दर-पीढ़ी विरासत में मिलता आ रहा है उनके परिवार को यह पेशा। जब वे छोटे थे तब उनके दादाजी खरल में कुछ-न-कुछ जड़ी-बूटियाँ कूटते ही रहते थे। पिताजी को भी उन्होंने पुड़ियाँ बाँधते हुए ही देखा। और वे भी जड़ी-बूटियाँ कूटते, पुड़ियाँ बाँधते और ज्योतिष में सिर खपाते हुए ही सत्तर पारकर चुके हैं। ओषधियों की मिली-जुली गंध के वे बाल्यकाल से ही अभ्यस्त रहे हैं।

इधर वय के साथ-साथ उनकी दृष्टि भी कमजोर पड़ने लगी है। पिछले दो-तीन वर्षों से उन्हें सुनाई भी कम देने लगा है।

उन्हें लगा जैसे गाँव की ओर से कोई उन्हें गुहार दे रहा हो।

"मिसरजी ! मिसरजी होऽ"

गाँव की सीमा पर आकर ठक से लाठी टेककर, आँखें मिचमिचाते हुए आवाज की ओर कान लगाये हुए वे वहीं खड़े हो गये।

"बहू फिर बेहोश हो गयी है।" उन्हें सुनायी दिया।

शिव ! शिव ! उनका हृदय धौंकनी की तरह धुक-धुक करने लगा। लाठी ठकठकाते हुए वे द्रुत गति से घर की ओर चलने लगे।

घर में बहू सचमुच ही मूर्च्छित पड़ी है। आँगन में गाँव की कुछ स्त्रियाँ बहू पर पानी के छींटे दे रही हैं। क्षिप्र गति से चिमटी से बहू की दंतपंक्ति खोलकर उसके मुँह में शीशी से दवाई की चंद बूंदें उन्होंने डाल दीं। तभी घुटनों के बल रेंगता हुआ उनका पौत्र आशू उनकी गोद में आ बैठा। पौत्र को थपथपाते हुए वे उसे प्यार करने लगे।

ओऽ-ओऽ, आजा निंदी, आजाऽ—बुदबुदाते हुए वे आशू की पीठ थपथपाने लगे। बहू धीरे-धीरे स्वस्थ होने लगी।

आँगन से उठकर बहू घरेलू काम-काज में लग गयी। गोद में ऊँघते हुए आशू को खाट पर सुलाकर वे भी दिशा-मैदान के लिए बाहर निकल गये।

बाहर चबूतरे पर बहू उनके लिए पानी से भरा हुआ लोटा रख गयी। शौचादि से निवृत्त होकर वे चबूतरे पर आकर हाथ-मुँह धो, कुल्ला करने लगे। बहू रसोई में है। रसोई की देहलीज पर आकर फूँ-फूँ कर चूल्हा फूँकती हुई बहू को देखा। वैधव्य की मार पर उनकी आँखें आर्द्र हो आती हैं। बहू से बिना कुछ कहे ही वे बैठक की ओर आ गये।

काम और काम ! लगता है जैसे मृत्यु-पर्यन्त उन्हें कभी भी इससे छुटकारा नहीं मिलेगा। आँखों पर मोटे काँच का चश्मा चढ़ाकर आशू की अधूरी बनी हुई जन्म-कुंडली पर आगे काम करने लगे।

उनके इर्द-गिर्द लाल-हरी, काली-पीली सियाही की दवातें हैं। ज्योतिष-गणना के अनुसार वे रंग-बिरंगी कलमों से उस लम्बे-चिकने सफेद कागज को रँगने लगे। एक स्थान पर आकर एकाएक उनका हाथ काँप उठा। चौबीसवें वर्ष में महान् संकट ! कलम को नीचे रखकर वे फिर से उँगलियों की पोरों पर गणना करने लगे। गणना अपने आपमें सही निकली, किन्तु उनकी आत्मा जैसे इसे स्वीकार नहीं कर पाती।

'शिवोऽम्!' उनका अन्तर्मन कराह उठा। और वे आशू के जन्म-लग्न और राशि पर पुनर्विचार करने लगे। ऐसा करते हुए उन्हें लगा जैसे वे अब तक त्रुटिपूर्ण गणना करते रहे हैं। उनका मन हुआ कि भीतर जाकर बहू से आशू के जन्म की सही घड़ी फिर से पूछें, किन्तु वे ऐसा नहीं कर पाये।

उनकी दृष्टि सामने के तख्तपोश पर रखी थीसिस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर जा लगी। उस लाल जिल्दवाले ग्रन्थ पर मोटे और सुनहरे अक्षरों में 'खगोल के परिप्रेक्ष्य में नक्षत्र-मंडल का वैज्ञानिक अध्ययन' नाम उभरा हुआ है।

'अभागा!' एक दीर्घ निःश्वास भरकर वे बुदबुदाये। विपिन बेटे की याद में उनकी आँखें भर आयीं। बेचैनी जब अधिक बढ़ने लगी तब आँखें पोंछकर बाहर आ गये।

बाहर कृष्ण-पक्ष की काल-रात्रि समस्त शैल-घाटी को अपनी बाहों के घेरे में लिये हुए है। अपनी कमजोर आँखें मिचमिचाकर, छज्जे पर खड़े-खड़े वे पूर्वी क्षितिज की हिमाच्छादित चोटियों को देखने लगे। उस अँधेरे के सैलाब में वे रजत-शिखर जैसे उनकी आँखों के लिए प्रकाश-स्तम्भ का काम कर रहे हैं।

उधर से दृष्टि फेरकर वे ऊपर नीले चँदोवे में जगमगाते हुए हजारों-हजारों नक्षत्रों को देखने लगे। वे बेचारे आज के विज्ञान को क्या जानें? उनके लिए तो वे आज भी तारे मात्र ही हैं, जब उनके विद्वान् पुत्र ने उन्हें नक्षत्र मानकर, खगोल-शास्त्र के परिपेक्ष्य में उनका वैज्ञानिक विश्लेषण किया था।

उनकी धुँधलाई हुई दृष्टि पर अतीत जैसे साकार हो उठा। उन्हें लगा जैसे आज भी प्रांगण के किसी कोने में खड़ा विपिन अपना शोध-कार्य कर रहा है।

—बाबू, उधर देखिये। मंगल ग्रह शुक्र की दिशा में अग्रसर हो रहा है।

—बाबूजी, आकाश-गंगा अपना मार्ग बदल रही है।

—सप्त-ऋषि मंडल और ध्रुव-तारे का आपस में कोई सम्बन्ध नहीं है।

शोध-काल में, आँखों पर कीमती दूरबीन चढ़ाये हुए विपिन इसी प्रकार की अनोखी-अनोखी बातें किया करता था।

अपनी उस एकमात्र संतान को उन्होंने विषम परिस्थितियों में उच्च शिक्षा दिलवायी थी। विपिन ने खगोल-शास्त्र में सर्वोच्च परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण करके शोध-कार्य प्रारम्भ किया था। अपने उस कार्य के लिए उन्होंने देश के अनेक आकाशीय-शोध-केन्द्रों का भ्रमण किया था। विद्वज्जनों ने उसके उस शोध को अपने ही ढंग का विलक्षण कार्य बताया था।

यह विधि की विडम्बना ही तो थी कि विपिन की आकस्मिक मृत्यु और उसके द्वारा प्रस्तुत प्रबन्ध का परिणाम दोनों समाचार उन्हें एक साथ ही मिले थे। विश्वविद्यालय के दीक्षान्त-समारोह में विपिन की डाक्टरेट डिग्री लेने के लिए उन्हें स्वयं जाना पड़ा था।

नैनीताल स्थित अमेरिकी आकाशीय केन्द्र में आयोजित एक वैज्ञानिक गोष्ठी में भाग लेने के लिए विपिन जिस बस, से नैनीताल जा रहा था, वह मार्ग में ही दुर्घटनाग्रस्त हो गयी थी। हजारों फुट की ऊँचाई से गिरी उस बस के सारे यात्री मारे गये थे। समाचार मिलने पर वे दुर्घटना-स्थल पर अर्धविक्षिप्त अवस्था में पहुँचे थे। उस गह्वर खड्ड में विपिन की लाश की शिनाख्त नहीं हो पा रही थी। बड़ी देर तक वे वहाँ माथा पटकते रहे किन्तु लाशों की उस ढेरी में कहीं भी उन्हें विपिन की लाश नहीं मिली।

और, तब रामगंगा के तट पर मृतकों की सामूहिक चिता में पुत्र के नाम पर दो लकड़ियाँ डालकर लहू-लुहान ललाट किये हुए वे घर आ गये थे।

रुग्णा बहू ने समय से डेढ़ महीने पूर्व ही आशू को जन्म दिया था।

उस हादसे के बाद से उन्हें दिल के दौरे पड़ने लगते हैं और बहू को चक्कर आते हैं।

अन्दर से बहू न जाने उन्हें कब से पुकारती आ रही है किन्तु वे सुनें तब न!

—बाबूजी! छज्जे पर आकर बहू झुँझला उठी।

—'खाना खा लीजिये न!'

—'तुम खा लो बेटा, मेरा मन नहीं है।' उनका स्वर डूबा हुआ है।

—यों उपवास रखना ठीक नहीं होता, बाबूजी। एकाध फुल्का ले लीजिये। बहू जिद कर बैठी।

रसोई में आकर वे रोटी खाने लगे।

—आशू के लिए दूध तो रख दिया न? वे रोटी का कौर तोड़ते हुए पूछ बैठे।

—'हाँ,' बहू फूँ-फूँ कर चूल्हा फूँकने लगी।

सोने से पूर्व उन्हें चिलम पीने की आदत है। बहू बैठक में चिलम भरकर लाई। वे वहाँ आशू की जन्म-कुंडली और रंग-बिरंगी दवात-कलम सहेज रहे थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

—'यह क्या बाबूजी', उन्हें चिलम थमाती हुई बहू पूछ बैठी।

—'आशू की जन्म-कुंडली तैयार कर रहा था।'

बहू के माथे पर परेशानी की सलवटें उभर आयीं और वह चुपचाप भीतर रसोई में चली गयी।

गुड़-गुड़ चिलम पीते हुए उनके मस्तिष्क में विचारों का मंथन चलने लगा।

एक गहरा उच्छ्वास भरकर वे बहू के बारे में सोचने लगे।

वह एकांत में कितनी रोती-कलपती है, इसका अंदाज उसके बुझे हुए मुख और बुरूँशी-सी लाल हो आई आँखों से उन्होंने लगा लिया।

उन्होंने बहू के पिता को बुलवाया था। पिता को देखकर वह रोने के लिए अंदर किसी अँधेरे कमरे में भाग गयी थी।

—'पांडेजी, बहू को अब आप ही समझाइये। 'मैं तो कहते-कहते थक गया।' वे समधी से बोले थे। 'मैं तो खुद ही पगलिया गया हूँ, मिसरजी! उसका नेम-व्रत तो....' पांडेजी सिर खुजलाने लगे थे।

और, फिर दोनों ने निश्चय किया था कि बहू जहाँ चाहे रहे। श्वसुर और पितृ-गृह की ओर से उसे जीवन-निर्वाह की पूरी सुविधा रहेगी।

रात अधिक बीत चली है। बहू आशू के साथ कब की सो चुकी है। बाहर शैल घाटी भी रात की बाहों में ऊँघने लगी है।

—हे शिव! अभी और न जाने क्या-क्या बदा है इस फूटे कपाल में। दायें हाथ से माथा पीटकर बायें हाथ की चिलम उन्होंने एक ओर खड़ी कर दी। वे अपनी तुलना गंदी नाली में रेंगते हुए एक मरियल कीड़े से करने लगे। और घुटनों पर हाथ रखकर चौकी से उठे। तभी उनकी दृष्टि दवाखाने के ऊपर रखी हुई अपनी जन्म-कुंडली पर गयी। उसे उन्होंने कभी स्वयं ही तैयार किया था। ज्योतिष-गणना के अनुसार उन्होंने अपनी आयु का निर्धारण नब्बे वर्ष किया था। परसों उन्होंने उसमें अपना आयु-चक्र देखना चाहा था। फिर क्षुब्ध होकर उसे उसी प्रकार दवाखाने के ताक पर डाल दिया था।

बहू का वैधव्य उन्हें संतप्त करने लगा। भाग्य के नाम पर एक भद्दी-सी गाली देकर उन्होंने अपनी कुंडली के टुकड़े-टुकड़े कर डाले। तभी उनके मस्तिष्क में एक विचार आया। क्यों न सदा-सदा के लिए आँखें मूँद ली जायँ! सोचकर उनकी आँखों में एक विचित्र प्रकार की चमक आ गयी।

जमुहाई लेकर समय का अंदाजा लगाने के लिए वे बाहर छज्जे पर आकर ऊपर के नीले चँदोवे को देखने लगे। नक्षत्र अब भी जगमगा रहे थे। सप्त-ऋषि मंडल से होती हुई उनकी दृष्टि विहान तारे पर जा लगी।

मृत्यु उन्हें बराबर अपनी ओर आकृष्ट करती रहती है। छज्जे से हटकर अन्दर रसायनशाला में आकर वे अपने लिए एक तीखी और विषैली खुराक तैयार करने लगे। अशक्त हाथ खरल में जमालगोटे को घोटकर उसमें अन्य विषाक्त ओषधियों का मिश्रण किया। शीशे के औषध-पात्र में गंगाजल डालकर अपने लिए पवित्र किन्तु विषैला घोल तैयार किया और उस विष को एक ही साँस में हलक से नीचे उतार लिया।

—शिव! शिव! उनके मुँह से निकला और वे वहीं चटाई पर लुढ़क पड़े। उनका जर्जर शरीर जहर के प्रभाव से अन्दर-ही-अन्दर दहकने लगा।

काश! उनका विपिन होता तो गाय की पूँछ पकड़ाकर उन्हें वैतरणी पार करवाता। वे गायत्री-मंत्र का जाप करने लगे।

वे विषैले महाताप में छटपटाने लगे।

सहसा उनकी आँखों में मृत्यु से पूर्ववाली दीप्ति आ गयी। वे रेंगते हुए पूर्वी दरवाजे तक आये। उनकी दृष्टि पूर्वी क्षितिज पर खड़े हिमानी रजत-शिखरों पर जा लगी। उन प्रकाश-स्तंभों के उजाले में उन्हें मरणोपरान्त के दृश्य दिखाई देने लगे।

—'बाबूजी, एक तुम बचे थे सो भी चले गये। अब मैं क्या करूँ? कहाँ जाऊँ?' गोदी के आशू को एक ओर पटककर बहू दहाड़ें मारती हुई पछाड़ें खा रही है।

उनकी चिता सजाई जा चुकी है। प्रांगण में गाँव भर के लोग जमा हो आये हैं। सिर धुनती हुई बहू खून के आँसू बहा रही है। पास ही कहीं आशू चीख रहा है....और,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शोकाकुल वातावरण में भी कुछ पापपूर्ण आँखें बहू के तन को बेध रही हैं।

उन्हें मृत्यु भी कष्टप्रद लगने लगी। वे कराह उठे।

—नहीं-नहीं, मुझे अभी नहीं मरना है। बुदबुदाते हुए किसी मरियल कीड़े की तरह पुनः रेंगते हुए रसायनशाला पास तक आये। किसी प्रकार हाथ बढ़ाकर 'अमृतघुट्टी' शीशी का कार्क दाँत से ही खोलकर उसे गटागट पी गये। णों में ही एक-दूसरे के विरोधी तत्त्व उनके उदर में उत्पात चाने लगे। एक असहनीय दर्द के साथ वे वहीं पर पड़े-पड़े ई करने लगे।

कुछ स्वस्थ होने पर पास ही की गयी उल्टियों की दुर्गन्ध ने उनका माथा चकराने लगा और अतिशय दुर्बलता के कारण शिथिल पड़ गयी उनकी देह वहीं लुढ़क गयी। उसी स्थिति में उनकी आँख लग गयी।

सुबह, दिन निकले, झाड़ू-बुहारी करने बैठक में बहू आई। ढेर सारी उल्टियों को देखकर वह हतप्रभ रह गयी। कहीं बाबूजी····एक अनिष्ट की आशंका से वह काँप उठी।

— बाबूजी! बाबूजी! जोर-जोर से चीखती हुई बहू उन्हें हिलाने-डुलाने लगी।

उनकी आँखें खुलीं, किन्तु दुर्बलता के कारण वे उठ नहीं पाये। करवट बदलकर वे कुछ बुदबुदाये।

—'क्या बात है, बाबूजी?' उल्टियाँ साफ करती हुई बहू पूछ बैठी।

—'कुछ नहीं, बेटा। कुछ भी तो नहीं।' वे अपने शुष्क हो आये ओठों पर जीभ फेरने लगे।

—'ओह, बाबूजी!' बहू अपने भाग्य को कोसकर रह गयी।

दरवाज़े से होती हुई धूप की पीली फाँक उनके शरीर पर पड़ने लगी। उबासियाँ लेते हुए वे चटाई पर बैठ गये।

—'नहीं, आशू के लिए मुझे बीस वर्ष और जीना होगा। मुझे आत्मघात नहीं करना चाहिए था। वे अपने आप बुदबुदाने लगे।

—'कुछ कह रहे थे क्या, बाबूजी'? बहू ने रसोई से आकर पूछा। उसके एक हाथ में उनके लिए कलेवा और दूसरे में दूध का गिलास है।

—'न, नहीं'। अपने मन की अन्तर्व्यथा अन्दर ही अन्दर उन्होंने दबा दी।

'हरे शिव!' घुटनों पर हाथ टेककर वे उठे और पास ही रखे पानी के लोटे से दरवाजे की चौखट पर जाकर हाथ-मुँह धोकर, कुल्ला-दतुअन करने लगे। उसके बाद ताँबे के अर्ध पात्र में जल डालकर पूर्व में उग आये सूर्य की पूजा करके, नमित सिर अर्घ्य चढ़ाने लगे।

—'बाबूजी, थोड़ी-सी नौणी (मक्खन) और लाऊँ?' कलेवा कर रहे श्वसुर के पास आकर बहू ने पूछा।

—'बस बेटी, जीती रह।' अनायास ही उनके मुँह से आशीर्वाद निकल पड़ा। दूध की अंतिम घूँट पीकर खाली गिलास बहू को थमा दिया।

दिन क्षितिज से हाथ भर ऊपर निकल आया है। मिरजई पहिनकर, कंधे में वैद्यकी का झोला डाले हुए, हाथ में लाठी लिये वे बाहर जाने लगे।

तभी बाऽ बाऽ करता हुआ आशू उनके पाँवों के इर्द-गिर्द रेंगने लगा। आशू को उठाकर वे उसके मखमली गालों पर अपनी सफेद हो आई झुरझुरी दाढ़ी रगड़ने लगे। उनकी आँखों के आगे बीस वर्ष बाद का आशू साकार होने लगा।

—'बाबूजी, मिरजई तो मैली है, बदल लेते।' बहू कह बैठी। बड़ी देर से वह उन्हें आशू से प्यार करते हुए देख रही थी। वह नहीं चाहती कि इतनी कमजोरी में वे कहीं बाहर जायें।

—'दुत् पगली!' फिस्स-से उनकी उजली श्वेत मूछों के बीच हँसी की उजास बिखर आई और वे लाठी ठकठकाते हुए घर से बाहर निकल पड़े। पारिवारिक प्रतिबद्धता ने उन्हें कर्म-क्षेत्र की ओर प्रेरित किया।

···और, किसी दूसरे गाँव की दिशा में चलते हुए उन्हें लगा कि समीपवर्ती गाँवों में बीस वर्षों तक उनकी लाठी इसी प्रकार ठकठकाती रहेगी।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नवीन प्रकाशन

हिन्दी रंगमंच और पं० नारायणप्रसाद 'बेताब'—लेखिका—डा० विद्यावती लक्ष्मणराव नम्र, एम० ए०, पी-एच० डी०। प्रकाशक—विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी। प्रथम सं० १९७२। मूल्य—साठ रुपये। पी-एच०डी० उपाधि के लिए स्वीकृत इस शोध प्रबन्ध में प्रसिद्ध नाटककार 'बेताब' के जीवन-वृत्त की उन परिस्थितियों का विस्तृत विवरण दिया गया है जिनमें उन्होंने विविध व्यावसायिक पारसी तथा अन्य नाटक मण्डलियों के अभिनय के लिए अपने नाटक लिखे थे। ये मण्डलियाँ उर्दू के नाटक खेला करती थीं। इससे पहले बेताबजी ने भी उर्दू में ही नाट्य-रचना की। आगे उनकी प्रेरणा से ये हिन्दी में उनके लिखे नाटकों का भी अभिनय करने लगीं। ये नाटक देश के विभिन्न क्षेत्रों के विविध भाषा-भाषी दर्शकों के विचार से उर्दू-मिश्रित हिन्दी में रचकर नाटककार ने तत्कालीन रंगमंच की आवश्यकताओं की पूर्त्ति की। लेखिका बेताबजी की सुपुत्री हैं। उन्हें प्रौढावस्था तक अपने पिता के कार्यकलाप की भीतरी जानकारी थी। इनसे उन्होंने उनके जीवन से सम्बद्ध संस्थाओं, व्यक्तियों और मराठी, गुजराती, उर्दू आदि में लिखी पुस्तकों से अभीष्ट सामग्री संकलित ही नहीं की, पूर्ववर्ती लेखकों, विशेषकर उर्दू के लेखकों की अनेक भ्रान्तियाँ भी दूर की हैं। यों हिन्दी के व्यावसायिक रंगमंच का प्रामाणिक परिचय प्रस्तुत किया है। इस रंगमंच के नाटककारों के कर्तृत्व के साथ ही बेताबजी की रचनाओं का विस्तारपूर्वक परिचय एवं विवेचन इस ग्रन्थ की विशेष उपलब्धि है। प्रबन्ध की सामग्री जुटाने, उसे व्यवस्थित करने और विषय के मर्म के उद्घाटन में श्रम और विवेक दोनों प्रत्यक्ष होते हैं। नाटकों के मूल्यांकन में डा० विद्यावती के अध्ययन की गहराई और तत्त्वग्राहिणी क्षमता देखी जाती है। सब मिलाकर इस कृति में हिन्दी के व्यावसायिक रंगमंच की बहुत सी अब तक अज्ञात बातों का विस्तृत और प्रामाणिक लेखा मिलता है और मिलता है उसमें खेले गये नाटकों का परिचय और विवेचन। यों डाक्टर विद्यावती ने अपने पिता की कीर्त्ति की रक्षा ही नहीं की, हिन्दी साहित्य के इस अछूते क्षेत्र का सम्यक् प्रदर्शन भी किया है। बेताबजी और कुछ रंगमंचों के, उनमें खेले गये नाटकों के दृश्यों, उनसे सम्बद्ध कई संचालकों, अभिनेताओं, नाटककारों, दिग्दर्शकों, गायकों-गायिकाओं आदि के सब मिलाकर तिरपन चित्र वर्ण्य विषय को प्रत्यक्ष करने में सहायक हैं। पुस्तक का बहिरंग आकर्षक और सुरुचिपूर्ण है। कहीं-कहीं अशुद्ध शब्द (जैसे जागृत, जागृति पृ० ७,९, १२२ अज्ञानी पृ० १९) अशुद्ध प्रयोग और अंग्रेजी के मुहावरे (जैसे, भारत दुर्दशा की ओर जनता का ध्यान खींचा, पृ० ९, शामतअली की आज्ञानुसार पृ० ७७…, नाटक-कम्पनी नाटक अभिनीत करती थी पृ० १२२, आदत तो मनुष्य का दूसरा स्वभाव होता है पृ० १२३) खटकते हैं। ये और अन्य भाषा तथा प्रयोग के दोष शोध प्रबन्ध के मुद्रित होने पर तो न होने चाहिए। इन्हें चन्द्रमा में कलंक समझना चाहिए। पुस्तक विषय और स्वरूप को देखते हुए संग्रहणीय है।

ललित कला, संस्कृति व साहित्य अकादमी, जम्मू-कश्मीर, जम्मू के दो प्रकाशन।

काव्य-सुषमा (हिन्दी अनुवाद सहित)। सम्पादक—श्यामलाल शर्मा। मूल्य पाँच रुपये। (१९७२)—इसमें डोंगरी के पुराने और नये १२४ कवियों की कविताओं का संकलन किया गया है। उनमें उसके 'बालबन, कैशौर्य, यौवन और प्रौढ़त्व की झाँकी' (प्राक्कथन से) देखने को मिलती है। देवनागरी में मुद्रित होने से इन कविताओं को पढ़ना सुगम हो गया है। डोंगरी के बहुत से संज्ञा, विशेषण ही नहीं, क्रियापद भी हिन्दी में चलते हैं। इससे उसे समझना कठिन नहीं है। फिर भी सभी कविताओं और उनके सामने हिन्दी रूपान्तर दे देने से उनका ठीक अर्थ आवश्यकतानुसार समझा जा सकता है। इस प्रकार यह संग्रह हिन्दी जाननेवालों के लिए बड़े काम का हो गया है। श्रीओंकार सिंह 'आवारा' ने स्वरचित 'सवेरा' को हिन्दी में भी छन्दबद्ध किया है। वह वैसी ही सरस है जैसी मूल डोंगरी रचना। संग्रह की पहली कविता 'हिन्दी-दी स्तुती' में पण्डित हरदत्त शास्त्री ने हिन्दी के प्रति बड़े ही प्रेम भरे उद्गार व्यक्त किये हैं। जैसे सुहागिन के माथे पर सिन्दूर का टीका होता है वैसे ही इस (हिन्दी) के माथे पर ॐकार की बिन्दी है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...हागनी दे मत्थे पर सिन्दूरे दा टिक्का जियाँ, इयां इदे ...ये पर, ओंकारे दी बिन्दी)। श्रीरघुनाथसिंह सम्याल ने ...गरा देस जगाई जायां' (डुग्गर देश को जगा दो) में ...गरों की विशेषताओं का बड़े ही उत्साह से उद्घोष ...या है—

...ति धर्म ते कर्म दी डोगरे, कुंगले पट्ट ते नर्म बी डोगरे; ...गे लड़ाई तां गर्म बी डोगरे, आई दी ब्हार भरवाई जायां, ...गरा देस जगाई जायां।

(डोंगरे धर्म और कर्म की मूर्त्ति हैं। रेशम की भाँति ...मल और नरम होते हैं। परन्तु युद्ध में विकराल रूप ...रण कर लेते हैं। उस स्थिति में इन्हें और तेज करते ...ना। डुग्गर देश को जगा देना।)

इस संग्रह की अन्य कविताएँ भी प्रेरणा से भरी हैं। ...नमें डुग्गर देश के प्रति अभिमान की अभिव्यक्ति है (डोगरा ...छी) भाई-चारे की सीख है (कुत्त नामै लैना तेरा नाँ? किस नाम आपको पुकारूँ'), प्रकृति की सुषमा है ('मस्त ...हीना फौगन', 'बदली', 'प्हाड़िएं दा देस' (पहाड़ी प्रदेश) ...र भी अनेक सरस विषयों पर लिखी कविताएँ हैं।

डोगरी के कवि तुकान्त कविताएँ तो करते ही हैं, अन्य ...षाओं के समान (जिनमें हिन्दी भी है) वे अब नये ढंग ...के स्वच्छन्द छन्दों में भी कविता करने लगे हैं जिनके चरणों ...में वर्णों या मात्राओं की समता के नियम नहीं होते। यों वे ...भी सर्वथा नवीन प्रगति के पथ पर गमन कर रहे हैं।

पुस्तक के अन्त में कवियों के चित्र और जीवनवृत्त देकर ...सम्पादक ने हमें उनसे परिचित कराने का स्तुत्य कार्य किया है।

पुस्तक की हिन्दी में संशोधन की अपेक्षा है। उसमें ...शब्दों के रूप कहीं-कहीं शुद्ध नहीं हैं (यथा—डोगरे बड़े ...भाव प्रवीण लोग होते हैं) कहीं वर्त्तनी सदोष है (जैसे ढूण्ढते, ...भ्रान्ति में अनुस्वार के बदले पञ्चम वर्ण) कहीं शब्दों के ...लिङ्ग प्रयोग ठीक नहीं हैं (जैसे, पक्षी मीठी सुरों में चह-...चहाते हैं।) अगले संस्करण में इन दोषों को सुधार देना ...उचित होगा।

वैसे डोगरी का परिचय प्राप्त करने, उस क्षेत्र के जन-...वाणी के माध्यम से वहाँकी भावना और वहाँ के चिन्तन के ...ज्ञान के लिए 'डोगरी काव्य सुषमा' पाठनीय और संग्रहणीय है

हमारा साहित्य (१९७०)—सम्पादक—श्यामलाल। ...मूल्य ८ रुपए। इस पुस्तक में कुल १८ रचनाएँ हैं। वे तीन ...वर्गों में विभाजित हैं। भाषा तथा भाषा विज्ञान—के अन्तर्गत चार निबन्ध हैं। 'भाषा विज्ञान के आदि आचार्य पाणिनि' और 'हिन्दी में कारकवाद' का सम्बन्ध डोगरी भाषा और साहित्य से नहीं है, फिर भी इन दोनों में उपयोगी जानकारी मिलती है। 'डोगरी में प्रचलित उर्दू शब्दावली', 'डोगरी और भद्रवाही' तथा 'कश्मीरी भाषा का उद्भव और विकास' जम्मू-कश्मीर प्रदेश की भाषाओं से सम्बद्ध हैं। उनमें वर्ण्य विषय का प्रतिपादन युक्तियुक्त और सप्रमाण है।

दूसरे खण्ड 'साहित्य तथा विचार विमर्श' में कुछ निबन्ध हिन्दी के सम्बन्ध में हैं—'हिन्दी हास्य व्यंग्य' 'नवीन की उर्मिला' तथा 'महादेवी की रहस्य साधना।' हम तो गुरु नानक को भी हिन्दी का कवि मानते हैं। इससे 'गुरु नानक का अध्ययन' भी इसी वर्ग में आता है। उसे चाहें तो पंजाबी के अन्तर्गत रख सकते हैं। इन समीक्षात्मक निबन्धों में विषय विवेचन सहृदयता और विवेक के साथ किया गया है। इनके अतिरिक्त 'अस्तित्ववाद' एवं 'कर्म सिद्धान्त और मानव' में सैद्धान्तिक निरूपण पांडित्यपूर्ण है। शेष रचनाएँ जम्मू-कश्मीर के विषय में कही जायँगी। 'कश्मीरी काव्य में दार्शनिक अनुभूति' में विद्वान् लेखक ने काव्य के सौन्दर्य का उद्घाटन न कर उसमें व्यक्त दार्शनिक विचारों का विश्लेषण किया है। 'मजहूर की काव्य शैली' में कवि मजहूर की परीक्षा की गयी है और उनकी रचना का सौष्ठव प्रदर्शित है। 'नन्दी मर्ग' में जम्मू के प्राकृतिक सौन्दर्य से पूर्ण स्वास्थ्यवर्द्धक नन्दी नामक मर्ग का वर्णन है तथा 'एक भेंट' में प्रसिद्ध जैन मुनि सुशील कुमारजी से भेट-वार्त्ता की चर्चा है, जिसमें मुनिजी के सभी धर्मों की एकता सम्बन्धी विचार विशेष रूप से दृष्टव्य हैं।

संग्रह के शेष दो अंशों में कई कहानियाँ और कविताएँ संकलित हैं। उनसे उस प्रदेश के कहानीकारों और कवियों की कृतियों की बानगी मिलती है। वे सब हिन्दी के वर्तमान प्रवाह के अनुरूप रचनाएँ हैं। यों जम्मू-कश्मीर के विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों के विभागाध्यक्ष, आचार्य, प्राध्यापक, शिक्षक एवं साहित्यकार, संपादक, कलाकार और लेखक तथा लेखिका जो विविध विषयों की अभिव्यक्ति अपनी कृतियों के माध्यम से कर रहे हैं वह सब इस संकलन में मिलेगा। इसमें उस क्षेत्र के चिन्तन और सर्जन का परिचय प्राप्त होगा। यदि प्रूफ देखने में थोड़ी असावधानी न होती तो पुस्तक की शुद्धता की पूरी रक्षा हो गयी होती।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुण्यश्लोक विद्यावारिधि पण्डित श्रीरामधारी शास्त्री स्मृति ग्रन्थ—सम्पादक—पण्डित महावीरप्रसाद जोशी, गंगाधर वैद्य तथा भगवानदत्त शास्त्री राकेश। प्रकाशक—पुण्यश्लोक विद्यावारिधि पण्डित श्रीरामधारी शास्त्री स्मृति ग्रन्थ प्रकाशन समिति, ३१ मुखराम कानोडिया रोड, हावड़ा। शास्त्रीजी संस्कृत के अनेक विषयों के अच्छे विद्वान् थे। उन्होंने बहुत कठिनाइयों का सामना करते हुए विद्याभ्यास और अपने चरित्र का निर्माण किया। वे अपने शास्त्र ज्ञान, नैपुण्य और आचरण के बल से उच्च-कोटि के अध्यापक बने। उन्होंने राजस्थान में संस्कृत-शिक्षा के प्रभावशाली केन्द्र बनकर बहुत प्रतिष्ठा प्राप्त की। इस स्मृतिग्रन्थ में शास्त्रीजी के विशिष्ट चरित्र के चित्रण के अतिरिक्त उनके सम्बन्ध में अनेक विद्वानों, शिष्यों, आत्मीयों ने संस्कृत तथा हिन्दी गद्य एवं पद्य में अपनी भावनाएँ व्यक्त और श्रद्धांजलियाँ अर्पित की हैं। उनसे पता चलता है कि शास्त्रीजी का व्यक्तित्व कितना सम्मानित था। विविध वर्गों के और अनेक कार्य-क्षेत्रों में लगे प्रतिष्ठित उनके २८६ प्रेमियों, भक्तों, शिष्यों आदि के थोड़े में दिये गये परिचय भी इस बात के प्रमाण हैं कि पण्डितजी कितने प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। स्मृति-ग्रन्थ में शास्त्रीजी के संस्कृत और हिन्दी में लिखे कुछ विचार भी संकलित हैं। यों यह संस्कृत के एक सदाचारी और साधुवृत्ति के भगवन्निष्ठ विद्वान् शिक्षक का अच्छा स्मारक है, जिसे पढ़ने पर सत्प्रेरणाएँ मिलती हैं।

मानस में रीति-तत्त्व—लेखक—श्री वैद्यनाथ सिंह। प्रकाशक—हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग। शकाब्द १८९५ (सन् १९७३)। मूल्य—२५ रु०। गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरितमानस स्वान्तःसुखाय अपनी मति के अनुरूप उन परब्रह्म श्री रामचन्द्र के गुणगान किये हैं जिन्होंने 'बिप्र धेनु सुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार' और उसमें उनकी भक्ति का प्रतिपादन किया है। अपने को कवि, वचन-प्रवीण, सकल कला एवं सब विद्याओं से हीन कहते हुए उन्होंने अक्षर (शब्द), अर्थ, अलङ्कृति (अलङ्कार), छन्द, भाव, रस, काव्य के दोष और गुण आदि काव्य के तत्त्वों से अनभिज्ञ कहा है। फिर भी उनकी यह अप्रतिम कृति काव्य के समस्त अवयवों से सम्पन्न है। कविता के पारखी इनका निरूपण करते आये हैं। साहित्य महोपाध्याय उपाधि के लिए स्वीकृत शोध प्रबन्ध में इन्हींका विस्तार के साथ और सम्यक् विवेचन किया गया है। इसमें संस्कृत की काव्य की समीक्षा पद्धतियों का उल्लेख करके उनकी कसौटी पर मानस को कसने की चेष्टा सर्वथा समीचीन है। विद्वान् लेखक ने सहृदयता के साथ पर्याप्त और उपयुक्त उद्धरणों की सहायता से काव्य के विविध अवयवों का प्रदर्शन और अपने निष्कर्षों का प्रतिपादन किया है। उन्होंने मानस को 'साहित्य-दर्पण' में मान्य महाकाव्य के लक्षणों से युक्त प्रदर्शित किया है; परन्तु वह संस्कृत के महाकाव्यों के आधार पर माने गये उन सभी लक्षणों से सर्वथा पूर्ण नहीं है और उसमें अग्निपुराण (अध्याय ३३७) के अनुसार अभिनेय (नाट्य) महाकाव्य के लक्षण भी यथेष्ट मिलते हैं तथा पुराणों की रचना-पद्धति का भी पर्याप्त समावेश है। इन दृष्टियों से प्रबन्ध-लेखक ने विचार नहीं किया है। लेखक ने रीति-सिद्धान्तों का पालन भी मानस प्रदर्शित किया है और उसमें शब्द, अर्थ, रस, गुण, दोष आदि का उद्घाटन किया है। उनकी मान्यताएँ प्रमाण से पुष्ट और उपयुक्त हैं। इसके अतिरिक्त उन्होंने कुछ ऐसी बातों पर भी विचार किया है जो प्रबन्ध की सीमा के बाहर कही जायँगी, किन्तु हैं वे भी काम की। यथा सप्तम अध्याय में (१) कथा के उपजीव्य और (२) साहित्य एवं समाज की प्रगति में गोस्वामीजी के प्रस्तुत प्रयास का योग तथा परिशिष्ट के सभी विषय जो लेखक के लेखों का संग्रह प्रतीत होता है। इनसे लेखक की मानस के अध्ययन की व्यापकता और गहराई का अवश्य बोध होता है। यों यह अपने विषय का विद्वत्तापूर्ण ग्रन्थ है।

स्वामी स्वरूपानन्दजी सरस्वती ने (जो उच्चकोटि के महात्मा होने के साथ ही दर्शन, पुराण और साहित्य के मर्मज्ञ भी हैं) स्वलिखित प्राक्कथन में इस पुस्तक की विशेषताएँ बतलाने के साथ ही भक्ति-रस का विशद विवेचन किया है। कितना अच्छा होता कि प्रबन्ध के रचयिता इस प्राक्कथन के आधार पर मानस के भक्तिरस के अध्ययन का भी इसमें समावेश कर देते। परन्तु खेद है वे इसे ग्रन्थाकार देख सकने के पूर्व ही काशी-लाभ कर गये। अब किसी अन्य को इस दृष्टि से मानस को सम्यक् रूप से देखना होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनोरंजक संस्मरण

पराड़करजी और चोंच जी ने एक दूसरे को छकाया

'आज' के सम्पादक श्रीबाबूराव विष्णु पराड़करजी बड़े ही विनोदी और हास्यप्रिय थे। एक बार हास्यरसावतार पं० कान्तानाथ पाण्डेय 'चोंच' उनके निकट बैठे थे। पराड़करजी आलमारी खोलकर एक चित्र निकाल लाये और उनसे पूछने लगे, "पाण्डेयजी, इस चित्र के व्यक्ति को आप पहचानते हैं?" चोंचजी पहचान न सके। वह एक राजपूत सज्जन का चित्र मालूम होता था। बीकानेरी साफा शेरवानी और पायजामा! जब चोंचजी अटकलबाजियाँ करके थक गये तब पराड़करजी बोले, "ये चित्रस्थ व्यक्ति हैं पंडित बाबूराव विष्णु पराड़कर। ये अभी हाल में बीकानेर गये थे। वहीं इस दरबारी वेश का चित्र उतरा था।" चोंचजी के शब्दों में—"मैं यह सुनकर चित्रवत हो रहा और वे खूब खिलखिलाकर हँस पड़े।"

चोंचजी ने इसके बदले पराड़करजी को बड़ विचित्र और मौलिक ढंग से छकाया। होली का अवसर था। एक निमंत्रणपत्र छपाया गया जिसमें निवेदकों में पराड़करजी और चोंचजी के भी नाम थे। समारोह के दो-तीन दिन पूर्व चोंचजी ने अन्य आयोजकों को सूचित कर दिया कि मैं किसी आवश्यक कारणवश उत्सव में भाग नहीं ले सकूँगा। किन्तु ऐन होली के दिन तड़के ही चोंचजी ने जटाजूट, दाढ़ी, मूँछ, खड़िया, मृगछाला, कमण्डलु आदि प्रसाधनों का कुशलता से उपयोग कर सिद्ध महात्मा का रूप धारण कर लिया। आयोजन चल रहा था। सिद्ध महात्मा 'बमशंकर! जय हो बाबा कीनाराम की। बच्चा कुछ भिक्षा ले आ।' कहते-कहते उस स्थान पर पहुँच गये। सिद्ध महात्मा के सम्मान में सभी साहित्यिकों ने श्रद्धापूर्वक नतमस्तक होकर प्रणाम किया। पराड़करजी को इस प्रकार विनत होते देख सिद्ध महात्मा को कुछ झिझक और संकोच हुआ, पर 'वेश की लाज' निभानी थी। वे बोल उठे—"बच्चा चिरंजीव!" अन्त में चोंचजी ने सिद्ध महात्मा का बाना उतार फेंका और पराड़करजी के चरण पकड़ लिये। इस पर पराड़करजी ने भी तुरन्त ही खिलखिलाकर हँसते हुए कहा—"बेटा चिरंजीव!" पराड़करजी में हास्य और गाम्भीर्य का अद्भुत सम्मिश्रण था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामावतार

श्री रामचरित उपाध्याय

आदि-कवि वाल्मीकि महाकवि होते हुए भी महर्षि थे। रामायण महाकाव्य होने पर भी आर्षग्रन्थ माना जाता है और ऐतिहासिक ग्रन्थ होने पर भी धार्मिक है। जिस प्रकार व्यासजी ने अपने पुराणों में अलङ्काररूप से कथा का वर्णन किया है उस प्रकार वाल्मीकिजी ने रामचरित का वर्णन नहीं किया, और ऐतिहासिक ग्रन्थ होने के कारण उसमें धार्मिक विषयों का सन्निवेश अति संक्षेप रूप से किया है तथापि जो कुछ उन्होंने लिखा है वह सरल और स्पष्ट है।

कहा जाता है कि किसी सभा में महाकवि कालिदास प्रभृति अनेक कवि बैठे हुए थे। उन्हीं में किसी ने कहा कि "वाल्मीकिजी ने व्यर्थ ही छोटी सी रामकथा के लिए चौबीस हजार श्लोक बना डाले।" यह बात कालिदासजी से न सही गई। उन्होंने कहा कि "आदि-कवि वाल्मीकिजी का ही यह काम था कि अति विस्तृत रामचरित का वर्णन केवल चौबीस हजार श्लोकों में समाप्त कर दिया। यदि मुझे रामायण बनाना पड़ती तो चौबीस लक्ष श्लोकों में भी रामायण कदाचित् ही समाप्त होती"। इस बात को सुनकर किसी कवि ने कहा कि "यह बात आपकी कैसे सच मानी जाय"। इसके उत्तर में कुछ दिनों के बाद कालिदास जी ने "सेतुबन्ध"* नामक महाकाव्य एक लक्ष श्लोकों में तैयार करके कवियों को दिखला दिया जिसमें केवल सेतु-बन्धन-मात्र वर्णित है। अस्तु।

यदि कोई मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्रजी को ईश्वरावतार न माने तो उसके साथ मेरा विशेष विवाद नहीं है, क्योंकि यह तो अपनी-अपनी रुचि है। किन्तु यदि कोई कहे कि वाल्मीकि ने रामचन्द्र को केवल राजकुमार ही माना है तो अवश्य दुःख होगा, क्योंकि वाल्मीकिजी ने रामायण के अनेक स्थलों में रामचन्द्र को ईश्वरावतार सिद्ध किया है। श्रीयुत बाबू रवीन्द्रनाथ ने भी "प्राचीन साहित्य" नामक अपनी पुस्तक में रामायण की समालोचना करते हुए कहा है :—

देवता की अवतारलीला के आधार पर यह काव्य (रामायण) नहीं बनाया गया है, 'बाल्मीकि के मत में राम अवतार न थे' वे मनुष्य ही थे + + + + यदि कवि रामायण में नर-चरित्र वर्णन न करके देव-चरित्र करता तो उससे रामायण का गौरव कम हो जाता, सुतरां उसके काव्यांश में क्षति होती। मनुष्य कहने से ही रामचरित महिमान्वित है। प्राचीन साहित्य पृ० ८।

बादशाह अकबर ने कागज पर दस अङ्गुल की एक लकीर खींचकर बीरबल से कहा कि "मेरी इस लकीर को आप छोटी कर दीजिए, लेकिन याद रहे कि मेरी लकीर ज्यों की त्यों रहे, उसमें कुछ कट-कुट न हो"। प्रतिभाशाली बीरबल ने तुरन्त ही बादशाह की लकीर के निकट बारह अङ्गुल की एक दूसरी लकीर खींच दी और कहा कि देखिए आपकी लकीर छोटी हो गई। बादशाह मुसकुरा कर चुप रह गया, इसलिए किसी के लेख का खण्डन न करके यदि अपने पक्ष का मण्डन कर दिया जाय तो उत्तम होगा।

राजा और प्रजा में अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। बिना राजा के प्रजा नहीं और बिना प्रजा के राजा भी नहीं हो सकता। जब प्रजा अन्याय में लिप्त होती है तब राजा की क्रोधाग्नि प्रजा का दमन कर देती है और जब राजा स्वार्थान्ध होकर प्रजा का उत्पीड़न करता है तब प्रजा की क्रोधाग्नि राजा को सदा के लिए निर्मूल करके शान्त होती है। अतः राजा प्रजा दोनों को उचित है कि परस्पर सद्व्यवहार करें क्योंकि बलात् शासन चिरस्थायी नहीं होता।

द्वीपान्तर-निवासी राक्षसेश्वर रावण बड़ा प्रतापी और

*यह महाकाव्य सम्पूर्ण अभी तक कहीं नहीं मिला, कहीं-कहीं खण्डित मिलता है।—लेखक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घमंडी था। उसके समान अहङ्कारी दूसरा कोई आज तक पृथ्वी पर उत्पन्न ही नहीं हुआ किन्तु उसका अत्याचार ही उसके नाश का कारण हुआ। लङ्केश्वर जैसा ही विद्वान् था वैसा ही स्वार्थी और उत्पीड़क भी था। वह जिसकी कन्या या स्त्री को सुन्दरी देखता उसी को बलात् छीन लेता था। दूसरे के राज्य और धन को हड़प लेना उसके बायें हाथ का खेल था। वह चापलूसों का आदर किया करता था और सत्यवादियों को दण्ड देता था, उसके अन्याय से सब घबड़ा उठे थे, गो-ब्राह्मण दीन दुखी हो गये थे, ऋषि-मुनियों का सत्कर्म लुप्त हो चला था, भारत में यज्ञ का होना एक प्रकार से बन्द हो गया। इससे देवताओं को जो यज्ञ-भाग मिलता था वह भी बन्द हो गया। तब देवताओं से न रहा गया, ब्रह्मा को साथ लेकर वे सब विष्णु के निकट गये। वहाँ जाकर पहले सबों ने विष्णु का स्तवन किया, तदनन्तर मनुष्यों और देवताओं के विविध दुःख सुनाये। फिर उन्होंने विष्णु से इस प्रकार प्रार्थना की—

राज्ञो दशरथस्य त्वं अयोध्याधिपतेर्विभो।
विष्णो पुत्रत्वमागच्छ कृत्वात्मानं चतुर्विधम्॥
तत्र त्वं मानुषो भूत्वा प्रवृद्धं लोककण्टकम्।
अवध्यं दैवतैर्विष्णो समरे जहि रावणम्॥

बालका० स० १५ श्लो० १९, २०, २१

हे भगवन्! अपनी आत्मा को चार प्रकार करके अयोध्याधिपति दशरथ के आप पुत्र बनिए और वहाँ मनुष्य का रूप धारण करके समर में रावण को मारिए क्योंकि वह संसार को बड़ा दुखदाई हो रहा है और देवताओं से वह कदापि नहीं मारा जा सकता, इस प्रकार देवताओं की प्रार्थना सुनकर विष्णु भगवान् बोले—

भयं त्यजत भद्रं वो हितार्थं युधि रावणम्।
सपुत्रपौत्रं सामात्यं समित्रज्ञातिबान्धवम्॥
हत्वा क्रूरं दुरात्मानं देवर्षीणां भयावहम्।
वत्स्यामि मानुषे लोके पालयन् पृथिवीमिमाम्॥

बालका० स० १५ श्लो० २७-२८

देवताओ! आप लोग भय को छोड़ दीजिए, आनन्द कीजिए। आप लोगों के भले के लिए ससहायक सपरिवार रावण को समर में मारूँगा और पृथ्वी का पालन करता हुआ मनुष्य-लोक में निवास करूँगा। और सुनिए—

अनेक रानियाँ होती हुई भी महाराजा दशरथ के कोई पुत्र न था। बुढ़ौती आ गई, तब यज्ञ करने से और देवताओं की कृपा से चार पुत्र हुए। पर शोक का विषय है पुत्र ही उनकी मृत्यु के कारण हुए। शास्त्रोक्त रीति से पिता की अन्तिम क्रिया का अधिकारी ज्येष्ठ पुत्र ही होता है, किन्तु दशरथ के भाल में यह बात नहीं लिखी थी। वह सौभाग्य पतितयोनि समुत्पन्न गृध्र को प्राप्त हुआ। धन्य भक्तवत्सल भगवान् रामचन्द्र हैं जिन्होंने पिता से भी अधिक गृध्र को माना। जब राक्षसराज जानकी को लिये भागा जाता था उस समय यह अन्याय पक्षिराज जटायु से न देखा गया और उसने रावण से जानकी को छीन लेने की यथा-शक्ति चेष्टा की किन्तु कृतकार्य न हुआ और उसी रावण के हाथों मारा गया।

राम और लक्ष्मण जानकी को खोजते वहीं पहुँचे जहाँ जटायु मृतप्राय पड़ा हुआ था। उसके करुण वचनों से जानकी का दुस्संवाद सुन कर राम ने जटायु को अपनी गोद में बैठा लिया और उसे स्वस्थ करने की चेष्टा करने लगे। पर यह बात जटायु को रुचिकर न हुई। वह परलोक की यात्रा करने लगा तब भगवान् रामचन्द्र दाहिना हाथ उठा कर इस प्रकार बोले—

या गतिर्यज्ञशीलानामाहिताग्नेश्च या गतिः।
अपरावर्तिनां या च या च भूमिप्रदायिनाम्॥
मया च समनुज्ञातो गच्छ लोकाननुत्तमान्।
गृध्रराज महासत्व संस्कृतश्च मया व्रज॥

अर० का० स० ६८ श्लो० २९-३०

हे महासत्व गृध्रराज! मेरे हाथों से दग्ध किया हुआ तू मेरी आज्ञा से उस सर्वोत्तम लोक (विष्णुलोक) को चला जा जहाँ यज्ञ करनेवाले, पञ्चाग्नि स्थापित करनेवाले और संन्यास धारण करनेवाले तथा भूमिदान करनेवाले जाते हैं। इस प्रकार किसी पक्षी को स्वर्ग में भेजना राजकुमार का काम नहीं केवल ईश्वर ही का काम है। और देखिए। जब रावण रण में गिर गया तब मन्दोदरी विविध विलाप करती हुई क्या कहती है—

मानुषं वपुरास्थाय विष्णु सत्यपराक्रमः।
सर्वैः परिवृतो देवैर्वानरत्वमुपागतैः।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वलोकेश्वरः साक्षाल्लोकानां हितकाम्यया ।
सराक्षसपरीवारं हतवांस्त्वां महाद्युतिः ।।
युद्धका० स० ११४ श्लो० १६-१७

लंकेश्वर ! वानरों के रूप में सब देवताओं को साथ लेकर सब लोकों के स्वामी सत्यपरायण साक्षात् विष्णु ने मनुष्य का रूप धारण करके संसार के कल्याण के लिए सपरिवार तुझे मारा है। और सुनिए रावण-वध से बाद देवता लोग क्या कहते हैं—

सीता लक्ष्मीर्भवान् विष्णुर्देवः कृष्णः प्रजापतिः ।
वधार्थं रावणस्येह प्रविष्टो मानुषीं तनुम् ।।
तदिदं नः कृतं कार्यं त्वया धर्मभृतां वर ।
निहतो रावणो राम प्रहृष्टो दिवमाक्रम ।।
युद्धका० स० १२० श्लोक २९-३०

हे राम ! आप श्यामवर्ण प्रजापति विष्णु हैं और सीता लक्ष्मी हैं। रावण को मारने के लिए आप मनुष्य बने हैं। धर्मात्मन् ! आपने उसे मारकर हमारा कार्य कर दिया अब आप प्रसन्नतापूर्वक स्वर्ग को जाइए, इसके बाद जब भाइयों सहित राम स्वर्ग को गये तब क्या हुआ उसे भी सुनिए—

यामिच्छसि महातेजस्तां तनुं प्रविश स्वयम् ।
पितामहवचः श्रुत्वा विनिश्चित्य महामतिः ।।
विवेश वैष्णवं तेजः सशरीरः सहानुजः ।।
उत्तरका० स० ११० श्लोक ११-१२

तेजोनिधान राम ! आप जिस शरीर में चाहिए प्रवेश कीजिए, ब्रह्मा की इस बात को सुनकर और निश्चय करके भाइयों के सहित वैष्णव तेज में मिल गये, आप कहेंगे कि सब कुछ हुआ किन्तु यह नहीं सिद्ध हुआ कि विष्णु कौशल्या से उत्पन्न हुए। अतः उसे भी सुन लीजिए—

कौशल्याजनयद्रामं सर्वलक्षणसंयुतम् ।
विष्णोरर्द्धे महाभागपुत्रमैक्ष्वाकवर्द्धनम् ।।
भरतो नाम कैकेय्यां जज्ञे सत्यपराक्रमः ।
साक्षात् विष्णोश्चतुर्भागः सर्वैः समुदितो गुणैः ।।
अथ लक्ष्मणशत्रुघ्नौ सुमित्राजनयत्सुतौ ।
सर्वास्त्रकुशलौ वीरौ विष्णोरर्द्धसमन्वितौ ।।
बालका० स० १८ श्लो० १०-१२-१३

इक्ष्वाकु-कुल-वर्द्धक सब लक्षणों से युक्त विष्णु के आधे अंश सहित राम नामक पुत्र को कौशल्या ने अपनी कुक्षि से उत्पन्न किया, विष्णु के चतुर्थांशयुक्त कैकेयी से भरत उत्पन्न हुए और विष्णु के एक चतुर्थांश से लक्ष्मण शत्रुघ्न दोनों एक ही समय सुमित्रा से उत्पन्न हुए जो कि सर्वास्त्रकुशल और वीर थे।

मैं समझता हूँ कि अब इस बात में सन्देह नहीं होगा कि वाल्मीकिजी ने मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् राम को ईश्वरावतार नहीं लिखा है, अतः इस लेख को बढ़ाने की आवश्यकता नहीं।

प्रकाशक—रा० वि० मिश्र, इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद
मुद्रक—पी० एल० यादव, इंडियन प्रेस प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे नवीनतम कथा-साहित्य

पूर्व का पंडित

लेखिका : विपुलादेवी

मानव की संकीर्ण समझ, जीवन में सामंजस्य स्थापित करने के लिए उसके उठाये गये पग, असीम सौहार्द, गहरा स्नेह और उसकी माँगों के प्रति व्यंग आदि इन कहानियों का सुरुचिपूर्ण विषय है। पुस्तक पढ़ने के बाद ही पाठक भली भाँति समझ सकेंगे कि साहित्य और कला की दृष्टि से हिन्दी कथा-साहित्य में इन कहानियों को इतना सम्मान सहज ही क्यों मिल गया। मूल्य २·५०।

मास्को से मारवाड़

लेखक, श्री देवेशदास, आई० सी० एस०

नौ बेजोड़ कहानियाँ इस संग्रह में हैं। भाषा, भाव और घटना सभी दृष्टियों से यह संग्रह कथा-साहित्य में लेखक की अपूर्व देन है। पृष्ठ सं० १५०, सजिल्द १ प्रति का २·७५।

कागज की नाव

लेखक, उमाशंकर शुक्ल एम० ए०

इसमें कहानियों का अपूर्व संग्रह है। सब कहानियाँ ऊँचे स्तर की हैं। इन कहानियों में प्यार है दर्द है और है शोषित वर्ग के प्रति गहरी सहानुभूति। सजिल्द पुस्तक का मूल्य २·५०।

अन्न का आविष्कार

लेखक, यमुनादत्त वैष्णव 'अशोक'

वैज्ञानिक कथा-साहित्य के द्वारा जहाँ ज्ञानवृद्धि होती है, वहीं विज्ञान का रूखा क्षेत्र भी जीवन से, ओतप्रोत होकर सरस बनता है। लेखक के विज्ञान-सम्बन्धी ज्ञान ने, इस कृति में तन्मय करनेवाली विशेषता तथा समाप्त किये बिना न उठनेवाली अपूर्व रोचकता भर दी है। मूल्य ३·००।

भेड़ और मनुष्य

लेखक, यमुनादत्त वैष्णव 'अशोक'

इस मौलिक कहानी-संग्रह में गार्हस्थ्य जीवन से सम्बद्ध ऐसी सात लम्बी कहानियाँ हैं, जिनमें लघु उपन्यास की रोचकता और सरसता की मनोरम झाँकी है। मूल्य २·५०।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Yearly Subscription : Rs. 9.00
Single Copy : Rs. 0.75
September 1973
SARASWATI—Reg. No. L. 248

हिन्दी ऋग्वेद

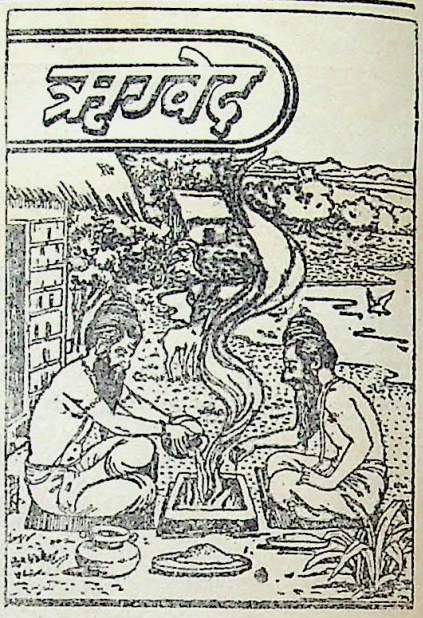

क्या आप जानते हैं कि मानव-जाति की प्रथम पुस्तक कौन है ? क्या आपको पता है कि हिन्दू-जाति का सर्व-प्राचीन इतिहास कौन है ? क्या आपको मालूम है कि हिन्दू-धर्म, हिन्दू-संस्कृति और हिन्दू-सभ्यता का आदि स्रोत कौन है ? क्या आपको ज्ञात है कि हिन्दू-जाति को किसने अध्यात्म-विद्या की ज्योति प्रदान की ? सारे संसार के विद्वानों का इन प्रश्नों का एकमात्र उत्तर है—"ऋग्वेद" ।

हमारे पूर्वज कौन थे, वे कैसे मंत्र-द्रष्टा ऋषि होते थे, वे कैसे दिव्य ज्ञान प्राप्त करते थे, कैसे राज्य-शासन करते थे, कैसी समाज-व्यवस्था करते थे, त्याग, तप, सेवा और ब्रह्मचर्य की मूर्ति बनकर वे अपना जीवन कैसे दिव्य, आदर्श, आनन्दमय और प्रतिभाशाली बनाते थे आदि-आदि का ज्ञान प्राप्त करने के लिए एकमात्र साधन है ऋग्वेद । यही ग्रन्थ समस्त संस्कृत-साहित्य और हिन्दू-जाति की सारी सद्गुणावली का जनक है। इसी का अत्यंत सरल, सरस, सुन्दर, प्रथम और प्रामाणिक हिन्दी-भाषान्तर है—"हिन्दी ऋग्वेद" । इसमें १६५० पृष्ठ हैं और ऋग्वेद में १०४६७ मंत्र हैं । भाषान्तरकार हैं विख्यात वैदिक विद्वान् पण्डित रामगोविन्द त्रिवेदी । ग्रन्थ के साथ ही

मार्मिक भूमिका और गवेषणापूर्ण विषय-सूची

भी दी गई है । ७४ पृष्ठों की विशद भूमिका में वेद-स्वरूप, वेद पर मतवाद, वेदार्थ करने की शैली, वेद-भाष्यकार, वेद-निर्माण-काल, ऋग्वेद-रहस्य, ऋषि, छन्द, विनियोग, स्वर, द्वैतवाद, सोमलता, पितृलोक, भूगोल, खगोल, आत्मा, परमात्मा, पुनर्जन्म, अवतार, यज्ञ, आर्य-संस्कृति, युद्ध-कला, वायुयान, राज्यशासन, ऋग्वेद और नारी-जाति, धर्म-विज्ञान, ऋग्वेद की अपूर्वता आदि-आदि का विवरण बड़ी ही मधुर, मृदुल और मंजुल भाषा में दिया गया है । भाषा की छटा और भावों की घटा देखते ही बनती है ।

७१ पृष्ठों की विषय-सूची में ऋग्वेद के सभी महत्त्वपूर्ण विषय दे दिये गये हैं । वैदिक अनुसंधान का कार्य करनेवालों के लिए यह सूची अत्यंत उपयोगी है ।

मूल्य लागत भर केवल चौदह रुपये है ।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भवन्

प्राचीनतम हिन्दी मासिक पत्रि
(संस्थापित सन् १९००)

अक्टूबर १९७३

पुस्तकालय
गुरुकुल कांग
21/11/13

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे धार्मिक साहित्य

● ज्ञानेश्वरी

गीता इस संसार के कंटकाकीर्ण अँधेरे मार्ग का सबसे तेजस्वी प्रकाश-स्तंभ है। बड़े-बड़े विद्वानों की बुद्धि जितनी गहराई में उतर सकी अपनी-अपनी प्रतिभा के अनुसार सभी ने गीता की चमत्कारी टीकाएँ कीं। यद्यपि अनुवादों की अजस्र धारा आज भी रुकी नहीं, मगर संत ज्ञानेश्वर की विचित्र व्याख्या हृदय को जो आनन्द देती है वह बात दूसरी टीकाओं, व्याख्याओं में उपलब्ध नहीं। संत की पावन-वाणी मराठी से हिन्दी में अनुवाद ही ज्ञानेश्वरी के नाम से विख्यात है। बड़े-बड़े अक्षरों में मूल संस्कृत श्लोक और सामान्य अक्षरों में व्याख्या बड़ी ही हृदयग्राही है। मूल्य ८ रुपये।

● ● ●

● दुर्गापाठ

सब रूपों में लय हैं दुर्गा सारा जग दुर्गा में लीन।
विश्वरूपिणी नमस्कार हो, परम ईश्वरी मैं आधीन॥

जगदम्बा दुर्गा इस युग की जाग्रत देवी हैं। माँ का उपासक कभी दुखी नहीं रह सकता। दुर्गापाठ के नाम से ७०० संस्कृत मन्त्रों का यह पद्यबद्ध हिन्दी अनुवाद हिन्दी जाननेवालों, विशेषतयः स्त्री समाज में इतना लोकप्रिय हुआ कि पाँचवाँ संस्करण भी प्रायः समाप्त होने पर है। संस्कृत मन्त्र व हिन्दी पद्य दोनों साथ-साथ छापे गये हैं। मातृका स्तुति, सप्तसती पाठ विधि, देवी कवच, अर्गला स्तोत्र, कीलक स्तोत्र, तीनों चरित्र तथा तीनों रहस्य सभी कुछ इसमें हैं। माँ दुर्गा के अनन्य उपासक अनुवादक राय साहब राधामोहन लाल व संशोधक जस्टिस हरिश्चन्द्र बार० एट् ला दोनों रिटायर्ड जजों का सारा प्रयास स्तुत्य है। सजिल्द, सचित्र, सुन्दर बड़े अक्षरों में छपी पुस्तक का प्रचारार्थ मूल्य ३ रुपये मात्र।

● ● ●

● श्रीमद्भागवत

श्रीमद्भागवत में भगवान् कृष्ण की चमत्कारी लीलाओं, प्राचीन राजवंशों, ऋषि-महर्षियों की गौरव गाथाओं और तात्कालिक भारत की सामाजिक दशा के साथ-साथ ज्ञान की पावन धारा बहाने का जो भगीरथ प्रयास वेदव्यासजी ने किया उसका गुणगान राजमहल से लेकर झोपड़ी तक समान रूप से होता है। हिन्दी पाठकों की सुलभता के लिए यह पुराण हिन्दी में २ खण्डों में छपकर प्रकाशित हुआ है। जिल्द बढ़िया, चित्रों की भरमार ग्रन्थ की विशेषता है। प्रत्येक खण्ड का मूल्य १० रुपये।

● ● ●

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शुद्ध बादाम रोगन पर बना

अलकपरी

केशों में प्रतिमास ३-४ इंच वृद्धि।
६ महीने में एड़ी-चुम्बी केश।

'अलकपरी' का कोर्स
पहले सप्ताह में रूसी-खुश्की दूर हो जाती है। दूसरे सप्ताह में केशों का झड़ना और उनके सिरों का फटना रुकता है।

सरस्वती के ग्राहकों को आवश्यक सूचना

अक्टूबर सन् १९७३ की सरस्वती का अंक भेजने के बाद आपका वार्षिक चन्दा समाप्त हो जाता है। चन्दा समाप्त होने के बाद अभी तक वी० पी० द्वारा सरस्वती भेजकर हम पुनर्नवीकरण हेतु चन्दा आपसे प्राप्त कर लेते थे। इधर वी० पी० व्यय (पोस्टेज का मूल्य) अधिक बढ़ गया है। इसके अतिरिक्त वी० पी० पहुँचने पर ग्राहकों के अपने निवास से कहीं इधर-उधर चले जाने तथा पोस्टल विभाग की असावधानी के कारण अधिकांश संख्या में वी० पी० 'लेने से इनकार' लिखकर वापस लौटा दी जाती है और हमें व्यर्थ में आर्थिक हानि उठानी पड़ती है। अतः जिन कृपालु ग्राहकों का चन्दा समाप्त हो जायगा, केवल उन्हींके अंक पर यह सूचना-पत्र लगा रहेगा। इस सूचना-पत्र का अर्थ है कि कृपालु ग्राहक मनीआर्डर द्वारा पुनर्नवीकरण हेतु अपना चन्दा भेजें ताकि पूर्ववत् सरस्वती उनकी सेवा में जाती रहे। यदि किसी कारणवश, यद्यपि हमें ऐसी आशा नहीं है, कोई कृपालु ग्राहक सरस्वती नहीं मँगाना चाहते हैं तो वे कृपया एक पोस्टकार्ड द्वारा हमें सूचित करें। मनीआर्डर भेजते समय मनीआर्डर कूपन पर अपनी ग्राहक संख्या, पता साफ-साफ अक्षरों में लिखना चाहिए। सरस्वती का वार्षिक शुल्क ९·०० है।

प्रबन्धक—
पत्रिका विभाग
इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

रहस्य' के अतिरिक्त कामायनी के अन्य भाष्यों में दी ही नहीं गयी। तपोनिष्ठ विद्वान् ने आत्म-विश्वास के साथ स्वमत स्थापन कर गंभीर स्थलों को सुगम और सुरुचिपूर्ण बना दिया है। विश्वास रहे कामायनी के रहस्योद्घाटन में कामायनी-रहस्य का योगदान सर्वोपरि है। प्रत्येक कामायनी अध्येता इस ग्रन्थ की भूरि-भूरि प्रशंसा करेगा और पूरा लाभ उठायेगा ऐसा हमारा दृढ़ विश्वास है।

मूल्य ८·००
पृष्ठ संख्या ५२७

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे धार्मिक साहित्य

● ज्ञानेश्वरी

गीता इस संसार के कंटकाकीर्ण अँधेरे मार्ग का सबसे तेजस्वी प्रकाश-स्तंभ है। बड़े-बड़े विद्वानों की बुद्धि जितनी गहराई में उतर सकी अपनी-अपनी प्रतिभा के अनुसार सभी ने गीता की चमत्कारी टीकाएँ कीं। यद्यपि अनवादों की अजस्र धारा आज भी रुकी नहीं मगर संत ज्ञानेश्वर की विश्व [illegible]

रथ प्रयास वेदव्यासजी ने किया उसका गुणगान राजमहल से लेकर झोपड़ी तक समान रूप से [illegible] हिन्दी पाठकों की सुलभता के लिए यह पुराण हिन्दी में २ खण्डों में छपकर प्रकाशित हुआ है। जिल्द बढ़िया, चित्रों की भरमार ग्रन्थ की विशेषता है। प्रत्येक खण्ड का मूल्य १० रुपये।

● ● ●

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिन शहरों में स्टाकिस्ट नहीं हैं वहाँ के हेतु स्टाकिस्ट चाहिए।

शुद्ध बादाम रोगन पर बना

अलकपरी

केशों में प्रतिमास ३-४ इंच वृद्धि।
६ महीने में एड़ी-चुम्बी केश।

'अलकपरी' का कोर्स

पहले सप्ताह में रूसी-खुश्की दूर हो जाती है। दूसरे सप्ताह में केशों का झड़ना और उनके सिरों का फटना रुकता है।

तीसरे सप्ताह में नये केश उगते दिखाई देते हैं। चौथे सप्ताह के अन्त तक केश ३-४ इंच बढ़ जाते हैं। फिर प्रतिमास इसी औसत से बढ़ते रहते हैं।

६ महीने में केश एड़ी-चुम्बी बन जाते हैं।

मूल्य एक शीशी का ४.०० है जो एक महीने को काफी होती है। डाक-खर्च व पैकिंग पृथक्। ४ से अधिक शीशियाँ डाक से नहीं भेजी जायेंगी। अधिक के लिए मूल्य पेशगी भेजिए।

कामायनी-रहस्य

लेखक—श्री विजयबहादुरसिंह राठौर

विद्वानों की दृष्टि में कामायनी आधुनिक हिन्दी काव्य का गौरव ग्रन्थ है। विभिन्न विद्वानों ने कामायनी के अनेक भाष्य किये हैं। यों तो सभी की व्याख्या शैली महत्त्वपूर्ण है परन्तु कामायनी का सर्वोत्तम भाष्य 'कामायनी रहस्य' में प्रगट कर लेखक की लेखनी अमर हो गयी है। सभी छः सर्गों के आख्यान, चारित्रिक विकास आदि का परिचय देते हुए विद्वान् लेखक ने शास्त्रीय और मनोवैज्ञानिक पद्धति की आधारशिला पर प्रत्येक पद के काव्य सौन्दर्य, छन्द, रस, अलंकार, शब्दशक्ति पर पूरा-पूरा प्रकाश डाला है।

दार्शनिक और पौराणिक संदर्भों का उल्लेख बड़ा ही हृदयग्राही हुआ है। विवादास्पद पदों की व्याख्या के कठिन कर्तव्य पूरी शक्ति और मनोबल के साथ निभाये गये हैं। यह एक ऐसी विशेषता है जो 'कामायनी रहस्य' के अतिरिक्त कामायनी के अन्य भाष्यों में दी ही नहीं गयी। तपोनिष्ठ विद्वान् ने आत्म-विश्वास के साथ स्वमत स्थापन कर गंभीर स्थलों को सुगम और सुरुचिपूर्ण बना दिया है। विश्वास रहे कामायनी के रहस्योद्घाटन में कामायनी-रहस्य का योगदान सर्वोपरि है। प्रत्येक कामायनी अध्येता इस ग्रन्थ की भूरि-भूरि प्रशंसा करेगा और पूरा लाभ उठायेगा ऐसा हमारा दृढ़ विश्वास है।

पृष्ठ संख्या ५२७ मूल्य ८.०८

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शुभ संवाद लाभ की सूचना

महाभारत का पूरा सेट फिर से प्राप्त कीजिए

महर्षि वेदव्यास की विशद कृति

महाभारत को पाँचवाँ वेद कहते हैं। इस ग्रन्थ में महर्षि वेदव्यास ने अनेक शास्त्रों का वर्णन करके जीवनक्रम की सुलभ रीति बतलाई है। इसमें तीर्थों और व्रतों का वर्णन है, पुण्य पुरुषों की चरितावली है, ऋषियों के उपदेश हैं, सुन्दर उपाख्यान हैं और धर्म पर स्थिर रहकर उन्नति करने का मार्ग बतलाया गया है। यह ग्रन्थ १० खण्डों में समाप्त हुआ है। रंगीन और सादे चित्रों की अधिकता है। बढ़िया जिल्द है।

१० खण्डों के पूरे सेट का मूल्य २५०·०० रुपये।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ ओम् दुर्गा दुर्गतिनाशिनी ॥ ॥ ओम् दुर्गा दुर्गतिनाशिनी ॥

जीवन की विभिन्न जटिल समस्याओं के समाधान के लिए मिलिये या पत्र-व्यवहार करिये

ज्योतिषाचार्य—

प्रोफेसर प्रद्युम्ननारायण सिंह

वैज्ञानिक ज्योतिषी, हस्तरेखा-विशारद,

तांत्रिक और मानस शास्त्रज्ञ

२८, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद (फोन नं० २८५८)

देखिए :—श्री जे० सेन, मेम्बर, इनकमटैक्स अपिलेंट ट्रिबुनल क्या कहते हैं :—

मैं ज्योतिषाचार्य प्रो० पी० एन० सिंह जी को गत चार वर्षों से जानता हूँ। निस्सन्देह यह विश्वसनीय ज्योतिषी और हस्तरेखा-विशारद हैं। इनकी भविष्यवाणी गत २ वर्षों से अक्षरसः सत्य घटित होती आ रही है। ज्योतिषी जी पूजा करके यंत्र बनाते हैं जिसका प्रभाव मेरे ऊपर आश्चर्यजनक और प्रभावोत्पादक रहा है और मुझे उनके पूजा और यंत्र से आश्चर्यचकित लाभ हुआ है साथ ही आश्चर्यचकित प्रभाव भी कभी-कभी हुआ है।

प्रो० पी० एन० सिंह जी सैद्धांतिक पुरुष हैं साथ ही धनलोलुपता से परे हैं। मैंने यह देखा कि ज्योतिषी जी के मस्तिष्क में अपने ग्राहकों की कुशलता धन अथवा धन प्राप्ति की इच्छा से कहीं विशेष महत्त्व रखती है जिसके परिणामस्वरूप वे केवल ज्योतिषी ही नहीं अपितु अपने ग्राहकों के मित्र, सलाहकार एवं सच्चे पथप्रदर्शक के रूप में भी हैं।

—जे० सेन

इलाहाबाद ७-७-६२

इतना तो आप जानते ही हैं कि—

तुलसी साहित्य अमृत का सागर है। भारतीय साहित्य की अमर निधि है। इस सुधासिन्धु में अमूल्य रत्न भरे पड़े हैं। पर आज आपाधापी के इस व्यस्त युग में लोगों के पास इतना समय कहाँ कि नरदेह को सार्थक बनानेवाले वृहत् तुलसी साहित्य सागर में डुबकियाँ लगाकर इन रत्नों को खोजने के क्षण भी बचा पायें। चिन्ताओं के बोझ को उतार पायें। विद्वान् संकलनकर्ता ने बड़े परिश्रम से इन रत्नों को एक जगह इकट्ठा किया और गागर में सागर की उक्ति चरितार्थ की। उपयुक्त शीर्षक दिये। सूक्तियाँ और स्फुट पद अलग-अलग दिये और पुस्तक को सार्थक नाम दिया—

तुलसी रत्नावली

रामायण, विनयपत्रिका, कवितावली, गीतावली, वैराग्य सन्दीपनी, दोहावली अथवा गोस्वामीजी के अन्य छोटे-बड़े सभी ग्रन्थों में जहाँ जो रोचक, उपदेशपूर्ण पद मिले उन सबका चयन तुलसी रत्नावली में है, उपदेशक, विद्वान् या साधारण जन सबके लिए यह संकलन उपादेय है।

संकलनकर्ता—**श्री केदारनाथ गुप्त, एम० ए०** मूल्य २·०० रुपये

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महामानव जवाहरलाल नेहरू

की

अमर कहानी

पत्रकार पी० डी० टंडन

द्वारा

प्रणीत

मानवता का प्रहरी

कौन नहीं जानता कि स्वर्गीय पं० जवाहरलाल नेहरू ने आज के भारत का निर्माण किया है, संसार की राजनीति में उन्होंने हमारे देश को विशेष स्थान दिलाया है। उन्होंने देश की, तथा विदेशों की बहुत सी पेचीदी समस्याओं के सुलझाने में हाथ बटाया। उनका हृदय विशाल था, मस्तिष्क ऊँचा था, अपने सिद्धान्त से, ध्येय से ये किसी भी शक्ति या कठिनाई द्वारा हट नहीं सके। उन्होंने ऊँचे मानव का हृदय पाया था। पत्रकार टंडन ने ऐसे महामानव के जीवन की दिलचस्प झाँकी इस पुस्तक में प्रस्तुत की है। यह पुस्तक उबा देनेवाली गाथाओं का पिटारा नहीं है, बल्कि स्वर्गीय महापुरुष के संबंध की छोटी छोटी कहानियों का खुशनुमा गुलदस्ता है। इसमें उनके जीवन संबंधी अलभ्य प्रचुर चित्र भी हैं। पुस्तक ज्ञानवर्धक होने के साथ-साथ सरल और बड़ी ही मोहक है।

मूल्य ५·५० रुपये।

● ● ●

लेखक की अन्य कृति

कुछ देखा कुछ सुना

टंडनजी कुशल पत्रकार ही नहीं कुशल लेखक भी हैं। उनकी पैनी लेखनी से निकले इन १२ व्यंगात्मक लेखों में आप देखेंगे कि आज सर्व उच्च विचारों के पीछे नीचता, बड़प्पन के पर्दे में ओछापन और बुद्धिमत्ता की ओट में मूर्खता के कैसे दर्शन होते हैं। हास्य एवं व्यंग्य का सहारा लेकर समाज का जो विश्लेषण लेखक ने किया है वह हिन्दी साहित्य में एकदम नया प्रयोग है। यथास्थान सामयिक कार्टूनों से किताब और भी सजीव हो गई है।

मूल्य २·०० रुपये।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचारोत्प्रेरक नवीन साहित्य

संयुक्त राज्य अमेरिका ने भौतिक उन्नति का जैसा अद्भुत नमूना रखा है, उससे हम लोग परिचित हैं। विज्ञान, उद्योग, कला, राजनीति आदि सब क्षेत्रों में उसकी उपलब्धियाँ हैं। वहाँ के विद्वान् विचारकों, कलाकारों, साहित्यिकों, वैज्ञानिकों आदि का परिचय हमें उनकी जीवन कथाओं और रचनाओं द्वारा प्राप्त हो सकता है। अमरीकी साहित्य की ऐसी कुछ महत्त्वपूर्ण निम्नांकित पुस्तकें हिन्दी में अनुवादित कराकर प्रकाशित हुई हैं—

ले० लारा इंगल्स : **बड़े वन में छोटा घर** : मूल्य ३·०० पैसे : पृष्ठ १८७

ले० लैंग्स्टन ह्यूजेज : **प्रसिद्ध अमरीकी नीग्रो** : मूल्य ३·२५ पैसे : पृष्ठ १७०

ले० राल्फ मूडी : **किट कार्सन और जंगली सीमान्त** : मूल्य ३·५० पैसे : पृष्ठ २०४

ले० हेलेन केलर : **अध्यापिका ऐन सलिवाँ मेसी** : मूल्य ४·२५ पैसे : पृष्ठ १७६

ले० कार्ल सैण्डबर्ग : **प्रेयरी नगर का बालक** : मूल्य ४·०० पैसे : पृष्ठ २४४

ले० डब्लू० ओ० स्टीवेन्स : **प्रसिद्ध वैज्ञानिक** : मूल्य ४·०० पैसे : पृष्ठ २३४

ले० फ्रैंक तथा क्लार्क : **दृष्टिदात्री** : मूल्य ५·०० पैसे : पृष्ठ १७४

ले० सेलिग हेक्ट : **परमाणु का रहस्य** : मूल्य ४·०० पैसे : पृष्ठ १९८

ले० रिचर्ड मेसन : **अमेरिका के महान् उदारवादी** : मूल्य ३·२५ पैसे : पृष्ठ १७८

ले० इर्मनगार्ड एबर्ल : **आधुनिक औषधि-आविष्कार** : मूल्य ३·०० पैसे : पृष्ठ १५६

लिंकन वाणी : मूल्य ३·२५ पैसे : पृष्ठ १७०

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पं० देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त' की कृतियाँ

१. **रानी दुर्गावती**—ओजपूर्ण और लोकप्रिय खण्डकाव्य का तीसरा संशोधित संस्करण। मूल्य २·०० रुपये।

२. **उड़ते पत्ते**—सामाजिक क्रान्ति का सन्देशवाहक सशक्त उपन्यास। मूल्य ३·५० रुपये।

३. **अपना-पराया**—मनोरंजक और कौतूहलप्रद उपन्यास। मूल्य ३·०० रुपये।

४. **हवा का रुख**—उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश शासन द्वारा पुरस्कृत कलात्मक और मनोरंजक कहानी-संग्रह। मूल्य २·२५ रुपये।

५. **रङ्गीन डोरे**—मार्मिक और मनोरंजक कहानी-संग्रह। मूल्य ३·०० रुपये।

६. **धरती-आकाश**—वैज्ञानिक निबन्धों का ज्ञानवर्द्धक और मनोरंजक संग्रह। मूल्य २·०० रुपये।

श्रीमती हीरादेवी चतुर्वेदी की कृतियाँ

१. **मधुमास**—उत्तर प्रदेश शासन द्वारा पुरस्कृत ललित गीतों का संग्रह। मूल्य २·०० रुपये।

२. **रङ्गीन पर्दा**—सामाजिक, कलात्मक और अभिनेय एकांकी-संग्रह। मूल्य २·०० रुपये।

३. **बुन्देलखण्डी लोकगीत**—मानवमात्र को गुदगुदानेवाले सरस बुन्देली गीतों का सव्याख्या संकलन। मूल्य ०·७५ पैसे।

४. **गल्प-गवाक्ष**—श्रेष्ठ हिन्दी कहानियों का सम्पादित संकलन। मूल्य २·२५ रुपये।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लि०, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्त्रियों के लिए शिक्षा-प्रद कुछ पुस्तकें

पंडित जर्नादन झा

आदर्श महिला—इस पुस्तक में सीता, सावित्री, दमयन्ती, शैव्या और चिन्ता देवियों की जीवन-घटनाओं का सजीव वर्णन है। पृष्ठ २६८; मूल्य ३·०० रुपये।

ठाकुर दुर्गाशंकरप्रसाद सिंह

नारी-जीवन—बहू-बेटियों को उपयुक्त गृहस्थ-जीवन बिताने की विधियाँ मनोरंजक शैली में समझाई गई हैं। पृष्ठ २५१; मूल्य ३·५० रुपये।

पतिव्रता—इसमें छः पतिव्रताओं के चरितों का शिक्षाप्रद और मनोरंजक संग्रह है। पृष्ठ २४०; मूल्य १·२५ रुपये।

पं० देवीदत्त शुक्ल (संकलनकर्त्ता)

पंचसती—इस पुस्तक में सीता, सावित्री, दमयन्ती, शैव्या, चिन्ता आदि रमणी रत्नों का आदर्श-चरित्र वर्णित है। पृष्ठ १५४; मूल्य २·०० रुपये।

डाक्टर बोधराज चोपड़ा

माँ और बच्चा—इस पुस्तक में बच्चों का पालन-पोषण करने, उन्हें स्वस्थ-सबल बनाने आदि आवश्यक बातों पर, सुन्दर प्रकाश डाला गया है। पृष्ठ २५९; मूल्य ३·०० रुपये।

पतिव्रता गांधारी—कौरवों की माता पतिव्रता गांधारी का जीवनचरित, जो प्रत्येक नारी के लिए पठनीय है। पृष्ठ १३४; मूल्य ३·०० रुपये।

श्री भगवानदीन पाठक

दमयन्ती—दमयन्ती की रहस्य और रोमांच से ओत-प्रोत कहानी जो उसके अडिग पातिव्रत पर प्रकाश डालती है। पृष्ठ ३७; मूल्य ०·५० पैसे।

सीता—इस पुस्तक में सीताजी की रोचक और शिक्षाप्रद कहानी बड़ी सरल भाषा में लिखी गई है। मूल्य ०·५० पैसे।

सुशील कन्या—इस पुस्तक में कहानियों के रूप में कन्याओं को शिष्टाचार, गृहप्रबन्ध, देशप्रेम आदि उपयोगी विषयों की शिक्षा दी गई है। पृष्ठ १३५; मूल्य १·२५ रुपये।

श्रीमती दुर्गादेवी और मायादेवी

शिशु-पालन—इस पुस्तक में प्रसूत-चर्या से लेकर बच्चों के पालन-पोषण तक की कई आवश्यक बातें बताई गई हैं। पृष्ठ २४०; मूल्य २·५० रुपये।

श्री संतराम

सुन्दरी सुबोध—गृहणियों को गृहस्थी की गुत्थियाँ सुलझाने में सहायता देनेवाली पुस्तक। पृष्ठ ३१६; मूल्य ३·०० रुपये।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
१—सम्पादकीय	२४९
२—राधा माधव हो गयी—डा० विद्यानिवास मिश्र	२५७
३—प्राचीन भारतीय साहित्य और कला में लक्ष्मी—डा० रामाश्रय अवस्थी	२६१
४—सूखी घास—श्री निशान्त	२६४
५—अन्धकार से प्रकाश की ओर—श्री अनवर आगेवान	२६५
६—गान सरस कैसे हो—श्री मगन अवस्थी	२६६
७—विचारों व भावनाओं का पर्व : दीपावली—श्री हुकमचन्द शर्मा	२६७
८—अश्रु—श्री प्रवीण शाह	२६८
९—गणेश : शिल्प और शिल्पशास्त्रों में—श्री मारुति	२६९
१०—क्या गणेश अवैदिक देवता हैं ?—श्री ओम्-प्रकाश पाण्डेय	२७२
११—विरोधाभासों की नगरी—श्री आदर्शकुमार 'प्रहरी' एम० ए०	२७४
१२—प्राचीन भारत में द्यूत-क्रीड़ा—श्री श्याम-मनोहर व्यास एम० एस्-सी०	२७५
१३—राजा टोडरमल—श्री प्रभुदयाल मीतल साहित्य-वाचस्पति	२७७
१४—तिब्बती सन्त भार्पा की भारत-यात्रा—श्री मण्डन मिश्र	२८०
१५—अंतर्दृष्टि—डा० कमलाकान्त हीरक	२८२
१६—हमारा वायुमण्डल—श्री पुरुषोत्तमदास स्वामी, एम० एस्-सी०	२८३
१७—सीमित ज्योति जगा क्या होगा ?—श्री स्वर्ण-किरण	२८६
१८—पानी का प्यासा रेगिस्तान बाढ़ की चपेट में—श्री भूरचन्द जैन	२८७
१९—श्री महावीर स्वामी की देन—श्री राजेन्द्र-प्रसाद जैन	२९१
२०—गीत—श्रीअनीस लिटियानी	२९६
२१—शरत् का नेपथ्य-गान—श्री नागेश्वरसिंह 'शशीन्द्र'	२९७
२२—जिन्हें देश भूल गया—बारहट केशरी-सिंह (१)—श्री शंकरसहाय सक्सेना	२९८
२३—विवेकशील पाठक—अनुवादक—श्री प्रकाश-चन्द्र चतुर्वेदी	३०४
२४—तीन छोटी व्यंग्य कविताएँ—श्री निरंजन-कुमार सोलीवाल 'निराकार'	३१३
२५—नवीन प्रकाशन	३१४
२६—मनोरंजक संस्मरण	३१७
२७—१९२२ की सरस्वती—पुनरावृत्ति—श्री ललन	३१८

© सरस्वती के इस अंक में प्रकाशित सभी लेख सर्वाधिकार सुरक्षित हैं।

मनोरंजक संस्मरण

प्राचीन और आधुनिक हिन्दी कवियों और साहित्यकारों के कुछ फुटकर संस्मरण

लेखक

सरस्वती-सम्पादक पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी

सरस्वती में प्रतिमास लिखकर इन संस्मरणों के प्रकाशित होने लगने पर एक बार स्वर्गीय बाबू शिवपूजन सहायजी ने सरस्वती-सम्पादक से कहा था कि वे सबसे पहले "मनोरंजक सस्मरण" ही पढ़ते हैं। इसी प्रकार अन्य साहित्यिकों ने भी उनकी प्रशंसा की थी। सामान्य पाठकों में भी वे लोकप्रिय हुए थे।

इस पुस्तक में सरस्वती-सम्पादक की सिद्धहस्त लेखनी से लिखे हुए साहित्यिक संस्मरण हैं जो उनके, सरस्वती-सम्पादक के, दस वर्ष की अवधि में जुलाई १९५५ से जून १९६५ तक 'सरस्वती' में प्रायः प्रति मास प्रकाशित होते रहे हैं।

वे ही साहित्यिक संस्मरण साहित्यिकों और पाठकों के निरन्तर अनुरोध पर इस पुस्तक रूप में प्रकाशित हुए हैं। इनसे हिन्दी पाठकों का स्वस्थ मनोरंजन होगा और उन्हें हिन्दी साहित्य तथा हिन्दी कवियों और साहित्यकारों के व्यक्तित्व को समझने में सहायता मिलेगी।

पृ० सं० (डिमाई) २९०, सजिल्द, मूल्य ५·०० रुपये

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

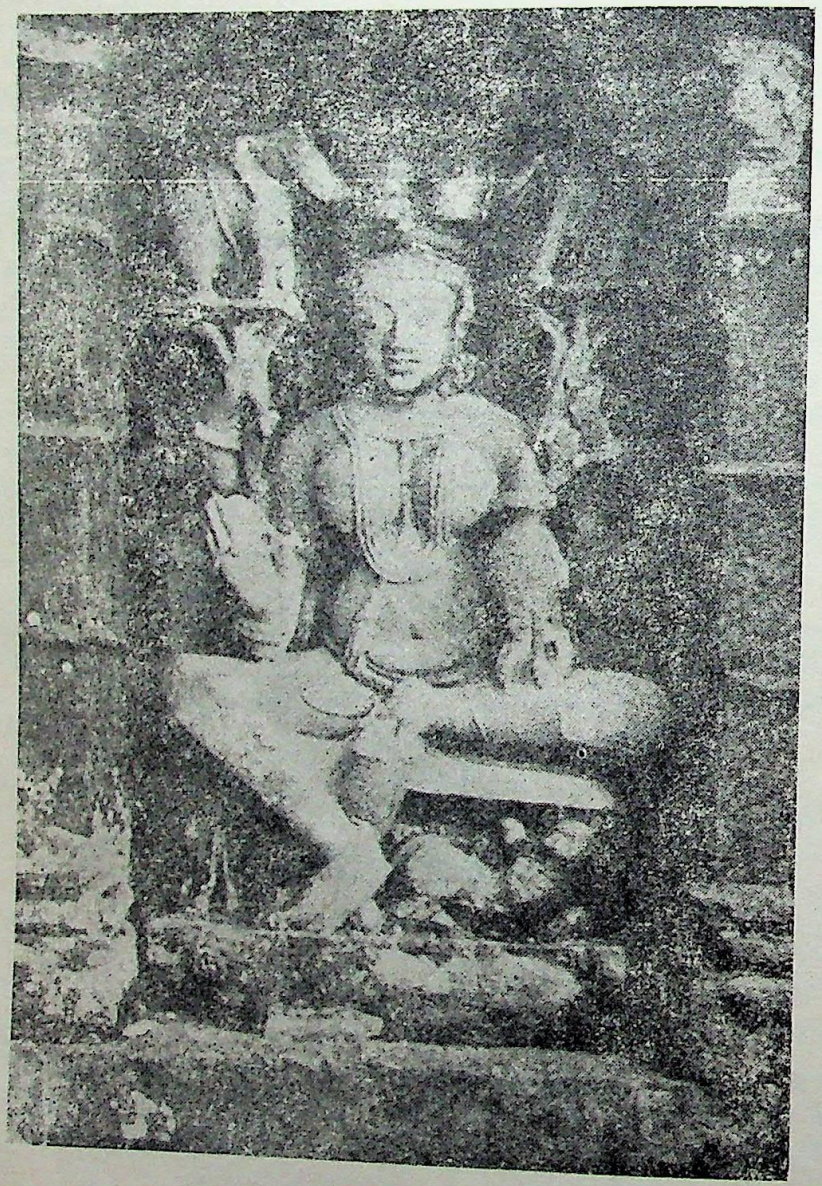

सिंहवाहिनी गजलक्ष्मी

(विश्वनाथ मन्दिर, खजुराहो)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

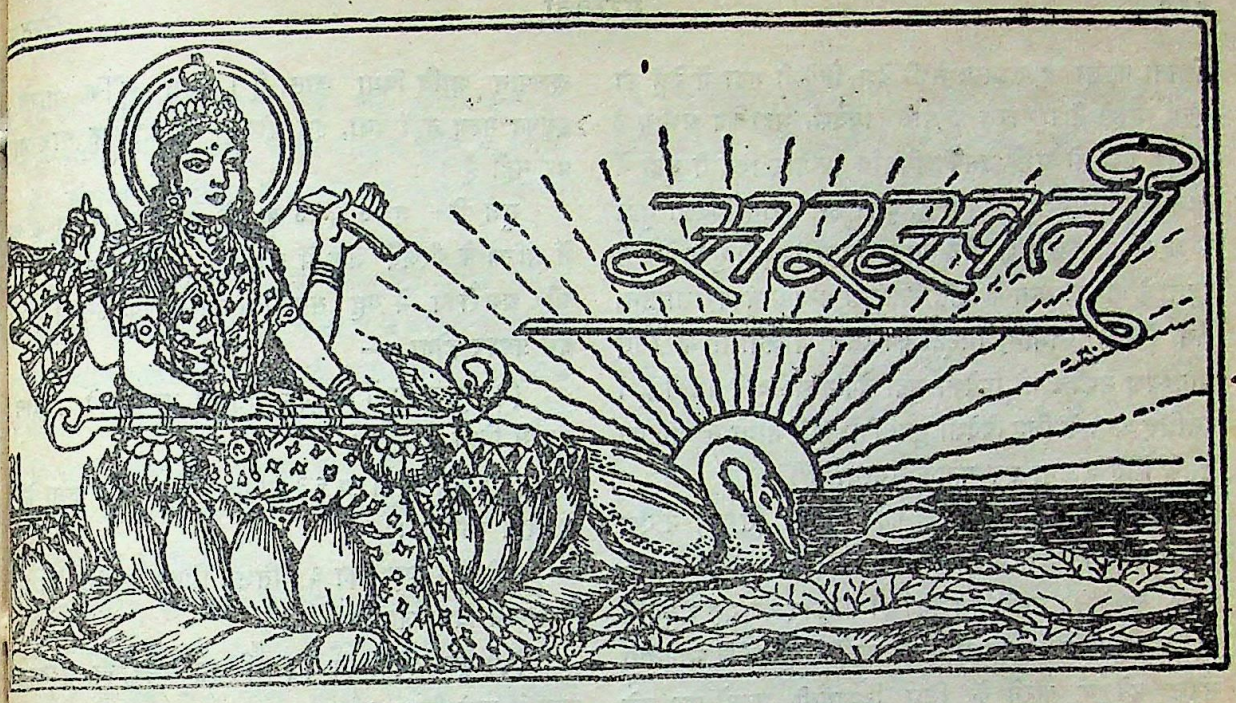

सम्पादक

श्रीनारायण चतुर्वेदी

सहायक सम्पादिका—शीला शर्मा

वर्ष ७४ पूर्ण संख्या ८८६ | इलाहाबाद : अक्टूबर १९७३ : कार्त्तिक २०३० वि० | खण्ड २ संख्या ४

सम्पादकीय

भारत पर अमरीका के पी० एल० ४८० के भारी ऋण की समस्या—भारत पर अमरीका का पी० एल० ४८० के खाते में इस समय २५ अरब ५७ करोड़ रुपयों का ऋण है। इनमें से ३ अरब १४ करोड़ डालरों में लौटाने होंगे। शेष ऋण रुपयों में लौटाने को है। इस ऋण भार से भारत दबा हुआ है और उसकी अर्थ-व्यवस्था में गड़बड़ी पैदा हो गयी है। अमरीका के कुछ विचारशील लोग इसे समझते हैं और वे चाहते हैं कि ऋण का यह मामला इस प्रकार निबट जाय कि भारत की अर्थ-व्यवस्था को हानि न पहुँचे। इधर कुछ दिनों से सूखा, बाढ़, युद्ध, मुद्रास्फीति, महँगाई आदि के कारण यह समस्या भारत के लिए और भी उग्र हो गयी है। वह भी उसे शीघ्रातिशीघ्र इस प्रकार निबटाने को उत्सुक है कि उसके सम्मान को भी धक्का न लगे और उसकी अर्थ-व्यवस्था को भी कोई गहरा आघात न लगे। नये अमरीकी राजदूत ने भी इसे सुलझाने में काफी रुचि और सक्रियता दिखलायी, किन्तु अभी यह समस्या अधर ही में लटक रही है। हमारे सामान्य पाठकों में से बहुत से इस समस्या का इतिहास और विवरण नहीं जानते। अतएव हम संक्षेप में उसे स्पष्ट करने का प्रयत्न करेंगे।

दैवी आपत्तियों और बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण भारत में अपनी आवश्यकता पूरी करने के लिए पर्याप्त खाद्यान्न उत्पन्न नहीं होते थे और उसे बाहर से अन्न मँगाना पड़ता था। संसार में अमरीका, कनाडा, आस्ट्रेलिया, अर्जेन्टाइन और मैक्सिको ऐसे प्रमुख देश हैं जो अपनी आवश्यकता से अधिक खाद्यान्न उत्पन्न करके उनका निर्यात करते हैं। अतएव भारत को भी आवश्यकता पड़ने पर इन्हींसे गेहूँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मँगाना पड़ता है। प्रायः सभी देश विदेशी मुद्रा में गेहूँ का मूल्य चाहते हैं। भारत के पास विदेशी मुद्रा का अभाव है क्योंकि एक तो अभी उसका निर्यात व्यापार विदेशी मुद्रा में माल लेनेवाले देशों में कम है, दूसरे उसे पुराने विदेशी मुद्रा के ऋणों का कुछ अंश और उनका ब्याज विदेशी मुद्रा में देना पड़ता है। फिर, अन्न के अतिरिक्त उसे अन्य आवश्यक सामान, जैसे, सैनिक सामान, मिट्टी का तेल, योजनाओं के लिए आवश्यक मशीनें भी विदेशी मुद्रा देकर खरीदनी पड़ती हैं। इसलिए अन्न के लिए विदेशी मुद्रा (जो बड़ी मात्रा में चाहिए) उसके लिए जुटाना एक महान् समस्या है।

ऐसी स्थिति में अमरीका की कांग्रेस (संसद) ने एक कानून बनाया, जिसे पब्लिक ला ४८० (संक्षेप में पी० एल० ४८०) कहते हैं। उसने अमरीका की सरकार को यह अनुमति दी कि वह भारत में खाद्यान्न की कमी से होनेवाले मानवीय संकट को दूर करने के लिए रियायती मूल्यों पर उसे खाद्यान्न तथा अन्य कृषि उत्पादन (जैसे, वनस्पति तेल आदि) दे सके और चूंकि भारत के पास डालरों (विदेशी मुद्रा) की कमी है, वह उनका मूल्य रुपयों में ले सके। भारत ने इस कानून का लाभ उठाकर इधर कई वर्षों में अमरीका से ६ करोड़ टन खाद्यान्न तथा कृषि उत्पादक सामान खरीदे, जिनका रुपयों में कुल मूल्य २५ अरब ५७ करोड़ रुपया है। किन्तु इनमें से कुछ माल का मूल्य डालरों में देना है। वह अपेक्षाकृत कम होने पर भी ३ अरब १४ करोड़ रुपया है।

भारत को एक साथ इतनी धनराशि विदेश भेजना प्रायः असंभव था। अतएव यह तय हुआ कि यह सारा रुपया भारत के रिजर्व बैंक में अमरीका के खाते में जमा कर दिया जायगा और वह उसीमें जमा है। किन्तु भारत इस अपार धनराशि का देनदार है, और अमरीका की इतनी विशाल धनराशि भारत में जमा होने से मुद्रा-स्फीति ही नहीं बढ़ी, भारत की अर्थ-व्यवस्था पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। यह पी० एल० ४८० की योजना १९५४ से १९७१ तक चलती रही।

इसके अतिरिक्त १९५५ में एक दूसरी खाद्यान्न सहायता योजना चली, जिसे पी०एल० ४७० न०२ (टाइटिल २) कहते हैं। इसके अन्तर्गत ६ अरब १८ करोड़ तीस लाख का खाद्यान्न, दूध का चूर्ण आदि भारत को बिना मूल्य भेट किया। यह योजना इस वर्ष (१९७३ में) भी चल रही है। स्कूलों में बच्चों को अनेक स्थानों में इसके अन्तर्गत दूध, जलपान आदि दिया जाता है। किन्तु चूँकि भारत को इसका मूल्य नहीं देना, इस योजना का आर्थिक भार भारत पर नहीं है।

मूल पी० एल० ४८० के जो रुपये अमरीका के खाते में भारत के रिजर्व बैंक में जमा हैं, उनके संबंध में भारत और अमरीका में यह समझौता भी है कि उनका उपयोग इस प्रकार होगा —

(१) कुल रुपयों का १८ प्रतिशत भारत को अनुदान के रूप में दिया जायगा।

(२) कुल रुपयों का ६३ प्रतिशत भारत को ऋण के रूप में दिया जायगा।

(३) कुल रुपयों का ६ प्रतिशत निजी उद्योगों को ऋण के रूप में दिया जायगा।

(४) कुल रुपयों का १३ प्रतिशत अमरीकी सरकार के व्यय में खर्च किया जायगा।

(इस राशि में ३ अरब १४ करोड़ की वह राशि सम्मिलित नहीं है जो ४१ करोड़ ८० लाख डालरों में भारत को अमरीका को लौटानी होगी।)

ऋण के रूप में जो ६३ प्रतिशत राशि भारत को इन रुपयों में से दी गयी है, वह ४० वर्षों में लौटानी होगी। इस अवधि में १० वर्षों की छूट मिल सकती है। १९६६ के बाद जो समझौता हुआ उसके अनुसार इस राशि का कुछ भाग डालरों में और शेष रुपयों में लौटाना होगा।

यहाँ यह बतला देना भी आवश्यक है कि पी० एल० ४८० के अतिरिक्त भारत को अमरीका से ऋण और अनुदान के रूप में और भी धन मिला है। यह सिलसिला १९५१ से आरम्भ हुआ और १९७३ के मध्य तक अमरीका से भारत को सब मिलाकर ७५ अरब रुपयों की सहायता ऋणों और अनुदान के रूप में मिली है। अर्थात् अमरीका से भारत को जो सहायता मिली है उसकी प्रायः आधी पी० एल० ४८० के अन्तर्गत है।

पी० एल० ४८० का जो रुपया भारत के रिजर्व बैंक में जमा होता है उस पर ब्याज भी दिया जाता है। यद्यपि ब्याज की दर अधिक नहीं है और अब यह योजना भी समाप्त हो गयी है तथापि उसकी राशि (जो आरम्भ में बतायी गयी है) बहुत बड़ी है और चूंकि उस पर ब्याज भी देना पड़ता है, वह राशि प्रतिवर्ष बढ़ती जाती है। यह अनुमान किया गया है कि यदि वह राशि इसी प्रकार बढ़ती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो इस शती के अन्त में वह कई खरब रुपये हो जायगी। भारत के लिए यह ऋण आर्थिक दृष्टि से कमर-तोड़ हो जायगा। अतएव इस ऋण का निबटारा करना के लिए परम आवश्यक है।

आज यह ऋण जितना है वह उससे भी अधिक होता, परन्तु इस बीच अमरीका ने इस ऋण में से भारत की अनेक योजनाओं और सार्वजानिक हित के कामों के लिए अनुदान (जो लौटाने नहीं होंगे) और ऋण दिये हैं। उनकी पूरी सूची मिलना कठिन है, किन्तु अभी तक इस प्रकार इस संचित राशि में से भारत में जो व्यय किया गया है उसकी कुछ मोटी-मोटी रकमें ये हैं—

८०० करोड़ रु० कृषि के विकास के लिए।

२४१ करोड़ ८० लाख बड़ी सिंचाई योजनाओं के लिए।

१७४ करोड़ ८० लाख छोटी सिंचाई योजनाओं के लिए।

८५ करोड़ ९ लाख उर्वरक उत्पादन के लिए।

५४ करोड़ इंजिनियरिंग कालिजों की स्थापना और सहायता के लिए। कानपुर के आई० आई० टी० को इसीके अन्तर्गत एक करोड़ का अनुदान तथा इलाहाबाद आदि के नौ इंजिनियरिंग कालिजों को अनुदान या ऋण सम्मिलित हैं।

१ करोड़ पन्तनगर के कृषि विश्वविद्यालय को अनुदान।

१७ करोड़ कृषि अनुसंधान के लिए इंडियन काउंसिल आफ़ एग्रिकल्चर रिसर्च तथा अन्य कालिजों को।

८० करोड़ व्यावसायिक (वोकेशनल) विद्यालयों को।

११० करोड़ प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा संस्थाओं के विकास के लिए। इसमें दो-तिहाई अनुदान और एक-तिहाई ऋण है।

३४९ करोड़ बिजली उत्पादन के लिए।

१०५ करोड़ गाँवों में बिजली पहुँचाने के लिए।

१३८ करोड़ अन्य बिजली योजनाओं के लिए।

१०३ करोड़ मलेरिया, चेचक के उन्मूलन के लिए।

९५ करोड़ सड़कों और बंदरगाहों को बनाने और उनके विकास के लिए।

इनके अतिरिक्त ०१२३ करोड़ रुपया (उस राशि के ५ प्रतिशत आरक्षित धन से) निजी भारतीय उद्योगपतियों के साथ सहयोग कर निजी उद्योगों को खड़ा करने या उनके विकास के लिए ऋण भी दिया गया है।

अमरीकी राजदूतालय ने इस वर्ष के मध्य तक अपने व्यय के लिए अब तक ४७७ करोड़ रुपये इस संचित राशि से लिये हैं। किन्तु इसमें से भी अमरीकी राजदूत ने १०४ करोड़ रुपये भारत सरकार की कुछ योजनाओं के लिए अनुदान रूप में दिये हैं, तथा पी० एल० ४७० (द्वितीय) के अन्तर्गत जो खाद्यान्न आदि भेंट के रूप में भारत को आया उसका अमरीका से भारत तक लाने का किराया भी इसी मद से दिया गया है। नेपाल को अमरीका जो सहायता देता है उसका अधिकांश भी इसीसे दिया गया। शेष धन (अनुमान से ८० करोड़ से कुछ ऊपर) अमरीकी राजदूतालय पर व्यय हुआ।

यह कहना कठिन है कि उपर्युक्त धन जो अमरीका ने भारत में खर्च किया है उसमें से कितना ऋण के रूप में (जो लौटाना होगा) और कितना अनुदान के रूप में है जिसे लौटाना नहीं है। यदि आधा भी ऋण हो तो भी वह राशि काफी बड़ी है।

अमरीका की भारतीय रिजर्व बैंक में जमा यह विशाल धनराशि—जो ब्याज के कारण साकार सुरसा के समान प्रतिदिन बढ़ती जाती है—भारत की आर्थिक व्यवस्था के गले में पड़ी पत्थर की चक्की की तरह असहनीय हो गयी है। भारत के कुछ लोग चाहते हैं कि अमरीका इस ऋण को बट्टेखाते में डाल दे और भारत को इस असह्य आर्थिक भार से मुक्त कर दे। किन्तु ऐसे लोग स्वप्नदर्शी या वे लोग हैं जो कानून के बल से समाजवाद, सामाजिक न्याय और जनता के हित के नाम पर नाममात्र का मुआवजा या कोई मुआवजा न देकर सम्पत्ति के राष्ट्रीयकरण का सिद्धान्त मानते हैं। किन्तु वे भूल जाते हैं कि अन्तर्राष्ट्रीय ऋण शान्ति काल में इस प्रकार समाप्त नहीं किये जा सकते। इससे हमारी राष्ट्रीय साख को धक्का लगेगा और हमें भविष्य में विदेशी सहायता मिलने में अपार कठिनाई होगी। किन्तु यह बोझ इतना असह्य है कि अमरीका से समझौता कर कोई ऐसा रास्ता निकालना होगा जिससे अमरीका से हमारी सद्भावना और अन्तर्राष्ट्रीय साख बनी रहे। यह निश्चित है कि यह भार हमारे लिए इतना दुर्वह है और ब्याज के कारण यह बराबर बढ़ता जायगा, कि जब तक इसका कोई सद्भावनापूर्ण हल नहीं निकलता तब तक भारत और अमरीका में यह तीव्र मतभेद और गलतफ़हमी पैदा करता रहेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमरीका और भारत के सम्बन्ध और पी० एल० ४८० का ऋण—मनोविज्ञान में एक ग्रंथि को प्रेम-घृणा ग्रंथि (लव-हेट कम्प्लैक्स) कहा जाता है। भारत और अमरीका के बीच दोनों ही ओर से कुछ ऐसी ही ग्रन्थि पड़ गयी है। इसका कारण ऐतिहासिक है। अमरीका जनतन्त्रवादी देश है। उसमें नागरिकों को सभी प्रकार की विधि-सम्मत स्वतन्त्रता है। वहाँ अभिव्यक्ति की पूरी स्वतन्त्रता है। वहाँके समाचारपत्रों को अभिव्यक्ति की कितनी स्वतन्त्रता है, यह अभी हाल के 'वाटरगेट' काण्ड से स्पष्ट हो गया है। लिंकन ने जनतन्त्र के जो उद्देश्य परिभाषित किये थे, उन्हें भारत पूरी तरह से मानता है। अतएव भारत और अमरीका के जनतन्त्र सम्बन्धी विचार एक से हैं। यह उन्हें निकट लाने का सबसे बड़ा और महत्त्वपूर्ण कारण है।

महात्माजी का उद्देश्य सर्वोदय था। वे गीता के अनासक्त योग के अनुयायी थे। उनका आदर्श रामराज्य था। जनतन्त्र में उनके आदर्शों के कार्यान्वयन की काफी गुंजाइश थी।

हमारे प्रथम प्रधान मन्त्री की शिक्षा-दीक्षा इंग्लैण्ड में हुई थी जो दूसरा जनतन्त्रवादी देश है और वे जनतन्त्र में पूरा विश्वास करते थे। हमारे संविधान में जो नागरिक अधिकार दिये गये हैं वे उनकी जनतन्त्र सम्बन्धी आस्था के प्रमाण हैं। किन्तु साथ ही वे मार्क्स से भी बहुत प्रभावित थे और इसलिए समाजवाद में भी उनका पूरा विश्वास था। रूस की क्रान्ति और उसकी उन्नति ने उनके हृदय पर गहरी छाप छोड़ी थी। समाजवाद (सोशलिज़्म) और साम्यवाद (कम्यूनिज़्म) में अन्तर करनेवाली रेखा बड़ी क्षीण है। जब समाजवाद अपने तर्कसंगत सिद्धान्तों के अनुसार पूरी तरह से काम करता है तब उसमें और साम्यवाद में बहुत कम अन्तर रह जाता है।

अतएव हमारे प्रधान मन्त्री जनतन्त्रवादी होने के कारण एक ओर अमरीका के प्रशंसक थे तो दूसरी ओर मार्क्सवादी होने के कारण रूस के भी कम प्रशंसक नहीं थे। वे प्रजातन्त्रीय समाजवाद चाहते थे। दोनों के सिद्धान्तों में इतना भेद है कि तेल और पानी की तरह उनका एक रस हो जाना अत्यन्त कठिन है। यदि समाजवाद पर बल दिया जाय तो जनतंत्र के मूल सिद्धान्तों (व्यक्तिगत स्वतन्त्रता, अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता, सम्पत्ति अर्जित करने और रखने की स्वतन्त्रता) पर अंकुश लगाना आवश्यक हो जाता है, और यदि प्रजातन्त्र पर बल दिया जाय तो समाजवाद के सिद्धान्त (जनता के हित के लिए विभिन्न स्वतन्त्रताओं) पर अंकुश और सम्पत्ति का राष्ट्रीयकरण अनिवार्य हो जाता है। सम्भव है कि कालान्तर में कोई अत्यन्त प्रतिभाशाली नेता कोई ऐसा मार्ग निकाल ले जिसमें दोनों के मौलिक सिद्धान्त—बिना एक दूसरे को नष्ट किये—एकरस हो जायँ, किन्तु यह प्रक्रिया अभी प्रयोग के रूप ही में भारत में चल रही है। उसका परिणाम भविष्य बतलायेगा।

प्रजातन्त्र और समाजवाद को मिलाने के प्रयास ने भारत की वैदेशिक नीति को प्रभावित किया। 'सह अस्तित्व' और 'पंचशील' के सिद्धान्त उसी प्रयास के परिणाम थे, जो अपने में सही और निर्दोष हैं और यदि विश्व को स्थायी शान्ति रखनी और जनकल्याण करना है तो अन्ततः उन्हें स्वीकार करना ही होगा।

किन्तु जिस समय भारत की वैदेशिक नीति बन रही थी उस समय अमरीका और रूस में घोर वैमनस्य था और 'शीतयुद्ध' अपनी चरम सीमा पर था। उन दोनों को उस समय मिलाना 'राम-रावण मिलन' कराने के समान था। भारत प्रजातन्त्रवादी होने के कारण अमरीका के निकट था और मार्क्सवादी होने के कारण रूस के भी निकट था। उसने दोनों से अपने सम्बन्ध अच्छे बनाये रखने के प्रयत्न किये। किन्तु इन दोनों महाशक्तियों के विश्व राजनीति सम्बन्धी विचार उस समय परस्पर विरोधी थे। उसी समय कम्युनिस्ट चीन का भी उदय हुआ और भारत ने उससे भी इतनी मित्रता कर ली कि 'हिन्दी-चीनी भाई भाई' का नारा सुना जाने लगा। ऊपर से सह-अस्तित्व की दुहाई देते हुए भी, ये राष्ट्र अपने प्रभाव को विश्व में बढ़ाने और एक दूसरे की काट करने में लगे थे। अन्त में विश्व 'पूर्व' और 'पश्चिम' में विभक्त हो गया। आणविक शस्त्रों के विकास ने मानवता के लिए विभीषिका का भय उत्पन्न कर दिया। 'पश्चिमी' राष्ट्रों का इतिहास साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद का था। अतएव नवविकसित राष्ट्र अपने पुराने अनुभव के कारण उन्हें सन्देह की दृष्टि से देखते थे। वे उनके घोषित उद्देश्यों पर विश्वास नहीं करते थे। अमरीका ने कम्यूनिस्टों को बढ़ने से रोकने के लिए जो विभिन्न संगठन बनाये उनसे विकासशील और नव स्वतन्त्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देशों का संदेह और भी बढ़ा। उधर रूस 'दलित' देशों का समर्थक और संरक्षक समझा जाने लगा।

वास्तव में तीनों ही महाशक्तियाँ (अमरीका, रूस और चीन) विस्तारवादी थीं, यद्यपि नये परिवेश में 'विस्तार' का रूप बदल गया था। पहिले ये साम्राज्यवादी देश कमजोर देशों पर अधिकार कर उन पर सीधा शासन कर उनका शोषण करते थे, अब उनको आर्थिक, सैनिक सहायता देकर और वहाँ अपनी कठपुतली सरकारें बनाकर उनसे परोक्षरूप से अपना काम निकालने लगे। अमरीका ने कोरिया, वियतनाम, लैटिन अमरीका में और रूस ने हंगरी, चेकोस्लाविया, रूमानिया, पूर्वी जर्मनी में जो कुछ किया वह उसी नीति का फल था। चीन ने तो पुराने ढंग से तिब्बत पर सीधा अधिकार कर लिया और उत्तरी कोरिया को सैनिक सहायता देकर नये ढंग से उसे अपने प्रभाव में ले लिया।

अमरीका की गतिविधियाँ अधिक फैली हुई थीं। रूस तो अपने पड़ोस ही के देक्षों को अपने प्रभाव में ला रहा था। इसलिए अमरीका के कामों की अधिक समालोचना हुई। तब स्वतंत्र देशों में सबसे बड़ा, सबसे उन्नत तथा सबसे प्रबुद्ध भारत था। उसे सौभाग्य से उस समय एक महान् व्यक्ति का नेतृत्व प्राप्त था। अतएव भारत को उन नव-स्वतंत्र और विकासशील देशों की ओर से अमरीका के अनेक आपत्तिजनक कामों की आलोचना करनी पड़ी। दुर्भाग्य से उस समय राष्ट्रसंघ में हमारे प्रतिनिधि श्री कृष्णा मेनन थे जो पुराने कम्युनिस्ट थे—बाद में कांग्रेसी हो गये थे। वे बड़े तीखे भाषण देते थे। वे राजनयिक (डिप्लोमैट) नहीं थे। वे प्रतिबद्ध नेता, कटुभाषी और प्रचारक थे। राजनयिक बात तो कह देता है किन्तु वह बड़ी संयत और शिष्टभाषा का प्रयोग करता है और कभी अपना मानसिक संतुलन नहीं खोता। दुर्भाग्य से श्री मेनन में ये गुण नहीं थे और उनके तीखे भाषणों से अमरीका में भारत की सद्भावना के प्रति बड़ी गलतफ़हमी फैल गयी।

उसी समय अमरीका और पश्चिमी राष्ट्रों ने रूस और चीन के लिए जो मोर्चाबंदी की उसमें पाकिस्तान सम्मिलित हो गया और अमरीका ने उसे अरबों डालर के आधुनिक तथा उन्नत अस्त्र-शस्त्र देकर उसकी सैनिक शक्ति बढ़ा दी। पाकिस्तान का चीन से कोई झगड़ा न था और यदि होता भी तो वहाँके दुर्गम पहाड़ों पर विशाल टैंकों या भारी तोपों का उपयोग नहीं हो सकता था। इसी प्रकार रूस भी उसके लिए दुर्गम था। उसका झगड़ा कश्मीर को लेकर भारत से था और यह स्पष्ट था कि वह अपना सैनिक बल भारत के विरुद्ध युद्ध करने को बढ़ा रहा है। अतएव भारत ने अमरीका द्वारा पाकिस्तान को इतनी भारी सैनिक सहायता देने का तीव्र विरोध किया तथा भारत में अमरीका की कार्रवाई की प्रतिकूल प्रतिक्रिया हुई।

इसके बाद सुरक्षा परिषद् में जब जब कश्मीर का प्रश्न उठा तब तब अमरीका के नेतृत्व में पश्चिमी राष्ट्रों ने भारत का विरोध और पाकिस्तान का समर्थन किया। उस समय पाकिस्तान अमरीकी गुट में था। अतएव रूस ने अपने 'वीटो' के अधिकार का उपयोग कर सुरक्षा परिषद् में भारत के विरुद्ध प्रस्ताव पारित न होने दिया। उसकी इस कार्रवाई से भारत में रूस के प्रति सद्भावना बढ़ी। बाद में रूस ने भारत को (मूल्य लेकर) जो सैनिक सामान देकर सहायता की उससे भी उसके प्रति यहाँ उसकी साख बढ़ी।

पिछले पाक-भारत युद्ध में अमरीका के राष्ट्रपति ने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया था कि उनका 'रुझान' पाकिस्तान की ओर था। इससे भी भारत को अमरीका से एक शिकायत और हो गयी।

इधर भारत में भी अमरीका के प्रति सद्भावना की कमी के कारण यहाँ के नेता और समाचारपत्र अमरीका के कामों की बराबर आलोचना करते रहते हैं। कभी यह आलोचना संयत और आवश्यक होती है, कभी असंयत और अनावश्यक। अमरीका में जब यह पहुँचती है तब वहाँ भारत के विरुद्ध भावना और भी बढ़ती है। उदाहरण के लिए, कांग्रेस के अध्यक्ष बहुधा भारत में हुई तोड़-फोड़ या उपद्रवों का दोष अमरीका के गुप्तचर विभाग (सी० आई० ए०) के माथे मढ़ते थे। उन्होंने इसकी इतनी अति कर दी थी कि प्रधान मंत्री श्रीमती गांधी को उनसे संयत रहने को कहना पड़ा था।

इधर चिली में जो सैनिक क्रांति हुई और वहाँके मार्क्सवादी राष्ट्रपति मारे गये, उसकी परोक्ष चर्चा प्रधान मंत्री ने अपने एक भाषण में प्रकारान्तर से कर दी थी, जिसमें उन्होंने कहा था कि उस हत्या में किसी विदेशी शक्ति का हाथ था। बहुत-से समाचार-पत्र अमरीका को इसका दोषी बताते थे। अतएव अमरीका में यह प्रचार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया गया कि भारत की प्रधान मंत्री ने उनकी हत्या का दोषी अमरीका को ठहराया है—यद्यपि उन्होंने किसी देश का नाम नहीं लिया था।

इसी प्रकार विदेशों से जो लोग यहाँ शोध या डाक्टरेट करने आते हैं उनकी संख्या पर भारत सरकार ने प्रतिबंध-लगा दिया था क्योंकि यहाँके विश्व-विद्यालयों में शोध कार्य करने के साधनों की कमी है। सबसे अधिक लोग अमरीका से आते थे। यद्यपि यह प्रतिबन्ध संसार के सभी देशों से आनेवाले शोधकर्ताओं पर लगाया गया था, तथापि अमरीका इससे सबसे अधिक प्रभावित हुआ और अमरीका में प्रचार किया गया कि भारत ने यह प्रतिबंध वास्तव में अमरीकनों के विरुद्ध लगाया है। भारत सरकार का उद्देश्य ऐसा कोई भेदभाव करने का न था, किन्तु इस व्यर्थ की ग़लतफ़हमी को दूर करने और अमरीकनों की भावनाओं को तुष्ट करने के लिए उसने यह प्रतिबंध हटा लिया।

सारांश यह कि अनेक कारणों से, और विशेषकर इसलिए कि भारत से अमरीका के मुख्य प्रतिस्पर्द्धी रूस के संबंध बहुत अच्छे हैं, अमरीका में इस समय भारत विरोधी भावना काफी प्रबल है।

अमरीका और भारत की सरकारें इस ग़लतफ़हमी को दूर करने और आपस में सद्भावना स्थापित करने की आवश्यकता अनुभव करने लगी हैं। अमरीका ने जो अपने नये राजदूत भेजे हैं वे जाने-माने भारत-हितैषी हैं और उन्होंने सद्भावना स्थापित करने के लिए प्रयत्न भी आरम्भ कर दिये हैं।

भारत और अमरीका के बीच एक बड़ा विवाद का प्रश्न पी० एल० ४८० के ऋण का है जो भारत के लिए असह्य है और यदि उसका कोई संतोषजनक निबटारा हो जाय तो दोनों देशों में सद्भावना स्थापित होने में बड़ी सहायता मिले। श्री मोइहम (अमरीकी राजदूत) ने आते ही इस समस्या की ओर ध्यान दिया तथा भारत सरकार से लम्बे विचार-विमर्ष के बाद वे अमरीका गये, और वहाँ उन्होंने अमरीका की सरकार और राष्ट्रपति निक्सन को उस समझौते को साकार करने के लिए राजी कर लिया जो उन्होंने भारत सरकार की सहमति से तैयार किया था। उस समझौते की मुख्य बातें ये थीं :

१. पी० एल० ४८० के जो रुपये भारत के रिजर्व बैंक में जमा हैं, उन पर ब्याज देना बंद कर दिया जायगा। (यदि ब्याज दिया जाता रहा तो इस शती के अंत तक उस राशि का आकार छः बिलियन डॉलर हो जायगा।)

२. पी० एल० ४७० में जमा राशि में से एक अरब डालर अमरीका लेगा। इनमें से दस करोड़ डालर वह चाहेगा तो विदेशी मुद्रा में ले सकेगा। शेष ९० करोड़ डालर वह जब तक वे खर्च न हो जायें तब तक अपने भारत के राजदूतालय पर व्यय करता रहेगा।

३. ढाई करोड़ डालर वह नेपाल को सहायता देने में व्यय करेगा।

४. जमा राशि का शेष (२ अरब तीस करोड़ डालर) भारत को दे दिये जायँगे जो वह ऐसे विकास कार्यों पर खर्च करे जिससे मुद्रास्फीत न बढ़े।

भारत की दृष्टि से यह समझौता बहुत संतोषजनक नहीं है क्योंकि वह फिर भी एक अरब डालर का देनदार रहेगा जिनमें से दस करोड़ माँगने पर विदेशी मुद्रा में देने होंगे। किन्तु लाभ यह होगा कि भविष्य में ब्याज न देना होगा और उसका प्रायः दो अरब तीस करोड़ का ऋण समाप्त हो जायगा। वर्तमान स्थिति में इससे अधिक अनुकूल शर्तों पर यह समस्या हल नहीं हो सकती।

अमरीका या किसी देश से यह आशा करना कि वह अपना सारा का सारा रुपया छोड़ दे, व्यावहारिक नहीं है। भारत प्रायः दो तिहाई ऋण से मुक्त हो जायगा, और जो नब्बे करोड़ राजदूतालय पर व्यय होंगे वे एक-दो दशकों में देने होंगे, और उन पर उसे ब्याज भी न देना होगा। केवल माँगने पर नकद दस करोड़ डालर का वह देनदार रह जायगा।

किन्तु 'श्रेयांसि बहुविघ्नानि'। अमरीकी संविधान के अनुसार ऋण देने तथा उनमें छूट देने की स्वीकृति वहाँके संसद की दो समितियों से लेनी आवश्यक है। अभी हाल में अमरीकी सरकार ने पी० एल० ४८० के भारतीय ऋण को इस प्रकार निबटाने का प्रस्ताव संसद की सिनेट की सम्बन्धित समिति के सामने स्वीकृति के लिए रखा। किन्तु वहाँ वह स्वीकृत नहीं हो सका। उसे टाल दिया गया। वहाँ मालूम पड़ा कि अमरीकी संसद् के सदस्यों में भारत-विरोधी भावना कितनी प्रबल है। इस समस्या के टाल देने के संशोधन के पक्ष में ६७ सदस्यों ने और विपक्ष में १८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सदस्यों ने मत दिया। १५ सदस्यों ने मत नहीं दिया, जिससे मालूम होता है कि वे भारत के विपक्ष में नहीं, तो पक्ष में भी नहीं हैं। वहाँ सदस्यों ने जो भाषण दिये वे उनकी भावना को और भी स्पष्ट करते थे। एक सदस्य ने तो यहाँ तक कह डाला कि भारत को अमरीका को जो देना है उसमें एक सैंट (पैसे) की छूट नहीं दी जायगी। एक दूसरे सदस्य ने कहा कि यदि उन्होंने (भारत ने) रुपया उधार लिया है तो वे उसे लौटाते क्यों नहीं? हाँ, यदि वे भुगतान के लिए अधिक समय चाहते हों तो वह दिया जा सकता है।

अतएव नये अमरीकी राजदूत और अमरीकी सरकार ने कई महीनों तक भारत सरकार से विचार विमर्ष कर इस उलझे हुए प्रश्न को दोनों पक्षों की सहमति से जो सूत्र निकाला था वह सिनेट की समिति ने नहीं माना। यह मामला अभी संसद की दूसरी समिति में जायगा और शायद संसद में भी जाय। अमरीका की सरकार चाहती है और इसके लिए प्रयत्न भी कर रही है कि उसे संसद की स्वीकृति मिल जाय। किन्तु जो मतदान हुआ है उससे अमरीका के संसद के सदस्यों की भावना का पता लगता है।

अमरीका और भारत के हितैषियों को चाहिए कि वे ऐसा वातावरण उत्पन्न करें जिससे दोनों देशों में फैली ग़लतफ़हमियाँ दूर हों और दोनों में पूर्ववत् फिर सौमनस्य उत्पन्न हो सके।

क्या उर्दू को कांग्रेस अखिल भारतीय भाषा के रूप में मान्यता देना चाहती है?—उत्तर प्रदेश में लोग इसी बात से चिन्तित और आन्दोलित हैं कि कांग्रेस सरकार उर्दू को इस प्रदेश की दूसरी राजभाषा बनाना चाहती है, पर ऐसा मालूम होता है कि बात इससे भी अधिक गंभीर है। ऐसे लक्षण हैं कि वह उसे अखिल भारतीय राजभाषा बनाने की बात सोच रही है।

उर्दू का जन्म किन्हीं भी परिस्थितियों में भारत ही में क्यों न हुआ हो और दीर्घकालीन मुसलमान शासन और आरम्भ में अंग्रेजों की ग़लतफ़हमी के कारण उसका उपयोग राजकाज में होने के कारण, कितने ही हिन्दुओं को उसे सीखना पड़ता था और उसे सीखने के कारण उनमें से कितने ही हिन्दुओं ने उर्दू साहित्य का निर्माण भी क्यों न किया हो, किन्तु हिन्दुओं ने उसे कभी अपनी भाषा नहीं माना। इसके विपरीत, मुसलमान उसे अपनी भाषा मानते रहे हैं। अस्तु यदि मुट्ठी भर कशमीरी हिन्दुओं व पंजाबियों और पुरानी पीढ़ी के दिनों दिन कम होनेवाले कायस्थों को छोड़ दिया जाय तो हिन्दू लोग उसे अपनी भाषा नहीं मानते। इसके विपरीत केरल, मैसूर, महाराष्ट्र के मुसलमान (चाहे वे ठीक तरह से उर्दू न भी जानते हों) उसे अपनी भाषा कहते हैं। अतएव वास्तव में वह अल्पसंख्यक मुसलमानों की तथाकथित भाषा रह गयी है। जो लोग उसे 'हिन्दू-मुसलमान' की एकता का प्रतीक समझते हैं वे भ्रम में हैं। देश का विभाजन कराने में उर्दू का बहुत बड़ा हाथ है। किन्तु संविधान में उसे देश की १४ भाषाओं में अनेक कारणों से स्थान दिया गया और वह भारत की एक मान्य भाषा है। आज मुसलमान साम्प्रदायिक भावना के कारण उसे अपनी भाषा कहते हैं, चाहे देहात के बहुसंख्यक मुसलमान 'सीन' और 'शीन' का शुद्ध उच्चारण भी न कर सकते हों। यदि अल्पसंख्यक मुसलमान उसे अपनी भाषा मानते हैं तो हमें कोई आपत्ति नहीं। इससे केवल यही साबित होता है कि वह एक अल्पसंख्यक समुदाय की साम्प्रदायिक भाषा है।

किन्तु राजनीतिक कारणों से इस समय कांग्रेस अपनी पुरानी मुसलमानों की तुष्टीकरण नीति को फिर से जोरों से चलाने लगी है, और उन्हें तुष्ट करने के लिए वह उत्तर प्रदेश में जो कुछ कर रही है वह इस बात की पुष्टि करती है। कांग्रेस अपने को साम्प्रदायिक संगठनों के विरुद्ध कहती है, किन्तु केरल में उसने मुस्लिम लीग से गठबंधन कर रखा है और पुरानी मुस्लिम लीग के पुनरुत्थान में उसका प्रोत्साहन कम नहीं है। मुस्लिम लीग का इतिहास सभी जानते हैं। उसीने भारत का विभाजन कराया। मुस्लिम लीग के अध्यक्ष ने सार्वजनिक रूप से यह घोषित भी कर दिया है कि वर्तमान मुस्लिम लीग वास्तव में पुरानी मुस्लिम लीग ही है। साम्प्रदायिक संगठनों को प्रोत्साहन देने से देश में एकता की भावना नहीं फैल सकती, और कालान्तर में 'दो राष्ट्र' का सिद्धान्त पुनर्जीवित हो सकता है। हम राजनीतिज्ञ नहीं हैं। कांग्रेस अनुभवी राजनीतिज्ञों की संस्था है, किन्तु वह मुस्लिम लीग ऐसी साम्प्रदायिक संस्था को क्यों इतना प्रोत्साहन और प्रश्रय देती है, इसका कारण वही बता सकती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुसलमान अपना अलग व्यक्तित्व रखने के लिए उर्दू को आवश्यक समझते हैं। हमें इसमें कोई आपत्ति नहीं कि यदि वे उसे अपनी भाषा समझते हैं तो वे उसे पढ़ें, उसमें साहित्य निर्माण करें, और सरकार भी उसके साहित्य-निर्माण कार्य में सहायता दे। किन्तु वह न तो भारत की राजभाषा है और न उत्तर प्रदेश की ही। भारत की राजभाषा हिन्दी और सह राजभाषा अंग्रेजी है। उत्तर प्रदेश की राजभाषा देवनागरी में लिखित हिन्दी है। अतएव राजकाज में केन्द्र में हिन्दी और अंग्रेजी, और उत्तर प्रदेश में केवल हिन्दी का प्रयोग होना चाहिए, और अब तक बहुत कुछ होता भी रहा है। औपचारिक अवसरों पर केवल राजभाषा का ही प्रयोग होना चाहिए।

किन्तु अभी एक ऐसी घटना हुई है जिससे यह आशंका होना स्वाभाविक है कि कांग्रेस सरकार उर्दू को केन्द्र में भी राजभाषा का स्थान देना चाहती है। घटना यह है: मथुरा में एक तेल-शोधक प्रतिष्ठान स्थापित हो रहा है। गत मास प्रधान मंत्री ने उसका शिलान्यास किया। उसमें

(१) निमंत्रण पत्र हिन्दी, अंग्रेजी और उर्दू में छापे गये।

(२) कारखाने के संबंध में जो पुस्तिका निकली वह हिन्दी और उर्दू में थी।

(३) शिला पर हिन्दी और उर्दू अंकित थी।

मथुरा तेल-शोधक संस्थान केन्द्र द्वारा स्थापित किया गया है और वह उत्सव उत्तर प्रदेश का नहीं, केन्द्र का था जिसकी राजभाषा हिन्दी और सह-राजभाषा अंग्रेजी है। उस केन्द्रीय उत्सव में उर्दू के प्रयोग की क्या आवश्यकता या औचित्य था? यदि १४ भारतीय भाषाओं में एक होने के कारण उसका प्रयोग किया गया तो शेष बारह भाषाओं का शिला पर अंकन क्यों नहीं किया गया? उर्दू को यह विशिष्टता क्यों दी गयी और उसके प्रति यह पक्षपात क्यों दिखाया गया? केन्द्र के अखिल भारतीय उत्सव में कांग्रेस सरकार द्वारा उर्दू का यह उपयोग आपत्तिजनक ही नहीं, उसकी नियत पर भी संदेह उत्पन्न करता है। कांग्रेस सरकार में इतनी कल्पना तो होनी ही चाहिए कि वह यह समझ सके कि उसके इस पक्षपातपूर्ण कार्य की प्रतिक्रिया बहुसंख्यक लोगों पर क्या होगी। हम उसके इस कार्य का तीव्र विरोध करते हैं। हमारा दृढ़ मत है कि केन्द्र के औपचारिक अवसरों पर केन्द्र की मान्य राजभाषाओं ही का प्रयोग होना चाहिए। चोर दरवाजे से उर्दू लाने का कार्य अनुचित और निन्दनीय है। उसके बाद प्रधान मंत्री ने चिल्का (उड़ीसा) में एक शिलान्यास किया। उसमें शिला पर हिन्दी और अंग्रेजी लिखी थी। तो क्या मथुरा के उत्तर प्रदेश में होने के कारण भारत सरकार ने अखिल भारतीय समारोह में उर्दू का प्रयोग किया?

यह भी समझ में नहीं आया कि इसे 'मथुरा तेल शोधक' न कहकर हिन्दी में रिफाइनरी क्यों लिखा गया? हिन्दी शब्दों से विरक्ति या अंग्रेजी का मोह?

मध्यप्रदेश में उच्च न्यायालय की भाषा हिन्दी—हमें यह जानकर बहुत प्रसन्नता हुई कि मध्यप्रदेश सरकार ने अपने उच्च न्यायालय (हाईकोर्ट) की भाषा हिन्दी कर दी है। अभी तक उसका सारा काम अंग्रेजी में होता था। अब हिन्दी में होगा और निर्णय भी हिन्दी में दिये जायँगे। अक्तूबर के आरम्भ से उसने निर्णय हिन्दी में देना आरम्भ कर दिया है तथा उसके कार्यालय का काम भी हिन्दी ही में होगा। हम इस समयोचित, प्रगतिशील और जन-हित के कार्य के लिए मध्यप्रदेश की सरकार, विशेषकर उसके मुख्य मन्त्री श्री प्रकाशचन्द्र सेठी और विधिमन्त्री श्री कृष्णपाल सिंह को हार्दिक धन्यवाद और बधाई देते हैं।

वर्तमान मध्यप्रदेश में पुराने ग्वालियर और इन्दौर राज्य भी सम्मिलित हैं। इनमें भी हाईकोर्ट थे और इन दोनों में सारा काम हिन्दी में होता था और कभी कोई कठिनाई नहीं हुई। अतएव मध्यप्रदेश के कुछ भागों के हाईकोर्टों में हिन्दी में काम करने की परम्परा पुरानी है। यह बड़े संतोष और हर्ष की बात है कि अब यह पुरानी परम्परा सारे राज्य के उच्च न्यायालय में स्थापित कर दी गयी।

सर्वोच्च न्यायालय में अभी भी काम अंग्रेजी में होता है। अतएव जो लोग म० प्र० उच्च न्यायालय के किसी निर्णय के विरुद्ध सर्वोच्च न्यायालय (सुप्रीम कोर्ट) में अपील करना चाहेंगे उन्हें वहाँ निर्णय की प्रति अंग्रेजी में प्रस्तुत करनी होगी। इसलिए म० प्र० सरकार ने यह उचित प्रबन्ध किया है कि उन्हें हिन्दी में किये गये निर्णय का अधिकृत अंग्रेजी अनुवाद उपलब्ध हो सकेगा।

[शेष पृष्ठ ३०२ पर देखिये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राधा माधव हो गयी

डा० विद्यानिवास मिश्र

हमारी शिक्षा ने बचपन में कुछ बड़े ही अस्वस्थ संस्कारों के बीज बोये और मैं तो अपने को भाग्यशाली मानता हूँ कि श्रीमद्भागवत पर शोध का कार्य इन संस्कारों की छाया में शुरू तो किया, पर कई कारणों से वह कार्य अधूरा रह गया और जो उस समय मैं लिखता, वह पाप होता, उससे मैं बच गया। उस जमाने में दो भूत बड़े जबर्दस्त थे—एक तो ब्रह्म का, जिसके कारण भागवत में बिल्कुल ब्रह्मवाद देखने के लिए आँखें फोकस कर दी गयी थीं। दूसरा था पश्चिमी छूँछी नैतिकता के आग्रह का, जिसके कारण सनातनी 'कल्याण' भी यह सफाई देता था कि श्रीकृष्ण तो केवल पाँच-सात वर्ष के थे, उस समय रास-लीला में कोई वैसी बात सोची नहीं जा सकती। गीत-गोविन्द को भक्ति का ग्रन्थ मानने के लिए पढ़ा-लिखा तर्कबुद्धि आदमी तैयार नहीं होता था। इसलिए एक निर्जीव और भावहीन चिन्तन के गुंजलक में हम सभी लोग गिरपत थे और गोपी-प्रेम को हम लोग या तो प्रतीक मान कर ही किसी तरह भक्ति का दामन बचा सकते थे या फिर और ऐतिहासिक पाण्डित्य का लबादा ओढ़कर आभीर कृष्ण-वाली लीलाओं को बाद का क्षेपक मानकर एक शुद्ध गीता-वादी कृष्ण को इतिहास पुरुष के रूप में प्रतिष्ठित करके अपना सांस्कृतिक अभिमान सुरक्षित रख सकते थे।

पता नहीं, कैसे इस गुंजलक से मुक्ति मिली, पर आज भक्ति की पात्रता अपने में पाऊँ, न पाऊँ, इतना तो है ही कि चाहे गीतगोविन्द के मणिपुरी और ओडिसी नृत्य रूपान्तरों का प्रभाव हो, चाहे कांगड़ा-गुलेर के चित्रों का, चाहे विदेश में रहकर अपने देश को पहचानने की नयी कोशिश का, भयंकर आधि-व्याधि में भागवत का पारायण उस आधि-व्याधि को जीवन के महनीय क्षण में जरूर रूपान्तरित कर देता है। अपनी श्यामलता में अशेष अन्धकार को आकृष्ट करनेवाले भेधमेदुर कृष्ण के साक्षात्कार भले न हों, अपना अन्धकार भी प्रिय होने लगता है, क्योंकि वह अन्धकार ही प्रकाश का एकमात्र झरोखा मेरे जैसे साधारण आदमी के लिए हो सकता है; प्रकाश की पूंजी पर जो इतरायें, उनकी बात अलग है, क्योंकि देखता हूँ उस कृत्रिम प्रकाश ने जिस गहरी काली छाया को जन्म दिया है, उससे यह स्निग्ध अन्धकार लाख गुना प्रेय है और साथ ही साथ श्रेय भी।

अब जब भागवत पढ़ता हूँ तब उसका पहला स्कन्ध बड़ा सार्थक लगता है। अर्जुन के शोक-गीत को पढ़ते-पढ़ते ऐसा लगता है जैसे भगवान् अभी अभी मुझे ही धोखा देकर चले गये और उनके जाते ही मेरा कहा जा सके, ऐसा कुछ भी नहीं रह गया। यह भी लगता है कि राधा का नाम भागवत में आया या नहीं, राधाभाव ही भागवत की परा भूमिका है; यह न होता तो भीष्म, शुकदेव, नारद, उद्धव जैसे तत्त्वज्ञानियों को भी यह स्पृहा क्यों होती? राधा की कौन कहे, सामान्य गोपी की भी चरण-धूलि जहाँ लगी हो, उन झाड़ियों, वनौषधियों, लताओं का भी कुछ हो पाता, तो भक्ति के परम फल का कुछ स्वाद तो मिल जाता। मैं भागवत धर्म को एक पोथी में बँधा धर्म नहीं मानता। मैं इसे मनुष्य की अनन्त भाव-यात्रा का प्रक्रिया-धर्म मानता हूँ और यहाँ इसी रूप में इसे प्रस्तुत करने का प्रयत्न कर रहा हूँ।

भागवत का सूत्रपात उचाट से होता है। अठारह पुराण, महाभारत और वेद की संहिताओं के सम्पादन के बाद भी व्यासदेव को लगता है कि जो करना चाहिए था, वही नहीं किया है; और वे सरस्वती के किनारे अनमने भाव से सोचते हैं कि अपने ही किये से ऐसी उचाट क्यों? नारद समाधान देते हैं—अभी असली बात आपने कही कहाँ? जो वास्तव में वेद्य है, जानने योग्य है और जो शिवप्रद है, जिसमें सहज निष्कपट धर्म भावरूप में लीलायित है, जिसमें जगत् को मायापाश से बाँधनेवाले को भी बाँधने का विधान है, ऐसी हरिलीला की बात अभी आपने की ही नहीं; जिस निष्काम कर्मयोग की, जिस ज्ञान-योग की बात आपने की, वह कर्मयोग अपनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सार्थकता अच्युतभाव से प्राप्त करता है, और वह ज्ञानयोग, श्याम रंग में अंजित होकर ही निरंजन मल न रहकर ज्योति बन पाता है--

'नैष्कर्म्यमप्यच्युतभाववर्जितं न शोभते ज्ञानमलं निरञ्जनम्'

आपने अभी तक काकपेय तीर्थों का निर्माण किया, हंसों के एकान्तभाव से रहने के लिए कोई घाट अभी बनाया ही नहीं। आपको ऐसी प्यास ही नहीं लगी जिसके लगते ही सारी तृषाएँ तृप्ति बन जाती हैं, पर जो स्वयं तृप्ति होते हुए कभी भी तृप्त नहीं होती। आपने केवल चार पुरुषार्थों को साधने के जतन बताये, पर चारों पुरुषार्थ-साधनों में जहाँ से नया स्वाद जाता है, उसे तो आपने अभी तक साधा ही नहीं। जीवन्मुक्त भी जिस बन्धन को मुक्ति से बड़ा मान कर वरण कर सकें और विषयों में फँसे लोग जिसे विषय के रूप में स्वीकार करके विषयी होते हुए भी विषयातीत हो सकें, ऐसी शाश्वत लीला का आख्यान आपने अभी शुरू ही नहीं किया। शायद इसलिए आप एक कुहासे से ढके द्वीप के अँधियारे में पैदा होकर भी उस उपेक्षा की पीड़ा से वंचित रह गये जो इस लीला का अर्थ समझने के लिए सबसे जरूरी शर्त है। मैं उस पीड़ा से गुजर चुका हूँ। एक दासी के पेट से जनमा, केवल हर तरह की जूठन बटोरता रहा, निरभिमान भाव से, दोनों प्रकार के भोजन मुझे जूठन में ही मिलते रहे, न पेट भरता रहा, न मन भरता रहा। उसी अतृप्त में मैंने पाया कि पूर्ण-काम नारायण भी अतृप्त हैं, वे सगुण लीला केवल भक्त के लिए नहीं करते; अपने लिए, अपनी बेकली दूर करने के लिए सगुण लीला रचते हैं और उस लीला को फिर समेट नहीं पाते, क्योंकि जो कोई भी उस लीला में अपने को, कभी भी स्मृति में ही सही, कहीं खड़ा कर देते हैं, लीलामय उसकी आँखों में सदा के लिए बस जाते हैं।

भागवत नारद की इस सीख का परिणाम है, और भागवत के पहले ग्रहीता इसीलिए जन्मजात परमहंस शुकदेव हैं, जो सब ओर निराकांक्ष होने के बाद भी भागवत लीला के लिए सतत साकांक्ष हैं। और शुकदेव इस लीला को सबसे पहले सुनते हैं परीक्षित को, जिनकी मृत्यु सात दिन बाद होने वाली है। इसलिए इन सात दिनों में ये अपने उस आत्म की कथा सुन लेना चाहते हैं, जिन्होंने गर्भ में अश्वत्थामा की शक्ति से रक्षा की थी और जिनकी कथा की उत्कण्ठा में मृत्यु जीवन की अतृप्त लालसा बन गयी है।

शौनक ने सूत को यहीं पर टोंका--भगवत्परायण परीक्षित् ने शरीरत्याग का निश्चय किया कैसे? भगवत्परायण व्यक्ति का तो शरीर दूसरे के लिए है। उस शरीर पर उसका अपना स्वत्व ही कहाँ? इस भगवदर्पित, इस लोकार्पित शरीर से निर्वेद मोक्षाभिलाषी को हो तो हो, भगवद्भक्त को क्यों हो?

शिवाय लोकस्य भवाय भूतये य उत्तमश्लोकपरायण जनाः।
जीवन्ति नात्मार्थमसौ पराश्रयं मुमोच निर्विद्य कुतः कलेवरम्।

यह शंका ही भागवत धर्म की दूसरी भूमिका है। उत्तमश्लोक भगवान् में निरन्तर जीने का अर्थ है लोक-कल्याण के लिए जीना, लोक के अभ्युदय के लिए जीना और सबसे अधिक लोक के दुःख की साझेदारी के लिए जीना। जब तक एक भी कोना उल्लसित होने से रह गया हो, जब तक एक भी दुःख का कण अपनाये बिना रह गया हो, तब तक जिन्दगी एक निरन्तर बेचैनी की उन्मदान्ध यात्रा है—कभी उद्धारक बनकर, कभी उद्धृत बनकर, कभी मोहन बनकर, कभी मोहित बनकर, कभी माधव बनकर, कभी राधा बनकर और कभी-कभी एक ही राधा शरीर में त्वरित क्रम से राधा और माधव बनकर। इस बेचैनी की भी एक शर्त है: दूसरी बेचैनियाँ इसकी धार में बह चलें, केवल यही एक बेचैनी रहे, जैसे अनउगे पंख वाले चिरौटे चोंच फैलाये माँ के लिए आकुल हो जाते हैं, माँ चारा लेकर आती होगी, उस समय शीत-घाम-आँधी-पानी कुछ भी मालूम नहीं पड़ता, पास के कोटर में महाव्याल की जीभ लपलपा रही है, इसका भी ध्यान नहीं रहता, बस माँ आ रही होगी, इसीका बेसब्री से इन्तजार रहता है। या जैसे सुबह के बँधे बछड़े को शाम होते ही दूध से भरे हुए थन की याद विह्वल कर देती है, कब हुमच-हुमच कर वह अमृत पीने को मिलेगा, दिन कितना लम्बा खिंचेगा, कब मेरी आतुरता देखते ही दूर से रँभाती हुई माँ के थन मेरे मुँह लगाने के पहले ही पेन्हा उठेंगे। या जैसे दूर अवधि देकर गये प्रियतम के लिए अवधि समीप आते ही आशा-निराशा का निविड़ संघर्ष छिड़ जाता है। एक छन होता है, दो दिन बाकी हैं तो क्या आज शाम आ जायँगे, सवेरे कागा उचरा था; फिर दूसरे छन ही डर लगता है कि कहीं बिलम तो नहीं गये, कहीं विंध तो नहीं गये और विषाद साँझ की प्रतीक्षा किये बिना गहरा हो जाता है। वैसी बेचैनी हो तब जिसे दर्शन देना है, जिसे प्यास मिटानी है, जिसे उपासी आँखों को रूप का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ण देना है, वह स्वयं बेचैन हो जायेगा, वह दीर्घदर्शन कर आयेगा, पर शर्त है आकुलता ऐसी हो—

अजातपक्षा इव मातरं खगाः
स्तन्यं यथा वत्सतराः क्षुधार्त्ताः ।।
प्रियं प्रियेव व्युषितं विषण्णा
मनोऽरविन्दाक्ष दिदृक्षते त्वाम् ।।

वैसी बेचैनी के बारे में लोगों का खयाल है कि वह जकल संभव नहीं । उस आदिम जमाने में जब संचार-धन नहीं थे, तब यह आकुलता कुछ माने रखते थी । ज तो दुनिया सिकुड़ गयी है, दर्शन-श्रवण का सुख लाखों-खों कोस की दूरी से भी सुलभ है, अब दर्शन की लालसा क्या अर्थ ? पर सच तो यह है कि अर्थ आज ही सबसे ादा रखता है, क्योंकि देखना-सुनना सिर्फ आँख-कान से ही होता । ऐसा होता तो एक ही साथ लोग रहते हैं, दिन-त एक दूसरे को देखते-सुनते रहते हैं, पर न वह देखना होता है, न सुनना होता है । एक ही घर में लगता है, ोग एक दूसरे के लिए प्रवासी हो गये हों, परिचय ी दीवार बन गया हो और आँख से देखना कान सुनना हो भी, पर सर्वात्मप्रभाव से देखना-सुनना दूभर हो या है, क्योंकि बेचैनियाँ इतने प्रकार की इतनी सारी बढ़ यी हैं कि हर नयी बेचैनी पहलीवाली बेचैनी को काटती लती है, पता ही नहीं लगता कि कौन बेचैनी सचमुच की ैनी है । बेचैनियों की इसी अनवच्छिन्न शृंखला में तो क दिन ऐसी बेचैनी जुड़ेगी, जिसके आगे कोई बेचैनी न ह पायेगी, रह जायेगा एक कगार और कगार के नीचे एक ड्ड—काला और डरावना खड्ड । तब बेचैनी जो भी ल लेगी, बेचैनी के जो सबसे बड़े सौदागर हैं, बेचैनी रीदना और बेचना ही जिनका धन्धा है, वे बनजारे रवाजे पर अपने आप आ जायेंगे । वे बेचने की बेबसी भर ते हैं, और जान जायँ कि मन की कलौंस बेचने की लाचारी गयी है तो उसे भी खरीद लेंगे और उस कलौंस को पनी कलौंस बना लेंगे । पर बेबसी ऐसी हो कि कुछ सूझे हीं, किसी भी कीमत पर दे देने की, यहाँ तक कि एक ष्टिपात पर ही बिक जाने की बेबसी हो । जिसका सौदा रा होने के पहले मन से बिक कर तैयार हो जाय, ऐसी न्मदान्धता हो, ऐसी बेखबरी हो कि खरीदनेवाला आये ो बेचने की सुधि न रह जाय । बेचनेवाला रहा ही नहीं, ह तो बेंच-खरीद की लीला करते-करते खुद खरीददार हो गया है । ऐसी बेसुधी ही जीवन की सबसे बड़ी साध है । अपनी इच्छा से मृत्यु को रोक रखने वाले भीष्म भी मृत्यु के क्षण एक ओर श्रीकृष्ण के युद्ध में धूलि सने, अस्तव्यस्त, क्षुब्ध और रोषाकुल रूप का ध्यान करते हैं; पैंताने सौम्य प्रसन्न मुद्रा में वे ही श्रीकृष्ण खड़े हैं पर वह रूप मृत्यु की बेला में ध्यान में क्यों लाया जाय ? ध्यान में वह रूप लाया जाय कि वे अकुला उठे हों मारने के लिए और मरते हुए मेरी अकुलाहट सब शान्त हो गयी हो और अन्त में जब स्वयं अकुला उठे हों, प्रभु की अकुलाहट से तब अकुलाहट की उस चरम साधना का ध्यान करते हैं—

ललितगतिविलासवल्गुहासप्रणयनिरीक्षणकल्पितोरुमानाः ।
कृतमनुकृतवत्य उन्मदान्धाः प्रकृतिमगन् किल यस्य गोपवध्वः ।।

प्रिय सामने हैं, उनके आगे उनके साथ ललित गति से नाचना, उनकी ओर देख, देखकर सहज भाव से मुस्कराना, उन्हें प्रेम से निहारना, उनको जरा भी इधर-उधर मुड़ते देख कर रूठ जाना और फिर मान जाना, क्योंकि अभी फिर उन्होंने मनाने के लिए हाथ भी तो जोड़ लिये; जैसे-जैसे वे विहरें, वैसे-वैसे उनकी छाया बनकर विहरना, होश खो देना कि कोई और सत्ता है, कोई देश है, कोई काल है, बस वे हैं और अलग-अलग 'मैं' बनी हम हैं, ऐसी उन्मदान्धता से ही पूरा तादात्म्य सम्भव है । ज्ञान, प्रकाश, अच्छाई तो हर एक दे सकता है, और बड़े सच्चे भाव से दे सकता है, पर अपना मोह, अपना अन्धकार और अपनी भीतर की बुराई अपने प्रिय को देने का साहस नहीं होता । प्रिय से भी कुछ चीजों का दुराव रह ही जाता है । कितनी भी इच्छा क्यों न हो कि प्रिय मेरे हृदय में छिपे रहें पर यह मन से नहीं जाता कि मेरे कोने-अँतरे में छिपे पुराने पाप की पूँजी को कहीं न टटोलने लगे । पर अपने को बिल्कुल परायी मानकर और उनको अपना मानकर जब दिया जायेगा तो फिर उससे दुराव नहीं रह पायेगा । दुराव तो उससे होता है, जिसके लिए एकदम अपनी होने का अभिमान हो, जिसके लिए हम परायी हैं । उससे क्या छिपाना ? वह हमारा भीतर-बाहर सब देख सकता है, क्योंकि भीतर तो वही-वही है, बाहर कोई हो भी तो, उसी के रंग में सराबोर होकर है । इसीलिए भागवत धर्म ने सबसे ऊँचा आसन इस मोहान्ध घोर तामस प्रेम के मार्ग से प्रभु की प्राप्ति को दिया है ।

इसका भी चरम उत्कर्ष है राधा "राधा भेल भधाई"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाला भाव। 'अनुखन' माधव-माधव रटते-रटते राधा माधव हो गयी। और माधव के रूप में अपने को स्थापित करते ही बेचैनी कम होने के बजाय और बढ़ जाती है, बेचैनी राधा के लिए, जो अब वह नहीं रही। और फिर माधव बनी राधा राधा बनकर माधव को सान्त्वना का सन्देश भेजती है। सन्देश पहुँचा नहीं कि विह्वल होकर पुनः माधव बन जाती है और एक ही विजड़ित चित्त के दो पाट चिर जाते हैं,—एक राधा, दूसरा माधव। दोनों ओर आग पकड़ चुकी है, बीच में प्राण एक कीड़े की तरह फँसा हुआ अकुला रहा है, वही प्राण तो इस विजड़ित काष्ठीभूत, द्विभक्त चित्त का संयोजक है, नगण्य चाहे कितना हो, पर वह दोनों पाटों की जलन का साक्षी है, चित्त बेखबर है, प्राण जाग रहा है—

दुहुँ दिसि दारु दहन जइसे दगधइ आकुल कीट परान।

आज की दुरन्त मानवीय द्विभक्तता की स्थिति में बस आग की कमी है और अकुला उठनेवाले 'कीट परान' की कमी है, नहीं तो उस बेकली के लिए जैसी तैयारी आज है वैसी कभी नहीं थी। मनुष्य के हाथ ने जिसे छुआ, वह सोना हो गया, मनुष्य का हाथ पारस पत्थर है न? पर अपने स्पन्दन, अपने स्नेह, अपनी ममता, अपनी वेदना, अपनी हुलास को भी छूकर उसने सोना बना दिया, एकदम ठोस। हाथ से छूते जीती-जागती लकड़ी सोना हो गयी, हाथ में लगा जैसे बिजली की करेंट मार गयी हो। अब हाथ उठने से घबराता है। अपनी छुवन से सिरजाये सुनहले वैभव के बीच मनुष्य एकायक काठ हो गया है, उसका लोभ उसे खाने दौड़ रहा है और उसे बचानेवाला कोई प्राण कहीं आसपास नजर नहीं आता। इसी डर से कहीं भीतर से प्राण छटपटा उठेगा और कहीं बाहर का भय भीतर देने वाले और लेनेवाले के बीच एक भूमिका की अदला-बदली की जरूरत महसूस करायेगा। बाहर कोई लेनेवाला नहीं रहेगा तो भीतर का लेनेवाला अकुला कर देनेवाले की भूमिका ले लेगा और गुहार लगायेगा कि 'ओ लेनेवाले मुन! लो कितना लोगे, लो मेरा लोभ, मेरा अभिमान, मेरा कर्त्तृत्व, मेरा भोक्तृत्व लो, इनकी गाँठें एक के ऊपर दूसरी पटी हुई हैं, ले जाओ, मेरा गोदाम खाली करो।' और जब कोई मन उस भूमिका में उतरने को तैयार नहीं होगा और जल्दी-जल्दी में आगे वाला पर्दा डालने की उपसहनीय स्थिति आ जायेगी, तभी नाटक का सूत्रधार आयेगा। 'माधव' 'माधव' रटते-रटते रहो। माधव होना, राधा के शरीर से माधव होना कठिन साधन है। राधा सुख दे दे, सरबस दे दे, पर अपना राधात्व, अपना दुरन्त अकेलापन, अपना चिरन्तन विरह कैसे दे? वही तो मूलधन है, उसी के कारण राधा का अस्तित्व है। पर राधात्व देने की भी एक बेचैनी की जबर्दस्त बहिया आती है। अपने सँजोये निपट अकेलेपन को उसमें विसर्जित करके माधव की धारा बनने का भी क्षण आता है। वह क्षण चाहे ज्यादा देर तक न ठहर पाये, पर वह क्षण आते ही विरह की साधना दुःखी होने के कारण तीव्रतर भूमिका में पहुँच जाती है—ऐसी भूमिका जो अब तक सुनने में न आयी हो, देखने में न आयी हो। उस 'श्रुतिभिर्विमृग्या' भूमिका की कामना ही भागवत धर्म की चरम कामना है। श्रीकृष्ण का जन्म भाद्रपद के कृष्ण पक्ष की अष्टमी को होता है, समस्त जगत् का अन्धकार पीकर आधी रात में कृष्णचन्द्र का उदय होता है, और राधा का जन्म भाद्रपद के शुक्ल पक्ष की अष्टमी को होता है, अपनी समस्त उज्ज्वलता, अपनी पूरी प्रभा श्यामल रंग में घोल देने के लिए। राधा-माधव की केलि निकुंज के अन्धकार में घटित होकर उतनी सार्थक नहीं जितनी सार्थक राधा के मनोमन्दिर में एक राधाचित्त दो राधा-माधव भावों की एक दूसरे को पाने की उत्कट विह्वलता में राधा-माधव भाव हो सकता है। भागवत धर्म की चरम सार्थकता पर-पीड़ा की ज्वाला के वरण से शुरू करके अपनी पीड़ा की ज्वाला को प्रिय की ओर मोड़ने के बजाय पुनः अपनी ओर मोड़ देने में है। यही उसका आज के पर्याकुल सन्दर्भ में सबसे बड़ा अवदान हो सकता है, बशर्ते कि इस पराभूमिका को ग्रहण करने वाले सोंठियाये शुद्धिवादी अपने अधूरेपन के अश्लील संस्कारों का आग्रह छोड़ सकें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गजलक्ष्मी

भितरी, जिला गाजीपुर से प्राप्त

(लखनऊ संग्रहालय)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लक्ष्मी-नारायण

(पार्श्वनाथ मन्दिर, खजुराहो)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राचीन भारतीय साहित्य और कला में लक्ष्मी

डा० रामाश्रय अवस्थी

भारतीय देवियों में लक्ष्मी का सर्वोपरि स्थान है। वे सौन्दर्य, सौभाग्य, ऐश्वर्य, वैभव और राजत्व की प्रतीक मानी गयी हैं। उनके श्री, पद्मा, कमला आदि विभिन्न नाम हैं। विभिन्न अवसरों पर भारत के कोने-कोने में उनकी पूजा होती है, किन्तु दीपावली के पावन पर्व पर उनके पूजन की परम्परा अधिक व्यापक और लोकप्रिय है।

ऋग्वेद तथा अन्य वेदों में एक देवी के रूप में श्री अथवा लक्ष्मी का उल्लेख नहीं हुआ है। श्री शब्द वहाँ अवश्य आया है, किन्तु देवी के रूप में नहीं। वेदों में हम कुछ अन्य देवियों के नामों का उल्लेख अवश्य पाते हैं, जिनकी प्रकृति परवर्ती देवी श्री—लक्ष्मी से बहुत मेल खाती है, परन्तु यह स्थापित कर पाना कठिन है कि क्या इनमें से ही पूर्णतया किसी एक ने भावी लक्ष्मी को जन्म दिया। ये देवियाँ हैं पुरन्धि, राका और सिनिवाली। पुरन्धि नाम ऋग्वेद में लगभग नौ बार समृद्धि की देवी के रूप में आया है। राका का उल्लेख वहाँ केवल दो बार एक धनी एवं सुन्दर देवी के रूप में हुआ है। सिनिवाली नामक अन्य रोचक देवी का उल्लेख भी ऋग्वेद में दो बार हुआ है, जिसे अथर्ववेद में विष्णु की पत्नी बताया गया है।

ब्राह्मण साहित्य में पहली बार देवी लक्ष्मी की विचारधारा का ठोस उल्लेख प्राप्त होता है। शतपथ ब्राह्मण का कहना है कि जब प्रजापति सब जीवों का सर्जन करते-करते थक गये तब इस स्थिति में उनसे श्री उद्भूत हुई। उनके तेज और सौन्दर्य ने देवताओं को उनके प्रति ईर्ष्यालु बना दिया। यहाँ श्री में मनुष्यों द्वारा वाञ्छित सभी प्रधान वस्तुओं के सन्निहित होने का सन्दर्भ भी प्राप्त होता है। ऋग्वेद के एक परवर्ती खिल श्रीसूक्त में देवी की उन अधिकांश विशिष्टताओं का चित्रण मिलता है, जो आगे चलकर पूर्ण विकसित देवी के साथ संयुक्त मानी गयीं। यहाँ उनका नाम लक्ष्मी मिलता है और उनके पद्म पर खड़े होने (पद्म-स्थिता) की कल्पना की गयी है। श्री-लक्ष्मी सम्बन्धी विचारधारा का और अधिक विकास महाकाव्यों में हुआ, जहाँ उन्हें विष्णु की पत्नी के रूप में माना गया। रामायण में सागर-मंथन के फलस्वरूप निकली लक्ष्मी के उस आख्यान का उल्लेख मिलता है, जिस पर अधिक बल पुराणों द्वारा दिया गया है। किन्तु महाभारत में उनके कुबेर से संयुक्त होने के भी संदर्भ मिलते हैं। यहाँ तक कि कुछ परवर्ती अवतरणों में लक्ष्मी को कुबेर की पत्नी भी बताया गया है। सम्पन्नता की देवी और धन के देवता का सैद्धान्तिक संयोजन सरलता से समझा जा सकता है। पंतजलि के महाभाष्य में लक्ष्मी एक महत्त्वपूर्ण देवी के रूप में प्रकट होती हैं।

पुराणों के समय तक आते-आते श्री-लक्ष्मी और विष्णु का सम्बन्ध पूर्णरूपेण स्थापित हो गया और श्री-लक्ष्मी अब एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण देवी बन गयीं। सागर-मंथन के फलस्वरूप उनके प्रकट होने की बात सर्वमान्य हो गयी। पुराणों के अनुसार देवों और असुरों द्वारा सागर-मंथन किये जाने पर कामधेनु, ऐरावत, अमृत आदि के साथ लक्ष्मी भी प्रकट हुई थीं। उनके प्रकट होते ही बिजली के समान चमकीली छटा से दिशाएँ जगमगा उठी थीं। उनके सौन्दर्य, औदार्य, यौवन, रूप-रंग और महिमा से सबका मन खिंच गया था। सुर, असुर और मनुष्य—सभी उन्हें पाने के लिए लालायित हो उठे थे। जिस समय वे कमल की माला लेकर सर्वगुण सम्पन्न पुरुष को वरण करने चलीं उस समय उनके मुख की शोभा अवर्णनीय हो रही थी। वे समस्त उत्तम गुणों से युक्त अविनाशी पुरुष को वरण करना चाहती थीं। भगवान् विष्णु के अतिरिक्त वह कौन पुरुष हो सकता था, जिसमें सभी मंगलमय गुण नित्य निवास करते हों? लक्ष्मी ने उन्हें वरण किया और कमलों की माला उन्हें पहना दी।

बौद्ध साहित्य भी लक्ष्मी के संदर्भों से अछूता नहीं है। इन संदर्भों में वे देवकुमारिका नाम से वर्णित हुई हैं और उनका सम्बन्ध उत्तरी और दक्षिणी दिशाओं से बताया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया है। जैन साहित्य में भी उनके संदर्भ मिलते हैं। वर्धमान महावीर की माँ त्रिशला के गर्भ में जिस रात्रि महावीर आये थे, उस रात्रि त्रिशला ने स्वप्न में इसी देवी को देखा था, जो अपने वक्ष में दीनारों (स्वर्ण-मुद्राओं) की माला पहने थीं और जिनका दो गजों द्वारा अभिषेक हो रहा था।

लक्ष्मी-प्रतिमा का विवरण विभिन्न लक्षण-ग्रन्थों में मिलता है। सामान्यतः सभी शास्त्रों में देवी दिव्यरूपा, गौरवर्णा, प्रसन्नवदना, पूर्णचन्द्रमुखा, सुयौवना, शुक्लाम्बरा तथा सर्वाभरणभूषिता वर्णित हैं। उनके द्विभुजी, चतुर्भुजी तथा कभी-कभी बहुभुजी होने का उल्लेख हुआ है। उनके दो अथवा चार हाथों में निम्नलिखित लाञ्छनों में से कोई दो अथवा चार होते हैं--पद्म, श्रीफल, अमृतघट, मातुलुंग, खेटक, शंख, कौमोदिकी आदि। सामान्यतः वे हाथ में पद्म लिये हुए (पद्महस्ता) और कमल पर बैठी अथवा खड़ी (पद्मासनासीना) वर्णित हैं। कहीं-कहीं उन्हें उलूकवाहिनी भी बताया गया है। विष्णुधर्मोत्तर पुराण में वे अष्टदल कमल से युक्त सिंहासन पर विराजमान बतायी गयी हैं। यहाँ उनके चार हाथों में सनाल कमल, अमृतघट, बिल्व और शंख होने का उल्लेख हुआ है। साथ में यह भी उल्लेख है कि उनके पीछे बने हुए दो हाथी घटों से उनका अभिषेक कर रहे हों (आवर्जितघटं कार्यं तत्पृष्ठे कुञ्जरद्वयम्)। यहाँ पर लक्ष्मी द्वारा धारण किया शंख सौभाग्य का, बिल्व सर्वलोक का, अमृत घट जल के सार का, कमल वैभव का और अभिषेक करता हस्ति-युगल शंख और पद्म नामक निधियों का प्रतीक बताया गया है।

भारतीय कला में लक्ष्मी के दर्शन सर्वप्रथम शुंग-काल (प्रथम-द्वितीय शती ईसा पूर्व) में होते हैं। साँची, भरहुत, बोधगया, अमरावती आदि की प्रारम्भिक बौद्ध कला में भद्रघट से निकले पद्म पर खड़ी अथवा बैठी एक देवी की आकृति मिलती है जो अपने एक अथवा दोनों हाथों में पद्म धारण किये हुए है। कभी-कभी दो हाथी अपनी-अपनी सूँड़ में पकड़े घटों से जल डालकर देवी का अभिषेक करते प्रदर्शित हुए हैं। फूशे जैसे कुछ विद्वान् इसे भगवान् बुद्ध की माँ मायादेवी का चित्रण मानते हैं। उनके अनुसार यह चित्रण बुद्ध-जन्म का प्रतीक है। किन्तु कुमारस्वामी जैसे विद्वानों का विचार है कि यह हिन्दू देवी लक्ष्मी का चित्रण है। लक्ष्मी का चित्रण शुंग काल की केवल बौद्धकला में ही नहीं मिलता वरन् इस काल के सिक्कों में भी इस देवी का चित्रण अत्यन्त लोकप्रिय हुआ। सिक्कों पर गजलक्ष्मी का प्राचीनतम उदाहरण कौशाम्बी के एक सिक्के में मिलता है, जिसका काल द्वितीय शती ईसा पूर्व माना जा सकता है। पहली और द्वितीय शती ईसा पूर्व के अयोध्या के कुछ राजाओं के सिक्कों में भी लक्ष्मी के दर्शन होते हैं। विशाखदेव के सिक्के पर लक्ष्मी खड़ी और शिवदत्त के सिक्के पर बैठी दिखायी पड़ती हैं। धनदेव और वायुदेव के कुछ सिक्कों में एक देवी कमल पर खड़ी दिखायी पड़ती हैं जो लक्ष्मी हो सकती हैं। शक राजा एज़ीलाइसेस के चाँदी के सिक्कों में स्थानक गजलक्ष्मी का कलात्मक अंकन तो देखते ही बनता है। एजेस प्रथम के कुछ सिक्कों में भी पद्म धारण किये हुए और पद्म पर खड़ी हुई एक देवी का चित्रण मिलता है, जिसके साथ एक सिंह भी प्रदर्शित हुआ है। ह्वाइटहैड महोदय ने इसे सर्वथा उचित ही लक्ष्मी माना है। लक्ष्मी के सिंह-वाहन की जिस परम्परा का सूत्रपात इस समय हुआ वह मध्ययुग तक चलती रही, जैसा कि हम आगे देखेंगे। मथुरा के कुछ क्षत्रपों (जैसे राजवुल और शोडास) के सिक्कों में भी गजलक्ष्मी के चित्रण मिलते हैं, लेकिन ये चित्रण एज़ीलाइसेस के सिक्कों के चित्रणों के समान स्पष्ट नहीं हैं। मथुरा के 'मित्र' राजाओं, पाञ्चाल राजाओं, कुणिद-राजाओं और यौधेय राजाओं के सिक्कों में भी इस देवी के अंकन मिलते हैं। इन चित्रणों में सामान्यतः देवी पद्म पर खड़ी अथवा बैठी प्रदर्शित हैं और उनके एक हाथ में पद्म है।

कुषाण काल (पहली से तीसरी शती ई०) में लक्ष्मी की मूर्तियाँ अधिक लोकप्रिय हो गयीं। गजलक्ष्मी रूप तो और अधिक लोकप्रिय हुआ। इस काल में मथुरा कला का महान् केन्द्र था। वहाँ ब्राह्मण धर्म के अन्य देवी देवताओं के साथ लक्ष्मी की स्वतंत्र प्रस्तर-प्रतिमाएँ निर्मित करने की परम्परा का प्रारम्भ हुआ। प्रायः वे गजलक्ष्मी रूप में दिखायी पड़ती हैं—दो गज घटों से जल डालकर देवी का अभिषेक करते प्रदर्शित हैं। कभी वे बायें हाथ में नाल-युक्त पूर्ण विकसित पद्म लिये हुए और दाहिना हाथ अभय-मुद्रा में ऊपर उठाए हुए खड़ी प्रदर्शित हैं, तो कभी बैठी। बैठी मूर्तियों में कभी-कभी अनुचरों की छोटी आकृतियाँ भी दिखायी पड़ती हैं। कभी वे कुबेर के साथ बैठी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिखायी पड़ती हैं, तो कभी कुबेर और हारिती के साथ बैठी हुई। उपर्युक्त रूपों के अतिरिक्त मथुरा में लक्ष्मी के एक अन्य रूप की प्रतिमा मिली है जो भारतीय कला में अद्वितीय है। निस्सन्देह कुषाण शिल्पी की यह उत्तम रचना है। इसमें देवी लक्ष्मी पूर्णघट से निकले कमलों पर खड़ी हैं। वे बायें हाथ द्वारा अपने दाहिने स्तन से दूध की धार निकालती हुई प्रदर्शित हैं। उनके पीछे पत्तियों, कलियों और फूलों से युक्त कमलनाल का सुन्दर चित्रण है।

गुप्तकाल (चौथी-पाँचवीं शती ई०) में लक्ष्मी का स्थान राष्ट्रीय देवी के रूप में मान्य हुआ, जैसा कि गुप्त सम्राटों के सोने के सिक्कों पर अंकित चित्रण से विदित होता है। इस काल में लक्ष्मी विष्णु की पत्नी के रूप में मान्य हो गयीं। गुप्त सम्राट् वैष्णव थे। उनके द्वारा विष्णु की पत्नी लक्ष्मी को राष्ट्रीय देवी का पद प्रदान करना स्वाभाविक ही था। इस काल की मूर्तियों, सिक्कों और मुद्राओं (मुहरों) में लक्ष्मी और गजलक्ष्मी का चित्रण खूब हुआ और विविध रूपों में हुआ। मूर्तियों में वे सामान्यतः एक अथवा दोनों हाथों में कमल लिये प्रदर्शित हुईं। गजलक्ष्मी रूप में दो गज सामान्य ढंग से उनका अभिषेक करते प्रदर्शित हुए हैं। लक्ष्मी की स्वतंत्र मूर्तियों के अतिरिक्त हम उन्हें शेषशायी विष्णु की मूर्तियों में विष्णु के चरण संवाहन (दाबते) करते हुए भी पाते हैं। देवगढ़ (जिला झाँसी) की प्रसिद्ध शेषशायी विष्णु की मूर्ति में लक्ष्मी विष्णु का दाहिना पैर अपने दोनों हाथों से दाबती हुई प्रदर्शित हैं। यह परम्परा मध्ययुग में भी अक्षुण्ण रही।

गुप्त सम्राटों के सोने के सिक्कों में लक्ष्मी का चित्रण बड़ा सामान्य है। कुछ सिक्कों (चन्द्रगुप्त प्रथम के चन्द्रगुप्त-कुमारदेवी प्रकार और चन्द्रगुप्त द्वितीय के सिंह-हन्ता प्रकार) में लक्ष्मी का विचित्र चित्रण मिलता है, जिसमें देवी हाथों में पद्म लिये हुए हैं, पर सिंह पर अ रूढ़ हैं। सामान्यतः सिंह दुर्गा का वाहन माना गया है, पर यहाँ वह लक्ष्मी के वाहन के रूप में दर्शाया गया है। लक्ष्मी के वाहन के रूप में सिंह के चित्रण का सर्वप्रथम उदाहरण हम एजेस प्रथम के सिक्कों में पाते हैं, जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। गुप्तकाल के बाद भी यह परम्परा चलती रही। मध्ययुगीन खजुराहो की कला में भी हमें सिंहवाहिनी लक्ष्मी के दो-तीन उदाहरण मिलते हैं। इससे कुछ पहले की ओसियाँ (राजस्थान) की मूर्तिकला में भी हमें सिंहवाहिनी गजलक्ष्मी के उदाहरण प्राप्त हुए हैं। साहित्य में भी हमें लक्ष्मी के सिंह-वाहन का उल्लेख मिलता है।

बसाढ़ (प्राचीन वैशाली) और भीटा (जिला इलाहाबाद) से प्राप्त गुप्तकालीन अनेक मुद्राओं (मुहरों) पर लक्ष्मी के चित्रण मिलते हैं, जिनमें कुछ तो बड़े ही रोचक हैं। बसाढ़ की कुछ मुद्राओं पर गजलक्ष्मी के दोनों ओर एक-एक अनुचर घुटनों के बल बैठा दिखाया गया है। इन अनुचरों के सामने एक-एक थैला रखा है, जिससे ये कोई वर्तुल पदार्थ निकालकर नीचे फेंक रहे हैं। ये वर्तुल पदार्थ सिक्के प्रतीत होते हैं। ब्लॉक महोदय ने इन अनुचरों को कुबेर मानने का सुझाव दिया है, जो थैले से सिक्के निकाल कर फेंक या उड़ेल रहे हैं। डॉ० जितेन्द्रनाथ बनर्जी ब्लॉक महोदय का सुझाव पूर्णतया ठीक नहीं मानते। उनका विचार है कि ये अनुचर कुबेर नहीं, वरन् कुबेर के यक्ष हैं, जो धन के रक्षक (निधिपाल) हैं। धन और समृद्धि की देवी लक्ष्मी के साथ धन के रक्षक यक्षों (निधिपालों) का चित्रण नितान्त स्वाभाविक है। इसके पीछे धारणा यह है कि ये निधिपाल उन पर धन की वर्षा करते हैं, जिन पर देवी की विशेष कृपा होती है। स्पूनर महोदय को बसाढ़ के उत्खनन में मिली एक मुद्रा पर अंकित देवी का चित्रण बड़ा रोचक है, जिसे लक्ष्मी माना जा सकता है। इसमें देवी प्रभामण्डल-युक्त हैं। उनका बायाँ हाथ कट्यवलम्बित है और दाहिना ऊपर उठा हुआ है। सम्पूर्ण मुद्रा में एक नौका बनी है, जिसके केन्द्र में स्थित एक ऊँचे आसन पर यह देवी खड़ी प्रदर्शित हैं। इनके पास में एक शंख की उपस्थित दिखलायी गयी है, जिसके आधार पर देवी को लक्ष्मी माना जा सकता है। धन-सम्पत्ति की देवी लक्ष्मी का नौका पर उपस्थित होना सर्वथा उचित है, क्योंकि देवी लक्ष्मी वाणिज्य में निवास करती हैं (वाणिज्ये वसते लक्ष्मी)। लक्ष्मी का यह चित्रण असामान्य है।

गुप्तोत्तर काल में लक्ष्मी का महत्त्व और भी बढ़ गया और उनकी प्रतिमाओं का व्यापक प्रचार हुआ। भितरी (जिला गाजीपुर, उ० प्र०) से प्राप्त छठी शती ई० की एक सुन्दर गजलक्ष्मी की प्रतिमा लखनऊ संग्रहालय में दर्शनीय है। भारत के विभिन्न भागों के मध्ययुगीन मन्दिरों में प्रदर्शित लक्ष्मी और गजलक्ष्मी की विविधता देखते ही बनती है। कभी उनके पृथक् चित्रण मिलते हैं तो कभी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लक्ष्मी-नारायण के रूप में विष्णु के साथ आलिंगन-मुद्रा में। लक्ष्मी-नारायण की मूर्तियों में देवी द्विभुजी प्रदर्शित होती हैं। उनके एक हाथ में पद्म होता है और दूसरा विष्णु के स्कन्ध पर स्थित होता है। लक्ष्मी-नारायण की सुन्दरतम मूर्तियों में से कुछ खजुराहों के मन्दिरों में उत्कीर्ण देखी जा सकती हैं। लक्ष्मी की पृथक् मूर्तियाँ अधिकांशतया गजलक्ष्मी रूप में प्रदर्शित होती हैं। ये स्थानक और आसन दोनों रूपों में मिलती हैं। स्थानक मूर्तियाँ समभंग होती हैं और आसन-मूर्तियों में देवी पद्मपीठ पर ललितासन मुद्रा में दिखायी जाती हैं। ऐसी स्थिति में वे द्विभुजी होने के साथ-साथ चतुर्भुजी भी होती हैं। उनके हाथों में पद्म, अमृतघट, श्रीफल आदि होते हैं। कभी-कभी उनके साथ अनुचर-अनुचरियाँ भी प्रदर्शित होती हैं।

मध्ययुग में सिंहवाहिनी लक्ष्मी के चित्रण की पुरानी परम्परा अधिक व्यापक हो गयी। खजुराहो, ओसियाँ आदि स्थानों के मन्दिरों में स्थानक अथवा आसन गजलक्ष्मी के पद्मपीठ के नीचे अथवा चरणों के पास एक या दो सिंह बैठे प्रदर्शित हुए हैं। ऐसी मूर्तियों में विशेष उल्लेखनीय है खजुराहो के विश्वनाथ मन्दिर की जगती की एक रथिका में प्रतिष्ठित मूर्ति। इसमें चतुर्भुजी लक्ष्मी ललितासन मुद्रा में बैठी हैं। उनका निचला दाहिना हाथ अक्षमाला-युक्त अभय-मुद्रा में है और बायाँ अमृतघट-युक्त है। दोनों ऊपरी हाथों में सनाल कमल हैं, जिनके ऊपर खड़े दो हाथी देवी का अभिषेक कर रहे हैं। देवी कुण्डल, हार, ग्रैवेयक, कंकण मेखला, नूपुर आदि आभूषणों से अलंकृत हैं। प्रतिमा के पादपीठ पर बैठा सिंह विशेष दर्शनीय है।

सामान्यतः लक्ष्मी विष्णु की पत्नी मानी गयी हैं; परन्तु कुछ शास्त्रों में वे कुबेर और गणेश की पत्नी भी बतायी गयी हैं। कुषाणकाल की मूर्तिकला में हम लक्ष्मी को कुबेर और हारिती के साथ बैठे पाते हैं। यह परम्परा मध्य-युग तक चलती रही। इस युग की कला में हम लक्ष्मी को गणेश के साथ भी बैठे पाते हैं। मथुरा से प्राप्त पूर्व मध्य-युगीन एक मूर्ति विशेष उल्लेखनीय है, जिसमें लक्ष्मी गणेश और कुबेर के बीच में बैठी प्रदर्शित हैं—दायीं ओर गणेश, बायीं ओर कुबेर और बीच में लक्ष्मी पद्मपीठ पर बैठी हैं, पद्मपीठ के दोनों ओर एक-एक घट स्थित है, जिससे सनाल पद्म निकल रहे हैं। इन्हीं पद्मों को लक्ष्मी अपने हाथों में धारण किये हैं। पद्मों के ऊपर दो गज हैं, जो घटों से देवी का अभिषेक करते प्रदर्शित हैं। कुबेर एक हाथ में चषक और दूसरे में नकुलक धारण किये हैं। आज भी दीपावली के पुनीत पर्व पर हम गणेश के साथ ही लक्ष्मी की पूजा करते हैं। मंगलकारी देवता गणेश और सम्पत्ति-वैभव की देवी लक्ष्मी का साथ स्वाभाविक ही है।

सूखी घास

श्री निशान्त

झील के किनारे
पहाड़ियों पर उगी हुई
सूखी घास ने
कहा झील के अन्दर
लहराते हुए कमल से—
"गर्व न कर, हे पंकज !
तू है सुन्दर, सरल, खिला हुआ :
और मैं हूँ शुष्क।
लेकिन याद रख
पानी यह जो तेरी जड़ों में है
वह हमारे ही पाँव धोकर गया है।
हमारी ही ऊँचाइयों ने प्रदान किया है
तुझे यह जीवन।
इसलिए हँस मत मन ही मन,
हमारे नीचे तू है
और तेरे नीचे है
कीचड़ !"

——

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्धकार से प्रकाश की ओर

श्री अनवर आगेवान

दीपोत्सव भारतीय संस्कृति का अनूठा उत्सव है। इस पर्व के दीपकों का सुनहला प्रकाश, न जाने कितने वर्षों से इस ऋतु-विशेष में अपने अनुपम आकर्षण और महिमान्वित मोहकता से पृथ्वी के इस अंचल पर जीवन और ज्योति की राशि बिखेरता चला आ रहा है। इस रात्रि की कालिमा को छिन्न-भिन्न करने का यह महा प्रयास, घोरतम तमा को आलोकित करने का यह अद्भुत प्रयत्न, प्रकृति के रहस्यात्मक आँचल को स्वर्णिम करने की यह अनूठी विद्या, जहाँ एक ओर लोकमानस की विविध कल्पनाओं और आख्यान के विविध प्रतिरूप उद्घाटित करती है, वहीं इस रात्रि विशेष की सत्ता और महत्ता के लिए आध्यात्मिक चिंतनों के भी अनेक अध्याय प्रस्तुत करती है। जो भी हो, दीवाली की रात स्नेह और सौन्दर्याकर्षण लिये हुए सामने आती है और कुछ क्षणों के लिए हमें विमुग्ध और भावविभोर कर देती है। 'तमसो मा ज्योतिर्गमय'— अन्धकार से प्रकाश की ओर उन्मुख होने का आध्यात्मिक सन्देश इन लघु-लघु दीपों की झिलमिलाती लौ में प्रकाशित देख पड़ता है।

दीपावली की रात तीन विशिष्ट रात्रियों में एक है— कालरात्रिः महारात्रिर्मोहरात्रिश्च दारुणाः। इन तीनों भयंकर रात्रियों को देवी अर्थात् शक्ति के रूप में निर्दिष्ट किया गया है। कालरात्रि यही दीपावली की रात है, महारात्रि शिवरात्रि है और मोहरात्रि है कृष्ण-जन्माष्टमी की रात। तीनों रात्रियों का अपना महत्त्व और स्वत्व है। तीनों के विभिन्न आख्यानक हैं और तीनों की अपनी भावमयी भूमिकाएँ हैं। रात्रि देवी के दो प्रकार बतलाये गये हैं—एक जीव-रात्रि और दूसरी ईश्वर-रात्रि। जीव-रात्रि तो वही है, जिसमें हमारे जागतिक जीवन का दैनन्दिन व्यवहार लुप्त होता है। ईश्वर-रात्रि वह है, जिसमें ईश्वर के जगद्रूप व्यवहार का लोप होता है। इसी ईश्वर-रात्रि को दूसरे शब्दों में काल-रात्रि अथवा महाप्रलय-रात्रि कहते हैं। उस समय केवल विराट् ब्रह्म और उसकी मायारूपिणी शक्ति शेष रहती है। देवी पुराण में शक्ति को अत्यन्त प्रकृति की संज्ञा भी दी गयी है। इस रात्रि की अधिष्ठात्री है भुवनेश्वरी—

ब्रह्ममायात्मिका रात्रिः
परमेशलयात्मिका।
तदधिष्ठातृ देवी तु
भुवनेशी प्रकीर्तिता॥

ऋग्वेद के दसवें मण्डल में रात्रिसूक्त के अन्तर्गत ऋचाएँ हैं। इनमें रात्रि देवी का स्तवन किया गया है। इस स्तवन में कहा गया है—

ओर्बग्रा अमर्त्या निवतो देव्युद्वतः।
ज्योतिषा बाधते तमः॥

अर्थात् ये देवी अमर हैं और समस्त विश्व को, नीचे प्रसारित होने वाली लता आदि को एवं ऊपर बढ़नेवाले वृक्षादि को भी व्याप्त कर स्थित हैं। इतना ही नहीं, वह ज्ञानमयी ज्योति से प्राणियों के अज्ञानरूपी अन्धकार का भी विनाश कर देती है। और

निरुस्वसारमस्कृतोषसं
देव्यायती।
अपेदु हासते तमः॥

अर्थात् परचित शक्तिरूपिणी रात्रि देवी इस भूतल पर आकर अपनी बहिन ब्रह्म विद्यामयी उषा देवी को प्रस्तुत करती है, जिसके फलस्वरूप अविद्या रूपी अन्धकार स्वयमेव नष्ट हो जाता है। और

सा नो अद्य यस्या वयं
नि ते यामन्नविक्ष्महि।
वृक्षे न वसतिं वयः॥

अर्थात् यह रात्रि देवी इस समय मुझ पर प्रसन्न हों, जिनके आने पर अपने-अपने घरों में लोग सुखपूर्वक शयन करते हैं—ठीक वैसे ही रात्रि में पक्षी अपने स्वनिर्मित नीडों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में। उस करुणामयी रात्रि के अंचल में पशु, पक्षी, पतंग आदि तथा पथिक आदि भी सुख से सोते हैं। और अन्त की ऋचाओं में ऋषि कहते हैं—

'हे रात्रिमयी चितशक्ति! तुम कृपा कर वासनामयी वृकी और पापमय वृक को हमसे दूर करो। काम आदि तस्करों को दूर हटाओ। और तत्पश्चात् हमारे लिए सुखपूर्वक व्यतीत होने के योग्य हो जाओ। हमारे लिए मोक्षदा और सुखदा हो जाओ।'

'हे ऊषा, हे रात्रि की अधिष्ठात्री देवि! यह सर्वत्र फैला हुआ अन्धकार हमें आच्छन्न किये हुए है। इसे ऋण की भाँति दूर करो—ठीक उसी प्रकार जैसे धन देकर अपने भक्तों का ऋण दूर करती हो। उसी प्रकार ज्ञान देकर अज्ञान हटाओ।'

'हे रात्रि देवि! तुम दूध देनेवाली गौ के समान हो। मैं तुम्हारे निकट आकर अपने स्तवन से स्वानुकूल बनाने का उपक्रम करता हूँ। तुम परम व्योमस्वरूप परमात्मा की दुहिता हो। तुम स्तोत्र की भाँति मेरे इस हविष्य को ग्रहण करो।'

कालरात्रि के सम्बन्ध में वेदोक्त ये सूक्त आध्यात्मिक दृष्टि से इस पर्व की प्राचीनता और महत्ता व्यक्त करते हैं। दीप-पूजन अपनी आन्तरिक उज्ज्वलता के लिए भूमिका प्रस्तुत करता है। युगों बाद भी वैदिक ऋषि के मन्त्र आज की परिस्थिति को सम्मुख रखते हुए समीचीन हैं। इसी दीप-दान के लिए कवि कहता है—

'हे त्रिपुर सुन्दरि! तुम्हारी प्रसन्नता के लिए यहाँ यह दीप प्रकाशित हो रहा है। यह घी से जलता है। इसका दीपाधार रत्नजटित स्तम्भवाला है। इसे देवांगनाओं ने निर्मित किया है। यह दीप सुवर्ण के चषक में प्रज्ज्वलित किया गया है। इसमें कर्पूर के साथ वर्त्तिका जल रही है। यह घनान्धकार का भी विनाश करनेवाला है। हे देवि! प्रसन्नतापूर्वक इसके रूप में हमारा निवेदन स्वीकार करो।' और

'हे देवि! हमारे मोहान्धकार से पूरित हृदय में हमेशा तुम उदार भाव से प्रतिष्ठित रहो और अपनी प्रसन्न तथा चिर प्रकाशित देह-द्युति से हमारे मन के अन्धकार का शीघ्र विनाश करो।'

दीपमालिका के मंगलमय अवसर पर इसी स्तुति के साथ ज्योति-स्वरूपा शक्ति से हम यही प्रार्थना करते हैं कि तुम्हारा निवास सदा इस देश में रहे, प्रत्येक नागरिक धन-धान्य से पूर्ण और सर्वविध संपन्न होकर रहे।

गान सरस कैसे हो

श्री मगन अवस्थी

मैं नीरस मेरा गान सरस कैसे हो,
विधि का रचित विधान गलत कैसे हो।
नीरसता ही जीवन की परिभाषा है,
नीरवता की फिर मुझको अभिलाषा है।
यह जीवन मधु से हीन मधुर कैसे हो,
मैं नीरस मेरा गान सरस कैसे हो॥
आँसू ही मेरे जीवन जीवन के साथी हैं,
जीवन की हर गतिविधि के ये साथी हैं।
विष पीकर अमिमय भान भला कैसे हो,
मैं नीरस मेरा गान सरस कैसे हो॥
ठोकरें हमारे जीवन के पेपर हैं,
हम बढ़ते आगे प्रश्नपत्र देकर हैं।
मिट्टी साबित आज, कनक कैसे हो,
मैं नीरस मेरा गान सरस कैसे हो॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचारों व भावनाओं का पर्व : दीपावली

श्री हुकमचन्द शर्मा

पर्वों और उत्सवों का मानव जीवन में बड़ा महत्त्व है। मनुष्य के मन पर इनका आध्यात्मिक और मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ता है। हमारे भारतवर्ष में प्रायः ऋतु के आगमन अथवा समापन के समय किसी न किसी रूप में पर्वोत्सव मनाने की परम्परा प्राचीनकाल से ही चली आ रही है। इन पर्वोत्सवों में प्रत्येक जाति अथवा वर्ग के लोग भाग लेते हैं।

हमारे पूर्वजों ने जिस प्रकार मानव जाति को मुख्यतः चार वर्णों में विभक्त किया था उसी प्रकार उन्होंने प्रत्येक वर्ण के लिए वर्ष में मुख्य रूप से एक-एक पर्वोत्सव मनाने की व्यवस्था भी की थी। इन पर्वों में श्रावणी (रक्षा-बन्धन), दशहरा, दीवाली और होली प्रमुख हैं।

श्रावणी के दिन शास्त्रोक्त विधियों के अनुसार उपाकर्म करने की व्यवस्था है। दशहरा के अवसर पर शस्त्रों की पूजा और वीरता का प्रदर्शन करने का प्रचलन है। इसी तरह दीपावली में धन-सम्पत्ति की अधिष्ठात्री देवी लक्ष्मी की पूजा और होली के अवसर पर रंग-गुलाल खेलने तथा एक-दूसरे से प्रेमपूर्वक मिलने की परम्परा प्राचीन काल से चली आ रही है। लेकिन आधुनिक युग में उक्त वर्गीकरण ने गौण रूप धारण कर लिया है और अब प्रायः सभी पर्वों में समस्त जातियों के लोग बड़े ही उत्साह एवं सौहार्दपूर्वक भाग लेते हैं।

इस समता के युग में पर्वोत्सव में समान रूप से भाग लेने की भावना निर्विवाद रूप से श्रेयस्कर है। इससे आपसी भेदभाव दूर होते हैं और व्यक्ति एक-दूसरे के सम्पर्क में आकर भावनात्मक एकता की भावना का पोषण करता है। सम्पर्क में आने से ही व्यक्ति दूसरे के सौहार्द और स्नेह का पात्र बनता है, उसमें संगठन की भावना प्रबल होती है और वह परस्पर एक-दूसरे के सुख-दुख में हाथ बटाता है। इसीलिए हमारे संविधान में प्रत्येक सामाजिक प्राणी के समान अधिकार तथा कर्तव्य की व्यवस्था की गयी है। ऐसी विचारधारा समता तथा परस्परावलम्बन की भावनाओं को प्रेरित करती है। इसमें न केवल अपने देश अथवा समाज का, अपितु सम्पूर्ण मानव जाति का कल्याण निहित है। ऐसी भावना ही 'वसुधैव कुटुम्बकम्' को चरितार्थ करने में समर्थ हो सकती है। ऐसे पोषक तत्त्वों में हमारे पर्वों का बहुत बड़ा हाथ है।

दीवाली का पर्व सम्पत्तिदायिनी महालक्ष्मी की पूजा का पर्व है। इस पर्व के मनाने का क्रम यों तो कार्तिक कृष्णपक्ष की त्रयोदशी से लेकर कार्तिक शुक्लपक्ष की द्वितीया तक प्रायः चलता है, किन्तु त्रयोदशी से अमावस्या तक इस पर्व को मनाने का विशेष महत्त्व है। उक्त तीनों तिथियाँ क्रमशः धन-त्रयोदशी, नरक-चतुर्दशी और लक्ष्मी पूजा के नाम से विख्यात हैं। इन पर्वों की प्राचीनता का प्रमाण पौराणिक युग से ही मिलता है। यद्यपि इन तीनों तिथियों में दीपोत्सव मनाने की परम्परा है तथापि अन्तर्कथाओं के आधार पर उक्त पर्वों का पृथक्-पृथक् महत्त्व भी है।

धन-त्रयोदशी के दिन कोई न कोई पात्र अथवा आभूषण आदि खरीदा जाता है। लोग सायंकाल लक्ष्मी तथा गणेश की पूजा करते हैं और अपने-अपने घरों में दीपमालिका सजाते हैं। वैसे इस सम्बन्ध में एक पौराणिक कथा भी मिलती है। कहते हैं कि एक बार यमराज के पूछने पर उनके दूतों ने कहा—महाराज, असामयिक मृत्यु के कारण जब हम किसी प्राणी का जीवहरण करते हैं तब बड़ी ही करुणाजनक स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इससे हमें बहुत दुःख होता है, लेकिन परतन्त्र होने के कारण हम लोगों को आपके आदेशों का पालन करना ही पड़ता है। इसलिए आप कोई ऐसी युक्ति बतलाइये जिससे प्राणी असामयिक मृत्यु के इस दुःसह बन्धन से मुक्त हो सके।

दूतों की इस प्रार्थना पर यमराज ने प्रसन्न होकर कहा कि धन-त्रयोदशी के दिन जो व्यक्ति दीपदानादि कर्म का नियमपूर्वक पालन करेंगे, उन्हें असामयिक मृत्यु का भय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं रहेगा। अतः इसी आधार पर धन-त्रयोदशी का पर्व प्राचीनकाल से चला आ रहा है।

बहुत से लोग नरक-चतुर्दशी को छोटी दीवाली भी कहते हैं। इस दिन दीपोत्सव आदि की वही क्रिया होती है जो दीपावली को होती है। लेकिन इस सम्बन्ध में श्रीमद्-भागवत में नरक नामक असुर की कथा मिलती है। भगवान् श्रीकृष्ण ने कार्तिक कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को ही उस असुर का संहार किया था। इस राक्षस से मानव जाति को अनेक प्रकार की पीड़ाएँ और दुःख सहने पड़े। अतः इसकी मृत्यु से नरक-चतुर्दशी कहलायी और इसी उपलक्ष्य में नरक-चतुर्दशी महोत्सव मनाया जाता है।

पुराणों में भी एक कथा इस सम्बन्ध में मिलती है। इन तीन दिनों में राजा बलि का राज्य माना जाता है, क्योंकि वामन भगवान् ने बलि के सम्पूर्ण साम्राज्य को इन्हीं तीन दिनों में नापा था। उसकी सारी पृथ्वी प्राप्त कर लेने के बाद भगवान् उस पर बहुत प्रसन्न हुए और उसके द्वारा वर माँगने पर भगवान् ने उसे वरदान दिया कि कार्तिक कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को जो व्यक्ति दीपदान करेंगे, वे यमराज की पीड़ा से मुक्त हो जायँगे। इन तीन दिनों में दीपावली महोत्सव मनानेवाले पर लक्ष्मी प्रसन्न होती हैं और उसकी सभी आशाओं-आकांक्षाओं को पूर्ण करती हैं।

इसके बाद लक्ष्मीपूजा का मुख्य पर्व कार्तिक अमावस्या (दीपावली) आती है। इसी दिन भगवान् विष्णु ने लक्ष्मी सहित समस्त देवी-देवताओं को बलि के बन्दीगृह से मुक्त किया था। इसी उपलक्ष्य में कार्तिक अमावस्या को दीपोत्सव मनाने का उल्लेख पुराणों में आया है।

इन पौराणिक कथाओं के अतिरिक्त लौकिक दृष्टि से भी इस महोत्सव का महत्त्व बहुत अधिक है। इस दिन गृहणियाँ विधिवत् सफाई-रँगाई आदि कराकर अपने-अपने घरों को स्वच्छ और सुन्दर बना देती हैं। लोग प्रातःकाल अपने नित्यकर्म से निवृत्त होकर स्नान और पूजा आदि करते हैं। शाम को लक्ष्मी तथा गणेश का पूजन होता है और सारे घर को दीपों से सजाया जाता है। ऐसा करने से लक्ष्मी प्रसन्न होकर धन-धान्य से सम्पन्न बनायेंगी—ऐसा विश्वास होता है। इस तरह यह पर्व धार्मिक तथा लौकिक दोनों दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण माना जाता है। इस अवसर पर हम जो सत्कार्य अथवा सदाचरण करते हैं वह हमारी भावनाओं को विशुद्ध एवं परिष्कृत करके हमारे पारलौकिक जीवन के लिए मार्ग प्रशस्त करता है।

अश्रु

श्री प्रवीण शाह

अश्रु देखे, किन्तु क्या हम जान पाये अश्रु का इतिहास ?
जान पाये आँसुओं की वेदना क्या अश्रु का उल्लास ?
अरे ! इस नन्हें नयन में भरे हैं सातों समुन्दर
प्रीति की बारहखड़ी के अश्रु हैं सुस्पष्ट अक्षर
हर्ष में ये उमगते हैं
शोक में ये उमड़ते हैं
और जब होता हृदय में प्रेम का अतिरेक
तभी चेहरे का करें ये द्रुत सजल अभिषेक
कभी अपने ही लिए
औ' कभी औरों के लिए
कभी भय से
कभी नय से
वेदना या बेबसी से
किया करते हैं समन्वय रुदन का जीवन-मरण से
है छिपा इनमें मनुज का क्लेश औ' उल्लास।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गणेश : शिल्प और शिल्पशास्त्रों में

श्री मारुति

पाँच प्रमुख हिन्दू सम्प्रदायों में, गणेश या गणपति के उपासकों के गाणपत्य सम्प्रदाय का भी अपना स्थान है। यह सत्य है कि इस सम्प्रदाय का विकास अपेक्षाकृत बाद में हुआ है, किन्तु गणपति की उपासना का सूत्रपात बहुत पहले हुआ प्रतीत होता है। गणेश को अन्य कई नामों से भी संबोधित किया जाता है। यथा गजानन, विघ्नेश्वर, लम्बोदर, गणेश्वर, शूर्पकर्ण, एकदन्त आदि।

गणपति शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग ऋग्वेद के एक मंत्र में प्राप्त होता है—

गणानां त्वा गणपतिं हवामहे
कविं कवीनामुपमश्रवस्तमम्।
ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत
आ नः शृण्वन्नूतिभिः सीदसादनम्। (ऋ० २. २३. १)

इस मंत्र की द्वितीय पंक्ति में स्पष्ट रूप से ब्रह्मणस्पति को सम्बोधित किया गया है। अतएव प्रथम पंक्ति गणपति का शब्द इन्हींके लिए प्रयुक्त हुआ है। ब्रह्मणस्पति का अर्थ है ब्रह्मों का स्वामी—वृहस्पति; और इसी आधार पर बुद्धि व ज्ञान के देवता वृहस्पति से भी गणेश को सम्बद्ध किया गया है। परवर्ती युगों में क्रमशः हिन्दू धर्म में इस देवता की महत्ता बढ़ने लगी और सम्प्रति हर शुभ कार्य के पूर्व इस देवता की आराधना आवश्यक हो गयी है। ऐसी धारणा है कि इनकी पूजा से व्यक्ति ऐश्वर्यवान होता है। गणेश की पूजा किन्हीं रूपों में अन्य सम्प्रदायों, यथा, बौद्ध व जैन में भी प्रचलित थी। विनायक पूजा की परम्परा बहुत प्राचीन होते हुए भी अम्बिकासुत गणपति विनायक का आविर्भाव बहुत बाद में होता है।

गणेश की महत्ता पाँचवीं शती ईसवी से पूर्व अज्ञात है। इसी समय उन्हें एक धार्मिक देवता के रूप में स्वीकार किया गया, जो कालान्तर में अन्य देवों से भी अधिक महत्त्वपूर्ण हो गये। भण्डारकर के अनुसार गाणपत्य सम्प्रदाय का प्रचलन पाँचवीं और आठवीं शतियों के मध्य हुआ था। उनका यह निष्कर्ष इस तथ्य पर आधारित है कि गुप्तकालीन किसी भी अभिलेख में गणेश या उनके उपासकों का उल्लेख नहीं हुआ है और सर्वप्रथम आठवीं शती ई० के उत्तरार्ध के एलोरा की दो गुफाओं में काल, काली तथा सप्तमातृकाओं के साथ गणपति का अंकन उपलब्ध हुआ है। मध्यकाल में आकर गणेश के नाम पर ही एक स्वतंत्र गाणपत्य सम्प्रदाय का प्रादुर्भाव हुआ, जो गणेश को ही सर्वोच्च स्थान देता था। कालान्तर में इसी सम्प्रदाय की छह शाखायें विकसित हुईं। ये सम्प्रदाय अलग-अलग रूपों में गणेश की पूजा करते थे। यथा—महा, हरिद्रा, सवर्ण, शान्तुन, नवनीत, उन्मत्त उच्छिष्ट गणपति आदि।

गणेश की उत्पत्ति अपने आपमें काफी उलझी हुई है। कभी तो इन्हें तोट्म सम्प्रदाय से संबंद्ध बताया गया है, और कभी रात्रि का देवता। इनके स्वरूप के आधार पर इनको यक्षों से भी उद्भूत माना गया है। डा० वासुदेव शरण अग्रवाल के मत के अनुसार पहले गणपति की मूर्ति यक्ष रूप में बनी जान पड़ती है। कुमारस्वामी ने भी गणेश को एक प्रकार का यक्ष ही बतलाया है। यक्ष रूप में गजानन यक्ष का प्राचीनतम अंकन अमरावती में देखा जा सकता है। इस प्रकार निःसंदेह हम यह प्रतिपादित कर सकते हैं कि गणेश की उत्पत्ति विभिन्न देवताओं (शिव, नाग, यक्ष, वृहस्पति) के समन्वय का परिणाम है।

बाह्य रूप से देखने पर ऐसा प्रतीत होता है कि गणेश प्रतिमा के निर्माण के समय कलाकारों में यक्ष व नागों की प्रतिमाओं के अनुरूप ही गणेश के भारी भरकम स्वरूप की कल्पना की। इसके अतिरिक्त इसकी कुछ विशिष्टताएँ शिव की प्रतिमाओं से भी गृहीत हैं, और गेट्टी भी शिव के एक विशेष स्वरूप भैरव के बहुत से गुणों का समावेश गणेश मूर्तियों में बतलाते हैं। प्रतिमाशास्त्रीय ग्रंथों के अनुसार गणेश-प्रतिमा की सामान्य विशेषताएँ इस प्रकार हैं :—

गणेश गजमुख, लम्बोदर, सर्पयज्ञोपवीतधारी, एकदंत विशालतुण्ड और विस्तृत कर्ण होंगे। इनको २, ४, ६, ८, १०, १२ या १६ हाथ हो सकते हैं, किन्तु सामान्यतया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्हें चार हाथोंवाला ही प्रदर्शित किया जाता है। जिनमें उनके हाथों में त्रिशूल, अक्षमाला, परशु, स्वदन्त, कमल और मोदक से भरा पात्र, जिसे वे अपनी सूँड़ से स्पर्श करते हुए होंगे, आदि ही प्रदर्शित किये जाते हैं। गणेश अन्य सामान्य आभूषणों के अतिरिक्त किरीट अथवा करण्डमुकुट से अलंकृत होंगे। यदा-कदा उनके त्रिनेत्र तथा पत्नियों, रिद्धि और बुद्धि से युक्त होने का भी उल्लेख प्राप्त होता है। उनके वाहन के रूप में मूषक का उल्लेख प्राप्त होता है, जिस पर या तो वे आसीन होंगे या नृत्य करते हुए। यदा-कदा मूषक उनके समीप भी अंकित किया जा सकता है। किन्हीं स्थानों पर सिंह का भी उनके वाहन के रूप में उल्लेख प्राप्त होता है। उपर्युक्त विवरण विष्णु-धर्मोत्तर पुराण, मत्स्य-पुराण, अग्निपुराण, रूपमंडन, अंशुमद्भेदागम, उत्तरकामिकागम, सुप्रभेदागम और शिल्परत्न के वर्णनों पर आधारित है।

गणेश के गजमुख और एकदन्त होने के संबंध में विभिन्न कहानियाँ ग्रंथों में उपलब्ध हैं, जिनका संक्षिप्त अध्ययन समीचीन होगा। शिवपुराण के अनुसार एक समय पार्वती स्नानगृह में जाने के पूर्व घर के द्वार पर अपने शरीर की मैल से एक पुतला बनाकर बैठा गईं और उसे किसीको भी अन्दर न आने देने का आदेश दे गयीं। वे स्वयं गणेश थे। फलतः गणेश ने स्वयं शंकर को भी अन्दर न जाने दिया। दोनों के मध्य हुए युद्ध में अन्ततः शिव ने क्रोधित होकर उनका सिर काट दिया। इस पर पार्वती के क्रोधित होने पर शिव को एक दाँत वाले हाथी का सर काटकर गणेश को पुनर्जीवित करना पड़ा। इस प्रकार गणेश गजवदन और एकदन्त हुए। स्कन्द, वाराह और मत्स्य पुराणों के अनुसार एक बार देवताओं ने शिव से याचना की कि बुरे कार्यों में विघ्न उपस्थित किया जाना चाहिये जिससे इस बात का आभास हो कि यह कार्य बुरा है। इसी कार्य के हेतु शिव ने एक अत्यधिक सुन्दर बालक की संरचना की, जिसे पार्वती ने आक्रोश में आकर गजमुख व लम्बोदर होने का शाप दे दिया। ब्रह्मवैवर्तपुराण के अनुसार एक बार जिस समय गणेश कैलाश पर्वत पर शिव-पार्वती के अन्तःपुर के द्वार पर प्रहरी के रूप में खड़े थे उसी समय परशुराम ने गणेश द्वारा अन्दर जाने से रोके जाने पर क्रोधित होकर उन पर पाशुपत अस्त्र का प्रयोग कर दिया। गणेश को ज्ञात था कि यह शस्त्र स्वयं उनके पिता का है। अतः समर्थ होने पर भी उसका विरोध न करके अस्त्र के प्रहार को अपने एक दंत पर रोक लिया। फलतः उनका वह दंत टूट गया और कालान्तर में इसी कारण उनको एकदंत नाम से संबोधित किया गया। दक्षिण भारतीय किंवदंति के अनुसार गणेश का युद्ध एक बार गजमुख असुर से हुआ, जिसमें राक्षस पराजित तो हुआ, किन्तु युद्ध में गणेश का दाहिना दंत टूट गया और वह राक्षस मूषक के रूप में गणेश का वाहन बन गया।

उपर्युक्त कथानकों और प्रतिमाशास्त्रीय उल्लेखों के आधार पर गणेश को विभिन्न युगों में मूर्तिगत किया गया। भारतीय कला में प्राप्त प्रथम उदाहरण में गणेश को गज-मस्तक और शेष शरीर मानव रूप में अंकित किया गया है। यह उदाहरण अमरावती स्तूप (दक्षिण भारत) से प्राप्त होता है। उसमें अंकित ठिगनी आकृति के न तो शुण्ड है और न हस्तिदंत ही। इसे विद्वानों ने गजानन यक्ष का चित्रण माना है, जो गणेश मूर्ति का पूर्व रूप प्रतीत होता है। इसी प्रकार की दूसरी मूर्ति श्रीलंका के मिहिनतले स्तूप से प्राप्त होती है। उसमें गणेश के दोनों पार्श्वों में उपासक रूप में गणों का अंकन, बायीं ओर मुड़ी शुण्ड और दाहिनी ओर हस्तिदंत का प्रदर्शन इसकी अपनी विशेषता है। डा० पर्णम्बतान के मतानुसार इस गणेश-मूर्ति ने भविष्य की गणेश मूर्तियों के लिए दिशा प्रस्तुत की। कुषाणकालीन पाँच गज-मस्तकों से युक्त एक मूर्ति मथुरा से प्राप्त होती है, जिसकी तिथि दूसरी शताब्दी ई० है। दूसरी शताब्दी की ही एक अन्य मूर्ति भी मथुरा से प्राप्त होती है। उसमें नग्न रूप में खड़े गणेश को लम्बोदर और नागयज्ञोपवीत धारण किये हुए अंकित किया गया है। इसमें द्विभुज गणेश शुण्ड उठाकर बायें हाथ में धारण किये मोदक-पात्र को स्पर्श करते हुए अंकित हैं और दाहिने हाथ की वस्तु अस्पष्ट है। यह मूर्ति विकसित गणेश मूर्तियों के अत्यधिक निकट जान पड़ती है और कालान्तर में इसी में विभिन्न प्रतिमाशास्त्रीय विशेषताएँ जुड़ती चली गयीं। भूमरा से प्राप्त गुप्तकालीन उदाहरण में द्विभुज गणेश एक अलंकृत आसन पर आसीन प्रदर्शित किये गये हैं। उनकी दाहिनी भुजा भग्न है और बायीं मोदक-पात्र लिये हुए है। इस प्रतिमा का शुण्ड भग्न हो चुका है, किन्तु ऐसा लगता है कि वह मोदक-पात्र की ओर घूमा रहा होगा। इस प्रतिमा की विशिष्टता है नाग-यज्ञोपवीत के स्थान पर घण्ट-यज्ञो-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वीत का प्रदर्शन। इसके आधार पर डा० कुमारस्वामी इसे यक्ष मूर्ति बताया, जैसा तिब्बती लोककथाओं प्राप्त होता है। पर उनका यह अभिमत तर्कयुक्त नहीं ीत होता है, क्योंकि ग्रंथों में गणेश के मात्र यज्ञोपवीत हने हुए होने का उल्लेख प्राप्त होता है, इसका नहीं कि वह स चीज का बना हुआ होगा। उदयगिरि की गुफा नं० से भी द्विभुज गणेश की एक आसीन मूर्ति प्राप्त होती है, समें अन्य उपर्युक्त विशेषताओं के साथ ही उनको नग्न कित किया गया है। भीतरगाँव के एक मंदिर से चार जाओंवाली गुप्तकालीन एक मृण्यमूर्ति प्राप्त होती है। समें गजानन को उड़ते हुए गण के रूप में अंकित किया या है जो शुण्ड से समक्ष के बायें हाथ के मोदक पात्र को र्श करते हुए हैं। इस प्रतिमा की ठीक बगल में एक ड्डायमान मानव-आकृति का अंकन हुआ है, जिसे विद्वानों कार्तिकेय का अंकन बतलाया। (झाँसी के पास) देवगढ़ दिर से प्राप्त गुप्त कालीन गणेश मूर्ति में सम्पूर्ण रूप में त्व का आरोप कराया गया है। वहाँ अनन्तशायी विष्णु र्ति के पास प्रदर्शित अनेक देवताओं के साथ ही गणेश का अंकन भी खड़े रूप में किया गया है। स्वतंत्र मूर्तियों के अतिरिक्त गुप्तकालीन मूर्तियों में इनको अपनी शक्ति के साथ भी अंकित किया गया है। ऐसा ही एक उदाहरण भूमरा (छठीं सदी ईसवी) से प्राप्त होता है, जहाँ शक्ति मोदक पात्र लिये हुए गणेश के बायें जंघे पर आसीन है, जिसे चतुर्भुज गणेश आलिंगित कर रहे हैं।

उत्तर भारत से प्राप्त मूर्तियों के अतिरिक्त दक्षिण भारत से भी गणेश की अनेक मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं उनमें तंजौर से प्राप्त तीसरी-चौथी सदी ईसवी की गणेश की एक मूर्ति में द्विभुज गणेश का अंकन किया गया है, जिसकी अन्य सभी विशेषतायें पूर्ववत हैं। एक अन्य प्रारम्भिक पल्लव-कालीन मूर्ति में द्विभुज गणेश को कमलासीन दिखाया गया है और साथ ही उसमें अन्य देवी-देवताओं को भी चित्रित किया गया है। पल्लवकालीन मडुगुल (गुंटूर जिला) से प्राप्त मूर्ति में द्विभुज गणेश को शिव परिवार के साथ अंकित किया गया है। गुप्तकाल के बाद गणेश की मूर्तियों का निर्माण अधिक संख्या में होने लगा और उनमें नवीन मान्यताओं की स्थापना की जाने लगी। ऐसी मूर्तियाँ लगभग सभी क्षेत्रों से प्राप्त होती हैं।

सामान्य गणेश मूर्तियों के उपर्युक्त विवरण के अतिरिक्त विभिन्न प्रतिमाशास्त्रीय ग्रंथों में उनकी मूर्तियों के अनेक प्रकारों का उल्लेख प्राप्त होता है। यथा—बाल-गणपति, तरुण, प्रसन्न, वीर-विघ्नेश, पिंगल, बीज, हेरम्ब, वक्रतुण्ड, उच्छिष्ट, हरिद्रा गणपति, लक्ष्मी गणेश, भुवनेश गणपति, नृत्य गणपति, शक्ति गणेश, ध्वज गणपति आदि। भारतीय शिल्प में इनमें से कुछ ही रूपों को मूर्तिगत किया गया। जैसे, पाँच मस्तकों से युक्त हेरम्ब गणपति, जिनके १० या ८ हाथ हो सकते हैं और जिनमें मोदक-पात्र, दन्त, कुठार, अक्षमाला, पाश, गदा, अंकुश, कपाल, बाण आदि हो सकते हैं। वाहन रूप में मूषक या सिंह का अंकन किया जायेगा। इस मूर्ति में गणेश को सदैव अपनी शक्ति के साथ प्रदर्शित किया जायेगा। हेरम्ब गणपति के उदाहरण बंगाल, नागपत्तन आदि स्थानों से प्राप्त होते हैं। गणेश का दूसरा प्रचलित स्वरूप नृत्य गणपति है, जिसमें ८ हाथों वाले गणेश को नृत्य मुद्रा में उत्कीर्ण किया जाना चाहिए। नृत्य मूर्ति के उदाहरण भारत के सभी क्षेत्रों से प्राप्य हैं, पर उत्तर-पूर्व भारत इस संबंध में ज्यादा समृद्ध प्रतीत होता है। गणेश के तीसरे प्रचलित प्रकार के अंतर्गत शक्ति गणेश की मूर्ति आती है, जिसमें गणेश को अपनी शक्ति के साथ अंकित किया जाता है।

इन मूर्तियों के अतिरिक्त शिव परिवार के साथ भी गणेश को भारतीय शिल्प में (एलोरा, मुडुगुल) बहुतायत से अंकित किया गया है। स्वयं शिव के नटराज या त्रिपुरान्तक स्वरूप के साथ भी गणेश को अंकित करने की परम्परा भी प्रचलित थी। पार्वती की स्वतंत्र मूर्तियों (बंगाल से प्राप्त), सूर्यमूर्ति के साथ (सोनारंग की मूर्ति) और सप्तमातृकाओं के साथ भी गणेश का अंकन किया गया है।

भारतवर्ष के बाहर भी गणेश मूर्तियों की प्राप्ति इस बात का संकेत करती है कि उन स्थानों पर गाणपत्य सम्प्रदाय प्रचलित रहा होगा। नेपाल, चीन, तुर्किस्तान, जावा, बोर्नियो, स्याम, जापान आदि से गजमस्तक से युक्त गणेश मूर्तियों के अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं। इन उदाहरणों में सामान्यतया गणेश को अपनी शक्ति के साथ ही अंकित किया गया है, जिसमें देवी पूर्ण मानव रूप में होती है। भारतवर्ष के बाहर इनकी मूर्तियों और उपासना के सम्प्रदाय के प्रचलन का श्रेय बौद्धधर्म को दिया जाना चाहिए जिसमें शक्ति गणेश को अपनाया गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या गणेश अवैदिक देवता हैं ?

श्री ओम्प्रकाश पाण्डेय

हिन्दू देवताओं की कोटि में गणेशजी का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। सातवलेकरजी ने उन्हें भूटान (भूतस्थान) का राजकुमार सिद्ध किया है। एलिस गेटी, वेवर्ली निकल्स और डॉ० सम्पूर्णानन्द ने उन्हें अवैदिक, अनार्य और अर्वाचीन देवता बताया है। इन तीनों विद्वानों के अनुसार वैदिक देव-सूची में उनका नाम नहीं मिलता; वे यज्ञभाग के अधिकारी भी नहीं हैं। आर्य देवों के मध्य इस देवता का संक्रमण अनार्यों से हुआ। धीरे-धीरे यह आर्यों के अपने देवता बन गये; इनके नाम पर कुछ मंत्र रचे गये या वेदों में खोजबीन कर कुछ मंत्र इन्हें दिये गये। 'गणपति उपनिषद्' या 'गाणपत्यथर्वशीर्षोपनिषद्' नाम से एक उपनिषद् की भी रचना हुई।

विचार करने पर ज्ञात होता है कि यह मत भ्रान्त है। गणेश के व्यक्तित्व के मूलविन्दु निस्सन्देह वैदिक ही हैं। संहिता और ब्राह्मण दोनों ही वेदभागों में वे दानादि-गुणयुक्त, दीपन-द्योतनशील देवता के रूप में अर्चित-वन्दित हैं। अपनी बहुविध विशेषताओं के कारण 'गणपति' (गणेश) वैदिक देव-परिवार में सदैव विशिष्ट स्थान के अधिकारी रहे हैं। गणेश के अनेक नामों में 'गणपति', 'वक्रतुण्ड' और 'एकदन्त' प्रमुख रहे हैं। शुक्ल यजुर्वेद, ऋग्वेद, ऐतरेयब्राह्मण और तैत्तिरीय आरण्यक में ये तीनों नाम आये हैं। इनमें सर्वाधिक आवृत्ति 'गणपति' की हुई है।

कतिपय गवेषकों का विचार है कि ऋग्वैदिक बृहस्पति ही विकास-काल में गणपति के रूप में स्वीकार कर लिए गये। ऋग्वेद की निम्नाङ्कित ऋचा में बृहस्पति के लिए 'गणपति' नाम का प्रयोग हुआ है—

गणानां त्वा गणपतिं हवामहे
कविं कवीनामुपमश्रवस्तमम्।
ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत
आ नः शृण्वन्नूतिभिः सीद सादनम्॥

(ऋ० सं० २.२३.१।)

—हे बृहस्पति देव, आप अन्न एवं विराट् कर्म के पालक हैं; देवादिगणों के स्वामी हैं; कवियों के मध्य क्रान्त-दर्शी हैं, प्रभूत मंत्र और अपरिसीम अन्न के स्वामी हैं। अपने इस यज्ञकर्म में हम आपका आह्वान करते हैं। हमारी स्तुतियाँ सुनकर आप रक्षा-साधनों से सन्नद्ध होकर आइए और यज्ञशाला में सहर्ष विराजिए।

दशम मण्डल के एक मंत्र से ज्ञात होता है कि इन्द्र के लिए भी 'गणपति' नाम का प्रयोग होता था—

निषुसीद गणपते गणेषु।
महामर्कं मघवञ्चित्रमर्च॥

(ऋ० सं० १०.११२.९)

प्रतीत होता है कि 'गणपति' पद-विशेष था जिस पर क्रमशः कई देव आसीन हुए। शुक्लयजुर्वेद में 'गणपति' का बहुवचनान्त प्रयोग भी एक स्थल पर मिलता है। उससे भी इसकी पुष्टि होती है। प्रारम्भ में, जब द्वितीय मण्डल का संकलन हो रहा था, बृहस्पति 'गणपति' पद पर अधिष्ठित थे और बाद में सम्भवतः कुछ समय के लिए इन्द्र स्वयं 'गणपति' बन गये। शुक्ल यजुर्वेद के अनुशीलन से विदित होता है कि यह स्थिति अधिक दीर्घकालीन नहीं रही—बृहस्पति पुनः इस महत्त्वपूर्ण पद पर आरूढ़ हुए। यजुर्वेद में जिन तीन स्थलों पर 'गणपति' पद आया है वे क्रमशः ये हैं—

(१) **नमो गणेभ्यो गणपतिभ्यश्च वो नमः।**

(यजुर्वेद १६.२५)

भाष्यकार उवट और महीधर के अनुसार यह मंत्र बृहस्पति को सम्बोधित है। अन्य विद्वान् इसका देवता रुद्रों को मानते हैं। हमारे विचार से इसमें प्रारम्भ से तब तक हुए समग्र गणपतियों को नमस्कार अर्पित किया गया है।

(२) **गणानां त्वा गणपतिं हवामहे**
प्रियाणां त्वा प्रियपतिं हवामहे।
निधीनां त्वा निधिपतिं हवामहे वसोमम।
आहमजानि गर्भधमा त्वमजासि गर्भधम्॥

(यजुर्वेद २३.१९)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

—हे गणों के गणपति, पालक, गण स्वामी, हम तुम्हारा आह्वान करते हैं। प्रियजनों में श्रेष्ठ, उनका पालन करनेवाले, हम तुम्हें बुलाते हैं। निधिनाथ, वसु-स्वरूप, आओ, तुम हमारे गर्भगृहों को धारण करो।

कुछ विद्वानों के अनुसार गणपति स्वयं इसके देवता हैं, जब कि उवट और महीधर ने इसे अश्वदेवत्य मानकर अश्वमेध यज्ञ से सम्बद्ध किया है। उनके कथनानुसार अश्वमेध यज्ञ में यजमान-पत्नी राजमहिषी मरे हुए घोड़े की परिक्रमा करके उसके समीप लेट जाती है और उक्त मंत्र का पाठ करती है। इसका आशय यों है : उक्त विशेषणों से विभूषित हे अश्व देव, तुम हमारे पति हो। गर्भधारण करनेवाले रेत (वीर्य) को मैं खींचकर छोड़ती हूँ, तुम भी गर्भ धारण करनेवाले वीर्य को खींचकर छोड़ो।

कात्यायन श्रौतसूत्र के बीसवें अध्याय में अश्वमेध की विस्तृत विधि बतायी गयी है। प्राचीन भारत में वेदार्थ करनेवाले कई सम्प्रदाय थे। यथा—नैरुक्त, याज्ञिक, आध्यात्मिक आदि। याज्ञिक सम्प्रदाय की दृष्टि से उक्त विनियोग और अर्थ की चाहे जो उपयोगिता रही हो, किन्तु वह सर्वत्र ग्राह्य नहीं है। प्रकृत प्रसंग में भी कात्यायन श्रौतसूत्र को प्रमाण कोटि में रखने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि वेद स्वतः प्रमाण है। इसीलिए अपनी 'ऋग्वेदादि-भाष्यभूमिका' और 'यजुर्वेद-भाष्य' में महर्षि दयानन्द ने इसका सप्रमाण विस्तार से खण्डन किया है।

सुदीर्घकाल से परम्परा इसे गणपति से ही सम्बद्ध मानती आयी है। यास्क का कथन है कि मंत्र का विचार परम्परागत अर्थ के श्रवण और तर्क से ही करना चाहिए—

अयं मन्त्रार्थचिन्ताभ्यूहोऽभ्यूढोऽपि श्रुतितोऽपि तर्कतः।'

समग्र भारत में नित्यप्रति होनेवाले अनुष्ठानों में पुरोहितगण इस मंत्र का पाठ गणपति की ही भावना से करते हैं। अतः निष्कर्ष यह है कि परम्परा और प्रयोग दोनों ही इसे 'गणपति' से संयुक्त करते हैं।

(३) प्रतूर्वन्नेह्यक्रामन्नशस्ती
रुद्रस्य गाणपत्यं मयोभूरेहि।
उर्वन्तरिक्षं वीहि स्वस्तिगव्यूति-
रभया निकृण्वन्पूषणा सयुजा सह ॥
(यजुर्वेद ११.१५)

उवट और महीधर ने मंत्र की आधी पंक्तियों को अश्व से और शेष को गधे से सम्बद्ध बताया है। हमारे विचार से इसे घोड़े-गधे से संयुक्त करने की कोई आवश्यकता नहीं। अन्य वैदिकों ने भी इसे गणपति देवता से ही सम्बद्ध किया है। मंत्र का सामान्य अर्थ है : हे गणपति, तुम यहाँ आओ, तुम्हें रुद्रों का गणपतित्व प्राप्त होगा।

'गणपति' को स्पष्ट करते हुए सायणाचार्य का कथन है—'देवादिगणानां सम्बन्धि'—अर्थात् विभिन्न देवगणों का नायकत्व। उवट और महीधर भूतातिगण मानते हैं—जो देवों के अनुचर हैं—'देवानुचराः भूताविशेषा गणाः गणानां पालकाः गणपतयः।' तात्पर्य यह कि गणपति को देवताओं और उनके अनुचरों, दोनों का ही गणपतित्व प्राप्त था। बृहस्पति के गणपतित्व का कारण यह था कि उनके साथ अनुयायियों का गण रहता था। ऋग्वेद से ज्ञात होता है कि उनके साथ भजन-मण्डली (ऋक्वन् गण) चलती थी। यजुर्वेद काल में रुद्रगण का अधिपतित्व भी गणपति को प्राप्त हो चुका था।

बृहस्पति का गणपतित्व इतना प्रभावशाली रहा कि कालान्तर में बृहस्पति केवल गणपति रह गये। उनके अन्य कार्य गौण हो गये। हाँ, बुद्धिवैभव फिर भी बना रहा, क्योंकि गणपति पद का निर्वाह अप्रतिम बुद्धिबल से ही सम्यक्‌रीत्या हो सकता था। ऋग्वेद में प्राप्त ११ बार्हस्पत्य-सूक्तों में उनके आकार-प्रकार का विशेष उल्लेख नहीं है। यास्क भी उन्हें 'बृहतः पाता वा पालयिता वा' कहकर ही रह गये। विराट् का पालक ही गणपति हो सकता था। उनके विग्रह-विभूषण का कार्य बाद में हुआ। बृहस्पति की गणपति के रूप में प्रकट हुई विशेषताओं के आधार पर गणेश के काय-व्यूह की संरचना हुई। बृहस्पति अतुल प्रज्ञावान, मंत्रस्वामी और मनुष्यों को मंत्रश्रुतियाँ देनेवाले माने गये हैं। गणेश की पुरुषविधता के निरूपण में गणपति बृहस्पति के बुद्धिवैभव को प्रमुख स्थान मिला। गणपति की ग्रीवा पर स्थित विशालकाय गजानन जहाँ प्रौढ़, परिपक्व और विराट् मेधाशक्ति तथा ऊर्ध्वमुखी वाग्मिता का प्रतीक है, वहीं सूँड़ उत्कट ऐन्द्रिक बोधशक्ति का संकेत करती है। देवताओं के व्यक्तित्व का व्यावहारिक दृष्टि से अध्ययन करनेवाले युवा वैज्ञानिक डॉ० दीपचन्द्र जैन का यह अभिमत यथार्थ प्रतीत होता है।

ऋग्वेद में ही बृहस्पति दिव्य पुरोहित के रूप में भी संस्तुत हैं। यह पौरोहित्य वेद में केवल एक देवता को और मिला है। वे हैं अग्निदेव। उन्हें यह गरिमा अग्रणी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होने के कारण प्राप्त हुई है—'अग्रणीर्भवत्यग्रं नीयते'—यास्क। बृहस्पति के पक्ष में भी पौरोहित्य का अभिप्राय अग्रणीत्व ही है। पौराणिक आख्यायिकाओं को छोड़ दें तो गणेश की अग्रपूजा का मूल रहस्य भी यही है।

बृहस्पति और गणेश के एक होने का सर्वाधिक प्रबल हेतु दोनों का शक्तिपुत्र होना है।

निष्कर्ष यह कि ऋग्वेद-काल में गणपतित्व बृहस्पति में केन्द्रित था। बृहस्पति से पृथक् स्वतंत्ररूपेण गणपति के अस्तित्व के संकेत वहाँ नहीं मिलते, किन्तु यजुर्वेद तक आते-आते बृहस्पति पर गणपति छा चुके थे। अब वे निरपेक्ष देवता थे। शुक्ल यजुर्वेद के उपर्युक्त दो मंत्र (२३.१९ तथा ११.१५) इसी स्वतंत्र मान्यता के प्रतीक हैं।

तैत्तिरीय आरण्यक के रचनाकाल तक गणेश के व्यक्तित्त्व की कुछ अन्य विशेषताओं को भी अन्तिम रूप मिला। 'वक्रतुण्ड' और 'दन्ती' नामों का उल्लेख पहली बार यहीं मिलता है—

'तत्पुरुषाय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि तन्नो दन्तिः प्रचोदयात्।'

—तैत्ति० आर० १०.१।

'तत्पुरुष' यहाँ सर्वनाम है, रुद्र का एक रूप नहीं।

कालान्तर में गणेश को हिन्दू देवों के मध्य वह स्थान प्राप्त हो गया, जो बृहस्पति को भी नहीं प्राप्त था। इसी-लिए सायणाचार्य सदृश वेदभाष्यकार ने अपने प्रत्येक वेद-भाष्य को आरम्भ करने से पहले गजानन गणेश की वन्दना कर मंगलाचरण की प्रथा का निर्वाह किया है—

'वागीशाद्याः सुमनसः सर्वार्थानामुपक्रमे।
यं नत्वा कृतकृत्याः स्युस्तं नमामि गजाननम्॥'

—वागीश आदि देवता अपने सभी प्रयोजन मूलक कार्यों के प्रारम्भ में जिन्हें प्रणाम कर कृतकृत्य हो जाते हैं, मैं उन गजानन गणेश का अभिवादन करता हूँ।

गणेश की वैदिकता के विषय में सायणाचार्य से अधिक और कौन आधिकारिक निर्णेता हो सकता है?

विरोधाभासों की नगरी

श्री आदर्शकुमार 'प्रहरी' एम० ए०

हमारे स्वाभाविक संदर्भ, अगर विचलित हो जायें तो—
हमारी पीड़ा का उद्रेक, नये नित गीत बनाये क्यों?

कभी यह बोझिल बोझिल मन,
कभी राहों का अन्वेषी।
कभी कर लेता समझौते—
कभी बन जाता परदेशी॥

कभी जगमग-जगमग पथ पर, घना कुहरा छा जाये तो—
हमारी पीड़ा का उद्रेक, नये नित गीत बनाये क्यों?

कभी यह सूना सूना पथ,
कभी इस पथ पर चहल-पहल।
विरोधाभासों की नगरी—
समस्याएँ ही जिसका हल॥

कभी विह्वलता के क्षण में, न कुछ मानव कह पाये तो—
हमारी पीड़ा का उद्रेक, नये नित गीत बनाये क्यों?

कभी पाकर अमूल्य वह सीख,
हमें भी खुशी बड़ी होती।
माँगने से कब मिलती भीख—
बिना माँगे मिलते मोती॥

और यदि अनायास नव हंस, मृदुल मोती चुग जाये तो—
हमारी पीड़ा का उद्रेक, नये नित गीत बनाये क्यों?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राचीन भारत में द्यूत-क्रीड़ा

श्री श्याममनोहर व्यास एम० एस्-सी०

दीपावली के पुण्य पर्व पर जहाँ एक ओर लक्ष्मी-पूजन होता है, वहाँ समाज के एक वर्ग द्वारा द्यूत-क्रीड़ा को भी आवश्यक अंग माना जाता रहा है।

यद्यपि कानून व नैतिकता की दृष्टि से जुआ खेलना अपराध है फिर भी यह अत्यधिक प्रचलित है। आजकल तो लाटरी के रूप में अपना कायाकल्प कर यह जनता के सामने आ उपस्थित हुआ है। प्राचीन भारत में द्यूत-क्रीड़ा कला और मनोरंजन के साधन के रूप में देखी जाती थी।

मोहनजोदड़ो सभ्यता के प्रारम्भ से लेकर वैदिक, रामायण एवं महाभारत काल तक जुआ बेधड़क खेला जाता था। ब्राह्मणों से लेकर शूद्रों तक सबमें इसका प्रचलन था। पुरुष ही नहीं स्त्रियाँ भी इसमें निस्संकोच भाग लेती थीं।

प्राचीन भारतीय वाङ्मय में एक ओर यदि जुए की कटु निन्दा की गयी है तो दूसरी ओर उसकी मुक्तकंठ से प्रशंसा भी की जाती रही है।

प्राचीन काल में द्यूत-क्रीड़ा को मनोविनोद का एक रोचक साधन मानकर प्रचार किया गया। जुए से अनभिज्ञ लोग अव्यावहारिक माने जाते थे। कामसूत्र के रचयिता महर्षि वात्स्यायन के अनुसार 'द्यूत-क्रीड़ा चौंसठ कलाओं के अन्तर्गत एक लोकप्रिय कला है जिसे प्रत्येक प्रतिष्ठित नागरिक को अवश्य सीखना चाहिए।'

गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने भी जुए को अपना ही स्वरूप बतलाया है। यथा—

द्यूतं छलयतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम्।
जयोऽस्मि व्यवसायोऽस्मि सत्त्वं सत्त्ववतामहम्॥
(१०-३६)

[हे अर्जुन, मैं छल करनेवालों में जुआ और प्रभावशाली पुरुषों का प्रभाव हूँ तथा मैं जीतनेवालों की विजय हूँ और निश्चय करनेवालों का निश्चय एवं सात्त्विक पुरुषों का सात्त्विक भाव हूँ।]

ऋग्वेद में जुए को 'अक्ष-क्रीडा' की संज्ञा दी गयी है। उन दिनों लोग भूरे रंग के 'बभ्र' से जुआ खेलते थे। धरती पर मृग का चित्र बनाकर उसी पर 'बभ्र' फेंका जाता था। जुआ खेलने के सार्वजनिक स्थल को व्रात और जुआघर के व्यवस्थापक को सेनापति कहा जाता था। वैदिक काल में ईमानदारी से जुआ खेलने के लिए विशिष्ट नियम बनाये गये थे। इन नियमों की अवहेलना करनेवालों को कठोर दण्ड दिया जाता था। सामाजिक कार्यक्रमों एवं उत्सवों में ऐसे व्यक्तियों का बहिष्कार किया जाता था।

ब्राह्मण ग्रन्थों में जुआघर का दूसरा नाम 'संघ' भी आता है। पुराण ग्रन्थों में जुआघर के लिए 'कितवशाला' शब्द का प्रयोग हुआ है।

महाभारत में इसके लिए 'सभा' शब्द का उल्लेख हुआ है। इस नाम के अनुसार महाभारत के 'सभापर्व' की रचना हुई।

जुआ खेलने की विधियों का विस्तृत वर्णन प्राचीन ग्रन्थों में मिलता है। नारद स्मृति में चमड़े के टुकड़ों से जुआ खेलने की विधि का उल्लेख हुआ है। बाल्मीकि रामायण में जुए के उपकरणों के लिए 'अक्ष', 'देवन' और 'पण' इन तीन शब्दों का उल्लेख हुआ है। पासों या कोड़ियों को 'अक्ष' और जो वस्तु दाँव पर लगायी जाती थी उसे 'पण' कहा जाता था। पासे फेंके जानेवाले स्थल को 'देवन' कहा जाता था।

महाभारत काल द्यूत-क्रीड़ा का स्वर्ण युग था। नगरों में कई जुआघर बने हुए थे। राजपुत्रों को धनुर्विद्या के साथ-साथ द्यूत-क्रीड़ा में भी निपुण किया जाता था।

महाभारत के 'सभापर्व' में जुए की हानियों का भी विशद वर्णन हुआ है।

जुए के कारण ही महाभारत हुआ। धूर्त जुएबाज शकुनि की बेईमानी से द्यूत-कला में निपुण युधिष्ठिर का राज्य व पत्नी तक का हार जाना उस युग की एक दुःखद घटना है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाभारत काल में सामान्य जनता का भी यह लोकप्रिय मनोविनोद का साधन था।

पाणिनि ने अपने व्याकरण में कौड़ियों एवं पासों के लिए 'शलाका' शब्द का उल्लेख किया है।

मनुस्मृति में वर्णित अठारह प्रकार के व्यसनों में द्यूत-क्रीड़ा का भी उल्लेख हुआ है। इस ग्रन्थ में जुए को कामज कहा गया है। कामज का अर्थ है कामना अथवा लोभ से उत्पन्न व्यसन। एक श्लोक के अनुसार—'जुआ खेलने और सिखानेवाले को कठोर दण्ड दिया जाना चाहिए।'

नारदस्मृति में लिखा है :—

'राजा को चाहिए कि जुए में अनैतिक आचरण करनेवाले को देश से निर्वासित कर दे।'

बौद्ध-काल में भी जुए का प्रचलन था। जातक-कथाओं में इसका उल्लेख है।

मौर्यकाल में भी यह काफी प्रचलित था। चाणक्य ने अपने ग्रन्थ 'अर्थशास्त्र' में लिखा है—"छिपकर जुआ खेलनेवालों और धूर्त अपराधियों को पकड़ने के लिए राजा को अपनी ओर से सार्वजनिक द्यूतशालाएँ खोलनी चाहिए। इन द्यूतशालाओं में एकत्र होने पर अपराधियों को सरलतापूर्वक बन्दी बनाया जा सकता है। द्यूत-शालाओं पर शासन का कठोर नियन्त्रण होना चाहिए। शासन जुए में जीती हुई धन-राशि का पाँच प्रतिशत 'द्यूत-कर' के रूप में वसूल करे।" इस नियम को लागू करने पर राज्य-कोष की आय में काफी वृद्धि हुई।

प्राकृत व पाली भाषा के ग्रन्थों में भी नक्षत्र विद्या, वस्तु विद्या, तन्त्र विद्या, संगीत विद्या आदि के समान द्यूत-विद्या का भी उल्लेख हुआ है।

राजा भोज के समय महाकवि दण्डी ने 'दशकुमार चरित' की रचना की थी। इस ग्रन्थ के अनुसार 'मूलदेव' नामक द्यूत-विद्या के आचार्य हुए थे। इनके अतिरिक्त कंडरीक, एलाषाढ़, शश एवं खण्डपाण भी उस युग के प्रसिद्ध जुएबाज थे।

दण्डी ने एक स्थान पर लिखा है—"युद्धविद्या की भाँति राजकुमारों के लिए द्यूत-क्रीड़ा में भी कुशल होना आवश्यक है।"

राजा भोज के समकालीन कश्मीरी विद्वान् क्षेमेन्द्र ने अपने ग्रन्थ 'कलाविलास' में भी द्यूत-क्रीड़ा का उल्लेख किया है। एक स्थान पर लिखा है—"द्यूत-क्रीड़ा में प्रवीण लोग मिथ्या आडम्बर से धनी बन जाते हैं, शास्त्रों में विद्वान् बनकर मनगढ़न्त कथायें कहते हैं और किसी बात को बढ़ा-चढ़ाकर कहने में बड़े चतुर होते हैं।"

भोज ने अपने ग्रन्थ 'शृंगार-मंजरी' में भी द्यूत-क्रीड़ा का वर्णन किया है। इस ग्रन्थ में मूलदेव का भी उल्लेख आया है।

जैन ग्रन्थ 'उत्तराध्ययन सूत्र' में पाटलिपुत्र की 'देवदत्ता' नामक गणिका का वृत्तान्त आया है जो द्यूत-क्रीड़ा में प्रवीण थी। जुआ खेलने का उसे बड़ा शौक था। वह रूपवती होने के साथ-साथ संगीत व नृत्य में भी पारंगत थी। बड़े-बड़े नगर सेठ, राजपुत्र उसके यहाँ आते थे। अक्ष-क्रीड़ा द्वारा उसने अपार सम्पत्ति एकत्र की थी।

सोमदेव ने अपने ग्रन्थ 'समय मातृका' में श्रीगुप्त का उल्लेख किया है जो द्यूत-क्रीड़ा में निपुण था। दशकुमार-चरित में लिखा है कि पाटलिपुत्र के राजमार्ग में जुएबाजों की इतनी भीड़ होती थी कि मार्ग को पार करना कठिन हो जाता था। हितोपदेश, पंचतन्त्र में भी इसका उल्लेख है। नैतिकता का उपदेश देनेवाले धर्मग्रन्थों ने हमें वर्ष में एक बार दीपावली के पर्व पर जुआ खेलने की छूट दी है। इस पर्व पर जो जुआ खेलता है उसे लक्ष्मीजी वैभवशाली बना देती है। यथा—

निशीथे वरदा लक्ष्मी,
कोवा जागृति भाषिणी।
तस्मै वित्त प्रयच्छामि,
अक्षैः क्रीडा करोति यः॥

मुगल काल में जुए का स्थान 'शतरंज' ने ले लिया था; जो आज भी काफी लोकप्रिय है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्राचीन काल में द्यूत-क्रीड़ा मनोविनोद का लोकप्रिय साधन रहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा टोडरमल

श्री प्रभुदयाल मीतल साहित्य-वाचस्पति

मुगल सम्राट् अकबर के मंत्रियों एवं उनके दरबारी रत्नों में टोडरमल अपनी योग्यता और कार्यकुशलता के लिए बड़े प्रसिद्ध हैं। इस पर भी उनके जीवन-वृत्तांत की प्रामाणिक सूचनाएँ उपलब्ध नहीं हैं। पंजाब के पुराने पंडितों और भाटों में यह प्रसिद्ध है कि टोडरमल पंजाबी खत्री थे और उनका जन्म लाहौर जिला के चूनियाँ नामक स्थान में हुआ था। एशियाटिक सोसाइटी ने उनके जन्म-स्थान की जाँच करायी थी। इस जाँच के फलस्वरूप अवध प्रान्त का लाहरपुर उनका जन्म-स्थान निश्चित किया गया, किन्तु यह ठीक नहीं है।[१] टोडरमल का जन्म-स्थान पंजाब का चूनियाँ (लाहौर) ही जान पड़ता है।

'शिवसिंह सरोज' में उनका जन्मकाल सं० १५८० और मृत्यु-काल सं० १६४६ लिखा गया है।[२] उनका जन्म एक दरिद्र परिवार में हुआ था। उनकी विधवा माता ने बड़ी कठिनता से उनका पालन-पोषण किया। पढ़-लिखकर वे साधारण मुंशी के रूप में बादशाही सेवा में नियुक्त हुए। फिर वे मुत्सद्दी हो गये। 'शिवसिंह सरोज' में लिखा है कि वे पहले शेरशाह सूरी के आश्रय में थे। जब सूरियों की सत्ता समाप्त हुई तब वे अकबर के आश्रय में आ गये। टोडरमल प्रत्येक कार्य बहुत अच्छे ढंग और शौक से करते थे, इसलिए बहुत सी सेवाएँ तथा प्रायः कार्यालय आदि उन्हींकी कलम से संबद्ध हो गये। दफ्तरों के काम-धंधों के सम्बन्ध में उनका ज्ञान इतना बढ़ गया था कि अमीर और दरबारी लोग हर बात में उन्हींसे पूछने लगे। उन्होंने दफ्तर के कागजों, मुकदमों की मिसलों और बिखरे हुए कामों को भी नियमों और सिद्धान्तों से क्रम में बद्ध किया। धीरे धीरे वे बादशाह के समक्ष उपस्थित होकर कागज आदि पेश करने लगे। हर काम में उन्हींका नाम जबान पर आने लगा। इन कारणों से यात्रा में भी बादशाह के लिए उन्हें अपने साथ रखना आवश्यक हो गया[३]।

१—अकबरी दरबार, तृतीय भाग, पृष्ठ ११९
२—शिवसिंह सरोज, पृष्ठ ४२५
३—अकबरी दरबार, तृतीय भाग, पृष्ठ १२०

वे साधारण पढ़े-लिखे व्यक्ति थे, किन्तु अपने परिश्रम और कार्य को लगन से करने की आदत ने उनको उन्नति के शिखर पर पहुँचा दिया था। उनसे पहले राजकीय दफ्तरों की व्यवस्था असंतोषजनक थी। हिसाब-किताब त्रुटि-पूर्ण था, और मालगुजारी की वसूलयाबी में गड़बड़ी थी; किन्तु टोडरमल ने उन सब में सुधार किया। उनके सम्बन्ध में जो नियम उन्होंने बनाये, वे स्थायी बन गये और उनके नाम को सदा के लिए अमर कर गये। इन्हीं कारणों से वे सुप्रसिद्ध सम्राट् अकबर के बाईस सूबों के प्रधान दीवान और मंत्री बन गये थे।

अकबर बादशाह को उनकी बुद्धिमानी, ईमानदारी और स्वामि-भक्ति का इतना विश्वास था कि उसके राज्य में जहाँ कहीं अव्यवस्था और गड़बड़ होती थी, वहीं पर वह उनको ही भेजता था और वे भी अपनी अद्भुत प्रबन्ध-कुशलता से शीघ्र ही वहाँकी सुव्यवस्था कर देते थे। "नियमों और आज्ञाओं आदि के पालन और हिसाब-किताब आदि समझने में टोडरमल किसी के साथ बाल भर भी रिआयत नहीं करते थे।"[१] इस कारण बहुत लोगों को उनका स्वभाव कड़ा मालूम होता था। 'खुलासतुल तवारीख' में लिखा है—"वे साम्राज्य के रहस्यों के जानकार थे। शासन सम्बन्धी गूढ़ विषयों और हिसाब-किताब के अनुपम ज्ञाता थे। हिसाब जाँचने के कामों में बड़ी-बड़ी बारीकियाँ निकालते थे। वजीर के कामों के नियम आदि, साम्राज्य के नियम, प्रदेश की सम्पन्नता, प्रजा की आबादी, दीवान के कार्यालय के नियम, बादशाह के अधिकारों के सिद्धान्त, राजकोष की उन्नति, मार्गों में विराजनेवाली शान्ति, सैनिकों के वेतन, परगनों के लगान आदि की व्यवस्था, जागीरदारों का वेतन, अमीरों के मनसबों के सम्बन्ध के नियम आदि सब उन्हीं के स्मारक हैं, और सब स्थानों में उन्हीं नियमों आदि के अनुसार काम होता है।"[२] उनके बनाये "बहुत से नक्शे और फरदों आदि के नमूने

१—अकबरी दरबार, तृतीय भाग, पृष्ठ १२१
२— ,, ,, पृष्ठ १४८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'आईन अकबरी' में दिये हुए हैं। उनके किये हुए सुधार और बनाये हुए पारिभाषिक शब्द आज तक मालगुजारी और हिसाब के कागजों में चले आते हैं।"[१]

वे केवल कलम-कुशल ही नहीं थे, बल्कि तलवार के भी धनी थे। उन दिनों कोई भी राजकीय पुरुष शूरवीरता के बिना प्रसिद्धि प्राप्त कर ही नहीं सकता था। टोडरमल ने कितने ही युद्धों में सेनानायक की कार्य-कुशलता का परिचय दिया और युद्ध-क्षेत्र में अपूर्व साहस और शूरवीरता भी प्रदर्शित की। चित्तौड़, रणथम्भोर, सूरत आदि की विजय टोडरमल के कारण हुई थी। बिहार, बंगाल और गुजरात के अनेक युद्धों में उन्होंने अपने गुणों का पूरा-पूरा परिचय दिया था। सन् ९९३ हिजरी में पहाड़ी यूसुफजई के भयंकर युद्ध में जब राजा वीरबल मारे गये तब टोडरमल को ही दुर्दान्त पठान कबीलों के दमन के लिए भेजा गया। उन्होंने राजा मानसिंह के सहयोग से विद्रोही पठानों को पूर्णतया पराजित किया था। उस समय तक वे अत्यन्त वृद्ध हो गये थे।

जब सम्राट् अकबर अपने शासन के ३४वें वर्ष (सन् ९९७ हिजरी) में राजधानी से दूर कश्मीर गये थे तब टोडरमल को राजा भगवानदास के साथ लाहौर का प्रबन्धक नियुक्त किया था। उस समय उन्होंने बादशाह को लिखा कि मैं अत्यन्त वृद्ध हो गया हूँ, रुग्ण भी रहता हूँ; अतः मुझको बादशाही सेवा से मुक्त किया जाय, ताकि मैं अपना अंतिम जीवन हरिद्वार में गंगा-तट पर निवास कर भगवद्-भजन में व्यतीत करूँ। बादशाह उनकी अनुपस्थिति को राज्य के लिए अत्यन्त हानिकर समझते थे। अतः उन्होंने टोडरमल को लिखा कि तुम्हारे राजकार्य में सहयोग देने से अनेक दीन-दुखियों का भला होता है, और जनता की सच्ची सेवा होती है। ये कार्य एकान्त में ईश्वर-साधना और भगवद्-भजन से भी अधिक श्रेयस्कर हैं। वे बादशाही आज्ञा को विधि-वाक्य मानकर फिर मन लगाकर राज्य कार्य करने लगे; किन्तु कुछ दिनों के बाद वहीं लाहौर में उनका देहावसान हिजरी सन् ९९८ (सं० १६४६ वि०) में हो गया।

वे अकबर के अत्यन्त राजभक्त और मुसलमानी शासन के सच्चे सहायक थे। किन्तु धर्म-कर्म में वे बड़े पक्के हिन्दू थे। वे समस्त धार्मिक कृत्यों को बड़ी निष्ठा से करते थे और नियमित रूप से ज्ञान-ध्यान और पूजा-पाठ किया करते थे। राज्य कार्यों में अत्यन्त व्यस्त रहते हुए भी उनका यह नियम था कि वे जब तक अपना नित्य कर्म पूरा नहीं कर लेते थे तब तक कोई कार्य नहीं करते थे। यहाँ तक कि वे भोजन भी तभी करते थे। युद्ध-क्षेत्र में दो-एक बार उनके उक्त नियम में बाधा उपस्थित हुई। उस समय उन्होंने तब तक उपवास किया जब तक अपना नित्य-नियम पूरा नहीं कर लिया।

१—अकबरी दरबार, तृतीय भाग, पृष्ठ १४०

टोडरमल के समय तक हिन्दू लोग फारसी या अरबी बहुत कम पढ़ते थे। वे इन्हें म्लेच्छ भाषाएँ कहा करते थे। टोडरमल ने सोचा कि जब तक हिन्दू फारसी नहीं पढ़ेंगे, तब तक वे मुसलमानी शासन में उच्च राजकीय पदों पर आसीन नहीं हो सकते। अतः उन्होंने प्रगतिशील हिन्दुओं का ध्यान अरबी-फारसी की शिक्षा-प्राप्ति की ओर आकर्षित किया। उन्होंने दरबार के सभी विभागों की राजभाषा फारसी कर दी, जिसके कारण राज्य-कार्य से सम्बद्ध प्रत्येक व्यक्ति को फारसी की शिक्षा आवश्यक हो गयी थी। इससे टोडरमल की बदनामी भी हुई। कुछ लोगों का विचार है कि यदि टोडरमल फारसी को राजभाषा न बनाते तो हिन्दी भाषा ही अकबर के काल में राजभाषा हो जाती। सम्भव है, ऐसा हुआ होता और उससे हिन्दी का महत्त्व भी बढ़ता; किन्तु उस समय उन्होंने हिन्दुओं को फारसी की ओर आकर्षित कर उन्हें राजकीय कार्यों में उच्च पद प्राप्त करने का जो सुयोग प्रदान किया था, उससे वे वंचित रह जाते। "उसी समय से 'रेखता' द्वारा उर्दू की नींव सुदृढ़ हुई; और अरबी शब्दों को हिन्दुओं की भाषाओं में ही नहीं, बल्कि घरों में जाने के लिए मार्ग मिल गया।"[१] राजकीय कार्यों में इतने व्यस्त रहते हुए भी वे काव्य-रचना के लिए समय निकाल लिया करते थे। अकबरी दरबार के कवियों में उनका नामोल्लेख होता है। उनका जैसा व्यस्त जीवन था, उसे देखते हुए उनकी काव्य-रचना स्वल्प ही हो सकती है। कभी समय मिलने पर जब उमंग उठती होगी, तभी वे दो-एक छंद रचते होंगे। अतः उनकी रचना परिमाण में अत्यल्प ही प्राप्त हुई है। उनके उपलब्ध छंद उपदेशात्मक अथवा नीति-सम्बन्धी हैं।

१—अकबरी दरबार, तृतीय भाग, पृष्ठ १४१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिसाब-किताब व बही-खाते शीघ्रतापूर्वक लिखने के लिए और नागरी की शीघ्रलिपि के रूप में मुंडा अथवा कड़िया लिपि का प्रचार उन्होंने ही किया था। इस सम्बन्ध में यह दोहा प्रसिद्ध है—

देवनागरी अति कठिन, स्वर-व्यंजन ब्यौहार।
तातें जग के हित सुगम, मुंडा कियौ प्रचार॥

यह भी कहा जाता है कि बही-खाता, हुंडी आदि लिखने की जो पद्धति आजकल प्रचलित है, उसे राजा टोडरमल ने ही चलाया था। "राजा साहब ने हिसाब-किताब के सम्बन्ध में एक छोटी सी पुस्तक लिखी थी। उसी के 'गुर' याद करके बनिये और महाजन दूकानों पर और देशी हिसाब जाननेवाले घरों और दफ्तरों के कामों में बड़े-बड़े अद्भुत कार्य करते हैं, और आजकल के स्कूलों के पढ़े-लिखे हिसाबी लोग मुँह ताकते रह जाते हैं।"[१]

उनकी वह पुस्तक उपलब्ध नहीं हुई है, किन्तु इस सम्बन्ध के कुछ छंद प्राचीन संग्रह ग्रन्थों में प्राप्त होते हैं। 'कवि विनोद' नामक प्रकाशित ग्रन्थ से लेकर 'अकबरी दरबार के हिन्दी कवि' नामक ग्रंथ के अंतिम परिशिष्ट (पृ० ४५२-४५३) पर उनके तत्सम्बन्धी कुछ दोहे संकलित किए हैं—

हुंडी—

ऊपर लिखे निवास सब, रक्खे मुद्दत होय।
चलन निशां अंदाज धन, हुंडी कहिये सोय॥
हुंडी खोये पैठ लिख, पैठ गये परपैठ।
सनद एक के दाम दे, रोकड़ खाता डेठ॥
जो हुंडी सिकरे नहीं, जिकरी लिखै बनाय।
हुंडी कोरी पीठ ले, तब धन देय चुकाय॥

बहीखाता—

बाम जमा, दच्छिन खरच, सिर पेटा, पर पेट।
ऊपर नाम धनी लिखै, हस्ते पुनरौ डेट॥

सराफ और व्यापारी के लक्षण—

हुंडी लिखै न हाथ से, जमा न रक्खे भूल।
लेय ब्याज, देवै नहीं, सोई सराफी मूल॥
जग सराफ ताको कहै, जमा समय पर देय।
ब्यापारी सो जानियै, समय पै मुद्दा लेय॥

चौधरी लक्षण—

धारा बांच्छे बाँट, हाकिम रैयत मान ही।
सो चौधरि का ठाट, ताके सकल अधीन हों॥

साढ़तिया लक्षण—

साफ हिसाब किताब हो, रौब सिताबी काम।
कर्म-धर्म अरु मर्म हो, संचित धन औ धाम॥

साहूकार के लक्षण—

आधा ऊपर आधा तरै आधा देय साह के गरै।
आधे में आधा निस्तरै, जुग टर जाय, साह नहिं टरै॥

सराफ—

प्रथम बनारस, आगरा, दिल्ली औ गुजरात।
अग्गर औ अजमेर से, सिखै सराफी बात॥

टोडरमल की नीति सम्बन्धी कविता के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—

जार कों बिचार कहा, गनिका कों लाज कहा,
गदहा कों पान कहा, आँधरे कों आरसी।
निर्गुनि कों गुन कहा, दान कहा दालिद्री कों,
सेवा कहा सूम की, अरंड की सी डार सी॥
मद्यपी कों सुचि कहा, साँच कहा लंपट कों,
नीच को बचन कहा, स्यार की पुकार सी।
'टोडर सुकबि' ऐसे हठी तें न टार्‌यौ टरै,
भावै कहौ सूधी बात, भावै कहौ फारसी॥

× × ×

राजा उही जाको राज सराहियै,
काज उही सो उछाह सों कीजै।
धारा उही सो सदा चंचल रहै,
जूरा उही सो सुगंधि सो भीजै॥
बात उही सो सदा निबहै,
'कबि टोडर' मानि इही सिख लीजै।
फौज उही सो रहे तैयार,
औ मौज उही सो मँगाय कै दीजै॥

× × ×

गुन बिन कमान जैसे, गुर बिन ग्यान जैसे,
मान बिन दान जैसे, जल बिन सर है।
कंठ बिन गीत जैसे, हेत बिन प्रीत जैसे,
बैन बिन रस-रीति, जैसे फल बिन तरु है॥
तार बिन जंत्र जैसे, स्याने बिन मंत्र जैसे,
पुरुष बिन नारि जैसे, पुत्र बिन घर है।
'टोडर सुकबि' जैसे मन में बिचारि देखौ,
धर्म बिन धन जैसे, पंछी बिन पर है॥

× × ×

चंद बिन रैन जैसे, पुत्र बिन परिवार,
दारा बिन गृह जैसे, गऊ बिन गोखरा।
छत्री बिन अस्त्र जैसे, बेद बिन द्विजराज,
मंत्री बिन फौज जैसे, नाक बिन मोखरा॥
घृत बिन भोजन ज्यों, चूनौ बिन तांबूल,
जटा बिन जोगी जैसे, पूछ बिन लोखरा।
'टोडर सुकबि' जैसे मन में बिचार देखौ,
धर्म बिन धन जैसे, पानी बिन पोखरा॥

१—अकबरी दरबार, तृतीय भाग, पृष्ठ १४२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तिब्बती सन्त भार्पा की भारत-यात्रा

श्री मण्डन मिश्र

[स्वर्गीय पं० गंगाशंकर मिश्र का यह लेख अन्य लेखों में मिल गया था। खेद है कि हम उनके जीवनकाल में इसे नहीं छाप सके। वे अपने नाम के अतिरिक्त 'मण्डन मिश्र' और 'किताबी कीड़ा' के नाम से भी लिखते थे।]

—सम्पादक

ईसवी सन् की दसवीं शताब्दी में इस पृथ्वी के अनेक देशों तथा अनेक जातियों में धर्म और भक्ति की ओर अति विचित्र प्रवृत्ति हुई। ग्रहों, नक्षत्रों की किस शुभ अवस्था से ईश्वर की ओर मनुष्य का हृदय आकर्षित होता है, यह ज्योतिषी लोग कह सकते हैं। भारतवर्ष में उसी समय बौद्ध धर्म का अन्त और सनातन वैदिक धर्म का पूर्णरूप से फिर प्रचार हुआ। यह सब जानते हैं, परन्तु सब को यह ज्ञात नहीं है कि उन्हीं दिनों दूसरे देशों में भी अनेक सन्त लोग उत्पन्न हुए, जिनकी भक्ति की विचित्र कथा सुनकर आजकल के लोगों को आश्चर्य होता है। भारतवर्ष में सनातन वैदिक धर्म के पुनःस्थापन में कोई कठिनाई नहीं पड़ी, क्योंकि बौद्धों के राज्य में भी वर्णाश्रम व्यवस्था का सर्वथा लोप कभी नहीं हुआ। परन्तु दूसरे देशों में बहुत कठिन प्रश्न उपस्थित हुआ कि धर्म क्या है और समाज का रूप कैसा होना चाहिए। सन्त लोग, जिनका भोजन व्रत है, जिनकी रात दिन है, जिनका आनन्द तप में है देश या अवस्था की परवाह नहीं करते, उनके लिए सब सांसारिक व्यापार मिथ्या प्रतीत होता है। परन्तु साधारण लोगों के लिए सामाजिक व्यवस्था के बिना धर्म में रहना असम्भव ही है। दुःख में पड़ी हुई और ईश्वरभक्ति की ओर उन्मुख तथा सुशिक्षित मनुष्य जाति की पुकार भगवान् ने सुनी और एक विचित्र आश्चर्य यह हुआ कि संसार के भिन्न-भिन्न देशों में अनेक भक्तों को स्वप्न हुआ, जिसमें किसी देवता से उनको भारतवर्ष जाने और वहाँसे उपदेश लेने की आज्ञा मिली। इस तरह दूर-दूर देशों से कई ईश्वर-प्रेमी इस दीर्घ यात्रा के लिए चल पड़े। भारतवर्ष के पण्डितों, संन्यासियों से शिक्षा पाकर वे लोग अपने-अपने देश लौटे और उन्होंने वहाँ धर्म का पुनःस्थापन किया। उनके प्रभाव से सब देशों के धर्मों में बड़ा परिवर्तन हुआ और व्रत, जप, आराधना का बहुत प्रचार हुआ और अनेक देशों में बहुत से बड़े-बड़े और अति सुन्दर मन्दिर बन गये, जैसे पहले न कभी बने थे और न फिर कभी बनेंगे। इन भारत यात्रियों की कथा सब देशों में मिलती है और उन लोगों के जीवन के अनेक प्रमाण है। वे बौद्ध देशों, ईसाई देशों और मुसलमानी देशों में भी गये और उन्होंने इन सब धर्मों की सीमाओं में, सब धर्मों के आधारभूत सनातन वैदिक धर्म के मूल सिद्धान्तों का पुनःस्थापन किया। वर्णाश्रम जीवित होने के कारण भारतवर्ष में वैदिक धर्म की शुद्धि करने में कोई बाधा नहीं पड़ी, परन्तु तिब्बत देश में ऐसा नहीं हो सका। कई साधुओं ने भारत यात्रा के बाद धर्म के पुनःस्थापना का प्रयत्न किया। वे बौद्ध समाज तथा आराधना का बाह्य स्वरूप बदलना उचित और आवश्यक नहीं समझते थे। परन्तु इस रूप के भीतर जो तत्त्व, जो मन्त्र थे, जो ज्ञान और योग उपदेश थे, इन सब विषयों में बौद्ध दर्शन की दृष्टि को बिलकुल निकाल दिया और बौद्धधर्म के वेश में सनातन धर्म तथा वेदान्त दर्शन का पुनःस्थापन किया। इसलिए आजकल के तिब्बत में प्रचलित बौद्ध धर्म में बुद्ध का कोई सिद्धान्त नहीं मिलता, बल्कि बाह्य रूप को छोड़कर जो कुछ ज्ञान का आदेश मिलता है, वह बुद्ध के मत का नहीं, उलटे भगवान् शंकराचार्य के मत से बहुत मिलता है।

तिब्बत के कई एक सन्त भारतवर्ष आये, परन्तु सबसे प्रसिद्ध श्री भार्पा हुए। उनका और उनके शिष्य मिलेरपा का चरित्र तिब्बत के साहित्य में प्रसिद्ध है। इन चरित्रों का अनुवाद अनेक भाषाओं में भी हो चुका है। पाश्चात्य अनुवादक मानते हैं कि अपनी तीन भारत यात्राओं में भार्पा ने बौद्ध पण्डितों से शिक्षा ली, परन्तु भार्पा के चरित्र में बौद्ध पण्डितों की कोई चर्चा नहीं है और यह समझ में नहीं आता कि यदि बौद्धों से उन्होंने शिक्षा ली, तो फिर बौद्धों के सिद्धान्तानुसार प्रवचन न करके उन्होंने वेदान्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और तन्त्र के आधार पर क्यों उपदेश दिया। इसलिए जान पड़ता है कि जिन पण्डितों और गुरुओं का वृत्तान्त भार्पा की कथा में मिलता है वे सब सनातनी थे। ऐसा कई विद्वान् मानते भी हैं।

तिलोप के आदिगुरु से भारतवर्ष में स्थापित सम्प्रदाय के भार्पा तीसरे गुरु माने जाते हैं। भार्पा की भारतयात्राओं के वर्णन में उस समय के भारतवर्ष की स्थिति का विचित्र और मनोहर चित्र मिलता है। जब भार्पा ने बंगाल देश के बड़े पण्डितों का ऐश्वर्य और उनकी प्रसिद्धि देखी तब वे यह कभी न सोच सके कि उन बड़े विद्वानों के नाम तक मनुष्य जाति को स्मरण नहीं रहेंगे, पर उनके नम्र शिष्य का नाम हजारों वर्ष तक प्रसिद्ध रहेगा। भार्पा ने पचास संस्कृत पुस्तकों का अनुवाद किया। इस कारण उनको 'अनुवादक भार्पा' कहा जाता है। इन पुस्तकों का विषय भार्पा के अधिष्ठ त्री देवता की प्रशंसा है। यह अधिष्ठात्री देवता 'इदम् शम्बरा' के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें इस अधिष्ठात्री देवता के भयानक रूप 'हेरुका' (भैरव) के नाम से विशेष प्रशंसा की गयी है।

अपने गुरु नारोप से भार्पा ने औरों के शरीर में प्रवेश करने की विधि सीखी और इस विशेष योगक्रिया को उन्होंने बहुत महत्त्वपूर्ण बतलाया। इससे मनुष्य को पुनर्जन्म का अनुभव होता है; परन्तु अपने ही शरीर में फिर लौट आने की शक्ति रहती है। इससे अनेक जन्मों का अनुभव और फल एक ही जन्म में पाया जा सकता है। इस योगक्रिया की विधि और मन्त्रों को बहुत विस्तीर्ण रूप से भार्पा ने बतलाया है। उसको 'कालप्रवेश' कहते हैं।

लड़कपन से भार्पा का स्वभाव अति तीव्र था। उनको देखकर उनके पिता ने कहा कि यह जो कुछ करेगा वह उसकी सीमा नहीं मान सकता, इसलिए सांसारिक जीवन में यह अपने तथा औरों को अत्यन्त कष्ट देनेवाला होगा। परन्तु भक्ति के मार्ग में यह उत्तम पद तक पहुँच सकता है। इसलिए बारह वर्ष की अवस्था से उनका नाम 'धर्ममति' रखकर उनके पिता ने एकान्त में रहनेवाले किसी सन्त के पास उन्हें भेजा। वहाँ वे दूसरे शिष्यों से लड़ने और सब लोगों को कष्ट देने लगे। परन्तु बुद्धि बहुत तीव्र होने के कारण, उन्होंने संस्कृत बहुत शीघ्र सीख ली और उत्तम ज्ञान मिलने की इच्छा से उन्होंने भारतवर्ष जाने का निश्चय किया।

पेड़ के नीचे उन्होंने बाँहों से मुँह ढाँके हुए पक्षी के पंखों से आवृत्त एक मनुष्य शरीर देखा। भार्पा को सन्देह हुआ कि क्या यही कुक्कुरिपा है। इतने में उस विचित्र मनुष्य ने सिर उठाकर कहा—'अरे आप चिपटी नाकवाले तिब्बत के लोगों के लिए ऐसा रास्ता कुछ कठिन नहीं है? कहाँसे आते हो? कहाँ जाओगे? कुक्कुरिपा कौन है? मैं तो यहीं रहता हूँ, पर कुक्कुरिपा का नाम मैंने कभी नहीं सुना और न कभी उनको देखा है।' यह कहकर फिर उसने अपनी बाँहों में मस्तक रख दिया। भार्पा को नारोप के शब्दों का स्मरण हुआ और उन्होंने निश्चय किया कि यही स्वयं कुक्कुरिपा है। ऐसा निश्चय कर उनके पास जाकर भार्पा ने प्रणाम किया और कहा—'पण्डित नारोप ने मुझे आपके पास भेजा है। कृपाकर मुझे महामाया का रहस्य सिखलाइये।' यह कहकर उनको नारोप का पत्र भी दिया। तब उस मनुष्य ने कहा—'क्या चाहते हो? नारोप तो कुछ भी नहीं जानते। उन्हें ध्यान का अनुभव तक नहीं होता है। उनके ऐसे पण्डितों को देखकर मुझे हँसी आती है। महामाया को वे स्वयं तो जानते हैं, परन्तु दूसरों को समझाने की शक्ति उनमें नहीं है। फिर भी शान्ति चाहने वाले पुरुष को एकान्त में रहने नहीं देते।' फिर एक बार हँसकर उन्होंने कहा—'अरे मैं तो विनोद कर रहा हूँ। पण्डित नारोप की विद्या निःसीम है। वे स्वयं महामाया का रहस्य जानते हैं, परन्तु शुद्ध भावना से उन्होंने तुम्हें मेरे पास भेजा है। अस्तु, तुम्हें सब बात बतला दूँगा। क्या तुमने मार्ग में दो मनुष्यों को नहीं देखा?' भार्पा ने कहा—'नहीं, मैंने किसीको भी नहीं देखा।' तब उस व्यक्ति कुक्कुरिपा ने कहा—'हाँ, तुमने उनको मनुष्य रूप में नहीं देखा होगा, पक्षियों के रूप में तुमने उन्हें देखा होगा।'

इसके बाद वहाँ बहुत दिनों तक कुक्कुरिपा से शिक्षा लेने के बाद भार्पा नारोप के पास वापस लौटे। सब सिद्धियों में निपुण होने के कारण वे तीन ही दिन में फुल्लहरी पहुँच गये। उसी समय नारोप एक प्रज्ञासिंह नामक संन्यासी को दीक्षा दे रहे थे। भार्पा ने दूर से उन्हें दण्डवत प्रणाम किया और आशीर्वाद माँगा। भार्पा की यात्रा का सब वृत्तान्त सुनकर नारोप ने भी उन्हें महामाया का रहस्य बतलाया। एक दिन भार्पा ने उनसे कहा—'जब महामाया-सम्बन्धी रहस्य के विषय में आपको इतना अद्भुत ज्ञान है, तब मुझे अनेक कष्ट सहनकर विष-सरोवर के द्वीप में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भेजने की क्या आवश्यकता थी ?' यह सुनकर नारोप ने कहा—'कुक्कुरिपा आदि परम्परा के गुरु हैं। वे अनादि काल से उन मन्त्रों को जानते हैं। इसीलिए मैंने तुम्हें उनके पास भेजा।'

इसके बाद भार्पा पूर्व देश की ओर स्वयम्भू मन्दिर का दर्शन करने के लिए गये। वहाँ वे अपने मित्र राजपुत्र से मिले। उन्होंने भार्पा का अद्भुत् पाण्डित्य देखकर उनके गुरु का नाम पूछा, परन्तु भार्पा ने गुरु का नाम नहीं बतलाया। जब नारोप को यह बात मालूम हुई तब उन्होंने भार्पा से कहा—'साधु पण्डितों का नाम छिपा रखने की कोई आवश्यकता नहीं है। राजपुत्र के पास धन बहुत है, परन्तु सोने से सभी वस्तु नहीं प्राप्त की जा सकती है। इन विषयों में अधिकार मुख्य है।'

इसके बाद नारोप ने नैत्रि नामक पण्डित के पास भार्पा को भेजा। बाद में उन्होंने श्मशान में रहनेवाली एक डाकिनी से शिक्षा ग्रहण की। फिर अपने गुरु नारोप से आज्ञा लेकर वे अपने देश को लौट आये।

इन सब वर्णनों में पाश्चात्य अनुवादक भारतवर्ष में किसी यात्री की यात्रा के एक आलंकारिक वृत्तान्त को देखते हैं। परन्तु विचार करने पर और हर एक नाम तथा परिस्थिति पर ध्यान देने पर, और वह भी स्मरण कर कि तिब्बत के धर्म की शुद्धि में इस यात्रा से कौन-सा अद्भुत फल हुआ, इस यात्रा का वृत्तान्त और विचित्रता का अभिप्राय अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रतीत होता है। भारतवर्ष अनादि वेद का और आदि परम्परा का स्थान माना जाता है। भार्पा की विचित्र यात्रा अधिभौतिक होने पर भी आध्यात्मिक भी है। यह योगयात्रा है, जिसमें कार्य-कारण के क्रम से मनुष्य महामाया का रहस्य तत्त्व खोलकर आदिकारण—शिवतत्त्व—तक पहुँच सकता है और फिर अपने देश में लौटकर मनुष्य जाति का उद्धार कर सकता है। यहाँ दक्षिण में स्थित आसुर राज्य में विष सरोवर के द्वीप को अखण्ड परम्परा से रखे हुए अनादि वेद का केन्द्र होना भावपूर्ण है। पूर्व की ओर स्वयंभू का मन्दिर, रास्ते में पक्षी रूप मनुष्यों से मिलना, कुक्कुरिपा का बन्दर का मुँह और पंख से आवृत्त शरीर, यह सब रहस्यपूर्ण है। विद्वान् लोग, जो 'रामायण' की कथा के तीन वक्ताओं में से पक्षीरूप वक्ता का पक्षीरूप श्रोता से खगभाषा में बोलने का रहस्य जानते है, वे भार्पा की विचित्र भारत-यात्रा का रहस्य आसानी से समझ सकेंगे।

यह वृत्तान्त पहले तिब्बती भाषा में प्रकाशित हुआ। फिर उसी का अनुवाद फ्रांसीसी तथा अंग्रेजी भाषाओं में किया गया।

अंतर्दृष्टि

डा० कमलाकान्त हीरक

जब मैंने उड़ती नजर से
खिले फूल को निरख
(उसकी सुन्दरता को सराहते हुए)
तोड़ने के लिए हाथ बढ़ाया
उसने कहा—
"भीतरी आँखों से देर तक
मेरी सुन्दरता को निहारो
स्वयं सुन्दर बनो
और पल्लवित हो जाओ मेरी तरह;
देखो कितने फूल खिल आते हैं
तुम्हारी भी इन आँखों में।"

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारा वायुमण्डल

श्री पुरुषोत्तमदास स्वामी, एम० एस्-सी०

वायुमण्डल या वातावरण हवा के आवरण को कहा जाता है। इससे अभिप्राय उस गैसीय आवरण से है जो पृथ्वी की पूरी सतह को घेरे हुए है। वायुमण्डल दो भागों में बँटा हुआ है—पृथ्वी की सतह के पास का भाग परिवर्त्त मण्डल या ट्रोपोस्फीयर (troposphere) कहलाता है। यह पृथ्वी की सतह से ग्यारह किलोमीटर ऊँचाई तक फैला है। इसके ऊपर के वायुमण्डल को समताप मण्डल या स्ट्रोटोस्फीयर (strotosphere) कहा जाता है। यह कहाँ तक जाता है इसके बारे में मतभेद है। समताप मण्डल के संगठन के बारे में हमारा ज्ञान अभी अधूरा है, पर इसमें ट्रोपोस्फीयर अर्थात् परिवर्त्त मण्डल को बनाने वाले कुछ तत्त्व अवश्य मिलते हैं। समताप मण्डल में ऊँचाई बढ़ने के साथ तापक्रम में बहुत कम परिवर्त्तन होता है और इसमें पानी के बादल कभी नहीं बनते। परिवर्त्त मण्डल वायुमण्डल का वह भाग है जिसमें मनुष्य रहता है।

वायु (हवा) बहुत पहले एक तत्त्व मानी जाती थी। पर उस समय तत्त्व का अभिप्राय कदाचित् वह न था जो आज कल समझा जाता है। हवा में नमी अर्थात् जलवाष्प की विद्यमानता भी काफी पहले से मालूम थी, पर उस समय उसे हवा का आवश्यक अंग नहीं माना जाता था। सन् १६७४ में मैपो ने इस बात का विश्वस्त प्रमाण प्रस्तुत किया कि वायुमण्डल का संगठन मिश्रित है। उसने यह भी कहा कि हवा से भरे बंद बर्तन में चूहे को रखने पर उसमें हवा की मात्रा कम हो जाती है और यही बात उन्हीं हालतों में किसी पदार्थ के जलने पर होती है। हवा का जो भाग बच रहता है वह दहन व साँस लेने के लिए अनुपयुक्त होता है। ब्लेक ने सन् १७७५ में हवा में कार्बन डाई आक्साइड की विद्यमानता मालूम की और उसे 'स्थिर वायु' की संज्ञा दी। केवेंडिश एवं शीले ने अट्ठारहवीं शती के अंत में अलग-अलग बतलाया कि वायुमण्डल में मुख्यतः दो प्रकार की गैसें विद्यमान है। ये नाइट्रोजन तथा आक्सिजन कहलाती हैं। प्राचीन काल में दहन प्रक्रिया में फ्लोजिस्टन सिद्धांत का काफी प्रचलन था। ये दोनों वैज्ञानिक इस सिद्धांत के पक्के अनुयायी थे। इस सिद्धांत के अनुसार ज्वलनशील पदार्थों में फ्लोजिस्टन नामक पदार्थ रहता था जो पदार्थ के जलने पर उसमें से निकल जाया करता था। यदि ऐसा होता तो जलने के बाद उस पदार्थ का भार घट जाना चाहिए था। पर होता है ठीक उसका उलटा, जलने के बाद पदार्थ का भार घटने के बदले बढ़ जाता है। इस पर इस सिद्धान्त के अनुयायियों ने एक विचित्र तर्क उपस्थित किया। उन्होंने कहा कि फ्लोजिस्टन का भार ऋणात्मक है, धनात्मक नहीं। लैवोज़िये ने इस सिद्धांत का पूर्णतः खण्डन किया। उसने ही ऑक्सिजन का नामकरण किया था। लैवोज़िये ने यह सिद्ध कर दिया कि वायुमण्डल की हवा ऑक्सिजन एवं नाइट्रोजन इन दो विभिन्न तथा विरोधी आचरणवाली गैसों से मिलकर बनी है और धातु के हवा में जलने पर उसका संयोग केवल ऑक्सिजन के ही साथ होता है, जिससे उस धातु का यौगिक अर्थात् ऑक्साइड बनता है। शीले ने यह भी बतलाया कि हवा में अमोनिया भी थोड़ी मात्रा में मिलता है, क्योंकि हवा में नमक के अम्ल की सतह को खुला छोड़ने पर उस पर नौसादर अर्थात् अमोनियम क्लोराइड की एक परत जम जाती है।

वायुमण्डल का संगठन—वायुमण्डल में मिलनेवाले पदार्थों को दो भागों में बाँटा जा सकता है :—(१) सरल संघटक तथा (२) आकस्मिक संघटक अर्थात् अशुद्धियाँ। यदि हम हवा का नमूना एकत्र करें और उसे सुखाकर उसमें मौजूद नमी को दूर कर लें और फिर उसका विश्लेषण करें तो पता लगेगा कि उसमें ७८ प्रतिशत नाइट्रोजन व २१% ऑक्सिजन होता है। बाकी एक प्रतिशत अन्य तत्त्व तथा यौगिक होते हैं, जैसे आर्गन, कार्बन डाई ऑक्साइड, हाइड्रोजन, नियन क्रिप्टन, हीलियम, ओज़ोन तथा जेनन। इनका यह क्रम अधिक से कम प्रचुरता का है। यह तथ्य कि नाइट्रोजन और ऑक्सिजन मिलकर शुष्क वायु का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

९९% भाग बनाते हैं और हवा में इनका अनुपात लगभग स्थिर-सा रहता है, इस बात की ओर संकेत कर सकता है कि वायुमण्डल में संभवतः नाइट्रोजन-ऑक्सिजन मिश्रण के रूप में न होकर यौगिक के रूप में विद्यमान हों। पर वास्तव में ऐसा है नहीं, क्योंकि अनार्द्र वायु में इनका यह अनुपात पूर्णतः स्थिर नहीं है।

वायुमण्डल में हवा का औसत संगठन इस प्रकार का है :—

संघटक का नाम	प्रतिशत भार	प्रतिशत आयतन
कार्बन डाई ऑक्साइड	०·०४	०·०३५
निष्क्रिय गैसें	१·३०	०·९५
ऑक्सिजन	२३·१५	२०·९९
नाइट्रोजन	७५·५१	७८·०३

ऊपर दिये गये संघटकों के अतिरिक्त नमी, धूल, क्लोरीन के यौगिक, गंधक के यौगिक, हाइड्रोजन तथा हाइड्रो कार्बन, अमोनिया, ओज़ोन, हाइड्रोजन पेरोक्साइड, नाइट्रोजन के ऑक्साइड आदि पदार्थ भी वायुमण्डल में रहते हैं। यहाँ पर वायुमण्डल के संगठन में भाग लेनेवाले पदार्थों के बारे में बतलाना अप्रासंगिक न होगा।

नमी—वायुमण्डल में नमी का मात्रा आपेक्षिक आर्द्रता में व्यक्त की जाती है। यह हवा में विद्यमान आर्द्रता तथा उस तापक्रम पर वायु में समा सकनेवाली महत्तम आर्द्रता का अनुपात है। ५०% आपेक्षिक आर्द्रता से हमारा अभिप्राय वायु को नमी से संपृक्त करने के लिए अपेक्षित आर्द्रता का ५०% भाग वायु में नमी के रूप में जलवाष्प अर्थात् भाप का मौजूद रहना होता है। साधारण तौर पर वायु में आर्द्रता उसके आयतन के एक प्रतिशत भाग से कम होती है। अधिक नमीवाले जलवायु में यह ४% तक पहुँच जाती है। मरुस्थलों की हवा में नमी की मात्रा बहुत कम होती है। सामान्यतः वायु में महत्तम नमी का तीन-चौथाई भाग रहता है, पर मरुस्थलों में यह ९% तक ही रह जाता है। हमारे घरों के कमरों में हवा तब आराम पहुँचानेवाली होती है जब उसका तापक्रम ७०° फेरेनहाइट तथा ४०% आपेक्षिक आर्द्रता हो।

धूल—वायुमण्डल में सदैव धूल के रूप में निलंबित ठोस पदार्थों के कण होते हैं। हवा में इनकी मौजूदगी के कारण ही सूर्यास्त काल का लाल दृश्य बनता है। धूल के ये कण हवा में नमी के संघनन के केन्द्र-विंदुओं का काम भी करते हैं। यदि हवा में ये कण न हों तो नमी किसी भी सतह पर संघनित हो सकती है और वर्षा की बूँदों तथा हिम के रूप में जलपात संभव नहीं हो सकेगा। वायु में धूल की मात्रा का कोई निश्चित परिमाण नहीं।

ऑक्सिजन तथा नाइट्रोजन—हवा में इन दोनों गैसों का अनुपात आयतन के लिहाज से २१ और ७८ तथा मात्रा या भार के अनुसार लगभग २३ और ७६ का है। पहले लोगों का यह विचार था कि समय व स्थान के अनुसार इन दोनों गैसों का परिमाण बदलता रहता है; यही नहीं, ऋतु के अनुसार भी इसमें परिवर्तन होता है। परन्तु अनुसंधान से यह पता लगा है कि इन दोनों तत्त्वों के परिमाण में विभिन्न स्थानों में बहुत कम अंतर पाया जाता है। समुद्री सतह के पास के स्थानों में एकत्र वायु में आक्सिजन तथा नाइट्रोजन के आपेक्षिक परिमाण बहुत कुछ—यद्यपि सर्वथा नहीं—स्थिर-से होते हैं।

कार्बन डाइ-ऑक्साइड—कार्बन डाई ऑक्साइड गैस कार्बन एवं कार्बन के प्रांगारिक अर्थात् ऑरगेनिक पदार्थों के जलने से बनती है। कोयला, तेल एवं गैसोलीन अर्थात् पेट्रोल जब जलते हैं तब वे हवा में कार्बन डाई ऑक्साइड का परिमाण बढ़ा देते हैं। हम जब साँस लेते हैं तब निकलनेवाली साँस में कार्बन डाई ऑक्साइड की काफी मात्रा होती है। ऐसा होने पर भी क्या कारण है कि वायुमण्डल में गैस का परिमाण खतरनाक अवस्था तक नहीं पहुँच पाता? इसके लिए हमें पेड़-पौधों का आभार मानना चाहिए। वे कार्बन डाई ऑक्साइड के कार्बन से स्टार्च व शर्करा बनाते हैं और इस प्रक्रिया में वे ऑक्सिजन को हवा में वापस पहुँचा देते हैं। वायु में कार्बन डाई ऑक्साइड का परिमाण उसके आयतन का ०·०३५% होता है। शहरों की हवा में देहात की वायु की अपेक्षा इस गैस का परिमाण अधिक होता है। पर वायु के प्रसारण से उसमें यह गैस अधिक इकट्ठी नहीं हो पाती। हाँ, जिन घरों में हवा के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आवागमन का उचित प्रबंध नहीं होता, उनमें हवा में यह गैस काफी मात्रा में बढ़ जाती हैं। अधिक ऊँचाई वाले स्थानों की अपेक्षा समुद्री तल के स्थानों की वायु में यह गैस अधिक मात्रा में होती है। शहरों में जब कुहरा छाया रहता है तब वायु के आयतन का सात या आठ प्रतिशत कार्बन डाई ऑक्साइड हो जाता है। बुरी तरह बंद घरों में सामान्य से लगभग दसगुनी मात्रा में कार्बन डाई ऑक्साइड हवा में बढ़ जाता है।

ओज़ोन—वायुमण्डल में ओज़ोन की मौजूदगी हवा में विद्यमान ऑक्सजन में विद्युत् विसर्ग (तडित्) के कारण होती है। यद्यपि परिवर्त्त वायुमण्डल में ओज़ोन का औसत परिमाण वायु के प्रति एक करोड़ भाग में एक से अधिक नहीं होता, पर वह समताप मण्डल में अधिक परिमाण में मिलता है। यदि वायुमण्डल में ओज़ोन न होता तो पृथ्वी पर का जीवन कुछ और ही तरह का होता। यह इसलिए है कि ओज़ोन सूर्य के प्रकाश का नील-लोहितोत्तर (अल्ट्रा-वायोलेट) भाग का शोषण कर लेता है। ऐसा न होने पर जीव-विकास पर अल्ट्रा-वायोलेट प्रकाश का बहुत बड़ा भारी प्रभाव पड़ा होता।

हाइड्रोजन पेरोक्साइड तथा नाइट्रोजन के ऑक्साइड—ये यौगिक भी वायुमण्डल में ओज़ोन की तरह ही विद्युत् विसर्ग होने अर्थात् बिजली चमकने से बनते हैं। उष्ण प्रदेशों के वायुमण्डल में स्वतंत्र रूप से नाइट्रिक अम्ल अर्थात् शोरे के तेज़ाब का मिलना भी बताया जाता है, पर साधारणतः यह अमोनिया के साथ मिला हुआ होता है। वर्षा के समय अमोनियायुक्त नाइट्रोजन के तीन पौंड व शोरे के अम्ल की एक पौंड मात्रा पृथ्वी पर प्रति एकड़ हर साल पहुंच जाती है। देहातों में, मिट्टी में वर्षा से प्रति वर्ष चार से छः पौंड तक नाइट्रोजन यौगिक रूप में मिल जाता है।

अमोनिया—वायुमण्डल में अमोनिया जैविक विघटन के फलस्वरूप मिलता है। यह वर्षा के समय मुख्यतः अमोनियम नाइट्रेट, पर कभी-कभी अमोनियम सल्फेट या अमोनियम क्लोराइड के रूप में धरती पर वापस आ जाता है। अमोनियम नाइट्रेट तथा अमोनियम सल्फेट मिट्टी को उर्वरा बनाने के लिए बड़ी अच्छी खाद का काम करते हैं।

हाइड्रोजन तथा हाइड्रोकार्बन—हवा में हाइड्रोजन व हाइड्रोकार्बन बहुत कम मात्रा में होती है। एच० हेन-राइट ने सन् १९०४ में प्रति सौ घन मीटर हवा में २·६ ग्राम तक फार्मलीहाइड की विद्यमानता मालूम की। ए० गोटियर ने सन् १९०१ में प्रति सौ लीटर हवा में लगभग १९ घन सेंटीमीटर हाइड्रोजन, १२·१ घन सेंटीमीटर मीथेन, १·७ घन सेंटीमीटर बेन्जीन तथा संबंधित हाइड्रोकार्बन की उपस्थिति मालूम की। यह मात्रा कुछ अधिक प्रतीत होती है। वायु में थोड़ा कार्बन मोनोक्साइड भी पाया जाता है।

गंधक के यौगिक—नगरों की हवा में सल्फर डाई-ऑक्साइड, हाइड्रोजन सल्फाइड तथा थोड़ा गंधक का अम्ल भी रहता है, इनकी मात्रा स्थान तथा समय के अनुसार बदलती रहती है। औद्योगिक नगरों में ये वायु में अधिकतः पाये जाते हैं। बेरिंगटन के अनुसार लगभग १७ पौंड सल्फर ट्राईऑक्साइड प्रति साल प्रति एकड़ जमीन पर वायुमण्डल से पहुँचता है।

क्लोरीन के यौगिक—वायु में, विशेषतः समुद्र के पास की हवा में कुछ क्लोरीन की मात्रा भी रहती है। हवा में नमक की मात्रा समुद्र के निकट अधिक और उससे दूर के स्थानों में कम होती है। समुद्र से चलनेवाली हवा में नमक का परिमाण कुछ अधिक होता है। जिन नगरों में रासायनिक उद्योग बड़े परिमाण में चलते हैं, उनकी वायु में कुछ नमक का अम्ल भी स्वतंत्र रूप में मिलता है।

निष्क्रिय गैसें—वायुमण्डल में ये गैसें थोड़ी मात्रा में ही होती हैं। आर्गन ०·९५%, हीलियम ०·०००५%, नियन ०·००१२% परिमाण में तथा क्रिप्टन व जेनन के लेशमात्र ही पाये जाते हैं,। ये सब रासायनिक और निष्क्रिय तत्त्व हैं।

वायु मिश्रण है या यौगिक ?—हवा का लगभग एक-सा संगठन होने के कारण भ्रांतिवश यह मान लिया जा सकता है कि वायु सम्भवतः एक यौगिक है। वस्तुतः हवा एक मिश्रण मात्र है। इस बात का सबसे बड़ा सबूत यह है कि वायु के आंशिक द्रावण से जो द्रव मिलता है, वह केवल ऑक्सिजन होता है। यदि वायु यौगिक होती तो द्रावण के बाद भी उसमें ऑक्सिजन तथा नाइट्रोजन की मात्रा समान होती। द्रव वायु के आंशिक वाष्पीभवन व पानी में वायु की घुलनशीलता से भी यही सिद्ध होता है कि वायु एक मिश्रण मात्र है। पानी में घुली हुई हवा में ऑक्सिजन की मात्रा बहुत अधिक होती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सीमित ज्योति जगा क्या होगा ?

श्री स्वर्णकिरण

सीमित ज्योति जगा क्या होगा ?
ये उड़नेवाले क्षण उड़ते ही जायेंगे,
अपने बिस्तर पर लेटे रह
इन्हें पकड़ना क्या थोड़ा भी संभव होगा ?
आत्मवेदना का कुहरा क्या घनीभूत है,
ठंढक अधिक या कि यह कम है,
केवल रुककर दोष देखने से क्या होगा ?
यह जलता अलाव, आलू पकते जाते हैं,
लोग फँसे हैं बातचीत में,
कहाँ से कहाँ पहुँच रहे हैं कितने सक्रिय !
भीतर है जो शेष थकावट
कहाँ दूर होने का नाम तनिक लेती है ?
किंतु झलकता रस कोई है,
टूटा मन विभोर होता है,
चिड़ियों की चहकन फेंकती अमृत ऊपर से,
या कोई भीतरी स्रोत जल का
बह करके
सूखापन सरसित करता है ?
सीमित...

ऊब डूब कर अपने में ही रहें
न देखें उनको, उनको
या फिर उनको,
तेज चाल से जाते बच्चे,
चकित खड़े बूढ़े,
ये युवक क्रुद्ध क्योंकर हैं ?
ये युवतियाँ सोचती क्या हैं ?
अप्रतिहत गति से ये मंगल स्वर गुंजित हैं
यहाँ, वहाँ, सर्वत्र !
भूल हम क्यों दुहराएँ,
या क्यों बैठे रहें मात्र मुँह को लटकाये ?
भागा जाता है भय का यह सर्प ससर कर,
आश्वासन ये कितने हितकारी हैं ?
क्यों न साधना को उद्दीपित करें
आत्मबल की गंगा को जाग्रत करके
नया भगीरथ हम कहलाएँ !

हवा की अनिवार्य उपयोगिता—हवा जीवधारियों के लिए अत्यन्त आवश्यक है। आदमी कुछ खाये बिना कई दिन बिता सकता है, पानी पिये बिना कुछ समय रह सकता है, पर हवा के बगैर उसका जीवन तत्काल खतरे में पड़ जाता है। ऑक्सिजन को प्राणवायु की संज्ञा दी गयी है। उसीके कारण भोज्यपदार्थों का जारण अर्थात् ऑक्सिडेशन होता है और उससे उत्पन्न ताप से शरीर में शक्ति का संचार होता है। हवा रक्तशुद्धि के लिए नितान्त आवश्यक है। यह रक्त में से कार्बन डाई ऑक्साइड को अलग करती है और रक्त के हीमोग्लोबिन में ऑक्सिजन का संचार करती है। रक्त में हीमोग्लोबिन की विद्यमानता उसे लाल रंग प्रदान करती है। रक्त शरीर के विभिन्न अंगों को ऑक्सिजन पहुँचाने का काम करता है। अतः वायु के अभाव में तत्काल मरण अवश्यम्भावी है। पेड़-पौधे भी मनुष्य की तरह साँस लेते हैं और उन्हें भी ऑक्सिजन की जरूरत पड़ती है, जो हवा से उन्हें मिलता है। पेड़-पौधे वायु में विद्यमान कार्बन डाई ऑक्साइड को लेकर उसे स्टार्च या श्वेतसार में बदल देते हैं और ऑक्सिजन को वायु को सौंप देते हैं। यह प्रक्रिया सूर्य के प्रकाश में होती है। इसे प्रकाश संश्लेषण अर्थात् फोटोसिंथेसिस कहते हैं। इस प्रक्रिया में वनस्पतियों में विद्यमान हरे रंग-वाले पदार्थ क्लोरोफिल की उपस्थिति अनिवार्य है। यदि पृथ्वी पर वायुमण्डल का अभाव होता तो अन्य ग्रहों की भांति पृथ्वी भी जीवन-हीन होती।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पानी का प्यासा रेगिस्तान बाढ़ की चपेट में

श्री भूरचन्द जैन

बलबलाते रेतीले टीबों, ऊबड़-खाबड़ रास्तों, कँटीली झाड़ियों, यातायात के साधनों के साथ-साथ प्राकृतिक भीषण अकाल से पीड़ित रहनेवाले राजस्थान का पश्चिमी भूभाग सदैव पानी की एक-एक बूँद के लिए तरसता रहा है। कई वर्षों से वर्षा के अभाव में इस क्षेत्र के तालाब सूखे रहे, कुओं का पानी पेंदे के नीचे बैठ गया, बाँध खाली के खाली रहे, खड़ीन कभी भरे नहीं, नदी-नाले कभी चले नहीं और चारों ओर पीने के पानी के लिए त्राहि-त्राहि मची रही। वर्षा के अभाव के कारण चारे एवं पीने के पानी की कमी हो गयी और करोड़ों रुपयों का अमूल्य पशु-धन धरती माता की गोद में करुणा के साथ सो गया। यहाँके लोगों ने अकाल के कारण दर-दर की ठोकरें खाकर भी अपनी मातृभूमि को छोड़ना पसन्द नहीं किया। दुःख के दिनों में रूखी-सूखी खाकर, परिश्रम कर अपने मनोबल को कभी गिरने नहीं दिया। इस क्षेत्र के लोगों ने कभी स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि रेगिस्तान के ऊँचे-ऊँचे रेतीले टीबों में कभी भीषण पानी की बाढ़ भी आवेगी जिसमें अपने अमूल्य पशुधन के साथ-साथ जानमाल से भी हाथ धोना पड़ेगा। आज राजस्थान का पश्चिमी भूभाग भीषण बाढ़ की चपेट से गुजर रहा है। पानी की भीषण बाढ़ के कारण ऊँचे-ऊँचे रेतीले टीबों का नामोनिशान नहीं रहा है। सभी तालाब लबालब भर गये हैं, कई खड़ीन टूट-टूट-कर मैदान बन गये हैं, कुओं का पानी ऊपर से बह रहा है। बाँधों के टूटने के समाचार मिल रहे हैं। जो नदी कभी चलती नहीं थी आज वह अपने किनारे काटती हुई कई मीलों के क्षेत्र में विनाश लीला फैला चुकी है। पानी जो कभी रेगिस्तान के लिए वरदान का काम करता था, आज तबाही करने पर उतर आया है। चारों ओर कच्चे-पक्के मकानों के गिरने के दृश्य, खेतों में लहलहाती फसल की तबाही, कच्ची-पक्की सड़कों का विनाश, बिजली व टेलीफोन के खम्भों का धराशायी होना, पशुओं का तड़प-तड़पकर कालग्रस्त होना

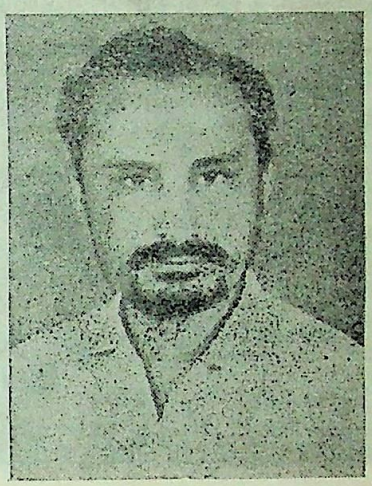

श्री भूरचन्द जैन

और नर-नारियों की जीवन-लीला का समाप्त होना ऐसे दृश्य हैं जो आज आँखों के सामने दिखाई दे रहे हैं।

पश्चिमी राजस्थान के जैसलमेर जिले में कई वर्षों में पहली बार वर्षा हुई। वह आरम्भ में शुभ शकुनों के रूप में दिखायी दी, लेकिन लगातार होने के कारण उसने तबाही फैला दी। यही हाल भारत के सीमावर्ती, सीमा प्रहरी एवं १९६५ एवं १९७१ के भारत-पाक संघर्षों में वीरोचित इतिहास बनानेवाले बाड़मेर जिले का हुआ जिसका प्रत्येक व्यक्ति वर्षा की राह निहार रहा था और आज प्रभु से अनुनय-विनय कर रहा है कि हे प्रभु, अब नहीं बरसना।

बाड़मेर जिले में वर्षा का वार्षिक औसत मात्र दस इंच ही है, लेकिन रजत जयन्ती वर्ष की समाप्ति के तत्काल पश्चात् १५ अगस्त '७३ को ही जैसलमेर से तेज आँधी और तूफान के साथ बाड़मेर की शिव तहसील के रतखुरिया गाँव में भीषण वर्षा आरम्भ हो गयी। उसके पश्चात् १६ से १८ अगस्त '७३ तक बाड़मेर जिले के कई भागों में वर्षा इतनी अधिक मात्रा में हुई कि २७ वर्ष पूर्व अगस्त १९४४ में चौहटन में अधिकतम अंकित १४ इंच वर्षा के कीर्तिमान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

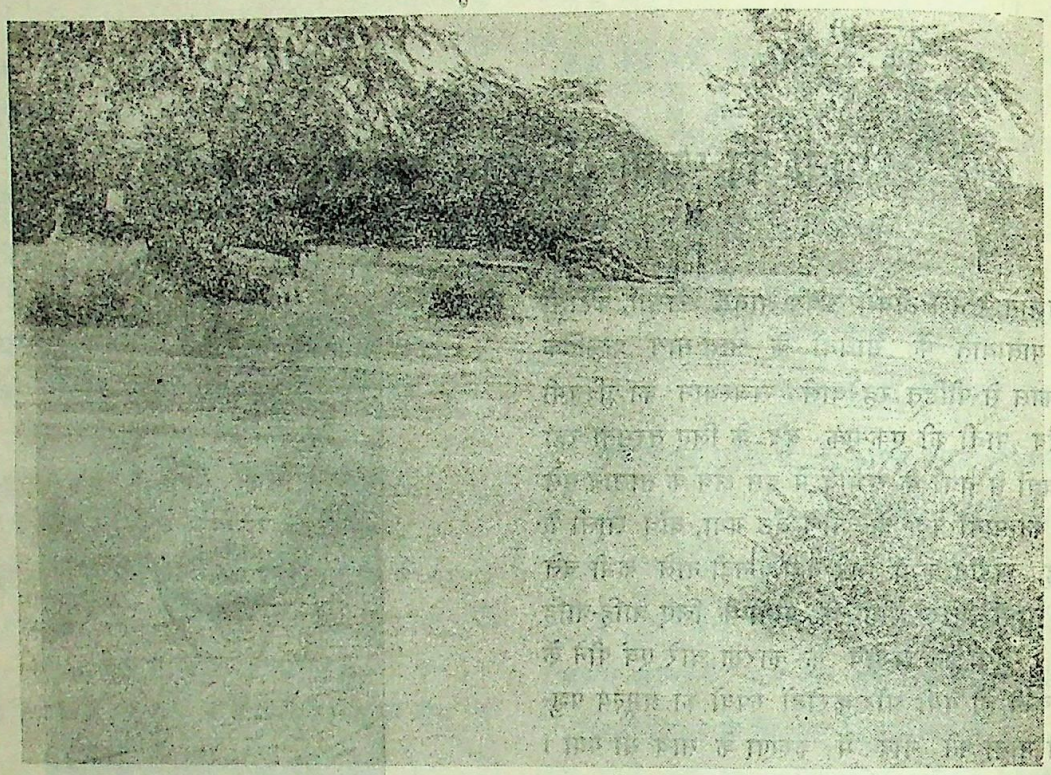

जिसमें पीने के पानी का भी कष्ट था उस बालोतरा (बाड़मेर) क्षेत्र का एक गाँव बाढ़ की चपेट में।

को पीछे छोड़कर आगे बढ़ गयी। इस अवधि में सबसे अधिक वर्षा सिवाना में १७ इंच अंकित की गयी। बाड़मेर में १५ इंच, चौहटन में १३ इंच और शिव में ११ इंच। वर्षा भयंकर ओलावृष्टि, तेज बौछारों के साथ विनाश करती हुई ३६ घंटों से भी अधिक समय तक जनमानस के मनमयूर को कंपाती हुई होती रही। जिले के पशु लगातार इस वर्षा से भीगकर अपने प्राण त्याग रहे थे। हजारों की तादाद में रेगिस्तान का अमूल्य पशुधन पानी की बौछारों से धरती की गोद में सदा के लिए सो गया। सूखी नदी नालों में, बाँधों के नीचे, नदी के तटों पर, वृक्षों की छाया में विश्राम करता पशुधन अचानक आनेवाली बाढ़ में बहकर रेगिस्तान की गोद को सूनी कर गया। बाड़मेर जिले के पिछले अकालों में कालग्रस्त होने वाला पशुधन वापिस पनप ही नहीं पाया था कि इस बाढ़ ने तो रहे-सहे परभी पानी फेर दिया। रेगिस्तान को पशुधन की दृष्टि से कंगाल बना दिया।

रेगिस्तान में आई अचानक बाढ़ ने पशुधन के अतिरिक्त जनसमूह का भक्षण करना भी शेष नहीं रखा। ढाणी-ढाणी, गाँव-गाँव, कस्बों एवं शहरों में बने हजारों की तादाद में कच्चे मकान तत्काल ढह गये, टूट गये, पानी के साथ बह गये, दब गये। जनता का जीवन अस्त-व्यस्त हो गया। बाड़मेर नगर में तीन पक्के मकानों के ढह जाने से ग्यारह स्त्रियों, पुरुषों एवं बच्चों की जीवन-लीला समाप्त हो गयी। आज भी इसके शिकार पाँच स्त्री-पुरुष चिकित्सालय में मृत्यु से संघर्ष कर रहे हैं। जिले के जागसा में नव, मेली में तीन, बालोतरा में दो, आसातेरा में दो, सिवाना दाखा, बूरीवाड़ा कुण्डल, चौहटन, जसोल एवं गांधव में एक-एक व्यक्ति के इस बार की भीषण वर्षा से आनेवाली बाढ़ एवं मकान गिरने से मरने के दुखद समाचार मिले हैं। जानमाल की तबाही का तो कहना ही क्या? ग्रामीण क्षेत्रों के कच्चे मकान इतने क्षतिग्रस्त हो गये या गिर पड़े हैं कि जैसे किसी आक्रमणकारी ने बदले की भावना से प्रत्येक घर को तहस-नहस कर दिया हो। लेकिन यहाँ तो इससे भी अधिक बदतर स्थिति हो गयी है। मकान तो टूट गया, सामान भीग गया, खाद्यान्न बह गया और जो कुछ था वह भी इस बाढ़ ने नहीं छोड़ा। इस कंगाली में भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

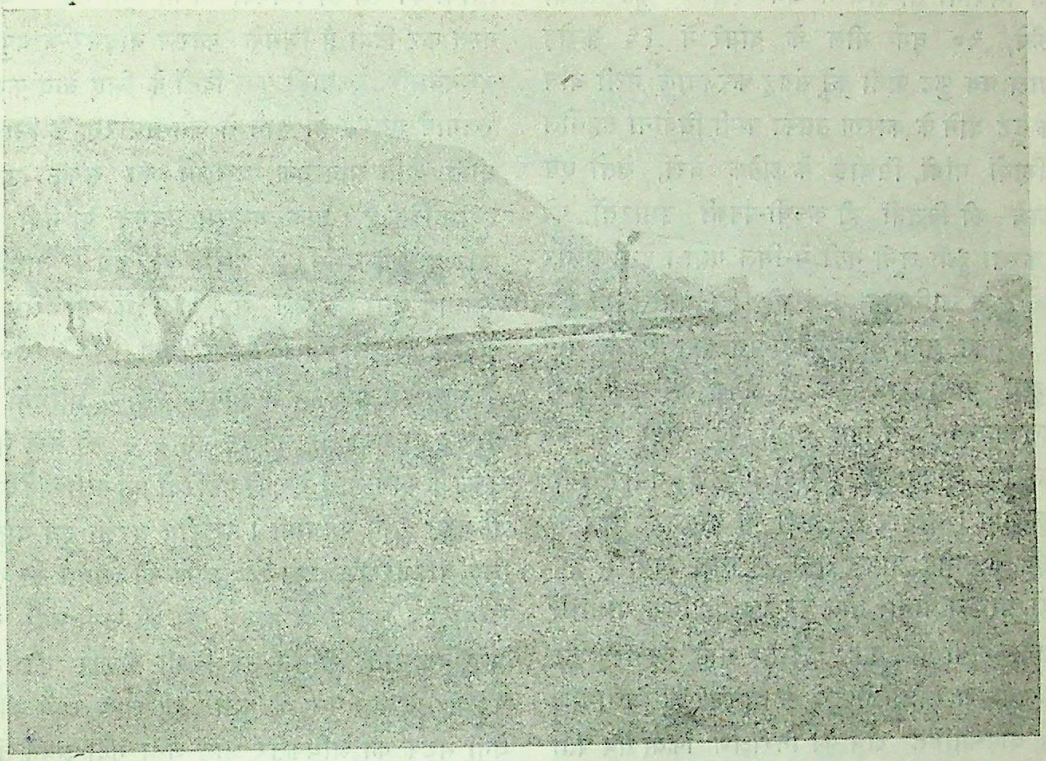

बाड़मेर जिले की बाढ़ से बिजली व टेलीफोन के खंभों को भीषण क्षति।

लोगों ने अपने धैर्य, मनोबल एवं आत्मविश्वास को अभी तक नहीं छोड़ा है। बाड़मेर के प्रशासनतंत्र की कार्य-क्षमता एवं तत्कालीन सहायता के कारण लोगों को खाद्यान्न सामग्री एवं अन्य सहायता तत्काल मिलने से उन्हें भूख-प्यास से मरने से बचा दिया है। बाढ़-पीड़ितों की राहत का काम अभी जारी है। इस भीषण बाढ़ में पैदल, वाहन या हेलीकोप्टर जो भी हाथ लगा, उससे राहत पहुँचाने में सहायता ली गयी।

बाड़मेर जिले की पाँचों तहसीलों का कोई न कोई भाग भीषण बाढ़ की चपेट में आ गया है। इस जिले में बाढ़ का आरम्भ सम्पूर्ण रेगिस्तानी कहलानेवाली शिव तहसील से ही हुआ। यहाँ का पानी बहता हुआ शिव तहसील के कई गाँवों और ढाणियों को तबाह करता हुआ, सड़क मार्ग को तोड़ता हुआ, बिजली व टेलीफोन के खम्भों को उखाड़ता हुआ बाड़मेर नगर के समीप कवास, उतरलाई एवं जीप्सम हाल्ट तक रेलवे पटरी तक जा पहुँचा और बस्ती को भी चपेट में ले आया। शिव की बाढ़ और शिव के विशाल तालाब के ऊपर से पानी बहने के कारण सम्पूर्ण शिव बस्ती पानी से इस प्रकार घिर गयी जैसे एक छोटा समुद्र बन गया हो और उसके बीच शिव में बने मकान एवं इमारतें टापू की भाँति दृष्टिगोचर हो रही थीं। इसी प्रकार का दृश्य बाड़-मेर जिले के सिणधरी, भूखा, बगतसिंह, छापरा, आसाडा, दाखा, जागसा ऊँचियों की ढाणी, तिलवाड़ा, चौहटन, बालोतरा, खंडप वामसीन, मजल, राखी, समदड़ी आदि गाँवों एवं कस्बों में देखने को मिलता था। यहाँ के लोग चार-पाँच दिनों तक बाढ़ के पानी से घिरे रहे। कुछ अभी तक (सितम्बर के मध्य तक) पानी से घिरे हुए हैं। इस संकट में फँसे लोगों को सरकार ने हेलीकोप्टर से खाने की सामग्री गिरायी। उनके दुख-दर्द का निरीक्षण कर तत्काल राहत पहुँचाने की व्यवस्था आरम्भ कर दी। बाढ़-पीड़ितों के लिए खाद्य सामग्री के रूप में गुड़, चना, पूड़ियाँ, बिस्कुट आदि गिराये अथवा जहाँ सम्भव था वहाँ उन्हें सड़क मार्ग से पहुँचाया।

बाड़मेर जिले के लिए बरसाती लूनी नदी कृषि के लिए बड़ी उपयोगी है। इस बार वह कृषि-विकास के स्थान पर विनाश लेकर आयी। जिले में अधिक वर्षा के कारण १६ व १७ अगस्त तक इस नदी का जलस्तर पाँच फीट से साढ़े बारह फीट तक पहुँच गया। १९ अगस्त को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाड़मेर की सिवाना तहसील में बने १२०० फुट लम्बे, २० फुट ऊँचे, ९० वर्ग मील के दायरे में १६ करोड़ चालीस लाख घन फुट पानी को संग्रह करनेवाले मेली बाँध के अचानक टूट जाने के कारण उसका पानी सिवाना तहसील के कई ढाणियों, गाँवों, सिंचाई के अनेक बेरों, खेतों एवं सिवाना कस्बे की कितनी ही कच्ची-पक्की इमारतों को धराशायी करता हुआ लूनी नदी में मिल गया। इसी प्रकार पचमदरा क्षेत्र का जानियाना बाँध भी १९ अगस्त को टूट गया और उसका पानी भी मूँगडा-पचपदरा सड़क मार्ग से होता हुआ बालोतरा कस्बे में प्रवेश के साथ लूनी नदी में मिल गया। उसी दिन पाली की बांडी नदी की विशाल जलराशि जोधपुर के दूधाड़ा गाँव के समीप लूनी नदी में मिल गयी। जालौर से सूकड़ी भी बाड़मेर जिले के गोलिया गाँव के समीप आकर लूनी में मिल गयी। इस प्रकार चारों ओर से पानी तीव्र वेग एवं अधिक मात्रा में आने के कारण लूनी नदी का जलस्तर साढ़े अठारह फुट तक पहुँच गया था। हेलीकोप्टर से बाड़मेर के जिलाधीश ने जब इस बाढ़-पीड़ित क्षेत्र का निरीक्षण किया तब पता ही नहीं लगता था कि लूनी नदी कहाँ है, चारों ओर जल ही जल दिखायी देता था। लूनी नदी अपने तटवर्ती क्षेत्र पर वेग से बह रही थी। इस कारण जल विशाल समुद्र की भाँति मीलों फैला हुआ दिखायी देता था।

लूनी नदी के तेज वेग, उच्च जल-स्तर के कारण इसके किनारे पर आये खेतों, खलियानों, सिंचाई के कुओं, गाँवों और ढाणियों को अधिक नुकसान हुआ। बालोतरा कस्बे में भी इसका पानी नगर के अन्य मार्ग से घुस आया। इस कारण वहाँका जनजीवन अस्त-व्यस्त हो गया। इस कस्बे के लोगों को लूनी की बाढ़ से बचाने में भारतीय सीमा सुरक्षा दल एवं समाजसेवी लोगों ने बड़ा प्रशंसनीय काम किया। इस नदी के समीप की सड़क का तो नामोनिशान ही मिट गया है और तिलवाड़ा, खेड़, बालोतरा आदि स्थानों की रेल की पटरियों को भी लूनी नदी के वेग ने क्षति-ग्रस्त कर दिया है जिसके कारण बाड़मेर-जोधपुर के बीच चलनेवाली रेलगाड़ी कुछ दिनों के लिए बन्द करनी पड़ी। रेलमार्ग अवरुद्ध हो जाने से जनसाधारण के लिए जीवनोप-योगी अति आवश्यक वस्तुओं का संकट उत्पन्न होना स्वाभाविक है। डाक-व्यवस्था अवरुद्ध हो गयी और समा-चार पत्रों के दर्शन भी दुर्लभ हो गये। बाड़मेर-जोधपुर रेलमार्ग लूनी के जल से १९६७ में भी खेड़ के समीप अवरुद्ध हो गया था। यह रेलमार्ग १९६९, ७० एवं ७१ में तथा इस वर्ष जून में भीषण रेतीली आँधियों के कारण अवरुद्ध हो गया था, लेकिन इस बार की बाढ़ ने तो मार्ग रोकने के साथ-साथ रेल की पटरियों एवं टेलीफोन के खम्भों को भी बहुत हानि पहुँचायी। राष्ट्रीय सुरक्षा एवं यातायात के लिए बाड़मेर जिले का ४८ लाख की लागत का १२६६ फुट लम्बा ३० फुट ऊँचा गांधव पुल भी लूनी नदी के पानी से प्रभावित हुआ, लेकिन उसे किसी प्रकार की क्षति नहीं पहुँची। गांधव पुल के पास ३५ लाख रुपये की लागत से बनी सड़क का अधिकतर भाग लूनी नदी अपने तीव्र वेग से बहा ले गयी।

बाड़मेर जिले की रेगिस्तानी प्यासी धरती का मनुष्य जो पानी की एक-एक बूँद के लिए तरसता था, आज भीषण बाढ़ की तबाही से कराह रहा है। इस बार की बाढ़ से जानमाल के नुकसान के साथ-साथ कृषि की उपज एवं सिंचाई के साधनों को बहुत नुकसान पहुँचा है। यह बाढ़ इस समय विनाश का रूप लिए हुए है, किन्तु सम्भव है आगे कई वर्षों तक कृषि को विकास के लिए लाभदायक हो। बाड़मेर जिले का नागरिक अकाल, महामारी एवं भारत-पाक संघर्ष से भयभीत नहीं हुआ था, लेकिन इस बार की बाढ़ ने उसे पस्त कर दिया। फिर भी सदैव संकटों से लड़नेवाला बाड़मेर जिले का नागरिक अब भी अपने मनोबल को ऊँचा बनाये हुए है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीमहावीर स्वामी की देन

श्रीराजेन्द्र प्रसाद जैन

महावीर की देन कहो या जैनधर्म की देन कहो बहुत कुछ एक ही बात है क्योंकि भगवान् महावीर ने किसी नये ग्रन्थ की स्थापना नहीं की थी। जैनधर्म अनादि और अनन्त है। समय-समय पर जब उसका ह्रास होता है तब उसमें नवजीवन का संचार करने के लिए तीर्थङ्कर अवतरित होते रहते हैं। इस कल्प में इस प्रकार चौबीस तीर्थङ्कर हो चुके हैं जिनमें वर्द्धमान अन्तिम थे, जिनका एक नाम महावीर भी है जो अधिक प्रसिद्ध है।

ब्रिटिश युग से पूर्व इन चौबीस तीर्थङ्करों में सबसे अधिक चर्चित प्रथम तीर्थङ्कर भगवान् ऋषभदेव व तेईसवें तीर्थङ्कर भगवान् पार्श्वनाथ थे। संस्कृत व प्राकृत के लगभग ८०% स्तोत्र इन्हीं दोनों तीर्थङ्करों की वन्दना में मिलते हैं। भगवान् ऋषभदेव का उल्लेख भागवत तथा विष्णु पुराण में विष्णु के आठवें अवतार के रूप में आया है। जैनी अब से २० वर्ष पूर्व तक लोक में पारसनाथ के उपासक के रूप में प्रसिद्ध थे। इसी समय की छपी जैन पुस्तक में इन पंक्तियों के लेखक ने ऐसा पढ़ा था। प्रश्न—संसार का सबसे ऊँचा पर्वत कौन सा? उत्तर—हिमालय। प्रश्न—सबसे प्रसिद्ध तीर्थङ्कर कौन से? उत्तर—भगवान् पार्श्वनाथ। वैसे जैनधर्म के अनुसार तीर्थङ्करों में भेद-बुद्धि करना पाप है। सभी तीर्थङ्कर एक से गरिमामय एवं पूजनीय हैं। हमने केवल ऐतिहासिक प्रकरण से ऐसा लिखा है। हमारी सभी में समान रूप से पूज्य भावना है।

सम्प्रति भगवान् महावीर की अधिक चर्चा हुई है। मुसल्मान और ईसाई अपने अन्तिम पैगम्बर को ही महत्त्व देते हैं। सो मुसल्मानों ने तो अमुस्लिम भारत के इतिहास में कोई रुचि ली नहीं, परन्तु यूरोपीय विद्वानों की अमुस्लिम भारत के इतिहास में इतनी अधिक रुचि रही है कि प्राचीन भारत, राजपूतों, सिक्खों, मरहठों व विजयनगर का जो भी इतिहास उपलब्ध है वह बहुत कुछ उन्हीं के परिश्रम का फल है। यह दूसरी बात है कि इस सन्दर्भ में उन्होंने अनेक भ्रामक सिद्धान्तों व मूर्खताओं को जन्म दिया है। इन्हीं यूरोपीय विद्वानों द्वारा निर्मित वातावरण के कारण आजकल भगवान् महावीर की चर्चा अन्य तीर्थङ्करों की अपेक्षा अधिक होती है। गान्धीजी का अहिंसावाद और भगवान् महावीर का क्रान्तिकारी रूप भी इस चर्चा के दो अन्य प्रमुख कारण हैं।

महावीर क्रांतिकारी थे इसमें कोई सन्देह नहीं, परन्तु किस प्रकार के क्रान्तिकारी थे यह भी समझना आवश्यक है। एक क्रान्ति विदेशी प्रभाव से अभिभूत होकर उसके अन्धानुकरण की होती है जैसी इस समय भारत में चल रही है। महावीर ऐसे क्रान्तिकारी नहीं थे और न उनके युग में भारत पर कोई विदेशी प्रभाव था। भारत ही उस समय जगद्गुरु था। यह आश्चर्य है कि मुहम्मद और ईसा के पूर्ववर्ती और महावीर तथा बुद्ध के समकालीन यवन नाटककार ऐस्काइलस (५२५-४५५ ई० पू०) ने एशिया को पुन्यभूमि कहा है—'होली ऐशिया इज़ हार्डबाइ' (पुन्यभूमि ऐशिया भी निकट है)। महावीर की क्रान्ति भारत की धरती फोड़कर उठी थी। वह किसी चकाचौंध से भरमाये हुए बोर्जुआ द्वारा लादी जानेवाली क्रान्ति नहीं थी। सम्यक् क्रान्ति मान्यता, संस्कार, परम्परा, व्यवहार, बुद्धि और आवश्यकता के अन्तर्विरोध को दूर करने का प्रयत्न करती है। साथ ही साथ वह व्यक्ति, समाज और उसके विभिन्न वर्गों में सामञ्जस्य स्थापित करती है। आज भारत में चारों ओर अन्तर्विरोध है। हमारे शास्त्र कुछ कहते हैं, राज्य कुछ कहता है। हमारी मान्यताएँ हमारे व्यवहार के विरुद्ध हैं। हमारी परम्पराएँ व हमारे संस्कार समय को स्वीकार नहीं। महावीर के समय में हमारी अनेक मान्यताएँ हमारे संस्कारों के विरुद्ध थीं। नियोग आर्य संस्कार व पातिव्रत तथा सतीत्व की उदात्त भावनाओं के विरुद्ध है और याज्ञिक बलि तो आर्योचित संस्कार के विरुद्ध होते हुए व्यवहार में भी आ चुकी थी और उसने एक गर्वीली परम्परा का रूप धारण कर लिया था। महावीर ने जो याज्ञिक बलि के विरुद्ध आन्दोलन छेड़ा उसका केवल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अहिंसात्मक रूप ही विद्वानों ने देखा है। उसका वह रूप नहीं देखा जो आर्य संस्कार का रक्षक है। अहिंसा कोई जैनधर्म का ही सिद्धान्त नहीं है। वेद, स्मृति, पुराण सभी ने अहिंसा को परम धर्म बतलाया है। यदि पशुबलि आर्य संस्कार के विरुद्ध न होती तो वैदिकों को यह कहने की आवश्यकता न होती—वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति। पशुबलि का विधान इस्लाम में भी है परन्तु मुसल्मान ऐसा नहीं कहते—कुरानी हिंसा हिंसा न भवति। इसी से समझा जा सकता है कि महावीर ने वेद, ईश्वर आदि को क्यों स्वीकार नहीं किया। वेद जिन संस्कारों को उत्पन्न करना चाहते हैं वेद के नाम पर उन्हींको नष्ट किया जा रहा था। राष्ट्र के प्राण उसके संस्कार हैं। महावीर ने उन्हींकी रक्षा को सर्वोपरि ठहराया। बुद्ध का भी यही दृष्टिकोण था। इसको दर्शाने के लिए एक कथा कही जाती है। एक बार यज्ञ में भगवान् बुद्ध को आमन्त्रित करते हुए लोगों ने उनसे कहा, "भगवन्, यह मांस-मदिरा ग्रहण करें।" बुद्ध ने उत्तर दिया, "तुम्हारी मांस-मदिरा को नमस्कार है।" वे बोले, "भगवन्, यह तो यज्ञ का भाग है।" बुद्ध ने कहा, "ऐसे यज्ञ को नमस्कार है।" लोगों ने कहा, "हमारा यज्ञ वेद-विहित है।" बुद्ध ने कहा, "ऐसे वेद को नमस्कार है।" उन्होंने कहा, "वेद तो ईश्वर की वाणी है।" बुद्ध ने उत्तर दिया, ऐसे ईश्वर को नमस्कार है।"

शास्त्र की अपेक्षा किसी जाति के संस्कार अधिक बलवान् सिद्ध होते हैं और उसे पतन के गड्ढे में गिरने से रोकने में अधिक सहायक होते हैं। यह भगवान् द्वारा उत्पन्न क्रान्ति ही थी जिसने देश की नरबलि, पशुबलि, नियोग, वाम मार्ग, अघोर पन्थ, जगन्नाथ पुरी के पहियों के नीचे कूदकर मर जाने, अनेक प्रकार के पुत्रों और अनेक प्रकार के विवाहों से राष्ट्र की रक्षा की। महावीर ने संस्कार और मान्यता तथा व्यवहार के अन्तर्विरोध को दूर कर भारत को एक बहुत बड़ी देन दी है। १२०० वर्ष के विदेशी शासन ने भी यदि हिन्दू जाति को झुकाने में अपने को अशक्त पाया तो वे हिन्दू जाति के संस्कार थे न कि शास्त्र जिनकी पहुँच स्वयं हिन्दुओं ने ही स्त्री शूद्र वेदानिधाकारी कहकर बहुत संकुचित कर दी थी और तत्पश्चात् आताताियों ने उस संकुचित परिधि को भी नष्ट कर दिया था। हिन्दू शास्त्र परस्पर विरोध से भरे हुए हैं। महावीर ने इस विरोध को दूर करने का प्रयत्न किया। जैनधर्म ने आगम का एक लक्षण यह भी बतलाया है कि उसमें पूर्वापर विरोध नहीं होता*। जैन शास्त्रों में पारस्परिक विरोध बहुत कम है। इसी आवश्यकता को आगे चलकर वैदिकों ने भी समझा और आद्य शङ्कराचार्य से लेकर स्वामी दयानन्द तक सभी ने यथाशक्ति इस विरोध को दूर करने का प्रयत्न किया है। जैनियों ने जिन महापुरुषों और देवी-देवताओं को मान्यता दी है उनमें भी परस्पर कोई विरोध नहीं है। सभी एक लक्ष्य की ओर चलते और चलाते हैं। यूनान, रोम, मिस्र और बाबुल तथा अरब के देवी देवताओं में परस्पर विरोध था। वे केवल अलौकिक शक्तिवाले मनुष्य थे और मानवों की भाँति ही वे काम, क्रोध, मान, माया, लोभ के वश में थे। इसीलिए उनमें जनता की निष्ठा नहीं रही। वे देवता काल के गाल में समा गये और साथ में उन जातियों को भी अपने साथ ले गये। यह जैनधर्म का ही प्रभाव है कि भारतीय मनीषियों ने इन देवी देवताओं का परस्पर विरोध मिटाने में सफलता प्राप्त की और हम कहने लगे 'सिव द्रोही मम दास कहावा, सो नर सपनेहु मोहिं न पावा।' जैनधर्म के प्रभाव से ही भारतीय देवता धीरे-धीरे नैतिकता व अध्यात्म के स्रोत बन गये जिससे वे भी अमर हो गये और हिन्दुत्व भी अमर हो गया।

भारत में दो प्रकार के धर्म चलते थे—एक सर्व-साधारण का। यज्ञ, याग, वैदिक कर्मकाण्ड जो समझने में सरल था, आचरण में सरल था और जिसमें सारे राष्ट्र को एक सूत्र में गूँथने की शक्ति थी। दूसरा उच्च कोटि के ज्ञानियों का जिसे श्रमण संस्कृति अथवा औपनिषदिक धर्म कहा जाता है। कर्मकाण्डियों का विश्वास था कि विधिवत् यज्ञ करने से देवता प्रसन्न होते हैं। और उनकी प्रसन्नता से जीवन की सारी कामनाएँ पूर्ण होती हैं तथा मरने के पश्चात् स्वर्ग मिलता है। धीरे-धीरे इस आस्था ने इतना दुराग्रह पकड़ा कि इसका नैतिकता से कोई भी सम्बन्ध नहीं रहा। सब कुछ देवताओं की प्रसन्नता पर निर्भर है, अपने कर्म पर नहीं, और देवताओं की प्रसन्नता का भी मनुष्य के आचरण से कोई सम्बन्ध नहीं है। वे केवल कर्मकाण्ड से प्रभावित होते हैं और कौन से अथवा कैसे कर्मकाण्ड से

---

* आप्तोयज्ञमनुल्लंघ्यमदृष्टेष्टविरोधकं।
तत्त्वापदेशकृत सार्वं शास्त्रं कापथ घट्टनं॥
रत्नकरण्डप्रावकाचार॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रभावित होंगे यह सब पुरोहित वर्ग जानता है। 'समस्त जगत् देवताधीनः। तस्य देवता मन्त्राधीनः। तस्य मन्त्र ब्राह्मणोधीनः। तस्य ब्राह्मणो ममदेवताः।' यह मान्यता न केवल भारत, अपितु ईरान, मिस्र, रोम, चीन, यूनान आदि विश्व के सभी देशों में प्रचलित थी। यह मान्यता न केवल नैतिकता के प्रति उपेक्षा उत्पन्न करती थी अपितु बुद्धि को भी कुण्ठित कर रही थी और राष्ट्र की सारी सत्ता पुरोहित वर्ग के हाथों में आ गयी थी जो न तो राष्ट्र की रक्षा करने में समर्थ थे न धनोपार्जन में। इस मान्यता के विरुद्ध चीन में कनफ्यूशस ने, ईरान में जरथुस्त्र ने, यूनान में सुकरात ने तथा भारत में बुद्ध और महावीर ने क्रान्ति की। उन्होंने धर्म का सदाचार से सम्बन्ध जोड़ा, बुद्धि को मुक्त किया और वे अपनी संस्कृति व जाति को बचाने में समर्थ हुए। भारत की क्रान्ति इन अन्य देशों की क्रान्ति से कुछ और आगे गयी। उसने धर्म को आध्यात्मिकता की आधार शिला पर रखकर अमरत्व प्रदान किया, जिसकी शिक्षा उपनिषद् पहले से ही दे रहे थे। कर्मकाण्ड का लक्ष्य था सफल व सुखी जीवन और मरणोपरान्त स्वर्ग की प्राप्ति। अध्यात्मवादियों का लक्ष्य था मोक्ष। कर्मकाण्डी मनुष्य के आचरण को दो भागों में बाँटते थे—पाप और पुण्य। अध्यात्मवादी तीन में—पाप, पुण्य, अकर्म। जैनधर्म में इनके नाम हैं—शुभोपयोग (पुण्य) जिससे स्वर्ग मिलता है, अशुभोपयोग (पाप) जिससे नरक मिलता है और शुद्धोपयोग (अकर्म) जिससे मोक्ष मिलता है। समस्त कर्मों का अन्त, जिसके लिए आवश्यक है समस्त वासनाओं और समस्त कामनाओं का अन्त, मोक्ष तक ले जा सकता है जो जीवन का लक्ष्य है। पुण्य कर्म की उपयोगिता इतनी ही है कि वे शुद्धोपयोग के मार्ग में पुल का काम करते हैं। स्वर्ग की बात जनता की समझ में पहले भी नहीं आ रही थी। कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं जिसने केवल पुण्य ही पुण्य किये हों या केवल पाप ही पाप किये हों। महाभारतकार ने इसका समाधान ऐसे किया है कि जिनके पापकर्म अधिक होते हैं वे पहले स्वर्ग जाते हैं फिर अनन्त काल तक नरक में वास करते हैं और जिनके पुण्य कर्म अधिक होते हैं वे पहले नरक में जाते हैं फिर अनन्त काल तक स्वर्ग में वास करते हैं। ईसाई और मुसलमानों ने बचने के लिए देवतावाद का एक संशोधित रूप स्वीकार किया है कि ईश्वर अपने भक्तों के अपराध क्षमा कर देगा। ईसाइयों में एक मान्यता परगेट्री की भी है जहाँ पुण्यात्मा अपने पापों से शुद्ध होने के लिए कुछ समय निवास करते हैं और फिर अनन्तकाल तक स्वर्ग का सुख भोगते हैं। भारतीय मनीषियों की समझ में यह नहीं आ रहा था कि जब तक मनुष्य की वासनाएँ नष्ट नहीं होतीं तब तक वह स्वर्ग में रहकर भी कैसे सुखी रह सकता है। इस जीवन में जो पाप पुण्य किये उनके फलस्वरूप तो स्वर्ग नरक मिला, परन्तु स्वर्ग या नरक में जाकर जो हम पाप-पुण्य करेंगे उसका फल कहाँ मिलेगा। क्या स्वर्गवासी पाप कर्म अथवा ईश्वर-द्रोह नहीं कर सकता। क्या नारकी पुण्य कर्म अथवा ईश्वर-भक्ति नहीं कर सकता। स्वयं ईसाइयों व मुसलमानों के धर्म ग्रन्थ बतलाते हैं कि स्वर्ग में रहते हुए भी शैतान और उसके असंख्य साथी फरिश्तों ने ईश्वर-द्रोह किया, आदम और हव्वा की बुद्धि भ्रमित की और उन्होंने भी भूल से ईश्वर की आज्ञा का उल्लंघन किया। अतः शाश्वत सुख के लिए समस्त कामनाओं, फलतः समस्त कर्मों का त्याग आवश्यक है। गीता भी इसीकी पुष्टि करती है।

यावानर्थ उदपाने सर्वतः संप्लुतोदके।
तावान्सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः ॥२-४६॥

—सब ओर से परिपूर्ण जलाशय के प्राप्त होने पर छोटे जलाशय में जितना प्रयोजन रहता है अच्छी प्रकार ब्रह्म को जाननेवाले ब्राह्मण का भी सब वेदों में उतना ही प्रयोजन रहता है।

वेदों में सकाम कर्मकाण्ड का वर्णन है अतः जैनधर्म ने, जो मोक्ष को ही अपना लक्ष्य मानता है, उनकी आवश्यकता नहीं समझी। गीताकार ने भी ऐसा ही समझा है, परन्तु गीता ने वेदों को त्यागा नहीं। वेदोक्त यज्ञादि को किसी भौतिक लाभ की आशा से न करके केवल भगवान् की प्रीति के लिए निष्काम भाव से करने के लिए कहा है। इसमें जैन सिद्धान्त को कोई आपत्ति नहीं हो सकती। जैनी अपनी अध्यात्मिकता के उत्साह में वैदिक कर्मकाण्ड को त्याग बैठे, परन्तु आगे चलकर उन्हें भी भौतिक आवश्यकताएँ सताने लगीं। तब जैन आचार्यों ने अलग से बहुत से सकाम अनुष्ठानों की सृष्टि कर डाली। अध्यात्म के मार्ग में बहुत बड़ी अड़चन यह थी कि जब समस्त कामनाओं का क्षय हो जायगा तब फिर जीवन में आनन्द व रस कहाँ रहेगा। ऐसा आध्यात्मिक व्यक्ति जीवित ही मृत के समान होगा। परन्तु प्रत्यक्ष प्रमाण इस शंका को खण्डित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करते हैं। समस्त कामनाओं का क्षय होने पर एक अभूतपूर्व आनन्द व रस की उत्पत्ति होती है, जो अमृत जैसा शक्तिदायक भी है। विश्वास न हो तो अभ्यास करके देख लो। कुछ क्षणों के लिए तो आप अपने को संकल्प-विकल्प से मुक्त कर ही सकते हैं। ये क्षण आपके लिए अनिर्वचनीय आनन्द के देनेवाले सिद्ध होंगे। इस अध्यात्मवाद की लोकप्रियता में योग का बहुत बड़ा हाथ है। मैं यह नहीं कहता कि अध्यात्म केवल महावीर की देन है। मैं केवल इतना कहता हूँ कि अध्यात्म जिन असंख्य ऋषि-महर्षियों की देन है उनमें महावीर का योगदान भी बहुत महत्त्वपूर्ण है।

महावीर की एक बड़ी देन धर्म को सर्व-साधारण के लिए सुलभ करना है। उनके यज्ञ-विरोध का एक कारण यह भी था कि ये बहुत आडम्बरयुक्त हो चले थे और सामान्य जन के सामर्थ्य के बाहर थे। दूसरे इनके सम्पादन के लिए अनेक पुरोहितों और ऋत्विजों की आवश्यकता थी, जिनका मिलना सुलभ नहीं था। कभी-कभी तो पुरोहित वर्ग राजाओं तक का बहिष्कार कर देता था और वे बेचारे यज्ञ नहीं करा पाते थे। यज्ञों में अनेक लोग विघ्न भी डाला करते थे। अतः महावीर ने पूजा-पाठ, व्रत, जप पर बल दिया, जो प्रत्येक के लिए सुलभ थे। जप अथवा भगवान् का नाम लेने में तो कानी कौड़ी भी नहीं लगती और उसमें किसी पुरोहित की भी आवश्यकता नहीं। सम्भवतः इसी कारण गीताकार ने जप को भी यज्ञ की संज्ञा दी है और उसे सर्वश्रेष्ठ यज्ञ बतलाया है—यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि। धर्म के इस व्यक्तिपरक रूप से जहाँ धर्म सर्व-साधारण के लिए सुलभ हो गया वहाँ सामाजिकता की उस भावना का ह्रास हुआ जो यज्ञों द्वारा उत्पन्न होती थी। इसकी पूर्त्ति के लिए जैनधर्म ने सामूहिक पूजा, रथयात्रा, उच्छाव, सत्संग आदि का विधान रखा। आगे चलकर जो वैदिक आचार्यों ने संकीर्तन की प्रणाली निकाली उसमें यज्ञोंवाली सामाजिकता के साथ-साथ जपयज्ञ की सारी विशेषताएँ हैं।

धर्म सबके लिए सुलभ हो इसके लिए महावीर ने अपना उपदेश जनता की भाषा में दिया। यदि महावीर और बुद्ध न हुए होते तो जनता की भाषा में सर्वप्रथम साहित्य रचना का श्रेय मुसलमानों व ईसाइयों को मिलता और ९०% हिन्दू जनता साहित्य तथा साहित्यिक रस से भी अनभिज्ञ रह जाती। इसका यह अर्थ नहीं कि महावीर संस्कृत के प्रेमी नहीं थे। वस्तुतः प्रत्येक राष्ट्र को दो प्रकार की भाषाएँ चाहिएँ। एक लोकभाषाएँ जो एक राष्ट्र में बहुत सी हो सकती हैं और जिनमें ज्ञान के आये बिना जनता अशिक्षित रह जाती है परन्तु जो हर १०० कोश और प्रत्येक १०० वर्ष के पश्चात् नया रूप धारण करने लगती हैं। अतः एक ऐसी भाषा की भी आवश्यकता होती है जो क्षेत्र एवं काल की मार से परे हो। ऐसी भाषा हम भारतवासियों की संस्कृत है। यदि संस्कृत जैसी कोई भाषा न हो तो एक काल का ज्ञान दूसरे काल के लिए दुर्बोध हो उठेगा तथा सारे भारत की गतिविधियों की जानकारी रखने के लिए प्रत्येक क्षेत्र की भाषा सीखना आवश्यक हो जायगा। अतः संस्कृत, की उपादेयता है। जिस साहित्य की उपादेयता सारे भारत तथा आनेवाले युगों के लिए हो वह संस्कृत में आ जाना चाहिए। जैनियों ने यही किया है। उनका समस्त महत्त्वपूर्ण साहित्य या तो संस्कृत में लिखा गया है या संस्कृत में उल्था होकर आ गया है। परन्तु जनता की शिक्षा के लिए यह भी परमावश्यक है कि उसकी भाषा में भी धर्म, साहित्य, ज्ञान, विज्ञान उपलब्ध हो। जैनियों ने केवल बिहार की प्राकृत में नहीं अपितु अपभ्रंश, कन्नड़, तमिल, गुजराती, राजस्थानी व खड़ीबोली में भी विपुल साहित्य की रचना की है। खेद है कि उनके इस साहित्य की ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया। विक्रमी संवत् १७४१ (१६८४ ई०) तक की जैन रचनाएँ खड़ीबोली में मिलती हैं (संवत् सत्रह सौ इकताल। जय निर्वाण काण्ड गुण माल)। थोड़ा परिश्रम करने पर इससे भी पूर्व की मिल सकती हैं। कबीर, तुलसी और समर्थ स्वामी रामदास, सिक्ख गुरुओं तथा आर्यसमाज ने इस सन्दर्भ में जैनियों का अनुकरण करके देश की बहुत बड़ी सेवा की। शोक है कि भारत सरकार जहाँ अरबी, फारसी जैसी विदेशी भाषाओं के विद्वानों को वृत्ति देती है वहाँ प्राकृत, पाली एवं शौरसैनी, मागधी, अपभ्रंश आदि को घास नहीं डालती। जैनियों ने जिन पारिभाषिक शब्दों का आविष्कार किया उनकी ओर भी विद्वानों का ध्यान नहीं गया। आजकल हम अंग्रेजी का अनुकरण कर व्यावहारिक दृष्टिकोण, यथार्थवादी दृष्टिकोण बोलते हैं। जैनआगम में दृष्टिकोण (angle of vison) के लिए नय शब्द आया है—व्यवहार नय, निश्चय नय। गृहस्थों में जो धार्मिक दृष्टि से भिन्नस्तर (कक्षाएँ) होती हैं उनके लिए प्रतिमा और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवों के भिन्न स्तर के लिए गुणस्थान शब्द आये हैं। ऐसे और अनेक शब्द हैं जो हिन्दी को सम्पन्न बनाने में सहायक हो सकते हैं। विज्ञान में भी जैनियों की शोध महत्त्वपूर्ण है। जैनशास्त्रों के अनुसार वनस्पति में एकेन्द्रिय जीव है, जिसे आधुनिक युग में सर जगदीशचन्द्र वसु ने सिद्ध कर दिखाया है। जैन आचार्यों को कीटाणुओं का भी ज्ञान था। दूध, मक्खन आदि कुछ समय के पश्चात् उन्होंने अभक्ष्य बतलाये हैं क्योंकि तब उनमें आँख से न दीखनेवाले जीव उत्पन्न हो जाते हैं। जैन आचार्य दही के साथ दलहन खाने का निषेध करते हैं और आधुनिक विज्ञान दलहन के पौधों में सबसे अधिक बैक्टीरिया बतलाते हैं। जैन शास्त्रों ने वायुकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक और पृथ्वीकायिक जीवों को भी माना है जो बैक्टीरिया के अतिरिक्त और क्या हो सकते हैं। आधुनिक विज्ञान अग्निकायक जीवों को छोड़कर और सब को स्वीकार करता है।

अपने विचारों का प्रचार करने के लिए महावीर ने गृहत्यागी मुमुक्षु साधुओं का संगठन किया। पहले इस प्रकार के मुमुक्षु संन्यासी वनों में रहते थे। वे नगरों में बहुत कम आते थे। नगरवासी ही उनके दर्शनार्थ या ज्ञानलाभ के लिए उनके आश्रमों में जाते थे। इतनी बड़ी क्रान्ति को जन-जन तक पहुँचाने के लिए इस व्यवस्था से काम नहीं चल सकता था। ये वनवासी ऋषि दान पर निर्भर नहीं थे। ये गाय रखते थे। इनसे और वनों के कन्दमूल से इन्हें अपना भोजन इत्यादि प्राप्त करना पड़ता था, जिसमें इनका बहुत-सा समय लग जाता था। अनेक ऋषि सपरिवार वनों में रहते थे। इनके सामने सुरक्षा की भी समस्या थी। महावीर ने जिस साधुओं के संगठन को जन्म दिया था वे नगरों में रहते थे। उनके सामने भरण पोषण तथा सुरक्षा की समस्या नहीं थी। वे अपरिग्रही थे। जनता से उनका निकट का सम्पर्क था। चातुर्मास को छोड़कर वे निरन्तर ग्राम-ग्राम, नगर-नगर घूमते थे। आगे चलकर गौतम बुद्ध ने और फिर आद्य शङ्कराचार्य ने इसी पद्धति का अनुकरण किया। महावीर और गौतम बुद्ध के संघ में थोड़ा अन्तर था। जहाँ महावीर ने मुनिसंघ के लिए कठोर आचार विचार के नियम बनाये और उनका दृढ़तापूर्वक पालन कराया वहाँ बौद्ध संघ के नियमों में बड़ी शिथिलता रही। यही कारण है कि आगे चलकर उनमें से अधिकांश अनाचार के गढ़ बन गये। जैन साधुओं पर यह आक्षेप लगाया जाता है कि वे नग्न रहते हैं परन्तु आरोप लगानेवाले यह नहीं समझते कि यह नग्नता ही उनकी अनाचार से रक्षा करती है। जब भी पुरुष को कामोत्तेजन होता है तब वह उसकी इन्द्रिय द्वारा प्रकट हो जाता है जो वस्त्रों के कारण छिपा रहता है। नग्नता में कामुकता को छिपानेवाला कोई आवरण नहीं है। यही कारण है कि जहाँ वस्त्रधारी साधुओं की अनाचार की अनेक घटनाएँ देखने-सुनने में आती हैं वहाँ आजतक एक भी ऐसी घटना किसी दिगम्बर मुनि के विषय में सुनने को नहीं मिली।

वर्ण तथा जाति व्यवस्था भारतीय सामाजिक व्यवस्था का महत्त्वपूर्ण अङ्ग रहा है। इसी कारण सभी भारतीय धर्माचार्यों, राजनेताओं व समाज शास्त्रियों ने इस पर अपने विचार प्रकट किये हैं। यहाँ यह बात समझ लेनी है कि १९वीं शती से पूर्व महावीर, बुद्ध, कबीर, नानक आदि जितने भी वर्ण तथा जाति-व्यवस्था के आलोचक हुए हैं उनका असवर्ण तथा अन्तर्जातीय विवाह अथवा वर्ण वा जाति व्यवस्था के तोड़ने-फोड़ने से कोई सम्बन्ध नहीं था। उनका अभिप्राय केवल इस व्यवस्था की असंगतियों को दूर कर इसे अधिक सक्षम और न्याययुक्त बनाया था। कर्मकाण्डी संस्कृति में सारे ज्ञान विज्ञान और धर्म चर्चा पर ब्राह्मणों का ही एकाधिकार हो गया था। शूद्र तो शूद्र क्षत्रिय और वैश्य भी उससे वंचित थे। औपनिषदिक विचारधारा के मुख्य प्रवक्ता सूर्य, मनु, ऋषभ, जनक, उपकौशल, महावीर, बुद्ध, अजातशत्रु, प्रवहन आदि और भगवान् कृष्ण ये सभी क्षत्रिय थे। यह क्रान्ति महावीर से पहले ही हो चुकी थी। महावीर और बुद्ध के प्रताप से ही वैश्य वर्ग ज्ञान-विज्ञान और धर्म-चर्चा में अग्रणी हुआ। जैनधर्म के अनुसार शिक्षा का अधिकार सबको है। शूद्रों की स्थिति उठाने का भी महावीर और बुद्ध ने भरसक प्रयत्न किया। उस समय शूद्रों में निम्नलिखित वर्ग समझे जाते थे :—

१—शूद्र वर्ण

२—जातिच्युत द्विज

३—वर्णसङ्कर, दासीपुत्र, जारज सन्तानें, पौनर्भव आदि।

४—वे जातियाँ जिनसे संध्यावन्दन आदि कर्म छूट गये या जो आचारभ्रष्ट हो गयीं।

५—समस्त अहिन्दू जातियाँ।

महावीर का सिद्धान्त था कि जिन शूद्रों का आचार-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचार ऊँचा उठ गया हो उन्हें द्विजोचित सारे धार्मिक शैक्षणिक अधिकार मिल जाने चाहिये। उन्होंने ऐसे शूद्रों की सच्छूद्र नाम से अलग संज्ञा की थी।

यथायोग्यं सच्छूद्राद्यपि—जिनसेन

तथा योग्य सत्शूद्र भी दीक्षा ले सकता है।

अन्यैर्ब्राह्मणक्षत्रियवैश्य सच्छूद्रैः स्वदातृ गृहात—अनागर धर्मामृत —ले० पं० आशाधर

—मुनियों को आहार दान ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा सत्शूद्र अपने घर से दे सकते हैं।

शूद्रों को अपनाने की यह प्रक्रिया महर्षि विश्वामित्र और अगस्त्य ने आरम्भ की थी। जिस प्रकार बौद्ध व जैन धर्म का अध्यात्म औपनिषदिक विचारधारा के अङ्ग है उसी प्रकार उनका शुद्धि अभियान विश्वामित्र और अगस्त्य की परम्परा में है। यह विश्वामित्र की ही क्रान्ति का फल था कि भगवान् राम अहल्या, वानर और राक्षसों को अपना सके। विदुर उपर्युक्त क्रम सं० ३ के शूद्र थे और चन्द्रगुप्त मौर्य तथा अशोक, जो कुछ के अनुसार उपर्युक्त क्रम ३ में और कुछ के अनुसार क्रम ४ में आते हैं, महावीर और बुद्ध द्वारा उत्पन्न क्रान्ति के फलस्वरूप ही भारत की रक्षा करने एवं इतिहास में अपना नाम अमर करने में समर्थ हुए। शूद्रों को अपनाने में भी जैन धर्म और बौद्ध धर्म में मौलिक अन्तर रहा है। महावीर ने केवल उन्हीं शूद्रों को अपनाया जिन्होंने द्विजोचित आचार-विचार को स्वीकार कर लिया था। बौद्धों ने आचार-विचार पर कुछ भी बल नहीं दिया। जिसने भी बौद्ध कलमा पढ़ लिया उसी को स्वीकार कर लिया। इसका परिणाम यह हुआ कि बौद्धधर्म की भाँति जैन धर्म का व्यापक प्रसार न हो सका और वह सनातनधर्म का ही विद्रोही पुत्र बनकर रह गया। उधर बौद्ध संघ में विदेशी व आचार-भ्रष्ट लोगों की संख्या बहुत बढ़ गयी और परिणाम स्वरूप वे पृथक् राष्ट्रीयता की माँग करने लगे। बौद्धों का जो वैदिकों से टकराव हुआ वह कोरा धार्मिक नहीं था। हिन्दू मुसलमानों के टकराव की भाँति उसने दो राष्ट्रों के टकराव का रूप धारण कर लिया था, जिसमें बौद्ध पराजित हुए और उन्हें भारत छोड़ना पड़ा। अब तक हमने अपने महापुरुषों का अध्ययन केवल धार्मिक व आध्यात्मिक दृष्टि से किया है। आवश्यकता है कि उनका सांस्कृतिक व राष्ट्रीय महत्त्व भी समझा जाय।

गीत

श्रीअनीस लिटियानी

दूर परदेस में जा बसा बसन्त!
विरहिन बगिया सारी रात झरे!!

उदास-उदास टेसू के फूल,
सूने-सूने नदिया के कूल,
वंशी की धुन कुंजों से हुई परे!

पीले-पीले पातों के दल
बोझिल हो गया सारा सेमल,
किसके द्वारे हाय! पवन ठहरे?

बंजारे से दूर चल दिये रंग
न चटखे अब कनेर का अंग,
डाल अकेली अंधड़ों से डरे!!

——

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शरत् का नेपथ्य-गान

श्रीनागेश्वरसिंह 'शशीन्द्र'

बात उन दिनों की है जब बँगला के सुप्रसिद्ध कवि नवीनचन्द्र सेन रंगून गये थे। उनके साथ उनका बैरिस्टर पुत्र भी था। रंगून स्थित प्रवासी भारतीयों ने यह विचार किया कि कवि महोदय का स्वागत किया जाय। उन दिनों बर्मा में ५० हजार भारतीय थे जिनमें मुश्किल से एक हजार व्यक्ति शिक्षित थे। इन लोगों में न कोई संगीत-साधक था न कोई साहित्यिक।

उन्हीं दिनों बँगला के प्रसिद्ध उपन्यासकार शरत्चन्द्र रंगून में अज्ञातवास कर रहे थे, परन्तु इसे बहुत कम लोग जानते थे। वे बहुत बड़े साहित्यिक और गायक हैं इन बातों से वे सब अपरिचित थे। दूसरी ओर शरत् बाबू स्वयं किसीसे मिलते-जुलते भी नहीं थे।

काफी दौड़-धूप और परिश्रम के बाद लोगों ने कवि सेन के लिए मानपत्र लिखा, परन्तु प्रश्न यह उठा कि कविजी के सम्मान में स्वागत-गान कौन गायेगा ?

संयोग ऐसा हुआ कि इस बात की जिम्मेदारी शरत् बाबू के मित्र श्रीगिरीन्द्र नाथ सरकार पर सौंपी गयी जो शरत् की सिद्धि और प्रसिद्धि से पूर्ण परिचित थे। स्वागत-गान गानेवाले की बड़ी खोज की गयी, पर कोई नहीं मिला। अन्त में श्रीसरकार ने शरत् बाबू के पास आकर कहा, "शरत् दा, अब हम लोगों की इज्जत जा रही है।" सारी कहानी सुनकर शरत् बाबू ने हँसकर कहा, "कविजी को क्या सूझी कि सागर पार रंगून में रंग लगाने चले आये। वे जानते नहीं कि यह पाण्डव वर्जित-प्रदेश है।'

सरकार ने कहा—दादा, वे चाहे किसी काम से चले आये हों—इससे क्या बनता-बिगड़ता है, पर आप तो मेरी इज्जत रखकर जान बचाइये। स्वागत-समारोह जैसा होने-वाला है वह तो होकर रहेगा, पर कवि की प्रतिष्ठा के अनु-सार स्वागतगान गानेवाला इस रंगून की धरती पर आपके अतिरिक्त कोई नहीं दिखलायी देता। अगर आप दया नहीं करेंगे तो सारा समारोह फीका लगेगा। इतनी मिहनत पर पानी फिर जायगा।

शरत् बाबू उनके मन की बात ताड़ गये। उन्होंने झल्लाते हुए कहा, "ऐसा हो नहीं सकता। मैं रंगून के नाग-रिक जीवन से सदा दूर रहता हूँ यह तो तुम्हें भी मालूम होगा। ऐसी हालत में गाने-बजाने की बात तो दूर रही, मैं स्वागत-समारोह में उपस्थित भी नहीं रह सकता।"

अन्त में काफी अनुनय-विनय के बाद वे इस शर्त पर राजी हुए कि समारोह-स्थित पंडाल के पीछे पर्दे की व्यवस्था की जाय, जहाँ से वे स्वागत गीत गा सकें और वहाँसे चुपचाप निकल जायँ।

रंगून बंगाल सोशल क्लब के सभा-भवन में समारोह का आयोजन किया गया था। शरत् बाबू के इच्छानुसार पर्दे की व्यवस्था कर दी गयी। स्वागत-गीत उन्होंने बड़े सुन्दर ढंग से गाया। स्वागत गान के समाप्त होते ही उपस्थित लोगों में इस बात की उत्सुकता जगी कि आखिर ऐसा सुन्दर गीत गानेवाला व्यक्ति पर्दे के पीछे क्यों है। स्वयं कवि सेन भी उस व्यक्ति को देखने को लालायित हो उठे, परन्तु पूर्व शर्त के अनुसार शरत् वहाँसे कुछ क्षण पहले ही गायब थे और उनका वह तमाशा वहीं पर समाप्त था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिन्हें देश भूल गया—बारहट केशरीसिंह (१)

श्रीशंकरसहाय सक्सेना

यह उन दिनों की बात है जब देशभक्त भारतीयों को दासता अखरने लगी थी और देशभक्त क्रान्तिकारी युवक सशस्त्र विद्रोह द्वारा भारत को अंग्रेजों की दासता से मुक्त करने का प्रयत्न कर रहे थे। महाविप्लवी नायक श्रीरासबिहारी बोस के नेतृत्व में समस्त उत्तर भारत में तथा अभिनव भारतीय क्रान्तिकारी संगठन के नेतृत्व में महाराष्ट्र तथा दक्षिण में सैनिक विद्रोह की तैयारियाँ की जा रही थीं। बंगाल, बिहार, पंजाब, उत्तरप्रदेश, महाराष्ट्र तथा अन्य भागों में क्रान्तिकारी संगठन अत्यन्त सक्रिय हो उठे थे। ब्रिटिश सरकार प्रथम महायुद्ध में फँसी हुई थी। भारतीय क्रान्तिकारियों ने अनुकूल अवसर देखकर सशस्त्र क्रान्ति की तैयारियाँ आरम्भ कर दी थीं।

उस समय राजस्थान में भी सशस्त्र क्रान्ति करने के लिए एक क्रान्तिकारी संगठन खड़ा हुआ। इस संगठन को राजस्थान में खड़ा करने वालों में ठाकुर केशरी सिंह बारहट, खरवा के राव गोपाल सिंह, श्रीअर्जुनलालसेठी, और ब्यावर के देशभक्त व्यवसायी सेठ दामोदर दास राठी थे। बारहट केशरीसिंह, राव गोपाल सिंह तथा अर्जुनलाल सेठी का सम्बन्ध महाविप्लवी नायक रासबिहारी बोस से था और वे उनके निर्देशन में राजस्थान में सशस्त्र क्रान्ति का आयोजन कर रहे थे।

बारहट केशरीसिंह ने तो भारत माता की स्वतंत्रता के इस बलिदान यज्ञ में अपने समस्त परिवार की आहुति दे दी थी। क्रान्तिकारियों के रोमांचकारी शौर्यपूर्ण इतिहास में बारहट परिवार का जो गौरवशाली भाग रहा है उसको बहुत कम लोग जानते हैं। उनके आत्मबलिदान की कहानी अभी तक विस्मृत के गर्भ में छिपी थी। केशरीसिंहजी को आजन्म कारावास हुआ, उनके छोटे भाई जोरावरसिंह को प्राण-दण्ड हुआ, परन्तु वे फरार हो गये। वायसराय लार्ड हार्डिंग पर बम फेंकनेवाला और नीमाज और कोटा षड्यंत्रों का वह वीर क्रान्तिकारी पच्चीस वर्ष तक पहाड़ों और जंगलों में ब्रिटिश सरकार को चुनौती देता भटकता रहा। पुत्र वीर प्रतापसिंह बारहट बनारस षड्यंत्र में पकड़ा जाकर बरेली जेल में रासबिहारी बोस के दल का भेद न बताने पर असहनीय यातनाएँ देकर मार डाला गया। जामाता ईश्वरदान आसिया गिरफ्तार कर लिया गया।

हम भारतीयों ने क्रातिकारी देशभक्तों की जैसी लज्जाजनक उपेक्षा की है उसे देखकर स्वयं कृतघ्नता भी लज्जित होगी। जहाँ हम सत्तारूढ़ राजनीतिज्ञों का यशोगान करते नहीं थकते वहाँ हमने उन पागल देशभक्तों की, जो अपने सर पर कफन बाँध कर माँ भारती की दासता की शृंखलाओं को काटने के लिए अपने प्राणों की बाजी लगाते थे, नितान्त उपेक्षा की है, और बारहट परिवार के अतुलनीय त्याग और बलिदान को तो बिलकुल ही भुला दिया। लेखक उसी क्रान्तिकारी बारहट परिवार के प्रेरणा-स्रोत ठाकुर केशरीसिंह बारहट की जीवन-गाथा को 'सरस्वती' के पाठकों के समक्ष लेकर उपस्थित हुआ है।

तत्कालीन राजस्थान में मेवाड़ (उदयपुर) से सटा हुआ शाहपुरा एक छोटा सा राज्य था। राज्य की राजधानी शाहपुरा से लगभग दो कोस की दूरी पर 'देवपुरा', जिसे बारहट का खेड़ा भी कहते हैं, नामक एक गाँव है। प्रथम काल से इस गाँव को प्रसिद्ध चारण जाति के सौदा बारहट गोत्र को शाहपुरा के राजाधिराज ने जागीर में दे रखा था। बारहट वंश चारण जाति में अत्यन्त प्रसिद्ध और गौरवशाली था। इसी वंश में श्री कृष्णसिंह बारहट का जन्म हुआ। उन्होंने राजस्थान में राजनीतिज्ञ तथा प्रमुख राजपूत नरेशों के परामर्शदाता के रूप में बहुचर्चित ख्याति अर्जित की। उन्हीं बारहट कृष्णसिंह के प्रथम पुत्र केशरीसिंह बारहट का जन्म मार्गशीष कृष्णपक्ष वि० सं० १९२९ में अपने पैतृक ग्राम में हुआ था।

बारहट कृष्णसिंह शाहपुरा के राजाधिराज के प्रतिनिधि की हैसियत से उदयपुर में नियुक्त थे। तत्कालीन मेवाड़ के महाराणा सज्जनसिंह उनकी विद्वत्ता और राजनीतिक चातुर्य से बहुत प्रभावित हुए और उन्होंने उन्हें अपना परामर्शदाता बना लिया। उन्हीं की प्रेरणा से मेवाड़ के महाराणा ने स्वामी दयानन्द को उदयपुर आमंत्रित किया और श्यामजीकृष्ण वर्मा जैसे उद्भट विद्वान्, राजनीतिज्ञ, और जन्मजात क्रान्तिकारी को उदयपुर राज्य का प्रधान मंत्री नियुक्त किया।

महाराणा सज्जनसिंह की मृत्यु के उपरान्त महाराणा फतहसिंह के भी वे अत्यन्त विश्वासप्राप्त परामर्शदाता बने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहे। परन्तु उस समय तक भारत सरकार को बारहट कृष्णसिंह की ब्रिटिश-साम्राज्य के प्रति भक्ति पर कुछ संदेह हो गया था। भारत सरकार का वैदेशिक विभाग महाराणा पर उनके प्रभाव से अवगत था। अस्तु उसने यह दबाव डाला कि उन्हें उदयपुर राज्य की सेवा से हटा दिया जाय। जब जोधपुर के महाराजा जसवन्तसिंह को यह ज्ञात हुआ तब उन्होंने कृष्णसिंहजी को अपने पास बुला लिया।

महाराणा फतहसिंह ने उनके स्थान पर उनके पुत्र युवक केशरीसिंह को नियुक्त कर दिया। आरम्भ में महाराणा ने और स्वयं केशरीसिंह ने किसी पर यह प्रकट नहीं किया कि वे अपने पिता के स्थान पर महाराणा के परामर्शदाता का काम करते हैं। वे महाराणा से रात्रि के समय गुप्त रूप से मिलते थे।

महाराणा फतहसिंह की पुत्री का विवाह कोटा-नरेश उम्मेदसिंहजी से हुआ था। कोटा-नरेश युवक थे। चाटुकार दरबारी उन्हें कुमार्ग पर ले जाने का प्रयत्न करते थे। कोटा-नरेश के अभिभावक गुरु मास्टर शिवप्रसादजी चाहते थे कि कोई तेजस्वी चरित्रवान तथा योग्य व्यक्ति कोटा-नरेश के पास रहे जिससे वे भ्रष्ट चाटुकार दरबारियों के प्रभाव से बच सकें। उनकी दृष्टि बारहट केशरीसिंह पर पड़ी। उन्होंने महाराणा से उन्हें माँगा। उधर विदेशी विभाग तथा कृष्णसिंह के विरोधियों ने केशरीसिंहजी के विरुद्ध भी षड्यन्त्र करना आरम्भ कर दिया था। केशरीसिंह ने महाराणा फतहसिंह को परामर्श दिया कि श्यामजी-कृष्ण वर्मा को, जो उदयपुर से जूनागढ़ चले गये थे और स्थानीय कुचक्र के कारण जूनागढ़ के प्रधान मंत्री के पद को त्याग चुके थे, महाराणा पुनः उदयपुर राज्य का प्रधान मंत्री नियुक्त कर दें और मुझे कोटा जाने दें। महाराणा ने विदेशी विभाग की अनिच्छा होते हुए भी श्यामजीकृष्ण वर्मा को मेवाड़ का प्रधान मंत्री नियुक्त कर दिया और श्यामजीकृष्ण वर्मा की सहमति से केशरीसिंह को कोटा-नरेश के पास भेज दिया।

केशरीसिंह बारहट को देशभक्ति, स्वाभिमान, शौर्य और साहस पैतृक विरासत में मिले थे। काशी के प्रसिद्ध संस्कृत पंडित गोपीनाथ से उनके शिष्य के रूप में उन्होंने संस्कृत साहित्य, दर्शन और राजनीति का ज्ञान प्राप्त किया था। पिता के मित्र होने के नाते वे वर्षों स्वामी दयानन्द और श्यामजी कृष्ण वर्मा के निकट सम्पर्क में रहे थे। उन दोनों के विचारों से वे प्रभावित थे और महान् क्रान्तिकारी श्यामजीकृष्ण वर्मा द्वारा उनका लोकमान्य तिलक तथा क्रान्तिकारी अरविन्द घोष से घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हो गया था। उस समय अरविन्द घोष उदयपुर के एक सामन्त ठाकुर रामसिंह के सहयोग से सेनाओं में विद्रोह की भावना जगा रहे थे। ठाकुर केशरीसिंह का उनसे गहरा और निकट का सम्बन्ध था। राजस्थान में जो क्रान्तिकारी संगठन खड़ा हुआ उसमें वे आरम्भ से ही सम्मिलित थे। खरवा के राव गोपालसिंह तथा अर्जुनलाल सेठी के सहयोग से उन्होंने एक सशक्त क्रान्तिकारी दल का संगठन कर लिया था। उधर उनका सम्पर्क बंगाल के क्रान्तिकारी दल तथा रासबिहारी बोस के दल से भी हो गया था। जब ठाकुर केशरीसिंह बारहट उदयपुर से कोटा पहुँचे तब तक वे क्रान्ति की भावना से ओत-प्रोत हो चुके थे और देश में सशस्त्र क्रान्ति करने के लिए प्रयत्न करने वालों में उनका महत्त्वपूर्ण स्थान बन चुका था।

ऐसा प्रतीत होता है कि राजस्थान के क्रान्तिकारी दल के इन प्रमुख नेताओं ने कार्य-विभाजन कर लिया था। ठाकुर केशरीसिंह बारहट युवकों—विशेष कर चारण और राजपूत युवकों—में देशभक्ति की भावना जगा कर उन्हें क्रान्तिकारी दल में भर्ती करते, राजपूत नरेशों और जागीरदारों में राष्ट्रीय भावना उत्पन्न करते तथा क्रान्तिकारी कार्यों का निर्देशन करते थे। जयपुर के श्रीअर्जुनलाल सेठी क्रान्तिकारी युवकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था करते थे। खरवा के राव गोपालसिंह अस्त्र-शस्त्र इकट्ठा करने, राजपूत नरेशों की सहानुभूति प्राप्त करने और सशस्त्र क्रान्ति की व्यूह रचना करते थे। सेठ दामोदर दास राठी अर्थ की सहायता देते थे।

बारहट केशरीसिंह की मान्यता थी कि बिना सशस्त्र क्रान्ति के देश स्वतन्त्र नहीं हो सकता। यही कारण था कि उन्होंने राजस्थान में सशस्त्र क्रान्ति की योजना बनायी। युवकों में देशभक्ति और क्रान्तिकारी विचारों का प्रचार करने के लिए उन्होंने स्थान-स्थान पर राजपूत और चारण छात्रावास स्थापित किये। वहाँ देशभक्ति की भावना उत्पन्न कर युवकों को क्रान्ति के यज्ञ में दीक्षित किया जाता था। राजस्थान के जागीरदारों और नरेशों को भी उन्होंने मातृभूमि को बन्धनमुक्त करने के इस यज्ञ में सम्मिलित होने के लिए प्रोत्साहित किया। खरवा के राव गोपालसिंह राष्ट्रवर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का भी राजपूत नरेशों में बहुत मान था। उधर बारहट केशरीसिंह ने ऐसे अत्यन्त यशस्वी चारण वंश में जन्म लिया था जिसके राजपूत नरेशों से घनिष्ठ सम्बन्ध थे। उनके पिताश्री उदयपुर, जोधपुर तथा अन्य नरेशों के कृपा-पात्र तथा विश्वासपात्र रह चुके थे। अस्तु वे तथा खरवा के राव गोपालसिंह, क्रान्तिकारियों और राजपूत नरेशों के बीच एक विश्वसनीय कड़ी का काम करते थे। सशस्त्र क्रान्ति के उद्देश्य से राजस्थान में वीर भारत सभा स्थापित की गयी थी। ईडर तथा जोधपुर के कर्नल प्रतापसिंह, बीकानेर के श्रीगंगासिंह तो उसके सदस्य बन गये थे। उदयपुर के महाराणा फतहसिंह और कोटा के उम्मेदसिंह की छिपी सहानुभूति उसे प्राप्त थी। उदयपुर, जोधपुर, बीकानेर, कोटा के जागीरदारों पर उनका बहुत अधिक प्रभाव था। अतएव जागीरदार भी उनके इस प्रयत्न में सम्मिलित हो गये थे।

१९०३ में जब बारहट केशरीसिंहजी केवल ३१ वर्ष के थे तभी उन्होंने अपने पिता कृष्णजीसिंह से सम्पूर्ण जीवन देशसेवा में लगा देने की लिखित आज्ञा माँग ली थी। उनके अन्तर में जो देशसेवा की उत्कट अभिलाषा उत्पन्न हो गयी थी यह उसका प्रमाण है। बारहट केशरी-सिंह ने जहाँ रासबिहारी बोस के दल से सम्बन्ध स्थापित कर लिया था वहाँ महाराष्ट्र की अभिनव भारत समिति से भी सम्बन्ध स्थापित कर लिया था। उन्होंने राजस्थान में अभिनव भारत समिति की शाखा स्थापित की और अमीरचन्द तथा बृजमोहन माथुर को उसका संचालक बनाया।

१९११ में बारहट केशरीसिंहजी ने क्रान्तिदल में देशभक्ति की भावना वाले युवकों को बड़ी संख्या में भर्ती कर लिया था। उनमें कुछ को उन्होंने सेठी अर्जुनलाल के पास और चुने हुए युवकों को दिल्ली में रासबिहारी बोस के अत्यन्त विश्वासप्राप्त सहयोगियों, अमीरचन्द, अवधबिहारी तथा बालमुकुन्द, के पास क्रान्तिकारी कार्यों का प्रशिक्षण और क्रान्तिकारी कार्यों का प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त करने के लिए भेज दिया। उनमें उनके छोटे भाई जोरावरसिंह बारहट, पुत्र कुँवर प्रतापसिंह बारहट तथा जामाता ईश्वरदान आसिया भी थे। जब मास्टर अमीरचन्द ने रासबिहारी बोस से उन तीनों का परिचय कराया तब सहसा उन्होंने कहा "भारतवर्ष में एकमात्र ठाकुर केशरीसिंह बारहट ही ऐसे क्रान्तिकारी देशभक्त हैं जिन्होंने केवल स्वयं को ही नहीं, अपने भाई, पुत्र और जामाता को भी मातृभूमि की स्वतंत्रता के इस बलिदान यज्ञ में आहुति के रूप में झोंक दिया है। वे धन्य हैं।"

प्रसिद्ध इतिहास-वेत्ता डाक्टर आर० सी० मजूमदार ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'हिस्ट्री आफ दी फ्रीडम मूवमेंट इन इंडिया' भाग २ पृष्ठ ३१३ पर राजस्थान में क्रान्तिकारी संगठन के सम्बन्ध में लिखा है—

"राजस्थान में भी बंगाल के नमूने का क्रान्तिकारी संगठन बंगभंग के बाद शीघ्र ही खड़ा हो गया। उस क्रान्तिकारी संगठन को खड़ा करने का श्रेय तीन व्यक्तियों को था। वे थे अर्जुनलाल सेठी, बारहट केशरीसिंह और खरवा के राव गोपालसिंह। जैसा अन्य क्रान्तिकारियों के साथ हुआ उन्होंने अपनी देशसेवा का कार्य सुधारक के रूप में आरम्भ किया और अन्त क्रान्तिकारी के रूप में किया। यह परिवर्तन मुख्यतः श्यामजीकृष्ण वर्मा, लोक-मान्य तिलक और श्रीअरविन्द के प्रभाव के कारण हुआ था। इन तीनों महान् क्रान्तिकारी नेताओं का इन तीनों पर गहरा प्रभाव पड़ा था क्योंकि वे लोग उनके घनिष्ट सम्पर्क में आये थे। राव गोपालसिंह ने कलकत्ता जाकर बंगाल के क्रान्तिकारियों से भी सम्बन्ध स्थापित किया था।

अर्जुनलाल सेठी का श्रीरासबिहारी बोस के प्रमुख सहायक तथा प्रसिद्ध क्रान्तिकारियों—मास्टर अमीरचन्द, अवधबिहारी और बालमुकुन्द से घनिष्ठ सम्बन्ध था। विष्णुदत्त नामक क्रान्तिकारी अध्यापक उनको एक दूसरे से मिलाने और उनका सम्पर्क स्थापित करने वाली कड़ी का काम करता था।

क्रमशः यह क्रान्तिकारी संगठन, राजस्थान के विभिन्न भागों में फैल गया। ब्रिटिश भारत से भागे हुए क्रान्तिकारियों के लिए राजस्थान सुरक्षित आश्रय-स्थल बन गया। शचीन्द्र सान्याल के संगठन के दो सदस्य बमों का निर्माण करने के लिए बनारस से खरवा भेजे गये। दो अन्य बंगाली क्रान्तिकारियों को १९०८ से १९११ के बीच कुचामन के ठाकुर ने आश्रय दिया था।

१९११ तक राजस्थान के इस क्रान्तिकारी संगठन में बड़ी संख्या में युवक सम्मिलित हो गये और उनमें कुछ को मास्टर अमीरचन्द, अवधबिहारी और बालमुकुन्द

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के पास क्रान्तिकारी प्रशिक्षण लेने के लिए भेजा गया। उन तरुण क्रान्तिकारियों में सबसे प्रसिद्ध ठाकुर केशरीसिंह बारहट के पुत्र प्रतापसिंह बारहट थे, जिन्होंने श्रीरासबिहारी बोस द्वारा नियोजित अनेक षड्यन्त्रों में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भाग लिया था। वे एक शहीद की मृत्यु मरे और उन्होंने भयंकर यातनाओं के सम्मुख अदम्य साहस और अद्भुत कष्ट-सहिष्णुता का परिचय दिया।

इस क्रान्तिकारी दल ने जून १९१२ में जोधपुर के महन्त की हत्या कर दी। इस कार्य की व्यवस्था बारहट केशरी सिंह ने की थी। महन्त की हत्या का उद्देश्य क्रान्तिकारी कार्यों के लिए धन प्राप्त करना था। उस साधु (महन्त) को झूठे बहाने से कोटा लाया गया और दूध में विष देकर मार दिया गया।"

प्यारेराम साधु की हत्या—ऊपर डाक्टर मजूमदार ने जिस महन्त की हत्या का उल्लेख किया है उसका नाम प्यारेराम साधु था। वह अत्यन्त धनी था क्योंकि उसका जोधपुर राजघराने से घनिष्ठ तथा रहस्मय सम्बन्ध था। जब ठाकुर केसरीसिंह अपने पिताश्री की मृत्यु के अवसर पर जोधपुर गये तब उन्हें ज्ञात हुआ कि प्यारेराम साधु राजघराने में दुराचार फैला रहा है। उन्होंने वहाँ के लोगों को बहुत धिक्कारा और कहा धिक्कार है तुम्हारे जीवन को जो तुम अपने राजघराने में इस कलंक स्वरूप दुराचारी को सहन करते हो। इसके अतिरिक्त उस महन्त के पास बहुमूल्य हीरे तथा ज़वाहरात थे जो वह सदैव अपने पास रखता था। उसका धन क्रान्तिकारियों को देश के कार्य के लिए प्राप्त हो सकता था। अतएव शान्तभानु लाहरी उस प्यारेराम महन्त को बदरीनाथ की यात्रा के बहाने कोटा ले आया और यहाँ राजपूत छात्रवास में ठहराया। ग्रीष्मावकाश में छात्रावास बन्द था। छात्रावास की चाबी ठाकुर केशरीसिंह बारहट के पास थी। कोटा के राजपूत छात्रावास में आने के उपरान्त उसका कोई पता नहीं चला कि उसका क्या हुआ। अनुमान किया जाता है कि उसकी हत्या कर दी गयी। परन्तु उस समय भारत सरकार के गुप्तचरों को कोई संदेह नहीं हुआ।

कुछ समय के उपरान्त राजस्थान के क्रान्तिकारी दल ने बिहार के आरा जिले के निमाज के अत्यन्त धनी महन्त की हत्या कर दी। उसमें अर्जुनलाल सेठी के विद्यालय—जो कि वास्तव में क्रान्तिकारियों का प्रशिक्षण केन्द्र था—के विद्यार्थी माणकचन्द, जयचन्द, मोतीचन्द और ठाकुर केशरीसिंह बारहट के भाई जोरावरसिंह बारहट सम्मिलित थे। उस सम्बन्ध में विद्यालय तथा छात्रावास की इन्दौर में तलाशी हुई। श्रीअर्जुनलाल सेठी की तलाशी में पुलिस को दो पत्र मिले, जिनकी भाषा सांकेतिक थी। पत्र में लिखा था "पुराना आटा मछलियों को डाल दिया जाय।" पत्र ठाकुर केशरीसिंह का था। पुलिस इसका अर्थ ज्ञात करने के लिए प्रयत्नशील हुई और उन्होंने एक गुप्तचर अधिकारी धर्मसिंह को यह कार्य सुपुर्द कर दिया। ठाकुर केशरीसिंह के एक मित्र रामकरण तथा उनकी बहिन प्रभावती भी क्रान्तिकारी दल के सदस्य थे। गुप्तचर उन पर भी निगाह रखता था। एक दिन प्रभावती ने अपने भाई से कहा "मछलियाँ आटा खाकर मोटी हो गयी होंगी।" उस समय गुप्तचर धर्मसिंह साधुवेश में वहाँ मौजूद था। वह समझ गया कि उस पत्र का इस वाक्य से सम्बन्ध है और यह किसी षड्यन्त्र या क्रान्तिकारी रहस्य को समझने की कुंजी है। अस्तु,

पुलिस ने छानबीन की और प्यारेराम महन्त के रहस्यमय ढंग से लापता हो जाने की पुरानी रिपोर्ट निकाला। इन्दौर उच्च पुलिस अधिकारी आर्म्स स्ट्रांग पोलिटिक एजेंट का पत्र लेकर शाहपुरा गया, क्योंकि उस समय ठाकुर केशरीसिंह बारहट अपने पैतृक ग्राम गये हुए थे। पुलिस के अधिकारी ने राजाधिराज को अपने उद्देश्य से अवगत किया। राजाधिराज ने भयभीत होकर चोबदार को भेजकर ठाकुर केशरीसिंह को मिलने के लिए बुलाया और उन्हें आर्म्स स्ट्रांग के सुपुर्द कर दिया। आर्म्स स्ट्रांग उन्हें गिरफ्तार कर इन्दौर ले आया। उधर राजाधिराज ने विदेशी विभाग के संकेत पर ठाकुर केशरीसिंह बारहट की पैतृक जागीर, शाहपुरा की उनकी भव्य हवेली तथा समस्त पारवारिक सम्पत्ति जब्त कर ली। उनकी हवेली को लूट लिया गया। बर्तन-भाँड़े तक लूट लिये गये। बारहट केशरीसिंह के क्रान्तिकारी भाई जोरावर सिंह और पुत्र प्रतापसिंह इससे पूर्व ही शाहपुरा से निकल गये थे, क्योंकि महाविप्लवी नायक रासबिहारी बोस के षड्यन्त्रों में सम्मिलित होने के कारण उनको अपनी गिरफ्तारी का भय था।

क्रमशः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादकीय

[पृष्ठ २५६ का शेषांश]

पश्चिम एशिया में युद्ध फिर भड़का—इसरायल पर मिस्र और सीरिया ने इस मास के आरम्भ में सहसा आक्रमण कर दिया। आक्रमण उस दिन किया गया जिस दिन यहूदियों का व्रत का दिन होता है। वे उस दिन चौबीस घंटों का उपवास करते हैं। स्वेज नहर के पूर्वी तट पर उस समय उसके केवल आठ हजार सैनिक थे। मिस्र ने रूस से प्राप्त पीपों के पुल रातोंरात बनाकर उन पर से अपने पचास हजार सैनिक और कई सौ टैंक उस पार उतार दिये और इसराइली सैनिकों पर जबर्दस्त हमला कर दिया। इस युद्ध में मिस्र ने रूस से मिले आधुनिकतम प्रक्षेपों (मिसाइल्स) का खुलकर पूरा उपयोग किया। मुट्ठी भर इसराइली इतने बड़े अचानक आक्रमण को रोकने में असमर्थ थे, किन्तु वे डटकर लड़े और उन्होंने उन्हें आगे बढ़ने से तब तक रोके रखा जब तक कुमक न आ गयी। बारह-तेरह दिनों में मिस्र ने असंख्य टैंक और प्रायः एक लाख सेना स्वेज के पूर्वी तट पर इसराइली अधिकृत सिनाई (साइनाई) मरुभूमि में पहुँचा दी, किन्तु इतने दिनों में मिस्री १६१७ किलोमीटर से अधिक नहीं बढ़ सके। इसराइली वहाँ जान लड़ाकर लड़ रहे हैं और भयंकर युद्ध हो रहा है। सीरिया (शाम) की गोलन पहाड़ी पर पिछले युद्ध में इसराइलियों ने अधिकार कर लिया था क्योंकि उसके ठीक नीचे से इसराइल का मैदान आरम्भ होता है और सीरिया के सैनिक उस पहाड़ी से उन मैदानों के इसराइली गाँवों पर जब तब गोलाबारी करके उन्हें त्रस्त करते रहते थे। सीरिया ने उसी दिन और उसी समय गोलन पहाड़ी पर स्थित इसराइली चौकियों पर आक्रमण करके उन्हें ले लिया, पर बाद में इसराइलियों ने उन्हें फिर छीन लिया और वे कई किलोमीटर सीरिया में घुस गये। बाद में जार्डन, इराक और लीबिया भी युद्ध में कूद पड़े और उनकी सेनाएँ विभिन्न मोर्चों पर इसराइल से लड़ रही हैं। रूस अरबों (मिस्र और सीरिया) को बराबर युद्ध के अस्त्रशस्त्र, प्रक्षेप, विमान, टैंक आदि भेज रहा है और बाद में अमरीका ने भी इसराइल को सैनिक सामग्री देनी आरम्भ कर दी है। अमरीका का छठा बेड़ा भूमध्यसागर में पहले ही से था। उसको अधिक शक्तिशाली बनाने के लिए अमरीका ने कई बड़े सैनिक जहाज भेजे हैं। उधर रूस ने भी काले समुद्र से अपने युद्धपोत भूमध्य सागर में भेज दिये हैं। दोनों ही महाशक्तियाँ खुलकर अपने अपने पिट्ठुओं को पूरी-पूरी सैनिक सहायता दे रहे हैं। राष्ट्रसंघ युद्धविराम कराने में असमर्थ है। वह तभी सम्भव है जब ये दोनों महाशक्तियाँ उसे कराने को सहमत हो जायँ। यह युद्ध बहुत दिनों तक नहीं चल सकता। शायद बीस पचीस दिन या एक महीने और चले। कोई भी पक्ष निर्णायक विजय प्राप्त करने की स्थिति में नहीं मालूम होता। अरब लोगों की पिछले युद्ध में पूर्ण पराजय हुई थी जिससे उनकी प्रतिष्ठा को धक्का लगा था। इस युद्ध में वे बहुत वीरता से लड़ रहे हैं और उन्होंने अपना पिछला कलंक धो दिया है। इसलिए अब वे शायद इसराइल से संधि करने को तैयार हो जायँ। इसराइल ऐसी सीमाएँ चाहता है जो सुरक्षा की दृष्टि से उसके हित में हों। यदि उसे ऐसी सीमाएँ मिल गयीं तो वह मिस्र, सीरिया और जार्डन से पिछले युद्ध में छीने हुए भूखंड छोड़ देगा। यदि दोनों महाशक्तियाँ चाहें तो यह दोनों में संधि कराकर पश्चिमी एशिया में स्थायी शांति स्थापित करने का बड़ा अच्छा अवसर है। किन्तु यदि यह युद्ध चलता रहा और कोई एक पक्ष हारने लगा तो भय इस बात का है कि उसको समर्थन देनेवाली महाशक्ति खुलकर मैदान में आ जाय और तब बहुत भयंकर विश्वयुद्ध आरम्भ हो जायगा जो सारी मानवता के लिए विनाशकारी होगा। दोनों महाशक्तियाँ इसे समझती हैं। दोनों में से कोई इस स्थिति को नहीं लाना चाहतीं। अतएव हम आशा करते हैं कि शीघ्र ही ये दोनों मध्यमार्ग निकालकर इस युद्ध-पीड़ित क्षेत्र में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थायी शान्ति स्थापित कराने का प्रयत्न करेंगे। यदि आवश्यकता हुई तो अगले अंक में हम इस विषय पर विवरण पूर्ण टिप्पणी लिखेंगे।

डा० ताराचन्द का स्वर्गवास—हमें यह जानकर दुःख हुआ कि अक्तूबर के प्रथम पखवारे में इतिहास के प्रसिद्ध विद्वान् डा० ताराचन्द का ८५ वर्ष की आयु में हृदय की गति रुक जाने से स्वर्गवास हो गया। डा० ताराचन्द के पिता नार्मल स्कूल के हेडमास्टर होकर पंजाब से प्रयाग आये थे। डा० ताराचन्द का जन्म उनके प्रयाग आने के पहिले पंजाब में हो गया था। वे बड़े प्रतिभाशाली छात्र थे और उनकी शिक्षा इलाहाबाद विश्वविद्यालय में हुई। १९२० तक एम० ए० (इतिहास) में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से केवल दो व्यक्तियों को प्रथम श्रेणी मिली थी। ताराचन्दजी उनमें से एक थे। वे वहाँके कायस्थ पाठशाला कालेज के प्रिंसिपल हो गये और कई वर्ष उस पद पर रहने के बाद विश्वविद्यालय में राजनीति शास्त्र के प्रोफेसर नियुक्त हुए। उनके शैक्षणिक जीवन का चरमोत्कर्ष तब हुआ जब वे अपने विश्वविद्यालय के उपकुलपति चुने गये। डा० ताराचन्द केवल शिक्षाशास्त्री और इतिहास के विद्वान् ही नहीं थे। वे विचारक भी थे और भारतीय भाषाओं के विकास में भी रुचि लेते थे। जब राय राजेश्वर बली के शिक्षा मंत्रित्व में हिन्दी और उर्दू के विकास के लिए सर तेजबहादुर सप्रू की अध्यक्षता में सरकार ने हिन्दुस्तानी एकाडमी स्थापित की तब वे उसके पहिले मन्त्री नियुक्त हुए। एकाडमी के संगठन का श्रेय उन्हें ही है। अवकाश प्राप्त कर वे दिल्ली चले गये। वहाँ वे मौलाना आजाद के शिक्षामंत्रित्व काल में कई वर्ष केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय के सचिव और परामर्शदाता रहे। बाद में वे ईरान में भारत के राजदूत नियुक्त हुए। वहाँ से लौटने पर वे राज्यसभा में सदस्य नामित किये गये। उनकी बहुमुखी सेवाओं के उपलक्ष में भारत सरकार ने उन्हें 'पद्मविभूषण' से अलंकृत किया था। वे इस्लामी संस्कृति और इतिहास के अधिकारी विद्वान् थे और इस विषय पर उन्होंने कई महत्त्वपूर्ण पुस्तकें लिखी हैं। भारत सरकार ने उनसे स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास लिखवाकर प्रकाशित किया। वे उर्दू के विद्वान् थे और हिन्दुस्तानी के समर्थक थे। उनके निधन से भारत ने एक उच्चकोटि का विद्वान्, इतिहासज्ञ और विचारक खो दिया। इलाहाबाद ने अपना एक रत्न खो दिया जिसने उसका गौरव बढ़ाया था। हम उनके शोक संतप्त परिवार के प्रति अपनी हार्दिक और विनम्र समवेदना व्यक्त करते हैं।

श्रीज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल' का स्वर्गवास—हमें यह जानकर दुःख हुआ कि प्रयाग के श्रीज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल' का स्वर्गवास हो गया। वे प्रयाग के साहित्यिक जीवन के एक विशिष्ट अंग थे और अपने अट्टहास और नापसन्द बात का उग्र विरोध करने के लिए प्रसिद्ध थे। मूलतः वे पत्रकार थे। उन्होंने महिलाओं की एक पत्रिका 'मनोरमा' निकाली थी। किन्तु उनकी प्रसिद्धि 'देशदूत' (साप्ताहिक) के सम्पादक के रूप में हुई और उसमें उन्हें अपनी योग्यता प्रदर्शित करने का पूरा अवसर मिला। उन दिनों उनके सम्पादन में उसकी संख्या बीस हजार के लगभग पहुँच गयी थी। इधर कई वर्षों से वे हिन्दी साहित्य सम्मेलन की पत्रिका 'सम्मेलन' का सम्पादन कर रहे थे जो वास्तव में एक साहित्यिक शोध पत्रिका है। इसमें भी उन्होंने बड़े परिश्रम से काम किया। वे हिन्दी साहित्य सम्मेलन की गतिविधियों में विशेष रुचि लेते थे और प्रायः तीस-चालीस वर्ष उसकी स्थायी समिति में रहे। वे सामान्यतः प्रसन्नचित रहते थे और मित्रों का भी मनोरंजन करते थे। वे सरल स्वभाव के श्रमजीवी पत्रकार और साहित्यिक थे जिन्होंने अपना प्रायः सारा जीवन अपनी योग्यता के अनुसार हिन्दी की सेवा में लगाया। हम उनके शोकसन्तप्त परिवार के प्रति हार्दिक समवेदना प्रकट करते हैं।

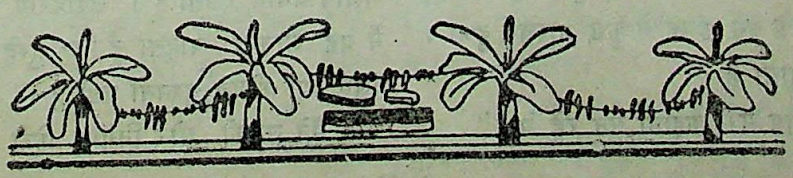

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विवेकशील पाठक

लेखक—मैक्सिम गोर्की : अनुवादक—श्री प्रकाशचन्द्र चतुर्वेदी

मित्रों की गोष्ठी में अपनी एक प्रकाशित कहानी का पाठ करके जब मैं उस मकान से बाहर निकला तब काफी रात जा चुकी थी। मित्रों ने प्रशंसा में उदारता से काम लिया था और मैं उल्लास से फूलता हुआ धीरे-धीरे सड़क पर चला जा रहा था। उस समय मुझे जीवन का जो आनन्द मिल रहा था, वह पहले कभी नहीं मिला था।

फरवरी का महीना था। रात साफ थी। घने तारों जड़े बादल-विहीन आकाश से नयी बर्फ के परिधान में लिपटी स्फूर्तिप्रद शीतलता पृथ्वी पर बरस रही थी। पेड़ों की शाखाओं की छाया की अजीब आकृतियाँ रास्ते पर बिछी हुई थीं। बर्फ के कण नर्म नीली चाँदनी में झिलमिला रहे थे। कहीं भी कोई प्राणी दिखाई नहीं देता था; और इस उज्ज्वल स्मरणीय रात्रि की गम्भीर नीरवता को भंग कर रही थी केवल मेरे जूतों की बर्फ पर आवाज।

मैं सोच रहा था, "संसार में जनसाधारण के बीच कुछ महत्त्वपूर्ण होना कितना अच्छा है।"

और कल्पना भी मेरे भविष्य के चित्रों में चमकीले रंग भरने में कंजूसी नहीं कर रही थी।

तभी पीछे से किसी ने कहा, "हाँ, बेशक, तुमने एक बहुत बढ़िया छोटी-सी चीज लिखी है।"

मैं चौंक पड़ा। मैंने घूमकर देखा।

काले कपड़े पहने एक नाटा-सा व्यक्ति मेरे पास खड़ा था और पैनी मन्द मुस्कान लिये मेरे मुँह की ओर देख रहा था। उसकी हरएक चीज में पैनापन था—उसकी नजर, गालों की हड्डियाँ, ठुड्डी, उसकी बकरे की सी दाढ़ी, सब में। उसके नाटे सिकुड़े हुए कद का नुकीलापन आँखों में छिद-सा रहा था। वह हलके कदमों से, बिना आवाज किये चल रहा था, मानों बर्फ पर सरक रहा हो। जिन लोगों को मैंने अपनी रचना सुनाई थी, उनमें वह मुझे नहीं दिखाई दिया था। इसीलिए उसके इस कथन से कुछ आश्चर्य हुआ। वह कौन है? कहाँ से आया है?

मैंने पूछा, "क्या आप मेरी कहानी सुन रहे थे?"

वह बोला, "हाँ, मुझे यह सौभाग्य प्राप्त हुआ था।"

वह ऊँची आवाज में बोल रहा था। उसके ओठ पतले थे, मूछें छोटी और काली थीं, जिनमें उसकी मुस्कराहट छिप न पाती थी। यह मुस्कराहट उसके होंठों पर बराबर खेल रही थी, यह मुझे अखर रहा था। मैं समझ रहा था कि इस मुस्कराहट में मेरी तीखी और बेलाग आलोचना छिपी हुई है। लेकिन मैं तो बहुत अच्छी मनःस्थिति में था। इसलिए अपने साथी की इस विशेषता की ओर अधिक देर तक ध्यान नहीं दे सका। वह मेरी आँखों के आगे छाया की भाँति चमकी और मेरे आत्मसंतोष की ज्योति में शीघ्र ही घुल गयी। मैं उसके बराबर चलने लगा। सोच रहा था कि अब वह आगे क्या कहेगा। छिपे-छिपे आशा भी कर रहा था कि इस सन्ध्या को मेरे जो आनन्दपूर्ण क्षण बीते थे उनमें वह कुछ और योग दे दे। भाग्यदेवता इतनी कंजूसी से काम लेते हैं कि आदमी उनकी कृपाओं को लोलुपता से देखता है।

"अपने आपको महत्त्वपूर्ण अनुभव करना अच्छा लगता है। है न?' मेरे साथी ने पूछा।

इस प्रश्न में कोई असाधारण बात न थी; मैं तुरन्त ही सहमत हो गया।

अपने छोटे-छोटे हाथों को पतली उँगलियों से मलते हुए वह पैनी हँसी हँसा, हें, हें, हें।

उसकी हँसी से मुझे चोट पहुँची। इसलिए मैंने रूखेपन से कहा, "आप भी खूब मौजी आदमी दिखाई देते हैं।"

उसने मुस्कराकर सिर हिलाते हुए कहा, "हाँ, खूब, और साथ ही मेरे अन्दर जिज्ञासा भी है। मैं हमेशा नयी चीजों के बारे में जानना चाहता हूँ, हर एक चीज के बारे में। जिज्ञासा कभी मेरा साथ नहीं छोड़ती, वही मुझे इतना सजीव बनाये रखती है। उदाहरण के तौर पर इस समय मैं यह जानना चाहता हूँ कि तुम्हें आज की सफलता के लिए क्या कीमत चुकानी पड़ी है।"

मैंने उसकी ओर निगाह फेरी और बिना जोश के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जवाब दिया, "लगभग एक महीने की मेहनत है, कुछ ज्यादा की भी हो सकती है।"

उसने मेरी बात पकड़कर कहा, "आह, छोटे से काम और थोड़े से अनुभव की भी कीमत देनी पड़ती है। लेकिन तुमने जो कीमत दी है, वह अधिक नहीं है। इस अनुभूति के लिए कि इस समय हजारों लोग तुम्हारी रचना को पढ़ते हुए तुम्हारे ही विचारों में मग्न हैं। और फिर साथ ही इससे तुम्हें यह आशा भी तो होती है कि, हें, हें, हें, शायद मृत्यु के बाद भी हें, हें, हें, इस प्रकार के लाभों के लिए इससे कहीं अधिक देने की तुमसे उम्मीद की जा सकती है—जितना तुमने दिया है उससे कहीं अधिक। क्या खयाल है तुम्हारा ?"

अपनी काली आँखों से मुझे देखते हुए वह फिर वही लुभनेवाली हँसी हँसा। अपनी अधिक लम्बाई से उसकी ओर देखकर मैंने ठण्डेपन से पूछा—"मुझे माफ कीजिए, क्या मैं जान सकता हूँ कि मुझे किससे बात करने का सौभाग्य····"

"मैं कौन हूँ ? तुम अंदाज भी नहीं लगा सकते ? तब फिर मैं भी नहीं बताऊँगा। क्या तुम सोचते हो कि आदमी जो कुछ कहता है उससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण उसका नाम है ?"

"नहीं, कभी नहीं, लेकिन यह मामला ही ऐसा अजीब····।'

उसने मेरी आस्तीन को हलका-सा झटका दिया और और धीमे से हँसते हुए कहा, "सो होने दो, आदमी कभी-कभी तो रोजमर्रा के साधारण व्यवहार की सीमा का उल्लंघन कर ही सकता है। तुम्हें कोई ऐतराज न हो तो हम दोनों एक दूसरे से खुलकर बात करें। यह सोच लो कि मैं हूँ तुम्हारा एक पाठक, जो यह जानना चाहता है कि किताब कैसे और किस ध्येय को लेकर लिखी जाती है। मान लो तुम्हीं लेखक हो। क्या हम बातचीत शुरू करें ?'

"हाँ, प्रारम्भ करिए, मुझे प्रसन्नता ही होगी। ऐसे लोगों से बात करने का मौका हर रोज थोड़े ही मिलता है।" लेकिन मैंने झूठ कहा, क्योंकि उस समय मुझे बहुत बुरा लग रहा था। आखिर यह व्यक्ति चाहता क्या है ? इस नितान्त अपरिचित व्यक्ति से जो संयोगवश मेरा साक्षात्कार हो गया है, उसे मैं वाद-विवाद का रूप क्यों दे दूँ ?

फिर भी शिष्टतापूर्वक ध्यान देने का भाव धारण किये मैं धीरे-धीरे उसकी बगल में चलता रहा। मुझे याद है कि इसमें मुझे कठिनाई हो रही थी पर अभी तक मैं उल्लास में था और बात करने से इन्कार करके उस भले आदमी को चोट नहीं पहुँचाना चाहता था; इसलिए मैंने अपने ऊपर पूरा-पूरा नियन्त्रण रखा।

हमारी पीठ के पीछे चन्द्रमा चमक रहा था; हमारी छाया आगे पड़ रही थी। हम दोनों की छाया मिलकर एक बड़ा-सा काला धब्बा बन गया था, जो बर्फ पर सरक-सा रहा था। इस धब्बे को देखकर अपने अन्दर मुझे छाया की ही भाँति काली और पकड़ में न आनेवाली किसी चीज का आभास होने लगा—कोई ऐसी चीज जो छाया की ही भाँति आगे को खिंच रही हो।

क्षण भर चुप रहने के बाद मेरे साथी ने ऐसे विश्वस्त स्वर में कहा जैसे वह अपने विचारों का पूर्ण रूप से स्वामी हो—"आदमी के व्यवहार के पीछे कौन-सा प्रयोजन है, इससे अधिक जिज्ञासापूर्ण तथा महत्त्वपूर्ण और कुछ नहीं है। क्या तुम इस बात से सहमत हो ?"

मैंने सिर हिलाकर स्वीकृति दी।"

"तब ठीक है। अब हम साफ-साफ बात कर सकते हैं। और जब तुम जवान हो, साफ बात कहने का कोई मौका हाथ से मत जाने दो।"

मैं सोच रहा था, अजब आदमी है यह। फिर भी मैं उसके शब्दजाल में फँस चुका था।

"लेकिन हमें बात किस विषय पर करनी है ?" मैंने मुस्कराकर कहा।

उसने मेरे चेहरे को इस घनिष्टता से देखा मानों वह मेरा पुराना परिचित हो। वह बोला—"तब फिर हम साहित्य के ध्येय के बारे में बात करेंगे।"

"बहुत ठीक····केवल मुझे भय है कि बहुत देर····।"

"ओह, तुम्हें अभी देर नहीं हुई है।"

मैं उसके शब्दों से चकित होकर रुक गया। ये शब्द उसके मुँह से इस गम्भीरता के साथ निकले थे कि वे मुझे भविष्यवाणी से लगे। मेरे ओठों पर एक प्रश्न आया, मैं ठिठका, लेकिन वह मेरी बाँह पकड़कर धीमे किन्तु दृढ़ता से खींच ले चला।

"रुको मत, मेरे साथ तुम सही रास्ते पर ही चलोगे। भूमिका बहुत बँध चुकी, अब मुझे यह बताओ कि साहित्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का प्रयोजन क्या है ? तुम साहित्य-सेवा करते हो, तुम्हें तो इसका ज्ञान होना ही चाहिए।"

अब मेरा आत्मसयम समाप्त हो रहा था। उसका स्थान आश्चर्य ले रहा था। आखिर यह आदमी मुझसे क्या चाहता है ? यह है कौन ?

मैंने कहा, "देखिए, इससे तो आप इन्कार नहीं करेंगे कि हम लोगों के बीच जो बातचीत चल रही है वह····"

"वह सकारण है। हाँ, यह बात मैं भी मानता हूँ। वास्तव में इस संसार में बिना कारण कोई बात नहीं होती। लेकिन और फैलाव में न जाकर हम थोड़ी गहराई में पैठें।"

निस्सन्देह वह आदमी बड़ा दिलचस्प था, लेकिन मैं बड़ा परेशान सा था। अधीरता से मैं आगे बढ़ा। वह शान्तिपूर्वक मेरे पीछे चल रहा था। कह रहा था, "मैं समझ गया। तत्काल ही साहित्य के प्रयोजन की परिधि बताने में तुम्हें कठिनाई हो रही है। तो फिर मैं ही कुछ कहूँ।"

उसने एक गहरी साँस ली और मेरी ओर मुस्कराकर देखा। "मेरा खयाल है कि तुम मुझसे सहमत होगे, यदि मैं कहूँ कि साहित्य का ध्येय है अपने आपको पहचानने में आदमी की सहायता करना, उसमें आत्मविश्वास दृढ़ करना, सत्य की खोज में उसकी सहायता करना; लोगों में जो कुछ श्रेष्ठ है उसे तलाश करना और जो कुछ अश्रेयस्कर है उसे उखाड़ फेंकना; उनके हृदयों में लज्जा, क्रोध और साहस की ज्योति जलाना ; उनके जीवन को सौन्दर्य की भावना से पवित्र करना और ऐसी शक्ति अर्जित करने में उनकी मदद करना, जिसे वे उच्च आदर्शों के हेतु लगा दें। साहित्य के प्रयोजन की यही मेरी परिभाषा है। ज़ाहिर है कि यह परिभाषा अपूर्ण है, ऊपरी-सी है। और भी जो कुछ जीवन को परिमार्जित करता है उसे तुम इसमें जोड़ सकते हो; लेकिन यह बताओ कि क्या तुम इतनी बात से सहमत हो ?"

मैंने कहा, "हाँ, यह लगभग ठीक है। यह तो सर्वमान्य है कि साहित्य का ध्येय आदमी को श्रेष्ठतर बनाना है।"

"तो तुमने देखा कि तुम कितने महान् कार्य में लगे हुए हो !" मेरे साथी ने गम्भीरता से जोर देते हुए कहा और तीखेपन से हँसा, हें-हें-हें।

"लेकिन आप यह सब मुझसे क्यों कह रहे हैं ?" मैंने उसकी हँसी की उपेक्षा करते हुए कहा।

"तुम क्या सोचते हो ?"

मैं कोई चटपटी बात कहना चाहता था, लेकिन ऐसी कोई बात न मिली। "साफ बात तो यह है कि····"। साफ बात कहने का मतलब क्या है ? यह व्यक्ति मूर्ख नहीं ; इसे यह तो सोचना चाहिए था कि आदमी साफगोई की सीमा पर कितनी जल्दी पहुंच जाता है और इस सीमारेखा पर कितनी ईर्ष्या के साथ स्वाभिमान का पहरा लगा देता है। मैं अपने साथी के चेहरे को देख रहा था और उसकी मुस्कराहट से आहत होकर तिलमिला रहा था। उसमें कितना व्यंग्य है, कितनी घृणा है। मुझे डर लगने लगा और मेरी इच्छा वहाँसे चल देने की होने लगी।

अपना हैट उठाकर मैंने कहा, "प्रणाम।"

"लेकिन क्यों ?" उसने विस्मय से पूछा।

"बहुत गहरे मज़ाक मुझे पसन्द नहीं।"

"सिर्फ इसलिए तुम चले जा रहे हो ? जैसी तुम्हारी इच्छा। लेकिन यह जान लो कि अगर आज तुम मुझे छोड़ कर चले जाते हो तो फिर मेरी तुम्हारी भेंट कभी भी नहीं होगी।"

उसने 'कभी भी नहीं' शब्दों पर जोर देते हुए कहा और मुझे लगा मानों मौत के घंटे की आवाज मेरे कानों में गूंज उठी हो। इन शब्दों से मुझे घृणा है, इनसे मुझे डर लगता है ; मुझे ये शब्द ठण्ढे और बोझीले लगते हैं उस हथौड़े की भाँति जिसे लोगों की आशंकाओं को चूर करने के काम में लाया जाता हो। इस 'कभी भी नहीं' ने मुझे अपने पैर रोकने को मजबूर कर दिया।

मैं वेदना और थकान से चिल्ला पड़ा, "लेकिन आप मुझसे चाहते क्या हैं ?"

उसने फिर हँसकर कहा, "बैठ जाओ" और मेरा हाथ पकड़कर बैठा दिया।

उस समय हम लोग नगर के उद्यान की पगडण्डी पर बैठे थे। अकेसिया और लिलक की बर्फ से ढकी डालें चारों ओर से घेरे हुए थीं। चाँदनी में वे मेरे ऊपर झूल रही थीं और मुझे प्रतीत होता था मानों बर्फ से ढकी ये डालें टहनियाँ मेरी छाती को चीरकर हृदय तक पहुँच रही हों।

मैं अपने साथी के व्यवहार से चकराकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैंने उसकी ओर देखा। सोचा, शायद इसका दिमाग ठिकाने नहीं है। उसके व्यवहार की इस व्याख्या के बहाने अपना मन समझाने लगा।

उसने मानों मेरे विचार ताड़कर कहा, "शायद तुम सोचते हो कि मैं पागल हूँ। ऐसा विचार छोड़ दो। यह तुम्हारे लिए हानिकर है और तुम्हारे योग्य भी नहीं है। अक्सर हम लोग अपने से भिन्न लोगों को समझने की चेष्टा न करने का बहाना इसमें पा लेते हैं तथा एक दूसरे के प्रति जो उपेक्षा दिखाते हैं उसे इससे बड़ा सहारा मिलता है।"

मेरी परेशानी बहुत बढ़ गयी थी। "हाँ, हाँ, ठीक है। लेकिन क्षमा कीजिए, मुझे अब जाना है; काफी वक्त हो चुका है।"

अपने कन्धों को थोड़ा झटका देते हुए उसने कहा, "तो जाओ, लेकिन यह जान लो कि तुम अपने आपसे भाग रहे हो।" उसने मेरा हाथ छोड़ दिया और मैं चल दिया।

वह पार्क में रुका रहा। यहाँसे बर्फ की चादर से ढकी वोल्गा नदी दिखाई देती थी। सामने किनारे का निस्तब्ध और मनहूस मैदान फैला हुआ था। वह एक बेंच पर बैठा हुआ इस मैदान की ओर ताक रहा था। मैं पगडण्डी पर चल पड़ा, हालाँकि मुझे लग रहा था कि मैं उसे छोड़कर नहीं जा सकूँगा। मैं उसे दिखाना चाहता था कि मुझे उसकी ज़रा भी परवाह नहीं और यह दिखाने के लिए तेज चलना ठीक होगा या धीमे, यही मैं उस समय सोच रहा था।

मैंने सुना कि वह सीटी बजाकर एक सुपरिचित धुन निकाल रहा है। यह एक अंधे आदमी से सम्बद्ध करुणापूर्ण गीत था, जिसने दूसरे अंधे को अपना पथ-प्रदर्शक मान रखा था। मुझे आश्चर्य हो रहा था कि उसने ठीक यही गीत इस समय के लिए क्यों चुना।

अचानक मुझे महसूस हुआ कि इस छोटे से आदमी से भेंट होने के क्षण से ही मैंने अजीब और असाधारण अनुभवों के घेरे में कदम रख दिया है। मेरे मन को अभी तक जो शान्तिपूर्ण आनन्द मिल रहा था, उस पर भविष्य के पूर्वाभास की धुन्ध छा गयी। ऐसा प्रतीत होता था मानों कोई काली किन्तु महत्त्वपूर्ण घटना घटित होनेवाली हो। जिस गीत की धुन वह सीटी में निकाल रहा था उसकी पंक्तियाँ मुझे याद आ गयीं—

जब तुम खुद ही भटक रहे हो,
हमें राह क्या दिखलाओगे !

मैंने घूमकर उसकी ओर देखा। वह घुटने पर कोहनी टिकाये हाथ पर ठुड्डी रखे मेरी ओर देखते हुए सीटी बजा रहा था। चाँदनी में उसकी सिकुड़ती हुई मूँछें दिखाई दे रही थीं। मेरे मन में नियति का भाव आया और इसलिए मैंने उसके पास जाने का निश्चय किया। मैं जाकर उसके बराबर बैठ गया।

मैंने उससे बहुत तेज स्वर में—किन्तु बिना व्याकुल हुए, शांत भाव से—कहा, "देखिए, अगर बात करनी है तो सरलता से करेंगे।"

"लोगों को हमेशा ही सरलता से बात करनी चाहिए।

"मुझे लगता है कि आपने अपने प्रभाव में मुझे बाँध लिया है और स्पष्ट है कि आप मुझसे कुछ कहना चाहते हैं। क्या मैं ठीक समझ रहा हूँ ?"

"तो तुममें मेरी बात सुनने की हिम्मत आ गयी", उसने हँस कर कहा। लेकिन इस बार उसकी हँसी में कठोरता नहीं थी, बल्कि मुझे उसमें आनन्द की झलक दिखायी दे रही थी।

"तब कहिए, लेकिन अगर हो सके तो मेहरबानी करके इस अजब ढंग से बात न करिए।"

"हाँ, हाँ, बड़ी खुशी से। लेकिन यह तो तुम्हें मानना पड़ेगा कि तुम्हारा ध्यान आकर्षित करने के लिए इस अजब ढंग को अपनाना जरूरी था। आज के जमाने में लोग सरल और साफ बात को नीरस और कठोर समझकर उपेक्षा में उड़ा देते हैं। फिर भी हम किसी चीज में उष्णता और कोमलता नहीं भर पाते, क्योंकि हम खुद ठण्ढे और कठोर हो गये हैं। हम कल्पनाओं में, दिवास्वप्नों में उड़ना चाहते हैं, जीवन में कुछ असाधारण, कुछ वैचित्र्य चाहते हैं, क्योंकि हमारी बनायी हुई आस पास की जिन्दगी निर्जीव, फीकी और उबा देनेवाली होती है। जिस जिन्दगी को एक जमाने में हम इतने उत्साह से बदल देने का प्रयास करते थे उसी ने आज हमें तोड़-मरोड़कर कुचल डाला है। तब फिर हम करें क्या ? यही देखना है। शायद कल्पना ही आदमी को इस दुनिया से थोड़ा ऊपर उठने में मदद कर सके (चाहे थोड़ी ही ऊँचाई तक सही) और वह इस दुनिया में अपने खोये हुए स्थान को देख सके, क्योंकि उसने अपना स्थान खो दिया है। है न ? अब वह इस पृथ्वी का स्वामी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं रहा। वह उसका गुलाम हो गया है। वह अब अपने ही बनाये हुए तथ्यों की पूजा करने लगा है, उन्हींसे निष्कर्ष निकालकर अब वह अपने आप से कहता है, 'देख वह शाश्वत नियम है।' इस नियम के प्रति अपने आपको समर्पित करते समय वह नहीं जानता कि उसने एक दीवार खड़ी कर ली है जो जीवन को बदलने में बाधा डालेगी; नवनिर्माण के लिए पुरातन को विध्वस्त करने के अधिकार को पाने के संघर्ष में बाधा डालेगी। और सच तो यह है कि वह अब संघर्ष नहीं करता, केवल परिस्थितियों के अनुकूल अपने आपको मोड़ लेता है। वह संघर्ष क्यों करे? वे आदर्श ही कहाँ हैं जिनके लिए वीरता दिखाने की आकांक्षा उसके मन में उदय हो? इसीलिए जीवन नीरस और अरुचिकर हो गया है। इसीलिए आदमी की सर्जक प्रवृत्ति मर गयी है। कुछ लोग हैं, जो आँखें मूँदकर किसी चीज की तलाश करते हैं जिससे उनका दिमाग उड़ानें भरने लगे और इस प्रकार उनका अपने आपमें विश्वास जमा रह सके। लेकिन अक्सर वे परमात्मा के निवास-स्थान से दूर हट जाते हैं और सारी मानवता को एकता में बाँधने-वाले शाश्वत सत्य पर पर्दा पड़ जाता है। जो सच्चाई के रास्ते से भटक जाते हैं उन्हें नष्ट ही हो जाना है। उनके बीच में मत पड़ो, न उन पर अपनी करुणा का अपव्यय करो। इस दुनिया में और बहुत से हैं। महत्त्वपूर्ण बात है परमात्मा को प्राप्त करने की अभिलाषा; और जब तक परमात्मा के लिए तड़पनेवाले लोग मौजूद रहेंगे, तब तक वह उनके आगे अवतीर्ण होगा, उनमें रहेगा, क्योंकि पूर्णत्व की ओर बढ़ने के निरन्तर प्रयास का ही नाम परमात्मा है। मैं ठीक कहता हूँ न?"

मैंने कहा, "हाँ, आप ठीक कहते हैं।"

मेरे साथी ने चुभनेवाली हँसी के साथ कहा, "तुम बहुत जल्दी सहमत हो जाते हो।" इसके बाद वह चुप हो गया और दूर शून्य की ओर टकटकी लगाकर देखने लगा। वह चुप बैठा रहा। तभी मैंने अधीरता से लम्बी साँस ली। इस पर वह बोला, "तुम्हारा इष्टदेव कौन है?" अब भी उसके नेत्र दूरी की ओर लगे हुए थे।

अभी तक वह ठिकाने से बात कर रहा था और उसकी बात सुनने में मुझे सुख मिल रहा था। सभी विचारशील लोगों की भाँति उसके मुख पर भी थोड़ी उदासी थी। मैं उसकी ओर खिंच रहा था, उसकी बात समझ रहा था और मेरी झुँझलाहट गायब हो रही थी। लेकिन वह यह घातक प्रश्न क्यों पूछ बैठा, जिसका जवाब देने में आज के किसी भी आदमी को कठिनाई होगी, यदि वह अपने प्रति ईमानदार है। मेरा इष्टदेव कौन है? काश, मैं जानता होता।

मैं चकरा गया। वास्तव में मेरी जगह कोई दूसरा भी अपना संतुलन कैसे कायम रख सकता था। अब उसने अपनी पैनी निगाह मेरे ऊपर दौड़ाई और वह मेरे उत्तर की प्रतीक्षा में मुस्कराने लगा।

"यदि तुम्हारे पास कोई उत्तर होता तो तुम्हें इतनी देर न लगती। अच्छा, यदि मैं इस प्रकार कहूँ तो शायद तुम कुछ जवाब दे सको। तुम लेखक हो, तुम जो लिखते हो उसे हजारों आदमी पढ़ते हैं। तुम लोगों को क्या उपदेश देते हो? और क्या कभी तुमने यह भी सोचा है कि कहाँ तक तुम दूसरों को शिक्षा देने के अधिकारी हो?"

जीवन में प्रथम बार मैंने अपने अन्तस्तल को टटोला। कोई यह न सोचे कि केवल दूसरों का ध्यान आकर्षित करने के लिए मैं अपने को ऊँचा उठा रहा हूँ अथवा विनम्र बन रहा हूँ। नहीं, भिखमंगों से भी कोई भीख माँगता है? मैंने यह अनुभव किया कि मैं भी उदार भावनाओं और आकांक्षाओं से सर्वथा शून्य नहीं था; जिन गुणों को अच्छा समझा जाता है, उनमें मेरा भाग न हो, ऐसा नहीं था। केवल वे सद्गुण किसी ऐसे जोरदार भाव, किसी ऐसे मधुर विचार द्वारा संयोजित नहीं थे, जो जीवन के सारे तथ्यों को छूता हो। मेरे मन में घृणा बड़े परिमाण में थी। हृदय में वह सदा ही सुलगा करती थी और कभी कभी क्रोध की ज्वाला के रूप में फूट पड़ती थी। लेकिन उससे भी अधिक मेरे मन में संशय था। यह संशय मेरे मस्तिष्क को निष्क्रिय कर देता था, मेरी आत्मा को इतना बरबाद कर देता था कि कभी-कभी काफी लम्बे अर्से तक मैं एक खोखली जिन्दगी ढोता रहता था। किसी भी भाँति जिन्दगी में मेरी दिल-चस्पी नहीं हो पाती थी। मेरा हृदय मौत के समान ठण्ढा पड़ जाता था, बुद्धि कुंद हो जाती थी, कल्पना दुःस्वप्नों का शिकार हो जाती थी। इस प्रकार कितने ही दिनों और रातों को मैं गूँगा, बहरा, अन्धा बना, किसी भी वस्तु की आकांक्षा न करते हुए, कुछ भी न समझते हुए जीवित रहता था। और ऐसा लगता मानों मैं एक लाश हूँ जिसे किसी गलतफहमी के कारण नहीं दफनाया गया। इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकार के अस्तित्व की भयानकता यह जानकर और भी बढ़ जाती थी कि मुझे जिन्दा रहते ही जाना है, क्योंकि मृत्यु तो इससे भी अधिक अन्धकारपूर्ण, और भी अधिक निरर्थक है। निस्सन्देह यह स्थिति आदमी से घृणा करने का आनन्द भी छीन लेती है।

हाँ, तो मैं क्या उपदेश देता था? जैसा कुछ मैं था, लोगों से कहने के लिए मेरे पास था ही क्या? वे ही बातें जो युगों से कही जा रही थीं, जो हमेशा कही जाती हैं, हमेशा सुनी जाती हैं, लेकिन जो आदमी को तनिक भी श्रेष्ठतर नहीं बनातीं। और क्या इन विचारों, इन नियमों को प्रचारित करने का मुझे अधिकार था, जब मैं स्वयं, जिसका पालन-पोषण इन्हींके अनुसार हुआ था, इन पर नहीं चल पाता था? और जब मैं ही इनके विरुद्ध आचरण करता था तब क्या इसका अर्थ यह नहीं होता कि इनकी सचाई पर मैं ईमानदारी से विश्वास नहीं करता? तब मैं अपनी बगल में बैठे हुए इस व्यक्ति से क्या कहूँ?

मेरे उत्तर की प्रतीक्षा से ऊबकर वह फिर कहने लगा: "यदि मैंने यह न देख लिया होता कि आकांक्षा ने अभी तुम्हारे आत्मसम्मान की भावना को नष्ट नहीं कर डाला है, तो मैं तुम्हारे सामने ये प्रश्न न उठाता। तुममें मेरी बात सुनने का दम है। इससे मैं यह निष्कर्ष' निकालता हूँ कि तुम्हारा आत्मप्रेम यथोचित ही है, क्योंकि इसे विकसित करने के लिए तुम इतने उत्सुक हो कि सताये जाने पर भाग नहीं जाते। इसलिए तुमपर लगाये गये इल-जाम को हलका कर दूँगा और अब से तुमसे ऐसे व्यक्ति की तरह बात करूँगा जो सर्वथा निर्दोष तो नहीं है, फिर भी जिसे अपराधी नहीं कहा जा सकता।

"एक समय था जब इस पृथ्वी पर महान् लेखक रहते थे। वे जीवन तथा मानव-हृदय का अध्ययन करनेवाले थे; ऐसे लोग जिन्हें संसार को अच्छा बनाने की जबरदस्त धुन थी, जिनका मानव-प्रकृति में पूर्ण विश्वास था। उन्होंने ऐसे ग्रन्थ लिखे जो कभी भी विस्मृति के गर्भ में नहीं फेंके जायेंगे, क्योंकि उनमें अमर सत्य भरा हुआ है, और उनके पृष्ठों से अक्षय सौन्दर्य प्रकाशित होता रहता है। उनमें चित्रित पात्र सजीव होते हैं, क्योंकि वे प्रेरणा से अनुप्राणित होते हैं। उन ग्रन्थों में साहस होता है, प्रज्ज्वलित क्रोध होता है और उन्मुक्त, वास्तविक प्रेम होता है। एक भी शब्द उनमें निरर्थक नहीं होता। उन्हीं ग्रन्थों से तुम्हारी आत्मा को पोषण मिला है, यह मैं जानता हूँ। फिर भी तुम्हारी आत्मा इसे अच्छी तरह पचा नहीं पायी होगी, क्योंकि जो कुछ भी तुम सत्य और प्रेम के बारे में लिखते हो, झूठा लगता है, ईमानदारी का नहीं; मानों तुम्हारे मुँह से वे शब्द जबरदस्ती खींचकर निकाले गये हों। चन्द्रमा की भाँति दूसरे के प्रकाश को प्रतिबिम्बित करते हो; और तुम्हारा यह प्रकाश नितान्त धूमिल होता है, इसकी छाया तो बहुत पड़ती है, लेकिन न तो यह रोशनी देता है और न गरमी! तुम स्वयं इतने दरिद्र हो कि दूसरों को वास्तविक मूल्य की कोई चीज नहीं दे सकते और जब तुम कुछ देते भी हो तो इस महान् संतोष के लिए नहीं कि तुमने जीवन के सुन्दर विचारों और शब्दों के भाण्डार में योग देकर उसे अधिक समृद्ध बनाया है। तुम तो इसलिए देते हो कि जीवन से और जन से और अधिक प्राप्त कर सको। तुम इतने दरिद्र हो कि कुछ भी भेंट नहीं दे सकते। तुम सूदखोर हो, अपने अनुभव के टुकड़ों को उधार देते हो, जिससे ब्याज के रूप में तुम्हें यश प्राप्त हो सके। तुम्हारी कलम बड़ी कमजोरी से चीजों की सतह को जरा-सा कुरेदती है, जीवन की सतही परिस्थितियों को प्रभावहीन ढंग से घँघोलती है। जन-साधारण की साधारण भावनाओं का वर्णन करते समय शायद लोगों को तुम अनेक महत्त्वहीन 'सत्य' तो सिखा देते हो, किन्तु क्या तुम कभी तिल भर भी वह उदात्त चेतना उत्पन्न कर पाते हो जो मानव की आत्मा को ऊपर उठा सके? नहीं। क्या तुम्हें यह विश्वास है कि इस 'साधारण' के कूड़े-करकट को टटोलना महत्त्वपूर्ण है, जिसमें से हमारे हाथ कुछ भी नहीं लगता—सिवाय अधकचरे सत्य के, नीरस टुकड़ों के, जो यह साबित करते हैं कि आदमी बुरा है, बुद्धिहीन है, गौरवहीन है, और सदा ही बाह्य परिस्थितियों का पूरी तरह से गुलाम रहता है; वह कमजोर है, करुणाजनक है, नितान्त एकाकी है। मुझसे पूछो तो ये 'सत्य' आदमी के मन में यह बैठाने में सफल हो गये हैं कि बात ऐसी ही है। देखो तो, उसकी बुद्धि कितनी निस्तेज हो गयी है, उसकी आत्मा कितनी पथरा गयी है। और यह कुछ अजीब भी नहीं। उसे तो अपना वही रूप दिखाई देता है, जो किताबों में चित्रित है। और किताबें पाठक पर जादू फेर देती हैं, खासे तौर पर वे किताबें जिनमें शब्दाडम्बर होता है और इस शब्दाडम्बर को बहुधा भ्रमवश प्रतिभा मान लिया जाता है। तुम्हारी कृति में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपना चित्र देखने से उसे अपनी कुरूपता दिखायी देती है—लेकिन सुधार की कोई सम्भावना नजर नहीं आती। क्या तुम इस सम्भावना की ओर इशारा कर पाते हो? तुम यह सब कैसे कर सकते हो जब तुम स्वयं....। खैर, तुम्हारी भावनाओं को ठेस नहीं लगाऊँगा, क्योंकि मैं देखता हूँ कि मेरी बातें बिना प्रतिवाद किये और बिना अपने को न्यायसंगत ठहराने का प्रयत्न किये सुन रहे हो। यह अच्छा है, क्योंकि ईमानदार शिक्षक हमेशा जिज्ञासु शिक्षार्थी भी होता है। आजकल तुम शिक्षक लोग देने की अपेक्षा लोगों से कहीं अधिक वसूल करते हो, क्योंकि तुम केवल उनकी कमजोरियों की ही बात करते हो; तुम्हें कमजोरियों के सिवा कुछ दिखाई ही नहीं देता। लेकिन आदमी में सद्गुण भी तो होते हैं। क्या तुम्हीं में नहीं हैं? तुममें? छिः। तुम जिन फीके वर्णहीन लोगों का इतनी निर्ममता से गुण-दोष विवेचन करते हुए चित्रण करते हो उनसे तुम स्वयं किस प्रकार भिन्न हो? तुम अपने आपको ऋषि-मुनि समझते हो, जिनका काम है बुराइयों का पर्दाफाश करना, ताकि सद्गुणों की जीत हो सके! लेकिन दुर्गुणों और सद्गुणों का भेद करने के प्रयास में क्या तुम यह नहीं देख पाते कि ये दोनों चीजें सफेद और काले दो तरह के धागों की लच्छियाँ हैं तथा परस्पर बटने के कारण दोनों पर एक दूसरे का रंग चढ़ गया है एवं दोनों का रंग मटमैला हो गया है! और मुझे तो इसमें सन्देह है कि परमात्मा ने तुम्हें अपना पैगम्बर बनाकर भेजा है। उसने अपनी पैगम्बरी के लिए तुमसे ज्यादा मजबूत आदमी चुने होते। और उसने उनके हृदय में जीवन, सत्य और मानव के प्रति उत्कट प्रेम की आग जलाई होती, जिससे वे उसकी शान की मशाल बनकर अँधेरे में जगमगाते। तुम तो शैतान के लक्कड़ की तरह धुँधुआते हो और यह धुआँ लोगों के दिल और दिमाग में घुस जाता है और उनमें आत्मविश्वास की कमी भर देता है! मुझे बताओ, तुम क्या सिखाते हो?"

उसकी गरम साँस मुझे अपने गाल पर महसूस हो रही थी। मैंने अपनी आँखें फेर लीं। मैं उससे आँख मिलाने में डर रहा था।

उसके शब्दों ने मानों मेरा मस्तिष्क झुलसा दिया। मैं यह सोचकर भयभीत हो रहा था कि उसके सरल से प्रश्नों का उत्तर देना कितना कठिन है। और उनका उत्तर मैंने दिया भी नहीं।

"तुम और तुम्हारे साथी जो कुछ लिखते हैं, मैं उसका एक विवेकशील पाठक हूँ। मैं पूछता हूँ, तुम क्यों लिखते हो? संयोगवश, तुमने तो ढेर-सा लिखा है। क्या तुम लोगों में उदात्त भाव जगाने के लिए लिखते हो? यह तुम्हारे निर्जीव और निर्वीर्य शब्दों से होने का नहीं। जीवन में कुछ नयापन लाने की क्षमता तुममें नहीं है। इतना ही नहीं, तुम तो पुरातन को भी मुड़े-सिकुड़े रूप में सामने लाते हो, जिसमें कुछ भी साफ नजर नहीं आता। तुम्हारे ग्रन्थ कुछ भी नहीं सिखाते। उनसे पाठकों को केवल तुम पर शर्म आती है। तुम्हारी पुस्तकों में हर एक चीज मामूली होती है—मामूली आदमी, मामूली विचार, मामूली घटनाएँ। आखिर लोग मन के विद्रोह और आत्मा के पुनरुत्थान की बात कहना कब प्रारम्भ करेंगे? कहाँ है सृजनात्मक जीवन को चुनौती? कहाँ हैं वीरता के पाठ? कहाँ हैं स्फूर्तिप्रद शब्द जो आत्मा को पंख लगा दें?

शायद तुम कहोगे, जीवन हमारे सामने सिर्फ वे ही नमूने रखता है जिनका हम चित्रण करते हैं। ऐसा मत कहो। जिस व्यक्ति में लिखने की शक्ति है, वही यदि जीवन के आगे हार मान ले और उसके ऊपर उठने में असमर्थता दिखाये, तो यह उसके लिए बड़ी लज्जा और अपमान की बात होगी। यदि तुम भी उसी स्तर पर खड़े हो, जिस पर जीवन है, यदि तुम्हारी कल्पना ऐसे आदर्शों की सृष्टि करने में असमर्थ है जो जीवन में नहीं हैं (किन्तु जो जीवन की समृद्धि के लिए आवश्यक हैं) तो तुम्हारे काम से लाभ ही क्या है? फिर यह धन्धा ही क्यों? जीवन की यन्त्रवत्, ज्यों की त्यों, अनुलिपियों से लोगों के दिमाग को भरते समय अपने आपसे पूछो कि क्या मैं उनका अमंगल तो नहीं कर रहा हूँ? क्योंकि, यह तो तुम्हें स्वीकार करना ही होगा कि तुम्हें जीवन के ऐसे चित्र प्रस्तुत करना नहीं आता, जिनमें शोधात्मकता तथा विनय भाव जगाने का दम हो, जीवन को नये स्वरूप देने की उद्दीप्त आकांक्षा जगा सकें। क्या तुम जानते हो कि जिन्दगी की नब्ज की रफ्तार कैसे बढ़ायी जाती है, उसमें स्फूर्ति कैसे भरी जाती है, जैसा और दूसरे लोग कर चुके हैं।"

अब वह रुका। मैं बिना कुछ बोले उसके शब्दों पर विचार कर रहा था।

"अपने चारों ओर मुझे चालाक लोग बहुत से दिखाई देते हैं और भले लोग बहुत थोड़े-से और इन थोड़े-से लोगों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की भी आत्मा रुग्ण और टूटी हुई है। जो कुछ मैंने देखा है उससे हठात् हमेशा एक ही नतीजे पर पहुँचा हूँ कि आदमी जितना ही अधिक अच्छा होता है, जितना ही ईमानदार और स्वच्छ उसका हृदय होता है, उसकी आत्मा उतनी ही अधिक कमजोर होती है, उसकी शक्ति का भाण्डार उतना ही कम होता है और उतनी ही अधिक कठिन उसकी जिन्दगी होती है। कष्टप्रद और एकाकी जीवन ही ऐसे लोगों की नियति है। वे सम्पूर्ण हृदय से अधिक अच्छी चीज की आकांक्षा करते हैं, लेकिन उनमें उसके सृजन की शक्ति नहीं होती। यह सम्भव है कि वे इतने कुचले हुए और इतने अशक्त केवल इसलिए हों कि उपयुक्त अवसर पर किसी ने भी उनसे उत्साहप्रद शब्द नहीं कहे।"

वह कहता गया, "दूसरी बात लो। क्या लोगों को तुम ऐसी हँसी दे पाते हो जिससे आत्मा तक पवित्र हो जाय? देखो तो, लोग ठीक तरह से हँसना भी बिलकुल भूल गये हैं। अब वे हँसते हैं दुष्टता से, ओछेपन से, अक्सर आँसुओं के बीच में से। कभी भी वे हार्दिक आनन्द की हँसी नहीं हँसते जिससे प्रौढ़जनों के भी पेट में बल पड़ जाएँ। स्वस्थ हास्य बड़ा पुष्टिकर होता है। आदमी के लिए हँसना बहुत जरूरी है। हँसने की क्षमता आखिर उन कुछ चीजों में से ही है जो आदमी और जानवर का फर्क बताती हैं। तुम केवल ऐसा हास्य दे पाते हो, जिसमें निन्दा हो, जिसमें लोगों के ऊपर हँसा जाता है; ये लोग केवल दयनीय होने के कारण मजेदार लगते हैं। यह समझने की चेष्टा करो कि तुम्हारे उपदेश देने के अधिकार का उद्भव सच्ची भावनाएँ जगाने की क्षमता में होना चाहिए—ऐसी भावनाएँ जो हथौड़े की तरह जीवन के पुराने और जकड़नेवाले रूपों को चकनाचूर कर दें ताकि अधिक उन्मुक्त रूपों का निर्माण हो सके। क्रोध, घृणा, साहस, लज्जा, तीव्र अरुचि और प्रज्ज्वलित अधीरता, ये ही वे औजार हैं जिनकी सहायता से पृथ्वी की कोई भी वस्तु नष्ट की जा सकती है। क्या तुम इन औजारों का निर्माण कर सकते हो? और फिर क्या तुम उनसे काम ले सकते हो? यदि तुम लोगों को सम्बोधित करने का अधिकार चाहते हो तो तुम्हें अपने मन की सब कमजोरियों के प्रति तीव्र घृणा का भाव पोषित करना होगा; या जनसाधारण के प्रति महान् प्रेम, उसके कष्टों को देखकर जागरित प्रेम मन में पैदा करना होगा। यदि तुम इन दोनों में से एक का भी अनुभव नहीं करते तो अपना सिर नीचा रखो और मुँह खोलने से पहले अच्छी तरह सोचो।"

अब उजाला फैलने लगा था, किन्तु मेरे मन का अन्धकार गहरा हो गया था। और वह आदमी जो शायद मेरे मन के सारे भेद जानता था, बात करता रहा। बार-बार मन में एक प्रश्न उठता था, क्या यह वास्तव में मनुष्य है?

किन्तु वह जो कुछ कह रहा था उसमें मैं इतना डूब चुका था कि यह प्रश्न कर ही नहीं सकता था। पुनः एक बार उसके शब्द मेरे मस्तिष्क में सुइयों की भाँति चुभ गये।

"इतना सब होते हुए भी जीवन अधिक विस्तृत और गहरा होता जा रहा है, हालाँकि यह विकास बहुत धीमा है, क्योंकि उसकी गति बढ़ाने के लिए न तुम्हारे पास ज्ञान है और न शक्ति। जीवन विकसित हो रहा है, दिन प्रतिदिन लोग अधिक जिज्ञासु होते जा रहे हैं। उनके प्रश्नों का उत्तर कौन देगा? उनकी जिज्ञासा शान्त करनी चाहिए तुम लोगों को, जिन्होंने अपने आपको पैगम्बर नियुक्त कर रखा है। किन्तु क्या तुम्हें जीवन का इतना गहरा ज्ञान है कि दूसरों के लिए उसकी व्याख्या कर सको? क्या तुम जानते हो कि समय की माँग क्या है? क्या तुम्हें भविष्य का भी ज्ञान है? क्या तुम स्फूर्तिप्रद शब्द कह सकते हो उस व्यक्ति से, जो जिन्दगी के ओछेपन से भ्रष्ट होकर हिम्मत हार चुका है? वह हिम्मत हार चुका है, जीवन के प्रति उसके मन में कोई उमंग नहीं रह गयी है, वह सूअरों की भाँति सादा जिन्दगी बिताना चाहता है। और जब भी कोई उसके सामने 'आदर्श' का नाम लेता है, वह व्यंग्य से हँस देता है। बरबाद होते-होते वह मांस और मोटी खाल चढ़ा हुआ अस्थि-पंजरमात्र रह गया है। यह कंकाल वासना से अनुप्राणित है, आत्मा से नहीं। उसे तुम्हारी भावना की नितान्त आवश्यकता है। जरा जल्दी करो, अभी तो उसका रूप मानव जैसा है। उसे जिन्दा रहने का ढंग सिखा दो। लेकिन तुमसे यह आशा कैसे की जाय कि तुम उसके मन में जीवन के प्रति उमंग भर सकोगे, जब तुम स्वयं कराहते हो, भुनभुनाते हो, शिकायत करते हो अथवा उसके पतन के भावहीन चित्र खींचते हो? पृथ्वी पर सड़ाँध छाई हुई है; कायरता और दासता लोगों के हृदय में भर गयी है; प्रमाद ने नरम जंजीरों से उनके हाथ-पैर और दिमाग बाँध दिये हैं....। इस घृणित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुरवस्था को तुम क्या दे सकते हो ? कितने उथले और कितने महत्त्वहीन हो तुम ! और तुम्हारी ही भाँति और भी न जाने कितने हैं। काश, केवल एक ही दृढ़ किन्तु प्रेमी व्यक्ति जलती ज्योति बना हृदय और सर्वग्राहिणी बुद्धि लेकर आगे आ जाता। फिर इस शर्मनाक शान्ति के बीच घंटे की झनकार की भाँति आर्ष वचन गूँज उठते और शायद इन चलते-फिरते मुर्दों की निकृष्ट आत्मा में कम्पन हो जाता ...।"

यह कहते हुए वह चुप हो गया। मैंने उसकी ओर देखा नहीं। मुझे याद नहीं कि उस समय मेरे मन में लज्जा का भाव था या भय का।

निरपेक्ष भाव से उसने प्रश्न किया, "अब तुम्हें मुझसे क्या कहना है ?"

"कुछ भी नहीं।"

थोड़ी देर मौन रहकर उसने फिर पूछा, "तुम किस प्रकार का जीवन बिताओगे ?"

"मुझे नहीं मालूम।"

"तुम अब क्या लिखोगे ?"

मैं चुप था।

"मौन ही सबसे बड़ी बुद्धिमानी है।"

इन शब्दों के बाद स्नायुओं को झनझना देनेवाली नीरवता व्याप्त हो गयी। तत्पश्चात् वह हँसा। वह आनन्द से हँसा, उस व्यक्ति की भाँति जो बहुत दिनों से खुलकर हँसने के मौके का इन्तजार करता रहा हो। यह हँसी सुनकर मेरा हृदय खून की हँसी हँसने लगा।

"हें, हें, हें, और यह सब तुम कह रहे हो जो दूसरों को जिन्दगी का पाठ पढ़ाते हो ? तुम, जो इतनी आसानी से चकरा जाते हो ? अब मैं कह सकता हूँ कि तुम मुझे पहचानते हो ; है न ? हें, हें, हें, बाकी सब युवक भी मुझसे काम पड़ने पर इसी तरह चकरा जायेंगे। वे सब जन्मजात वृद्ध हैं। केवल वही व्यक्ति अपनी आत्मा का धिक्कार सुनकर नहीं तड़प उठता, जिसने असत्य, धृष्टता और निर्लज्जता का कवच धारण कर लिया है। बस, इतना ही दम है तुममें ? एक धक्का लगा और गिर पड़े। एक शब्द, हाँ, केवल एक शब्द तो अपने पक्ष में कहो। जो कुछ मैंने कहा है उसकी सचाई से इन्कार कर दो; अपने हृदय की लज्जा और वेदना निकाल डालो, अधिक नहीं तो क्षण भर के लिए ही मजबूती और आत्मविश्वास से काम लो; फिर जो कुछ भी मैंने कहा है, सबको मैं वापस ले लूँगा। मैं तुम्हारे आगे नतमस्तक हो जाऊँगा। जिस गुण के आधार पर तुम्हें शिक्षक कहलाने का अधिकार मिला हुआ है, उसकी एक झलक तो मुझे दिखला दो। मुझे भी शिक्षा की आवश्यकता है, मैं भी आदमी ही हूँ। मैं जीवन की अँधेरी भूल-भुलैयों में भटक गया हूँ और ऐसे रास्ते की खोज में हूँ जो मुझे रोशनी दिखा दे, जो सत्य, सौन्दर्य और जीवन के नये रूप तक मुझे पहुँचा दे। मुझे रास्ता दिखा दो। मैं आदमी हूँ। मुझसे घृणा करो, मुझे कोड़े लगाओ, लेकिन उपेक्षा के इस दलदल से मुझे उबार लो। जैसा कुछ मैं हूँ, उससे अच्छा बनना चाहता हूँ। लेकिन यह कैसे हो ? मुझे बताओ कि यह सब कैसे हो ?"

मैं सोच रहा था। क्या मेरे अन्दर यह सब करने की क्षमता है ? इस व्यक्ति ने जो उचित माँग मेरे आगे रखी है, क्या मैं उसे पूरा कर सकता हूँ ? जिन्दगी की आग ठण्डी पड़ती जा रही है, सन्देह की छाया लोगों के मस्तिष्क पर अधिकाधिक छा रही है। मुक्ति का कोई रास्ता तलाश करना ही होगा। वह रास्ता कौन-सा है ? एक बात मैं जानता हूँ। मनुष्य को सुख के पीछे नहीं भटकना चाहिए। सुख का मूल्य ही क्या है ? जीवन का प्रयोजन सुख नहीं है। न आत्मतुष्टि से ही आदमी को अधिक समय तक तृप्ति होगी। आदमी इन दोनों से कहीं ऊँचा है। जीवन का अर्थ है सौन्दर्य तथा किसी लक्ष्य तक पहुँचने के प्रयास की क्षमता। साथ ही यह आवश्यक है कि अस्तित्व के प्रत्येक क्षण का कोई न कोई महान् प्रयोजन हो। और यह सब सम्भव है, लेकिन जिन्दगी के उस पुराने ढाँचे में नहीं, जो आत्मा को कुचल देता है और उसकी स्वतन्त्रता छीन लेता है।"

फिर एक बार मेरा साथी हँस पड़ा—लेकिन इस बार धीमे से, ऐसे व्यक्ति की भाँति जिसके हृदय को विचार नीचे डाल रहे हों।

"इस पृथ्वी ने कितने आदमियों को जन्म दिया है। फिर भी महान् व्यक्तियों के स्मारक तो गिनती के ही हैं। ऐसा क्यों है ? भूतकाल में....लेकिन भाड़ में जाय भूतकाल; उससे हमें ईर्ष्या होती है, क्योंकि वर्तमान में कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं है, जो अपने गुजर जाने के बाद इस पृथ्वी पर अपना जरा-सा भी चिह्न छोड़ जाय। मानव सो रहा है और उसे जगानेवाला कोई नहीं। वह सो रहा है, पशुत्व की ओर वापस जा रहा है। उसे कोड़े लगाने की आवश्य-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कता है, और कोड़ों के बाद प्रेम से गद्गद चुम्बनों की। मत डरो कि उसे चोट पहुँचेगी। अगर प्रेम से तुम उसे कोड़े लगाओगे तो वह कोड़े के निशानों को अंगीकार करेगा और जान लेगा कि वह इसी योग्य था। जब उसे कष्ट हो, वह शर्मिन्दा हो तब उस पर अपने चुम्बनों की वर्षा करो—उसका पुनर्जन्म हो जायगा। कभी-कभी लोगों के कामों की दुष्टता से, उनके मस्तिष्क की विकृति से हमारे हृदय को धक्का लगता है। फिर भी हमें सोचना चाहिए कि वे बच्चे ही हैं। उनके लिए प्यार तथा ताजा और स्वास्थ्य-प्रद आत्मिक भोजन हमेशा बहुत जरूरी है। क्या तुममें लोगों को प्यार करने की क्षमता है ?"

"लोगों को प्यार करने की ?" मैंने शंका से दुहराया क्योंकि वास्तव में मुझे पता नहीं था कि मैं लोगों को प्यार करता हूँ या नहीं। सचमुच ही मैं नहीं जानता था। अपने बारे में कौन कहेगा कि 'देखो, मैं प्यार करता हूँ।' जो भी अपने आचरण को काफी ध्यान से देखता है वह 'मैं प्यार करता हूँ' यह कहने की हिम्मत करने के पहले बहुत देर तक विचार करेगा। हम सभी जानते हैं कि हर एक आदमी और उसके पड़ोसी के बीच कितनी चौड़ी खाई है।

"तुम कुछ जवाब क्यों नहीं देते ? अच्छा, कोई बात नहीं। मैं सब समझता हूँ। अब मैं जाता हूँ।"

"इतनी जल्दी ?" मैंने धीमे से पूछा, क्योंकि मुझे उससे चाहे जितना डर लगता हो, मैं अपने आपसे और भी अधिक डर रहा था।

"हाँ, मैं जा रहा हूँ, लेकिन मैं फिर आऊँगा। मेरा इन्तजार करना।"

और वह चला गया।

क्या वह सचमुच चला गया ? मैंने उसे जाते नहीं देखा। वह परछाई की तरह तेजी से, चुपचाप अन्तर्धान हो गया। इसके बाद मैं पार्क में बड़ी देर तक बैठा रहा। सर्दी का भी ध्यान नहीं रहा, न यही जान पाया कि कब सूरज निकल आया और पेड़ों की बर्फ से ढकी शाखाओं पर चमकने लगा। सदा की भाँति सूरज चमक रहा था। युगों से पीड़ित वृद्धा पृथ्वी धूप में जगमगाती बर्फ के सफेद वस्त्रों से ढकी हुई थी। यह दिन बड़ा अजीब-सा दीख रहा था।

तीन छोटी व्यंग्य कविताएँ

श्री निरंजनकुमार सोलीवाल 'निराकार'

१—बड़ों का ईमान

भाषण से
जनता नहीं समझती।
आश्वासनों से
घेराव नहीं टलते।
योजनाओं से निर्माण नहीं होता
चुनाव से सरकार नहीं
बनती-टिकती
देश की प्रगति को
चट कर रहा है,
बड़े लोगों का ईमान।

२—भीड़ का ऊधम

बचना रे बाबू बचना
भीड़ में न फँसना
भीड़ है गजब
करती ऊधम
आग भरा
दिल इसका
ओछे हैं इसके
कदम
बचना रे बाबू
बचना।

३—युग की हवा

वह जो
नेताओं के आसपास
घूमता।
उसके जूठे चमचों को,
चूमता।
वह समझदार है
युग-गायक।
वह जो
अभावों में झूमता,
अवसरवाद पर थूकता।
वह मूर्ख है नासमझ,
युग की हवा से,
व्यर्थ ही रूठता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नवीन प्रकाशन

रमेशचन्द्रदत्त—लेखक—श्री आर० सी० दत्त । प्रकाशक—प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार, नई दिल्ली-१ । मूल्य—३·५० रु० । 'आधुनिक भारत के निर्माता' ग्रन्थमाला में प्रकाशित इस पुस्तक में प्रसिद्ध प्रशासक, साहित्यकार, अर्थशास्त्री, इतिहासविद् देशभक्त श्रीरमेशचन्द्र दत्त (१८४८-१९०९) के कार्यकलापों का वर्णन है । उनके पौत्र श्री रवीन्द्रचन्द्र दत्त की अंग्रेजी में लिखी जीवनी का यह रूपान्तर है । इसमें उस महापुरुष के जीवन के कार्यों का चलता सा विवरण दिया गया है । उनके बँगला में लिखे उपन्यासों और कुछ अन्य रचनाओं, तथा संस्कृत महाभारत और रामायण के सार अंशों के पद्यात्मक अंग्रेजी अनुवादों तथा अंग्रेजी में लिखी देश के अर्थशास्त्रीय और इतिहास-विषयक रचनाओं का कुछ परिचय भी दिया गया है । उनके महत्त्वपूर्ण प्रशासनिक और राजनीतिक कार्यों का भी चित्रण हुआ है । उपयुक्त अवतरणों की सहायता से वर्ण्य व प्रतिपादित विषय को स्पष्ट एवं पुष्ट किया गया है । पुस्तक के अन्त के परिशिष्टों में दत्त महोदय के लखनऊ के इंडियन नेशनल कांग्रेस (१८९९) तथा प्रथम भारतीय औद्योगिक सम्मेलन (बनारस —१९०५) में अध्यक्ष के रूप में दिये भाषण भी दिये गये हैं । उनसे उनके उस समय की राजनीतिक और आर्थिक स्थिति से सम्बद्ध विचार भी जाने जा सकते हैं । आश्चर्य है कि पर्याप्त अर्थ-व्यय की सरकारी व्यवस्था में प्रकाशित पुस्तक की भाषा में अनेक अशुद्धियाँ हैं । कहीं-कहीं अंग्रेजी का शब्दानुवाद हुआ है (यथा, जीवन के कई महत्त्वपूर्ण पहलुओं पर प्रकाश ही नहीं पड़ता । जीवन के प्रति उनके दृष्टिकोण का भी (पृ० ७), कहीं महत्त्व न लिखकर महत्व जैसे अशुद्ध समस्त पद हैं, कहीं 'आयु' जैसे शब्द के शुद्ध अर्थ के अज्ञान का प्रदर्शन है (जैसे ४९ वर्ष की आयु में समय से पूर्व ही····अवकाश ग्रहण करने से ····) । एक स्थान पर पुस्तक में दिया वर्ष भी चिन्त्य प्रतीत होता है । पृ० ८० के पहले अनुच्छेद में ही १९०५ में रमेशचन्द्र दत्त के बर्दवान के स्थानापन्न कमिश्नर के पद पर काम करते समय गायकवाड़ ने बड़ौदा की सेवा में आने का निमन्त्रण देने की चर्चा करने के बाद लिखा है कि गायकवाड़ ने फिर १९०४ में उनसे राजस्वमंत्री का पद सँभालने को कहा । ऐसे दोष अच्छी तरह देख कर शुद्ध कर दिये गये होते तो ठीक होता ।

हरियाणा—लेखक—शशिभूषण सिंहल । प्रकाशक—प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली—१ । मूल्य १·५० रुपया । 'हमारे देश के राज्य' ग्रन्थमाला की इस छोटी-सी पुस्तक में १९६६ में बने इस सत्तरहवें राज्य के अतीत और वर्तमान का लेखा-जोखा है । हरियाणा के वैदिक काल से अब तक के इतिहास का उल्लेख करके खेती, उद्योग-धन्धों, शिक्षा एवं समाज-सेवा के विविध कार्यों का विस्तार से वर्णन किया गया है । साथ ही वर्णन से सम्बद्ध बहुत से उपयोगी चित्र भी दिये गये हैं । सन् १९७२ में प्रकाशित पुस्तक में १९६१ की जनगणना के आधार पर आँकड़े न देकर १९७१ के दिये गये होते तो पुस्तक अद्यतन हो गयी होती ।

हिन्दी व्याकरण और रचना—लेखक—डा० भोलाशंकर व्यास, डा० भोला नाथ तिवारी तथा डा० रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव । प्रकाशक—राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली—१६ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मूल्य—चार रुपये। उच्चतर माध्यमिक कक्षाओं के लिए हिन्दी पाठ्य-पुस्तक-समिति के तत्त्वावधान में प्रस्तुत पाठ्य-पुस्तक ऐसे विद्वान् अध्यापकों ने लिखी है जिन्हें माध्यमिक कक्षाओं में अध्यापन से कोई लगाव नहीं है। फिर भी इसमें व्याकरण के सभी आवश्यक विषयों का सुबोध परिचय है, जिसमें काम की बातें ही बतलायी गयी हैं। पद-परिचय और वाक्य-विश्लेषण की शिक्षा अंग्रेजी व्याकरण की पुस्तकों की शैली पर इस पुस्तक में भी दी गयी है। पत्र-लेखन की शिक्षा पूर्व-माध्यमिक कक्षाओं में पहले ही दी जाती है। अतः उसकी आवृत्ति इस पुस्तक में अनावश्यक है। इस श्रेणी के छात्रों को निबन्ध लिखने का यथेष्ट अभ्यास कराना अत्यावश्यक है। इस दृष्टि से रचना सम्बन्धी विवेचन, उदाहरण और अभ्यास की मात्रा कम प्रतीत होती है।

प्रीति-सन्दोहनी—श्रीराधामाधव संस्थान, पो० गीता वाटिका (गोरखपुर) ने नित्यलीलालीन श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार के रचे 'प्रेम-शतक' की यह व्याख्या प्रकाशित की है। यह व्याख्या पोद्दारजी की पौत्री श्रीमती पुष्पादेवी भरतिया, एम० ए० ने पोद्दारजी की द्वितीय पुण्य तिथि (चैत्र कृष्ण १०, सं० २०२९) को स्वान्तःसुखाय प्रस्तुत की। पोद्दारजी 'कल्याण' के माध्यम से सुपरिचित हैं। उन्होंने धार्मिक तथा आध्यात्मिक लोक-हितकारी गद्य-पद्य-मयी अनेक प्रकार की रचनाएँ की हैं। वे श्रीराधा-कृष्ण के मधुर भाव के अनन्य प्रेमी भक्त भी थे। उनकी तद्विषयक कविताएँ स्वानुभूतिमयी होने से बहुत ही सरस हैं। 'प्रेम-शतक' में दिव्य प्रेम के मर्म का उद्घाटन करने वाले सौ दोहे हैं। उन्हें नारद-कृत भक्ति सूत्रों की पोद्दारजी की रची 'प्रेम-दर्शन' नाम की टीका का सार कहा जा सकता है। श्रीमती पुष्पा देवी अपने नानाजी के सम्पर्क में रहने से उनके भाव और अर्थ के भीतर प्रवेश करने में जितना समर्थ हो सकी हैं उतना कदाचित् प्रेम-शतक का अन्य व्याख्याकार न हो पाता। उन्होंने प्रत्येक दोहे का शब्दार्थ देने के बाद उसका वैशिष्ट्य बतलाते हुए उसकी विशद व्याख्या की है। संस्कृत और हिन्दी के तद्विषयक चुने हुए उद्धरणों की सहायता से तात्पर्य भलीभाँति समझाया है। यों प्रेम-शतक में दिव्य प्रेम के स्वरूप की जो अभिव्यक्ति हुई है वह इस व्याख्या ने बड़े ही रोचक ढंग से सबके लिए बोधगम्य कर दी है। अमूल्य यह रचना विक्रयार्थ नहीं प्रतीत होती। तभी इसमें मूल्य नहीं दिया गया।

निमन्त्रण—काजी अशरफ महमूद के इस हिन्दी काव्य का तीसरा संस्करण बँगला लिपि में 'बन्धु-बान्धव देर (बन्धु बान्धवों के) उपहार देबार (देने के) उद्देश्ये (उद्देश्य से) काजी शाह आलमगीर ने १०९ आगा मसीह लेन, ढाका—२ (बाँगला देश) से अप्रैल १९७३ में प्रकाशित की है। बँगला भाषा के पाठकों की सुविधा के लिए हिन्दी के कुछ शब्दों के अतिरिक्त क्रियापदों, विभक्ति-प्रत्ययों के अर्थ-सूचक बँगला के पर्याय यथास्थान दिये गये हैं। इनकी सहायता से वे सहज ही यह भी समझ सकते हैं कि हिन्दी बँगला के कितना निकट है। इकतालीस छन्दों में कवि ने अभ्यन्तर रूपी वन की आकर्षक सुषमा के अवलोकन का निमन्त्रण दिया है, जिसे एक बार भी देख लेने पर फिर भुला सकना सम्भव न होगा। इसकी मँजी हुई प्रवाहपूर्ण ललित छन्दों में वर्णित कल्पनाएँ बहुत रमणीय हैं।

पीड़ा—कवि—वीरभद्र मिश्र। प्रकाशक—सहृदय प्रकाशन, लखनऊ। मूल्य—१ रुपया। इस कविता में, प्रेमी के मन की उस पीड़ा की अभिव्यक्ति हुई है, जिसे वह कभी छोड़ना नहीं चाहता। इसे पढ़ते ही प्रसादजी के 'आँसू' का स्मरण हो आता है।

मुक्त क्षेत्रे युद्ध क्षेत्रे—लेखक—डा० धर्मवीर भारती। प्रकाशक—सिन्धु पब्लिकेशन्स प्रा० लि० हिन्द राजस्थान चेम्बर्स, ६ ओक लेन, बम्बई—१। सन् १९७१ में पाकिस्तानी सैनिकतन्त्र से मुक्त होने के लिए पूर्वी पाकिस्तान की जनता ने जो संघर्ष किया था उसके कुछ दृश्य लेखक ने अपनी आँखों से देखे थे। उन्होंने यथासमय उनका चित्रण 'धर्मयुग' में धारावाहिक रूप से किया था। प्रस्तुत पुस्तक में उन्हींका संकलन है। इसमें बंगबन्धु शेख मुजीबुर्रहमान के अनुज श्री अबू नासिर का अपने बड़े भाई के सम्बन्ध के लेख के अतिरिक्त श्रीविष्णुकान्त शास्त्री की लिखी एक भेंट वार्ता (पाकिस्तानी फौजों के आतंक की) के अतिरिक्त बँगला की तीन कविताओं के रूपांतर हैं जिनसे बाँगला देश के जन्म के पूर्व की जनमानस की भाव-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाओं का बोध होता है। अपने सीमित साधनों के बल पर पूर्वी पाकिस्तान के निवासियों ने जिस दृढ़ संकल्प, अभूतपूर्व साहस और संघटन-शक्ति का परिचय दिया है उसका चित्रण करने में लेखक को यथेष्ट सफलता मिली है। जो दृश्य अंकित किये गये हैं वे आँखों के सामने प्रत्यक्ष हो जाते हैं। लेखक ने जो देखा था उसे पूरी संवदेना और सहृदयता के साथ रोचक, सरस और सशक्त शैली में व्यक्त किया है। बाँगला देश के निर्माण केसमय के जनजागरण और बलिदान के ये चित्र अभी हमारे स्मृति पट पर धुँधले नहीं हुए, किन्तु प्रस्तुत पुस्तक इन्हें भविष्यत् में भी प्रत्यक्ष किया करेगी। पुस्तक में कई स्थलों पर प्रूफ के संशोधन में अभीष्ट सावधानी नहीं बरती गयी। और तो और पृ० १४१ पर (और विषय सूची में भी) प्रवेशाधिकार निरर्थक का रूप 'प्रवेधिकार' बन गया है।

श्री आनन्द स्वामी सरस्वती—ले०—श्री रणवीर। अनुवादक—श्री सुनील शर्मा। प्रकाशक—गोविन्दराम हासानन्द, दिल्ली। प्रथम संस्करण १९७३। मूल्य—आठ रुपये। पहले लाहौर और अब दिल्ली, जलंधर और हैदराबाद से प्रकाशित प्रसिद्ध उर्दू दैनिक समाचारपत्र 'मिलाप' के संस्थापक और सम्पादक लाला खुशहालचन्द 'खुर्सन्द' संन्यास लेने पर आनन्द स्वामी सरस्वती नाम से परिचित हैं। वे उर्दू के माध्यम से आर्यसमाज के कर्मठ प्रचारक और उसके प्रसिद्ध कार्यकर्ता और नेता हैं। अपनी वाणी और लेखनी दोनों से वे आर्य-समाज के सिद्धान्तों को देश-विदेश में बरसों से प्रचार करते आ रहे हैं। उन्होंने अपने सभी कार्यक्षेत्रों में अपनी लगन, तत्परता, दृढ़ता और योग्यता के कारण यथेष्ट प्रतिष्ठा अर्जित की है। लेखक ने अपने पिता की यह जीवन-गाथा बड़ी श्रद्धा और भक्ति के साथ लिखी है। उन्होंने स्वामीजी के जीवन-प्रवाह का आरम्भ से लेकर अब तक का क्रमानुसार विवरण दिया है। स्वामीजी के जीवन के अनेक क्षेत्रों के कार्यों, उनके अगणित गुणों और उनके लोकोपकारों का इतना विस्तृत विवरण है कि लगता है उन जैसा आदर्श समाजसेवी अलभ्य नहीं तो दुर्लभ अवश्य है। इस जीवनचरित्र से जो चाहेगा वह सत्कर्मों की प्रेरणा पा सकेगा। यह इसकी बड़ी विशेषता है।

इसमें लेखक ने अपने 'सूरी' वंश के उद्गम के सम्बन्ध में जो अनुमान लगाया है और उसको शेरशाह सूर से जोड़ने का जो प्रयास किया है उस पर सहसा विश्वास नहीं होता। उसके सम्बन्ध के ऐतिहासिक तथ्य भी मानने में आपत्ति होगी। पुस्तक में प्रयोग, व्याकरण वर्त्तनी आदि की बहुत त्रुटियाँ हैं। उनका संशोधन अपेक्षित है। इसमें पृ० ११८ पर 'मिलाप' का प्रकाशन १९२२ में और पृ० १३३ और १३४ में १३ अप्रैल १९२३ लिखा गया है। गांधीजी ने १९२५ में सरकारी विश्वविद्यालयों और उनसे सम्बद्ध कालेजों और स्कूलों के बहिष्कार का आन्दोलन चलाया। (पृ० ११७) यह ठीक नहीं। वह १९२१ में चलाया गया था। ऐसी भूलें भी ठीक करनी चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनोरंजक संस्मरण

कवि-सम्मेलन तो बहुत दिनों से हो रहे थे और उनका श्रेय सनेहीजी और हरिऔधजी के साहित्य-काव्य प्रचार की अदमनीय भावना को था। उनमें अधिकांश कविता-प्रेमी आते थे जो काव्य को समझते और उसमें रस लेते थे। किन्तु बाद में जब हम फैजाबाद और गोरखपुर डिवीजनों के इन्सपैक्टर आफ स्कूल्स नियुक्त हुए तब हमें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि बहराइच, गोंडा, गोरखपुर आदि जिलों में हिन्दी की अपेक्षा उर्दू का प्रचार अधिक है और वहाँ हिन्दी-प्रचार की आवश्यकता है। उस समय गोरखपुर में स्व० जमुनाप्रसाद सिंहजी इनकम टैक्स प्राफिसर थे। वे बड़े हिन्दी-प्रेमी और हिन्दी के उन्नायक थे। श्रीहरिश्चन्द्र त्रिपाठी ने गोरखपुर में अपना वकालत का जीवन आरम्भ किया था। बाद में वे इलाहाबाद हाईकोर्ट के न्यायाधीश पद पर नियुक्त हुए और अभी हाल में सेवामुक्त हुए हैं। इन मित्रों की सलाह से हिन्दी-प्रचार की दृष्टि से हमने कवि-सम्मेलनों का जगह-जगह आयोजन करने का अभियान आरम्भ किया, और उसका श्रीगणेश गोरखपुर से किया, जहाँ 'उर्दू बाजार' है। वह कविसम्मेलन 'न भूतो न भविष्यति' हुआ। वह तीन दिन चला। नित्य दो बैठकें होती थीं। एक बैठक में एक ही रस या एक ही शैली की कविताएँ सुनाई जाती थीं। सारे भारत से प्रायः ८० कवि बुलाये गये थे। एक दिन राजा साहब तमकुही, दूसरे दिन आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और तीसरे दिन श्रीगोपाल-शरण सिंह ने अध्यक्षता की। उसमें कई मार्मिक कविताएँ पढ़ी गयीं, जिनमें चोंचजी की 'कसिया की सड़क' और 'गोरखपुर के मच्छर' बहुत लोकप्रिय हुईं। तब से प्रायः २० वर्ष हिन्दी-प्रचार के लिए हमने न मालूम कितने कवि-सम्मेलन प्रान्त के विभिन्न स्थानों में आयोजित किये और एक बार दिल्ली के हिन्दू कालिज में भी उसका आयोजन किया। उनमें निरालाजी, सोहनलाल द्विवेदी, प्रदीप, मिलिन्द (कानपुर), श्यामनारायण पाण्डेय, सत्य-नारायण पाण्डेय आदि का और कभी-कभी हितैषीजी का सहयोग भी मिलता था।

समय बदला। पहिले कवि अपने व्यय से सम्मेलनों में हिन्दी-प्रचार की भावना से जाते थे। किन्तु जब उनकी संख्या बढ़ी तब हमने आयोजकों से कवियों को इंटर का किराया और पाँच रुपये ऊपरी व्यय देने को कहा, जो नियम बन गया; किन्तु इस बीच हिन्दी आन्दोलन ने इतना जोर पकड़ लिया और कवि-सम्मेलन इतने लोकप्रिय हो गये कि हमने उनसे हाथ खींच लिया। अब वे स्थानीय प्रदर्शनियों तथा अन्य समारोहों के साथ होने लगे और उनका ध्येय मनोरंजन हो गया। कवियों ने ऊँचे दर्जे के किराये के साथ 'फीस' की माँग भी आरम्भ कर दी। यह ठीक भी था। जब उद्देश्य हिन्दी-प्रचार न होकर मनोरंजन रह गया तब मनोरंजन के लिए पैसा देना बहुत उचित है।

किन्तु हमने देखा कि आरम्भ ही से कई कवि इंटर का किराया लेकर तीसरे दर्जे में चलते और अपनी हैसियत नीची करते। उनका जो स्वागत-सत्कार होता उसमें भी वे संयम से काम नहीं लेते। कानपुर के मिलिन्दजी सवैया और घनाक्षरी पढ़ते थे। मैंने उन्हें लक्ष्य कर सारे कवियों के प्रति एक छंद लिखा। वह छंद यह था :—

एक दिन श्रीवरजू बोले ये मिलिन्दजी से
इतनी घनाक्षरी मिलिन्द! न पढ़ा करो।
स्वास्थ्य का सुधार करो, तोंद बढ़ी जा रही है,
दोने में मिठाई देख गिर न पड़ा करो।
कवि-सम्मेलनों में जाया करो—कभी कभी,
ड्यौढ़े का किराया लेके ड्यौढ़े में चला करो।
कविता तो करो, पै जी को रखो जेब ही में
कवयित्री देखकर पीछे न पड़ा करो।

तब से अब तो कवि-सम्मेलनों की काया-पलट हो गयी है। हम तो अब कवि-सम्मेलनों में नहीं जाते, किन्तु हमने सुना है कि अब कितने ही कवि भी शायरों की तरह मदिरापान कर कविता पढ़ते, फीस के लिए झगड़ते और प्रथम श्रेणी का किराया लेकर निम्न श्रेणी में चलते हैं। उनसे एक लाभ यह हुआ है कि अब कितने ही लोगों के लिए कवि-सम्मेलन जीविका का मुख्य सहारा हो गये हैं। हमसे बताया गया है कि सामान्य कवि भी वर्ष में तीन-चार हज़ार रुपये कमा लेते हैं और कितने ही कवि हैं जिनकी वार्षिक आय चार की संख्या में है। यदि ये कवि-सम्मेलन जनता का स्वस्थ मनोरंजन करके सत्काव्य का प्रचार कर सकें, और हिन्दी-कविता का स्तर ऊँचा रखें तो वे बड़े सार्थक हो जायँ और इनसे हिन्दी का बड़ा हित हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुनरावृत्ति

श्री ललन

(१)

उस दिन युद्ध के समाचार अच्छे न थे। राजा साहब उदास होकर बाग की ओर टहलने गये।

वहाँ देखा कि प्राचीर के समीप, पेड़ की छाँह में, एक छोटा सा लड़का और लड़की खेल रहे हैं।

राजा ने उनसे पूछा—क्या खेलते हो?

"आज तो हम खेलते हैं राम और सीता का वनवास।"

राजा साहब वहीं बैठ गये।

लड़के ने कहा—यह हमारा दण्डक वन है। यहीं पर हम कुटी बनाते हैं।

वह बहुत से डाल-पत्ते और घास-फूस उठा लाया। बड़ा काम करना है। और वह लड़की खेल की हाँड़ी में, बिना ही आग के, शाक-पात पका रही है। राम भोजन करेंगे, इसीलिए सीता रसोई बना रही है। उसे जरा भी फुरसत नहीं।

राजा ने कहा—"और तो सब कुछ है, किन्तु राक्षस कहाँ है?" लड़के को स्वीकार करना पड़ा कि उसके दण्डक वन में कुछ-कुछ कमी है। राजा ने कहा—अच्छा, कुछ परवा नहीं; राक्षस हमीं बन जायँगे।

लड़के ने उन्हें अच्छी तरह देख-भाल कर कहा—किन्तु एक शर्त है। तुम्हें हार माननी होगी।

राजा ने कहा—मैं हारना बहुत उमदा जानता हूँ। विश्वास न हो तो जाँच कर देख लो।

उस दिन राक्षस-वध इतनी सफाई से होने लगा कि लड़के ने किसी भी तरह राजा को छुट्टी देना स्वीकार न किया। उस दिन, एक ही समय, अकेले राजा को दस-बारह राक्षसों की मौत मरना पड़ा। मरते-मरते बेचारे का नाक में दम हो गया।

त्रेतायुग में, पञ्चवटी में पक्षी जिस प्रकार बोलते थे उस दिन भी वहाँ उसी प्रकार बोलने लगे। त्रेतायुग में हरे पत्ते के पर्दे-पर्दे में प्रभात-आलोक ने जिस प्रकार कोमल ठाट में अपना सुर बाँध लिया था आज भी उसी सुर में बाँध लिया।

राजा के मन से भार हट गया। उन्होंने मन्त्री को बुलाकर पूछा—इस लड़के और लड़की को पहचानते हो?

मन्त्री—जी हाँ, लड़की मेरी ही है। इसका नाम रुचिरा है। लड़के का नाम कौशिक है। इसका बाप एक गरीब ब्राह्मण है, जो पूजा करके अपनी गुजर करता है।

राजा ने कहा—मैं चाहता हूँ कि जब समय आवे तब इस लड़के के साथ रुचिरा का विवाह हो।

मन्त्री कुछ उत्तर न दे सका। माथा झुका कर रह गया।

(२)

देश भर में जो सबसे बड़े पण्डित थे उन्हीं के यहाँ राजा ने कौशिक को पढ़ने के लिए भिजवाया। ऊँचे वंश-वालों की सन्तान को ही ये पण्डितजी पढ़ाते थे। रुचिरा भी यहीं पढ़ती थी।

पाठशाला में जिस दिन कौशिक भर्ती हुआ उस दिन अध्यापक को प्रसन्नता न हुई। औरों को भी लज्जा हुई। किन्तु कोई कर क्या सकता था। राजा की इच्छा ही ऐसी थी। सबसे अधिक सङ्कट रुचिरा को था। क्योंकि लड़के आपस में काना-फूसी करते थे। लाज के मारे उसका चेहरा सुर्ख हो जाता था। क्रोध के मारे आँखें आँसू बरसाती थीं।

कौशिक यदि कभी रुचिरा के आगे पोथी रख देता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह पोथी को अलग हटा देती। यदि कुछ पढ़ने की बात पूछता तो वह उत्तर ही न देती।

रुचिरा को अध्यापक जी बहुत चाहते थे। उनकी प्रतिज्ञा थी कि कौशिक को रुचिरा सभी विषयों में पीछे कर देगी। रुचिरा का भी ऐसा ही प्रण था।

ऐसा जँचने लगा कि यह काम सहज ही हो जायगा। क्योंकि कौशिक पढ़ता तो था पर भली भाँति मन न लगाता था। तैरने, जङ्गल की सैर करने, गाने और बाजा बजाने में भी उसकी प्रवृत्ति थी।

अध्यापकजी उससे घुड़क कर कहते—पढ़ने-लिखने में तुम्हारा मन क्यों नहीं लगता?

वह उत्तर देता—एक पढ़ने-लिखने में ही मैं अपने मन को नहीं लगाता; क्योंकि और भी तो बहुत सी बातें सीखनी हैं। थोड़ा-थोड़ा सब कुछ सीखूँगा।

"और सब बातें छोड़ दो।"

"तो फिर पढ़ने-लिखने से भी हाथ धोने पड़ेंगे।"

(३)

इस प्रकार कुछ समय बीत गया।

राजा ने अध्यापक को बुला कर पूछा—तुम्हारे छात्रों में सबसे श्रेष्ठ कौन है?

अध्यापक—रुचिरा।

राजा—और कौशिक?

अध्यापक—मालूम नहीं होता कि उसने कुछ अभ्यास किया हो।

राजा—मैं रुचिरा के साथ कौशिक का विवाह करना चाहता हूँ।

अध्यापक ने मुसकरा कर कहा—यह तो गोधूलि के साथ ऊषा के विवाह का प्रस्ताव जँचता है।

राजा ने मन्त्री को बुलाकर कहा—तुम्हारी बेटी के साथ कौशिक का विवाह होने में अब देर करना ठीक नहीं।

मन्त्री—महाराज, मेरी बेटी इस विवाह को पसन्द नहीं करती।

राजा—स्त्रियों के मन की इच्छा क्या उनके मुँह की बात से समझी जा सकती है?

मन्त्री—उसकी आँखों का पानी भी तो गवाही दे रहा है।

राजा—तो क्या वह कौशिक को अपने लिए अयोग्य समझती है?

मन्त्री—जी हाँ, यही बात है।

राजा—अच्छा, तो हमारे सामने विद्या में दोनों की परीक्षा हो। यदि कौशिक विजयी हो तब तो यह विवाह होगा ही।

दूसरे दिन मन्त्री ने आकर राजा को सूचना दी—मेरी बेटी को यह शर्त मञ्जूर है।

(४)

सभा में सब लोग उपस्थित हुए। राजा साहब सिंहासन पर बिराजे और कौशिक उनके सिंहासन के पास ही, सट कर, बैठ गया। स्वयं अध्यापकजी रुचिरा को साथ लेकर वहाँ उपस्थित हुए। कौशिक ने आसन छोड़ कर अध्यापकजी को प्रणाम और रुचिरा को अभिवादन किया। रुचिरा ने कौशिक की ओर आँख उठा कर देखा तक नहीं।

पाठशाला में किसी दिन, परिपाटी की रक्षा करने के लिए भी, कौशिक ने रुचिरा के साथ तर्क—शास्त्रार्थ—नहीं किया था। अन्यान्य छात्रों ने भी, अवज्ञा के कारण, उसे तर्क करने का मौका न दिया था। इसी से आज जब उसकी युक्ति के मुख में तीक्ष्ण उपहास—तीर की नोक की चमक की भाँति—चमकने लगा तब गुरुजी विस्मित हुए और कुछ कुछ चिढ़े भी। रुचिरा के माथे में पसीने की बूँदें झलकने लगीं। बुद्धि को वह स्थिर न रख सकी। कौशिक उसे पराभव के एक किनारे ठेल कर छोड़ आया।

क्रोध के मारे अध्यापक के मुँह से कोई बात न निकली। और रुचिरा? उसकी आँखें आँसुओं की धारा बहाने लगीं।

राजा ने मन्त्री से कहा—लो, अब विवाह का मुहूर्त स्थिर करो।

आसन से उठकर कौशिक ने हाथ जोड़ कर राजा से कहा—महाराज, क्षमा कीजिए। मैं यह विवाह न करूँगा।

राजा ने विस्मित होकर पूछा—विजय का इनाम न लोगे?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कौशिक—विजय मेरी ही रहे, पुरस्कार किसी और को दे दिया जाय।

अध्यापक—महाराज, एक वर्ष का अवकाश और दीजिए, इसके पश्चात् अन्तिम परीक्षा हो।

यह बात मान ली गई।

(५)

अब कौशिक ने पाठशाला को दूर ही से नमस्कार किया। वह किसी दिन सवेरे वन की छाया में देख पड़ता तो किसी दिन सन्ध्या-समय पहाड़ की चोटी पर।

इधर अध्यापकजी ने रुचिरा को शिक्षा देने में कोई बात उठा न रक्खी। किन्तु उसका मन कहाँ है?

अध्यापक ने चिढ़ कर कहा—जो अब भी सावधान न होगी तो दूसरी बार तुम्हें लज्जित होना पड़ेगा।

दूसरी बार लज्जित होने के लिए ही मानो वह तपस्या करने लगी। अपर्णा ने जिस प्रकार अनशन-द्वारा तपस्या की थी उसी प्रकार रुचिरा ने अनध्याय के द्वारा की। उसकी षड्दर्शन की पोथी बँधी ही रक्खी रही, काव्य की पोथी भी किसी दिन खोली जाती थी।

अध्यापक ने नाराज होकर कहा—मैं कपिल-कणाद की शपथ करके कहता हूँ, अब कभी किसी लड़की या स्त्री को न पढ़ाऊँगा। वेद-वेदान्त का पारदर्शी पण्डित हो जाने पर भी मैं स्त्री-जाति के मन की थाह न पा सका।

एक बार मन्त्री ने आकर राजा से कहा—भवदत्त के घर सगाई करने को कहा जा रहा है। कुल, शील, धन, मान सभी बातों में वे अद्वितीय हैं। महाराज की सम्मति चाहिए।

राजा—बेटी क्या कहती है?

मन्त्री—स्त्रियों की इच्छा का पता क्या उनकी इच्छा से चल सकता है?

राजा—उसके आँसू आज किस बात की गवाही देते हैं?

मन्त्री चुप हो गया।

(६)

राजा अपने बाग में आकर बैठे। मन्त्री से कहा—अपनी बेटी को मेरे पास भेज दो।

रुचिरा ने आकर राजा को प्रणाम किया।

राजा ने कहा—बेटी, राम के वनवास के खेल की याद है?

रुचिरा ने मुसकुरा कर नीची निगाह कर ली।

राजा ने कहा—आज फिर राम के वनवास के उसी खेल को देखने की मुझे बड़ी लालसा है।

रुचिरा ने माथे के कपड़े को जरा सा आगे को खींचा। कुछ कहा नहीं।

राजा—वन भी है, राम भी है, किन्तु बेटी, सुनता हूँ कि इस बार सीता की कमी है। तुम चाहो तो यह कमी न रहे।

रुचिरा ने कुछ उत्तर न देकर राजा के चरणों के समीप झुक कर प्रणाम किया।

राजा—किन्तु बेटी, अब की बार मैं राक्षस न बनूँगा।

रुचिरा स्निग्ध दृष्टि से राजा की ओर देखने लगी।

राजा ने कहा—इस बार तुम्हारे अध्यापक को राक्षस बनना होगा*।

---

*रवि बाबू की एक कहानी।

पुस्तकालय
11432
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार

प्रकाशक—रा० वि० मिश्र, इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद
सदक—पी० एल० यादव, इंडियन प्रेस प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती हीरक जयंती विशेषांक

१९०० ई० से १९५९ ई० तक सरस्वती में प्रकाशित हिन्दी के यशस्वी कवियों, कहानीकारों तथा लेखकों की चुनी हुई रचनाओं का संग्रह इस हीरक जयन्ती अंक में है। यह विशेषांक हीरक जयन्ती के अवसर पर २१ दिसंबर १९६१ को भारतीय गणतंत्र के प्रथम राष्ट्रपति को राष्ट्रपति भवन, नयी दिल्ली में समर्पित किया गया।

इस हीरक जयन्ती अंक में ८०८ + ५४ पृष्ठों की अनुपम पाठ्यसामग्री है जिसमें ५४ पृष्ठों में तो वर्तमान साहित्यकारों द्वारा लिखे संदेश और सरस्वती के इतिहास सम्बन्धी संस्मरण हैं और ८०८ पृष्ठों में १०९ कवियों की कविताएँ, ६० कहानी-लेखकों की कहानियाँ तथा १०० शीर्ष स्थानीय लेखकों के लेख सम्मिलित हैं। इसके अतिरिक्त ६५ रंगीन कलात्मक चित्र भी दिये हैं।

मूल्य—साधारण संस्करण—१६ रु०—डाक व्यय—२·१० पैसे

पुस्तकालय संस्करण (बढ़िया कागज पर सजिल्द)—३० रु०—डाक व्यय—२·७० पैसे

[दो साल के लिए सरस्वती के नये ग्राहक बनने वालों या पुराने ग्राहकों को—

साधारण संस्करण—१२ रु०, डाक व्यय के लिए २·१० पैसे अतिरिक्त]

माननीय श्री श्रीमन्नारायण (भारतीय राजदूत, नेपाल)

"यह अंक सचमुच बहुत उपयोगी सामग्री से परिपूर्ण है। सरस्वती के द्वारा हिन्दी साहित्य की जो अपूर्व सेवा हुई है उसकी झलक इस अंक द्वारा मिलती है।"

पद्मभूषण श्री सुमित्रानन्दन पंत

निःसंदेह यह एक अमूल्य उपलब्धि—हिन्दी ही नहीं—समस्त भारतीय साहित्यों के लिए है। यह अंक साहित्य-प्रेमियों के पुस्तकालयों में तो रहना ही चाहिए, इसे समस्त प्रादेशिक तथा केन्द्रीय सरकार के अंतर्गत ग्रंथालयों में भी—सांस्कृतिक मणियों से जटित हमारी भाषा के ऐतिहासिक विकास के सर्वोच्च गौरव मुकुट की तरह—सुशोभित रहना चाहिये।

श्री रघुवंशलाल गुप्त, आई० सी० एस० (अवकाशप्राप्त)

विशेषांक धीरे-धीरे पढ़ रहा हूँ। हिन्दी कविता, कहानी, लेख आदि के विकास की फिल्म की तरह है। कदम बकदम पूरी प्रगति की तस्वीर है। यह विशेषांक हिन्दी साहित्यप्रेमियों और हिन्दी साहित्यसेवियों के लिए अनमोल निधि है।

सरस्वती हीरक जयंती विशेषांक का परिशिष्टांक

पृष्ठ-संख्या ७८, मूल्य दो रुपये

इस परिशिष्टांक में दिल्ली में महामहिम राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद को सरस्वती का विशेषांक भेंट करने के समारोह से प्रारंभ कर प्रयाग में अनुष्ठित समारोह में सरस्वती के प्रतिष्ठित कतिपय लेखकों, विद्वानों और साहित्यकारों आदि के भाषण पठनीय हैं। साथ ही अनेक बहुरंगे और उत्सव के दृश्यों तथा व्यक्तियों के सुन्दर चित्र भी दिये गये हैं।

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Yearly Subscription : Rs. 9.00
Single Copy : Rs. 0.75

October 1973

SARASWATI—Reg. No. L. 248

हमारा गांधी साहित्य

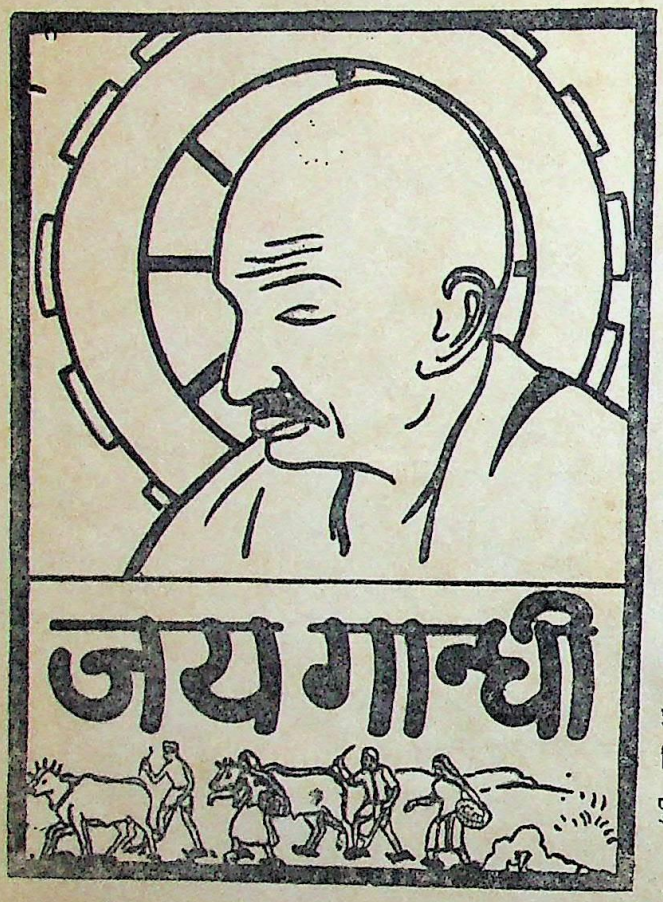

सुप्रसिद्ध गांधीवादी कवि सोहनलाल द्विवेदी की लोकप्रिय राष्ट्रीय कविताओं का सर्वांग-सुन्दर प्रकाशन है। पाठकों के विशेष आग्रह पर हमने यह विशेष संस्करण प्रकाशित किया है।

जय गांधी का नया आकार-प्रकार, नये अलंकरण, नये चित्र, नई रचनाएँ तथा नई सजधज अपूर्व है। देश के चोटी के नेताओं और साहित्यकारों ने इन रचनाओं की मुक्त-कंठ से प्रशंसा की है।

ऐसी अमूल्य कृति आप स्वयं अपने पुस्तकालय में रखिए और शुभ अवसरों पर अपने प्रिय मित्रों को स्नेहोपहार में दीजिए। इसी दृष्टि से इसका प्रकाशन भी हुआ है। मूल्य केवल २

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार

गांधी-मीमांसा

लेखक : स्वर्गीय पं० रामदयाल तिवारी

इसमें गांधीजी के व्यक्तित्व और सिद्धान्तों की तर्कपूर्ण विवेचना प्रस्तुत की गई है। पृ० ८५०, मूल्य ४·०० रुपये।

जगदालोक

रचयिता : ठाकुर गोपालशरणसिंह

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी पर अत्यन्त ओजपूर्ण महाकाव्य, जो प्रत्येक भारतीय के लिए संग्रहणीय है। पृ० ३४१, मूल्य ६·०० रुपये।

युगाधार

रचयिता : श्री सोहनलाल द्विवेदी

उन फड़कती हुई कविताओं का संग्रह जो स्वतन्त्रता प्राप्ति की प्रेरणा और स्फूर्ति देने में मन्त्रों जैसी प्रभावोत्पादक सिद्ध हो चुकी हैं। सजिल्द, सचित्र और १२९ पृष्ठों की पुस्तक का मूल्य ४·२५ रुपये।

गांधी अभिनन्दन ग्रंथ

सम्पादक : श्री सोहनलाल द्विवेदी

युगपुरुष गांधीजी पर विभिन्न भाषाओं के कवियों ने जो उत्कृष्ट कविताएँ लिखी हैं, उनका अपूर्व संग्रह इस ग्रन्थ में किया गया है। बड़े आकार के इस सजिल्द और सचित्र ग्रन्थ का मूल्य ७·५० रुपये।

बच्चों के बापू

लेखक : श्री सोहनलाल द्विवेदी

गांधीजी के जीवन का चलता फिरता बोलता हुआ रंगीन सिनेमा है। जिसे प्रत्येक बालक और बालिका को अवश्य देखना चाहिए। आफसेट में, मोटे कागज पर, छपी पुस्तक का मूल्य लागत मात्र २·५० रुपये।

इण्डियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri